131415

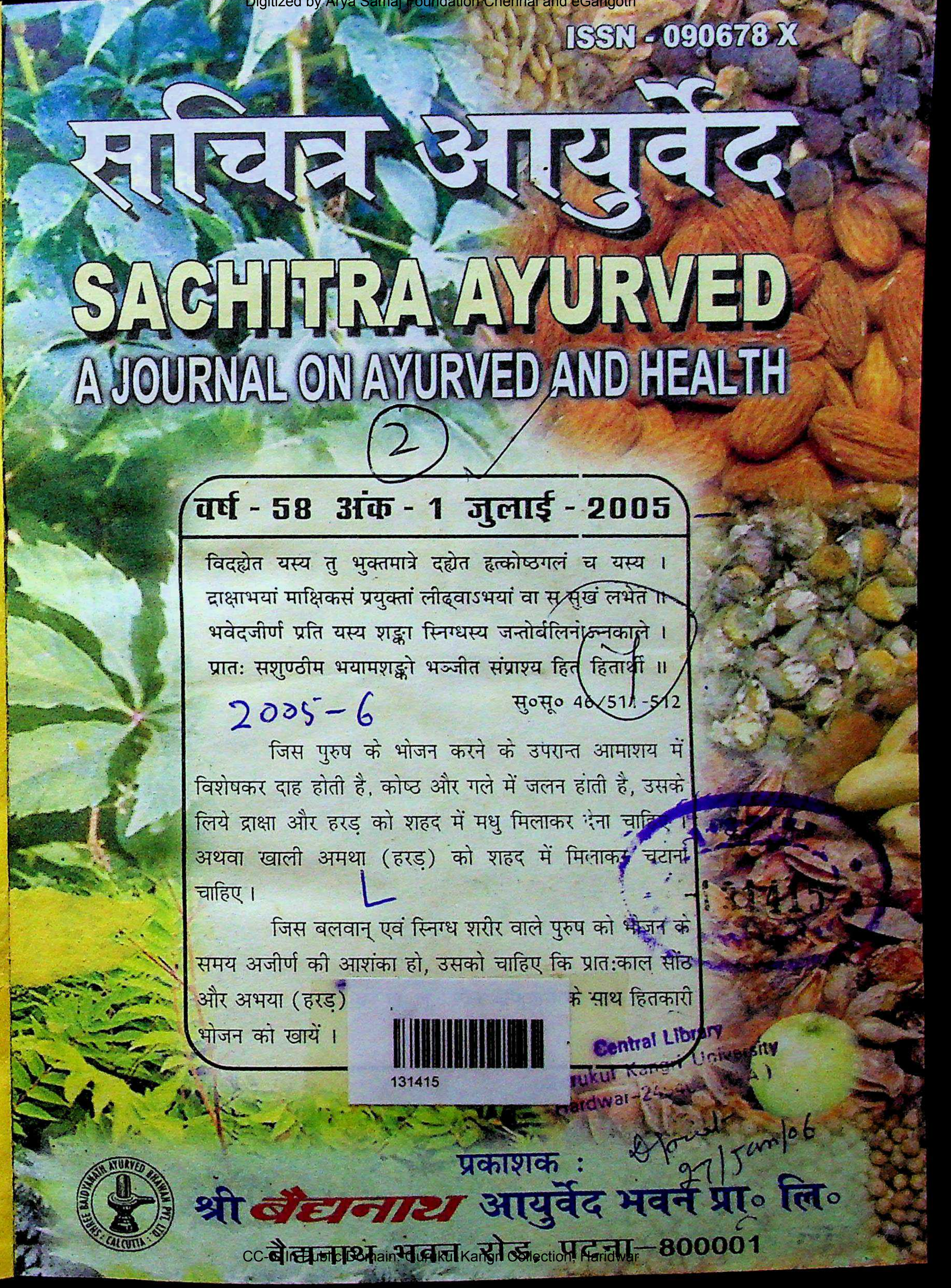

ISSN - 090678 X

सचित्र आयुर्वेद

SACHITRA AYURVED

A JOURNAL ON AYURVED AND HEALTH

(2)

वर्ष - 58 अंक - 1 जुलाई - 2005

विद्ह्येत यस्य तु भुक्तमात्रे दह्येत हृत्कोष्ठगलं च यस्य ।
द्राक्षाभयां माक्षिकसं प्रयुक्तां लीढ्वाऽभयां वा स सुखं लभेत ॥
भवेदजीर्ण प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्बलिनोऽन्नकाले ।
प्रातः सशुण्ठीम भयामशङ्को भञ्जीत संप्राश्य हितं हितार्थी ॥

1

2005-6

सु०सू० 46/511-512

जिस पुरुष के भोजन करने के उपरान्त आमाशय में विशेषकर दाह होती है, कोष्ठ और गले में जलन हांती है, उसके लिये द्राक्षा और हरड़ को शहद में मधु मिलाकर देना चाहिए। अथवा खाली अमथा (हरड़) को शहद में मिलाकर चटाना चाहिए।

L

जिस बलवान् एवं स्निग्ध शरीर वाले पुरुष को भोजन के समय अजीर्ण की आशंका हो, उसको चाहिए कि प्रातःकाल सोंठ और अभया (हरड़) [illegible] के साथ हितकारी भोजन को खायें।

131415

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar

131415

27/Jan/06

प्रकाशक :
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना—800001

अब भूल जाईये महीने की चिन्ता

बैद्यनाथ

सुन्दरी कल्प फोर्ट

बैद्यनाथ
सुन्दरी कल्प फोर्ट
भूल जाइये महीने की चिंता

रक्त की कमी, घबराहट, थकावट, हाथ पाँव के तलवे की जलन आदि परेशानियों में फौरन आराम देता है ।

"अब आप भी अपना ख्याल रखिए"

बैद्यनाथ

सुरक्ता

Baidyanath
SURAKTA
AYURVEDIC SKIN TONER
BEAUTIFUL SKIN FROM WITHIN

आयुर्वेदिक स्किन टोनर
कील मुहाँसों के लिए

सुन्दर त्वचा भीतर से निखरे

हिन्दी भाषा विद्वान लेखकों से निवेदन

यद्यपि सचित्र आयुर्वेद में हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा में लिखे गये लेखों का प्रकाशन होता है, किन्तु ज्यादातर पाठक हिन्दी भाषा होने के कारण हिन्दी भाषा में ज्यादा से ज्यादा लेखों का प्रकाशन करना हमारी विवशता है। दुर्भाग्यवश हिन्दीभाषा विद्वान लेखक भी अंग्रेजी में लिखना पसन्द करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अंग्रेजी भाषा के लेखों का अम्बार लग जाता है जिसके कारण प्रकाशन में विलम्ब होता है। वस्तुतः अंग्रेजी भाषा में लेखों का प्रकाशन दक्षिण भारतीय पाठकों के लिए किया जाता है।

अतः हिन्दी भाषी विद्वान लेखक हमारी विवशता को समझेंगे और वे हिन्दी भाषा में लेख भेजने का प्रयास करें। इससे हमें सुविधा होगी और विद्वान लेखकों को लेख-प्रकाशन के लिए ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

आजीवन सदस्य बनकर लगभग डेढ़ सौ रुपये मूल्य के पुस्तकों को निःशुल्क प्राप्त करें

मुद्रण-सामग्री एवं कागजों के मूल्य में इन दिनों अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है। फिर भी जो व्यक्ति आजीवन ग्राहक बनना चाहते हैं, वे सम्प्रति 1000/- रुपये 'सचित्र आयुर्वेद' के नाम से बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें। यदि कोई संस्थान ग्राहक बनना चाहता है, तो 2000/- दो हजार रुपये का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें। उन्हें अविलम्ब आजीवन ग्राहक बना लिया जायेगा एवं उपहार स्वरूप 'सचित्र आयुर्वेद' के उपलब्ध सभी विशेषांक एवं 'कर्मयोगी एवं रामदयाल जोशी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व' नामक पुस्तक निबन्धित डाक से निःशुल्क भेज दिये जायेंगे।

ग्राहक अविलम्ब आजीवन सदस्यता शुल्क भेजकर इस आकर्षक उपहार-योजना का लाभ अवश्य उठावें।

निवेदक :-
संपादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 800 001

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 1 जुलाई - 2005

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-**baidyanath_ayurved@vsnl.com**

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुक्ल - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुक्ल -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 3
2. आयुर्वेद अनुसंधान के बढ़ते चरण 4
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. वसा जन्य विकार एवं चिकित्सा 10
वैद्य पी०एस०अंशुमान
4. आयुर्वेद में सुस्वास्थ्य की अवधारणा 15
आचार्य राजकुमार जैन
5. जीवन का उत्तरार्ध सेवा निवृत काल और स्वास्थ्य 19
वैद्य इन्द्रदेव भट्ट
6. वर्तमान परिवेश में प्रवाहिका एवं उसकी चिकित्सा 23
डा० विजय कुमार राय
7. तनाव : कारण, लक्षण व उपचार 26
डा० राजीव गुप्ता
8. कैसे करें क्वाथ (काढ़ा) निर्माण 28
डॉ० गोविन्द शुक्ला
9. बाल्यावस्था में कुकुर खांसी का प्रकोप - एक समीक्षा 30
कु. सरजा रानी, डा. सुरेश चन्द्र, डा. नरेश कु. गुप्ता
10. आँवला - फल एक गुण अनेक 33
जयेन्द्र कुमार जौहरी
11. गर्भावस्था में कैसा आहार लें ? 35
पारिधि जैन
12. खाद्य पदार्थों में मिलावट एवं स्वास्थ्य 37
डा० अशोक कुमार श्रीवास्तव
13. गर्मियों में आपके लाड़ले की सेहत 39
वीना श्रीश्रीमल
14. शंखभस्म का महिला रुग्णा तारुण्यपिडिका व्याधि में संशोधनात्मक अध्ययन 41
डा० ओम प्रकाश तलोकर
15. आयुर्वेद में प्रमेहघ्न द्रव्य 44
डा० गणेश चन्द्र उपाध्याय
प्रो०पी०पी०शर्मा
16. अम्ल एवं पित्त 45
डा. महेश कु. शर्मा, डा. प्रमोद दीपक चतुर्वेदी
17. **Effect of Bilwa (Aegle marmelos) Patra Swarasa on Gastrointestinal Tract** 47
Dr. Laxmi N. Gupta, Dr. C.B. Jha
18. **General rules for collection of medicinal plants** 53
Prashant Kr. Jha, T.N. Pandya
19. **Medicinal Uses of Orchid Plants** 56
Dr. Anil Kr. Dhiman
20. **Poisoning and its first AID** 60
Dr. Ashutosh Kumar Yadav
Dr. J.K. Mishra, Dr. H.H. Awasthi
21. **Folk Medicines of Mandsaur Dist. (M.P.)** 63
Edwin E., Sheeja E., Amalraj.A., Soni. R
22. स्मृति शेष 67
23. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 69
24. आपके अनुभूत प्रयोग 72
25. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 74
26. आपके पत्र 75
27. आरोग्य समाचार 76
28. आयुर्वेद जगत की गतिविधियां 77

विषय-सूची

- 58 अंक - 2 अगस्त - 2005

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
ी बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
ोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
क्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

क प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
ार्षिक मूल्य - 100/-रु०
ाजीवन शुक्ल - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
ाजीवन शुक्ल -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 83
2. आयुर्वेद का इतिहास 84
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. शोष विशेष के रूप में कहे गये कुछ मांस विकार 89
वैद्य पी०एस०अंशुमान
4. दिमागी बुखार - निदान एवं चिकित्सा 95
डॉ० विनोद कुमार गौतम
डॉ० माण्डवी गौतम
प्रो० अजय कुमार शर्मा
5. वातरक्त रोग : लक्षण, भेद, कारण व उपचार 97
वैद्य चन्द्रदेव मंडल
6. नाड़ी परीक्षा-क्या संहिता में संदर्भ नहीं है ? 100
वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तूरे
वैद्या तनूजा पटेल
7. मधुमेह चिकित्सा में अवस्था निर्धारण एवं समाग्निक्रियाजन्य धातुसाम्य का महत्व 106
डा० उत्तम कुमार शर्मा
8. इओसिनोफिलिया कारण और बचाव 109
डॉ० आशुतोष कु० यादव
डा० जे. के. मिश्रा
डा० एच. एच. अवस्थी
9. महौषधि - शुण्ठी - आर्द्रक 111
डा० केदारनाथ यादव
10. उपयोगिता से भरपूर नींबू 114
राजकुमार जैन
11. क्या आप भी पेट की गैस से परेशान है ? 115
मीना
12. ग्रीष्म कालीन आहार-विहार पर विशेष चर्चा 116
कविराज डा० दिवाकर ठाकुर
13. बच्चों को वर्षा ऋतु में होने वाले रोग और उनसे सुरक्षा के उपाय 118
डा० अयोध्या प्रसाद अंचल
14. Amalaki Rasayana: A Protection Against Experimental Gastric Ulcers in Albino Rata And Having Better Amlapittahara Effect 120
Dr. Bharat Kalsariya, Dr. B. Patgiri
Dr. B. Ravishankar, Dr. P.K. Prajapati
15. A clinical study on "effect of amalaki (emblica officinalis) Churna in pulmonary Tuberculosis as an adjuvant therapy 126
Dr. B. Chandra Sekhara Rao
17. Implementation of GMP in ASU industries: Problems and Prospective 134
Dr. Prasanta Kumar Sarkar
18. Metallic part Detection in An Ayurvedic Bhasm by Atomic Spectroscopy (Spectrograph) 137
Dr. Sah Lalit Mohan, Jha C.B.
19. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 139
20. आपके पत्र 152
21. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 155
22. आरोग्य समाचार 156
23. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 157

हिन्दी भाषा विद्वान लेखकों से निवेदन

यद्यपि सचित्र आयुर्वेद में हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा में लिखे गये लेखों का प्रकाशन होता है, किन्तु ज्यादातर पाठक हिन्दी भाषा होने के कारण हिन्दी भाषा में ज्यादा से ज्यादा लेखों का प्रकाशन करना हमारी विवशता है। दुर्भाग्यवश हिन्दीभाषा विद्वान लेखक भी अंग्रेजी में लिखना पसन्द करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अंग्रेजी भाषा के लेखों का अम्बार लग जाता है जिसके कारण प्रकाशन में विलम्ब होता है। वस्तुतः अंग्रेजी भाषा में लेखों का प्रकाशन दक्षिण भारतीय पाठकों के लिए किया जाता है।

अतः हिन्दी भाषी विद्वान लेखक हमारी विवशता को समझेंगे और वे हिन्दी भाषा में लेख भेजने का प्रयास करें। इससे हमें सुविधा होगी और विद्वान लेखकों को लेख-प्रकाशन के लिए ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

आजीवन सदस्य बनकर लगभग डेढ़ सौ रुपये मूल्य के पुस्तकों को निःशुल्क प्राप्त करें

मुद्रण-सामग्री एवं कागजों के मूल्य में इन दिनों अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है। फिर भी जो व्यक्ति आजीवन ग्राहक बनना चाहते हैं, वे सम्प्रति 1000/- रुपये 'सचित्र आयुर्वेद' के नाम से बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें। यदि कोई संस्थान ग्राहक बनना चाहता है, तो 2000/- दो हजार रुपये का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें। उन्हें अविलम्ब आजीवन ग्राहक बना लिया जायेगा एवं उपहार स्वरूप 'सचित्र आयुर्वेद' के उपलब्ध सभी विशेषांक एवं 'कर्मयोगी एवं रामदयाल जोशी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व' नामक पुस्तक निबन्धित डाक से निःशुल्क भेज दिये जायेंगे।

ग्राहक अविलम्ब आजीवन सदस्यता शुल्क भेजकर इस आकर्षक उपहार-योजना का लाभ अवश्य उठावें।

निवेदक :-
संपादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 800 001

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 3 सितम्बर - 2005

सम्पादक : विमल चन्द्र झा
सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 163
2. आयुर्वेद का इतिहास 165
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. जीव विज्ञान-आयुर्वेद 168
आचार्य राजकुमार जैन
4. वात जनित व्याधियों में आमवात की सफल चिकित्सा 172
डा० मायाराम उनियाल
5. बहुपयोगी वनौषध बच-परिचय एवं खेती 175
लायक राम भट्ट
6. मानसिक रोग-चिंता मनस्ताप के लक्षण और उपचार 178
डा० दीनाथ राय
7. आंत्रगुल्म (अपेंडिसाइटिस) कारण, लक्षण व उपचार 183
डॉ० राजीव गुप्ता
8. थायॅराइड विकार एवं हाइपोथाइरॉयडिजम की सफल आयुर्वेदिक चिकित्सा 184
डॉ० संदीप मदान
9. आयुर्वेदिक दृष्टि से कास की चिकित्सा एवं रोकथाम के उपाय 186
डा० दिनेश कुमार गोयल, डा० रूबी गोयल
10. ग्रहणी 189
डॉ० संदीप अग्रवाल, डा० सुमन अग्रवाल
11. शय्या मूत्रण का सामान्य परिचय-एक अध्ययन 191
कु०सरजा रानी, डा० सुरेश चन्द्र
12. विचर्चिका रोग के परिप्रेक्ष्य में जलौका-वचारण एवं पंचनिम्ब चूर्ण (वटी) की कार्मुकता का एक अध्ययन 193
डा०रामेश्वर प्र०गुप्ता, डा०श्याम सुन्दर शर्मा
13. जरूरी है विटामिन 'बी' 198
कैलाश जैन
14. दालचीनी मसाला ही नहीं, दवा भी 199
डा० हनुमान प्रसाद उत्तम
15. पाषाण भेद - शोधपूर्ण विवेचन 200
कविराज डा० दिवाकर ठाकुर
16. जोडों की कष्टसाध्य व्याधि-आमवात "निदान एवं चिकित्सा" 201
डा० विजय कुमार राय
17. Quality control and standardization of metallic and mineral preparations of Ayurveda and Siddha 205
Ariamuthu Saraswathy
18. PANCHKARMA 210
Dr. Shivani Padha, Dr. J.S. Tripathi
19. Medicinal Plants of thar Desert : A survey report 214
Edwin E., Sheeja E., Rathore C., Somani. V
20. Suturing inAyurveda 218
Dr. Umesh Chand Sharma, Dr. Amanpreet Kaur Broca, Dr. H.K. Kushwah
21. Analytical Study of Kloma 221
Dr. G.S. Hadimani, Dr. K.H. Pachchinavar
22. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 22
23. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 231
24. आपके पत्र 231
25. आरोग्य समाचार 234
26. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 235

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का 57 वाँ महाधिवेशन

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का 57 वाँ महाधिवेशन दिनांक 27 एवं 28 सितम्बर 2005 को 'जयपुर' में हो रहा है। भारत का 'पेरिस' नाम से विश्वविख्यात श्री गोविन्ददेवजी की यह 'गुलाबी नगरी' दूसरी 'काशी (वाराणसी)' के नाम से भी जानी जाती है।

भारत के उपराष्ट्रपति महामहिम माननीय श्रीमान् भैरोसिंह जी शेखावत इस महाधिवेशन का उद्‌घाटन करेंगे।

राजस्थान की राज्यपाल महामहिम माननीया श्रीमती प्रतिभा जी पाटील के कर-कमलों से निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ एवं तदन्तर्गत 'वैज्ञानिक-कान्फ्रेंस' का उद्‌घाटन होगा। 'वैज्ञानिक-कान्फ्रेंस' इस महाधिवेशन का मुख्य आकर्षण प्रकरण होगा, जिसका विषय "आयुर्वेदिक औषधियों का निर्विष प्रभाव" तथा, साथ ही साथ "राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर, आयुर्वेदिक औषधियों का मुक्त व्यापार" आदि अन्य सम्बन्धित सामूहिक विषयों पर विचार-विमर्श होगा। इसमें विश्वविख्यात् आयुर्वेद वैज्ञानिकों के सारगर्भित भाव उद्‌भाषित होंगे। इस विषय विशेष को प्रमाणित रूप से प्रतिष्ठापित करने के लिए इसी अवसर पर "आयुर्वेद प्रदर्शनी" का भी प्रदर्शन होगा। इस प्रदर्शिनी में भारत की विख्यात आयुर्वेद फार्मेसियाँ अपनी-अपनी प्रभावी प्रमाणित एवं अनुभूत औषधियों का प्रदर्शन कर वैद्यगण एवं आम जनता को रोग विशेष से लाभान्वित होने के उपाय प्रदर्शित करेंगे।

राजस्थान की मुख्यमंत्री, चिकित्सा (शिक्षा) मंत्री, चिकित्सा एवं आयुर्वेद मंत्री के साथ-साथ अ.भा. काग्रेस कमेटी के महासचिव श्रीमान् अशोक गहलोत के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध राजनेता एवं अधिकारीगण, अनेक विशिष्टजनों एवं विदेशी प्रतिनिधियों से, इस समारोह में सम्मिलित होने का निवेदन किया गया है।

राजस्थान के चिकित्सा स्वास्थ्य, परिवार-कल्याण एवं आयुर्वेद मंत्री सम्माननीय डा. दिगम्बर सिंह जी इस 57वें महाधिवेशन के 'संरक्षक (Patron)' हैं।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के नवनिर्वाचित अध्यक्ष पद्मश्री वैद्य श्री देवेन्द्रजी त्रिगुणा, महासम्मेलन तथा नि. भा.आ. विद्यापीठ के नवनिर्वाचित अध्यक्ष वैद्य श्री शिवकुमार मिश्रा विद्यापीठ का कार्यभार ग्रहण करेंगे।

मंगलवार, 27 सितम्बर 2005 से महाधिवेशन के कार्यक्रम प्रारंभ हो जाएंगे और बुधवार 28 सितम्बर, 2005 तक चलेंगे। इस अवधि में महासम्मेलन की 'स्थायी समिति', 'कार्यकारिणी समिति', 'विषय निर्धारिणी', 'विद्यापीठ समिति', 'खुला अधिवेशन' आदि कार्यक्रम भी सम्पन्न होंगे।

सभी कार्यक्रम 'बिरला ऑडीटोरियम', स्टेच्यू सर्किल, जयपुर में सम्पन्न होंगे।

आपसे सादर निवेदन है कि इस अवसर पर आयोजित समस्त कार्यक्रमों में सम्मिलित होने की कृपा करें।

जयपुर में, 27 सितम्बर 05 और 28 सितम्बर 05 दो दिनों के लिए आपके निवास (सामूहिक कक्ष में - **Dormitory-Sleeping Room with many beds**) एवं भोजन की व्यवस्था स्वागत समिति की ओर से की जायेगी।

होटल में निवास व्यवस्था के इच्छुक आगन्तुक महानुभावों द्वारा 11 सितम्बर 2005 तक अग्रिम निवेदन-पत्र एवं अग्रिम पूर्ण धनराशि प्रेषित करने पर ही, होटल में स्थान रिजर्व करवाने का प्रयास किया जा सकेगा, क्योंकि जयपुर एक 'पर्यटन स्थल है' और 'सीजन' भी पर्यटन का है।

जयपुर का रेलवे स्टेशन 'जयपुर जंक्शन' भारत के सभी महानगरों एवं राज्यों की राजधानियों से रेल मार्ग से जुड़ा हुआ है। राजस्थान के पड़ोसी राज्य हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, हिमाचल प्रदेश, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, उत्तरांचल, मध्य प्रदेश और गुजरात से बस, कार मार्ग से भी जुड़ा हुआ है।

रेलवे स्टेशन 'जयपुर जंक्शन' के प्लेटफार्म नम्बर 1 के मुख्य निकास के पास अथवा/और केन्द्रीय बस अड्डा 'सिन्धी कैम्प' के डीलक्स प्लेटफार्म (नं. 3) पर स्थित 'स्वागत काउन्टर' पर दिनांक 27 सितम्बर 2005 को स्वागत समिति के कार्यकर्ता आपको मिलकर जयपुर में आपके निवास स्थान तक पहुँचने में, पथ प्रदर्शक के रूप में यथा संभव सहायता करेंगे।

आपके पहुँचने की तिथि तथा हवाई/रेल/बस/कार मार्ग की जानकारी की हमें प्रतीक्षा रहेगी।

भवदीय

अजय शर्मा स्वागताध्यक्ष	वैद्य रामप्रसाद मिश्र स्वागत मंत्री	वैद्य शिवकुमार मिश्र प्रधानमंत्री, अ.भा. आयुर्वेद महासम्मेलन

सम्पर्क सूत्र
3240, मिर्जा इस्माइल रोड, पाँच बत्ती, संजय मेडिकल्स के ऊपर, जयपुर-302001 (राजस्थान)
फोन/फैक्स : 0141-2374964 मोबाइल : 98291-14086

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 4 अक्तूबर - 2005

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 243
2. आयुर्वेद का इतिहास 245
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. दोषज उन्माद चिकित्सा संबंधी आयुर्वेदीय परिकल्पना (कुछ आ.वृ. पत्र सहित) 248
वैद्य पी०एस०अंशुमान
4. भूटान की वनसम्पदा एवं पारम्परिक जड़ी-बूटियाँ 256
डॉ० मायाराम उनियाल
5. कामला रोग में विरेचन कर्म की उपयोगिता 262
प्रो० अजय कुमार शर्मा, डॉ० सीमा जैन भदौरा
6. पाण्डुरोग की चिकित्सा में निर्दिष्ट चरकोक्त योग 265
डा० अनूप कु० गक्खड़
डा० अनिल कु० गक्खड़
7. घरेलू नुस्खों से स्त्री रोगों का इलाज 266
डा० हनुमान प्रसाद उत्तम
8. बालों को काला रखने के उपाय 267
डा० वीरेन्द्र कुमार शर्मा
9. पर्णबीज 269
डा०गणेश चन्द्र उपाध्याय
प्रो.पी.पी.शर्मा
10. मूलगामी चिकित्सा का सोपान पंचकर्म 271
डा०बी.एल. निर्मल
11. वानस्पतिक औषधियों के उत्पादन की आवश्यकता 273
प्रो०बी०एन०सिंह
डॉ०ए०के०शर्मा, डॉ०प्रदीप श्रीवास्तव
12. श्लेष्मक ज्वर एवं चिकित्सा 277
डॉ० एस.डी. शर्मा
अरशा अहमद
13. बेहद उपयोगी है काली मिर्च 279
परिधि जैन
14. स्थानीय उपचार में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ 281
डा० राजकुमार द्विवेदी
15. A Comparative study of triphala shodhita shilajeet and gomutra shodhita shilajeet in the management of sthaulya 282
Dr. Renuka Joshi, Dr. Jadev
Dr. Anand Kr. choudhary, Prof. K. Singh
16. Role of Pathya (Wholesome regimen) in madhumeha (Diabetes mellitus) 286
Dr. Pradeep Kumar
17. BILWA - Chemical Constituent and Medicinal Properties 290
Dr. Laxmi N. Gupta, Dr. C.B. Jha
Dr. R.K. Sharma
18. EYE Banking 293
Dr. Haramohan Moharana
19. Evaluation of effect of Yakritpliharilauha in viral Hepatitis A 294
Dr. Umesh Shukla, Dr. Charu Bansal
Dr. Anil Negle
20. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 299
21. आपके अनुभूत प्रयोग 305
22. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 306
23. आपके पत्र 307
24. आरोग्य समाचार 312
25. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 315

शुभकामनाएं

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, कलकत्ता, पटना, नैनी (इलाहाबाद), झांसी एवं नागपुर अपनी ओर से धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह के पावन अवसर पर विश्व के समस्त प्राणियों के सुखद स्वास्थ्य की कामना करता है और व्याधिग्रस्त रोगियों के शीघ्र आरोग्य-लाभ की कामना करता है ।

इस वर्ष धन्वन्तरि-जयन्ती 30 अक्टूबर, 2005 को मनायी जायेगी । यह पावन दिवस अभी लगभग एक मास दूर है । किन्तु, अंग्रेजी कैलेन्डर के अनुसार अक्टूबर मास में ही यह पावन दिवस पड़ने के कारण श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि० के समस्त संचालकगण, निदेशकगण, अधिकारीगण एवं कर्मीगण अपनी ओर से तथा प्रतिष्ठान की ओर से विश्व के अनेक देशों में एवं स्वदेश में फैले समस्त एजेन्ट्स, आपूर्त्तिकर्त्ता, व्याधि ग्रस्त मानव, आयुर्वेद जगत् के समस्त विद्वान, पाठकगण, वैद्यगण एवं कार्यकर्त्ताओं को हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता है ।

- नियोजकगण

एवं सम्पादक

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 5 नवम्बर - 2005

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 325
2. आयुर्वेद का इतिहास-72 326
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. अनुवांशिक रोग 334
वैद्य पी०एस०अंशुमान
4. आमवात का निदान सम्प्राप्तिपरक एवं अलम्बुषादि घनवटी का उपशयात्मक अध्ययन 341
डॉ०लोकनाथ शर्मा, डा० मनमोहन शर्मा
5. ऋतु प्रभावात उत्पन्न एवं परिणामशूल:एक आयुर्वेदीय अध्ययन 349
प्रो० हरिभाई के. त्रिवेदी
6. आयुर्वेद में मानसिक रोग की अवधारणा एवं चिकित्सा 353
डॉ० जितेन्द्र कुमार, डॉ० अश्विनी शर्मा
प्रो० लोकनाथ शर्मा
7. आयुर्वेद परक-डायबिटिक फुट जानलेवा रोग 355
डा० सुरेश चन्द
8. उत्तरांचल की कुछ कीटनाशक वनस्पतियाँ 357
डा० जी.सी. जोशी
9. एक उपयोगी औषधि : जटामांसी 359
डा० विनय शौनक
10. एक पौष्टिक फल : बेल 360
राजकुमार जैन
11. खतरनाक है-शरीर में अधिक आयरन 362
परिधि जैन
12. Role of Jalaukavacharan and Pancha Nimba churna vati in vicharchika 364
Dr. Uday Patankar, Dr. Ujwala Patankar
Prof. S.S. Sharma
13. Therapeutic uses of ghee in Ayurveda 368
Dr. Mayank Bhatkoti, Prof. V.D. Shukla
14. Diabetes and its Applied aspect in Ayur. 370
Dr. G.C. Nanda, Dr. N.N. Pathak
15. Status of Ojasa and Agni in Prameha vis a vis Diabetes mellitus : A critical consideration 376
Sanjay Kumar, Pandey A.K.
16. Utility of Animal blood in human welfare (preliminary study) 379
Abha Prasad, Dr. Dinesh Kumar
Dr. Alka Sharan, Dr. R.R. Prasad
17. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 383
18. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 387

57th PLENARY SESSION
ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS

बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० के निदेशक श्री अजय शर्मा स्वागताध्यक्ष महाधिवेशन के उद्घाटन पर स्वागत भाषण पढ़ते हुए परिलक्षित हैं ।

आयुर्वेद महासम्मेलन
2005,
27-28 SEPTEMBER 2005,
JAIPUR
TH PLENARY SESSI N

महामहिम उपराष्ट्रपति जी द्वारा श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के निदेशक, श्री अजय शर्मा को सम्मान स्वरूप प्रतीक चिन्ह भेंट करते हुए

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 6 दिसम्बर - 2005

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 405
2. आयुर्वेद का इतिहास-73 406
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. शुक्र प्रदुष्टियों की चिकित्सा:प्राच्य संदर्भ 412
वैद्य पी०एस०अंशुमान
4. वृक्क के अन्तर्गत व्याधि:एक आयुर्वेदीय अध्ययन 420
प्रो० हरिभाई के० त्रिवेदी
5. पित्त एवं अग्नि विवेचन 424
डॉ० माण्डवी गौतम
प्रो० ओम प्रकाश उपाध्याय
डा० विनोद कुमार गौतम
6. निद्रा तु वैष्णवी प्रोक्ता 428
वैद्य (डा.) ओमवीर सिंह 'वीर'
सुरेन्द्र सिंह
7. दर्शनशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में आत्मा एवं मन का परस्पर सम्बन्ध-एक समीक्षा 430
डा० सुरेश चन्द
8. द्वादश प्राण में वायु - एक विवेचन 433
डा० आशुतोष कुमार यादव
डा० सुमन यादव
प्रो० एस०डी० दूबे
9. स्वास्थ्यवर्द्धक शरदऋतु 438
कवि० डा० दिवाकर ठाकुर
10. अपना शब्द ज्ञान परखिये 440
डा०गोपेश कुमार न. शर्मा
डा० दिनेश कुमार शर्मा
11. Critical Evaluation of ASTHAVIDHA PARiKSHA 443
Dr. Parameswarapps.S.Byadgi
Vasudha P. Rao
12. Effect of Bilwa (Aegle marmelos) Phala Majja Churna on Gastrointestinal Tract 447
Dr. Laxmi N. Gupta
Dr. R.K. Sharma
Dr. C.B. Jha
13. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 453
14. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 462
15. आलोचक की दृष्टि में 463
16. आपके पत्र 465
17. आपके अनुभूत प्रयोग 466
18. सम्पूर्ण देश में धन्वन्तरि-जयन्ती समारोह की धूम । बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने इसे स्वास्थ्य दिवस-समारोह के रूप में मनाया । 467
19. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 475

बैद्यनाथ
आँवला
केश तेल

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना के माननीय अध्यक्ष, श्री अरूण शर्मा भगवान धन्वन्तरि के तैल चित्र पर माल्यार्पण करते हुए दिखलायी पड़ रहे हैं । उनके बगल में माननीय कार्यपालक निदेशक, श्री रमाकान्त शर्मा खड़े हैं ।

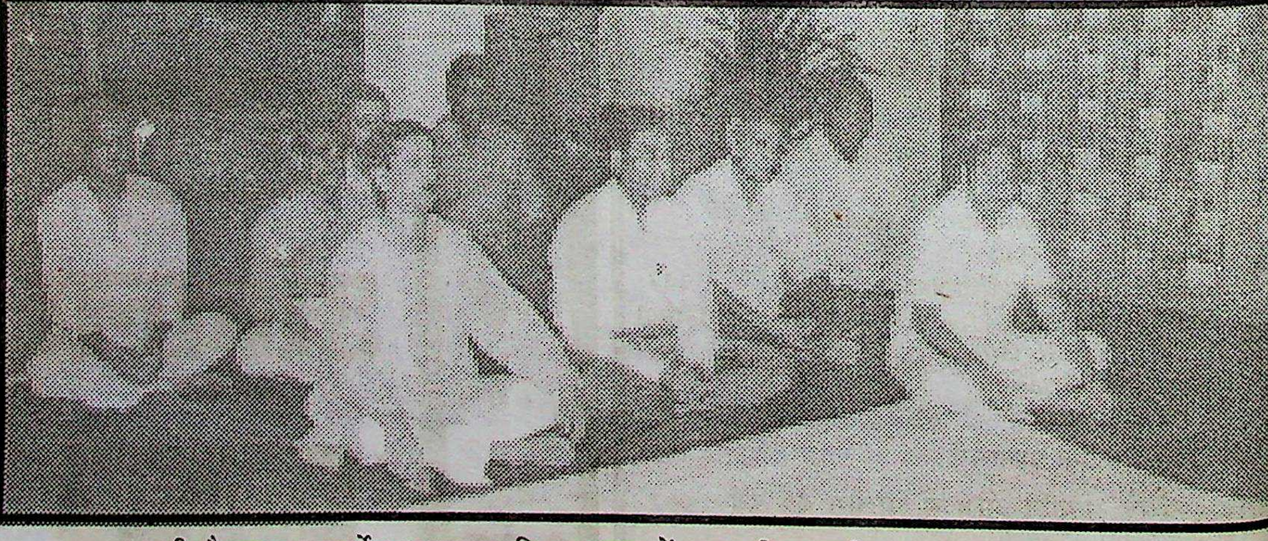

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि० पटना में धन्वन्तरि जयन्ती पूजन का एक दृश्य

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 7 जनवरी - 2006

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 485
2. आयुर्वेद का इतिहास - 74 487
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. मधुमेह के प्रतिरोधक पहलू 494
प्रो.जी.के. चतुर्वेदी
डा० प्राजक्ता-अम्बाडर
4. संस्कृत ग्रन्थों में भोजन की अवधारणा 502
ज्योत्सना निगम
5. पोटाशियम के चयापचय जन्य विकार एवं उनका आयुर्वेदीय प्रतिकार 506
डा० अनूप कुमार इन्दोरिया
प्रो० अजय कुमार शर्मा
6. अम्लपित्त: कारण, लक्षण एवं चिकित्सा 511
डा० श्रीमती कुसुम गुप्ता, डा० गोविन्द गुप्ता
7. वासा (अडूसा)-एक दिव्य औषधि 513
डा० रामानन्द
डा० आर०बी० यादव
8. रसेन्द्रमंगल का रसशास्त्र में योगदान 515
डा० दी० नागेश्वर राव
9. मांसाहर एवं परीक्ष्य भाव 516
डा० राजीव श्रीवास्तव, डा० दुर्गावती देवी
डा० बी०के० द्विवेदी
10. मधुमेह : लक्षण व उपचार 519
डा० राजीव गुप्ता
11. Nidanatmak and Upshayatmak study of Tridoshaja yonivyapada W.S.R. to bacterial vaginosis 521
Prof. Loknath Sharma
Dr. Rizwana Parveen
12. Prevention of Bacterial Water Borne Disease 529
Sakarkar, Faria Fatima, Gonsalves L
13. Ayurveda and Liver Care 531
Amit k. Jain, R. Sagar
Anurekha Jain, Avijeet Jain
R. Gupta, M.S. Sikarwar
14. Onion And Its Pharmacognostical aspects 535
Mukesh S. Sikarwar
Sushil K. Dubey, Amit K. Jain
15. Applied Aspect of Dashavidha Pariksha with Special Reference to Samhanana and Pramana
Dr. Ashutosh Kumar Yadav
Dr. Suman Yadav
Dr. Parameswarappa S. Byadgi
Prof. C.B. Jha
16. अपना शब्द ज्ञान परखिये 542
डा० गोपेश कुमार न. शर्मा
डा० दिनेश कुमार शर्मा
17. आपके अनुभूत प्रयोग 545
18. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 549
19. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 553
20. आपके पत्र 554
21. आरोग्य समाचार 556
22. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 557

निर्माण कार्य एवं चिकित्सा कार्य बहुत ही चुनौतियों भरा है। लोगों को आयुर्वेदिक दवाओं से देर से लाभ होने का जो विश्वास है वह ठीक नहीं है। मेरी आयु इस समय 85 वर्ष है। मैं 65 वर्षों से चिकित्सा कार्य कर रहा हूँ। जटिल से जटिल व कठिन बीमारी केवल आयुर्वेदिक औषधिों से ठीक होती है। इसीलिए आयुर्वेद के विरोध करने वाले आयुर्वेदिक दवाइयों में हैविमैटल-हैविखनिज भस्में आदि हानिकारक कहकर दुष्प्रचार कर रहे हैं।

अन्त में बैद्यनाथ झाँसी के महाप्रबन्धक श्री वाई०पी० शर्मा जी ने आगन्तुक वैद्यों, अतिथियों एवं नागरिकों को समारोह में आने का धन्यवाद व आभार प्रकट किया। प्रसाद के रूप में केशरयुक्त दुग्ध व मिष्ठान धारण किया गया।

मुम्बई - वैद्य - सभा

(संस्थापित - 1890)

श्री धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह व ज्ञानवयोवृद्ध अभिनन्दन समारोह

सन् 1890 से संस्थापित, मुम्बई वैद्य सभा एवं मुम्बई महानगर आयुर्वेद सम्मेलन के संयुक्त, तत्वावधान में श्री धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव, वैद्य सभा अध्यक्ष आचार्य वैद्यराज पंडित जी श्री श्रीरामजी शर्मा के सभापतित्व में मनाया गया तथा इस अवसर पर आयुर्वेद महाविद्यालय, शिव, मुम्बई के भू०पू० प्राचार्य वैद्यराज श्री श्रीधर वासुदेव पराड़कर एवं केन्द्रीय रिसर्च आयुर्वेद संस्थान, मुम्बई की भू०पू० संचालिका वैद्या श्रीमती हंसावेन ब्रजभूषण शर्मा का अभिनन्दन किया गया। आचार्य श्री श्रीराम जी शर्मा ने वर्तमान में आयुर्वेद की परिस्थिति का विवेचन किया।

प्रारम्भ में मंगलाचरण सभापति वैद्य श्री प्रहलाद ने किया तथा सभी का स्वागत व परिचय सभा के प्रधानमंत्री वैद्य दीनानाथ उपाध्याय ने किया। प्रासंगिक भाषण में वैद्य श्री मि.के. पाध्येगुर्जर, वैद्य श्री शैलेश नाडकर्णी, वैद्य श्री नाबर, प्राचार्य वैद्य श्री हरिप्रसाद शर्मा, डा० सतीश शहा आदि महानुभावों ने दिया।

आभार प्रदर्शन वैद्य जयप्रकाश दहिया ने किया कार्यक्रम संचालन सभा के मंत्री वैद्य दिनेश चन्द्र गोरडिया ने किया।

गुजरात में भगवान धनवन्तरि जयंती समारोह

गुज०प्र०आ० सम्मेलन के अंतर्गत, अहमदाबाद जिला वैद्य मंडल, आयुर्वेद सहायक निधि, ऐशोसिएशन ऑफ इन्डीयन सिस्टम ऑफ मेडिसीन एवं अन्य आयुर्वेद विद्यार्थी तथा प्राध्यापक मंडल के संयुक्त सहयोग द्वारा भगवान धनवन्तरि का पूजन-अर्चन आयोजन गुज०राज्य के आदरणीय आरोग्य मंत्री श्री अशोकभाई भट्ट एवं पूर्व मंत्री श्री पुरुषोत्तम रूपाला अन्य विधायकगण तथा डा० अनिल पटेल डा० हसमुख, वैद्य डा० हसमुख सोनी, डा० हसमुख अग्रवाल, वैद्य माधवप्रसाद आचार्य, वैद्य शांति भाई अग्रवाल, आचार्य वैद्य एच.एस. कस्तुरे, वैद्य टी.एल.स्वामी, वैद्य देवेन्द्र शाह, वैद्य दिनकर आणेकर, वैद्य विक्रम उपाध्याय, वैद्य एस. वी. त्रिपाठी, वैद्य आणंद मकवाणा इस कार्यक्रम में उपस्थित रहे

खेडा जिला आयु. प्रेक्टीश्नर एशोसिएशन

दिनांक 30/10/2005 दोपहर 4.00 बजे स्थल :- ब्रह्मर्षि संस्कार धाम, डाकारे रोड, नडियाद भगवान श्री धन्वन्तरि की महा पूजा का आयोजन अध्यक्ष वैद्य राजेन्द्र राज एवं प्रोग्राम कन्वेनर, वैद्य वासुदेव पंडया द्वारा संपन्न हुआ। पूजन अर्चन विधि शास्त्री वैद्य श्री अशोकभाई व्यास द्वारा की गई। आशीर्वचन ब्रह्मर्षि संस्कार-धाम के अध्यक्ष शास्त्री श्री डाह्याभाई द्वारा एवं विशेष उपस्थिति अहमदाबाद से गुज०प्र०आ०सम० के प्रधानमंत्री वैद्य देवेन्द्र शाह, मंत्री श्री वैद्य दिनकर आणेकर, कार्यकारिणी सदस्य वैद्य भडीयादरा, वैद्य गटुभाई दवे उपस्थित रहे। चेयरमेन वैद्य श्री उपेन्द्र भट्ट, मंत्री वैद्य अनिरूद्ध व्यास, बालसाथी परिवार के वैद्य हरिनभाई ने इस कार्यक्रम में गुज०प्र०आयु०समे० की सहयोगी संस्था ऑल गुजरात आयु०मेडी०ऐशो० द्वारा संपन्न धनवन्तरि पूजन एवं वैद्य सम्मान समारोह दिनांक 30/10/2005 रविवार दोपहर 2.30 बजे, श्री भगवान धनवन्तरि पूजन-अर्चन के पश्चात् आदरणीय स्वास्थ्य मंत्री, गुजरात राज्य श्री अशोक भाई भट्ट की अध्यक्षता में अष्टमंगल कॉम्पलेक्स, शाहीबाग, अहमदाबाद में सम्पन्न हुआ।

इस मंगल समारोह में अहमदाबाद के गणमान्य वरिष्ठ, गुरूवर्य-आचार्य वैद्यराजों का शॉल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान कर वंदन करके सभी का आदरणीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री गुज०राज्य द्वारा सम्मान किया गया।

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 8 फरवरी - 2006

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001

फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फ़ैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य -10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100/-रु०
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क -2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 563
2. आयुर्वेद का इतिहास-75 565
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. आयुर्वेद में संस्कार और उसकी उपयोगिता 571
वैद्य पी०एस०अंशुमान
4. हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म 576
वैद्य हरीदास श्रीघर कस्तुरे
5. आयुर्वेद वाङ्मय में सुख की अवधारणा 580
डा० राकेश कुमार श्रीवास्तव
डा० अनुपम कुमार श्रीवास्तव
डा० बृजकुमार द्विवेदी
6. योनिभ्रंश-वात व्याधि के परिप्रेक्ष्य में एक विमर्श 583
वैद्या निशा गुप्ता
7. रसेन्द्र मंगल का ऐतिहासिक विवेचन 586
डा० वी. नागेश्वर राव
8. पुरुषों में शुक्र धातुक्षय-एक जटिल समस्या एवं समाधान 589
डा० सुरेश चन्द
9. विषज्वर की आयुर्वेदिक अवधारणा का वैज्ञानिक विवेचन 591
डा० जे०एस० त्रिपाठी
डा० एस०एन० सिंह
10. श्वास रोग में उपयोगी औषधि ''दम की बूटी'8 595
अभिमन्यु यादव, डा० अशोक कुमार शर्मा
11. पर्पटी कल्पना 597
हिमांशु शेखर तिवारी
उदय सिंह ठाकुर
दीप शिखा
12. स्वमूत्र विष नहीं-अमृत 602
सुभाष चन्द्र
13. हेमन्त ऋतुचर्या में जीवन शैली 605
डा० महेश चन्द्र मूर्विया
प्रो० महेन्द्र सिंह मीणा
14. एक रसायन औषधि ''गंधक'' 607
डा० विनय शौनक
15. Study of Effect of Nasya Karma in cases of Depressive illness 608
Dr. Rajni Chandre, Prof. R.H.Singh
Dr. K.H.H.V.S.S. Narasimha Murthy
16. Brain with the holistic concept of mind 612
Dr. Shivani Padha, Dr. J.S. Tripathi
17. Pharmaceutical study of asokarista with reference to different containers and filtration technique 614
Aarathi T.S., Vivek Bajaj
Dr. D. Joshi, Dr. A.K. Choudhary
18. Contribution of Acharya Sharangadhara in Sandhana Kalpana 617
Dr. Upendra U. Zala, Dr. A.K. Choudhary
Dr. P.K. Prajapati
19. अपना शब्द ज्ञान परखिये 623
20. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 630
21. आपके पत्र 631
22. आरोग्य समाचार 635
23. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 636
24. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 638

हिन्दी भाषा विद्वान लेखकों से निवेदन

यद्यपि सचित्र आयुर्वेद में हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा में लिखे गये लेखों का प्रकाशन होता है, किन्तु ज्यादातर पाठक हिन्दी भाषा होने के कारण हिन्दी भाषा में ज्यादा से ज्यादा लेखों का प्रकाशन हमारी विवशता है। दुर्भाग्यवश हिन्दी भाषा विद्वान लेखक भी अंग्रेजी में लिखना पसन्द करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अंग्रेजी भाषा के लेखों का अम्बार लग जाता है जिसके कारण प्रकाशन में विलम्ब होता है । वस्तुतः अंग्रेजी भाषा में लेखों का प्रकाशन दक्षिण भारतीय पाठकों के लिए किया जाता है ।

अतः हिन्दी भाषा विद्वान लेखक हमारी विवशता को समझेंगे और वे हिन्दी भाषा में लेख भेजने का प्रयास करें । इससे हमें सुविधा होगी और विद्वान लेखकों को लेख-प्रकाशन के लिए ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

आजीवन सदस्य बनकर डेढ़ सौ मूल्य के पुस्तकों को निःशुल्क प्राप्त करें

मुद्रण-सामग्री एवं कागजों के मूल्य में इन दिनों अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है। फिर भी जो व्यक्ति आजीवन ग्राहक बनना चाहते हैं, वे सम्प्रति 1000/- रुपये 'सचित्र आयुर्वेद' के नाम से बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें । यदि कोई संस्थान ग्राहक बनना चाहता है, तो 2000/- दो हजार रुपये का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें । उन्हें अविलम्ब आजीवन ग्राहक बना लिया जायेगा एवं उपहार स्वरूप 'सचित्र आयुर्वेद' के उपलब्ध सभी विशेषांक एवं 'कर्मयोगी एवं रामदयाल जोशी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व' नामक पुस्तक निबन्धित डाक से निःशुल्क भेज दिये जायेंगे ।

ग्राहक अविलम्ब आजीवन सदस्यता शुल्क भेजकर इस आकर्षक उपहार-योजना का लाभ अवश्य उठावें ।

निवेदक :-

संपादक

सचित्र आयुर्वेद, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 800 001

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 9 मार्च - 2006

सम्पादक : विमल चन्द्र झा
सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-baidyanath_ayurved@vsnl.com

एक प्रति मूल्य - 10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100 रुपये प्रति
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क - 2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 645
2. आयुर्वेद का इतिहास - 76 646
पं० बनवारी लाल शर्मा, विमल चन्द्र झा
3. उत्तरांचल में प्राकृतिक रूप से पैदा होनेवाले खाद्य फलों की उपादेयता एवं व्यवसायीकरण 651
डा० मायाराम उनियाल
4. हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म-2 656
वैद्य ह० श्री कस्तुरे
वैद्य हरेश व्यास, वैद्या तनूजा पटेल
5. हृदयशूल (एंजाइना) उत्पत्ति और चिकित्सा 668
डा० शशिभूषण शलभ
6. बच्चों में सांस की तकलीफ/तमक श्वास 670
शान्तुल कुमार गुप्ता, प्रो. अजय कु.शर्मा
7. उच्च रक्तचाप का प्राकृतिक उपचार 675
डा० राजीव गुप्ता
8. ओजक्षय 677
वैद्य अम्बालाल जोशी
9. उन्माद चिकित्सा में चरकोक्त पंचकर्म के सन्दर्भ, सिद्धि स्थान में शिरोरोग विवेचन के सन्दर्भ, चरक पूर्वार्द्ध में शिरो विरेचन का वर्णन 679
डा० अनूप कुमार गक्खड़, डा०सीमा चोपड़ा
डा० आरती ऱयात, डा० अनिल गक्खड़
10. गेहूँ के ज्वारे : एक अनुपम औषधि 681
स्मिता गुप्ता, एडवीन जेराल्ड, शीजा एडवीन जेराल्ड
11. साइनुसाइटिस-लक्षण, निदान एवं उचपचार 683
डा० हरमोहन महाणा, डा० अनिल शर्मा
12. बच्चों में दंतशब्द/दांत किटकिटाना 685
डा० रमाशंकर गौतम, डा० संगीता
13. आहार-विहार द्वारा स्वास्थ्य रक्षाःबसन्त ऋतु 698
वैद्य (डा०) ओमवीर सिंह ''वीर''
सुरेन्द्र सिंह
14. मौसमे बहार-ऋतुराज वसन्त 690
कविराज डा० दिवाकर ठाकुर
15. हृदय रोग के कारण एवं निवारण 692
प्रो०सी०बी०झा, डा० सूढलदेव महापात्र
16. Hypertension and its management in Ayurveda 694
Dr. Debashis Panda, Dr. Ajay Kr. Sahu
Prof. Mahesh Chandra Sharma
17. Rocksalt : An Ayurvedic Ingredient 697
R. Barik, P. Mohapatra, S. Shrivastava
N. Mishra , S. Jain
18. Ayurvedic Perspective of Psychiatry w.r.t. Stress and Emotions 699
Dr. G. Venkateshwarlu, Dr. R.D. Patil
19. Applied Aspect of Dashavidha Pariksha with Special Reference to Vikriti pariksha 703
Dr. Ashutosh Kr. Yadav, Dr. Suman Yadav
Dr. Parameswarappa.S.Byadgi
20. Ayurvedic Mangement of Gastro-oesophageal Reflux (GERD) 705
Dr. Sai Prasad, Dr. Ratna Manikyam
21. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 707
22. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 710
23. आपके पत्र 711
24. आरोग्य समाचार 712
25. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 713

रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज पेपर्स सेन्ट्रल रूल्स, 1956 के 9 वें नियम के अन्तर्गत (सचित्र आयुर्वेद) मासिक पत्रिका के स्वामित्व एवं अन्य विषयों के सम्बन्ध में विवरण ।

फार्म - 6

1. प्रकाशन का स्थान : बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 1
2. प्रकाशन का अधिक्रम : प्रतिमास
3. मुद्रक का नाम : आदर्श प्रेस
राष्ट्रीयता : भारतीय
पता : हिन्दुस्तान ब्लॉक कम्पाउंड, नया टोला, पटना - 4
4. सम्पादक का नाम : विमलचन्द्र झा
पता : बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 800 001

उन शेयर होल्डरों के नाम और पते जिनके पास कुल पूंजी का 1 प्रतिशत से अधिक शेयर है।

1. श्री अनिरूद्ध शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
2. श्री अरुण शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
3. श्री अरविन्द शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
4. श्री अतुल कुमार शर्मा, सिविल लाईन, झांसी
5. मास्टर हर्ष शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
6. श्रीमती मधु शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
7. श्रीमती नीता शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
8. प्रणय सुरेश शर्मा, ग्रेट नागपुर रोड, नागपुर-1
9. मास्टर प्रण शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
10. रामकृष्ण शर्मा, 95, बी. श्री अरविन्द रोड, सलकिया, हावड़ा
11. मास्टर विक्रम शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
12. श्रीमती भूरी देवी, जोशी वाटिका, चिरैयाटाड़, पटना-1
13. श्री हीरालाल शर्मा, हीरालाल रामेश्वर प्रसाद, पो. ओलन गंज, जौनपुर
14. श्री बनवारी लाल शर्मा, 156/सी, महात्मा गांधी रोड, कोलकाता
15. एस.एन.जोशी हाई स्कूल, कांसली, पो. कोटपुतली, जि. जयपुर
16. श्रीमती विमला देवी शर्मा, राष्ट्रदूत प्रेस, जयपुर
17. श्री घनश्याम ज्योतिषी, मु.पो. प्रागपुर, जि.जयपुर
18. शिवशक्ति प्रेस (प्रा.) लि., ग्रेट नागपुर रोड, नागपुर
19. श्रीमती सुशीला देवी शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना -1
20. श्री शिवलाल शर्मा, पुरानी मंडी, नारनौल-1
21. श्री रामावतार शर्मा, 178, अपर चितपुर रोड, कोलकाता-1
22. श्री रमाकान्त शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
23. श्रीमती कमला देवी, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
24. स्व० हजारीलाल शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
25. श्री राजेश्वर प्रसाद शर्मा, राष्ट्रदूत प्रेस, जयपुर
26. श्री विश्वनाथ शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
27. श्री बृजेन्द्र कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
28. श्री शिवनाथ शर्मा, महाल, नागपुर
29. श्री रामकृष्ण शर्मा, 1 गुप्ता लेन, कोलकाता-700006
30. श्रीमती स्नेहलता देवी शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
31. श्री सुरेश कुमार शर्मा, ग्रेट नागपुर रोड, नागपुर
32. श्री रमेश कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
33. श्री राकेश कुमार शर्मा, राष्ट्रदूत प्रेस, जयपुर
34. श्री प्रमोद शर्मा, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-1
35. श्रीमती मंजु शर्मा, 15-बी, सरोजनी नायडू मार्ग, इलाहाबाद
36. श्रीमती रश्मि शर्मा, 7 सी, पैरामाउण्ट एमार्पमेन्ट, 25 बालीगंज रोड, कलकत्ता-700019
37. श्रीमती गीता शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
38. श्री आनन्द शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी
39. मास्टर आमेव शर्मा, 7 सी पैरामाउण्डट एपार्टमेन्ट, 25 बालीगंज रोड, कोलकाता-700019
40. श्री अक्षय कुमार शर्मा, गुसाईंपुरा, झांसी

मैं विमलचन्द्र झा' घोषित करता हूँ कि ऊपर दिये गये सभी विवरण, जहां तक में जानता हूँ तथा विश्वास है सत्य है।

(विमलचन्द्र झा)
प्रकाशक का हस्ताक्षर

दिनांक 01/03/2006

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 9 मार्च - 2006

सम्पादक : विमल चन्द्र झा

सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-**baidyanath_ayurved@vsnl.com**

एक प्रति मूल्य - 10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100 रुपये प्रति
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क - 2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 723
2. आयुर्वेद का इतिहास - 77 725
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. आगन्तु अपस्मार-एक चर्चा 730
वैद्य पी.एस. अंशुमान
4. उत्तराखण्ड के जनपदों में कुटीर उद्योग एवं खाद्य-सामग्री व औषधीपयोगी वनस्पतियाँ 737
डा० मायाराम उनियाल
5. प्राकृतिक चिकित्सा- आयुर्वेद का एक अंग विशेष 741
डा० रजनी बाला
डा० विकास चन्द्र गुप्ता
डा० लक्ष्मीकान्त द्विवेदी
6. हृदय रोग : निदान एवं उपचार 743
डा० नन्द किशोर दाधीच
7. आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण अंग-वाजीकरण 746
डा० अश्विन बी. बागडे, प्रो०ओ०पी० उपाध्याय
8. कुष्ठ रोग : व्यापक विचार और उपचार
वैद्य चन्द्रदेव मंडल
9. पञ्चगव्य : एक दिव्य औषधि 754
डा० सतीश चन्द्र तिवारी
10. जल चिकित्सा 756
स्मिता गुप्ता
11. ब्राह्मी बूटी 757
जयेन्द्र कुमार जौहरी
12. सेहत भरी है अजवाइन में 758
श्रीमती अनिता जैन
13. सुखा फल मखाना-पौष्टिकता का खजाना 759
डा० दिवाकर टाकुर
14. चरकोक्त ज्वर चिकित्सा अध्याय में ऊर्ध्वांग चिकित्सा सम्बन्धित उल्लेख 760
डा० अनूप कुमार गक्खड़
15. आमवात व्याधि के चिकित्सा उपक्रम 761
डा० निलेश भट्ट, प्रो०वी.डी. शुक्ल
16. Stress and Ayurvedic Management 763
Dr. Anoop Kr. Indoria, Prof. Ajay Kr. Sharma
17. Concept of Hyperglycamia and its its Management throgh Ayurveda 768
Dr. Shallesh Jain, Dr. Mani Kumar
Dr. Dr. O.P. Gupta
18. Ayurvedic Treatment for Menorrhagia 771
Dr. K. Sudha Rani
19. Management of Gridhrasi Roga (Sciatica) 773
Dr. Vinod kr. Singh, Dr. B.N. Singh
20. An etiopathological and therapeutic study on sthula pramedi w.s.r. to Niddm 775
Prof. Loknath Sharma, Dr. Vivek Agarwal
21. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 782
22. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 787
23. आपके अनुभूत प्रयोग 788
24. आपके पत्र 789
25. आरोग्य समाचार 790
26. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 792

प्रो० बनवारी लाल गौड़ राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर के कुलपति नियुक्त

राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर के निदेशक प्रो० बनवारी लाल गौड़ को राजस्थान की राज्यपाल एवं कुलाधिपति श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने राज्य की मुख्यमंत्री श्रीमती वसुन्धरा राजे के परामर्श पर राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर के प्रथम चयनित कुलपति के रूप में दिनांक 16/2/2006 नियुक्त किया है।

प्रो० गौड़ विगत 33 वर्षों से शैक्षणिक संकाय के विभिन्न पदों पर अपनी सेवायें देते हुए गत आठ वर्षों से राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, (आयुष विभाग, भारत सरकार का स्वायत्त संस्थान) जयपुर के निदेशक पद पर कार्यरत हैं। आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्तों के उद्भट विद्वान प्रो० बनवारी लाल देश के मूर्धन्य आयुर्वेदज्ञों में गिने जाते हैं।

संस्कृत व अंग्रेजी के विद्वान प्रो० गौड़ जर्मन भाषा के भी जानकार हैं। आपकी अब तक 16 पुस्तकें तथा 400 से अधिक वैज्ञानिक व लोकोपयोगी आलेख प्रकाशित हो चुके हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन फैलोशिप के तहत इंग्लैण्ड, श्रीलंका सरकार के अनुरोध पर श्रीलंका तथा हाल (नवम्बर 2005) ही में CII के निमंत्र पर जोहान्सबर्ग की यात्रा कर चुके श्री गौड़ CCRAS, TKDL, ICMR, CSIR जैसी महत्वपूर्ण व प्रतिष्ठित संस्थानों के साथ एक्सप रूप में जुड़े हुये हैं। प्रो० गौड़ शीघ्र ही कुलपति पद का कार्य ग्रहण करेंगे।

प्रो० गौड़ के कुलपति नियुक्त होने पर 'सचित्र आयुर्वेद' श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० एवं कृपालु पाठक की ओर से हार्दिक बधाई। आशा है, उनके सफल एवं कर्मठ नेतृत्व में राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय देश-विदेश में अग्रण स्थान प्राप्त करेगा। *समस्त शुभकामनाओं के साथ* - सम्पादक

डा० पी.एन.वी. कुरूप का भव्य अभिनन्दन

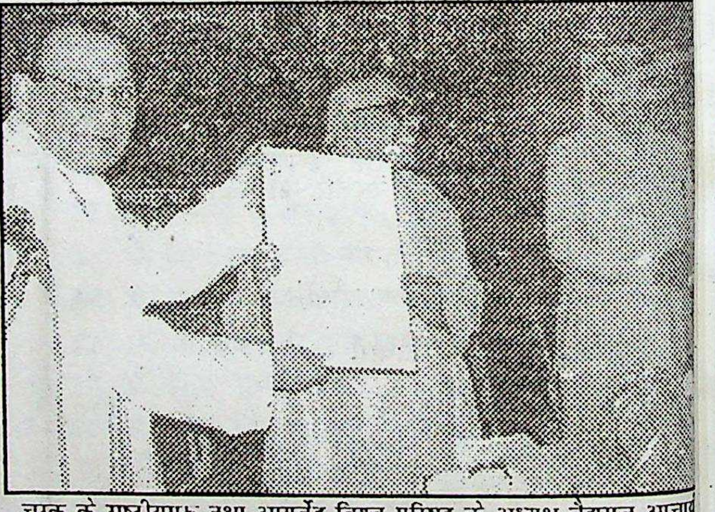

चरक के राष्ट्रीयगुरू तथा आयुर्वेद विश्व परिषद् के अध्यक्ष वैद्यराज आचार्य प्रभाकर मिश्र, राष्ट्रीय आयुर्वेदाविद्यापीठ (भारत सरकार) के नवनियुक्त, अध्यक्ष, डा०पी.एन.वी. कुरूप को आयुर्वेद महर्षि पदवी प्रदान करते हुए। साथ में हैं पूर्व एडवाइजर भारत सरकार श्री शिवकुमार मिश्र

दिनांक 5 मार्च, 2006 हिन्दू महासभा भवन, नई दिल्ली में भारत सरकार के पूर्व आयुर्वेद एडवाइजर, जामनगर आयुर्वेद विश्वविद्यालय (गुजरात) के अवकाश-प्राप्त उपकुलपति डा०पी.एन.वी. कुरूप के, भारत सरकार में स्वास्थ्य मंत्रालय के उपक्रम, राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ (नेशनल एकेडमी ऑफ़ आयुर्वेद) का अध्यक्ष मनोनीत होने के उपलक्ष्य में 'आयुर्वेद विश्व परिषद्' ने राष्ट्रीय गुरु (चरक), पूर्व कुलपति, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, बिहार एवं आयुर्वेद विश्व परिषद् के अध्यक्ष तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के संरक्षक, सदस्य डा० आचार्य प्रभाकर मिश्र की अध्यक्षता में डा० कुरूप का भव्य अभिनन्दन किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि भारत सरकार के पूर्व आयुर्वेद सलाहकार तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के प्रधानमंत्री एवं वर्तमान आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष श्री वैद्य शिवकुमार मिश्र थे। आयुर्वेद विश्व परिषद् ने डा० कुरूप को 'आयुर्वेद महर्षि' के मानद् अलंकरण से विभूषित किया। परिषद् के एक महासचिव श्री रवि कौशिक ने नटराज-शिव का प्रतीक चिन्ह डा०कुरूप को भेंट किया तथा पाँच वैद्यों ने पंचकर्म प्रतीक शाल (उत्तरीय) पहनाया। श्री वैद्य धर्मसिंह कौशिक और वैद्य चन्द्रप्रकाश गौसाँई दोनों सचिवों ने माल्यार्पण कर अभिनन्दन किया गया। श्री वैद्य राधेश्याम ब्रह्मचारी, प्रदेश सचिव ने अभिनन्दन पाठ कर परिष्द्द् की रिपोर्ट भी प्रस्तुत की। श्री पी.एन.वी. कुरूपजी ने धन्वन्तरि भगवान अर्चना की। श्री वैद्य शिवकुमार मिश्रजी ने डा० कुरूप सा की आयुर्वेद सेवाओं पर प्रकाश डाला। डा० कुरूपजी आयुर्वेद विकास पर विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये अध्यक्षीय भाषण करते हुए समारोह-अध्यक्ष आचार्य प्रभा मिश्र ने संस्कृत में प्रवचन करते हुए डा० कुरूप त शिवकुमार मिश्र एवं उपस्थित वैद्यों का आभार व्यक्त किया

(अभिनन्दन पत्र पृष्ठ सं० 799 पर पढ़ें)

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 11 मई - 2006

सम्पादक : विमल चन्द्र झा
सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड
पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-**baidyanath_ayurved@vsnl.com**

एक प्रति मूल्य - 10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100 रुपये प्रति
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क - 2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 803
2. आयुर्वेद का इतिहास - 78 805
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. मेदोवह स्रोतोदुष्टि चिकित्सा विचार 812
वैद्य पी.एस. अंशुमान
4. आयुर्वेदीय चिकित्सा का वैशिष्ट्य 817
आचार्य राजकुमार जैन
5. आयुर्वेद में भस्मों की रूपरेखा एवं सिद्धान्त 825
डा० मायाराम उनियाल
6. सन्धिगतवात व्याधि के आयुर्वेदिक उपाय- एक गवेषणा पूर्ण अध्ययन 829
डा० बी.एम. निर्मल
7. मधु-एक प्राकृतिक औषधि 830
डा०जी.सी. जोशी
8. गुणों से भरपूर मेथी 833
अनिता जैन
9. बबूल-गुण एवं उपयोग
वैद्या मनीषा खत्री
10. स्फटिक योग का रक्तप्रदर पर एक सफल आतुरीय परीक्षण 837
वैद्या मीना रानी, वैद्य ओमवीर सिंह
11. चरकोक्त सिद्धि स्थान का प्रयोजन एवं उसकी उपयोगिता 839
डा० अनूप कु० गक्खड़
12. लू के कारण, लक्षण व उपचार 840
डा० हनुमान प्रसाद उत्तम
13. Role of Shodhana process (purification) in ayurvedic guggulu preparation 843
Dr. Kinnari Dhruve, Dr. Rajput Anurag Singh
Dr. Anand Kr., Dr. P.K. Prajaait
Dr.Subrata De
14. Therapeutic use of Aloe Vera (Grithkumari) 846
Dr. Ashok Sharma, Deepika Bhatia, Dr.K.N.Yadav
15. Medicinal plants of Palamau district of Jharkhand state part -1 848
K. Chandra
16. Ayurvedic Approach to the Management of LIfestyle Disorders 853
Sulochana Bhat
17. Role of Samsarjan Krama in Panchakarma therapy 857
Dr. Padma Lochan Sankhua
21. परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी 860
22. व्यक्तित्व 869
23. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 870
24. आपके अनुभूत प्रयोग 871
25. आपके पत्र 872
26. आरोग्य समाचार 874
27. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 876

हार्दिक अभिनन्दन !

प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, बिहार एवं प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन, झारखंड के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नयी दिल्ली एवं निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नयी दिल्ली के संयुक्ताधिवेशन (शताब्दी-समारोह के क्रम में), ज्ञान कल्याण दातव्य न्यास के अलंकरण समारोह के अवसर पर पधारे विशिष्ट अतिथियों एवं विद्वान् प्रतिनिधियों का हम हार्दिक अभिनन्दन करते हैं । साथ ही :-

उद्घाटनकर्त्ता :- माननीय श्री नीतीश कुमार जी
मुख्यमंत्री, बिहार

मुख्य अतिथि :- माननीय डा. मुरली मनोहर जोशी
सांसद एवं पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री, भारत सरकार

विशिष्ट अतिथि :- माननीय श्री सुशील कुमार मोदी
उप-मुख्यमंत्री, बिहार
माननीय श्री चन्द्र मोहन राय
स्वास्थ्य चिकित्सा शिक्षा एवं प.क.मंत्री, बिहार
श्री विजय सिंह जी
सचिव, आयुष विभाग, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार

अध्यक्षता :- पद्मश्री वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा
अध्यक्ष, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, नई दिल्ली

स्वागताध्यक्ष :- श्री बनवारी लाल शर्मा
प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, पटना

सहस्वागताध्यक्ष :- श्री नितिन धिंडियाल
निदेशक, डाबर इन्डिया लि., साहिबाबाद

अन्य गणमान्य :- वैद्य अलख नारायण सिंह, अध्यक्ष
वैद्य रामगोपाल मिश्र, महामंत्री, प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन बिहार, पटना
वैद्य हरिहर प्रसाद पाण्डेय, अध्यक्ष, प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन, झारखण्ड

को अपना, बहुमूल्य समय देने के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं ।

स्थान

- सम्पादक

भारतीय नृत्य कला मन्दिर, फ्रेजर रोड़, पटना

तिथि एवं समय :- 27 अप्रैल 2006, प्रातः 10.00 बजे

विषय-सूची

वर्ष - 58 अंक - 12 जून - 2006

सम्पादक : विमल चन्द्र झा
सम्पादकीय पता :-
सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लिमिटेड
बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 800 001
फोन न०-(91)-(0612)-2353048, 2353134
फैक्स न०-(91)-(0612)-2368571,2351843
ई०मेल न०-**baidyanath_ayurved@vsnl.com**

एक प्रति मूल्य - 10 रुपये प्रति
वार्षिक मूल्य - 100 रुपये प्रति
आजीवन शुल्क - 1000 रु०प्रति (व्यक्ति)
आजीवन शुल्क - 2000 रु०प्रति (संस्था)

1. सम्पादकीय 884
2. आयुर्वेद का इतिहास 885
पं० बनवारी लाल शर्मा
विमल चन्द्र झा
3. अजीर्ण रोग-संक्षिप्त परिचय 888
वैद्य पी.एस. अंशुमान
4. दूषणाद्दोषाः 895
अनन्तराम शर्मा
5. आयुर्वेदीय दृष्टि से अतिमधु पर्णी पादप की औषधीय कार्मुकता-एक अध्ययन 900
डा० आर०एस० चौहान
6. आयुर्वेदिक औषधियों की गर्भ-निरोधन में उपयोगिता 902
डा० अनिता शर्मा
डा० विनोद कुमार गोठेचा
7. हृदय रोग के कारण एवं निवारण 904
प्रो० सी०बी० झा, डा० सूढ़लदेव महापात्र
8. गर्भावस्था में शिशु और माँ की स्वास्थ्य रक्षा-एक समीक्षा 906
धीरज बोहरा, डा० सुरेश चन्द्र
9. बालकों में कृमि रोग-निदान एवं चिकित्सा 908
डा० दिनेश कुमार राय, डा० शशिकान्त सचान
10. कुपोषण समस्या और आयुर्वेद 912
वैद्य विजय कुलकर्णी
11. ग्रीष्म ऋतुचर्या 914
डा० प्रेम चन्द्र मंगल
12. प्याज, एक गुणकारी औषध 915
डा० विनय शौनक
13. बलकारक खजूर 916
डा० विजय कुमार नाहर
14. ग्रीष्म कालीन सेवनीय आहार-विहार 918
कविराज डा० दिवाकर ठाकुर
15. A study on Makshika 920
Sridurga, K R C Reddy, C.B. Jha
16. A Review of Quality Evaluation of Herbal Formulation 922
Saini V, Kinger H.K., V.B. Gupta
17. Madanaphala - A complete drug for Panchakarma 924
Dr. Prakash L. Hegde,
Prof. Maheshchandra
18. Personality 926
19. सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व 927
20. आपके अनुभूत प्रयोग 928
21. आपके पत्र 930
22. आरोग्य समाचार 934
23. आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां 937
24. सचित्र आयुर्वेद में जुलाई 2005 से जून 2006 तक के प्रकाशित लेखों की वार्षिक-सूची 948

79
131415

बिहार के मुख्यमंत्री, श्री नीतीश कुमार, भारत के भूतपूर्व मानव संसाधन मंत्री, डा० मुरली मनोहर जोशी, बिहार के उपमुख्यमंत्री, श्री सुशील कुमार मोदी एवं आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष, वैद्य श्री देवेन्द्र त्रिगुणा आपस में विचार-विमर्श करते हुए परिलक्षित है ।

समारोह का शुभारम्भ दीप-प्रज्जवलित करते हुए 'भवन' के निदेशक, श्री प्रमोद शर्मा कर रहे हैं

सम्पादकीय

उत्तर भारत में ग्रीष्म का नया रेकार्ड एवं मानव-स्वास्थ्य

यद्यपि यह सामान्य बात है कि वैशाख, ज्येष्ठ एवं आषाढ़ मास (अंग्रेजी तिथिदर्शक के अनुसार मई, जून एवं जुलाई) में गरमी चरम सीमा पर रहती है, किन्तु 80 वर्षों में सम्भवत: यह पहली बार है कि इतने लम्बे समय तक गरमी की उग्रता अपनी चरम सीमा पर बरकरार हो । आंकड़ों के अनुसार पश्चिम बंगाल एवं उड़ीसा में गरमी भी अधिकतम सीमा 55^0 सेल्सियश तक पहुंच गयी थी एवं बिहार में विगत् एक माह से 40^0 से लेकर 49^0 सेल्सियश तक गरमी का विचरण हो रहा है । पहले भी गरमी का मौसम आता था । कुछ दिनों तक गरमी की उग्रता बनी रहती थी, किन्तु बाद में मानसूनी हवा के चलते तापक्रम में परिवर्त्तन होता रहता था । इस बार गरमी की प्रकृति में परिवर्त्तन दिखलायी पड़ा । इस परिवर्त्तन से मौसम विज्ञानी भी हैरान हैं । कुछ मौसम विज्ञानियों के अनुसार परिवर्त्तन का सबसे महत्वपूर्ण कारण प्रदूषण है । वातावरण में दिन-रात एयरोसोल नामक प्रदूषण का उत्सर्जन हो रहा है । न केवल मौसम विज्ञानी, बल्कि स्वास्थ्य विज्ञानियों ने भी इस दिशा की ओर सम्पूर्ण दुनिया का ध्यान आकृष्ट किया है । ओजोन छिद्र के चलते तो सम्पूर्ण विश्व के मौसम में भयानक परिवर्त्तन होने की सम्भावना हमेशा बनी रहती है । वैज्ञानिकों के अनुसार यदि शीघ्र ही प्रदूषण पर काबू नहीं पाया गया, तो वातावरण में ग्रीष्म की उग्रता बढ़ती जायेगी । प्रदूषण का असर न केवल ग्रीष्म ऋतु पर, बल्कि सभी ऋतुओं पर पड़ेगा - इसमें कोई सन्देह नहीं ।

वर्ष 2005 में अबतक सम्पूर्ण उत्तर भारत में लू से मरने वालों की संख्या 3,000 से ज्यादा हो गयी है । आंकड़ों के अनुसार केवल बिहार राज्य में लू से मरने वालों की संख्या एक हजार से ज्यादा हो गयी है । दिनांक 20 जून को केवल आरा ज़िले में 14 लोगों की मृत्यु लू से एक दिन में हुयी एवं सम्पूर्ण प्रदेश में 60 से ज्यादा लोगों की मृत्यु एक दिन में हुयी । अस्पताल में लू से पीड़ित लोगों की संख्या हजारों में पहुंच गयी है । लू से ने केवल लोगों की जान जा रही है, बल्कि मानव-स्वास्थ्य पर भी इसका बुरा असर पड़ रहा है । भयानक गरमी का असर हृदय रोगियों एवं मधुमेहियों पर सबसे ज्यादा पड़ रहा है । आचार्य चरक ने तो तृष्णा रोग की सम्प्राप्ति में सूर्य संताप (अथवा सूर्य के ताप में अधिक देर तक रहने से) का काफी महत्व दिया है । आयुर्वेदिक सिद्धान्तों के अनुसार शोषण करना अग्नि और वायु का कर्म है । दोनों एक साथ जब कुपित होते हैं, तो शरीर के विभिन्न धातुओं के जलीयांश को तथा विशेष रूप से जिह्वामूल, गला, तालू, क्लोम आदि अंगों में स्थित जलीयांश को सुखा डालते हैं । जब वे सूख जाते हैं और जलीयांश की कमी हो जाती है, ऐसी दशा में अग्नि (पित्त) और वायु विशेष रूप से प्रबल हो जाते हैं । जलीयांश की पूर्त्ति के लिए जो व्यक्ति बार-बार जल का सेवन करता है तो अप्राकृतिक रूप में बढ़े हुए पित्त और वायु जल का शीघ्र ही शोषण करते हैं जिससे जलीयांश की पूर्त्ति नहीं हो पाती, न प्यास की शान्ति होती है । इसे ही तृष्णा रोग कहते हैं । किन्तु गरमी के दिनों में स्वाभाविक रूप से पित्त और वायु प्रकुपित होती है और इसमें प्यास भी प्यास लगती है, किन्तु इसे तृष्णा रोग नहीं कहते हैं । चरक संहिता के सूत्र स्थान में कहा गया है कि ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों से जगत् के स्निग्ध (सार, आप्य, जलीय) भाग का पान करता है, अत: उस समय स्वादु, शीतल द्रव तथा स्निग्ध अन्नपान हितकर होता है । आशय यह है कि सूर्य की तीव्र किरणों से जो गरमी उत्पन्न होती है और इसके फलस्वरूप जो मनुष्य को प्यास लगती है, उसमें शीतल जल एवं स्निग्ध अन्नपान का प्रयोग हितकर कहा गया है । एलोपैथी चिकित्सक एवं घरेलू वैद्य भी पर्याप्त जल पीने के बाद ही लोगों को घर से बाहर निकलने की सलाह देते हैं । चरक संहिता के अनुसार शीतल, खांडयुक्त जलालोड़ित सत्तू तथा जाङ्गल पशु-पक्षियों का मांस, घृत, दूध एवं शालि चावलों के भात के सेवन का विधान बताया गया है । इन दिनों लवण, अम्ल, कटु (चरपरे) तथा गरम भोजन और व्यायाम को त्याग देने की सलाह दी गयी है । दिन में शीतलगृह और रात को चन्द्रमा की चान्दनी से सुशीतल तथा प्रवात युक्त मकान की छत पर शरीर में चन्दन लेप कर सोने का विधान बताया गया है । साथ ही बाग-बगीचों की शीतल छाया में घूमने, शीतल जल का सेवन करने एवं पुष्पों को धारण करने की सलाह दी गयी है ।

ऐसा देखा गया है कि आम भारतीय जिन्हें सूर्य-ताप का पर्याप्त अनुभव है, वे निश्चित रूप से आयुर्वेद में वर्णित सिद्धान्तों का पालन करते हैं । प्रकृति भी अपने फलों द्वारा मानव-स्वास्थ्य की रक्षा करती है । इस मौसम में तरबूज, ककड़ी, आम जैसे फल मिलते हैं । कच्चे आम में गुण है कि उसका पना लू से बचाता है । यदि नियमित तौर पर तेज गरमी के मौसम में अमभोड़ (आम के पना) का सेवन किया जाय, तो लू का खतरा काफी कम हो जाता है । कच्चे प्याज का सेवन इसमें लाभप्रद है । संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्रीष्म ऋतु में शरीर में जल सदैव पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहे - इसका ध्यान रखना चाहिए ।

आयुर्वेद अनुसंधान के बढ़ते चरण

गोभी और हरिद्रा में कैन्सर रोधी तत्व - एक विवेचन

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2] विमल चन्द्र झा

हाल के दिनों में हमें दो शोधपूर्ण आलेख पढ़ने को मिले । एक गोभी के सम्बन्ध में था और दूसरा हल्दी के सम्बन्ध में । आलेख में दावा किया गया हैं कि दोनों घरेलू खाद्य पदार्थों में कैन्सररोधी गुण मौजूद होते हैं । आयुर्वेद के महर्षियों को यह ज्ञात था या नहीं - हमने इस पर खोज करना प्रारम्भ किया । सबसे पहले हम दोनों की चर्चा करना चाहेंगे ।

गोभी

आलेख में दावा किया गया है कि गोभी, विशेषकर पत्तागोभी खाने से कैन्सर उत्पन्न होने की सम्भावना कम होती है । जान हापकिन्स विश्वविद्यालय के शोधकर्मियों के अनुसार पत्तागोभी (Broccoli) में सलफोरापेन (Sulforaphane) नामक एक यौगिक होता है जो शरीर द्वारा उत्पन्न होता है । कैन्सर जिन रसायनों से उत्पन्न होता है, उसे यह विषहीन कर देता है । आलेख में दावा किया गया है कि इसमें विटामीन-सी, बीटा-केरोटीन, रेशा कैल्सियम और फोलिक एसिड पाया जाता है । यह शरीर में विषाक्त द्रव्यों को शुद्ध करता है और रक्त कोलेस्ट्रोल को भी कम करता है ।

डा०के०एम० नादकर्णी के अनुसार गोभी की सभी जातियों (Brasscia oleracea, B. Sativa, B. botrytis अथवा B. florida) के गुण समान होते हैं इसमें जलीय अंश 92%, सूखा द्रव्य में इथर 3%, अल्ब्यूमिनोयड्स 19.50% (नाईट्रोजन 3.12%), कार्बोहाइट्रेड 61.38%, रेशा 8.87%, राख (Ash) 7.25% जिसमें बालू का प्रतिशत 0.12% है । इसके अलावा इसमें गन्धक की मात्रा भी पायी जाती है ।

Brossica Botrytis (फूलगोभी Cauli flower) में जलीय अंश 90%, इथर 3.30%, अल्ब्यूमिनायड्स 36.40% (5.80% नाइट्रोजन सहित), कार्बोहाईट्रेड 41.30%, रेशा 10.50% राख 8.50% (बालू -0.100% सहित) पाया जाता है ।

Brassica caulocarpa में जलीय अंश 92.80% इथर 3.19% अल्ब्यूमिनायड्स 27.75% (4.44% नाइट्रोज सहित), कार्बोहाइड्रेट 47.12%, रेशा 9.30% और राख 12.64% (0.139% बालू सहित) पाया जाता है ।

उपयोग - लाल गोभी (B. cumama or B. Rubbra) का रस खांसी और श्वास कास में दिया जात है । कच्ची गोभी का रस व्रण को समाप्त करने में दिय जाता है । The wealth of India नामक पुस्तक में B. oleracea को जंगली गोभी कहा गया है । हां, किन्तु इसके जो चित्र प्रकाशित किये गये हैं वे पत्तागोभी के हैं । पत्तागोभी की दो जातियों का जिक्र है - Brassica oleracea var. capitata और Brussels sprouts (Brassica oleracea var. gemmifera) । फूलगोभी (cauliflower) को Brassica oleracea var. Botrytis कहा गया है । एक गांठ गोभी भी होती है । इसकी भी दो जातियां होती हैं - Knol - kohl (Brassica oleracea var. gongylodes) और Turnip (Brassica Rapa) ।

फूलगोभी (Cauliflower) की एक और जाति है जिसे Broccoli भी कहते हैं । इसमें जलीय अंश 89.4% प्रोटीन 5.3%, वसा 0.4%, कार्बोहाइड्रेट 5.3%, खनिज पदार्थ 1.4%, कैल्सियम 0.03%, फासफोरस 0.06%, लौह तत्व 1.3 मि०ग्रा०, विटामिन ए 38 i.u., विटामिन B_1 11 i.u., विटामिन सी 66 मि.ग्रा./100 ग्रा. बन्दगोभी (Var capitata) में जलीय अंश 90.2%, प्रोटीन 1.8%, वसा 0.1%, रेशा 1.0%, कार्बोहाइड्रेट 6.3%, खनिज पदार्थ 0.6% कैल्सियम 0.03%, फास्फोरस 0.05%, लौह 0.8% मिग्रा विटामिन ए, 2000 i.u., विटामिन B, 50 i.u., विटामि सी 124 मि.ग्रा./100ग्रा. । प्रस्तुत पुस्तक में गोली की किस भी जाति के औषधीय उपयोग का जिक्र नहीं है । केवल खाद्य पदार्थ के रूप में इसका जिक्र किया गया है वनौषधि चन्द्रोदय[1] में इसके गुण, दोष और प्रभाव के विषय में निम्न चर्चा है -

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

कड़वी,
वाली,
करने
प्रमेह,
वाली है
हृदय
उपद्रव
इसके

को फु
नुकसान
पेट औ
पीने से
सईदी
है, पित्त
को जो
खांसी
में पीस
हो जात
में लाभ
तीन दि
सुश्रुत
चोपड़ा
परिवर्तक
उपयोग
वमन,

निम्न नि
1. इस
जात
2. वात
3. अर्बु
हां

आयुर्वेदिक मत से यह वनस्पति शीतल, तीक्ष्ण, कड़वी, कसैली, घाव को भरने वाली, आंतों को सिकोड़ने वाली, ज्वर निवारक और कृमिनाशक है। यह वात को पैदा करने वाली, कफ पित्त नाशक, हृदय को लाभकारी तथा प्रमेह, खांसी, रूधिर विकार, व्रण और ज्वर को नष्ट करने वाली है। यह मुंह के बदबू को दूर करती है। रक्त रोग, हृदय रोग, मूत्र रोग, श्वास नलियों की जलन, विष के उपद्रव और छोटी माता में भी इसको देने से लाभ होता है। इसके पंचांग का काढ़ा मूत्रकृच्छ्र में लाभदायक है।

यूनानी मत से यह काम-शक्ति बढ़ाती है। पेट को फुलाती है। पेशाब अधिक आती है। दिमाग को नुकसान पहुंचाती है। अगर अच्छी तरह हजम नहीं हो, तो पेट और पसलियों के बीच में दर्द पैदा करती है। शराब पीने से पूर्व इसको खा लिया तो नशा नहीं होता है। नुस्खा सईदी में लिखा है कि गोभी वायु पैदा करती है, काबिज है, पित्त और खून के विकारों को मिटाती है। उस प्रमेह को जो सुजाक के बाद पैदा होता है, लाभ पहुंचाती है। खांसी और फुन्सी-फोड़े में मुफीद है। इसके पत्तों को पानी में पीसकर पिलाने से वमन के साथ आने वाला खून बन्द हो जाता है। इसके पत्ते के काढ़ा की धार देने से गठिया में लाभ होता है। इसके पत्तों को पीसकर पकाकर खाने से तीन दिनों में खूनी बवासीर से बहता खून बन्द हो जाता है। सुश्रुत के अनुसार गोभी सर्पदंश में लाभदायक है। कर्नल चोपड़ा के अनुसार हृदय को पुष्ट करने वाली, धातु परिवर्तक, ज्वर निवारक और सर्पदंश में उपयोगी है। इसका उपयोग मूत्राघात, आमाशय की सूजन, ज्वर, मूत्रकृच्छ्र, रक्त वमन, स्वर-भंग और बवासीर में होता है।

उपर्युक्त ग्रन्थों सहित अन्य ग्रन्थों के अध्ययन से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं।

1. इसका उपयोग केवल शाक-सब्जी के रूप में किया जाता है।
2. वातकारक किन्तु कफपित्त शामक है।
3. अर्बुद की चिकित्सा में इसका उल्लेख नहीं मिलता है, हां व्रण-चिकित्सा में इसका उल्लेख है।

हमारी समझ में कैन्सर का स्पष्ट संबंध घाव से है। व्रणरोधी होने के कारण कैन्सर रोधी गुण का आना स्वाभाविक है। चूंकि गोभी का उपयोग अधिकतर खाद्य पदार्थ के रूप में करते हैं, किसी रोग की चिकित्सा में नहीं। अतः यह सम्भव है कि इसके पूर्व वैज्ञानिक रूप से इसका प्रमाण कैन्सर को रोकने के रूप में नहीं मिला है।

हल्दी

रिपोर्ट के अनुसार भारतीय मसालों में महत्वपूर्ण स्थान रखने वाली हल्दी घातक बीमारी कैंसर खासतौर से स्तन कैंसर के फैलाव को रोकने में काफी हद तक सहायक हो सकती है। अमेरिकी शोधकर्त्ताओं ने कैंसर पर किये गये अध्ययन की रिपोर्ट प्रकाशित किया। रिपोर्ट के अनुसार हल्दी में पाया जाने वाला सक्रिय तत्व करक्यूमिन स्तन कैंसर का घाव पैदा करने वाली कोशिकाओं को फेफड़ों तक फैलने से रोकता है। यद्यपि अबतक यह शोध चूहों पर किया गया है, किन्तु मनुष्य पर भी इसे उत्साह जनक परिणाम आने की सम्भावना है। शोध कर्मियों के नेता, डा० भरत अग्रवाल ने बताया कि भारतीय भोजन में करक्यूमिन का महत्वपूर्ण स्थान है और शोध से पता चला है कि इसमें कैंसर से लड़ने की आश्चर्यजनक क्षमता पायी गयी है। उन्होंने बताया कि अबतक के शोध से पता चला है कि करक्यूमिन प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि करने वाले एण्टी आक्सीडेंट के रूप में काम करता है। इसकी सहायता से कैंसर पैदा करने वाले ट्यूमर को ही बनने से ही रोका जा सकता है।

भाव प्रकाश के अनुसार हल्दी कटु तथा तिक्तरस युक्त, रूक्ष, उष्णवीर्य, कफ पित्त नाशक, शरीर के वर्ण को उज्जवल करने वाली एवम् चर्मदोष, प्रमेह, रक्त विकार, शोथ, पाण्डु तथा व्रण को दूर करने वाली होती है। इसका उपयोग प्रतिश्याय, कफविकार, चर्मरोग, रक्तविकार, प्रमेह, कामना, यकृत विकार, पार्यायिक ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, व्रण और नेत्राभिष्यन्द में किया जाता है।

रासायनिक संगठन - इसमें करक्यूमिन (C_{21}, H_2o, O_6) नामक एक पीला और रवेदार रंजक पदार्थ होता है जो मद्यसार में पूर्णतया घुल जाता है जिससे गहरे पीले रंग का घोल बनता है। इस घोल में क्षार मिलाने से घोल

रक्ताभ बादामी वर्ण का हो जाता है । इसके अतिरिक्त हल्दी में 5-6% उड़नशील तैल होता है जिसमें कर्पूरवत् गन्ध आती है तथा इस तैल में करक्यूमेन नामक एक टरपीन होता है जो स्नेहद्रव्य कोलेस्टेरोल को घुलाने के लिए बहुत अच्छा द्रव्य है । हल्दी में उपर्युक्त पदार्थों के अतिरिक्त स्टार्च 24% तथा अल्ब्यूमिनायड्स 30% होते हैं ।

डा० नादकर्णी ने इसके निम्न उपयोग बताये हैं :-

1. ताजे घाव, खरोंच एवं जोंक के काटने पर हरिद्रा के ताजे मूलकोष्ठ के स्वास को वहां लगाया जाता है ।
2. अन्तर्भाग में लगाने पर यह कीटाणुनाशक का कार्य करता है ।
3. वात, मन्दाग्नि एवं कमजोर उदर में इसका प्रयोग किया जाता है ।
4. रक्त विकार एवं चर्म रोग में इसका प्रयोग होता है ।
5. कण्डु रोग एवं एक्जीमा में इसका प्रयोग होता है ।
6. हल्दी के योग का प्रयोग अर्श, बिच्छू काटने में, यकृत् रोग, कामला जैसे दर्जनों रोगों में होता है ।

वनौषधि चन्द्रोदय में हमें हल्दी और अर्बुद रोग के आपसी सम्बन्ध का पता लगा । विद्वान लेखक लिखते हैं-

अर्बुद अथवा रसोली का रोग एक ऐसा रोग है जो बिना आपरेशन या शल्य-क्रिया के नहीं मिटता । लेकिन हमें एक यतिराज ने ऐसी विधि बतायी है जिससे बिना शस्त्र-क्रिया के यह रोग आराम हो जाता है । विधि इस प्रकार है - हल्दी की सूखी गांठ लेकर अङ्गारे पर रखकर जला लेना चाहिए । फिर जब जरूरत पड़े तब उसे थोड़ी लेकर पानी में मिलाकर लेप के तुल्य गाढ़ी-गाढ़ी बनाकर अर्बुद के मध्य भाग में एक पैसे बराबर जगह में लगा देना चाहिए । तीन-चार दिन तक प्रतिदिन इस भस्म को तीन-चार बार लगाने से उस जगह पर मांस नष्ट होकर एक अंगुल गहरा घाव पड़ जायेगा । यह घाव भर जाने पर उस अर्बुद को चारो ओर से हाथ से दबाकर उसका पीव तथा मेद का भाग इस घाव के रास्ते निकाल देना चाहिए । इस पीव के बैठ जाने पर अर्बुद बैठने लगेगा । फिर भी उस घाव को कायम रखना चाहिए, अगर वह भरने लगे तो उस पर हल्दी की भस्म का लेप फिर लगाना चाहिए । यह लेप अर्बुद के अन्दर रहे हुए शेष दोषों को पीव का रूप देक जल्दी निकालने का कार्य करता है । इस प्रकर अर्बुद व सब दोषों के निकल जाने पर कोई मरहम वगैरह लगाक उस घाव को भर देना चाहिए । इस पद्धति से अर्बुद व सिवा कारबङ्कल तथा दूसरे सांघातिक फोड़ों में भी ला होता है ।

इसके अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ में हल्दी के निम्न उपयोग का वर्णन है -

1. आयुर्वेदिक मत से हल्दी चरपरी, कड़वी, सौन्दर्यवर्द्धक उष्ण, रुखी और स्त्रियों के लिए भूषण है । यह कफ वात, रूधिर दोष, कोढ़, खुजली, प्रमेह, त्वचा के दोष घाव, सूजन, पाण्डुरोग, कृमि, विष, पीनस, अरुचि पित्त और अपचन को दूर करनेवाली होती है ।

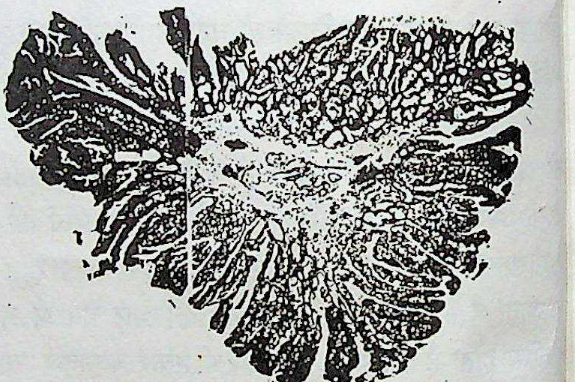

आंत की दीवार में पोलिप के भीतर कैन्सर-परिवर्तन की प्रारम्भिक स्थि को दिखलाते हुए चित्र । कुछ काले धब्बे एवं पोलिप के भीतर अनियमित कोष कैन्सर

आंत की दीवार में उन्नत अवस्था में दिखलाते हुए चित्र । कैन्सर ने मांसपेशी के ढांचे एवं अन्य आंत की अन्य परतों को प्रभावित किया है

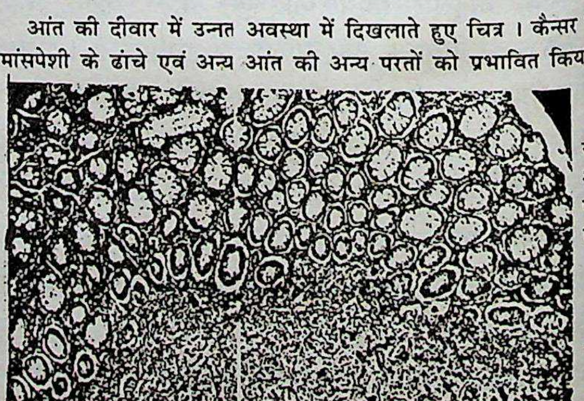

2. यूनानी मत से हल्दी की गांठ कड़वी, शान्तिदायक, फोड़े को पकानेवाली और मूत्रल होती है । यह यकृत की विकृति तथा पीलिया रोग में लाभ पहुंचाती है ।
3. कफ, प्रमेह, प्रदर, सरदी, सुजाक, नेत्रविकार, चर्मरोग, कृमि रोग, पार्यायिक ज्वर, जलोदर सहित अनेक रोगों में यह उपयोगी है ।

बेल्थ आफ इण्डिया में उपर्युक्त उपयोगों के अतिरिक्त निम्न उपयोग हैं :-

1. ऊन, सिल्क एवं सूती कपड़े के रंगने में यह काम आता है ।
2. यह सन्धि-वात में भी उपयोगी है ।

रासायनिक संगठन - इसमें जलीय अंश 13.1, प्रोटीन 6.3, कार्बोहाईड्रेट 69.4%, विटामिन ए के रूप में केरोटीन 50 i.u. –/100 ग्रा.

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में कैंसर नाम से किसी रोग का जिक्र नहीं है । हां, लक्षण के आधार पर कुछ आयुर्वेदज्ञों ने इसे अर्बुद का नाम दिया है । अब हम देखें कि आधुनिक विज्ञान क्या कहता है ?

मेडिकल इनसाईक्लोपिडीया में कहा गया है कि यह तन्तु कोष का अव्यवस्थित विकास है । यदि प्रक्रिया पर शीघ्र नियंत्रण नहीं किया जाता है, तो अंग विशेष की क्रियाशीलता पर इसका असर पड़ता है और यह नष्ट हो जाता है । इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण जानकारी निम्न हैं -

1. सम्भवत: ऐसा कोई अंग नहीं है जहां कैंसर का प्रभाव नहीं हो सकता है ।
2. यह अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक आठ में से एक मनुष्य कैंसर से मरते हैं ।
3. यद्यपि कैंसर संक्रामक रोग नहीं है, किन्तु कैंसर का सम्बन्ध वायरस से है । अत: सम्भावना है कि वायरस का संक्रमण अन्य लोगों पर हो सकता है ।
4. सामान्यतया फुफ्फुस कैंसर महिलाओं की अपेक्षा पुरुषों को ज्यादा होता है ।
5. यद्यपि इसकी वैज्ञानिक जांच नहीं हो पायी है कि प्रत्येक गांठ की चिकित्सा यदि समय पर नहीं की जाय, तो वह कैंसर का रूप ले लेता है । किन्तु, वैज्ञानिक इसकी सम्भावना प्रकट करते हैं ।
6. आंकड़ों के अनुसार कैंसर रोगियों की संख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है ।
7. कैन्सर का ज्यादातर प्रकोप मानव-जीवन की अन्तिम अवस्था में होता है ।
8. बच्चों एवं किशोरों में भी इसका प्रकोप हो सकता है, किन्तु शरीर में प्रतिरोधी क्षमता का विकास तबतक नहीं हो पाता है ।
9. यद्यपि यह सही नहीं है कि किस प्रकार के व्यक्ति को कैंसर होता है, किन्तु इसकी सम्भावना हो सकती है कि स्थूल व्यक्ति शीघ्र इसकी चपेट में आ जायं ।
10. कैंसर आनुवंशिक नहीं है । किन्तु कुछ लोग सोचते हैं कि ऐसा हो सकता है ।
11. कैंसर उत्पन्न होने के कारकों में प्रमुख हैं - (1) त्वचा कैंसर सामान्यतया उनको होता है जो पेट्रोलियम पदार्थों को बिना सुरक्षा के इस्तेमाल करते हैं । अन्य कारण हैं - (1) तम्बाकू का अत्यधिक सेवन, कुछ लोगों के अनुसार जन्म से ही कोषों का अनियमित विकास, कुछ लोगों के अनुसार वायरस भी इसका जिम्मेवार हो सकता है ।
12. अल्कोहल के सेवन से कैन्सर का सम्बन्ध नहीं है ।
13. लगभग 60 से 80 प्रकार के कैंसर होते हैं ।
14. कुछ कैंसर अत्यन्त धीमी गति से विकसित होते हैं, और कुछ अत्यन्त तीव्र गति से ।
15. किसी भी अंग में कैंसर जब उत्पन्न होता है, तब यह आवश्यक पौष्टिक तत्व को नष्ट कर देता है और साथ ही आक्सीजन के नष्ट होने से सामान्य कोष समाप्त हो जाता है ।
16. कैंसर फैलने के निम्न मुख्य मार्ग हैं :-
    - क. सीधे उत्पन्न होकर अपने पड़ोसी अंगों को निशाना बनाना ।
    - ख. लसिका मार्ग से दूरस्थ अंगों पर प्रभाव डालना ।
    - ग. रक्तधारा के साथ अन्य अंगों को प्रभावित करना ।

17. प्रारम्भिक अवस्था में यदि गांठ को निकाल दी जाय, तो कैन्सर के फैलाव की सम्भावना को रोका जा सकता है।

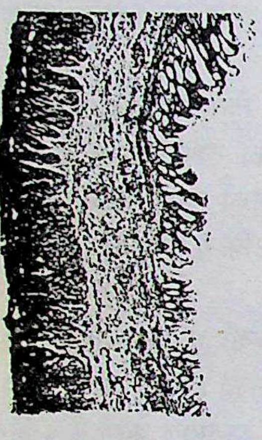
सामान्य आंत की दीवार का एक चित्र। मांस पेशी एवं तन्तु की बनावट सामान्य है।

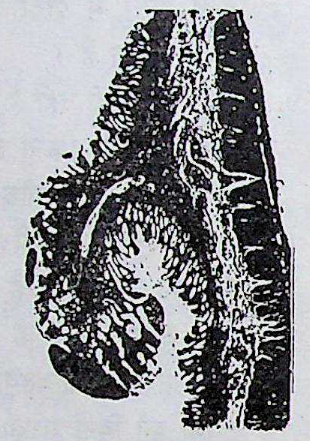
आंत की दीवार में एक मृदु पोलिप दिखायी पड़ रहा है। यहां मांशपेशी की बनावट सामान्य नहीं है।

18. कैन्सर को रोकने में हम तभी समर्थ हो सकते हैं जब हम वर्ष में एक बार या दो बार इसकी जांच करावें। यदि शरीर के किसी भाग से अत्यधिक रक्तस्राव हो तो कैन्सर की सम्भावना हो सकती है।
19. कैंसर चुपचाप फैलता है। जब इसका अस्तित्व सामने आ जाता है, तब यह अपने लक्षणों को दिखलाता है।
20. रक्त जांच या एक्स-रे जांच से कैंसर का पता नहीं चलता है।
21. कैंसर की जांच का माध्यम है - सूक्ष्मदर्शी यंत्र। संभावित तन्तु के एक भाग को निकाल दिया जाता है और उसकी सूक्ष्मदर्शी यंत्र से जांच की जाती है। जांच के पश्चात् की निष्कर्ष निकाला जा सकता है।
22. इसकी सम्भावना है कि ज्ञात कैंसर एक बार उत्पन्न होता है, तो समाप्त हो जाता है, किन्तु इसका प्रतिशत अत्यन्त कम है।
23. कुछ कैंसर, विशेषकर त्वचा कैंसर 100% तक ठीक हो सकते हैं। अन्य प्रकार के कैंसर अवस्था पर निर्भर करता है।
24. कुछ प्रकार के कैंसर में शल्य-क्रिया की आवश्यकता नहीं है, वह औषधि एवं एक्स-रे थेरापी से ठीक हो जाता है।
25. यह कहना आसान नहीं है कि कैन्सर पूर्ण तथा समाप्त हो गया है। हां, समय इसका सटीक प्रमाण है। यदि पांच-छह वर्ष तक इसका पुनः आक्रमण नहीं हो, तो यह मान लेना चाहिए कि कैंसर समाप्त हो जाता है।
26. यदि कैंसर का फैलाव अन्य अंगों में हो गया है, तो आरोग्य-लाभ की सम्भावना कम होती है। एक्स-रे, कोबाल्ट चिकित्सा, रेडियोसक्रिय आइसोटोप्स, रसायन और हार्मोन इन कोषों को नष्ट कर देते हैं।
27. कैंसर रोगियों के वजन में तब तक हानि नहीं होती है जब तक पाचन क्रिया कार्य करती है।
28. कैंसर रोगी एनेमिया (रक्त हानि) के शिकार तब तक नहीं होते हैं जब तक कि रक्त-स्राव गांठ के चलते नहीं होता हो।
29. शल्य चिकित्सक कैंसर ग्रस्त अंग को पूरी तरह निकालना चाहते हैं, किन्तु जब इसका-फैलाव अन्य अंगों पर पड़ जाता है, तब यह कठिन हो जाता है और वैसी स्थिति में इसे पूर्णतः निकालना सम्भव नहीं है।
30. दुर्भाग्यवश कोई भी शल्य चिकित्सक पूर्ण विश्वास के साथ नहीं कह सकता है कि उसने कैन्सर ग्रस्त अंग को पूरी तरह से निकाल दिया है।
31. कैंसर का पुनः आगमन हो सकता है यदि वह पूर्णतया नष्ट नहीं कर दिया गया हो। आहार का इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।
32. कैंसर के पुनः आगमन को रोकने के लिए गांठ को पूरी तरह से निकाल देना और उसके पश्चात् एक्स-रे, रेडियो सक्रिय तत्व, केमोथेरापी या हार्मोन की प्रक्रिया से चिकित्सा करना।
33. शल्य-क्रिया के बिना भी कैंसर की चिकित्सा एक्स-रे, कोबाल्ट, रेडियम, रेडियोसक्रिय तत्व जैसे आयोडीन, फास्फोरस, सोना आदि तरीकों से हो सकती है।

हार्मोन सूई या टेबलेट के प्रयोग से भी कैंसर की चिकित्सा सम्भव है । स्तन कैंसर को पुरुष या महिला हार्मोन भारी मात्रा में देकर रोका जा सकता है । मूत्राशय के कैंसर को महिला हार्मोन के द्वारा रोका जा सकता है ।

कुछ रासायनिक औषधियों का प्रयोग भी कैंसर को रोक सकता है ।

34. नवीनतम औषधियों के आविष्कार के बावजूद केमोथेरापी का भविष्य अभी तक ठीक है । अपने क्षेत्र में इसका विकल्प अभी तक मौजूद नहीं है ।

35. 80 से 90% ल्यूकेमिया के शिशु केमोथेरापी के द्वारा बचाये जा सकते हैं । जिन बच्चों को यकृत् में गांठ है, उसमें से 70% बच्चों को रसायन के द्वारा बचाया जा सकता है । 30 से 40% महिलायें जो स्तन कैंसर से पीड़ित हैं, वे रासायनिक औषधियों के इस्तेमाल से बच सकती हैं । 80-90% हाजकिन के रोगी केमोथेरापी से बच सकते हैं । 60-70% अण्डकोष के रोगी रासायनिक चिकित्सा से बच सकते हैं और 30-40% महिला रोगी जो गर्भाशय के कैंसर से पीड़ित हैं, केमोथेरापी से ठीक हो सकती हैं । 50-80% रक्त-कैंसर के रोगियों को केमोथेरापी से सहायता मिल सकती है । 80-90% हाजकिन रोग के रोगी केमोथेरापी से आराम प्राप्त कर सकते हैं ।

केमोथेरापी के बावजूद रक्त-कैंसर के शिशु रोगी जो पूरी तरह से ठीक हो सकते हैं, उनकी संख्या केवल 2-3% है ।

36. कुछ अपवादों को छोड़कर शल्य-क्रिया के साथ रेडियो सक्रिय तत्त्व, हार्मोन और रासायनिक चिकित्सा का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु रक्त-कैंसर, लिम्फोसरकोमा एवं हाजकिन रोग के रोगियों को शल्य क्रिया नहीं करानी चाहिए ।

इस सबके बावजूद यह देखा गया है कि कैन्सर के बहुत कम रोगी पूरी तरह स्वस्थ हो सकते हैं । अतः आवश्यकता इस बात की है कि हमें उन पदार्थों का सेवन खाद्य पदार्थ के रूप मे करना चाहिए जिनमें कैंसर रोधी गुण हैं । शोधकार्य से यह प्रमाणित हो चुका है कि पत्तागोभी एवं हल्दी में कैंसर रोधी गुण मौजूद हैं । यदि अनुसंधान की प्रक्रिया जारी रखी जाय, तो आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जिन द्रव्यों का जिक्र है **और जिनमें व्रणरोधी गुण मौजूद हैं**, वे सभी कैन्सर को रोकने में समर्थ हो सकते हैं । यह हमारा केवल अनुमान है । शोधकर्मियों को इस दिशा में अनुसंधान करना चाहिए । यदि हमारा अनुमान सही निकला, तो निश्चय ही मानव-जाति का कल्याण होगा ।

संदर्भ :-

1. The Hindu.
2. Indian Materia Medica - Dr. K.M. Nadkarni, Popular Prakashan, Bombay.
3. The wealth of India, Vol. I, C.S.I.R., Delhi.
4. वनौषधि चन्द्रोदय - चन्द्रराज मण्डारी ज्ञान मन्दिर, मानपुरा (इन्दौर)
5. The New Illustrated Medical Encyclopedia for Home use - Abrodale Press, New York

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

वसा जन्य विकार एवं चिकित्सा

वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए. (निवृत्त प्रोफ./प्राचार्य आयु.को.)

परिचय[1]

आयुर्वेद साहित्य में प्राणिज स्नहों के रूप में घृत, वसा, मज्जा का ग्रहण किया गया है । घृत दुग्ध के स्नेह से प्राप्त स्नेह कल्पना है और जैसा की सुविदित है दुग्ध रस की उपधातु है ।

इसी प्रकार वसा को मांस की उपधातु के रूप में ग्रहण किया जाता है । इस को मांस का स्नेह भी माना गया है । (जिसे मांस को निचोड़ या क्वथित कर प्राप्त किया जा सकता है) इसी से इस को मांस में अनुप्रविष्ट स्नेह भी कहते हैं ।

कई बार वसा को मेद भी मान लिया जाता है । आयुर्वेद में मेद को धातु माना गया है । मेद को 'उदर' एवं अणु-अस्थियों में स्थित माना जाता है । अणु स्थितियों में स्थित मेद को सरक्त मेद कहा गया है जिसको मज्जा रूप रक्त मेद भी कह देते हैं ।

मज्जा स्वयं एक धातु रूप में स्वीकृत घटक है । इसको स्थूल अस्थियों में स्थित माना गया है । स्थूल अस्थियों में स्थित मज्जा पीत मज्जा के नाम से भी जानी जाती है जबकि अणु अस्थिगत सरक्त मेद रूप को रक्त-मज्जा भी कहा जाता है । (चरक के अनुसार अस्थि छिद्रों में मेद ही परिपूरित हो मज्जा का रूप लेती है ।)

वसा

'वसा' शब्द 'वस' धातु से बना है जो निवास या आच्छादन के अर्थ में प्रयुक्त होता है । अतः यह कहा जा सकता है कि जो शरीर को या उदरादि को आच्छादित किये रहता है तथा जो (मांस में) निवास कर रहता है वह वसा है । वसा, वपा एवं मेद को पर्याय रूप में भी कई जगह माना गया है ।

वसा को मांस का शुद्ध स्नेह भी कहा गया है तथा इसको 'अप' या जल तत्व आधिक्य वाला घटक माना गया है । इस की गणना प्राणिज स्नेहों में की गई है । यह गुरु एवं कफवर्गीय है या कफाश्रय भी है । यह मांस की उपधातु रूप उत्पन्न द्रव्य है ।

शरीर में वसा का प्रमाण 3 अंजली कहा गया है । वसा को मांस की मृदुता प्रदान करने वाला, उसे पुष्ट करने वाला तथा दृढ़ बनाने वाला भी माना गया है । वसा को व्यायाम से उत्पन्न वात वृद्धि को रोकने वाला भी माना है । यह मांस की क्षीणता को रोकने वाला भी है ।

वसा की क्षय-वृद्धि के लक्षणों को मेद की क्षय-वृद्धि के लक्षणों के समान समझने की भी परम्परा रही है ।

तदानुसार - वसा क्षय से शरीर में रूक्षता बढ़ना मांस शोष एवं उद्वेष्टन पाया जाता है । इस संदर्भ में विभिन्न मांस क्षीणता (वेस्टींग) पर शोष के साथ विचारणीय लगता है ।

इसी प्रकार वसा वृद्धि के लक्षणों को मेद वृद्धि में मिलने वाले लक्षण - मेद स्विता या स्थूलता श्लघाङ्गता, कर्मासमर्थता, उत्साह हानि के द्वारा समझा जा सकता है ।

मांस वसा का आश्रय होने से उसकी वृद्धि से मांस परिपुष्टि या मिथ्यापुष्टि एवं तज्जन्य रोगों का भी ग्रहण किया जा सकता है तदानुसार मांस एवं मांसज अवयव परिपुष्टि (हाईपरद्रोफी) तथा मिथ्यापुष्टि (स्युडो मस्क्यूलर हाईपरट्रोफी) पर भी इस दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए ।

डल्हण ने स्त्रियों की वसा को आग्नेय अंश ओज का ही स्वरूप माना है जिसके परिणाम स्वरूप स्त्रियों में स्त्रैण्यता (स्त्रैण्य सम्बद्ध लज्जा भीरुता आदि स्त्री भाव), देह-केश-नख आदि की सुकुमारता एवं मृदुता, लोम हीनता (देह पर रोम न होना या कम होना), यौवन की स्थिरता, केश एवं मुखमण्डल की तेजस्विता तथा उत्साह आदि भावों को स्त्रियों में होना कहा गया है ।

उपयोग[2]

- वसा निम्नलिखित अवस्था में उपयोगी है -
- स्निग्ध होने से रूक्षतानाशक है । अतः रूक्षों में स्नेहनार्थ प्रयुज्य है । कफ-मेद क्षीणों में योग्य है ।
- वात नाशक होने से वात पीड़ितों के लिये हितकर है व्यायाम पीड़ितों में प्रयुज्य है, आतप पीड़ितों में लाभकर है ।

निवास : 1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुजरात) - 364 001

- रक्त एवं शुक्र वृद्धि में सहायक होने से शुष्क रक्त एवं शुष्क रेतसों में उपयोगी है ।
- संधान कर्म में सहायक होने से भग्न में उपयोगी तथा विद्ध रुग्णों में लाभप्रद, आहतों में प्रयुज्य है ।
- अवयवों को यथा स्थान स्थित रखने में सहायक होने से 'भ्रष्ट योनि' आदि में उपयोगी है ।
- शूल शामक होने से शिर-कर्ण शूलादि पीड़ितों में उपयोगी कहा जाता है ।
- पुष्टिकर एवं कर्षण हर होने से भार, अध्व (पद यात्रा) से कर्षितों में उपयोगी (उपचय कर है ।) यह मेदकर भी है ।
- पौरुष कारक होने से क्षीण पौरुषों में लाभप्रद हैं अतः वृष्य कल्पों में प्रयुक्त है ।
- 'आवरण' हर होने से कतिपय 'आवृत्त' वात/स्रोत विकारों में उपयोगी है । यहां 'मारुत' विकारों में लाभप्रद है ।
- वसा 'अग्नि मांद्य' कारक होने से 'तीक्ष्णाग्नि' एवं 'वसासात्म्य' लोगों में ही विशेष उपयोगी माना है । (संभवत इसी गुण से आतप पीड़ितों में भी उपयोगी कहा गया है ।) 'यहां प्राणों, रुग्णों में योग्य है ।
- अस्थि-संधि-सिरा-स्नायु-मर्म कोष्ठाश्रित महा रूजा में लाभप्रद है ।

वसा-सम्प्राप्ति घटक[3]

वसा को प्रमेह के सम्प्राप्ति घटक रूप दूष्यों में परिगणित किया गया है । स्वभावतः प्रमेह उत्पत्ति में वसा वृद्धि या दुष्टि का स्वतंत्र महत्व है । यह इस लिये भी विचारणीय है कि प्रमेह प्रकारों में 'वसा मेह' प्रकार विशेष की गणना इस के महत्व को और भी बढ़ा देता है ।

वातज प्रमेह की विशिष्ट सम्प्राप्ति को स्पष्ट करते हुए-वसा-मेद-मज्जा, कफ पित्त मिश्र वायु द्वारा विभिन्न वातिक प्रमेह को करते कहा गया है । यहां एवं अन्य कई स्थलों पर वसा एवं मेद पृथक-पृथक पढ़े गये हैं जिससे स्पष्ट होता है कि प्रमेह सहित कई रोगों में 'वसा' को स्वतंत्र घटक के रूप में स्वीकार किया गया है । साथ ही 'वसा' एवं 'मेद' को एक ही द्रव्य के पयार्य मानने का निर्बाध हो जाता है जो वसा को रोग संदर्भों में भिन्न घटक मानने को बाध्य करता है इतना ही नहीं सम्प्राप्ति विघटन की दृष्टि से चिकित्सा में भी इस सिद्धान्त का पालन किया गया है । अतः फेट (FAT) से वसा-मेद दोनों का ग्रहण भ्रम उत्पन्न करता है ।

इसका समर्थन प्रमेह पिडिका सम्प्राप्ति में भी मिलता है जहां 'वसा' 'मेद' दोनों को प्रमेह के आधार पर स्वतंत्र घटक माना गया है । तदानुसार वसा (मांस स्नेह) एवं मेद के कारण अभिन्न (दूषित) शरीर के प्रमेही की धातुओं में तीनों दोष व्याप्त होकर पिडिका को करते हैं ।

इसी प्रकार मधुमेह में भी प्रमेह के सामान्य दूष्य तथा पिडिका दूष्यानुसार वसा सम्प्राप्ति घटक रहता है । क्योंकि 'अतिशय पिड़िका से पीडित एवं प्रमेह उपद्रवों से युक्त प्रमेही को मधुमेही कहते हैं जो असाध्य है ।

(ब) वसा पाक/विपाक

(क) जठराग्निपाक

I वसामय आहार (मांसाहार) + जठराग्नि (सम) सारभाग —→ स्निग्ध धातुवृद्धि (वसा आदि वृद्धि) प्राकृत)
किट्टभाग - मल स्निग्धता वृद्धि (स्वल्प) प्राकृत)

II वसामय आहार + मंदाग्नि —→ अल्पसार भाग - स्निग्ध धातु-न्यूनता
प्रभूतमल भाग - मल स्निग्धतावृद्धि

III वसामय आहार + विषमाग्नि —→ विषमसार भाग - धातु स्निग्धता वैषम्य
विषमकिट्ट भाग - मल स्निग्धता वैषम्य

IV वसामय आहार + तीक्ष्णाग्नि —→ अत्यल्पसार भाग - धातु रूक्षता
अत्यल्पकिट्ट भाग - मल रूक्षता खरता

(ख) भूताग्नि पाक

अपयोनि (स्नेह-वसादि) द्रव्य + अपाग्नि
- सम - समपाक - सम वसा
- मंद - मंदपाक - वसा संचय
- विषम - विषमपाक - वसा विषमता
- तीक्ष्ण - खरपाक - वसा क्षय

(ख) धात्वाग्नि पाक

I मांस धातु + सम मांसाग्नि समपाक
- सारभाग
  - स्थूतांश- मांसपुष्टि (सम)
- किट्टभाग
  - स्थूलांश -(1) मेदोत्पत्ति
  - (2) उपधातु उ० षड त्वचा वसा (सम)
- धातुमल (सम)
- एवं-मल (सम)

II मांसधातु + मंद मांसाग्नि मंद पाक
- अल्पसार भाग
  - अल्पस्थूलांश - अल्पमांस
- प्रभूत किट्ट
  - अल्पसूक्ष्मांश - 1. अल्पमेद
    - 2. अल्पोपधातु
    - अल्पत्वक
    - अल्पवसा
- प्रभूत धातुमल
- प्रभूत एवं मल

III मांस धातु + विषम मांसाग्नि विषमपाक
- विषमसार
  - विषमस्थूलांश - विषममांस
- विषम किट्ट
  - विषमसूक्ष्मांश - 1. विषमभेद
    - 2. विषमत्वक
    - 3. विषम वसा
- विषमधातुमल
- विषम एवं मल

IV मांसधातु + तीक्ष्ण मांसाग्नि खरपाक (तीक्ष्णपाक)
- अल्पसार
  - अल्प स्थूलांश - अल्पमांस
- अत्यल्पकिट्ट
  - अल्पसूक्ष्मांस - 1. अल्पमेद
    - 2. अल्प त्वक्/वसा
- अल्प - धातुमल
- अल्प - ख-मल

वसामेह

वसा मेह वातिक प्रमेह प्रकार होने से धातु आकर्षित होने से उत्पन्न प्रमेह विशेष है । इन्हें कफ-पित्त न्यूनता जन्य भी माना जाता है । (च)

वसा मेह में मूत्र का वसान्वित होना लक्षण कहा गया है । (च) मूत्र वसा सदृश्य होता है । (सु)

वसा मेह पीड़ित रोगी वसा से मिश्रित तथा वसा के वर्ण एवं गंध समान लक्षण युक्त मूत्र का बार-बार मूत्रण करता है । (वा)

तीनों संहिताकारों ने वसा मेह का स्वीकार किया है । मूत्र में स्वल्प मात्रा में वसा की उपस्थिति इसका प्रत्यात्म लिङ्ग माना जा सकता है । अत: इसको लाइप्यूरिया (Lipuria) कहा जा सकता है । काइल्यूरिया में भी मूत्र में वसा मिलती है । यद्यपि कुछ लोग लसिका मेह को काइल्यूरिया मानते हैं जिसमें मूत्रगत वसा मिलती है । जो श्लीपद आदि में मिलता है और असाध्य माना जाता है ।

वसा मेह की चिकित्सा के लिये सुश्रुत ने, अग्निमथ या सीसम क्वाथ पिलाने का विधान किया है । (सु०चि० 11/9)

वसा मेह के लिये अन्य कल्पों में विडङ्गादि लौह (भै०र०) तथा सर्वमेहहर कल्पों यथा धात्रिनिशा आदि को भी उपयोगी माना जाता है ।

वात दोषानुबंध की दृष्टि से देवदार्व्यारिष्ट (भै०र०) भी उपयोगी है ।

त्रिदोषानुबंधता की दृष्टि से बसंततिलक रस, सर्वेश्वर रस, चन्द्रप्रभावटी, मेहमुदगर वटी का तथा शुक्रमात्रिका वटी जैसे कल्प भी उपयोगी कहे गये हैं (भै०र०)

अनुबंधी रोगों की दृष्टि से श्लीपदारि लौह, विडङ्ग लौह, शिलाजीत वटी (भै०र०) भी उपयोगी कल्प है ।

वसा क्षय एवं विस्रंसन[5]

एक अन्य संग्रहीत संदर्भ के आधार पर यह कहा गया है कि वसा - आग्नेय है, तथा स्नेह होने से वह स्नेहन, जीवन, वर्ण्य एवं उपचय कारक भी है । इसीलिये नित्य स्नेह सेवन करने वालों की जठराग्नि बलवान होती है, कोष्ठ शुद्ध होता है, धातु नवीन और इन्द्रियां दृढ़ रहती हैं । इनके बल एवं वर्ण स्थिर रहते हैं । जरा देर से आती है तथा उसका प्रभाव भी मंद रहता है । अत: आयु की पूर्णता का लाभ मिलता है । वह दीर्घायु होता है ।

.जैसा कि कहा जा चुका है वसा को आत्रेय भी माना गया है विशेष कर स्त्रियों में । वसा स्त्रियों में मार्दव, सुकुमारता, मृदु एवं अल्परोमत्व, उत्साह, दृष्टि, स्थिति, पक्ति, कान्ति-दीप्ति भी करता है ।

वसा को क्षीण करने वाले निमित्तों में कषाय, तिक्त, गुरु, शीत, रुक्ष, विष्टम्भि, वेगरोध, व्यवाय, व्यायाम, व्याधि (अनुबंध) एवं कर्षण क्रियाओं को माना गया है ।

वसा के क्षीण (विस्रंस) होने से जो लक्षण होते हैं इनमें - पारुष्य, वर्णभेद, तोद, निष्प्रभता (वसा विस्रंसन ओज विस्रंत, दोष विस्रंस या अवयवविस्रंस होना) होते हैं ।)

वसा के क्षय होने पर जो लक्षण कहे गये हैं उनमें - कार्श्य, मंदाग्निता, अद्य-तिर्यक-प्रच्युति व्यापत्ति, दुष्टाग्नि, बल हानि, अनिल (वायु) कोप आदि प्रमुख कहे गये हैं ।

ऐसा होने पर - स्नेह पान - अभ्यङ्ग, प्रदेह, परिषेक स्निग्ध-लघु (सुपाच्य) अन्न दिये जाने का आदेश है ।

असाध्य प्रदर[6]

असाध्य (संभवत: त्रिदोषज) प्रदर के वर्णन में कहा गया है कि -

- अत्यन्त दु:खी एवं अत्यन्त क्षीर रक्त वाली स्त्री में सर्व हेतु सेवन से उत्पन्न शरीर में
- प्रवृद्ध वायु, पित्त के तेज से विदग्ध एवं दुर्गंधित पिच्छिल पीत कफ को रक्त मार्ग (योनि मार्ग) से रक्त युक्त कर निसरित करता है ।
- वेगवान वायु वसा, मेद को आक्रान्त कर घृत वसा मज्जा सदृश्य स्राव को अपत्यमार्ग से स्रवित करता है ।
- इसके निरन्तर स्रवित होते रहने पर तथा दाह, तृषा, ज्वर, अनुबंध होने पर क्षीण रक्त दुर्बल स्त्री को असाध्य जानकर त्याग करें ।
- (असाध्य होने से त्याज्य कहा है तथापि लक्षणादि को देखते हुए तथा वसा, मज्जा मेहादि के समान संज्ञा को ध्यान में रख वसा मज्जा आदि के अनुसार यापन प्रयास किये जा सकते हैं)

इस अवस्था में असाध्यता को समझकर यापनार्थ निम्नानुसार चिकित्सा की जाती है :-

- त्रिदोषघ्न चिकित्सा एवं त्रिदोष कोपक अन्नपान रूप निदान परित्याग तथा त्रिदोष शामक पथ्य सेवन ।
- त्रिदोषज प्रदर की चिकित्सा करना-पुष्यानुग चूर्ण, शुद्ध शिलाजीत, अशोकारिष्ट, प्रदरान्तक रस एवं लोह प्रयोग, त्रिफला गूगल आदि ।
- प्रियंगु एवं निम्ब तैलादि का स्थानिक प्रयोग ।

संदर्भ/आधार :-

1. वसति शरीरे (विशेषत: मांसे) इति वसा / आच्छादयति शरीरे मांसमुदरादिकं वा इति वसा ।

   अत्र जलतत्वस्याधिकम् यथा - 'आप्यास्तु xx वसा xx ।
   (च०शा० 7)

   कर्म-स्नेह: चूर्णादिपिण्डीभाव हेतु: गुण: जलमात्रवृत्ति: वसा-मेद पर्याय: (अभिधान कोश) (तर्क सं.)

   वपा अपि मेद पर्याय इति वसाया अपि नामांतरम् (अभि. को.)

   वसा तु मांसान्तरानुप्रविष्ट: स्नेह (गणनाथसेन)

   शुद्ध मांस्य य: स्नेह: सा वसा परिकीर्तिता । (सु०शा० 4/13)

   तनु मेदोमज्जानुकारी उणधातुर्वसाख्य: क इत्याह शुद्धेत्यादि

(डल्हण)

मांसाद्वसा त्वचा षट च xx। (च०चि० 15/- 3)
श्लेष्माशेषेषु xx आश्रया श्रमिणां मिथ: ।। (अ०ह०)
स्नेहाशया: स्थावर: जगभाश्रया xx चेष्यते वसा xx।
सर्पि तैल वसा मज्जा स्नेहो दृष्टश्चतुर्विधा च०सू०14/-
प्रमाणम् त्र्योवसामा: (अंजलय:) - च०शा० 7/-

2. विद्धभग्नाहतभ्रष्ट योनिकर्णशिरो रूजि ।
पौरूषोपचये स्नेह व्यायामे चेष्यते वसा ।
च०सू० 13/14

वातातपसहाये च रूक्षा भाराध्वकर्शिता : ।
संशुष्करेतो रूधिरा निष्पीतकफमेदस: ।
अस्थि संधिशिरा स्नायु मर्म कोष्ठमहारूज: ।
वलवान्मारुतो येषां खानि चावृत्यतिष्ठति ।
महाच्याग्निवलं येषां वसा सात्म्याश्चमेनर: ।
तेषां स्नेहमितव्यानां वसापानं विधीयते ।
च०सू० 13/46-48

व्यायाम कर्षिता: शुष्करेतोरक्ता महारूजा: ।
महाग्निमारूतप्राणा वसा योग्या नरा: स्मृत: । सु०चि० 31/-

3. च०नि० 4/7
कफ पित्त वसा मज्जामेदोभिरन्वितोवायुर्वात प्रमेहान् ।
सु०नि० 6

तंत्र वसामेदोभ्यामभिन्न शरीरस्य त्रिभिर्दौषे श्चानुगतधातो: प्रमेहिणो दश पिडिका जायन्ते ।
सु०नि० 6/14

पिडिकापीडितं गाढमुपसृष्टमुपद्रवै: मधुमेहिनमाचष्टे स चासाध्य: प्रकीर्तित: । सु०नि० 6/24

पिडिकापीडिता: सोपद्रवा: सर्व एवं प्रमेहा मूत्रादि माधुर्ये मधुगन्ध सामान्यात् परिभाषिकीं मधुमेहाख्यां लभन्ते ।
सु०चि० 12/6

4. स कुपितस्तथात्यके शरीरे विसर्पन् यदा वसामादाय मूत्रवहानि स्रोतांसि प्रतिपद्यते तदावसामेहमभि निर्वत यति xx। च० नि० 4/32

वाताच्छेषेषु धातुष्वकर्षितेषु । च०चि० 6/10

वसामिश्रं वसाभं च मुहुर्मेहति यो नर: । वसानेहिनमाहुस्तमसाध्यं वातकोपत: । च०नि० 4/34

वसा प्रकाशं वसा मेही, सु०नि० 6/12

वसा मेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रमेन्मुहु: । मा०नि० 33/15,
वा०नि० 10/-

वसा मेहिनअग्निमंथ कषायं शिंशिपा कषायं वा ।
(सु०चि० 11/9)

तत्र वसामेहेऽग्निमंथस्य xx। अ०स०चि० 14

5. स्नेहसारोऽपं पुरुष: । प्राणाश्च स्नेहभूयिष्ठा: स्नेहसाध्याश्च भवन्ति । सु०चि० 31/3

स्नेहना जीवनाबल्या वर्णोपचयवर्धना: । स्नेहा ह्येते xx
च०सू० 1/87

दीप्तान्तरग्नि: परिशुद्धकोष्ठ: प्रत्यग्रधातुर्बलवर्ण युक्त: ।
छठेन्द्रियों मंदजर: शतायु स्नेहापसेवी पुरुष प्रदिष्ट: ।।
सु०चि० 31/56

स्नेहन स्नेहं स्नेह-विष्यन्द-मार्दव-क्लेद कारकम् ।
(च०सू० 22/11)

प्रायो मंदं मृदु च यद् द्रव्यं तत्स्नेहनं स्मृतम् ।
(च०सू० 22/15)

तेजोऽप्याग्नेयं क्रमश: पच्यमानानां धातुनामभिनिवृत्त-मन्तस्थं स्नेह जातं वसाख्य स्त्रीणां विशेषतो भवति । तेन मार्दव-सौकुमार्य-गृद्वात्परोमतोत्साह- दृष्टि-स्थिति-पक्ति कान्ति दीप्त योभवन्ति । तत्कषाय- तिक्त-गुरू-शीत-रूक्ष-विष्टम्भि-वेगविघात व्यवाय-व्याधि-कर्षणश्च विक्रियते ।

तस्यापि पारूष्य वर्णभेद-तोद-निष्प्रभत्वानि विस्रंसते भवन्ति। कार्श्यं मन्दाग्निताऽधस्तिर्यक् च प्रच्युति - व्यपित्तौ, दुष्टयग्निबलहान्यनिल प्रकोप मरणमपि क्षये। तत्र स्नेह-पानाभ्यङ्ग‌प्रदेह परिषेक स्निग्ध लघ्वन्नानि क्षयादृत विदधीत । डल्हण (सु०सू० 15/28 पर उद्घृत)

6. नारीत्वतिपरिक्लिष्टा यदा प्रक्षीणशोणिता ।
सर्वहेतु समाचारा ऽतिब्रद्धस्तदाऽनिल: रक्तमार्गेण सृजति प्रत्यनीककरं कफम् दुर्गन्धं पिच्छिलं पीतं विदग्धं पित्ततेजसा वसां मेदश्चयावृद्धिः समुपादाय वेगवान् सृजव्यपत्यमार्गेण सर्पिमज्जवसोपमम् शश्वत्स्रवन्तीमास्रावं तृष्णादाह ज्वरान्वितम् क्षीणरक्तां दुर्बलां च तामसाध्यां विवर्जमेत् ।
च०चि० 30/218-222

आयुर्वेद में सुस्वास्थ्य की अवधारणा

आचार्य राजकुमार जैन

स्वस्थ मनुष्यों के लिए आयुर्वेद शास्त्र में दिनचर्या, निशाचर्या और ऋतुचर्या तथा उसके अनुसार आहार-विहार का विधान बतलाया गया है । जो मनुष्य उसके अनुसार आचारण करता है वह निश्चय ही स्वस्थ रहता है और अपनी सुदीर्घ आयु का निर्बाध रूप से उपयोग करता है क्योंकि देश, काल, ऋतु और अपनी प्रकृति के अनुरूप सम्यक् आहार-विहार करने से मानव शरीर में स्थित वात-पित्त, कफ ये तीनों दोष समान (प्राकृत) अवस्था में रहते हैं, जठराग्नि भी सम रहती है (अर्थात् न्यूनाधिकता को प्राप्त नहीं होती) । धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद, अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल (स्वेद मूत्र-पुरीष) प्रसन्न (अविकृत) रहते हैं । इस प्रकार जिस मनुष्य के शरीर में दोष-धातु-मल सम्बन्धी समस्त क्रियाएं प्राकृत रूप से सम्पन्न होती रहती हैं, शरीर में किसी प्रकार की विषमता या बाधा नहीं होती उसका शरीर कभी विकारग्रस्त नहीं हो सकता है और वह सदैव स्वस्थ रहता है । अतः स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और इसके लिए सम्यक् आहार-विहार का उपदेश करना आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है ।

मानव शरीर में वातादि दोषों में जब मिथ्या आहार-विहार या देश-काल ऋतु वैषम्य के कारण विषमता उत्पन्न हो जाती है तो वे धातुओं को दूषित कर उनमें भी विषमता उत्पन्न कर देते हैं । अनेक बार प्रज्ञापराध के कारण भी विविध प्रकार के रोगों की उत्पत्ति शरीर में हो जाती है । अतः औषधोपचार, लंघन आदि कर्म तथा अन्य चिकित्सा विधि के द्वारा विकारोपशमन या रोग निवृत्ति हेतु उपाय किए जाते हैं । यह भी आयुर्वेद का एक प्रयोजन है । इस प्रकार प्रथमतः स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और यदि किसी कारणवश विकारोत्पत्ति हो जाय तो यथा विधि उसका उपशमन करना ये दो आयुर्वेद के मुख्य प्रयोजन हैं ।

आयुर्वेद शास्त्र में इस बात पर विशेष जोर दिया गया है कि मनुष्य सदैव स्वस्थ बना रहे और कभी बीमार ही न पड़े । इसके लिए आधारभूत पथ्य व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया गया है । अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को अपनी प्रकृति के अनुसार किस ऋतु में किन आहार द्रव्यों का सेवन करना हितकारी है और किन का अहितकारी । अतः कब कौन से आहार द्रव्यों का सेवन करना चाहिये और कौन से द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिये इसका विस्तृत वर्णन आयुर्वेद के ऋतुचर्या एवं दिनचर्या प्रकरण में प्रतिपादित है । ऋतुचर्या के अन्तर्गत कौन से द्रव्य मनुष्य के शरीर और स्वास्थ्य को किस प्रकार प्रभावित करते हैं और बाह्य वातावरण का किस प्रकार उसके स्वास्थ्य पर अनुकूल या प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है इसका विस्तार पूर्वक वर्णन आयुर्वेद शास्त्र की मौलिक विशेषता है । इसके साथ ही मनुष्य की दैनिक चर्या का विज्ञान सम्मत वर्णन कर आयुर्वेद ने मानव मात्र का जो उपकार किया है वह अद्वितीय है । प्रातःकाल ब्राह्म मुहूर्त से लेकर रात्रि में शयन पर्यन्त मनुष्य का आचरण व आहार-विहार किस प्रकार का होना चाहिये ताकि वह निरोग रहते हुए धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष हेतु अपनी प्रवृत्ति कर सके इसकी सार्थक विवेचना केवल आयुर्वेद शास्त्र में ही मिलती है ।

आयुर्वेद में ''दोषधातुमलमूलं हि शरीरम्'' यह शरीर की व्याख्या बतलाई गई है । जिसके अनुसार दोष (वात-पित्त-कफ), धातु (रस-रक्त-मांस-भेद-अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल (स्वेद-मूत्र-पुरीष) ये तीनों शरीर के मूल आधार हैं - इनसे ही शरीर का निर्माण होता है । इसके अतिरिक्त शरीर का सम्पूर्ण आभ्यन्तरिक क्रियाएं और बाह्य चेष्टाएं इन्हीं पर आधारित होती हैं । शरीर का आरोग्य या अनारोग्य भी इन तीनों के ही अधीन है । प्रायः देखा गया है कि इनमें या इनमें से किसी एक में जब किसी प्रकार की विकृति या वैषम्य उत्पन्न हो जाता है तो उनका पारस्परिक संतुलन बिगड़ जाता है जिसका प्रभाव शरीर के स्वास्थ्य पर पड़ता है । परिणाम स्वरूप शरीर अस्वस्थ हो जाता है । अस्वस्थता, विकार या रोग होना शरीर की अप्राकृत अवस्था का द्योतक है, इसके विपरीत स्वस्थता, प्रकृति या आरोग्य शरीर की प्राकृत अवस्था है । इन दोनों अवस्थाओं की विवेचना महर्षि चरक ने बड़ी सुन्दरता से की है जो निम्न प्रकार है :

विकारो धातुवैषम्यसाम्यं प्रकृतिरुच्यते।
सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दुःखमेव च॥

– चरक संहिता, सूत्रस्थान

जैनायुर्वेद साहित्यानुसंधान केन्द्र, अहिंसा मार्ग, राजीव काम्प्लेक्स के पास, इटारसी - 461 111 (म०प्र०)

धातुओं की विषमता को विकार (रोग) और धातुओं की समता को प्रकृति (स्वस्थावस्था) कहा जाता है । आरोग्य ही सुख और विकार ही दु:ख कहलाता है ।

इसी प्रकार ''रोगस्तु दोषवैषम्यम्'' इत्यादि वाक्यों के द्वारा दोषों की विषमता को रोग माना गया है । और ''दोषवैषम्यमरोगता'' के अनुसार दोषों की साम्यावस्था अरोगता या आरोग्य की परिचायक है । इन वाक्यों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि दोष-धातु-मल की समस्थिति शरीर को आरोग्य प्रदान करती है और विषम स्थिति शरीर में रोग या विकार उत्पन्न कर शरीर को व्याधि -ग्रस्त बनाती है । महर्षि सुश्रुत के अनुसार मनुष्य के शरीर से दु:ख मात्र का संयोग होना ही ''व्याधि'' कहलाता है और शरीर का व्याधिग्रस्त होना अनारोग्य या अस्वस्थता का परिचायक है । जैसे-अस्मिंस्तु शास्त्रे पंचमहाभूतशरीररिसमवाय: पुरुष इत्युच्यते तददु:ख संयोगा व्याधय इत्युच्यते - (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान अ०।) अर्थात् इस आयुर्वेद शास्त्र में पंच महाभूत और आत्मा का समवाय (पुरुष) कहलाता है और उसके दु:ख के संयोग को व्याधि कहते हैं । इसका अभिप्राय यह हुआ कि चैतन्य शरीर के साथ जो दु:ख का संयोग है या उस शरीर को जो दु:ख की अनुभूति होती है वह व्याधि है । यह दु:ख शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार का होता है । दु:ख की परिभाषा बतलाते हुए महर्षि पतंजलि लिखते हैं -''प्रतिकूलवेदनीयं दु:खम्'' । अर्थात् शरीर में जो भी प्रतिकूल वेदना होती है वह सब दु:ख संज्ञक है । वह व्याधिजनक होने के कारण शरीर के लिए अनारोग्य का कारण होता है । इसके विपरीत अनुकूल वेदना सुख संज्ञक है, जैसा कि पातंजल योग दर्शन में प्रतिपादित है - ''अनुकूलवेदनीयं सुखम् ।'' यह शरीर के आरोग्य एवं स्वस्थता का ज्ञापक है ।

सामान्यत: शरीर के बाहरी डीलडौल को देखने मात्र से ही किसी मनुष्य की स्वस्थता या अवस्वस्था का अनुमान नहीं लगाया जाना चाहिये, क्योंकि शरीर का बाह्य डील-डौल स्वस्थता या अस्वस्थता का मापदण्ड नहीं हो सकता है । बाहर से हृष्ट-पुष्ट दिखने वाला व्यक्ति भी शरीर के किसी आभ्यन्तरिक विकार या मानसिक तनाव जैसे विकार से पीड़ित होने के कारण अस्वस्थ हो सकता है । इसके विपरीत स्वभावत: दुबला-पतला व्यक्ति भी प्रसन्नात्मेन्द्रियमन होने के कारण स्वस्थ या निरोग हो सकता है । आयुर्वेद शास्त्र में स्वस्थ और स्वास्थ्य सम्बन्धी बहुत अच्छी विवेचना की गई है । स्वस्थ पुरुष की परिभाषा के सन्दर्भ में महर्षि सुश्रुत का निम्न वचन महत्वपूर्ण है :-

समदोष: समाग्निश्च समधातुमलक्रिय: ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमन: 'स्वस्थ' इत्यभिधीयते ॥

सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान 15/44

जिसके (वात-पित्त-कफ) तीनों दोष सम हों, जिसकी जठराग्नि (पाचन क्रिया) सम हो, जिसकी धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद अस्थि-मज्जा-शुक्र) की क्रिया सम (क्षय वृद्धि से रहित) हो, जिसकी तीनों मलों (स्वेद-मूत्र-पुरीष) की क्रिया विसर्जन क्रिया सम हो, जिसकी आत्मा, दसों इन्द्रियों (पांच ज्ञानेन्द्रियों और पांच कर्मेन्द्रियों) तथा मन प्रसन्न (निर्मल- अविकारी) हों यह ''स्वस्थ'' कहलाता है ।

यहाँ पर स्वस्थ पुरुष की जो परिभाषा बतलाई गई है वह अपने आप में पूर्ण, सार्थक और सर्वथा व्यावहारिक है । आयुर्वेद के अनुसार शरीर की सभी प्रकार की स्थिति में दोष-धातु-मल ही मूल कारण है । जब ये तीनों सम अवस्था में होते हैं तो शरीर का संतुलन बना रहता है और शरीर में कोई रोग या विकार उत्पन्न नहीं हो पाता । सम अवस्था में ये तीनों शरीर को धारण करते हैं और शरीर के सम्पूर्ण व्यापार को निर्बाध रूप से संचालित करते हैं । जब दोष-धातु मल-इनमें से किसी में विषमता आ जाती है अर्थात् किसी भी दोष की वृद्धि अथवा क्षीणता होती है, किसी भी धातु की वृद्धि या क्षीणता होती है अथवा किसी भी मल की वृद्धि या क्षय होता है तो इस विषमता के कारण शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है जिससे शरीर में रोग या विकार उत्पन्न हो जाता है । इसी आधार पर स्वस्थ पुरुष की उपर्युक्त व्याख्या में दोषों की समावस्था, धातुओं की समावस्था तथा मलों की समावस्था बतलाई गई है । इनमें भी दोषों की साम्यावस्था विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि जब दोषों में वैषम्य होता है तब वे ही प्रथम स्वयं दूषित होकर बाद में धातुओं को दूषित कर उनमें विषमता उत्पन्न कर देते हैं । इसीलिए धातुओं को दूष्य भी कहा गया है । धातुएं अपने आप दूषित नहीं होतीं, अपितु दोषों के द्वारा दूषित

किए जाने पर वृद्धि या क्षय को प्राप्त होकर दूषित या विषम होती हैं । सामान्यत: हमारे द्वारा जो कुछ भी आहार ग्रहण किया जाता है उसका जठराग्नि के द्वारा पाचन होने के बाद वह सीधा दोषों को प्रभावित करता है । अत: मनुष्य के द्वारा जब मिथ्या आहार-विहार का सेवन किया जाता है तो उसके परिणाम स्वरूप शरीर में दोष-वैषम्य (दोषों का क्षय या वृद्धि) होता है, जिससे धातुएं प्रभावित होती हैं और धातु-वैषम्य के कारण शरीर में विकारोत्पत्ति होती है । हिताहार-विहार दोषों की समस्थिति बनाए रखने में सहायक होता है । इस प्रकार आयुर्वेद के अनुसार स्वस्थ व्यक्ति के लिए दोषों की साम्यावस्था अत्यन्त आवश्यक है ।

स्वास्थ्य या स्वस्थ पुरुष की उपर्युक्त परिभाषा आयुर्वेद की दृष्टि से समीचीन मानी गई है । इस परिभाषा की सुविस्तृत व्याख्या महर्षि कश्यप ने अपने ग्रंथ में निम्न प्रकार से की है -

अन्नाभिलाषो भुक्तस्य परिपाकः सुखेन च ।
सृष्टविण्मूत्रवातत्वं शरीरस्य चत्माधवम् ॥
सुप्रसन्नेन्दियत्वं च सुखस्वप्नप्रबोधनम् ।
बलवर्णायुषां लाभः सौमनस्य समाग्निता ॥
विद्यादारोग्यलिंगानि विपरीते विपर्ययम् ॥

- कश्यप संहिता, खिलस्थान

अर्थात् जिस मनुष्य को यथा समय भोजन की अभिलाषा होती (भूख लगती) हो, खाए हुए आहार का परिपाक सुख पूर्वक हो जाता हो, पुरीष-मूत्र और वायु का विसर्जन यथोचित रूप से होता हो, शरीर में लघुता का अनुभव होता हो, इन्द्रियां अविकृत या निर्मल रूप से अपना कार्य करती हों, सूखपूर्वक जिसे निन्द्रा आती हो और सूखपूर्वक जिसे प्रबोध होता हो, शरीर में समुचित प्रमाण में बलाधान हो, स्वच्छ वर्ण की प्राप्ति हो, पर्याप्त आयु का लाभ हो, मन सुप्रसन्न हो, जठराग्नि द्वारा पाचन क्रिया समुचित रूप से होती हो, इन सभी को आरोग्य के लक्षण जानना चाहिये । इनसे विपरीत लक्षण होने पर विपरीत स्थिति अर्थात् अनारोग्य या अस्वस्थता होती है ।

शरीर को स्वस्थ एवं निरोग रखने के लिए यह आवश्यक है कि मनुष्य का आहार-विहार सम्यक् हो । हितमित आहार-विहार का सेवन करने से शरीर में स्थित दोष-धातु-मल सम अवस्था में रहते हैं और वे अपने अविकृत (प्राकृत) कर्मों के द्वारा शरीर का उपकार करते हैं । मनुष्य इन्द्रियों के वशीभूत होकर अहित विषयों में प्रवृत्त न हो । मिथ्या आहार-विहार से अपने शरीर की रक्षा करते हुए मनुष्य को शुद्धता एवं सात्विकता पूर्वक अपने जीवन का निर्वाह करना चाहिये । आचरण की शुद्धता मानव जीवन के उत्कर्ष के लिए अत्यन्त आवश्यक है । अत: सात्विक वृत्ति पूर्वक उसे परिमित रूप में ही विषयों के सेवन में प्रवृत्ति रखना अभिष्ट है । जो मनुष्य अपने आचरण की शुद्धता और हिताहार विहार के सेवन की ओर विशेष ध्यान देता है वह निश्चय ही सुखी और निरोगी जीवन का उपयोग करता है । इस विषय में महर्षि चरक का निम्न वचन महत्वपूर्ण एवं सर्वथा अनुकरणीय है -

नित्यं हिताहार विहारसेवी, समीक्ष्यकारी विषयेष्वसक्त ।
दाता समः सत्यपरोक्षमावा नाप्तोपसेवी च भवत्यरोगः ॥

सदैव हितकर आहार और विहार का सेवन करने वाला, हिताहित विवेक पूर्वक कार्यों को करने वाला, विषयों के सेवन में आसक्ति नहीं रखने वाला, दान में तत्पर (अपरिग्रही), सममनोवृत्ति रखनेवाला, सत्याचरण और सत्यभाषण के प्रति निष्ठावान्, क्षमावान, आप्तपुरुषों की सेवा करने वाला (ज्ञानवृद्धि-वयोवृद्ध) अनुभवी सदाचारी मनुष्यों की सेवा करने और उनके आदेशानुसार आचरण करने वाला । मनुष्य निरोग रहता है ।

विभिन्न रोगों से शरीर की रक्षा करने के लिए तथा चिरकाल तक शरीर को स्वस्थ, निरोग एवं आयुष्मान बनाने के लिए महर्षि चरक ने जहां शरीर के लिए आहार-विहार सम्बन्धो नियंत्रण का निर्देश दिया है वहीं मनो व्यापार को भी स्वास्थ्य के लिए उत्तरदायी बतलाते हुए उसकी चंचलवृत्ति का निग्रह करने का भी निर्देश किया है । बुद्धि और वाणी को शुचिता-प्रियता भी शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य रक्षा का के लिए नितान्त आवश्यक है । अत: इसका नियम पूर्वक अनुशीलन करने वाला व्यक्ति ही पूर्ण स्वस्थ कहलाने का अधिकारी है । जो व्यक्ति नियम पूर्वक स्वास्थ्य सम्बन्धी आचरण का पालन करता है, मानसिक रूप से प्रसन्न और चिन्तामुक्त रहता हुआ मनसा वाचा-कर्मणा संयमित रहता है उसे कभी रोगाक्रमण नहीं

होता, जिससे वह सदैव पूर्ण स्वस्थ बना रहता है । महर्षि चरक ने भी भिन्न श्लोक द्वारा यही भाव व्यक्त किया है -

मतिर्वचः कर्मसुखानुबन्धं सत्वंविधेयं विशदा च बुद्धिः ।
ज्ञानं तपस्तत्परता व योगे यस्यास्ति तं नानुपतन्ति रोगाः ॥

जिसकी बुद्धि, वाणी और कर्म ये तीनों सुखानुबन्धी अर्थात् स्वास्थ्य के अनुकूल अनुबंध बनाए रखने वाले होते हैं, सत्व (मन) को स्वायत्त और बुद्धि निर्मल बनाने हेतु प्रयत्नशील रहना चाहिये । जो मनुष्य ज्ञान के लिए प्रयत्नशील रहता है, तपश्चरण में संलग्न होता है और योग-साधना में जिसकी तत्परता होती है अर्थात् जो ज्ञाननिष्ठ, तपोनिष्ठ और योगनिष्ठ होता है उस पर रोगों का आक्रमण नहीं होता ।

यहाँ पर रोगाक्रमण से मनुष्य की रक्षा हेतु योग-साधना में तत्परता का भी निर्देश किया गया है जो स्वास्थ्य-साधना एवं स्वास्थ्य रक्षा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । योगशास्त्र में अनेक प्रकार के विकारजनित दु:खों से मुक्ति हेतु अन्यान्य उपायोगं का निर्देश किया गया है, जिससे मनुष्य विकार रहित होकर यथेष्ट सुखायु का उपभोग करता हुआ अपने पारलौकिक जीवन को भी श्रेयस्कर बना सके । योगशास्त्र में प्रथम दो अंग यम-नियम के द्वारा मनुष्य के आचरण की शुद्धता को ही लक्ष्य बनाया गया है । इन दोनों अंगों का परिपालन मनुष्य के आचरण को शुद्ध बनाता हुआ उसके मन में सात्विक भाव को उत्पन्न करता है । सात्विक भाव का उद्भव प्रत्यक्षतः मनोविकारों के उपशमन का द्योतक है, किन्तु इसका पर्याप्त प्रभाव उसके शरीर पर भी पड़ता है । सत्वगुण शरीर के उत्तम स्वास्थ्य एवं तेजस्विता के लिए महत्वपूर्ण है ।

इस संदर्भ में यह भी ज्ञातव्य है कि विभिन्न विकारों के उपशमन, शरीर के स्वास्थ्य साधन एवं स्वास्थ्य रक्षा के लिए योगासनों एवं प्राणायाम का भी विशेष महत्व है । प्रत्येक योगासन किसी न किसी प्रकार से शरीर के बाह्य एवं आभ्यन्तरिक अवयवों को प्रभावित करते हैं । जिन अवयवों की प्रक्रिया में कोई विकृति होती है वह सम्बन्धित योगासन के निरन्तर अभ्यास से दूर हो जाती है और वह अवयव प्रकृतिस्थ होकर अपनी प्राकृत क्रिया का सम्पादन करता है । इससे तदवयव जनित या उस अवयव से सम्बन्धित रोग भी नष्ट हो जाता है और शरीर पूर्ण स्वस्थ बन जाता है । उदाहरणार्थ भुंजगासन नामक योगासन सतत अभ्यास से मनुष्य को निम्न लाभ होते हैं -

देहाग्निर्वधते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ।
जागर्ति भुजंगी देवी साधनाद भुजंगासनम् ॥

अर्थात् भुजंगासन का साधन (निरन्तर अभ्यास करने से शरीर की अग्नि (जाठराग्नि) की वृद्धि होती सर्वरोगों का नाश होता है और भुजंगीदेवी (कुण्डलिनी जाग्रत होती है ।

इसी प्रकार एक अन्य आसन के अभ्यास से नि रोगों का नाश होता है और मनुष्य को निम्न लाभ होते हैं

प्लीहागुल्मं ज्वरं कुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ।
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेतस्य दिने दिने ॥

अर्थात् (योगासन का सतत अभ्यास करने से प्लीहा सम्बन्धी विकार गुल्म रोग, ज्वर कुष्ठ तथा कफ-पि (कफ-पित्त जनित विकारों) का विनाश होता है, मनुष्य क दिन प्रतिदिन आरोग्य, बल और पुष्टि प्राप्त होती है ।

इस प्रकार योगाभ्यास चाहे किसी भी दृष्टि किया जाय वह अनुकूल रूप में शरीर और शरीर क स्वास्थ्य को अवश्य ही प्रभावित करता है । यौगि क्रियाओं से जहाँ शरीर स्वास्थ्य का अवश्य बनाता है व अनेक प्रकार के विकारों का निराकरण भी होता है । य बात दूसरी है कि योगीजनों का चरम लक्ष्य परमात साक्षात्कार पूर्वक मोक्ष की प्राप्ति है, किन्तु योग साधना शरीर साधन और आरोग्य की रक्षा रूपी फल उन्हें अनाया ही प्राप्त हो जाता है । गृहस्थ जीवन यापन करते हुए शर के आरोग्य का ध्यान रखने वाले लोगों का उनके सर्वांगी विकास के लिए थोड़े बहुत रूप से नियमित योगाभ्या अवश्य करना चाहिये । यह एक ऐसा अमोघ साधन जिसके द्वारा आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार से शरीर समस्थिति का निर्माण होता है । अनेक यौगिक क्रिय शरीरगत रक्त-संचार को प्रभावित कर रक्त संचार के प्रमु केन्द्र हृदय को स्वस्थ रखने में सहायक होती हैं । हृदय स्वस्थता और रक्त संचार की प्राकृत स्थिति बहुत कु अंशों में मानसिक तनाव को कम करने में सहायक होती जिससे शारीरिक स्वास्थ्य की नींव सुदृढ़ होती है अ मनुष्य पूर्णतः शारीरिक व मानसिक आरोग्य का अनु करता है ।

जीवन का उत्तरार्ध सेवा निवृत्त काल और स्वास्थ्य

वैद्य इन्द्रदेव भट्ट

जीवेम शरद शतम् पश्येम शरद शतम्, श्रृण्याम शरद शतम्।

अर्थात् - स्वस्थ रहते हुए हम सौ वर्ष जीवित रहें, सौ वर्ष देखें और सौ वर्ष सुने ज्ञान प्राप्त करें। इस वेदोक्त वाक्य की सच्चाई क्या है ?

इस सजीव संसार में ईश्वर की सर्वोकृष्ट रचना मनुष्य है। मनुष्य के पास ईश्वर की दी हुई विवेक शक्ति है जो अन्य सजीव प्राणियों में नहीं है। सभी सजीव प्राणी अच्छा, बुरा, ठण्डा, गर्म, हित-अनहित, स्नेह/प्रेम, घृणा, खट्टा/मीठा का ज्ञान रखते हैं किन्तु विवेक शक्ति मनुष्य के सिवाय किसी के पास नहीं है। विवेक त्रिकालदर्शी भूतकाल, वर्तमानकाल और भविष्य (आने वाले समय) प्रत्यक्ष और अनुमान के ज्ञान को कहा जाता है तथा अन्य प्राणियों (जीवों) में बुद्धिज्ञान, भूतकाल व वर्तमान की जानकारी युक्त होता है और भविष्य से अपरिचित। अतः मनुष्य अपने विवेक ज्ञान के सहारे स्वयं को और समाज को व्यवस्थित और सुरक्षित रखता है। मनुष्य की प्राकृतिक रूप से 100 वर्ष की आयु है। जो आज औसतन 60 से 75 वर्ष रह गयी है। यह चिन्ता का विषय है इसके पीछे आज का वातावरण, आहार, आचरण व प्रदूषण मुख्य कारण है। सेवा निवृत्ति काल (रिटायर्डमेन्ट पीरियड) में व्यक्ति को अपने परिवार व कार्यक्षेत्र से मुक्ति/अवकाश मिल जाने से इस अवधि में अपने शारीरिक स्वास्थ्य के प्रति सोचने का विशेष अवसर मिल जाता है। अध्यामिक गुरुजनों को अपने शिष्यों से चिकित्सक को रोगियों से विद्वान को पढ़ने और पढ़ाने से तथा अन्य समाज में व्यापारी, उद्योगपति एवं साधारण गृहस्थ को 60 वर्ष की उम्र के बाद अपना ध्यान अपने स्वास्थ्य के प्रति एकाग्र करना चाहिए। इस समय आयुर्वेद में बताए गए नियमों का पालन करने से स्वास्थ्य और दीर्घायु की प्राप्ति निश्चित है।

सृष्टि में जितने भी सजीव प्राणी पदार्थ हैं उनकी उत्पत्ति, स्थिरता और फिर नष्ट होने की प्रक्रिया प्राकृतिक रूप से निरन्तर होती रहती है। इस प्रक्रिया चक्र को चयापचय (मेटाबोलिज्म) कहा जाता है। सृष्टि में एक सूक्ष्म द्रव्य से स्थूल वस्तु बन जाने का क्रम चलता रहता है। मनुष्यों के लिए भो यही सिद्धान्त शरीर की कोशिकाओं के लिए भी होता है।

शरीर की कोशिकाएं वाल्यावस्था में वृद्धि तथा ज्यों-ज्यों उम्र बढ़ती त्यों-त्यों 60 वर्ष तक की आयु में वृद्धावस्था/बुढ़ापे के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। जैसे अनिद्रा, हृदय दौर्बल्य, रक्त की कमी, कब्ज, भूख की कमी, उच्च रक्तचाप, थकान, खांसी, मनोदैन्यता, उदासी, याददाश्त/स्मृति की कमी आदि। शरीर को सक्षम रखने के लिए आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान में आहार, नींद और ब्रह्मचर्य/संयम, इन तीन सूत्रों को जीवन में तीन खम्भों (बैलेन्सापिलरो) के समान वर्णन किया गया है। इन तीन स्तम्भों - आहार, निद्रा, आचरण के अनुसार त्रिदोष, वात, पित्त और कफ, पंच महाभूत 1-आकाश, 2-वायु, 3-अग्नि/तेज, 4-अप/जल और 5. पृथ्वी। इस प्रकार यह शरीर पंचभूतात्मक त्रिदोष विकार और शरीर के सप्तधातु, शुद्ध स्वच्छ आहार पर निर्भर है। आज का वातावरण, विज्ञान की दृष्टि से आर्थिक विकास की दौड़ में भले ही प्रगति कर ली हो किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से हम अभी काफी पीछे हैं, क्योंकि रोग की चिकित्सा के अनेकों साधन भौतिक रूप से मनुष्य ने अर्जित तो कर लिए हैं किन्तु दीर्घायु-पूर्णायु 100 वर्ष की प्राप्ति का साधन आयुर्वेद अनुसार दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा रसायन के प्रयोग से निश्चित प्राप्त हो सकती है। दीर्घायु अथवा आयु की परिभाषा में लिखा है कि -

''शरीरं जीवयो योग. जीवनं तदावच्छिन्न कालः आयुः''

अर्थात्- शरीर और जीवन के संयोग को जीवन (प्राण) और इसके साथ की समय अवधि को आयु कहते हैं।

आयुर्वेद क्या है ?

पहले हम इसे समझें ताकि दीर्घायु (लौंगलाईफ) को प्राप्त करने की विधा का ज्ञान हो सके।

''आयुषोवेदः आयुर्वेदः आयुर्विदन्ति अनेन इत्यायुर्वेदः ॥

अर्थात् - आयु का ज्ञान तथा आयु का लाभ जिस विज्ञान में हो, वह आयुर्वेद है।

प्रभारी, वैद्य सहायता केन्द्र (बैद्यनाथ रिसर्च फाउन्डेशन), श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, झांसी

स्वस्थ शरीर का परिचय -

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलः क्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

सु०सूत्र० (अ०15)

अर्थात्- शरीर के मूलभूत उत्पाद दोष-वातः पित्त, कफ, जब साम्यावस्था (बैलेन्स) हो, जिस शरीर में पाचन क्रिया समान हों तथा धातुएं रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि मज्जा, शुक्र/वीर्य, समावस्था में हो, इस प्रकार स्वस्थ शरीर होने पर मानसिक अवस्था निश्चय प्रसन्नता का भाव होने से ज्ञानेन्द्रिय, आंख, नाक, जीभ एवं त्वचा का स्पर्शज्ञान और कार्मेन्द्रिय हाथ-पैर, लिंग-उपस्थेन्द्रिय अपने कार्य व्यापार में समक्ष रहें उस अवस्था को स्वस्थ शरीर कहा जाता है ।

स्वस्थ रहने के साधन-उपाय :-

1. आहार
2. निद्रा
3. संयम (ब्रह्मचर्य) आचरण
4. रसायन

आहार-खाद्य वस्तु :-

प्रथम उपाय ''आहार'' को कैसा होना चाहिए इस विषय पर महर्षि चरक कहते हैं ''**हितोहारो एवं पुरुषस्याभिवृद्धिकरो भवति**'' ।

चरक सु० 25

अर्थात् - जो हितकारी खाद्यवस्तु होगी उससे शरीर की वृद्धि होगी, जो शरीर के अवयव निरन्तर दुर्बल हो रहे हैं उनमें क्रमशः धातुओं का पोषण होगा । वह षडरसात्मक ''आहार'' अर्थात् छः स्वादयुक्त भोजन से ही शरीर का पोषण और रोग प्रतिरोधक शक्ति मिलती है । वह छः रस हैं - मधुर रस, अम्ल रस, लवण रस, तिक्त रस, कषाय रस एक अथवा दो स्वाद वाला आहार में चाहे जितने प्रोटीन व विटामिन्स के गुण क्यों न हों जब तक कि शरीर को छः प्रकार के प्राकृतिक स्वाद द्रव्य प्राप्त नहीं होंगे तब तक वह पूर्ण आहार नहीं कहा जा सकता । मात्र घी, दूध, मांस, अण्डों का सेवन स्वास्थ्य के लिए विशेषकर सुपाच्य नहीं हो सकता जब तक फल रस औषधि गुणयुक्त वनस्पति जड़ी-बूटी आदि का समन्वय आहार-औषधि आदि खाद्य वस्तु में सम्मलित न हो ।

षड्रस (छः स्वाद) युक्त आहार द्रव्यों के गुणधर्म :-

1. मधुररस (मीठा स्वाद) युक्त आहार से रक्त धातु वृद्धिकारक पित्त विकार नाशक है । मधुर स्वाद द्रव्य - ईख, शहद, चीनी, गुड़, केला, खजूर, नारियल, घी, इनमें घृत श्रेष्ठ है ।
2. अम्ल रस (खट्टा स्वाद) युक्त द्रव्य से मज्जा धातु का पोषण होता है वात विकार नाशक है । अम्ल द्रव्य - आंवला, अनार, सन्तरा, नींबू, दही आदि, इनमें आंवला श्रेष्ठ है ।
3. लवण रस (नमकीन स्वाद) युक्त आहार द्रव्य से हड्डियों व जोड़ों के लिए उपयुक्त शक्ति व पोषण मिलता है ।

   लवण रस द्रव्य सेन्धा नमक विड् नमक, साम्भर नमक, समुद्र नमक, चूना, सज्जिक्षार, यवक्षार, इनमें सेंधा नमक श्रेष्ठ है ।
4. कटु (चरपरा स्वाद) रस से मांस धातु की वृद्धि व पाचक, कफदोष व वात के रोग, पेट के रोग, गैस वायु नाशक है ।

   कटु रस द्रव्य - हींग, काली मिर्च, सोंठ, लहसुन मूली, इनमें सोंठ अदरक श्रेष्ठ है ।
5. तिक्त रस (कड़वा स्वाद) से चर्बी का पोषण होता है कफपित्त विकार नाशक है । तिक्त रसयुक्त द्रव्य - नीम, चिरायता, मेंथी, गिलोय, कुल्थी, हल्दी, मकोय पित्त पापड़ा, करज, प्रबल इनमें हल्दी व प्रबल श्रेष्ठ है ।
6. कषाय रस (कषैला स्वाद) से शुक्र व स्तन्य (दुग्ध का शोधन और कफदोष का विकार नाशक है । कषा रस द्रव्य - हरड़ (हरीतकी) जामुन, गूलर, पालक चौलाई, खदिर/खैर, सुपारी । इनमें हरीतकी श्रेष्ठ है

उपरोक्त स्वादयुक्त आहार तथा प्रत्येक स्वा (टेस्ट) को समभाग सेवन करने से लाभदायक अ अतियोग अधिक मात्रा विपरीत रीति से प्रयोग जैसे दूध के साथ लवण लेने से हानि होती है । यु

पूर्वक सेवन किया गया आहार स्वास्थ्य वर्धक और रसायन गुण कारक होता है ।

आहार के बाद दूसरा नम्बर (स्तम्भ) निद्रा/नींद का भी स्वस्थ शरीर व दीर्घायु के लिए अपना एक अलग महत्व है ।

जैसे :- **''यदातु मनसिक्लान्ते कर्मातमानः कल्मान्विताः।**
विषयोभ्यो निवन्ततते तदा स्वपित्त मानवः ।

अर्थात् - जब तन व मन में थकावट आ जाती है तब मन के आधीन रहने वाली 10 इन्द्रियां भी थक जाती हैं । परिणाम स्वरूप समस्त इन्द्रियां अपने-अपने विषयों से थक जाने पर मनुष्य विश्राम कर सो जाता है । इस सोने की प्रक्रिया को निद्रा कहते हैं । नींद आने पर सो जाना चाहिए, नींद नहीं रोकना और नींद नशायुक्त दवा का सेवन नहीं करना चाहिए ।

शारीरिक व मानसिक रोगों का कारण :-

वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शारीरो दोषः संग्रह ।
मानसः पुनरूद्दिष्टो रजश्च तम एव च ॥

अर्थात् :- वात, पित्त और कफ ये शारीरिक दोष कहे जाते हैं इनकी अति और न्यून अवस्था (डिसबैलेंस) के कारण शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं ।

रजः और तमः मन के दोष कहे जाते हैं । नींद को तामसी कहा गया है । इसलिए नींद की अधिकता और नींद न आना मानसिक रोग माना जाता है । आरोग्य व सुखी लम्बी उम्र चाहने वाले व्यक्ति के लिए स्वस्थ शरीर सुखी जीवन के लिए समय पर अच्छी नींद आवश्यक है ।

तीसरा (स्तम्भ) नम्बर स्वस्थ सुखी जीवन व दीर्घायु के लिए ब्रह्मचर्य अर्थात संयम व सही आचरण करना आचार संहिता का पालन करना दीर्घायु स्वस्थ शरीर के लिए अनिवार्य है ।

ब्रह्मचर्य का अर्थ स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रातः से जो आचार संहिता अनुसार मन से कर्म व वचन से जो शुभ कार्य किया जाए उसे 'ब्रह्मचर्य' ब्रह्म का अर्थ सत्य, सही भी होता है तथा सत्य नाम ईश्वर का है इसलिए पवित्रता 'सत्यता' दया, धर्म पूर्वक अध्यात्म ज्ञान की प्राप्ति अनिवार्य है । इस प्रकार स्वस्थ शरीर दीर्घायु प्राप्ति का साधन आयुर्वेद में वर्णित मनुष्य की 100 वर्ष की पूर्ण आयु तक ईश्वर की इस सर्वोत्कृष्ट रचना का उपयोग ईश्वर द्वारा निर्मित इस सुन्दर संसार में मनुष्य मानवता का पूर्ण उपयोग मानव सेवा और मानव के अधीन अन्य प्राणियों जीव एवं वनस्पतियों को सुरक्षित रखकर अनन्तकाल तक मनुष्य का अस्तित्व कायम रह सकता है । यदि मानव-मानवता की रक्षा नहीं करेगा तो मनुष्य का अस्तित्व भी ''डायनासोर पशु'' की भांति समाप्त हो सकता है । आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा विज्ञान की वह ज्योतिपुंज है जिसके प्रकाश से विश्व की सम्पूर्ण मानवता का हित समाहित है । हमें इसमें बताए गए स्वास्थ्य के नियमों का पालन कर स्वस्थ और 100 वर्ष की आयु अर्जित करने का मनोबल प्रदान करना चाहिए ।

आयुर्वेद में जीवन संरक्षण और लम्बी उम्र (लौंगएज) की प्राप्ति हेतु आहार व नींद के अतिरिक्त दिनचर्या, ऋतुचर्या, जल और शुद्ध वायु (ऑक्सीजन) के महत्व के सन्दर्भ में जितना विस्तार पूर्वक वर्णन है उतना विश्व की किसी भी विज्ञान विधा में नहीं है । महर्षि चरक इस तथ्य को एक सूत्र में बताते हैं कि '**यस्य देशस्य यज्जन्तुतस्योषधहितम्**'

अर्थात्- जो प्राणी या जीव मनुष्य आदि जिस जलवायु - वातावरण और देश में जन्म लेता है उसको वहीं का अन्न, आहार, जल, वायु और औषधियां विशेष हितकारी होती हैं ।

4 - रसायन - शारीरिक स्वास्थ्य का चौथा साधन - रोग प्रतिरोधात्मक औषधि योग का विवेचन भारतीय चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद) में रसायन की परिभाषा इस प्रकार की गयी है -

''यज्जराव्याधि विध्वंसि वयः स्तम्भकारं तथा ।
चक्षुण्यं बृहणं बृष्यं भेषज तद्रसायनम् ॥

अर्थात् - जो औषधि योग अथवा औषध वृद्धावस्था दौर्बल्य तथा रोगों को शरीर से दूर कर देने वाला, नेत्रों के लिए हितकारी शरीर का पोषण तथा वीर्यवर्धन (शुक्र धातु की पुष्टि) करता है, उसे रसायन कहते हैं ।

बढ़ती आयु में रसायन योग औषधियों जैसे आंवला,

हरीतकी, मुलैठी, अश्वगंधा, मूसली, शतावरी, भृंगराज, ब्राह्मी का स्वरस, गुडूची, शंखपुष्पी मूल तथा पुष्पों का स्वरस इनमें से किसी एक का प्रातःकाल दूध के साथ प्रयोग करने से आयु को बढ़ाने वाला व रोग नाशक बल की वृद्धि होती है । उपरोक्त में शंखपुष्पी विशेषकर मेधाशक्ति स्मृति वर्धक रसायन का कार्य करती है । ब्राह्मी के अतिरिक्त मंजीठ भी रसायन गुणकारक है । बढ़ती उम्र में सर्वप्रथम स्नायुमण्डल नर्वस सिस्टम की दुर्बलता बढ़ती है । इसलिए अश्वगंधा, ब्राह्मी, मूसली, आंवला श्रेष्ठ है । इसी प्रकार त्रिफला शक्कर के साथ सेवन करने से रसायनगुण कारक है । आयुर्वेद शास्त्र में खनिज द्रव्यों में सर्वोत्तम रसायन - स्वर्ण, रौप्य/चांदी, मोती, प्रवाल, लौह भस्म को कहा गया है । श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि० ने आयुर्वेद शास्त्र में वर्णित रसायन गुण प्रधान वनौषधि जड़ी-बूटी एवं आंवला, केशर शोधित स्वर्ण भस्म एवं रौप्य/चांदी भस्म से मिश्रित कपाण्ड केसरीकल्प की प्रस्तुति की है । 750 बैद्यनाथ आयुर्वेद औषधि उत्पादनों में से एक ''केसरीकल्प'' आयुर्वेद में वर्णित रसायन गुणपरक औषधि द्रव्यों का प्राचीनता में ''मार्डन साइन्स'' का संमन्वय सिद्धान्त के तहत तैयार किया गया है ।

बैद्यनाथ केसरीकल्प रोगानुसार विशेष गुण -

दुर्बलता, थकान एवं अरुचिनाशक, रोग प्रतिकारक शक्तिवर्धक बैद्यनाथ केसरीकल्प सेवन मात्रा - 10 से 15 ग्राम (एक से दो छोटा चम्मच) प्रतिदिन दो बार दूध के साथ अथवा कोष्ण जल (गुनगुना जल) के साथ लें ।

उपलब्धता - 1 कि०ग्रा० 500 ग्राम (जैली/अवलेह) प्लास्टिक जार में ।

रोगानुसार विशेष गुण -

आमलकी रसायन अम्लपित्त, भूख की कमी, अरुचि मिटाता है और प्राकृतिक सुधा तत्व (कैल्शियम की पूर्त्ति होती है) जिस वजह से त्वचा, नाखून, दांतों एवं सिर के बालों सम्बन्धी दोष मिटते हैं ।

आमलकी रसायन क्या है ?

आंवला चूर्ण में 10 गुना ताजा आंवला स्वरस में तैयार योग को आमलकी रसायन कहा गया है ।

सेवन मात्रा - 5 से 10 ग्राम (एक से दो चम्मच) पाउडर/ग्रेन्यूल्स दूध अथवा शीतल जल के साथ लें ।

उपलब्धता - 120 ग्राम प्लास्टिक डिब्बी में ।

बढ़ती उम्र में रसायन गुण प्रधान औषधि आहार का सेवन अमृत तुल्य होता है ।

बैद्यनाथ

अश्वगंधारिष्ट

मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि आदि में लाभकारी

वर्तमान परिवेश में प्रवाहिका एवं उसकी चिकित्सा

डा० विजय कुमार राय, एम०डी० (आयु.) काय चिकित्सा

वर्तमान परिवेश में जब हमारी जीवन शैली तेजी ो बदल रही है और फास्ट फूड सभ्यता अपने चरम पर है, ही अन्नवह एवं पुरीषवह स्रोतस की व्याधियाँ भी हर घर ें अपना स्थान बना चुकी हैं । उदर शूल, अम्ल पित्त, तिसार, विसूचिका, बिवन्ध, परिणाम शूल, ग्रहणी जैसी याधियाँ हमारे बदलते खान-पान, रहन-सहन का ही रिणाम है और इनका मुख्य कारण मन्दाग्नि है ।

प्रवाहिका पुरीषवह स्रोतस की एक मुख्य व्याधि ै । इसका स्पष्ट वर्णन संहिता काल से लेकर आधुनिक काल तक हर जगह प्राप्त होता है । प्रवाहिका को वाग्भट्ट ो बिंबिसी, हारीत ने इसे निश्चारक एवं पराशर ने इसे ान्त्रग्रंथि कहा है । इस व्याधि को शुद्ध रूप से स्वतंत्र याधि के रूप में माधव, शार्ङ्गधर, भाव प्रकाश आदि ने र्णित किया है ।

‘‘वायुः प्रवृद्धो निचितं बलासं नुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।
वाहतोऽल्पं बहु मलाक्तं प्रवाहिकां ता प्रवदन्ति तज्ज्ञा ।''

(मा०नि० 3/21)

कुपित वायु कफ को नीचे की तरफ ले आती है ौर व्यक्ति बार-बार कफ युक्त अल्प मल को प्रवाहण के ाथ विसर्जित करता है ।

सर्वप्रथम मिथ्या आहार-विहार से अग्निमांद्य होता एवं कफ की वृद्धि होती है, साम कफ पिच्छिल होता और आन्तों में पिच्छिलता के कारण चिपक जाता है, इस वरोध से वायु भी कुपित होती है । कुपित हुयी वायु कफ ो पुरीष के साथ बाहर निकालने का बार-बार प्रयास रती है । इसी कारण प्रवाहण करना पड़ता है जिससे कैंची काटने जैसी पीड़ा होती है ।

कफ (आँव) युक्त मल का अल्प मात्रा में वाहण के साथ बार-बार आना ही प्रवाहिका का प्रत्यात्म क्षण हैं ।

प्रवाहिका के निदानों में मिथ्या आहार-विहार, ट अम्बु पान, कृमि आदि का भी उल्लेख है जो वर्तमान प्रवाहिका रोग के मुख्य कारण बने हुए हैं ।

प्रवाहिका स्वतंत्र एवं परतंत्र भेद से दो प्रकार की होती है । स्वतंत्र प्रवाहिका स्व निदानों से होती है परन्तु परतंत्र प्रवाहिका अतिसार आदि के बाद होती है । दोषज आधार पर इसे चार प्रकार का माना जाता है । वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज एवं रक्तज प्रवाहिका । अगर सभी जगह वर्णित प्रवाहिका के लक्षणों का अध्ययन करें तो मुख्य लक्षण इस प्रकार से सामने आते हैं :-

- बार-बार मल त्याग की इच्छा ।
- मल के साथ कफ (आंव Mucous) का आना ।
- मल के साथ रक्त का आना ।
- प्रवाहण एवं पेट में मरोड़ ।
- अपान वायु का आवाज के साथ आना ।
- गुदा में जलन होना ।
- मल का आम होना एवं दुर्गन्ध युक्त होना ।

प्रवाहिका को आधुनिक परिप्रेक्ष में देखें तो इसे ड्रिसेन्ट्री (Dysentery) माना जाता है । क्योंकि दोनों के लक्षण एवं कारण (मिथ्या आहार, दुष्ट अम्बुपान Contaminated Food and water, कृमि - Parasite) आदि में समानता पायी जाती है । डिसेन्ट्री (Dysentery) मुख्यतः दो प्रकार की होती है - अमीबिक डिसेन्ट्री एवं वैक्टिरीयल डिसेन्ट्री । इन दोनों के लक्षण प्रवाहिका से समानता रखते हैं । परन्तु हाल के समय से इसे अमीबिक डिसेन्ट्री के ज्यादा करीब माना जाता है क्योंकि प्रवाहिका के निदान में भी मिथ्या आहार, दूषित जल एवं कृमि को माना गया है । इण्ट अमीबा हिस्टोलीटिका (E. Histolytica) और आ० हारित के सूचिमुख कृमि (आभ्यान्तर कृमि) के स्वभाव, रचना एवं उपद्रवों में भी अत्यधिक समानता है जो इस प्रकार है -

‘‘सूचिवत् तुद्यतेऽन्त्राणि रक्तचैवातिसार्यते ।
यकृद्धा भक्षयन्त्यन्ये रक्तं वा वमतें भृशम् ॥''
‘‘क्लेदो मुखेऽरूचि जाऽयं मन्दाग्नित्वं च वेपथुः ।
क्षुतृष्णा च ज्वरोज्ञेयेः सूचीमुत्व कृमि रूजा ॥''

(हा०सं०/तृ०/5/15)

आधुनिक चिकित्सा जगत में अमिबीक डिसेन्ट्री (Amoebic Dysentery) का कारण इण्ट अमिबा

लेक्चरर, चौ० देवीलाल कालेज ऑफ आयुर्वेद, जगाधरी, हरियाणा

हिस्टोलीटिका (Entamoeba Histolytica) को माना जाता है । यह व्याधि विकासशील देशों के साथ-साथ विकसित देशों में भी एक मुख उदर रोग (Intestinal disease) बनी हुयी है । ऐसा माना जाता है कि भारत में 15% जनसंख्या इससे प्रभावित है । कुछ में इसके लक्षण प्रगट होते हैं, कुछ इसके वाहक बने रहते हैं । यह रोग मुख्यत: दूषित - खाद्य एवं पेय पदार्थो (Contaminated food and water) के सेवन से होता है । इस व्याधि के संक्रमण का चक्र (Mode of Transmission) गुद एवं मुख द्वारा चलता रहता है (Faecal - oral route) यह रोग वहां ज्यादा फैलता है जहाँ पर खान-पान एवं रहन-सहन का स्तर निम्न है । हरे पत्ते वाले शाक का प्रयोग करने वालों को यह ज्यादा होता है क्योंकि हरी सब्जियों के साथ इण्ट अमीबा के सीष्ट (Cyst) भी शरीर में प्रवेश कर जाते हैं । इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रख कर भैषज्य रत्नावली में अतिसार आदि में हरे शाक (सब्जियों) का निषेध किया गया है ।

**''सस्नेहं मृगमदोऽखिल पत्रशाक क्षारः सराणि सकलानि पुनर्नवा च ।
स्वारूकं लवणाम्लमापि प्रकोपवर्गो अतिसार गद पीडितमाबेषु ॥''**

(भै०र० 7/191-192)

अमिबीक डिसेन्ट्री के जो सामान्य लक्षण है वो इस प्रकार हैं :-

मृदु अवस्था (Mild grade) :-

* मीठा-मीठा दर्द उदर के निचले हिस्से में दायीं तरफ बने रहना ।
* दो से छ: बार तक मल त्याग के लिए जाना ।
* मल त्याग के समय टेनेस्मस (Tenesmus) ।
* पुरीष का थोड़ा दुर्गंध युक्त होना ।
* पुरीष का म्युकस (Mucous) के साथ निकलना ।

मध्यावस्था (Moderate Grade):-

* तेज मरोड़ का होना ।
* छ: से बीस बार तक मल त्याग के लिए जाना ।
* पुरीष रक्त युक्त हो सकता है ।
* उदर पर दबाव देने पर दायीं तरफ या कहीं भी दर्द का होना ।
* कमजोरी का अनुभव एवं अरुचि ।
* अन्य मृदु अवस्था के लक्षणों का होना ।

उग्रावस्था (Fulminating Grade):-

* अचानक तेज मरोड़ के साथ दर्द का होना ।
* बीस बार से अधिक बार मल त्याग करना ।
* पुरीष का गाढ़े रक्त एवं मवाद (Pus) के साथ आना
* ज्वर का चढ़ना, सामान्यत: 104° F से 105° F तक
* यकृत वृद्धि का होना ।
* उदर प्रदेश का कड़ा बना रहना ।
* विषाक्तता (Toximia) के लक्षण ।
* अत्यधिक कमजोरी ।
* मृत्यु भी सम्भव है ।

आम तौर पर कुछ एलोपैथिक दवाएं इतना प्रचल में हैं कि प्रवाहिका (E. Histolytica) होते ही लोग स्वत इसका सेवन कर लेते हैं जैसे मेट्रोनिडाजो (Metronidazoles) और उन्हें कष्ट में आराम हो जाता परन्तु रोग जड़ से समाप्त नहीं होता और मृदु रूप (Mild) बना रहता है । इसी कारण से इस व्याधि क Walking dysentery भी कहते हैं ।

इस व्याधि को अगर समय रहते न रोका जाए यह यकृत में घाव (Abscess) बना देती है, आँतों में क्ष (Ulcer) कर देती है । औदर्या कला शोथ (Peritonitics हो जाता है और रोगी की मृत्यु तक हो जाती है ।

आधुनिक युग में अनेक एलोपैथिक औषधियाँ जो प्रवाहिका (E. Histolytica) की चिकित्सा में का आती हैं परन्तु ये औषधियाँ स्वास्थ्य के लिए नुकसानदाय भी हैं, कुछ औषधियां के कवर पर तो स्पष्ट लिखा रह है कि यह औषध अधिक समय तक प्रयोग करने कार्सिनोजेनिक (Carcinogenic) और अन्य विषाक्त प्रभ उत्पन्न करती है । ऐसी परिस्थितियों में आयुर्वेद एक सफल एवं निरापद चिकित्सा के रूप में हमारे सामने भी खड़ा है ।

चिकित्सा - प्रवाहिका (Amoebic Dysento की चिकित्सा में सर्व प्रथम रोगी को लंघन कराते हैं

* दीपन-पाचन औषधियों का प्रयोग ।

* वातानुलोमक द्रव्यों का प्रयोग एवं अनुवासन वस्ति का प्रयोग करने से टेनेस्मस (Tenesmus) एवं वेदना का शमन होता है ।
* लंघन, दीपन-पाचन औषधि चिकित्सा के बाद संग्राही औषधि का प्रयोग करते हैं ।
* रोगी के बल को बढ़ाना चाहिए ।
* उबाल कर शीत किया हुआ जल पान करने को दें ।
* हरी पत्तेदार सब्जियों को एवं सलाद को भलीभाँति धोकर प्रयोग करें ।
* लघु एवं अग्निवर्धक आहार का प्रयोग करें ।

एकल द्रव्य चिकित्सा :-

* कुटज, इद्रयव ।
* बिल्व (अपक्व फल मज्जा) ।
* दाडिम ।
* कपित्थ ।
* अजमोदा ।
* अहिफेन आदि ।

संयुक्त द्रव्य चिकित्सा :-

चूर्ण : - जातिफलादि चूर्ण, वृ० गंगाधर चूर्ण, बिल्वादि चूर्ण, भूनिम्बादि चूर्ण आदि ।

वटी :- कुटज घन वटी, दुग्ध वटी, चित्रकादि वटी, जातिफलादि वटी आदि ।

अवलेह :-शुण्ठ्यादि लेह, कुटजाटक लेह, बालविल्वादि लेह आदि ।

आसव-अरिष्ट :- अहिफेनासव, कुटजारिष्ट आदि ।

रसौषधि एवं लौह :- भुवनेश्वर रस, वृ० गगन सुन्दर रस, पूर्ण चन्द्रोदय रस, कनाड्यम् लौह आदि ।

बस्ति चिकित्सा :- पिच्छा बस्ति, अनुवासन बस्ति ।

एक लाभकारी व्यवस्था पत्र :-

1. भूनिम्वादि चूर्ण - 2 ग्राम
   रसौत चूर्ण - 1 ग्राम
   बिल्वादि चूर्ण - 2 ग्राम
   बकायन बीज चूर्ण - 1 ग्राम
   पोस्ता दाना चूर्ण - 1 ग्राम
   1 x 3 बार गुनगुने पानी से
2. अमीबिका टैबलेट - 2 गोली ।
   कुटजघ्न वटी - 2 गोली
   दोनों एक-एक गोली 2 बार गुनगुने जल से ।
3. कुटजारिष्ट - 4 चम्मच समान जल से भोजनोत्तर दो बार ।
4. ईसबगोल चूर्ण - 2 चम्मच रात में सोने से पहले जल से लें ।

* अगर रक्तज प्रवाहिका है तो मोचरस, नागकेशर का योग नं० 1 के साथ प्रयोग कर सकते हैं ।
* रक्ताल्पता से बचाने के लिए लौह के योग का प्रयोग करें ।
* प्रवाहिका अगर नयी है तो इस व्यवस्था पत्र को दो सप्ताह और प्रवाहिका पुरानी है तो एक माह से तीन माह तक प्रयोग करें, प्रवाहिका (Amoebic Dysentery = Intestinal Ambotiasis) जड़ से समाप्त हो जायगी ।

बैद्यनाथ
पंचसकार चूर्ण
पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

तनाव : कारण, लक्षण व उपचार

डा० राजीव गुप्ता

कोई भी मनुष्य पूर्णतः संतुष्ट नहीं होता है, क्योंकि उसकी इच्छाओं और आकांक्षाओं का अन्त नहीं है । हां, यह सही है कि इच्छाएं और आकांक्षाएं अलग-अलग व्यक्तियों में अलग-अलग हो सकती हैं । शायद पूर्णतः संतुष्ट होना मनुष्य की प्रवृत्ति में शामिल नहीं है, इसीलिए जेम्स स्टुअर्ट मिल ने कहा है -

'संतुष्ट सुअर की अपेक्षा असंतुष्ट मानव का जीवन बेहतर है ।'

जब मनुष्य की कोई इच्छा पूरी नहीं होती और उसकी पूर्ति में बाधा आती है, तो वह तनावग्रस्त हो जाता है । वैसे भी मनुष्य की इच्छाएं असीमित हैं और प्रत्येक इच्छा पूर्ण होना संभव भी नहीं है, फिर भी मनुष्य अपनी अधिक से अधिक इच्छाएं पूरी करने की चाहत में भाग-दौड़ करता रहता है और उसे नित्य नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है । दरअसल जीवन एक चुनौती है और चुनौती का सामना तो हर एक मनुष्य के जीवन में रहता ै, परन्तु जब यह तनाव अधिक बढ़ जाए और सहनशक्ति े परे हो जाए तो कई प्रकार की मनौवैज्ञानिक एवं नोदैहिक समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं ।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार हृदय रोगों के ाद मानसिक तनाव की बीमारी दूसरे नंबर की विश्वव्यापी ोमारी है । जर्मनी में तो इस बीमारी को राष्ट्रीय रोग के ्प में जाना जाता है ।

यों होता है कोई तनावग्रस्त

अलग-अलग व्यक्तियों में स्वभाव, सहन करने ी क्षमता, शारीरिक क्षमता, आचार-विचार तथा रहन-सहन पर्याप्त अंतर होता है । जरूरी नहीं कि एक व्यक्ति जिस त से प्रभावित हो, उससे दूसरा भी हो । कोई व्यक्ति वुक होता है, तो कोई कठोर हृदय । कोई व्यक्ति थोड़े ही संतुष्ट हो जाता है, तो कोई करोड़ों की संपत्ति जुटा र भी असंतुष्ट ही रहता है ।

आजकल हर एक व्यक्ति अपनी क्षमता से अधिक ा चाहता है, इसलिए वह यह भी भूल जाता है कि क्या ो है और क्या गलत है । उसकी प्रगति के पथ पर इतने टे बिखरे हैं कि मंजिल तक पहुंचने से पहले उसे कई बार खुद को संभालना पड़ता है । कभी-कभी जब ये बाधाएं अधिक परेशान करने लगती हैं तो व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है । इसके अतिरिक्त घर-परिवार, समाज, देश में भी ऐसा घटित होता रहता है जो व्यक्ति विशेष को प्रभावित करके तनावग्रस्त कर सकता है । तनाव के मुख्य कारण इस प्रकार हो सकते हैं -

- हर क्षेत्र में कड़ी प्रतिस्पर्द्धा व प्रतिद्वंद्वात्मक दिनचर्या ।
- बेरोजगारी की समस्या ।
- कैरियर बनाने की चिन्ता ।
- किसी लम्बी बीमारी के कारण ।
- यौन रोगों के कारण ।
- पति-पत्नी के बीच हुए मतभेद के कारण ।
- परिवार में अभिभावक एवं किशोरों के बीच मनमुटाव होना ।
- कार्यालय में अधिक कार्य होने या अफसर, सहकर्मियों अथवा अधीनस्थों के साथ संतोषजनक संतुलन और तालमेल न हो पाने के कारण ।
- आर्थिक तंगी के कारण ।
- परिवार के किसी व्यक्ति की आकस्मिक मृत्यु, व्यापार में घाटा या घर में चोरी हो जाने के कारण ।

इस प्रकार देखा जाए तो तनाव के कारण अनेक हैं । यह व्यक्ति व्यक्ति पर निर्भर है कि कौन-सी घटना उसे प्रभावित करती है ।

तनाव के लक्षण

जब तनाब लंबी अवधि तक बना रहता है तो व्यक्ति के नाड़ी तंत्र पर प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण चिन्ता, अवसाद, हिस्टीरिया, संवेगात्मक अस्थिरता या अभद्र व अवांछित व्यवहार बढ़ जाता है । तनाव अधिक होने पर यदि अग्रलिखित लक्षणों में से चार या इससे अधिक दो या दो से अधिक सप्ताह तक लगातार बने रहें तो तुरंत मनोचिकित्सक से मिलना चाहिए । ये लक्षण निम्न प्रकार से हैं :-

- सिरदर्द या सिर में भारीपन ।
- सिर में जलन की अनुभूति ।

5/11 बाग कूंचा, फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश - 209625

- ठीक
- सारे
- भूख
- सामा
- विस्मृ
  पाना
- ध्वनि
- शिथि
  अंगुलि
- घबड़
  आना
- जल्दी
- ऊर्जा
- कभी

तनाव का

जीवन शै
कारगर
अधिक
बार-बार
दवाइयों
धीरे-धीरे
की जग
दुष्प्रभाव

बै

- ठीक से नींद न आना ।
- सारे शरीर में दर्द और खिंचाव ।
- भूख न लगना एवं वजन कम होते जाना ।
- सामान्य रूप से कमजोरी, तनाव व खिंचाव ।
- विस्मृति तथा किसी बात पर ध्यान न केन्द्रित कर पाना ।
- ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता ।
- शिथिलता व उदासीनता । हथेलियों में पसीना आना । अंगुलियों में कंपन होना ।
- घबड़ाहट या भय । चिड़चिड़ाहट या तुरन्त क्रोध आना । दुःखानुभूति और खिन्नता ।
- ज़ल्दी-जल्दी मानसिक रूप से थक जाना ।
- ऊर्जा, जोश व आत्मविश्वास की कमी ।
- कभी-कभी दिल की धड़कनों का वेग बढ़ जाना ।

तनाव का उपचार :-

अंग्रेजी दवाइयों की सेवन की अपेक्षा अपनी जीवन शैली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करके तनाव से अधिक कारगर ढंग से निपटा जा सकता है । अंग्रेजी दवाइयां अधिक लम्बे समय तक प्रभावशाली नहीं रहती हैं, जिससे बार-बार इनकी मात्रा को बढ़ाना पड़ता है । परिणामस्वरूप दवाइयों के हानिकारक प्रभाव भी सामने आते हैं एवं धीरे-धीरे इनकी आदत पड़ती जाती है । अंग्रेजी दवाइयों की जगह आयुर्वेदिक औषधियां अधिक लाभकारी व दुष्प्रभाव से मुक्त होती हैं ।

अपनी दिनचर्या में बदलाव लाएं, व्यर्थ की प्रतिस्पर्धाएं, अतिमहत्त्वाकांक्षाएं एवं बहुत अधिक व्यस्तता तनाव को बढ़ाती है, इनसे बचें ।

इस भागदौड़ भरे व्यस्त जीवन में कुछ क्षण फुरसत के अपने लिए भी निकालें । अपने बारे में सोचें, अपने शौक पूरे करें, नियम से भोजन करें एवं समय से सो जाएं । ये सब किसी हद तक तनाव कम करके आपको ऊर्जा से भर देंगे ।

दूसरों से सद्व्यवहार करें, दोस्तों के साथ घुले-मिलें, बच्चों के साथ कुछ समय व्यतीत करें और उनकी तोतली बातों का आनन्द लें । व्यर्थ के बाद-विवाद, मारपीट, लड़ाई-झगड़ा, गाली-गलौज और कोर्ट-कचहरी से हमेशा बचें ।

भरपूर गहरी नींद भी तनाव दूर करने की अच्छी दवा है । अच्छी नींद के लिए कमरा साफ-सुथरा और हवादार होना चाहिए ।

योग की कुछ क्रियाएं तनाव के लिए बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकती हैं । योग में कुशल किसी व्यक्ति से इन्हें अच्छी तरह से सीखकर नियमित रूप से करें । निश्चित ही तनाव दूर होगा ।

यदि औषधियों का सेवन ही करना है तो आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन करें । ये तनाव दूर करने में कारगर होती हैं, साथ ही साथ किसी भी दुष्प्रभाव को जन्म नहीं देती । अश्वगंधा, ब्राह्मी, तगर एवं शंखपुष्पी आदि कुछ ऐसी ही औषधियां हैं जो तनाव को दूर करती हैं ।

बैद्यनाथ
लवणभास्कर चूर्ण
मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

कैसे करें क्वाथ (काढ़ा) निर्माण

डॉ० गोविन्द शुक्ला, एम.डी. (रस शास्त्र

वह्नौ तु क्वथितं द्रव्यं श्रृतमाहुश्चिकित्सका

(च०सू० 4/25)

किसी एक अथवा एक से अधिक वानस्पतिक औषधीय द्रव्यों को स्वच्छ जल के साथ अग्नि पर उबाल कर औषध के सार भाग को द्रव रूप में ग्रहण करने की प्रक्रिया को क्वाथ कहते हैं । श्रृत, निर्यूह तथा कषाय क्वाथ के पर्याय है । आम भाषा में इसे 'काढ़ा' कहते है । यूनानी में जोसांदा, बंगाली में पाचन तथा अंग्रेजी में Decoction कहते हैं ।

चिकित्सकों द्वारा प्राय: औषध व्यवस्था पत्र में क्वाथ ग्रहण करने का उल्लेख किया जाता है तथा परम्परागत चिकित्सा के रूप में भी विभिन्न रोगों में घरेलू उपचार के लिये विभिन्न द्रव्यों का क्वाथ निर्माण करके स्वतंत्र औषध अथवा अनुपान-सहपान के रूप में प्रयोग किया जाता है ।

क्वाथ कल्पना एक विशिष्ट आयुर्वेदीय मौलिक औषध निर्माण प्रक्रिया है, जिसके द्वारा औषध द्रव्य के सम्पूर्ण कार्मुक तत्व (सारभाग) को द्रव रूप में प्राप्त किया जाता है । निर्माण प्रक्रिया की उचित जानकारी के अभाव में औषध का सार भाग पूर्णतया प्राप्त नहीं होता है अथवा नष्ट हो जाता है । परिणामरूवरूप रोग का निवारण नहीं होता है ।

इसलिए क्वाथ निर्माण विधि का उपयुक्त ज्ञान होना आवश्यक है ।

(A) क्वाथ निर्माण सम्बंधी आवश्यक जानकारी एवं सावधानी :-

औषध द्रव्य का चयन :-

जिन औषध द्रव्यों का क्वाथ निर्माण करना हो वे पूर्णतया परिपक्व एवं रस, गुण, वीर्य (कार्यकारी शक्ति) सम्पन्न होने चाहिए तथा कीट, धूल, ऋतुकाल आदि के प्रभाव से विकृत नहीं होने चाहिए ।

शोधन :- क्वाथ निर्माण से पूर्व औषधीय द्रव्यों में उपस्थित अशुद्धियों का उपयुक्त शोधन करना चाहिए । जै अवांधनीय द्रव्यों को पृथक करना धूल-मिट्टी आदि क जल से प्रक्षालित करके दूर करना इत्यादि ।

निर्माण हेतु जल की मात्रा का निर्धारण :-

क्वाथ निर्माण हेतु उपयुक्त जल की मात्रा ग्रहण करनी चाहिए । जल की मात्रा द्रव्य के संघात एवं मात्रा प निर्भर करती है ।

* मृदु द्रव्य जैसे मुनक्का, अमलतास आदि के लिये 4 गुना, कठिन द्रव्य जैसे हरीतकी, आमलकी, निम्ब त्वक, अर्जुन त्वक आदि के लिये 8 गुना तथा अत्यन्त कठिन द्रव्य जैसे विजयसार, दारुहरिद्रा आदि के लिये 16 गुना जल ग्रहण करना चाहिए ।
* द्रव्य की मात्रा के अनुसार 1 कर्ष से लेकर 1 पल (व्यावहारिक रूप से 10 ग्राम से 50 ग्राम तक) औषध द्रव्य के क्वाथ निर्माण हेतु 16 गुना, 1 पल से अधिक तथा 1 कुड़व तक (व्यावहारिक रूप से 50 ग्राम से अधिक तथा 200 ग्राम तक) 8 गुना एवं 1 कुड़व (200 ग्राम) से अधिक के लिये 4 गुना जल ग्रहण करना चाहिए ।
* मधुर एवं कुएं का जल ग्रहण करना चाहिए । नदी, तालाब तथा क्षारीय जल का प्रयोग नहीं करना चाहिए।
* सूखे द्रव्यों का यवकूट (जौ के समान) चूर्ण तथा आद्र द्रव्यों को काटकर छोटे-छोटे टुकड़ों में परिवर्तित करना चाहिए ।
* क्वाथ निर्माण करने से लगभग 10-12 घण्टे पूर्व औषध द्रव्य को जल में रखना चाहिए ।
* निर्माण हेतु ताम्र, पीतल का कलई युक्त अथवा लोहा, मिट्टी आदि का उपयुक्त प्रमाण का पाक पात्र होन चाहिए, उपयुक्त पात्र के अभाव में औषध द्रव्यों की पात्र से रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप निर्मित विकृत क्वाथ हानिकारक होता है ।
* मंदाग्नि का प्रयोग करना चाहिए ।
* पाक पात्र का मुख ढकना नहीं चाहिए ।
* औषध द्रव्यों को चम्मच से चलाते रहना चाहिए ।

लेक्चरर - रस शास्त्र एवं भैषज्य कल्पना विभाग, श्री बाबा मस्तनाथ आयु०महा० अस्थल बोहर, रोहतक

- * अवशिष्ट निर्मित क्वाथ की मात्रा कठिन द्रव्यों से अष्टमांश तथा मृदु द्रव्यों से चतुर्थांश प्राप्त करनी चाहिए ।
- * क्वाथ को सदैव हल्का गुनगुना ही सेवन करना चाहिए ।
- * सुगंधित एवं तैलीयांश युक्त द्रव्यों का क्वाथ निर्माण नहीं करना चाहिए क्योंकि इसकी कार्मुक शक्ति वाष्प के द्वारा उड़कर नष्ट हो जाती है । फलस्वरूप प्राप्त क्वाथ गुणहीन, गंधहीन तथा क्रियाहीन होता है ।
- * शीतल हुए क्वाथ को पुनः गर्म करके प्रयोग नहीं करना चाहिए ।
- * अधिक पाक किया हुआ, गाढ़ा दुर्गन्धित तथा गहरे रक्त एवं नील वर्ण के क्वाथ का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

क्वाथ की मात्रा :-

रोग की अवस्था तथा रोगी के बल एवं आयु के आधार पर 1 पल से 2 पल (50 मिली से 100 मिली) प्रयोग की जाती है ।

प्रक्षेप द्रव्य :-

निर्मित क्वाथ में ऊपर से अन्य द्रव्यों को मिलाने की प्रक्रिया को प्रक्षेप कहते हैं । इनका प्रयोग आवश्यकतानुसार किया जाता है :-

- * जीरा, लवण, क्षार, शिलाजीत, गुग्गुलु आदि चूर्ण 4 ग्राम तथा दूध, घी, तैल तथा गोमूत्र आदि द्रव पदार्थ 12 ग्राम डालना चाहिए ।
- * शर्करा तथा मधु का प्रयोग दोषानुसार करना चाहिए ।

	वतिक रोग	पैत्तिक रोग	कफज रोग
शर्करा	1/4	1/8	1/16
मधु (शहद)	1/16	1/8	1/4

पल-पल जीवन में आनन्द अविरल
जब उत्साह हो जीने का,
जब हर पल आप जीना चाहें भरपूर
बैद्यनाथ का वीटा-एक्स गोल्ड ।
स्वर्ण भस्म (शुद्ध सोना) की ताकत से भरपूर ।
जोश के लिए, उमंग के लिए
आनंद से भरपूर जीवन के लिए

बैद्यनाथ
वीटा-एक्स
गोल्ड

स्वर्ण भस्म की ताकत से भरपूर

बाल्यावस्था में कुकुर खांसी का प्रकोप - एक समीक्षा

[1]कु० सरजा रानी [2]डा० सुरेश चन्द, एम.डी. [3]डा० नरेश कुमार गुप्ता

सामान्य परिचय:- घनी आबादी वाली बस्तियों में पांच वर्ष से कम आयु वर्ग के बालकों विशेषत: 2-3 वर्ष से कम आयु वाले शिशुओं में शीत-ऋतु तथा वसन्त ऋतु अर्थात् (फरवरी-मार्च) में फैलने वाला यह जनपद व्यापक तीव्र औपसर्गिक रोग है, जो कभी-कभी घातक एवं उपद्रवकारी हो सकता है । इसे कुकुर-खांसी, काली खांसी तथा अंग्रेजी भाषा में परटुसिस (Pertussis) तथा हूपिंग कफ आदि नामों से जाना जाता है ।

इस रोग में कुछ समय तक सूखी खांसी हो जाती है तथा इस समय रोगी को श्वास लेने का समय नहीं मिलता है । रोगी के श्वास लेने पर गंभीर ऊंचा शब्द निकलता है जो कुत्ते के भूंकने के समान मिलता-जुलता होता है । इसीलिए इसे कुकुर खांसी संज्ञा दी गई है । रोगी जब बारम्बार श्वास लेता है, तब श्वास को अपनी पूरी शक्ति से अन्दर की ओर खींचता है, किन्तु श्वासनली के संकुचित होने तथा वायु की नली में एकाएक प्रवेश करने से एक सूखा शब्द हू-हू-हूप होता है, इसी शब्द के फलस्वरूप इसे हूपिंग कफ कहते हैं ।

इस रोग का आक्रमण बाल्यावस्था में दो से बारह वर्ष तक की आयु में अधिक होता है । युवा व्यक्तियों में भी यदा-कदा यह रोग देखा जाता है । गांवों की अपेक्षा यह शहरों में अधिक होता है । शवच्छेद करने पर श्वासनली में शोथ के लक्षण मिलते हैं तथा अन्य कोई लक्षण नहीं मिलता है । यह एक सांसर्गिक रोग है । इसका संचय काल 7 से 14 दिन का है ।

निदान (कारण):- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार इस रोग का मुख्य कारण हीमोफाइलस परटुटिस नामक 1/2 माइक्रोन व्यास का ग्राम निगेटिव जीवाणु है । यह जीवाणु रोगी द्वारा प्रयोग में लाए गए रूमाल, वस्त्र आदि में सदैव रहता है । इस रोग का संक्रमण रोगी के साथ उठने, बैठने वाले व्यक्ति से होता है । रोगी के थूक, कफ और श्वास से निकला हुआ जीवाणु उसके साथ रहने वाले व्यक्ति के श्वास द्वारा अन्दर जाकर इस रोग को उत्पन्न करता है । कभी-कभी यह दूषित पदार्थों के द्वारा फैलता है । अहितकारी आहार-विहार, गंदी वायु, ग स्थान तथा थोड़ी-सी जगह पर अधिक व्यक्तियों निवास करना भी इसकी उत्पत्ति में कारण होता है ।

सम्प्राप्ति एवं अवधि :- इस रोग का संचय का 7 से 14 दिन तक का है । जीवाणुओं का आक्रमण श्वस संस्थान पर होता है । संक्रान्त जीवाणु श्वास नलिका ऊपरी भाग का आश्रय प्राप्त कर अपनी क्रिया आरम्भ क देते हैं जिसके कारण वहां पर शोथ उत्पन्न होता है त श्वास नली में स्थित श्लेष्मिक कला में क्षोभ होने से ना में भी क्षोभ उत्पन्न होता है, जिसके कारण श्वास प्रणालि में स्थित थोड़ा भी श्लेष्मा (कफ) निकालने के लिए रो को अत्यधिक जोर लगाना पड़ता है । फलस्वरूप ए विशेष प्रकार की आवाज के साथ बार-बार खांसी क प्रवृत्ति होने पर भी अधिक कफ नहीं निकलता है । क के निकलने से ही खांसी का वेग थोड़ा-सा शान्त होता है

लक्षण एवं अवस्थाएं :- इस रोग का मुख्य लक्ष एक विशेष प्रकार का 'हूप' ध्वनि के साथ खांसी का आ है । लम्बे समय तक बालक को पीड़ित करने वाली इ खांसी को मियादी खांसी, काली खांसी तथा कुकास कहते हैं । इस रोग के लक्षण क्रमिक रूप से उत्पन्न हो हैं । लक्षणों को तीन अवस्थाओं में विभक्त किया जा सक है :-

1. प्रसेकावस्था ।
2. प्रवेगावस्था ।
3. प्रशमावस्था ।

1. प्रसेकावस्था (Catarrhal stage):- रोग प्रारम्भ में रोगी की आंख, नाक एवं गले से अत्यधिक स्रा निकलता है, छीकें आती हैं तथा आंखें लाल हो जाती हैं अत: इस समय प्रतिश्याय (जुकाम) का भ्रम हो जाता है नाक आदि से निरन्तर स्राव निकलने के कारण ही इ प्रसेकावस्था कहते हैं । प्रसेक (स्राव) के अतिरिक्त ज्वर एवं शुष्क काल (सूखी खांसी) भी होने लगती है

---

1. छात्रा 2. रीडर /विभागाध्यक्ष, शारीर क्रिया विज्ञान 3. व्याख्याता
एस.के.एस.एस. आयुर्वेदिक मेडिकल कॉलेज, सराभा, लुधियाना (पं०)

श्वास में कष्ट, स्वरयंत्र में शोथ तथा नाक को रक्तस्राव आदि लक्षण यदा-कदा दिखाई देते हैं । यह अवस्था दो सप्ताह तक रहती है ।

2. प्रवेगावस्था (Paroscuysmal stage):- इसमें सूखी खांसी के दौरे आने लगते हैं । खांसी का दौरा दो या तीन मिनट का होता है । कभी-कभी इससे भी अधिक समय तक खांसी रहती है । खांसी का दौर आने से पहले रोगी को प्राय: उसका आभास हो जाता है । यदि रोगी नींद में हो तो उठकर बैठ जाता है, तथा किसी वस्तु को पकड़ लेता है, क्योंकि खांसी के दौरे की अवधि में उसे किसी वस्तु के सहारे की आवश्यकता होती है । खांसी का यह दौरा हंसने, बोलने तथा लम्बी श्वास लेने पर शुरु हो जाता है । दौरे पंद्रह सेकण्ड से लेकर एक मिनट तक रहते हैं । यहां तक कि पचास-साठ दौरे आते हैं, तत्पश्चात रोगी श्वास को अन्दर खींच लेता है । पांच-सात बार लगातार दौरे होने के बाद चिकना गाढ़ा कफ थोड़ी मात्रा में निकल जाता है या उल्टी हो जाती है । जिससे कुछ समय तक रोगी को आराम मिल जाता है । बार-बार जब इसी तरह श्वांसों के दौरे आने लगते हैं, तब गर्दन की शिराएं फूल जाती हैं और श्वास रुका हुआ-सा रहता है ।

खांसी के तेज दौरे के कारण किसी रोगी को नाक से रक्त निकलने लगता है, कभी जीभ में क्षत हो जाता है और कभी-कभी खांसी के बाद उदरकण्डिका पेशी में तीव्र वेदना होती है । कभी-कभी इतनी प्रबल खांसी आती है कि कर्णपटल (कान का परदा) फट जाता है तथा कान से रक्त निकलने लगता है । रोगी बेहोश हो जाता है । रोगी सांघातिक हो जाता है तथा ज्वर बराबर रहने लगता है । ज्वर विभिन्न स्वभाव का होता है । प्रात:काल ज्वर अधिक तथा सायंकाल कम हो जाता है ।

मस्तिष्क की धमनियों के फट जाने से रोगी बेहोश हो जाता है । उसको कम्प तथा आक्षेप होने लगते हैं । किसी-किसी रोगी की श्वास अवरूद्ध होने से प्राणांत हो जाता है । खांसी का दौरा अधिक देर तक ठहरने पर फेफड़ों के वायुकोष फैल जाते हैं । यह अवस्था 21 से 70 दिनों के बीच जब कभी हो सकती है और ग्रीष्म ऋतु की अपेक्षा शीतकाल में अधिक देर तक रहती है ।

3. प्रशमावस्था (Convalesence):- इसमें खांसी के दौरे की संख्या तथा खांसी की आक्षेपयुक्त दशा क्रमश: छिपने लगती है । खांसी के साथ वमन नहीं होता है तथा बलवान होने लगता है । किन्तु रोग के शान्त हो जाने के बाद चिरकाल में ही रोगी स्वस्थ हो जाता है । कुकुर खांसी की पूर्ण मर्यादा 3 माह की होती है ।

उपद्रव :- छोटी आयु के बालकों में उपद्रव शीघ्र उत्पन्न होते हैं तथा घातक भी होते हैं । चिकित्सा एवं समुचित पथ्य का पालन नहीं करने पर सभी आयु वर्ग के रोगियों में उपद्रव हो सकते हैं । इस रोग में रक्तस्राव, श्वसनक ज्वर, फुफ्फुसावरण शोथ, कर्णस्राव, कर्णशूल, बाधिर्य, हृदयरोग, आंत्रवृद्धि विशेषत: नाभिगत वमन, पक्षाघात, मूर्च्छा एवं राजयक्ष्मा आदि उपद्रव हो सकते हैं ।

सारांश :- कुकुर-खांसी को सामान्य व्याधि नहीं समझना चाहिए । इस व्याधि में रोगी दुर्बल, राजयक्ष्मा से पीड़ित अस्थि मर्दन तथा मस्तिष्क जल वृद्धि से ग्रस्त हो सकता है ।

कैशिक श्वसनली शोथ तथा वातश्लेष्मिक ज्वर के बाद भी यह रोग उत्पन्न हो सकता है । श्वासनली शोथ इस रोग के उपद्रव स्वरूप उत्पन्न होते हैं तथा आक्षेप बढ़ जाते हैं । गले का छिद्र आक्षेप से सिकुड़ जाता है तथा मस्तिष्क संबंधी लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं जो रोगी के लिए प्राणघातक होते हैं ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा :- स्वेदन, अनुवासन, विरेचन आदि का आवश्यकतानुसार प्रयोग करना चाहिए । कुकुर खांसी में स्वेदन तथा अनुवासन बस्ति अत्यधिक लाभकारी है । गरम पानी में शुद्ध टंकण और नौसादर डालकर या 1-2 बूंद अमृतधारा या विक्स गरम पानी में डालकर नाक द्वारा उसका भाप लेने से भी लाभ होता है । छोटे बालकों में यदि अनुवासन वस्ति देना संभव न हो, तब तैल में स्वच्छ रुई को भिगोकर (पिचु) गुद प्रवेश में लगाने से खांसी के वेग की तीव्रता कम होती है । ग्रामों में आज भी वह प्रयोग प्रचलित है ।

स्वानुभूत चिकित्सा :- कफनाश पाउडर 50 से

150 मि०ग्रा० की मात्रा में प्रातः सायं शहद में मिलाकर चटाएं ।

कुमार कल्याण रस (स्वर्ण मोती युक्त) 1/4 से 1/2 टेबलेट, अभ्रक भस्म 50 मिच्०ग्रा०, चन्द्रामृत रस 50 मि०ग्रा० टंकण भस्म 50 मि०ग्रा० प्रवाल पिष्टी 50 मि०ग्रा० इन पांचों औषधियों को मिलाकर ऐसी एक-एक मात्रा 4-4 घण्टे के अन्तराल से दिन में 3 बार शहद के साथ अनुपान सेवन कराएं ।

लवंगादि वटी, 1-1 गोली दिन में 3-4 बार चूसने के लिए रोगाक्रान्त बालक की आयु के अनुसार औषधियों की मात्रा निर्धारण करनी चाहिए ।

पथ्य :- पुराना चावल, गेहूं, जौ, बाजरे की रोटी, मूंग, उड़द की दाल अथवा इनका यूष, बथुआ, मकोय की पत्ती, मूली, लौकी, गाजर आदि के शाक का सेवन इस रोग में हितकारी है । मरिच, पिप्पली, सैंधव नमक, घी, दूध, तिल का तैल आदि को आहार में लाना चाहिए ।

अपथ्य :- सभी प्रकार के खट्टे पदार्थ, अचार, चटनी, आइसक्रीम, दही, कूलर या एयर कंडीशनर का सेवन करना अहितकर माना गया है ।

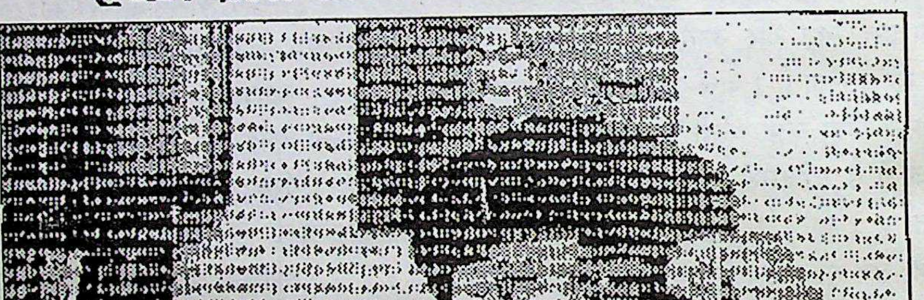

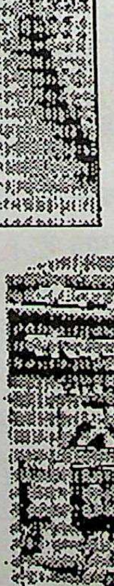

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत
एकाग्रता लाए, समझ जगाए|
आज, हररोज और वर्षभर

आफिसिने
संस्कृत में
अनेको गुण
अनन्य स्रो
ऊसर भूमि
की आवश
जा सकता
बुआई हेतु
सकती है
करनी होत
मीटर अंत
चाहिए त
चाहिए ।
किलो बा
भर देना च
में 50-1
चाहिए ।
हेतु तैयार
ऊपर तक
सके ।
कि.ग्रा.
फास्फोरस
चाहिये ।
दिखाई प
चाहिये ।
को आध
करना चा
मौसम में
मेथी, मस
लगायी ज

आँवला - फल एक गुण अनेक

जयेन्द्र कुमार जौहरी

आँवला वैज्ञानिक नाम :- इम्बेलिका आफिसिनेलिस भारत का एक अहम् पौधा है । इसको संस्कृत में धात्री फल कहते हैं । यह वृक्ष पर फलता है तथा अनेको गुणों से भरपूर होता है । आँवला विटामिन 'सी' का अनन्य स्रोत है । इस वृक्ष का मुख्य गुण यह है कि यह ऊसर भूमि पर भी उग सकता है तथा इस वृक्ष को सिंचाई की आवश्यकता नहीं होती है । यह बहुत आसानी से उगाया जा सकता है ।

खेती के लिए भूमि तैयार करना :- आँवला की बुआई हेतु 9 पीएच मान तक की मृदा भी प्रयोग की जा सकती है । इसके लिये भूमि की कोई ज्यादा तैयारी नहीं करनी होती है । इस की बुआई हेतु मई-जून माह में 8-10 मीटर अंतराल पर 1-1.25 मीटर आकार के गड्ढे खोद लेना चाहिए तथा इसमें से कंकड़ पत्थर निकाल कर फेंक देना चाहिए । गड्ढों में 50-60 किलो गोबर की खाद 15-20 किलो बालू, 8-10 किलो जिप्सम तथा 6 किलो पाइराइट भर देना चाहिये । पौधों को दीमक से मुक्त रखने हेतु गड्ढों में 50-100 ग्राम बी.एच.सी. की धूल भी मिला देना चाहिए । भराई के 15-20 दिन उपरांत गड्ढे पौधों के रोपण हेतु तैयार हो जाते हैं । गड्ढों को जमीन से 15-20 से.मी. ऊपर तक भरा जाना चाहिये ताकि वहाँ पर पानी न रुक सके ।

खाद एवं उर्वरक :- आँवला के उत्पादन हेतु 100 कि.ग्रा. गोबर की खाद, 1 कि.ग्रा. नत्रजन, 500 ग्रा. फास्फोरस एवं 750 ग्रा. पोटाश तत्व के रूप में देना चाहिये । ऊसर भूमि में यदि जस्ते की कमी के लक्षण दिखाई पड़े तो 250-500 ग्राम जिंक सल्फेट को डालना चाहिये । गोबर की खाद को एक बार में तथा अन्य उर्वरकों को आधा-आधा जनवरी-फरवरी व जुलाई माह में प्रयोग करना चाहिये ।

सहफसली :- आँवले के बाग में खरीफ के मौसम में मूँग, उड़द तथा मूँगफली, रबी के मौसम में मटर, मेथी, मसूर, चना व जाड़े के मौसम में लोबिया की फसल लगायी जा सकती है ।

सिंचाई व खरपतवार नियंत्रण :- आँवला के नवरोपित पौधों में गर्मी के मौसम में हर सप्ताह सिंचाई करते रहना चाहिये तथा उन वृक्षों में जिनमें फल लगे हुये हों, उन्हें जून के माह में एक बार सींचना चाहिए । समय-समय पर घास को निकालना अति आवश्यक होता है ।

आँवला की व्यावसायिक प्रजातियाँ :- चकैया, फ्रांसिस, कृष्णा, कंचन, नरेन्द्र, आँवला 4, नरेन्द्र 5 व 7 एवं गंगा बनारसी ऐसी कछ प्रजातियाँ हैं जो उल्लेखनीय है । चकैया व फ्रांसिस प्रजातियाँ व्यवासायिक दृष्टि से अतिलाभकारी पायी गयी हैं ।

प्रमुख रोग एवं नियंत्रण :- आँवला के पौधों में अनेक रोग पाये जाते हैं जिनमें कीट रोग, दैहिक व्याधियाँ इत्यादि प्रमुख होते हैं ।

दैहिक व्याधि :- आँवले के फल प्राय: चटक जाते हैं और ऐसा ऊतकों के क्षय के कारण होता है । यह ऊतक क्षय बोरात तत्व की कमी से होता है । इस रोग के उपचार हेतु बोरेक्स 0.04-0.06 प्रतिशत बोरेक्स का छिड़काव 15 दिन के अंतराल पर करना चाहिये । इस व्याधि से बचाव हेतु रोपण के समय भूमि में 50 ग्राम बोरेक्स डाल देना चाहिये जिससे रोग प्राय: नहीं पाया जाता है ।

इस रोग के अतिरिक्त आँवला में कुछ कीट आक्रमण करते हैं जो कि छाल या पत्ती को खा लेते हैं अथवा टहनियों में 'गाँठें' बना देते हैं । इन कीटों की रोकथाम हेतु 0.03 प्रति डाइमेक्रान का छिड़काव कीट के आक्रमण होने पर किया जाता है । यह छिड़काव 7 दिन के अंतराल पर पुन: किया जाता है ताकि कीट पूर्ण रूप से नष्ट हो जायें । ध्यान रहे कि इस अंतराल में व अंतिम छिड़काव के 15 दिन बाद तक यदि वृक्ष में फल लगे हों तो उन्हें उपयोग हेतु नहीं तोड़ना चाहिए ।

उपयोग :-

1. ताजा आँवला विटामिन 'सी' का मुख्य स्रोत है तथा इसे सेवन करने से मनुष्य में रोगरोधिता पनपती है । यह चटनी, मुरब्बा इत्यादि के रूप में भी उतना ही उपयोगी होता है ।

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

2. आँवला आधारित उत्पाद च्यवनप्राश, अमृतकलश अति उपयोगी है ।
3. आयुर्वेदिक औषधियों में आँवलें का उपयोग पेट के रोगों हेतु किया जाता है । उदाहरण, त्रिफला चूर्ण, त्रिफलामासी इत्यादि ।
4. सौंदर्य प्रसाधनों हेतु भी आँवला उपयोगी होता है ।
5. आँवला पाचक होता है तथा भूख बढ़ाता है ।
6. यह आंखों की रोशनी हेतु अति उपयोगी है ।
7. आँवले के उपयोग से बेचैनी, यकृत, आमाशय, तिल्ली तथा वीर्य की दुर्बलता दूर होती है ।

आँवले के प्रति 100 ग्रा. फल में निम्न तत्व पाये जाते हैं :-

आद्रता	81.2 ग्राम
प्रोटीन	0.5 ग्राम
वसा	0.1 ग्राम
खनिज पदार्थ	0.7 ग्राम
रेशे	3.4 ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	-14.1 ग्राम
कैल्शियम	0.05 ग्राम
फास्फोरस	0.02 ग्राम
लौह	1.2 मिग्रा
निकोटिनिक अम्ल	0.2 मिग्रा
विटामीन सी	600 मिग्रा
राइबोफ्लैबिन	0 . 0 ग्राम
नियासिन	0.2 मि
कैरोटिन	9 आई यू

आँवला की रासायनि संरचना से यह साफ ज्ञात होता है इसमें अनेक विटामिन व भरपूर मा में खनिज पदार्थ होते हैं तथा य कारण है कि इसका सेवन अ उपयोगी है ।

आँवला वर्तमान में प्रचुर मा में निर्यात हो रहा है क्योंकि इस गुणों के कारण सम्पूर्ण विश्व इस बहुआयामी लाभों का वरण क चाहता है । आँवला के एक एक बागान से लगभग 85000/- रु की आय होती है जो किसी फसल के हिसाब से अच्छी है सहफसली द्वारा उत्पादक और ल भी पा सकता है ।

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी
जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती । इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं ।

गर्भावस्था में कैसा आहार लें ?

परिधि जैन

अच्छे स्वास्थ्य को बनाने में सही भोजन का बहुत बड़ा हाथ है, क्योंकि भोजन के माध्यम से ही शरीर को विभिन्न कार्यों के लिए आवश्यक पोषक तत्व मिलते हैं। सही भोजन का अर्थ है संतुलित आहार, जिसमें शरीर की जरूरत के लिए सभी तत्व सही मात्रा और अनुपात में उपस्थित हों। गर्भावस्था में संतुलित आहार का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि मां की कोख में बढ़ते बच्चे को अपने विकास के लिए सभी पोषक तत्व मां के खून से ही मिलते हैं। गर्भावस्था में आहार में विभिन्न कमियां रहने पर बच्चा अपने विकास के लिए आवश्यक तत्व मां के शरीर से ले लेता है, जिससे मां का स्वास्थ्य गिर जाता है। मां के आहार में ज्यादा कमियां होने से बच्चे की बढ़ोत्तरी भी प्रभावित हो सकती है। ऐसी स्त्रियों में अनेक परेशानियों की सम्भावना बढ़ जाती है, जैसे समय से पहले बच्चे का पैदा होना, सामान्य से कम वजन वाले कमजोर बच्चे का जन्म, मां और बच्चे दोनों में खून की कमी होना, गर्भपात या मरे हुए बच्चे का जन्म आदि। आइए देखें गर्भवती के आहार में कौन-से भोज्य पदार्थ होने चाहिए और क्यों ?

दूध : दूध उत्तम प्रोटीन और कैल्शियम का सर्वोत्तम साधन है। इससे अच्छी मात्रा में विटामिन 'बी' कॉम्पलेक्स और विटामिन 'ए' भी मिलता है। प्रोटीन बच्चे के अंगों को बनाने के लिए और कैल्शियम बच्चे की हड्डियों के लिए जरूरी है। शाकाहारियों को सर्वोत्तम प्रोटीन दूध से ही मिलता है। मां के भोजन में कैल्शियम कम होने पर बच्चे की हड्डियों को बनाने के लिए कैल्शियम मां की हड्डियों से ले लिया जाता है, जिससे मां की हड्डियां कमजोर हो जाती हैं। अतः इन तत्वों को पाने के लिए गर्भवती को रोज किसी-न-किसी रूप में दूध जरूर पीना चाहिए। छाछ और चिकनाईरहित दूध सस्ता भी पड़ता है और उसमें विटामिन 'ए' के अलावा दूध के बाकी तत्व भी उपस्थित रहते हैं, इसलिए इनका सेवन भी किया जा सकता है। यदि सम्भव हो तो दूध की मात्रा बढ़ाई जा सकती है, जो शाकाहारियों के लिए विशेष लाभदायक होगा।

दालें :- दालें, मूंगफली, भूने चने, तिल, सूखे मेवे आदि में काफी अच्छी मात्रा में प्रोटीन, खनिज तत्व, विटामिन 'बी कॉम्पलेक्स' और ऊर्जा पायी जाती है। शाकाहारियों के भोजन में इनकी जरूरत और भी अधिक होती है, क्योंकि यह प्रोटीन की आवश्यकता पूरी करती हैं। किसी भी भोजन में दाल को अनाज के साथ मिलाकर खाने से दोनों की प्रोटीन के गुण बढ़ जाते हैं, इसलिए अनाज और दाल एक साथ खाने चाहिए। शाकाहारी स्त्री को रोज कम-से-कम 45 ग्राम दाल प्रतिदिन खानी चाहिए।

अनाज :- अनाज मुख्य रूप से ऊर्जा देते हैं जो शरीर के विभिन्न कार्यों के लिए बच्चे के शरीर को बनाने के लिए जरूरी है। ऊर्जा की आवश्यकता गर्भ के आखिरी महीनों में सामान्य से कुछ बढ़ जाती है, लेकिन शुरू में पहले के ही समान हो रहता है। अतः आखिरी महीनों में भोजन या दाल की मात्रा थोड़ी-सी बढ़ा देनी चाहिए। ऊर्जा के अलावा अनाज से कुछ प्रोटीन भी मिलता है। साबूत और बिना छने अनाज खनिज तत्वों और विशेष रूप से विटामिन 'बी कॉम्पलेक्स' की प्राप्ति का बहुत अच्छा साधन है। अनाज को दाल या दूध के साथ मिलाकर खाने से उसमें उत्तम प्रोटीन के गुण बढ़ जाते हैं। घर का कूटा चावल, दलिया, बिना छना आटा, अंकुर निकले हुए गेहूं, जौ आदि गर्भवती के लिए विशेष लाभदायक हैं। अंकुरित करने से अनाज व दालों में 'बी कॉम्पलेक्स' और विटामिन 'सी' की मात्रा काफी बढ़ जाती है। एक सामान्य परिश्रम करने वाली महिला को लगभग 350 ग्राम अनाज रोज खाना चाहिए।

हरी पत्तेदार सब्जियां :- हरी पत्तेदार सब्जियां जैसे मेथी, पालक, बथुआ, मूली के पत्ते, सरसों, चौलाई, चुकन्दर व शलजम के पत्ते आदि आयरन, विटामिन-सी, विटामिन ए, कैल्शियम और फोलिक एसिड के मुख्य साधन हैं। मां और बच्चे दोनों के शरीर में खून को बनाने के लिए आयरन बहुत आवश्यक तत्व है। फोलिक एसिड बच्चे के समुचित विकास और मां के स्वस्थ खून के लिए

जरूरी है इसलिए गर्भवती महिला को जहां तक हो सके, रोज कम-से-कम 150 ग्राम हरी पत्तेदार सब्जी खानी चाहिए, नहीं तो खून की कमी होने से प्रसव के समय मां को कई परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है ।

अन्य सब्जियां व फल :- इनसे मुख्यत: रेशा और विटामिन प्राप्त होते हैं । खट्टे रसीले फलों जैसे नींबू, संतरा आदि और आंवला, अमरूद, टमाटर वगैरह से विटामिन 'सी' मिलता है, जो स्वस्थ खून के लिए तथा दांतों, मसूड़ों के स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है । पकाने से या हवा में खुला रखने से विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है, इसलिए इन फलों को ताजा और बिना पकाये खाना चाहिए । सभी रंगदार फलों और सब्जियों को काटकर धोने से या पकाकर पानी फेंक देने से उनके पौष्टिक तत्व नष्ट हो जाते हैं, इसलिए उन्हें पकाने में भी सावधानी रखनी चाहिए । गर्भवती को दिन में कम-से-कम 125 ग्राम कोई अन्य सब्जी चाहिए ।

उपरोक्त भोज्य पदार्थों के अलावा घी, तेल, चीनी आदि का भी आहार में काफी महत्व है, क्योंकि ये ऊर्जा के सर्वोत्तम साधन हैं । घी, मक्खन और क्रीम से ऊर्जा के अलावा विटामिन 'ए' और तेलों से कुछ अन्य आवश्य तत्व भी मिलते हैं । इन ऊर्जायुक्त पदार्थों की मात्रा आह में सामान्य ही रहनी चाहिए । ज्यादा चर्बी वाले या तले हु पदार्थों को खाने से गर्भवती का वजन सामान्य से ज्यादा ते गति से बढ़ता है, जो उसके व बच्चे के लिए हानिकार भी हो सकता है ।

उपरोक्त सिद्धान्तों के आधार पर गर्भवती व सुविधा के लिए एक आहार तालिका प्रस्तुत है :-

सामान्य परिश्रम करने वाली गर्भवती महिला के लि आहा तालिका :-

प्रात:काल -	एक कप चाय, दो ग्लुकोज बिस्कुट
सुबह का नाश्ता-	एक कटोरी दलिया दूध के सा डबलरोटी के दो टुकड़े मक्खन साथ, बेसन का चीला, एक छोटा स एक कप चाय ।
शाम की चाय -	एक कप कॉफी, गुड़, मूंगफली, ति या गेंहू से बना पौष्टिक लड्डू ।
रात का भोजन -	तीन चपाती, पनीर की रसेदार सब्ज मौसम की कोई अन्य सब्जी, सलाद
सोने से पहले -	एक कप दूध ।

बैद्यनाथ

अग्निमुख चूर्ण

हाजमा को बढ़ाने वाला उपयोगी दवा

खाद्य पदार्थों में मिलावट एवं स्वास्थ्य

डा० अशोक कुमार श्रीवास्तव, एम.एससी. पी.एच.डी.

खाद्य पदार्थ हमारे स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं । आधुनिक युग के बदलते परिवेश के साथ-साथ मनुष्य की मानसिकता भी बदल रही है । अधिकतर लोग रातों-रात धनवान बनना चाहते हैं । मनुष्य के पास जादू की छड़ी तो नहीं है कि उसे घुमाया और मनचाही मुराद पूरी हो गई । शारीरिक श्रम को भूलकर आज का मानव गलत तरीके से धनोपार्जन के चक्कर में है । उसे अपने आस-पड़ोस, प्रदेश तथा देश से कोई लेना-देना नहीं है, बशर्ते उसका निजी स्वार्थ सिद्ध होता रहे ।

खाद्य-पदार्थों में मिलावट एक जघन्य अपराध है, क्योंकि इससे मानव-स्वास्थ्य प्रभावित होता है । मिलावट करने के दो कारण हो सकते हैं, पहला यह कि खाद्य-पदार्थों की मांग उसकी उपलब्धता से अधिक हो, दूसरा यह कि अधिक धन अर्जित करने के लालच में खाद्य पदार्थों में सस्ते तथा घटिया किस्म के उससे मिलते-जुलते अन्य पदार्थों का अपमिश्रण करना ।

मनुष्य ने अपनी बुद्धि का गलत इस्तेमाल करके खाद्य पदार्थों में ऐसी-ऐसी चीजों की मिलावट की है, जिसके बारे में हम सोच भी नहीं सकते जैसे, चाय की पत्तियों में चमड़ा फैक्ट्रियों का महीन चूरा, दूध में पेंट, यूरिया व अन्य चीजों की मिलावट, कत्था में गैम्बियर नामक विषैले तत्व की मिलावट, वनस्पति घी में जानवरों की चर्बी, पिसी मिर्च में सूड़ान रंग, पिसी हल्दी में मिटैनिल यलो व आरेंज-आरेंज नामक खतरनाक रासायनिक रंग, परवल व पैक हरी मटर में नकली सिंथेटिक रंग, मिठाई, नमकीन इत्यादि में मिलावटी तेल, विषैले रंग, सरसों के तेल में **अर्जीमोन मेक्सिकाना** के बीज तथा बटर यलो इत्यादि का पाया जाना ।

इस प्रकार यदि हम अपनी दिनचर्या पर ध्यान दें तो सुबह की चाय से लेकर रात्रि भोजन तक मिलावट का जहर हमारे शरीर में किसी न किसी रूप में पहुँच रहा है । यह जहर पूरे समाज को बीमार बना रहा है, इसकी मार से कोई बचा नहीं है । ये मिलावटी वस्तुयें निर्दोष लोगों की जान ले रही हैं ।

खाद्य तेल :- खाद्य तेलों में सरसों के तेल का प्रमुख स्थान है । इस तेल को भारत के कई भागों में खाया जाता है । सरसों के तेल में धान की भूसी (राइस ब्रान) का तेल मिलाया जाता है । राइस ब्रान तेल में 20-22% एफ.एफ.ए. (फ्री फालिक एसिड) पाया जाता है, जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक है । यह तेल अखाद्य है, इसे साबुन बनाने तथा अन्य उद्योगों में प्रयुक्त किया जाता है । सरसों तेल में मिलावट का मुख्य कारण अखाद्य तेल का सस्ता (20-20 रु० प्रति किलो) होना है । सरकार द्वारा अखाद्य तेल पर 20% ड्यूटी है, जबकि खाद्य तेल पर 65% है । इसके अतिरिक्त सरसों के तेल में **अर्जीमोन मेक्सिकाना** के बीजों की मिलावट की जाती है । यह यूफारवियेसी कुल का कंटीला पौधा है जिसमें पीले रंग के फूल होते हैं । इस पौधे को भरभंड़ा या सत्यानाशी के नाम से जानते हैं । भारत में इसके पौधे स्वतः उगते हैं । इसके बीज देखने में काली सरसों की तरह लगते हैं । आसानी से इन दोनों के बीजों में अन्तर करना मुश्किल है । अर्जीमोन बीज मिश्रित सरसों का तेल खाने से महामारी ड्राप्सी (पिटिंग ओयडमा, यकृत तथा उदर की गड़बड़ी, ग्लाइकोमा, श्वसन तथा हृदय की तकलीफ) हो सकती है ।

दालें :- अरहर तथा चने की दाल में खेसारी दाल **(लेथाइरस सेटाइवस)** की मिलावट की जाती है । खेसारी दाल को चना दाल के साथ मिलाकर वेसन बनाया जाता है । खेसारी दाल के इस्तेमाल से आगे चलकर लोअर लिम्ब की अपंगता हो सकती है, जिसे साधारणतया 'लैथाइरिज्म' कहते हैं । यह रोग इथोपिया तथा अफगानिस्तान में सबसे ज्यादा है । मध्य प्रदेश के रीवां तथा सतना जिले में हजारों लोग इस रोग से प्रभावित हो चुके हैं ।

संश्लेषित रंगों का प्रयोग :- खाद्य-पदार्थों को आकर्षित करने के लिये रंगों का प्रयोग प्राचीन काल से होता आ रहा है । कृत्रिम रंग संसाधित खाद्य, फलों एवं सब्जियों में आवश्यक है, जो कि संसाधन एवं भण्डारण के समय अपना प्राकृतिक रंग प्रायः खो देते हैं ।

वैज्ञानिक, केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान (सीमैप) पोस्ट ऑफिस - सीमैप, लखनऊ - 226015

भारतवर्ष में वर्तमान में आठ संश्लेषित रंगों को खाद्य पदार्थों में मिलाने की अनुमति है, ये रंग हैं ब्रिलियन्ट ब्लू एफ.सी.एफ., कार्मोसिन, इरिथ्रोसिन, फास्टग्रीन एफ.सी.एफ, इंडिगोकार्मीन, पोनसियो-4-आर, सनसेट यलो एफ.सी.एफ. एवं टारट्राजिन । इन रंगों की मात्रा खाद्य पदार्थों में 100 पी.पी.एम. से ज्यादा नहीं होनी चाहिये । इसके विपरीत कम लागत के कारण गैर-स्वीकृत रंगों का धड़ल्ले से प्रयोग हो रहा है, जिससे मानव-स्वास्थ्य खतरे में है । खाद्यान्नों तथा दालों में, मिठाइयों तथा दुग्ध उत्पाद में गैर-स्वीकृत समूह के रंगों का प्रयोग किया जाता है । ये रंग समुचित मात्रा में शुगर कन्फेक्शनरी, बेकरी उत्पाद, आइसकैंडी, मसाले, लेमन ड्राप, जलेबी, बूंदी के लड्डू तथा कई अन्य मिठाइयों में इस्तेमाल किये जाते हैं ।

गैर-स्वीकृत रंगों का प्रयोग पेंट, चमड़ा तथा कागज उद्योग में किया जाता है । सस्ते होने के कारण इन रंगों का इस्तेमाल धड़ल्ले से खाने-पीने के सामान में किया जाता है । परीक्षण से यह पता चला है कि गैर-स्वीकृत रंग जैसे आरेंज-2, ओरामीन, रोडामीन बी, ब्लू बी.आर.एस., मैलाकाइट ग्रीन तथा सूड़ान ।।। ने कई प्रकार के विकार पैदा किये हैं, जिनसे प्रमुख अंग किडनी, प्लीहा तथा यकृत प्रभावित होता है । मेटानिल यलो जो गैर-स्वीकृत रंगों में सबसे लोकप्रिय है इसने टेस्टीकुलर रीजनरेशन तथा विषालुता के लक्षण अन्य लक्ष्य ऊतकों में प्रदर्शित किये हैं । कांगो रेड के प्रयोग ने हाइड्रोसिफेलस, हाइड्रोनेफ्रोसिस तथा आकुलर दोष के विकार दिखाये हैं । मैलाकाइट ग्रीन फेफड़े, ओवरी तथा लीवर ट्यूमर के उदाहरण मिले हैं इसके अतिरिक्त ढाबों में परोसी जाने वाली मसालेद 'करी' में सूड़ान जैसे रसायन तथा रतनजोत सरीखे रंग मि हो सकते हैं । ढाबों पर मिलने वाले कई पकवानों में ऐ रंग व रसायन होते हैं, जिसका लम्बे समय तक इस्तेमा करने से कैंसर जैसी बीमारियां हो सकती हैं । खोमचे त चाट के ठेलों का खानपान भी पूरी तरह असुरक्षित है । य हाल समोसे-खस्ते, पूड़ी-छोले वगैरह का है । ढाबों क 'डिसेज' में घातक रंग एवं रसायन इसलिये मिलाये जाते ताकि उनके रसे का रंग खूब तैलीय नजर आये और स्वा भी कुछ बेहतर हो जाये ।

मिलावट पर नजर रखने के लिये यह जरूरी कि खाद्य निरीक्षक अधिक संख्या में हों, तथा वे अप जिम्मेदारी के प्रति ईमानदार हों । प्रायः देखा गया है कि खाद्य निरीक्षक साल भर में न के बराबर नमूने जांच लिये एकत्र करते हैं । अगर नमूने में मिलावट पकड़ी गई तो भी कोई कार्रवाई नहीं होती है । इस दिशा में कठो नियम तो बने हैं, परन्तु उनका पालन कठोरता से नहीं कि जाता । इस दिशा में प्रत्येक नागरिक की भूमिका महत्वपू है । हम अपने निजी स्वार्थ के लिये जनता के स्वास्थ्य चौपट नहीं कर सकते । आइये हम सभी देश के स्वास् को बेहतर बनाने के लिये संकल्प करें ।

बैद्यनाथ
सितोपलादि चूर्ण
पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

शिशु स्वास्थ्य

गर्मियों में आपके लाड़ले की सेहत

वीना श्रीश्रीमाल

यद्यपि गर्मी के महीने पारिवारिक मनोरंजन या घूमने के लिए होते हैं, लेकिन इन्हीं महीनों में इनफेक्शन से होने वाली बीमारियां भी सबसे ज्यादा होती हैं। बच्चों व किशोरों में इस प्रकार की बीमारियां कुछ ज्यादा ही होती हैं। बच्चों को इन बीमारियों से मुक्त रखने का दायित्व मां-बाप, अभिभावकों व परिवार के बड़े सदस्यों का ही है। गर्मियों में मौसमी फलों व सब्जियों की भरमार रहती है। जगह-जगह स्वादिष्ट पेय उपलब्ध रहते हैं। ये खाद्य व पेय पदार्थ मक्खियों व धूल के लिए मनपसंद जगह हैं। धूल और मक्खियों से हुई गंदगी को हटाने के लिए कुंजड़े फलों और सब्जियों पर गंदा पानी छिड़कते रहते हैं, जिससे संक्रामक कीटाणु कम होने के बजाय बढ़ते रहते हैं। तेज गर्मी से बेहाल हर व्यक्ति राहत पाने के लिए आईसक्रीम, कुल्फी और बरफ, ठण्डे पानी की ओर दौड़ता है।

लेकिन ये सभी चीजें स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, क्योंकि ये चीजें अत्यंत निम्न श्रेणी के पदार्थों से बनी होती हैं और अनेक तरह के कीटाणु इनके जरिये शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। भारत भर में सड़कों के किनारे पानी के ठेले दिखायी देते हैं। चिलचिलाती धूप से बेचैन आदमी चंद पैसों में अपनी प्यास बुझा लेता है, लेकिन इसी एक गिलास पानी के साथ तमाम कीटाणुओं को निगल जाते हैं, क्योंकि जल्दी में धोये गिलासों में सफाई की संभावना नहीं रहती।

स्कूलों की छुट्टियों में परिवार को घूमने के लिए मौका मिलता है। समय बचाने के चक्कर में फेरी वालों व सड़क के किनारे बनी दुकानों से हम पेय या खाद्य पदार्थ खरीद लेते हैं, लेकिन इसके साथ ही हम बीमारियों को भी दावत देते हैं। बच्चे घूमने के लिए जिद करते हैं और बुजुर्ग सड़क पर की चीजों को न खरीदने की सलाह देकर अपने दायित्व से मुक्त मान लेते हैं। घर से बाहर बच्चे या तो गर्मी को दूर करने के लिए पोखर या कीचड़ भरे तलाब में नहाते हैं या अपने जेब खर्च से मनचाही चीजों को खरीद कर खाते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि परिवार के साथ यात्रा करते समय सुविधा हेतु उपलब्ध व तैयार चीजों के इस्तेमाल को हम पसंद करते हैं, चाहे वह पानी हो, भोजन हो या पेय। लेकिन जब साथ में कोई छोटा बच्चा हो, तो यात्रा में भोजन पानी साथ ले जाना चाहिए। भोजन ऐसा बनाना चाहिए जो शीघ्र खराब न हो। टिफिन ले जाने से आपकी यात्रा में असुविधा तो हो सकती है, लेकिन बच्चा बीमार पड़ गया तो ?

इन बीमारियों से बचने के तरीके बड़े साधारण और व्यावहारिक हैं। घर में बना भोजन यात्रा के समय साथ रखें। बिस्कुट और सैंडविच ले जाने में भी सुविधा रहेगी। पीने का पानी तो अवश्य साथ ले जाना चाहिए, इसके लिए सुराही या फ्लास्क का इस्तेमाल ज्यादा बढ़िया रहता है। यात्रा के दौरान पानी खत्म हो जाने पर दोबारा पानी भरते समय पानी में टिनचर आयोडिन अवश्य मिलाना चाहिए, एक लीटर पानी में एक-दो बूंद टिनचर आयोडीन की मात्रा पर्याप्त है। इससे पानी स्वच्छ व कीटाणुरहित हो जाता है। आयोडीन टेबलेट या कुछ क्लोरीन युक्त पदार्थ, जो पानी स्वच्छ करने के लिए दवाओं की दूकान पर मिलते हैं, का भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यात्रा के समय इनमें से किसी भी एक चीज का होना बहुत जरूरी है। जहां पानी बहुत हानिकारक हो, वहां उसके उपयोग के बजाय पेय बोतलों का इस्तेमाल फायदेमंद है। क्योंकि गर्म पेय पदार्थों में स्वतः पानी उबल जाता है।

बाहर से खरीदी गयी बरफ का सीधा इस्तेमाल कभी भी स्वास्थ्य के लिए उपयोगी नहीं है। ठण्डे पानी के लिए बोतलों को आइसबॉक्स में रखना हितकर है। पीने के लिए अपने ही गिलासों का इस्तेमाल करना एक अच्छी आदत है। स्टेशन पर प्याऊ या सड़क के किनारे पानी

श्रीश्रीमाल भवन, बंदा रोड, भवानीमंडी (राज०)

पिलाने वाले लोगों के गिलास गंदे होते हैं तथा उनमें सफाई का अभाव होता है ।

यदि आपके साथ कोई शिशु है, तो उसके लिए केवल उबला हुआ पानी ही इस्तेमाल करें । यात्रा के दौरान पानी या दूध की पर्याप्त मात्रा साथ रखनी चाहिए, क्योंकि गर्मी में बच्चों को प्यासा रखना उनके स्वास्थ्य के लिए अत्यंत हानिकारक है । पर्याप्त मात्रा में पानी या दूध नहीं मिलने से बच्चों के शरीर में पानी की मात्रा में कमी हो सकती हैं ।

इन सावधानियों के अभाव में बच्चों को डायरिया, डिसेंट्री और यहां तक कि टाइफाइड और हैजा जैसी कष्टप्राय बीमारियां होना साधारण बात है । डायरिया से शिशुओं और बच्चों में पानी की कमी हो जाती है, जिसका शरीर में पर्याप्त मात्रा में होना नितांत आवश्यक है । इस बीमारी के प्रति लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए । अगर इसके इलाज पर आपने उचित ध्यान नहीं दिया, तो बच्चे की जान को खतरा हो सकता है । पैकेट में मिलने वाले ग्लूकोज या चीनी नमक को उबाल कर ठण्डे किये गये पानी में घोलकर पिलाने से पानी की कमी को दूर किया जा सकता है । नारियल पानी या कम पत्ती की चाय का ही इस्तेमाल किया जा सकता है । चावल का मांड़ या दाल का पानी भी शरीर में पानी की कमी को दूर करने में उपयोगी है । ये सभी ऐसे इलाज हैं, जो आसानी से हर घर में उपलब्ध हैं ।

यात्रा के दौरान भी उपाय आसानी से जुटाये जा सकते हैं । डायरिया की बीमारी में बच्चों और बड़ों दोनों के लिए ये इलाज प्रभावकारी हैं । इस बीमारी में एक बात बहुत महत्त्वपूर्ण है कि रोगी को भूखा नहीं रखना चाहिए । सामान्य आहार तो उसे अवश्य देते रहना चाहिए, ताकि उसे कमजोरी न आये ।

वैसे गर्मियों में अपेक्षाकृत पानी की मात्रा व अन्य आवश्यक लवण शरीर में कम हो जाते हैं । अतः इन दिनों अधिक द्रवों का ज्यादा इस्तेमाल करना हितकर है । गर्मियों में नींबू का पानी एक सदाबहार औषधि है । नींबू पानी से शरीर को पोटेशियम तत्व भी अधिक मात्रा में मिलता है कच्चे आम से बना "पना" एक दूसरा देसी इलाज है इससे पानी की कमी तो पूरी होती ही है, साथ ही वयस् या बच्चों को उसके सेवन से लू भी नहीं लगती ।

नवजात शिशु के लिए मां का दूध ही इ इंफेक्शनों से उसे बचने का एकमात्र उपाय है । गर्मियों पेट या आंत में होने वाली बीमारियों के अलावा त्वचा औ नेत्र संबंधी बीमारियों का होना भी आम बात है । घरे उपाय इन बीमारियों को रोकने में काफी हद तक सक्षम है गर्म मौसम में जितनी बार संभव हो, नहाना अवश्य चाहिए लेकिन कहीं-कहीं पानी की कमी से बाधा खड़ी हो जात है, जिससे त्वचा शुष्क, मुहांसे व मच्छरों के काटने से कु कष्टदायी संक्रामक बीमारियां हो जाती है । गरमी नाइलोन या अन्य सिंथेटिक फाईबर से बने हुए कपड़ों क जगह हल्के सूती कपड़े ही पहनना चाहिए । बच्चों को त गर्मियों में केवल सूती कपड़े ही पहना चाहिए । गर्मी क दिनों में एक बार तो स्नान अवश्य करना चाहिए और संभ हो तो टेलकम पाउडर या नाइसिल जैसे पाउडर क इस्तेमाल करना चाहिए । त्वचा की शुष्कता व रगड़ क समाप्त करने के लिए केलामाइन लोशन प्रभावकारी है यहि मुंहासे हो गये हों, तो उसका इलाज तुरंत कर चाहिए । कोई एंटीसेप्टीक या जेनटियन वायलेट का ए प्रतिशत का घोल या मरक्यूरोक्रोम का प्रयोग मुहांसे द करने के लिए बहुत उपयोगी है ।

धूल, मक्खियां और गंदा पानी आंख के लि समस्या है । आंखों को हाथ से मलना और आराम न मिल पर गंदे रूमाल से आंखों को पोंछना हमेशा बीमारियों क जन्म देता है । सोते हुए बच्चो के चेहरे पर या नवजा शिशुओं पर मक्खियों का बैठना एक साधारण बात है मक्खियां बच्चे की त्वचा पर बहुत से कीटाणुओं को छो जाती हैं । आंखों को सदैव साफ रखना चाहिए तथा स्वच् पानी से आंखों को धोते रहना चाहिए । रूमालों व तौलि को साफ रखना चाहिए । संभव हो तो घर के प्रत्येक सदस के लिए तौलिया अलग-अलग रखना चाहिए ।

शंखभस्म का महिला रुग्णा तारुण्यपिड़िका व्याधि में संशोधनात्मक अध्ययन

(Effect of Shankha-Bhasma in Female Patient Acnevulgaris-Research Study)

डा० ओम प्रकाश तलोकर, एम.डी., पी.एच.डी.

प्रस्तावना :-

भारतवर्ष की जनसंख्या जनगणना 2001 के अनुसार 102 कोटि 70 लक्ष है । इसमें से पुरुष 531298499.7 और स्त्रियों की संख्या 495701500.3 है । अनुपात 0 से 14 साल की उम्र में 35%, से 16 से 60 साल की उम्र में 58% और 60 साल के ऊपर 7% है ।

भारतवर्ष की जनसंख्या जनगणना 1991 के अनुसार 846302688 थी । इसमें से पुरुषों की जनसंख्या 439.23 दशलक्ष और स्त्रियों की 407.7 दशलक्ष थी । 35% जनसंख्या 10 साल के नीचे तथा 8% जनसंख्या 60 साल के ऊपर है । 15 साल से 29 साल की उम्र में 29.4% (2320000 दशलक्ष) जनसंख्या है । 13 से 35 साल के उम्र वयोमर्यादा में 38% जनसंख्या तथा इनमें से 80% जनसंख्या 257 दशलक्ष युवा युवतियों में युवानपिडिका, तारुण्यपिडिका व्याधि राष्ट्रीय स्तर पर पाया गया है ।

आयुर्वेद शास्त्र में तारुण्यपिडिका व्याधि का वर्गीकरण छुद्र रोग में संक्षिप्त रूप में किया गया है । उपचार स्वरूप कुछ बाह्य लेप कल्प का प्रयोग दर्शाया गया है । इस व्याधि का परिणाम रुग्ण के आनन पर होते हुये मन पर विपरीत आघात के रूप में होता है । इसका परिणाम चिंताजनित वातवृद्धि से तारुण्य पिडिका संप्राप्ति में दिखाई पड़ता है ।

तारुण्य पिडिका व्याधि का उद्‌भव स्त्री-पुरुष दोनों लिंगों में करीब-करीब समान प्रमाण में पाया जाता है । अविवाहित युवतियों में उग्ररूप के तारुण्यपिडिका से सामाजिक प्रश्न भी निर्माण होते दिखाई देते हैं ।

आयुर्वेद शास्त्र सिर्फ औषधि चिकित्सा शास्त्र न होते हुये संपूर्ण सुखी जीवन तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इस तत्वों को प्राप्त कर जीवन फलप्रद हो इसका उपदेश होता है ।

आज के युग में आनन (चेहरा), त्वचा, किस तरह कांतिमय दिखें तथा व्यक्तित्व प्रसन्न और दूसरों पर प्रभावकारी हो यह आंतरिक इच्छा प्रत्येक युवा युवतियों की होती है । वह यथार्थ और स्वाभाविक भी है ।

आज के युग में जीवन क्रम, वातावरण, आहारीय द्रव्य भी प्रदूषण युक्त है । इसका परिणाम आनन पर प्रायः होता है । किंतु व्यस्तता के जीवन की वजह से स्वतः के स्वास्थ्य की ओर ध्यान न देने से आनन की त्वचा की तरफ पूरा नहीं दिया जाता है । अतः युवा पिडिका व्याधि उसकी और बढे हुऐ रूप में दिखाई देती है ।

सात्म्य, असात्म्य, दिनचर्या, ऋतुचर्या का ख्याल न होने से पथ्य-अपथ्य का ध्यान न देने से, ज्यादातर समय घर के बाहर व्यतीत होने की वजह से, बाहर के आहारीय, विरुद्ध द्रव्य सेवन, जैसे आईसक्रीम, चाय, कोला, शीतपेय अति मात्रा में सेवन, अग्निमांद्य और व्याधिप्रतिकार क्षमता का ह्रास का परिणाम युवान पिडिका की उत्पत्ति है ।

आज के सुडौल प्रतियोगिता के युग में सौन्दर्य प्रसाधन का बहुत प्रमाण में उपयोग की वजह से आनन, उर, पृष्ठ, स्कंद प्रदेश पर असात्म्यता जनित युवानपिडिका की उत्पत्ति होती है ।

इन सबको देखते हुये शंखभस्म का चयन तारुण्य पिडिका की चिकित्सा के लिये अभ्यंतर मार्ग से प्रयोग हेतु किया गया । शंखभस्म का आयुर्वेदीय औषधि निर्माण शास्त्र और गुणधर्म शास्त्र में युवान पिडिका नाशनार्थ सभी जगह वर्णन पाया जाता है ।

शंख लक्षण :-

शंखस्तु विमलः चंद्रकाति समप्रभः ।
अशुद्धौ गुनदो नैव शुद्धस्तु सुगण प्रदः ॥ (शा.नि.)

शंख का आकार लंबाग्र होकर वह संकीर्ण, गोपुच्छ आकार का होता है । वह लंबाग्र मध्य भाग में विस्फारित होकर दोनों छोरों में संकीर्ण होता है । खुर्दरा, स्फटिक, सदृश उसका वर्ण होता है । उसका संकीर्ण हुआ छोर चमत्कारिक होता है । इसके ऊपरी छोर ढक्कण खोलने के स्क्रु के समान पिलादार व संकीर्ण हुये होते हैं । उसका निचला भाग चौड़ा होता है तथा अंदर का भाग खोखला होता है । बाहरी पृष्ठ भाग कठिन होकर उसका रंग हल्का सफेद होता है । ऊपर का भाग अतिखुर्दरा होकर आंतरिक भाग चमकदार, मृदु व पारदर्शक होता है ।

शंख ग्राह्य स्वरूप :-

वर्तुलाकार (गोलाकार), स्निग्ध, कांतियुक्त,

विभागाध्यक्ष, रसशास्त्र, आर.टी. आयुर्वेद महाविद्यालय, अकोला

सूक्ष्ममुखी स्वच्छ, चंद्र के समान सुंदर, बड़े आकार का, तथा भार में गुरु शंख ग्राह्य होता है ।

शंख के प्रकार :-

1. दक्षिणावर्त 2. वामावर्त

1. दक्षिणावर्त :-

दक्षिणावर्त शंख उसके घुमाव अथवा पेच दक्षिण की ओर होता है परंतु यह शंख दुर्लभ है । ये पुण्य के योग से ही प्राप्त होता है, अथवा पुण्यवान लोगों के पास होता है । जिनके पास यह है उनको लक्ष्मीपुत्र समझें ।

2. वामावर्त :-

वामावर्ता भिधः शंख सर्वत्र सुलभोमतः ।
अतः स एव वैद्यस्तु मारणार्थ प्रयुज्यते ॥ (र.त.)

इसका घुमाव अथवा पेच वाम ओर होता है । यह शंख सर्वत्र अर्थात् समुद्र, तालाब व जलीय प्रदेश में सुलभता से प्राप्त होता है । औषध निर्माण के लिये वैद्य लोग इस शंख का उपयोग करते हैं ।

शंख शुद्धि :-

शंखंतु खंडशः कृत्वा पोटल्यां स्थापयेतभिषक् ।
दोलायंत्रे चतुर्यामं पंचेजम्बिर वारिणा ॥
प्रक्षालयेतच्छख शंख प्रतातेनाम्भसातत् ।
इत्यं नाति चिरादेव शेखशुद्धिम् आनुयात ॥ (र.त.)

शंख के छोटे-छोटे टुकड़े करके वस्त्र में अथवा कपड़े में बांधकर उसकी पोट्टली तैयार करें । दोलायंत्र में निंबू रस द्राव भर कर उसमें यह पोट्टली लटकायें । दोलायंत्र को एक प्रहर अथवा 3 घंटे अग्नि देने के पश्चात् शंख के टुकड़े निकालकर पानी से धोने से शंख शुद्ध हो जाता है ।

शंखमारण - शुद्ध शंख, कोयला अथवा गोबर के उपलों की अग्निपर रखकर पाचन करें । अच्छी तरह पाचन होने पर वह फूल जाता है । दोनो अंगुलीयों के मध्य दबाने प़र मृदु हो दब जाती है । ऐसा होने पर उसे खरल में लेकर निंबू रस की तीन भावना देकर पश्चात् छाया में सुखाकर वस्त्रपूत कर उत्तम शंख भस्म तैयार होती है । (सिद्धभेषज संग्रह)

मात्रा :- 125-250 मि.ग्रा. दिन में तीन बार

अनुपान-जल

शंख गुण :-

शंखः सुशितलः क्षारस्त्वाम्ल पित्त विनाशनः ।
अग्निमांद्य हरोल्वल्यो ग्राही ग्रहणिका हरः ॥
परिणामोत्थ शुलघ्न स्तारुणडीका पहः ।
विष दोष हरो वर्णो मात्रा गुंजद्वयोन्मिता ॥
(रस धातु प्रकाश)

1. रस - कटु
2. विपाक - मधुर
3. वीर्य - शीत
4. दोष - पित्त. त्रिदोष
5. दूष्य - रस, रक्त, अस्थि
6. स्थान - यकृत, प्लीहा, ग्रहणी, नेत्र, मुख, कोष्ठग्रंथि, पचनंद्रीय, प्राणवह- स्त्रोतस

रोगघ्नता - तारुण्यपिडिका, परिणामशूल, श्वास, रक्तपित्त, अम्लपित्त, ग्रहणी, अतिसार, अग्निमांद्य, यकृत वृद्धि, प्लीहावृद्धि, शूल. नेत्ररोग, विषविकार, गुल्म, कांतिवर्धक, वर्णकारक ।

विशेष गुण - शंख भस्म शीतल, क्षारीय, अम्ल पित्त का नाशक, अग्निमांद्यनाशक, बलकर, ग्रॉही, संग्रहणीनाशक, परिणामशूल नाशक, तारुण्यपिडिका नाशक, विषदोषनाशक, कांति वर्धक है । उसी प्रकार नेत्र के लिए हितकर होकर लघु व पित्त, कफ, रक्त इनसे उत्पन्न होने वाले विकारों का नाश करता है । शूल व श्वास नाशक है।

चिकित्सात्मक अध्ययन :- तारुण्यपिडिका व्याधि में शंखभस्म का अध्ययन हेतु 110 X रुग्णों में 60 दिन तक प्रत्यक्ष परिणाम देखकर विविध निरीक्षणों को नोट किया गया है ।

साधन तथा सामग्री :-

1. यह संशोधनात्मक अध्ययन रा.तो. आयुर्वेद महाविद्यालय तथा रुग्णालय और अनुसंधान केन्द्र के बाह्य रुग्ण विभाग में संपन्न हुआ ।
2. कुल 110 रुग्ण का अध्ययन किया गया ।
3. शंखभस्म का निर्माण सिद्धभेषज संग्रह के पाठानुसार किया गया ।
4. शंखभस्म जिलेटीन के खाली कैप्सूल में भरा गया। वजन प्रत्येक की 125 मि.ग्रा. और 250 मि.ग्रा. ।
5. रुग्ण पत्रक विशेष रूप से तैयार कर उसमें रुग्ण का इतिहास और परीक्षण विस्तृत रुप से दर्शाया गया ।
6. तारुण्यपिडिका निदान के पश्चात रुग्णों का आयु के

अनुसार 2 वर्गों में विभाजन किया गया।

1. 13 से 18 वर्ष,
2. 19 से 23 वर्ष,
3. 24 वर्ष से ऊपर

7. शंख भस्म का सिर्फ अभ्यंतर प्रयोग किया गया। बाह्य द्रव्य उपयोग निषिद्ध रखा गया।
8. रुग्णों को सूचना दी गयी कि चेहरा आनन शीतजल से प्रक्षालन करें अथवा कोष्ठ जल का उपयोग करें।
9. तारुण्य पिडिका को छेड़ना या दबाना नहीं चाहिए।
10. पथ्य कर आहार विहार का सेवन करें।
11. चिकित्सा अवधि 60 दिन।
12. इस संशोधन के कुल 110 रुग्ण में से 15 महिला रुग्ण में पाया गया। शंखभस्म का संशोधनात्मक परिणाम अध्ययन दर्शाया गया है।

मूल्याकंन मापदण्ड (Criteria of Assesments) :-

1. शंख भस्म का प्रयोग 13 से 18 वर्ष के आयु रुग्ण में 125 मि.ग्रा. दो बार जल के साथ 60 दिन तक किया गया।
2. रुग्ण आयु 19 से 23 वर्ष में शंखभस्म का प्रयोग 250 मि.ग्रा. दो बार जल के साथ 60 दिन तक किया गया।
3. रुग्ण आयु 24 के ऊपर में शंख भस्म का प्रयोग 250 मि.ग्रा. दो बार जल के साथ 60 दिन तक किया गया।
2. रुग्णों के मूल्यांकन के लिए जिन रुग्णों को जरूरत महसूस हुई उन्हें 8 दिन के बाद या जिनको दैनिक परीक्षण, परामर्श की जरूरत थी उन्हें प्रतिदिन परामर्श परीक्षण के लिए बुलाया गया।

निरीक्षण और अनुमान :- तालिका क्रम :- 1

अ.क्र.	विवरण (Group)	पुरुष	स्त्री	कुल
1.	13 से 18 वर्ष	14	02	16
2.	19 से 23 वर्ष	72	11	83
3.	24 और आगे	09	02	11
	कुल	95	15	110

प्रथम तालिका में उम्रानुसार 110 रुग्णों का विभाजन दर्शाया गया है। ग्रुप 1 वर्ष 13-18 इस वर्ग में 14 रुग्ण पुरुष और 2 महिला रुग्ण को चिकित्सा दी गई दूसरे ग्रुप में 83 कुल रुग्णों में से 72 पुरुष रुग्ण और 11 महिला रुग्णो की चिकित्सा की गई तीसरे ग्रुप से कुल 11 रुग्णों में से 9पुरुष और2महिला रुग्णों की चिकित्सा अभ्यास किया गया उपरोक्त अभ्यास में महिला रुग्ण कुल 15 का चिकित्सा अभ्यास कर निरीक्षणों का आकलन किया गया।

तालिका क्रम :- 2

अ.क्र.	प्रदेश	चिकित्सा परिमाण	
		30 दिन	60 दिन
1.	आनन (गाल)	13	02
2.	ललाट	11	04
3.	हनु	12	03
4.	उ:र	06	09
5.	पृष्ठ	08	07
6.	स्कंध	05	10

जिन रुग्णों में औषधियों का सकारात्मक परिमाण 30 में पाया गया उनकी चिकित्सा बंद की गई।

1. आनन (गाल), कपाल (ललाट) हनु इन स्थानों पर पिडिकाओं में 30 दिनों में शंख भस्म का सकारात्मक परिणाम पाया गया।
2. उर:पृष्ठ इन स्थानों पर 30 दिनों पश्चात् विशेष बदलाव मिला नहीं किन्तु 60 दिनों में इन स्थानों की पिडिकाओं में निश्चित रूप से सकारात्मक परिवर्तन दिखाई दिया।
3. स्कंद प्रदेश की पिडिकाओं में तीव्रता में 30 से 60 दिन से महिला रुग्णाओं में विशेष बदलाव मिला नही।

निष्कर्ष :-

उपरोक्त महिला रुग्णों में शंखभस्म के अध्ययन का निष्कर्ष आनन, कपोल, सनु, हनु, पृष्ठ, स्कंद प्रदेश में से प्रमुखतः आनन, कपोल, हनु इन प्रदेश में 30 दिन के चिकित्सा से सकारात्मक लाभ पाया गया। यह हमें दर्शाता है कि शंखभस्म महिला रुग्णों के युवान पिडिका व्याधि में प्रायः मुखस्थान पर शंख भस्म का अच्छा उपशय दर्शाता है। जो आयुर्वेदीय औषधि गुणधर्म शास्त्र, रसधातु प्रकाश, रसतंत्रसार, सिद्धभेषज संग्रह इन ग्रंथों के विधान को सत्य साबित करता है।

आयुर्वेद में प्रमेहघ्न द्रव्य

* डा० गणेश चन्द्र उपाध्याय
** प्रो०पी०पी० शर्मा

प्रमेह को सम्पूर्ण मूत्र प्रणाली का रोग न समझकर (Diabetes mellitus) ही समझना चाहिए, क्योंकि आजकल अन्य प्रमेह भेद (रोग) देखने में बहुत कम मिलता है। अगर दिखाई भी देता है तो उस रोग में ग्रंथों में वर्णित प्रमेह पूर्वरूप नहीं दिखाई देते हैं। पूर्वरूप, रूप व चिकित्सा के आधार पर प्रमेह Diabetes Mellitus ही है। आयुर्वेद ग्रंथों में प्रमेह की अनेक औषधियाँ बताई गई हैं। उनमें हम दृष्टि डालें तो द्रव्यों में साम्यता नजर नहीं आती है।

चरक संहिता :- इस ग्रन्थ में प्रमेहाधिकार में कुल 52 द्रव्य आए हैं। इसमें किसी विशिष्ट योग में पड़े द्रव्यों की भी गणना है। योग को दोषानुसार, रोगी की अवस्था के अनुसार चरक ने ऐसे द्रव्यों का उल्लेख किया है जो प्रमेहघ्न नहीं थे। लेकिन चरक ने कारवेल्लक, जामुन आदि द्रव्यों का उल्लेख प्रमेह प्रकरण में नहीं किया है।

सुश्रुत संहिता :- इस ग्रन्थ में कुल 60 द्रव्यों का उल्लेख प्रमेह व मधुमेह चिकित्सा में किया है। वहाँ पर योग के आधार पर द्रव्य डाले हैं। सुश्रुत ने नए द्रव्यों में भारंगी, सारिवा जामुन को स्थान दिया है।

निघण्टुओं में :- चरक, सुश्रुत ने योगानुसार द्रव्यों को लिया, मगर निघण्टुओं में एक द्रव्य का वर्णन करते समय उन्होंने उसी अनुभव के आधार पर उसी द्रव्य के गुण-कर्म का वर्णन किया होगा जो प्रमेहघ्न गुण रखता हो, ऐसी अपेक्षा की जा सकती है।

धन्वन्तरि निघण्टु :- इसमें कुल 21 द्रव्यों का उल्लेख किया है, धन्वन्तरि निघण्टु में खदिर, पिप्पली विजयसार आदि द्रव्यों की गणना प्रमेहघ्न द्रव्यों में नहीं किया है। इसमें कुछ नए प्रमेहघ्न द्रव्यों का वर्णन मिलता है जिसमें मुख्यतः आरूक, जातिफल व शालपर्णी है।

सोढल निघण्टु :- सोढल ने तो चरक, सुश्रुत दोनों में वर्णित प्रमेहघ्न द्रव्यों को समाविष्ट कर दिया है। सोढल ने अहिफेन काकमाची, श्रृगाटक, वंश व करवीर का प्रमेहघ्न गुण बताया है तथा मामज्जक, गोक्षुर, गुडूची, मेषश्रृंगी का प्रमेहघ्न गुण नहीं बताया है।

मदनफल निघण्टु :- इसमें कुल 28 प्रमेहघ्न द्रव्यों का उल्लेख किया है। इसमें आम्रपुष्प, बाकुची, ब्राह्मी, एरण्ड, कोशातकी व लताकरञ्ज का प्रमेहघ्न गुण बताया है। मदनपाल ने आमलकी, अर्जुन, गुडूची, विजयसार का प्रमेहघ्न गुण नहीं बताया है।

कैयदेव निघण्टु :- इसमें कुल 34 द्रव्यों का वर्णन किया है। कैयदेव ने चक्रमर्द, एरण्ड, इन्द्रवारूणी, कदली जल, नारिकेल पुष्प सुनिष्वणक का प्रमेहघ्न गुण बताया है।

राज निघण्टु :- इसमें कुल 14 द्रव्यों का प्रमेहघ्न गुण बताए हैं। इसमें भूम्यामलकी, क्षीर विदारी, स्पृक, स्नुक पय का प्रमेहघ्नगुण बताया है।

इसने अर्जुन, देवदारु, धव, गोक्षुर, गुग्गुल, हरीतकी, इन्द्रवारूणी, कारवेल्लक, कटफल, खदिर, निम्ब, पिप्पली, विजयसार को छोड़ दिया है।

भावप्रकाश निघण्टु :- मिश्रजी ने 43 प्रमेहघ्न द्रव्यों का वर्णन किया है। कटभी व मेषश्रृंगी का प्रमेहघ्न गुण बताया है तथा रसोन को छोड़ दिया। सुश्रुत के बाद जामुन को किसी ने प्रमेहघ्न बताया ही नहीं है।

निष्कर्ष :- अन्य परवर्ती निघण्टुओं ने आधुनिक अनुसंधान के आधार पर ही द्रव्यों का वर्गीकरण किया है। भावप्रकाश निघण्टु तक ऐसा लगता है कि निघण्टुकारों ने पूर्ववर्ती का अनुसरण किया है। चिकित्सीय अनुभव की कमी लगती है, क्योंकि किसी निघण्टु ने आज के परिप्रेक्ष्य में महत्वपूर्ण प्रमेहघ्न औषध को छोड़ दिया तथा ऐसे द्रव्यों का भी वर्णन मिलता है जिसमें प्रमेहघ्न गुण है ही नहीं, अगर चिकित्सीय अनुभव का आधार निघण्टुओं की रचना हुआ होता तो हमें ऐसे द्रव्यों का वर्णन/संख्या मिलती जो वाकई प्रमेहघ्न है। 13 वीं शती व 17 वीं शती तक के निघण्टुओं में प्रमेहघ्न द्रव्यों की संख्या में भिन्नता भी आश्चर्यचकित करती है। आज के परिप्रेक्ष्य में, अनुसंधान के आधार पर रसोन, मेषश्रृंगी, निम्ब, खदिर, हरिद्रा, अर्जुन, भूम्यामलकी, जम्बू, विजयसार, कारवेल्लक, सप्तचक्रा, मामज्जक, बिम्बी, आमलकी, गुडूची आदि द्रव्य प्रमुख हैं।

---

* एम.डी. स्कॉलर ** एच.ओ.डी., द्रव्यगुण विभाग, आई.पी.जी.टी. एण्ड आर.ए. जामनगर, गुजरात

अम्लपित्त निदान चिकित्सा

[1]डा० महेश कुमार शर्मा, एम०डी० (काय चिकित्सा)
[2]डा० प्रमोद दीपक चतुर्वेदी, बी०ए०एम०एस०

अम्लपित्त शब्द दो शब्दों एवं अम्ल एवं पित्त (अम्ल+पित्त) के मिलने से बना है । अम्लपित्त में अम्ल शब्द पित्त की विशेषता बताता है । चरक ने पित्त का गुण स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर व कटु कहा है । सुश्रुत ने तीक्ष्ण, द्रव पूति (विस्रगन्धि), नील (अमावस्था) में पीत (निरामवस्था) में उष्ण एवं कटु रस होता है । विदग्धता को प्राप्त कर यह अम्ल हो जाता है । अग्नि की मन्दता होने से पित्त विदग्ध होकर अम्लता को प्राप्त हो जाता है । यह विपाक नही है -

पित्त हि विदग्धयम्लता युतैत्यग्नेर्मदत्वात् ।

(सु०सू० 41)

आचार्य चक्रपाणि ने **अम्लपित्त यति अम्लगुणोद्रिक्त पितम्**

(चरक चक्रपाणौः)

कहा है :-

आचार्य विजयरक्षित जी ने **विदाहाघम्ल गुणोद्रिक्त पितमम्लपितम् ।**

(मा०नि०मधु०टीकाकार)

कहा है :-

अर्थात् आहार विहारादि के व्यक्तिक्रम से पित्त विदग्ध होकर अम्लता को प्राप्त कर 'अम्लपित्त' रोग प्रकट होता है ।

निदान -

अम्लपित्त एक ऐसी व्याधि है जिसका सीधा सम्बन्ध है पाचन संस्थान से, मिथ्याआहार एवं विहार रोग की उत्पत्ति में विशिष्ट कारण होते हैं वे इस प्रकार हैं -

(अ) आहार
- भोजन के प्रकार
- अतिउष्ण
- अतिशीतल
- अतिगुरु
- अतिरूक्ष
- अतिअम्ल
- विदाही
- पित्त प्रकोपक

(द) भोजन की मात्रा
- भोजन
- अति भोजन

(स) मिथ्या आहार
- अध्यशन
- विषयासन

(ब) विहार
- अनुचित पंचकर्म
- अनुचित विरेचन
- अनुचित वमन
- अनुचित स्नेहन
- वेग धारण
- अतिस्नान आदि

(स) देश सम्बन्ध
- आनूप देश

(ग) देश विषमता
- काल सम्बन्ध
- काल विषमता

(घ) ऋतु सम्बंध
- वर्षा ऋतु में
- संचित पित्त
- ऋतु विषमता

(ह) विशिष्ट भोजन पदार्थ
- गुड़
- मिष्टान्न
- इक्षु विकार
- कुलथ विकार

वर्षा ऋतु का वर्णन निदान रूप में माधवकार ने भी किया है । इस ऋतु में पित्त का संचय आयुर्वेद मत में मान्य है लेकिन अगर कोई पुरुष पित्त प्रकुपित आहार विहारों का सेवन इसी ऋतु में करता है तो उस पुरुष में अम्लपित्त के लक्षण दिखायी देने लगते हैं ।

सम्प्राप्ति -

उपरोक्त कारणों के फलस्वरूप शरीर में स्थित दोष कुपित हो जाते हैं और मन्दाग्नि पैदा करते हैं अग्निमांद्य की स्थिति में पुरुष जो कुछ भी आहार आदि सेवन करता है जठराग्नि उसका सम्यक पाचन नहीं कर पाती है और वह ग्रहण किया गया आहार विदग्ध होता है । यह विदग्ध अन्न विकृत पित्त के साथ मिलकर अम्ल-पित्त उत्पन्न करता है ।

अम्लपित्त के विशिष्ट लक्षण -

---

1. लेक्चरर एवं इंचार्ज (काय चिकित्सा विभाग) 2. तृतीय व्यावसायिक अध्येता
श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेद, महाविद्यालय अस्थल बोहर, रोहतक

पाचन संस्थान सम्बन्धित लक्षण -

1. कंठस्तन विदाह 2. गुरू कोष्ठ 3. आंत्रकूजन
4. अरुचि 5. तृष्णा 6. हृदय दाह
7. अविपाक 8. वमन 9. हल्लास
10. दाहयुक्तअतिसार

मानसिक लक्षण

1. मूर्च्छा 2. भ्रम 3. मोह
4. प्रलाप 5. तमोदर्शन

सार्वदैहिक लक्षण

1. गौरव 2. ज्वर 3. स्वेद
4. कम्प 5. अंगपीतता 6. जृम्भा

विशिष्ट स्थानिक लक्षण

1. कर चरण दाह 2. हृत्छूल 3. शिरोऊजा

आयुर्वेद में अम्लपित्त से जिस रोग समूह को लिया गया है उसमें आधुनिकों को हाइपर एसीडिटी (Hyper Acidity), हाइपो एसीडिटी (Hypo Acidity), गेस्ट्राइटिस (Gastritis), गैस्ट्रिक एट्रोफी (Gastric Atrophy), गेस्ट्रिक या पोष्टिक अल्सर आमाशियक कर्कट (Gastric carcinoma) आदि सभी का समावेश हो जाता है। हृत्प्रदेश या आमाशय के क्षेत्र (Apigastric) की जलन आमाशय के लवणाम्ल के अधिक स्राव या कम स्राव दोनों ही अवस्था से मिलती है।

भेद -

1. दोष भेदानुसार - एक दोषज, द्वन्द्वज, सन्निपातज
2. गति भेदानुसार - उर्ध्वग, अर्धाग अम्लपित्त
3. साध्यासाध्यनुसार - नवीन-साध्य, जीर्ण-कृच्छ्रसाध्य
4. काल भेदानुसार - नवीन व जीर्ण

अम्लपित्त के उपद्रव -

काश्यप संहितानुसार- ज्वर, अतिसार, पाण्डु, शूल, शोथ, अरुचि, भ्रम।

सिद्धान्तानुसार - शीतपित्त, उदर्द, कोठ, विसर्प, उभगत-रक्तपित्त, ग्रहणीरोग।

पथ्यापथ्य -

पथ्य - मूंग, पुराना चावल, करेला, घृत, गेहूं, पिप्पली, हरड़, लहसुन, मधु आदि।

अपथ्य - तिल, माष, तैल, लवण, दही, मद्य, गुरू अन्न, अम्ल, कटु द्रव, पित्त प्रकोपी आहार-विहार।

अम्लपित्त चिकित्सा के सिद्धान्त -

वृद्ध माधव, योगरत्नाकर व भैषज्यरत्नावली में निम्न सिद्धान्त मिलते हैं।

संशोधन चिकित्सा -

वमन - सर्वप्रथम प्रत्येक अम्लपित्त में वमन करावे विशेषकर अत्यन्त तीव्र दाहयुक्त अम्लपित्त में, ऊर्ध्वग अम्लपित्त में तथा ककोल्वण अम्लपित्त में।

अनुवासन - वमन विरेचन के पश्चात्।

रक्तमोक्षण - अन्तिम उपाय।

संशमन चिकित्सा -

एक द्रव्य चिकित्सा - आंवला, अमृता, एला, कटुका, विल्व, गोघृत, प्रवाल।

मुख्य योग - अविपत्तिकर चूर्ण, अम्ल पित्तान्तक चूर्ण, सूतशेखर, लीला विलासरस, पञ्चामृत पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, कामदुधा रस, शंख भस्म, द्राक्षावलेह, कपर्द भस्म, प्रवाल पंचामृत आदि।

सिद्ध योग -

1. सूतशेखर - 200 मि.ग्रा.
   शंख भस्म - 200 मि.ग्रा.
   सर्जिका क्षार-400 मि.ग्रा./1x4 द्राक्षा कल्क के साथ
2. अविपत्तिकर चूर्ण - 3 ग्राम
   नारिकेल लवण - 1 ग्राम
   सर्जिका सत्व - 1 ग्रा./ 1x2 भोजनोपरान्त जल से।
3. लीला विलास रस - 200 ग्राम
   शंख भस्म - 200 ग्राम
   कपर्द भस्म - 200 ग्राम। 1x2 मधु से।

अम्लोदासीन का योग -

1. कपर्द भस्म - 300 मि.ग्रा.
   शंख भस्म - 300 मि.ग्रा./ 1x2 गर्म जल से।

Effect of Bilwa (Aegle marmelos) Patra Swarasa on Gastrointestinal Tract

* Dr. Laxmi N. Gupta
** Dr. C.B. Jha

Bilwa (*Aegle marmelos* Corr.) is a well known drug used in the management of disease of gastrointestinal tract. It is abundantly available through out the country. It is the chief constituent of Dashamoola (Su.Su. 38/39). Unripe fruit of Bilwa pacifies Vata and Kapha doshas. It has katu, tikta and kashaya rasa, snigdha and teekshna guna and ushna virya. It has grahi property and improves appetite. The ripe fruit of Bilwa has madhura rasa as anurasa. It is heavy to digest and produces vidaha and vistambha in the body. It vitiates the doshas and expels out foul smelling vayu (Su.Su. 46/174-175). The fruit and leaf are also useful in curing various diseases. No scientific work has been reported so far on the effect of Bilwa Patra Swarasa on gastrointestinal motility. Efforts were made to evaluate the effect of Bilwa Patra Swarasa on gastrointestinal tract in albino rats experimentally.

Pharmaceutical study :

Extraction of Bilwa Patra Swarasa was made by following the simple Swarasa Nirmana vidhi described in Sharngadhara Samhita Madhyama Khanda (S.S.M.K. 1/2)

Preparation of Bilwa Patra Swarasa :

Material :

For the preparation of Bilwa Patra Swarasa fully grown green leaves of Bilwa were collected.

Name of the ingredient	Bilwa
Latin Name	*Aegle marmelos* Corr.
Part used	Leaf
Quantity	As per requirement

Equipments :

Beaker, Cloth, Mixie.

Principle :

Grinding and Squeezing (Nispidana).

Procedure :

1. The leaves of the Bilwa were properly washed.
2. The leaves were put in a mixie and grinded well.
3. The grinded material was squeezed through a cloth.
4. The filtrate i.e. Bilwa Patra Swarasa was collected in a beaker.

Precautions :

1. The leaves of the Bilwa should be fresh, uninfected and green.
2. The leaves should be well matured but neither too young nor dry.

Result :

Quantity of Bilwa Patra taken = 100 gm
Quantity of Swarasa obtained = 22 gm

The average yield was 22% of weight of Bilwa Patra after repeating the process 7 times.

Chemical study :

Bilwa Patra Swarasa was subjected for following tests :

1. Organoleptic tests :
2. Physico-chemical tests :

1. Organoleptic test :

The following table shows the different characteristic of Bilwa Patra Swarasa :

Name of sample	Bilwa Patra Swarasa
Colour	Green
Odour	Typical smell of Bilwa
Taste	Astrigent Bitter
Consisteny	Liquid

2. Physico-chemical tests :

The following table shows the result of physico-chemical Tests of Bilwa Patra Swarasa:

S.No.	Name of the Experiment	Result
i.	Specific gravity	1.11
ii.	pH Value	4.9
iii.	Determination of Solid Content	42.18%

Aim of the experimental study :

Experimental study was conducted with an objective of evaluating the effect of Bilwa Patra Swarasa on gastrointestinal tract.

Material and Methods :

The whole study was conducted on inbreed albino rats of Charles-Foster strain, weighing 125 gm to 175 gm of both sexes which were procured from Central Animal House, I.M.S., B.H.U., Varanasi. The animal were housed in plastic cages (43 x 27 x 15 cm) and were kept under standard laboratory condition with controlled

---

* M.D. (Ay.), Dept. of Rasa Shastra, I.M.S., BHU, Varanasi
** Prof. & Head, Dept. of Rasa Shastra, I.M.S., BHU, Varanasi

temperature (25 ± 5° C) and lighting. The animals were allowed free access to food (Hindustan Lever rat pellets) and water.

Grouping of the animals

Eight albino rats were used in the study; four animals were kept under control group and four animals in treated group (Bilwa Patra Swarasa). These animals were acclimatized for ten days in the animal house of Department of Physiology, I.M.S., B.H.U., Varanasi before commencement of the experiment. The animals of the treated group were administered the trial drugs for a period of 7 days. The animals were kept on fast for 18 to 20 hours before starting the experiment to clear their stomach of any food particles. The animals were allowed free access to water during the fasting period.

Dose determination and administration of the trial drug :

Bilwa Patra Swarasa was given in dose of 1 ml/100 gm body weight of albino rat twice a day intragastrically. The animals were fed the dose twice a day i.e. between 10 to 11 a.m. and 4 to 5 p.m. The control group animals were fed with water in identical volume. The animals were weighed daily in the morning and the diet consumption of the animals was recorded daily.

Procedure :

The animal was given 5 ml of Barium suspension in isotonic saline (0.9% w/v) containing 1.5 gm of Barium Sulphate (Eskay Fine Chemicals, Mumbai) was introduced into the stomach by a 5 ml syringe. After half hour the animal was sacrificed, the abdomen was opened by a midline incision.

The length of small intestine was measured by the method of Barry et al. (1961) with some modifications. A wooden block, fixed with a meter scale was used for the purpose; upper surface of the block was kept continuously wet with 0.9% w/v saline (37°C). The small intestine extending from the gastroduodenal junction to ileocaecal junction was laid out on the block, closely along the meter scale and given manual stretch gently, on either of its ends, until it was just straight, thereafter the organ was left lying free on the block for one minute. At the end of the period, its total length was measured and then cut open lengthwise, to ascertain accurately the position of Barium-head on the scale.

The stretch was isolated between two ligatures, one at the oesophageogastric junction and the other at gastroduodenal junction. The stomach was weighed and then cut open and washed for its luminal contents into a beaker with normal saline (0.9% w/v) till no Barium particles could be visualized on the mucosal surface. The wall of the stomach was dried mobbed with filter paper and the weight of empty stomach was recorded. The total luminal content was found by difference in the weights.

The intestinal transit and the gastric emptying were calculated on the basis of the method described earlier.

Calculation :

Gastric emptying is defined as the precentage of the administered Barium Sulphate which has left the stomach during the specified period (half hour) and is calculated by the formula :

$$\frac{Px - Pa}{Px} \times 100$$

Where Pa = Barium Sulphate recovered from the stomach.

Px = Barium Sulphate introduced into the stomach.

Chemicals :

The Sodium Chloride used were of Analar grade and was obtained from Sigma Chemicals. For the Barium meal, Microbar powder from Eskey Fine Chemicals, Mumbai was used. Stastistical significance was assisted by Student's 't' test.

Observations and Results :

The following effects of Bilwa Patra Swarasa are observed.

1. Body weight :

The effect of Bilwa Patra Swarasa on the body weight of experimental animals is shown in Table.

Details	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Day 1	149.12 ± 32.121	146.00 ± 19.613	16.060	9.806	t = 0.17 p > 0.05
Day 2	149.63 ± 30.874	149.25 ± 19.242	15.437	9.621	t = 0.19 p > 0/05
Day 3	150.75 ± 30.303	146.13 ± 18.737	15.151	9.368	t = 0.26 p > 0.05
Day 4	152.00 ± 30.321	145.63 ± 19.397	15.160	9.698	t = 0.35 p > 0.05
Day 5	153.00 ± 29.743	145.38 ± 18.300	14.872	9.150	t = 0.44 p > 0.05
Day 6	152.25 ± 28.620	145.00 ± 18.731	14.310	9.365	t = 0.42 p > 0.05
Day 7	152.00 ± 29.223	141.50 ± 18.339	14.612	9.170	t = 0.61 p > 0.05

The body weight of the animals fed with Bilwa Patra Swarasa remained constant for 3-4 days of treatment. Among the four animals of treated group, in one animal decline in the body weight was observed on the second day of treatment. However in all the treated animals, the decline in the body weight could be observed on 4th, 5th and 6th day of treatment. The main difference in the body weight of treated and control group was not statistically significant.

But the consistency of the observation indicates adverse effect of Bilwa Patra Swarasa on the body weight of the animals.

2. Diet consumption :

The effect of Bilwa Patra Swarasa on diet consumption of the animals is shown in the Table A & B.

Table A : The effect of Bilwa Patra Swarasa on diet consumption (per gm body weight in mg)

Days	Control Group				Treated Group			
	Rat 1	Rat 2	Rat 3	Rat 4	Rat 1	Rat 2	Rat 3	Rat 4
Day 1	113	100	92	100	111	123	103	98
Day 2	129	101	109	106	105	122	99	106
Day 3	145	113	109	118	124	115	94	106
Day 4	153	113	103	116	130	103	88	111
Day 5	142	105	109	108	118	109	101	111
Day 6	122	84	108	114	110	121	101	97
Day 7	129	87	112	114	106	113	98	92

Table B : The effect of Bilwa Patra Swarasa on diet consumption

Details	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Day 1	0.1019 ± 0.008	0.1044 ± 0.009	0.004	0.005	t = 0.40 p > 0.05
Day 2	0.1117 ± 0.012	0.1084 ± 0.010	0.006	0.005	t = 0.43 p > 0.05
Day 3	0.1217 ± 0.016	0.1099 ± 0.013	0.008	0.006	t = 1.14 p > 0.05
Day 4	0.1216 ± 0.220	0.1085 ± 0.17	0.011	0.009	t = 0.94 p > 0.05
Day 5	0.1166 ± 0.018	0.1103 ± 0.007	0.009	0.004	t = 0.67 p > 0.05
Day 6	0.1075 ± 0.016	0.1075 ± 0.013	0.008	0.007	t = 0.00 p > 0.05
Day 7	0.1110 ± 0.017	0.1027 ± 0.009	0.009	0.005	t = 0.84 p >0.05

Diet consumption of the animal fed with Bilwa Patra Swarasa appeared to decline on the second day of treatment except one animal which consumed more diet. By the fourth day the diet consumption has declined in two of the four animals and by 6th and 7th days of treatment all the animals consumed less diet when compared with the di consumed on first day of treatment. Th observation indicates that Bilwa Patra Swaras reduced the appetite of animals. The difference consumption of diet between the control and treate groups of animals was not statistically significan

3. Effect of Small Intestine :

The effect of Bilwa Patra Swarasa on the small intestine is shown in Table.

Small Intestine	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Length	91.50 ± 1.915	88.50 ± 4.796	0.957	2.398	t = 1.16 p > 0.05
Intestinal Transit	66.72 ± 11.117	72.75 ± 2.630	5.558	1.315	t = 1.05 p > 0.05
Weight	6.548 ± 1.025	5.570 ± 0.442	0.512	0.221	t = 1.75 p > 0.05

(i) Effect of Length of Small Intestine :

The totals of four animals were fed with Bilwa Patra Swarasa and identical numbers of animals fed with tap water were used as control. The length of small intestine is found to be decreased in the animals treated with Bilwa Patra Swarasa. This is a significant observation despite the fact. The observation is not statistically significant. The experiment provides evidence that Bilwa Patra Swarasa might have produced spasm of the small intestine in albino rats.

(ii) Effect on Intestinal Transit :

The values obtained from four treated animals when compared with control group showed a significant increase in intestinal transit of Barium meal in the treated group. When the values of the length of small intestine in the treated group of animals are observed, the increase in the intestinal transit of Barium meal in the treated group becomes self explanatory i.e. the Bilwa Patra Swarasa increase the intestinal transit of Barium meal by increasing the tone of musculature of small intestine.

(iii) Effect of Weight of Small Intestine :

There was no effect on the weight of small intestine in the treated group as compared to the control. However, the difference in the weight of small intestine in the control and treated group was not statistically significant.

4. Effect on Large Intestine :

The effect of Bilwa Patra Swarasa on the large intestine is shown in Table.

Large Intestine	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Length	13.750 ± 0.500	14.250 ± 0.500	0.250	0.250	t = 1.41 p > 0.05
Weight with contents	5.253 ± 1.916	4.123 ± 0.261	0.958	0.130	t = 1.17 p > 0.05
Weight without contents	2.778 ± 0.761	2.835 ± 0.433	0.761	0.433	t = 0.13 p > 0.05

(i) Effect of the length of large intestine :

There was no change in the length of large intestine in response to drug treatment.

(ii) Effect on the weight of Large Intestine :

The animals treated with Bilwa Patra Swarasa showed no considerable effect in the weight of large intestine when compared with the control group. However, the difference in the weight of the large intestine in the control and treated animals was statistically not significant.

(iii) Effect on the content of Large Intestine :

The mean difference between the contents of the large intestine of control and treated group was found statistically not significant.

5. Effect on Stomach contents :

The effect of Bilwa Patra Swarasa on the stomach content is shown in the Table.

Stomach	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Weight with contents	2.015 ± 0.482	1.755 ± 0.129	0.241	0.064	t = 1.04 p > 0.05
Weight without contents	1.215 ± 0.195	1.273 ± 0.119	0.097	0.059	t = 0.50 p > 0.05

Though the weight of the content of the stomach in the treated group of animal was lower as compared to the control, but it does not report the dry weight of the content. Therefore, it does not provide any idea about emptying of the stomach.

Discussion :

Bilwa Patra Swarasa reduced dietary consumption of the animals and it also slowed the body growth of the treated animals when compared with the control. The results of the present studies imply that leaves of the Bilwa tree may not be taken in excess and continuously for several days.

The observation made on the animals treated with Bilwa Patra Swarasa suggests that when given daily for 7 days it enhances the tone of the musculature of small intestine in albino rats. This is indicated by the reduction in the length of small intestine. The feature of reduction in length of intestine in treated group of animals was constant but the value when compared with the controls was not statistically significant. Nevertheless, observations seem to be of great importance. This is for the simple reason that continuous intake of Bilwa Patra Swarasa for serveral days might produce spasm of the gut with resultant accompanied features of constipation diarrhoea and abdominal pain.

The intestinal transit of Barium meal w seen to be enhanced in albino rats treated w Bilwa Patra Swarasa when compared to the contr These observations support the earlier observati of decrease in the length of small intestine treated group. Since the increase in tone intestinal musculature would cause both decrea in the length of small intestine and increase in t transit rate of the Barium meal in the organ.

The classical texts such as Cara Samhita, Sushruta Samhita, Astanga Hridaya a Bhavaprakash do not describe the limitations intake of the Bilwa preparations. The present stu however suggests that Bilwa Patra Swarasa sho not be taken for longer periods.

Conclusion :

Bilwa Patra Swarasa reduced the dieta consumption and also slowed the body growth the treated animals. Bilwa Patra Swarasa wh given twice a day for 7 days enhanced the tone the musculature of small intestine in albino ra There was reduction in the length of small intesti and increase in the intestinal transit. These findin prove the grahi effect of the drug Bilwa.

बैद्यनाथ

जीवनकल्प

दुर्बलता, कब्जियत, अग्निमांद्य, कैल्सियम
एवं खून की कमी में लाभदायक

General rules for collection of medicinal plants

* Prashant Kumar Jha
** T. N. Pandya

Ancient herbals contain many synonyms, vernacular names and illustrations to enable people to identify the plants simply and surely considering a mistaken identification as fatal or better to say disaster. In now the present world, most of the raw drugs are obtained from commercial source rather than collecting own plants for medicinal uses from themselves Commercial suppliers hardly believe to make any standard for original drugs. Yes, in developed countries few of the plants are cultivated with parameters set by recognized institutions.

For any medicinal plant, not only it is important to know which part of the plant holds the active principle, but also when the amount of the active principle is at its highest concentration, hence the time for harvesting becomes automatically important and it is well known performed fact of nature to understand the particular growth cycle of plants viz., annuals, biennials, or perennials.

General rules of Collection

Weather and time, place and method of collection affect the value retention of the drugs from plant origin. Herbal drugs are insisted to be gathered in dry weather, as herbs collected in moist or rainy periods are generally weaker and more apt to spoil. The time of collection hardly remains far from this fact as plants materials are suggested to gather in the cool of the morning after the dew has evaporated, or in the evening before the dew forms on the plant. Gather before the sun is high, for the sun causes the leaves to droop, and some of the plant's valuable oils are released into the atmosphere. Wild plants are preferred to be collected from dry soils, exposed to clean air and abundant sunshine if the nature of their growth allows. In each case gathering should be selective according to the type of plant and the part to be used as:

Flowers: Buds such as cloves are gathered when about to open from the bud, but any lengthy delay will result in loss of the essential oils. With larger flowers, the petals should be removed before drying. With some flowers, only the petals are preserved and the colorless claws are cut away, but flowers having an odorless calyx are entirely preserved. When the flowers are too small to pick singly they are cut with part of the stalk. For Kehsar, Nagkeshar etc. collection of pistils and stamens are made after opening of the flower. The heads should be plucked when the seeds are brown and the stalks are dry-looking; they can be separated with slight threshing without making any delay otherwise seeds may drop. Umbels are gathered easily by spreading paper in a basket and cutting them directly into it, to prevent the loss of seeds that are ready to fall, care is taken to thresh very gently the seeds in the finer heads or pods, so as not to bruise the seeds; the umbels should be rubbed between the palms of the hands, with the seeds and chaff being separated through an appropriate sieve which permits passage of the seed, but not the coarser chaff. The chaff is also separated by holding the seeds high and pouring them slowly in a gentle breeze onto a canvas or other appropriate covering. Oily seeds from odorous plants and those containing volatile, effervescent principles should be gathered every year, as much potency is lost in storage. Other seeds with more permanent and stable properties can be kept several years.

Fruit and seeds: Gathering is done when the fruits are succulent and ripe (except when specified to be gathered in the unripe stage, as with Vidanga), but before they fall spontaneously e.g., dill, black pepper, cardamon seed etc. For the berries such as Kakmachi, Physalis etc. collection should be done when ripe. Juniper berries are usually in two sets of berries on the bush, the green ones and the dark ones. In second year they become dark while in first one they are green. Only dark ones are collected. There are three kinds of seeds: those with naked heads (fennel, parsley), those in pods (mustard, cresses), and those

* Institute Of Medicinal Plant Sciences, Gujarat Ayurved University
** IPGT&RA, Gujarat Ayurved University

surrounded by fleshy fruits (melon, cucumbers). They are collected accordingly when the seeds are matured. The seeds of fleshy fruit must be removed and separated from the surrounding membranes and wet matter, which should be removed after the meat or fruit, has become fully ripe and succulent. Seeds in pods should be left on the plant until fully ripe and mature, and plucked after the plant begins drying; and these seeds may be separated (dislodged) from the pods with a strong stroke or two of the plant upon the floor.

Excrescences: Such as nutgall, oakgall etc. should be collected when the leaves are matured, after the strength has risen from the roots.

Leaves: The leaves of vasaka, eucalyptus, senna, bimbi etc. should be gathered as soon as fully matured, before flowering or after maturation of the fruit as the medicinal value shifts in the growing stages from the leaf again. Care should always be taken to gather the leaves when the potency is highest in that particular part without totally stripping any herb while gathering leaves to avoid damage to the plant. They should be collected from different area of the plants without robbing the all from the bush or trees. The large leaves appearing before the stalk appears usually are more juicy and valuable than those that extend later from the stalk, as the former have the full nourishment of the root, but these often lose their value and die as the stalk begins to rise.

Stem: For the herbaceous stem gathering is preferred after foliage has appeared, but before the blossoms develop but in case of woody plants collections are done in autumn after the foliage falls and the leaves decay, and before vegetation occurs in the spring. To collect the top such as broom etc. only one inch or less is cut out when consumed raw from the plants having medicinal potential to keep them ready for further exploitation. Twigs are collected soon after the flowers have decayed.

The woods of santalum, quassia, guaiacum etc. gathering is made when the active principles are most concentrated in them, which is in the spring or autumn, and preferably from older trees. The alburnum part (the young soft wood o dicotyledonous stem, the tissue outside the he wood and near the cambium) is to be rejecte and with resinous woods only the heavier mate that will sink in water should be selected.

Bark: Barks are generally collected eith in the spring or autumn. Resinous barks such cinchona, cinnamon, white oak, pomegranate e are preferably gathered in the spring before t flowering season. Other gummy barks are collecte in autumn after the foliage has fallen. Genera the barks from younger trees should be used, their medicinal properties are usually more viab and easily extracted. It is always taken care separate the decayed parts and impurities fro the good barks to be used, and the rougher bar should be scraped or shaven to use only the inn bark.

Roots and Rhizomes: It is general quo among the botanical intellects that the roots annuals and biennials usually have limited valu whereas the roots of perennials possess gre virtue, which generally increases in potency ov the years. Roots should be gathered in the ear part of spring when the plant juices a concentrated. In case of annuals, gathering completed before the flowering season and n after as the root becomes less active. In bienni roots collection is made in the autumn of the fi year, after the foliage has fallen to use only seedli roots as the full medicinal strength becom concentrated. Perennial roots should be collecte in autumn after the leaves and flowers (or top are fully matured, or in the springtime before grow period commences as the sap returns to the roo If the root is covered by tough bark, it should peeled while fresh, wherein it slips easily and do not adhere. For the tubers, bulbs, corms e gathering is done similarly as for roots being su that tubers are not damaged in collection, becau many of them lose medicinal potency when into too deeply

Gum-Resins: The gums, oleo-gums, ol gum resins and resins which come to the surfa of barks are easier to collect in the cool of the d (morning and evening) when they are more solidified. A tapping procedure should be used to extract the saps.

We have talked about that other than the different organized or unorganized drugs, the nature of the plants also needs to pay attention before collection as general annuals are gathered when about to flower or in flower while aromatic annuals are gathered after the flower buds are formed while in biennials, gathering of the leaves of the second year is usually as first year leaves do not have their full medicinal value, before the stalk begins to shoot. All the suggestions automatically the real exploiting habit of pharmaceutical and cosmetic industries, herbal traders relishing the most famous trends of present era as "Time of herbs", "Return to conventional medicines" and many other aesthetically pleasing talks worldwide. World health organization (WHO) is involved with its duty issuing the guidelines over the GACP (Good Agricultural and Collection Practices) to GMP (Good Manufacturing Practices), but whether the genuine drugs are coming to market? Are the concerned human sources correctly identifying them? Who are given with the authority to overlook? How many of the numbers of plant species still need their chance to be part for human welfare? Answers are always there with, if the enthusiastic industries and Government of concerned state without any prejudices give the talents of related area chances to prove them and bring out many other alternatives. Definitely our future would be golden having options to opt.

स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना,
आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन,
भूख न लगना तथा ऋतु
धर्म के समय होने वाली तकलीफ
व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है।

Medicinal Uses of Orchid Plants

Dr. Anil Kumar Dhiman, *M.Sc., Ph.D. FBS, FES, FUW*

Introduction

The nature has blessed us with numerous gifts in the world. The plants are one of them, which form the basis of our lives and give us not only the food and shelter but also the medicine to cure ourselves. Orchid plants are one of the parts of plant communities, forming the family Orchidaceae, which is represented by terrestrial, epiphytic or saprophytic, often perennial herbs with rhizomes or tuberous roots and leafy or scapose stem with pseudo-bulbs or aerial roots. Its flowe are beautiful, coloured and showy. About 2500 plant species of orchids with about 900 gene forms Orchidaceae family of plants. Of them, abo 128 genera and 890 species are found in India. I below given table, some of the orchid plants a being discussed, which are generally used in fol system or traditional system of medicine in variou parts of the country.

Table : Orchid Plants used as Medicine in Traditional System of Medicine

Sl. No.	Botanical Names	Common Names	Distribution	Medicinal Uses
1.	*Acampe papilosa* (Lindley) Lindley (Syn. *Saccolabium papillosum* Lindley)	-	Lower Himalayan mountains, from Sikkim eastwards Ganga Delta etc.	Roots in Gout and rheumatism.
2.	*Aerides odorata* Lour. (Syn. *A. suavissima* Lindley)	-	Tropical Himalayas, Sikkim, Khasia hills, Sylhet and Chittagong	Whole plant as anti-tuberculosis and as resistant for tuberculosis
3.	*Bulbophyllum neilgherrense* Wight	-	Malabar and Nilgiri hills	Pseudobulbs to streng then the body and as tonic.
4.	*Coleogyne corymbosa* Lindley(Syn. *Pleione corymbosa* (Lindley) Kuntz.	-	Himalayas between 1700-2800 m	Pseudobulbs in burning sensations.
5.	*Coelogyne cristata* Lindley(Syn.*Pleione corymbosa* (Lindley) Kuntze	Gondya	Submontane to montane Himalayas	Infusion of psuedobulbs in constipation and as aphrodisiac.
6.	*Coelogyne punctulata* Lindley	Tikhiti	Assam	Pseudobulbs for relief in burning sensation and wounds.
7.	*Epiactis helleborine* Lindley(Syn. *E.latifolia* (Linn.) Allioni; *Serapias helleborine* Linn.; *S. latifolia* (Linn.) Hudson)	Trindrya, Helloboraine	Montane to alpine Himalayas	Infusion of leaves in intermittent fevers; rhizomes as aphrodisia
8.	*Cymbidium ensifolium* (Linn.) Swartz		Sikkim and Khasia hills	Stem and flowers for diseases of the eyes.

Medicinal Uses of Orchid Plants

Sl. No.	Botanical Names	Common Names	Distribution	Medicinal Uses
9.	*Dactylorhiza hatagirea* (Don.) Soo. (Syn. *Orchis latifolia* Linn.)	Angulako, Hathajari, Marsh orchid	Western temperate Himalayas from Nepal to Kashmir	Tubers as astringent, expectorant, tonic and in wounds; also in bone fracture and roots in coughs and as tonic.
10.	*Dendrobium desniflorum* Wall.	Akongtong, Balgato	Assam	Whole plant in bone-fracture.
11.	*Dendrobium ovatum* (Willd.) Kranzl.	-	Western Ghats and West Coast of Chennai.	Whole plant for the disorders of the abdominal.
12.	*Eria andamanica* Hook. f.	Hoal sag	Andamann islands	Pseudo-bulbs to strengthen the body.
13.	*Eria pannea* Lindley	-	Sikkim Himalayas and Khasia hills	Roots and leaves for the treatment of pains of the bones.
14.	*Eulophia dabia* (D. Don) Hoch. (Syn. *E. campestris* Lindley; *Blettia dabia* D. Don)	Salip misri	Submontane to montane Himalayas, Kashmir to Sikkim and adjacent regions	Tubers in cough and colds; also as blood purifier.
15.	*Eulophia explanata* Lindley	Kauwa – chhid	Maharastra	Whole plant in wounds, pseudobulbs for impotency,sexual disorders and sprmatorrhoea.
16.	*Eulophia herbacea* Lindley	Bansingara	Maharastra	Peseudobulbs as tonic.
17.	*Flickingeria fimbriata* (Bl.) Hawkes(Syn. *Dendrobium macreraei* auct non. Lindley; *Desmostrichium fimbriatum* Bl.)	Jivanti	Western ghats of Mumbai and Chennai	Whole plant as astringent, cooling and aphrodisiac.
18.	*Goodyera repens* (Linn.) R. Br.	Girwara, Lady's Tresses	Montane and alpine Himalayas, Kashmir to Arunachal Pradesh	Plant paste externally applied in syphilis and internally extract as blood-purifier and tonic. Also used for the treatment of eye diseases.
19.	*Gymnadenia orchidis* Lindley	Hathijiri	Uttar Pradesh	Roots in gasritstis, gonadic and urinary disorders.
20.	*Habenaria cuminate* (Thw.) Trimen	-	Kashmir to Garhwal region	Roots for strengthening the body and as tonic.

Sl. No.	Botanical Names	Common Names	Distribution	Medicinal Uses
21.	*Habenaria clavigera* (Lindley) Dandy (Syn. *H. densa* Lindley)	Bhyathini	Sikkim	Tubers eaten as tonic.
22.	*Habenaria commelinifolia* (Roxb.) Lindley	Ankara, Devsunda	Sikkim, Maharastra	Whole plant in nose bleeding and tubers in snake-bite wounds.
23.	*Habenaria crinifera* Lindley	Bonsirso	Sikkim	Whole plant for the treatment of headache.
24.	*Habenaria edgeworthii* (Syn. *Platanthera edgeworthii* Hook.f ex Collet;) R. Br.	-	North – west Himalayas between 1500-3000m, Kashmir to Kumaon	Bulbs as constituent of *asthavarga* in ayurvedic medicine.
25.	*Habenaria latilabiris* (Lindley) Hook. f.	-	Temperate Himalayas From Kashmir to Sikkim and Central India	Roots and bulbs as blood purifier.
26.	*Habenari longicorniculata* Grah. (Syn. *H. longecalcarata* Rich.)	Wagasura	Maharastra	Tubers in swellings and rheumatic pains.
27.	*Herminium lanceum* (Thunb. ex Swartz) Vuijk (Syn. *H. angustifolium* (Lindley) Benth. & Hook. f.; *Aceras angustifolium* Lindley; *Ophrys lancea* Thunb. ex Swartz)	Jalya, Musk orchid	Montane and alpine Himalaya, Kashmir to Arunachal Pradesh	Plant – extract in suppressed urination.
28.	*Malaxis acuminta* D. Don(Syn. *Microstylis wallichi* Lindley)	Jeevak	Submontane to montane Himalayas, Himachal to Arunachal Pradesh	Bulbs as tonic and in bronchitis.
29.	*Malaxis muscifera* Kuntze(Syn. *Microstylis muscifera* (Lindley) Ridley	Jevaak – bhed	Montane to alpine Himalayas, Kashmir *to* Arunchal Pradesh	Underground parts in powder form or in extract form as tonic.
30.	*Pecteillis susanne* (Linn.) Raffin (Syn. *Orchis susannae* Linn.)	-	Tropical Himalays form Garhwal eastwards, the Khasia, Naga and Manipur hills	Bulbs for the treatment of blisters in burns.
31.	*Pholidota articulata* Lindley	Jeevanti	Submontane to montane Himalayas, from Garhwal to Arunachal Pradesh	Whole plant as tonic.

Sl. No.	Botanical Names	Common Names	Distribution	Medicinal Uses
32.	*Pholidota imbricata* (Roxb.) Lindley	Patharkela	Sikkim and Assam	Bulbs in abdominal pains, rheumatism, worms and body pains.
33.	*Pholidota pallida* Lindley	Tholkabad	Sikkim and Assam	Pseudo-bulbs externally on cuts as haemostatic, roots in stomachache, rheumatism and gouts.
34.	*Satyrium nepalense* D. Don	Salang-misri	Montane to alpine Himalayas, Kashmir to South India	Rhizomes as aphrodisiac and in diarrohea; tubers also eaten as tonic.
35.	*Spiranthes sinensis* (Persoon) Ames (Syn. *Neottia sinensis* Persoon, *N. australis* R.Br.)	Phirlya	Submontane to montane Himalayas, Central and South India	Plant-decoction in intermittent fever, tubers as tonic.
36.	*Vanda cristata* Lindley	-	Submontane to montane Himalayas, Garhwal to Arunachal Pradesh	Stem and leaf-extract as tonic.
37.	*Vanda teres* Lindley	Banda	Sikkim	Roots as anti-fertility agent and leaves in typhoid fever.
38.	*Vanda tessellata* (Roxb.) Hook. f. ex Don (Syn. *V. roxburhgii* Br.)	Hajodi, Rasna	Punjab, Uttar Pradesh, Sikkim and Maharastra	Roots as anti-fertility agent, in abscesses and rheumatism and leaves and aerial roots in earache and pus. Whole plant in night-blindness.
39.	*Vanda testacea* (Lindley) Riechb.	Vajnik	Maharastra	Leaves in nervous diseases and externally on cuts and wounds.

Conclusion

In the last, it can be said that the orchid-plants are not only known for their showiness but also used in medical system. Moreover, some of them form well known ayurvedic drugs, such as the drugs of *Asta varga.* So we can make use of these plants in our daily lives for curing many of the diseases.

Literature Consulted

- * Dhiman, A.K. 2003. Sacred Plants and their Medicinal Uses. Daya Publishing House, Delhi.
- * Dhiman, A.K. 2004. Medicinal Plants of Uttaranchal State. Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
- * Jain, S.K. 1991. Dictionary of Indian Folk Medicine and Ethnobotany. Deep Publications, New Delhi.
- * Kaushik, P. and Dhiman. A.K. 2000. Medicinal Plants and Raw Drugs of India. Bishen Singh Mahendra Pal Singh, Dehradun.
- * Kirtikar, K.R. and Basu, B.D. 1935. Indian Medicinal Plants. 2nd edition. Volume – 4. Lalit Mohan Basu, Allahabad. pp. 2399-2415.
- * Upadyaya, R.C. and Dubey, S.K. 2004. Aushdhiye Guno ka Kajana : Orchids. *Rajbhasa Alok. Pp. 36-37.*

POISONING AND ITS FIRST AID

* Dr. Ashutosh Kumar Yadav ** Dr. J.K. Mishra *** Dr. H.H. Awasthi

(A) Poisons

Some substance when taken into the body in fairly large quantites can be dangerous to health or can cause death. Such substances are called poisons. This may be taken with a view to committing suicide, or may be given to persons by enemies deliberately, or taken by mistake.

Methods of poisoning

Poisons get into the body

a. by swallowing

b. by breathing poisonous gases, or by injections.

1. Poisoning by swallowing

Sometimes acids, alkalies, disinfectants etc., are swallowed by mistake. They burn the lips, tongue, throat, food passage and stomach and cause great pain. Other swallowed poisons cause vomiting, pain and later on diarrhea. Poisonous fungi, berries, metallic poisons and stale food belong to the later group. Some swallowed poisons affect the nervous system. To this group belong (a) alcoholic drink (methylated spirit, wine, whisky etc.) when taken in a large quantities, and (b) tablets for sleeping, tranquilizers, and pain killing drugs (aspirin or largactil). All these victims must be considered as seriously ill. The symptoms are either delirium or fits or coma (unconsciousness). Some poisons act on nervous system — (belladone, strychnine).

2. Poisoning by gases

Fumes or gases from charcoal stoves, household gas, motor exhausts and smoke from explosions etc, cause choking (asphyxia) which may result in unconsciousness in addition to difficult in breathing.

3. Poisoning by injection

Poisons get into the body through injection, bites of poisonous snakes and rabid dogs, or stings by scorpions and insects. Danger to life is again by choking and coma.

First Aid in Poisoning

1. Poisoning is a serious matter. Patient must be removed to a hospital/or a doctor be sent for at once with a note of the findings and, if possible, the name of the poison.
2. Preserve packets or bottles which you suspect contained the poison and also any vomits, sputum etc., for the doctor to deal with.
   a. Do not induce vomiting.
   b. Make the casualty lie on his back on a hard, flat bed without any pillow and turn the head to one side. As there is no pressure on the stomach and the gullet is horizontal, the vomited matter will not get into the voice box and the tongue will not close the air passage. This is also the best posture for giving artificial respirarion, if needed.
   c. Sometimes when there is excess of vomiting, the three-quarter-prone posture (i.e., the casualty) is made to lie on his side with one leg stretched, the other bent at knee and tight) which make things easier for the casualty.
   d. If breathing is very slow or stopped,-start artificial respiration and keep it up till the doctor comes.

4. If conscious

a. Aid vomiting by tickling the back of throat or make him drink tepid water mixed with 2 table spoons of common salt for a tumbler of water.

b. Even if conscious, when the poison is a corrosive *do not induce vomiting.* **Signs of corrosives:** Lips, month and skin show grey white or yellow, patches which are to be looked for; acids, alkalies etc., cause such burns.

Management

1. Factories which use certain poisons shal have the respective antidotes ready and displayed in an easily available place. The personnel should be taught about the use of antidotes – so that anyone can render assistance in case of emergency.
2. The poison must be diluted by giving large quantities of cold water (iced, if possible)

---

* JR-3rd Department of Basic Principles, IMS, BHU, Varanasi

** Reader, Department of Respiratory Diseases and Tuberculosis, IMS, BHU, Varanasi

*** Head, Department of Basic Principles, IMS, BHU, Varanasi.

This will dilute the irritant and delay absorption and will replace fluid lost by vomiting. Tender coconut water will be even better as this will be a food and also a diuretic.

3. Soothing drinks should be given. Milk, egg beaten and mixed with water or soojee canjee are good for the purpose.

(B) Snake bite

1. There are more than 2,500 different kinds of snakes. Only about 200 of them are venomous. All snake-bites are not fatal. Only a very small quantity of the venom might have been injected. Most people die not because of the venom, but from fear.
2. *Aim of First Aid.*
   - a. To reassure the person.
   - b. To stop spreading of the venom.
   - c. To obtain medical aid.

3. Management

- a. Lay the patient down, give him complete rest, rest, calm and reassure him, never make him walk.
- b. If the bite is on the arm or leg, apply a constrictive bandage on the heart side of the bite tight enough to obstruct and stop the flow of the venom to all parts of the body. Don't tie it too firmly.
- c. Wash the wound with soap and water. Flush the wound with a lot of water.
- d. Cover the wound with a sterilized dressing.
- e. Get medical aid or send the person on a stretcher to the hospital as quickly as possible.

  Should breathing fail, commence artificial respiration.

(c) Dog bites

1. Dog bites are sometimes very serious. They may cause infection. If the animal is suffering from rabies, it will be transmitted to the person. The condition is known as Hydrophobia. The dog should not be killed. It must be chained and kept under observation for ten days. If the dog is healthy after this period, there is no danger rabies.
2. *Aim of First Aid*
   - a. To prevent rabies or other infections.
   - b. To get medical aid.

3. Management

All dog bites must be treated as potentially bite by a rabid dog.

- a. Wipe the saliva away from the wound.
- b. Wash the wound thoroughly with plenty of soap and water,
- c. Cover the wound with a dry, sterile dressing. Do not put carbolic acid, nitric acid etc.. on the wound, within 1/3 hour of bite (if possible).
- d. Get medical aid or send the patient to the hospital for proper treatment of the wound and also the casualty.

(D) Stings of Mites, Ticks and Leeches

1. Mites, Ticks and Leeches are found in marshes and jungles. They attach themselves firmly to the skin. Mites and Ticks may carry typhus and may transmit it to the person. Leaches are normally harmless, but they suck blood from the victim.

2. Management

- a. Don't try to remove the insects manually, their mouth parts may remain in the skin and may cause inflammation and infection.
- b. Put the burning end of a cigarette to the body of the ticks and leeches. They will fall off.
- c. Application of salt results in leech dropping off.
- d. Mites are so small that they can't be easily seen to be removed.
- e. Clean the area with methylated spirit.
- f. Apply weak ammonia or bicarbonate of soda or antihistamine ointment. This will relieve irritation.

(E) Stings of Bees, Wasps, Fleas and Hornets.

1. The stings of bees, wasps, etc. can cause a lot of pain. The area may swell. Sometimes the person may suffer from shock.

Management

- a. A sting should be removed with forcep or with the tip of a sterilized needle.

   b. Apply weak ammonia or bicarbonate of soda or antihistamine ointment to the area. This will relieve the pain.

(F) Frost-bite

1. If the body is exposed to wind in very cold weather frost bite may result. It is common in cold countries with snow and blizzards.
2. ***Signs and symptoms***
   a. The ears, nose, chin, fingers and toes lose their feeling and power of movement.
   b. The victim feels very cold. The affected parts will be painful and stiff.
   c. If immediate treatment is not given gangrene or death of the tissues may occur.
3. *Aim of First Aid.*
   a. To give the victim shelter from the weather.
   b. To restore circulation.
   c. To get medical aid.
4. ***Management***
   a. Remove rings, boots, gloves and anything else which may constrict circulation.
   b. Do not treat by hot water bottles, fire or friction.
   c. Cover the affected area to keep it little with whisky or brandy.
   d. Take the victim to a hospital as quickly as possible.

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध ।
संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है । इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है । प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं ।

FOLK MEDICINES OF MANDSAUR DISTRICT (M.P)

Edwin E.,* Sheeja. E., Amalraj. A., Soni. R

INTRODUCTION

Herbal drugs have got tremendous momentum in global health care system. The use of herbal medicines has become a part of the mainstream all over the world, about 80% of world's population use herbal products as medication. Many plants have been found to have therapeutic potential and are being used since time immemorial[1,2]. Most of the people are using herbs even without knowledge of their physician, believing that herbs are safe.

Madhya pradesh, the heart of India is the largest state in India. Majority of people in Madhya pradesh have a lot of cultivated varieties of herbs, like, Safed musli, garlic, amla, aloe, lemon grass, rattan jot, poppy, ashwagandha, isabgol, orange etc.

Mandsaur is a serene township located in Madhya Pradesh in lush green malvanchal, which is known for high quality, high yield cultivation of high value herbs like, poppy, artemisia, isabgol, ashwagandha, orange, garlic. Grandma's recipes are always famous in this town. Most of the population here totally depends on herbal medicines. The following Table No 1 states few commonly used herbs, their details[3-7] and folk use.

Table No 1

Local name	Botanical source	Parts used	Chemical constituents	Reported-use	Folk-use
Kali-mirchi	*Piper nigrum* [Piperaceae]	fruit	Alkaloids [piperine, piperidine]	Aromatic, stimulant, stomachic, carminative.	Asthma, anti-cold
Haldi	*Curcuma longa* [Zingiberaceae]	Rhizome	Volatile oil, alkaloids.	Analgesic, antirheumatic, antiarthritic, anticervical–cancer.	Blood-purifier, skin-diseases, anti-cough, anti-hiccup, anti-anaesthetic, anti-swelling, anti-renal-stone, anti-marks, blood-clotting,
Dalchini	*Cinnamonam zeylanicum* [Lauraceae]	Barks	Volatile oil, cinnamal dehyde, eugenol	Carminative stomachic, astringent, stimulant.	Intestinal- worm, tonsillitis, dental care.
Punarnava	*Boerhavia diffussa* [Nyctagina-ceae]	Leaves, Roots	Alkaloids (punarnavin)	Diuretic, expectorant, stomachic, anti-jaundice, abdominal pain	Eye-diseases, anti-cough, night-blindness.
Lavang	*Eugenia carophyllus* [Myrtaceae]	Flower buds	Volatile oil, eugenol, eugenin	Dental-analgesic, carminative, stimulant, antiseptic.	Eye-infection anti-cold, anti-vomiting, anti-cough,

Department of Pharmacognosy & Phytochemistry, B.R.Nahata college of Phamacy, Mhow Neemuch Road, Mandsaur-458001

Local name	Botanical source	Parts used	Chemical constituents	Reported-use	Folk-use
Adrak	*Zingiber officinale* [Zingiberaceae]	rhizomes	Volatile oil, zingiberene	Stomachic, aromatic, carminative, stimulant, motion-sickness.	Eye-analgesic, Ear-analgesic, anti-cough, anti-cold, anti-asthmatic.
Datura	*Datura metel*, [Solanaceae]	Leaves, Seeds	Alkaloids, hyoscine, atropin	Anti-cholinergic, CNS-depressant, anti-asthma, anti-cough.	T.B. Anti- migrain, anaesthetic.
Tulsi	*Ocimum sanctum*; [Labiatae]	Leaves, seed oil	Volatile oil; eugenol, caracrol	Anti-bacterial, stimulant, aromatic, anti-catarrhal, spasmolytic, diaphoretic, anti-periodic, skin-diseases, ear-ach, stomachic.	Night-blindness, anti-viral, anti-fever, anti-infective, anti-cough, anti-cold, anti-malarial.
Ajwain	*Trachyspermum ammi* [Umbelliferae]	fruits	Volatile oil; thymol, cymene	Anti-spasmodic, stimulant, carminative, sore-throat, bronchitis, anti-septic, anthelmintic.	Anti-cold, stomachic, Analgesic, body-strengthener tonsilits, anti-vomiting.
Isapgol	*Plantago ovata* [Plantaginaceae]	*seeds*	Mucilage pentosan	Demulcent, laxative, emollient.	Constipation, rheumatic pain, dysentery.
Mulethi	*Glycyrrhiza glabra* [Leguminosae]	roots	Saponin glycyrrhizin	Expectorant, demulcent, anti-cough, peptic-ulcer, antispasmodic Anti-arthritic.	Reddish-eye, mouth-ulcer, anti-vomittng ear-pain.

Local name	Botanical source	Parts used	Chemical constituents	Reported-use	Folk-use
Amla	*Emblica officinalis* [Euphorbiaceae]	fruits	Vit-C, tannin	Diuretic, laxative, diarrhoea, jaundice, hair tonic, asthma, anti viral, anti aging, anti oxidant.	Anti dibetic, renal diseases, urinary diseases, increase memory, brain tonic, dental care, stomachic, blood purifier.
Kattha	*Acacia catechu* [Leguminosae]	barks	Acacatechin quercitrin	Astringent, ulcers, cough, diarrhoea.	Dental analgesic, expectorent.
Aswagandh	*Withania somnifera* [Solanaceae]	Roots, stems	Alkaloids; withanine	Sedative & hypnotic effect, hypotensive, respiratory sti. Anti stress.	Rheumatism, eye sight, heart pain, T.B.
Sarpagandha	*Rauwolfia serpentina* [Apocynaceae]	Roots fruits	Alkaloids; reserpine	Hypertension, mild anxiety.	Goiter.
Karela	*Momordica charantia* [Cucurbitaceae]		Saponin momordicin	Stomachic, carminative, rheumatism, gout, spleen disease, liver disease, anti diabetes.	Fever, anti malarial, bleeding in urine, anti itching, blood purifier.
Aphim	*Papaver somniferum* [Papaveraceae]	Latex of capsule	Alkaloids; narcotine, papaverine, morphine, codeine.	Sedative, hypnotic, analgesic, antitussive, anti cough, smooth muscle relexant.	Rheumatism, arthritis, anti fever, bleeding in nose, dental analgesic, ear pain, headache.
Piyaaz	*Allium cepa* [Liliaceae]	bulbs	Disulphides, Inorganic compounds	Anti thrombotic Hypoglycemic, Hypotensive, Anti cold	Digestive, Common cold,
Neem	*Azadirachta indica*	Leaves, barks fruits &	Tri-terpenes ; nimbin	Anti-viral, insectisidal,	Dental-care, anti-diabetic,

Local name	Botanical source	Parts used	Chemical constituents	Reported-use	Folk-use
	[Meliaceae]	flower oil.	nimbidin nimbinin	anti-bacterial, anti-fungal, nematicide, spermicide,	anti-itching, skin-diseases.
Nimbu	*Citrus limonis* [Rutaceae]	Fruit peel	Volatile oil; limonene, citral	Carminative, stimulant, stomachic.	Anti-jaundice, heart-beat-regulator, anti-dandruff, anti-baldness, hair tonic, dental care, anti cough, anti asthmatic, anti emetic, anti marks, anti piles, body slimmer, anti anemic, anti hypertensi bone -strenghte
Lahsun [garlic]	***Allium sativum* [Liliaceae]**	Bulbs	Volatile oil; alliin, allicin	Carminative, aphrodisiac, expectorant, stimulant, antiseptic, anthelmintic, rubifacient.	Night-blindness, Ear-analgesic, anti-cold, anti-pneumone

CONCLUSION

Herb is an integral part of nature. Herbal medicine is based upon the premise that plants contain natural substance that can promote health and alleviate diseases. This paper reports ethnomedical uses of 21 plants locally available to the tribals and rurals of Mandsaur district. To treat various ailments most of local population depends on native medicinal plants. How ever this plants need further investigations in respect of their active principles, pharmacology & clinical trials to evaluate their efficacy & safety.

REFERENCES

1. Cracker LE, Chadwick AF, Simon JE, Herbs, Spices and Medicinal plants, Recent advances in Botany, Horticulture & Pharmacology, Vol 1, Edn 1, CBS Publishers & Distributors, New Delhi, 2002.
2. Sivarajan VV, Balachandran I, Ayurvedic d and their plant sources, Edn 1, Oxford & Publishing Co. Pvt. Ltd, New Delhi, 2002.
3. Kokate CK, Purohit AP and Gokhale SB. In Book A Pharmacognosy, 16th edition, N Prakashan, Pune, 2001.
4. Trease and Evans, Pharmacognosy, Edn W.B.Saunders, London, 2002.
5. Subhash, R., Sunanda, R. and Pavanjape, In; Ayurvedic Treatment of Common dise Edn 1, Sri Satguru Publications, Delhi, 199
6. Nadkarni A.K., Indian Materia Medica, Vol. 1 Edn, Popular Book Depot, Mumbay, 1995.
7. Kritikar K.R. and Basu B.D., Indian Med Plants, Vol .2 2nd Edn, International Distributors, Dehradun, 1987.

स्मृति शेष

आयुर्वेद के प्रभावी प्रवक्ता पं० शिवकरण शर्मा छांगाणी

डा० गोविन्द प्रसाद उपाध्याय

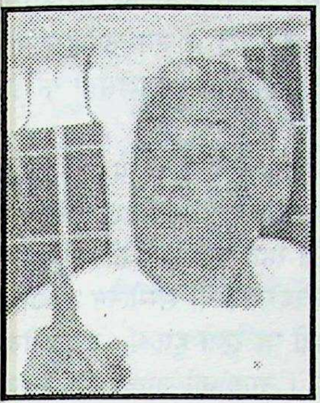

व्यक्ति जब हमारे आसपास रहता है तो उसके विषय में हम ज्यादा सोचते-विचारते नही हैं, उसकी उपस्थिति को महत्व नहीं देते हैं किन्तु जब वह दूर चला जाता है, दुर्भाग्य से ऐसे देश चला जाता है जहाँ से कभी कोई लौटता नही है तो उसके व्यक्तित्व के अनेकों अनछुये पहलू स्मृतियों में साकार होने लगते हैं, उसकी उपस्थिति और अनुपस्थिति का गहन अहसास होने लगता है। ऐसा ही कुछ विगत महाशिवरात्रि के दिन हुआ जब आयुर्वेद जगत के जाज्वल्यमान नक्षत्र श्री पं० शिवकरण शर्मा छांगाणी हमारे बीच से तिरोहित हो गये। यूँ तो पंडित छांगाणी जी का व्यक्तित्व सच्चे अर्थों में बहुआयामी था किन्तु मैं उन्हें आयुर्वेद का प्रभावी प्रवक्ता (वकील) मानता था। बहुत वैद्यों को आयुर्वेद के लिये संघर्ष करते हुए बहुत करीब से देखा है किन्तु पंडित छांगाणी जी जैसा निर्भीक, स्पष्टवादी और आयुर्वेद हित में मरने-मिटने को तैयार कोई अन्य वैद्य मेरी स्मृति में नही है। हमने अनेक मुद्दों पर प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर संघर्ष किये हैं और उन संघर्षों के अनुकूल परिणाम सामने आये है। चाहे वह अनुदानित आयुर्वेद महाविद्यालयों का मसला हो, आधुनिक एवं आयुर्वेद चिकित्सकों के वेतन की असमानता का मामला हो या केन्द्र में स्वतंत्र आयुर्वेद मंत्रालय का मुद्दा हो। किन्तु इन आलोचनों और आयोजनों की मेरी व्यक्तिगत उपलब्धि यह रही कि मैंने देखा, समझा और सीखा कि साठ साल नौजवान पंडित छांगाणी कैसे अनथक और सकारात्मक सोच के साथ काम करते हैं। कई बार बिल्कुल हारी बाजी को उनके दम पर पलटते देखा और उन्हें अहंकार से मुक्त दूर खड़े रह उस जीत का श्रेय अपने साथियों को बांटते पाया। यह वह मानवीय गुण है जो व्यक्ति को सामान्य से अलग कर विशिष्ट की श्रेणी में खड़ा कर देता है और इस विषय में किसी को कोई शंका नही है कि वे नागपुर के एक विशिष्ट नागरिक होने के साथ-साथ आयुर्वेद के कुशल चिकित्सक, भारतीय धर्म-संस्कृति के अध्येता, समर्पित समाजसेवी, सफल संगठनकर्त्ता, प्रभावी वक्ता एवम् लेखक थे।

श्री वैद्य शिवकरण शर्मा छांगाणी का जन्म 15 जून 1925 को राजस्थान के प्रसिद्ध नगर पोकरण से कुछ दूरी पर स्थित उजला ग्राम में हुआ। प्राथमिक शिक्षा पैतृक गाँव में हुई। आपके ताऊजी श्री वैद्यराज पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी आयुर्वेद, ज्योतिष एवं तंत्रशास्त्र के महान विद्वान थे। एक बार वे पोकरण आये और 14 वर्षीय बालक शिवकरण शर्मा छांगाणी को दत्तक पुत्र बनाकर नागपुर ले आये तथा उन्हें आयुर्वेद, संस्कृत, ज्योतिष का अध्यापन कराया। पंडित छांगाणी जी के व्यक्तित्व को गढ़ने में उनके पिता वैद्य गोवर्धन शर्मा छांगाणी जी की महती भूमिका रही है।

श्री पंडित शिवकरण शर्मा छांगाणी ने जीवन में अनेक उल्लेखनीय उपलब्धियाँ प्राप्त की हैं। जैसे वे 1974 में नागपुर महानगर पालिका की स्थायी समिति के अध्यक्ष बने, अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के अध्यक्ष, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद्, नई दिल्ली के उपाध्यक्ष, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् की वैज्ञानिक सलाहकार समिति के अध्यक्ष, राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली की कार्यकारिणी के सदस्य, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर की कार्यकारिणी के सदस्य, नागपुर विश्वविद्यालय के आयुर्वेद संकाय अध्यक्ष (2 बार), तथा विदर्भ हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष, कैन्सर रिलीफ सोसायटी के उपाध्यक्ष आदि-आदि। उन्हें अनेक सम्मान एवम् पुरस्कारों से भी समय-समय पर नवाजा गया, किन्तु उनका नागपुर और आयुर्वेद जगत् को सबसे बड़ा प्रदेय है पक्वासा समन्वय रूग्णालय, श्री आयुर्वेदिक महाविद्यालय तथा अखिल भारतीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान की स्थापना में अहम भूमिका निभाना। ये आयुर्वेद के वे संस्थान हैं जो पूरे देश में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं और जिनके माध्यम से लाखों रुग्णों को जीवनदान प्राप्त हुआ है तथा हजारों छात्र आयुर्वेद के स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त कर आज देश के विभिन्न स्थानों पर आयुर्वेद की सेवा कर रहे हैं। श्री छांगाणी जी दशकों तक इन संस्थानों के प्रमुख रहे तथा उनकी कुशल प्रशासनिक क्षमता का ही परिणाम था कि ये संस्थाएं दिन दूनी रात चौगुनी प्रगति करती रही। निश्चय ही इस सारे उपक्रम में उन्हें स्वर्गीय वैद्य श्री गुलराज शर्मा मिश्र का अप्रतिम सहयोग प्राप्त हुआ।

620, नवीन सुभेदार ले आऊट, नागपुर

मेरी ऐसी मान्यता है कि साधारण परिस्थितियों में जन्मे, पले और शिक्षित दीक्षित हुए व्यक्ति के जीवन में असाधारण उपलब्धियॉं प्राप्त होती हैं तो वह पूर्वजन्म के कर्मों का फल या अदृश्य शक्ति के सहयोग का परिणाम होता है । पूर्वजन्म तो कल्पना या ज्योतिषादि द्वारा ज्ञात हो जाता है किन्तु अदृश्य शक्ति का सहयोग वर्तमान जीवन की साधना पर बहुत निर्भर रहता है । मुझे उनके साथ यात्रा करने, एक साथ रहने तथा उनकी साधना पद्धति को निकट से देखने का अनेक बार सौभाग्य प्राप्त हुआ है । वे राजराजेश्वरी माँ पराम्बा भगवती के अनन्य उपासक थे और उन्हें अपने आध्यात्मिक गुरू श्री निरंजन देव तीर्थजी महाराज, श्री स्वामी करपात्री जी, श्री पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी आदि सिद्ध पुरुषों से कुछ ऐसे साधना सूत्र प्राप्त हुए थे जो उन्हें हरसमय सफल बनाते रहे । दिन में दो बार भोजन तथा भोजन के साथ ही एक बार जलपान करने का नियम उसी साधना का अंग था । इस साधना का फल उन्हें चिकित्सा व्यवसाय में भी यश प्रदान करता था । घर में बनाई आयुर्वेद की दवायें, खासकर पं० गोवर्धन शर्मा छांगाणी से परस्परया प्राप्त नुस्खे और नाड़ी परीक्षा द्वारा निदान उनकी खासियत थी । मृदु व्यवहार, समयबद्धता, प्रत्येक रूग्ण के लिए हरसमय उपलब्ध रहना उनकी निजी विशेषतायें थीं ।

अपने पिताश्री के काल में तत्कालीन मध्य प्रांत के उच्चतम राजनेताओं का आपके यहां निरन्तर आना जाना था । उसके पूर्व भी स्वतंत्रता सैनिकों का आश्रय स्थल था टेकडी रोड स्थित "छांगाणी निवास" । ये तत्व संभवत: पं० छांगाणी को जुझारू राजनीतिज्ञ बनाने में उत्तरदायी थे । अनेक दशकों से आप प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से राजनीति में हिस्सेदारी लेते रहे । नागपुर का ऐसा कोई भी सामाजिक आन्दोलन नही है जिसमें आपने भाग न लिया हो, वह भी पार्टी पद की परवाह किये बिना ।

समाजसेवा की भावना पं० छांगाणीजी में कूट-कूट कर भरी थी । उन्हें पता चल जाये कि अमुक स्थान पर लोग दुखी है या प्राकृतिक विपत्ति आयी है, वे हर तरह से सहायता करने दौड़ पड़ते थे । विश्व की भीषण त्रासदी "भोपाल गैस कांड" में 3 गाड़ी एम्बुलेंस, 40 चिकित्सक और लाखों की औषधि लेकर आप दूसरे ही दिन पहुँच गये । मैं भी चिकित्सक दल का सदस्य था वहाँ हमारी कुछ दवायें समाप्त हो गई । भोपाल में आयुर्वेदिक दवा की उपलब्धता संदेहास्पद थी, तबकी उनकी बेचैनी भाग दौड़ आज भी मुझे स्मरण है । यह तो एक उदाहरण है । मुझे लगता है कि उनके उत्कर्ष में समाजसेवा के पुण्यकार्यों का में भी बहुत योगदान रहा है ।

आप एक अच्छे लेखक एवं कवि थे । आयु के अतिरिक्त समसामयिक विषयों पर लेख वि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते थे । आपकी कवित का भी एक बड़ा संग्रह है । विदर्भ हिन्दी सम्मेलन के अ के भव्य स्वरूप में विभिन्न पदों पर रहते हुए पं० छांगाणी की भूमिका अविस्मरणीय है । नगर की अन्य साहिति संस्थाओं के भी आप सक्रिय पदाधिकारी रहे । आपने 1949 नागपुर से "आयुर्वेद" नाम का पत्र प्रकाशित कि जो उस काल का अत्यंत लोकप्रिय मासिक था जिसमें यादवजी त्रिकमजी आचार्य पं० शिव शर्मा, वैद्य जग- प्रसाद शुक्ल, कविराज प्रतापसिंहजी, वैद्य पराड़कर जैसी आयुर्वेद विभूतियों के आलेख प्रकाशित हुआ क थे ।

आज के युग में लेखन के साथ-साथ भाषण भी बहुत महत्व है । नगर के मंच आपकी वक्तृत्व कल सदैव दैदीप्यमान रहे हैं । कोई भी विषय, अवसर, गो सभा, सम्मेलन हो कैसी भी उपस्थिति हो पंडितजी अ गम्भीर अध्ययन तथा शब्द भंडार के बल पर श्रोताओं मंत्र मुग्ध कर ही लेते थे ।

पं० छांगाणीजी में अद्भुत संगठन क्षमता प्रचार क्षमता थी । प्रत्येक धार्मिक, सांस्कृतिक, सामा साहित्यिक कार्यक्रम में इन क्षमताओं को दृष्टिगत र नागपुर के लोग उन्हें जरूर अग्रक्रम में स्थान देते थे संगठन या संस्था उन्हें परामर्शदाता बना उनकी सं क्षमता का लाभ लेने में कभी नही चूकते थे । विदर्भ प्र आयुर्वेद सम्मेलन एवं अखिल भारतीय आयुर्वेद महास उनकी प्रचार क्षमता का ऋणी है । लोगों में आयुर्वे प्रतिष्ठा बढ़ाने, उन्हें आयुर्वेद के प्रति आकृष्ट कर सहस्त्रों उपाय पं० छांगाणीजी के मस्तिष्क में और समय- पर प्रचार अभियान मे दृष्टिगोचर होते रहते थे ।

उनकी स्मृतियों और ऐतिहासिक उपलब्धि सादर नमन्

परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी

प्रश्न पत्र

[1]डा० अनूप कु० गक्खड़
[1]डा० अनिल गक्खड़

1. प्र०:- किस ग्रन्थ में खदिर सार का तैल कुष्ठ में हितकर बताया गया है ?
क. चरक ख. सुश्रुत
ग. शार्ङ्गधर घ. भाव प्रकाश

2. प्र०:- निर्घातन क्या है ?
क. रक्तदुष्टि ख. आमदोष
ग. नेत्र रोग घ. यंत्र कर्म

3. प्र०:- कुठारिका क्या है ?
क. वात नानात्मक विकार
ख. एक शस्त्र
ग. एक यंत्र
घ. लंघन का भेद ।

4. प्र०:- सब यंत्रों में प्रधान यंत्र कौन-सा माना गया है ?
क. काकमुख ख. कङ्क मुख
ग. ताल यंत्र घ. शलाका यंत्र

5. प्र०:- माधव निदान ग्रन्थ का मूल नाम क्या है ?
क. रोग विनिश्चय ख. रोग निदान
ग. व्याधि निदान घ. व्याधि विनिश्चय

6. प्र०:- माधव पर की गयी टीका कौन-सी है ?
क. आतङ्क दर्पण ख. आयुर्वेद रसायन
ग. आयुर्वेद दीपिका घ. शशि लेखा

7. प्र०:- चरक संहिता सिद्धि स्थान के कितने अध्याय दृढ़बल द्वारा पूरित किए गए ?
क. 10 ख. 11 ग. 12 घ. 9

8. प्र०:- भरे तेल पात्र के सदृश रक्षा करना । - यह उपमा किस के रक्षण के लिए दी गयी है ?
क. आमवात के रोगी ख. ग्रहणी के रोगी
ग. यक्ष्मा के रोगी घ. संशोधित व्यक्ति

9. प्र०:- बस्ति सिद्धिअध्याय में प्रमेहनाशक कौन-सी बस्ति का वर्णन किया है ?
क. त्रिफला क्वाथ से निर्मित
ख. देवदारु क्वाथ से निर्मित
ग. सोमकल्क के क्वाथ रस से निर्मित बस्ति
घ. विजयसार क्वाथ से निर्मित

10. प्र०:- यापन बस्ति के अतिसेवन से क्या हानि होती है ?
क. शोफ ख. अग्निमांद्य
ग. पाण्डु घ. उक्त सभी

11. प्र०:- निरूह बस्ति के बाद अनुवासन बस्ति कब देनी चाहिए ?
क. तीसरे/पांचवे दिन ख. 10 वें दिन
ग. 11वें दिन घ. 14 वें दिन

12. प्र०:- वमन अतियोग का कौन-सा लक्षण नहीं है ?
क. अतितृष्णा ख. मोह
ग. मूर्च्छा घ. गुरु गात्रता

13. प्र०:- रोगी को बस्ति देते समय उसे किस तरफ लिटाना चाहिए ?
क. दांयी करवट ख. बांयी करवट
ग. उत्तान घ. चित्त

14. प्र०:- सिर से स्नान किए व्यक्ति को शिरोविरेचन, देने से क्या हानि होती है ?
क. प्रतिश्याय ख. अतिसार
ग. श्वास घ. ग्रहणी

15. प्र०:- मधु व लवण के संदर्भ में, बस्ति प्रयोग में युक्त्या शब्द किस मात्रा का प्रतीक है ?
क. एक पल ख. दो पल
ग. तीन पल घ. इतनी मात्रा निश्चित नहीं ।

16. प्र०:- आचार्य भेल ने कौन-सी तीन एषणाएं मानी हैं ?
क. प्राण, धन व धर्म
ख. प्राण, धन व परलोक
ग. प्राण, धर्म व स्वास्थ्य

---

1. दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालंधर

17. प्र०:- रोग मार्ग कितने हैं ?
क. 1 ख. 2 ग. 3 घ. 4

18. प्र०:- चरक सूत्र स्थान में कृष्णात्रेय का उल्लेख किस अध्याय में मिलता है ?
क. अपामार्ग तण्डुलीयाध्याय
ख. वातकलाकलीयाध्याय
ग. स्नेहाध्याय घ. तिस्त्रैषणीयाध्याय

19. प्र०:- वातकलाकलीयाध्याय में वर्णित सम्भाषा परिषद् में कितने प्रश्न पूछे गए ?
क. 4 ख. 5 ग. 6 घ. 8

20. प्र०:- क्लीवता किस दोष के प्रकोप से उत्पन्न होती है ?
क. वात ख. पित्त ग. कफ घ. त्रिदोष

21. प्र०:- भय किस दोष के प्रकोप से उत्पन्न होता है ?
क. वात ख. पित्त ग. कफ घ. त्रिदोष

22. प्र०:- इण्डियन मेडिसिन सेन्ट्रल कौंसिल एक्ट कब पारित हुआ ?
क. 1970 ख. 1973 ग. 1975 घ. 1977

23. प्र०:- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से ए.बी.एम.एस. का प्रथम बैच कब निकला ?
क. 1950 ख. 1955 ग. 1960 घ. 1964

24. प्र०:- धन्वन्तरि सर्पि योग किस ग्रन्थ का है ?
क. चरक ख. सुश्रुत ग. भेल घ. काश्यप

25. प्र०:- आचार्य द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या किससे सीखी ?
क. अग्निवेश ख. भेल
ग. जतुकर्ण घ. पराशर

26. प्र०:- किस रोग के हेतु एवं पथ्य के रूप में कोविदार का निर्देश किया गया है ?
क. रक्त पित्त ख. प्रमेह
ग. ज्वर घ. यक्ष्मा

27. प्र०:- कफ के किस गुण से प्रमेह की वृद्धि व उत्पत्ति होती है ?
क. द्रव ख. शीत ग. स्निग्ध घ. श्लक्षण

28. प्र०:- आगन्तुज ज्वर किस कारण से होता है ?
क. अभिघात ख. अभिषंग
ग. अभिचार घ. उक्त सभी

29. प्र०:- कौन-सा स्नेह तीनों दोषों को नष्ट कर सक है ?
क. तैल ख. घृत ग. वसा घ. मज्जा

30. प्र०:- चन्द्रमा के अधिक मैथुनासक्त रहने से कि रोग की उत्पत्ति होती है ?
क. ज्वर ख. प्रमेह ग. कुष्ठ घ. यक्ष्मा

31. प्र०:- निदानार्थकर रोगों का वर्णन चरक निदान स्था के किस अध्याय में मिलता है ?
क. 2 ख. 3 ग. 5 घ. 8

32. प्र०:- कौन-से प्रमेह अध्याय माने गये है ?
क. वातज ख. पित्तज ग. कफज घ. रक्तज

33. प्र०:- मुखशोष परम्-किसके लिए कहा गया है ?
क. लताकस्तूरी ख. कचूर
ग. जायफल घ. ताम्बूल

34. प्र०:- अंधकार में किस रस की प्रधानता होती है
क. मधुर ख. तिक्त ग. कषाय घ. अम्ल

35. प्र०:- नेत्रों के लिए हितकर, किस दिशा की वा होती है ?
क. पूर्व ख. पश्चिम ग. उत्तर घ. दक्षिण

36. प्र०:- दन्तबलरुचिकराणाम् किस के बारे में क गया है ?
क. घृत सेवन ख. तैल गण्डूष
ग. मत्स्य सेवन घ. दातुन

37. प्र०:- आरग्वध किस दोष का नाश करता है ?
क. वात ख. पित्त ग. कफ घ. पित्त व कफ

38. प्र०:- पित्त विरेचक व नियतकालिक ज्वरहर क है ?
क. आरग्धम ख. त्रिवृत
ग. कुटकी घ. जाती

39. प्र०:- रास्ना के पत्ते किसके सदृश होते हैं ?
क. जिह्वा ख. मुलेठी ग. मधूक घ. नेत्रगोल

40. प्र०:- मालकांगनी के बीज को दवा कर निका

गया तैल की प्रयोज्य मात्रा कितनी है ?

क. 2-10 बूंद ख. 10-15 बूंद

ग. 16-20 बूंद घ. 21 बूंद

41. **प्र०:- सत्यानाशी का प्रयोग किस कृमि में हितकर है?**

क. स्फीत कृमि ख. गण्डूपद

ग. अंकुश घ. उक्त सभी

42. **प्र०:- कर्कटश्रृंगी की छाल का वर्ण क्या है ?**

क. श्वेत ख. रक्त ग. कृष्ण घ. पीत

43. **प्र०:- औषधि के रूप में धातकी का प्रयोज्य अंग क्या है ?**

क. पुष्प ख. फल ग. पत्ते घ. मूल

44. **प्र०:- लोध्र की छाल क्या करती है ?**

क. व्रण रोपण ख. ग्राही

ग. रक्त स्तम्भक घ. उक्त सभी

45. **प्र०:- लहसून में कौन-सा रस नहीं होता है ?**

क. मधुर ख. अम्ल ग. लवण घ. कटु

46. **प्र०:- यवनेष्ट किस का पर्याय है ?**

क. लहसुन ख. वचा ग. जपा घ. निर्गुण्डी

1.	क	8.	घ	15.	घ	22.	क	29.	ख	36.	ख	43.	क
2.	घ	9.	ग	16.	क	23.	ख	30.	घ	37.	घ	44.	घ
3.	ख	10.	घ	17.	ग	24.	ग	31.	घ	38.	ग	45.	ख
4.	ख	11.	क	18.	घ	25.	क	32.	ख	39.	क	46.	क
5.	क	12.	घ	19.	घ	26.	क	33.	क	40.	क		
6.	क	13.	ख	20.	ग	27.	क	34.	ग	41.	क		
7.	ग	14.	क	21.	ख	28.	घ	35.	घ	42.	क		

बैद्यनाथ

चन्द्रप्रभा बटी

यह लौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म एवं शिलाजीत युक्त होने के कारण एल्ब्यूमिन आदि सभी प्रकार के विकारों को दूर करती है । स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह समान उपयोगी है । धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष औ सब प्रकार के प्रमेह की निश्चित दवा है, श्वेत प्रदर में लाभदायक है ।

आपके अनुभूत प्रयोग

वृक्क रोगों की सफल चिकित्सा

इस बात को कम लोग जानते हैं कि आयुर्वेद में वृक्क रोग मिटाने वाले सफल योग हैं लेकिन विडम्बना की बात यह है कि इन योग की जानकारी व इनको तैयार करने की विधि बहुत से वैद्यों को भी नहीं है । मैंने वृक्क रोग पर कुछ नुस्खों का सफल प्रयोग किया है । इसकी जानकारी जन कल्याणार्थ पाठकों के लिए प्रस्तुत है ।

1. एक छोटी हरड़ मिट्टी के बर्तन में 50 मि.ली. ग्राम गोमूत्र लेकर रात्रि में भिगो देवें । रोजाना प्रात: हरड़ व गोमूत्र पी लेवें ।
2. प्रात: ताजा गोमूत्र 50 मि.ली. + कामधेनु अर्क 4 चम्मच + स्पेशल अर्क 4 चम्मच + तृण पंचमूल क्वाथ 25 मि.ली. + वृक्क योगारी अर्क 4 चम्मच + मधु 1 चम्मच मिला कर दिन में 3 बार पिवें ।
3. प्रवाल पंचामृत 125 मि.ग्राम + गोक्षुरादि गुग्गुल 125 मि.ग्राम + यवक्षार 125 मि.ग्राम + गिलोयसत्व 125 मि.ग्राम + पुननर्वामण्डूरवटी 125 मि.ग्राम + मुक्ता शुक्तिपिष्ठी 125 मि.ग्राम । यह सभी दिन में 3 बार मधु से लेवें ।
4. ताल मखाना बीज 500 मि.ग्राम + जायफल 500 मि. ग्राम + गिलोय सत्व 250 मि.ग्राम, बंगशील फोर्ट 2 गोली रात को सोते समय गाय के दूध से सेवन करें ।

नोट :-

कामधेनु अर्क :- यह गोमूत्र का भव के द्वारा खींच गया अर्क है ।

स्पेशल अर्क :- पुननर्वा, गिलोय - दारू हल्दी, मकोय नीमअन्तर छाल सम मात्रा में भव के द्वारा खींचा गया अर्क है ।

वृक्क रोगारि अर्क :- गोखरू, गोरखमुण्डी, मकोय, सरफोला, भूमि आंवला, बासा सभी सम भाग भव के द्वारा खींचा गया अर्क है । उपर लिखे गये तीनों अर्क गोमूत्र मिला कर अर्क खींचा जाय । बर्तन भव का मिट्टी या लोहे का या स्टेनस स्टील का होना चाहिए । पीतल, ताम्र का नहीं लेवे ।

गोमूत्र पीने वाला :- दूध पीने वाली बछिया होना चाहिए ।

पथ्य :- अनाज, जौ, ज्वार, चावल, साबूदाना

फल :- पपीता, नाशपाती, अमरूद ।

सब्जी :- मूली, पत्ता गोभी, मेथी के पत्ते, परव घीया, तुरई, टिण्डा, आलू ।

पेय :- गौ दूध सम मात्रा में पानी मिलाकर दे गाय की छाछ, लौकी का रस, सुखरस आयुर्वेदिक ज बूटियों की बनी चाय तथा गोमूत्र तथा दूध देसी गाय ही प्रयोग करें ।

विशेष :- रोगी का नमक, मिर्च, तेल बिल्कु बन्द । सब्जी उबाल कर पानी निकालकर देशी गाय के की एक चम्मच से छोंकन करें । इस प्रकार मैंने यह अपने लड़के के उपर प्रयोग किया है उसको वृक्क रोग गया था । ब्लड यूरिया सीरम, क्रिटीनाइन, एलब्युमी हेमोग्लोबिन में खराबी आ गई थी सो मैंने यह प्रयोग दो म कराया और वह बिल्कुल ठीक हो गया । जांच रि नॉरमल थी । अब स्वस्थ है ।

नॉरमल रेंज :- ब्लड यूरिया 10-40, सी क्रीटीनाईट 06-1.5, अलब्यूमिन -, हिमोग्लाबिन 13.

प्रमेहान्तक चूर्ण

रसतंत्रर सार सिद्ध प्रयोग संग्रह ॥ पार्ट

योग :- ताल मखाना 5 तोला, जायफल 2.5 तो गिलोय सत्व 2.5 तोला, मिश्री 10 तोला सबको बारीक चूर्ण तैयार करें । मात्रा 3 माशा से 1 तोला तक दो-दो प्रवाल पिष्ठी मिला कर दिन में एक या दो बार गो दूध सेवन करें । यह चूर्ण हर प्रकार के प्रमेह विशेषतया कफ और पित्तज प्रमेह में लाभदायक है । यह चूर्ण वृक्कों शान्ति देता है । रक्त में रहे विष को रूपान्तरित करता एवं मूत्र में वृद्धि कराकर शेष रहे दोष को जल्दी निक देता है । परिणाम मे वृक्क मूत्राशय मूत्र नलिका अवयवों की श्लैष्मिक कला का प्रदाह दूर होकर मूत्र वीर्यश्लेष्म पित्त और क्षार जाना बन्द हो जाता है ।

बृहत वरूणादि क्वाथ

रसतंत्रर सार सिद्ध प्रयोग संग्रह !! पार्ट

योग :- वरना की छाल, सोठ, गोखरू, मूसली, कुल्थी 1-1 तोला तथा तृण पंचमूल 5 तोला जौ कूट चूर्ण करें। मात्रा इस चूर्ण में से 6 तोला को 96 तोला जल में उबाल चौथा हिस्सा जल क्वाथ करें फिर 3 हिस्सा करके श्वेत पर्पटी या यव क्षार मिला 1-2 या 3 बाद दो-दो घन्टे पर पिलावें। उपयोग इस क्वाथ के सेवन से वृक्क स्थान का भयंकर शूल और उस हेतु से वमन आदि उपद्रव मूत्र कृच्छ लिंग शूल बस्ति शूल आदि सब दूर हो जाते हैं।

अश्मरी हर कषाय

रसतंत्रर सार सिद्ध प्रयोग संग्रह ॥ पार्ट

उपयोग :- यह कषाय अश्मरी शर्करा, ककड़ी (सिक्तारेही) तथा उससे होने वाले वृक्क शूल उदर शूल में व्यवहृत होता है। मूत्र दाहान्तक चूर्ण 2 रत्ती से 4 रत्ती दिन में 3 बार चन्दनादि अर्क के साथ यह चूर्ण पेशाब की जलन और बून्द-बून्द टपकने को तुरन्त दूर करता है।

गोमूत्र

उपयोग :- देशी गाय की बछिया दूध पीने वाली बच्छीया का गोमूत्र तथा तृण पंचमूल क्वाथ 25-25 मि.लि. की मात्रा 3 बार सेवन करना चाहिए। यह आयुर्वेदिक डायलेसिस है। खून को शुद्ध करता है। हृदय, वृक्क रोगों में जादू जैसा कार्य करता है। यह अद्‌भुत योग है। आयुर्वेद के अनुसार गोमूत्र सेवन करने से त्वचा कृमि, कुष्ठ, प्रमेह, मधुमेह, प्लीहा दूर हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त गोमूत्र वृक्क के रोगों में उपयोगी माना गया है। गुर्दे काम करना छोड़ गए हैं उनको सही यह कार्य योग्य बना देती है अर्थात् गुर्दा रोपण की आवश्यकता नहीं रहती है।

श्लोक : गव्य स मधुरं किंचिद दोषघ्नं कृमि कुष्ठनुत।
कण्डूं च शमयते पीत सम्यग दोषो हरे हितम् ॥

गोमूत्र में कार्बोलिक एसिड, पोटाशियम फास्फेट, कैलशियम, मैग्नीशियम, पोटाश, अमोनिया नाईट्रोजन, क्रियेटिन लैक्टोज पाचक रस (हार्मोन्स) तथा अनेक प्राकृतिक लवण पाये जाते हैं जो मानव शरीर की शुद्धि और पोषण करते हैं। गोमूत्र में कार्बोलिक एसिड होने के कारण कुल्ला करने से दांतों का दर्द ठीक होता है। गोमूत्र में कैल्शियम होने से यह बच्चों के सूखा रोग में लाभ करता है। गोमूत्र का लैक्टोजा बच्चों बूढ़ों को प्रोटीन प्रदान करता है। हिस्टीरिया जनित मानस रोग तथा अपस्मार, सिफलिस, गनोरिया जैसे संक्रमक रोगों में पंचगव्यघृत विशेष लाभ करता है।

श्लोक : गोमयस्वरस श्रीर दधि मूत्रैः श्रृतं हविः।
अपस्मार ज्वरोन्मादकामलान्तकर पिवेत् ॥

गोमूत्र में गिलोय स्वरस एवं अनन्तमूल का रस या 3 ग्राम चूर्ण के साथ सेवन करने से रक्तदोष एवं चमड़ी की बीमारी ठीक हो जाती है। बच्चों में कृमि रोग मूत्र कृमि रोग (मूत्र कृमि) में एक चम्मच गोमूत्र को मधु के साथ पिलाने से कृमि रोग में लाभ होता है। उदर विकार आमाश्यिक व्रण (गैस्टिक अल्सर) पक्वाशय व्रण में भी लाभ करता है। वात रोगों में कटिशूल पृष्ठ शूल आम वात आदि रोगों में गोमूत्र रास्ननादि क्वाथ शुन्ठी चूर्ण, योगराज गुग्गुल का प्रयोग विशेष लाभ करता है। गोमूत्र यकृत रोग, हृदय विकार, वृक्क विकार (गुर्दे के रोग) आदि व्याधियों में अनुपान सहपान आदि भेद से प्रयोग करते हैं पर अशातीत लाभ करता है।

वैद्य हरिश्चन्द्र गर्ग
सीताराम गेट, नजदीक छारा चुंगी
झज्जर (हरियाणा)
आयु 71 वर्ष
चिकित्सा व निर्माण अनुभव 50 वर्ष

संस्थापक व संचालक :-
हरियाणा फार्मेसी (रजि०)
झज्जर (हरियाणा)

सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व

सभी चिकित्सा-पद्धतियों का जन्मदाता आयुर्वेद

जुलाई, 1965

आयुर्वेद ही एक मात्र ऐसा चिकित्सा-विज्ञान है, जो न केवल भारतवर्ष ही अपितु, सारे संसार को अपने आलोक से आलोकित करने की क्षमता रखता है, और सर्वदा विश्व के चिकित्सा-विज्ञान का मार्गदर्शन करता रहा है। यहाँ तक कि यूनान, अरब और चीन आदि देशों में वहाँ की भाषा में आयुर्वेदीय ग्रंथों का अनुवाद कराया गया है।

आयुर्वेदिक चिकित्सा-प्रणाली सर्वथा वैज्ञानिक है-उसका विकास कोई एक दिन में नहीं हुआ। यह मुनियों की चिरकालीन खोज का फल है। हमारे मुनिगण विशाल दृष्टिकोण रखते थे। आयुर्वेद प्रणाली सहस्त्रों वर्षों से इस लिए चल रही है कि जहाँ कहीं अच्छाई मिलती थी, उसे प्राचीन लोग ग्रहण करते थे। उसमें स्वास्थ्य-संरक्षण की सामर्थ्य है।

स्व० डा० राजेन्द्र प्रसाद
भारत के प्रथम राष्ट्रपति

श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा का अभिनन्दन

कलकत्ते के आयुर्वेद-सेवियों की प्रतिनिधि संस्था श्री धन्वन्तरि विज्ञान परिषद् की ओर से गत 27/5/65 को सायंकाल 4 बजे स्थानीय अग्रसेन स्मृति भवन के विस्तृत कक्ष में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि० के डायरेक्टर एवं बिहार आयुर्वेद यूनानी फेकेल्टी के चेयरमैन पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा का भव्य अभिनन्दन सुप्रसिद्ध कविराज मणीन्द्र लाल दास की अध्यक्षता में किया गया। प्रधान अतिथि के पद को आयुर्वेद महामहोपाध्याय कविराज रामचन्द्र मल्लिक ने सुशोभित किया। अभिनन्दन-समारोह में कलकत्ते के प्रमुख कविराज वैद्य, आयुर्वेद-विद्वान एवं पत्रकार उपस्थित थे।

बिहार आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन का चतुर्थ अधिवेशन

बिहार आयुर्वेद विज्ञान सम्मेलन के चतुर्थ अधिवेशन का शुभारम्भ 16 जून को प्रातः आयुर्वेदिक झंडोत्तोलन से हुआ, आयुर्वेद-प्रदर्शनी एवं स्वास्थ्य दान शिविर का उद्घाटन श्री त्रिपाठी कमला प्रसाद मणि के सभापतित्व में प्रारम्भ में हुआ। शिविर के प्रधान चिकित्सक के पद पर कविराज श्री सुखराम प्रसाद प्रतिष्ठित थे। सभापति पद से भाषण करते हुए मणि जी ने कहा -- आयुर्वेद को जनप्रिय बनाने के लिए प्रदर्शनी की नितान्त आवश्यकता है। इसके द्वारा हम जनता को घरेलू जड़ी-बूटियां स्वास्थ्य के नियमों और प्रभावकारी औषधियों की जानकारी दे सकते हैं।

आयुर्वेद जगत की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा-हमें एक जुट होकर आयुर्वेद के विकास-कार्य में संलग्न हो जाना चाहिए। विभिन्न रोगियों के रोग की परीक्षा की गयी और उन्हें निःशुल्क व्यवस्था पत्र दिया गया। 11 बजे दिन से प्रतिनिधि सम्मेलन प्रारम्भ हुआ, जिसमें आयुर्वेद विकास के विभिन्न प्रस्ताव स्वीकृत हुए। सम्मेलन का खुला अधिवेशन 6 बजे शाम को सम्मेलन के नवनिर्वाचित सभापति, कविराज विद्या नारायण शास्त्री के सभापतित्व में हुआ।

बैद्यनाथ
हिंग्वष्टक चूर्ण
मंदाग्नि, आंव तथा पेट दर्द में उपयोगी

कानूनी प्रावधान और चिकित्सक

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

महाशय,

"सचित्र आयुर्वेद" जून 2005 अंक में आचार्य श्री राजकुमार जैन के विचार "देश में फर्जी चिकित्सकों की समस्या" शीर्षक के तहत् पढ़े ।

श्री जैन भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् के रजिस्ट्रार (सह सचिव) रह चुके हैं । उक्त लेख में आपने लिखा है कि (पृष्ठ सं० 940, स०आ० जून 2005) केवल बिहार राज्य को छोड़ कर लगभग सभी राज्यों व उनके पंजीयन मण्डलों द्वारा उक्त निर्देशों का अनुपालन किया गया ।

एक कानून स्नातक होने के नाते, जहां तक मेरी जानकारी है, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् न तो किसी राज्य को और न ही पंजीयन मण्डल को निर्देश जारी कर सकती है । इसका कारण यह है कि भारतीय संविधान में सांतवी अनुसूची की सूची तृतीय जिसे कि समवर्ती सूची (Concurrent list) कहा जाता है उस पर राज्य व केन्द्र समान रूप से कानून बनाने में सक्षम हैं । अतः केन्द्रीय परिषद् अभिभावी नहीं ।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद 254 (2) यह स्पष्ट उपबंध करता है कि राष्ट्रपति के अनुमोदन (Assent) के बाद राज्य का कानून ही, उस राज्य में लागू होगा; केन्द्र का कानून नहीं । अतः सेन्ट्रल काउंसिल, स्टेट बोर्डों या परिषदों से ऊपर नहीं । हाल ही में यू०पी० प्रशासन ने उक्त आधार पर ही (यू०पी० एक्ट 1939 के) पंजीयन जारी रखने के आदेश दिये हैं । (यह अनुमोदन बाद में लिया गया है ।)

मात्र अनुभव आधार पर किए गये पंजीयनों भी; अवैध पंजीयन नहीं है । बिहार राज्य के अलावा भी, हिमाचल, मध्य प्रदेश आदि राज्यों में, राज्य कानूनों के तहत् ऐसे पंजीयन हुए हैं । संसद् द्वारा पास किये गये कानून (अधिनियम सन् 1962) के तहत् हिन्दी साहित्य सम्मेलन को राष्ट्रीय महत्व की संस्था मान्य किया गया था । इसकी डिग्रियां वैध होने पर भी, अति व्यापक नकल पट्टी के कारण कुख्यात हो चुकीं हैं । पर ड्रग इन्स्पैक्टर आदि पंजीकृत चिकित्सकों को भी अवैध रूप से तंग करते हैं । जो कि सरासर अनुचित है ।

वैद्य परमेश्वर दयाल शर्मा
149/6, मंत्री कुंज
प्रगति नगर (पश्चिम)
भिलाई (छत्तीसगढ़)

बैद्यनाथ
कुटजावलेह
खूनी बवासीर में उपयोगी दवा

आरोग्य समाचार
अखबार की कतरनों से

अब नहीं कटेंगी मधुमेह रोगियों की टांगें

राजधानी के सर गंगाराम अस्पताल में एंजियोप्लास्टी की एक नई तकनीक के कारण मधुमेह के 25 मरीजों के पांव कटने से बच गए। उनके पांवों की नसों में खून की आपूर्त्ति पूरी तरह बंद हो जाने के कारण उन्हें गैंग्रीन हो गया था। ऐसी स्थिति में पांव को काटने के अलावा और कोई चारा नहीं रहता है। ब्रिटेन में एक भारतीय डाक्टर द्वारा ईजाद की गई यह तकनीक मधुमेह के मरीजों के लिए वरदान साबित हो रही है और वे विकलांग होने से बच रहे हैं। भारत में हर साल मधुमेह के 40,000 मरीजों को इस स्थिति के कारण अपने पांव कटवाने पड़ते हैं। गुरुवार को एक संवाददाता सम्मेलन में अस्पताल के नस संबंधी रोगों के वास्कुलर व एंडोवास्कुलर विभाग के प्रमुख डा० राजीव पारिख ने इसका खुलासा करते हुए दावा किया कि भारत में किसी अस्पताल में पहली बार इस तकनीक को आजमाया गया है।

जनजातीय परंपरा में है तनाव का इलाज

आज की भाग-दौड़ भरी जिंदगी में मानसिक तनाव एक आम समस्या हैं। लोग इसका इलाज भी जानते हैं मगर समय की कमी के कारण तनावग्रस्त जिन्दगी जी रहे हैं। योग और ध्यान विशेषज्ञ मुरली मेनन ने तीन जनजातियों करिया, मनकरिया और कोल जनजाति पर किये एक शोध में कहा है कि ऐसा लोगों की उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण है। उड़ीसा की इन तीन जनजातियों की परंपरा पर चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि शाकाहारी भोजन, आनंदमय जीवन और मन की बातों का आस-पास के लोगों से आदान-प्रदान, इन जनजातियों के लोगों के तनावमुक्त होने का कारण है। मगर वे अलग से ऐसा कुछ भी नहीं करते जो ऊपर की बातों के लिए हो। वे केवल अपनी परंपरा का निर्वहन करते हैं।

देश में मधुमेह रोगियों की संख्या पांच करोड़ से अधिक

मधुमेह के मरीजों पर अब इन्सुलिन का असर नहीं होता है। ऐसा इसलिए क्योंकि उनमें इन्सुलिन प्रतिरोधक क्षमता विकसित हो चुकी है। ब्रिटिश संस्थ 'सोसायटी फार मेडिसिन रिसर्च' के पूर्व सदस्य डॉक्ट स्थिम एफ. स्टीफन के अनुसार दुनिया में मधुमेह के अधिकतर मामले शर्करा नियंत्रित करने वाले हारमोन इन्सुलि की कमी के बजाय इसके प्रति कोशिकाओं के अर्जित की गयी प्रतिरोधक क्षमता के हैं। इसे ऐसे भी समक्षा जात सकता है कि खून में इन्सुलिन की मात्रा पर्याप्त है मग विभिन्न कोशिकाओं ने अपने आपको इस कदर ढाल लिय है कि उन पर इसका असर ही नहीं होता है। भारत मे मधुमेह रोगियों की संख्या पांच करोड़ से अधिक है। इस तरह की प्रतिरोधक क्षमता विश्व के सभी मधुमेह रोगिय में देखने को मिल रहे है। इसका सबसे स्टीक उपाय यह है कि ऐसी दवा बनायी जाय जो इन्सुलिन के प्रति कोशिकाओं की प्रतिरोधक क्षमता को कम कर दें। डॉक्ट स्मिथ और उनके दल ने सन् 1998 में रोसिगलिटाजो नामक दवा विकसित करने में सफलता हासिल की थी ज इंसुलिन प्रतिरोधक क्षमता कम करती है।

एक-दूसरे से अलग हैं दर्द और मानसिक तनाव

ऐसा माना जाता है कि दर्द और मानसिक तनाव एक ही होते हैं। हाल के एक शोध में यह बात सामने आ है कि लोगों के मानसिक तनाव तथा घातक दर्द में को सीधा संबंध नहीं है इसलिए दोनों रोगो का अलग-अल तरीके से इलाज किया जाना चाहिए। मिशिगन विश्वविद्याल के हेल्थ सिस्टम द्वारा कराए गये शोध में पाया गया कि मानसिक तनाव और दर्द के बीच अलग-अलग प्रतिक्रिया होती हैं और इन दोनों का प्रभाव व्यक्ति में मस्तिष्क प अलग-अलग तरीके से पड़ता है। इन दोनों के निवारण क प्रक्रिया भी अलग होनी चाहिए। शोध के लिए फिब्रोमेल्जि रोग से ग्रसित 33 महिलाओं और 20 पुरुषों को लिया गया इनके अतिरिक्त 42 स्वस्थ लोग भी शोध में चर के रू में शामिल किए गये। सभी चरों की जांच एमआरआ कराई गई। इसमें पाया गया कि फिब्रोमेल्जिया के रोगी क मस्तिष्क को प्रभावी करने के लिये कम न्युरॉन प्रेशर क जरूरत होती है जबकि घातक दर्द से छुटकारा के लि अधिक न्युरॉन प्रेशर की आवश्यकता है।

(दैनिक हिन्दुस्तान के सौजन्य से

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

गुजरात

जामनगर

GOLDEN JUBILEE YEAR CELEBRATIONS OF I.P.G.T. & R.A.

(2005-2006)

First Circular

Institute for Post Graduate Teaching & Research in Ayurveda
GUJARAT AYURVED UNIVERSITY
JAMNAGAR
361 008
INDIA

The World Wide propagation of Ayurvedic Medical and Philosophical Science is now a reality. Many countries are coming forward to Ayurvedic system of medicine for the solution of the problem of life style as well as ailments of general to chronic nature. WHO assembly, National Institute of Health, USA, European Union, Australian Government and many more are taking action for regularization/legalization of this time tested ancient system of medicine i.e. Ayurved in their respective concerns. All these are forecast of better perception of this holistic system of medicine at International level.

This vision was dreamed by the planners of independent India and to fulfill this object they established a pioneer institution of Ayurvedic Research in Jamnagar in the name of P.G.T.C.A. in 1956. That seed of the day is now a fruitful tree with olive branches named as Institute for Post Graduate Teaching & Research in Ayurveda comprising 08 teaching departments of Ayurveda, 06 technical departments of modern science and awarding M.D. (Ayu) and Ph.D. degree in 13 specialities. And of course, this institute is completely taking care of its responsibilities of creating an internationally acceptable system of Ayurveda with all interpretation of present day demand. This fact is evident by the international scholars of 36 countries who enrolled here in several courses run by the Institute.

To mark out Golden Jubilee year (2005-2006) we are coming to you with under mentioned programme.

1. An International seminar on current topics of Ayurveda (September or October 2005)
   a. Ayurvedic Education & Literary Research
   b. Ayurvedic Pharmaceutical Research
   c. Ayurvedic Clinical Research
   d. Yoga & Naturopathy
2. An All India Quiz and Debate competition for P.G. Students
3. An All India Essay competition
4. Nidan camp
5. Year long lecture series on different specialization.
6. P.M. Mehta memorial oration on 20th July 2005
7. An All India indoor sports meet

The exact schedule of these events would be notified very soon.

For ex-student of the Institute we are committed to publish a Directory on this occasion which would record every detail of all the alummi of I.P.G.T. & R.A. since 1956 to July 2005 batch. Therefore all concerned alummi, now a days serving this nation as eminent Ayurvedic physician, Intelligent interpretater of subject imparting this great knowledge to the new students of Ayurveda-The Teachers, Admirable Administrator, An entrepreneur Researcher, Leading manufacturer of Ayurvedic drugs etc. are requested to send their introductory profile. Kindly send the name of your degree, subject, year of award, present occupation and address (e-mail address also) and a recent passport size photograph at under mentioned contact address. Format is also available on the www.ayurveduniversity.com and given in circular.

We are looking forward for your overwhelming support and participation and your valuable suggestion if any for a year long all programmes of Golden Jubilee Celebrations of I.P.G.T. & R.A.

(Prof. R.R. Dwivedi)
I/c. DIRECTOR

Contact Address :
The Organizing Secretary
Golden Jubilee year Celebrations
I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayu. Uni. Jamnagar-361 008 Gujarat (India)
Tele Fax : 0288 - 2676856, 2552014
Email : deanipgt@ayurveduniversity.com

Alummi Bio-Data form
Golden Jubilee year Celebration
2005-2006
Institute for Post Graduate Teaching & Research in Ayurveda
Gujarat Ayurved University, Jamnagar

Full Name		
Designation		
Date of Birth		
Official Address		
Residential Address		
Telephone/Mobile	(O)	(R)
Email/website		
BAMS	Year	University
PG	Year	University
Ph.D.	Year	University
Academic Awards & Achievements		
Teaching Experience	UG(Years)	PG(Years)
Subjects of Teaching	UG	PG
Books/CD Publications		
Experience in Practice/Pharmacy		
Specify Speciality, if any		
Affiliation to other Professional organizations of Ayurveda		

Date :   Signature :

महाराष्ट्र
Pune
ATTENTION PLEASE : DATE REVISED

According to a First circular, the origina date for holding the conference was 8th & 9 December, 2005 which has been prepone advanced/revised to 21st and 22nd October, 2005.

National Conference on Ayurved
"Ayurved-2005"
IInd Event
A National Meet on Ayurved

Organised by
TARF
Tathagat
Ayurved Research Foundation
Pune, India
21st and 22nd October 2005
Venue
Pimpri Chinchwad, Pune, India
For Further Correspondence Please contact
Dr. Mrs. Anjali Jadhav
org. Secretary
Dr. Vijay Jadhav
Exe. President
NATIONAL CONFERENCE ON AYURVED
"AYURVED - 2005"
Sarvoday Residency, A/2, S.No. 28,
Near Jagtap Dairy, Pimple Nilakh, Pune-411 027
Tel : 020-5631 1361 (Resi.)
Mobile : 9822 63 6058 / 9850 80 8899
email : ayurved2005@yahoo.co.in

उत्तर प्रदेश
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय हाथवन्त (फिरोजाबाद) उ.प्र. पर निःशुल्क चिकित्सा शिविर का आयोजन

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय हाथव जिला-फिरोजाबाद (उ०प्र०) पर दिनांक 18 मई 2005 के एक विशाल निःशुल्क चिकित्सा शिविर का आयोज किया गया। शिविर का शुभारम्भ भगवान धन्वन्तरि की प्रतिमा पर माल्यार्पण एवं दीप प्रज्वलित कर वयोवृ समाजसेवी ठाकुर जयगोपाल सिंह ने किया।

चिकित्सा शिविर में डा० राजकुमार द्विवेदी ने 160 रोगियों का स्वास्थ्य परीक्षण किया । निःशुल्क औषधियों का वितरण श्री आयुर्वेद सेवा सदन, फिरोजाबाद के सहयोग से किया गया ।

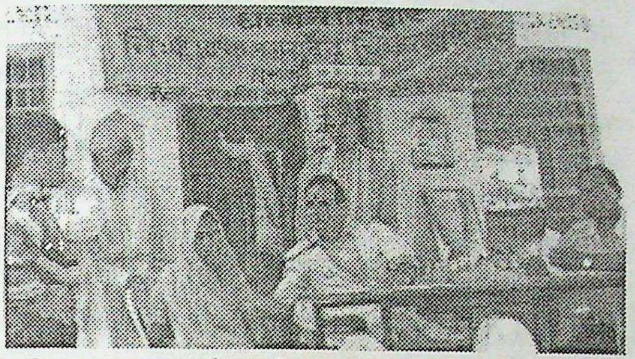

दिनांक 18/5/2005 को राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय हाथवन्त पर आयोजित निःशुल्क चिकित्सा शिविर में रोगियों का स्वास्थ्य परीक्षण करते हुये । डा० राजकुमार द्विवेदी साथ वायें बैठे हुये फार्मासिस्ट गुलाबधर यादव ।

चिकित्सा शिविर में डा० राजकुमार द्विवेदी ने रोगियों को एड्स, हिपैटाइटिस-बी, मधुमेह, उच्चरक्तचाप दूषित वातावरण एवं दूषित जल से होने वाली बीमारियाँ एवं उनसे बचाव की जानकारी दी । एलोपैथिक उपचार के दुष्प्रभाव एवं बदलते परिवेष में आयुर्वेदिक उपचार के लिये प्रोत्साहित किया ।

चिकित्सा शिविर में श्वेतप्रदर, रक्ताल्पता, एलर्जी, मधुमेह, श्वास-कास, प्रतिश्याय एवं टाइफाइड के रोगी पाये गये । शिविर में 67 पुरुष 53 स्त्री एवं 40 बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया ।

चिकित्सा शिविर का आयोजन क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी आगरा डॉ०एच०आर० भदौरिया के निर्देशन में ग्रामीण अंचल में उत्तम स्वास्थ्य एवं चिकित्सा प्रदान करने के उद्देश्य से किया गया ।

चिकित्सा शिविर में गुलाबधर यादव फार्मासिस्ट राकेश कुमार मिश्रा, फार्मासिस्ट, प्रवीण अग्रवाल, यदुवंश पलिया, अब्दुल सलीम, रामसेवक राजवीर, चन्द्रपालस, हरवीर सिंह, नरेन्द्र कुमार एवं फतेह सिंह का विशेष सहयोग रहा ।

हाथरस जनपद की वर्ष 2005-06 की नवीन कार्यकारिणी का गठन

राजकीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्सा संघ जनपद-हाथरस की वर्ष 2005-06 की कार्यकारिणी का गठन हेतु डा० वीरेन्द्र पाल सिंह, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी अलीगढ़ की अध्यक्षता में चुनाव कराये गये ।

चुनाव वर्ष 2005-06 के निम्न पदाधिकारी निर्विरोध चुने गए ।

संरक्षक- डॉ० वीरेन्द्र पाल सिंह, संरक्षक, क्षेत्रीय आयु०यू०अधि०, अलीगढ़

अध्यक्ष- डॉ० कुसुम लता कौशिक, चिकि०आ०, रा०आ०सासनी, हाथरस

उपाध्यक्ष- डॉ० रमेश चन्द्र शर्मा, चिकि०अ०, रा०आ०चि०, मीतई, हाथरस

सचिव- डॉ० राकेश मोहन शर्मा, चिकि०अ०, रा०आ०चि०, बरईशाहपुर हाथरस

उपसचिव- डॉ० रमेश चन्द्र अग्निहोत्री, चिकि०अ०, रा०आ०चि०, बाजिदपुर, हाथरस

प्रचार मंत्री- डॉ० रमेश चन्द्र अग्निहोत्री, चिकि०अ०, रा०आ०चि० बाजिदपुर, हाथरस

आय व्यय निरीक्षक- डॉ० जागेश्वर दयाल, चिकि०अ०, रा०आ०चि०, भैंकुरी, हाथरस

कार्यकारिणी सदस्य - 1. डॉ० राकेश मित्तल, चिकि०अ०, रा०आ०चि०, कौमरी, हाथरस

2. डॉ० संजीदा वानो, चिकि०अ०, रा०यू०चि०, लाखुनू, हाथरस

शान्तिपूर्वक सम्मानजनक कार्यकारिणी गठन करने के लिए सहयोग हेतु कार्यकारिणी गठन समिति के संरक्षण डा० वीरेन्द्र पाल सिंह, क्षे०आ०यू०अ०, अलीगढ़ ने सभी सदस्यों का आभार व्यक्त किया एवं आशा व्यक्त की कि नवीन कार्यकारिणी एकता के साथ संघ के हितों के लिए कार्य करेगी । प्रान्तीय कार्यकारिणी से यह अपेक्षा की गई है कि कैडर रिव्यू कराके समयबद्ध वेतनजारी कराया जाय ।

शोक संवेदना व्यक्त

श्रीमती डा० संजीदावानो चिकित्साधिकारी, राजकीय यूनानी चिकित्सालय, लाखनू, हाथरस के पति के आकस्मिक निधन पर राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सक सेवा संघ-शाखा हाथरस शोक संवेदना व्यक्त करता है । ईश्वर से प्रार्थना करता है कि वह दिवंगत आत्मा को मोक्ष एवं शान्ति प्रदान करें, इस संकट की घड़ी में जिला शाखा आपके साथ है । सुख-दुख, रात-दिन, यश-अपयश सब ईश्वर के अधीन हैं ।

ईश्वर से पुन: प्रार्थना है कि इस संकट की घड़ी मैं आपको धैर्य एवं साहस प्रदान करें ।

दिल्ली

आयुर्वेद डाक्टर ऐलौपेथी में प्रैक्टिस नहीं कर सकता ।

(अखिल भारतीय आयुर्वेद समाचार सेवा - दिल्ली-110034)

गुड़गाँव जिला अदालत की मुख्य न्यायिक दण्डाधिकारी शालिनी सिंह ने अवैध प्रैक्टिस के जुर्म में डाक्टर योग राज को दो साल की कैद और 6 हजार रुपये जुर्माने की सजा दी है । जानकारी के अनुसार बिहार राज्य से आयुर्वेद की डिग्री प्राप्त डाक्टर योग राज ने 10 साल पहले गुड़गाँव में एलोपैथ में प्रैक्टिस करना शुरू किया था । स्वास्थ्य विभाग की ड्रग टीम ने डाक्टर के गुड़गाँव स्थित क्लिनिक पर छापा मारा तो डिग्री आयुर्वेद की मिली जब कि प्रैक्टिस वे ऐलोपैथ में कर रहे थे । अवैध प्रैक्टिस करने एवं स्वास्थ्य अधिनियम उल्लंघन में डाक्टर की तमाम दवाईयां सील कर मामला दर्ज किया था । 10 साल तक चले मामले की गहन सुनवाई के बाद डाक्टर को उपरोक्त सजा सुनाई गई है ।

इससे पूर्व इलाहाबाद हाईकोर्ट भी अपने एक निर्णय में स्पष्ट कर चुकी है कि आयुर्वेद चिकित्सक एलोपैथिक दवाओं का प्रयोग नहीं कर सकते और न ही दूसरे राज्यों से पंजीकृत चिकित्सक उ०प्र० में प्रैक्टिस कर सकते हैं ।

डाक्टरों से सम्बन्धित कोई भी फैसला डाक्टर को चाहिए या डाक्टर किसी भी मेडिकल केस में फंसे है तो इस फोन पर 09811449124 पर नि:शुल्क सलाह ले सकते हैं । इस समय पूरे भारत में अनुभव के आधार पर पंजीकरण बन्द है । सरकार द्वारा घोषित अमान्य । अनाधिकृत संस्थाओं की सूची जो मेडिकल डिग्रियां बेचती है अखिल भारतीय आयुर्वेद सेवा संघ, रिषी नगर, दिल्ली - 110034 से नि:शुल्क मंगवा सकते हैं ।

हिमाचल प्रदेश

डा० गोपाल चड्ढा, चड्ढा ट्रेडर्स

डा० चड्ढा ने निम्नलिखित समाचार प्रेषित किये है :-

1. इन्होंने विश्व स्वास्थ्य सम्मेलन में भाग लिया ।
2. पंजाब के स्वास्थ्य मंत्री, श्री डोगरा ने 82 वर्षीय डा० चड्ढा की भूरि-भूरि प्रशंसा की ।
3. हिमाचल प्रदेश के मुख्य मंत्री, श्री वीरभद्रजी ने डा० चड्ढा को विभूति पुरस्कार से सम्मानित किया । इन्होंने 1121 गरीब व्यक्तियों में नि:शुल्क दवा का वितरण किया । आयुर्वेद की औषधियों पर अनुसंधान किया । विभिन्न गोष्ठियों एवं सम्मेलनों का इन्होंने आयोजन किया ।
4. राजस्थान के एक सम्मेलन में डा० चड्ढा ने कहा कि परम्परागत चिकित्सा आयुर्वेद का भाग है 80% रोगियों का इससे इलाज होता है ।
5. दस हजार मूल्य की औषधि डा०चड्ढा की ओर से सुनामी पीड़ितों को भेजी गयी ।
6. अन्त्र/शोथ पर आयुर्वेद शिविर का आयोजन डा० चड्ढा की ओर से मण्डी में किया गया जिसमें चिकित्सकों एवं 117 रोगियों ने भाग लिया ।
7. मेरठ (उ०प्र०) में कैन्सर और हर्बल औषधि पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें 23 से अधिक चिकित्सकों ने भाग लिया ।

सम्पादकीय

अल्प आहार (डायटिंग) और रोग

यदि व्यक्ति स्थूलकाय हो, तो आम तौर पर चिकित्सक वजन कम करने की सलाह देते हैं । वजन कम करने के सिलसिले में कम भोजन करने की सलाह देते हैं । कम भोजन करने की सलाह को ही डायटिंग कहते हैं । यूरोप में तो भूख नहीं लगने के लिए कुछ व्यक्ति गोलियों का सेवन करते हैं । हमारे एक विदेशी चिकित्सक मित्र ने कहा कि वे स्वयं गोली का प्रयोग करते हैं, किन्तु इसके प्रयोग से कमजोरी आती है। इसलिए वे गोली का सेवन करना छोड़ देंगे । हमारे मस्तिष्क में एक बात आती थी । अल्प आहार का अर्थ है – शरीर के लिए जिन आवश्यक पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है, उनका अभाव । क्या पौष्टिक तत्वों के अभाव से दूसरे रोग उत्पन्न नहीं हो सकते हैं ? उदाहरण के लिए यदि हमें हृदय रोग या मधुमेह है, तो शरीर का कम वजन दोनों रोगों के लिए लाभकारी हो सकता है, किन्तु क्या इससे थकावट, परेशानी, राजयक्ष्मा, बेरी-बेरी एवं अन्य रोग उत्पन्न नहीं हो सकते हैं ? हमारी दृष्टि में पर्याप्त संतुलित भोजन के अभाव में अन्य रोग हो सकते हैं, किन्तु चिकित्सक इन प्रश्नों के उत्तर नहीं देते थे और चुप्पी लगा देते थे ।

हाल में डेनमार्क स्थित कोपेनहेगेन विश्वविद्यालय के प्रतिषेधात्मक चिकित्सा संस्थान में मुख्य शोधकर्मी थोरकिल्ड सोरेनसेन के नेतृत्व में एक अनुसंधान हुआ है । अनुसंधान के सिलसिले में 2,957 अति स्थौल्य व्यक्तियों पर प्रयोग फिनलैंड में हुआ । व्यक्तियों के चयन के सिलसिले में इस बात पर ध्यान रखा गया कि वे पहले से ही किसी बीमारी से ग्रसित नहीं हों । प्रत्येक व्यक्ति से 1975 और पुनः 1981 में वजन कम करने की इच्छा के बारे में पूछा गया । 18 वर्षों तक उनके वजन का अभिलेख रखा गया । इस अवधि में 268 व्यक्तियों की मृत्यु हो चुकी थी । अध्ययन से पता चला कि जिन व्यक्तियों ने वजन कम करने के लिए अल्प आहार का सहारा लिया, उनकी मृत्यु पहले हो गयी । डा० सोरेनसेन के अनुसार स्वस्थ स्थौल्य व्यक्तियों ने जिन्होंने वजन कम करने में सफलता पायी, उनमें मृत्यु का खतरा लगभग दुगुना था । इस निष्कर्ष का समर्थन एटलांटा स्थित अमेरीकी राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान ने किया । इस संस्था ने 6,391 अति स्थौल्य व्यक्तियों पर 9 वर्षों तक परीक्षण किया । परीक्षण का निष्कर्ष यही निकला कि जो व्यक्ति वजन कम करना चाहते हैं और इसमें सफलता भी पायी, उनकी मृत्यु शीघ्र ही हुई ।

अब प्रश्न उठता है कि अति स्थौल्य व्यक्ति को क्या करना चाहिए । चरक संहिता के अनुसार आठ पुरुष निन्दित हैं – अतिदीर्घ, अति ह्रस्व (अत्यन्त छोटा), अति लोमा (जिनके शरीर पर बाल बहुत हों), अलोमा (जिनके शरीर पर लोम नहीं हो या कम हों), अत्यन्त काला, अत्यधिक गोरा, अत्यन्त स्थूल और अति कृश (अत्यन्त पतला) । स्पष्ट है कि अति स्थूल आयुर्वेद के अनुसार अति निन्दित है । पुनः कहा गया है कि अतिस्थूल पुरुष के आठ दोष हैं – आयु की कमी, वेग या फुर्ती का नहीं होना, कष्ट मैथुनता, दुर्बलता, दुर्गन्धिता, अत्यधिक पसीना आना, अत्यधिक भूख लगना और अत्यधिक प्यास लगना । इससे भी यह स्पष्ट है कि स्थूलता से मनुष्य की आयु में ह्रास होता है । यदि दैवी विपत्ति नहीं हो, तो ह्रास का कारण रोग हो सकता है । अतः यह तो निश्चित है कि स्थूल व्यक्तियों को कृश व्यक्तियों की अपेक्षा ज्यादा रोग होते हैं । चरक संहिता में ही कहा गया है –

स्थौलकार्श्ये वरं कार्श्यं समोपकरणौ हि तौ ।
यद्युभौ व्याधिरागच्छेत् स्थूलमेवाति पीडयेत् ॥
च०सू० 21/17

अर्थात् यदि एक ही रोग अतिकृश और अतिस्थूल व्यक्ति को हो जाय, तो अतिस्थूल को रोग ज्यादा पीड़ाकारी होता है ।

अब प्रश्न है कि आयुर्वेद एवं एलोपैथी के चिकित्सक आमतौर पर स्थूल व्यक्तियों को वजन कम करने की सलाह देते हैं । एक हद तक यह तो ठीक है, किन्तु क्या डायटिंग (अल्प भोजन) इसका इलाज है ? यदि हम आयुर्वेद की ओर देखें, तो आयुर्वेद आहार एवं

व्यायाम पर ज्यादा जोर देता है । डायटिंग पर चर्चा भी नहीं करता है । चरक संहिता के अनुसार वातनाशक एवं मेद को हरने वाला भोजन इसका इलाज है । बस्ति, उबटन, व्यायाम, चिन्तन के साथ-साथ प्रियंगु, यवक, जौ, कोदों, मूंग, कुलथी, आहर, आंवला, गिलोय, नागरमोथा, त्रिफला, शहद, लौह भस्म, सोंठ, यवक्षार, वायविडंग आदि का प्रयोग बताया गया है । डायटिंग (अल्प आहार) का जिक्र भी नहीं है । हां, अपौष्टिक भोजन (Non-Nourishing diet) की चर्चा अवश्य की गयी है ।

हमारी सलाह एलोपैथी के साथ-साथ अन्य चिकित्सकों से है कि वे डायटिंग के बदले आहार-विहार में परिवर्त्तन करने की सलाह अपने रोगियों को दें ।

स्वास्थ्य सुरक्षा में आयुर्वेद का भी समावेश हो

भारतीय संसद द्वारा भारतीय गुणवत्ता परिषद् (क्वालिटी काउन्सिल ऑफ इण्डिया) की स्थापना एक स्वायत्त संस्था के रूप में की गयी है । इस संस्था के कार्य-क्षेत्र में ढांचागत सुविधा, जनशक्ति, संक्रामक रोगों का फैलाव, रोगियों को सूचना प्रदान करने का अधिकार एवं अस्पतालों में रोगियों की सुरक्षा जैसे अनेक विषय आते हैं । हाल ही में भारतीय उद्योग परिषद् एवं भारतीय स्वास्थ्य-अभिरक्षा महासंघ (आई एच एफ) के संयुक्त तत्वावधान में डा० नरेश त्रेहन के नेतृत्व में एक समिति बनायी गयी है । इस समिति ने प्रथम प्रारूप प्रतिवेदन भारतीय गुणवत्ता परिषद् को सौंप दिया है । डा० त्रेहन के अनुसार इस प्रतिवेदन में नर्सिंग होम से लेकर बड़े अस्पतालों तक के लिए सिफारिश की गयी है । यह सत्य है कि पड़ोसी देश के रोगी अपनी चिकित्सा, विशेषकर हृदय रोग की चिकित्सा के लिए भारत आने लगे हैं । यह भी सत्य है कि भारत में अनेक उच्च कोटि के एलोपैथी अस्पताल हैं जहां चिकित्सा बेहतर ढंग से की जा सकती है एवं की जा रही है । साथ ही यह भी सत्य है कि आयुर्वेदीय पद्धति से भी चिकित्सा कराने के लिए अनेक विदेशी भारत आने लगे हैं । पंचकर्म चिकित्सा के लिए तो वे बड़े पैमाने पर दक्षिण भारत आते हैं । पंच सितारा होटलों में ठहरने वालों के लिए औषधीय मालिश कराने की भी व्यवस्था की गयी है और यह अत्यन्त लोकप्रिय होता जा रहा है । हमारा आशय केवल इतना ही है कि चिकित्सा-क्षेत्र में हमारा देश अभूतपूर्व प्रगति कर रहा है । आयुर्वेद भी शनैः शनैः आगे बढ़ता जा रहा है । अतः आम जनता की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए किसी प्रकार की समिति या उपसमिति सरकारी या गैर सरकारी स्तर पर बनायी जाती है, तो उसमें आयुर्वेद का भी समावेश करना चाहिए ।

विरल औषधीय पादपों के उत्पादन पर से रोक हटावें

जम्मू और कश्मीर राज्य औषधीय पादप बोर्ड (एस एम पी बी) ने वर्ष 2003-2007 के लिए एक कार्य योजना तैयार की है । योजना के अन्तर्गत 32 औषधीय पादपों के उत्पादन को प्राथमिकता की सूची में डाली गयी है । केन्द्र सरकार ने 2 करोड़ की राशि राज्य को प्रयोगशाला के निर्माण के लिए आवंटित की है । कार्य-योजना के तहत औषधीय पादपों का संरक्षण, शिक्षा को प्रोन्नति, अनुसंधान संस्थान को समर्थन प्रदान करना एवं मजबूत करना तथा इस सम्बन्ध में अच्छी नीतियों को आगे बढ़ाने सहित पांच-सूत्री कार्य नीति अपनायी गयी है । जम्मू एवं कश्मीर सरकार, राज्य औषधीय पादप बोर्ड एवं भारतीय चिकित्सा पद्धति निदेशालय का यह सराहनीय कदम है, किन्तु खेद है कि अभी तक एक शासकीय अधिनियम के तहत 14 विरल औषधीय पादपों पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है । इनमें से एक कुष्ठ (कूठ) भी है जो कश्मीर की खास उपज है । इसका प्रयोग विभिन्न औषधियों में किया जाता है । दुर्भाग्यवश इसकी उपज पर भी प्रतिबन्ध है । प्रतिबन्ध के पीछे दिये गये तर्क को हम समझ नहीं पाते हैं । औषधि क्षेत्र में आत्म-निर्भर बनने के लिए यह आवश्यक है कि विरल औषधि-पादपों का ज्यादा से ज्यादा उत्पादन किया जाय न कि उस पर प्रतिबन्ध लगाया जाय ।

अतः हमारी राज्य सरकार से प्रार्थना है कि अविलम्ब अधिनियम में संशोधन किया जाय ताकि विरल औषधीय पादपों का कृषिकरण बड़े पैमाने पर किया जा सके ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-69

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

[मानव-इतिहास अपूर्ण है। अभी तक हमारे पास जो प्रामाणिक ज्ञात इतिहास है, उनकी अवधि दस हजार वर्ष से पुरानी नहीं लगती है। लेकिन यह तथ्य है कि मानव दस हजार वर्ष पूर्व भी मौजूद थे। वे कैसे थे, किस प्रकार की उनकी संस्कृति एवं सभ्यता थी - यह अभी तक अज्ञात है, किन्तु धीरे-धीरे वैज्ञानिक जीवन का रहस्य खोजने में लगे हुए हैं। पिछले दिनों अमेरिका के नासा द्वारा संचालित नियंत्रित डीप इम्पैक्ट धूमकेतु से टकराया था। टकराया अचानक नहीं था, बल्कि एक मिशन के तहत टकराया गया था। टकराने का एकमात्र उद्देश्य मानव जीवन के रहस्य पर से पर्दा उठाना है। नासा का यह एक प्रशंसनीय प्रयास है, पता नहीं, सफल हो भी पाता है या नहीं।

हमने प्रस्तुत धारावाहिक प्रारम्भ करने के समय ही यह लिखा था कि ज्यों-ज्यों हमें नयी जानकारी मिलती जायेगी, हम पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते जायेंगे। इन दिनों अखबार में एक समाचार प्रकाशित हुआ है। समाचार के अनुसार ब्रिटिश वैज्ञानिकों के समूह ने यह दावा किया है कि मेक्सिको में मानव पद-चिन्ह प्राप्त हुए हैं, जो 40,000 वर्ष पुराना है। वैज्ञानिकों के अनुसार बाल्सेक्वीलो घाटी में ज्वालामुखी की राख पर वयस्कों एवं बच्चों के पद-चिन्ह मिले हैं। अवधि के निर्धारण के लिए वैज्ञानिकों ने सारी उपलब्ध आधुनिक तकनीक का प्रयोग किया। इस प्रमाण से इस धारणा का खण्डन हुआ कि अमेरिका में मनुष्यों का पदार्पण 15,000 वर्ष पूर्व हुआ था।

प्रस्तुत समाचार को यहां उद्धरित करने का हमारा आशय केवल इतना ही है कि पूर्व में इतिहास के सम्बन्ध में जितनी अवधारणायें बनी हैं, वे धीरे-धीरे टूट रही हैं। इस लिए आयुर्वेद के सम्बन्ध में यह कहना मुश्किल है कि इसका जन्म कब हुआ? सम्भवतः इसी कारण से विज्ञानी इसे शाश्वत कहते हैं - लेखक द्वय]

भद्रशौनक

आचार्य प्रियव्रत शर्मा[1] ने चरकोक्त महर्षियों तथा आचार्यों की सूची में शौनक एवं भद्रशौनक को पृथक्-पृथक् माना है। शौनक का नाम चरक संहिता[2] के सूत्र स्थान में आया है जबकि भद्र शौनक का शारीर स्थान एवं सिद्धि स्थान में आया है। गर्भाशय में गर्भ का सबसे पूर्व कौन-सा अंग उत्पन्न होता है - इस सम्बन्ध में अग्निवेश ने दस प्रश्न किया जिसका उत्तर भद्रशौनक ने इस प्रकार दिया - पक्वाशय और गुदा सबसे पूर्व उत्पन्न होते हैं, क्योंकि वह वायु का अधिष्ठान है। वायु के बिना पित्त कुछ नहीं कर सकता। चरक संहिता[3] में मदनफल-विषयक सम्भाषा परिषद् का जिक्र है। विवाद का विषय था - द्रव्यों में कौन-सा द्रव्य श्रेष्ठ है? शौनक ने कहा था कि फलों में जीभूतक श्रेष्ठं है क्योंकि यह पित्त और कफ को दूर करता है। काप्य का मत था कि कृतवेधन उत्तम होता है, क्योंकि यह प्रबल कफ और पित्त को नष्ट करता है। इसका प्रतिवाद भद्रशौनक ने किया। भद्रशौनक के अनुसार कृतवेधन अत्यधिक कटु होता है तथा बल को नष्ट करनेवाला है। डा० दासगुप्ता[4] ने भी भद्रशौनक का जिक्र किया है। श्री दासगुप्ता ने भद्रशौनक के सम्बन्ध में निम्नलिखित मत व्यक्त किये हैं :-

1. हम भद्रशौनक के निजी जीवन के विषय में कुछ नहीं जानते हैं।
2. चरक संहिता[6] में भद्रशौनक का वर्णन है।
3. निबन्ध संग्रह[7] में एक बार मद शौनक का भी जिक्र आया है।
4. व्याख्या कुसुमावलि[8] में भद्रशौनक का जिक्र आया है।

आयुर्वेद सौख्य में भी भद्रशौनक का जिक्र है। चरक संहिता के सन्दर्भों को यदि वैज्ञानिक आधार माना जाय, तो निश्चय ही यह कहा जा सकता है कि शौनक एवं भद्रशौनक भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व के स्वामी थे। ऐसे भी अन्य ग्रन्थों में जो छिट-पुट सन्दर्भ मिलते हैं, उनसे भी यही निष्कर्ष निकलता है।

कुश सांकृत्यायन

चरक संहिता[9] के सूत्रस्थान के वातकलाकलीय

---

[1] प्रबन्ध निदेशक, श्री [illegible] [2] सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

अध्याय में वात के गुण-दोष का वर्णन है । वायु के गुण के सम्बन्ध में कुश साङ्-कृत्यायन ने कहा - 1. रूक्ष (रूखा), 2. लघु (हल्का), 3. शीत, 4. दारुण (कठिन शोषक होने से वायु कठोरता उत्पन्न करता है), 5. खर (खरदरा) एवं 6. विशद (जो पिच्छिल न हो); ये छः सात गुण वात के हैं। इनका जिक्र अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है । इसके बावजूद ये प्रख्यात् आयुर्वेदज्ञ थे, यह महर्षियों की विद्वत् परिषद् में उनके द्वारा प्रस्तुत मंतव्य से ज्ञात होता है ।

कुमारशिरा भरद्वाज

भरद्वाज की विशद चर्चा पहले ही की जा चुकी है । कुमारशिरा भरद्वाज एक पृथक् आयुर्वेद के विद्वान ज्ञात होते हैं । आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने भी इन्हें पृथक् माना है - ऐसा चरकोक्त महर्षि तथा आचार्य की सूची से ज्ञात होता है । चरक संहिता[10] के श्लोक से भी ऐसा ही ज्ञात होता है । वायु प्रकोपण के सम्बन्ध में साङ् कृत्यायन के द्वारा व्यक्त किये गये मत का समर्थन करते हुए कुमारशिरा भरद्वाज ने कहा - जैसा आपने कहा यथार्थ ही है । ये ही वायु के गुण हैं । वह वायु इसी प्रकार के गुणों वाले द्रव्यों और इसी प्रकार का प्रभाव रखने वाले कर्मों के सेवन से प्रकुपित होता है । रस के सम्बन्ध में भी कुमारशिरा भरद्वाज ने कहा है - पांच रस हैं । 1. भौम (भूमि सम्बंधी), 2. आदक, 3. आग्नेय, 4. वायत्य, 5. अन्तरिक्ष । कुमारशिरा ने अपने मत महर्षियों की विद्वत् परिषद्[12] में व्यक्त किये । ये महर्षिगण चैत्ररथ नामक मनोहर वन में एकत्रित हुए थे ।

चरक संहिता[13] के शारीर स्थान में गर्भाशय के सम्बन्ध में पूछे गये प्रश्न कि गर्भ का सबसे पूर्व कौन-सा अंग उत्पन्न होता है, कुमारशिरा भरद्वाज ने उत्तर दिया - कोख में गर्भ का सबसे पूर्व शिर उत्पन्न होता है, क्योंकि वह ही सब इन्द्रियों का आश्रय है । हालांकि सुश्रुत संहिता के अनुसार यह मत शौनक का है ।

श्री मुखोपाध्याय[14] के मत से भी कुमारशिरा भरद्वाज महर्षि भरद्वाज से पृथक् विद्वान थे । श्री दासगुप्ता[15] ने भी इसे भरद्वाज से पृथक आयुर्वेदज्ञ माना है - ऐसा उनके वर्णन से ज्ञात होता है । आयुर्वेद के अधिकांश विद्वानों ने कुमारशिरा भरद्वाज के रस सम्बन्धी मतों का
किया है । उल्लेख करते समय उनलोगों ने भरद्वाज
सम्बन्ध में उल्लेख नहीं किया है । इससे ज्ञात होता
उनलोगों की दृष्टि में भी कुमारशिरा भरद्वाज का
महर्षि भरद्वाज से पृथक था ।

शाकुन्तेय ब्राह्मण

चरक संहिता[16] के सूत्र स्थान के 26 वें
में रसवाद की चर्चा करते हुए शाकुन्तेय ब्राह्मण ने
दो रस हैं । 1. छेदनीय, 2. उपशमनीय । अर्थात् छेदनी
रस है, जो दोष को काटकर निकाल दे । उपशमनीय
जो दोषों को शान्त कर दे ।

चरक संहिता को छोड़कर सम्भवत: अन्य
में इनका जिक्र नहीं है ।

पूर्णाक्ष मौद्गल्य/निमि वैदेह

चरक संहिता[17] के सूत्र स्थान में पूर्णाक्ष मौ
का जिक्र रसवाद के सम्बन्ध में है । महर्षियों की
परिषद् में पूर्णाक्ष मौद्गल्य एवं निमि वैदेह भी उपस्थि
मौद्गल्य गोत्रीय पूर्णाक्ष[18] के अनुसार रस तीन हैं
छेदनीय, 2. उपशमनीय एवं 3. साधारण) जिसमें छे
और उपशमनीय दोनों मिश्रित हों) विदेह के राजा
के अनुसार रस सात हैं । 1. मधुर, 2. अम्ल, 3.
4. कटु, (मरिच आदि का रस), 5. तिक्त (नीम आ
रस) 6. कषाय (कसैला) एवं 7. क्षार ।

पूर्णाक्ष मौद्गल्य गोत्र के थे । इनके सम्ब
विशेष विवरण नहीं मिलता है । हां, निमि[20] के सम्ब
निम्न विवरण मिलते हैं -

1. अत्रिकुल में उत्पन्न एक ऋषि जो दत्तात्रेय के
(महाभा० अनु० 91.5) ।
2. राजा इक्ष्वाकु के 100 पुत्र हुए जिनमें से तीन
से एक पुत्र का नाम जिनसे मिथिला का वि
चला ।

[सम्भवत: यही निमि आयुर्वेदज्ञ थे जिसकी
चरक संहिता में है - लेखक]

विष्णु पुराण के अनुसार इन्होंने सहस्रवार्षि
के लिए वशिष्ठ ऋषि को बुलाया, पर इन्द्र पंचशत
यज्ञ के लिए उनका वरण पहले कर चुके थे । अतः

अपनी असमर्थता दिखलायी । इन्द्र के यज्ञ के पश्चात् यज्ञ करने का वचन दे वशिष्ठ चले गये । राजा निमि ने संसार की क्षणभंगुरता जान, गौतम आदि अन्य ऋषियों को बुला उनके द्वारा यज्ञ आरंभ करा दिया । इन्द्र का यज्ञ पूर्णकर लौटे हुए वशिष्ठ ने रूष्ट हो इन्हें शाप दिया । 'तुम्हारा यह शरीर न रहेगा ।' निमि ने भी वशिष्ठ को यही शाप दिया और दोनों का शरीर छूट गया । वशिष्ठ तो पुन: मित्रावरुण के वीर्य से उर्वशी से उत्पन्न हुए । राजा निमि का शरीर यज्ञ समाप्ति तक सुरक्षित रखा गया । यज्ञ की समाप्ति पर मुनियों ने भागं ग्रहणार्थ सभागत देवताओं से राजा के शरीर को सजीव करने की प्रार्थना की । किन्तु ज्ञानी निमि ने शरीर बन्धन पसन्द नहीं किया । देवताओं ने उन्हें मनुष्यों की आंखों की पलक पर स्थान दिया । वह शरीर धारण कर पुन: जन्म एवं मरण के जाल में फंसना नहीं चाहते थे । उसी समय से निमि विदेह कहलाये और उनके वंशज भी विदेह कहलाये । अराजकता नहीं फैले-इसलिए ऋषियों ने निमि के शरीर को मथा जिनसे जनक उत्पन्न हुए (भाग० 9.6.4; 13.1-13; 10.86.36; ब्रह्मा० 3.63.9; 64.1 विष्णु० 4.2.12; 5.1.23 । किन्तु मत्स्य० 61.32.35 में यह परस्पर शाप की कथा इस प्रकार दी गयी है - राजा निमि द्यूतक्रीड़ा स्त्रियों के साथ कर रहे थे । इसी बीच ब्रह्मपुत्र वशिष्ठ आ पहुंचे । राजा को अपनी यथा योग्य पूजा न करते देख उन्होंने राजा निमि को शाप दिया कि तुम देहहीन हो जाओ । राजा ने भी बदले में उन्हें वही शाप दे डाला । परस्पर के शाप से उनकी चेतना चली सी गयी । वे दोनों शाप को ले ब्रह्मा के पास गये । ब्रह्मा की आज्ञा से निमि नेत्रों में रहने लगे, लोगों के निमेष उनके विश्राम के लिए हुए । इन्होंने एक सत्र किया जिसमें ऋषभ के पुत्र ऋषि उपस्थित थे जिन्होंने राजा को भागवत धर्म की दीक्षा दी (भाग० 11.2.14, 25.26; अ०3 से 5; ब्रह्मा० 3.74, 244, 248; वायु० 1.42; मत्स्य० 61.32-5; 201. 1-20)।

3. दंडपाणि का पुत्र तथा क्षेमक का पता (भाग० 9.22. 44) ।
4. यजमान के सृञ्जयी पुत्री बाह्यका से उत्पन्न तीन पुत्रों में से एक पुत्र (मत्स्य० 44.50; विष्णु 4.13.2) ।
5. तारकासुर की सेना के 10 सेनापतियों में से एक सेनापति जिसके रथ में हाथी जुतते थे (मत्स्य० 148. 42. 51) । सूर्य अपने अस्त्रबल से असुरों को देवों का रूप तथा देवों को असुरों का रूप देते थे और वे असुरों से ही मारे जाते थे एवं असुर रूप में परिवर्त्तित देवगण असुरों के प्रहार से बच जाते थे । निमि ने इस रहस्य का पता लगाने के लिए कालनिमि से कहा । इसने जर्नादन पर भी बाणों की वर्षा की (मत्स्य० 150. 161; 224) । यह दिक्पालों कृष्ण तथा इन्द्र से लड़ा था । इन्द्र को तो इन्होंने मुग्दर से आहत किया था (मत्स्य० 153.55, 62) तथा विष्णु पर चक्र चलाया (मत्स्य० 151.12, 31) ।
6. विकुक्षि का छोटा भाई जिसने गौतम के आश्रय के निकट जयंतनगर की स्थापना की थी (वायु० 89. 1-2) ।
7. यजमान और बाह्यका के तीन पुत्रों में से एक पुत्र (वायु० 96.4)
8. 6 ऋतुओं के पिता का नाम (ब्रह्मा० 2.13.18) हिन्दी साहित्य कोश[21] में भी निमि का जिक्र है । इनमें जो कहानी दी गयी है, वही लगभग पौराणिक कोश में है । निमि को पलकों का देवता भीं कहते हैं - "मनहु सकुचि निमि तजे दृगंचल" (मानस)

अब प्रश्न उठता है कि उनका नाम विदेह देहहीन होने के कारण या विदेह नामक देश के राजा होने के कारण पड़ा । चरक संहिता में लिखा है - निमिश्च राजा वैदेहो इससे स्पष्ट है कि वे विदेह के राजा थे । पौराणिक कोश में दिये गये अनेक अर्थों में से एक अर्थ इसकी पुष्टि भी करता है । तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पूर्णाक्ष मौद्गल्य एवं राजा निमि एक प्रख्यात् आयुर्वेदज्ञ भी थे । विदित है कि प्राचीन काल में राजकुमारों क अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा के साथ-साथ राजनीति एवं चिकित्स विज्ञान की भी शिक्षा दी जाती थी । राजकुमार जिस विद्य में निपुण होते थे, उस क्षेत्र में उनका यश फैलता था । राज निमि राजनीति के साथ-साथ चिकित्सा-विज्ञान में निपुण होंगे, इसलिए उनका नाम आयुर्वेदज्ञ के रूप में चरक संहिता में आया है ।

पूर्व अंकों में सुश्रुत संहिता में वर्णित आयुर्वेद प्रवर्त्तक धन्वन्तरि पर विशद चर्चा की जा चुकी है । विष्णु पुराण और हरिवंश पुराण में जो वंशावली दी गयी है, उसमें भी अन्तर है । उदाहरण के लिए विष्णु पुराण में दीर्घतपा के पुत्र के रूप में धन्वन्तरि का जिक्र है जबकि हरिवंश पुराण में धन्व के पुत्र के रूप में धन्वन्तरि का जिक्र आया है । दिवोदास भिन्न व्यक्ति के रूप में अर्थात् भीमरथ के पुत्र में प्रस्तुत किये गये हैं । साथ ही दीर्घतपा के पौत्र के रूप में धन्वन्तरि का जिक्र है । इसके विपरीत विष्णु पुराण में दीर्घतपा के पुत्र के रूप में धन्वन्तरि का जिक्र आया है । आशय यह है कि धन्वन्तरि की एक रूपता के विषय में आयुर्वेदज्ञ एक मत नहीं हैं ।

चरक संहिता[22] के शारीरस्थान में धन्वन्तरि का जो जिक्र आया है, संभवतः वे पृथक् धन्वन्तरि हैं । गर्भाशय में गर्भ का सबसे पहले किस अंश का निर्माण होता है, इस सम्बन्ध में धन्वन्तरि का मत है कि सब अङ्ग युगपत् ही उत्पन्न होते हैं । यद्यपि सुश्रुत संहिता[23] में भी धन्वन्तरि का यही मत है, फिर भी दोनों संहिताओं के निर्माण की अवधि में जो अन्तर है, उससे स्पष्ट होता है कि दोनों धन्वन्तरियों के काल में अन्तर है ।

संदर्भ :-

1. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास - आचार्य प्रियव्रत शर्मा- चौखम्भा ओरियन्टालिया, वाराणसी ।
2. चरक संहिता - पूर्व भाग - मोतीलाल बनारसी दास, वाराणसी ।
3. **कफपित्तहरं वरं फलेष्वथ जीभूतकमाह शौनकः - च०सि० 11/5**
   कृतवेधन माह वातलं कफ पित्तं प्रबलं हरेदिति । तदसाध्विति भद्रशौनकः कटुकं चाति बलघ्न मित्यति ॥
   च०सि० 11/9
4. A History of Indian Philosophy - Vol. II - S.N. Das gupta - Cambridge University Press.
5. History of Indian Medicine - Girindranath Mukhopadhyay - Calcutta University.
6. **पक्वाशयगुद मिति भद्र शौनकः मारूतातिष्ठानत्वात् ।**
   - च०शा० 6/20
7. **तथा च मदशौनकः - निबंध संग्रह, i, xii**
   सामान्यं लेपजन्तु भद्रशौनकः प्राह-निबंध संग्रह, iv, xxxi
8. **तथा च भद्रशौनकः अल्पाभिष्यन्दि मधुरं ब संवत्सरोषितं ।**
   वृन्द माधव xi
   भद्रशौनकेनापि-
   संसृष्टभक्तः सुमनाः स्नेहपीती दृढ़ानलः
   —Lx
9. **अत्रोवाच कुशः साङ्कृत्यायनः -**
   रूक्षलघुशीत दारूण खरविशदाः षडिमे वातगु भवन्ति । च० सू० 12
10. **तच्छ्रूत्वा वाक्यं कुमारशिरा भरद्वाज उवाच - एवमेतद् भगवानाह - एत एव वातगुणा भवन्ति; स त्वेवंगु व्यैरेवं - प्रमावैश्च कर्मभिरभ्य स्य मानैर्वा प्रकोपभापद्यते....... च०सू० 12/4**
11. **पञ्च रसा इति कुमार शिरा भरद्वाजो भौमोदकाग्ने यवीयान्तरिक्षाः ।** च०सू० 26/1
12. **यः कुमार शिरा नाम भरद्वाजः स चानधः - च०** 26/3
13. **शिरः पूर्वमभिनिर्वर्तते कुक्षाविति कुमारशिरा भरद्वा पश्चति । - च०शा० 6/20**
14. History of Indian Medicine - Girindrana Mukhopadhyaya Bhisagacarya Vol. I University of Calcutta.
15. A history of Indian Philosophy - Vol.I Cambridge University Press.
16. **द्वौ रसाविति शाकुन्तेयो ब्राह्मणश्छेदनीय श्चोपशमनं श्चेति । - च०सू० 26/**
17. **पूर्णाक्षश्चैव मौद्गल्यो हिरण्याक्षश्च कौशिकः । च०सू० 26/2**
    निमिश्च राजा वैदेहो बडिश्च महामतिः । च०सू०26
18. **त्रयो रसा इति पूर्णाक्षों मौद्गल्या श्छेदनीयो पशमनी साधारणाश्चेति ।** च०सू० 26
19. **सप्त रसा इति निमिर्वैदेहो मधुराम्ल-लवण कटुतिक्त कषाय क्षाराः ।** च०सू० 26/13
20. पौराणिक कोश - ज्ञान मण्डल लि०, वाराणसी ।
21. हिन्दी साहित्य कोश - ज्ञान मण्डल लि०, वाराणसी
22. **सर्वाङ्गनिर्वृत्तिर्युगपदित धन्वन्तरिः । - च०शा० 6/**
23. **सर्वाण्यङ्ग प्रत्यङ्गनि युगपत् संभवन्ती-त्याह धन्वन्तरि**
    सु०शा० 3/

शोष विशेष के रूप में कहे गये कुछ मांस विकार

वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए. (निवृत्त प्रोफ./प्राचार्य आयु.को.)

परिचय[1]

आयुर्वेद साहित्य में शोष एक प्रसिद्ध रोग है । इस का वर्णन शोष, क्षय, यक्ष्मा या राजयक्ष्मा आदि के रूप में मिलता है । आचार्यों ने इसके अतिसाहस-अतिव्यवाय जन्य शुक्रक्षय, वेगरोग एवं विषमाशन जन्य प्रकार कहे हैं । इनके अतिरिक्त सुश्रुतादि ने - अध्व - व्यायाम व्यवाय - व्रण - उरक्षत - शोक - उपवास एवं जराजन्य कुछ अन्य शोष विशेष भी कहे हैं । ये सभी एक ही शोष रोग के रूप में त्रिदोषज विकार के रूप में वर्णित किये गये हैं । यद्यपि अध्व जन्य आदि को धातुक्षय के रूप में भी स्वीकारा गया है और तदानुसार चिकित्सा करने का निर्देश भी दिया है । यहां इन की संक्षिप्त चिकित्सा पर विचार किया है । इनके अतिरिक्त भी कुछ अवयव विशेष आश्रित शोष भी वर्णित मिलते हैं यथा - अंस-बाहुशोष, मुख-तालु शोष, नासा शोष या योनि शोष आदि रोग भी कहे गये हैं । इन्हीं को संक्षेप में यहां कहा जा रहा है ।

कई रोगों में लक्षण के रूप में कई अन्य शोष देखने को मिलते हैं यथा - ग्रीवा शोष, वक्ष - उदर शोष पृष्ठ-कटि-नितम्ब शोष, शाखा शोष, सक्थि-उरू-जंघा पाद शोष, आदि । इनपर भी पृथक से विचार की आवश्यकता है ।

शोष पर्याय

आयुर्वेद साहित्य में शोष, क्षय, यक्ष्मा या राजयक्ष्मा आदि संज्ञाओं का पर्याय रूप में प्रयोग मिलता है ।

शोष

इसका प्रयोग प्रमुख रोग संज्ञा के रूप में किया गया है । रसादि धातुओं का शोषण करने से इसकी यह संज्ञा है जो रसादि धातुओं की प्रमाण हानि का द्योतक है । यह शक वेस्टिंग (Wasting) जैसे भावार्थ का भी द्योतन करता है ।

क्षय

शोष के पर्याय रूप में प्रयुक्त यह शब्द मूलभूत रूप से 'धातु क्षय' के लिये प्रयुक्त होता रहा है । क्षय का शोष के संदर्भ में प्रयोग धातुओं के गुण-कर्म हानि की ओर विशेष संकेत करता है । अत: इसे क्रियाओं (चेष्टा) का क्षय करने वाला होने से क्षय कहा गया है । मांस के संदर्भ में मायोनिक एवं मायोस्थेनिक विकृतियों का ग्रहण भी इसी शीर्षक से किया जा सकता है ।

राजयक्ष्मा

यह शब्द जहां इस रोग को शास्त्रीय शब्द प्रमाण का समर्थन प्रदान करता है वहीं इसकी ऐतिहासिकता का भी द्योतक है । 'रोगों में प्रमुखता' के द्योतन में भी इसका प्रयोग होता है । राजा चन्द्र को यह रोग सर्वप्रथम हुआ होने से इसे 'राज रोग' के रूप में प्रस्थापित करने के लिये भी यह शब्द प्रयुक्त होता है । 'ओज वर्धक' चिकित्सा उल्लेख भी इस संदर्भ में स्मरणीय है । (यज्ञ चिकित्सा का भी यहां संकेत मिलता है) । यक्ष्मा से कई बार (फुफ्फुस गत) व्रण (केवीटी) जन्य रोग का ग्रहण भी किया जाता है ।

शोष का एकत्व[2]

आयुर्वेद के मनीषियों ने शोष को 'एक' ही माना है । वातादि भेद से अलग-अलग प्रकार मानने की प्राचीन समय में कोई परम्परा रही होगी जिसका सुश्रुतादि में खण्डन किया गया है । इस मत के समर्थन में कहा गया है कि - 1. शोष रोग (सन्निपातात्मक रूप) एक ही है । 2. क्योंकि सभी शोषों में 11 लक्षण मिलते हैं 3. शास्त्र इसी तथ्य का समर्थन करते हैं और युक्ति भी देते हैं । 4. शोष की चिकित्सा भी अलग-अलग न कह कर एक ही कही गई है । 5. ऐतिहासिक दृष्टि से भी प्रथम प्रजापति के क्रोध से (चन्द्र को) एक ही (लक्षण रूप) शोष उत्पन्न हुआ था । 'कफ प्रभूत दोष जन्य स्रोतोरोध जन्य धातुक्षय एवं ऊष्मा उपचय जन्य धातु क्षय होता है ।

शेष का अनेकत्व[3]

शोष प्रकरण में जिन शोष प्रकारों का उल्लेख मिलता है उनको तीन प्रमुख श्रेणियों में रखा जा सकता है यथ -

क. निमित्तानुसार - (1) क्षयज - क्षय (शुक्रादिधातु) क्षय जन्य (2) वेगावरोधज - वेगरोध से उत्पन्न (3) अभिघातज - आघात से उत्पन्न (4) विषमाशन

निवास : 1497, ए-2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुजरात) - 364 001

या विषम आहार सेवन से उत्पन्न ।

ख. लक्षण समूहानुसार - (1) एक लक्षणा - शोष युक्तता (2) षड लक्षण - छह लक्षण विशेष युक्तावस्था (3) एकादश लक्षण युक्तावस्था ।

ग. अन्य शेष विशेष[4]

I. निमित्तविशेषानुसार -(1) व्यायामज (सु.)(मा.) (2) अध्वज (आदि श्रमातिरेकजन्य)। (3) उरक्षत (4) व्रणज (आदि व्रण एवं क्षतजन्य) (4) व्यवायज - यौनतिरेक जन्य (5) वार्धक्य या स्थविरज - जराप्रभाव जन्य (6) उपवासज-अपोषणजन्य (7) शोकज-मानसिक दोषजन्य ।

II. क्षेत्रीय या अंग/अवयव विशेष सम्बद्ध शोष - (1) ऊर्ध्वाङ्ग-ग्रीवाशोष, मुख-तालु-कण्ठशोष नासा शोष आदि (2) शाखाश्रित-अंस-वाहु हस्त शोष, सक्थि, ऊरू, जंघा-पादशोष (ह) (3) गात्राश्रित-उर-वक्ष-उदर शोष, पृष्ठ-कटि-नितम्ब्र-शोष तथा योनिशोष-शिश्नशोषादि ।

इनका अर्न्तभाव[5]

(क) सुश्रुत आदि में संग्रहीत शोष विशेष के बारे में कई स्पष्टतायें भी की गई हैं यथा -

I. व्यायामादि निमित्त भेद से जो शोष, विशेष कहे गये है वे वस्तुत: 'शोष' संज्ञक एक रोग में जाते है । अत: मूलत: शोष एक ही है ।

II. अत: कई आचार्य उपरोक्त भेद विशेष को नहीं करते हैं ।

अत: सभी शोष (त्रिदोषज-लक्षण सम्बद्ध सभी (त्रिदोषज) शोष में ही आ जाते हैं । अंस शोषादि के संदर्भ में अधिक युक्ति लगता है ।)

III. व्यायामादि से उत्पन्न शोष को 'धातु क्षय' चाहिए ऐसा भी मत दिया गया है ।

अत: इस धातु क्षय संज्ञक शोष की धातु वृद्धि-क्षय में कहे अनुसार की जाती

(ख) अन्य जो देह-आंत्र या अंग विशेष क्षय हैं या शोष है उनमें चिकित्सा शोष को ही है । कुछ संदर्भो में चिकित्सा योज़ना में अन्तर भी है । अत: उन संदर्भो के अनुसार चिकित्सा करना ही क श्रेयस्कर होता है ।

(इसी संदर्भ में अर्न्तावयव सम्बद्ध मिलते हैं यथा - अथनलिकाशोष, अंत्रशोष आदि मांस सम्बद्ध स्नायु-कण्डरा शोष, धमनि शोष ग्रहण भी शोष में ही किया जा सकता है ।)

(अ) निमित्त विशेष जन्य शोष विशेष

अध्वज[6]	(उर) क्षतज[7]	व्रणज[8]	व्यायामज[9]
(क) हेतु -अध्व	उर-क्षत (उर-वक्ष-विदीरण)	व्रण (रक्तक्षय)	व्यायाम
(ख) लक्षण			
परुष-भृष्टछवि	वर्णभिन्नता	–	+ (भिन्न वर्ण)
स्रस्तांगता	–	–	+
प्रसुप्तांग (गात्र-अवयव)	–	–	+
मुख शुष्कता	–	–	+
गल शुष्कता	–	–	+
क्लोम (तालु) शुष्कता	–	–	+

	कसन	-	+ ?
	रक्त-पूय	-	-
	कफ निष्ठीवन		
	कसन पूर्वक वमन	-	-
	स्वर भिन्नता	-	+
	पीत, सम, कृष्ण	-	-
	अरुण, वमन		
	मुख-श्वास दुर्गंधिता	-	+
	वक्ष संतप्तता	-	-
	उर (वक्ष) शूल	-	+ ?
	मूर्च्छा	-	+
सुसाध्य	कृच्छ्रसाध्य	असाध्य	साध्य
(ग) चिकित्सा			
वात-कार्श्य-श्रमहर	क्षत-क्षीणहर	क्षतक्षीण हर	वात-श्रम-कार्श्यहर
दशमूलसिद्ध यवागू या क्षीर	लाक्षाप्राशन	हरिद्रा प्राशन	श्रमहर यवागू
वलाघृत, वासावलेह	बलाघृत, निघुण्डीघृत	त्रिफलाघृत	अजापंचकघृत
द्राक्षारिष्ट	च्यवनप्राश, वासालेह अस्रहराष्टि	च्यवनप्राश	अमृतप्राश
श्रृंङ्गाभ्ररस	विध्यवासिनीयोग	त्रिफलागूगल	लोकेश्वरपोटली

वयवायज[10]	**जराजन्य**[11]	**शोकज**[12]	**उपवासज**[13]
(क) हेतु			
व्यवायातिरेक	वय प्रभाव	शोकनित्यता	उपवास
(शुक्रादि धातुक्षय) (प्रतिलोम धातुक्षय)	(अनुलोम धातुक्षय)	(क्रमशः धातुक्षय)	(धातु-कर्षण-क्षय)
(ख) लक्षण			
शुक्रक्षय लक्षण	+ ?	-	लक्षण अनुपलब्ध (विषायशन जन्य यक्ष्मावत ?)
- शिश्नवेदना			
- वृषण वेदना			
- मैथुन अशक्ति			
- चिरात शुक्र प्रसेक			
- अल्पशुक्र प्रसेक			
पाण्डुता	शुष्क रूक्ष छवि कृश	+ (दीन ?)	

यथा पूर्व -	(अनुलोम)	+
धातुक्षीणता	+	+
	मंदवीर्य	-
	मंद बुद्धि	निरंतर ध्यानशीलता
	मंद इन्द्रियता	-
	कम्पन	स्रस्ताङ्गता
	अरुचि	-
	भिन्न कांस्यवतस्वर	(दीन ?)
	मुख-नासा-अक्षि से स्राव	-
	कफ रहित निष्ठीवन	-
	शुष्क-रूक्षफल	(
	गौरव	

(ग) चिकित्सा

वृष्य-शुक्रल	रसायन जराहरकल्प	सत्वावजय, वृष्य	तर्पण, वृहण
पांडु-कार्श्य-शोषहर	कार्श्यहर	वातघ्न, कार्श्यहर	कार्शाहर
अश्वगंधा माष तिल	च्यवनप्राश	अमृतप्राश, बलाघृत	बलाघृत, च्यवनप्राश
अजाघृत/अजापचकघृत	क्षयकेशर	रसेन्द्रगुटिका	क्षयकेसरी
श्रृंगारभ्ररस	रसेन्द्रगुटिका	कल्याण सुन्दराभ्र	

(आ) क्षेत्र या अवयव विशेष सम्बद्ध शोष

अंग विशेष सम्बद्ध कुछ शोष

आयुर्वेद साहित्य में सार्वदेहिक् शोष के अतिरिक्त कुछ अंग विशेष सम्बद्ध शोष के भी वर्णित मिलते हैं इनमें से कुछ नीचे अनुसार हैं ।

अंस एवं बाहु शोष[14]

(Scapular & Brachcal wasting)

इनका वर्णन वात व्याधि अधिकार में मिलता है ।

प्राप्त विवरण के अनुसार जब अंस स्थित वायु कुपित होकर अंस के बंधनों को सुखा देता है तब उसे अंस शोष कहते हैं ।

इसी प्रकार बाहु शोष का वर्णन वात विकार एवं शोष के रूप में विशेषत: चिकित्सा संदर्भ में मिलता है ।

चिकित्सा

अंस/बाहुशोष की चिकित्सा निम्नानुसार कही गई है -

1. भोजनोत्तर स्नेहपान (च) या भोजनोत्तर कल्याणघृ पान (भै०र०)
2. बलाक्वाथ में सैंधव प्रक्षेप पूर्वक सेवन (भै०र०)
3. रसेन्द्र गुटिका, कल्याण सुन्दर दस, तथा कांचनारा रस का सेवन (भै०र०)

(2) नासा शोष[15]

ऊर्ध्वाङ्ग रोगों में नासा शोष का वर्णन मिलता है

प्राप्त विवरण के अनुसार, जब वायु नासा स्रोतमू में जाकर पित्त से प्रतप्त होकर रोगी की नासा को परिशुष् कर देता है - तब रोगी ऊर्ध्वाध: श्वास कृच्छ्रता अनुभ करता है । इसे नासा शोष कहते हैं ।

चरक के कथनानुसार नासा शोष में कफ शोष श्रृङ्गाटक मर्म एवं नासा विशोषण पूर्वक नासा शोष रोग हो है । कई बार इसे एट्रोपिक राईनाईटिस या नासिका अलसक (राईनाईटिस सिक्का) भी कहते हैं । इसकी चिकित्सा क्ष अनुसार की जाती है ।

चिकित्सार्थ -

सितोपलादि, महालक्ष्मीविलास, स्वर्णवसन्त मालती आदि उपयोगी कल्प कहे गये हैं तथा अन्य शोषघ्न कल्प एवं उपक्रम ।

(3) तालुशोष[16]

मुख-तालु शोष का विवरण भी मिलता है । इसको पित्त संयुक्त वायु जन्य माना गया है । जब तालु अति शोषित हो जाता है, वह विदीर्ण हो जाता है तथा उग्रश्वास होता है तब उसे तालु शोष कहते हैं । (अपतर्पण जन्य तालु से इसे भिन्न समक्षना सुविधाजनक होगा)

चिकित्सा

इसमें चिकित्सा क्षय एवं शोषानुसार ही की जाती है ।

दशमूल क्वाथ एवं महालक्ष्मीविलास उपयोगी कल्प है ।

(4) योनिशोष[19]

इसका वर्णन वायु जन्य योनिव्यापद् में शुष्का योनिव्यापद् के रूप में किया गया मिलता है । इसमें योनिमुख या योनि शोष होना कहा गया है ।

मैथुन के समय मल-मूत्र आदि वेगों को रोकने से उत्पन्न/प्रकुपित वायु (पुन:) मूत्र-पुरीष का रोध कर देता है और योनिमुख को सुखा देता है इसे शुष्का योनिव्यापद् कहते हैं । (च)

वेगरोध से वायु के अतिपुष्ट होने से मल-मूत्र का संग. (संग्रह) हो जाता है तथा योनिशोष एवं (योनिगत) अतिवेदना होती है ।(सु)

चिकित्सा

इसकी चिकित्सार्थ वायु जन्य योनि व्यापद की चिकित्सा कही गई हैं । तदानुसार निम्नलिखित घटक महत्वपूर्ण है -

1. वातनाशक स्नेह, स्वेद, वस्ति प्रयोग ।
2. वातघ्नौषघ, औदक-आनूपमांस कृत नाड़ी स्वेद या वातघ्नौषध, तिलतण्डूल एवं दूध से नाड़ी स्वेद देना ।
3. ससैंधव तैल का योनि-अभ्यङ्ग पूर्वक अश्मस्वेद, संकर स्वेद ।
4. कोष्ण जल/क्वाथ परिषेक, वातघ्नतैल पिचु तथा कल्क धारण करना ।
5. वातघ्न मांस रस सेवन या रास्नादि द्रव्य सिद्ध क्षीर पान ।
6. अडूसा, विजौरा मूल, मेंहती, पीपर, कृष्णजीरक, सैंधव मिश्रण का मद्य के साथ सेवन ।

संदर्भ/आधार :-

1. **संशोषणाद्रसादीनां शोष इत्यभिधीयते ।**
क्रियाक्षय करत्वाच्च क्षय इत्युच्यते पुन: ।
राजश्चन्द्रमसो यस्मादेभूदेष किलामय: ।
तस्मात्तं राजयक्ष्मेति केचिदाहु: पुनर्जना: ।
(सु०उ० 41/4-5)

2. **स व्यस्तैर्जायते दोषैरति केचिद्वदन्ति हि**
एकादशानामेकस्मिन् सान्निध्यात्तन्त्रयुक्ति: ।
क्रियाणामविभागेन प्रागेकोत्पादनेन् च
एकएव मत: शोष: सन्निपातात्मको ह्यत: ।
(सु०उ० 41/6-7)

3. **उद्रेकात्तत्र लिङ्गानि दोषाणां निपतन्ति हि**
क्षयाद्वेगप्रतिघातादाधाताद्विषमाशनात् ।
जायते कुपितैर्दोषैर्व्याप्तदेहस्य देहिन:
कफ प्रधानैर्दोषैर्हिरूद्धेषु रसवर्त्मसु ॥
(सु०उ० 41/8-9)

स्रोतसां संनिरोधच्च सपादीनां च संक्षयात्
धातूष्माणां चापचयाद् राजयक्ष्मा प्रवर्तते ।

4. **व्यायामशोकंवार्धक्य व्यायामाध्वप्रशोषितान्**
व्रणोर: क्षत संज्ञौ च शोषिणौ लक्षणै: श्रुणु ।
(मा०नि० 10/14)

व्यवायशोकस्थाविर्य व्यायामाध्वोपवासत:
व्रणोर: क्षत पीडाभ्यां शोषानन्ये वदन्ति हि ।
सु० उ० 41/16

5. **केषांचिदेवं शोषो हि कारणैर्भेदमागत: नतत्र**
दोषलिङ्गानां समस्तानडै निपातनम् ।
क्षया एव हिते ज्ञेया: प्रत्येकं धातु संज्ञिता:
चिकित्सितां तु तेषां हि प्रागुक्तं धातुसंक्षये ॥
(सु०हु० 41/26-28)

6. अध्वप्रशोषी स्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः
प्रसुप्तगात्रावयवः शुष्कक्लोमगलाननः ।

(सु०उ० 41/21)

7. व्यायामभाराध्यमनैरभिघातातिमैथुनैः
कर्मणा चाप्युरस्येन वक्षो यस्य विदीरितम् ।
तस्योरसि क्षते रक्तं पूयः श्लेष्मा च गच्छति ।
कासमानश्छर्दयेच्च पीतरक्तासितारूणम्
संतप्तवक्षाः सोऽत्यर्थं दूयनात्परिताम्यति
दुर्गन्ध वदनोच्छ्वासो भिन्न वर्णस्वरोत्तरः ।

(सु०उ० 41/24-25)

8. रक्तक्षयाद् वेदनाभिस्तथैवाहार यंत्रणात् ।
व्रणितस्य भवेच्छोषः रूचासाध्यतमः मृतः ।

(सु०उ० 41/23)

9. व्यायामशोषी भूयिष्ठमेभिरेव समन्वितः ।
लिंङ्गैःउरःक्षत कृते संयुक्तश्च क्षताद्विना ।

(सु०उ० 41/22)

10. व्यवायशोषी शुक्रस्य क्षयलिगैंरूपद्रुतः
पाण्डुदेहो यथापूर्वं क्षीयन्ते चास्य धातवः ।

(सु०उ० 41/17)

11. जराशोषी कृशो मंदवीर्य बुद्धिबलेन्द्रियः ।
कम्पनोऽरूचिमान् भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः ।
ष्ठीवति श्लेष्मणाः हीनं गौरवारूचि पीड़ितः
संप्रस्रुतास्यनासाक्षः सुप्त (शुष्क) रूक्षमलच्छविः।

(सु०उ० 41/19-20)

2. (सु०उ० 41/16)

3. अंसदेशस्थितो वायुः शोषदंसबंधनम् ।

(मा०नि० 22/64, सु०नि०1)

14. श्राणाश्रिते स्रोतांसि मारुतेन गाढे प्रतप्ते
परिशोषिते च । कृच्छ्राछूसिदूर्ध्वमधश्च
जन्तुर्यस्मिन स नासापरिशोषकः ।

(मा०नि० 58/10)

क्रुद्धः स संशोष्य कफं तु नासा श्रृगांटकध्राणविशोषणम् ।

(च०चि०)

16. शोषोऽत्य्‌र्थं दीर्यतेचापि तालुः श्वासश्चोग्रस्तालुशोषऽमिलभ्च ।

(मा०नि० 56/37)

17. व्यवायकाले रून्धन्त्यावेगान्प्रकुपितोऽनिलः
कुर्याद्विण्मूत्रसङ्गार्तिषोषं योनिमुखस्य च ।

(च०चि० 30/31)

वेगरोधाहती वायुर्दुष्टो विण्मूत्र संग्रहम्
करोति योनिशोषं च शुष्काख्या सातिवेदना ।

(सु०उ० 18/)

18. च०चि०30/40, 46, 55-58
तत्रापि स्वयोनिवर्धनद्रव्योपयोगः प्रतिकारः ।

(सु०सू० 15/10)

सु०उ० 41, च०चि० (शोष चि) भै०र० (शोष चि.)
दोषधातुमल क्षीणोवलक्षीणोऽपिवानरः ।
स्वयोनिवर्धनं यत्तदन्नपानं प्रकांक्षति ।
यद्यदाहारजातं तु क्षीणः प्रार्थयते नरः ।
तस्य तस्य स लाभे तु तं तं क्षयमपोहति ।
यस्य धातुक्षयाद्वायुः संज्ञा कर्म नाशयेत् ।
प्रक्षीणं च बलं यस्यनासौशक्यश्चिकित्सितम् ।

(सु०सू० 15/29-31)

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

दिमागी बुखार (Meningitis) – निदान एवं चिकित्सा

* डॉ० विनोद कुमार गौतम ** डॉ० माण्डवी गौतम *** प्रो० अजय कुमार शर्मा

रिचय :-

जब किसी संक्रमण (Infection) के कारण स्तिष्क तथा सुषुम्ना (Spinal cord) पर फैले आवरण Brain coverings) में शोथ (inflammation) हो जाता तो उसे ही "दिमागी बुखार या मस्तिष्कावरण शोथ Meningitis)" कहते हैं । यह रोग अधिकांशतया छोटे च्चों को होता है । यदि सही समय पर उपयुक्त चिकित्सा हीं की जाये तो यह रोग बच्चे में कई दुष्प्रभाव उत्पन्न कर ा है और साथ ही उसके लिए मृत्युकारक भी हो सकता ।

ारण एवं प्रकार -

कारण के अनुसार मेनिन्जाइटिस मुख्यतया दो कार का होता है -

) जीवाणु जन्य (Bacterial) - एच. इन्फ्लुएंजा, मेनिंगोकोकस एवं नीमोकोकस आदि से होने वाला ।

) जीवाणु रहित अर्थात् - वायरस, राजयक्ष्मा (Tuberculosis) फंगस आदि से होने वाला ।

यह जीवाणु आदि, सर्वप्रथम शरीर के किसी भी ाग (मुख्यतया श्वसन तंत्र) में संक्रमण करता है । उसके ाद वहाँ से यह संक्रमण रक्तसंचरण के माध्यम से ास्तिष्क में पहुँचकर मेनिन्जाइटिस उत्पन्न करता है । ांक्रमण होने के लगभग 1-5 दिन के बाद ही रोग के ाक्षण उत्पन्न हो जाते हैं ।

हचान के लक्षण -

1. शिशु का दूध न पीना ।
2. ज्वर (Fever) ।
3. कंपकंपी (Rigours) ।
4. चिड़चिड़ापन (Irritability) ।
5. अनिद्रा (Insomnia) ।
6. वमन (Vomiting) ।
7. शिरःशूल (Headache) ।
8. आक्षेप (Convulsion) ।
9. मूर्च्छा (Unconsciousness) ।
10. विषमयता (Toxemia) ।
11. ग्रीवा में दर्द (Neck pain) ।
12. ग्रीवा स्तम्भ (Neck rigidity) ।
13. प्रकाश से डरना (Photophobia) ।
14. त्वचा पर नीले लाल धब्बे (Purpuric skin rash) ।

नैदानिक परीक्षण -

बच्चे को दिमागी बुखार ही हुआ है । इसका सुनिश्चित निदान निम्न परीक्षणों से किया जा सकता है -

1. **मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव (C.S.F.) परीक्षण -** इस टेस्ट में मस्तिष्क एवं सुषुम्ना में रहने वाले द्रव (C.S.F.) को लम्बर पंक्चर विधि से निकालकर उसका परीक्षण करते हैं जिससे इस रोग के निदान के साथ-साथ कल्चर के माध्यम से उपयुक्त एवं प्रभावी औषधि (एन्टीबायोटिक्स) का भी ज्ञान हो जाता है ।
2. **इसके अतिरिक्त अन्य परीक्षण जैसे -** रक्तपरीक्षा, एक्स-रे Chest एवं T.B. के निदान के परीक्षण भी आवश्यकतानुसार कराये जा सकते हैं ।

क्यों घातक है दिमागी बुखार -

उपयुक्त चिकित्सा के अभाव में यह रोग बढ़ता जाता है और रोगी में निम्न उपद्रव जैसे -

1. मूर्च्छा (Coma)
2. विषमयता (Septicemia)
3. पक्षाघात (Paralysis)
4. नेत्र विकार (Eye disease)
5. मन्दबुद्धि (Mental retardness)

---

* एम.डी. स्कॉलर, स्नातकोत्तर कायचिकित्सा विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर
** एम.डी. स्कॉलर, स्नातकोत्तर मौलिक सिद्धान्त विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर
*** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर कायचिकित्सा विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

6. शीर्षाम्बु (Hydrocephalus)

7. मानसिक विकार (Psychiatric problems)

8. बहरापन (Deafness) आदि हो सकते हैं जो कि रोगी की मृत्यु का कारण भी बन सकते हैं । इसलिए यह रोग घातक है ।

उपचार -

दिमागी बुखार की घातकता को देखते हुए यह आवश्यक है कि जब भी उक्त प्रकार के लक्षण बच्चों में मिले तो उन्हें अतिशीघ्र किसी योग्य चिकित्सक को दिखाना चाहिए जिससे समय पर इसकी चिकित्सा की जा सके ।

आधुनिक चिकित्सा पद्धति (Allopathy) में मेनिन्जाइटीस के लिए निम्न प्रकार से चिकित्सा व्यवस्थायें की जाती हैं ।

1. रोगी को अस्पताल में शीघ्र भर्ती करते हैं ।
2. अतिशीघ्र निदान कर उपयुक्त जीवाणु नाशक औषधियाँ (Antibiotics), आक्षेपशामक औषधियाँ, मस्तिष्क में दबाव कम करने वाली औषधियाँ तथा अन्य लक्षणात्मक चिकित्सा जैसे, शूलनाशक (Analgesic) औषधियाँ आदि से उपचार प्रारम्भ करते हैं ।
3. राजयक्ष्मा जन्य दिमागी बुखार में क्षयनाशक उपचार (ATT) भी देते हैं ।
4. बच्चे के पोषण को बनाये रखने के लिए तरल एवं अधिक प्रोटीनयुक्त आहार देते रहना चाहिए । यदि बच्चा असमर्थ हो तो उसे ट्यूब के माध्यम से तरल आहार देते रहना चाहिए ।
5. रोगी को करवट बदलवाते रहना चाहिए ।
6. रोगी की शारीरिक स्वच्छता का ध्यान रखना बेहद आवश्यक है ।
7. रोगी का संक्रमण किसी स्वस्थ में न जाये इसके लिए रोगी के शरीर से निकले अपद्रव्यों (थूक, मल, मूत्र, वमन पदार्थ आदि) का उचित निस्तारण करना चाहिए । साथ ही रोगी को अन्य बच्चों से अलग (Isolation ward में) रखना चाहिए ताकि एक दू के इन्फेक्शन का खतरा न रहे ।

आयुर्वेदिक उपचार -

आयुर्वेद में ऐसी कई औषधियाँ वर्णित हैं मस्तिष्क ज्वर में लाभप्रद हो सकती हैं । इन औषधियों यदि उपरोक्त चिकित्सा व्यवस्था के साथ प्रयुक्त कि जाये तो न केवल रोगी को शीघ्र स्वास्थ्य लाभ होता है व दिमागी बुखार एवं ऐलोपैथी दवाइयों के कुप्रभावों को रोका जा सकता है और मृत्युदर में महत्वपूर्ण कमी की सकती है ।

रसौधियाँ - जयमंगल रस, स्वर्णमालिनी ब रस, त्रिभुवनकीर्ति रस, आनन्द भैरव रस (ज्वर), हिंगुले रस, महालक्ष्मीविलास रस, वृहत् कस्तूरीभैरव रस, ज्वरमु रस, बालरोगान्तक रस एवं महामृत्युञ्जय रस आदि ।

भस्म- 1) गोदन्ती भस्म 2) गिलोय सत्व
चूर्ण - 1) महासुदर्शन चूर्ण 2) किराततिक्तादि चू
वटी - 1) सप्तपर्ण घनवटी 2) गुडूची घनवटी (संशमन वटी)
3) ब्राह्मी वटी (स्वर्ण) 4) करञ्जादी वटी
5) संजीवनी वटी
क्वाथ-1) गुडूच्यादि क्वाथ 2) पटोलादि क्वाथ
स्वरस-1) चिरायता रस 2) गिलोय स्वरस
आसवारिष्ट-1) अमृतारिष्ट 2) अरविन्दासव

लाक्षणिक चिकित्सा -

1) रोगी के मूर्च्छित होने पर मूर्च्छान्तक रस, नस्य दे सकते हैं ।

2) वमन रोकने के लिए - मयूरपिच्छ भस्म आदि प्रयोग करें ।

3) मस्तिष्कान्तर्गत दबाव कम करने के लिए - पुनर्नवा आदि के योग दें ।

4) ग्रीवास्तम्भ एवं आक्षेप शमनार्थ - महाविषगर्भ तै कुपीलु तैल से अभ्यंग (मालिश) करें ।

(शेष पृष्ठ सं० 99

वातरक्त रोग : लक्षण, भेद, कारण व उपचार

वैद्य चन्द्रदेव मण्डल

'वात' और 'रक्त' दोनों के विकार ग्रस्त हो जाने से शरीर में उत्पन्न होने वाला रोग 'वात रक्त' रोग कहलाता है । इसमें पीड़ा हाथ-पैरों के अंगूठे से शुरू होती है, जो घुटनों और जानु तक फैल जाती है । किसी-किसी में यह दर्द हाथ या पैरों की उंगलियों के पोरों से शुरू होकर पैरों के नीचे तक प्रसारित होता है । तीस से पैंतीस की उम्र में इस रोग का प्रकोप ज्यादा होता है, पर इसकी ज्यादा संभावना पचास या इससे ऊपर के उम्रदराज लोगों में होती है ।

इस रोग में 'वात' व 'रक्त' दोनों बढ़े होते हैं, दोनों दूषित होते हैं । पर 'वात' ज्यादा दूषित होता है, 'रक्त' उससे कुछ कम ।

यह जानी हुई बात है कि यह झोंक से होनेवाला रोग अचानक जोड़ों में तेज दर्द पैदा करता है जिससे दर्द के मारे आक्रान्त आदमी बेचैन हो जाता है और उसकी नींद तक हराम हो जाती है ।

अक्सर प्रात: काल में सोकर उठने के बाद पैर की उँगलियाँ-दर्द से बोझिल होती हैं । फिर जोड़ों में सूजन व खिंचाव होता है । सूजी जगह गर्म मालूम होती है । यह स्थिति कई घंटे बनी रहती है । फिर सभी तकलीफें कम होने लगती हैं । वह बहुत कुछ सामान्य होने लगता है ।

वातरक्त होने के कारण

- इस रोग के पीछे मीठे खाद्य पदार्थों का अधिकाधिक सेवन भी होता है ।
- वात रोग उनको भी होता है, जो नमकीन खाद्य पदार्थ ज्यादा खाते हैं ।
- जो लोग दही, छाछ, शराब ज्यादा लेते हैं, वे भी प्राय: इसके प्रकोप से नहीं बचते ।
- मछली व अन्य शिकार ज्यादा खाने वाले इसे भोगते हैं । अधिक तीखे-खट्टे भोजन करने वाले भी इसकी चपेट में आ जाते हैं ।
- क्षारमय तैलीय खाद्य का सेवन ज्यादा हो या ज्यादा सूखे पदार्थों का सेवन और मूली, कुल्थी, उड़द, सेम भोजन में ज्यादा लेना वातरक्त दोष को बढ़ा देता है ।
- शारीरिक श्रम की अधिकता और इसका नितान्त अभाव, दोनों हालत में इस रोग का बढ़ना होता है ।
- जोड़ों पर आघात होना भी वातरक्त रोग का कारण बनता है ।
- देखने में तो आता है कि अक्सर तेज धूप में बाहर निकलना; ऊँट, घोड़े और हाथी की सवारी पर ज्यादा विचरण करना, इस रोग में इजाफा करता है । कारण कि इससे शरीर के जोड़ों में दुर्बलता आती है ।
- वात रक्त रोग वंशानुगत कारण से भी होता है । इसके अलावा शरीर में पोषक तत्व की कमी या अधिकता से भी संधियाँ सूज जाती हैं ।

वातरक्त के लक्षण

- वात रक्त ग्रसित रोगी में पसीना नहीं आने या पसीना अधिक आने की शिकायत होती है ।
- संधियों के आसपास कालिमा नजर आती है ।
- वातरक्त से आक्रान्त होने पर प्रभावित उंगली-पोर-स्थल पर स्पर्शानुभूति कम होती है ।
- संधियों के आस-पास की त्वचा का रंग बदरंग हो जाता है, वहाँ खुजलाहट महसूस होती है ।
- रोगी अलस भाव में दिखलाई पड़ता है । किसी-किसी के बदन में फुंसियाँ भी निकल आती हैं ।
- उंगलियों के पोरों और प्रभावित अस्थियों के जोड़-जोड़ में वेदना का आभास होता है । वेदना की प्रकृति सूई चुभने जैसी होती है ।
- रोगी को देखें तो पता चलता है कि जोड़ों के आसपास और अन्य कई जगहों पर चमड़ी पर चकत्ते जैसे उभर आए हैं ।
- वातरक्त के कुछ रोगियों की संधियों में दर्द के साथ त्वचा, पर कुष्ठ जैसे लक्षण नजर आते हैं, पर ये कुष्ठ नहीं होते ।

ग्राम-हरिचक, पो०-काशड़ी (भागलपुर) - 813203

- चूंकि हाथ व पैरों के पोरों के बीच-बीच में छोटी-छोटी अस्थि-संधियों होती हैं, जो बनावट में टेढ़ी होती हैं । वहाँ वात-रक्त दोष का प्रभाव भी खुलकर स्पष्ट होता है । दर्द यहीं से शुरू होकर शरीर के बीच बढ़ता है ।

वातरक्त रोग के भेद

- वातरक्त रोग को कफज, पित्तज, वातज और रक्तज इन चार भागों में बांटा जा सकता है ।
- कफज वातरक्त उसे कहते हैं; जिसमें कफ प्रधान होता है । इसमें संधियाँ भारग्रस्त हो जाती हैं । स्पर्श-ज्ञान कम हो जाता है । हिलने-डोलने में कष्ट होता है, मगर कुछ कम ।
- पित्तज वातरक्त रोग की पहचान अलग होती है, वर्ण गहरा लाल हो जाता है । शोथ ज्यादा हो जाता है, प्राय: पक जाता है । वेदना इतनी अधिक होती है कि रोगी तड़पता देखा जाता है । पसीना खूब आता है । शरीर गर्म व ज्वर पीड़ित रहता है । रोगी को प्यास सताती है और वह मूर्च्छित भी हो सकता है ।
- वातज वातरक्त में अस्थि से जुड़ी शिराएं फूल जाती हैं । बहुत तेज दर्द का अहसास होता है । सूजी जगह काली पड़ जाती है । जोड़ की जगह जकड़ जाती है ।
- रक्तज वातरक्त में जोड़ों में सूजन लक्षित होती है । आस-पास की चमड़ी लाल रहती है, जिसमें चुनचुनाहट होती है । त्वचा गीली लगती है ।

वातरक्त रोग का निदान

- वातरक्त रोग से मिलते-जुलते लक्षण आमवात, सायटिका (गृध्रसी वात), संधिवात, उपदंशोत्पन्न संधिशूल आदि वात रोगों में भी मिलते हैं । पर सभी एक जैसे नहीं होते ।
- स्मरण रहे कि वातरक्त में वात और रक्त विकृत हुआ रहता है । किन्तु अन्य वात रोग में रक्त विकार नहीं रहता ।
- अन्य वात रोगों में जहाँ बड़ी-बड़ी संधियाँ आक्रान्त और विकारग्रस्त होती हैं; वहाँ वातरक्त में विशेषत: छोटी संधियाँ और उंगलियों के पोर प्रभावित होते
- वातरक्त रोग में जैसा त्वचा का रंग बदरंग हो जा वैसा अन्य वातरोग में नहीं होता ।
- गौर करें तो पता चल जाता है कि आमवात में सं में जकड़न ज्यादा होती है । आक्रान्त स्थान पर के लिए मालिश की जाती है, तो दर्द और बढ़ है ।
- संधिशूल यदि उपदंश रोग होने के बाद होता है समझें यह उपदंश रोगजन्य है ।
- वातरक्त रोग औषधि चिकित्सा तक दम साधे है । चिकित्सा बंद होने पर या लापरवाही बरतं यह आराम हराम कर देता है ।
- वातरक्त, तो भूख की मंदी होना है । रोगी चिड़ रहता है । उसे अच्छी नींद नहीं आती, मांसपेशि ऐंठन रहती है । जोड़ों में दर्द रहता है ।

वातरक्त रोग की चिकित्सा

- वातरक्त रोग होने के जो भी कारण हों, उनका प कर देना सबसे जरूरी होता है । यही प्राथ चिकित्सा है ।
- कारण हटा देने के बाद शोधन चिकित्सा की ज पड़ती है । शोधन-चिकित्सा में विरेचन, बस्ति रक्त मोक्षण का अपना महत्व है ।
- शोधन-चिकित्सा से शरीर निर्मल जरूर होता है शरीर दुर्बल भी होता है । इसलिए शोधन- सावधानी से करना होता है ।
- शोधन के कार्य से वायु-विकार नष्ट हो जाते विरेचन के लिए एरंड तेल का सेवन बहुत निर्दोष है । कुछ वैद्य मुनक्का, हरड़, आरग्वध क्वाथ शरीर को निर्मल बनाते हैं ।
- बस्ति प्रयोग भी शरीर-दोष को हटाने में चमत्कारी हैं । इसके लिए गुडूच्यादि और दशमूल क्वाथ और अच्छे होते हैं । गुडूची तेल व निर्गुण्डी अनुवासन के लिए उपर्युक्त माने जाते हैं ।

- * बिजौरे नींबू की जड़; हिंस्र की जड़, देवदारु, सोंठ, रास्ना और एरंड की छाल पीसकर उसका वातरक्त प्रभावित अंग पर लेप सूजन और दर्द को खत्म कर देता है, इसे अनुभवी वैद्य ने आजमाया है ।
- * कई कुशल वैद्य संधियों के प्रदाह और त्वचा के रंग-विकार को दूर करने के लिये वहाँ जोंक लगाते हैं । इसे रक्तमोक्षण चिकित्सा कहते हैं ।
- * गिलोय की कंद का चूर्ण भी इस रोग की चिकित्सा में सफल भूमिका निभाता है । बैद्यनाथ की बनी-बनाई औषधि अमृतारिष्ट भी अनुभव सिद्ध है । गुडूच्यादि लौह और निम्बादि चूर्ण भी अच्छी फलदायी औषधियाँ हैं ।
- * अमृत गुग्गुल या कैशोर गुग्गुल वातरक्त रोग की परमोपयोगी औषधि है । अनन्त मूल एक सुलभ और सफल जड़ी-बूटी है । इसका एक ग्राम चूर्ण मात्र सुबह-शाम जल के साथ लेते रहना पित्तज और रक्तज दोनों प्रकार के वात रक्त को नष्ट करने में सक्षम है ।
- * एक और औषधि जो चलन में है, वह है सुरंजान । इसके कंद के चूर्ण की मात्र एक सौ पचास ग्राम मात्रा रोना दोनों वक्त सेवन से सभी प्रकार के वात रक्त में लाभ होता है ।
- * अनन्त मूल का ही एक नाम सारिवा है । इससे तैयार सारिवाद्यासव का सेवन दो-दो चम्मच दिन में दो बार करने से वात रक्त रोग का जनाजा निकल जाता है ।
- * खाने या पीने की औषधि के साथ-साथ यदि मालिश भी की जाय तो जल्द रोग दूर हो जाता है । मालिश के लिए जल में सौ बार परिष्कृत गाय का घी, मरिच्यादि तेल और विषविन्दु तेल में से कोई एक को आजमाएं ।
- * चिकित्सा के साथ-साथ पथ्यापथ्य और आहार-विहार का भी ध्यान रखा जाना बेहतर होता है । अन्न में पुराना चावल, मूंग, अरहर, जौ, सब्जी में कुम्हड़ा, करेला, मांसाहारी को मुर्गी व कबूतर मांस पथ्य हैं । फल में अंगूर पथ्य है । अपथ्य है कुल्थी, उड़द, मटर सेवन और जलचर पक्षी का मांसाहार ।
- * बकरी व भैंस का दूध, मक्खन, मीठा छाछ, घी उत्तम हैं । दिन में शयन, ज्यादा शरीर-श्रम, अति मैथुन, दही, मदिरा अकल्याणकारी है ।

(पृष्ठ सं० 96 का शेषांश)

बचाव के उपाय (Prophylaxis) -

1) स्वस्थ बच्चों को रोगियों से अलग रखें ।
2) बच्चों की शारीरिक स्वच्छता का ध्यान रखें ।
3) बच्चों को दिमागी बुखार ही न हो, इसके लिए बच्चों के दिमागी बुखार के टीके (Vaccines) लगवाने चाहिए । जैसे Hib Vaccines & Meningococcal Vaccines A,C,Y & W135 Vaccines.
4) संक्रमण ही न हो इसके लिए बच्चों की रोग प्रतिरक्षा शक्ति (Immunity power) को बढ़ाने के उपाय करने चाहिए यथा - कुमारकल्याण रस, च्यवनप्राश, आमलकी रसायन, आदि आयुर्वेदिक औषधियों एवं दूध आदि जीवनीय शक्तिवर्धक पदार्थों का सेवन कराना चाहिए ।

इस प्रकार उपयुक्त समय पर उपयुक्त चिकित्सा व्यवस्था करने पर बच्चे को दिमागी बुखार उत्पन्न होने से एवं दिमागी बुखार हो जाये तो उसके कुप्रभावों से बचा सकते हैं ।

संदर्भ -

1. कौमारभृत्य - डॉ० देवेन्द्रनाथ मिश्र ।
2. Medicine for Students - Golwalla
3. Principles and Practice of Medicine - Davidson.
4. आयुर्वेद सार संग्रह - श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड ।

नाड़ी परीक्षा - क्या संहिता में संदर्भ नहीं है ?

* वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तूरे ** वैद्या तनूजा

नाड़ी परीक्षा आयुर्वेद का एक अत्यंत महत्व का विषय है। जितना यह विषय महत्व का है उतना ही यह चर्चास्पद और विवादास्पद भी है। लगभग 90% लोग ऐसा कहते हैं कि अमुक वैद्य नाड़ी परीक्षा में अत्यंत तज्ञ हैं जो नाड़ी देखकर ही रोग का नाम कह देते हैं। तो अनेक वैद्य शायद 50% ऐसा कहते हैं कि ऐसा कहना तर्कसंगत नहीं है और इस प्रकार के विधानों को मिथ्या कहने में या हँसी उड़ाने में खुद की विद्वता मानते हैं। विद्यार्थियों को नाड़ी परीक्षा का ज्ञान महाविद्यालय के अध्ययन क्रम में कुछ बहुत अच्छा ज्ञान प्राप्त नहीं होता। विद्यार्थी स्वयं भी बहुत अधिक ध्यान नहीं देते हैं।

दूसरा पक्ष ऐसा है कि जब भी किसी शास्त्र चर्चा परिषद् में जाते हैं तो विद्वानवक्ता प्रतिपादन करते रहते हैं कि नाड़ी परीक्षा के लिये मूल संहिता चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट इत्यादि में कोई संबंध नहीं है और वह उत्तरकाल में शार्ङ्गधर, योगरत्नाकर इत्यादि में दी गई है जो अष्टविध परीक्षा में से रोग परीक्षा का मात्र एक प्रकार है। अर्थात् 1/8 (अष्टमांश) महत्व इस विधि को है। इन सब विधानों का यथा योग्य परीक्षण कर क्या तत्वाबोध हो सकता है, इसका विचार करना इस लेख का हेतु है और यदि नाड़ी परीक्षा में लक्ष्य है तो उससे कितना लाभ हो सकता है और करने की विधि कैसी होनी चाहिये यह देखना उचित होगा।

सबसे पहले सामान्य लोगों में उचित या अनुचित जो गलतफहमी है नाड़ी के बारे में उसका विचार करें। कभी-कभी ऐसा सुनने में आता है कि रोगी अन्य रोगी को कहता हैं कि अमुक वैद्य ने नाड़ी देखकर यह कहा है कि तुम केला खाके या दही खाके आये हो जो मैंने मना किया था ? क्या यह सत्य है ? नाड़ी परीक्षा से गुरू, लघु, मंद, तीक्ष्ण, उष्ण, शीत, चपल, मंद इत्यादि भावों की परीक्षा करने का विधान नाड़ी परीक्षा ग्रंथ में जो बहुत प्राचीन नहीं है (रावणतंत्र के उद्धरण से प्राप्त होता है जिस रावण के बारे में विवाद है।) अत: समर्थक कह सकते हैं कि इन गुणों से तत्-तत् अन्य विशेष की कल्पना हम नाड़ी से कर सकते हैं तथापि इन गुणों के संयुक्त पदार्थ इतने सारे मौजूद होते हैं कि कोई विशिष्ट पदार्थ खाकर रोगी आया है कहना असंभव है। गुरु-लघु, शीत-उष्णादि गुणों नाड़ी परीक्षा करना और उसकी मिश्रित गुणोत्पत्ति सा करना यह भी सापेक्ष और जटिल विषय है। अत: इस बहुत अधिक विवाद क्षेत्र हमेशा रहता है।

नाड़ी परीक्षा के बारे में मूल संहिता के संदर्भ जो चर्चा की जाती है उसके बारे में भी विचार विनि करना क्रम प्राप्त है।

नाड़ी परीक्षा के शास्त्रीय संदर्भ :- यह जो क जाता है कि नाड़ी परीक्षा का संदर्भ मात्र योगरत्नाकर अ ग्रंथ और रावणतंत्र में ही है और चरकादि ग्रंथों में नहीं यह बात पूर्णत: तथ्य युक्त नहीं है। हमें ज्ञात है कि सं ग्रंथों की रचना सूत्र रूप में है और सूत्र रूप से निर्देश क यही संहिता का उद्देश्य होता है जिसका विश्लेषण टीका ने विस्तार पूर्वक किया है। तथापि युगानुसार Phys (भौतिकशास्त्र) Chemistry (रसायनशास्त्र) के वि के बाद में जो-जो साधन उपस्थित हुए हैं तदानुसार सूत्र विधानों की टीका भी विस्तृत रूप से की जाती है। बारे में संहिता ग्रंथों में से कम से कम एक ग्रंथ सु संहिता का संदर्भ बहुत ही स्पष्ट है जो नीचे दिया जाता

वर्णनीय सुश्रुतसंहिता का सूत्रस्थान का चौद अध्याय शोणित नाम का है। इस अध्याय के प्रारंभ में सु कहते हैं कि "पांचभौतिक प्रकार का आहार (पृथ्वी, वायु, आकाश, जल प्राधान्य से पांच प्रकार का आहार तथा षड् रस युक्त आहार (मधुर अम्ल लवण कटु ति कषाय), दो प्रकार के वीर्य युक्त आहार (शीत-उ स्निग्ध-रूक्ष, विशद-पिच्छिल, मृदु-तीक्ष्ण, भेद से -पक्ष से), अथवा अनेक प्रकार के गुण युक्त आहार का स प्रकार से पचन होने के बाद जो तेजोभूत परम सार उ होता है, और जो परम सूक्ष्म होता है, उसे रस कहते उसका स्थान हृदय है और वह हृदय से निकलने वाली धमनियों में प्रविष्ट होकर उर्ध्वभाग में, अधोभाग में, त तिर्यक् भाग में प्रसृत होते हुए संपूर्ण शरीर को रात- तर्पण करता है, वर्धन करता है, धारण करता है, और अ

हेतु से यापन करता रहता है । यह रस शरीर में अनुसरण करते हुए भ्रमण करता है जिससे रसरक्त वाहिनियों में गतियां उत्पन्न होती हैं, उन गति का निरीक्षण करना चाहिये और अनुमान द्वारा परीक्षण करना चाहिये क्योंकि ये गतियां धातुओं की वृद्धि क्षय का निर्देशन करती रहती हैं । यहाँ तेजोभूत शब्द से अग्नि के पाक द्वारा संभूत पदार्थ तथा तेज शब्द से घृत अर्थ लेकर के 'घृतवत्' उत्पन्न पदार्थ ऐसा अर्थ डल्हन ने दिया है ।[3] इसलियें वह रस को स्वरूप बोधक और कर्मबोधक (पोषक) भी समझना चाहिये । परम सूक्ष्म का अर्थ स्थूल अवयव तथा सूक्ष्म से सूक्ष्म स्रोतस् में प्रविष्ट करने वाला ऐसा कहा गया है और क्षय वृद्धि विकृति का अर्थ रोगोत्पत्ति तथा धातु के क्षय-वृद्धि के लक्षण ऐसा कहा गया है । अर्थात् इन गतियों के द्वारा शरीर का तर्पणादि प्राकृत अवस्था तथा विकृतिगत रोगावस्था का ज्ञान करना चाहिये ऐसा संदर्भ प्राप्त होता है ।[4] आगे सुश्रुत कहते हैं कि यह रसात्मक धातु तेजो धातु के साथ रंजक पित्त से वर्ण प्राप्त करके जब लाल होता है तो उसे रक्त कहते हैं । यह कार्य यकृत में होता है ।[5] यह रस-रक्त मिलकर नाड़ी द्वारा संपूर्ण शरीर में प्रसर होता है और इस रस से ही आगे रक्त-मांस मेद इत्यादि धातुओं का निर्माण होता है । इस तरह भ्रमण काल में सार भाग, किट्ट, भाग, स्थूल धातुपाक एवं सूक्ष्मधातु पाक निर्माण होता है और यह कार्य व्यान वायु से संपूर्ण शरीर में भ्रमण के द्वारा संपन्न होता है । इसलिये इस रस का ही वैद्यों को प्रयत्न पूर्वक रक्षण करना चाहिये । यह 24 घंटे तक रात-दिन सतत भ्रमण करता रहता है ।[6]

यह रस तीन हजार पंद्रह कला (3015 कला) तक एक-एक धातु में रहकर धातु वृद्धि करते हुए एक मास में शुक्र धातु को परिणत होता है ।

अब इसकी गति बताते हुए कहते हैं कि वह शब्द अर्चि और जल के संतान (लहरों के) समान गति करते हुए संपूर्ण शरीर में ''अणुना-विशेषेण'' अणु भाव तक अत्यंत सूक्ष्म प्रकार से गति-करता हुआ संपूर्ण शरीर में भ्रमण करता है ।[7]

इस गति का स्वरूप कैसा है ?

गति का स्वरूप वर्णन करते हुए सुश्रुत ने तीन प्रकार के दृष्टांत दिये हैं । (1) शब्द संतान वत् - यानि शब्द अथवा ध्वनि की गति । कोई भी ध्वनि अपने काल तक आने तक उसकी तरंगें नीचे उपर की तरह गति करती है जिससे मन का संपर्क ठीक तरह से न होने पर ध्वनि श्रवण अनेक बार छूट जाता है । इसकी गति इस प्रकार से धमनी नाड़ी में होती है । (2) अर्चिसंतानवत् - अर्चि का अर्थ है अग्नि की ज्योति की गति । ज्योति या ज्वार की गति हमेशा उर्ध्व (ऊपर की ओर) होती है । और (3) तीसरी गति जल संतानवत् है । अर्थात् पानी की गति बहाव की दिशा में नीचे की ओर होती है । डल्हण कहते हैं शब्द संतान का अर्थ तिर्यक् गति समझनी चाहिये । अर्चि संतान का अर्थ उर्ध्वगमन तथा जल संतान का अर्थ अधोगामित्व है । इस तरह से नाड़ी में से बहता हुआ रस रक्त उन वाहिनियों में ऊपर उर्ध्व की ओर नीचे की ओर तथा तिरछी दिशा की ओर सतत दबाव डालता रहता है जिसका एक कल्पना चित्र बाजू में संलग्न किया है ।

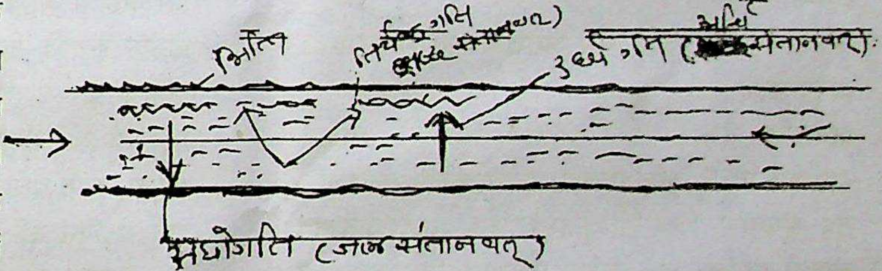

इस चित्र में बताये गए अनुसार प्रतिपल धमनियों या नाड़ियों की भित्ति के ऊपर तीनों प्रकार से दबाव (उर्ध्व अधः तीर्यक) आता है क्योंकि वायु (व्यान) बहते समय सीधा ही बहेगा ऐसा मिश्रित नहीं है । चल, गुण, शीघ्र, गुण, विषमता, यह वायु की विशिष्टता है । तदानुसार यह दबाव अलग-अलग प्रकार का हो सकता है । सुश्रुत कहते हैं इसी गति को अनुमान के द्वारा क्षय और वृद्धि जानने के लिये अर्थात्- प्रकृति या रोगावस्था जानने के लिये तथा

दोष-धातु-मलों की अवस्था समझने के लिये परीक्षण करना चाहिये। हमारे मत से नाड़ी परीक्षार्थ रस-रक्त की गति जानने के लिये यह सुश्रुत का स्पष्ट मत है। डल्हण की टीका में नीचे प्रकार की अनेक प्रकार से विशेषता बताई गई है जो निम्नलिखित प्रकार की है -

1. "हृदय शब्देन अत्र हृदयोपलक्षित: हृदंयो प्रदेश: उच्यते। न तु साक्षात् हृदयं। कुंत: ? हृदयस्थ ओज: स्थानत्वात्।" अर्थात् रस रक्त और ओज सभी का संबंध नाड़ी परीक्षा से रहता है।
2. रसस्यक्रिया निर्दिशन् आह-। तर्ययति, बालमध्यस्थविराम् सर्वाने व प्रीणयात। गर्भंतर्पयति इति। वर्धयति इति बालम्, धारयति इति मध्यवयसं पूर्णधातुत्वात्, केचित् धारयति इति जीवयती इति पठन्ति। वृद्ध यापयति इती। क्षीयमांण देहत्वात्।
3. कृत्सन्नं शरीरं इत्यादि च पठन्ति, केचित् तिर्यग्गा इत्यन्तं न पठन्ति।
4. अदृष्ट हेतुकेन् इति। तस्य शरीरभित्यादि। अनुसरत: अनुगच्छत:।
5. क्षयवृद्धि वैकृतै: इति। क्षय विकारै: रसक्षये हृत्पीड़ाकम्प:", वृद्धि विकारै: हृदयोत्क्लेदभित्यादिभि:, तत्र क्षयवृद्धि विकारैर्विकृतस्य; क्षय वृद्धिवैकृतैश्रोत चकारो दृष्टत्य:, तेन सर्वशरीरतर्पणादि मिश्राविकृतस्य गतिरनुभन्तप्येत्यर्ध:। इसका स्पष्ट अर्थ है कि -

क. हृदय से रसस्थान लिया जाता है तथापि ओज का स्थान है। अत: हृदय प्रदेश लिया जाता है और ओज सर्वधातुओं का तेजांश-सर्वधातु का रक्षा एवं जीवित तत्व का रक्षण करने वाला होने से सूक्ष्माति सूक्ष्म गति नाड़ी परीक्षा में करना उपलक्षित है।

ख. रस-यह संपूर्ण शरीर में पोषण करने वाला विशेष प्रथम धातु है। यह बालकों को-मध्य वयस्कों को - वृद्धों को सभी का पोषण या तर्पण करता है। गर्भ का भी पोषण करता है। बालवय में धारण करता है। क्षीणदेह शरीर का यापन करता है। यानि धातुओं को बनाये रखता है। धारण का अर्थ जीवन भी होता है जो रस एवं ओज के अधीन है। इसलिये सभी परीक्षा के पहले वैद्य को नाड़ी परीक्षा करने का निर्देश किया है, जिसे "योगरत्नाकर में"[8] प्रथम परीक्षा करने लिये निर्देश किया गया है, क्योंकि गंभीरावस्था रोगी सन्निपातावस्था में त्रिदोष की विकृति होने मूर्च्छा या संन्यास में प्रविष्ट होगा। घातक उपद्रवों संयुक्त रोगी प्रथम जीवित है या मृत्यु प्राप्त है नाड़ी द्वारा देखना वैद्य का प्रथम कर्तव्य है। अ नाड़ी से रोग की गंभीरावस्था इत्यादि का ज्ञान है।

ग. यह रस और ओज नाड़ी में से संपूर्ण शरीर में फै है और सूक्ष्म-सूक्ष्म स्रोतस् तक पहुँचता है और ओज हृदय में भी प्रविष्ट होता है। इस आवागमन प्रक्रिया से सूक्ष्म-सूक्ष्म अणु-परमाणु तक का नाड़ी परीक्षा से हो सकता है। यह सिद्धान्त: स प्राप्त होता है।

घ. इस तरह से अनुसरण करने वाले ओज को उर्ध्व तिर्यक् इत्यादि तिर्यक् गति हो तो शब्दाविजलसं गति के द्वारा अनुमान से परीक्षा की जाती है। ति गति हो तो वातप्रधान, अधोगति गुरुता से होने कारण, कफ प्रधानत: और उर्ध्वगति लघुता के क होने से पित्त की गति का अनुमान किया जा स है। अदृस्ट हेतु यानि कर्मानुसार यह गति होत अदृष्ट जो नियत: शरीरत: वशी आत्मा कहलाता उसके इच्छानुसार यह कार्य होता है। जो गर्भ में होते समय ही इसके अनुसार गर्भ में अंकुरवत वृक्षवत् प्रवृत्ति होती है।

ड. क्षयवृद्धि का अर्थ दोनों के द्वारा उत्पन्न होने वाले या समता द्वारा उत्पन्न स्वास्थ्य दोनों के द्वारा अ है।

डल्हण ने इन तीन दृष्टांतों का अर्थ दो प्र अलग ढंग से प्रस्तुत किया है। एक अर्थ उपर्युक्त अनुसार है। दूसरा अर्थ तीक्ष्णाग्नि, मध्याग्नि और मं ऐसा कहा है। शब्द संतान तीक्ष्णाग्नि के लिये, अर्चि मध्याग्नि के लिये और जलसंतान मंदाग्नि के लिये। यह अर्थ गयदास ने स्वीकार नहीं किया। जहाँ तक

परीक्षा का सम्बन्ध है हम वात-पित्त-कफ की गति देखकर के विषम-तीक्ष्ण-मंदाग्नि का अनुमान कर सकते हैं और तंत्तत् रोगों की कल्पना कर सकते हैं ।

चरक संहिता में धातुपोषण क्रम में इसी प्रकार का संक्षिप्त विवरण प्राप्त होता है । जो सुश्रुत की अपेक्षा कम स्पष्टता युक्त है । सुश्रुत ने सूत्रस्थान के चौदह अध्याय में ''शब्दार्चिर्जलसंतानवत्'' बताने के बाद में उद्धरण दिया है कि वाजीकरण युक्त औषधि अपने गुणोत्कर्ष के कारण एवं बलयुक्त होने के कारण विरेचन औषधि के समान तुरंत कार्य करती है । इसका मतलब यह है कि इन औषधियों का अणु-परमाणु गमन विलम्ब पूर्वक नहीं होता ।[9] इसीको चरक ने अन्य प्रकार से उद्धृत करते हुए लिखा है कि वृषादि औषधियों का प्रभाव देह में तुरंत पुष्टि करता है । कुछ लोग छः दिन में तो कुछ लोग एक ही दिन में यह पुष्टि क्रम होता है ऐसा मानते हैं ।[10] इसी के नीचे चरक ने एक महत्वपूर्ण चक्र दिया है और कहते हैं कि भोज्य धातु यानि की भोजन के बाद उत्पन्न होने वाली रसादि धातु की परिवृत्ति यानि परिणाम प्राप्त धातु की गतिचक्र के समान सतत् चलती रहती है । चक्र जिस तरह से घूमता रहता है, उसी तरह से क्षण-क्षण में यह गति होती है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए और रस में शुक्रवत परिवर्तन होकर के वह अवस्था प्राप्त चक्र का पॉइन्ट (बिन्दु) पुनः पूर्वस्थान में आता है । अर्थात् चंक्र के बिन्दु अपने स्थान में आते रहते हैं । उसी तरह यह गति चलती रहती है । चक्रपाणि ने इसे स्पष्ट करते हुए सुश्रुत का उपर्युक्त संदर्भ ही दिया है । इसे स्पष्ट होता है कि चक्रपाणि धातुपाक का संदर्भ नाड़ी गति के साथ लगाना चाहते हैं ।[11] वह कहते हैं कि यह रस एक-एक धातु में 3015 कला तक रहता है और एक मास के बाद शुक्र में परिगमन होता है । इसका संदर्भ यद्यपि चरक धातुपाक के लिये करते हैं तथापि चक्रपाणि आगे कहते हैं चक्र के दृष्टांत द्वारा परिवृत्ति पाने के परिगमन में काल का नियम निर्देश है । जैसा कुऐं में से पानी निकालने के लिये चक्र लगाकर (रहट)-मोर) जो चमड़े के पानी के मशक के कुएँ के पानी को भरता है फिर ऊपर आता है । फिर खेती के लिये उसे खाली किया जाता है । फिर पानी भरने के लिये नीचे चला जाता है । यह चक्र क्रमानुसार चालू रहता है । बाहुबल के अनुसार (आजकल बैलों के द्वारा इलेक्ट्रीक इंजन द्वारा किया जाता है) यह गति कम-अधिक हो सकती है । खेत को पानी मिलने का समय कम या अधिक भी हो सकता है । यह पानी जब कुएँ के बाहर क्यारी में पड़ता है तब क्यारी के द्वारा धान्य के रोपों तक पहुँचता है और उनका पोषण होता है । यहाँ कुआँ हृदय के समान है । चक्र में लगाई डोरी या मशक नाड़ी के समान है । क्यारी धमनी के समान है । खेत में रहे धान्य धातु के समान है । कुएँ के तुरंत बाहर मशक में से पानी गिरता है, तब उसकी गति तीक्ष्ण होती है । क्यारी में मध्यम और अन्त में धान्यांकुर खेत के अलग-अलग भाग में होने से गति स्रवण पूर्वक मंद होती है । यहाँ चक्रपाणि ने फिर से सुश्रुत का शब्दार्विजल संतानवत् अणुर्नाविशेषेनानुधावत्येव शरीरं केवलम् इस प्रकार का पोषण क्रम बताया है । इसके तुरंत नीचे चरक कहते हैं कि रसधातु का यह विक्षेपण व्यानवायु द्वारा होता है जो युगपत् यानि एक साथ संपूर्ण शरीर में रस को फेंकता है । व्यानवायु के द्वारा यह प्रक्षिप्त रस स्रोतों वैगुण्य के कारण जब किसी स्थान में अवरुद्ध होता है । वहीं पर रोग का प्रारंभ होता है । इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि व्यानवायु पोषण के लिये संपूर्ण धातु तक पहुँचता है । अणु-परमाणु स्तर पर (ओक्सिजेनेटेड ब्लड) शुद्ध रक्त पहुँचाकर (अन ओक्सिजेनेटेड ब्लड) अशुद्ध रक्त को पुनः हृदय में लाता है । इस क्रम में हृदय से धातु के अणु-परमाणु तक जाने और वापस आने तक गतियों में तीक्ष्ण मध्य मंदादि अवस्थायें जो उत्पन्न होती हैं, उनका निरीक्षण नाड़ी में किया जाता है जिससे धातुपाक- धातुवृद्धि की अवस्था तथा खवैगुण्य की अवस्था का अनुमान हो सकता है । ऐसा चक्रपाणि का अभिप्राय होना चाहिये । इसी कारण से सुश्रुत के संदर्भ ''अणुनाविशेषेणानु धावत्येव शरीरं केवलम् ।'' इत्यादि को जोड़ दिया है । वातव्याधि चि०अ० 28 में चरक

कहते हैं वायु ही आयुष्य, बल शरीर का धारण कर्ता और प्रभु होता है और इसकी गति शरीर में अव्याहत (रोक-टोक के बिना) चलती रहती है जिससे स्थानस्थ और प्रकृतिस्थ अवस्था का ज्ञान हो सकता है । स्थानस्थ यानि विमार्ग में न गया हुआ और प्रकृति स्थित यानि अक्षीण और 'अवृद्ध । इस तरह का व्यक्ति सौ वर्ष तक बिना रोग के जीवित रह सकता है ।[13]

वातकलाकलीय अध्याय सू० 12 में चरक कहते हैं, वायु शरीर के तंत्र और यंत्र को धारण करने वाला है जो प्राणादि भेद से पाँच प्रकार का है । सभी प्रकार की चेष्टाओं की प्रेरणा करता है । सभी इन्द्रियों के अर्थ का वहन करता है । सभी धातुओं की रचना करता है अर्थात् सूक्ष्म और स्थूल प्रकार से रहता है ।[14]

वातकलाकलीय अध्याय में प्रारंभ में ही प्रस्ताविक में चरक कहते हैं कि कुपित-अकुपित वायु शरीर में विचरण (नाड़ी में से रक्त के साथ वहन करते हुए) जो कर्म बाहर और अन्दर होते हैं क्या-क्या हैं यह समझना चाहिये । उपर्युक्त सभी संदर्भ हमारे मतानुसार नाड़ी परीक्षा की गति का सूक्ष्म निरीक्षण करते हुए महत्व प्रतिपादित करता है ।[16] इस तरह के उद्धरण चरक संहिता में बार-बार आते हैं जिन्हें खींचतान किये बिना नाड़ी परीक्षा के साथ संदर्भ की तरह लिया जा सकता है । उदाहरणार्थ (1) चरक चि०अ० 24 में वात के सभी प्रकार और गुणकर्म का उल्लेख किया है । उन कर्मों की टीका में चक्रपाणि कहते हैं कि प्रयत्नादि कर्म यानि ऊर्जा बल वर्ण की उत्पत्ति वात के अधीन है और उसका स्वेदवह, दोषवह, अम्बुवह इत्यादि सभी स्रोतस में से वहन होता है । स्रोतस् कहीं पर स्रवण रस रूप कार्य तो कहीं वहन रूप कार्य तो कहीं उत्पत्ति रूप कार्य करते हैं और सभी दोष का वहन करने वाली नाड़ियों भी इसमें समाविष्ट होती हैं जिनमें अयनभूत कार्य होता है । इनमें आकुञ्चन, प्रसारण इत्यादि गतियाँ वात के द्वारा निर्माण होती हैं जिनका ग्रहण करना चाहिये । अर्थ समझना चाहिये ।[15] (2) चरक संहिता में सूत्रस्थान अ० 30 अर्थे दशमहामूल नाशक है । अर्थात् हृदय में दशमहामूल कु धमनी होती है । महाफल वाली है और उनका मूल आ हृदय होता है ।[17] उनके मूल से महाधमनियाँ निकलती जिनसे ओज का धमन शरीर में होता है जो सूक्ष्म-अतिसू यानि अणु-परमाणु तक जाती है ।[18] ध्यान रखना चाहिये सुश्रुत ने जहाँ नाड़ी इत्यादि वर्णन किया है वहाँ भी अ शब्द का प्रयोग किया गया है और उसकी गति का परीक्ष करने का आदेश दिया है । चरक भी कहते हैं कि इस अ द्वारा सर्व शरीर की पुष्टि होती है । इसके बिना कोई प्रा जीवित नहीं रह सकता । अत: इन धमनियों में वातादि दो की गति का परीक्षण करना यही नाड़ी परीक्षा है, जो हृ की स्थिति को रस-रक्त परिभ्रमण की स्थिति को दोष धातु की क्षय-वृद्धि की स्थिति को सतत बताता रहता है

इस तरह स्पष्ट होता है कि चरक, सुश्रुत अ संहिता में मूल में भी हृदय में से निकलने वाली धमनि का तथा नाड़ियों की गति का परीक्षण उपर्युक्त अवस्था ज्ञान प्राप्त करने के लिये करना चाहिये । ऐसा कहा सकता है । इस सम्बन्ध में क्यों और कैसा-परीक्षण कि जाय इसकी चर्चा विस्तार से की जा सकती है ।

संदर्भ :-

1. तत्र पाञ्चभौतिकस्य चतुर्विधस्य षड्रसस्य द्विविधवी अष्टविधवीर्यस्य वाऽनेकगुणस्योपयुक्तस्याहारस्य सम् परिणतस्य यस्तेजोभूत: सार: परमसूक्ष्म: स रस: इत्युच तस्य हृदयं स्थानं; स हृदयात् चतुर्विंशतिधमनीरनुप्रवि उर्ध्वगा दश-दश चाधोगामिन्यश्चतस्रश्च तिर्यग्गा: कृत् शरीरमहरहस्तर्पयति पर्धयति धारयति यापयति अदृष्टहेतुकेन कर्मणा । तस्य शरीरमनुसरतोऽनुमा गतिरूपलक्षयितप्या क्षयवृद्धि वैकृतै: । तस्मिन् सर्वशरीर व दोष व धातुमलाशयानुसारिणी रसे जिज्ञासा-कि सौम्य स्तैजस इति । अत्र उच्यते, स खलु द्रवानु स्नेहनजीवन तर्पण धारणादिभिर्विशेषै: सौम्य इत्यवगम्य सु०सू० 14/3
2. डल्हण टीका - पाञ्चभौतिकस्य इति पृथिव्यादिभूतद्र भेदेन, चतुर्विधस्य इति पेयलेह्यभोज्यभक्ष्यभेदेन, षड्र

इति मधुरादिरस भेदेन, द्विविधवीर्यस्य इति शीतोष्णवीर्यभेदेन, पक्षान्तमाह, अष्टविध वीर्यस्य वा इति शीतोष्ण स्निग्धरूक्षविशद पिच्छिल मृदुतीक्ष्ण भेदेन, अनेक गुणस्य इति शीतादिद्रवादिगुण भेदेन विंशतिगुणस्य । (सु०सू० 14/3)

3. डल्हण टीका - तेजोभूत इति तेजसाभूतः तेजांभूतः वह्निसंभूत इत्यर्थः अन्ये तु तेजः शब्देन घृतमाहुः, तत्र तेजोभूतो घृतवदुत्पन्नः इत्यर्थः, अन्येतु वदन्ति भूतशब्दोऽत्र उपमानार्थः, तत्र तेजोभूत घृताकार इत्यर्थः । (सु०सू०14/3)
4. डल्हण टीका - अनुसरतः अनुगच्छतः । क्षयवृद्धिवैकृतैः इति वैकृतं विकारः । क्षयविकारैः "रसक्षयेहृत्पीडाकम्प" इत्यादिभिः वृद्धि विकारैः हृदयोत्क्लेदभित्यादिभिः तत्र क्षयवृद्धि विकारैर्विकृतस्य; क्षयवृद्धिवैकृतैश्चेति चकारो दृष्टव्यः, तेन सर्वशरीर तर्पणादिभि श्चाविकृतस्य गतिरनुमन्तप्ये त्यर्थः । (सु० सू० 14/3)
5. स खरलु आप्यो रसो यकृत्ल्यीहानौ प्राप्यरागभुपैत्ति ।। सु०सू० 14/4
6. तत्र 'रस' गतौ, धातुः अहरहः गच्छतीत्यतो रसः ।। (सु०सू० 14/13)
7. सशब्दार्चिर्जलसन्तानवदगुना विशेषेण अनुधावत्येव शरीरं केवलम् ।। सु०सू० 14/16
8. रोगाक्रान्त शरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।। नाड़ी मूत्रं मलं जिह्वं शष्दं स्पर्शं दृगाकृती ।। यो०र०
9. वाजीकरण्यस्तु औषधयः स्थबलगुणोत्कर्षाद् विरेचनवदुपयुक्ताः शुक्रंशीघ्रं विरेचयन्ति ।। (सु०सू० 14/17)
10. वृष्यादीनां प्रभावस्तु पुष्णाति बलमाशु हि ।। षड्भिः केचिदहोरात्रैरिच्छन्ति परिवर्तनम् । (च०चि० 15/20)
11. संतत्या भोज्य धातूनां परिवृत्तिस्तु चक्रवत् ।। च०चि० 15/22 - स खल्वाप्यो रस एकैकस्मिन् घातौ त्रीणि त्रीणि कलासहस्राण्यवतिष्ठति दश च कलाः, एवं मासेन रसः शुक्रीभवति" (सु०सू०अ० 14)
12. ....भोज्यो उपयुक्ते सति धातूनां रसादीनां चक्रवत् परिवृत्तिर्भवति अविश्रान्ता समुत्पत्तिर्धातूनां भवति । चक्रदृष्टान्तेन तु परिवृत्तिकालानियमं दर्शयति; यथा चक्रं पानीयोद्धारणार्थं नियुक्तं बाह्यमानं बाहुबलप्रकर्षात् कदाचिदाश्वेव परिवर्तन्ते, कदाचिव् बाहुबलमान्धाद्विरेण; एवं धातवोऽपि अग्न्यादिसौष्ठवाच्छीघ्रमेव परिवर्तन्ते. अभ्यादिवैगुण्ये चिरेण परिवर्तन्ते इतिः एवं सुश्रुतेनापि "शब्दाचिर्जल संतानपदगुना विशेषेणानुधावत्येव शरीरं केवलम्" ।। चक्रपाणि टीका/च०चि० 15/26
13. वायुशयुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम् । वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रभुर्वायुश्च कीर्तितः ।। (च०चि० 28/3) चक्रपाणि टीका - यद्यपि शरीरेन्द्रियसवत्वात्म संयोग आयुः, तथाऽपि तादृशसंयोगे प्रधानत्वात् प्रकृतिस्थो वायुरप्यायुरूच्यते । एवं बलस्यापि हेतुर्वायुरिति कृत्वा शरीराधारतया बलाधारहेतुर्वायुरेव बलभित्युक्तः । अत्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः । वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः सभाः शतम् । च०चि० 28/4
14. .... वायुस्तन्त्रयंत्रघरः प्राणोदानसभानप्यानायानात्मा, प्रवर्तकश्रेष्टाना मुच्चावचानां, नियन्ता प्रणेता च मनसः सर्वेन्द्रियाणामुधोजकः.................स्थूलाणुस्रोतसां भेत्ता,... .।। च०सू० 12/8
15. चक्रपाणि टीका - प्रयत्नं प्रयत्नः, ऊर्ज उत्साहः, प्रंयत्नादिकर्मत्येन प्रयत्नौर्जोबलवर्णनिष्पादनमुच्यतो स्वेद दोषाम्बुवाहीनीत्यादौ स्वेदवाहीनि तथा अम्बुवाहीनि च स्रोतांसि स्रोतोविमाने (वि०अ० 5) पृथगेवोक्तानि ज्ञेयानि, दोषवहानि च स्रोतांसि सर्वशरीरचराण्येव, उक्तं हि "वातपित्त श्लेष्मणां पुनः सर्वशरीरचराणां सर्वस्रोतांस्यथनभूतानि" (वि०अ० 5) इति । गतीत्यादौ आदिशब्देनाकुञ्चन प्रसारणा दीनां च ग्रहणम् । च०चि० 28/5-11 पर
16. कानि चास्य कुपिताकुपितस्य शरीरशरीरचरस्य, शरीरेषु चरतः कर्माणि बहिः शरीरेभ्यो बेति ।। च०सू० 12/3
17. अर्थे दशमहाम्लाः समासक्ता महाफलाः । महच्चार्थश्च हृदयं पर्यायैरुच्यते बुधैः ।। च०सू० 30/3
18. तेन मूलेन महता महामूला मता दश । ओजोवहाः शरीरेऽस्मिन् विधम्यन्ते समन्ततः ।। येनौजसा वर्तयन्ति प्रीणिताः सर्वदेहिनः । यहते सर्वभूतानां जीवितं नावतिष्ठते ।। च०सू० 30/8-9

मधुमेह चिकित्सा में अवस्था निर्धारण एवं समाग्निक्रियाजन्य धातुसाम्य का महत्व

डा० उत्तम कुमार श

परिकल्पना

प्रमेह या मधुमेह प्रमुख रूप से दो प्रकार का होता है - सहज एवं अपथ्यनिमित्तज । अपथ्यनिमित्तज मधुमेह एक सन्तर्पणजन्य स्वतंत्र व्याधि है । निदान, दोष एवं दूष्य का विकारविघात-अभावपरक सन्निपात प्रमेह को उत्पन्न करता है । आयुर्वेदिक संहिताओं में उपलब्ध प्रमेह के सम्पूर्ण विवरण को मात्र मधुमेह रोग के परिप्रेक्ष्य में देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि कफज एवं पित्तज प्रमेह मधुमेह की दो प्रारम्भिक क्रमिक अवस्थाएँ हैं एवं वातिक प्रमेह के रूप में वर्णित मधुमेह, इस रोग की पूर्ण विकसित अवस्था है । इन अवस्थाओं में प्रारम्भिक अवस्था से अन्तिम अवस्था तक सामान्य लक्षण समान रहते हैं परन्तु विशिष्ट लक्षण भिन्न-भिन्न रूप में प्रकट होते हैं । इस प्रकार यह रोग क्रमश: विकसित होता हुआ साध्य अवस्था से कृच्छ्रसाध्य, याप्य एवं असाध्य अवस्था को प्राप्त करता है ।

मधुमेह का प्रारम्भ सन्तर्पण प्रधान निदान से होता है एवं इसका अन्तिम स्वरूप धातुक्षय प्रधान होता है । मधुमेह की प्रारम्भिक अवस्था में कफ वृद्धि के कारण हुआ अग्निमांद्य रसाग्नि को प्रभावित करता है । फलस्वरूप दूषित रस के मलस्वरूप कफ एवं समान धर्मी दूष्य मेद धातु की अबद्ध स्वरूप में वृद्धि होती है । अत: व्याधि का मूल कारण अग्निमांद्य है । मधुमेह की चिकित्सा अग्निमूलक होनी चाहिए । अग्नि की समक्रिया से आहार रस अपने उत्तरोत्तर परिणाम को प्राप्त करता हुआ शरीर का सम्यक पोषण करता है । मधुमेह में आहार रस पर अग्नि की समक्रिया नहीं हो पाती है जिससे उत्तरोत्तर धातुओं का पोषण नहीं हो पाता है, परिणाम स्वरूप धातुसाम्य की अवस्था में विचलन हो जाता है । धातुसाम्य को पुन: स्थापित करने हेतु अग्निनिरपेक्ष उपाय अस्थायी धातुसाम्य उपलब्ध कराते हैं जो रोग के उपद्रवों को विलम्बित करने में उपयोगी सिद्ध होते हैं परन्तु व्याधि को उत्तरोत्तर कष्टसाध्यता की ओर बढ़ने से नहीं रोक पाते । अत: समाग्निक्रियाजन्य धातुसाम्य का उपाय ही मधुमेह की चिकित्सा की मौलिक आवश्यकता है ।

रोगावस्था निर्धारण :-

मधुमेह रोग की चिकित्सा व्यवस्था हेतु इस अवस्था का निर्धारण आवश्यक है । आचार्य चरक सुश्रुत ने कफज, पित्तज, वातोल्वण एवं वातिक प्रमेह मधुमेह की क्रमिक अवस्थाओं के रूप में उल्लेख कि है :-

1. **''सपूर्वरूपा: कफपित्तमेहा क्रमेण ये वातकृता मेहा: ।''** च०चि० 6/56
2. **या वातमेहान् प्रति पूर्वमुक्ता वातोल्बणानां विहिता क्रिया वायुर्हि मेहेष्वतिकर्शितानां कुप्यत्यसाध्यान् प्रति नास्ति चिन्त** च०चि० 6/
3. **सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकुर्वत: ।
मधुमेहत्वमायान्ति तदासाध्या भवन्ति हि ॥** सु०नि० 6/

मधुमेह को निम्न चार क्रमिक अवस्थाओं में वर्गीकृत कि जा सकता है :-

1. प्राथमिक अवस्था	(कफ प्रधान)
2. द्वितीयक अवस्था	(पित्त प्रधान)
3. तृतीयक अवस्था	(वात प्रधान)
4. असाध्य अवस्था	(शुद्ध वातिक)

1. प्राथमिक अवस्था :- मधुमेह की प्राथमि अवस्था में कफ दोष की प्रधानता रहती है । सन्त आहार विहार से प्रकुपित कफ दोष समान गुणधर्मी धातु को दूषित कर मधुमेह को प्राथमिक स्तर पर उत्पन्न क है एवं दूष्य के लिए समान उपक्रम प्रभावी होते हैं । क दोष का प्रतिकार वात एवं पित्त दोष की तुलना में सरल है अत: यह अवस्था साध्य है । यह मधुमेह चिकित्सा श्रेष्ठ काल है और उचित चिकित्सा द्वारा रोग निवृत्ति सम है ।

2. द्वितीयक अवस्था :- मधुमेह की द्विती अवस्था में पित्त दोष की प्रधानता रहती है । मधुमेह प्रारम्भिक अवस्था में रोग का प्रतिकार न हो पाने पर श की कफगुणधर्मी धातुओं का क्षय होने लगता है एवं महाभूत की कमी हो जाती है जिससे शरीर में विपरीत

रीडर, कायचिकित्सा विभाग, माई भागो आयुर्वेदिक कालेज, फिरोजपुर रोड, मुक्तसर-152026 (पंजाब)

(अग्नि महाभूत/पित्त दोष) की वृद्धि हो जाती है । मधुमेह के रोगी में पित्त दोष प्रधान लक्षण प्रमुख रूप से दिखायी पड़ते हैं । यह अवस्था कृच्छ्रसाध्य/याप्य होती है क्योंकि कफ पित्त से संसृष्ट हो जाता है और इनका आश्रय मेद, पित्त के विपरीत गुण होने से चिकित्सा में विरूद्ध उपक्रम की आवश्यकता उत्पन्न हो जाती है ।

3. तृतीयक अवस्था - मधुमेह की तृतीयक अवस्था वात प्रधान होती है । द्वितीयक अवस्था में उपस्थित प्रवृद्ध पित्त दोष के कारण कफ एवं समानगुणधर्मी धातुओं का अधिक क्षय हो जाता है एवं स्वयं पित्त के द्रव एवं स्निग्ध गुण में भी कमी आ जाती है । अत: कफ, पित्त दोष एवं धातुओं के क्षय के कारण शरीर में वातदोष की वृद्धि हो जाती है एवं मधुमेह अधिक कष्टसाध्य या याप्य वातिक स्वरूप को ग्रहण कर लेता है । इस अवस्था को वातोल्बण प्रमेह कहा गया है । द्वितीयक अवस्था की भांति इस अवस्था में भी चिकित्सा में विरूद्धोपक्रम के कारण समस्या यथावत रहती है बल्कि वात की प्रबलता के कारण अधिक बढ़ जाती है जिससे मधुमेह तुलनात्मक रूप से अधिक कृच्छ्रसाध्य/याप्य हो जाता है ।

4. असाध्य अवस्था - मधुमेह अपनी प्रारम्भिक अवस्थाओं में समुचित चिकित्सा के अभाव में एवं अपने अनुषंगी गुण के कारण धीरे-धीरे कृच्छ्रसाध्य एवं याप्य अवस्था से असाध्य अवस्था को प्राप्त हो जाता है । दोनों दोष कफ, पित्त एवं धातुओं के अत्यधिक क्षीण हो जाने से वायु महात्यायिक (विनाशकारी) रूप में प्रकुपित होकर मज्जा-शुक्र-ओज रूपी धातु-सार को क्षीण करके मधुमेह की निवृत्ति की सम्भावनाओं को पूर्णत: समाप्त कर देती है। इस अवस्था में आचार्य चरक ने मधुमेह की उपेक्षा करने का स्पष्ट निर्देश किया है जो इस अवस्था की गम्भीरता का द्योतक है ।

अवस्था निर्धारण के आधार :-

मधुमेह की प्रारम्भिक अवस्था से उत्तरोत्तर अवस्थाओं में रोग लक्षण एवं धातु विकृति का स्वरूप कुछ अंशों में परिवर्तित होता जाता है, जिसे रोगावस्था निर्धारण का आधार माना जा सकता है । इसे निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है -

1. शरीर बल एवं संहनन
2. दोष दूष्य लक्षण
3. मूत्र परीक्षण
4. रक्त परीक्षण

मधुमेह की प्रारम्भिक अवस्था में शरीर में मेद मांस का बाहुल्य एवं शरीर बल का अल्प ह्रास रहता है, उत्तरोत्तर अवस्थाओं में क्रमश: मेद मांस की क्षीणता एवं शरीर बल का अत्यधिक ह्रास हो जाता है । मधुमेह की प्रारम्भिक अवस्था में कफ, द्वितीयक अवस्था में पित्त, तृतीयक अवस्था में वात एवं असाध्य अवस्था में अति प्रबल वात के लक्षण दिखायी देते हैं । मधुमेह में दोषानुसार मूत्र के वर्ण गंध एवं स्पर्श में परिवर्तन आता है, जिसके आधार पर अवस्था निर्धारण किया जा सकता है ।

वर्णं रसं स्पर्शमथापि गन्धं यथास्वदोषं भजते प्रमेहः ।
(च०चि० 6/12)

रक्तपरीक्षण के अन्तर्गत रक्तगतशर्करा के स्तर का मापन अवस्था वर्गीकरण में सहायक है । रक्तगतशर्करा की उत्तरोत्तर अवस्थाओं में पायी जाती है ।

समाग्निक्रियाजन्य धातुसाम्य :-

रोगों का मूल कारण है अग्निमांद्य 'रोगा: सर्वेऽपि मन्देऽग्नौ' एवं उनकी मूलभूत चिकित्सा है अग्नि चिकित्सा । चिकित्सा का आयोजन - "धातुसाम्य" अग्नि साम्य के द्वारा ही स्थायी रूप में सम्भव हो पाता है । हेतु सेवन से कफवृद्धिपूर्वक मन्द हुई अग्नि मधुमेह का कारण है । आहार रस धात्वाग्नि क्रिया के द्वारा धातु के पोषण में समर्थ हो पाता है । मधुमेह रोग में सम्यक प्रकार से धात्वाग्नि क्रिया से बाधित होने से आहार रस द्वारा धातुपोषण नहीं हो पाता है । अत: अग्निव्यापार को सम करना ही मधुमेह चिकित्सा का मौलिक तत्त्व है ।

चिकित्सा प्रक्रिया में शरीर की सक्रिय भागीदारी रोग की मूलत: निवृत्ति हेतु आवश्यक होती है । चिकित्सा का प्रयोजन सही अर्थ में शरीर की रोगविघात प्रक्रिया में सहायता प्रदान करता है । इसे सक्रिय चिकित्सा (Active Therapy) कह सकते हैं । इसके विपरीत शरीर की

रोगविघात प्रक्रिया की अपेक्षा न रखने वाली चिकित्सा व्यवस्था है, जिसे निष्क्रिय चिकित्सा (Passive Therapy) कह सकते हैं । आयुर्वेदीय सिद्धान्त के आधार पर सक्रिय चिकित्सा की सटीक व्याख्या है - अग्निमूलक चिकित्सा ।

मधुमेह रोग में अग्नि के स्तर पर चिकित्सा के लिए प्राथमिक अवस्था (कफप्रधान) में निदान परिवर्जन एवं अपतर्पण को अधिक महत्व दिया गया है । संशोधन (वमन प्रधान), लंघन एवं संशमन कफ प्रधान मधुमेह प्रमुख चिकित्सा है । द्वितीयक अवस्था (पित्त प्रधान) प्रमुख चिकित्सा के रूप में विरेचन, सन्तर्पण एवं संश विधियों का उल्लेख किया है । इस अवस्था में पित्त प्रधानता होने से धातुक्षय एवं जल महाभूत की कमी को करने के लिए सन्तर्पण की आवश्यकता होती है ।

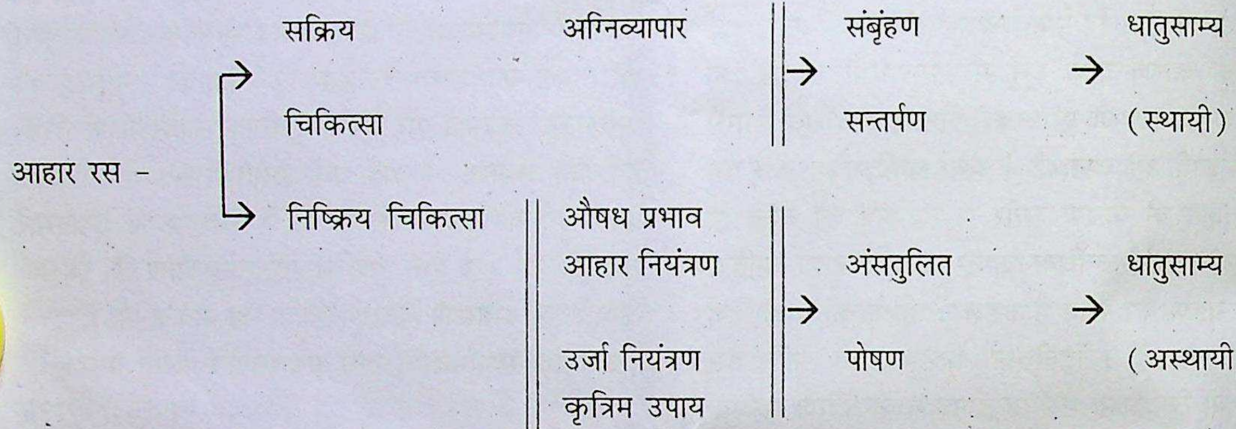

मधुमेह चिकित्सा में बृंहण एवं सन्तर्पण शब्दों का प्रयोग धातुओं के सम्यक पोषण की आवश्यकता की ओर संकेत है । इन उपक्रमों की सफलता अग्नि की स्थिति पर निर्भर है । अतः अग्नि की समीक्षापूर्वक इनके प्रयोग का निर्देश किया गया है -

''प्रमेहिणः स्युः परितर्पणानि कार्याणि तस्य प्रसमीक्ष्य वह्निम्।''

(च०चि० 6/17)

मधुमेह चिकित्सा में प्रत्यक्ष रूप में धातुसाम्य का स्वरूप है - रक्तगतशर्करा का साम्य (Normoglycemia) स्थापित करना । इस उद्देश्य की स्वाभाविक पूर्ति शरीर निर्मित इन्सुलिन क्रिया द्वारा होती है । शरीर के इन्सुलि निर्माण में अक्षम होने (decresased insulin produc tion) या इन्सुलिन के उपयोग में अक्षम होने (increase insulin resistance) पर अन्य कृत्रिम उपाय किये ज हैं । अधिक समय तक इनका प्रयोग मात्र रोग के उपद्र को बिलम्बित करने में ही उपयोगी होता है । ये उप पूर्णतः अस्थायी हैं, जैसे Hypoglycemia Agents, H man Insulin etc. इन्सुलिन क्रिया शरीर की समाग्नि क्रि की परिचायक है । इसकी क्रिया द्वारा उत्पन्न धातुसा अर्थात् रक्तशर्करासाम्य स्थायी स्वरूप का होता है ।

बैद्यनाथ
सितोपलादि चूर्ण
पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

इओसिनोफिलिया कारण और बचाव

[1] डॉ० आशुतोष कु० यादव [2] डा० जे०के० मिश्रा [3] डा० एच०एच० अवस्थी

परिचय

गर्मी का मौसम आते ही कई रोग तेजी से फैलने लगते हैं। इनमें मौसम बदलने के साथ ही कुछ रोग प्रभावी हो जाते हैं, जिनमें से इओसिनीफिलिया एक प्रमुख रोग है। हालांकि चिकित्साशास्त्र में यह सर्वविदित है कि इओसिनोफिलिया कोई रोग नहीं होता लेकिन रक्त में इसका असंतुलन होने पर कई प्रकार की परेशानियाँ अवश्य खड़ी हो जाती हैं। इसकी अति होने पर लोग दमा, टी०बी० आदि के भी शिकार हो सकते हैं। 15 वर्ष से कम उम्र के बच्चे इसके ज्यादा शिकार होते हैं और इससे पीड़ित व्यक्ति के लिए खाँसना एक कष्टदायक कार्य हो जाता है जो रात के समय ज्यादा उभरता है।

हमारा रक्त कई प्रकार के रक्त कणों (कोशिकाओं) का मिश्रण है। रक्त में मुख्य रूप से श्वेत रक्त कोशिका, जिसे ल्यूकोसाइट या डब्लू०बी०सी० भी कहा जाता है, लाल रक्त कोशिका, प्लैटिलेट्स आदि मौजूद होते हैं। जब हमारे रक्त में श्वेत रक्त कोशिकाओं में इओसिनोफिल नामक रक्तकण की संख्या एवं प्रतिशत मात्रा सामान्य से अधिक हो जाती है, तो उसे इओसिनोफिलिया कहते हैं।

इओसिनोफिलिया शरीर में कोई भी विजातीय (एलर्जीक) द्रव्य के प्रवेश होने पर उपस्थित फिजियोलॉजिकल स्थिति है। कोशिकीय पदार्थ के आधार पर श्वेत रक्त कणों को दो भागों में बाँटा गया है। पहला वह जिसमें कोशिकीय पदार्थ दानेदार होता है, दूसरा वह जिसका कोशिकीय पदार्थ दाना रहित होता है।

दानेदार वर्ग में मुख्य रूप से तीन श्रेणी हैं -

a) न्यूट्रोफिल - 60.70%
b) इओसिनोफिल - 1-4%
c) बेसोफिल - 0.2-1%

दानेरहित वर्ग के दो श्रेणी हैं

a) लिम्फोसाइट
 i) बड़ा
 ii) छोटा
25.30%

b) मोनोसाइट - 2-8%

हमारे रक्त में डब्लू०बी०सी० की सामान्य मात्रा 1000-11000 प्रतिघन मिलीमीटर होती है। इओसिनोफिल की सामान्य निरपेक्ष या सम्पूर्ण गणना 100-300 प्रतिघन मिलीमीटर होती है। रुग्णावस्था (इओसिनोफिलिया) में इओसिनोफिल की निरपेक्ष गणना 1500 प्रतिघन मिली मिटर से भी अधिक हो जाती है एवं इसकी प्रतिशत मात्रा 20-30 प्रतिशत तक पहुँच जाती है।

यह इओसिनोफिल नामक रक्तकण शरीर के सुरक्षातंत्र से जुड़ा होता है। किसी भी प्रकार के विजातीय (ऐलर्जिक) पदार्थों के शरीर में प्रवेश या खतरा होने पर उस विजातीय पदार्थ से प्रतिरोध करने के लिए यह अपनी संख्या बढ़ा लेता है।

आयुर्वेदीय ग्रंथों में इओसिनोफिलिया का वर्णन नहीं प्राप्त होता, परन्तु इसके कारण, लक्षण एवं चिकित्सा की साम्यता आयुर्वेदीय ग्रंथों में वर्णित श्वास एवं कास रोग से की जा सकती है जो कि प्राणवहस्रोतस (श्वसन तंत्र) से सम्बद्ध एक महत्वपूर्ण रोग एवं लक्षण है। दोषानुसार यह वात-कफ प्रधान व्याधि है। इस रोग में प्रमुख रूप से श्वसन तंत्र प्रभावित होता है, परन्तु पाचन तंत्र, लसिका तंत्र, हृदय एवं रक्तपरिसंचरण तंत्र के साथ-साथ त्वचा भी प्रभावित होती है।

कारण - इस रोग के कारणों को हम पाँच वर्गों में विभाजित कर सकते हैं -

(i) आहार सम्बन्धी कारण - रूक्ष, शीत, कषाय, भोज्य पदार्थ लेना, गरिष्ठ, विदाही (दाह उत्पन्न करने वाला), बासी, सड़ा-गला भोज्य पदार्थ लेना, तिल एवं गुड़ का एक साथ अति मात्रा में सेवन, मछली, उड़द, मटर, सरसों शाक का अतिप्रयोग एवं विष्टम्भी (देर से पचने वाला यथा कटहल आदि) और अभिष्यन्दी (स्रोतसों में अवरोध करने वाला यथा दही आदि) पदार्थ, चिकनाई युक्त मीठे पदार्थ का अति सेवन, भोजन के तुरन्त बाद जल का सेवन आदि आहार सम्बन्धी कारण है।

---

1. जूनियर रेजिडेण्ट, मौलिक सिद्धांत विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, वाराणसी
2. प्राध्यापक, टी०बी० एवं रिसपेरेटरी डिजिजेज विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, वाराणसी
3. विभागाध्यक्ष, मौलिक सिद्धांत विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, वाराणसी

(ii) विहार सम्बन्धी कारण - वेगावरोध (मल, मूत्र, छींक, खाँसी आदि के उपस्थित वेग को रोकना) शीतल वायु का सेवन, रात्रि जागरण, दिवाशयन, अध्यशन (भोजन के तुरन्त बाद भोजन करना), प्रमिताशन (अत्यल्प भोजन करना) उपवास, अत्यधिक संभोग, तेज धूप में धूमना-फिरना, साहस (शरीर बल से अधिक कार्य करना), श्रम, भोजन करते समय हँसने, बोलने के कारण भोजन का विमार्ग गमन हो जाना, बिना हाथ धोये भोजन करना, आलस्य, शीतल स्थान में निवास, शौचादि क्रिया के बाद हाथ न धोना या मिट्टी से हाथ धोना आदि विहार सम्बन्धी कारण है ।

(iii) व्यसन (आदत) सम्बन्धी कारण - बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, तम्बाकू आदि धूम्रपान एवं मद्यपान करना ।

(iv) वातावरणीय कारण/इरिटेन्ट्स/इनहेलेन्ट्स - धूम (धुआँ) धूलि, रज, विभिन्न प्रकार के पुष्पों के पराग कण, रूई, पक्षी के पंख आदि के रज, जो वातावरण में उपस्थित रहते हैं इनका नासा या मुख मार्ग से प्रवेश होना, वातावरण में उपस्थित अनेक प्रकार के ग्रंथ द्रव्यों का नासामार्ग में प्रवेश ।

कार्बनिक (Organic) एवं अकार्बनिक (Inorganic) धूल (Dust) - विभिन्न प्रकार के व्यवसायों में रंग, प्लास्टिक पटाखा, औषधि निर्माण आदि उद्योग में लगे लोगों में inorganic एवं organic dust का नासा/मुख मार्ग से प्रवेश या त्वचा से सम्पर्क, घरेलू उद्योग-धंधों में भी उत्सर्जित कई प्रकार के विक्षोभक पदार्थों का मुख या नासा मार्ग में प्रवेश, कृषि कार्य में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के कीट नाशक, गैस, धूम, वाष्प, एयरोसोल आदि का शरीर में प्रवेश । सौन्दर्य प्रसाधन के रूप में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न प्रकार के टेलकम पाउडर, डियोड्रेन्ट्स, परफ्यूम्स आदि का प्रयोग ।

(V) निदानार्थकर रोग (एक रोग से दूसरे रोग की उत्पत्ति) - इसमें कृमि का संक्रमण प्रमुख है, यह इओसिनोफिलिया के प्रमुख कारणों में से एक है । गण्डूपदकृमि (Acariasis) हूकवर्म, पीनवर्म, फीताकृमि, फीतापाँवकृमि (Filariasis), इन कृमियों में बहुत सारे रसायन होते हैं जो शरीर में विजातीय द्रव्य (Allerg का कार्य करते हैं जिससे रक्त में इओसिनोफिल कण की संख्या बढ़ जाती है ।

लक्षण- इस रोग का मुख्य लक्षण - शुष्क (खाँसी), विशेषतया रात्रि में बार-बार होना, खाँसते- मुखमण्डल एवं आँखों का लाल हो जाना, बहुत करने पर मुख से थोड़ा-सा नींबू के समान पीला कभी-कभी रक्त मिश्रित बलगम का निकलना और ब निकल जाने से खाँसी का वेग कम हो जाना, खाँसी से भेद (गला बैठ जाना) हृदय, कनपटी, शिर, उदर, आदि में शूल (दर्द) होना, अरुचि, कण्ठकण्डू, श्वास गलतालूलेप (गला एवं तालु में लेप-सा महसूस थकान, सुस्ती, रात्रिस्वेद, शारीरिक बल, ओज, स्वर का क्षीण होना, बुखार - सामान्यतया 99^{0}F से 100^{0}F पर कभी-कभी अल्पावधि के लिए 104^{0}F तक हो है एवं अन्य उर्ध्व श्वसन तंत्र के विकृति के लक्षण हैं । लक्षण दो सप्ताह से एक माह तक बने रह सकते

बचाव - आयुर्वेद में संक्षिप्त रूप में निदान (क के परित्याग को ही चिकित्सा कहा गया है । अतः सबसे कारणों का परित्याग करना चाहिए । इस रोग से बचने के धूल, धुआँ, रज, तेज, हवा, तेज धूप आदि से बचना चा बीड़ी, सिगरेट, हुक्का, तम्बाकू आदि आदतों का त्याग समय पर ताजा एवं उष्ण भोजन लें, बारंबार अति भोज उपवास से बचें । चिकने मीठे, गरिष्ठ, गुरू तैलीय भोज्य का सेवन न करें ।

पथ्य - खाने-पीने की सामग्री पतली, हल्क सुपाच्य लें, शालि चावल, मूंग की दाल, कुलथी, गेहूं, बकरी का दूध, घी, बैगन, मूली का शाक, मेथी, गम्भार, खजूर, परवल, सूरण, नींबू, मुनक्का. अजवायन, दही, गुड़, मरिच, धान के लावा की खीर, जल, अदरक स्वरस, पान पत्र स्वरस, गन्ने का रस, इस रोग में पथ्य है ।

निषेध - दिवाशयन, अत्यधिक व्यायाम, पदार्थों के सीधे सम्पर्क से बचें, भोजनोत्तर अति जल

(शेष पृष्ठ सं० 117

महौषधि - शुण्ठी - आर्द्रक

डा० केदार नाथ यादव, एम.डी. आयु., पी.एच.डी.

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जड़ी-बूटियों के स्वरूप एवं गुण-कर्म का परिचय उनके विभिन्न नामों एवं पर्यायों के माध्यम से बताया है । इन जड़ी-बूटियों में शुण्ठी एक बहुत प्रचलित एवं प्रसिद्ध जड़ी-बूटी है । इसके विभिन्न नामों एवं पर्यायों से उसके स्वरूप एवं गुणकर्म का अधिकांशतः प्रता चल जाता है । ये नाम एवं पर्याय निम्नवत् है -

1. **शुण्ठी - शुण्ठाति इति 'शुठि' इति क्षीर स्वामि ।**

   शुठि धातु का अर्थ सामना करना अथवा बन्द करना होता है । अर्थात् यह आम दोष का सामना करती है अथवा कफ के जलीयांश का शोषण कर उनको रोक देती है । अतएव इसे शुण्ठी कहते हैं ।

   - शुठ = to purity संस्कृत अंग्रेजी कोष में तथा काले के धातु कोष में और संस्कृत व्याकरण में उपर्युक्त अर्थ दिये गये हैं । यह शरीर को मल रहित करती है । इसलिए इसका नाम शुण्ठी पड़ा है ।
   - शुष्क होने के कारण इसको शुण्ठी कहते हैं ।

2. **आर्द्रक** - कच्चे कन्द को आर्द्रक कहते हैं - गीला (आर्द्र) होने के कारण ।

   अथवा

   - आर्द्रयति जिह्वाम् - यह जिह्वा को आर्द्र रखता है ।

3. **महौषध** - 'महिवृद्धौ' । महते वर्धते यत् औषधं तत् । यह औषध शरीर की वृद्धि करती है अर्थात् इस औषध के उपयोग से मनुष्य का शरीर वृद्धि को प्राप्त होता है ।

   अथवा

   - अनेक विकारों का शमन करने में समर्थ होने के कारण ।
   - प्रशस्त औषध होने के कारण ।

4. **विज्वा** - विशेषेण श्ययति । यह विशेषता है फूलती फलती है ।
5. **विश्व भेषज** - विश्वेषां सर्वेषां रोगाणां प्रायः भैषज्यम् । लगभग समस्त रोगों की एक मात्र औषधि है ।
   - अनेक विकारों में उपयुक्त होने के कारण ।
6. **अङ्गवेर** - 'वेर' अर्थात् शरीर । इसके शरीर पर छोटे-छोटे श्रृङ्ग होते हैं ।
   - श्रृङ्गाकार कन्द होने कारण ।

प्रवक्ता, द्रव्यगुण, विभाग, श्री लक्ष्मी नारायण आयुर्वेदिक कालेज, अमृतसर (पंजाब)

7. **नागर** - श्रेष्ठ औषध तथा नगर में व्यापार होने के कारण ।
8. **कुबेंद** - जिसका शरीर कुत्सित - कूबड़ा हो ।
9. **ऊषण** - उष्ण होने के कारण ।
10. **कटुभद्र** - कटु रस युक्त तथा कल्याणकारी होने के कारण ।

वानस्पतिक परिचय - इसको लैटिन में Zingiber officinale कहते हैं । यह Zingiberaceae कुल की वनस्पति है । इसका कोमल कन्द युक्त 2-4 फुट ऊँचा एक वर्षीय क्षुप होता है । इसके पत्र बांस या इलायची के पत्र से मिलते-जुलते हैं । पत्र की लम्बाई लगभग ½ - 1फीट तथा चौड़ाई 1 इंच के लगभग होती है । पत्र अग्रभाग पर क्रमश: नुकीला होता है । इसमें पुष्प तथा फल बहुत ही कम दिखायी देते हैं । किसी -किसी पुराने पौधों पर पुष्प वर्षा एवं शरद में लगते हैं । पुष्प जामुनी रंग के होते हैं । इसका कन्द सुगन्धित, स्थूल, खण्डयुक्त, हल्के-पीले रंग का होता है ।

उत्पत्ति स्थान - भारतवर्ष के लगभग हर प्रान्त में इसकी खेती की जाती है । रेतीली दोमट मिट्टी, उष्ण एवं आर्द्र प्रदेश और अधिक वर्षा वाले क्षेत्र इसके लिए अधिक उपयुक्त होते हैं । केरल, बंगाल, उड़ीसा, कर्नाटक, हिमाचल प्रदेश में इसकी खेती की जाती है ।

जातियाँ - व्यवहारिक रूप से इसकी 2 जातियां होती हैं :- 1. अल्प रेशेदार और 2. अधिक रेशेदार ।

संग्रह एवं संरक्षण - जब क्षुप से पुष्प समाप्त हो जाय तथा क्षुप का तना सूख जाय तब भूमि खोदकर अदरक संग्रह कर लेना चाहिए । शुष्क कन्द को वायु एवं धूल रहित अनार्द्र स्थान में मुखबन्द पात्रों में रखना चाहिए ।

वीर्य कालावधि - 1 वर्ष तक ।

गुण - आर्द्रक कटु रस, गुरु, रूक्ष, तीक्ष्ण गुण, कटु विपाक तथा उष्ण वीर्य युक्त होता है । शुण्ठी कटु रस, लघु स्निग्ध गुण, मधुर विपाक और उष्णवीर्य युक्त होती है ।

रासायनिक संगठन :- आर्द्रक में आर्द्रता 80.9%, प्रोटीन 2.3%, वसा 0.9%, सूत्र 2.4%, कार्बोहाइड्रेट 12.3%, खनिज 1.2%, कैल्सियम 20%, फास्फोरस 60%, लौह 6 मिग्रा प्रति 100 ग्राम होता है । इसके अतिरिक्त अ में कुछ आयोडीन, क्लोरीन तथा विटामिन ए, बी और पाये जाते हैं ।

शुण्ठी में आर्द्रता 10.9%, प्रोटीन 15.4%, सूत्र 2%, स्टार्च 5.3%, कुल भस्म 6.6% तथा उड़नशील 1-27% होता है । शुण्ठी में तैलीय राल जिंजरीन होता इसमें जिंजरौल, शोगा ओल तथा जिंजिरोन नामक कटु होते हैं ।

प्रयोज्याङ्ग - कन्द ।

मात्रा - आर्द्रक स्वरस 5-10 मि०ली० ।
शुण्ठी चूर्ण 1-2 ग्राम ।

आमयिक प्रयोग-

वृन्द -

श्लीपद में - गोमूत्र के साथ शुण्ठी चूर्ण करायें ।

जठराग्नि प्रदीपन हेतु - भोजन करने से सैन्धव लवण मिलाकर आर्द्रक का सेवन नियमित क चाहिए ।

आमवात एवं कटिशूल में - प्रात:काल गो और शुण्ठी का क्वाथ पिलाना चाहिए ।

ग्रहणी रोग - शुण्ठी कल्क से सिद्ध घृत सेवन करना चाहिए या तक्र के साथ हमेंशा नियमित शु का सेवन करना चाहिए । (शोढल)

चरक :-

आम पाचनार्थ - उष्ण जल से शुण्ठी चूर्ण तोला (लगभग 5 ग्राम) देना चाहिए ।

अतिसार में - उशीर आर्द्रक से पकाया हुआ पिलाना चाहिए ।

सुश्रुत :-

कामला में - गुड़ के साथ शुण्ठी का चूर्ण करना चाहिए ।

वाग्भट -

कर्णशूल में - आर्द्रक स्वरस को हल्का गर्म कान में डालना चाहिए ।

चक्रदत्त -

कास में - आर्द्रक स्वरस मधु मिलाकर पिलाना चाहिए । इससे श्वास, कास, प्रतिश्याय एवं कफ का नाश होता है ।

शार्ङ्गधर -

परिणाम शूल में - शुण्ठी, तिल और गुड़ इन तीनों का कल्क दूध के साथ पीने से परिणाम शूल तथा आमवात नष्ट होता है ।

शुण्ठी अथवा आर्द्रक निर्मित योग एवं उपयोग-

शुण्ठ्यादि चूर्ण - अतिसार में ।

नागरादि क्वाथ - ज्वरातिसार में ।

व्योषादि चूर्ण - यह चूर्ण पाचन एवं ग्राही है । इसके सेवन से प्यास, अरुचि, ज्वरातिसार, प्रमेह, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहावृद्धि, कामला, पाण्डु और शोथ का नाश होता हैं ।

त्र्यूषणादि लौह - इसके सेवन से स्थूलता, प्रमेह और कुष्ठ रोग नष्ट होता है तथा बल, वर्ण एवं जाठराग्नि की वृद्धि होती है ।

व्योषादि वटी - यह सर्दी जुकाम की प्रसिद्ध दवा है । इसका उपयोग अधिकतर सर्दी, जुकाम, पीनस, नजला आदि रोगों में किया जाता है ।

शुण्ठी अर्क - अग्निवर्धक, वात तथा कफनाशक है । यह मन्दाग्नि, अरुचि, अजीर्ण, आमदोष, अतिसार, संग्रहणी, आमवात, उदरशूल आध्मान, वातव्याधि, शोथ आदि विकारों को नष्ट करता है । कास तथा श्वास में उत्तम है ।

आर्द्रक पाक - इसके सेवन से श्वास, कास, सवरभङ्ग, अरुचि, शोथ, ग्रहणी, शूल, अनाह गुल्म, उदर रोग आदि नष्ट होते हैं ।

अदरक सत्व - यह अग्निमांद्य, उदरशूल, आध्मान, प्रतिश्याय, कास, श्वास, ज्वर, आमवात, वात विकार, अजीर्ण, विसूचिका, शोथ, यकृत प्लीहा, वस्ति शूल आदि विकारों में अत्यन्त गुणकारी है ।

सौभाग्यशुण्ठी पाक - इस पाक का सेवन करने से बल की वृद्धि होती है । वर्ण सुन्दर बनता है । वली पलित विकार नष्ट होता है । यह पाक अत्यन्त वृष्य एवं रसायन है । स्त्रियों के लिए अमृत तुल्य लाभकारी है । इसके सेवन से योनि विकार, प्रदर, कष्टार्तव आदि रोग नष्ट होते हैं । प्रसूता स्त्रियों के लिये विशेष लाभप्रद है । पुरुषों के लिये भी बल-वीर्यवर्द्धक हैं ।

उपरोक्त गुणों एवं चरक संहिता के दीपनीय, शूलप्रशमन, तृष्णा निग्रहण, तृप्तिघ्न तथा अर्शोघ्न महाकषायों में उल्लेख होने से शुण्ठी के पर्याय विश्वा, विश्वभेषज, महौषध तथा नागर आदि की सार्थकता प्रमाणित होती है ।

बैद्यनाथ

जीवनकल्प

दुर्बलता, कब्जियत, अग्निमांद्य, कैल्सियम
एवं खून की कमी में लाभदायक

उपयोगिता से भरपूर नीबू

राजकुमार

नीबू एक मात्र ऐसा फल है, जो देश के कोने-कोने में सहजता से सुलभ हो जाता है तथा वर्ष भर आसानी से मिल जाता है । नीबू एक अत्यंत उपयोगी फल है । विटामिन-सी का नीबू एक बहुत बड़ा स्रोत है । नीबू न केवल सेहत के लिए फायदेमंद है, बल्कि सौन्दर्य के लिए भी यह उपयोगी है । जहां भी गन्दगी या मैल होता है, खटास उसे दूर करती है । फिर भी यह गंदगी त्वचा में हो या खून अथवा हड्डी में । आयुर्वेद में नीबू को प्यास बुझाने वाला तथा भूख बढ़ाने वाला कहा गया है । आयुर्वेदिक व यूनानी औषधियों में नीबू के रस का बहुतायत से उपयोग किया जाता है ।

अधिकांश वैज्ञानिकों की राय है कि नीबू का उद्गम-स्थल भारत ही है । थोर्प डिक्शनरी ऑफ एप्लाइड केमिस्ट्री के मुताबिक नींबू का जन्म तो भारत में ही हुआ लेकिन उत्पादन की दृष्टि से अब अमेरिका अग्रणी है ।

नीबू पोषक तत्वों से भरपूर है । प्रति 100 ग्राम नीबू में पाये जाने वाले पोषक तत्व निम्नानुसार हैं -

कैलोरी- 57.0 मिलीग्राम
कैल्शियम - 70.0 मिलीग्राम
लौह तत्व - 2.3 मिलीग्राम
प्रोटीन - 1.0 मिलीग्राम
नायसिन - 0.1 मिलीग्राम
विटामिन-सी- 39.0 मिलीग्राम

नींबू के इस रासायनिक विश्लेषण से यह स्पष्ट ही है कि यह सेहत के लिए एक उपयोगी फल है । नीबू की अनेक किस्में प्रचलित हैं, मसलन - गलगल, विजोरा, जमीरी, कागजी, गुदड़िया, नेपाली आदि । सेहत की दृष्टि से कागजी नीबू सर्वश्रेष्ठ होता है । कागजी नीबू का छिलका बेहद पतला होता तथा इसमें रस भी अन्य नीबूओं की अपेक्षा अ होता है । अचार, मुरब्बों एवं आयुर्वेदिक औषधिय कागजी नीबू ही प्रयुक्त किया जाता है । नीबू ख समय आप इस बात का विशेष ध्यान रखें कि उ आकार बड़ा हो, वह साफ तथा गहरे पीले रंग क तथा छिलका पतला और मुलायम हो । पीले उपलब्ध न होने की दशा में हरे रंग के नीबू उप में लिए जा सकते हैं । फ्रिज में नीबूओं को ला डेढ़ माह तक सुरक्षित रखा जा सकता है ।

अक्सर यह देखने में आता है कि गर्भाव में महिलाओं को खट्टी चीजें - आम का आ इमली आदि बहुत अच्छा लगता है । यदि महि इमली आदि के बदले नीबू का उपयोग करें तो उनके लिए अधिक उपयोगी साबित होगा क्यों इसके सेवन से उन्हें पर्याप्त मात्रा में लौह (आयरन), कैल्शियम आदि पौष्टिक व उपय तत्व मिलते रहेंगे और वह स्वस्थ बनी रह सकें

शरीर में विटामिन-सी की कमी से स् रोग हो जाता है । इससे मसूढ़ों में से खून आने ल है । यह रोग हो जाने पर नीबू का नियमित निश्चय ही फायदेमंद होगा क्योंकि नीबू विटामिन का भरपूर स्रोत है । नीबू का रस मसूढ़ों पर ल से भी खून बहना बंद हो जाता है ।

आइये, अब नीबू के कुछ उपयोगी नुस्खे जा

* यदि आपको कब्जियत की शिकायत है तो प्रति सवेरे गुनगुने पानी में एक गिलास में एक नीबू रस मिलाकर सेवन करें । कुछ ही दिनों कब्जियत दूर हो जाएगी तथा पेट बिल्कुल रहने लगेगा ।
* लू आदि लगने से यदि नाक में से बहता खून न हो तो नाक में कुछ बूंद नीबू का रस डाल खून तत्काल बंद हो जाएगा ।

राज स्टेशनर्स, पंचपहाड़ रोड, भवानी मण्डी, (राजस्थान)

* सिर की खुजली से छुटकारा पाने के लिए एक नीबू काटकर सिर पर मलें ।

* नीबू से अधिक रस प्राप्त करने के लिए उसे काटने से पहले किसी मेज पर रखकर हथेली से दबाव डालते हुए घुमाएं । चारों ओर से मुलायम हो जाने से काटने पर अधिक रस निकलेगा ।

* छोटे बच्चों के बदन पर नीबू के रस में बेसन व सरसों का तेल मिलाकर उबटन करने से उनके शरीर पर अवांछित बाल कम उगते हैं ।

* यदि सलाद में नीबू के छिलकों को बारीक काटकर डाल दिया जाए तो सलाद काफी समय तक ताजा बना रहेगा और उसमें से भीनी-भीनी खुशबू तो आती ही रहेगी ।

* पुरानी खाज-खुजली में नीबू के रस को हल्दी में मिलाकर नियमित रूप से लेप करने से लाभ होता है ।

* शयन से पूर्व गर्म पानी में नीबू का रस मिलाकर हाथ-पैर धोने से त्वचा का खुरदरापन दूर हो जाता है तथा त्वचा चिकनी व कांतिमय हो जाती है ।

* नीबू के रस में शहद व काला नमक मिलाकर पीने से लगातार चलने वाली हिचकी तत्काल रुक जाएगी ।

* सप्ताह में एकाध बार नीबू के रस में सेंधा नमक व पानी मिलाकर पीना आंतों की सफाई के लिए बहुत ही उपयोगी होता है ।

उपरोक्त कुछ उपयोगों से जाहिर है कि नीबू हमारे स्वास्थ्य एवं सौंदर्य के लिए लाभदायक है । तो आज ही से आप नीबू का नियमित उपयोग करना आरंभ कर दें ?

क्या आप भी पेट की गैस से परेशान हैं ?

मीना

उदर-रोगों में पेट में गैस बनना एक मुख्य बीमारी है । इसके समाधान के कुछ आसान घरेलू उपाय यहां दिए जाते हैं :-

* पेट में गैस बनने पर काली मिर्च के आठ-दस दाने पीसकर गर्म पानी में मिला दें और ऊपर से नीबू निचोड़ दें । इसका सेवन सुबह शाम करें ।

* गैस की शिकायत लगातार बने रहने पर एक गिलास गर्म पानी, घूंट-घूंट एक-दो सप्ताह तक रोजाना पीने से राहत मिलेगी ।

* पांच ग्राम हल्दी में पांच ग्राम नमक मिलाकर गर्म पानी से लें ।

* सबेरे खाली पेट एक गिलास पानी में पोदीने का रस और शहद बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर पी लें ।

* हींग को गर्म पानी में घोलकर नाभि के आसपास लेप करें तथा थोड़ी-सी हींग भूनकर खाने के साथ खाने से राहत मिलती है ।

* दूध को उबालकर उसमें एक पीपल डालकर यह दूध गर्म-गर्म पी लें ।

* लम्बे वाले ताजे बैंगन की सब्जी कम मसाले में बनाकर जब तक सब्जीमंडी में यह बैंगन आएं, रोजाना खाने से भी यह समस्या हल हो जाएगी ।

* नीबू के रस में जायफल को घिसकर चाटें । इससे दस्त साफ होगी व गैस की शिकायत मिट जाएगी ।

* कच्चे आलू का रस निकालकर पीना भी लाभप्रद है ।

राज स्टेशनर्स, पंचपहाड़ रोड, भवानी मण्डी, (राजस्थान)

ग्रीष्म कालीन आहार-विहार पर विशेष चर्चा

कविराज डा० दिवाकर ठाकुर, जी.ए.एम.एस. औनर्स (पटना), डी.एस.सी.ए. (आयुर्वेद विशार

काल को स्वयंभू कहते हैं। इसी से द्रव्य रस की उत्पत्ति, गुण धर्म और प्राणियों का जीवन-मृत्यु सन्निहित है। इसी काल को भगवान सूर्य ने अपनी गति विशेष से ऋतु के रूप में विभाजित किया है। इसी ऋतु के क्रमानुसार परिवर्तन के आधार पर ग्रीष्म ऋतु का आगमन होता है। इस ऋतु में स्वास्थ्य दुर्बल रहता हैं। अतएव इस ऋतु में अपने आहार-विहार को ध्यान में रखकर स्वास्थ्य को बनाए रखना चाहिए।

स्वस्थ शरीर ईश्वरीय देन है। लेकिन आज की आपाधापी, व्यस्तता और भौतिकवादी वातावरण में ईश्वर का अनुपम उपहार की अवहेलना हो रही है जिस कारण तरह-तरह असंभाव्य रोगों के चंगुल में हम फँस गए हैं और प्रकृति प्रदत्त विभिन्न सुविधाओं का लुत्फ नहीं ले पा रहे हैं।

गरमी में पाचन क्रिया कमजोर हो जाती है इसलिए हल्का और पाच्य भोजन लेना ही उचित है। बाहर या बाजार का खाना मजबूरीवश यदा-कदा ही लेना चाहिए। बाजारू खाना स्वादिष्ट रहते हुए भी हानिकारक है। गरमी में अधिक पसीना आने से शरीर में नमक की मात्रा का अभाव हो जाता है। भोजन के साथ नमक की पूरी मात्रा लें। साथ ही शीतल जल का व्यवहार पर्याप्त मात्रा में करें।

गरमी के दिनों में खान-पान, रहन-सहन कैसा होना चाहिए, इसकी जानकारी शरीर को स्वस्थ रखने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को होनी चाहिए।

आहार - लघु, जल्दी पचने वाला, स्निग्ध एवं ताजे आहार का सेवन करें। अधिक मात्रा में तरल पदार्थ एवं शीतल जल का सेवन करना ज़रूरी है। अधिक मात्रा में ताजे एवं हरे शाक सब्जियों का इस्तेमाल करें। इन दिनों आम, तरबूजा, खरबूजा, ककड़ी, लीची, पपीता, संतरा, मौसमी, अंगूर, नीबू आदि प्रयोग में लावें। प्रातः कालीन पेयों में नीरा (ताड़ या खजूर से निकलने वाला रस) बहुत स्वास्थ्यप्रद होते हैं। नारियल का पानी, गन्ने या संतरा आदि फलों का ताजा रस भी उत्कृष्ट पेय है। जौ के आट
मट्ठा मिलाकर वार्ली की तरह तरल बनाकर वासी होने
लिए एक दिन छोड़ दें। पुनः मट्ठा मिलाकर पीने से ग
का प्रभाव प्रभावित नहीं करता है। वासी भात और इ
स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है तथापि इस मौसम में ग
से बचाव के लिए अनुचित नहीं है। प्रातः कालीन नि
कर्म से निबट कर एक ग्लास बढ़िया ठंढाई, दूध या
की लस्सी या जौ या चने की सत्तू में मीठा मिलाकर स
हितावह होता है। पोदीना, प्याज, दही, छाछ, घी, दूध
साठी चावल का सेवन करें।

चन्दन, गुलाब, केबड़ा, खस, आम या इमली
पन्ना भी सुखद अनुभव कराता है। मिट्टी के नये बर्तन
रखे गए चीनी मिश्रित शीतल जल का सेवन आनन्द
होता है।

विहार - सूती, हल्के सफेद एवं ढीला-ढ
पोशाक का व्यवहार करना उत्तम होता है। धूप में
जाना पड़े तो यथेष्ट शीतल जल पीकर तथा एक
साथ में रखकर जायें। धूप में निकलने समय सिर
तौलिया से ढंके और सूती गमछा व छाता का व्यवहार
धूप से आने के बाद तुरंत ठंढा जल न पीयें, कुछ
सुस्ताने के बाद पीयें। खाली पेट और नंगे पैर धूप
चलें। सुबह और शाम दो बार जरूर स्नान करें।

गरमी के मौसम में आयुर्वेद मतानुसार दोपह
एक घंटे सोना स्वास्थ्य के लिए हितकर होता है। इस
में दैनिक कामों का समय ऐसा रखना चाहिए कि दोपह
आराम करने का समय मिले।

ग्रीष्म ऋतु में चाय का उपयोग स्वास्थ्य
अनुकूल नहीं होता है। अतः कम पीवें। इन दिनों दूध
ठंडा कर पीना चाहिए, लेकिन दूध को ठंडा करने
स्वच्छ पात्र में कपड़े से मुँह बाँधकर रखना चाहिए।

गरमी के मौसम में शराब का व्यवहार कभी
करना चाहिए, क्योंकि मद्य स्नायु मंडल पर सीधा

इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद, रिसर्च एण्ड हॉस्पीटल, सर्किट हाउस के सामने, पकड़ी, आरा - 802

डालता है.जिससे स्नायु कमजोर हो जाता है । बिना शराब पिये काम न चले तो गरमी में अधिक पानी मिलाकर सेवन करें । अधिक शराब लेने से सूजन, सुस्ती और मूर्च्छा भी आ जाती है ।

इन दिनों स्त्री संभोग करने से शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की कमजोरी बढ़ती है । दूध के साथ बीजू आम का रस शरीर का वजन और शक्ति वर्द्धक होता है । शीतल वातावरण में रहें । अधिक भीड़-भाड़ वाले जगहों और मेला में न जायँ । नील कमल या ताड़ के पत्र से बने पंखे का इस्तेमाल गरमी से बचाता है ।

तीव्र धूप के प्रभाव से आँखों में जलन होने लगती है और आँखें लाल हो जाती हैं इसके लिए यह जरूरी है कि धूप से आने के बाद आँखों पर शीतल जल के छींटें मारें । खीरा के गोल टुकड़े काटकर आँखों पर रखने से आँखों की जलन मिटती है । आँखों की सुरक्षा के लिए उत्तम कोटि वाले धूप के चशमे का प्रयोग करना चाहिए ।

अतएव उपरोक्त वर्णित ग्रीष्म कालीन आहार-विहार का अनुपालन करने से प्रचण्ड गरमी के प्रभाव से सुरक्षित रहा जा सकता है ।

(पृष्ठ संख्या 110 का शेषांश)

स्वच्छता पर ज्यादा ध्यान दें ।

आयुर्वेदिक उपाचार -

1. चाय की जगह सप्तपर्ण या शिरीष के छाल का क्वाथ का प्रयोग करें ।
2. बादाम (कागजी), छोटी इलायची, मरिच को पानी में पीसकर हल्का गर्मकर उसमें एक चम्मच घी और एक चम्मच मिश्री डालकर दिन में तीन बार लें ।
3. खाँसी होने पर कफ निकालने का प्रयत्न करें । इसके लिए घी, सरसों तैल, मोम, सैंधव लवण सम भाग मिलाकर गरम-गरम लेप छाती पर करें ।
4. सितोपलादि चूर्ण मधु व घृत से 3-6 ग्राम का मात्रा में दो बार लें ।
5. त्रिकटु (सोंठ, मरिच, पिप्पली) चूर्ण मधु से 1-3 ग्राम की मात्रा में दो बार लें ।
6. दशमूल क्वाथ पिप्पली चूर्ण के साथ लें ।
7. छुहारा चार नग पावभर दूध एवं दूध के बराबर पानी मिलाकर उबालें, जब दूध शेष रह जाय तो छुहारा खाकर दूध पीवें ।
8. मुलेठी का छोटा-छोटा टुकड़ा कर मुख में चूसें ।
9. हल्दी का चूर्ण वासा पत्र स्वरस या पान पत्र स्वरस से भावित कर, घृत में भून कर 1-3 ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार लें ।
10. पान पत्र 3-6 ग्राम हल्दी चूर्ण रखकर पान की तरह दिन में दो-तीन बार लें ।

इस रोग में निम्न आयुर्वेदीय योग लाभकारी है ।

कण्टकारीघृत, पिप्पलाद्यघृत, विडंगादिलेह, हरिद्राखण्ड, शिरीषादिलेह, शाखोटकघनवटी, शट्यादि चूर्ण, मरिचादि गुटिका, खदिर वटी, व्योषादि वटी, लवंगादि वटी, व्याघ्रीहरीतकी, श्रृंगभस्म, मल्लसिन्दूर, कफकेतुरस, विडंगचूर्ण, इन्द्रजौचूर्ण आदि ।

आधुनिक चिकित्सा में Diethylcarbamazine, Albendazole आदि इसकी प्रमुख औषधि है ।

बैद्यनाथ आँवला
केश तेल

बच्चों को वर्षा ऋतु में होने वाले रोग और उनसे सुरक्षा के उपाय

डा० अयोध्या प्रसाद अचल, एम.ए. (द्वय.), पी.एच.डी., आयुर्वेद बृहस्

ग्रीष्म ऋतु के अन्तिम पन्द्रह दिन और वर्षा ऋतु के शुरू पन्द्रह दिन (लगभग 15 जून से 15 जुलाई तक) जबकि मौसम में बदलाव आ रहा होता है रोगों के लिए अधिक सुग्राह्य होते हैं । इस अवधि में शरीर की मशीनरी भी मौसम के बदलाव के साथ-साथ अपने को भी अभियोजित कर रही होती है । इस बीच थोड़ी-सी भी असावधानी शरीर में विकारों को उत्पन्न कर सकती है । बच्चों के शरीर अपेक्षाकृत अधिक कोमल और शरीर का अभियोजन-तंत्र अपरिपक्व होता है । इसीलिए वे बीमारी की चपेट में जल्दी आ जाते हैं ।

वर्षा ऋतु के आने के साथ-साथ गर्म हवा में नमी और ऊमस का भी समावेश हो जाता है । ऊमस के कारण शरीर से पसीना अधिक निकलता है । यदि तत्काल उसकी सफाई नहीं की गई तो सूखकर शरीर के रोम कूपों को बन्द कर देता है । इससे चर्म रोगों की उत्पत्ति की सम्भावना बढ़ जाती है । हवा में उड़ने वाले धूल-कण और प्रदूषित पदार्थ तथा संक्रमण रोगों की सम्भावना को और भी बढ़ा देते हैं । वर्षा की शुरू की बौछारें भी अपने साथ धूल, धुआँ तथा अनेक प्रकार के रसायनों और दूषित वस्तुओं को लेकर आती है । इनमें भीगना भी हानिकर सिद्ध हो सकता है ।

वर्षाकाल में नदियों, तालाबों, कुँओं आदि का पानी गँदला और संक्रमित हो जाता है । महानगरों तक में सरकार द्वारा सप्लाई किया जाने वाला पानी भी इसका अपवाद नहीं । वर्षा का पानी इधर-उधर भर जाने से गन्दगी फैल जाती है । उसमें मच्छर, मक्खी तथा अन्य जीवाणु पनपने लगते हैं । सावधानी न बरतने पर ये जीवाणु खाद्य पदार्थों को भी प्रदूषित कर देते हैं । प्रदूषित जल और प्रदूषित खाद्य पदार्थ रोगों की उत्पत्ति में चार चाँद लगा देते हैं ।

(1) आंत्रशोथ (Gastritis)- इसके मुख्य लक्षण हैं अफारा, पेट में दर्द, पतले पाखाने और उल्टियाँ । पतले पाखाने और उल्टियाँ अधिक होने पर, जलाभाव (Dehydration) का खतरा पैदा हो जाता है । इससे बच्चे का स्वास्थ्य तेजी के साथ गिरने लगता है ऐसी हालत में बच्चे को जल, जीवनरक्षक घोल, दाल का पानी, ग्लूकोज मिश्रित जल, फलों के रस आदि तरल पदार्थ देते रहना चाहिए । जिससे उसके अन्दर जलाभाव की स्थिति न पैदा होने पाय । यथाशीघ्र उसे किसी अनुभवी बाल रोग विशेषज्ञ को दिखलाना चाहिए ।

(2) पीलिया या कामला (Jaundice) - बरस में बच्चों को पीलिया होने की अधिक सम्भावना रहती है ये एक विषाणु जनित रोग है । बच्चों को मिट्टी, कंक आदि खाने से भी पाण्डु रोग हो सकता है । बच्चों पीलिया की प्रारम्भिक अवस्था में भूख की कमी, मन्द ज्व तथा यकृत प्रदेश में हल्की पीड़ा और शोथ के लक्षण प्रक हो सकते हैं । रोग के अधिक बढ़ने पर आँखों के श्वे पटल और पेशाब में पीलापन दिखलाई देने लगता है बच्चा उनींदा और सुस्त हो जाता है । पीलिया का सन्दे होने पर बच्चे के पेशाब और खून की जाँच करा लें चाहिए । इससे निश्चित रूप से पता चल जाएगा कि बच् को पीलिया है या नहीं । और है, तो किस हद तक ब हुआ है ? पीलिया में प्राय: यकृत (Liver) प्रभावित हो जाता है । खून की जाँच से यह भी पता लग जाएगा कि उसका यकृत शोथ (Hepatitis) किस कोटि (A,B,C का है । इससे इलाज में सुविधा होती है । रोग के प्रारम्भिक अवस्था में पता लग जाने पर पीलिया का इला आसानी से किया जा सकता है । इसके उपचार के लि आवश्यक है कि बच्चे को घूप में न निकलने दें, बच्चे क अधिक से अधिक आराम दिया जाय और भोजन यथासाध्य तरल पदार्थ ही दिये जायें । यकृत के कमज हो जाने से ठोस खाद्य पदार्थ बच्चा पचा नहीं सकता । य कोई अन्य उपद्रव (Complication) न हो तो बच्चा इ उपायों से धीरे-धीरे स्वस्थ हो जायेगा । रोग के बढ़ ज पर अविलम्ब किसी कुशल बाल रोग विशेषज्ञ को दिखला चाहिए ।

उक्त दोनों ही रोग मुख्य रूप से प्रदूषित जल त प्रदूषित भोजन की उपज होते हैं । इसीलिए इन दोनों क बचाव के लिए आवश्यक है कि बच्चों को उबाल क ठण्डा किया हुआ स्वच्छ जल ही पीने को दिया जाय उबले हुए पानी पर भी अगर गन्दगी आदि आकर बैठ ज या उसमें किसी तरह की गन्दगी पड़ जाये तो उसे उपय में नहीं लाना चाहिए । दूसरे बच्चों के भोजन का भी पू ध्यान रखना चाहिए । उनकी अवस्था के अनुरूप उ स्वच्छ, सुपाच्य और ताजे खाद्य पदार्थ खाने को दें चाहिए । उन्हें खुली रखी हुई, ठण्डी अथवा बासी चीं नहीं देनी चाहिए । बाजार के खाद्य पदार्थों को उ

यथासाध्य नहीं देना चाहिए ।

आन्तरिक ज्वर, विषमज्वर तथा डींगू बुखार (Typhoid, Malaria and Dungue Fever) - ये तीनों ही ज्वर प्रदूषित वातावरण की उपज होते हैं । आन्तरिक ज्वर विषाणु जन्य, मलेरिया तथा डींगू-विशेष प्रकार के मच्छरों के काटने से उत्पन्न होते हैं । बच्चों में इनके लक्षण बड़ों की अपेक्षा कुछ भिन्न होते हैं । इसीलिए इन्हें पहचानने में कठिनाई होती है । बुखार सप्ताह से अधिक बना रहे तो उसके आन्त्रिक ज्वर के होने की सम्भावना हो जाती है । इन रोगों का संदेह होने पर तत्काल कुशल एवं योग्य चिकित्सक की सलाह लेनी चाहिए ।

आन्तरिक ज्वर से सुरक्षा के लिए बच्चे को दो साल का होते ही आन्तरिक ज्वर विरोधी टीका लगवा देना चाहिए । इससे बच्चे के आन्तरिक ज्वर से ग्रस्त होने की सम्भावना कम हो जाती है । मलेरिया और डींगू ज्वर से सुरक्षा के लिए बच्चों को मच्छरों से बचायें । इस सन्दर्भ में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि डेंगू का मच्छर प्रायः साफ पानी में ही पनपता और दिन के समय में ही काटता है । घर के अन्दर और घर के आस-पास कहीं भी गंदगी या गन्दा पानी न जमा होने दें । घर में गमलों, क्यारियों, कूलर तथा अन्य किसी बर्तन में पानी न जमा होने दें । इन्हीं में मच्छर मक्खियाँ तथा अन्य कीड़े पनपते हैं । बच्चों को शाम होते ही ऐसे कपड़े पहनायें जिससे उनके हाथ पैर ढके रहें । सोते समय मच्छरदानी, मच्छरों को भगाने वाले क्वाइल या मैट आदि का प्रयोग करें । कमरों में मच्छरों के छिपने के स्थान पर कीटनाशक छिड़कावों का प्रयोग करें । खिड़की तथा दरवाजों पर यथासाध्य जाली के पल्ले भी लगवायें ।

सर्दी, खांसी, जुकाम, श्वास कृच्छता तथा दमा (Cough, Cold, Coryza and Pneumonia) - गर्मी से परेशान प्रायः सभी छोटे बड़े बरसातके आते ही बौछारों का आनन्द लेने के लिए निकल पड़ते हैं । बच्चे भी इनका अपवाद नहीं । मना करने पर भी वे पानी में भींगने-खेलने से नहीं मानते । प्रायः देर तक गीले कपड़े पहने रह जाते हैं । इसीलिए इस मौसम में उनके उक्त रोगों से ग्रस्त होने की सम्भावना अधिक हो जाती है इनमें दमा और न्यूमोनिया सबसे अधिक कष्टकारक है । बच्चों को श्वासावरोध से भी बड़ी तकलीफ होती है । इन रोगों में प्रारम्भिक अवस्था में ही बाल रोग विशेषज्ञ का परामर्श लेना चाहिए ।

बरसात की शुरू की बौछारों में प्रायः धूल के कण, तरह-तरह के रसायन तथा हवा में व्याप्त सूक्ष्म पदार्थ और विषाणु आदि होते हैं इसलिए बच्चों को शुरू की बौछारों से बचाना चाहिए । दूसरे उन्हें पानी में अधिक देर भीगने नहीं देना चाहिए । भीगने पर तुरन्त बदन को पोंछ सूखे कपड़े पहना देना चाहिए ।

चर्मरोग (Skin Diseases) - बरसात में बच्चे घमोरी फोड़े-फुन्सी, खाज-खुजली आदि चर्म रोगों से भी ग्रस्त होते देखे जाते हैं ।

चर्म रोगों से बचाव के लिए बच्चों को साफ-सुथरा रखना चाहिए । उन्हें नहलाते समय उनके सर, कानों के पिछले भाग, गर्दन, बगल, कोहनी तथा जांघों के जोड़ों की सफाई का पूरा ध्यान रखना चाहिए । नहलाने के बाद इन स्थानों को भली-प्रकार पोंछ-सुखाकर टैलकम पाउडर लगा देना चाहिए । पेशाब तथा पाखाने आदि की जगहों की सफाई का विशेष ध्यान रखना चाहिए । चर्मरोग का अतिप्रसार हो तो बच्चों को नीम के पानी से नहलाना चाहिए । नहलाकर उन्हें हल्के सूखे ढीले और विसंक्रमित सूती वस्त्र पहनाने चाहिए । विसंक्रमण के लिए कपड़ों को धोकर उन्हें डीटॉल या सेवलॉन के पानी में डुबाकर सुखा लेना चाहिए । इस मौसम में खासकर उन्हें सिंथैटिक कपड़े तथा प्लास्टिक के जूते चप्पल भूलकर भी नहीं पहनाना चाहिए । गंदी जगहों तथा गंदे पानी में जाने से रोकना चाहिए । कीट-पतंगों से उनकी रक्षा करनी चाहिए ।

नेत्राभिष्यन्द (Conjunctivitis):- वातावरण प्रदूषित होने के कारण बरसात में नेत्राभिष्यन्द की शिकायत भी अधिक पायी जाती है । इसमें आँखें लाल हो जाती हैं । उनमें पीड़ा या किरकिराहट होती है । आँखों से पानी या चिपचिपा मल आने लगता है । रात में प्रायः बच्चों की आँखें चिपक जाती हैं यह रोग भी संक्रामक होता है, बच्चे इसके प्रति अधिक सुग्राह्य होते हैं ।

इसके संक्रमण से बचाने के लिए बच्चों की आँखों की सफाई की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए । उन्हें धूल, धुएं आदि से बचाना चाहिए । पीड़ित बच्चों को अपने हाथों और जिस रूमाल आदि से वे अपनी आँखें पोंछते हैं उनको बराबर धोकर साफ रखना चाहिए । रूमाल को यदि हल्दी या नीम की पत्तियों के रस में रंग दिया जाय तो वे अधिक लाभदायक सिद्ध होते हैं ।

Amalaki Rasayana : a Protection Against Experimental Gastric Ulcers in Albino Rats And Having Better Amlapittahara Effect

[1]Dr. Bharat Kalsariya
[3] Dr. B. Ravishankar
[2] Dr. B. Patgiri
[4] Dr. P. K. Prajapati

Key words :
Amlapitta, Ordinary Amalaki Rasayana(O.A.R.), Freeze Dried Amalaki Rasayana(F.D.A.R.), Freeze Dried Amalaki Churna (F.D.A.C.),

ABSTRACT

Amalaki Rasayana, an Amlapittahara drug since Charaka period has attracted a good number of workers from different aspects. Present work is an attempt to assess the effect of different samples of Amalaki Rasayana on aspirin ingested and pyloric ligation induced gastric ulcer in Charles Foster's strain albino rats and in patients of Amlapitta (Hyperacidity). In rats, gastric ulcer was induced by oral administration of aspirin (400 mg/kg) and with ligation of pyloric end of stomach. Data obtained with parameters like ulcer index (56.63% increase in O.A.R., 12.05% decrease in F.D.A.C., no change in F.D.A.R.), volume of gastric juice (4.02% increase in O.A.R., 4.82% decrease in F.D.A.R., 21.54% decrease in F.D.A.C.) shows weak anti-secretory and moderate anti-acid activity with freeze drying Amalaki Rasayana whereas marginal anti-secretory, moderate anti-acid and weak anti-ulcer activity with freeze dried Amalaki Churna in experimental study. The clinical study of both Amalaki Rasayana exhibited the Amlapittahara effect as 100% patients suffering from Daha, 90,91% Amlodgara, 72.73% Agnimandya, 68.18% Aruchi were remarked improved with 66.67% and 60.0% patients in O.A.R. and F.D.A.R. treated groups respectively.

Introduction

Amalaki (Fruits of *Emblica officinalis* Gaertn., family – *Euphorbiaceae*), a remarkable drug mentioned in Ayurvedic literatures is most effective remedy in Paitika disorders (Pittashamaka) with neutralizing capacity of vitiated Vata and Kapha Dosha, reasons behind its activities against Paitika disorders and Amlapitta.

Not only the Ayurveda but so calle modern science also accepts the admirable resu of Amalaki combating the various ailments disequilibria of physiology of human body and oth laboratory animals. Studies conducted with fr extracts indicate the cytoprotective effect again heavy metal induced hepatotoxicity an nephrotoxicity (Roy et al., 1991) and counteracti against nickel clastogenecity (Agarwal et al., 1992 It is also found inhibiting the mutagenec produced by acetaminofluorene – (Jose et a 1997), sodium azide and 4 – nitro- phenylenediamine induced mutagenesis Salmonella typhimurium (Grover and Kaur, 1989 The work as dietary supplement to mice revea the reduced cytotoxic effects of benzo(a)pyre (Nandi et al, 1997). The simultaneo administration of fruit extract along with carcinog was observed checking the nitrosodiethylam induced hepatocarcinogenesis in rats (Jose et a 1999). The extract scavenged superoxide a hydroxyl radicals restraining the in vitro li peroxidation (Jose and Kuttan, 1995). The fr accorded protecting impression in dogs fr induced acute narcotizing pancreatitis (Thora al., 1995), the rats from myocardial necrosis (Ta 1977) and rabbits from cholesterol induc atherosclerosis (Thakur and Mandal, 1984; Math et al., 1996). The fruit juice administration hinder the intragastric nitrosation in humans (Xu et a 1993). Bhattacharya et al., 1999 very well expos the dose-related increase in oxidative free radic scavenging enzymes such as superoxi dismutase, catalase, glutathione peroxidase a reduced lipid peroxidation in rat brain hydrolysable tannins purified from *E. officin* fruits.

Following the basic rule of Ayurveda

---

[1] **M. D. Scholar (Final Year) – Dept. of R. S. & B. K. Incl. Drug Research,**
[2] **Lecturer - Dept. of R. S. & B. K. Incl. Drug Research,** [3] **Head – Pharmacology Lab.**
[4] **H.O.D. - Dept. of R. S. & B. K. Incl. Drug Research**

treat the root cause of any disease. Amlapitta is generated in hurry, worry and curry situations, common phenomenon of today's fast life insisting the world population to bear up with this devil. Amalaki, a potent Rasayana drug referred with valuable texts is documented with its therapeutic effect on Amlapitta. The thought to enhance the efficacy of the drug, while triturating by its own extracted juice in simple dried form and freeze-dried form was the motive to perform the work, definitely to observe both the forms separately. For the purpose of the study i.e., to evaluate the efficacy of different samples of Amalaki Rasayana against experimental gastric ulcers, Charles Foster strain albino rats were selected other than executing with the patients.

MATERIALS AND METHODS

Drug Preparation :

Preparations of the drugs were coded as O.A.R., F.D.A.R. and F.D.A.C. respectively for Ordinary Amalaki Rasayana subjected with 21 Bhavanas of fruit juice in powder of dried fruits, Freeze Dried Amalaki Rasayana subjected with 21 Bhavanas of fruit juice in powder of freeze dried fruits and simple Freeze Dried Amalaki Churna.

Experimental Study :

24 Charles Foster strain albino rats of either sex 6 in each group weighing between 150 to 300 g were used in the experiments excluding the pregnant rats. These animals were fed and maintained in the animal house of the institute on 'Pranav Agro Industries' (earlier- Navachakan oil mills) "Amrut" brand rat pellets and tap water and were exposed to natural day and night cycles.

The test drugs were administered daily for 7 consecutive days. On 8th day, after 1 hour of drug administration aspirin was administered and after that one-hour later pyloric ligation was done as per the technique of SHAY et al. (1945). Rats were fasted for 24 hour by placing them individually in the metabolic cages to prevent caprophagy. Before pyloric ligation, they were anesthetized with chloral hydrate (3.6%w/v) in a volume of 1 ml/100g body weight, laprotomy was done with a midline incision 1 cm below and lateral to the xiphoid process. The abdominal cavity beneath the diaphragm was opened and the pyloro-duodenal junction was traced and tied with a thread in the notch. The ligation was done, by taking care to exclude the blood vessels. Abdomen was closed in layers by interrupted sutures and then the operated rats were transferred to individual metabolic cages again. The animals were deprived of food and water during the postoperative period. After 6 hours of pyloric ligation, the rats were sacrificed by an over dose of chloral hydrate. Abdominal cavity was opened carefully and stomach was excised after ligating the terminal portion of oesophagus to prevent loss of gastric content during excision. With holding the excised and ligated stomach over a glass funnel on a graduated centrifuge tube and puncturing it with a scissor, gastric juice was collected. Volume of the juice collected was noted and then centrifuged at 1800 RPM for 15 minutes and the supernatant used for various bio-chemical estimations i.e., Volume of gastric juice was measured with the help of a measuring cylinder, Total and free acid [Varley, 1962], Total Carbohydrate [Nair, 1976], Total Protein [Lawry's method, 1951] and Peptic activity [Sanyal and Mitra, 1976].

After collection of the juice the stomach was opened along with greater curvature, washed under slow running water and inner surface was carefully observed with a magnifying glass and subjective score were assigned in the following manner:

* No Visible Ulcers.	- 0
* Approximate ulcerated area up to 0-1 mm diameter.	- 1
* Approximate ulcerated area up to 1-2 mm diameter.	- 2
* Approximate ulcerated area up to 3 mm diameter.	- 3
* Approximate ulcerated area up to more than 3 mm diameter.	- 4
* Perforation of the gastric wall.	- 5

- (S. K. Kulkarni & R. K. Goel 1996)

Clinical Study :

22 Patients bearing the signs and symptoms of hyper acidity i.e. Amlapitta like Kanthadaha, Urovidaha, Amlodgara, Hridshoola,

Chhardi, etc. were selected for the study from OPD and IPD at the hospital of I.P.G.T. & R.A., Jamnagar, irrespective of age, sex, religion, occupation, etc. based on simple random sampling method divided in to two groups i.e. O.A.R. (12 patients) and F.D.A.R. (10 patients).

The patients selected for the studies were subjected to thorough clinical exams and relevant data were recorded in a specially prepared clinical research pro forma. All the parameters were documented before and after treatment.

Patients having heart disease, tuberculosis, under treatment for psychiatrics ailments etc. were excluded.

Patients were advised to take routine diet. However, they were subjected to avoiding diet containing too much oil and spices.

Assessment of the effect of the treatment was done on the basis of the relief in the subjective as well as objective signs and symptoms of hyper acidity. As most of the signs and symptoms described in modern science and Ayurvedic literatures are of subjective nature, to provide th objectivity for statistical analysis, multidimension scoring pattern was adopted. These scores we recorded before and after the treatment throug statistically analysis and percentage of relief we noted to assess the efficacy of the test drugs.

DOSE

Experimental Study :

Test drug - 100 mg/kg body weight of Rat
Aspirin - 400 mg/kg body weight of Rat

The suspension of the drug was made w distilled water and was administered orally respective groups of animals by using a syring with an attached gastric tube.

Clinical Study :

In both group, 1 gm/day in capsule for with tap water for 28 days.

OBSERVATIONS

Experimental Study :

The values are expressed as means standard deviations. The results were analyze statistically by using the Student's unpaired 't' tes

Table – 1

Groups	Volume (ml/100g.bd.Wt.)	Free acidity mEq/lit.	Total acidity mEq/lit.	Ulcer Index
Control	06.22 ± 00.99	14.33 ± 04.26	43.00 ±16.18	00.83 ± 00.23
O.A.R.	06.47 ± 00.40*	21.67 ± 05.34*	30.67 ± 07.29*	01.30 ± 00.32*
F.D.A.R.	04.88 ± 00.76**	19.00 ± 04.59**	16.67 ± 04.32**	00.82 ± 00.35*
F.D.A.C.	05.99 ± 00.89*	13.00 ± 02.40*	19.67 ± 05.02**	00.73 ± 00.29*

Table – 2

Groups	Total Protein mg/d	Total Carbohydratel mg/d	TC : TP Ratio	μ mole Tyrosine released/100ml of gastric juice
Control	66.55 ± 16.14	281.14 ± 27.72	0.24±0.05	276.0 ± 25.35
O.A.R.	58.30 ± 13.95*	289.33 ± 32.37*	0.19±0.03**	224.0 ± 45.78**
F.D.A.R.	67.14 ± 15.06*	381.33 ± 67.62*	0.20 ± 0.05*	272.0 ± 66.00*
F.D.A.C.	67.01 ± 30.28*	272.00 ± 26.23*	0.25 ± 0.12*	356.0 ± 29.14***

* : $p<0.5$ ** : $p<0.1$ *** : $p<0.05$

Histopathological observations :

In O.A.R. administered group, severe ulceration, edema in the sub-mucosal layer, necrosis and cell infiltration in sub-mucosal and muscular layer were also seen.

In F.D.A.R. administered group, severe ulceration, co-agulative necrosis of epithelial layer, marked edema of the sub-mucosal layer, inflammatory and necrotic changes in the sub-mucosal and muscular layer, adhesion with oesophagous were seen with comparatively less degenerative changes.

In F.D.A.C. treated group, severe ulceration, edema in the sub-mucosal layer, necrosis and cell infiltration in sub-mucosal and muscular layer were seen.

In control group, marked edema in the sub-mucosal layer, necrosis and cell infiltration were seen, severe necrosis and fatty changes were observed in the muscular layer, desquamation of epithelial layer, co-agulative necrosis were seen in epithelial layer.

Clinical Study :

Table – 3 : Effect of Ordinary Amalaki Rasayana

Signs & Symptoms	Mean score B.T.	Mean score A.T.	% relief	X	S.D.	S.E.	't'	P
Daha	2.41	0.66	72.61	1.75	0.43	0.13	13.46	>0.001
Amlodgara	2.09	0.36	82.78	1.43	0.62	0:19	09.11	>0.001
Aruchi	1.75	0.50	71.49	1.25	0.43	0.15	08.33	>0.001
Agnimandya	1.89	0.56	70.37	1.33	0.47	0.16	08.31	>0.001

Table – 4 : Effect of Freeze Dried Amalaki Rasayana

Signs & Symptoms	Mean score B.T.	Mean score A.T.	% relief	X	S.D.	S.E.	't'	P
Daha	2.40	0.60	75.00	1.80	0.40	0.13	13.85	>0.001
Amlodgara	1.78	0.56	68.54	1.22	0.42	0.14	08.71	>0.001
Aruchi	1.71	0.57	66.67	1.14	0.35	0.13	08.77	>0.001
Agnimandya	2.00	0.71	64.50	1.29	0.45	0.17	07.59	>0.001

Table – 5 : Comparative Effect

Results	Group A (O.A.R.) no. of patients	%	Group B (F.D.A.R.) no. of patients	%
Complete remission	04	33.33	02	20.00
Markedly improved	08	66.67	06	60.00
Improved	00	00.00	02	20.00
Unchanged	00	00.00	00	00.00

DISCUSSION

None of the three preparations exhibited significant anti-ulcer activity at the dose level studied, the analysis of the data revealed. The

O.A.R. treated group exposed moderate increase in the ulcer index, indicating a pro-ulceration effect whereas it was positive with 12.05% decrease in the F.D.A.C. administered group. The F.D.A.R. group disagreed with any of such effect. The activity shown by F.D.A.C. group was not luring highly but by the time positive possibilities with the dose alterations could also not be denied. At the dose level, any activity by enhancing gastric mucosal secretion, inhibition of peptic activity and anti-secretory effect was observed, only the moderate decrease in the total acidity (54.26%), exhibited weak anti-ulcer activity expected through anti-acid activity of the test drug. At the same time lack of any anti-ulcer effect with the F.D.A.R. even with anti-acid activity (61.2%), suggested for some other mechanism of action to consider like the enhanced defense mechanism as the increased secretion of mucus and polymerization of the muco-polysaccharides, increased blood supply, increased regeneration of gastric epithelial cells, increased bicarbonate secretion, increased prostaglandin and somatostatin providing cyto-protection to gastric mucosa against the effect of aggressive factors.

The test drug failed to enhance the carbohydrate content of the gastric juice and TC : TP ratio significantly, as dealt in Table-2 discarded the assumption of anti-ulcer activity of the Amalaki Rasayana due to increased mucus secretion. The possibilities left for the anti-ulcer activity of the Amalaki Rasayana might be due to increased blood supply to the gastric mucosa, enhancement of gastric epithelial cells turn over or increased secretion of bicarbonate.

The Ayurvedic written works uncover the Amlapitta as a functional disorder occurring in Amashaya related with the upper part of gastro-intestinal tract with mainly vitiating the Agni and its functions related with digestion and metabolism as major causative factor with changing life-style in core. Usually the uncontrolled intake of the etiological factor affecting the Agni and leading to Agnidushti causes the symptoms like Agnimandya, Avipaka, Amavisha and thereafter the Amadosha finally to the problem Amlapitta. The effect obtained by the Amalaki Rasayana m be due to its effect like Deepana, Pachana (a level of Samprapti) and properties like Kash Rasa governed with Sheeta Virya. The antago effect to Pitta or else possessing the Tridoshah effect of Amalaki thought to be attributed to property of Madhura Vipaka or specific Sampra occurred.

The clinical study was apparent w symptomatic relief in patients within 7 days the reoccurrence of symptoms after 20 – 30 da after completion of the treatment may be due less duration (for 28 days) or the less quantity test drug.

A look on pharmacokinetics of her constituents present with Amalaki as the B (1998) explained 1,09453mg/100ml of ascor acid; 2.73% tannins and 0.59% pectin respecti may shower few ideas. Tannins act topically astringe mucosal surfaces and following o ingestion and consequent hydrolysis alter fluidity of the bowel contents (hence their use anti-diarrhoeal remedies). They are also attribu with anti-hemorrhagic, anti-inflammatory a antacid properties. The possibility of tann forming precipitates with alkaloids, proteins or o large molecules simultaneously present in digestive tract should be considered as a poss pharmacokinetic interaction that may red bioavailability of the involved subtrates[4].

Since gallic acid and epigallic ac (constituents of tannins) are hepatotoxic the bioavailability of tannins is important in minimiz potential toxicity of these compounds. Hydrol of tannins occurs mostly in the large bowe neutral to alkaline pH, rather than acid pH, a hydrolysis is largely dependent upon bowel flo Hence, it can not be advisable to use the tan (as it is) extract to get rid of acidity.

It is well and scientifically proved re that ascorbic acid is best known for its antioxid properties and its possible role in the preven of certain chronic degenerative disorders, such coronary heart disease and cancer. In fa ascorbic acid may be the most important w soluble antioxidant in the body. Vitamin C prevent the formation of such nitrosamines in foods and in gastrointestinal tract. High concentrations of ascorbic acid in gastric juice may reduce the risk of gastric cancer by inhibiting, as noted; the formation of carcinogenic N-nitroso compounds (most probably may invite the acidity). Additionally, increased oxidative stress to the gastric mucosa has been reported in Helicobacter pylori associated gastritis, a condition that predisposes to gastric cancer. There is preliminary evidence that vitamin C can inhibit growth of Helicobacter pylori[6].

Some researchers have opined that Vitamin C stimulates prostaglandins E_2 & I_2 reducing acid secretions in the stomach, decreasing volume of gastric juice and pepsin content, increasing secretion of mucous and blood flow in stomach could be playing the major role[7].

CONCLUSION

On the basis of data obtained during the laboratory animal study with the parameters employed, the ordinary Amalaki Rasayana did not find exhibiting any anti-secretory, anti-acid or anti-ulcer activity even after the 21 bhavanas but certainly increasing to more than 40% in the ulcer index indicating a surprising pro-ulcer effect. Juxtaposing this F.D.A.R. performed weak anti-secretory and moderate anti-acid activity at the dose level studied without having any effect on the ulcer index while F.D.A.C. treated group indicated marginal anti-secretory, moderate anti-acid and weak anti-ulcer activity.

Kashaya Rasa tones up the tissues and hastens healing of ulcers. Amalaki being of Kashaya Rasa might be rapidly healing the ulcers and toning up the gastric and duodenal mucosa making them more resistant against the action of acid. This procedure might be responsible for normalization of the acid output and increase of mucin levels in the gastric juice.

Results pertaining to clinical study show that ordinary Amalaki Rasayana is more efficacious than freeze dried Amalaki Rasayana in management of Amlapitta.

Besides giving relief from symptoms the drug had also imparted Rasayana effects. Whether this phenomenon is due to correction of the pathology or due to the claimed Rasayana effects of the drug as described in Ayurvedic texts is not certain, but the effect is there. Probably both the factors may be operating. Amalaki has been considered as one of the foremost Rasayana drugs imparting a long healthy life.

REFERENCES

1. Charaka Samhita : Vidyotini Hindi com. by Pandit Kashinath Shastri & Dr. Gorakha Nath Chaturvedi. 21st edi.. Chaukhambha Bharati Academy, Varanasi
2. Jour. Pharmaceutical biology, 39(5). 2001.
3. Bone K. Herbal Phrmacokinetics – The Behaviour of Large Molecules: in . Proceedings NHAA International Conference, Sydney, 1998
4. Brinker F. Herb Contraindications and Drug Interactions. Second edition, Sandy, OR: Eclectic Institute Inc; 1998.
5. Bors W, Michel C, Schikora S. Interaction of flavonoids with ascorbate and determination of their univalent redox potentials: a pulse radiolysis study. Free Rad Biol Med. 1995. 19:45-52: Bush M.J.. Verlangieri A.J. An acute study on the relative gastro-intestinal absorption of a novel form of calcium ascorbate. Res Commun Chem Pathol Pharmacol. 1987: 57:137-140
6. Bush M.J., Verlangieri A.J. An acute study on the relative gastro-intestinal absorption of a novel form of calcium ascorbate. Res Commun Chem Pathol Pharmacol. 1987; 57:137-140; Carr A, Frei B. Does vitamin C act as a pro-oxidant under physiological conditions? FASEBJ. 1999; 13:1007-1024; Carr AC, Tijerina T, Frei B. Vitamin C protects against and reverses specific hypochlorous acid and chloramine-dependent modifications of low-density lipoprotein. Biochem J. 200; 346 Pt. 2:491-496
7. Essential of medical pharmacological, K. D. Tripathi, Jaypee Publication.

A CLINICAL STUDY ON "EFFECT OF AMALAKI (EMBLICA OFFICINALIS) CHURNA IN PULMONARY TUBERCULOSIS AS AN ADJUVANT THERAPY

Dr. B. Chandra Sekhara R

INTRODUCTION

It is most cherished desire of human race to lead a disease free, long and healthy life, so that the four objects of life such as dharma, artha, karma and mouksha my be attained. Our science of rasayana is outcome of this desire. Acharya Charaka has been stated that the method of rasayana is for our sages, just like nectar to angles in heaven. With the help of rasayana they were able to live for thousands of years, transcending old age, infirmity, disease and even death. He further adds that, he who makes use of rasayana not only attains long life but goes through auspicious way of divine sages and reaches the immutable Brahma which is the ultimate aim of one's life (Ch.chi.1)

The rasayana therapies used in treating various diseases are categorized under the heading of naimittika rasayana. This kind of therapy helps in relieving from different diseases in short time by enhancing the vital power, vigour and immunity of diseased persons. Patients who were on naimittika rasayana will develop specific capacity to fight with the particular disease (e.g. Silajitu in madhu meha, Tuvaraka and Bhallataka in leprosy). However, it may be pointed out that the naimittika rasayana drugs alone are not sufficient in treating various diseases and these are acting as adjuncts to the specific therapy.

Now a days in patients suffering with pulmonary tuberculosis, nutritional status plays an important role in quick and complete recovery. Administration of drugs like anabolic agents, vitamins, proteins along with ATT (anti tubercular treatment) are being in practice, as an adjuvant therapy. However, this kind of supportive therapy is expensive and thus, it becomes essential to search for a safe, effective and noble alternative. Hence, the Amalaki churna that has been described for its rasayana property and being used as a rejuvenating agent since Vedic era was considered in our present study on twenty patients of untreated pulmonary tuberculosis. The attempts were ma to discern its effect on tuberculosis as a naimit rasayana.

MATERIALS & METHODS

A. Level of the study : O.PD/I.P.D.

B. Design of the study : Single blind stu

C. Centre for the study : Dept. Kayachikits I.M.S., B.H. Varanasi

D. Number of groups : Two equal group

E. Schedule of the therapy :

Group I (considered as control group) - Standa course of ATT* (a tubercula treatment)

Group II (considered as treated group) - Standa course of ATT* (a tubercula treatment) pl Amalaki churna gms. T.I.D.

**Standard course of ATT (anti tubercu treatment)– months Regime*

Initial Phase 2 months

1. Ethombutol (25mg/kg/day) or Streptomy (1gm. or 0.75 gm./day)
2. Isoniazid (200-300 mg/day)
3. Rifampicin (450-600 mg/day)
4. Pyrazinamide (20-35 mg/kg/day)

Contimuous phase 4 months

1. Rifampicin (450-600 mg/day)
2. Pyrazinamide (20-35 mg/kg/day)

F. ***Duration of the study :*** The duration of the stu period of six months.

G. ***Selection of the patients :*** Screening has be done for untreated patients suffering fro pulmonary tuberculosis, evident roentge logically. A total of 40 patients with typic radiological changes irrespective of their clinic features were selected and enrolled for the stu

---

*** Research Officer (Ay), Advanced Centre for Ayurveda, A.R.Unit, NIMHANS, Bangalore-29.**

All cases were invariably subjected for hematological (Totol count, Differential count, Hb%, ESR, Blood urea and fasting blood sugar) and biochemical (total serum protein, LFT & serum creatinine) investigations. Attempts were made to find out the presence of acid-fast bacilli (AFB) in sputum.

H. Criteria for assessment

1. **Clinical parameters :**

   A. Signs & symptoms : 1. Cough with expectoration, 2. Dry cough, 3. Fever, 4. Haemoptysis, 5. Pain in the chest, 6. Dyspnoea, 7. Anorexia, 8. Loss of weight, 9. Weakness, 10. Palpitation, 11. Pallor, 12. Pedal edema.

   B. Development of side effects : 1. Hepatitis, 2. Vasculitis, 3. Polyneuropathy, 4. Optic neuritis, 5. Vestibular disturbances, 6. Gout.
2. **Physiological parameter -** Change in body weight.
3. **Laboratory parameters :** 1. Hemoglobin percentage 2. Erythrocyte sedimentation rate 3. Total serum protein 4. Sputum for AFB
4. **Radiological parameters**

   The assessment was done before the drug administration, after 2 months, 4 months and at the end of the 6 months. The interpretations of results are done under following three categories.

I. Good Response

1. Absolute relief from the clinical symptoms.
2. Absence of crepitations on auscultation.
3. ESR within normal limits.
4. Sputum negative for AFB.
5. Completely healed tubercular lesions.

II. Fair Response

1. Relief from major symptoms like cough, hemoptysis, weight loss etc.
2. Presence of mild crepitations on auscultation.
3. Decreased ESR but not attained normal limits.
4. Sputum for AFB - Negative.
5. No absolute rediological improvement.

III. No Response

1. No improvement from clinical parameters.
2. Presence of crepitations on auscultation.
3. Elevated ESR.
4. Sputum for AFB-positive/negative.
5. No radiological improvement.

OBSERVATION & RESULTS

Tuberculosis is the one of infective diseases where the restorative therapy is essential. The tuberculosis, which is comparable with Rajayakshma, is considered as a state of Kshaya, according to Ayurveda and the foremost aim of the therapy is the restoration of dhatus. In view of these the rasayana drug amalaki was tried clinically and the following observations are made :

In present series of tubercular patients it was observed that, majority of patients belong to the age group in between 26-55 years in both control (75%) and treated (85%) groups. This indicates that, the younger and middle age groups are more vulnerable to pulmonary tuberculosis (***table no.1***)

The observation done on distribution of sex reveals that, males are more prone to pulmonary tuberculosis when compared with females. Out of 20 patients 11 (55%) were male and 9(45%) were female in control group. Similarly out of 20 patients included under study in treated group 12(60%) patients were male and 8(40%) patients were female (***table no.2***)

The signs and symptoms found in tubercular patients included in our present study are cough will expectoration, dry cough, fever, haemoptysis, pain in the chest, dyspnoea, anorexia, loss of weight, weakness, palpitation, pallor and pedal edema.

From the observations made on signs and symptoms of pulmonary tuberculosis it was evident that, a significant improvement in both groups of patients after a period of six months therapy was observed. But the improvement was early and there no complication / toxicity was found in treated group. Whereas in control group recovery was delayed, when compared with treated group and it was also observed that the development of drug induced hepatitis (side effect of Rifampicin) in 2 (10%) patients of tuberculosis, in control group

(*table no. 3 & 4*)

Besides the clinical parameters, tubercular patients included under study were shown significant improvement in their body weight after a period of six months therapy. The mean weight gain in control group was 1.35±0.5 and it was 2.4±0.5 in treated group. The improvement was highly significant in treated group when compared with control group (*table no.5*)

From our close observations done on change in hemoglobin percentage, it was evident that there was a marked increase in Hb% in treated group when compared with control group. The mean Hb% increased by 2.2±0.6 in treated group and it was 1.0±0.3 in control group, after a period of six months therapy. The improvement in Hb% is statistically significant in both groups but it was highly significant in treated group when compared with control group (*table no.6*).

Similarly, it was obseved that, the change in ESR after a period of six months therapy was highly significant in both groups. The mean decrease in erythrocyte sedimentation rate in control group was 10±2.4 and it was 16.3±2.2 in treated group (*table no. 7*).

Though the change in the total serum protein levels is statistically significant in both the groups but the increase was highly significant in treated group when compared with the con group. The mean increase in total protein level w 1±0.4 in control group whereas it was 2.1±0.6 treated group, after a period of six months thera was observed (*table no.8*).

The observations made on smear for ac fast bacilli infer that the eradication of AFB w 100% in treated group and it was 90% in con group, suggesting that the Amalaki is enhanc the activity of anti tubercular drugs (*table no.9*

The complete radiological improvement w observed and there was no resistance cases foun treated group. Where as in control group 10%(2 patients were not responded for ATT and develop resistance for anti tubercular drugs (*table no. 10*).

Patients of pulmonary tuberculosis trea with ATT plus Pyridoxine (control group) show good response by 70% (14) of patients. response by 10% (2 patients) and no response 20% (4 patients). 10% of the patients who we withdrawn from the study due to the developm of complications (drug induced hepatitis) were a shown under no response category. Where as patients treated with ATT plus Amalaki chu (treated group) showed good response by 95% of patients, fair response by 05% (1) of patie and none of te patients found to have no respo (*table no. 11*).

OBSERVATION & RESULTS (TABLES)

Table No. 1 : Distribution of Age

Groups	Age group (in years)									
	16-25		26-35		36-45		46-55		56-65	
	No. Pts	%	No. Pts	%	No.Pts	%	No.Pts	%	No.Pts	%
Control (n=20)	02	10	05	25	07	35	03	15	03	15
Treated (n=20)	01	05	04	20	06	30	07	35	02	10

Table No. 2 : Distribution of Sex

Sex	Control group (n=20)		Treated group (n=20)	
	No. Pts	%	No. Pts	%
Male	11	55	12	60
Female	09	45	08	40

Table No. 3 Effects of therapies in Control group

Sl. No.	Clinical parameters	Before treatment		After treatment					
				After 2 months		After 4 months		After 6 months	
		No. Pts	%	No.Pts	%	No.Pts	%	No.Pts	%
	Signs & Symptoms								
1.	Cough with expectoration	13	65	09	45	04	20	02	10
2.	Dry cough	07	35	05	25	02	10	00	00
3.	Fever	14	70	09	45	05	25	02	10
4.	Hemoptysis	06	30	03	15	02	10	02	10
5.	Pain in chest	05	25	03	15	01	05	00	00
6.	Dyspnoea	08	40	06	30	03	15	00	00
7.	Anorexia	16	80	10	50	02	10	02	10
8.	Loss of weight	09	45	08	40	05	25	02	10
9.	Weakness	14	70	09	45	05	25	02	10
10.	Palpitation	03	15	02	10	01	05	00	00
11.	Pallor	06	30	05	25	03	15	02	10
12.	Pedal edema	04	20	03	15	01	05	01	05
	Side-effects								
13.	Hepatitis	00	00	00	00	01	05	01	05

Table No. 4 Effects of therapies in treated group

Sl. No.	Clinical parameters	Before treatment		After treatment					
				After 2 months		After 4 months		After 6 months	
		No. Pts	%	No.Pts	%	No.Pts	%	No.Pts	%
	Signs & Symptoms								
1.	Cough with expectoration	12	60	06	30	02	10	00	00
2.	Dry cough	08	40	03	15	01	05	00	00
3.	Fever	11	55	05	25	00	00	00	00
4.	Hemoptysis	05	25	02	10	00	00	00	00
5.	Pain in chest	07	35	03	15	01	05	01	05
6.	Dyspnoea	11	55	05	25	02	10	01	05
7.	Anorexia	13	65	05	25	02	10	00	00
8.	Loss of weight	07	35	04	20	00	00	00	00
9.	Weakness	10	50	06	30	02	10	00	00
10.	Palpitation	05	25	02	10	00	00	00	00
11.	Pallor	08	40	05	25	02	10	00	00
12.	Pedal edema	05	25	03	15	01	05	00	00
	Side-effects								
13.	Hepatitis	00	00	00	00	00	00	00	00

Table no. 5: Change in body weight (in Kg.)

Body weight (statistical) nomenclature	Control group (n=20)				Treated group (n=20)			
	BT	After 2 months	After 4 months	After 6 months	BT	After 2 months	After 4 months	After month
Mean	57.6	58.1	58.5	59.0	56.7	57.5	58.1	59.1
Mean diff.	--	0.45	0.85	1.35	–	0.8	1.4	2.4
S.D. (±)	--	2.3	2.6	2.4	–	2.8	2.6	2.5
S.E. (±)	--	0.5	0.6	0.5	–	0.6	0.5	0.5
t value	--	0.9	1.4	2.4	–	1.2	2.4	4.1
P value	--	>0.05	>0.05	<0.05	--	>0.05	<0.05	<0.001

Table no. 6: Change in hemoglobin (in mg/dl)

Hemoglobin (statistical) nomenclature	Control group (n=20)				Treated group (n=20)			
	BT	After 2 months	After 4 months	After 6 months	BT	After 2 months	After 4 months	After month
Mean	10.4	10.8	11.1	11.5	10.2	10.7	11.6	12.4
Mean diff.	–	0.4	0.7	1.0	–	0.5	1.4	2.2
S.D. (±)	–	1.7	2.3	1.7	–	1.5	2.6	2.7
S.E. (±)	–	0.3	0.5	0.3	–	0.3	0.5	0.6
t value	–	1.0	1.3	2.6	–	1.4	2.4	3.6
P value	--	>0.05	>0.05	<0.05	--	>0.05	<0.05	<0.00

Table no. 7: Change in Erythrocyte Sedimentation Rate (mm in 1st hour)

Group	Mean ESR		Mean diff.	S.D. (±)	S.E. (±)	t value	P value
	BT	AT					
Control group (n=20)	42.8	32.8	10.0	10.7	2.4	4.1	<0.001
Treated group (n=20)	45.4	29.1	16.3	9.8	2.2	7.3	<0.001

Table no. 8: Change in Total serum protein level (in mg/dl)

Serum protein (statistical) nomenclature	Control group (n=20)				Treated group (n=20)			
	BT	After 2 months	After 4 months	After 6 months	BT	After 2 months	After 4 months	After month
Mean	5.2	5.6	5.8	6.2	5.0	5.8	6.4	7.1
Mean diff.	–	0.4	0.6	1.0	–	0.8	1.4	2.1
S.D. (±)	–	2.4	3.3	2.0	–	2.3	2.3	2.8
S.E. (±)	–	0.5	0.7	0.4	–	0.5	0.5	0.6
t value	–	0.7	0.8	2.1	–	1.5	2.6	3.0
P value	--	>0.05	>0.05	<0.05	--	>0.05	<0.05	<0.0

Table No. 9: Smear for acid-fast bacilli

AFB (sputum)	Before treatment				After 2 months				After 4 months				After 6 months			
	Positive		Negative		Positive		Negative		Positive		Negative		Positive		Negative	
	No.	%	No.	%	No.	%	No.	%	No.	%	No.	%	No.	%	No.	%
Control	05	25	15	75	02	10	18	90	02	10	18	90	2	10	18	90
Treated	06	30	14	70	00	00	20	100	00	00	20	100	00	00	20	100

Table no. 10 : Radiological changes

Radiological changes	Control group				Treated group			
	Before treatment		After treatment		Before treatment		After treatment	
	No. of Pts	%	No. of Pts	%	No. of Pts	%	No. of Pts	%
Present	20	100	02	10	20	100	00	00
Absent	00	00	18	90	00	00	20	100

Table no. 11 : Effect of therapies in both groups

Results changes	Control group		Treated group	
	No. of patients	No. of patients	No. of patients	No. of patients
Good response	14	70	19	95
Fair response	02	10	01	05
No response	04	20	00	00

DISCUSSION

The present condition of human health around the globe is far from satisfactory whilst the developing countries are facing acute problems of physical health owing under nutrition and infection, the affluent people of the west are living in an environment of anxiety and tension. As an answer to solve these problems, Astanga (eight fold) Ayurveda has been mentioned rasayana tantra as seventh clinical discipline. Different classics have defined rasayana tantra in different ways but with the central idea. Acharya Sushruta mentioned the aim of rasayana as four viz 1. Longevity, 2. Maintenance of positive health 3. Improvement of three mental faculties of intelligence, perseverance & memory and 4. Resistance against the diseases. The rasayana therapy in general has a relevance to both the healthy (kamya rasayana) and the ailing (naimittika rasayana), the emphasis on these two aspects are varying. However, in our present society curative medicine still has the priority over the positive health programmes and hence the naimittika rasayana are of greater value.

Pharmacodynamics of Rasayana.

Rasayana drugs have varied pharmacodynamics properties. Probably there is no much relation with their properties of rasa, guna, virya and vipaka.

1. Rasayana may act at the level of Rasa - by improving the nutritional status of rasa and in turn by improving tissue nourishment. Probably rasayana drugs having madhura, guru, snigdha and sheeta guna may act at this level by promoting the nutritional value of poshaka rasa which in turn helps in obtaining the best qualities of dhatus: eg. satavari, kharjura, milk and ghrita.
2. Rasayana may act at the level of Agni- The rasayana drug possessing the ushna, laghu, ruksha guna and katu, tikta, kashaya rasa may be acting at the level of agni (digestion and metabolism) by improving the digestive capacity and by vitalizing the metabolic activities (improving jatharagni and dhatwagnis)

of the body: e.g. amalaki, pippali, hareetaki, vidanga, chitraka etc.

3. Rasayana may act at the level of Srotas – Similarly the drugs with katu, tikta and kashaya rasa, ushna virya, katu vipaka, visada, ruksha and laghu gunas may produce the classical rasayana effect at the level of srotas by improving microcirculation and the rate digestion & metabolism. These drugs cau srotoshodhana (cleansing of channels) a thus allow efficient blood circulation & impro tissue nourishment and there by maintains structural integrity & functional capacity: e guggulu, rasona, kasturi etc.

SCHEMATIC REPRESENTATION OF PHARMACODYNAMICS OF RASAYANA DRUGS

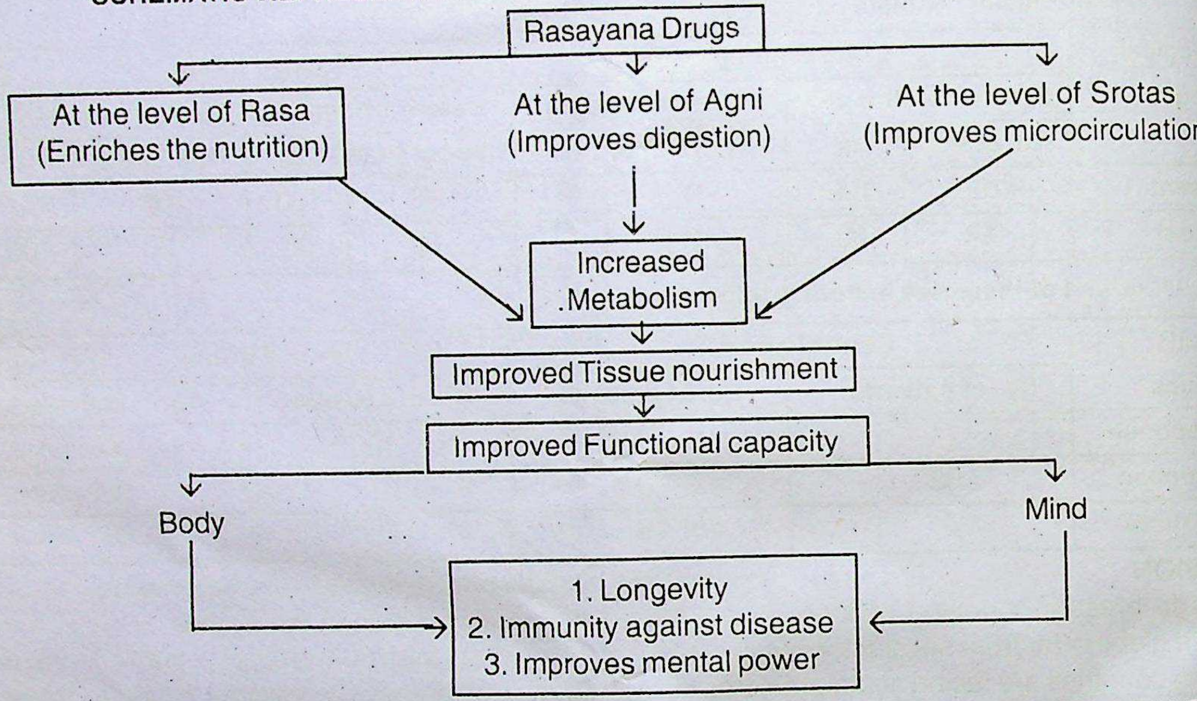
Rasayana Drugs
At the level of Rasa
(Enriches the nutrition)
At the level of Agni
(Improves digestion)
At the level of Srotas
(Improves microcirculation)
Increased
Metabolism
Improved Tissue nourishment
Improved Functional capacity
Body
Mind
1. Longevity
2. Immunity against disease
3. Improves mental power

Pharmacodynamics of Amalaki Churna

Preparation of Amalaki churna (Charak Chi. 1.2/8): Amalaki fruits should be impregnated in the juice of amalaki juice for a period of 21 days and then mixed with honey & ghee (double the quantity of amalaki), pippali (1/8th quantity of amalaki) and fine sugar (¼th quantity of amalaki). The preparation now kept in a vessel uncted with ghee and stored in early rains under a heap of ashes. After the completion of rainy season, this was used along with suitable and wholesome diet.

Properties of Amalaki Churna	
Rasa	Amla, madhura, kashaya, tikta, katu
Guna	Guru, ruksha, sheeta
Virya	Sheeta
Vipaka	Madhura
Karma	Tridosha samaka, aruchi, agnimandya, raktapitta, rasayana etc.

Probable effect (Rasayana) of Amalaki Churn

The amalaki is popular indigenous d mentioned in various Ayurvedic classics fo rasayana effects. The pharmacological studie amalaki fruit have shown, this drug has very h concentrations of vitamin C content.

The observations made on effec amalaki churna on pulmonary tuberculosis in that the patient belonging to treated group w shown ealry recovery when compared to the co group. The effect of the early recovery ma attributed to the action of amalaki churna stabilizing fiber i.e. collagen. Our tissue stre will provide by collagen and when the collage intact the tissues are able to resist the penetra of any invading organism. In the present situa the tubercular patients assumed to be defective collagen due to the disease process amalaki with rich vitamin C might be participating in the healing process (by formation of collagen tissue) leads to the early recovery from various clinical signs and symptoms in treated group when compared with control group.

Similarly, it was observed that, the patients included under the treated group were free from all side effects/toxic effects of ATT. Where as in control group 10% of patients were found with drug induced hepatitis and were withdrawn from the study. This observation infers that the amalaki churna has no side effects rather it was preventing the toxic effects of ATT. This might be because of speeding up the metabolism of anti tubercular durgs. A study led by Jane Henkel Chrietien, M.D., the vitamin C was shown the prevention of various side effects of carticosteroids on immunological system of various patients by speeding up of carticosteroids metabolism. However, the efficacy of amalaki churna is not simply due to the presence of vitamin C, because various amalaki containing compound preparations due to the heating process lose the heat liable vitamin C. But in our previous experiences it was found that, these preparations are also showing marked efficacy as naimittika rasayanas. This suggests that, the amalaki churna has some other potent properties that can illustrate its rasayana effects.

In our present study, two drug resistance cases were also observed in control group for certain antitubercular drugs, whereas no case was suffered with resistance in treated group. From this observation we may consider that the amalaki might be having some role in preventing the development of resistance by means of its action on immune system, because amalaki was a proven drug for its effects on enhancing both cellular and humoral immunity (Dr. M.S.Bhagvel, 1991).

Besides the subjective improvement, the persons treated with amalaki churna were shown a significant improvement in their body weight, gm. Percentage of hemoglobin and total serum protein when compared with control group. Amalaki because of its amla, kashaya rasa and laghu, ruksha guna improves the agni and there by increase the intake of food which in trun leads to favorable influence over the body weight, hemoglobin percentage and serum protein (Rao et.al. 2002).

CONCLUSION

On the basis of our clinical observations and the discussion made, it may be concluded that " the Amalaki is basically an anabolic agent" with non-specific immuno-protection activity. It can be prescribed as a safe, effective and noble alternative for vitamins, proteins in patients suffering with pulmonary tuberculosis.

REFERENCES

- Garde. R.K. (1981) Ayurveda for Health and long life. D.B. Taraporevela sons & co. private Ltd. Bombay - 400 001
- Holcomb JD, et.al, (1965) Health behaviors and behalf's of our allied health professions regarding health promotion and disease prevention. J Allied health 14(4): 373-85.
- Kaviraj Kurijalal Bishagratna (1981) Sushruta samhita, Chowkamba Sanskrit series, Varanasi.
- K.N. Udupa & R.H. Singh (1978) Science and philosophy of Indian medicine, Swati enterprise 20, Great Nag Road, Nagapur-9.
- Mecnnel, I, et.al (1981) The Immune system, a course on the molecular and cellular basis of immunity, 2nd ed. Oxford. Black well.
- P.C. Sharma, M.B.Yelne, T.J. Dennis (2001) Database on Medicinal plants used in Ayurveda, CCRAS, New Delhi.
- Sharma Bhagawan Dash (1985) Charaka Samhita, Chikitsa sthana; Vol.III, Chowkamba Sanskrit series, Varanasi.
- Singh R.H. (1985) Swasthvritta vijnan, Jnanabharati pub., Lucknow.
- Vaidya Bhagawan Dash (1980) Fundamentals of Ayurvedic medicine. Bansal & Co. New Delhi.
- Youmans, G.P. et.al. (1980) The Biological and Clinical basis of infections diseases. 2nd ed., Saunders.

IMPLEMENTATION OF GMP IN ASU INDUSTRIES : PROBLEMS AND PROSPECTIV

Dr. Prasanta Kumar Sarkar, M.D. (Ay.) (III) Scho

ABSTRACT :

Drug has been given prime importance in the system of Ayurveda. The Ayurvedic pharmaceutics has mentioned and emphasized to manufacture quality drug, separate premises for different works, properties of manufacturer have been mentioned and emphasis has been given to the cleanliness. Gradually the moral character of human being has been degraded and motives are denoting mainly for selfish welfare, not for humanity. So the misbranded, adulterated and spurious drugs are spreaded in market. For this, steps have been taken to check the situation and GMP is laid down. Although till date it can't be implemented. In this paper, problems and prospective of implementation of GMP in ASU industries have been discussed and emphasis has been given to implement GMP in ASU industries.

INTRODUCTION :

The system of Ayurveda and the Ayurvedic pharmaceutics, Rasashastra have mentioned and emphasized to manufacture quality drugs from the very existence of this science. Separate premises for different works, properties of manufacturer have been mentioned and emphasis has been given to cleanliness[1]. All these they have mentioned for better treatment and for the welfare of humanity. But gradually the moral character of human being has been degraded and motives are denoting for selfish welfare, not for humanity. As a result misbranded, adulterated and spurious drugs are spreaded in the market. To check this situation GMP has been imputed, although till date it cannot be implemented and the date for implementation is extending, extending and extending.

GMP for ASU drugs are very much needed because the drugs prepared according to the ancient Indian system of medicine has been altered due to participation of our country in the WTO and opting for free trade and also due to maintenance at a minimum performance level so that the provisions of the Drugs and Cosmetics Act, 1940 can be implemented.

Now globalization of ASU system has gained momentum and for global acceptance of ASU drugs, GMP for ASU drugs have to be established by implementing GMP in A industries to promote export of ASU drugs in glo market of indigenous medicine. According to ne of time GMP for ASU drugs is desired and for t authentic raw materials, standard manufactur process, adequate quality control measures a quality manufactured drugs are to be laid dow

NEEDS

1. To improve the therapeutic efficacy and enha the safety of remedies by preventi misbranded, adulterated and spurious drugs
2. To safeguard and strengthen the interests of manufacturers of ethical ASU products, physician and the consumer with qualitati best ASU drugs.
3. To promote export of ASU drugs in global ma of indigenous medicine.

GMP FOR ASU MEDICINES : IN BRIEF[2]:

The requirement of Good Manufactu Practices for Ayurvedic, Siddha and Un medicines has been mentioned in Schedule 'T'. T Amendment Rule has been accepted on 23rd J 2000 and this Rule provides" in case of ASU which have been registered before the dat commencement, these rules shall come into fo after two years from the date of s commencement".

OBJECTIVES

1. Raw materials used in the manufacture of d are authentic, of prescribed quality and are from contamination.
2. The manufacturing process is as has b prescribed to maintain the standards.
3. Adequate quality control measures are ado
4. The manufactured drug which is release sale is of acceptatable quality.

INDUSTRY PREMIESES :

1. Space for receiving and storing raw mate
2. Manufacturing process area.
3. Quality control section.
4. Finished products store.
5. Office.
6. Rejected goods store.

GENERAL REQUIREMENTS

1. **Location and surroundings :** A

contamination from open sewerage, drain, public lavatory etc.

2. **Buildings :** conformity with the provisions of the Factories Act.
3. **Water supply :** Shall be pure, potable in quality and adequate in quantity.
4. **Disposal of waste :** After suitable treatment as per guidelines of pollution control authorities.
5. **Container's cleaning :** Adequate arrangements for washing, cleaning and drying of such containers.
6. **Stores :**
   - (a) *Raw materials :* protect the quality as well prevent the raw materials from damage due to dampness, microbiological contamination or rodent and inect infestation.
   - (b) *Packaging materials :* All containers and closure shall be adequately cleaned and dried before packing.
   - (c) *Finished products :* finished goods store shall provide necessary arrangemental requirements. Only approved finished products shall be despatched.
7. **Working space :** Facilitates easy and safe working and eliminates any risk of mix-up.
8. **Sanitation and Hygiene of workers :** Will be free from contagious diseases, consisting of suitable uniform and kept personal cleanliness.
9. **Medical services :** Adequate facilities for first aid, regular medical examination of workers.
10. **Equipments :** Suitable machines for use in the process of crushing, grinding, powdering, boiling, mashing, burning, roasting, filtering, drying, filling, labeling, packing etc.
11. **Batch manufacturing records :** Essential to maintain the record of date, manpower, machine equipments used along with record of testing of the finished product.
12. **Distribution records :** to facilitate prompt and complete recall of the batch.
13. **Record of market complaints :** Reports of any adverse reaction shall also be maintained in a separate register.
14. **Quality control :** To verify all the raw material, monitor in process, quality checks and control the quality of finished product.

REQUIRED MANUFACTURING SPACE :

Minimum 1200 sq. feet convered area with separate cabines, partitions for each activity. If Unani medicines are manufactured in same premises an additional area of 400 sq.feet will be required.

REQUIREMENT FOR STERILE PRODUCTS:

1. **Manufacturing areas :** Separate enclosed areas shall be provided with air locks for entry, dust free and ventilated with an air supply. Routine microbial counts shall be carried out during operations.
2. **Precautions against contamination and mixing :** Manufacturing operations in a separate block of adequately isolated building or isolated enclosure within the building shall be carried out. Suitable exhaust system and sterile air system shall be designed.

REQUIREMENT FOR QUALITY CONTROL SECTION :

Minimum 150 sq. feet area should be needed. For identification of raw drugs, reference books and reference samples should be maintained. All raw materials, semi finished products and finished products will be monitored for bacterial contamination with a view to minimise such contamination. The standards for identity, purity and strength as given in respective pharmacopoeious shall be complied with.

PROBLEMS FOR IMPLEMENTATION :

There are so many small scale industries in the field of Ayurveda, Siddha and Unani. Money is the main problem to them to implement GMP. Because to arrange all the facilities to implement GHP, a large amount of money is needed. It will also increase the cost of the drugs. In this era of competition, they dont want to increase the cost of drugs, so they want more time to implement GMP.

The main problem to implement GMP in the ASU industries is the lack of determination. So many industries have enough capacity, but they don't want to implement GMP. Because it will decrease their profit and also will check the supply of misbranded, adulterated and spurious drugs. They are the chief enemy of the ASU systems. They don't want to progression of these systems, and welfare of humanity, they only understand the selfish welfare.

Poor identification system of raw materials, lack of standards and in process validation and very quality control system are also made barriers to implement GMP in the ASU industries.

PROSPECTIVE :

The market of ASU drugs are now fully spread with misbranded, adulterated and spurious drugs. The immoral industrialists have supplied these types of drugs in the market. Implementation of GMP will check this type of immorality, and this will safeguard and strengthen the interest of the manufacturers of ethical ASU drugs, the physician and the consumer with qualitatively best ASU drugs.

There is no specific dosage of ASU preparations. As for example a same tablet or pill preparation is manufactured in different dosage in different industries. It is creating problem to the physician and also to the patient for dose specification. Implementation of GMP in ASU industries also can solve this type of problem.

Drug has been given prime importance in Ayurvedic system of medicine. Acharyas have included drug in the four essential criteria to perform treatment[3]. So the improvement in the quality of the drug can improve the quality of treatment. And a better treatment always help in the upgradation of the system. By this way implementation of GMP in ASU industries also can help in the upgradation of the ASU systems of medicine.

DISCUSSION :

Over all view of the situation conveys that out of all guidelines of GMP for ASU medicines, sanitation and production of sterile drugs are still to be implemented in ASU industries not only for the better health of nation but also to promote ASU drugs in global market.

Identification of raw materials possess great stumbling block in manufacturing and also to the authorities of quality control. The ASU industries have paid very little attention towards research in the pharmacognosy i.e. identification of raw materials. Some money must be diverted towards it collectively so that stagnation of the knowledge does not persist any longer.

Standardization of formula also nee overall reshuffle. Some useful recipes contain non-controversial ingredients need to be selecte out of the jungle of recipes. Exact and sim procedures to manufacture these recipes are be evaluated in the form of formulary with disturbing their efficacy.

Quality control and R&D system a almost utter failure and need contribution from modern scientists in these field. The use of mode analytical procedures (chromatograp spectrophotometry) and the use of compu database may prove boon for the ASU industr

Although four years have been pass after accepting the Amendment Rule in regar GMP for ASU medicines yet it cannot implemented and the extended date is over on 3 December 2004. And it is apprehended that date will be extended further. It seems that problem for implementation of GMP is not mo or others, it is only the lack of determination. be hoped that in future determination of th persons will arise, GMP for ASU medicines wi implemented and the ASU systems of medi will recover from its ill health.

CONCLUSION :

By this discussion it may be conclu that lack of determination is the main problem implement GMP in ASU industries. But for survial and upgradation of the ASU syster medicine, GMP must be implemented in the A industries as early as possible.

REFERENCES

1. Vagbhattacharya, Rasa Ratna Samuccha Hindi Commentry by Prof. D.A. Kulka Meharchand Lachhmandas Publications, Delhi, Vol.I, 1998, 140-143.
2. Vijay Malik, Drugs and Cosmetics Act, 19 Eastern Book Company, Lucknow, 2001, 413.
3. Acharya Charka, Chakara Samhita Eng Commentary by R.K. Sharma and Bhag Dash, Chowkhamba Sanskrit Series Of Varanasi, Vol. I, 2001, 183.

Metallic Part Detection in An Ayurvedic Bhasm by Atomic Spectroscopy (Spectrograph)

Dr. Sah Lalit Mohan*, Jha C.B. **

Metallic Bhasmas, the most commonly used Therapeutic agents are uniquely effective preparations in Ras Classics.

अल्पमात्रोपयोगित्वात् अरुचेरप्रसङ्गतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वात् औषधेभ्योऽधिको रसः ॥
(र०सा०सं०)

It is very essential to get standard & genuine Bhasmas so as to obtain best therapeutic results. The tests of Bhasmas described in Ras texts are crude & on their basis it is very difficult to determine the standard of Bhasm preparation.

Further by seeing with naked eye it can't be made sure whether the given Bhasm is of the desired Loha/Metal as in market a same Bhasm may be available in different colors manufactured by same/different companies.

Spectroscopic methods have proved their mettle in Ras Bhasm Analysis.

What is spectroscopy ? It's all about study of various experimentally obtained spectra.

The word spectrum is often used in everyday conversion, e.g.; we may speak of a spectrum of opinions meaning a Range or Spread of opinions.

In Physical chemistry & Physics it applies apecifically to a range or spread of Wavelengths 'or' frequencies.

The optical array in a typical spectroscope is :

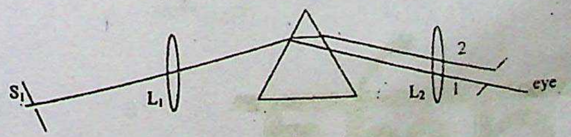

The light source is behind the entrance slit S1. Light from S1 passes via lens L_2 to prism which disperses the light. Figure shows two light rays 1 & 2 of different colors with the exit slit S2 positioned so that only Ray 1 passes through to be detected by eye. To direct other colors through S2, the prism is rotated about an axis perpendicular to the Fig. & through the centre of prism.

If exit slit S2 is replaced by a photographic plate detector, instrument is called a Spectrograph & If detector is an electronic device which records the intensity of radiation falling on it as a function of wavelength (λ), the instrument is a Spectrometer//Spectrophotometer.

Spectra of diatomic molecules are characterized by Bands of very close, regularly spaced lined rather the more widely separated and more randomly spaced lines which are typical of an Atomic spectrum:

Principle :-

Each element is characterized by a few lines (generally <6) which appear in the emission spectrum for extremely small fraction of this element in the source. These spectral lines are called persistent lines of element in question. Tables of are available for most of the metallic elements. In a given emission spectrum if even a single presistent spectral line of the element is identified then the sample contains that element.

Procedure :-

1. The given sample is excited in a copper (Cu) are by placing a very small quantity in the cavity of the lower electrode.
2. The spectrum of the salt is recorded by using a suitable length using a wedge in front of the slit or using a Hartmann diaphragm with one of its 3 holes in front of the slit.
3. The spectrum of Cu electrodes is a different wedge length or the hole in the Hartmann diaphragm adjacent to that used in 2.
4. When the photographic plate is developed the spectra of the salt and Cu appear juxtaposed with each other. This provides a method of visually identifying lines that appear due to the salt. The Cu lines also serve to provide a scale by measuring the positions & identifying their wave lenghts from standard charts. (See Photographic Film Below).

---

* J.R. II, Ras Shastra Deptt., I.M.S., B.H.U., P.G. Diploma in Spectroscopy, Faculty of Sciences, B.H.U.

** Professor & Head, Ras Shastra Deptt., I.M.S., B.H.U.

5. Measurement of positions of lines due to the salt & using a graphical or analytical relation between positions & wavelengths obtained form Cu spectrum leads to determination of their λ's.
6. This method of using a Cu arc is based on the fact that the spectral lines of Cu appear uniformly spread over the entire UV & visible region. The spacing between 2 spectral lines in Cu spectrum is generally large so that if a salt line falls in this gap it can be easily seen. This is unlike the case of (Iron) Fe arc spectrum in which the spectrum is very dense & spacing between 2 adjacent lines is so small that there is the danger of overlapping salt-lines with Fe lines.
7. From the measured wavelengths & uncertainities of measurement one can determine a small wavelength range (λ±dλ) around the measured unknown line of the salt spectrum.

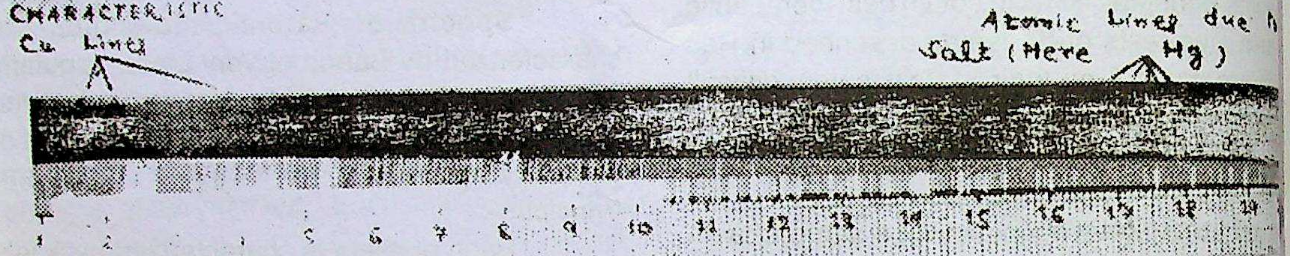

8. One consults a chart of wavelengths (λ's intervals of 1Å corresponding to which proba elements that emit radiation of that λ are sho
9. A table with 2 columns is prepared Colum contains the wavelengths of salt lines & 2 probable elements that may emit radiatio each λ as determined from step 8.

From this table those elements are ta for which the frequency of occurence is large. The elements may then be the probable emitters salt lines from standard charts contain persistent lines of each of the elements short lis in step 8, we find that most probable Emitters least one observed matches with the persis line of the element.

It is to be noted that (Molecular) Infra R spectroscopy because of Lower Frequency Ra is not likely to cause Photo Decompositio Molecules. Hence used for Compound detec in Metallic Bhasmas.

बैद्यनाथ

कुटजावलेह

खूनी बवासीर में उपयोगी दवा

संघलोक सेवा आयोग - 2005 (हल प्रश्न पत्र)

1. प्र०:- 'वातपूर्णदृतिस्पर्श: शोथ:' निम्नलिखित में से किस एक का लक्षण है ?

(a) आमवात (b) सन्धिगत वात
(c) शोथ रोग (d) अस्थिगत वात

2. प्र०:- उदर रोग की निम्नलिखित अवस्थाओं में से किस एक में सिराजाल (शिरा तंत्र) प्रकट होता है ?

(a) अजातोदकावस्था (b) पिच्छावस्था
(c) जातोदकावस्था (d) इनमें से कोई नहीं

3. प्र०:- अष्टाङ्ग हृदयानुसार, ''बृंहयेद्-औषधाहारौरमेदो मूत्रलै:.....'' चिकित्सा-पद्धति का वर्णन निम्नलिखित रोगों में से किस एक के सन्दर्भ में किया गया है ?

(a) कृश प्रमेही (b) स्थूल प्रमेही
(c) आवृत मधुमेही (d) कफज प्रमेही

4. प्र०:- सूची । (हेतु के प्रकार) को सूची ॥ (व्याख्या) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिए गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए :

सूची । (हेतु के प्रकार)	सूची ॥ (व्याख्या)
a. व्यंजक	1. प्रेरक
b. व्याधि	2. रूक्षादि सेवन
c. प्राधानिक	3. व्याधि उत्पन्न करने में असमर्थ
d. व्यभिचारी	4. मृद्-भक्षण
	5. विष

कूट :

	A	B	C	D
(a)	3	1	5	4
(b)	1	4	5	3
(c)	2	4	1	5
(d)	2	1	4	3

5. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से किस एक के साथ चरक की उक्ति 'एकतस्तानि सर्वाणि रक्तमोक्षणमेकत:' का सम्बन्ध है ?

(a) रक्तपित्त (b) विसर्प
(c) कुष्ठ (d) शीतपित्त

6. प्र०:- रोगों के वर्गीकरण से सम्बन्धित निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए :

(a) उन्माद दो प्रकार का होता है - निज एवं आगन्तुज ।
(b) अपस्मार चार का प्रकार का होता है ।
(c) अतत्त्वाभिनिवेश केवल तीन प्रकार का होता है ।
(d) अतत्त्वाभिनिवेश केवल एक प्रकार का होता है ।

उपरोक्त कथनों में से कौन-सा/ से सही/ हैं ?

(a) केवल 1 (b) 2 और 3
(c) 3 और 4 (d) 1, 2 और 4

7. प्र०:- निम्नलिखित ज्वरों में से कौन-सा एक निष्प्रत्यनीक है ?

(a) सन्निपातक ज्वर (b) वात-बलासक ज्वर
(c) सतत ज्वर (d) सन्तत ज्वर

8. प्र०:- निम्नलिखित औषधियों में से कौन-सी एक शुक्र स्तम्भन के लिए प्रयोग की जाती है ?

(a) कपिकच्छू (b) मुशली
(c) जातीफल (d) अश्वगंधा

9. प्र०:- निम्नलिखित औषधियों में से किस एक में लगभग आधी मात्रा में कटुकी होती है ?

(a) पुनर्नवाष्टक क्वाथ (b) महा-रास्नादि क्वाथ
(c) षडंगपानीय (d) आरोग्यवर्धनी

10. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से किस एक में गुरु-अपतर्पण के प्रयोग का प्रावधान है ?

(a) कुष्ठ (b) वातिक मधुमेह
(c) स्थौल्य (d) राजयक्ष्मा

11. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सी एक औषधि ज्वर चिकित्सा में प्रयुक्त सुदर्शन चूर्ण में सबसे अधिक मात्रा में होती है ?

(a) मुस्तक (b) गुडूची

(c) किराततिक्त (d) पिप्पली

12. प्र०:- निम्नलिखित द्रव्यों में से पुनरावर्तक ज्वर की चिकित्सा में किस एक का उल्लेख चरक ने नहीं किया है ?

(a) पर्पटक (b) मुस्तक
(c) तिक्ता (d) पिप्पली

13. प्र०:- निम्नलिखित दोषों में से किस एक की नानात्मज व्याधि 'उदर्द' है ?

(a) वात (b) पित्त
(c) कफ (d) रक्त

14. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से किस एक में स्पर्शासहत्व पाया जाता है ?

(a) पैत्तिक गुल्म (b) पैत्तिक उदर रोग
(c) सन्निपातोदर (d) रक्तज गुल्म

15. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से किस एक रोग का एक लक्षण 'अस्वेदनम' है ?

(a) एक-कुष्ठ (b) विचर्चिका
(c) दद्रु (d) सिध्म

निर्देश : आगामी 7 (सात) प्रश्नांशों में दो वक्तव्य हैं। एक को कथन (A) तथा दूसरे को कारण (R) कहा गया है। इन दोनों वक्तव्यों को सावधानी-पूर्वक परीक्षण कर इन प्रश्नांशों का उत्तर नीचे दिए गए कूट की सहायता से चुनिए:

(a) A और R दोनों सही हैं, और R,A का सही स्पष्टीकरण है।
(b) A और R दोनों सही हैं, और R,A का सही स्पष्टीकरण नहीं है।
(c) A सही है, परन्तु R गलत है।
(d) A गलत है, परन्तु R सही है।

16. प्र०:- कथन (A) : गोघृत सभी घृतों में श्रेष्ठ है।
कारण (R) : गोघृत में 'संस्कारस्यानुवर्तन' गुण है।

17. प्र०:- कथन (A) : मृदु कोष्ठ रोगी में मृदु विरेचन करवाना चाहिए।
कारण (R) : पित्त के गुरु, स्निग्ध, उष्ण और सर गुण होते हैं।

18. प्र०:- कथन (A) : चरक ने तमक श्वास रोगी विरेचन करवाने की सलाह है।
कारण (R) : तमक श्वास पक्वाशयोत्पन्न

19. प्र०:- कथन (A) : चरक ने तमक श्वास रोग चिकित्सा में भारङ्गी-नागर बताया है।
कारण (R) : भारङ्गी औषधि का प्राणवहस्रोतस पर है तथा ना का कर्म प्राणवहस्रोतस के पर है।

20. प्र०:- कथन (A) : ग्रीष्म ऋतु में मधुर रस एवं वीर्य द्रव्यों को ग्रहण करने परामर्श दिया गया है।
कारण (R) : ग्रीष्म ऋतु में पित्त-दोष का एवं प्रकोप होता है।

21. प्र०:- कथन (A) : गन्धक कुष्ठ रोग के लिए है।
कारण (R) : गन्धक मधुर, कटु, उष्ण रखता है।

22. प्र०:- कथन (A) : ज्वर के रोगियों के लिए उष्ण हितकर है।
कारण (R) : ज्वर उदर से उत्पन्न होता है उष्णजल दोषों का पाचन क है।

23. प्र०:- गुण का वर्णन करते समय 'युक्ति' को भी गुण माना गया है युक्ति निम्नलिखित में से कि एक वर्ग में आती है ?

(a) परादि गुण (b) गुर्वादि गुण
(c) विशेष गुण (d) आध्यात्मिक

24. प्र०:- सूची । (लक्षण) को सूची ॥ (दोष धातु) साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के दिए गए कूट का प्रयोग करते हुए सही चुनिए :

सूची । (लक्षण)	सूची ॥ (दोष धातु)
a. अरुचि	1. रसधातु कर्म
b. अविपाक	2. रक्तधातु कर्म

c. प्रीणन 3. क्षीण वायु

d. वर्ण प्रसादन 4. क्षीण पित्त

कूट :

	A	B	C	D
(a)	3	4	1	2
(b)	1	2	3	4
(c)	1	4	3	2
(d)	3	2	1	4

25. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक के बाद प्रत्यक्ष का ज्ञान प्राप्त होता है ?

(a) आत्मा-इन्द्रिय-सन्निकर्म

(b) आत्मा-इन्द्रिय-अर्थ सन्निर्ष

(c) आत्मा-मन-अर्थ-सन्निकर्ष

(d) आत्मा-इन्द्रिय-मन-अर्थ-सन्निकर्ष

26. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक चरकानुसार सांग्राहिक-रक्तपित्त-प्रशमन कर्मों में अग्रय है ?

(a) अनन्ता (b) दुरालभा

(c) अमृता (d) बिल्व

27. प्र०:- चरकानुसार, सन्निपातज अतिसार में किस दोष की चिकित्सा प्रथम करानी चाहिए ?

(a) वात (b) पित्त

(c) कफ (d) त्रिदोष

28. प्र०:- ''आर्त्तवे सा विमुक्ते तु तत्क्षणं लभते सुखम्'' निम्नलिखित में से किस एक का नैदानिक लक्षण है ?

(a) वातज आर्त्तव दुष्टि (b) उदावर्तिनी

(c) योनिकंद (d) विल्लुता

29. प्र०:- 'श्लेष्म-मूत्रा-अश्मरी का रंग' निम्नलिखित में से किस एक के समान होता है ?

(a) मधूक पुष्पवर्ण (b) मधु वर्ण

(c) कदम्ब पुष्पवर्ण (d) भल्लातकास्थि प्रतिम

30. प्र०:- सामान्यतः, गर्भाशय के निम्नलिखित के निम्नलिखित भागों में से किसं एक में 'अपरा' रहती है ?

(a) गर्भाशय के ऊपरी खण्ड में

(b) गर्भाशय के अधो खण्ड में

(c) नलिका में

(d) गर्भाशय के अंत: मुख में पास में

31. प्र०:- योग्या से सम्बन्धित निम्नलिखित पर विचार कीजिए -

(a) अलाबू पर छेद्य-कर्म,

(b) अलाबू पर उत्कर्तन

(c) अलाबू पर परिकर्तन

(d) पनस पर परिकर्तन

उपरोक्त कथनों में से कौन से सही है ?

(a) 1, 2 और 3 (b) 2, 3 और 4

(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2 और 4

32. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक में सीरम-अमाइलेज बढ़ जाता है ?

(a) तीव्र (एक्यूट) कोलेलिथिएसिस

(b) तीव्र (एक्यूट) गेस्ट्राइटिस

(c) तीव्र (एक्यूट) पैनक्रियाटाइटिस

(d) तीव्र (एक्यूट) हेपाटाइटिस

33. प्र०:- सुश्रुतानुसार निम्नलिखित में से किस एक में चन्द्र-मण्डल-वत्-छेदन करने का निर्देश है ?

(a) वर्त्म (b) कक्षा

(c) गुदा (d) हस्त

34. प्र०:- चरकानुसार निम्नलिखित रोगों में से कौन-सा एक अति वृद्धि होने पर नयन और श्रोत्र का विनाश करता है ?

(a) शंखक (b) अर्धावभेदक

(c) अनन्त वात (d) कृमिज शिरोरोग

35. प्र०:- छिन्न-कर्ण सन्धान में, दोनों कर्णपालियाँ छोटी, गोल और समान होने से निम्नलिखित कर्ण-बन्धों में से कौन-सा एक प्रयोग में लाया जाता है ?

(a) गण्डकर्ण (b) आसङ्गिम

(c) नेमिसन्धानक (d) वल्लूरक

36. प्र०:- सूची । (रोग) को सूची ॥ (अधिष्ठान) के साथ सुश्रुतानुसार सुमेलित कीजिए और सूचियों

के नीचे दिए गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (रोग)	सूची ॥ (अधिष्ठान)
a. परिदर	1. तालुगत
b. कपालिका	2. कण्ठगत
c. मांसकच्छप	3. दन्तगत
d. वलयो	4. जिह्वागत

कूट : (a) A B C D
1 2 5 3
(b) A B C D
4 3 1 2
(c) A B C D
1 3 5 2
(d) A B C D
4 2 1 3

37. प्र०:- ''भ्रंशथु' क्या है ?
(a) औषधि (b) नासा-रोग
(c) गुदभ्रंश का पर्याय (d) कर्ण-रोग

38. प्र०:- पिष्टक निम्नलिखित में से किस एक का रोग होता है ?
(a) वर्त्मगत (b) शुक्लगत
(c) तालुगत (d) दन्तगत

39. प्र०:- सूची । (रोग) को सूची ॥ (अधिष्ठान) के साथ सुलेमित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (रोग)	सूची ॥ (अधिष्ठान)
a. पर्वणिका	1. सर्वगत
b. निमेष	2. शुक्ल
c. पिष्टक	3. पटल
d. अधिमन्थ	4. सन्धि
	5. वर्त्म

कूट : (a) A B C D
2 5 3 1
(b) A B C D
4 1 2 5
(c) A B C D
2 1 3 5
(d) A B C D
4 5 2 1

40. प्र०:- सुश्रुतानुसार, निम्नलिखित रोगों में से किस में वर्त्ति धूमपान का निर्देश है ? (पंचांगी
(a) नेत्र रोग (b) गुदा रोग
(c) मुख रोग (d) शिरो रोग

41. प्र०:- सुश्रुतानुसार, रोपण कर्म के लिए आश्च्यो की मात्रा कितनी है ?
(a) सात बिन्दु (b) आठ बिन्दु
(c) दश बिन्दु (d) बारह बिन्दु

42. प्र०:- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -
(a) अन्यतोवात एक नेत्र रोग है ।
(b) चरक ने सूर्यावर्त रोग का वर्णन किया है ।
(c) अष्टाङ्ग हृदय ने शिरोरोग और कपाल का अलग-अगल वर्णन किया है ।
(d) माधव निदान ने ग्यारह प्रकार के शि का वर्णन किया है ।
उपरोक्त कथनों में से कौन से सही है ?
(a) 1, 2 और 3 (b) 2, 3 और 4
(c) 1, 3 और 4 (d) 1, 2 और 4

43. प्र०:- शिशु की निम्नलिखित अवस्थाओं में से कि एक में 'लेहन' उपयोगी नहीं है ?
(a) अल्पमूत्र (b) कर्शित
(c) कल्याणमातृका (d) दीप्तानि

44. प्र०:- निम्नलिखित व्याधियों में से किस एक 'वायुस्ताल्वास्थि नामयेत्' की स्थिति घटित है ?
(a) अस्थिक्षय (b) फक्करोग
(c) पितृग्रह (d) मस्तुलुंगक्षय

45. प्र०:- निम्नलिखित संस्कारों में से किस एक में मन्या स्तम्भ विकृति होती है ?

(a) जातकर्म (b) चूडाकर्म

(c) अन्न प्राशन (d) कर्ण-बेधन

46. प्र०:- निम्नलिखित में से किस प्रकार के ज्वर की पूर्व रूपावस्था में घृत के मुखपान का प्रावधान है ? (सुश्रुत)

(a) वातिक ज्वर (b) पैत्तिक ज्वर

(c) कफज ज्वर (d) सन्निपातज ज्वर

47. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सी एक औषधि अष्टाङ्ग संग्रहानुसार, शुष्कार्श की चिकित्सा के लिए उत्तम है ?

(a) हरिद्रा (b) पिप्पली

(c) भल्लातक (d) हरीतकी

48. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक में 'भस्मकरोग' का वर्णन किया गया है ?

(a) योग रत्नाकर (b) काश्यप संहिता

(c) अष्टाङ्ग हृदय (टीका में) (d) सुश्रुत संहिता

49. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक में मुक्तानुबंधि प्रकृति का ज्वर होता है ?

(a) जीर्ण ज्वर में (b) विषम ज्वर में

(c) श्लीपदजन्य ज्वर में (d) नव ज्वर में

50. प्र०:- सूची । (खनिज औषधि) को सूची ॥ (रसायनिक संघटन / मिश्रण) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (खनिज औषधि)	सूची ॥ (रासायनिक संघटन/मिश्रण)
a. नीलाञ्जन	1. लेड मोनोक्साइड
b. मृद्दारश्रृंग	2. आर्सेनिक ट्राइसल्फाइड
c. हरिताल	3. आर्सेनिक डाइसल्फाइड
d. मनःशिला	4. लेंड सल्फाइड
	5. रेड ऑक्साइड

कूट :

	A	B	C	D
(a)	3	1	4	5
(b)	3	4	1	5
(c)	4	1	3	2
(d)	4	1	2	3

51. प्र०:- सूची । (व्याधि/रोग) को सूची ॥ (योग) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (व्याधि/रोग)	सूची ॥ (योग)
a. अविपत्तिकर चूर्ण	1. हृद्रोग
b. प्रभाकर वटी	2. यकृद्विकार
c. आरोग्यवर्धिनी गुटिका	3. अतिसार
d. कपूर्रासव	4. अम्ल पित्त

कूट :

	A	B	C	D
(a)	1	4	3	2
(b)	4	1	3	2
(c)	4	1	2	3
(d)	1	4	2	3

52. प्र०:- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

1. गन्धक एवम् अभ्रक का प्रयोग पारद की जारण प्रक्रिया में किया जाता है ।
2. केवल गन्धक का प्रयोग पारद की जारण प्रक्रिया में किया जाता है ।
3. केवल अभ्रक का प्रयोग पारद की जारण प्रक्रिया की जाती है ।
4. पारद की 'सुधा' वृद्धि के लिए जारण प्रक्रिया की जाती है ।
5. पारद के दोषों को दूर करने के लिए जारण प्रक्रिया की जाती है ।

उपरोक्त कथनों में से कौन से सही हैं ?

(a) 1 और 4 (b) 2 और 5

(c) 3 और 4 (d) 1 और 5

53. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सी औषधियाँ मित्रपंचक में सम्मिलित की गई हैं ?

(a) टंकण, गुञ्जा, आज्य, गुड, माक्षिक
(b) टंकण, गुञ्जा, सिता, गुग्गुलु, माक्षिक
(c) घृत, माक्षिक, गुग्गुलु, गुञ्जा, टंकण
(d) घृत, माक्षिक, गुग्गुलु, गुञ्जा, गुड

54. प्र०:- सूची । (संस्कृत नाम) को सूची ॥ (अंग्रेजी नाम) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (संस्कृत नाम)	सूची ॥ (अंग्रेजी नाम)
a. गिरिसिन्दुर	1. ब्लू विट्रयोल
b. शोरक	2. जिप्सम
c. तुत्थ	3. पारे का रेड ऑक्साइड
d. गोदन्ती	4. साल्टपीटर

कूट :

	A	B	C	D
(a)	3	1	4	2
(b)	3	4	1	2
(c)	2	4	1	3
(d)	2	1	4	3

55. प्र०:- समीर पन्नग रस के निम्नलिखित में से कौन से द्रव्य हैं ?

(a) पारद, गंधक, मल्ल, हरिताल, मनःशिला
(b) पारद, सैन्धव, वत्सनाभ, मल्ल, मनःशिला
(c) पारद, गंधक, हरीतकी, अजमोदा, हिंगुल
(d) गंधक, नवसार, कशीस, वत्सनाभ, टंकण

56. प्र०:- सूची । (औषधि) को सूची ॥ (शोधन द्रव्य) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (औषधि)	सूची ॥ (शोधन द्रव्य)
a. कुपीलु	1. चूर्णोदक
b. कसीस	2. कांजिक
c. चित्रक	3. भृंगराज द्रव
d. गुञ्जा	4. गौदुग्ध
	5. शुण्ठी जल

कूट :

	A	B	C	D
(a)	4	1	5	2
(b)	2	3	1	4
(c)	4	3	1	2
(d)	2	1	5	4

57. प्र०:- भल्लातक योगों के अन्तः प्रयोग से सम्ब निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

1. इसका उपयोग पित्त प्रकृति रोगी एवं एवं शरद् ऋतु में नहीं करना चाहिए
2. सूर्य किरणों एवं ताप से बचाना चाहि
3. भल्लातक तेल को सीधा मुख से चाहिए ।
4. भल्लातक प्रयोग के समय दूध का नहीं करना चाहिए ।

उपरोक्त कथनों में से कौन सा/ से सही

(a) 1,2,3 और 4 (b) 1 और 2
(c) केवल 3 (d) 2 और 3

58. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक के साथ कुर्वन्ति तद्' सम्बन्धित है ?

(a) उपायः (b) अधिकरणम्
(c) फलम् (d) कर्म

59. प्र०:- निम्नलिखित में से किसने विचित्रप्रत्ययारब्ध अवधारणा प्रथम प्रारम्भ की थी ?

(a) चरक-संहिता (b) सुश्रुत-संहि
(c) अष्टाङ्ग-हृदय (d) भाव-प्रका

60. प्र०:- निम्नलिखित औषधियों में से कौन कण्टकपंचमूल वर्ग में समाविष्ट की गई

(a) मदनफल (b) करीर

(c) शतावरी (d) अपामार्ग

61. प्र०:- **निम्नलिखित में से कौन-सा एक 'बालचातुर्भद्र चूर्ण' का योग है ?**

(a) पिप्पली, शुण्ठी, मुस्तक एवं कर्कटश्रृंगी

(b) अतिविषा, पिप्पली, बिल्व एवं शुण्ठी

(c) मुस्तक, अतिविषा, पिप्पली एवं कर्कटश्रृंगी

(d) पिप्पली, नेत्रबाला, शुण्ठी एवं मुस्तक

62. प्र०:- **निम्नलिखित शरीर अवयवों में से कौन-सा एक विजृंम्भिका व्याधि से सम्बन्धित है ?**

(a) गुदा (b) नाभि

(c) कर्ण (d) चेहरा

63. प्र०:- **निम्नलिखित में से किस एक में यकृत और प्लीहा उत्पन्न होते हैं ?**

(a) मातृज भाव (b) पितृज भाव

(c) आत्मज भाव (d) रसज भाव

64. प्र०:- **निम्नलिखित में से किस एक में योनिपथ (अपत्यपथ) का गुड़ और शुण्ठी कल्क द्वारा लेपन किया जाता है ?**

(a) गर्भ प्रसव के लिए

(b) अपरापातन के लिए

(c) प्रसव पश्चात् अत्यधिक रक्तस्राव स्तंभन के लिए

(d) अपत्यपथ की वेदना में

65. प्र०:- **निम्न प्रकार के स्तनों में से किस एक के कारण शिशु को स्तन्यपान करने पर श्वासावरोध होता है ?**

(a) ऊर्ध्व स्तन (b) लम्ब स्तन

(c) पीन स्तन (d) अतिकृश

66. प्र०:- **निम्नलिखित में से किस एक काल में मक्कलशूल की उत्पत्ति होती है ?**

(a) मासिक स्राव के दौरान

(b) प्रसव के दौरान

(c) सूतिका काल के दौरान

(d) रज:क्षय काल के दौरान

67. प्र०:- **सुश्रुतानुसार गर्भवती स्त्री को किस मास में 'स्वदंष्ट्रासिद्धस्यसर्पिषो मात्रां पाययेद् यवागूँ वा' देना चाहिए ?**

(a) चतुर्थ (b) पंचम

(c) षष्ठ (d) सप्तम

68. प्र०:- **निम्नलिखित में से कौन-सा एक वातभिपन्न गर्भ भी जाना जाता है ?**

(a) नागोदर (b) उपविष्टक

(c) उपशुष्क (d) गर्भ शोष

69. प्र०:- **भोजनोपरान्त तुरन्त व्यवास करने से निम्न में से किस एक योनिव्यापद की उत्पत्ति होती है ?**

(a) अन्तर्मुखी (b) प्रस्रंसिनी

(c) उपप्लुता (d) परिप्लुता

70. प्र०:- **सूची । (अवस्था) को सूची ॥ (प्रसवावस्था) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -**

सूची । (अवस्था)	सूची ॥ (प्रसवावस्था)
a. प्रथम अवस्था	1. प्रजनिष्यमाण
b. द्वितीय अवस्था	2. आसन्न-प्रसवा
c. तृतीय अवस्था	3. प्रजायिनी

कूट :

	A	B	C
(a)	1	2	3
(b)	3	2	1
(c)	2	1	3
(d)	2	3	1

71. प्र०:- **निम्नलिखित परिस्थितियों में से किस एक में तृप्तिश्च बीज-ग्रहणं च योन्यां के लक्षण पाए जाते हैं ?**

(a) अनार्तव (b) गर्भ

(c) योनि अर्श (d) वामिनी योनि

72. प्र०:- **निम्नलिखित में से कौन-सा एक हेगार लक्षण उत्पन्न करता है ?**

(a) योनिपथ की मृदुता

(b) गर्भाशय की मृदुता

(c) गर्भाशय ग्रीवा की मृदुता

(d) योनिपथ का स्फुरण

73. प्र०:- निम्नलिखित व्याधियों में से किस एक के एक से अधिक प्रकार होते हैं ?

(a) गृध्रसी (b) ऊरूस्तम्भ

(c) सन्यास (d) अतत्त्वाभिनिवेश

74. प्र०:- काश्यपमतानुसार वंध्यत्वं के सम्पूर्ण चिकित्सा-अवधि काल में शतपुष्पा की निम्न में से किस एक मात्रा का प्रयोग करना चाहिए ?

(a) दस पल (b) पचास पल

(c) सौ पल (d) बीस पल

75. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक गर्भाशय ग्रीवा में होने वाले कार्सिनोमा का प्राथमिक लक्षण है ?

(a) अधोदर वेदना (b) श्रोणि वेदना

(c) स्पर्श करने पर रक्त स्राव

(d) इनमें से कोई नहीं

76. प्र०:- निम्नलिखित समूहों में से कौन-सा एक कफ के पाँच प्रकार व्यक्त करता है ?

(a) अवलंबक, क्लेदक, बोधक, आलोचक, श्लेषक

(b) क्लेदक, श्लेषक, भ्राजक, अवलंबक, तर्पक

(c) अवलंबक, क्लेदक, बोधक, तर्पक, श्लेषक

(d) तर्पक, अवलंबक, उदान, श्लेषक, क्लेदक

77. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक में अप्रतिघातत्व लक्षण (गुण) व्यक्त किया गया है ?

(a) वायुमहाभूत में (b) आकाशमहाभूत में

(c) जलमहाभूत में (d) अग्निमहाभूत में

78. प्र०:- सूची । (गुण) को सूची ॥ (चतुष्पाद) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (गुण)	सूची ॥ (चतुष्पाद)
a. बहुदृष्टकर्मत्व	1. उपस्थाता
b. योग्यत्व	2. भिषक्
c. दाक्ष्य	3. रोगी
d. स्मृति	4. द्रव्य

कूट :

	A	B	C	D
(a)	3	1	4	2
(b)	2	4	1	3
(c)	3	4	1	2
(d)	2	1	4	3

79. प्र०:- सूची । (धारणीय वेग) को सूची ॥ (उपद्र के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही चुनिए -

सूची । (धारणीय वेग)	सूची ॥ (उपद्रव)
a. मूत्रवेगनिग्रहण	1. भ्रम
b. छर्दिवेगनिग्रहण	2. पक्वाशयशूल
c. क्षुधावेगनिग्रहण	3. बस्तिशूल
d. पुरीषवेगनिग्रहण	4. पाण्डु

कूट :

	A	B	C	D
(a)	3	1	4	2
(b)	2	4	1	3
(c)	3	4	1	2
(d)	2	1	4	3

80. प्र०:- निम्नलिखित वर्गों में से कौन-सा सन्तर्पणोपक्रम है ?

(a) बृंहण, स्नेहन, स्तम्भन

(b) बृंहण, रूक्षण, स्वेदन

(c) लंघन, स्नेहन, स्तम्भन

(d) वमन, स्नेहन, बृंहण

81. प्र०:- निम्नलिखित समूहों में से किस एक समूह कफ से गुण है ?

(a) गुरू, स्निग्ध, मधुर, पिच्छिल
(b) खर, विशद, शीत, सूक्ष्म
(c) कटु, सर, तीक्ष्ण, द्रव
(d) व्यवायी, विकासी, लघु, तिक्त

82. प्र०:- निम्नलिखित कथनों में से कौन-सा एक सही है ? कषायरस के कर्मों में स्तम्भन एक है ।

(a) क्योंकि यह गुण में रूक्ष है ।
(b) क्योंकि यह गुण में शीत है ।
(c) अपने रूक्ष एवं शीत गुणों के कारण ।
(d) क्योंकि यह गुण द्वारा गुरू हैं ।

83. प्र०:- सूची । (स्रोत) को सूची ॥ (मूल) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (स्रोत)	सूची ॥ (मूल)
a. रसवह स्रोतोमूल	1. बस्ति और वंक्षण
b. रक्तवह स्रोतोमूल	2. वृक्क और वसा
c. मूत्रवह स्रोतोमूल	3. हृदय ओर दशधमनियाँ
d. स्वेदवह स्रोतोमूल	4. यकृत और प्लीहा

कूट :

	A	B	C	D
(a)	2	1	4	3
(b)	3	4	1	2
(c)	2	4	1	3
(d)	3	1	4	2

84. प्र०:- निम्नलिखित में से किसके द्वारा 'विकृतिविषम-समवेत' की अवधारणा प्रथम उद्धृत की गई है ?

(a) चरक-संहिता (b) सुश्रुत-संहिता
(c) अष्टाङ्ग-हृदय (d) अष्टाङ्ग-संग्रह

85. प्र०: निम्नलिखित में मे कौन-सा एक ताम्बूल में पाया जाता है ?

(a) गीलोयन (b) कडेनीन
(c) कर्सिन (d) नेरिन

86. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक चरक-मतानुसार, शाकों में श्रेष्ठतम पथ्य है ?

(a) पटोल (b) कारवेल्लक
(c) जीवन्ती (d) वास्तूक

87. प्र०:- दीपनीय-पाचनीय-आनाह-प्रशमन कर्मों में से कौन-सा एक अग्रय हैं ?

(a) चित्रकमूल (b) मुस्तक
(c) अरलु (d) पिप्पलीमूल

88. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक द्रव्य श्वित्र की चिकित्सा में लाभप्रद है ?

(a) काञ्चनार (b) काकोदुम्बरिका
(c) पाटला (d) बिल्व

89. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक फल चरकानुसार, अहिततम है ?

(a) परूषक (b) लकुच
(c) कर्मरंग (d) कपित्थ

90. प्र०:- सूची । (द्रव्यों के संस्कृत नाम) को सूची ॥ (द्रव्यों में लेटिन नाम) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चूनिए -

सूची । (द्रव्यों के संस्कृत नाम)	सूची ॥ (द्रव्यों के लेटिन नाम)
a. शाल	1. टेरोम्पर्मम एसेरिफोलियम
b. जलकुम्भी	2. शारिया रोबस्टा
c. मुचुकुन्द	3. बोस्वेलिया सेरेटा
d. शल्लकी	4. पिस्टिया स्ट्रेशियोटस

कूट :

	A	B	C	D
(a)	2	3	1	4
(b)	1	4	2	3
(c)	2	4	1	3
(d)	1	3	2	4

91. प्र०:- सूची । (औषधि) को सूची ॥ (रोग) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे

दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (औषधि)	सूची ॥ (रोग)
a. पञ्चामृतपर्पटी	1. पार्श्वशूल
b. श्वेतपर्पटी	2. रक्तप्रदर
c. पुष्करमूल	3. मूत्रकृच्छ्र
d. बोलपर्पटी	4. प्रमेह
	5. ग्रहणी

कूट :	A	B	C	D
(a)	1	3	4	2
(b)	5	2	1	3
(c)	5	3	1	2
(d)	1	2	4	3

92. प्र०:- योग बस्ति से सम्बन्धित निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

1. बस्ति की कुल संख्या सोलह है, जिनमें दस अनुवासन बस्ति और छः निरूह बस्ति हैं ।
2. बस्ति की कुल संख्या आठ है, जिनमें पाँच अनुवासन बस्ति तथा तीन निरूह बस्ति हैं ।

उपरोक्त कथनों में से कौन सा/ से सही है ?

(a) केवल 1 (b) केवल 2

(c) दोनों 1 और 2 (d) कोई नहीं

93. प्र०:- सूची । (निदानार्थकर) को सूची ॥ (रोग) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (निदानार्थकर)	सूची ॥ (रोग)
a. ज्वर	1. रक्तपित्त
b. अर्श	2. श्वास
c. कास	3. गुल्म
d. प्रतिश्याय	4. हृद्रोग
	5. कास

कूट :	A	B	C	D
(a)	2	5	4	3
(b)	1	3	2	5
(c)	2	3	4	5
(d)	1	5	2	3

94. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक में मेघनाद अ का प्रयोग होता है ?

(a) लूता दंश (b) मूषक दंश

(c) अलर्क दंश (d) सर्प दंश

95. प्र०:- निम्नलिखित युग्मों में कौन-सा एक सही सुमे है ?

(a) मात्रा बस्ति : निरूह बस्ति का चतु

(b) स्नेह बस्ति : निरुह बस्ति का चतु

(c) अनुवासन बस्तिः निरुह बस्ति का चतु

(d) मात्रा बस्ति : स्नेह बस्ति का आध

96. प्र०:- सूची । (लक्षण) को सूची ॥ (धातु) के सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दि कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चु

सूची । (लक्षण)	सूची ॥ (धातु)
a. शब्दासहत्व	1. रक्त क्षय
b. शीताभिलाषा	2. रस क्षय
c. कामला	3. मेद क्षय
d. प्लीहा वृद्धि	4. रक्तवृद्धि

कूट :	A	B	C	D
(a)	2	1	4	3
(b)	4	3	2	1
(c)	4	3	4	1

(d) A B C D
4 1 2 3

97. प्र०:- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

1. कोष्ठ में मन्द कफ होने से, विरेचन सुखपूर्वक होता है।
2. कोष्ठ में अधिक पित्त होने से विरेचन सुखपूर्वक होता है।
3. कोष्ठ में अधिक कफ होने से वमन सुखपूर्वक होता है।
4. कोष्ठ में मन्द कफ होने से वमन सुखपूर्वक होता है।

उपरोक्त कथनों में से कौन सा/ से सही हैं ?

(a) 1 और 4 (b) 2 और 4
(c) 2 और 3 (d) 1 और 3

98. प्र०:- कुष्ठ रोग से सम्बन्धित सुश्रुत के निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -

1. रक्तमोक्षण वर्ष में तीन बार किया जाना चाहिए।
2. नस्य तीन दिन के अन्तराल पर किया जाना चाहिए।
3. वमन हर पन्द्रह दिन के अन्तराल पर किया जाना चाहिए।
4. विरेचन दो महीने के अन्तराल पर किया जाना चाहिए।

उपरोक्त कथनों में से कौन सा/ से सही हैं ?

(a) 1 और 2 (b) 2 और 3
(c) 3 और 3 (d) 1 और 4

99. प्र०:- सूची । (कर्म) को सूची ॥ (अवस्था) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूंट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (कर्म)	सूची ॥ (अवस्था)
a. बृंहण	1. वात दोष
b. लंघन	2. नव ज्वर
c. वमन	3. स्थौल्य
d. विरेचन	4. हृद्रोग

कूट :
(a) A B C D
3 1 4 2
(b) A B C D
4 2 3 1
(c) A B C D
3 2 4 1
(d) A B C D
4 1 3 2

100. प्र०:- सूची । (रोग) को सूची ॥ (लक्षण) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -

सूची । (रोग)	सूची ॥ (लक्षण)
a. उदुम्बर कुष्ठ	1. रक्तराजी
b. मण्डल कुष्ठ	2. अरुणवर्ण
c. ऋष्यजिह्वा कुष्ठ	3. खर
d. पुण्डरीक कुष्ट	4. स्निग्ध

कूट :
(a) A B C D
3 1 2 4
(b) A B C D
3 4 2 1
(c) A B C D
2 4 3 1
(d) A B C D
2 1 3 4

101. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक को अष्टाङ्ग हृदय ने मूर्ध तैल में सम्मिलित नहीं किया है ?

(a) शिरो-अभ्यंग (b) शिरो-सेक
(c) शिरो-बस्ति (d) शिरो-स्नेह

102. प्र०:- निम्नलिखित दोषों में से किस एक के कारण 'सर्षपिका' होती है ?

(a) वात दोष (b) आम दोष
(c) शूक दोष (d) राजो दोष

103. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से किस एक का निदान

'वृषं धावन्तं निगृह्णातः' है ?

(a) साहसज राजयक्ष्मा (b) क्षयज कास

(c) क्षतज कास (d) क्षत क्षीण

104. प्र०:- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए (अष्टांग संग्रह) -

1. अंजन, नस्य एवं पान के रूप में बिल्वादि गुटिका का प्रयोग किया जाता है ।
2. औषधियों को गोमूत्र के साथ पोषण करके बिल्वादि गुटिका तैयार की जाती है ।
3. संजीवनी वटी एवं बिल्वादि गुटिका सर्पदंश की चिकित्सा में निर्दिष्ट है ।
4. बिल्वादि गुटिका के निर्माण में करंज के काण्ड त्वक् का प्रयोग किया जाता है ।

उपरोक्त कथनों में से कौन से सही हैं ?

(a) 1 और 3 (b) 1 और 2

(c) 2, 3 और 4 (d) 1,2,3 और 4

105. प्र०:- सर्पदंश के रोगी में रक्तनिष्ठीवन एवं रक्तमेह दिखाई पड़ता है । यह रोगी निम्नलिखित में से किस एक दंश का है ?

(a) राजिलं दंश (b) दर्वीकर दंश

(c) मण्डली दंश (d) वैकरंज दंश

106. प्र०:- सुश्रुतानुसार, निम्नलिखित में से किस एक का प्रयोग अस्थि-छेदन के लिए करना चाहिए ?

(a) क्षार-पायित (b) उदक-पायित

(c) तैल-पायित (d) अपायित

107. प्र०:- सुश्रुतानुसार 'शरारिमुखी' की लम्बाई कितनी है ?

(a) चार अंगुल (b) छः अंगुल

(c) आठ अंगुल (d) दशांगुल

108. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से किस एक में क्षार को अहितकर माना गया है ?

(a) कृमि (b) भ्रम

(c) विष (d) न्यच्छ

109. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक से 'वलय' सम्बन्धित है ?

(a) क्षार कर्म (b) रक्त विस्रावण

(c) अग्नि कर्म (d) शस्त्र कर्म

110. प्र०:- निम्नलिखित में से किस एक से कूर्चा सम्बन्धित नहीं है ?

(a) सक्थि मर्म (b) वैकल्यकर

(c) रूजाकर मर्म (d) स्नायु मर्म

111. प्र०:- उपेक्षा करने पर भी निम्नलिखित में से कि प्रकार के भगन्दर में पुरीष एवम् रेतस का नहीं होता ?

(a) शतपोनक (b) उष्ट्रग्रीव

(c) शम्बूकावर्त (d) उन्मार्गी

112. प्र०:- निम्नलिखित कथनों में कौन-सा एक सही

a. तमक श्वास, पक्षाघात एवं तरुण ज्व रोगियों में विरेचन कराना चाहिए ।

b. तमक श्वास, पक्षाघात एवं तरुण ज्व रोगियों में विरेचन का निषेध है ।

c. तमक श्वास, पक्षाघात एवं उदर रो रोगियों में विरेचन कराना चाहिए ।

d. कफ दोष का चिकित्सा सूत्र विरेचन

113. प्र०:- निम्नलिखित रोगों में से कौन सा एस.जी.ओ और एस.जी.पी.टी. दोनों के एक साथ बढ़ द्वारा इंगित होता है ?

(a) यकृत रोग (b) हृद्रोग

(c) दोनों हृद्रोग एवं यकृत रोग

(d) वृक्क रोग

114. प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक वमन व्यापद नहीं है ?

(a) आध्मान (b) विबन्ध

(c) ऊर्ध्वगति (d) सावशेषौषधि

115. प्र०:- निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए

1. क्लैब्य एक रस प्रदोषज रोग है ।
2. क्लैब्य शुक्रदोष से उत्पन्न होता है ।
3. गुल्म रक्त प्रदोषज रोग है ।

उपरोक्त कथनों में से कौन से सही हैं ?

(a) 1, 2 और 3 (b) 1 और 2

(c) 2 और 3 (d) 1 और 3

116. **प्र०:- माधुतैलिक बस्ति से सम्बन्धित निम्नलिखित कथनों पर विचार कीजिए -**

1. इसमें प्रधानत: मधु और तैल होता है ।
2. इसमें प्रधानत: केवल मधु होता है ।
3. इसमें प्रधानत: केवल तैल होता है ।
4. यह बाल, वृद्ध और सुकुमार आदि को दी जा सकती है ।

उपरोक्त कथनों में से कौन-सा से सही हैं ?

(a) केवल 1 (b) केवल 2
(c) केवल 3 (d) 1 केवल 4

117. **प्र०:- निम्नलिखित में से कौन-सा एक जन्मबल प्रवृत्ति रोग नहीं है ?**

(a) पंगु (b) मूक
(c) कुष्ठ (d) वामन

118. **प्र०:- ''पूर्व वयसि मध्ये वा'' निम्नलिखित में से किस एक से सम्बन्धित है ?**

(a) वय: का वर्गीकरण (b) रसायन
(c) वाजीकरण (d) औषध काल

119. **प्र०:- सूची । (औषधि) को सूची ।। (कर्म) के साथ सुमेलित कीजिए और सूचियों के नीचे दिऐ गए कूट का प्रयोग करते हुए सही उत्तर चुनिए -**

सूची । (औषधि)	सूची ।। (कर्म)
a. त्रिवृत	1. स्रंसन
b. आरग्वध	2. रक्तपित्त
c. कटुकी	3. सुखविरेचन
d. अमृता	4. तीक्ष्ण विरेचन
	5. भेदन

कूट :

	A	B	C	D
(a)	5	1	3	2
(b)	3	2	5	4
(c)	3	1	5	2
(d)	5	2	3	4

120. **प्र०:- निम्नलिखित औषधियों में से कौन-सी एक उष्णकटिबन्ध फुप्फुसी इयोसिनोफीलिया (ट्रोपिकल पलमोनरी इयोसिनोफीलिया) में प्रभावी है ?**

(a) वासा (b) कर्कटश्रृंगी
(c) शुद्ध हरिताल (d) कट्फल

UPSC - 2005
Answer - Keys

(1) b (2) a (3) a (4) b (5) b (6) d
(7) d (8) c (9) d (10) c (11) c (12) d
(13) c (14) a (15) a (16) a (17) c (18) c
(19) a (20) c (21) c (22) b (23) a (24) a
(25) d (26) a (27) a (28) b (29) a (30) a
(31) a (32) c (33) d (34) b (35) d (36) b
(37) b (38) b (39) d (40) c (41) d (42) c
(43) c (44) d (45) d (46) a (47) c (48) c
(49) c (50) d (51) c (52) a (53) a (54) b
(55) a (56) c (57) b (58) b (59) c (60) c
(61) c (62) b (63) a (64) b (65) b (66) c
(67) c (68) a (69) a (70) b (71) b (72) b
(73) a (74) c (75) c (76) c (77) b (78) b
(79) a (80) a (81) a (82) c (83) b (84) a
(85) b (86) c (87) d (88) b (89) b (90) c
(91) c (92) b (93) b (94) d (95) c (96) a
(97) d (98) b (99) b (100) c (101) d (102) c
(103) d (104) d (105) c (106) a (107) d (108) b
(109) c (110) c (111) c (112) c (113) c (114) c
(115) b (116) d (117) c (118) b (119) c (120) b

द्वारा

डॉ० गोविन्द पारीक

(जूनियर रेजिडेन्ट)
आयुर्वेद संहिता विभाग (आयुर्वेद संकाय)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

आयुर्वेद के चिकित्सकों के विपक्ष में पास होने जा रहे विधेयक के सम्बन्ध

सेवा में,
मानननीय सांसद जी
लोक सभा क्षेत्र
उन्नाव

द्वारा,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

महोदय,

आपके संज्ञान में लाना है कि 11-05-05 के समाचार पत्रों में वर्तमान केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्री जी का झोलाछाप डॉक्टरों को बन्द करने हेतु चालू अभियान के तहत एक नया विधेयक पारित करने का प्रस्ताव रखा गया था जिसे वर्षाकालीन सत्र में पास कराने की बात कही गयी थी । इसमें उन्होंने एलोपैथिक चिकित्सकों (एम.बी.बी.एस.) के लिए विशेष सुविधा प्रशिक्षण की बात भी कही थी । कहा गया था कि एलोपैथिक चिकित्सकों को उन विशेष चिकित्सा पद्धतियों तथा औषधियों की जानकारी करायी जायेगी जिनका कि उपयोग वे अपनी चिकित्सा में नित्यप्रति करते हैं । (जैसे-पीलिया, चर्मरोग आदि की दवाओं के बारे में) जबकि आज से लगभग 85 वर्ष पहले लोकमान्य तिलक, मालवीय जी एवं नेहरूजी ने आयुर्वेद के विकास को ध्यान में रखते हुए चोपड़ा कमेटी का गठन किया था जिसमें आयुर्वेद के ग्रेजूएटस को आयुर्वेद के साथ-साथ एलोपैथी के शिक्षकों द्वारा एलोपैथिक चिकित्सा विद्या का भी सम्पूर्ण ज्ञान करा कर उसे उभयज्ञ बनाया गया था तथा बाद में उन उभयज्ञ चिकित्सकों को शिक्षकों के रूप में नियुक्त कर आयुर्वेद की शिक्षा को एण्टी ग्रेटड किया गया था । आयुर्वेद के चिकित्सक तब से अब तक लगातार उभय शिक्षा प्रणाली के तहत ही शिक्षा पा हैं तथा ग्रामीण एवं शहरी जनता को आयुर्वेदिक एवं एलोपैथिक दवाओं का उपयोग कर चिकित्सा सुविधा देते आ रहे हैं जैसा कि आई. एम.सी.सी. एक्ट-1970 में स्पष्ट कहा भी गया है कि आयुर्वेद के चिकित्सक एलोपैथिक औषधियों तथा आधुनिक एडवांस तकनीकों का उपयोग अपनी चिकित्सा सेवाओं में कर सकेंगे जो कि सी.सी.आई.एम. के सूचना पत्रकों 30-10-1996 तथा 22-1-2004 में एडवांस की पूर्णरूपेण विस्तृत व्याख्या करते हुए कहा गया है एडवांस का मतलब है आधुनिक चिकित्सा की नवी औषधियों तथा तकनीकों का प्रयोग जैसे कि शल्य चिकि स्त्रीरोग, बालरोग आदि सभी शाखाओं में जुड़े हुय आयाम चाहे वह चिकित्सा से सम्बन्धित हो या रोग से ।

वर्तमान स्वास्थ्य मंत्री जी स्वयं एलोपै चिकित्सक है । उन्होंने मात्र एम.एम.ए. (मार्डन ग्रे एक्ट) को ही ध्यान में रखकर आयुर्वेद के ग्रेजुए पोस्ट ग्रेजुएट्स को झोलाछाप करार दिया है और उन्हें ऐलोपैथिक औषधियों का प्रयोग करने के लिए किया जबकि एण्टीग्रेसन की बात महोदय द्वारा स्वयं जा रही है जो कि एक प्रशंसनीय कदम है । पर अ 50 वर्ष पहले से अपने देश में लागू एण्टीग्रेटेड चि पद्धति रास नहीं आ रही है । इससे स्पष्ट होता है कि दिल के अन्दर आयुर्वेदिक चिकित्सक के प्रति खो अगर आज वे एलोपैथिक चिकित्सकों को आयु चिकित्सा की शिक्षा देकर उसे योग्य बनाना चाह रहे पूर्व से उभयज्ञ चिकित्सकों को एडवांस ऐलोपैथी की देकर उनका स्तर क्यों नहीं सुधारा जा सकता है ।

इस ज्ञापन के तहत हम महोदय को सूचित चाह रहे हैं कि आयुर्वेदिक चिकित्सकों का मुख्य गरीब जनता को ग्रामीण व शहरी स्तर पर उचित चि सुविधायें मिलती रहे । अगर उक्त विधेयक सदन हो जाता है तो देश की जनता का स्वास्थ्य पू असुरक्षित होगा क्योंकि उभयज्ञ चिकित्सक इस चिकित्सा सुविधायें दे रहा है । आपात कालीन स्थि भी ऐलोपैथिक औषधियों का प्रयोग करने से वंचित जोकि उसके विशेषाधिकारी का हनन भी होगा । जब पायी है तो उसका उपयोग क्यों न हो ?

एक विचारणीय प्रश्न यह उठता है कि माननीय स्वास्थ्य मंत्री जी एलोपैथिक चिकित्सक आयुर्वेद की शिक्षा देने का मन बना रहे हैं तो परिभाषा के अनुसार ऐलोपैथिक चिकित्सकों को झोलाछाप बनाने जा रहे हैं । अगर वे आयुर्वेद एलो

शिक्षा प्राप्त आयुर्वेद के ग्रेजुएट को एलोपैथिक चिकित्सा करने पर रोक लगाने की एक ओर बात कर रहे हैं और दूसरी ओर ऐलोपैथ के चिकित्सक को आयुर्वेद पढ़ाने की, अगर 50 वर्ष पहले से चली आ रही शिक्षानीति गलत थी तो उसमें संशोधन किया जाना चाहिए था न कि उसे जड़मूल से नष्ट कर नये रूप में प्रस्तुत किया जाये । इससे साफ जाहिर होता है कि माननीय मंत्री जी आयुर्वेद के ग्रेजुएट्स के साथ सौतेला व्यवहार कर रहे हैं और जिसकी लाठी उसी की भैंस वाली कहावत चरितार्थ करना चाह रहे हैं जो न्याय संगत नही है । आज भी हमारे देश में विभिन्न एलोपैथिक चिकित्सालयों में एम.ओ.सी.एच. की पोस्ट पर कार्य कर रहे चिकित्सक आयुर्वेद के ही ग्रेजुएट हैं जोकि एण्टीग्रेटेड चिकित्सा पद्धति से शिक्षित हैं (बी.ए.एम.एस.) है । ये वैक्सीनेशन, फैमिली प्लानिंग, एपिडिमिक तथा आपात कालीन चिकित्सा का पूर्ण लाभ जनता को दे रहे हैं ।

अत: महोदय से निवेदन है कि इस तर्कसंगत मामले को सदन के पटल पर उचित रूप से रखें जिससे बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय यह विधेयक यथावत बना रहे । वांछित संशोधन किये जा सकते हैं । एलोपैथिक चिकित्सकों को उभयज्ञ बनाया जायें । इससे देश की जनता का कल्याण होगा पर आयुर्वेद के चिकित्सकों को उनके अधिकारों से वंचित कर जनता तथा आयुर्वेदिक चिकित्सकों के अधिकारों का हनन न किया जायें ।

इसी आशा के साथ । सधन्यवाद ।

डा० ओमवीर सिंह

सचिव, एन.आई.एम.ए. (शाखा-उन्नाव)

आयुर्वेद रत्न पंजीयन

सेवा में

श्रीयुत्
सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद प्रा० लि०, पटना (बिहार)

महोदय,

सचित्र आयुर्वेद मासिक पत्रिका के द्वारा आयुर्वेद रत्न पंजीयन कर्त्ताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ । प्रधानमंत्री हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद ने जरिए श्री सुरेन्द्र प्रसाद एडवोकेट चेम्बर न० 66 उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के निम्न बिन्दुओं पर प्रकाश डाला है

1. यह कि आपके पक्षकार का कहना सही है कि 'सम्मेलन' की आयुर्वेद विषयक परीक्षा में पक्षकार का यह कहना कि उसे आश्वासन दिया गया था कि इस परीक्षा को पूरी मान्यता है, नितान्त असत्य एवं मनगढंत है । सम्मेलन की परीक्षाओं को जिस स्तर तक मान्यता प्रदत्त है, उसका स्पष्ट उल्लेख करता है और यह परीक्षार्थियों को भलीभांति मालूम रहता है ।
2. जहाँ तक मान्यता का संदर्भ है वह सीधे राज्य के चिकित्सा बोर्डों पर निर्भर रहता है और यही कारण है कि आपके पक्षकार ने उत्तर प्रदेश का निवासी होते हुए बिहार का पता दर्शाकर वहाँ के चिकित्सा बोर्ड से पंजीयन कराकर चिकित्सा कार्य (न कि चिकित्साभ्यास) करता रहा । पक्षकार के पंजीयन प्रमाण-पत्र से यह बात स्पष्ट हो जायेगी, उत्तर प्रदेश चिकित्सापरिषद् द्वारा पंजीयन 1999 से बंद है । यह जानकर आपके पक्षकार ने बिहार से निबंधन कराया ।
3. यह कि आपके द्वारा उल्लिखित अवमानना याचिका सं० 820/2002 में माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद ने आपके एक आदेश में सी.सी.आई.एम.एक्ट का संदर्भ लेकर सम्मेलन की परीक्षाओं को केवल 1967 तक मान्य किया है और इसी आदेश में सम्मेलन को परीक्षा लेने का भी निर्देश दिया गया है । न्यायालय के निर्देशों के अनुपालन में सम्मेलन ने तत्काल प्रभाव से (2004) आयुर्वेदिक परीक्षा लेना बन्द कर दिया है । यह भी उल्लेखनीय है कि इस याचिका में सम्मेलन पार्टी भी नहीं था और न ही उसके पक्ष को सुना गया । माननीय उच्च न्यायालय ने राज्य के प्रत्येक जनपद में मुख्य चिकित्साधिकारी को इस यांचिका में यह निर्देश दिया है कि ऐसे चिकित्सकों को चिन्हित कर उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही की जाय । इसी के अनुपालन में मुख्य चिकित्साधिकारी द्वारा कार्यवाही की जा रही है

पक्षकार को इस तथ्य को भलीभाँति जानना चाहिए कि माननीय उच्च न्यायालय के आदेश का अनुपालन सभी को करना होता है ।

4. यह है कि आपके पक्षकार के विरूद्ध कार्यवाही मुख्य चिकित्साधिकारी द्वारा की जा रही है । इसमें सक्षम न्यायालय ही कुछ कर सकते हैं ।
5. यह कि माननीय उच्च न्यायालय, इलाहाबाद ने आयुर्वेद आदि की परीक्षाओं की मान्यता 2004 में अवैध करार दिया है जबकि इसी न्यायालय द्वारा इन परीक्षाओं को संचालित रखने के बाबत एक स्थगनादेश सिविल मिसलेनियस रिट पिटीशन संख्या - 32061 सन् 1996, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद बाद बनाम स्टेट आफ यू.पी. वे अन्य में प्रदान किया ।
6. यह कि आपके पक्षकार अथवा किसी को सम्मेलन द्वारा कभी भी गुमराह अथवा धोखाधड़ी करने का कोई मामला नहीं बनता है । सम्मेलन द्वारा परीक्षाऐं 1996 से ली जा रही हैं । इसका मुख्य उद्देश्य अधिकाधिक परीक्षार्थिओं को अपने-अपने विषय में सम्यक ज्ञानार्जन कराना रहा है । यह अलग बात है कि इन परीक्षाओं के आधार पर हर राज्यों के चिकित्सा बोर्डों द्वारा पंजीयन किया जाता रहा है ।
7. यह कि तथ्य यह भी है कि प्रत्येक राज्य के बोर्ड अपने आप में स्वतंत्र हैं । यही कारण है कि सी.सी.आई.एम. एक्ट के पश्चात् भी राजस्थान, बिहार तथा मध्यप्रदेश के चिकित्सा परिषदों द्वारा क्रमश: 93,94 व 96 तक पंजीयन करने हेतु परीक्षा को मान्य किया है और यही कारण है कि आपका पक्षकार बिहार से पंजीयन का अभी तक उत्तर प्रदेश में चिकित्सा कार्य करता रहा
8. यह कि सम्मेलन केवल परीक्षण संख्या है और 1936 से परीक्षाएं संचालित करता रहा है । मा सम्बन्धी प्रकरण शासन अथवा राज्य के पंजीयन बो अधीन है, और इसका उल्लेख विवरण-पत्रिका आ रहता है ।
9. यह कि समस्त बिन्दुओं एवं तथ्यों के उपरान्त आ पक्षकार को किसी प्रकार की हानि तथा क्षति धोखाधड़ी या जालसाजी का कोई भी मामला हि साहित्य सम्मेलन के विरूद्ध नहीं बनता है । आपका पक्षकार इसके पश्चात् भी सम्मेलन के वि कोई कार्यवाही करता हैं तो इसका पूरा दायित्व आ पक्षकार का होगा ।

अत: अन्य प्रान्तों से पंजीयन कराने वाले चिकित्सा उत्तरप्रदेश में चिकित्साभ्यास करता है तो वह कानू दायरे में आता है सम्मेलन द्वारा अपनी वस्तुस्थिति कर दी है, अत: उन चिकित्सकों को विचार कि करना होगा कि उन्हें क्या कार्य करना चाहिए ।

(डा० राकेश मोहन शर्मा)
मण्डलीय सचिव, आगरा मंडल
राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ,
प्रभारी चिकित्साधिकारी/जाँच अधिकारी
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय,
बरई शाहपुर-हाथरस (उ.प्र.)

बैद्यनाथ
अग्निमुख चूर्ण
हाजमा को बढ़ाने वाला उपयोगी दवा

सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व

आयुर्वेद की उपेक्षा नहीं

जुलाई, 1965

मैं चिकित्सा के सम्बन्ध में कोई रूढ़िवादी दृष्टिकोण नहीं लेना चाहता, और चिकित्सा की सभी प्रणालियों का विकास आवश्यक समझता हूँ । यह कदापि उचित नहीं होगा कि उन सभी देशी प्रणालियों को हतोत्साहित किया जाए, जो इस देश में इतने वर्षों से चली आ रही है । जहाँ तक शुद्ध आयुर्वेद का प्रश्न है, उसकी पूर्णत: उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए । यदि वैद्य यह महसूस करते हैं कि अपनी चिकित्सा प्रणाली का पुराने तरीके से ही विकास कर सकते हैं तो उन्हें ऐसा करने की स्वतंत्रता होगी । प्रगति को 5 या 10 वर्ष तक देखा जा सकता है और उसके बाद स्थिति की समीक्षा की जा सकती है । जहाँ तक मैं समझता हूँ, आयुर्वेद और यूनानी प्रणाली के कुछ विशेष पहलू हैं और उन पद्धतियों में कुछ व्याधियों की अच्छी औषधियाँ हैं ।

श्री लाल बहादुर शास्त्री
तत्कालीन प्रधान मंत्री

आयुर्वेद शोध-संस्थान का विस्तार हो

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी का भाषण

केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रिणी, डा० सुशील नायर ने मद्रास के डा० लक्ष्मीपति आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान में आयुर्वेद गवेषणा विभाग का उद्घाटन किया ।

उन्होंने बताया कि डा० लक्ष्मीपति गाँधीजी के सहयोगी थे और कुछ समय सेवाग्राम आश्रम में रहे । वह ऐलोपैथी के कुछ डाक्टरों की तरह पहले आयुर्वेद के विरोधी थे; बाद में गहन अध्ययन के बाद वह इसके प्रबल समर्थक हो गये । दरअसल, आयुर्वेद की वैज्ञानिक उपयोगिता की ओर उन्होंने विश्व का ध्यान खींचा । आधुनिक डाक्टर जब आयुर्वेद का अध्ययन व अनुभव करते हैं तब वे प्राय: इसके प्रबल समर्थक हो जाते हैं । मुझे इस बात की खुशी है कि स्वर्गीय डा० लक्ष्मीपति ने आयुर्वेद पर गवेषणा के लिए जो न्यास बनाई थी उसमें से 2,30,000 रु० की लागत से डा० लक्ष्मीपति के नाम पर गवेषणा विभाग खोला जायगा ।

स्वास्थ्य मंत्री के कहा कि एलोपैथी में भोजन, पथ्य आदि के बारे में निर्धारित नियम नहीं हैं, जबकि आयुर्वेद में इस ओर काफी ध्यान दिया गया है । हारीत संहिता में लिखा है कि पथ्य के बिना रोग-निवारण संभव नहीं । कुशल चिकित्सक पथ्य से ही रोग ठीक कर सकता है, जबकि बिना पथ्य के सैकड़ों दवाइयों से भी वह ठीक नहीं हो सकता । चरक संहिता से बताया गया है कि किस-किस मौसम में कौन-सा भोजन करना चाहिए ।

पौष्टिक आहार

डा० नायर ने बताया कि हमारे देश में लोगों के भोजन में प्रोटीन और विटामिनों की कमी है । इसके कारण बच्चों और गर्भवती औरतों में रक्ताल्पता (अनीमिया) की बीमारी बहुत अधिक होती है । अत: बच्चों और माताओं को पौष्टिक आहार देने के कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं ताकि यह कमी पूरी की जा सके ।

उन्होंने कहा कि शरीर की प्रकृति के आधार पर आधुनिक डा० शेल्डन ने जो वर्गीकरण किया है वह वात-पित्त और कास प्रकृति की तरह का है । आयुर्वेद शास्त्र में अब भी ऐसे अमूल्य तथ्य हैं, जिनका अब तक वैज्ञानिक अध्ययन नहीं हुआ । मुझे प्रसन्नता है कि इस संस्था में आयुर्वेद और आधुनिक चिकित्सा पद्धति के संबंध में अनुसंधान हो रहे हैं और उन्हें हर प्रकार की वैज्ञानिक सुविधा दी जा रही है ।

बैद्यनाथ पंचसकार चूर्ण
पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

आरोग्य समाचार : अखबार की कतरनों से

लौह तत्व से स्नेह का सम्बन्ध

गार्जियन न्यूजपेपर्स में डा० जॉन ब्रीफा ने लिखा है कि गर्भावस्था मानव-सृष्टि की एक अनुपम स्थिति है। इस दौरान माता अपौष्टिक तत्वों का शिकार हो सकती है। इन अपौष्टिक तत्वों में से एक लौह तत्व की कमी हो सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यदि माताओं में लौह-तत्व का अभाव है, तो बच्चों के प्यार के प्रति उनकी संवेदना कम होती है।

करौंदा के स्वरस से वायरस का इलाज

रायटर द्वारा प्रचारित एक समाचार के अनुसार क्रेनबेरी (एक प्रकार का करौंदा) के स्वरस के प्रयोग से निम्नलिखित रोगों में लाभ पहुंच सकता है :-

1. पेशाब तंत्र में जीवाणु के संक्रमण को नष्ट कर सकता है।
2. पेट में मल के जीवाणुओं के वायरस से रक्षा हो सकती है।

वैज्ञानिकों के अनुसार इसका स्वरस (Juice) संक्रमित कोषों से रक्षा कर सकता है।

जीवाणु एवं कैन्सर

जरनल ऑफ ट्रान्सलेशनल मेडिसिन में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार बैक्टिरिया से कैन्सर उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार के कैन्सर का नाम है - ओरल स्क्वेमश सेल कारसिनोमा। शोधकर्मियों के अनुसार मुख में जो बैक्टरिया मौजूद होते हैं, उनसे कैन्सर रोग उत्पन्न हो सकता है।

दांतों की समस्या गर्भावस्था से ही

द हिन्दू में प्रकाशित एक आलेख के अनुसार दांतों को साफ रखना चाहिए एवं संक्रमण से दूर रखना चाहिए। चिकित्सा का क्रम है - गर्भावस्था के 4था एवं 6ठा माह में चिकित्सा कार्य आरम्भ करना।

छोटे मस्तिष्क का कमाल

शोधकर्मियों के अनुसार यदि व्यक्ति साठ की उम्र पार कर जाता है, तो उसमें सीखने की प्रवृत्ति कम हो जाती है। शोधकर्मियों ने 446 व्यक्तियों पर एक प किया। ये व्यक्ति 60 वर्ष के आसपास के थे जो कं एवं क्वेनवेयान के थे।

क्या सिगरेट छोड़ने से व्यक्ति मेदी होता है?

द टाइम्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित एक सम के अनुसार 20 वर्ष की अवस्था से ज्यादा वाले स्थूल पु की संख्या लगभग दुगुनी हो गयी है। आंकड़ों के अ रोग नियंत्रण एवं प्रतिषेध विभाग के अनुसार ।12 लोगों की अप्राकृतिक मौत हो चुकी थी एवं इसमें लगभग 75 बिलियन डालर खर्च हुए थे।

थकावट का आधार रक्त कोष में

न्यू सायन्टिस्ट में प्रकाशित एक समाचार अनुसार क्रोनिक फेटिग सिन्ड्रोम का कारण सफेद कोष में असामान्य स्थिति है। यह खोज ब्रिटिश शोधक ने की। आंकड़ों के अनुसार केवल अमेरिका में इस से पीड़ितों की संख्या 5 लाख है।

गर्भवती महिलाओं में बहुविटामिन का दुष्प्र

द हिन्दू में प्रकाशित एक समाचार के अ गर्भवती महिलाओं को बहु विटामिन (मल्टी विटा देना हानिकर हो सकता है। वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है जो महिलायें विटामिन ए की बड़ी मात्रा एवं अन्य वि पूरक के रूप में लेते हैं, उसका हानिकर प्रभाव होने बच्चों पर पड़ता है। वैज्ञानिकों के अनुसार विटामिन बड़ी मात्रा गर्भाशय पर खराब प्रभाव डालती है।

प्लास्टिक एवं पुरुष शिशु

गार्जियन (द हिन्दू के सौजन्य से) में प्रक एक समाचार के अनुसार श्रृंगार प्रसाधन, खिलौने, प्ला थैले, क्लिंग फिल्म मे जो पथेलेट्स नामक रसायन इस् किये जाते हैं, उसका दुष्प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता आश्चर्य है कि गर्भस्थ महिला शिशु पर दुष्प्रभाव नहीं है। बच्चों को लड़कियों का गुण आ सकता है।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

गुजरात

जामनगर

25th Convocation of Guj.Ayu. Uni., Jamnagar

गुज.आयु.युनि., जामनगर का 25वां पदवीदान समारोह युनि. के चान्सलर महा-महिम श्री नवलकिशोर शर्मा, गवर्नर ऑफ गुजरात की अध्यक्षता में 21 मार्च 2005 को संपन्न हुआ । गुजराज के स्वास्थ्य मंत्री श्री आई.के. जाडेजा एवं राज.आयु. यूनि. जोधपुर के प्रो.आर.एच. सिंह विशेष अतिथि के रुप में पधारे और अपने भाषण में आयुर्वेद की उन्नति के लिये उच्च स्तरीय शिक्षण पर जोर देते हुए अपना व्यक्तव्य प्रस्तुत किया । इस समारोह में गुजराज आयु. युनि. के वाईस चान्सलर डॉ. एस.एस. सावरीकर एवं गुज. आयु. विभाग के डायरेक्टर डॉ. ए.पी. सिंह जामनगर की विधायक प्रो. वसुबेन त्रिवेदी एवं सम्मानित वैद्य गण समारोह में उपस्थित थे ।

Shri V.R. Mehta conferred D.Lit

Shri V.R. Mehta formerly V.C.-Guj. Ayu. Uni (1985-1991) has been honoured by conferring degree of Dr. of Literature by Anand Agri. Uni. Guj. on April-25, 2005 at Anand in recognition of his pioneering work in the field of Agri. Education & Research. Shri Mehta as the first V.C. of the Guj. Agri.Uni. (1972-78) laid a strong foundation of Agri. Education & Research with his commedable skills, asministrative foresight & academic insight. Born on 22/06/'14 at Rajkot in Gujarat Shri Mehta has brilliant career in IAS & served as Collector & Dist. Magistrate. He has secretary to the Govt. of Guj. in Education, Labour & Social Welfare Department. Shri V.R. Mehta headed Guj. Ayu. Uni. Act Amendment Committee constituted by the State Govt. Government.

दो दिवसीय सर्व रोग निःशुल्क निदान शिविर का उद्घाटन

गुजरत प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन के क्षेत्रीय मंत्री (दक्षिण क्षेत्र) डॉ. नीपेश पटेल द्वारा आयोजित और गुजरात प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन द्वारा प्रेरित दो दिवसीय सर्व रोग निःशुल्क आयुर्वेद निदान चिकित्सा शिविर का उद्घाटन दिनांक 18 जून शनिवार सुबह 9.00 बजे श्री उमियाधाम वराछा रोड, सूरत में विधायक माननीय श्री धीरुभाई गजेरा एवं डॉ. नानुभाई हरखाणी (प्रिन्सिपल, सूरत नाझर आयुर्वेदिक कॉलेज) एवं वैद्यराज संत श्री अमृतभाई के करकमलों द्वारा उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ । मुख्य अतिथि के रूप में निम्न विद्वान उपस्थित थे ।

श्री नरोत्तमभाई पटेल - प्रमुख, श्री उमिया परिवार ट्रस्ट
श्री नारणभाई पटेल - उपप्रमुख, श्री उमिया परिवार ट्रस्ट
श्री गोविन्दभाई लुंबानी-उपप्रमुख, श्री उमिया परिवार ट्रस्ट
श्री केशुभाई पटेल - मंत्री, श्री उमिया परिवार ट्रस्ट
श्री नानुभाई वानाणी-प्रमुख, सूरत डायमंड एसोसियेशन
श्री सुरेशभाई पटेल-प्रमुख, श्री सौराष्ट्र पटेल सेवा समाज, सूरत
श्री डॉ. बंकिमभाई ठाकर-प्रमुख, श्री तापी ब्रह्मचर्याश्रम सभा, सूरत
श्री घनश्यामभाई, श्री विनुभाई- मित्र, डीजीटल चैनल, कतारगाम
वैद्य श्री देवेन्द्र शाह-सेक्रेटरी जनरल, गुजरात प्रदेश वैद्य मंडल, अहमदाबाद
श्री डॉ. शुकदेवसिंह वाँसीया - सेनेट मेम्बर, गुजरात आयुर्वेद युनिवर्सिटी, जामनगर
श्री शांतिभाई काकडीया-स्कवोड ऑफिसर टी सीरीज, मुम्बई
जिला आयुर्वेद अधिकारी - जिल्ला पंचायत, सूरत

इस दो दिवसीयं निःशुल्क शिविर में करीब सात हजार से अधिक रोगियों ने लाभ लिया । इस निःशुल्क शिविर में दो दिन तक सुबह से शाम 6.00 बजे तक नार्मांकित सुप्रसिद्ध वैद्यराज अमृतभाई, डॉ०मोहनभाई डोबरीया, वैद्य निपेश पटेल, डॉ० रक्षिता पटेल, डॉ० श्रद्धा डोबरिया, डॉ० मनीषा पटेल, डॉ० देवेन्द्र शाह, डा०वाय.ए.शेख, डॉ०जयंतिभाई कोरडीया, डॉ० चेतन शाह, डॉ०बी.एस. पानसुरिया, डॉ. आर.जे.सिंह, डा. घनश्याम दुधान, डा. नरसिंहभाई डाभी, डा. चंदा आदि ने अपनी सेवाएँ प्रदान की ।

कैन्सर और आयुर्वेद परिसंवाद

गुजरात प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन (गुजरात प्रदेश वैद्य मंडल) द्वारा अहमदाबाद की सुप्रसिद्ध होटल प्रेसिडेन्ट के सभागृह में दिनांक 26 जून रविवार सुबह 8.30 बजे गुजरात प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष तथा

निवृत्त आयुर्वेद नियामक (गुजरात राज्य) आचार्य वैद्य एच. एस. कस्तूरे के करकमलों द्वारा दीप प्रज्वलित करके धनवंतरि पूजन द्वारा समारोह का विधिवत् उद्घाटन किया गया। करीब 200 से अधिक वैद्य मित्रों एवं आयुर्वेद महाविद्यालय के प्राध्यापक गण, विद्यार्थीगण उपस्थित रहे। इस समारोह में आयुर्वेद में कैन्सर की चिकित्सा करने वाले विशेषज्ञ वैद्य एम.एच. बारोट (निवृत प्रिन्सिपल, अखंडानंद आयुर्वेद कॉलेज) ने की नोट (मुख्य भाषण) अेड्रेस समग्र सभा के समक्ष प्रस्तुत किया। वैद्य बारोटजी गुजरात सरकार द्वारा, W.H.O. द्वारा संपन्न स्वीट्ज़रलैन्ड में कैन्सर में आयुर्वेद चिकित्सा पर अपना शोधपत्र प्रस्तुत कर चुके है।

अहमदाबाद की सुप्रसिद्ध सिविल हॉस्पीटल के मध्य में एम.पी.शाह कैन्सर इन्स्टीटयूट के प्रो.डॉ. किरण कोठारी द्वारा वीडियो सीडी के माध्यम से अपना सुंदर व्याख्यान प्रस्तुत किया। इसी कैन्सर इन्स्टीच्यूट के अन्य प्रो. डा. यतीन पटेल ने विडियों सीडी द्वारा लेप्रोस्कोपिक निदान चिकित्सा परिक्षणों पर अपना सुन्दर व्याख्यान प्रस्तुत किया। दोपहर को सुरुचि भोजन के पश्चात् गुजरात आयुर्वेद युनिवर्सिटी के अनुस्नातक कैन्सर स्पेशलिस्ट, सूरत (एसोशियेट वीथ कैन्सर रीसर्च इन्स्टीच्यूट, अहमदाबाद) दोनों ही वक्ताओं ने आयुर्वेद में कैन्सर जैसी व्याधि को स्थान एवं उनका बृहत्रयी एवं लघुत्रयी में विवरण आधुनिक विज्ञान के साथ साम्यता, निदान एवं चिकित्साक्रम को वीडियो सीडी द्वारा भली-भाँति प्रस्तुत किया। सभी श्रोतावैद्यगणों ने इस कार्यक्रम की सराहना की और भविष्य में ऐसे कार्यक्रम बारबार किए जाय, ताकि आनेवाली पीढ़ी को इस ज्ञान से अवगत कराया जाए। गुजरात प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्य श्री कान्तिभाई जानी (राजकोट) ने सभी श्रोतागणों का आभार प्रकट किया और समग्र सभा का संचालन गुजरात प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन के प्रधानमंत्री वैद्य देवेन्द्र शाह द्वारा किया गया।

किडनी - मूत्ररोग - आयुर्वेद परिसंवाद

किडनी-मूत्ररोग-आयुर्वेद सम्मेलन द्वारा आयोजित एवं वासु फार्मास्युटीकल्स प्रा० लि० बडोदरा के सहयोग से किडनी (वृषण) रोग एवं मूत्ररोगों पर आधुनिक तथा आयुर्वेदिक निदान, चिकित्सा पद्धति पर प्रख्यात चिकित्स द्वारा परिसंवाद का आयोजन दिनांक 28 अगस्त 20 रविवार की सुबह 9.00 बजे से शाम को 4.00 बजे होटल सासुजी, अलकापुरी - वडोदरा में आयोजित कि गया है। सभी वैद्य गणों को इस परिसंवाद में आमं किया गया है।

- बडोदरा में संपर्कसूत्र वैद्य सीमाबेन गुप्ता (प्रोक्टोलाजि फोन नं.(0265)-241 3091, मो.न.- 94270 53
- अहमदाबाद में वैद्य देवेन्द्र के. शाह (प्रधानमंत्री) संपर्क करें। मो.नं.-98240 22376
- केन्द्रीय संगठन मंत्री वैद्य हरिनाथ झा (आणंद) मो -98240 89524
- संगठन मंत्री वैद्य विक्रम उपाध्याय, मो.न.-98 78119
- मंत्री वैद्य दिनकर आणेकर, मो.न.-98989 097
- डॉ. निपेश पटेल (सूरत) मो.न.-98257 26210
- डॉ. ईश्वर प्रजापति (हिमनगर) फोन 02772-241187
- डॉ. शशिन त्रिवेदी (भावनगर) मो.न.-98253 31

महाराष्ट्र

NATIONAL SYMPOSIUM ON AYURVEDIC MANAGEMENT OF MUSCULOSKELETAL DISORDERS

03-04 September 2005

Organised by

Kamalbai Hukmichand Chordia Charitable Trust

Venue

SS Hall YMCA
Quarter gate, Pune

Sponsored by

Department of 'AYUSH'
Ministry of Health & Family Welfare
Government of India

"Vishwanand Kendra" an Yog, Ayurve and Nisargopchar Treatment Centre established 'Kamalbai Hukmichand Chordia Charitable Tru and located in the beautiful city of Pune takes privilege of organizing a two day Natio

Symposium of "Ayurvedic Management of Musculoskeletal Disoders" at Pune on 3rd and 4th September 2005.

The epitome of modern lifestyle, changing nature of jobs, dietary habits, stress and lack of qualitative physical and mental relaxation had given rise to MUSCULOSKELETAL DISORDERS (MSD) all over the world.

Albeit health care professionals and researchers especially in industrialized countries have been waging battle against these disorders since long, the recent development in global economy, shift towards industrialization, IT sectors have sparked renewed interest in MSD. The common occuring ailments like Spondylosis, Arthritis, Rheumatoid Arthrits, Osteoarthritis, Gout, Sports injuries, Myopathy, Frozen Shoulder, have become a great challenge to the conventional health science.

Ayurveda has incorporated various metabolic, degenarative, inflammatory and other forms of disorders pertaining to the Bones and Muscles under pathologically imbalanced state of 'VATA' dosha. Since the time irrevocable, Ayurveda with its medications, Panchakarma treatments, and through its Dietary & Health conservation guidelines has been taking care of various disease entities of 'Vata' disorders vis-a-vis MSD. The seminar aims at exploring the concepts of Ayurveda with a new dimension in accordance with the present scientific knowledg and expertise available.

This shall open new avenues of therapeutic approach in a better manner. The seminar with its aim in the forefront shall dwell on sharing experiences by various research resources from multi disciplinary health systems which shall mark the beginning of a long term and concerted action against MSD.

CHAIRMAN

Dr. Vijay V. Doiphode
Dean, HOD Dept. of Ayurved, Uni. of Pune

SECRETARY

Dr. Vilas Nanal

ADVISORY COMMITTEE

Dr. B.K. Bhagwat
Dr. P.S. Patki
Dr. Devendra Shah
Dr. T.L. Swami

JOINT SECRETARY

Dr. S.T. Kakani
Dr. Abhijit N. jinde
Dr. Ajit Kr. H. Mandlecha

COMMITTEE MEMBERS

Dr. Vaibhav Mehta
Dr. Sachin Sarpotdar
Dr. Laxmikant Kortikar
Dr. Gunwant Yeola
Dr. Ashok Uttarwar
Dr. Parag Thuse
Dr. Subodh Jagdale
Dr. Yogesh Kale
Dr. Amit Awalaskar

RESOURSE PERSON

Dr. R.H.Singh
Dr. H.S. Kasture
Dr. V.V. Prasad
Dr. V.V. Upasani

HIGHLIGHTS OF THE SYMPOSIUM

Four Scientific sessions

- Conceptual understanding of Vata Vyadhi
- Spinal and related Neurological Disorders
- Arthritis
- Myopathies, Prevention and rehabilitation in MSD

* Intergrated approach
* Expert lectures on MSD
* Audio Visual presentation of Panchakarma CD

Official Language : English

Topics of Papers

1. Conceptual understanding of Vata Disorders vis-a-vis MSD.
2. Ayurveda Medication & Panchakarma in 'Vata' disorders vis-a-vis MSD.
3. Role of Vyayama, Yoga, Ahara-Vihara in prevention & treatment of 'Vata' disorders vis-a-vis MSD.

PARTICIPATION

Teachers, research workers and post under graduate students of Ayurved are expected to participate with the view to learn the methodology of Ayurvedic Management of Musculoskeletal

Disorders.

Last date of

Submitting the Abstract	30 June 2005
Submitting the complete paper	31 July 2005

Registration

Those interested to attend or participate in the symposium are requested to return the attached form duly filled latest by 15th July 2005 to the Organizing secretary of the symposium.

Registration	Upto 15 Jul 05	Upto 05 Aug 05
Undergraduates	Rs. 400.00	Rs. 450.00
PG scholars/Res. workers/Teachers	Rs. 500.00	Rs. 600.00

Payment in cash or cheque/DD in favour of "Kamalbai Hukmichand Chordia Charitable Trust" payable at Pune

Persons who could be Contacted Joint Secretaries:

Dr. Shyamsundar Kakani - 9422016788,
Dr. Abhijit N Jinde - 9422330820
Dr. Ajit Kumar Mandlecha - 9822287070

Administrator :

Maj (Retd.) B.K. Mohan - 9822353240

Vishwanand Kendra
YOG, AYURVED AND NISARGOPCHAR TREATMENT CENTRE
"Pramod Vihar" Walvekar Nagar, Pune Sata
Road, Pune - 411 009
Ph. : 020-24222900
e-mail Vishwanandk@Yahoo.com
www.vishwanand.org

हिमाचल प्रदेश

एक दिवसीय कैन्सर शिविर आयोजित

10/9/2005 को एक दिवसीय कैन्सर शि आयोजित होगी । इसमें उत्तरी भारत के आयुर्वेद विद्वा ने कैन्सर पर काम किया या जो कैन्सर की चिकित्स रहे है बड़ी संख्या में आयेंगे । यह कॉन्फरेन्स अपने की प्रथम कॉन्फरेन्स है ।

आयोजक
डा॰ गोपाल चड्ढा
चड्ढा ट्रेडर्स, नगरो
वजवा, कांगड़ा

बैद्यनाथ

चन्द्रप्रभा बटी

यह लौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म एवं शिलाजीत युक्त होने क कारण एल्ब्यूमिन आदि सभी प्रकार के विकारों को दू करती है । स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह समान उपयोगी है धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष औ सब प्रकार क प्रमेह की निश्चित दवा है, श्वेत प्रदर में लाभदायक है ।

सम्पादकीय

पहले सुनामी अब कटरीना-पर्यावरणीय असन्तुलन का प्रभाव

सुनामी कहर को अभी मानवता भूल भी नहीं पायी थी कि कटरीना समुद्री तूफान ने पुन: एक बार मानव-जाति को झकझोर दिया है । 28 अगस्त से प्रारम्भ कटरीना समुद्री तूफान ने अमेरिका के न्यू ओरलियन्स, लुसियाना सहित अनेक क्षेत्रों को बुरी तरह से प्रभावित किया । विशेषज्ञों के अनुसार तूफान की गति 230 किलोमीटर प्रतिघंटा से ज्यादा थी । अब तक प्राप्त आंकड़ों के अनुसार अबतक सैकड़ों लोगों की मृत्यु हो चुकी है और लाखों लोग बेघर हो गये हैं । केवल फ्लोरिडा में 15 लाख लोग बेघर हो गये हैं । मियामी का मुख्य मार्ग लोगों का शरण-स्थल बन गया है । राहत सामग्री विलम्ब से प्राप्त होने के कारण अब दंगे भी प्रारम्भ हो गये हैं । सरकार ने दंगाइयों को गोली मारने का आदेश दिया है । बुश प्रशासन ने 10.5 अरब डालर आपात राहत कोष की मंजूरी दी है । 20 से ज्यादा देशों ने सहायता देने की पेशकश की है । अमेरिका के वर्त्तमान राष्ट्रपति के पिता एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति जार्ज बुश सहित भूतपूर्व अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने सरकार के साथ-साथ निजी क्षेत्रों को भी राहत-कार्य में मदद देने के लिए आगे आने का आह्वान किया है ।

वैज्ञानिकों के अनुसार सम्पूर्ण विश्व में तापक्रम तेजी से बढ़ रहा है । कटरीना समुद्री तूफान तो केवल एक उदाहरण है । भविष्य में भी ऐसे तूफान आयेंगे । कैरिबाई एवं अटलांटिक समुद्रों में इसकी संभावना ज्यादा है । विगत वर्षों से पृथ्वी के तापक्रम में जबरदस्त परिवर्त्तन हो रहे हैं । ग्रीन हाउस गैस सूर्य के तापक्रम को सोखता है और इसे समुद्र, जमीन एवं वायुमंडल में फैलाता है । यदि इसे पुन: वापस सूर्य के पास भेज देता तो वातावरण में संतुलन कायम रहता । किन्तु ऐसा हो नहीं रहा है और इसका प्रभाव पृथ्वी के तापक्रम पर हो रहा है । तापक्रम के इस परिवर्त्तन को हमलोग मौसम-परिवर्त्तन के नाम से जानते हैं । इसी परिवर्त्तन का प्रभाव है कि वर्षा-ऋतु में समय पर वर्षा नहीं होती है और सूखा का सामना करना पड़ता है । लंदन स्थित विशेषज्ञों के एक दल ने दावा किया है कि जून से नवम्बर के मध्य इस वर्ष 22 समुद्री तूफान आयेंगे । यह संभवत: 1851 से पहली बार होगा । सम्प्रति प्रतिवर्ष 90 उष्ण तूफान पृथ्वी पर आते हैं । फ्रांसीसी मौसम-विशेषज्ञ, श्री पेट्रिक गेलायस के अनुसार वर्ष 1995 के पश्चात् अटलांटिक तूफानों की संख्या में प्रतिवर्ष वृद्धि हो रही है । वैज्ञानिकों के अनुसार उष्ण तापक्रम के चलते समुद्री तूफान आयें चाहे नहीं, लेकिन यह मौसम को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है । सामान्यतया समुद्री तूफान तभी आते हैं जब समुद्री जल का तापक्रम 27.7^{0}C से ज्यादा हो जाता है । समुद्री सतह एवं वायुमंडल में तापक्रम में एकरूपता नहीं रहने कारण तूफानों की भयानकता बढ़ जाती है । यदि समुद्री तापक्रम बढ़ेगा, तो तूफान का खतरा भी उसी गति से बढ़ेगा । मेसाच्यूट्स तकनीकी संस्थान के श्री केरी एमानुयेल ने एक अध्ययन किया है । अध्ययन के अनुसार उत्तरी अटलांटिक में 30 वर्षों में तूफानों की भयंकरता काफी बढ़ी है । प्रति वर्ष समुद्री तापक्रम 0.5^{0}C की गति से बढ़ रहा है । वैज्ञानिकों के अनुसार 1988 से समुद्री जलवाष्प में लगभग दो प्रतिशत की वृद्धि हुयी है ।

प्रश्न उठता है कि आयुर्वेद का कटरीना समुद्री तूफान से क्या सम्बन्ध है ? सम्बन्ध है । सम्बन्ध का कारण पर्यावरणीय असंतुलन है । **सचित्र आयुर्वेद** निरन्तर इस बात पर जोर दे रहा है कि बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण वातावरण में जो परिवर्त्तन हो रहे हैं, उसका महत्वपूर्ण कारण वनों में ह्रास होना है । बड़े पैमाने पर जंगल काटे गये हैं और अभी भी काटे जा रहे हैं । वैज्ञानिक निरन्तर इस ओर सरकार एवं जनता का ध्यान

आकृष्ट कर रहे हैं । खेद है कि राजनेता भाषण तो देते हैं किन्तु कोई कारगर कदम नहीं उठाते हैं । वनों के विनाश-प्रत्यक्ष सम्बन्ध आयुर्वेद से है । आयुर्वेदिक औषधियों में जिन द्रव्यों का प्रयोग होता है, उनमें से अधिकांश जंगलों में ही पाये जाते हैं । यदि जंगल ही नहीं रहेंगे तो औषधि-निर्माण के लिए द्रव्य कहां से मिलेंगे । आयुर्वेद-जगत् एवं सरकार को इस गंभीर समस्या पर सोचना चाहिए और जंगलों के विनाश को रोकने के लिए कोई कारगर कदम उठाना चाहिए । जंगलों के विनाश का प्रत्यक्ष प्रभाव औषधि-निर्माण पर तो पड़ता ही है, साथ ही मौसम-परिवर्त्तन पर भी पड़ता है । ओजोन छिद्र का प्रत्यक्ष प्रभाव विश्व के सभी प्राणियों पर पड़ रहा है । नित नये रोग पैदा हो रहे हैं। नये रोगों की उत्पत्ति को हम तभी रोक सकते हैं जब पर्यावरण संतुलन हो ।

हम सम्पूर्ण विश्व की सरकारों एवं जनता से आग्रह करना चाहते हैं कि धरती पर बढ़ते हुये तापक्रम को रोकने के लिए कारगर कदम उठावें, अन्यता कटरीना जैसे अनेक समुद्री तूफान आते ही रहेंगे और हम कुछ नहीं कर पायेंगे ।

नकली एवं स्तरहीन दवाओं का व्यापार

इन दिनों न केवल एलोपैथी बल्कि आयुर्वेदिक एवं होम्योपैथी औषधियों में भी नकली एवं स्तरहीन दवाओं की भरमार हो गयी है । बिहार राज्य इसमें आगे है । पिछले दिनों पटना पुलिस ने औषधि नियंत्रक विभाग के सहयोग से दो करोड़ रुपयों के मूल्य के बराबर नकली औषधियों को पकड़ा है । संचालक के साथ-साथ कुछ कर्मचारी भी गिरफ्तार किये गये हैं । यद्यपि पुलिस का कार्य पुलसिया सनक की ओर इंगित करता है, क्योंकि नकली दवाओं के निर्माण में संचालक का तो दोष हो सकता है, किन्तु हमारी दृष्टि में गरीब कर्मियों का दोष नहीं हो सकता है । बेरोजगारी के इस युग में वह संचालक के आदेशानुसार कार्य करने को विवश है यदि आदेश का पालन नहीं करेगा तो नौकरी छूटेगी। ऐसे भी आम कर्मचारी कम पढ़े-लिखे होते हैं । उनमें औषधि-निर्माण के तकनीकी पहलू को समझने की योग्यता कम है । इसलिए कामगारों का दोष नहीं हो सकता है । इसके बावजूद कानून की दृष्टि से कर्मचारी भी अपराधी हो सकते हैं । प्रश्न यह नहीं है कि अपराधी कौन है ? प्रश्न यह है कि नकली एवं स्तरहीन दवाओं का निर्माण तेजी से हो रहा है । कुछ दवाओं के लेबुल तो प्रसिद्ध कम्पनी के होते हैं, किन्तु दवा नकली होती है । आम जनता नकली एवं असली के भेद को कम समझ पाती है । वह तो केवल प्रसिद्ध कम्पनी के लेबुल को देखकर दवा खरीदती है । ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने की मनोवृत्ति ने प्रसिद्ध कम्पनी को भी अपने जाल में जकड़ लिया है । इन कम्पनियों द्वारा निर्मित औषधियों में शास्त्रोक्त एवं अधिकृत ग्रन्थों में वर्णित द्रव्यों को नहीं डाला जाता है । परिणाम औषधियों की गुणवत्ता पर पड़ता है । यह खतरनाक प्रवृत्ति है । इससे आयुर्वेद को नुकसान हो सकता है । यदि औषधि आतुरों को लाभ नहीं पहुंचायेगी, तो लोगों का विश्वास आयुर्वेद से उठ जायेगा । औषधि-निर्माण का व्यवसाय और व्यवसायों से पृथक् है । इस व्यवसाय में मानवता के प्रति कर्त्तव्य एवं नैतिकता छिपे हैं जबकि अन्य व्यवसाय केवल लाभ कमाने के लिए किये जाते हैं । इस व्यवसाय में रोगियों के दुख-दर्द को दूर करने की शक्ति है, जबकि अन्य नहीं ।

अतः इस व्यवसाय में लगे तमाम लोगों से अनुरोध है कि केवल पैसा कमाने के लिए नीति से समझौता नहीं करें । यदि व्यवसाय के द्वारा केवल लाभ कमाना चाहते हैं, तो औषधि-निर्माण के अतिरिक्त अन्य व्यवसाय हैं जिनके माध्यम से वे लाभ कमा सकते हैं । आयुर्वेज्ञों एवं प्रशासन को भी इस दिशा में सतर्क रहने की आवश्यकता है ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-70

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

जनक वैदेह

चरक संहिता[1] में जनक वैदेह का जिक्र है। गर्भाशय में गर्भ का सबसे पहले किस अंग का उदय होता है, अग्निवेश के इस प्रश्न के उत्तर में जनक वैदेह ने कहा कि इन्द्रियां सबसे पहले उत्पन्न होती हैं, क्योंकि वे ही बुद्धि या ज्ञान का अधिष्ठान हैं। पौराणिक कोश[2] में जनक और वैदेह के अलग-अलग अर्थ दिये गये हैं। जनक के निम्नलिखित आशय बताये गये हैं (1) मिथिला के राजवंशियों की एक उपाधि। सीताजी इसी कुल में उत्पन्न राजा सीरध्वज की पुत्री थीं। इस कुल के पुरुषों के सम्बन्ध में ब्राह्मणों, उपनिषदों, महाभारत था पुराणों में कथाएं भरी पड़ी हैं। कपिला नाम की ब्राह्मणी के पुत्र महामुनि पंचशिख ने इन्हें मोक्षधर्म की दीक्षा दी थी जिससे शोकरहित हो जनक सुख से रहने लगे थे। एक बार मिथिला नगरी को आग से जलती देख यह स्वयं बोले थे - "इस नगर को जलने से मेरा कुछ भी नहीं जलता।" यह मोक्षतत्व ज्ञान गये थे - नारद० पूर्व० भाग द्वितीयपाद, श्लोक 77 तक तथा महाभा० शांति उपाध्याय 218, 219 के श्लोक 43 तक। (2) ब्रह्मज्ञान प्राप्त किये हुए 12 ऋषियों में से एक जो निमि के पुत्र को मथने से उत्पन्न हुए थे, अतः 'मिथिल' नाम पड़ा। मिथिलानगर के यह संस्थापक थे। यह उदावसु (पुत्र) तथा सीता (पुत्री) के पिता थे (भाग० 5.3.20; 9.13.13-14; 10.71.9; वायु० 89.2; विष्णु० 4.5.22.4; 13.103)। यह श्री रामचन्द्र के श्वसुर थे (ब्रह्मां 2.34.33-68; 3.27.22; 64.2)। इनके यज्ञ में याज्ञवल्क्य ने शाकल्य को परास्त किया था (वायु० 60.32.62; 89.; विष्णु० 3.18.85-90) (3) विदेशों के राजा तथा बलराम के मित्र (भाग० 10.57.24-26)। विशाखयूष का एक पुत्र तथा नंदिवर्धन का पिता (विष्णु० 4.24.5.6)। वैदेह का आशय है - राजा निमि के पुत्र का एक नाम। धर्म का कहीं लोप न हो जाय इससे ऋषियों ने निमिदेह को अरणि से मथकर उत्पन्न किया था, क्योंकि राजा निमि को कोई संतान न थी (भाग० 9.6.4; 13.1-13; 10.86.36; ब्रह्मां 3.63.9; विष्णु 4.2.12 आदि)।

हिन्दी साहित्य कोश[3] के अनुसार जनक का आशय है-सीता के पिता। जनक अपने अध्यात्म तथा तत्व ज्ञान के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। जनक के पूर्वज निमि कहे जाते हैं। निमि ने एक वृहत् यज्ञ का आयोजन करके वशिष्ठ को पौरोहित्य के लिए आमंत्रित किया, किन्तु वसिष्ठ उस समय इन्द्र के यज्ञ में सम्मिलित थे। अतः वे असमर्थ रहे। निमि ने गौतम आदि ऋषियोंकी सहायता से यज्ञ आरम्भ करा दिया। वशिष्ठ ने उन्हें शाप दे दिया, किन्तु प्रत्युत्तर में निमि ने भी शाप दिया। परिणामतः दोनों ही भस्य हो गये। ऋषियों ने एक विशेष उपचार से यज्ञ समाप्ति तक निमि का शरीर सुरक्षित रखा। निमि के कोई संतान नहीं थी, अतएव ऋषियों ने अरणि से उनका शरीर मन्थन किया, जिससे इनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। मृतदेह से उत्पन्न होने के कारण यही पुत्र जनक कहलाया। शरीर मन्थन से उत्पन्न होने के कारण जनक को मिथि भी कहा जाता है। इसी के आधार पर इन्होंने मिथिलापुरी बसायी। प्रस्तुत ग्रन्थ में वैदेह में अलग से कोई जिक्र नहीं मिलता है।

संस्कृत कोश[4] में इनका आशय है- पिता, पूर्वज, विदेह अथवा मिथिला के प्रसिद्ध राजा, सीता के पिता, प्रख्यात् विद्वान, राम द्वारा सीता का परित्याग करने के पश्चात् जनक अपना समय दार्शनिक बहसों में व्यतीत करते थे। याज्ञवल्क्य उनके पुरोहित थे। वैदेह के विषय में लिखा है - विदेह का राजा, जाति सेएक व्यवसायी, ब्राह्मण पत्नी से वैश्य का पुत्र आदि।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जनक वैदेह का ज्यादा जिक्र नहीं है। चरक संहिता में इसका जिक्र अवश्य है। यदि जनक और वैदेह को पृथक्-पृथक् माना जाय, तो दो पृथक् विद्वानों का बोध होता है जबकि चरक संहिता से ज्ञात होता है कि एक ही विद्वान के ये नाम थे। जनक वंशावली का

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

नाम हो सकता है और इस वंश में उत्पन्न विदेह के राजा वैदेह हो सकते हैं जिन्हें जनक वैदेह के नाम से पुकारा गया । रामचरित मानस एवं अन्य धार्मिक ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जनक मिथिला के राजा एवं सीता के पिता थे, किन्तु वे जनक जनक वैदेह थे या नहीं - इस पर प्रश्न उपस्थित होता है ।

विश्व हिन्दी कोश[5] में जनक, विदेह और जनक, सीरध्वज नाम से पृथक्-पृथक् अर्थ दिये गये हैं । जनक, विदेह का आशय है - विदेह के राजा । पुराणों के अनुसार इक्ष्वाकुपुत्र निमि ने विदेह के सूर्यवंशी राज्य की स्थापना की, जिसकी राजधानी मिथिला हुयी । मूल जनक के बाद मिथिला के उस राजवंश का ही नाम जनक हो गया जो उसकी प्रसिद्धि और शक्ति का द्योतक है । जनक नामक एक अथवा अनेक राजाओं के उल्लेख ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत और पुराणों में हुए है । इतना निश्चित प्रतीत होता है कि जनक नाम के कम से कम दो प्रसिद्ध राजा अवश्य हुए; एक तो वैदिक साहित्य के दार्शनिक और तत्वज्ञानी जनक विदेह और दूसरे दाशरथि राम के ससुर जनक, जिन्हें वायु और पद्मपुराण में सीरध्वज कहा गया है । असंभव नहीं और भी जनक हुए हों और यही कारण है, कुछ विद्वान वशिष्ठ और विश्वामित्र की भांति जनक को भी कुलनाम मानते हैं । जनक विदेह के उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में चार भिन्न-भिन्न स्थलों में हुए हैं और सभी में याज्ञवल्क्य भी साथ-साथ आते हैं । वहां जनक विदेह याज्ञवल्क्य को शिक्षा देते हुए पाये जाते हैं । यह भी कहा गया है कि वे अंत में स्वयं ब्रह्मण्य (ब्रह्मा) पद प्राप्त कर लेते हैं । यों तो वैदिक युग में वर्ण परिवर्त्तन सम्भव ही नहीं, अपितु प्रचलित भी था; यह कह सकना कठिन है कि यहां जनक द्वारा क्षत्रिय वर्ण छोड़कर ब्राह्मण वर्ण में प्रवेश कर जाने का उल्लेख है अथवा ज्ञान और दर्शन क्षेत्र में ब्रह्मण्य प्राप्त कर लेने की ओर निर्देश है । यह भी कहा गया है कि अग्निहोत्र के बारे में उचित उत्तर पाकर जनक ने याज्ञवल्क्य को 100 गायों का दान दिया । एक दूसरे स्थल पर 1000 गायों के दान देने की बात भी कही गयी है । शाखालन श्रौतसूत्र में उन्हें सप्तरात्र नामक यज्ञ का कर्त्ता भी कहा गया है । जनक और याज्ञवल्क्य का बृहदार उपनिषद् में भी उल्लेख हुआ है, किन्तु वहां याज्ञव शिष्यत्व छोड़कर गुरु का स्थान प्राप्त कर लेते हैं और जनक उनसे परलोक, ब्रह्म और आत्मा के विषय में ग्रहण करते हैं । शतपथ ब्राह्मण, बृहदारण्यक और कौषी उपनिषदों तथा शांखायन आरण्यक से यह तो सिद्ध हो है कि जनक विदेह और याज्ञवल्क्य समकालीन थे, य ज्ञात होता है कि श्वेतकेतु आरूणेय और काशी के प्र दार्शनिक राजा अजातशत्रु भी उन्हीं के समय में हुए। एक विद्वान ने काशी के अजातशत्रु को मगध के अजा से मिलाते हुए जनक का समय ई०पू० छठी श निश्चित करने का प्रयत्न किया है, जो स्पष्टतः अस्वी है । ब्राह्मणों और जनक का उल्लेख करने वाले उन उपनिषदों का समय निश्चय ही बुद्ध युग के पूर्व था। जनक को भी उस युग के पूर्व का ही मानना होगा, उनका ठीक समय सफलतापूर्वक निश्चित नहीं किय सकता ।

जनक, सीरध्वज के सम्बन्ध में लिखा गया मिथिला प्रान्त में जनक नाम का एक अत्यन्त प्राचीन प्रसिद्ध राजवंश था जिससे मूल पुरुष कोई जनक थे। के पुत्र उदावर्यु पौत्र नंदिवर्धन् और कई पीढ़ी ह्वस्वरोमा हुए । हृस्वरोमा के दो पुत्र सीरध्वज तथा कु हुए । यही सीरध्वज जनक सीरध्वज के नाम से प्रसि क्योंकि जनक नाम के अनेक और व्यक्ति हुए हैं । सी की दो कन्याएं सीता और उर्मिला हुई जिनका विवा तथा लक्ष्मण से हुआ । कुशध्वज की कन्याएं मांडव श्रुतिकीर्ति हुई जिनके ब्याह भरत तथा शत्रुघ्न से हुए मद्भागवत में दी हुई जनकवंश की सूची कुछ भि परन्तु सीरध्वज के योगिराज होने में सभी ग्रन्थ एकम इनके अनेक नाम विदेह अथवा वैदेह तथा मिथिलेश हैं । मिथिला राज्य तथा नगरी इनके पूर्वज निमि के प्रसिद्ध हुए ।

उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञात होता है कि संहिता में जनक वैदेह का जो उल्लेख है, वह स पिता के पृथक् सम्बन्ध रखता है । जनक विदेह या

वैदेह एक आयुर्वेदज्ञ थे, राजा नहीं ।

कौशिक

चरक संहिता[6] के अनुसार मदनफल विषयक सम्भाषा परिषद् में भृगु, काप्य आदि ऋषियों के साथ कौशिक उपस्थित थे । पौराणिक कोश[7] में कौशिक का आशय है - (1) अतल का एक नाग (ब्रह्मां 2.20.19)। (2) कुशिक राजा के पुत्र गाधि जो इन्द्र के अंश से उत्पन्न हुए थे और उनके वंशज विश्वामित्र आदि (ब्रह्मां०) 3.8. 62; 37.31; 66.74; वायु० 61.46; 64.25; 106.35; विष्णु० 4.7.11) (3) जरासंघ के एक सेनापति का नाम। (4) एक उपपुराण का नाम । (5) इन्द्र का एक नाम (भाग० 6.18.64)। (6) एक ऋषि जो शर शय्या पर लेटे भीष्म से मिलने गये थे (भाग० 1.9.7) । (7) इन्होंने 'नरायणात्कवर्ण' को धारण कर योग धारण से शरीर छोड़ा था । एक बार चित्ररथ गंधर्व इनकी पड़ी अस्थियों को बटोर कर सरस्वती नदी में प्रवाहित कर दिया था (भाग० 6.8. 38.40) । (8) सामग श्रेष्ठकृत के कई शिष्यों में से एक शिष्य (ब्रह्मां 2.35.53) । (9) वसुदेव तथा सैब्या (वैशाली=विष्णु०) का एक पुत्र जिसे उसके भाई वृक ने दत्तक पुत्र लिया था (ब्रह्मां० 3.71.174-5, 193; वायु० 96.182; विष्णु० 4.15.25) । मत्स्यपुराणानुसार (46.20) यह वैश्या (शैव्या ?) माता से हुआ था । (10) सावर्णि मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक तप: सिद्ध ऋषि जो कुरूक्षेत्र के ऋषि थे, जिनके सात पुत्र थे । एक बार दुर्भिक्ष पड़ने पर इन ऋषि पुत्रों ने अपने गुरु की गौ को मारकर श्राद्ध कर स्वयम् भी भोजन किया । इस पाप से ये पांच बार जन्म लेने के पश्चात् मुक्त हुए थे (मत्स्य० 9.32; 145.93) । (11) विदर्भ का पुत्र तथा चेदि का पिता (वायु० 95.36.38) । (12) वैशाखी का एक पुत्र (वायु० 96.172) । (13) अपुत्र वस्तावनिको दत्तक रूप में प्राप्त एक पुत्र (वायु० 96.189) । (14) प्रतिष्ठानपुर का निवासी एक ब्राह्मण जो पूर्व जन्म के पापों से कोढ़ी हो गया था तथा अपनी पतिव्रता स्त्री के प्रताप से और अनसूया के आशीर्वाद से रोगग्रस्त हो गया था ।

उपर्युक्त अर्थों से हमें कौशिक के एक आयुर्वेदज्ञ के रूप में स्थापित करने में मदद नहीं मिलती है ।

हिन्दी विश्वकोश[8] में कौशिक को विश्वामित्र एक नाम माना गया है । इसके अतिरिक्त इनके अर्थ हैं - (1) नारायण कवच धारण करने वाले एक ऋषि जिन्होंने योग द्वारा मरूभूमि में शरीर त्याग किया । गंधर्वराज चित्ररथ विमान द्वारा उनके ऊपर से निकले पर वह विमानसहित आकाश से पृथ्वी पर गिर पड़े । बालखिल्य मुनियों ने उन्हें बतलाया कि वह नारायण कवच धारण करने का प्रभाव है । तब उनकी हड्डियों को ले जाकर गंधर्वराज ने सरस्वती नदी में प्रवाहित कर दिया और अपने लोक चले गए ।

आयुर्वेदीय कोश[8] में कौशिक का आशय है - (1) गुग्गुल (2) लताशाह, अश्वकर्ण शाल (राज०नि० 9), (3) उल्लू, पंचक पक्षी (4) सांप,सर्प, लाल (5) अगर, ग्रह (6) नेवला, नकुल (7) कोशकार, रेशम का कीड़ा (8) मज्जा । प्रस्तुत कोश से भी हमें कौशिक को आयुर्वेदज्ञ के रूप में स्थापित करने में मदद नहीं मिलती है । कुछ लोग कुशिक वंश से कौशिक का भाव लेते हैं, किन्तु दोनों विद्वानों का पृथक्-पृथक् जगह उल्लेख होने से यह सही प्रतीत नहीं होता है ।

आयुर्वेद के इतिहासकारों ने कौशिक पर पर्याप्तरूपेण प्रकाश नहीं डाला है । जो भी सामग्री हमारे पास उपलब्ध है, उससे कौशिक के व्यक्तित्व पृथक् एवं वे एक आयुर्वेदज्ञ थे - ऐसा ज्ञात होता है ।

(निरन्तर जारी)

संदर्भ :-

1. इन्द्रियाणीति जनको वैदेह: - च०शा० 6/20
2. पौराणिक कोश-राणा प्रसाद शर्मा -ज्ञानमंडल लि०, वाराणसी ।
3. हिन्दी साहित्य कोश-भाग-2-ज्ञानमंडल लि०, वाराणसी ।
4. The student's English Dictionary- Vaman Shivram Apte - Motilal Banarasidas, Delhi.
5. हिन्दी शब्दकोश, खण्ड-4, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
6. भृगु कौशिक काप्यशौनक: समुलस्त्यासित-गौतमादय: । - च०सि० 11/4
7. हिन्दी विश्वकोश, खण्ड-3, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
8. आयुर्वेदीय विश्वकोश-चौथा खण्ड-वैद्य रामजीत सिंह, वैद्यराज हकीम दलजीत सिंह, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग ।

जीव विज्ञान-आयुर्वेद

आचार्य राजकुमार

आयुर्वेद को इस बात का गौरव रहा है कि वह भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग रहा है । अतः भारतीय संस्कृति के साथ-साथ उसमें भी चढ़ाव-उतार बराबर आते रहे । ऐसी स्थिति में देश की पराधीनता होने पर जब भारतीय संस्कृति पर पाश्चात्य सभ्यता द्वारा अनवरत प्रहार किया जाता रहा और उसे नष्ट करने का निरन्तर प्रयास किया जाता रहा तो उसके प्रभाव से आयुर्वेद भला कैसे अछूता रहता ? उस पर भी भीषण प्रहार हुए और उसे नष्ट करने के भरपूर प्रयत्न किए गए । किन्तु वैद्यों की सहिष्णुता, निष्ठा और स्वाभिमान से ऐसा नहीं हो सका । उसी का यह सुपरिणाम है कि आज भी आयुर्वेद के माध्यम से वैद्यगण जनता की सेवा में लगे हुए हैं ।

भारतीय संस्कृति के विकास में जहाँ धर्म-दर्शन-नीति-शास्त्र-आचार शास्त्र, व्याकरण-साहित्य-संगीत-कला आदि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है वहाँ आयुर्वेद ने भी अपनी जीवन पद्धति और जीवन को आरोग्य प्रदान करने वाले विशिष्ट सिद्धान्तों के द्वारा उसके स्वरूप को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए अपनी दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारधारा से आप्यायित किया है । भारतीय संस्कृति मूलतः मानव संस्कृति है और वह मनुष्य के समस्त पक्षों को व्याप्त कर अपने प्रभाव से उसे संस्कारित करती है । अतः यथार्थ में यह मानव मात्र के लिए है । मानव को आश्रय बना कर ही वह चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर सकी है । यह संस्कृति तब तक जीवित रहेगी जब तक पृथ्वी पर एक भी मनुष्य जीवित रहेगा । जिस दिन यह पृथ्वी मानव विहीन हो जायगी उस दिन सम्भवतः उस संस्कृति का अस्तित्व भी समाप्त हो जाएगा । पृथ्वी पर मनुष्य की श्रेष्ठता सहस्रों वर्ष पूर्व महाभारत काल में भी मनीषियों द्वारा की जा चुकी है - "न मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् ।"

भारतीय संस्कृति के प्राण भूत अंग धर्म और दर्शन के द्वारा जहां उसे निःश्रेयस् की प्रेरणा मिली वहां नीतिशास्त्र-आचार-शास्त्र-व्याकरण-साहित्य-संगीत और कला आदि के द्वारा उसके अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त हुआ । किन्तु यह आयुर्वेद का ही वैशिष्ट्य रहा कि उसने भारतीय संस्कृति में अभ्युदय और निःश्रेयस् दोनों के लिए समान रूप से देकर दोनों को ही इस चरम लक्ष्य बनाया । यहां अभ्यु का अर्थ है भौतिक समुन्नति और निःश्रेयस् का अर्थ प्राप्ति है । यही कारण है कि आध्यात्मिक उन्नति के में होते हुए भी भारतीय संस्कृति भौतिक उन्नति के वि नहीं है ।

इस संदर्भ में यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि अभ्युदय प्राप्त करना हो अथवा निःश्रेयस्, दोनों की प्रा के लिए मानव शरीर की स्वस्थता नितान्त अपेक्षित है स्वस्थ शरीर ही समस्त भोगोपभोग, अथवा देवपूजा, गुरुपा स्वाध्याय, संयम, तप, त्याग, दान आदि धार्मिक क्रि करने में समर्थ हैं । विकारग्रस्त अथवा अस्वस्थ शरीर न भौतिक विषयों का उपभोग कर सकता है और न धर्म साधन । इसीलिए चतुर्विध पुरुषार्थ का मूल आ निरूपित किया गया है - "धर्मार्थकाममोक्षाणामा मूलमुत्तमम् ।" शरीर को आरोग्य प्रदान करने और वि ग्रस्त शरीर की विकाराभिनिर्वृत्ति करने में एक मात्र आ ही समर्थ है । अतः आयुर्वेद को भी भारतीय संस्कृति अभिन्न अंग माना गया है । भारतीय संस्कृति में जो स धर्म-दर्शन-नीति आदि का है, वही स्थान आयुर्वेद का है ।

भारतीय संस्कृति में जो स्थान वेदों का है स्थान आयुर्वेद का भी है । वेद उपनिषद, श्रुति, स्मृति पुराणों की भांति आयुर्वेद भी भारतीय संस्कृति का अ अंग है । अथर्ववेद का उपवेद होने के कारण आयुर्वेद वेदत्व निर्विवाद है । अतः वेदों की भांति आयुर्वेद अपौरूषेयत्व भी असंदिग्ध है । प्रकृति के नियमा प्रत्येक सृष्टि के प्रारम्भ में स्वयम्भु ब्रह्मा आयुर्वेद अभिव्यक्ति किया करते हैं । आयुर्वेद में जहाँ कहीं "आयुर्वेदोत्पत्ति" शब्द का व्यवहार हुआ है वहां उ शब्द से भ्रम में न पड़कर उसका अभिप्रायः अभिव्य ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अनादि, शाश्वत एवं स्व संसिद्ध होने से आयुर्वेद की नवीन उत्पत्ति नहीं हो सक अतः आयुर्वेदोत्पत्ति शब्द से आयुर्वेद की अभिव्यक्ति

ही ग्रहण करना चाहिए ।

आयुर्वेद एक शाश्वत जीवन विज्ञान है । जीवन के प्रत्येक क्षण की प्रत्येक स्थिति आयुर्वेद सिद्धान्तों में सन्निहित है । आयुर्वेद मानव जीवन से पृथक कोई भिन्न वस्तु नहीं है, अपितु दोनों में तादात्म्य भाव होने से अत्यधिक निकटता है । सामान्यत: मनुष्य के जीवन की आद्यान्त प्रतिक्षण चलने वाली श्रृंखला ही आयु है अथवा आयु ही जीवन है, आयु का ज्ञान ही आयुर्वेद है, अत: आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है । आयुर्वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त इतने सामान्य व्यापक जन-जीवनोपयोगी एवं सर्वसाधारण के लिए हितकारी हैं कि सरलता पूर्वक उन्हें अमल में लाकर यथाशीघ्र आरोग्य लाभ किया जा सकता है । अत: शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक स्वास्थ्य की दृष्टि से आयुर्वेद की उपयोगितां निर्विवाद है । आयुर्वेद केवल चिकित्साशास्त्र ही नहीं है, अपितु यह शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान तत्व विज्ञान, दर्शन शास्त्र, आचार शास्त्र एवं धर्मशास्त्र का एक ऐसा अद्‌भुत स्वरूप है, जो सम्पूर्ण जीवन के अन्यान्य पक्षों को व्याप्त कर लेता है । अत: नि:सन्देह यह एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है । आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक तत्वों तक ही सीमित नहीं है, अपितु आध्यात्मिक तत्वों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है । इसका प्रमुख कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्यस्रोत वेद तथा उपनिषद के बीज ही आयुर्वेद में प्रसार को प्राप्त हुए हैं । इसके अतिरिक्त समकालीन होने के कारण दर्शन शास्त्र एवं धर्म शास्त्र ने भी आयुर्वेद के आध्यात्म सम्बंधी विषय कतिपय सिद्धान्तों को अपेक्षित रूप से प्रभावित किया है । यही कारण है कि आयुर्वेद का आध्यात्मिक पक्ष भी उतना ही सबल एवं परिपुष्ट है, जितना कि उसका भौतिक तत्व विश्लेषण सम्बन्धी पक्ष है ।

इस शास्त्र में मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ-साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गंभीर विचार किया गया है । शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व और उसके प्रगतिशील विकास क्रम को भी आयुर्वेद में यथोचित महत्व दिया गया है । यही कारण है कि आयुर्वेदशास्त्र मात्र चिकित्सा शास्त्र ही नहीं है, अपितु वह सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है, जिसमें मानव जीवन की दैनिक स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं पर गम्भीर अनुचिन्तन के पश्चात् उनके समाधानात्मक उपाय प्रतिपादित किए गए हैं । पृथ्वी पर जब से मानव जीवन प्रारम्भ हुआ तब ही से आयुर्वेद अपने मौलिक स्वरूप के साथ विद्यमान है । अत: यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि वह शाश्वत है । अपनी कतिपय मूलभूत विशेषताओं के कारण आयुर्वेद मानव जीवन के जितना अधिक निकट है उतना कोई अन्य शास्त्र नहीं है । यही कारण है कि भीषण आघातों एवं प्रहारों बावजूद आज वह न केवल जीवित है, अपितु सुरक्षित है । हमारा इतिहास इस बात का साक्षी है कि आयुर्वेद का अतीत अत्यन्त गौरवमय रहा है । किन्तु काल की गति जब दुर्भाग्य के साथ चलने लगी तो आयुर्वेद का विपुल साहित्य काल कवलित होने लगा और उसके साथ-साथ आयुर्वेद का गौरव भी शनै:-शनै: क्षीण होता गया ।

आयुर्वेद शास्त्र की यह एक मौलिक विशेषता है कि इसमें मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गम्भीर विचार किया गया है । शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व का विवेचन, आत्मा और मन के विषय में स्वतंत्र दृष्टिकोण तथा शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक विकास क्रम का यथोचित वर्णन आयुर्वेद की वैज्ञानिकता एवं प्रमाणिकता के सबल प्रमाण हैं । उसकी वैद्यक विद्या अपनी पृथक् पद्धति एवं चिकित्सा सम्बन्धी व्यापकता के कारण विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण है । पोषण सम्बन्धी तत्वों एवं रासायनिक पदार्थों का उसमें विशिष्ट रूप से विभक्तीकरण किया गया है जो पूर्णत: मात्रा और गुण पर आधारित है । विशिष्ट विधिपूर्वक रस रसायन पिष्टी-भस्म, चूर्ण-वटी-लेप-घृतपाक- तैलपाक, अवलेह-मोदक आदि कल्पानाएं और समस्त वनौषधियों के प्रयोग ने इस विज्ञान को निश्चय ही मौलिक स्वरूप प्रदान किया है । अपनी सरलता और रोगमुक्त करने की क्षमता के कारण आयुर्वेद की अनेक प्रक्रियाओं ने ग्रामीण जन-जीवन में इतनी आसानी से प्रवेश पा लिया है कि आज भी गांव में किसी व्यक्ति के रोग पीड़ित हो जाने पर विभिन्न काढ़ों (क्वाथ) लेपों आदि के

द्वारा ग्रामीण जन उपचार करते देखे जाते हैं । इसका मूल कारण यही है कि आयुर्वेद मानव जीवन के अत्यधिक सन्निकट है ।

महर्षि चरक और सुश्रुत द्वारा प्रतिपादित रोग निदान और चिकित्सा सम्बन्धी सिद्धान्तों में रोगी के अन्तरिम प्राण-बल के अन्वेषण पर भी बल दिया गया है। रोग के मूल कारण को मिथ्या आहार-विहार जनित बतला कर जिस प्रकार संयम द्वारा आहार गत पथ्य के नियम बनाए गए हैं वे अत्यन्त उत्कृष्ट एवं व्यावहारिक हैं । जो लोग एलोपैथी, होमियोपैथी, इलेक्ट्रोपैथी या अन्य चिकित्सा में विश्वास रखते हैं वे भी आज आहार गत पथ्य के महत्व को समझने लगे हैं और रोग निवारण के लिए रोग के चिकित्सा-क्रम में संयम द्वारा विनिर्मित आहारगत पथ्य क्रम को विशेष महत्व देने लगे हैं । आयुर्वेद विज्ञान के कतिपय मौलिक सिद्धान्तों को वर्तमान कालीन विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों ने बड़ी तत्परता के साथ अविकल रूप से ग्रहण कर आत्मसात् कर लिया है । यह एक निर्विवाद तथ्य है कि प्राकृतिक चिकित्सा के अनेक सिद्धान्त एवं प्रक्रियाएं आयुर्वेद मूलक हैं । इसीलिए कतिपय विद्वानों के मतानुसार प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति कोई स्वतंत्र चिकित्सा प्रणाली नहीं है, अपितु आयुर्वेद की ही एक शाखा विशेष है । जिस प्रकार सम्पूर्ण आयुर्वेद को विषय विभाजन की सुविधा की दृष्टि से आठ अंगों में विभाजित कर दिया गया है और प्रत्येक विषय को अलग-अलग अंगों से सम्बन्धित कर दिया गया है, उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति को भी आयुर्वेद का एक स्वतंत्र अंग मान लिया जा सकता है। इसी प्रकार वर्तमान काल में समुद्भूत एवं विकास को प्राप्त हुई अन्य चिकित्सा प्रणालियों ने भी आयुर्वेद के अनेक विषयों एवं सिद्धान्तों को अविकल रूप से ग्रहण कर आत्मसात कर लिया है । अतः इस तथ्य को निःसंकोच रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि आयुर्वेद विज्ञान ने अन्य चिकित्सा प्रणालियों के केवल उद्भव में ही अपना योगदान नहीं किया है, अपितु उनके विकास एवं प्रसाद हेतु भी मार्ग प्रशस्त किया है ।

आयुर्वेद शब्द अपने आप में परिपूर्ण एवं अर्थ गाम्भीर्ययुक्त है । आयु और वेद (ज्ञान) इन दो शब्दों संयोग से आयुर्वेद शब्द निष्पन्न हुआ है । जिसका सा अर्थ यह होता है कि जिसके द्वारा आयु (जीवन) समुचित ज्ञान प्राप्त हो वही आयुर्वेद है । महर्षि चरक आयुर्वेद की जो समीचीन व्याख्या की है वह निम्न प्र है -

जिस शास्त्र में आयु का विषय अर्थात् स्व प्रतिपादित किया गया हो, जिस शास्त्र का अध्ययन करने आयु सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है अथवा जिस शास्त्र विषय में विचार करने से हितकर आयु, अहितकर सुखकर आयु और दुःखकर आयु के विषय में जानक प्राप्त होती है अथवा जिस शास्त्र में बताए हुए नियमों पालन करने से दीर्घायु प्राप्त की जा सकती है उसका आयुर्वेद है । इसी प्रकार स्वस्थ और अस्वथ मनुष्य प्रकृति, विकृति और अशुभ बताने वाले दूत और लक्षण इत्यादि के उपदेशों से जो शास्त्र आयु का अर्थात् यह स्वल्पायु है अथवा मध्यआयु है या दीर्घायु है सब विषयों का ज्ञान करा देता है वही आयुर्वेद है ।

आयु के लिए कौन सी वस्तु लाभदायक है किस वस्तु के द्वारा आयु की हानि हो सकती है ? प्रकार की आयु हितकर होती है और कैसी आयु अहि होती है ? यह विषय जिस शास्त्र में वर्णित हो तथा रोग निदान और उसके प्रतिकार के विषय में जिस शास्त्र वर्णन किया गया हो विद्वानों के द्वारा वह आयुर्वेद कह है । इस शास्त्र के द्वारा पुरुष चूंकि आयु को प्राप्त है तथा आयु के विषय में जान लेता है, इसलिए मुनि के द्वारा वह आयुर्वेद कहलाता है । तात्पर्य यह है कि शास्त्र का यदि ज्ञान प्राप्ति कर लिया जाता है तो मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करने का उपाय ज्ञात हो जाता है क्योंकि शास्त्र में बतलाए हुए आहार-विहार सम्बन्धी नियमों अन्य सदाचारों का पालन करने से दीर्घायु की प्राप्ति सकती है । इसीलिए ऋषियों, आचार्यों और विद्वानों शास्त्र को आयुर्वेद के नाम से अभिहित किया है ।

स्वस्थ मनुष्यों के लिए आयुर्वेद शास्त्र में दिन निशाचर्या और ऋतुचर्या तथा उसके अनुसार आहार-

का विधान बतलाया गया है । जो मनुष्य उसके अनुसार आचरण करता है वह निश्चय ही स्वस्थ रहता है और अपनी सुदीर्घ आयु का निराबाध रूप से उपभोग करता है क्योंकि देश, काल, ऋतु और अपनी प्रकृति के अनुरूप सम्यक् आहार-विहार करने से मानव शरीर में स्थित वात-पित्त, कफ ये तीनों दोष समान (प्राकृत) अवस्था में रहते हैं, जठराग्नि भी सम रहती है (अर्थात् न्यूनाधिकता को प्राप्त नहीं होती)। धातुओं (रस-रक्त-मांस-मेद, अस्थि-मज्जा-शुक्र) और मल (स्वेदमूत्र-पुरीष) प्रसन्न रहते हैं । इस प्रकार जिस मनुष्य के शरीर में समस्त क्रियाएं प्राकृत रूप से सम्पन्न होती रहती हैं, शरीर में किसी प्रकार की विषमता नहीं होती उसका शरीर कभी विकार ग्रस्त नहीं हो सकता और वह सदैव स्वस्थ रहता है । अत: स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और इसके लिए सम्यक् आहार-विहार का उपदेश करना आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन है ।

मानव शरीर में वातादि दोषों में जब मिथ्या आहार-विहार या देश-काल ऋतु वैषम्य के कारण विषमता उत्पन्न हो जाती है तो वे धातुओं को दूषित कर उनमें भी विषमता उत्पन्न कर देते हैं । अनेक बार प्रज्ञापराध के कारण भी विविध प्रकार के रोगों की उत्पत्ति शरीर में हो जाती है । अत: औषधोपचार, लंघन आदि कर्म तथा अन्य चिकित्सा विधि के द्वारा विकारोपशमन या रोग निवृत्ति हेतु उपाय किए जाते हैं । यह भी आयुर्वेद का एक प्रयोजन है । इस प्रकार प्रथमत: स्वस्थ मनुष्य के स्वास्थ्य की रक्षा करना और यदि किसी कारणवश विकारोत्पत्ति हो जाय तो यथा विधि उसका उपशमन करना ये दो आयुर्वेद के मुख्य प्रयोजन हैं ।

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज, बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध ।
संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है । इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है । प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं ।

वात जनित व्याधियों में आमवात की सफल चिकित्सा

डा० मायाराम उनियाल, वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका

वातदोष के साथ आम रस का प्रभुत्व इस रोग में देखने को मिलता है । चरक, सुश्रुत आदि संहिता ग्रन्थों में आमवात नाम से उल्लेख नहीं मिलता है । "अशीति वात रोग इति" में नानात्मजवात वातव्याधियों में आमवात का वर्णन नहीं आया है । माधव निदान, योगरत्नाकर आदि ग्रन्थों में सन्धिगत वात एवं आमवात के नाम से स्वतंत्र रोग का उल्लेख आया है । माधव एवं योगरत्नाकर दोनों ने ही आम को परिकल्पना ग्रहणी रोग की विकृति में आमदोष के आधार पर की गई है ऐसा प्रतीत होता है । दूसरे शब्दों में यह भी परिकल्पना की जा सकती है कि चरकोक्त सामवात या आमयुक्त वात ही बाद में आमवात के रूप में प्रस्थापित किया गया है ऐसा प्रतीत होता है । भावप्रकाश ने 16वीं शदी में सन्धिगत ज्वर एवं आमवात का उल्लेख किया है जो इस बात का द्योतक है कि भावप्रकाश के समय तक आमवात संन्धि-शोथ एवं संधि-शूल के लिये प्रयुक्त किया गया है । इसी प्रकार माधवकार ने वातव्याधि निदान में सन्धिगत वात का उल्लेख करते हुये आमवात का अलग से उल्लेख किया है क्योंकि सम्प्राप्ति के आधार पर आमवात के दूष्य अपक्व रस (आम) एवं रक्तज हैं तथा रोग का उद्भव अधिष्ठान आमाशय है । अपक्व आहाररस (आम) और वातदोष कुपित होकर कटिसन्धि में प्रवेश कर गात्रों को स्तब्ध कर अंगमर्द, अरुचि एवं आलस्य आदि लक्षणों के साथ-साथ आमदोष बड़े जोड़ों में प्रवेशकर शोथ (सूजन) के साथ-साथ वृश्चिकदंशवत् वेदना पैदा करता है । उसी तरह हस्त पाद की उंगलियों के सन्धि-स्थानों में शोथ (सूजन) तीव्रवेदना का होना एवं सम्यग् उपचार न होने पर हृदय बाधा होती है ।

आमवात (Rheumatoid Arthritis)

(गठिया-जोड़ों का दर्द)

जठरानलः दौर्वल्या दविपक्वस्तु यो रसः ।
स आमसञ्ज्ञको देहे सर्वरोगः प्रकोपकः ॥
हस्त पाद शिरोगुल्फ तांत्रिक् जानूरुसन्धिषु ।
करोति सरुजं शोथं यत्रदोषं च प्रद्यते ॥

माधन निदान

जठराग्नि (पाचकाग्नि) की दुर्बलता के कार कफ से संश्लेष कर हस्त, पाद, गुल्फसन्धि, त्रिकु जानुसं प्रदेशों में शोथ एवं विशेषकर बड़े जोड़ों में पीड़ा उत्प करता है, जिसे आमवात कहते हैं । आम की परिकल्प ग्रहणी रोग की विकृति के आधार पर की गई है ऐसा प्रती होता है ।

आमवातस्य निदानम (हेतु)

विरुद्धाहारचेष्टस्य मदाग्नोर्निश्चलस्य च ।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥

(माधव

क. 1. विरुद्धाहार 2. विरुद्धचेष्टा 3. अजीर्णव्यवाय 4. अजीर्णे जलप्रतरणम् ।

ख. 1. मन्दाग्नि 2. निश्चलत्वम् 3. स्निग्धं भुक्तवतोव्याया

सम्प्राप्ति :-

सामोवायुः श्लेष्मणा सानुबन्धः सर्वाऽषु स्वस्वं लिङ्गे प्रसर्प
कटी पृष्ठ त्रिक् जान्वादिसन्धीन् रुजन्नुच्चैरामवात विदध्यात

वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावतिः ।
तेनात्यर्थं विदग्धोऽसौ धमनीः प्रतिपद्यतेः ॥
वात पित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ।
युगपत्कुपिवावन्तः स्त्रिक्सन्धि प्रवेशकौः ।
स्तब्धं च कुरुते गात्रंः आमवात स उच्चते ॥

(माधव निदा

दोष :- वात, पित्त, कफ, दूष्य :- अप आमरस, रक्तवहस्रोतस् ।

अधिष्ठान :- आमश्य, सन्धि (विशेषकर सन्धियाँ) त्रिक्प्रदेश, जानु, गुल्फ, मणिबन्ध आदि ।

आमवातस्यपूर्वरूपाणि :- 1. दौर्बल्यम् हृदयगोरवम् 3. त्रिक्वेदना 4. संधिवेदना 5. गात्रस्वब्धत

आमवातस्यलक्षणानि :- 1. अंगमर्द 2. अ 3. तृष्णा 4. गौरवम् 5. ज्वर 6. अगांनाशून्यता 7. स्रोतो 8. विबन्ध 9. अग्निमांद 10. शोथ 11. सूर्योदय-वृद्धि सन्धिवेदना 13. निशिवृद्धि (रात्रि में वेदना अधिक)

अतिवृद्धिगत आमवातस्यलक्षणानि :-

स कष्टः सर्वरोगाणां यदाप्रकुपितोभवेत् ।

निदेशक, महर्षि आयुर्वेद प्रोडक्टस, नोएडा एक्सपोर्ट प्रोसेसिंग जोन, नोएडा (उ०प्र०)

हस्तपाद शिरोगुल्फः त्रिक्जानूरुसन्धिषु ॥
करोति सरुजं शोथं यत्रदोषः प्रपद्यते ।
उत्साह हानि वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥
पित्तात्सदाहरागं च, सशूलं पवनानुगम् ।
स्तिमितं गुरुकण्डूं च, कफदुष्टं तमादिशेत् ॥

(माधवनिदान:)

1. हस्तिसन्धिरूक् 2. हस्तिसन्धिशोथ 3. पादसन्धिरुक 4. पादसन्धिशोथ 5. गुल्फसन्धिशोथ 6. गुल्फसन्धिरुक 7. जानुसन्धिरुक 8. उरुसन्धिशोथ 9. उरुसन्धिरुक 10. वृश्चिकदंशवत् वेदना 11. वातधिक्ये-शूलाधिक्यम् 12. पित्तं-दाह-रागम् 13. श्लेष्मजे-स्तैमित्यम्-अतिकण्डू एवं उत्साहहानि, वैरस्यं, बहुमूत्रता च ।

अंगप्रत्यंग परीक्षणम्

1. नाड़ी (Pulse rate)
2. देहोष्मा (Temperature)
3. श्वसन (Respiration)
4. देहभार (Weight)
5. जिह्वा (Tongue)
6. त्वक (Skin)
7. नख (Nails)
8. हृदय (Heart)
9. फुफ्फुस (Lungs)
10. उदर (Abdomen)
11. मूत्र-परीक्षण (Urine)
12. रक्त-परीक्षा (Haematogical Investigation A. Hb. T.L.C.D.L.C.)

चिकित्सा विधान :-

लंघनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहनं च, वस्तयश्चमारुते ॥

औषधि चयन :- योगराजगुग्गुलु, महायोगराज गुग्गुलु, शुण्ठी- गुग्गुलु, अश्वगन्धाचूर्ण रास्नासप्तक-क्वाथ, वैश्वानरचूर्ण, समीरपन्नग रस ।

पंचकर्मों के उपक्रमों में स्वेदन :- 1. अभ्यंग 2. बस्ति (विरेचन)

गुग्गुलु की उपादेयता :-

माधुर्यात् शमयेत्वायु कषायत्वात् पित्तहा ।
तिक्तवात् कफजितेन गुग्गलुः सर्वदोषहाः ॥

(धृति)

वातजनित प्रकोपक कारणों के शमन में गुग्गुलु त्रिदोषहर होने से यह एक महाषौधि है । मधुर रस प्रधान से वायु का शमन, कषाय होने से पितघ्न, तिक्त होने से कफ शामक, पृथ्वी, जल एवं अग्नि महाभूत प्रधान द्रव्य होने से वातशामक है । त्रिदोषघ्न होने से नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता है । इसलिये गुग्गुलु शोथ शारीरिक वेदनाहर एवं शूल नाशक मेदोवृद्धि में लाभदायक है । हृदय की रक्तवाहिनियों की भित्तियों में उत्पन्न शोथ, अवरोध में विशेष रूप से हितकर हैं ।

इसीकारण आयुर्वेद में महिक्षाक्षगुग्गुलु एवं कणागुग्गुलु को महौषधि कहा है ।

रोगियों में लक्षणों के अनुसार विश्लेषण तालिका

लक्षण	रोगी सं०	लक्षणों का %
1. हस्ति-सन्धिरुक्	786	75%
2. हस्ति सन्धि शोथ	625	60%
3. याद सन्धि रुक्	525	50%
4. याद सन्धि शोथ		
5. जानु सन्धि रुक्	785	75%
6. जानु सन्धि शोथ		
7. गुल्फ सन्धि रुक्	625	60%
8. गुल्फ सन्धि शोथ		
9. उरु सन्धि रुक्	786	75%
10. उरु सन्धि शोथ	625	60%
11. वृश्चिक दशवंत वेदना	624	60%
12. अंगमर्द	1048	100%
13. अरुचि	625	60%
14. तृष्णा	525	50%
15. आलस्य	786	75%
16. ज्वर	420	40%
17. अंगानां शून्यता	524	50%
18. बिवन्ध	315	30%
19. बहुमूत्रता	265	
20. वैरस्यम्	420	40%

उपरोक्त आंकड़ें केन्द्रीय आयुर्वेद संस्थान (सी.सी.आर.एस.) पटियाला चिकित्सालय में भर्त्ती रोगियों के आधार पर किये गए ।

अनुसंधान परक औषध चिकित्सा परिणाम तालिका

क्र०सं०	औषधि नाम	मात्रा	अनुपान	अवधि	रोगी सं०	परिणाम				
						पूर्व लाभ	उत्तम लाभ	मध्यम लाभ	लाभ युक्त	अला
1.	महायोगराज गुग्गुलु वैश्वानर चूर्ण बालुका स्वेद	1 ग्रा.तीन बार 3 ग्रा.रात्रि में प्रात: एक बार	उष्ण दूध से जल से	60 दिन	40 --	2	8	10	6	14
2.	समीर पन्नग रस पत्र पिण्ड स्वेद	250 मि.ग्रा. तीन बार	जल से या उष्ण दूध से	60 दिन	38 --	-	1	3	3	1
3.	शुण्ठी-गुग्गुलु पत्र पिण्ड स्वेद	500 मि.ग्रा. तीन बार	शीतोष्ण जल से	60 दिन	62 --	6	24	20	8	4
4.	अश्वगन्धा चूर्ण पत्र पिण्ड स्वेद	2 ग्राम तीन बार	जल से	61 दिन	43 --	1	4	17	7	14
5.	योगराज गुग्गुलु रास्ना सप्तक क्वाथ पत्र पिण्ड स्वेद	3 ग्राम तीन बार 30 मिली दो बार	जल से	60 दिन	895 59	127	234	174	93	20
				कुल योग	1048 59	136	271	224	117	24

पंचकर्मों के उपक्रमों में स्वेदन एवं बस्ति (शोधन)

बालू का स्वेद (सैन्धव मिश्रित) :- सन्धियों में आम दोष कफ तथा स्नेहांश का संचय जिन रोगियों में देखा गया उनमें बालू का स्वेद (रुक्ष स्वेद) से लाभ देखा गया। समयावधि 20 दिन से 60 दिन।

निर्गुण्डी पत्र पिण्डस्वेद :- निर्गुण्डी तेल एवं महानारायण तेल, मिश्रित वाताधिक्य शोथ एवं वृश्चिकदंशवत् शूल होने पर किया गया। निम्बपत्र, अश्वगंधा एवं एरण्ड का वाष्पस्वेद भी अवस्थानुसार प्रयोग किया गया।

बस्ति :- बस्ति वातहराणाश्रेष्ठम् - 1. एरण्डस्नेह, 2. बलातेल की बस्ति अवस्थानुसार।

यथा - एरण्ड स्नेह पानं च, वस्वयश्चामारुते।
रूक्षः स्वेदो विघातव्यो बालुको पोंटलैस्तथा॥
उपनाहाश्च कर्तव्याः स्तेऽपि स्नेहाविवर्जिता॥

योगरत्नाकर

रास्नासपत्क क्वाथ :-

रास्नामृतारग्वध देवदारु, त्रिकण्टकैरव पुनर्नवाणाम्।
क्वाथं पिनेन्नागर चूर्णामिश्रं जंघोरुपार्श्व त्रिकृपृष्ठशूली॥

(भै.र.)

अनुसंधान परक औषध चिकित्सा व्यवस्था पटलः-

क. 1. योगराज गुग्गुलु 500 मि.ग्रा. दिन में 3 बार उष्ण जल से एवं महायोगराज। 20 दिन से 60 दिन तक।
2. वैश्वानर चूर्ण 3 ग्राम रात्रि को एक बार।
3. बालुका सैन्धव रूक्षस्वेद बाह्य अवस्थानुसार एवं निगुंण्ड पिण्ड स्वेद।

ख. 1. शुण्डी-गुग्गुलु 500 मि.ग्रा. दिन में 3 बार उष्ण जल से दिन से 60 दिन तक
2. अश्वगंध चूर्ण 3 ग्राम दिन में दो बार जलं के साथ
3. रास्नासपत्कक्वाथ 205 एम.एल.और 8 मि.ली. दिन में 2 बार।
4. बालुका सैन्धव रुक्ष स्वेद एवं निर्गुण्डी पत्र पिण्ड अवस्थानुसार।

ग. 1. समीरपन्नग रस 30 मि.ग्रा. दिन में 2 बार मधु से।
2. वैश्वारनर चूर्ण 3 ग्रा. रात्रि को दूध के साथ।
3. रास्नासपत्क क्वाथ 30 मि.ली. दिन में दो बार।
4. अवस्थानुसार एरण्डस्नेह एवं बलातेल द्वारा बस्ति।

इस प्रकार क, ख, ग, वर्ग के आधार पर आम के रोगियों का अन्तरंग विभाग में उपचार किया गया और को अनुसंधान परक तालिका में दिये गये परिणाम देखने मिला। यह कार्य केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान पटि के चिकित्सालय के अन्तरंग विभाग में प्रविष्ठ रोगियों के उप के आधार पर किया गया।

बहुपयोगी वनौषध बच - परिचय एवं खेती

लायक राम भट्ट

बच (Acrous Calamus)

मस्तिष्क की रक्तवाही नलिकाओं को फैलाकर मस्तिष्क में रक्त प्रवाह को बढ़ाने, मस्तिष्क के चेतन संस्थान को उत्तेजित कर जागृत करने में बच एक अत्यन्त उपयोगी औषध द्रव्य है । यह नाड़ी दुर्बलता को मिटाती है व न्यूरेल्जिया आदि में अत्यन्त लाभकारी है । यह स्नायुओं को बल देकर पक्षाघात के रिकवरी पीरियड को घटाती है। यह चिन्ता, तनाव, उद्वेग, उन्माद, कम्पन, वात, मिरगी के दौरों में प्रयोग होने वाली बहुत महत्वपूर्ण औषध है । यह बहुत अच्छी दर्द नाशक दवा भी है । शोथ सूजन कंठ रोग, तुतलाने हकलाने को यह दूर करती है व वाक शक्ति को ठीक कर देती है । यह श्वास रोग लेंटिजाइटिस की बड़ी उत्तम औषधि है । बच अग्निमांद्य, ज्वर कास श्वास गले की सूजन को मिटाती है । बच भूमिगत काण्ड का तेल गैस्ट्रीक, श्वास, अपचन, दस्त, खांसी, हिस्टीरिया, मूत्ररोग चर्म रोगों के इलाज में प्रयोग होता है । यह कर्णशूल सर्वांगशूल नाशक उत्तम दवा है । वच सरस्वती पंचक (वच, ब्राह्मी, शतावरी, जटामांसी, गोरखमुण्डी) का प्रथम घटक द्रव्य है । सरस्वती पंचक औषध सेवन से शरीर व मस्तिष्क के सारे विकार दूर होते हैं व मनुष्य तन मन से स्वस्थ, फुर्तीला, बुद्धिमान मेधा शक्ति से परिपूर्ण बनता है। बच, दांत दर्द, कालिक दर्द, लीवर की बीमारियों, वाणी विकार के उपचार में भी प्रयोग होता है । पेप्टिक अल्सर, हड्डी की सूजन, जोड़ों के दर्द, मानसिक तनाव, अस्थमा जैसी भयानक बीमारियों के इलाज में बच प्रयोग होता है। बच कृमिनाशक है । मच्छर, जू इत्यादि मारने के लिए भी (छोटे-बच का प्रयोग करते हैं ।

मक्खी बच उग्रगंध चरपरी व कड़वी होती हैं । यह [illegible] है व मलमूत्र का शोधन करती है । खुराशानी बच विशेषरूप से वात नाशक होती है । वच में तिक्त पदार्थ म्यूसिलेज, टैनिन, स्टार्च आदि पदार्थ होते हैं । बच तेल में कैफीन, आल्डिहाइड आदि एल्केलाइड होते हैं । इसमें वाष्पशील उत्पत्र तेल, चिपचिपा, ऐकोहिल, तिक्त सत्व, आत्मिक तत्व पाये जाते हैं । वैद्यक दृष्टि से वच गुण तीक्ष्ण सर लघु रस तिक्त कटु वीर्य उष्ण व विपाक कटु, लेखकीय अनुलोमक, पित्तवर्धक, वात, कफ, शामक, तृप्तिधन, शूलध्न, संज्ञास्थापक, द्रव्य है । यूनानी मत से गरम व शुष्क है । पित्त प्रभृति को अहितकर निवारण, सौंफ एवं नीम्ब शरबत शास्त्रों में बच के गुण विस्तृत रूप से वर्णित मिलते हैं :- ''बचोग्रगंधा कटुका तिक्तोष्ण वात्ति व हिन्कृत । विबन्धाग्मान शूलघ्नी शकृन्मूत्र विशोधनी'' । बच की जड़ बचा नाम से पुकारी जाती है । बचा सेवन से घोर अपस्मार भी ठीक हो सकता है, ''य: खादेत क्षीरभक्षासी मासिकेण वचा रज: अपस्मार महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद्ध्रुवम्'' ''बचोग्रगंधा षड्-ग्रन्थागोलोभी शत पर्विका । क्षुद्र पत्रीच, मंगल्या, जटिलोग्रा च लोमशा'' ''वचोग्रगंधा अपस्मार कफोन्माद भूतजन्त्वलिलान हरेत् ।'' पारसीक वचा शुक्ला प्रोक्ता हैमवतीतिसा हैमवत्युदिता तद्वद्वान्तं हन्ति विशेषत:'' । ''दिवा रात्रि वचा ग्रन्थि मुख संघारयेत भिषक तेन सौख्यं भवेतस्य मुख रोगाद्विमुच्यते ।''

अनेक तरह की शारीरिक विकृतियां बचा के प्रयोग से ठीक होती है । बचा जड़ का टुकड़ा मुख में रखकर चूसने से सूखी खांसी दूर होती है । मुस्तक हरिद्रा सोंठ के साथ बचा सिद्ध घी का प्रयोग अतिसार को ठीक करता है । ब्राह्मी शंखपुष्पी बचा से सिद्ध घृत अथवा तीनों का चूर्ण दूध या घी के साथ एक माह सेवन से रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न होकर अपस्मार उन्माद मिटता है साथ ही बुद्धि कुशाग्र व वाणी मधुर होती है । चिरायते के साथ बचा से जीर्णज्वर, विषमज्वर शान्त होता है । मात्र बचा के चूर्ण के सेवन से तथा हरड़ व बच का धुआं नाक में देने से भी लाभ होता है । शीत शमनकर्त्ता होने से बच सभी प्रकार के शोथ सूजन को नष्ट करता है । प्रसूता की योनि कृमि नाशन के लिए बच एक उत्तम दवा है । कै०नि० ने बचा को दीपन पाचन भी बताया है ''बचा तिक्त कटु पाके कटुरूष्णामपाचनी दीपनी वामनी मेघ जीवती वाक्स्वर प्रदा''। ''वामनी कटु तिक्तोष्णा वात् श्लेष्म रूजापहा कण्ठया मेधा च कृमि हृद्वि बचाध्मान शूलनुत'' (ध०नि०) बचा वमनकारक भी है । गरम पानी के साथ बचा दो ग्राम मात्रा

सरांस गांव केमर पो० पिलखी, टिहरी गढ़वाल, उत्तरांचल - 249181

में सेवन करने से छाती का कफ वमन द्वारा बाहर हो जाता है । दूध में बचा दिन में तीन बार देने से बच्चों की खांसी मिटती है । शहद के साथ आधी ग्राम बच प्रातः सायं सेवन से नाड़ी दुर्बलता ठीक होती है व नित्य सेवन से मिरगी की बीमारी दूर होती है । कपूर के साथ बच चूर्ण समभाग घाव पर लगाने से घाव जल्दी भरता है । अपस्मार का रोगी जो बेहोशी की दशा में होता है उसके नाक में बचा चूर्ण डालने से वह होश में आ जाता है ।

कर्णनाद शमन हेतु रस कान में डालते हैं । बचा की नयी जड़ चबाने से बच्चों का दांत किट-किटाना बंद होता है, दांत भी शीघ्र निकलते हैं । यह मूत्रल है और अश्मरी में प्रयोग होता है । उष्ण बलप्रद होने से कम्प ज्वर सन्निपातिक ज्वर शूल आध्मान आदि वात व्याधियों में काम आता है । यह श्वास कास में भी इस्तेमाल होता है । यह कीट नाशक है, इसका उड़नशील तेल अरिष्ट आसवों सिरका इत्यादि को सुगन्धित करने में प्रयोग होता है । बचा अल्पमात्रा में दीपन पाचन है किन्तु अधिक मात्रा में यह वामक हो जाता है । वातज कास के वेग को रोकने के लिए इसके चूर्ण को मुख में रखते हैं । कफघ्न औषधों में बचा उत्तम औषध है । अजीर्ण में इसका लेप नाभि पर करते हैं । बल्य और विरेचक औषधों के साथ बचा प्रयोग करने से उन औषधों के गुणों में वृद्धि हो जाती है । बच 3 से 5 फुट ऊंचा सदा हरा रहने वाला क्षुप है । इसका कंद भूमि में पाषाणभेद की तरह फैलता है व सुगन्धयुक्त होता है । बहुशाखित भूमिगत कंद ही तना होता है । कंद 2 इंच वाला/पौन इंच करीब मोटा 5-6 पर्व वाला खुरदरा, झुर्रीदार, टेढ़ा-मेढ़ा शाखाओं वाला गांठदार रोमयुक्त जमीन में चारों तरफ फैला हुआ होता है । तोड़ने पर खट से टूटता है । सफेद व स्पंजी होता है । पात या भालाकार नुकीली मोटी ईख की पत्तियों की तरह सुगन्धित होती है । इसके पुष्प हरे पीले वर्ण के व फल गोल लाल रंग के होते हैं । पुष्प मंजरी 6 से 30 इंच लम्बे हरे पत्तों के पत्र कोषों से ढकी होती हैं । पुष्प मंजरी दिखाई नहीं देती । बच का क्षुप जल के समीप वाली भूमि में विशेषकर तालाब व झरनों के किनारे पाया जाता है । बच पूर्वी यूरोप व मध्य एशिया का आदिवासी पौधा है । भारत के सभी क्षेत्रों में समुद्र तल 6 हजार फुट ऊंचाई तक यह वन्य रूप में पाया जाता गुन्द्र के बीच-बीच यह अधिकतर उगा मिलता है । आनूप देश की रेत मिश्रित, नदी घाटियों की दल जलीय भूमि का पौधा है । बच की जड़ बचा कहलाती यह जड़ या कंद ही औषध में काम आती है । इसे राइ कहते हैं । सूखने पर राइजोम भूरी मटमैली हो जाती उतरांचल में छः हजार फुट ऊँचाई तक सभी नदी नालों घाटियों की जलीय दलदली भूमि पर बच काफी मात्र स्वयंजात उगता है । हिमालय, म.प्र., बिहार, बंगाल, , आदि में सर्वत्र जलीय दलदली आनूप देशीय भूमि के प्राकृतिक वास हैं । खुरासानी बच खुराशान देश में होती है । घुड़बच, खुरासानी बच, सफेद बच, बाल महाभरी बच, बच की अन्य प्रजातियां हैं ।

बच का प्रसारीकरण कंद या राइजोम से ही है । खेती के लिए बलुई दोमट हर प्रकार की मिट्टी ज दलदल, आनूप देशीय भूमि बेहतर होती है । बच के नौ इंच गहराई तक जाते हैं, ऊबड़-खाबड़ पथरीली जिस पर फुट सवा फुट तक मिट्टी हो, जलीय व दल हो बच का इन-सीटू संरक्षण प्रसारीकरण अच्छे तरीके हो सकता है । बीज के लिए पुराने पौधे को उखाड़ उसकी प्रत्येक गांठ अलग-अलग काटकर रोपण सा तैयार होती है । इन राइजोमों को नमी वाली मिट्टी दबाकर रखते हैं । फरवरी से जुलाई तक जब इन पर अं फूट जाय तो खेतों में एक-एक फुट दूरी पर डेढ़-3 गहराई पर रोप देते हैं । एक सवा लाख राइजोम एक हैक्ट में रोपे जाते हैं । व लुई दोमट मिट्टी जो सिंचाई करके स्वत हीं आर्द्र दलदली हालत में रखी जा सके; बच खेती के लिए उपयुक्त होती है । वार्षिक वर्षा पिच ढाई तीन सौ सेमी व तापमान पन्द्रह डिग्री से पैंताली सेन्टीग्रेड वाला क्षेत्र बच की खेती के लिए उपयुक्त है । खेत की दो तीन बार जुताई करके इसमें 10-15 प्रति एकड़ गोबर की खाद मिलाकर पानी से सींच जमीन को दलदली बना कर रोपण करना चाहिए । वर्षा नहीं है तो तीन-तीन दिन में सिंचाई करके जमीन

दलदली हालत में बनाये रखना चाहिए । खर पतवार की निराई-गुड़ाई भी समय-समय पर करते रहना चाहिए, तभी अच्छी फसल मिल सकती है । रोपाई के 6-8 महीने बाद जब पत्ते पीले होकर झड़ने लगें तो फसल तैयार समझनी चाहिए । पूरे पौधे को खोदकर या हल चलाकर अलग कर लेना चाहिए । बिना धोये राइजोम की मिट्टी हटाकर इन्हें सुखाने हेतु छाया में फैला देते हैं । इससे राइजोम में तेल की मात्रा यथावत् बनी रहती है । यह बच का कृषिकरण एक्स-सीट खेती है । सूखे बच के टुकड़ों के अनार्द्र मुखबंद पात्रों में रखना चाहिए एवं बच चूर्ण को डाटबंद पात्रों में रखकर अन्दर नमी जाने से रोकना चाहिए । शिमला आदि उत्तर पश्चिमी हिमालय के समशीतोष्ण छायादार जगहों में छः हजार फुट ऊंचाई तक बच के पौधे मिलते हैं यह बाल बच कहलाता है । चिकित्सक प्रायः बाह्य प्रयोग के लिए छोड़ बच व आभ्यन्तर सेवन के लिए बालबच का प्रयोग करते हैं ।

बच की खेती से प्रति हैक्टेयर 40-50 क्विंटल सूखी जड़ें प्राप्त हो जाती हैं । इनका बाजार भाव करीब दो हजार रुपये क्विटंल होता है । एक हैक्टेयर से अस्सी हजार के करीब आमदनी हो जाती है जिसमें से तीस हजार के करीब खर्च काटकर पचास हजार के करीब शुद्ध आय हो जाती है । विक्रय के लिए अब मण्डी व्यवस्था है, पंजीकृत किसान जिला भेषज समिति या फारेस्ट विभाग के माध्यम से अपने उत्पादन को उचित दामों पर बेच सकते हैं ।

मैदानी व पर्वतीय क्षेत्रों में बहुत-सी जमीन दलदली हालत में रहती है व अनुत्पादक होती है, बच, ब्राह्मी, इलायची आदि वनस्पतियां इन स्थानों पर अच्छी उग सकती हैं । मैदानों के वर्षाती जल गहराई के स्थानों पर चले (छोटे-छोटे पोखर) पर कई महीनों तक जमा रहता है व मक्खी मच्छर की समस्या उत्पन्न होती है, इनके चारों ओर जमीन दल-दल हालत में होती है । ऐसे स्थानों पर तालाब या पोखर बनाये जा सकते हैं, इन तालाबों के कुछ हिस्से को चार पांच फुट गहरा ओपन पेन्टी चूना सीमेन्ट मिश्रित पक्की या कची चारों ओर थोडी स्थान पका शेष हर्बल पार्क नुमा डेबलप हो, ताबाल का एक हिस्सा अधिक गहरा, ऊपर से बंद हो, खुले तालाब का वर्षात में ओवर फ्लो वाटर बंद गहरे तालाब में संकलित करके जिन महीने ओपन तालाब में पानी कम हो जाता है, बंद तालाब का पानी या ट्यूबवैल से पानी इस ओपन तालाब में चारों ओर फब्बारों से हर्बल पार्क को सींचने के साथ-साथ ओपन तालाब में जल की आपूर्त्ति कराने की व्यवस्था हो, ओपन तालाब के जल को हर्बल पार्क सींचने के काम लाया जा सकता है, इसके बीच में कमल आदि हर्बल प्लान्ट उगाये जा सकते हैं, तरह-तरह की मछलियों या जलचर पाले जा सकते हैं, प्रिकासन यह रहे कि मनचले लोग इनमें मछलियों के अण्डे डालकर इनको मत्स्य पालन के साधन न बना लें । कुछ तालाबों का इस्तेमाल स्विमिंग, स्नान या पशुओं के उपयोग के लिए हो किन्तु कुछ का विशुद्ध ढंग से इको हर्बोलेक के रूप में किया जाय । ऐसे ही पर्वतीय क्षेत्रों में नदी नालों, जलस्रोतों, नहरों, गांवों शहरों की बस्तियों के आस-पास जंगलों में दलदली स्थान होते हैं ये भी उन उपजाऊ होते हैं उन स्थानों पर इसी तरह के इको हर्बो वाटर स्टोरेज तालाब टाइप के ओपन टैंक वर्षा जल या प्राकृति स्रोत के जल संग्रह करके बनाये जा सकते हैं । आइ.आर. डी., जवाहर स्वरोजगार जैसी योजनाओं में जहां जीवन निर्वाह भत्ता स्वरूप खड़ूँचा आदि के रूप में कंक्रीट के जंगल मात्र उगाये जा रहे हैं, इन योजनाओं में इस तरह के कार्यों का समावेश होना चाहिए । आयुर्वेद का प्रसार औषध द्रव्यों का घरेलू इस्तेमाल के लिए हर क्षेत्र के वाशिन्दों को औषध द्रव्यों की जानकारी व उनकी उपलब्धता उनके स्वयं के द्वारा उपयोग पर बहुत कुछ निर्भर करता है । औषध पादपों के प्राकृतिक स्थानों की पहचान व उन स्थानों पर उन्हें उगाने की सुविचारित योजना जन सहयोग लेकर सरकार को तहे दिल करना चाहिए । निर्माण कार्यों में देश काल परिस्थिति के अनुसार किस हद तक भौतिक उपलब्धि के साथ-साथ आत्मिक श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हम कर सकते हैं, इस पर हमारे निर्माण कार्यों की गुणवत्ता आंकी ज़ाती है ।

मानसिक रोग - चिंता मनस्ताप (Anxiety Disorder) के लक्षण और उपचार

डा० दीनानाथ राय, एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी., एम

आज का युग भाग-दौड़ और प्रतिस्पर्द्धा का है, जिसके कारण व्यक्ति सदैव तनाव और मानसिक स्टेटस (दबाव) में रहता है । चिंता या घबराहट एक सामान्य भावना है, जो सभी व्यक्तियों में होती है तथा यह परिस्थिति तथा घटनाओं के अनुसार घटती या बढ़ती है । उदाहरण के लिए विद्यार्थियों को परीक्षा के पहले या महत्वपूर्ण निर्णय लेने से पहले प्राय: सभी व्यक्तियों को घबराहट या चिंता होती है, यह समानुकूल समाप्त भी हो जाती है ।

यदि किसी व्यक्ति में चिंता समयानुकूल अथवा परिस्थितियों के अनुरूप न हो और उसमें लम्बे समय तक घबराहट और चिंता के लक्षण बने रहें, तो यह मानसिक रोग का सूचक है । इस प्रकार के मानसिक रोग को एंग्जायटी डिस्आर्डर अर्थात् चिंता और घबराहट की बीमारी (चिंता-मनस्ताप) कहते हैं । 'चिंता-मनस्ताप' मानसिक रोग यह समाज में बहुत तैजी से फैल रहा है ।

इस प्रकार के रोग में चिंता की स्थिति सदैव बनी रहती है । व्यक्ति बिना कारण के चिंताग्रस्त रहता है । व्यक्ति को हर यही आशंका लगी रहती है कि उसके साथ कुछ अनर्थ न हो जाये । उदाहरण के लिए ऐसे व्यक्ति को अपने बच्चे को स्कूल भेजते समय लगता है कि कोई दुर्घटना न घट जाये या बच्चे का अपहरण न हो जाये । कोई अनर्थ न हो जाये इत्यादि । रोगी के मन में इसी तरह के विचार आते रहते हैं ।

सामान्यत: थोड़ी बहुत चिंता सभी में होती है । यदि यह आशंका और चिंता लम्बे समय तक किसी में बनी रहे तो यह चिंता और घबराहट (Anxiety Disorder) रोग से पीड़ित माना जा सकता है । यह रोग व्यक्ति में काफी लम्बे समय तक रहता है । इस प्रकार के रोगियों में शारीरिक अस्वस्थता के लक्षण भी अधिक मात्रा में पाये जाते हैं । अक्सर इस प्रकार के रोगी लम्बे समय तक अपनी शारीरिक बीमारी का भी इलाज कराते रहते हैं ।

इस रोग के प्रमुख लक्षण हैं- व्यक्ति में अधिक मात्रा में दिशाहीन चिंता का होना । जो किसी विशेष पदार्थ अथवा परिस्थितियों के कारण उत्पन्न नहीं होती है । चिंता के कारण क्या हैं ? वह क्यों चिंतित और परेशान है ? स्वयं रोगी को मालूम नहीं होता है । व्यक्ति बिना का के ही चिंताग्रस्त और परेशान रहता है । प्रसिद्ध मनोचिकि जेम्स सी. कोलमैन के अनुसार - इस रोग के प्रमुख ल रोगी में व्यापक और दिशाहीन चिंता का होना है । कैमरान के अनुसार -''अधिक मात्रा में संवेगात्मक त तथा दिशाहीन चिंता'' इस रोग के प्रमुख लक्षण होते इस प्रकार रोगी बहुत अधिक सशंकित रहता है । उलझन और घबराहट भी बनी रहती है । मनोरोग वि रोजन तथा ग्रेगरी भी बेचैनी अथवा दिशाहीन चिंता को मनस्ताप (Anxiety Disorder) के रोगी में प्रमुख ल मानते हैं ।

चिंता-मनस्ताप अर्थात् चिंता घबराहट और उ की बीमारी की उत्पत्ति में रोगी का व्यक्तित्व का वि महत्व है । इस प्रकार के रोगियों में बाल्यावस्था से उसके स्वाभाविक विकास में अवरोधक उत्पन्न हो जाते पारिवारिक सम्बन्ध के कारण व्यक्ति में आत्मविश् इच्छाशक्ति की कमी सदैव रहती है । ऐसे व्यक्ति अ अनुकूल परिस्थिति न होने पर बहुत जल्दी घबड़ा जा । ऐसे व्यक्ति परिस्थितियों से समायोजन करने में अस होते हैं ।

चिंता और घबराहट की बीमारी लक्षण -

1. व्यापक, स्थायी तथा दीर्घकालिक चिंता ।
2. हृदय गति का बढ़ना ।
3. आशंका का बना रहना ।
4. सदैव तनाव में रहना ।
5. सिर में भारीपन या सिर में दर्द ।
6. पेट की बीमारी ।
7. शारीरिक बीमारियों के लक्षण की अधिकता ।
8. अनिद्रा और दुखद स्वप्न देखना ।
9. भावात्मक असंतुलन या अत्यधिक संवेदनशीलत
10. मन में असंतोष और अप्रसन्नता की भावना ।

चिंता-मनस्ताप (Anxiety Disroder) के को सदैव चिंता बनी रहती है । कभी-कभी चिंता का

मनोरोग विभाग, किंग जार्ज चिकित्सा विश्वविद्यालय, लखनऊ-226 003

दौरा भी
आक्रमण
हृदय की
रोगी के ह
मात्रा में
वस्त्रों को
और वह
सहायता
कहता है

है । इसव
रोगी को
दुर्घटना य
जाने की
तथा संश
बेचैन तथ
तथा अप
सदैव तन
सकता है
ही क्रोधि
को ढाल
कई शारी
कब्ज, गै
शरीर में

रहता है
या भार
उसका
उसके सि

सदैव ब
है । पेट
न होना,
कमी, अ
रहती हैं

दौरा भी पड़ता है, जो अस्थायी होता है । चिंता का यह आक्रमण व्यक्ति में यकायक उत्पन्न हो सकते हैं । रोगी के हृदय की गति बढ़ जाती है । साँस तेज चलने लगती है । रोगी के हाथ तथा होठ काँपने लगते हैं । शरीर में अधिक मात्रा में पसीना निकलने लगता है । एकायक रोगी अपने वस्त्रों को नोचने लगता है, उसका सिर चकराने लगता है और वह अधिक बेचैनी के साथ आस-पास के लोगों को सहायता के लिए बुलाता है या डाक्टर को बुलाने के लिए कहता है ।

इस प्रकार के रोगी सदैव आशंका से ग्रस्त रहता है । इसके मन में सदैव नकारात्मक विचार आते रहते हैं । रोगी को लगता है कोई अनहोनी दुर्घटना न हो जाये । दुर्घटना या भविष्य में कोई अनर्थ होने या अपने आपको मर जाने की आशंका करता रहता है । रोगी में सदैव संवेदनशीलता तथा संशयात्मकता बना रहता है । रोगी सदैव अव्यवस्थित, बेचैन तथा हतोत्साहित बना रहता है । रोगी सम्भावित अनर्थ तथा अपनी गलतियों के सम्बन्ध में सोचता रहता है । रोगी सदैव तनाव में रहता है । वह जरा-सी बात पर नाराज हो सकता है । इनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है । ये शीघ्र ही क्रोधित हो जाते हैं, वे परिस्थितियों के अनुकूल अपने को ढालने में असमर्थ होते हैं । तनाव के कारण इनमें में कई शारीरिक बीमारियाँ भी साथ-साथ बनी रहती हैं जैसे कब्ज, गैस बनना, भूख न लगना, यौन सम्बन्धी बीमारियाँ, शरीर में दर्द आदि ।

इस प्रकार के रोगों में सिर में बराबर दर्द बना रहता है । इन्हें ऐसा लगता है जैसे सिर पर कोई भारी गठरी या भार रखा हुआ है । कभी-कभी रोगी को लगता है कि उसका सिर किसी पट्टी से बंधा हुआ है या जकड़ा है । उसके सिर का पिछले भाग में भारीपन बना रहता है ।

चिंता-मनस्ताप के रोगी को पेट की समस्याएँ सदैव बनी रहती हैं । रोगी का पेट कभी साफ नहीं रहता है । पेट में गैस बनना, खट्टी डकार आना, खुलकर शौच न होना, आँव आना, बराबर कब्ज का बना रहना, भूख की कमी, अपच, मतली आदि उदर से सम्बन्धी समस्याएँ बनी रहती हैं । रोगी के सम्पूर्ण शरीर में दर्द बना रहता है । प्रात:काल सोकर उठने के बाद उसे लगता है कि जैसे किसी ने उसके सारे शरीर को निचोड़ दिया है । शरीर में कोई स्फूर्ति या ताजगी नहीं रहती । मन उदास, बेचैनी और हताशा बना रहता है । रोगी को अक्सर आलस्य, थकान, हाथ-पैर में दर्द, कभी-कभी सीने में दर्द, बना रहता है । रोगी की छाती में जकड़न, साँस फूलना, दिल घबराना, हृदय में दर्द हो सकता है । इन रोगियों को हृदय रोग का संशय बना रहता है । लेकिन इसका कारण शारीरिक न होकर मानसिक होता है ।

रोगी में नींद कम हो जाती है । रोगी को बिस्तर पर जाने के बाद भी बहुत देर तक नींद नहीं आती और वह करवटें बदलता रहता है । उसकी नींद रात को बीच में टूट जाती है तथा वह सारी रात दु:स्वप्न देखते रहता है क्योंकि चिंता उसके अचेतन मन में व्याप्त रहती है । चिंता रोगी के सोते जागते हर समय रहता है । मन की चंचलता, व्याकुलता सदैव बनी रहती है ।

रोगी भावात्मक रूप से असंतुलित तथा विचलित रहते हैं । इनका चित्त सदैव अशान्त रहता है । भावात्मक असन्तुलन के कारण, रोगी जरा-जरा सी बात में घबरा जाता है, और हितकर बातें भी उसे अप्रिय लग सकती हैं । रोगी में अर्न्तदृष्टि का अभाव रहता है, वह सही निर्णय लेने में असमर्थ रहता है । ऐसे रोगी हँसी-मजाक से भी नाराज व परेशान हो सकते हैं । भावात्मक असंतुलन के कारण रोगी में नपुंसकता, शीघ्रपतन, मूत्र का बार-बार आना, स्त्रियों में मासिक धर्म में अनियमितता जैसी समस्याएँ बराबर बनी रहती हैं ।

इस प्रकार के रोगी सदैव निराशावादी विक्षुब्ध तथा अपनी परिस्थितियों से असंतुष्ट रहता है । उसे अस्पष्ट रूप से महसूस होता रहता है जैसे कुछ खो गया है या कुछ गड़बड़ी है, लेकिन वह अपनी कठिनाइयों के स्रोत को समझ नहीं पाता है । रोगी में सदैव आत्मग्लानि बनी रहती है । वह अपने को हीन, असहाय और सशंकित महसूस करता है ।

चिंता मनस्ताप रोग के सामान्य कारण

चिंता-मनस्ताप बीमारी के मुख्य दो कारण हो

कते हैं - (i) पूर्वनिहित कारण (व्यक्तित्व का विकास), ii) तात्कालिक कारण (तनाव और दबाव)। पूर्वनिहित ारणों में दोषपूर्ण व्यक्तित्व का विकास, मन में असुरक्षा ो भावना और हीनताग्रंथि का होना हो सकता है। तात्कालिक कारणों के अन्तर्गत व्यक्ति का परिस्थितिगत वातावरण सम्बन्धी दबाव और मानसिक तनाव के कारण, व्यक्ति मानसिक दबाव और मनाव महसूस करता है, जो कालान्तर में 'चिंता मनस्ताप' को जन्म दे सकती है। यह रोग प्राय: उन व्यक्तियों को होता है, जो बचपन में अपरिपक्व होते हैं और छोटी-छोटी बातों में घबड़ा जाते हैं। नमें शुरू से ही आत्मविश्वास की कमी होती है। इनका क्तित्व विकास दोषपूर्ण होता है। मनोवैज्ञानिक दबाव ंता, मनस्ताप की उत्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। जो व्यक्ति दबाव से गुजरते हैं वह अपने को विभिन्न परिस्थितियों में समायोजित नहीं कर पाते हैं और चिंतित ो हैं, जो कालान्तर में चिंता मनस्ताप रोग को जन्म देते ।

उपचार

महर्षि चरक के अनुसार - "प्रज्ञापराध हि रोगमूलानाम्" अर्थात् रोगों का कारण प्रज्ञा अपराध है। यह ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, मोह आदि प्रज्ञा अपराध को जन्म देती है। प्रज्ञा अपराध सभी मानसिक बीमारियों का कारण होता है। प्रज्ञापराध से मन अशान्त, विचलित और चिंतित रहता है। यदि किसी तरह मन को शांत व स्थिर किया जा सके तो इस बीमारी को काफी हद तक दूर किया जा सकता है। मन की बेचैनी और अस्थिरता के कारण ऐसे ागी वातावरण और समाज में अपने को समायोजित करने में असमर्थ होता है। इसके फलस्वरूप ही इनमें चिंता मनस्ताप के रोग प्रकट होते हैं।

रोगी की चिंता और बेचैनी को कम करने के लिए मन को शांत करने वाली प्रशांतिजनक औषधियों का प्रयोग किया जाता है। इन औषधियों का प्रयोग अधिक सावधानी से करना चाहिए क्योंकि यदि रोगी इन्हें अधिक समय तक लेता रहे तो उसे इन्हें छोड़ने में कठिनाइयाँ होती हैं और वह इस पर निर्भर हो जाता है। इसलिए चिंता-मनस्ताप के रोगियों को अंग्रेजी प्रशांतिजनक औषधियों से ब चाहिए। इसके स्थान पर आयुर्वेदिक वनौषधियां शंखपुष्पी, अश्वगंधा, जटामांसी, बच, सर्पगंधा आदि चाहिए। चिंता-मनस्ताप रोग में योग (प्राणायाम और ध्य सबसे उपयुक्त चिकित्सा विधि है। रोग के प्रारम्भ वनौषधियों तथा दोनों साथ-साथ चल सकती है। बा केवल योगाभ्यास से ही इस पर पूरी तरह से निय स्थापित किया जा सकता है। यह सर्वविदित है कि रोगी के व्यक्तित्व को परिमार्जन और परिवर्तन करता इससे रोगी का व्यक्तित्व तनावरहित और सहज होता मन शांत, स्थिर और शिथिल होने लगता है।

चिंता-मनस्ताप के रोगियों की मनोचिकित्सा लाभप्रद होती है। मनोचिकित्सा के अन्तर्गत मनोचिकि रोगी के साथ सहानुभूतिपूर्वक सम्बन्ध स्थापित कर रो वास्तविक कारणों को जानने का प्रयास करता मनोचिकित्सा का उद्देश्य रोगी के व्यक्तित्व को परि सामर्थ्य तथा स्वयं की योग्यता को अधिकतम उपयोग सकने योग्य बनाना होता है। रोगी में इच्छाशक्ति आत्मविश्वास की वृद्धि करना मनोचिकित्सा का उद्देश्य होता है। इसके दो मुख्य कार्य हैं - पहला रो व्यक्तित्व को इतना दृढ़ कराना जिससे कि वह छोटी- बातों से घबरायें नहीं और न चिंतित हों। रो आत्मविश्वास को बढ़ाना इसका ध्येय होता है। दूसरा की विषम परिस्थितियों को दूर करने में योग्य बनाना इच्छाशक्ति जाग्रत करना, जिससे कि वह प्रतिकूल परिस्थि को सहन कर सके। वह अपने को हर परिस्थि समायोजित करने में सक्षम हो सके।

आयुर्वेद में मनोचिकित्सा को 'सत्त्वावजय चिकि कहा गया है। सत्त्वावजय का अर्थ है - मन पर प्राप्त करना। मन को नियंत्रित और वश में करना मुख्य उद्देश्य होता है। मनोचिकित्सा में रोगी के दृष्टि को इस हद तक बदल दिया जाता है कि वह समस्याओं और कठिनाइयों से भागता नहीं है और न बचना चाहता है बल्कि वह कठिनाइयों का डटकर करता है। वह समस्याओं के समाधान करने का पूरा

प्रयास करता है । मनोचिकित्सा का यही उद्देश्य होता है ।

चिंता-मनस्ताप के रोगियों को मनोचिकित्सा (सत्त्वावजय) द्वारा उनमें आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति को बढ़ाने का प्रयास किया जाता है । व्यक्ति को समस्याओं से लड़ने योग्य बनाया जाता है । अधिकांश रोगी मनोचिकित्सा और योगाभ्यास से पूरी तरह से स्वस्थ हो जाते हैं । इस बीमारी में योग चिकित्सा बहुत अधिक उपयोगी होती है । योग जीवन पद्धति है । इससे व्यक्तित्व में परिमार्जन होता है । व्यक्ति की चिंता की अशान्ति दूर होती है । इससे रोगी का मन शान्त, स्थिर और नियंत्रित होता है । नियमित योगाभ्यास से दोषपूर्ण व्यक्तित्व में सुधार होता है । रोग में आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति की वृद्धि होती है । हीनताग्रंथि दूर होती है । रोगी के जीवन में उमंग और आशा का संचार होता है । विषम परिस्थितियों में अपने को समायोजित कर सकने की योग्यता विकसित कर सकता है ।

योगाभ्यास से संवेगात्मक तनाव दूर होता है । इससे रोगी का व्यक्तित्व पके हुए घड़े के समान हो जाता है । जिस प्रकार पके एक घड़े पर पानी की धार का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, पानी की तेज धार से भी घड़ा गलता नहीं, उसी प्रकार योगाभ्यास से जीवन पर किसी भी प्रकार की प्रतिकूल परिस्थितियों का कोई कुप्रभाव नहीं पड़ता है। रोगी हर विषम परिस्थितियों में अपने को समायोजित कर लेता है । योगाभ्यासी तनाव रहित, स्थितप्रज्ञ की अवस्था में रहता है । योग से इसके जीवन में 'समत्वं' की स्थिति आ जाती है । लेखक ने लगभग 25 वर्षों का योगचिकित्सा में अनुभव के आधार पर देखा कि 80% चिंता के रोगी केवल योगाभ्यास (आसन, प्राणायाम और ध्यान) से ही स्वस्थ हो जाते हैं केवल 20% ऐसे उग्र रोगी होते हैं जिन्हें योगाभ्यास के साथ प्रशन्तिजनक औषधि लेने की जरूरत पड़ती है ।

महर्षि पंतजलि के अनुसार - ''योगश्चित्तवृत्ति निरोध:'' अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना योग है । मन का नियंत्रण रोग है । मन की चंचलता (रज:प्रवृत्ति) चिंता मनस्ताप का एक प्रमुख कारण होता है । मन की चंचलता को दूर करने के रोगी को मन की एकाग्रता का अभ्यास कराया जाता है । इससे रोग ठीक होने में सहायक होता है । चिंता-मनस्ताप में आसन (शशांकासन, शवासन), प्राणायाम (नाड़ीशोधन, कपालभाति, भ्रामरी और उज्जायी प्राणायाम), मुद्रा (अश्वनी मुद्रा, मूलबन्ध मुद्रा, जालंधर बंध मुद्रा),ध्यान और योगनिद्रा लाभप्रद है । इन पांच आसन, प्राणायाम, मुद्रा, ध्यान और योगनिद्रा (शवासन) का अभ्यास कराया जाता है ।

चिंता-मनस्ताप का सम्बन्ध व्यक्ति के मन से बहुत गहरा है । जिस व्यक्ति का मन आवेश क्षोभ और चंचलता से युक्त है ऐसे व्यक्ति को कोई भी अप्रिय घटना होने या सुनने पर उसका मन क्षुब्ध हो जाता है, वे शीघ्र विचलित हो उठते हैं । यह उसी प्रकार है जैसे तालाब में कंकड़ फेंका और तरंग उठ गयी । इसी प्रकार चिंता मनस्ताप के रोगी का मन भी बाहरी घटना से विचलित होता रहता है । योगाभ्यास से मन को एकाग्र और स्थिर बनाया जा सकता है । मन को एकाग्र बनाना योगाभ्यास का उद्देश्य है । जब मन को किसी क्षेत्र में एकाग्र किया जाता है तो व्यक्ति में 'समत्वं' की स्थिति आती है । ध्यान से ''चिंता मनस्ताप'' पर विजय पायी जा सकती है । ध्यान से मन एकाग्र और चंचलता दूर होती है । मन निर्मल और स्वच्छ होता है ।

मन जितना निर्मल होगा इसे वश में करना सरल होगा । मन को वश में करने के लिए इसकी निर्मलता व शुद्धता पर ध्यान देना होता है । मन का संयम उसकी पवित्रता पर निर्भर करता है । मन की शुद्धता के लिए मनोनिग्रह का अभ्यास करना चाहिए । मन की वासनाएँ और इसकी प्रवृत्तियों जो डाह, घृणा, क्रोध, भय, ईर्ष्या, लोभ, दम्भ और मोह आदि के रूप में प्रकट होती हैं - ये सभी मन की अशुद्धियाँ हैं । इन अशुद्धियों को दूर करने के बाद ही मन निर्मल होगा । मन की निर्मलता के बाद ही चिंता-मनस्ताप दूर होगी । यह योगाभ्यास द्वारा ही सम्भव है । योग को कोई दवा या टेबलेट की तरह चिकित्सा सामग्री नहीं समझनी चाहिए । यह एक जीवन शैली है, जिसके अन्तर्गत खान-पान, रहन-सहन, दैनिक दिनचर्या तथा लोगों तथा अपने प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण विकसित

करना जरूरी है । इस तरह रोगी को व्यक्तित्व दोष दूर होते हैं तथा उसमें आत्मविश्वास, सुरक्षा की भावना, जीवन के प्रति आशावादी, प्रवृत्ति विकसित होने लगती है । चिंता मनस्ताप के लक्षण में कमी आने लगती है (योगाभ्यास प्रशिक्षित योग-मनोवैज्ञानिक या चिकित्सक के निर्देशन में करना चाहिए) ।

चिंता-मनस्ताप से ग्रस्त व्यक्तियों को प्राय: सूर्योदय के पूर्व बिस्तर से उठने का प्रयास करना चाहिए । तत्पश्चात् दो ग्लास जल पीकर शौच जायें, शौच से आने के बाद नियमित योगाभ्यास करना चाहिये । इसके पश्चात् कुछ मिनट विश्राम कर हल्का नाश्ता करें, नाश्ता में कुछ मौसमी फल, अंकुरित चना आदि का सेवन उत्तम है । दिन का भोजन साढ़े दस-ग्यारह बजे पूर्वान्ह में तथा रात्रि का भो संध्या को करना उत्तम होता है । ऐसे रोगी रात्रि दस के बाद भोजन कदापि न लें । भोजन संतुलित सुपाच्य स्वास्थ्यवर्धक होना चाहिये । नियमित रूप से जल्दी तथा जल्दी जागने की आदत यौगिक जीवनशैली अनिवार्य अंग है । चिंता-मनस्ताप के रोगियों को अपनाना चाहिये ।

इस प्रकार नियमित योगाभ्यास और यौगि जीवनचर्या से चिंता घबराहट की बीमारी-''चिंता-मनस्ता से छुटकारा पाया जा सकता है । मनोनिग्रह से ही मानसि रोग पर नियंत्रण सम्भव है ।

पल-पल जीवन में आनन्द अविरल
जब उत्साह हो जीने का,
जब हर पल आप जीना चाहें भरपूर
बैद्यनाथ का वीटा-एक्स गोल्ड ।
स्वर्ण भस्म (शुद्ध सोना) की ताकत से भरपूर ।
जोश के लिए, उमंग के लिए
आनंद से भरपूर जीवन के लिए

बैद्यनाथ
वीटा-एक्स
गोल्ड

स्वर्ण भस्म की ताकत से भरपूर

आंत्रगुल्म (अपेंडिसाइटिस) कारण, लक्षण व उपचार

डॉ० राजीव गुप्ता

1889 में मैकबर्ने ने यह बताया कि इंटीरियर सुपीरियर स्पाइन में नाभि तक खींची रेखा के अन्दर दो-तिहाई तथा बाहर के एक-तिहाई भाग की संधि पर आंत्र पुच्छ (अपेंडिक्स) रहता है । इसलिए इसे मैकबर्ने प्वाइंट कहते हैं । जब इस स्थान पर दर्द हो तो आंत्र गुल्म का संदेह करना चाहिए । आंत्र गुल्म रोग में आंत्र पुच्छ में सूजन आ जाती है ।

यह रोग बालकों एवं युवकों में अधिक होता है । यह पेट के दाएं व निचले चतुरार्ध में होता है । इसे पेट का टांसिल भी कहते हैं । जिस प्रकार गले में लिम्फाइड उतर जीवाणु संक्रमण की प्रबलता से तथा शरीर की प्रतिरोधक शक्ति की हीनता से सूज जाता है, वैसे ही आंत्र पुच्छ भी आंत में जीवाणु की प्रबलता तथा शरीर की प्रतिरोधक शक्ति की हीनता से सूजता है ।

आंत्र गुल्म के कारण

* जीवाणु के संक्रमण से ।
* शरीर की प्रतिरोधक शक्ति की हीनता से ।
* भोजन दोष से । जिनके भोजन में सेल्यूलोज तथा विटामिन्स की मात्रा कम होती है, उन्हें प्राय: मलबंध हो जाता है, जिससे आंतों की प्रतिरोधक शक्ति घट जाती है ।
* अधिक मसालेदार, तला हुआ एवं प्राय: मांसाहारी भोजन करने से ।
* सहसा पेट में दर्द हो जाना रोग का प्रमुख लक्षण है ।
* प्राय: दर्द सुबह-सुबह होना शुरू होता है, जिससे रोगी उठ बैठता है । उसे चुभने जैसा शूल नाभि पर होता है, **यह** आंत्र पुच्छ के स्तंभ के कारण होता है ।
* चौबीस घंटे के भीतर यह दर्द पेट में दाएं निचले चतुरार्ध में मैकबर्ने स्थान पर केन्द्रित हो जाता है । यह दर्द नाड़ी जाल पर बोझ पड़ने के कारण होता है ।
* जीवाणु संक्रमण के कारण लगभग 90 से 100 डिग्री ज्वर हो जाता है ।
* पूर्ण मलबंध, अरुचि व वमन के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, जिससे कभी-कभी आंत में अवरोध का भी संदेह होने लगता है ।
* विष संचार तथा श्वेत कणों में वृद्धि हो जाती है ।
* दर्द दूसरे दिन ठीक होने लगता है, परन्तु विद्रधि की उपस्थिति में यह दर्द लगातार बना रहता है ।
* रोगी दाहिनी टांग को पेट पर सिकोड़ कर सीधा पड़ा रहता है, क्योंकि यदि वह टांग को फैलाता है, तो पेट की मांसपेशियों में खिंचाव पड़ने से उसे दर्द होता है ।
* स्पर्श क्षमता का लक्षण मिलता है ।
* नाड़ी तीव्र गति से चलती है । इसकी तीव्रता से रोग की गंभीरता का अंदाजा लगाया जा सकता है ।

आंत्र गुल्म का उपचार

* इस रोग की प्रधान चिकित्सा तो शल्य चिकित्सा ही है । फिर भी यदि लक्षण अधिक नहीं बढ़ रहे हैं और दर्द पहली बार ही उठा है, तो निम्न प्रकार उपचार करना चाहिए ।
* रोगी को पूर्णत: विश्राम कराएं ।
* मुंह से कुछ न दें ।
* शिरा द्वारा ग्लूकोज, नार्मल सेलाइन, मेट्रोनाइडाजॉल, उचित मात्रा में विटामिन्स व आवश्यकतानुसार एंटीबायटिक दें ।
* दर्द के लिए दर्दनाशक दवाइयां दें ।
* मलबंध के लिए ग्लिसरीन को गुदा में प्रयोग करना चाहिए ।
* पेट पर गर्म पानी की बोतल या थैली से सिंकाई करें ।

आयुर्वेदिक चिकित्सा

* शंख वटी की एक-एक गोली गुनगुने पानी से सुबह-शाम सेवन करें ।
* हिंगुत्रिगुण तैल दिन में दो-दो बार एक चम्मच की मात्रा में लें ।
* योगराज गूगल की दो-दो गोली दिन में दो बार लेना लाभकारी होता है ।
* प्रवाल पंचामृत दो-दो रत्ती तक सुबह-शाम मधु से लें।
* कब्ज के लिए एरंड तेल को दूध के साथ लें ।
* हिंग्वादि चूर्ण, गुल्महर चूर्ण, रसोनादिघृत आदि को उचित मात्रा में लेने से लाभ मिलता है ।
* अजीर्ण होने पर कुमार्यासव का सेवन भोजन के बाद सुबह-शाम समान मात्रा में जल मिलाकर करना चाहिए ।

5/11 बाग कूंचा, फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश - 209625

थायॅराइड (Thyroid) विकार एवं हाइपोथाइरॉयडिजम की सफल आयुर्वेदिक चिकित्

* डॉ संदीप मदान, एम.डी. (आयुर्वे

वर्तमान युग में थायॅराइड विकारों के अत्यधिक बढ़ने का कारण है - अनियमित आहार-विहार, प्रदूषित पर्यावरण एवं मानसिक तनाव । मोटापे से पीड़ित प्रति 5 महिलाओं में से एक हाइपोथाइरॉयडिज्म या अन्य हार्मोन अनियमितताओं से पीड़ित होती है । आने वाले समय में यदि इस विकार का स्थायी समाधान न किया गया तो निस्संदेह यह एक महामारी के रूप में प्रकट होकर सम्पूर्ण मानव जाति को पीड़ित कर सकता है । Modern Medical Science के अतिरिक्त आयुर्वेद में भी थायॅराइड के विकारों का उल्लेख एवं चिकित्सा का वर्णन मिलता है जो बहुत ही सरल एवं प्रभावशाली है ।

थायॅराइड क्या है एवं इसकी क्या उपयोगिता है :-

यह एक नाड़ी रहित ग्रन्थि (Duct less Gland) है जो गले में सांस की नली (Trachea) के ऊपर संलग्न है । यह छोटी-छोटी थैलियों में बनी होती है एवं आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इसे अवटुका या चुल्लिका ग्रंथि के नाम से जाना जाता है ।

* यह हार्मोन उत्पन्न करती है जो सीधा रक्त में जाता है एवं अपनी क्रिया दर्शाता है ।
* सारे शरीर में ऊर्जा का संचार करती है ।
* रक्त में ग्लुकोज की मात्रा नियमित रखती है ।
* मानसिक विकास एवं लैंगिक विकास (Sexual maturity) में सहायक है ।
* रक्त में सीरम कोलेस्ट्रॉल को नियमित रखती है ।
* शरीर की प्रत्येक Cell में ऑक्सीजन की आवश्यकता पूर्ति करती है ।

थायॅराइड की विकृति क्या है एवं निदान कैसे होता है ?

Thyroid gland की विकृति दो प्रकार की होती है :-

* क्षय (Hypothyroidism)
* वृद्धि (Hyperthyroidism)

Hyperthyroidism या थायॅराइड स्त्रव वृद्धि के लक्षण इस प्रकार हैं :-

* शरीर का वजन कम होना, थकावट, लेकिन भूख अधिक लगना ।
* आँखें बाहर की ओर निकलना, नाड़ी की गति तेज़ जाना ।
* शरीर एवं मन की चेष्टाएं बढ़ना (हाइपरएक्टीविटी स्वभाव चिड़चिड़ा होना ।
* शरीर की उष्मा (गर्मी) का बढ़ना ।
* हमेशा भयभीत रहना ।
* हृदय सम्बंधी लक्षण (B.P. बढ़ना आदि) ।

Hypothyroidism या थायरॉइड स्राव क्षय के लक्षण :-

* शरीर का वजन बढ़ जाना ।
* सूजन, मांसपेशी में थकावट ।
* मानसिक और शारीरिक कार्य धीरे होना, आलस्य।
* बाल अधिक झड़ना ।
* स्त्रियों में मासिक धर्म में गड़बड़ी होना ।
* चमड़ी रूखी होना, अधिक ठंड लगना ।
* कब्ज रहना, शीघ्र भूल जाना ।
* आवाज रूखी एवं भारी हो जाना ।

परीक्षण (Lab, Investigation):-

* Thyroid Profile (TSH, T_3, T_4).
* Protein Bound Iodine.
* 24 hrs. Radio Iodine Uptake (Thyroid).
* E.C.G.

यहाँ इस तथ्य का उल्लेख करना अत्यंत आवश्य है कि लेबोरेट्री परीक्षण से भी अधिक महत्वपूर्ण रोगी की तकलीफ एवं चिकित्सक की परीक्षा (observation) है केवल रक्त एवं अन्य परीक्षाओं को ही मानक न मानक रोगी की तकलीफ एवं अन्य लक्षणों को आधार मानकर की गई चिकित्सा अधिक सफल एवं सुखदायी रहती है ।

आयुर्वेद चिकित्सा (Treatment):-

हाइपोथायरॉइडिज़्म (Hypothyroidism):-

आयुर्वेद वात, पित्त एवं कफ शारीरिक दोषों व रज एवं तम मानसिक दोषों को ही सभी विकारों का कार मानने का पक्षधर है । सबसे पूर्व रोगी का पूर्णतः निरीक्ष (Examination) करके उसकी प्रकृति का निर्णय कर

सीनियर रिसर्च फैलो, केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली-58

आवश्यक होता है एवं उसी पर आधारित चिकित्सा सफल है । अतः दोषों को सामान्य बनाना आवश्यक है ।

- * सबसे अधिक आवश्यक निर्देश आहार एवं विहार पर नियंत्रण है ।
- * लघु एवं सुपाच्य आहार लें ।
- * गुरु, गरिष्ठ एवं बासी आहार से परहेज करें ।
- * Iodized नमक ही उपयोग करें ।
- * मानसिक शांति हेतु - ध्यान ओंकॉर ध्वनि, शवासन आदि का अभ्यास करें ।
- * हाइपोथायराइडिज्म में मानसिक विकार जैसे याददाश्त कम होना, Depression आदि आम समस्याएं हैं । अतः घर के सदस्यों द्वारा मानसिक बल बढ़ाने में सहयोग अत्यंत आवश्यक है ।
- * तले हुए एवं अधिक मिर्च मसाले वाले भोजन से बचें।
- * जौ की रोटी, मखाने, सुंहाजने की फली, कांचनार की फली, श्यामा तुलसी, सोयाबीन, सिघाड़ा, कमल ककड़ी आदि का प्रचुर मात्रा में सेवन करें ।

आयुर्वेदिक औषध

- * मानसिक शांतिदायक योग जैसे सर्पगंधा घन वटी, ब्राह्मी वटी, सारस्वत चूर्ण आदि का उपयोग ।
- * शारीरिक थकावट एवं शक्ति को बढ़ाने हेतु रससिंदूर, शिलाजीत एवं अश्वगंधा का प्रयोग करें ।
- * बाल झड़ने एवं मासिक स्राव की गड़बड़ी में प्रवाल भस्म, सप्तामृत लौह एवं आमलकी रसायन का प्रयोग ।
- * कांचनार गुग्गल थायरॉइड विकार चिकित्सा में बहुत ही उपयोगी औषध है । विभिन्न अनुपानों के साथ प्रयोग करने पर अति उत्तम प्रभाव दर्शाती है ।
- * पेट साफ रखने एवं तदुंरुस्ती हेतु आरोग्यवर्धनी वटी, पंचसकार चूर्ण आदि का उपयोग करें ।

अंत में यह कहना आवश्यक है कि आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान के लिए यह रोग लाईलाज नहीं है, हाइपोथायरॉडिज़म की चिकित्सा लम्बी एवं जटिल होने के कारण चिकित्सक से निरन्तर-संपर्क एवं आस्था अत्यंत आवश्यक है । सभी रोगियों को मानसिक बल (Will Power) रखना चाहिए तभी आशानुरूप लाभ मिलते हैं ।

बैद्यनाथ स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना,
आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन,
भूख न लगना तथा ऋतु
धर्म के समय होने वाली तकलीफ
व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

आयुर्वेदिक दृष्टि से कास की चिकित्सा एवं रोकथाम के उपाय

* डा० दिनेश कुमार गोयल

** डा० रूबी गोयल

शीतकाल में कास यानी खाँसी का होना एक आमवात है । यह प्राणवह स्रोतस से सम्बद्ध एक महत्वपूर्ण लक्षण है, जो अनेक रोगों में पाया जा सकता है । परन्तु जब कास स्वतंत्र रूप से उपस्थित होता है और जब कास के कारण दूसरे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं, तब कास को एक व्याधि के रूप में स्वीकार किया जाता है । कास शब्द वायु की ऊर्ध्वगति ''कसनात् कास:'' के साथ ''कासनं कास:'' अर्थात् 'कु' शब्द वाची है । कास का रोगी खाँसते समय एक विशेष प्रकार का कु शब्द उत्पन्न करता है, इसीलिए इस रोग को कास कहते हैं । यह एक वात-कफ प्रधान रोग है । आधुनिक चिकित्सा में भी कास अनेक व्याधियों जैसे ब्रान्काइटिस तथा ब्रांन्कीयल अस्थमा के लक्षण तथा स्वतंत्र रूप से अर्थात् Locally Irritation के कारण उत्पन्न होता है ।

कास के सामान्य कारण -

1. धूम, धूलि, रज इत्यादि (Inhalants)
2. व्यायाम
3. रूक्षान्न सेवन
4. भोजन का विमार्गगमन
5. क्षवथु वेगावरोध

विभिन्न कास के पृथक-पृथक कारण -

1. वातज कास -
   - * रूक्ष, शीत तथा कषाय द्रव्यों का सेवन ।
   - * अल्पभोजन ।
   - * उपवास ।
   - * वेग धारण ।
   - * स्त्रीभोग ।
   - * आयास या परिश्रम ।
2. पित्तज कास -
   - * कटु, उष्ण, विदाही, अम्ल तथा क्षारीय पदार्थों का अत्यधिक सेवन ।
   - * क्रोध
   - * अग्नि या सूर्य का ताप ।
3. कफज कास
   - * गुरु, अभिष्यन्दी, मधुर, स्निग्ध पदार्थों का सेव
   - * निद्रा ।
   - * अत्यधिक आराम ।
4. क्षतज कास -
   - * अतिव्यवाय ।
   - * अत्यधिक भार उठाना ।
   - * अत्यधिक मार्ग चलना ।
   - * युद्ध ।
   - * साहस से अधिक कार्य करना ।

उपरोक्त कारणों से रूक्ष पुरुष में उर:क्षत उत्
होता हुआ वायु क्षतज कास को उत्पन्न करता है ।

5. क्षयज कास -
   - * विषम आहार ।
   - * आसात्म्य आहार ।
   - * अतिमैथुन ।
   - * वेग धारण ।
   - * घृणा ।
   - * शोक ।

उपरोक्त हेतुओं से अग्नि के विकृत होने से
दोष कुपित होकर देह को क्षीण करने वाले क्षयज कास
उत्पन्न करते हैं ।

कास के सामान्य तथा विशेष निदानों का अत्यधि
सेवन न करके कास या खाँसी से बचा जा सकता
क्योंकि ये निदान ही आगे चलकर कास की सम्प्राप्ति
कास की उत्पत्ति करते हैं ।

सामान्य सम्प्राप्ति :-

वाह्य निदान
आभ्यन्तर निदान → दूषित प्राणवायु+उदान व
↓
वायु की उर्ध्वगति
(सघोष: निरेति वक्रात्)
↓
कास (कसनात् कास:)

* लेक्चरर-कायचिकित्सा, ** लेक्चरर, रोग एवं विकृति विज्ञान
देश भगत आयुर्वेदिक कॉलेज एवं हॉस्पीटल, पो.बॉ.न.-5, अमलोह जि. - फतेहगढ़ साहिब, पंजाब

कास के भेदों के विभेदक लक्षण :- वातज, पित्तज, कफज, क्षतज तथा क्षयज ये पाँच प्रकार के कास क्रम से उत्तरोत्तर बलवान माने जाते हैं और उपेक्षा करने पर पाँचों कास क्षयज में परिणत हो जाते हैं । मधुकोषकार ने "जराकास" का नामोल्लेख करके इसे दोषज कास में ही अन्तर्भाव कर लिया है । जराकास (Old Age Bronchitis) एक सामान्य अवस्था है और अनेक वृद्ध व्यक्तियों में पायी जाती है ।

वातज कास	पित्तज कास	कफज कास
1. शुष्क कास है, अर्थात् बहुत ज्यादा कास का वेग आने पर अल्प कफ का कठिनता से निकलना ।	1. पीतवमन युक्त कास	1. सान्द्र कफ के साथ तीव्र कास अर्थात् कास का वेग आने पर सरलता से अत्यधिक कफ का निकलना ।
2. कास के वेग के समय हृदय प्रदेश, पार्श्व (During cough) प्रदेश, शंख प्रदेश तथा शिर प्रदेश में शूल होता है ।	2. उरोविदाह, ज्वर, मुखशोष, तिक्तास्यता, तृष्णा का होना ।	2. कास के वेग के समय शूल का न होना अथवा शिर:शूल हो सकता है ।
3. प्रसवत वेग (कास के निरन्तर वेगों का मिलना)	3. पित्तज ज्वर में मिलने वाली कास से इसकी तुलना करते हैं।	3. कफ से लिप्त मुख, कफ पूर्ण देह, उर:प्रदेश पर भारीपन होना ।
4. इसकी तुलना Tropical pulmonary eosinophilia से करते हैं ।		4. इसकी तुलना Bronchitis में होने वाले productive कफ से करते हैं ।

क्षतज कास :-

1. आरम्भ में शुष्क कास फिर रक्तष्ठीवन ।
2. उर:शूल (उर:प्रदेश में सूई चुभने जैसी पीड़ा) ।
3. ज्वर
4. श्वांस
5. तृष्णा
6. कास के वेग में पारावत् कूजन अर्थात् कबूतर के समान आवाज का मिलना ।

क्षयज कास :-

1. सपूय सरक्त निष्ठीवन ।
2. ज्वर ।
3. दाह ।
4. शोष ।
5. दुर्बलता ।
6. गात्रशूल ।

वस्तुत: क्षयज कास धातुक्षय एवं क्षीणता के साथ पाया जाने वाला कास है । वातज, पित्तज तथा कफज कास साध्य कहे गये हैं । क्षतज एवं क्षयज कास अपने पूर्व लक्षणों के साथ उपस्थित होने पर क्षीण व्यपित में असाध्य होते हैं । परन्तु बलवान व्यक्ति में कभी याप्य या साध्य भी हो सकते हैं । वृद्धावस्था में सभी प्रकार के कास याप्य होते हैं ।

चिकित्सा :- उपरोक्त लक्षणों के आधार पर कास का विनिश्चय करके दोषानुसार कास की चिकित्सा करनी चाहिए ।

वातज कास :-

* स्नेहन = घृतपान, वस्ति, पेया, यूष, क्षीर, मांसरस इत्यादि आहार रूप में देना चाहिए ।
* औषध प्रयोग - घृत (Medicated Ghrita) - कण्टकारी घृत, पिप्पल्यादि घृत, त्र्यूषलाद्य घृत, रास्ना घृत ।
* अवलेह = चित्रकादि लेह, विडंगादि लेह, अपराजित लेह, दुरालाभादि लेह, भाङ्‌ग्यादि लेह, कण्टकार्यावलेह,

अगस्त्यहरीतकी, हरिद्रा खण्ड, गुडार्द्रक, शिरीषादि लेह ।

* चूर्ण = विडंगादि चूर्ण, शट्यादि कल्क, हिक्षारादि चूर्ण, सितोपलादि चूर्ण, तालीसादि चूर्ण ।

* वटी = लवंगादि वटी, व्योषादि वटी ।

* क्वाथ = शिरीषादि क्वाथ, पुष्करमूलादि क्वाथ, भार्ङ्ग्यादि क्वाथ ।

* धूम एवं वर्ति = मन:शिलादि धूम, प्रपौण्डरीकाद्य धूमवर्ति, मन:शिलादि धूमवर्ति ।

पथ्य :- घृत तैल आदि स्नेह, दधि, दुग्ध, ईक्षुरस, गुडविकार, मधुर-अम्ल-लवण पदार्थों का सेवन ।

पित्तज कास :-

* वमन = मदनफल, काश्मरी एवं मधुक क्वाथ से वमन कराना चाहिए ।

* विरेचन = पित्तज कास में यदि कफ पतला हो तो मधुर द्रव्यों से युक्त त्रिवृत्त का प्रयोग निर्दिष्ट है । यदि कफ गाढ़ा हो तो तिक्त द्रव्यों से युक्त त्रिवृत्त का प्रयोग करना चाहिए ।

* औषध चिकित्सा :-

  * द्राक्षामलकादि लेह, खर्जुरादि लेह, त्वगादि लेह, पिप्पल्यादि लेह ।

  * बलादि क्वाथ, शट्यादि क्वाथ ।

  * क्षीर घृत, क्षीरामलक घृत ।

  * पंचमूल क्षीर, स्थिरादि क्षीर ।

  * अनुपानार्थ = द्राक्षारस, ईक्षुरस, अन्य मधुर, शीत एवं अविदाही पदार्थ प्रशस्त है ।

कफज कास :-

* संशोधन चिकित्सा - बलवान रोगी होने पर पहले वमन द्वारा संशोधन तथा लंघन कराना चाहिए । कफनाशक कटु, रूक्ष एवं उष्ण पदार्थों के यूष के साथ-साथ यव के अन्न का पथ्य भी देना चाहिए ।

* अनुपानार्थ = मधूदक, उष्णाम्बु, तक्र तथा स्वच्छ मद्य का प्रयोग करना चाहिए ।

* पानीय = पुष्करमूलादि पानीय ।

* लेह = देवदार्वादि लेह, शट्याद्यवलेह ।

* क्वाथ = कट्फलादि क्वाथ, पुष्करमूलादि क्वाथ ।

* घृत = व्योषादि घृत, दशमूलादि घृत, कण्टकारी कुलथादि घृत ।

* चूर्ण = सौवर्यलादि चूर्ण, विभीतक चूर्ण, सितोपल चूर्ण ।

क्षतज कास :-

* क्षतज कास को घातक एवं आत्ययिक अवस्था मान शीघ्र ही बल एवं मांस को बढ़ाने वाले मधुर द्रव्यों जीवनीय गण के द्रव्यों से चिकित्सा करनी चाहिए । के बल एवं मांस को क्षीण नहीं होने देना चाहिए ।

* आहार-विहार तथा औषध आदि पित्तज कास के स ही जानना चाहिए ।

* दुग्ध, घृत तथा मधु का बहुलता से प्रयोग करना चाहि

* जीवनीय घृत ।

* पिप्पल्यादि लेह, इक्ष्वाद्यवलेह ।

* मन:शिलादि धूम, जीवनीयादि धूम ।

क्षयज कास :-

* प्रत्याख्यान = दुर्बल पुरुष को यदि सम्पूर्ण लक्षणों युक्त क्षयज कास हो तो वह असाध्य है । रोगी बल हो और क्षयज कास नवीन हो तो प्रत्याख्यान क चिकित्सा करनी चाहिए ।

* वृंहण एवं अग्नि दीपन :- नवीन क्षयज कास में रोगी पहले बृंहण एवं अग्निदीपक चिकित्सा करनी चाहि

* बहुदोष के लिए सस्नेह मृदु विरेचन :- यदि दोष मात्रा अत्यधिक हो तो स्नेहयुक्त मृदु विरेचन दिया सकता है ।

* औषधि प्रयोग = पिप्पल्यादि घृत, द्विपंचमूलादि गुडुच्यादि घृत, कासमर्दयादि घृत ।

* हरीतकी लेह, द्राक्षादि लेह, चित्रकादि लेह, पदम् लेह, जीवन्तयादि लेह, पिप्पल्यादि अवलेह ।

* क्षतज कास में प्रयुक्त धूम तथा उनके अनुपान यहाँ युक्तियुक्त पूर्वक प्रयोग कर सकते हैं ।

* पथ्य = वृंहण आहार-विहार पथ्य है ।

कास-श्वास साथ-साथ होने पर संयुक्त चिकित्सा करनी क्योंकि ऐसे रोगी में कास तया श्वास दोनों ही कष्टदायी होते हैं । निम्नलिखित औषध उपयोगी हैं।

(शेष पृ०सं०190 पर दे

ग्रहणी

* डा० संदीप अग्रवाल, एम.डी.(आयु.) मेडि.

** डा० सुमन अग्रवाल, एम.डी.(आयु.) डी.जी.

मनुष्य के गुणों व दोषों का बहुत ही सुन्दर वर्गीकरण किया गया है । शारीरिक व मानसिक गुण व दोष जिसमें मानसिक गुण सत्त्व व रज, तम दोषों में यदि तुलनात्मक अध्ययन किया जाए तो सत्त्व गुण की कमी व रज, तम गुण की प्रधानता आज के वातावरण के कारण प्रभावी होती जा रही है । फलस्वरूप मनुष्य अपनी इच्छाओं का दमन नहीं कर पांता है और उसकी इन्द्रियां उसके मन पर प्रभावी होती जा रही हैं । यही धीरे-धीरे ग्रहणी रोग का निदान बन जाता है । ''यो लौल्यात जिह्वा लभते'' अर्थात् जो मनुष्य जिह्वा के लालच से अपने सुख हेतु आहार विहार करता है वह ग्रहणी रोग को प्राप्त होता है ।

कारण

एक कहावत है ''एक समय खाए तो योगी, दो समय खाए तो भोगी, तीन समय खाए तो रोगी'' अर्थात् यदि एक समय पर खाया हुए आहार को पचने का समय नहीं दिया गया और दूसरा आहार ले लिया जाए तो यहीं से आयुर्वेदमतानुसार रोगों के मूल ''आम'' की उत्पत्ति होती है जिसका एक अन्य कारण भी ''अग्निमांद्य'' है क्योंकि आयुर्वेद कथनानुसार ''सर्वे रोगापि मन्दाग्नौ'' अर्थात् सभी रोग मन्दाग्नि से होते हैं और सभी रोगों में केवल तीन रोगों के लिए विशेषकर कहा है कि निम्न तीन रोग मन्दानि से उत्पन्न होते हैं तथा एक दूसरे के कारण बनते हैं अर्श, अतिसार, ग्रहणी ।

ग्रहणी रोग के सामान्य लक्षण

वात, पित्त आदि दोषों के पृथक-पृथक अथवा तीनों दोषों के कुपित होने के कारण ग्रहणी नामक अवयव (Near Duodenum in the Intestine) दूषित होकर अधिकतर अर्थात प्रायः भोजन किए हुए अन्न को अपक्व ही (ग्रहण नहीं करके अर्थात् जैसा कि उसका कार्य है) त्याग देती है अथवा कभी पका हुआ भी पीड़ा के सहित दुर्गन्ध युक्त ऐसा नहीं करके कभी द्रव मल को बराबर बाहर करती है । इसी को ग्रहणी नाम दिया जाता है ।

ग्रहणी रोग के पूर्वरूप

मनुष्य को जब तृष्णा, आलस्य, बल की हानि, दाह का होना, बहुत विलम्ब से भोजन किए हुए अन्न का पाक होना और शरीर का भारी होना आदि लक्षण होते हैं तो यह समझना चाहिए कि इस रोग का आगमन होने वाला है ।

ग्रहणी रोग के निम्न भेद किए गए हैं

वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज (त्रिदोषज)

आमज ग्रहणी या संग्रहणी के लक्षण

(यह व्याधि की एक महत्वपूर्ण अवस्था जिसका वर्णन केवल आयुर्वेद में ही मिलता है ।)

जिस ग्रहणी रोग में आंतों में गुड़गुड़ाहट, आलस्य, दुर्बलता, अंगों में ग्लानि, कभी द्रव गाढ़ा कभी श्वेत वर्ण का और स्निग्ध पिच्छिल मल निकले बौर कटि भाग में पीड़ा हो तथा आमयुक्त अधिक मात्रा में पिच्छिल और शब्द करता हुआ मल निकले, आंत में मन्द-मन्द गुड़गुड़ाहट हो इस प्रकार का मल एक पक्ष 15 दिन, एक मास अथवा 10 दिन पर या नित्य ही निकले, दिन में रोग का प्रकोप अधिक अर्थात् दिन में मल अधिक निकले और रात्रि में शान्त रहे इस प्रकार की ग्रहणी से रोग का ज्ञान होना कठिन होता है । यह ग्रहणी बड़ी कठिनाई से होती है और बहुत समय तक रहने वाली होती है ।

असाध्य ग्रहणी के लक्षण

जिस रोगी को प्रतिलोम और अनुलोम दोनों से मिश्रित व्याधि एक के बाद एक हो और साथ ही ग्रहणी रोग हो वह अर्धमास 15 दिन के बाद नहीं जीवित रहता अर्थात् असाध्य है ।

चिकित्सा उपक्रम

1. यदि वायु का प्रकोप हो तो नमकीन और खट्टी वस्तुओं के साथ घृत का प्रयोग कराएं ।
2. यदि कफ क्षीण, अग्नि मन्द हो और मल पक्व एवं पतला आता हो तो सोंठ और सेंधा नमक के साथ अल्प मात्रा में घृत पान कराएं तथा विरेचक औषधि दें ।
3. उदरशूल में रसोन वटी आदि दें ।

अन्य योग :

---

* लेक्चरर ** लेक्चरर, चौधरी देवीलाल आयुर्वेदिक कॉलेज, जगाधरी, हरियाणा

घृत : दशमूलादि घृत, त्र्यूषणादि घृत, पंचमूलादि घृत ।
रस : कनकसुन्दर रस, ग्रहणीकपाट रस, आदि ।
वटी : चित्रकादि वटी, कुटजध्न वटी, अग्नितुण्डा वटी ।
चूर्ण : अभयादि चूर्ण, मरिच्यादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, जातिफलादि चूर्ण, लवणभास्कर चूर्ण ।
अरिष्ट अवलेह : तक्रारिष्ट, कुटजावलेह ।

सेवन करने योग्य आहार

* मूंग की दाल का पानी, अरहर की दाल का पानी ।
* साठी चावल, पुराने चावल ।
* मधु ।
* बकरी या गाय का दूध, दही, मक्खन या मक्खन निकाले हुए गाय के दूध की जमाई हुई द
* बेल का जूस, सिंघाडा आदि वस्तुएं ।

सेवन न करने योग्य आहार ।

* शराब, मिर्च, मसाले, चाय, काफी, तम्बाकू, छोड़ दे चाहिए ।
* आलू, बासी भोजन, मैदायुक्त भोजन, अधिक मात्रा शर्करा या इससे बनी मिठाई न दें ।
* तिल, उड़द की दाल, कुलत्थी, बैगंन, दही नहीं ले चाहिए ।
* धूम्रपान, चाय, गर्म भोजन, धूप का सेवन, क्रोध, म तथा लोभ आदि मानसिक विकार त्याग देना चाहिए

(पृ०सं० 188 का शेषांश)

(1) अमृतादि क्वाथ (2) भार्ङ्ग्यादि क्वाथ (3) विभीतक प्रयोग (4) पिप्पली वर्धमान कल्प

सर्वकास उपयोगी व्यवस्था

* जात्यादि धूम, जात्यादि धूमवति ।
* कण्टकारी घृत, त्र्यूषणादि घृत ।
* पिप्पल्यादि गुटिका, मरिच्यादि गुटिका, लवंगादि वटी, खदिरादि गुटिका, व्योषादि वटी ।
* कर्पूराद्य चूर्ण, मरिच्यादि चूर्ण ।
* हरीतक्यादि मोदक, गुडार्द्रक ।
* आर्द्रकावलेह, व्याघ्रीहरीतकी लेह, कासकण्डनावले अगस्त्यहरीतकी पाक् विभीतकावलेह, कण्टकार्यावले
* कास-श्वास विधूनन रस, हेमगर्भपोटली रस, कफकुं रस, कफकेतु रस ।

पथ्य = शालि, माष, मुद्ग, कुलत्थ, घृत, कासम लशुन, शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, उष्णोदक तथा मधु यथोचित प्रयोग पथ्य है ।

अपथ्य = मैथुन, स्निग्ध, मधुर पदार्थ, दिवास्व दुग्ध, दधि, पिष्यन्न, पायस तथा धूम कास के रोगी लिए अपथ्य है ।

बैद्यनाथ
हिंग्वष्टक चूर्ण
मंदाग्नि, आंव तथा पेट दर्द में उपयोगी

शय्या मूत्रण का सामान्य परिचय - एक अध्ययन

* कु० सरजा रानी, बी.ए.एम.एस. (प्रथम प्रोफ.)
** डा० सुरेश चन्द, एम.डी. (आयु.)

भूमिका

काय चिकित्सा अष्टांग आयुर्वेद का प्रमुख अंग है। वस्तुतः यही आयुर्वेद का सबसे जीवन्त अंग रहा है और आधुनिक समय में आयुर्वेदीय औषधियों के मानकीकरण तथा उनकी कार्मुकता के वैज्ञानिक पुष्टिकरण से कायचिकित्सा का पर्याप्त विकास हुआ है। दूसरी ओर रोग विज्ञान सम्बन्धी ज्ञान एवं तदर्थ आधुनिक नैदानिकीय विधियों के प्रयोग से कायचिकित्सा का व्यावहारिक पक्ष और अधिक सबल हुआ है।

शय्या मूत्रण का सामान्य परिचय

बच्चों का बिस्तर में या अन्तः वस्त्रों में मूत्र स्राव की समस्या वर्षा एवं शरद ऋतु में और गंभीर रूप से धारण कर लेती है। शीत के कारण बार-बार के असंयत मूत्रस्राव से और भी परेशानी होती है। बार-बार माता की नींद में व्यवधान पड़ता है तथा बिस्तर पर पेशाब करने के कारण बिस्तरों में संक्रमित होने का भय हो जाता है और संक्रमित वस्त्रों के कारण चर्मरोग होने की संभावना बलवती हो जाती है। फिर इस ऋतु में वस्त्रों को सुखाना भी कठिन होता है। रबर की चटाई का प्रयोग करने पर भी मूत्र लुढ़क कर बिछौने को इधर-उधर से गीला कर ही देता है। फ्रिज का शीतल जल पीना भी विशेष कारक है। ग्रीष्म ऋतु में तो बिस्तर पर पेशाब करने की यह शिकायत किसी हद तक स्वतः कम हो जाती है। आजकल बच्चे टी.वी. या चित्र कथाओं में भूत-प्रेत आदि के या अन्य हिंसक या डरावने चित्र देखते हैं या डाकुओं की कथाएं, कॉमिक्स आदि पढ़ते-सुनते हैं, जिससे उनके अन्तरमन में भय बैठ जाता है। ऐसे बच्चे रात्रि में नींद में भयोत्पादक स्वप्न देख कर भयभीत हो जाते हैं और भय के कारण अनजाने में बिस्तर में मूत्रस्राव हो जाता है।

आयुर्वेद मतानुसार शय्या मूत्रण का परिचयः-

बच्चों द्वारा वस्त्रों में मूत्र त्यागने का एक प्रमुख कारण भय है। कुछ माताएं अपने सुख के लिए बच्चों को डरा-धमका कर शीघ्र सुलाना चाहती हैं। इससे उन अबोध बच्चों के मन में भय व्याप्त हो जाता है। यदि कोई शिशु शीघ्र सोना नहीं चाहता, तो उसे प्यार-दुलार से मीठी-मीठी लोरी द्वारा सुलाने का प्रयास करें, न कि भूत-प्रेत-राक्षस या डाकू या हउआ का भय दिखाकर। इससे तो यह व्याधि घटने के स्थान पर बढ़ेगी ही। गृह-कलह, माता-पिता या सास-बहू बच्चों के सम्मूख क्लेश का वातावरण उत्पन्न करेंगे, तो बच्चे भयग्रस्त एवं तनावग्रस्त होंगे ही और भयवश रात्रि में बिस्तर गीले करेंगे ही।

आधुनिक मतानुसार मूत्र शय्या :-

उचित समय पर माता-पिता शिशु को यथास्थान मूत्र विसर्जन की शिक्षा देते नहीं, जब समस्या खड़ी होती है, तब इस दिशा में प्रयास किए जाते हैं। यदा-कदा जब शिशु इधर-उधर या बिस्तर में या अन्तःवस्त्र में मूत्र त्याग कर देता है, तो उसको केवल डांटते ही नहीं, अपितु उसकी पिटाई भी कर देते है और उसे धमकाते भी हैं कि उसने भविष्य में कभी बिस्तर में मूत्र त्याग किया तो उसे और भी कठिन दंड दिया जाएगा। परिणाम उलटा होता है और भय के कारण शिशु पुनः बिस्तर भिगोता है। दूसरी संतान के जन्म के उपरान्त पहली संतान की उपेक्षा, दूसरों के सम्मुख डांट-डपट या दंडित करना आदि ऐसे भावनात्मक कारण हैं, जिनसे बालक में असंयत मूत्रता उत्पन्न होती है। बच्चे उपेक्षा, प्रताड़ना या मारपीट के भय के कारण हीनभावना से ग्रस्त हो जाते हैं। मंदबुद्धि, आलसी, मानसिक या शारीरिक दुर्बलता के कारण भी मूत्राशय में दोष हो सकता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक दुर्बलता या शारीरिक दोष के कारण भी बच्चे बिस्तर गीला कर देते हैं यथा मूत्राशय में अवरोध, मूत्राशय में पथरी, मूत्राशय की सूजन, वृक्क की सूजन तथा कृमि रोग आदि के कारण मूत्र की मात्रा में वृद्धि हो जाती है जिसके कारण स्वप्नावस्था में अनजाने शय्या मूत्रण हो जाता है। स्थूलकाय शिशु, नासाग्रसनिका में शोथ, कंठशालूका, मानसिक विकलांगता एवं कुपोषणग्रस्त शिशु भी बिस्तर गीला करते हैं। चिकित्सकों के मतानुसार तीन-साढ़े तीन वर्ष के शिशु में स्वतः ही बिस्तर में या अपने अन्तःवस्त्रों में मूत्र विसर्जन न करने की बुद्धि उत्पन्न हो जाती है। यदि इस उम्र के उपरान्त भी शिशु बिस्तर में या अपने अन्तःवस्त्रों में मूत्र त्याग करता है, तो चिन्ता की बात है। इसका प्रमुख कारण है माता-पिता का उचित समय पर उन्हें यथार्थ दिशा-ज्ञान प्रदान न करना। यदि शिशु को प्रारम्भ से ही लाड़-प्यार से समझाते रहें, तो दो वर्ष का होते ही शिशु उचित स्थान पर मूत्र विसर्जन करने का अभ्यस्त हो जाता है।

** रीडर/विभागाध्यक्ष, शारीर क्रिया विभाग, शहीद करतार सिंह सराभा आयु. मेडिकल कालेज एवं हॉस्पीटल, सराभा, लुधियाना

उपचार :- इस रोग का उपचार माता के हाथ में है । वह चाहे तो शिशु को इस रोग से मुक्ति दिला सकती है । बस, उसे अपने निद्रा सुख की चिन्ता त्याग कर जब शिशु रात्रि में जागे तो उसे तुरन्त मूत्र-विसर्जन हेतु यथास्थान ले जाना होगा । कभी-कभी तो बच्चा अपनी माता को कहता है भी किन्तु माता कहती है, चुप कर सो जा, तंग मत कर । परिणाम ! बच्चा भयवश सो जाता है और नींद में बिस्तर गीला करने को बाध्य हो जाता है । अत: माता को चाहिए कि किंचित बड़ा एवं समझदार होने पर बालक को सोने से पहले मूत्र विसर्जन की आदत डलवाए । यदि बच्चा आलस्यवश कुछ आनाकानी करे, तो कुछ जबरदस्ती भी की जा सकती है । बिस्तर गीला करने वाले बालक को सोने से कम से कम एक घंटा पहले कोई पेय पदार्थ यथा - चाय, दूध, शर्बत या कोई शीत पेय न दें । रात्रि का भोजन सोने से तीन घण्टा पहले ही करा दें । ताकि वह सोने से पहले 2-3 बार जल ग्रहण कर ले । सोने से दो घण्टा पहले जल न दें तो अच्छा रहेगा । यदि ग्रीष्म ऋतु में बालक प्यास से बेचैन हो, तो 2-4 घूंट पानी दे सकते हैं । सोने से पहले बालक को मूत्र त्याग कराना न भूलें और रात्रि में कम से कम बच्चे को उठाकर मूत्र विसर्जन हेतु यथा स्थान ले जाएं और मूत्र त्याग हेतु प्रेरित करें । इससे कुछ समय में बच्चे को यथा-स्थान मूत्र त्याग करने की आदत हो जाएगी । फिर भी यदाकदा बिस्तर में मूत्र त्याग हो जाए, बालक को रोकें-टोकें अवश्य किन्तु डांट-फटकार या पिटाई से परहेज करें । उसे प्यार से समझाएं । दूसरों के सम्मुख उसका मखौल न उड़ाएँ, न ही उसे उसके साथियों के सामने लज्जित करें । उसे समझाएं बेटा, यह बुरी आदत है, इसे छोड़ देना अच्छा है । उपचार भावनात्मक एवं स्नेहपूरित हो । बालक को समझा-बुझाकर, भय, कुंठा एवं बेचैनी से उसकी रक्षा करें । बच्चे में विश्वास उत्पन्न करें कि बिस्तर में मूत्रस्राव कोई भयानक या असाध्य रोग नहीं, यह तो एक अतिसाधारण रोग है । तुम थोड़ा-सा ध्यान रखोगे, तो ठीक हो जाएगा । इस प्रकार उसमें व्याप्त हीन भावना को दूर करें । दिन में जब भी शिशु को लघुशंका की इच्छा हो उसे कुछ देर रोकने को कहें, तुरन्त मूत्र विसर्जन हेतु न भेजें । इस प्रकार कुछ समय रुकने से मूत्राशय का आकार बढ़ेगा और मूत्र धारण करने एवं विसर्जन पर नियंत्रण करने की क्षमता का विकास होगा ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा पत्रक :-

* अजवायन, काला तिल, वायविडंग तीनों को कूट गुड़ के साथ बेर के बराबर गोलियां बना लें । दि 3 बार दो-दो गोली, गुनगुने जल के साथ सेवन क से शय्या मूत्रण रोग से शीघ्र मुक्ति मिलेगी ।

* यकृत की दुर्बलता के कारण मूत्र रोकने की शक्ति कमी होने पर धनिया को जल के साथ सिल पर म पीस कर और किंचित जल में घोलकर व मि मिलाकर छान कर सेवन कराएं ।

* नित्य सोने से पहले 4 ग्राम अजवायन खिलाने से श मूत्रण बंद हो जाता है ।

* नींद में शय्या मूत्रण करने वाले बालक को काला ति सेवन कराएं ।

* शीतल चीनी का चूर्ण शीतल जल के साथ कुछ दि देने से शय्या मूत्रण रोग से मुक्ति प्राप्त होती है ।

* जो बालक रात्रि में स्वप्नावस्था में मूत्र विसर्जन क बैठते हैं, उनको सोने के समय दूध के साथ शंखपु सेवन कराने से अच्छा लाभ होता है ।

* सूर्य की रोशनी में रखा नारंगी रंग की बोतल का या दुग्ध शर्करा के सेवन से शय्या मूत्रण रोग से मु मिलती है ।

सारांश :- अष्टांग आयुर्वेद के अन्तर्गत कौमार शाखा का बहुत महत्व है । आचार्य कश्यप ने बच्चों में वाली मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों का वर्णन सुलभ तरीके से किया है और उनका उपचार भी जगह-ज स्पष्ट किया है । मूत्र शय्या (बिस्तर पर पेशाब करना) व्याधि मानसिक विकृति के द्वारा जन्म लेती है । मेरा विषय वस्तु पर यह मानना है कि जब कोई शिशु इस व्या से ग्रसित हो जाता है तो सर्वप्रथम निदान परिमार्जन पालन करना चाहिए । साथ ही साथ उस बच्चे को उपच में बतलाये गए औषधि-चिकित्सा पत्रक का पूर्णतया पा करवाना चाहिए और साथ ही साथ योग क्रियाओं का प्र करवाना चाहिए क्योंकि योग क्रिया एक ऐसा साधन जिसके द्वारा मानसिक भावनाओं का उद्गम होता है । इस शोध पत्र में कहीं कोई त्रुटि हो गई हो तो पाठकों निवेदन है कि उसे शुद्धिकरण करके लेखक को अनु करें ।

विचर्चिका रोग के परिप्रेक्ष्य में जलौकावचारण एवं पंचनिम्ब चूर्ण (वटी) की कार्मुकता का एक अध्ययन

*डा० रामेश्वर प्रसाद गुप्ता, एम.डी.   **डा० श्याम सुन्दर शर्मा

वर्तमान समय विज्ञान का युग है । इस युग में विज्ञान ने मानव की सुख सुविधाओं के लिए अनेक प्रकार के कृत्रिम साधन उपलब्ध करा दिये हैं । इन सुख साधनों के लालच में मनुष्य प्रकृति द्वारा निर्धारित स्वास्थ्यपरक नियमों की अवहेलना करता जा रहा है । आयुर्वेद के मनीषियों द्वारा निर्धारित प्रकृति के अनुकूल स्वास्थ्यपरक स्वस्थवृत्त एवं सद्वृत के नियमों का पालन कर मनुष्य आजीवन आरोग्य प्राप्ति के साथ-साथ शतायु की भी प्राप्ति कर सकता है । परन्तु वर्तमान के बदलते परिवेश में कृत्रिम भौतिक सुख सुविधाओं के कारण मनुष्य की प्रकृति से दूरी बढ़ती जा रही है तथा अतिव्यस्ततम दैनिकचर्या के कारण मनुष्य मिथ्या आहार-विहार करते हुए अनेक व्याधियों को निमंत्रित कर रहा है । इसी के तहत विचर्चिका नामक व्याधि जो कि त्वक्‌रोगों के अन्तर्गत है, से विश्व की लगभग 10 प्रतिशत जनसंख्या ग्रसित हो चुकी है । विचर्चिका के हेतुओं में कुछ अन्तःकारक एवं कुछ बाह्यकारक (विषैले रसायन, आघातादि) मुख्य हैं ।

विचर्चिका से ग्रसित व्यक्ति शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक प्रताड़नाओं के सहभागी हो जाते हैं तथा अपनी दैनिक क्रियाओं को परिपूर्ण नहीं कर पाते हैं । इस तरह वे जीवन की सामान्य सफलताओं को भी नहीं प्राप्त कर पाते हैं ।

विचर्चिका रोग में तीव्रकण्डू, स्राव, पिडिका, दाह, रुजा, रुक्षता, पाणिपादस्फुटन तथा श्याववर्णता मुख्य लक्षण है । ये सभी लक्षण व्यक्ति के प्रकृति एवं अन्तः-बाह्य कारकों के अनुसार बदलते रहते हैं ।

इस कष्टसाध्य एवं दुखःदायी व्याधि पर नियंत्रण के लिए चिकित्सा जगत में अनेक शोध कार्य हो रहे हैं । इसी प्रयास को ध्यान में रखते हुए विचर्चिका रोग लक्षण शमनार्थ राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर के शल्यतंत्र विभाग में प्रस्तुत शोध-कार्य किया गया ।

विचर्चिका रोग विषयक सामान्य परिचय

लक्षण -

चरक मतानुसार -

> **सकण्डूः पिडिका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ।**
>
> (च०चि० 7/26)

अर्थात् श्याववर्ण, बहुस्राव, अतिकण्डू से युक्त पिडिका विचर्चिका कहलाती है ।

सुश्रुत मतानुसार -

> **राज्योऽतिकण्ड्वर्तिरुजः सरुक्षा भवन्ति गात्रेषु विचर्चिकायाम् ।**
>
> (सु०नि० 5/13)

शरीर के हस्त, पाद तथा अन्य अंगों के त्वचा पर फटने जैसी रेखाएं पड़ना, अत्यधिक कण्डू, अत्यधिक रुजा तथा रुक्षता होना ये विचर्चिका के लक्षण होते हैं ।

सम्प्राप्ति घटक :-

विचर्चिका के सम्प्राप्ति घटक निम्न प्रकार से है -

1. दोष - त्रिदोष मुख्यतः कफ पित्त ।
2. दूष्य - त्वचा, रक्त, मांस, लसिका ।
3. स्रोतस - रक्तवह, स्रोतस, रसवह स्रोतस, मांसवह, मेदवह ।
4. स्रोतोदुष्टि प्रकार - संग ।
5. व्याधि निर्धारण - साम ।
6. उद्‌भव स्थान - आमपक्वाशय ।
7. अधिष्ठान - त्वक् ।
8. रोगमार्ग - बाह्यरोग मार्ग ।
9. प्रत्यात्मरूप - त्वक् विकृति ।

विचर्चिका रोग में दोष विवेचना

सुश्रुत - पित प्रधान   चरक - कफ प्रधान
अ.हृ. - कफ प्रधान   मा.नि. - वातपित्तज

विषयचयन का उद्देश्य

1. विचर्चिका रोग के लक्षणों को शान्त करना ।
2. रक्तमोक्षणार्थ जलौकाचरण विधि के मूल सिद्धान्तों एवं वैशिष्ट्यों का अध्ययन करना ।

---

*व्याख्याता, दयानन्द आयुर्वेद मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल, सिवान (बिहार)

** गाईड-विभागाध्यक्ष, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

3. पंचनिम्बचूर्ण (वटी) का विचर्चिका रोग की चिकित्सा में प्रभावात्मक अध्ययन करना ।
4. शोधन (जलौकावचारण) एवं शमन (पंचनिम्बचूर्ण) का विचर्चिका रोग में तुलनात्मक एवं संयुक्तरूप से होने वाले प्रभाव का अध्ययन करना ।
5. विगत वर्षों में विचर्चिका रोग की चिकित्सा में पृथक्-पृथक् विधियों से रक्तमोक्षण, अग्निकर्म तथा आभ्यन्तर प्रयोज्य औषधियों के प्रभावात्मक अध्ययन विषय पर हुए अनुसंधानों के परिणामों में सफलता प्राप्ति की जिज्ञासा से ध्येय को अनुसंधान की कसौटी पर रखना ।

कार्य पद्धति

1. आतुर चयन
2. चिकित्सकीय परीक्षण
3. आतुर वर्गीकरण
4. प्रयोगशालीय अध्ययन
5. वर्तमान अध्ययन में चयनित सभी आतुरों में व्याधि का निर्धारण निम्न आठ रोग विषयक शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर किया गया है । कण्डू, स्राव, पिडिका, रुजा, रुक्षता, दाह, पाणिपादस्फुटन, श्याववर्णता ।

उपरोक्त लक्षणों को अल्प, मध्य एवं तीव्रता के आधार पर तीन श्रेणियों में विभक्त कर अध्ययन किया गया ।

6. शास्त्रीय परिचर्या
7. औषध निर्माण एवं गुणकर्म

आतुर चयन - इस कार्य हेतु विचर्चिका रोग से ग्रसित 40 रोगियों का राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर के शल्य विभाग के आतुरालय के बहिरंग एवं अन्तरंग विभाग के चयनकर पंजीकृत किया गया एवं चयनित रोगियों के इतिवृत्त को पूर्वनिर्मित आतुर इतिवृत्त पत्रक में लिख लिया गया तथा नैदानिक परीक्षण एवं प्रयोगशालीय परीक्षण किया गया ।

आतुर वर्गीकरण - चयनित रोगियों को चार विभागों में विभक्त कर चिकित्सा के दौरान एवं चिकित्सोपरान्त शोध-कार्य का अध्ययन किया गया -

1. प्रथम वर्ग के रोगियों में रक्तमोक्षणार्थ जलौकावचरण किया गया ।
2. द्वितीय वर्ग के रोगियों में पंचनिम्बचूर्ण वटी का आभ्यन्तर सेवन कराया गया ।
3. तृतीय वर्ग के रोगियों में जलौकावचारण एवं पंचनिम्
वटी का संयुक्त प्रयोग कराया गया ।
4. चतुर्थ वर्ग के रोगियों को किसी औषधि विशेष
प्रयोग नहीं कर मात्र औषधि सेवन का आभास
कराया गया ।

औषधि चयन - प्रस्तुत शोध-कार्य में प्र
औषधि पंचनिम्बचूर्ण का चयन शार्ङ्गधर संहिता के म
खंड के छठे अध्याय से किया गया । इस योग के
द्रव्यों में निम्बपंचाग, लौहभस्म, हरीतकी, चक्रमर्द, चि
शुद्ध भिलावा, विडंग, शर्करा, आंवला, हरिद्रा, पिप्
मरिच, सोंठ, बाकुची, अमलतास, गोक्षुर, भृंगराज,
तथा विजयसार है । शोध-कार्य के लिए रोगी सेवन सौ
की दृष्टि से यहाँ पंचनिम्बचूर्ण को आधुनिक यंत्र के
वटी (टैबलेट) का रूप दिया गया ।

मात्रा - वयस्क - 2 ग्रा. (4.4 वटी) तीन समय प्रा
बालक - 1 ग्रा. (2-2 वटी)तीन समय प्रा
अनुपान - साधारण जल

अवधि - 30 दिन

विमर्श - शोध-कार्य हेतु विचर्चिका रो
लाक्षणिक शमनार्थ सेव्य पंचनिम्बचूर्ण वटी के घटक
एवं रक्तमोक्षणार्थ जलौकावचारण से विभिन्न लक्ष
प्राप्त लाभ निम्नरूपेण शास्त्रोक्त मत एवं सकारात्मक
पर आधारित है :-

जलौकावचारण का गुणात्मक एवं क्रियात्मक विवेचन

आयुर्वेदशास्त्र के अनुसार जलौका पित्तश
रक्तदुष्टिदोषशामक, दुष्टरक्तनिहर्रक प्रभाव वाला होता

आधुनिक विज्ञान के अनुसार जलौका के लाल
में निम्नलिखित रासायनिक तत्व पाए जाते हैं :-

1> Hirudin 2> Hementin 3> Hemente
4> Antistatin 5>Bdellin 6>Apyrase
7> Eglin 8>Destabilase 9>Hyaluronid
10>Lipase and Esterase 11> an anti-elastase
12> A Vasodilatory substance
13> An Anesthetic Substance

अत: जलौका में Antiinflammatory, Anti
terial, local anesthetic and analgesic effects, A

stress property आदि गुण पाए जाते हैं ।

पंचनिम्बचूर्ण वटी के घटकद्रव्य गुणात्मक एवं क्रियात्मक विवेचन-

पंचनिम्ब चूर्ण के घटक द्रव्य कफ-पित्तशामक, पित्तकफशामक, पित्तवातशामक, त्रिदोषशामक, दीपनपाचन, कुष्ठघ्नप्रभाव, शोथहगुण, वेदनाहरप्रभाव, स्वेदजननप्रभाव, मेध्यगुण, रसायनगुण एवं ऐन्टी-ऑक्सीडेन्ट गुण वाले हैं ।

आचार्य शार्ङ्गधर ने इसे रसायन एवं सर्वरोगनाशक कहा है ।

अनुवर्ती अध्ययन -

आतुरों को चिकित्सावधि के दौरान निदान परिवर्जन एवं पथ्य-अपथ्य का भी निर्देश दिया गया एवं रोग लक्षणों में हुए परिवर्तनों के सूचनार्थ प्रतिसप्ताहान्त आतुरालय में बुलाया गया ।

निर्धारण कसौटी (Assessment criteria)

निम्नलिखित 8 रोग विषयक लक्षणों को रोग निर्धारण कसौटी माना गया -

1) कण्डू 2) पिडिका 3) स्राव
4) रुक्षता 5) रुजा 6) दाह
7) पाणिपादस्फुटम 8) श्याववर्णता

उपर्युक्त 8 लक्षणों में चिकित्सा पूर्व एवं चिकित्सा पश्चात् हुए लक्षण परिवर्तनों के अध्ययनार्थ व्यक्तिगत रूप से उन्हें उनकी तीव्रता के आधार पर क्रमशः +++ (तीव्र), ++ (मध्य) तथा + (अल्प) एवं अनुपस्थित लक्षण के लिए '-' चिन्ह से दर्शाया गया ।

आतुरों में परिणाम का निर्धारण चिकित्सा पूर्व लक्षणों की तीव्रता एवं चिकित्सा पश्चात् शेष लक्षणों की तीव्रता की तुलना से प्राप्त लाभ को आधार मानकर किया गया ।

शोधकार्य हेतु चिकित्सकीय अध्ययन के दौरान निम्नलिखित तथ्य पाये गये -

1. पुरुष रोगियों की अपेक्षा स्त्री रोगियों की संख्या कम रही ।
2. मध्यम आयु (30-60 वर्ष) एवं विवर्धमान आयु (16-30 वर्ष) के रोगियों की संख्या अधिक रही ।
3. मजदूर रोगियों की संख्या सर्वाधिक फिर उसके बाद घरेलू महिलाओं की रही ।
4. मध्यम श्रेणी एवं निम्न श्रेणी के आर्थिक एवं सामाजिक रोगियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रही ।
5. लवणरस एवं गुरु आहार ग्रहण करने वाले रोगियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रही ।
6. अधिकांश रोगियों में मंदाग्नि पाया गया ।
7. चयनित रोगियों में सर्वाधिक प्रभावित अंग पाद फिर हस्त एवं फिर हस्तपाद मिला । सिर्फ एक रोगी में हस्तपाद के अतिरिक्त अन्य भाग प्रभावित मिला ।
8. वर्तमान अध्ययन में यह रोग लगभग सभी प्रकृतियों के रोगियों में समान रूप से मिला ।
9. सर्वाधिक रोगी जीर्णव्याधि स्वरूप (5-10 वर्ष पुराना) के रहे ।
10. लाक्षणिक रूप में कण्डू लक्षण सभी रोगियों में मिला, इसके अलावा पिडिका, स्राव, रुजा, दाह आदि भी मुख्य लक्षण रहे ।

चिकित्सोपरान्त प्राप्त विभिन्न रोगी वर्ग का लाक्षणिक प्रतिशत लाभ सारणी

सभी चारों समूहों में लक्षण 'कण्डू' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	66.6	7.217	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	73.07	10.58	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	88.48	10.76	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	13.6	1.4058	>0.2

सभी चारों समूहों में लक्षण 'पिडिका' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	84.61	6.472	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	65.00	9.461	<0.001

3.	तृतीय वर्ग	88.2	6.708	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	−12.5	0.0555	>0.1

सभी चारों समूहों में लक्षण 'स्राव' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	81.8	13.5033	>0.001
2.	द्वितीय वर्ग	68.42	8.579	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	92.00	8.833	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	15.38	0.6882	>0.5

सभी चारों समूहों में लक्षण 'रुक्षता' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	56.25	6.194	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	46.67	4.581	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	73.68	8.673	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	12.5	1.499	>0.1

सभी चारों समूहों में लक्षण 'रुजा' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	66.66	6.601	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	66.67	6.001	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	87.5	4.581	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	7.699	0.1	>0.1

सभी चारों समूहों में लक्षण 'दाह' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	84.21	9.797	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	71.4	8.987	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	87.5	4.581	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	16.6	0.6882	>0.5

सभी चारों समूहों में लक्षण 'पाणिपादस्फुटम' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p- value
1.	प्रथम वर्ग	60.00	5.0139	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	46.16	18.96	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	84.61	3.917	<0.001

4.	चतुर्थ वर्ग	5.55	5.0555	>0.1

सभी चारों समूहों में लक्षण 'श्याववर्णता' में चिकित्सोपरान्त प्रतिशत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ	t-value	p-value
1.	प्रथम वर्ग	54.54	7.217	<0.001
2.	द्वितीय वर्ग	53.33	3.2064	<0.001
3.	तृतीय वर्ग	64.24	4.44	<0.001
4.	चतुर्थ वर्ग	0	0	0

चिकित्सा के दौरान चार अनुवर्ती अध्ययनों में प्राप्त साप्ताहिक औसत लाभ

क्र०सं०	रोगी वर्ग	प्रतिशत लाभ			
		एकसप्ताहान्त	द्विसप्ताहान्त	त्रिसप्ताहान्त	चतुःसप्ताहान्त
1.	प्रथम वर्ग	30.23	48.28	61.72	69.34
2.	द्वितीय वर्ग	23.45	45.56	55.98	61.42
3.	तृतीय वर्ग	37.46	6.072	73.34	83.27
4.	चतुर्थ वर्ग	0.6	1.73	5.3	7.35

इस तरह स्पष्ट देखा गया कि वर्तमान शोध-कार्य में प्रयुक्त दोनों प्रकार की चिकित्सा शोधन चिकित्सा (जलौकावचारण विधि से रक्तमोक्षण) एवं शमन चिकित्सा (पंचनिम्बचूर्ण वटी का आभ्यन्तर सेवन) से विचर्चिका व्याधि में यथोचित लाक्षणिक लाभ मिला।

सर्वाधिक लाभ रोगियों के तृतीय वर्ग में मिला जहाँ पर प्रथम एवं द्वितीय दोनों चिकित्साओं का संयुक्त प्रयोग हुआ।

फिर प्रथम वर्ग एवं द्वितीय वर्ग के रोगियों में मिला।

सबसे कम लाभ चतुर्थ वर्ग के रोगियों में मिला क्योंकि इस वर्ग के रोगियों में किसी औषधि विशेष का सेवन नहीं कराकर सिर्फ औषधि का आभास मात्र कराया गया। अतः यहाँ अल्प या असार्थक लाभ मिला।

इस प्रकार प्रस्तुत शोध कार्याध्ययन के अन्तर्गत विचर्चिका रोग में सर्वाधिक लाभ संयुक्त चिकित्सा योजना (जलौकावचारण एवं पंचनिम्बचूर्ण वटी) में मिला। इसलिए विचर्चिका की चिकित्सा में यथोचित लाभ हेतु जलौकावचारण एवं पंचनिम्बचूर्ण वटी के संयुक्त विधान का प्रयोग करना उचित रहेगा।

सेवित औषधि के संदर्भ ग्रंथ में औषधि ग्रहण के लिए अनुपान रूप में खदिरसार तथा विजयसार क्वाथ का विधान दिया गया है, परन्तु रोगियों के सेवन सौकर्य की दृष्टि से प्रस्तुत शोध कार्य में साधारण जल का प्रयोग अनुपान रूप में किया गया। यदि उपरोक्त खदिरसार एवं विजयसार के क्वाथ का सेवन कराया गया होता तो सम्भवतः और भी अधिक लाभ मिलता।

निष्कर्ष (Conclusion) :-

1. उम्र की दृष्टि से बाल एवं किशोर वय के सबसे कम रोगी, मध्यावस्था एवं प्रौढ़ावस्था के सबसे अधिक रोगी मिलें तथा वृद्धरोगी भी कम मिलें।
2. गृहकार्य, मजदूरी करने वाले, निम्न सामाजिक-आर्थिक स्थिति वाले, लवण एवं गुरु भोजन तथा अध्यशन करने वाले व्यक्ति विचर्चिका से अधिक प्रभावित पाए गए।
3. मन्दाग्नि से प्रभावित व्यक्तियों में विचर्चिका रोग अपेक्षाकृत अधिक पाया गया।
4. प्रकृति की दृष्टि से प्रायः सभी दोषज प्रकृतियों में यह रोग पाया गया।
5. शोधन चिकित्सा के रूप में जलौकावचारण विधि से रक्तमोक्षण कर्म विचर्चिका के लक्षणों को शान्त करने में आशातीत प्रभावी रहा।
6. शमन चिकित्सा के रूप में आभ्यन्तर सेवनार्थ पंचनिम्बचूर्ण वटी आतुर सेवन सौकर्य, आर्थिक दृष्ट्या एवं लक्षण शमनार्थ प्रभावी रहा।
7. विचर्चिका रोग की चिकित्सा में जलौकावचारण एवं पंचनिम्बचूर्ण वटी का संयुक्त रूप में प्रयोग सबसे अधिक प्रभावी रहा।

जरूरी है विटामिन 'बी'

कैलाश जैन, एडवो

पूर्वी देशों में अक्सर 'बेरी-बेरी' नामक रोग बहुत से लोगों को होता रहता है । इस बीमारी के प्रारम्भिक लक्षणों में भूख खत्म हो जाना, थकावट, अनिद्रा, सिरदर्द आदि प्रमुख है । आगे चलकर इससे हृदयरोग, नाड़ियों की दुर्बलता, शरीर में पानी भर जाना आदि गंभीर रोग पैदा हो जाते हैं । 'बेरी-बेरी' नामक यह रोग काफी पुराने समय से चला आ रहा है । काफी समय तक वैज्ञानिकों ने इस रोग के कारणों पर अनुसंधान करके पता लगाया कि यह रोग आहार के किसी अभाव से सम्बन्ध रखता है । धीरे-धीरे विटामिन की खोज हुई और सन् 1926 में जैन्सन और डौनाथ ने विटामिन बी की शुद्ध रासायनिक संरचना की निश्चित जानकारी प्राप्त की । आगे हुई खोजों से पता चला कि विटामिन-बी अकेला संयोग नहीं है वरन् इसके कई भाग हैं, अत: इसे विटामिन 'बी' समूह (B-Complex) कहा गया । विटामिन-बी समूह के कई भाग हैं, जो निम्नानुसार हैं :-

विटामिन बी -1 थायमीन
विटामिन बी -2 रिबोफ्लैबीन
विटामिन बी -3 पैंटोथीनिक अम्ल
विटामिन बी -4 कोलीन
विटामिन बी -5 नायसीन
विटामिन बी -6 पिरीडाक्सीन
विटामिन बी -7 बायोटीन
विटामिन बी -8 इनोसिटॉल
विटामिन बी -9 फोलिक अम्ल
विटामिन बी -10 पारा-अमिनो बेन्जोइक अम्ल
विटामिन बी -12 ---

विटामिन बी समूह के सदस्य शेष विटामिन्स से ज्यादा महत्वपूर्ण इस कारण हैं कि अधिकांश शारीरिक रोग विटामिन-बी समूह के किसी न किसी अंश के अभाव के कारण शुरू होते हैं । ऊपर वर्णित लम्बे चौड़े विटामिन-बी समूह में से केवल थायामीन, रिबोफ्लैबीन, नायसीन, फोलिक अम्ल तथा बी-12 ही मानव जीवन व स्वास्थ्य के लिए उपयोगी सिद्ध हुए हैं ।

थायमीन अथवा विटामिन बी - 1

इसके अभाव में बेरी-बेरी नामक रोग होने पूर्ण आशंका रहती है । इसकी कमी से अनिद्रा, समाप्त होना, निम्न रक्त-चाप, कब्ज, वजन घटना, पैरों में जलन आदि सामान्य लक्षणों के साथ ही हृदय भी हो सकता है । विटामिन बी-1 अधिकतर वनस्प में पाया जाता है । अनाज, शाक-सब्जियों, बादाम, मूंगफली, सेव, गेहूं के अंकुर, सोयाबीन, आलू वस्तुओं में यह बहुतायत से पाया जाता है । इन वि की मनुष्य को 1 से 3 मिलीग्राम प्रतिदिन आवश्यकता है । बिना छने आटे की रोटी तथा अंकुरित अनाज विटामिन के भरपूर भंडार हैं ।

रिबोफ्लैबीन (विटामिन बी-2)

इस विटामिन की कमी के लक्षणों में च आना, हाथ-पांव कांपना, शिथिलता, होठों पर सूजन जाना, खुजली, आंखों में सूजन व जलन होना आदि इसकी अत्यधिक कमी हो जाने के कारण सिर के झड़ने लगते हैं । यह स्वास्थ्य के लिए एक बहुत विटामिन है जो शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बनाता है आदमी की कार्य शक्ति तथा रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता वृद्धि करता है। दूध, पनीर, मलाई, अंडा, हरी-स पालक, मेथी, मटर आदि में यह पर्याप्त मात्रा में पाया है । विटामिन बी-2 जख्मों को शीघ्र भरने में सहायता है । इसका रंग पीला होता है । गर्भवती स्त्रियों के लिए विटामिन विशेष रूप से लाभदायक है । विटामिन की औसतन दैनिक आवश्यकता 2-3 मिलिग्राम है।

नायसीन (विटामिन बी-5)

चमड़ी का मोटी हो जाना, जीभ व मुंह पर आ जाना, आंतों में खराबी आदि शरीर में नायसीन की के लक्षण हैं । इसके अतिरिक्त इसका अभाव मस्तिष्क नर्वस सिस्टम को भी प्रभावित करता है । मांस नाय की प्राप्ति का सर्वोत्तम स्रोत समझा जाता है । मछली, अंडे तथा गेहूं आदि में भी नायसीन पर्याप्त मात्रा में जाता है ।

(शेष पृ०सं० 222 पर देखें

34, बंदा रोड, भवानीमण्डी (राज.)-326502

दालचीनी मसाला ही नहीं, दवा भी

डा० हनुमान प्रसाद उत्तम

दालचीनी का अधिकतर इस्तेमाल आहार में मसाले की भांति खुशबू लाने के लिए होता है । जो भाग मसाले में प्रयोग किया जाता है वह पेड़ की सूखी छाल होती है। छाल और उससे निकाला गया तैल औषधियों में भी प्रयोग किया जाता है । दालचीनी को दार-चीनी भी कहते हैं । इसकी खास जगह लंका है । यह दक्षिण भारत और हिमालय प्रदेश में भी पाई जाती है । यह तीन तरह की होती है । प्रथम-चीनी दाल चीनी-जो चीन, सिंगापुर से आती है, द्वितीय-सिंहली दालचीनी जो लंका की, ज्यादा मधुर एवं कम तीक्ष्ण होती है, तृतीय - भारतीय दालचीनी जो सबसे मोटी एवं कम तीक्ष्ण होती है । पर्याय - संस्कृत में त्वक्, बहुगंधा । हिन्दी, पंजाबी, बंगाली में दालचीनी । मराठी, गुजराती में तज, दारचीनी, तमिल में कारूया, तेलगु में सानिलफु, अरबी में दारचीनी तथा लैटिन में सिन्नेमोमस् जिलेनिकम् कहते हैं ।

बनावट :- यह एक मध्यम आकार का कत्थईपन तथा लाली लिए हरा-भरा पेड़ होता है । इसकी छाल एक से ढाई से.मी. मोटी होती है । इसके पत्ते आमने-सामने 7.5 से.मी. से 20 से.मी चौड़े, चर्म की भांति छोटे रोमों से युक्त और ऊपरी भाग पर चमकीले होते हैं । फूल पीलिमा लिए कत्थई रंग के होते हैं । फल गहरे बैंगनी रंग के करीब 1.3 से 2.5 से.मी. लम्बे होते हैं ।

रासायनिक विश्लेषण :- इसमें एक उड़नशील तेल, सिनेमन आइल 2 प्रतिशत, सिनेमिक अम्ल, राल, टैनिन, शर्करा, स्टार्च, ऐश (भस्म) आदि पदार्थ होते हैं । पत्तियों से गहरे वर्ण का लौंग की भांति सुगंध वाला तेल निकलता है ।

गुण :- आयुर्वेद के मुताबिक यह तासीर में कटु, मीठी, पचने पर कटु तथा हल्की, रूक्ष, तीक्ष्ण और उष्ण होती है । इसका खास असर श्वसन तंत्र पर कफ शामक रूप में पड़ता है । यह उत्तेजक, कामोद्दीपक, कृमिनाशक, पौष्टिक, दर्दनाशक, नाड़ी संस्थान को उत्तेजक, यकृत उत्तेजक, हृदय बल कारक, क्षय नाशक और मूत्रल है । यह पतले दस्त (अतिसार) एवं छर्दि (वमन) व्याधियों में मुफीद है । यह पाचक, उदर का अफारा एवं वायु को कम करने वाली और अंतड़ियों का ताकत प्रदत्त करती है । औषधीय प्रयोग - इसके कुछ चुनिंदा प्रयोग निम्नवत् हैं :-

* दालचीनी के तेल की तीन-चार बूंद कान में डालने से कान की पीड़ा अच्छी हो जाती है ।
* धातु पुष्ट करने के लिए दालचीनी का बारीक चूर्ण एक-एक ग्राम सबेरे-शाम गर्म दूध के साथ खाने से धातु में बढ़ोत्तरी होती है ।
* दालचीनी के तेल को उचित अनुपान में मिश्री मिलाकर सेवन करने, नाक बंद रहना, लालिमा, पानी का बहना, कफ घड़घड़ाना, छींके आना जैसी खामियां दूर हो जाती हैं, तेल की कुछ बूंदें रुमाल में डालकर सूंघने से भी लाभ होता है ।
* 15 तुलसी के पत्ते, 7 कालीमिर्च, थोड़ा दालचीनी और थोड़ा अदरक-सभी चीजों को कूटकर चूर्ण बना लें । इस चूर्ण में पानी मिलाकर उबालें और छानकर पिएं । सुबह सरसों का तेल सूंघें । गर्म पानी में नमक डालकर गरारे करें । इससे गले की तकलीफ कम होगी ।
* यदि सिरदर्द हो, तो दालचीनी को आधा घंटा पानी में भिगोकर पीसकर सिर पर लेप करने से सिरदर्द ठीक हो जाता है ।
* पुरानी खांसी, बुखार तथा बवासीर के उपचार में कायफल और दालचीनी का बराबर-बराबर मिश्रण प्रयोग में लाना फायदा पहुंचाता है !
* नीम की छाल, इन्द्रजौ, दालचीनी, दारुहल्दी और रसांजन का काढ़ा, मुख दुर्गन्ध को समूल नष्ट करता है ।
* सुपारी की राख, बादाम के छिलकों की राख, कत्था, दालचीनी, हरड़, नागरमोथा, कपूर, माजूफल, फिटकरी, भुनी इलायची, अकरकरा, कालीमिर्च, सेंधानमक-सभी वस्तुएं बराबर मात्रा में लेकर पीस लें । इस मंजन को दांतों पर लगाने से दांत साफ रहते हैं, जड़ें मजबूत होती हैं और मसूढ़ों के रोग दूर होते हैं ।
* दालचीनी का तेल पेट पर मलने से आंतों का खिंचाव मिट जाता है ।
* दालचीनी की छाल चार ग्राम लेकर उसमें 10 ग्राम कत्था मिलाकर पीस लेना चाहिए । इसमें 250 मि.ली. खौलता हुआ पानी डालकर ढंक देना चाहिए । दो घंटे पश्चात् उसको छानकर दो भाग करके पीना चाहिए । इससे पतले दस्त बंद हो जाते हैं ।

जन शिक्षण इण्टर कॉलेज, प्रेमपुर, कानपुर नगर - 208 001

पाषाण भेद - शोधपूर्ण विवेचन

कविराज डा० दिवाकर ठाकुर, जी.ए.एम.एस. औनर्स (पटना), डी.एस.सी.ए. (आयुर्वेद विशा

पाषाण भेद को विद्वानों ने पाथरचूर इसलिए कहा है कि यह पत्थर को फाड़कर बाहर निकलता है। 'पत्थर को फोड़कर इसके इर्द-गिर्द निकलने वाले क्षुप जो अश्मरी (Stone) का भेदन करता है वही पाषाण भेद है। यह एक संदिग्ध वनौषधि है। इसके अभाव में अनेक वनौषधि ली जाती है। राजनिघण्टु में पाषाणभेद, वटपत्री, शिला वल्का और चतुष्पत्री इन चार प्रकार के भेद से पाषाण भेद का वर्णन किया गया है। आधुनिक वनस्पतिशास्त्र के ज्ञाता निम्न वनस्पतियों को पाषाण भेद मानते हैं। जैसे-

1. Saxifrage ligulata, 2. Aeralanata, 3. Kalanchoe Pinnta, 4. Coleus aromaticus, 5. Hemonia reparia, 6. Rotula aquatica, 7. Ocimum basilicum

उपरोक्त वनस्पतियों में से अधिकतर मूत्रप्रवर्त्तक जरूर है लेकिन इसमें से Saxifrage ligulata को ही विशेषकर पाषाण भेद के नाम से व्यवहार में लाया जा रहा है। यह क्षुप जाति की वनौषधि जो सालों भर पाई जाती है। इसका जड़ बहुत कठोर लालीपन लिए हुए सफेद, एक इंच मोटा और दो इंच लम्बा होता है। इनमें से अनेक उपमूल निकलकर पत्थरों के बीच फैले रहते हैं। इसका पत्र मोटा चिकना, गोलाकार, किनारा दंतुर, ऊपरी पृष्ठ हरा और निचला भाग प्राय: गुलाबी तथा पाँच से दस इंच के व्यास में रहते हैं। एक स्थान् पर प्राय: तीन या चार पत्तियों से अधिक नहीं निकलती है। फूल छोटा ईषत्रक्त वर्ण एवं जामुनी रंग का आता है। फल नीलापन लिए सफेद और छोटा होता है।

इसके मोटे जड़ का टुकड़ा बाजार में मिलता है। ये टुकड़े करीब एक से दो इंच मोटे, हल्का पीला रंग, कड़ा एवं छाल खुरदरी होती है। इस पर टूटे हुए उपमूलों के निशान एवं गोल गड्ढे जैसे रहते हैं। इसके अंदर का भाग सफेद, स्वाद में कसैला और सुगंधित रहता है।

इसकी एक और अन्य प्रजाति B.strecheye H.F. पाषाण भेद के नाम से व्यवहृत होती है। स्थान भेद से इसे विभिन्न नामों से जाना जाता है। जैसे-संस्कृत में पाषाण भेद, वटपत्रभेद, गिरिभिद्, अश्मध्न। हिन्दी में परवानभेद, पाथरचूर, सिलफड़ा, पोपल, वनपत्रक, दकचु। मद्रास व गुजरात में परवान भेद, पाथर चूर। पंजाब में शाफ्रां काश्मीर में वथेव। रावी में सप्रोत्री। खासिया में अ कुमायूँ में शिलफोड़ा। चिनाव में बलपिआ आदि।

भाव प्रकाश में पाषाण भेद का गुण निम्न दिया है -

यह शीतल, तिक्त और कषाय रस युक्त है मूत्राशय का शोधक और इसमें होने वाली अश्मरी (Sto का भेदन करता है। वातादि दोष, बवासीर, गुल्म, मूत्रकृ पथरी, हृद्रोग, योनि रोग प्रमेह, प्लीहा, शूल तथा व्रण ना है। यह पथरी को घुलाता है। मूत्र की वृद्धि कर घुले पथरी को पेशाब द्वारा बाहर निकाल देता है और पेशाब खुलकर साफ आता है।

आमयिक प्रयोग - इसके चूर्ण को गोखरु क के साथ सुबह व शाम सेवन करने से वृक्क शूल अश्मरी में लाभ मिलता है। बच्चों के मूत्ररोग में दूध साथ घिसकर पिलाने से पेशाब की विकृति दूर हो ज है। बच्चों को दांत आने के समय होने वाली पीड़ाओं इसको मधु के साथ प्रयोग कराया जाता है।

फोड़ा तथा आँख आने पर पानी के योग घिसकर लेप किया जाता है।

आंत के लिए बलदायक है। ज्वरातिसार में सिद्धप्राणेश्वर रस के साथ प्रयोग हितकर होता है। आंत की विकृति के कारण होने वाले अतिसार में भी उपय है। यह अफीम विष को नष्ट करने में उपयोगी है। अनिद्रा और सिरदर्द निवारणार्थ पाषाण भेद बीजों को बनाकर लगाया जाता है तथा बीजों को पानी में पीस प्रलेप किया जाता है। हृद्रोग के रोग में अर्जुन छाल क्वाथ और पाषाण भेद का चूर्ण व्यवहृत होता है। रक्ता में दूर्वारस के साथ और ज्वर में गुरिच पत्र स्वरस के स दिया जाता है। इसका जड़ औषध काम में आता है। इस चूर्ण की मात्रा तीन से छ: ग्राम और क्वाथ की मात्रा पच से सौ मिली निर्धारित है। पाषाण भेद से बनने वा औषधि-पाषाण किलो रस, पाषाण भेदादि क्वाथ, पाषा भेदादि घृत, पाषाण भद्रो आदि औषधियाँ इसके योग बनाई जाती हैं।

इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद, रिसर्च एण्ड हॉस्पीटल, सर्किट हाउस के सामने, पकड़ी, आरा - 80230

जोडों की कष्टसाध्य व्याधि - आमवात ''निदान एवं चिकित्सा''

डा० विजय कुमार राय

आज के व्यस्ततम एवं भागदौड़ भरे जीवन में अगर कोई व्यक्ति अपने हाथ-पैर चलाने में असमर्थ हो जाए तो इससे ज्यादा दु:खदायी उस व्यक्ति के लिए और क्या हो सकता है । ऐसी व्याधियाँ जो लोगों को अपने पैरों पर खड़े नहीं होने देती, हाथों से अपने नित्य कर्म नहीं करने देती और रोगी को दु:ख के सागर की तरफ अग्रसर करती रहती है, ऐसी ही अस्थि-सन्धियों को प्रभावित करने वाली व्याधि है ''आम-वात'' (Rheumatoid Arthritis)। अस्थि सन्धियों में प्रमुखता से पायी जाने वाली व्याधि है, जो मनुष्य के दोनों तरफ (Symmetrical) की श्लैष्मिक कलावरण वाली अस्थि-सन्धियों (Synovial joints) में समान रूप से शोथ, उनकी संरचना को नष्ट करके, उनमें जड़ता (Stiffness) उत्पन्न करती है ।

आमवात एक कष्ट साध्य व्याधि है जो प्राय: छोटी सन्धियों से प्रारंभ होनेवाली एवं छोटी-बड़ी सभी अस्थि सन्धियों में पायी जाने वाली व्याधि है जिसकी पीड़ा भ्रमणशील होती है साथ ही साथ अन्य संस्थानों को भी यह रोग बुरी तरह से प्रभावित करता है ।

यह रोग विश्व की 1% जनता को प्रभावित करता है । इसका लिंग के आधार पर पाये जाने का अनुपात स्त्री-पुरुषों में 3:1 का है । यह रोग सामान्यत: 40 से 45 वर्ष की उम्र के मध्य उत्पन्न होता है लेकिन यह किसी भी वय काल में पाया जा सकता है । प्रति वर्ष इस रोग से ग्रस्त रोगियों के प्रतिशत में वृद्धि पायी जा रही है ।

आमवात शब्द आम+वात से मिलकर बना है, इसे ''आमेन सहित वात'' कहते हैं, अर्थात् आमयुक्त वात, आमवात रोग उत्पन्न करता है । विरुद्ध आहार-विहार करने वाले, मन्दाग्नि और निश्चेष्ट अथवा स्निग्ध भोजन करके तुरन्त व्यायाम करने वाले मनुष्य का आमरस प्रकुपित वायु से प्रेरित होकर श्लेष्मा के मुख्य स्थान आमाशय, सन्धि तथा उर:सिर एवं कण्ठ की ओर जाता है । अधिक विकृत और अर्धपक्व होने पर यह आम रस वायु द्वारा प्रेरित होकर धमनियों में पहुँच जाता है । धमनियों में स्थित तीनों दोषों से मिलकर और भी अधिक दूषित होकर यह विभिन्न वर्णों वाला पिच्छिलता गुणयुक्त आमरस शरीर के विभिन्न स्रोतों में क्लेद उत्पन्न करता है । इससे दुर्बलता तथा हृदय में भारीपन आ जाता है । यह आम रस शरीर की अनेक व्याधियों (Systemic diseases) का जनक होने से अत्यन्त भयंकर होता है । वात और आम एक साथ प्रकुपित होकर कोष्ठ, त्रिक प्रदेश तथा सन्धियों में प्रविष्ट हो जाते हैं और सारे शरीर को जकड़ देते हैं । यह रोग आमवात कहलाता है ।

इस रोग को उत्पन्न करने में आनुवांशिक कारक HLA-DR HLA-DR$_4$ इत्यादि मानसिक कारक (Psychological factors), ठंड एवं जल में रहना (Exposure to cold), अस्थि-सन्धि पर आघात (Trauma) एवं पर्यावरणीय प्रेरक तत्व (Environmental triggers) भी सहायक होते हैं ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आमवात को Rheumatoid arthritis कहते हैं । Rheumatoid शब्द ग्रीक भाषा से उत्पन्न है, और roo'ma'-toyd से बना है । जिसमें rheuma का अर्थ स्राव है, और eidos का अर्थ संरचना या आकार है, Arthritis का अर्थ अस्थि-सन्धि का शोथ । अस्थि-सन्धियों में घर्षण न हो उसमें स्निग्धता बनी रहे इसके लिए श्लेष्म धरा कला (Synovial membrane) से ऐसी सन्धियां घिरी रहती हैं और कला से बने खाली स्थान में श्लेष्मक कफ (Synovial fluid) का स्राव होता रहता है । जो अस्थियों का आपस में रगड़ से बचाता है और इस कारण उसमें गतिरोध नहीं पैदा होता है ।

इस प्रकार Rheumatoid artheritis वह व्याधि है जो श्लेष्मक कला (Synovial membrane) से आवृत अस्थि सन्धियों में शोथ उत्पन्न करती है ।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में आमवात के कारणों (Aetiological factors) का सही ज्ञान अभी तक स्पष्ट नहीं हो पाया है । अधिकांश चिकित्सकों का मानना है कि आमवात (Rheumatoid arthritis) स्वात्मप्रतिरोधबल सम्बन्धी (Autoimmune mechanism) कारण से उत्पन्न रोग है । इसके बारे में आधुनिक चिकित्सा शास्त्रों में लिखा

प्रवक्ता, चौ० देवीलाल कालेज ऑफ आयुर्वेद, जगाधारी, यमुनानगर (हरियाणा)

है - Etiology of Rheumatoid in unknown but auto :- immune mechanism are implicated. यह रोग अपना दुष्प्रभाव केवल अस्थि सन्धियों पर नहीं छोड़ता अपितु इसका दुष्प्रभाव सार्वदैहिक होता है ।

इन सभी बातों को Short Practice of Surgery - Baily and loves' में इस प्रकार से कहा है - The aetiology of Rheumatoid arthritis is unknown, but a number of theories have been advanced of which probably the most widely credited today rest upon the belief that the disease is immune in nature. Certainly the disease is systemic in that its menifestations are not only limited to joints.

अगर हम आमवात (Rheumatoid arthritis) में अस्थि सन्धि विकृति (Pathology) को आधुनिक चिकित्सा ग्रन्थों के प्रकाश में देखें तो सन्धि में विकृति उत्पन्न होने के कारण और प्रक्रिया, एक मोटे तौर पर इस प्रकार से सामने आती है :- हमारे शरीर की प्रतिरोधक क्षमता प्रबन्ध में अगर कोई विजातीय प्रतनक विष (Antigen) पाया जाता है तो यह प्रबन्ध इस विजातीय प्रतनक विष को खत्म करने के लिए प्रति विष (antibodies) तैयार करता है और प्रतनक विष से रक्षा करता है ।

आतवात में यह विष जब अस्थि-सन्धियों में पहुंचता है और उत्प्रेरण (Irritant) करता रहता है, चाहे वह विषाणु का प्रतनक (Proteins) हो या जीवाणु प्रतनक (Bacterial proteins) हो या अन्य कोई भी प्रतनक विष हों । इस प्रतनक विष के कारण वहां की श्लैष्मिक कला (Synovial membrane) फूल (Hyper trophied) की जाती है । अधिक मात्रा में उसमें लसिका कोशायें (Lymphocytes) तथा रक्त रसीय कोषायें (Plasma Cells) इकट्ठा होने लगती हैं और यहाँ पर बड़ी मात्रा में और निरंतर प्रतिविषों (Antibodies) का निर्माण होने लगता है । इसी समय सन्धियों की आन्तरिक संरचनाओं पर दानेदार उत्तक (Granulation tissues) बनने लगते हैं जिन्हें पानस (Pannus) कहा जाता है, इन्हीं पानस (Pannus) के नीचे की सतह से उपस्थित लेप (Cartilage) जो सन्धि निर्माण में सहायक है का छत होने लगता है । इस विकृति में उपस्थित लेप का छत होता है और आस-पास की मांस पेशियां कमजोर होने लगती अस्थि संधि का अन्तराल (Space) घटने लगता सन्धि के स्नायु (Ligaments) एवं उपास्थि लेप कारण शोथ (Inflammation) एवं शूल (Pain) होता है । अगर सही क्रम चिर काल तक बार-बार रहता है तो प्रारंभ में संधि में जड़ता उत्पन्न होती है सन्धियों की गति में न्यूनता आने लगती है और सन्धि वक्रता (Deformity) हो जाती है ।

आमवात के सामान्य लक्षण जो अस्थि संधि नहीं पाये जाते अपितु ये लक्षण सार्वदैहिक रूप से आते हैं वो इस प्रकार से हैं - विभिन्न अंगों में पीड़ा अरुचि आलस्य, शरीर का भारीपन, ज्वर, भोजन पचना, शरीर के अंगों में शोथ होना । ये सामान्य आमवात के प्रारम्भ काल के हैं, अगर आमवात प्रवृद्ध अवस्था में पहुँच जाता है तो वह बड़ा ही कष्ट हो जाता है । यह हाथ (Metaearpophangeal interphalangeal joint), पैर (Subtalar and midla joints) सिर (Cervical spine), गुल्फ (ankle), (Saeenim & hips becoem involved), जानु (kn तथा अरू (Thigh) की संधियों में पीड़ा युक्त शोथ हो जाता है । इसके अतिरिक्त जिस स्थान पर पहुँचता रहता है वहां-वहां बिच्छू के दंश के समान (Shifting pain or plitting pain) का अनुभव होता इस अवस्था में सार्वदैहिक लक्षणों में मुख्यतः (Indigestion) लालास्राव (Salivation) अरुचि (A rexia) तथा गौरव (Heaviness of the body) पाये हैं । व्यक्ति उत्साह विहीन सा हो जाता है, रोगी में ग्रह (Heaviness of the pericardial region) कोष्ठबद्धता (Constipation) पायी जाने लगती है, लगभग अकर्मण्य हो जाता है, कष्ट के मारे रोगी रातें कर गुजार देता है ।

अगर आमवात (Rheumatoid arthritis) प्रारम्भ एवं उसकी प्रवर्धमान काल के लक्षणों पर गम्भीर दृष्टि डालें तो मिश्रित रूप से आमवात के

इस प्रकार से सामने आते हैं :-

यह रोग अपना आक्रमण धीरे-धीरे करता है, जोड़ों में दर्द, उनमें जकड़न, दोनों तरफ के जोड़ प्रभावित तथा रोगी प्राय: प्रात:काल में सन्धियों में जकड़न ज्यादा बताता है। यह रोग दूर की अस्थि सन्धियों (Peripheral joints) से प्रारंभ होता है। पहले जोड़ों में दर्द चलते समय मालूम होता है परन्तु धीरे-धीरे यह विश्राम की अवस्था में भी रहने लगता है।

हाथों की अंगुलियों के पर्वों के मध्य जो सन्धि बनती है वह तक्वाकार (Spindle) होने लगती है, हथेलियाँ कलाईयों से अन्दर की ओर और अंगुलियां बाहर की ओर इस प्रकार का स्वरूप हाथों का हो जाता है। अंगुलियों के प्रारम्भ की पर्व सन्धि (Proximal Inter Phalangeal joints) हंस की गर्दन की आकृति के समान का हो जाता है (Swan neck deformity)एवं हाथ का अंगुष्ठ अंग्रेजी के 'Z' की तरह का हो जाता है। हाथ में अस्थि सन्धियों के ऊपर ग्रन्थी के आकार की वृद्धि होने लगती (Subcutaneous nodules)। यह ग्रन्थि सामान्यत: वही होती है जहां श्लैष्मिक कला होती है या जहां घर्षण होता है।

रोगी पैरों के घुटनों को साथ में मिला कर खड़ा होता है तो दोनों घुटने शरीर की मध्य रेखा से काफी बाहर की तरफ पाये जाते हैं इसी प्रकार पैर के पंजों को देखने पर अंगूठा भी पंजों से बाहर की तरफ घुमा हुआ सा रहता है। घुटने के पीछे की खात में एक उभार सा कभी-कभी रोगी बताता है जो Baker's cyst के नाम से जानी जाती है, जो बाद में पैरों की कॉफ (Calf Muscles) नामक मास पेशियों में चला जाता है और वहाँ पर वेदना होती रहती है जो भ्रम पैदा करती है कि रोगी को रक्त-सिरा घनता (Deep vein Thorombosis) तो नहीं है। शरीर की अस्थि-संधियों की गति में हीनता आ जाती है, जोड़ अपने स्थान से खिसक जाते हैं और अस्थि-सन्धि वक्रता हो जाती है।

इन लक्षणों के अतिरिक्त-अस्थि अंगुरता (Osteo porosis), आंखों की पारदर्शक झिल्ली में अपारदर्शिता (Keratoconjuctivitis), हृदयावरण कला शोथ (Pericarditis), रक्ताल्पता (Anaemia), फुस्फुसावरण कला शोथ, शरीर की मांस पेशियों में क्षय (Wasting of muscles) हाथ के नर्व तन्तुओं पर दबाव जो (Carpal tunnel syndrome) कहा जाता है आदि लक्षण भी आमवात के चिरकारी होने पर मिलते हैं।

इस रोग के निश्चित पहचान के लिए जो परीक्षण किये जाते हैं वो इस प्रकार हैं -

- X-ray
- ESR
- CRP
- Alkaline phosphatase
- Serum amyloid
- RA factor test
- ANA test
- HLA test
- Synovial fluid analysis
- Arthroscopy
- CT Scan.

चिकित्सक अपनी समझ से इसमें से कुछ परीक्षण या सभी परीक्षण या लक्षणों के आधार पर इस आमवात (Rheumatic arthritis) रोग की पहचान करता है।

इस रोग में कभी-कभी अस्थि संधियों में पाक भी हो जाता है और इस अवस्था में रोगी को अत्यधिक कष्ट होता है, इस रोग में हृदय विकार भी हो जाता है, शरीर की सभी सन्धियों में शोथ हो जाता है तो प्राय: यह रोग कष्ट साध्य या असाध्य हो जाता है।

अगर यह कहा जाय कि अभी तक इस रोग को जड़ से समाप्त करने की चिकित्सा एलोपैथी या अन्य विद्या में है तो यह अतिशयोक्ति होगी परंतु ऐसी क्षमता आयुर्वेद चिकित्सा में है। यही कारण है आज आयुर्वेद के चिकित्सकों के पास आमवात के रोगियों की तादाद अधिक होती है। लेकिन ये रोगी आमवात के चिरकारी होने पर आयुर्वेद चिकित्सक के पास पहुंचते हैं अन्यथा इस रोग के प्रारम्भ में रोगी के आहार-विहार व अन्य आमवातकर निदानों का परिवर्जन करा कर आयुर्वेदिक औषधियों से इस रोग को समूल नष्ट किया जा सकता है।

आमवात की चिकित्सा आयुर्वेद के चिकित्सकों

के लिए कोई नई बात नहीं है । यह परम्परा आयुर्वेद के चिकित्सा ग्रंथ 'चरक संहिता' से चली आ रही है और निरन्तर शोधों से अनेक कारगर औषधियों का आज प्रयोग हो रहा है । आयुर्वेद में दोष-दूष्य, मल, अग्नि के शरीर में वैषम्यता, रोग का कारण एवं समता स्वास्थ्य में कारण है, सिद्धान्त पर चिकित्सा कार्य सम्पादित किये जाते हैं ।

आमवात रोग की चिकित्सा :-

- * सर्वप्रथम आमवर्धक, प्रकोपक, वातवर्धक, वातप्रकोपक, निदानों (कारणों) का परित्याग कराते हैं ।
- * अग्निवर्धन के लिए दीपन-पाचन औषधियों का प्रयोग कराते हैं तदुपरान्त चिकित्सा प्रारम्भ कराते हैं ।
- * अगर आमवात रोग नया है एवं तीव्र है तो उसकी चिकित्सा में - महावात विध्वंस रस, समीर पन्नग रस, जय मंगल रस, आमवातकारी रस, महारास्नादि क्वाथ, वैश्वानर चूर्ण, शुण्ठ्यादि चूर्ण, योगराज गुग्गुलु आदि का प्रयोग करते हैं ।
- * अगर आमवात रोग जीर्ण हैं तो रोगी के आमवात नाश के साथ-साथ उसका बल एवं उपद्रव स्वरूप वृद्ध रोग की चिकित्सा या उसका बचाव करते हैं ।
- * स्वर्ण समीर पन्नग रस, आमवातकारी, वृ०वातचिन्तामणि रस, वात गजांकुश, वृ० योगराज गुग्गुलु, दशमूल क्वाथ, महारास्नादि क्वाथ, अमृतारिष्ट, चिंताभल्लातक वटी आदि ।
- * रोगी के दीपन-पाचन के लिए-अग्नितुण्डी वटी, नागरमोथा चूर्ण, पंचकोल चूर्ण एवं शुण्ठी चूर्ण का विशेष प्रयोग कराते हैं ।
- * अगर रोगी को रक्ताल्पता है तो उसे लौह भ नवायस लौह आदि का प्रयोग कराते हैं ।
- * अगर रोगी को दर्द अत्यधिक हो तो उसे विष-तिन् वटी या अमृतभल्लातक का प्रयोग कराते हैं ।
- * रोगी में अगर दौर्बल्य है तो उसे नारसिंह योग अश्वगंधा चूर्ण का प्रयोग कराते हैं ।
- * रोगी के हृदय की रक्षा के लिए, नागार्जुनाभ्र र आरोग्यवर्धनी वटी, पूर्ण चन्द्रोदय रस, पुष्कर गुग्गुलु का प्रयोग कराते हैं । आमवात जन्य शोथ तैल के बाह्य प्रयोग का निषेध है परंतु सैन्धवादि का निर्देश है ।
- * आमवातजन्य शोथ एवं पीड़ा समनार्थ रूक्ष स्वेद क हैं । इसके लिए बालुका स्वेद लाभकारी है, आध्मा शोधन के लिए क्षार बस्ति का प्रयोग अत्यन्त गुणक है ।
- * आमवात के रोगी को अपने पथ्यापथ्य का अ ख्याल रखना चाहिए, विबन्धकारक, आम एवं वातव खान-पान एवं विहार का त्याग कर लघु आहार पाचन शक्ति का वर्धन करने वाले आहार को चाहिए । आमवात के रोगी को व्यायाम एवं अ नित्य करना चाहिए जिससे उसके जोड़ों में जड़ता बढ़े । वज्रासन, वीरासन, मत्सेन्द्रासन, गोमुखा कटीचक्रासन आदि आसन चिकित्सक के सलाह करने चाहिए ।

बैद्यनाथ
आँवला
केश तेल

QUALITY CONTROL AND STANDARDIZATION OF METALLIC AND MINERAL PREPARATIONS OF AYURVEDA AND SIDDHA

Ariamuthu Saraswathy

The practitioners of Ayurveda and Siddha medicines are extensively using herbal drugs for various therapies and for controlling majority of diseases. There are several metals, minerals (ores), precious and semi-precious stones and other natural resources, which find potential, use in Ayurveda and Siddha preparations. These preparations are in the form of bhasma, centura, rasa, pisti, parpati, kupipakva rasayana, lauha, vati and avaleha.

Minerals are indispensable to man. The food he eats, the ornament he wears, nay even his own body, are all constituted of a variety of minerals and/or of their complex salts. From the primitive to the most sophisticated modern man, in all stages of human advancement, man had/has to depend on minerals for his sustenance, decorative festivities and cosmetices.

A question may arise as to what is a mineral ? According to the geologists, "it is an inorganic substance having a definite chemical composition and certain characteristic properties". Though majority of the mineral drugs are of inorganic origin, some may be of organic origin also (eg. shilajit). Recent researchers in allopathic medicine have reported the value of jaharmohra (serpentine) $Mg_6[Si_4(OH)_{10}](OH)_8$ as one of the minerals, which could cure crippling diseases of fluorosis. Core group of ailments both in urban and city side populations are malnutrition, anaemia, tuberculosis, helminthiasis, malaria, elephantiasis, amoebiasis, psoriasis, gynecological ailments, AIDS and cancer. Herbo-mineral preparations can play a major role in tackling these kind of problems. It is the right time to link geology in Ayurveda and Siddha curriculum/systems in order to serve humanity in a better way. Minerals are classified well and used in minute quantities in compound preparations.

The literature survey reveals a list of more than 60 mineral/geological products that are now being used in Ayurveda system. In Siddha system, Boger has identified 220 metal and mineral drugs. Based on their characters and utility, the different kinds of metals/minerals used in Siddha system are classified into four categories.

1. Ulokam (metals)
2. Karacaram (alkaline and acid salts)
3. Patanankal (poisonous materials)
4. Uparacam (secondary minerals)

Ulokam (Metals)

Indian systems of medicine describes certain metals to be used as medicine viz., Gold, Silver, Copper, Iron, Tin, Lead, Zinc and Mercury.

Karacaram (Alkaline and acid salts)

Theraiyar, one of the eighteen Siddhars, describes alkaline salts as 'Shiva' and acidic salts as 'Shakthi'. There are about twenty-five alkaline and acid salts used in the preparation of medicines of which ten are naturally occurring and fifteen are prepared salts. For example Spatika/Patikaram (Alum), Puniru (Alkaline earth salt), Kadal nurai (Sea froth) and so on are naturally occurring salts whereas Tuththa/Turucu (Copper sulphate), Tankan/Venkaram (Borax), Navacaram (Ammonium chloride) and so on, are prepared salts.

Patanankal (Poisonous materials)

The patanankal in the Siddha system are classified into sixty-four of which thirtytwo are naturally occurring and thirty-two are prepared materials. Though there are sixty-four patanankal in Siddha literature, only a few are frequently used in preparation. The correct identification of a majority of the poisonous materials is not exactly known.

Uparaca (Secondary minerals)

There are hundred and twenty kinds of uparacam described in Siddha literature, which included all products from ore/mine formed by action of chemical affinities and becoming solid by the power of crystallization. Some of the mineral products from the earth are brought into use either in the state in which they are found like mica, or are rendered useful after peculiar tretment as in

---

This Lecture was delivered in "Training workshop on research methodology for researchers in Ayurveda and Siddha (WHO Biennium 2004-2005) at CCRAS, New Delhi on 24 & 25th February 2005

Captain Srinivasa Murti Drug Research Institute for Ayurved (CCRAS), Arumbakkam, Chenni - 600 106

the case of puniru (alkaline earth). As with patanankal, the identification of a majority of uparacam is in ambiguity.

The article describes (i) the classification of certain metals and minerals used in Ayurveda and Siddha with therapeutic indications, (ii) differe categories of Ayurveda and Siddha miner formulations and (iii) the method of assessing th quality and standardization.

i) Important metals/minerals with their indications

Sanskrit/Tamil Name	*Chemical Name & composition*	*Uses*
Anjana/Anjanakkal	Lead sulphide PbS	Eye diseases
Abhraka/Abirakam	Biotite mica K (MgFe)$_3$ (SiAlO$_{10}$) (OHF)$_2$	Diseases of blood and nervous, RTI
Kasisa/Annapeti	Ferrous sulphate	Anaemia, viral hepatitis
Gandhaka/Kantakam	Sulphur S	Skin diseases
Godanta	Calcium sulphate $CaSO_4$	Malaria, fever
Tankan/Venkaram	Sodium biborate $Na_2B_4O_7$	Diuretic, Antifungal, antiseptic
Tamra/Tamiram	Copper Cu	GI tract infection, dropsy
Tuttha/Turucu	Copper sulphate	Washing wounds and ulcers
Yavaksara/Yavacaram	Carbonate of potash and Potassium chloride	Epilepsy
Naga/Karuvankam	Lead Pb	Diabetes, UTI
Vanga/Vel vankam	Tin Sn	Diseases of urogenital system and lungs
Makshika/Ponnimilai	Copper pyrite	Tonic
Vimala	Iron pyrite	Anaemia
Svarjakshara	Sodium bicarbonate imp.	Antacid
Saindava lavana/Intuppu	Sodium chloride lump	Antacid
Rajatha/Velli	Silver Ag	CNS diseases
Swarna/Talakam	Gold Au	Tonic
Haritala/Talakam	Arsenic trisulphide As_2S_3	Skin diseases
Hingula/Ilinkiam	Mercuric sulphide HgS	Fever
Shilajit/Cilajit	Black bitumen (asphalt)	Urinary disorders
Mirudara shringa	Lead oxide (Litharge)PbO	UT diseases

ii) Different categories of mineral containing preparations

Ayurveda and Siddha systems in Ayurvedic Formulary of India (AFI) and Siddha Formulary of India (SFI) respectively describe various groups of mineral containing medicines as detailed below.

Ayurveda	**Siddha**
Bhasma	Parpam
Chentura	Centuram
Pisti, Parpati	Cunnam
Rasa	Karuppu, Kattu, Tailam
Kupipakvarasayana	Iracayanam, Ilakam
Lauha	Meluku, Venney
Vati	Mattirai, Manappaku
Avaleha	Kulampu, Patankam

ii) Method of standardisation

Identification of therapeutic area selection of suitable metal/mineral preparations the first and foremost things. In order to ge genuine herbo-mineral medicine, a mu disciplinary approach of study is required involved the correct identification of the miner their occurrence, proper method of purificati detoxification (if necessary), SOP of th manufacture, quality assessment of finish products, pharmacology and toxicology studies, understanding the mechanism of action, and minimum clinical trials thus leading to the discovery of new mineral drugs which are efficacious, safe and uniform consistency.

Identification of raw materials is an important aspect since different drugs are made available under one name in the market. Quality assessment starts from their collection, occurrence, time and season of collection, besides organoleptic features such as colour, form, lusture, shape, fracture, texture and so on. It is to be done as per standard protocol and methods, to establish the identity and purity. The rough format, which can be utilized for analysis of raw drugs used in the preparation, is enclosed (annexure I). Assay for major/minor/trace elements is to be performed using any of the latest methods like AAS, XRD, XRF, SEM, ICP-MS, EDAX, Quasi electro light scattering (QELS), XPS and so on for getting reproducible results.

For example : Sphatikara/Patikaram-Potassium Aluminium Sulphate is generally substituted by Ammonium Aluminium Sulphate which has been confirmed in more than a dozen sample from the market and one from Bangalore. Same is the case in six market samples of Patikarap parpam, wherein the absence of potassium was observed. Such practices may result in formulations that will not have the desired therapeutic effects/give side effect.

Purification and Detoxification process

There are methods prescribed for purification of metal/mineral raw materials, which needs to be done carefully. Side effects/Toxicity in the form of gastro-intestinal irritation and kidney/liver damage may occur in patients who undergo continual treatment without prompt medical supervision. Hence judicious care need to be taken in identifying the raw drugs and purifying the same as per standard specified textual procedure.

As the purification involves several steps, it is essential to study what are the changes that take place during each step. Further it is very much advisable if the purified material is made to undergo toxicity studies before it is put into the process of preparation. These steps will help in developing the controlled and scientific methods in the preparation of ISM drugs and to obtain the final product in the uniform consistency. For example, Parada, which undergoes eight steps of purification, was analysed for its mercuric content after each step. Gradual increase of mercury was observed at each stage of purification making it finally cent percent. Lead content in the purified sample of Karuvankam/Naga (purified by Siddha method) was raised by three per cent (93% in raw drug to 96% in the purified material). Vanga/velvankam purified by Ayurvedic method showed decrease in the content, while the final product of Vanga bhasma has a large number of trace elements incorporated.

In-process Quality Control

During the in process quality control it is necessary to study.

* What happens to the metallic lusture/nature of metal ? (Hg/Pb/Sn/Zn/Au/Ag)?
* What is the change that take place when S/Plant juice is added, if sulphide/salt or oxide is formed then it is to decide whether the metal exists in–ous or –ic state ?
* Whether the sulphide/salt/oxide formation decrease or increase the toxic effect of metals ?
* What is the important role of organic compounds on it when the juice/decoction/extract is added. Further whether the inorganic constituents present in the juice form any complex with the minerals ?
* Preparation of plant juices or decoctions has to be done by taking weighed quantity of plant material and to reach measured content of decoction.
* Temperature changes to be monitored properly.
* The weight of the cow dung cakes (not numbers), which is used for calcination, have to be uniformly followed.
* Introduction of Muffle furnace may be thought of after scientific evaluation and assessing the therapeutic potency of the end products.

For example Kalnar parpam elements Gd, Ho, Lu, Na, S, which were absent in raw material, are found to be present. The other elements were found to increase after the second pudam.

Quality Control and Standardization of Finished product

The final product has to be again put into qualitative analysis for identification and quantitative assay as per protocol (annexure II) which varies for each group of medicine. Most of the elements viz. Mercury, Silver, Arsenic, Lead, Copper may be in oxide form. It is highly essential to study the nature of the ionic form (mercurous/ic, arsenous/ic, ferrous/ic, argentium +1 and +2 form) of each element and to estimate them quantitatively in order to arrive at the correct pharmacokinetics properties of these ions.

After administering, the fate of each element has to be studied by way of collecting the blood, urine, faeces and prespiration.

For eg. Bhasma as finished product, Ayurvedic specifications like lusterless (Nischandrica), fine enough to enter within the lines of fingers (Rekha purnatva), Floats on water (Varitara), Smokeless (Nirdhoon), Tasteless, irreversible (Apunar bhav) tests need to be carried out primarily.

Besides this, physico-chemical characterization of bhasma/chentura to determine the composition and particle size are to be done using AAS, SEM, TEM, ICP-MS, EPOX, XPS, XRD, XRF, QELS (Quasi Electron Light Scattering) and so on. In case of capsules, uniformity of weight/content, and disintegration time are to be necessarily studied. As with tablets, friability and hardness should also be tested.

Toxicity and pharmacological studies.

Toxicity studies for metal/mineral preparations are essential to be carried out as per OECD/WHO guidelines. It includes LD 50, acute toxicity for 3 days/72 hours, sub-acute for 45 days, chronic for 3–6 months, ED50 need to be tested for determining the dosage level.

Pharmacological evaluation is to be performed to aid in deciding the therapeutic efficacy for the specified disorder/conditions.

Calcium group of Bhasmas nam Shanka, Pravala, Mukta shukti Bhasmas deriv from drugs of Marine origin was found to ha almost the same content of calcium (approximat 40%). As they are used for different therapeu usages and their cost also vary they we differentiated using several techniques.

XPS (X-ray photo Electron Spectrosco studies) on these bhasmas revealed that all of the contained Ca^{+2} in $2p^{3/2}$ state at (BE eV) 346.8, M in 1s state at (BE eV) 1304.4, Si^{+4} in 2p state (BEeV) 101.9, C in 1s at (BEeV) 284.6 carbonate.

Near Infra Red Spectra study (NIRS) w recorded from 800-2500 mm. The base li corrected raw spectra indicated that they exa match with one another.

Cluster analysis of the Ca group Bhasmas showed Palakarai and Muthu chippi a isolated from others and in a separate group. Car Parpam and Muthu Parpam forms a go combination of cluster. Nandukkal parpam h close relationship with Sanku Parpam and Mu Parpam. PCA analysis revealed that Palka parpam and Nandukkal parpam lies on the posi domain. Muthu Parpam is very close to zero. Car parapam and Muthu parpam bears a negative PC Muthu chippi more negative in PC3.

XRF

The elemental composition increas when marine raw drug as source of calcium w processed into parpam. Certain elements we observed only in the parpam and would have be incorporated during the process of calcinations

Comparative study of Muthu (Mou parpam and Muthu Chippi (Muktha shukthi) parp revealed that Cu, Mn, Ge, Zn, Os, Ni, Dyl we present in Muthu parpam only. Ho, Ti, Ga, Te, w present in Muthu chippi parpam only.

Conclusion.

Research institution and industry uni

together only the drug can be brought out. According to Industry point of view there is a lot of problems in getting licence, because of sub-standard drug are marketed. Industry should be aware of the products thoroughly, its contents, what are its efficacies. Quality control/standardization is an important aspect as batch-to-batch variation is found.

On the other hand our country has a rich TK, has rich natural resources. TK is available in traditional literature. Industry cannot go and collaborate with TK practitioners. Therefore, we need a centre, which can get the TK, do the standardization upto pre-clinical level, do limited clinical trials and transfer the knowledge to industry. Finally public should have the confidence to come forward to buy the Ayurveda and Siddha medicines.

Aknowledgement.

I thank Dr. G.S. Lavekar, Director, Central Council for research in Ayurveda and Siddha, New Delhi for financial support and encouragement.

Annexure I

Parameters for Raw Material Standardization

- **Name of th Drug**
- **Book Reference**
- **Chemical composition**

Identification of raw drugs

- **Physico-chemical parameters**
  - Nature
  - Colour
  - Cleavage
  - Fracture
  - Lusture
  - Hardness
  - Specific gravity
  - Optical properties
  - Colour under UV light
  - Refractive index
- **Chemical test for identification**
  - Test for identification of major and minor elements
  - Specific colour test for major elements
- **Assay**
  - Foreign matter
  - Loss on drying at 105°C
  - Loss on ignition
  - Water-soluble ash
  - Acid insoluble ash
  - Major/Minor/Trace element/radical
- **Important formulations**
- **Properties and actions**
- **Therapeutic uses**

Dose

Annexure II

Parameters for finished product Standardization

- **Name of the Drug**
- **Book Reference**
- **Description**
  - Colour
  - Shape
  - Odour
  - Particle size
- **Identification**
  - **Macroscopic/Microscopic**
  - **TLC/HPTLC**
- **pH**
- **Ash value**
  - Total ash
  - Acid-insoluble ash
  - Water-soluble ash
- **Water/Alcohol soluble extractives**
- **Loss on Drying at 105°C**
- **Assay**
  - Major/minor/Trace elements
  - **Toxicity Evaluation**
    - LD 50
    - Acute/Sub-acute/Chronic
    - Effective dosage
- **Microbial Contamination**
  - Total bacterial load
  - Total fungal load
  - *Salmonella* spp.
  - Enrterobacteriaceae
- **Therapeutic uses**
- **Dose**

PANCHKARMA :- A complete therapy for curative and rejuvenative purpos

[1]Dr. Shivani Pad
[2]Dr. J.S. Tripathi

The human body normally uses three routes to eliminate waste products and toxins : the mouth, anus and pores of the skin. The three doshas viz vata, pitta and kapha act as the vehicle which carries ama either upward, downward or out through the periphery. Through dosha gati, the doshas move these impurities from the deep structures to the gastrointestinal and then to body's three main outlets. Panchkarma's curative and rejuvenating power lies in its ability to utilize and stimulate the natural movement of the doshas to eliminate ama.

The five procedures which are collectively termed as Panchkarma includes vamana, nasya, virechana, anuwasana and asthapana Bastis.

VAMANA : (Therapeutic emesis)

It is one of the five elimination therapies in which the vitiated doshas (mainly kapha) are eliminated through mouth. In contrast to the conventional myth that vaman is emesis with nausea and sickness, the procedure is quite smooth and painless, with little or no nausea, retching or discomfort. This procedure for discharging excess kapha and kaphic ama, is effortless and effectively removes toxins. The herbs used to produce the emetic effects; such as madanphal and yasthimadhu; stimulate the action of agni and vayu bhuta. They are hot, strong and penetrating. This action permeates the five channels of kapha zone in the body and stirs up and liquifies the ama. Vamana is usually administered in kapha related disorders like all lung problems, allergies, chronic colds, diabetes mellitus, arteriosclerosis, rheumatic diseases, eczema, psoriasis etc.

NASYA OR SHIROVIRECHANA :-

The two above terms are used interchangeably. In Sanskrit, Shiromeans 'head' and virechana means 'purging'. The main drug used for this procedure as per Charaka is Apamarga. This procedure purges and rejuvenates the tissues and organs of the head and neck. It introdu medicated oils and powders into the nose, nearest access and outlet to the organs of head. It removes ;'ama' and toxins from the no larynx, pharynx, mouth, para-nasal sinuses, e and eyes. Nasya cleanses and opens the chan of the head and improves oxygenation – the f of prana – which has a direct and highly benef influence on brain functioning. Nasya is indic in dry nasal passages as well as in si congestion, common cold, chronic, sinus migraine, epilepsy and has a positive effec degeneration diseases of the brain and me retardation. It also helps in eye and ear proble such as dry, itching and watery e conjunctivitis, glaucoma, hearing loss, tinnitus well as the impaired sense of smell. Anyone f age eight to eighty can be treated by Nasya.

Types :-

Traditionally, nasya used two differe classes of substances : medicated powders medicated oils. According to Charaka, both cla can be utilized for three different purposes:

i) to promote secretions which dislodge carry toxins out of the body called Shodh nasya;
ii) to crete a palliative or soothing effect, c Shamana nasya;
iii) to provide nourishment to the tissues i regions called Bruhan nasya.

VIRECHANA : (Therapeutic purging)

Virechana is a purgative treatment cleanses the small intestine and associated p dominant organs like liver and gall bladder. It w in a downward direction to eliminate pitta-re ama and excess pitta in the form of a secretions. Since pitta has a close connectio the blood, it also helps to remove waste ma and toxicity from the blood.

While Virechana involves the use of s purgatives which induce loose bowel movem it affects the body quite differently than diarrhea. Virechana is a natural, herb-induced purging process which automatically ceases once the accumulated ama and toxins are gone. The effect of the purgative herbs subsides after a short time and the patient is left feeling stronger and more vital because toxins and waste material have been eliminated. It is a controlled process that gathers ama from many pitta locations in the body, concentrates it in the small intestine and then discharges it. It purifies pitta function and consequently balances and strengthens all metabolic processes.

---

[1] Medical Officer, Jammu Institute of Ayurvedic & Research, J & K
[2] Reader and Head Deptt. of Kayachikitsa, Desh Bhagat Ay. College and Hospital, Mandi Goibindgarh (P

The herbal substances which induce purgation contain a predominance of jala and prithvi bhutas. They generate a downward movement in the body, because water and earth are heavy and gravity pulls them down. They act with varying intensity on different individuals. In sensitive people, a small amount of purgative can cause many evacuations, while others need more stimulations and may require larger doses and stronger herbs. People with dominant pitta mild laxative like nishotta (ipomea turpethum); Kaphic individuals need a sronger laxative like amaltas (cassia fistula) and those with vata-dominant constitutions are harder to purge. In such cases Jaipal (Croton tinglium) seeds or the oil from the Eranda (Ricinus communis) leaf, usually known as castor oil may be used. Virechana therapy is good for all types of pitta related disorders like hyperacidity, colitis, urticaria, acid peptic diseases, hemorrhoids, chronic headache, skin diseases like acne, dermatitis, psoriasis, leprosy, leucoderna, etc.

BASTI :- (Therapeutic purification and rejuvenation of the colon)

Basti therapy is perhaps the most powerful of the five main procedures of Panchkarma. Charaka, as well as many later Ayurvedic Scholars, unanimously praise the value of Basti. According to them, while Vamana, Nasya and Virechana together contribute fifty percent of the benefits of Panchkarma, Basti by itself provides the other 50%. The literal meaning of Basti is 'Bladder' because centuries ago, bladders made of animal skins or organs were used to administer this procedure.

Basti is the introduction of medicated liquids into the colon through the rectum. While it directly effects the colon, it is not a localized or symptomatic treatment. The colon is seldom, if ever, addressed for its own sake. Rather, it is utilized becasue of its vital link with all of the other organs and tissues. That is why, basti has a wide-ranging influence in the body, effecting all the doshas and dhatus.

Charaka uses the analogy of a large tree with flowers, fruits, leaves, branches, bark & trunk. The whole tree depends for its nourishment on its roots. Through the roots, the tree takes in water and nutrients, which circulates throughout its structure and transforms into its trunk, branches, leaves etc. Thus the root constitutes the primary organ for sustaining the life of the tree. Much like the root, the colon performs the central job of providing the nourishment that sustains all the three organs and tissues of the body.

Basti treatment balances and nurtures vata-dosha. When Vata functions normally, it helps bring toxins & waste material out of the dhatus and eliminates them. Vata plays a key role in the building up process of disease because it carries ama from the site of origin to the deeper tissues where it generates diseases.

The word basti is frequently correlated with enema. However, to associate or confuse basti with enema misconstrues the true nature of this therapy. Basti differs completely from enemas in its intent, administration and effect.

When basti is used in conjunction with Panchkarma's pre-procedures, it cleans far more than just the colon. It helps purify toxins from all over the body. Vata, with its excitable nature and drying tendency, must be nourished and pacified. In fact, the whole human body complex can be nourished through the colon.

Benefits of Basti Therapy :-

Basti is the most effective treatment for disorders arising from abnormal vata. These include chronic constipation, low back pain, sciatica, rheumatism, gout, arthritis and various neuromuscular disorder such as paraplegia, hemiplegia, poliomyelitis, Alzheimer's disease, Parkinson's disease, multiple sclerosis and dystrophy and atrophy of nerver and muscles. It benefits epilepsy, mental retardation and sensory dysfunction.

Vata has its secondary seat in the bones. Basti therapy, therefore also helps with disorder of asthi dhatu such as osteoporosis. When Vamana and Virechana cannot be used due to emaciation and weakness, patients can receive a combination of nutritive and cleansing bastis.

CLASSIFICATION :-

i) On the basis of site of administration :-

The first major classification scheme refers to the administration site and the primary organs receiving treatment. It recognises four areas :-

- **Pakwashaya gata basti :-** Medicated liquids sent through the anus and rectum into colon.
- **Uttara basti :-** Medicated liquids sent through the vagina and cervix to cleanse and nourish the uterus.
- **Mutrashaya gata basti :-** Medicated liquids introduced into the penis & urethra to treat the male genital and urinary organs.
- **Vranagata basti :-** Cleansing and medicated liquids used to irrigate and heal abscesses or wounds.

There is a class of nutritive, palliative basti, which is not administered internally but rather externally in localized areas of the body. Even though they are not introduced into the body, they are still called basti because the medicated, lubricated substances are retained in areas of the body for a period of time.

There are four types of external basties such as :-

a) **Netra basti :-** application of medicated ghee to the eyes. It provides nourishment of the eyes, removes eye strain and improves vision.

b) **Katti basti :-** It is retained in the lower hence the name. This basti benefits m spasm and rigidity of the lower spine strengthens the bone tissues there.

c) **Uro basti :-** It retains on the chest & heart It reduces pain in sternum and pro strength to it.

d) **Shiro basti :-** is administered on the h through the use of a specialized le container resembling a hat. It is extre useful in vascular headaches, schizophr obsessive compulsive disorder, memory etc.

There are two main types of Bastis w are used in Panchkarma and there are Pakwas gata basties. They are called Nirooha Anuwasan basti.

a) **Nirooha Basti :-**

Nirooha which means 'that which eliminated', cleanses toxins from the d and removes naturally accumulated malas the colon. These bastis primarily, bu exclusively, use water based decoctio purifying herbs. The quantity of liquid is a less than in enemas, since the basti's e and specific action is not based on the v of liquid, but on the effects of the herbs liquid is retained in the colon for approxi forty-eight minutes. During this time, so the ingredients get absorbed and their pu influence moves throughout the body. Th gets expelled along with fecal matte toxins.

The colon demonstrates an am absorptive capacity, and the rejuvenati cleansing herbs administered through easily penetrate the body and bring healing influence from the more supe levels of the dhatus to the deeper struc It is this type of cleansing action th charaka to exclaim, "Basti works from to toe".

b) **Anuwasan Basti :- (Nourishing basti)**

This is used as a purpose to nourish the body. It does so through the application of herbalized oils. Oil naturally lubricates and nourishes the dhatus, an effect which is opposite to the drying and wasting influence of excessive vata. That's why this class of bastis is particularly successful in the treatment of vata disorders.

The word anuwasan refers to, "that which is to remain in the body for a while". For this type of basti, it is optimum if it can be retained in the body for a longer period of time in order to have its intended effect. Three to six hours is the ideal retention time. Bastis are always applied slowly, but anuwasan should be introduced extremely slowly. This is particularly important for individuals with irritable bowel syndrome. Slow administration reduces the possibility that a hyperactive colon will go into a reflexive response and reject the basti.

These bastis can benefit neuromuscular disorders, in which every dhatu is impaired, including muscles, bone, bone marrow and nerve tissue.

To conclude, the whole Panchkarma Therapy offers the most effective treatment for cleansing the body and eliminating the root of disease. They remove the substances which weaken the body and break down health, and restore life to balance and wholeness. These five therapies represent the ultimate in Shodhana Chikitsa.

बैद्यनाथ

ईसब्बेल

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री), कब्जियत आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

MEDICINAL PLANTS OF THAR DESERT: A SURVEY REPOR

Edwin E.,* Sheeja. E., Rathore. C., Somani. V

INTRODUCTION

India is one of the richest floristic regions of the world and has been a source of plants and their products since antiquity and man uses them in different ways according to his needs, particularly as food and medicine. Among the entire flora, 35,000 to 70,000 species have been used for medicinal purposes[1]. The plants as medicine are used in different systems of medicine, like, Unani, Ayurveda, Homeopathy & etc[2,3]. The Ayurveda that literally means the science of life is still considered as a safe system of medicine since they do not cause harmful effects even if it is used for longer period in proper dose.

The biodiversity of India includes deserts also. Deserts are characterized by their lack of water. Thar Indian desert covers 77.0 square kms Pakistan and Rajasthan, the west of India. The annual rainfall is less than 250 mm. This re supports only sparse vegetation, it contains a 500 known medicinal plant species.

Indian People are already familiar wi widely growing desert plants, which are ha great utility as medicine. Around 70% of Ind medicinal plants found are in the tropical a mostly in the various forest types spreading ac the western and eastern areas, the vindhyas, ch Nagpur, Plateau, Aravalis, the Terai region in Himalayas and the north east while less than 3 of the medicinal plants are found in the tempe and alpine areas of higher altitude which inclu species of higher medicinal value.

The present report shall try to g comprehensive accounts of some India's des plants[4-8], which are used in medicinal prepara (Table 1)

Table 1

Sl. No.	NAME OF PLANT	BOTANICAL SOURCE & FAMILY	PARTS USED	MEDICINAL USES	MARKETED PRODUCT
01	Aak	*Calotropis procera* Asclepiadaeae	Flower, Roots, & Bark	Flower:-Digestive, Stomachic & Tonic Root:- Cardiac erythmia Bark:- antispasmodic	1.Nagabhasm 2.Shankhbhas
02	Agav	*Agare American* Amaryllidaceae	Root & Leaves	Root:-Diuretic, Anti-syphilitic Leaves:-Laxative, Diuretic	Raw drug sol in market
03	Arjun	*Terminalia arjuna* Combretaceae	Fruits, Leaves & Bark	Fruits:-Tonic & deobstruent Leaves:-as a cover on sores & ulcers Bark:-Antipyretic, antidysentric, astringent, cardiotonic	1.Arjunarista 2.Arjuna ghrit 3.Kukubnadi churna 4.Arjuna twa

Department of Pharmacognosy & Phytochemistry, B.R.Nahata college of Phamacy, Mhow Neemu Road, Mandsaur-458001.

Sl. No.	NAME OF PLANT	BOTANICAL SOURCE & FAMILY	PARTS USED	MEDICINAL USES	MARKETED PRODUCT
04	Babul	*Acacia arabica* Leguminosae	Bark, pods, Leaves & Gum	Bark:-astringent & demulcent Pods:- Urinogenital diseases. Leaves:-Diarrhoea, Gum:-Astringent, & in diabetes mellitus	1.Babularishrt 2.Lavangadi vati 3.Akakia
05	Biyani	*Tephrosia purpurea* Papilionaceae	Whole plant	As laxative, tonic & as a blood purifier, dermatosis	Raw drug sold in market:-Panchang
06	Punarnava	*Boerhavia diffusa* Nyctaginaceae	Whole plant useable	Oedema, expectorant, diuretic, laxative, in eye disorders, jaundice,	1.Punarnava churna 2. Punarnava asava 3. Punarnava ashtak 4. Punarnava mandur
07	Fofliya	*Citrullus Lanatus* Cucurbitaceae	Fruits & Seeds	Fruits:-cooling & diuretic Seeds:-In typhoid fever, hepatic, urinary affection.	Raw drug sold in market :- Seed &Fruits
08	Gokhru	*Tribulus terrestris* Zygophyllaceae	Fruit, Leaves, Stem, & Root	Fruits:-As cooling, diuretic, Tonic & kidney diseases Leaves:-As stomachic Stem:-As astringent gonorrhoea, Root:-aperient,	1.Abhayarista 2.Chavyanprash 3.Dashmula kwath 4.Gokshuradi avaleha
09	Jujuba	*Zizyphus mauritiana* Rhamnaceae	Leaves, Twigs, Bark, Root, Fruits & seeds	Leaves:-astringent, as an eye lotion, Twigs:-Applied to abscess Bark:-astringent, Roots:-Purgative,	1.Sharbat sadar 2.Shabat unnab 3.Sharbat murakkab musaffikhum

Sl. No.	NAME OF PLANT	BOTANICAL SOURCE & FAMILY	PARTS USED	MEDICINAL USES	MARKETED PRODUCT
10	Karer	*Capparis decindua* Capparidaceae	Gum, Leaves, Seeds, Root, & Bark	Bark:- Expectorant, Leaves:- In gout	1.Bonnisan 2.Geifort 3.Liv.52 drop 4. Digyton
11	Khejari	*Prosopis cineriya* Convolvulaceae	Fruit, Bark, & Leaves	Bark:-As cooling agent, leprosy, asthma, In piles	Raw drug sold in market
12	Marigold	*Tagetes Minutap* Compositeae	Flowers, Leaves, & Roots,	Flower:-Eye disease, in ulcer, Leave:-in earache Roots:-Diuretic	Raw drug sold in market
13	Nagphani	*Opuntia stricta* Cactaceae	Fruits, Leaves, & Latex	Fruits:- Refrigerant, In whooping cough, Leaves:-As purgatives	Raw drug sold in market
14	Neem	*Azadirachta indica* Meliaceae	Fruits, Seeds, Flower, Twigs, & Bark	Fruits:-Antiperiodic, emollient, & tonic seed:- Antiseptic, Flower:-Stomachic Purgative, Leaves:-Antifungal, antiviral,	1.Nimbadi kwat 2.Nimbadi chur 3.Nimbarist 4.Amber mezhugu
15	Rohiro	*Tecomella undulata* Bigoniaceae	Bark	Bark:-Chloretic, Syphilis,	1.Rohita karisht 2.Rohita ka ghrit 3.Rohita adhya churna
16	Samudrapha	*Barringtonia acutangula* Lecythidaceae	Seeds, Fruits, Leaves, Bark & Roots	Seeds:-Emetic, expectorent, carminative. Fruits:-Astringent, Anthelmintic, Leaves:-Bitter & tonic Bark:-Antidiarrhoeal, Astringent Roots:-Aperiant,	Raw drug sold in market
17	Satyanasi	*Argemone mexicana* Papaveraceae	Seed oil, Leaf juice, & Roots	Seeds:-Eczema, itching, Roots:-Antifungal,	Raw drug sold in market:-Seeds

Sl. No.	NAME OF PLANT	BOTANICAL SOURCE & FAMILY	PARTS USED	MEDICINAL USES	MARKETED PRODUCT
18	Senna	*Cassia angustifolia* Leguminosae	Leaves, Seeds	Leaves:- Purgatives, Expectorant	Tablets and Syrups
19	Shankpushpi	*Convolvulus microphyllus* Leguminoseae	Whole plant	In fever, nervous disability & loss of memory, dysentery,	Shankpushpi Sharbat
20	Tulsi	*Ocimum americanum* Labiatae	Whole plant	Expectorant, stomatic, diuretic, antiseptic, cardiac stimulant,	Saving cream Herbal toothpaste Antiseptic cream
21	Yacca	*Yacca Gloriosa* Agavaceae	Fruit	As purgative	Raw drug sold in market

CONCLUSION

Medicinal plants have been always a part of mankind's healing armamentarium. They even have been found in Neanderthal burial sites. By helping to maintain health, to treat disability aggravated ailments, and to reduce exposure to drug side effects, people with disabilities, can benefit greatly from herbal medicine. Many herbs have become so popular that they should no longer be considered alternative medicine.

This paper reports 21 medicinal plants that are present in Thar Desert. This shows the people's interest in exploring the plants for medicinal utility. No doubt that these medicinal plants are going to play a crucial role in human health care systems.

REFERENCES

1. Ponnu Sankar , Santhi Panraj K., Jecob Nancy & Suresh B., Safety Major with herbs , The Indian Pharmacist, Vol. IInd (11), May.2003., Page No. 9-12
2. Akerele O, Natures Medicinal bounty: don't throw it away, World Health Form 1996, 14(4), 390-95.
3. Bhattarjee S, Hand Book of Medicinal Plants, Edn 3, Pointer Publishers, Jaipur, p, viii.
4. Kokate CK, Purohit AP and Gokhale SB. In: Text Book A Pharmacognosy, 16th edition, Nirali Prakashan, Pune, 2001.
5. Trease and Evans, Pharmacognosy, Edn 15, W.B.Saunders, London, 2002.
6. Subhash, R., Sunanda, R. and Pavanjape, M.H, In; Ayurvedic Treatment of Common diseases, Edn 1, Sri Satguru Publications, Delhi, 1999.
7. Kritikar K.R. and Basu B.D., Indian Medicinal Plants, Vol .2, 2nd Edn, International Book Distributors, Dehradun, 1987.
8. Nadkarni A.K., Indian Materia Medica, Vol . 1, 22nd Edn, Popular Book Depot, Mumbay, 1995.

Suturing in Ayurveda

*Dr. Umesh Chand Sharma, **Dr. Amanpreet Kaur Broca, ***Dr. H.K. Kushwah

Although all the basic surgical procedures found description in Ayurveda classics but the detailed and vivid description of sutures – their types, sites, suturing materials, needles do astonish the medical fratenity because in spite of a lot of advancements we could not add anything new to the ancient Ayurvedic knowledge. Present article deals with the Ayurvedic description of suturing – Seevan Karma.

Seevan Karma is placed at the eighth[1] (last) place in Ashtavidh Shastra karma not because it is least important. But the reason of this placement is it is employed last of all after accomplishing all other shastra karmas.

While defining the shashti upkramas in first chapters of chikitsasthan, Acharya Sushruta quotes it is necessary to unite the widely gaped wounds in which muscles are also involved otherwise the healing becomes problematic[2].

Indications[3]

Injuries of adipose tissue.
Incised wounds.
Scrapped wounds.
Fresh wounds.
Wounds around movable joints.

Contra-Indications[4]

Suturing is contraindicated in wounds.
Caused by caustics, fire, cautery and poison.
From which air comes out.
In which blood clot is lodged.
In which foreign body is lodged within.
Complicated by infection[5] (suppuration).

While depicting the sites of wounds for suturing, fresh wounds and incised wounds are clear cut indications but scrapped wounds, wounds around movable joints and injuries of adipose tissue are doubtul. Herein, from scrapped wounds it can be thought that before suturing the wounds the margins should be made raw to increase the blood circulation so that both the margins can adhese properly giving better cosmetic effects. Sushruta himself quoted in sutrasthan that both heena rakta (poor blood supply)hinders the wou healing. Wounds around the movable joints can sutured but these require splintage for bet results.

Sushruta accurately forbids to suture t wounds caused by fire, caustics and poiso because once wound is sutured the heat & caus remaining inside will further damage examples wounds from which air comes out; penetrat wounds can only be sutured when both the wound are taken care of, Haematoma retards the wou healing and if foreign bodies remain inside t wound, it not only demotes healing but also lea to formation of fistulous track.

Suturing material

THREAD[6] - the thread should be fine ba of ashmantak, thread of sana, silk, tendon, cott threads, hair, fibres of murva or guduchi.

The important point of note is that all t threads used are natural products so the allerg reactions which are met with at present times ca be avoided by using natural but sterilized threa

The reference of snayu i.e. tendon giv the indication that Acharyas were well aware use of animal tendons for suturing. Non-a da catgut is tremendously used as absorbable for of suturing material. May be Acharyas were a using tendons in laprotomy for suturing de visceras, peritoneum etc.

NEEDLES[7] The needles should be sharp point and well constructed. The body of needles sho be circular like tip of malti flower. Three types needles are mentioned in Ayurvedic texts :-

a) Round bodied should be of two fingers long
b) Triangular bodied (cutting) should be th fingers long.
c) Semi circular or curved needles.

Practical utility of various needles[8]

Round bodied

At places where tissues are thin, and joints.

Triangular bodied (cutting)

*Ph. D. Scholar, **Ph. D. Scholar, ***Associate Professor
Department of Shalyatantra, National Institute of Ayurveda, Jaipur

Thicker tissues

Semi circular or curved needles

Vital spots

Testicles

Abdominal viscera

The piercing of needles in thicker tissue is difficult, so cutting and sharp needles were employed to solve the problem; on the other hand use of these needles in soft tissues would cause unnecessary injury to the tissues. Joints carry the vital structures (artery, vein and nerve) superficially so the use of round-bodied needles is justified to avoid unwanted damage to the vital structures. Use of curved needles in deeper areas ease the access to the orgnas which otherwise is impossible.

ACCESSORIES

Swastika or sandamsha yantra to hold needles

Shanku or skin hooks

Shrarimuch / Kartari or scissors.

Procedure of Suturing :

A- Wound Toileting and Exploration[9]:

If dust, hair, nail and loose bone pieces etc remain unextracted from the wound, they cause severe suppuration and different types of pain, hence proper wound toilet should be done.

B - Technique of Suturing[10]:

After wound toileting, the edges of the wound should be raised and brought into opposition with each other properly and suturing should then be meticulously done.

C - Principle of suturing[11]:

Suturing should be done neither too far from nor too near the margins of the wound, because if it is done at a distance from the margins it becomes painful, and if sutured too near, it would cut through the margins of thewound.

Types of the sutures :-

Four types of sutures had been depicted in Sushruta Samhita :

Vellitaka	Continous
Gophanika	Reinforcing/blanket
Tunnasevani	Darning
Rijugranthi	Interrupted

Post Operative Procedure[13]:

After proper suturing, the wound should be properly covered by silken gauze and cotton. Powder of priyangu, anjana, madhuka or lodhra should be sprinkled around, the powder of shallaki fruit or ash of silk may also be sprinkled. Then the bandage should be applied as indicated and necessary post-operative instructions given.

In order to protect the wound from infection and for early healing, use of antinflammatory, analgesics, antiseptic, antibiotic and haemostatic agent is justified in post-operative procedure.

The vivid and elaborated description of needles; their material, types, practical utility, everything is so clear that it needs no further illustrations. Acharya Vagbhatta has also depicted that the eye of the needle should not be thick[14]. Presently, eyeless needles are being employed for suturing in order to prevent tissue injury.

The description of wound toileting, exploration, technique of suturing and principles; all are scientifically justified.

Thus we see that suturing in Ayurveda is described in detail with scientific grounds by Acharya Sushruta including choice of thread, sutures, needles and above all post suturing care.

संदर्भ :-

1. तच्च शस्त्रकर्माऽष्टविधम् । तद्यथा-छेद्यम् भेद्यम् लेख्यम्
वेध्यम् एष्यम् आहार्यम् विस्राव्यम् सीव्यमीति ।
सु०सू० 5/5

2. अपाकोपद्रुता ये च मांसस्था विवृताश्च ये ।
यथोक्तं सीवनं तेषु कार्य सन्धानमेव च ॥
सु० चि० 1/45

3. सीव्या मेद:समुत्थाश्च भिन्ना: सुलिखिता गदा: ।
सद्योव्रणश्च ये चैव चलसन्धिव्यापाश्रिता: ।
सु० सू० 25/16

4. न क्षाराग्निविषैर्जुष्टा न च मारुतवाहिन: ।
नान्तर्लोहितशल्याश्च तेषु सम्यग्विशोधनम् ।
सु० सू० 25/17

5. सु० चि० 1/45

6. सु० सू० 25/20. 21

7. सूचीस्तीक्ष्णाग्राः सुसमाहिताः ।
कारयेन्मालतीपुष्पवृन्ताग्रपरिमण्डलाः ॥
सु० सू० 25/24

8. देशेऽल्पमांसे सन्धौ च सूचि वृताऽङगुलद्वयम् ।
आयतात्र्यङगुला त्र्यस्रा मांसले वाऽपि पूजिता ॥
धनुर्वक्रा हिता मर्मफलकोशोपरि ।
सु०सू० 25/23

9. पांशुरोमनखादिनी चलमस्थि भवेच्च यत् ॥ 18
अहृतानि यतोऽमूनि पाचयेयुर्भृशं व्रणम् ।
रुजश्च विविधाः कुर्युस्तस्मादेतान् विशोधयेत् ॥ 19
सु०सू० 25

10. ततो व्रणं समुन्नम्य स्थापयित्वा यथास्थितम् सीव्येत् ॥
सु०सू० 25/20

11. नातिदूरे निकृष्टे वा सूचीं कर्मणि पातयेत् ।
दूराद्जो व्रणौष्ठस्य सन्निकृष्टेऽवलुञ्चनम् ॥
सु० सू० 25/2

12. ....सीव्येद्वेल्लितकं शनैः ।
सीव्येद् गोफणिकां वाऽपि सीव्येद्वा तुन्नसेवनीम् ॥
ऋजुग्रन्थिमथो वाऽपि..
सु०सू० 25/2

13. वृत्तगूढदृढाः पाशे तिस्रः सूच्योऽत्र सीवने ।
अ.ह.सू. 26/2

14. अथ क्षौमपिचुच्छन्नं सुस्यूतं प्रतिसारयेत् ।
प्रियङ्ग्वञ्जनयष्ट्याहवरोध्रचूर्णः ॥ 27
शल्लकीफलचूर्णेर्वा क्षौममध्यामेन वा पुनः ।
ततो व्रणं यथायोगं बदध्वाऽऽचारिकमादिशेत् ॥ 28
सु०सू० 2

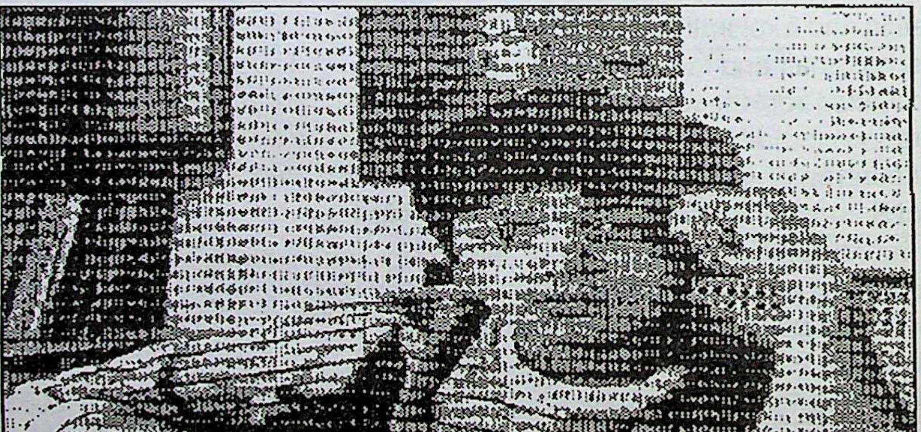

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत

एकाग्रता लाए, समझ जगाए।

आज, हररोज और वर्षभर

Analytical Study of Kloma

[1]Dr. G.S. Hadimani, M.D.(Ayu)
[2]Dr. K.H.Pachchinavar, M.D.(Ayu)

Abstract : The Kloma is one of the controversial part of the body. But in this paper I try to remove the conflicts about the klomas with some available references.

Introduction :

The Kloma word originated from the 'kruda Gaton + Manin' (shabda kalpadruma)

The kloma word used in different areas in the classics, is a seat of kapha sthana, Udakavaha srotomoola, pipsasthana, Mastiskya, dakshina bhaga of puppusa, yakrita and one of the kostanga.

Sthan of Kloma

"Udakavahanam srotasam talu moolam kloma cha !!"

Ch., v 15/8

We correlate it with contemporary system.Talu is upper palate and heat regulating centre ie, the Hypothalamus specially in nucleus, even recent Acharyas have considered trachea as a kloma on the basis of **"MANDALAKRUTI ANGA"** In Su, sha 5/23 opinion about kloma is **"KLOMA NADISU MANDALA"** . Trachea and hypothalamus having mandalakruti, Heopenior structural developement of trachea & Hypothalamus are similar on the basis of structure of trachea and Hypothalamus.

The Stimulation of lateral zone of hypothalamus produces desire of thirst and hunger Based on such studies on feeding centre" Pipasa sthan" has been described in the lateral Hypothalamic Nucleus.

According to Chakrapani

"KLOMNA ITHI DWITIYA
BAHUVACHANANATARAM DEHE ITYANEHA"
ETESHAM TRUSHANAM SHARERATWAM
DARSHAYATI"

Ch., Ch 22/6

Kloma is not a sigle organ. Kloma is one of the system which is composed by two major parts of the body and supporting more than two organs-trushna swatantra Vyadhi some time it is seen as a Upadrava.

In Bhaishajya Ratnavali parishista bhaga detailed explanation about kloma sthan, Swaroopa of kloma, Klomagata vyadhi and its nidana chikitsa has been described.

The comparative statement; kloma is a Agnyasaya. It is situated below the right side of the heart.

According to Acharya Charaka among panchadasha kostanga kloma is also one of them (Ref Cha Sha 7/10, Hr, Sha 3/12). Even Yagnavalka smruti, same opinion is also available.

The swasa roga Udbhava sthan Amashaya and Vyakta sthan puppusa and involvement of srotas in swasa roga is Udakavaha srotas here. Trushna is one of the symptom in swasa roga, it is related to Udakavaha srotas. i.e. water loss through respiration.

"Nadishu Hrudaya kloma nibaddasu Astadosha" (Su Sha 5/26) It can be correlated with trachea which has 16 to 20 cartilaginous rings. even Arunadatta has explained the wind like appearance of trachea which provides passage to the inspired air. As per modern concept the seat feeling thirst is palate and upper part of trachea, it is situated most adjascent to the heart and it is the seat of thirst.

Each strotas have two moolas, nearer one of another. If we consider a pipasa sthan of kloma according Chakrapani, it directily shows the

---

[1] **Lecturer - Dept. of Kaya Chikitsa, S.S.R.A.M.C.,Inchal. Distt.- Belgaum**
[2] **Lecturer - Dept. of Kaya Chikitsa, S.S.R.A.M.C.,Inchal. Distt.- Belgaum**

Hypothalamus of contemporary system.

Hypothalamus is related to all kinds of visceral activites, the most of diverse disturbances of autonomic functions such as water balance, internal secretions, sugar and fat metabolism and temparature regulation all can be produced by stimulation of Hypothalamic areas.

It is chief sub cortical centre of the regulations of both sympathetic and parasympathetic activities.

The several nuclei found in this region-the supra optic and para ventricular nuclei definitely considered with maintenance of water balance in the body, distruction of these nuclei or their hypophysical connections invariably is followed by the condition known as diabetes insipidus. In whic there is increased secretion of urine.

These above mentioned view indicate that kloma is not a single organ. Main seat of kloma is pipasasthan ie Hypothalamus. Main role takes place in some of the diseases like Trushna, Swasa, Prameha, Udararoga, Daha roga etc.

Conclunsion :

It is concluded on the basis of above points, "*Klomma ithi Dwitiya bahuvachanam*" is not a single organ. It is situated in mastiksa ie Hypothalamus is correlated to functional involvement in internal viscera and internal secretion of the body.

(पृ०सं० 198 का शेषांश)

बच्चों के लिए 5 से 10 मिलीग्राम तथा वयस्कों के लिए 15 से 20 मिलीग्राम विटामिन बी-5 की मात्रा प्रतिदिन मिलना आवश्यक है ।

फोलिक अम्ल (विटामिन बी - 9)

इस विटामिन की खोज आधुनिक युग की देन है । शरीर में इसकी कमी से मुख्यत: खून की कमी सम्बन्धी रोग एनिमिया आदि होने की संभावना रहती है । पांवों में पानी भरना, मलेरिया, प्रतिरोधक शक्ति का ह्रास होना आदि इसकी कमी के अन्य लक्षण हैं । खून की कमी जैसे रोगों में फोलिक अम्ल के 10 से 30 मिलीग्राम मात्रा के इंजेक्शन रोगी को लगाए जाकर उसके शरीर में इस विटामिन की आपूर्ति की जाती है ।

विटामिन बी-12

इस विटामिन की खोज सन् 1948 में मेरी एस०शार्व द्वारा की गई है । यह यकृत निस्सार में होता है तथा यह शरीर में लैक्टोवेसिलस लैक्टिस नामक जीवाणुओं की वृद्धि के लिए आवश्यक है । विटामिन बी -12 एक सुर्ख लाल रंग की वस्तु है । रक्त-क्षय में इसका उपयो अत्यधिक उपयोगी है । विटामिन बी-12 कीटाणुओं क संवर्धन से प्राप्त किया जाता है ।

यह सर्वमान्य तथ्य है कि विटामिन बी समूह क विटामिन मानव शरीर के लिए आवश्यक और उपयोगी है। लेकिन आमतौर पर यह देखा जाता है कि शरीर में इनक अभाव नहीं होने के बावजूद लोग बिना डाक्टरी सलाह क स्वत: ही विटामिन-बी काम्पलेक्स की गोलियां आदि ले शुरू कर देते हैं, आवश्यकता से अधिक विटामिन बी-1 क सेवन से निम्न रक्त-चाप, दिल की धड़कन बढ़ना, जिग तथा चर्म-रोग होने की संभावना बढ़ जाती है । इसी प्रका विटामिन बी-2 की अधिकता भी चर्म-रोग व खुजली पै कर सकती है । विटामिन बी-3 की शरीर में सूक्ष्म स अधिकता पेप्टिक अल्सर जैसी घातक बीमारी को आमंत्र दे सकती है । अत: आवश्यक है कि विटामिन काम्पलेक्स जैसी उपयोगी वस्तु का इस्तेमाल आवश्यकतानुस किया जाय अन्यथा यह फायदे के स्थान पर घातक नुकस पहुंचा सकती है ।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय - 2004 (हल प्रश्न पत्र)

1. प्र०:- निम्न में से किसमें तीक्ष्ण संशोधन निर्दिष्ट है -
(a) अद्योग रक्तपित्त (b) पाण्डु
(c) कामला (d) मुक्तनाल

2. प्र०:- आयुर्वेद दीपिका टीका के लेखक हैं -
(a) चक्रपाणि (b) शिवदाससेन
(c) डल्हण (d) गंगाधर

3. प्र०:- अग्निकर्म का चरक ने निर्देश किया है -
(a) रक्तपित्त में (b) अपस्मार में
(c) अवबाहुक में (d) गृध्रसी में

4. प्र०:- अश्व कंचुकी रस का रोगाधिकार है -
(a) कुष्ठ (b) जलोदर
(c) ज्वर (d) वाजीकरण

5. प्र०:- वातरक्त की श्रेष्ठ चिकित्सा है -
(a) प्रलेप (b) वस्ति
(c) रक्तमोक्षण (d) वमन

6. प्र०:- प्लीहोदर में सिरावेध करवाते हैं -
(a) जानुपर (b) शंख प्रदेश में
(c) कर्पूर संधि पर (d) वंक्षण में

7. प्र०:- चित्रतण्डुल किस आधार पर विडंग का पर्याय है -
(a) उत्पत्ति स्थान (b) लांछन
(c) इतराह्वय (d) आकृति

8. प्र०:- ''इन्दु'' किसके शिष्य माने जाते हैं -
(a) काश्यप (b) वाग्भट
(c) सुश्रुत (d) डल्हण

9. प्र०:- कनकारिष्ट का रोगाधिकार है -
(a) यक्ष्मा (b) प्रमेह
(c) उरू स्तम्भ (d) अर्श

10. प्र०:- ''सत्कार्यवाद'' किसका सिद्धान्त है -
(a) सांख्य दर्शन (b) जैन दर्शन
(c) बौद्ध दर्शन (d) न्याय

11. प्र०:- स्वभावोपरमवाद किसकी देन है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वाग्भट (d) वंगसेन

12. प्र०:- ''बालक के शरीर पर लालचकत्तों का बन जाना एवं बालक का रात्रि को रोना'' लक्षण है -
(a) जन्तु दंश का (b) विसर्प का
(c) ग्रहबाधा (d) शीतपित्त

13. प्र०:- कर्दम किसका भेद है -
(a) कुष्ठ (b) विसर्प
(c) ग्रंथि (d) अर्बुद

14. प्र०:- विसर्ग काल की ऋतु नहीं है -
(a) शिशिर (b) वर्षा
(c) शरद (d) हेमन्त

15. प्र०:- ''कंसहरीतकी'' के निर्माणार्थ प्रयुक्त हरीतकी की संख्या है -
(a) 25 (b) 50
(c) 75 (d) 100

16. प्र०:- अगस्त्य हरीतकी का रोगाधिकार है -
(a) गुल्म (b) शोथ
(c) कास (d) प्रतिश्याय

17. प्र०:- अद्योग रक्तपित्त की चिकित्सा होगी
(a) वस्ति (b) रक्तमोक्षण
(c) वमन (d) विरेचन

18. प्र०:- मृतिका भक्षण जन्य रोग है -
(a) राजयक्ष्मा (b) कामला
(c) कुष्ठ (d) पाण्डु

19. प्र०:- प्रतिलोम व अनुलोम किसके भेद हैं -
(a) रक्तपित्त (b) कास
(c) अतिसार (d) राजयक्ष्मा

20. प्र०:- एकत्व बुद्धि का ज्ञान होता है -
(a) सामान्य से (b) विशेष से
(c) समवाय से (d) अभाव से

21. Q.:- Allotropism exhibited by -
(a) Mercury (b) Sulphur
(c) Diamond (d) Black Bitumin

22. Q.:- Affinity of mercury is maximum towards -
(a) Sulphur (b) Borex
(c) Zypsum (d) Saindhav

23. प्र०:- निम्न से रत्न दोष है -
(a) विष (b) वह्नि
(c) मल (d) ग्रास

24. प्र०:- ''आयुषो पुण्यतमो वेदो वेदविदामत'' संदर्भ है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वाग्भट (d) हारीत

25. Q.:- "Festinating gait" is found in -
(a) अल्जीमर (b) सिफलिस
(c) पार्किन्सोनिज्म (d) कोई नहीं

26. Q.:- Availability of Chloride in CSF -
(a) 500-600 (b) 200-400
(c) 720-750 (d) 1025-1050

27. Q.:- Length of 2 month's fetus -
(a) 2 c.m. (b) 4 c.m.
(c) 6 c.m. (d) 10 c.m.

28. Q.:- Most Important cause for ventilation -
(a) O_2 (b) CO
(c) Co_2 (d) Water

29. Q.:- Permanent dilations of Bronchi is called -
(a) Emphysema (b) Bronchiactasis
(c) Bronchitis (d) Pneumothorex

30. प्र०:- चरक ने रात्रि में वर्जित बताया है -
(a) नस्य (b) धूमपान
(c) अंजन (d) सभी

31. प्र०:- चरकानुसार ऐषणाएँ हैं -
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 6

32. प्र०:- ''विनष्ट संधितो यः'' कहा गया है -
(a) तक्र हेतु (b) शुक्त हेतु
(c) चुक्र हेतु (d) मध हेतु

33. प्र०:- दुग्ध त्रय है -
(a) हस्तिनी, मानुषी, गौ
(b) अर्क, वट, स्नूही
(c) पारीष, वट, अर्क
(d) अर्क, अश्मन्तक, सप्तपर्ण

34. प्र०:- संतमक व प्रतमक भेद है -
(a) श्वास के (b) कास के
(c) हिक्का के (d) राजयक्ष्मा के

35. प्र०:- यर्थाथ अनुभव को कहते हैं -
(a) व्याप्ति (b) प्रमेय
(c) प्रतिज्ञा (d) प्रमा

36. प्र०:- सीवन कर्म निषिद्ध है -
(a) क्षार दग्ध पर (b) अग्नि दग्ध प
(c) अर्न्तलोहित शल्य में (d) सभी में

37. प्र०:- विरुद्धान्न सेवन जन्य व्याधि है -
(a) अपस्मार (b) उन्माद
(c) रक्तपित्त (d) राजयक्ष्मा

38. प्र०:- सविष जलौका है -
(a) सावरिका (b) सामुद्रिका
(c) मूषिका (d) कपिला

39. प्र०:- धन्वन्तरि निघण्टु के रचयिता हैं -
(a) दिवोदास धन्वन्तरि (b) महेन्द्रभौगिक
(c) सुश्रुत (d) चन्द्रट

40. प्र०:- यशद का प्रथमतः नामतः वर्णन मिलता है
(a) मदनपाल निघण्टु में
(b) र०र०स० में
(c) आनन्द कन्द में
(d) सुश्रुत

41. प्र०:- गर्भपातन कर्म नहीं करता है
(a) गुन्जामूल (b) लांगली
(c) भल्लातक (d) कोई नहीं

42. प्र०:- स्रावी अर्श की श्रेष्ठ औषध है -
(a) भल्लातक (b) स्नूही
(c) हरिद्रा (d) कुटज

43. प्र०:- किस आचार्य ने मेदावृत वात को आढ्यव माना है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वंगसेन (d) काश्यप

44. प्र०:- भेल ने मन का स्थान माना है -
(a) हृदय (b) फुफ्फुस
(c) शिर (d) शिर व तालु के मध्य

45. प्र०:- स्रंसन कर्म करते हैं -
(a) शाखाश्रित दोषों में (b) कोष्ठाश्रित दोषों
(c) दोनों में (d) दोनों में नहीं

46. प्र०:- सुश्रुतानुसार ग्रथि भेद है -
(a) 3 (b) 4 (c) 5 (d) 6

47. प्र०:- सुश्रुतानुसार नैत्र कल्प भेद है -
(a) 3 (b) 5 (c) 7 (d) 8

48. प्र०:- आयुर्वेदानुसार स्त्रियों में आर्त्तव चक्र प्रारम्भ होने का वय है -
(a) 10 वर्ष (b) 12 वर्ष
(c) 16 वर्ष (d) आयु निर्धारित नहीं है।

49. प्र०:- पक्व गुल्म की चिकित्सा है -
(a) वमन (b) विरेचन
(c) आस्थापन (d) शस्त्रकर्म

50. प्र०:- मेदोज ग्रंथि की चिकित्सा है -
(a) वेधन (b) ऐषण
(c) सकोश छेदन (d) भेदन

51. प्र०:- किस आचार्य ने मेदोज रोहिणी भी मानी है -
(a) सुश्रुत (b) वाग्भट
(c) काश्यप (d) शार्ङ्गधर

52. प्र०:- गर्भाशय है -
(a) छठवाँ आशय (b) सातवाँ आशय
(c) आठवाँ आशय (d) नवम आशय

53. प्र०:- चरकानुसार आर्त्तव उपधातु है -
(a) रस की (b) रक्त की
(c) मांस की (d) उपधातु नहीं है।

54. प्र०:- नास्तिक दर्शन है -
(a) सांख्य (b) रोग
(c) वेदान्त (d) चार्वाक

55. प्र०:- पारद द्वारा जीव मुक्ति (मोक्ष प्राप्ति) का वर्णन मिलता है -
(a) रसेश्वर दर्शन में
(b) याज्ञवल्क्य संहिता में
(c) गौरक्ष संहिता में
(d) रसार्णव में

56. प्र०:- त्रिदण्ड है -
(a) वात, पित्त, कफ
(b) सत्व, रज, तम
(c) सत्व, आत्मा, शरीर
(d) आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य

57. प्र०:- शीतपित्त में दोष प्रधान है -
(a) वात (b) पित्त
(c) कफ (d) वात-कफ

58. प्र०:- अहिपूतना है -
(a) बालग्रह (b) क्षुद्ररोग
(c) कृमि (d) गर्भदोष

59. प्र०:- सुश्रुतानुसार बालग्रह संख्या है -
(a) 9 (b)12 (c) 15 (d) असंख्य

60. प्र०:- गुदभ्रंश में बंधन बाँधते हैं -
(a) चीन (b) उत्संग
(c) पंचांगी (d) गोफणा

61. प्र०:- निम्न में से स्वर्ण का योग नहीं है -
(a) मकरध्वज (b)स्वर्ण वसन्त मालती
(c) स्वर्णेश्वर वंग रस(d) सुवर्णसूत शेखर

62. प्र०:- स्वर्ण का अरिलोह है -
(a) नाग (b) वंग
(c) लौह (d) रजत

63. प्र०:- चरकानुसार सिध्म है -
(a) महाकुष्ठ (b) क्षुद्रकुष्ठ
(c) क्षुद्ररोग (d) शूकदोष

64. प्र०:- "लोमपिंजरवत" लक्षण है -
(a)कपाल कुष्ठ का (b) उदुम्बर कुष्ठ
(c) मण्डल कुष्ठ (d) काकणक कुष्ठ

65. प्र०:- मेढ्र की चर्म पर दरारों का होना रोग है -
(a) अवपाटिका (b) परिवर्तिका
(c) शूकदोष (d) कोई नहीं

66. प्र०:- चरक संहिता में कितने स्थान हैं -
(a) 6 (b) 7 (c) 8 (d) 9

67. प्र०:- खिल स्थान किस संहिता में मिलता है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वाग्भट (d) काश्यप

68. प्र०:- मिश्रक किसका भेद है -
(a) यशद का (b) नाग का

(c) वंग का (d) पित्तल का

69. प्र०:- नागार्जुन रचित ग्रंथ है -
(a) रस रत्न समुच्चय (b) रसावर्णन
(c) रसहृदय तंत्र (d) कक्षपुटक

70. प्र०:- तीक्ष्णाग्नि मिलती है -
(a) पैत्तिक ग्रहणी में (b) भस्मक में
(c) अम्लपित्त में (d) सभी में

71. प्र०:- ताम्र के अमृतीकरण में प्रयुक्त होता है -
(a) पंचामृत (b) पंचमृतिका
(c) मित्रपंचक (d) पंच पल्लव

72. प्र०:- आर्त्तव की मात्रा होती है -
(a) 50 ml (b) 35 ml
(c) 100 ml (d) 150 ml

73. प्र०:- कर्णबाधिर्य में दोष होता है -
(a) वात (b) पित्त
(c) वात-कफ (d) त्रिदोष

74. Q.:- Molar teeth in Ayurveda is Called -
(a) राजदन्त (b) हानव्य
(c) दंष्ट्रा (d) वस्त

75. प्र०:- शुक्रशोषक द्रव्य है -
(a) हरीतकी (b) विभीतक
(c) कूठ (d) सभी

76. प्र०:- धातु का भस्म का परीक्षण किया जाता है -
(a) By X-Ray differection
(b) By TLC
(c) By Inverted Furnance
(d) By Muffle Furnace

77. Q.:- Sarcoptes Causes -
(a) Leucoderma (b) Scabies
(c) Erysepalus (d) Ring worm

78. Q.:- Cynosis will occur if the reduced Haemoglobin will be greater then -
(a) 2 gm (b) 4 gm
(c) 8 gm (d) 10 gm

79. Q.:- Anaphylactic Reaction is mediated by -
(a) I_gG (b) I_gA
(c) I_gE (d) I_gM

80. Q.:- Causative factor of "SARC" Is -
(a) Mycoplasma (b) Bacteria
(c) Virus (d) Fungus

81. Q.:- Type of lesion in Chicken Pox is -
(a) Maccule (b) Pappule
(c) Vesicules (d) All

82. Q.:- The science of Finger Printing is calle
(a) Geneology (b) Demnology
(c) Dactylography (d) Tomography

83. Q.:- In the cells glucose is converted in G
cose 6 phosphate by
(a) Glucokinase (b) Hexokinase
(c) Phosphoryless (d) None

84. Q.:- Power house of cell is -
(a) Ribosome (b) Nuclease
(c) Lysosome (d) Mitochondria

85. Q.:- "Gastric Nerve" is the Branch of
(a) Vagus (b) Trigeminal
(c) Facial (d) Occulomotor

86. Q.:- Blood supply of spinal cord is -
(a) Reticular (b) Abdominal Ao
(c) Bracinal Artery (d) None

87. Q.:- Maximum transportation of Co_2 ta
place by -
(a) Plasma (b) RBC
(c) WBC (d) Platelates

88. Q.:- Destruction of RBC takes place in
(a) Bone marrow (b) Liver
(c) Kidney (d) Spleen

89. Q.:- DNA is formed by
(a) Nucleus (b) Ribosome
(c) Cytoplasm (d) Lysosome

90. Q.:- Auditory Hallucinations are commo
(a) Schizophrania (b) Ergot poiso
(c) Datura Poisoning (d) Temporal lobe epileps

91. Q.:- Mode of Action of NSAID'S is -
(a) By increasing pain threshold
(b) By decreasing nerve sensation
(c) By inhibiting Prostaglandin synthe
(d) All

92. Q.:- Growth Harmone is secreted from -
(a) Acidophills cells
(b) Basophills cells
(c) Chromophill cells
(d) Chromophobe cells

93. Q.:- Which is not found in Blood -
(a) Thrombin (b) Fibrinogen
(c) Both (d) None

94. Q.:- Bile is secreted from -

(a) Bile duct (b) Commona bile duct
(c) Hepatocytes (d) Gall bladder

95. Q.:- **9 D Sign is found in -**
(a) Alcohol Poisoning
(b) Aconite poisoning
(c) Opium poisoning
(d) Datura poisoning

96. Q.:- **Cretinism is due to -**
(a) Hypo thyroidism
(b) Hyperthyroidism
(c) Less secretion of GH
(d) None

97. Q.:- **Number of lobes in cerebellum -**
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 1

98. Q.:- **Carotid Artery is originated from -**
(a) Arch of Aorta
(b) Ascending Aorta
(c) Descending Aorta
(d) Abdominal Aorta

99. Q.:- **Pulse can be most commonly felt on -**
(a) Axillary Artery (b) Brachial Artery
(c) Radial Artery (d) Femoral Artery

100. Q.:- **Generally Heart beat starts from -**
(a) SA node (b) AV node
(c) Bundle of His (d) Purkinge fibres

101. Q.:- **Lowest Blood Pressure is found in -**
(a) Venule (b) Arteries
(c) Cappilaries (d) Veins

102. Q.:- **Entry of glucose in muscles is caused by-**
(a) Insulin (b) Glucagone
(c) Adrenaline (d) Cortisol

103. प्र०:-**अनुमान प्रमाण के लिए आवश्यक है -**
(a) व्याप्ति (b) युक्ति
(c) उपमान (d) कोई नहीं

104. प्र०:- **प्रत्यक्ष का ज्ञान होता है -**
(a) सन्निकर्ष से (b) व्याप्ति से
(c) अन्वयं से (d) किसी से नहीं

105. प्र०:- **वातज रोगों में देय अनुपान होगा -**
(a) स्निग्ध शीत (b) स्निग्ध उष्ण
(c) रूक्ष शीत (d) रूक्ष उष्ण

106. Q.:- **Atomic Number of mercury is -**
(a) 79 (b) 80 (c) 160 (d) 200

107. प्र०:- **निम्न में से लघुत्रयी में है -**
(a) काश्यप संहिता (b) हारीत संहिता
(c) भाव प्रकाश (d) भेल संहिता

108. प्र०:- **क्रिमिघ्न द्रव्य है -**
(a) मदनफल (b) श्योनाक
(c) विडंग (d) पाटला

109. प्र०:- **भानुमति टीका के लेखक हैं -**
(a) चक्रपाणि (b) डल्हण
(c) शिवदाससेन (d) गयदास

110. Q.:- **Situation of Thymus gland is -**
(a) Brain (b) neck
(c) thorex (d) Abdomen

111. Q.:- **Spleen filters -**
(a) Blood (b) Lymph
(c) Tissue Fluid (d) All

112. Q.:- **Flag sign is found in -**
(a) Marasmus (b) Rickets
(c) Kwashiorkar (d) Ascites

113. Q.:- **Oedema is present in -**
(a) Kwashiorkar (b) Marasmus
(c) Both (d) None

114. Q.:- **Serum Calcium level will be increased in-**
(a) hyperparathyroidism
(b) Hypoparathyrosidism
(c) Both (d) None

115. प्र०:- **अंगमर्द प्रशमन महाकषाय का द्रव्य है -**
(a) एला (b) शाल
(c) शिरीष (d) एलुआ

116. प्र०:- **आगन्तुज व्रण के भेद होते हैं (सुश्रुतानुसार)-**
(a) 3 (b) 4 (c) 6 (d) 8

117. प्र०:- **अग्निकर्म का निषेध है -**
(a) हेमन्त ऋतु में (b) शरद ऋतु में
(c) ग्रीष्म ऋतु में (d) 2 व 3

118. प्र०:- **धारणीय वेग है -**
(a) कास (b) जृम्भा
(c) क्रोध (d) निद्रा

119. प्र०:- **चरकानुसार सान्निपातिक ज्वर के भेद हैं -**
(a) 1 (b) 5 (c) 13 (d)असंख्य

120. प्र०:- **चतुर्थक ज्वर के भेद होते हैं -**
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

121. प्र०:- युक्ति का संबंध है -
(a) योजना से (b) वियोग से
(c) पृथकत्व से (d) सभी से

122. प्र०:- ....फलपाकान्ता -
(a) वनस्पति (b) वानस्पत्य
(c) औषध्यौ (d) वीरूध

123. प्र०:- मोह किस दोष के कारण होता है -
(a) सत्व (b) रज
(c) तम (d) त्रिदोष

124. प्र०:- तम को द्रव्य किसने माना है -
(a) प्रभाकर मीमांसकों ने
(b) आयुर्वेद ने
(c) न्यायदर्शन ने
(d) जैन दर्शन ने

125. प्र०:- आसव अरिष्ट का परीक्षण करते हैं -
(a) By I_2 Content (b) By Asn Value
(c) By Specific Gravity (d) By Moisture Content

126. Q.:- Oil Extraction form Aromatic plants is done by -
(a) HPTLC (b) TLC
(c) Distillation (d) None

7. प्र०:- पर्पटी कल्पना का प्रथमतः वर्णन मिलता है -
(a) चरक में (b) सुश्रुत में
(c) भाव प्रकाश में (d) चक्रदत्त में

128. प्र०:- द्विविध प्रमाण माने हैं -
(a) वैशेषिक (b) न्याय
(c) सुश्रुत (d) सांख्य

129. प्र०:- उपमान को प्रमाण किसने माना है -
(a) न्याय (b) जैन
(c) योग (d) सांख्य

130. प्र०:- आकाश है -
(a) अनित्य (b) नित्य
(c) मूर्त (d) कोई नहीं

131. प्र०:- रोग का आश्रय नहीं है -
(a) शरीर (b) इन्द्रिय
(c) मन (d) आत्मा

132. प्र०:- श्लक्षण कर्म किस गुण का विशेष क
(श्लक्षण पिच्छिलवतज्ञेयं - सुश्रुत)
(a) मृदु (b) स्निग्ध
(c) पिच्छिल (d) श्लक्षण

133. प्र०:- मन का गुण है -
(a) सुख-दु:ख (b) अनेकत्व
(c) अणुत्व (d) सभी

134. प्र०:- अन्त:करण है -
(a) मन (b) बुद्धि
(c) अहंकार (d) सभी

135. प्र०:- त्रय उपस्तम्भ है -
(a) शरीर, इन्द्रिय, मन (b) वात, पित्त,
(c) आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य (d) सत्व, रज,

136. प्र०:- षडधातुज पुरुष है -
(a) आत्मा+पंचमहाभूत (b) षडरस
(c) लिंग शरीर (d) स्पृक शरी

137. प्र०:- सैंधव पित्त शामक है -
(a) रस से (b) गुण से
(c) वीर्य से (d) विपाक से

138. प्र०:- अर्क निर्माण करते हैं -
(a) By a fermentation (b) By Distila
(c) By Boiling (d) By Roasti

139. प्र०:- भल्लातक तैल निष्कर्षण करते है -
(a) डमरू यंत्र से (b) विद्याधर
(c) दोला यंत्र से (d) पाताल यंत्र

140. प्र०:- Brass में Cu व zn का अनुपात होता है
(a) 1:2 (b) 2:1 (c) 1: 4 (d

141. प्र०:- रुद्रभाग होता है -
(a) $^1/_8$ (b) $^1/_2$ (c) $^1/_{10}$ (d)

142. Q.:- Commonest ore of mercury of–
(a) Cinebar (b) Metacine
(c) Hematite (d) Lepidolite

143. प्र०:- दीपन संस्कार से होता है -
(a) चपत्व निवृत्ति (b) मूर्च्छाव्याप
(c) ग्रासार्थी (d) बर्हिमल

144. प्र०:- हरताल का सूत्र है -

(a) As_2s_2 (b) As_2s_3 (c) As_2o_3 (d) $Fecl_2$

145. प्र०:- माक्षिक शोधन करते हैं -
(a) एरण्ड तैल से (b) गोदुग्ध से
(c) गौघृत से (d) कारवेल्लक स्वरस से

146. प्र०:- स्त्री दुग्ध के अभाव में देय दुग्ध होगा -
(a) खर पय: (b) करेणु पय:
(c) अजा पय: (d) गौ दुग्ध

147. प्र०:- सुश्रुतानुसार कटिशूल या पृष्ठशूल का कारण होता है अधिक मात्रा में ग्रहण करना -
(a) लवण रस (b) कटु रस
(c) तिक्त रस (d) कषाय रस

148. प्र०:- उष्णतम रस है -
(a) अम्ल (b) लवण
(c) कटु (d) कषाय

149. प्र०:- वातव्याधि में प्रथमत: सेव्य रस है
(a) मधुर (b) (काश्यप)लवण
(c) कटु (d) कषाय

150. प्र०:- षडूषण में पंचकोल से अतिरिक्त गुण मिलता है -
(a) रूक्ष (b) लघु (c) तीक्ष्ण (d) सभी

151. प्र०:- त्रिगुण की साम्यावस्था है -
(a) प्रकृति (b) पुरुष
(c) सृष्टि (d) सभी

152. प्र०:- मक्कल शूल का कारण है -
(a) गर्भ विकृति (b) अपरा विकृति
(c) अशुद्ध रक्त का नहीं निकल पाना
(d) कोई नहीं

153. Q.:- **Chloral Hydrate is a —**
(a) Sedative (b) Hypnotic
(c) Entiemetic (d) Antibiotic

154. Q.:- **Mode of Action of Procaine Penciline is —**
(a) Interfere with cell wall Synthesis
(b) Interfere with RNA Formation
(c) Interfere with DNA Synthesis
(d) Interfere with Ribose Synthesis

155. Q.:- **$T^1/_2$ of long Acting barbiturates will be more than —**
(a) 18 Hrs. (b) 30-40 hrs.
(c) 80-120 hrs. (d) 1-2 hrs.

156. Q.:- **Route of administration of B.C.G. vaccine —**
(a) I.M. (b) SC
(c) Intra dermal (d) I.V.

157. Q.:- **Phenytoin is used in —**
(a) Diarrhoea (b) Parkinsonism
(c) Epilepsy (d) Hyperthyroidism

158. Q.:- **Sardonicus Smile is Found in –**
(a) Tetanus (b) Facial Paralysis
(c) Parkinsonism (d) None

159. Q.:- **Impression on kidney is found of which organ –**
(a) Pancrease (b) duodenum
(c) Stomach (d) gall bladder

160. प्र०:- आवर्तकी किसका उपद्रव है -
(a) वातज लिंगनाश (b) ह्रस्वजाड्य
(c) धूमदर्शी (d) कोई नहीं

161. प्र०:- सुश्रुतानुसार दोषों के किस पटल में होने पर लिंगनाश संज्ञा होती है -
(a) प्रथम (b) द्वितीय
(c) तृतीय (d) चतुर्थ

162. प्र०:- सुश्रुतानुसार लघु पंचमूल है -
(a) त्रिदोष शामक (b) वात कफ शामक
(c) वात पित्त शामक (d) वात शामक

163. प्र०:- गलशुण्डिका में करते हैं -
(a) भेदन (b) लेखन
(c) वेधन (d) छेदन

164. प्र०:- प्रवाल चूर्ण का प्रयोग निर्दिष्ट है -
(a) वातज मूत्रकृच्छ्र (b) पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र
(c) श्लैष्मिक मूत्रकृच्छ्र (d) अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र

165. प्र०:- 1 वर्ष के शिशु हेतु औषध की मात्रा होगी -
(a) 1 रत्ती (b) 1 माशा (12रत्ती)
(c) 1 शाण (d) 1 कर्ष

166. प्र०:- कनकारिष्ट में कनक (धत्तूर) की मात्रा होती है -
(a) 1 भाग (b) 8 भाग
(c) 10 भाग (d) 0 भाग

167. Q.:- **Chlorpramazine is a –**
(a) Antipsychotic (b) Anti Emetic
(c) Appetizer (d) Analgesic

168. प्र०:- **युक्त प्रत्यक्ष है -**
(a) लौकिक (b) अलौकिक
(c) दोनो (d) कोई नहीं

169. प्र०:- **औषध योजना हेतु आवश्यक प्रमाण है -**
(a) प्रत्यक्ष (b) अनुमान
(c) उपमान (d) युक्ति

170. Q.:- **Main Cause of Bacillary dysentery is –**
(a) Schigelia (b) E. Coli
(c) E. Histolytic (d) H.Influenza

171. Q.:- **Functional unit of Lungs is –**
(a) Alveoli (b) Alveolar ducts
(c) Broncho Pulmonary seg.
(d) Alveolar Saccule

172. Q.:- **Which one is a Erythrocyte Maturation Factor –**
(a) B_1 (b) B_2 (c) B_5 (d) B_{12}

173. प्र०:- **चरक ने मेदावृत्त वात को कहा है -**
(a) आमवात (b) वातबलासक
(c) खुड्डवात (d) आढ्यवात

174. प्र०:- **गर्भिणी को छर्दि में देते हैं -**
(a) मयूरपिच्छ भस्म (b) टंकण
(c) पिप्पली (d) भल्लातक

175. प्र०:- **चरक ने अग्निकर्म का निर्देश किया है -**
(a) अर्दित में (b) वातरक्त में
(c) खल्ली में (d) गृध्रसी में

176. प्र०:- **गम्भीरिका नेत्र रोग है -**
(a) वातज (b) पित्तज
(c) कफज (d) रक्तज

177. Q.:- **Hegar's Sign is –**
(a) Softening of Cervix
(b) Softening of the lower Part of the body
(c) Contraction of uterus
(d) Assymetrical growth of uterus

178. Q.:- **Insulin is a –**
(a) Steroid (b) Pollypeptide
(c) Fatty Acid (d) None

BHU - 2004
Answer - Keys

(1)	b	(2)	a	(3)	d	(4)	b	(5)	b	(6)
(7)	c	(8)	b	(9)	d	(10)	a	(11)	a	(12)
(13)	b	(14)	a	(15)	d	(16)	c	(17)	c	(18)
(19)	d	(20)	a	(21)	c	(22)	a	(23)	d	(24)
(25)	c	(26)	c	(27)	b	(28)	c	(29)	b	(30)
(31)	b	(32)	c	(33)	b	(34)	a	(35)	d	(36)
(37)	b	(38)	b	(39)	b	(40)	a	(41)	c	(42)
(43)	a	(44)	d	(45)	b	(46)	c	(47)	b	(48)
(49)	d	(50)	c	(51)	d	(52)	c	(53)	a	(54)
(55)	a	(56)	c	(57)	a	(58)	b	(59)	a	(60)
(61)	c	(62)	a	(63)	a	(64)	b	(65)	a	(66)
(67)	d	(68)	c	(69)	d	(70)	b	(71)	a	(72)
(73)	c	(74)	b	(75)	a	(76)	a	(77)	b	(78)
(79)	c	(80)	c	(81)	d	(82)	c	(83)	b	(84)
(85)	a	(86)	a	(87)	b	(88)	d	(89)	a	(90)
(91)	c	(92)	a	(93)	a	(94)	c	(95)	d	(96)
(97)	b	(98)	a	(99)	c	(100)	a	(101)	c	(102)
(103)	a	(104)	a	(105)	b	(106)	b	(107)	c	(108)
(109)	a	(110)	b	(111)	a	(112)	c	(113)	a	(11
(115)	a	(116)	c	(117)	d	(118)	c	(119)	c	(12
(121)	a	(122)	c	(123)	c	(124)	a	(125)	c	(12
(127)	d	(128)	a	(129)	a	(130)	b	(131)	d	(13
(133)	c	(134)	d	(135)	c	(136)	a	(137)	c	(13
(139)	d	(140)	b	(141)	d	(142)	a	(143)	c	(14
(145)	a	(146)	c	(147)	b	(148)	b	(149)	b	(15
(151)	a	(152)	c	(153)	b	(154)	a	(155)	c	(15
(157)	c	(158)	a	(159)	c	(160)	a	(161)	d	(16
(163)	d	(164)	d	(165)	b	(166)	d	(167)	a	(16
(169)	d	(170)	a	(171)	a	(172)	d	(173)	d	(17
(175)	d	(176)	a	(177)	b	(178)	b			

द्वारा

डॉ० गोविन्द पारीक
(जूनियर रेजिडेन्ट)
आयुर्वेद संहिता विभाग (आयुर्वेद संकाय)
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी

सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व

चिकित्सा-प्रणालियों में पारस्परिक नैकट्य जरूरी

सितम्बर, 1965

आयुर्वेद इस देश में दीर्घकाल से चला आ रहा है और जहाँ तक मैं समझता हूँ, अप्रत्यक्ष रूप से यह अन्य पद्धतियों का भी जनक है । आयुर्वेद से हिकमत निकली और हिकमत से एलोपैथी । मेरा ऐसा ख्याल है कि यदि प्रत्येक मेडिकल कालेज में ऐसा कोर्स रखा जाय कि अन्तिम वर्ष में विद्यार्थी को कुछ लेक्चर आयुर्वेद के सम्बन्ध में दे दिए जाएँ तो उस छात्र के ज्ञान में व्यापकता आ जायेगी । इसी प्रकार आयुर्वेदिक विद्यालयों में अन्तिम वर्ष में एलोपैथी के कुछ मूल सिद्धान्तों का ज्ञान करा देना श्रेयस्कर होगा । वैद्य, वैद्य बने रहेंगे और डाक्टर डाक्टर परन्तु दोनों एक-दूसरे के कुछ अधिक सन्निकट आ जायेंगे ।

केवल पुरानी पुस्तकों को पकड़कर बैठे रहना बुद्धिमानी नहीं है । यदि प्राचीन लोगों को यह बात श्रेयष्कर प्रतीत होती तो चरक और सुश्रुत संहिताओं के बाद कोई पुस्तक लिखी ही न जाती ।

डा० सम्पूर्णानन्द

बिहार सरकार से मांग

श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा, तत्कालीन निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, पटना ने बिहार सरकार से निम्नलिखित मांग रखी थी :-

1. बिहार-सरकार अविलम्ब देशी चिकित्सा निदेशालय कायम करे, जिससे देशी चिकित्सा-पद्धतियों पर कुछ अधिक ध्यान देना संभव हो सके ।
2. आयुर्वेदिक, यूनानी तथा होमियोपैथिक चिकित्सालयों के समुचित निरीक्षण के लिये कम-से-कम एक-एक विशेषज्ञ को अवश्य ही नियुक्त किया जाय ।
3. विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के अध्यक्ष डा० कोठारी के मतानुसार प्रत्येक सरकारी चिकित्सालय में पृथक् आयुर्वेदिक विभाग को अवश्य ही समुचित स्थान दिया जाय ।
4. बिहार के मुख्यमंत्री ने लगभग एक वर्ष पूर्व घोषणा की थी कि प्रखण्डों में वैद्यों को भी नियुक्त किया जायगा । किन्तु, खेद के साथ कहना पड़ता है कि अभी तक इस घोषणा को कार्यान्वित नहीं किया जा रहा है, जबकि सैकड़ों प्रखण्डों में चिकित्सकों का अभाव है ।

   यदि सरकार जनता की स्वास्थ्य-रक्षा की दिशा में वैद्यों की उपयोगिता को स्वीकार करती है तो उसे अवश्य ही प्रखण्डों में वैद्यों को नियुक्त करना चाहिए । सरकार एलोपैथी को इतना प्रश्रय दे रही है कि नौकरी करने के लिए एलोपैथिक स्नातक मिल नहीं पाते । और इसके विपरीत, आयुर्वेद की ऐसी उपेक्षा है कि इसके स्नातकों के लिए सरकारी नौकरी ही दुर्लभ है ।
5. मैं बिहार-सरकार से यह भी मांग करूँगा कि वह सरकारी कर्मचारियों को आयुर्वेदिक दवाओं का भी मूल्य सरकारी कोष से पाने की सुविधा दे । अभी तो उन्हें न चाहते हुए भी एलोपैथिक इलाज कराने की मजबूरी है क्योंकि उन्हें बिहार-सरकार आयुर्वेदिक औषधियों का मूल्य नहीं देती है । मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि सरकार अपने कर्मचारियों को ऐसी सुविधा देगी तो सरकारी कर्मचारियों के परिवारों में आयुर्वेद का प्रचार काफी बढ़ जायगा ।
6. बिहार-सरकार अविलम्ब राज्य के समस्त आयुर्वेदिक कालेजों का प्रान्तीयकरण करे जिससे उनका समुचित संचालन एवं नियंत्रण सम्भव हो । जब श्री हरिनाथ मिश्र बिहार के स्वास्थ्य मंत्री थे, तभी उन्होंने बेगूसराय के अयोध्या-शिवकुमारी आयुर्वेद-महाविद्यालय में भाषण करते हुए आश्वासन दिया था कि राज्य के सभी आयुर्वेद महाविद्यालयों का प्रान्तीयकरण किया जायगा । इस आश्वासन को कार्यान्वित करने में अब कदापि विलम्ब नहीं किया जाना चाहिए ।
7. समाचार पत्रों से ज्ञात हुआ है कि सरकार चतुर्थ पंचवर्षीय योजना के पाँच वर्षों में दस लाख रुपये की नगण्य राशि से वैद्यों-हकीमों तथा होमियोपैथों की सहायता करना चाहती है । इस छोटी-सी राशि से वैद्यों में फूट बढ़ेगी, जिन वैद्यों को सहायता मिलेगी उनका मुँह बंद रहेगा और इससे आयुर्वेद की आवाज कमजोर पड़ेगी । अतएव यदि सरकार आयुर्वेद, यूनानी तथा होमियोपैथी को सहायता वास्तव में करना चाहती है तो अच्छा यही होगा कि वह इनकी संस्थाएं खोले और वर्तमान संस्थाओं को भी विकसित करें, जिससे आयुर्वेद का कुछ अधिक विकास-विस्तार हो ।
8. आज औचित्य का बहुत बड़ा तकाजा है कि बिहार सरकार वैद्यों तथा हकीमों के वेतन-क्रमों का सुधार करे और व्यापक सुधार करे । यह मांग हम पहले भी उपस्थित कर चुके हैं और इस समय भी दुहराना आवश्यक समझते हैं । आयुर्वेद तथा यूनानी की स्वाभिमान रक्षा और वर्तमान भीषण महँगाई, दोनों ही दृष्टियों में हम वैद्यों तथा हकीमों के वेतन-क्रमों का व्यापक सुधार आवश्यक मानते हैं । गुजरात, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, महाराष्ट्र आदि कई राज्यों में बिहार से कहीं अच्छे वेतनक्रम वैद्यों को दिये जाते हैं ।

Baidyanath Research Foundation is conducting one year Ayurvedic Certificate Course

To,

The Chief Director/The Executive Director
Baidyanath Research Foundation
172 Gusainpura, Jhansi (U.P.)

(Through- Sachitra Ayurved)

Respected Sir,

It is a matter of great pleasure that Baidyanath Research Foundation is conducting one year Ayurvedic Certificate Course. This course is very useful for Ayurvedic fundamental knowledge.

Dr. Shah, The Principal School of Ayurveda, New Delhi is very strict Administrator. He likes neatness. He is very smart natured gentle man and cares too much for students. Other professor like Dr. C.P. Thaplial is very expert person. He co-operates, guides and teaches very cordially.

It is very true fact other Professors/ teachers Dr. Renu Buttra, Dr. V. Gupta & Dr. Shashi Bhushan are teaching very nicely& must not forget to appreciate their teaching material & style.

I request if you can help for any surgical couse which will be useful for Ayurvedic students.

Besides there are Ayurved Ratnas (Graduate) who will join this course. This will be more useful for them and It will develop your Baidyanath foundation.

Moreover, I want that Baidyanath may be an International Organisation. So, I had submitted a project Reprint for cancer therapy. Its respouse is still awaited.

However, I will try to work for this organisation. Although I have been in politics and my goal is to be the PRESIDENT of INDIA but till, I get my goal, I will try to serve Baidyanath.

Personal regards.

Your faithfully
Ramnath Chawla
J-3/2B Jaiprakash Nagar
Ghonda, Delhi - 53

हार्दिक बधाई

सेवा में,

माननीय डा० आलोक पारिख, अध्यक्ष
आयुर्वेद, होम्योपैथी सुधार सलाहकार समिति, उ
(द्वारा - सचित्र आयुर्वेद)

आदरणीय महोदय

आयुर्वेद-होम्योपैथी सुधार सलाहकार समि उ०प्र० के अध्यक्ष पद सुशोभित करने के उपलक्ष्य में एवं राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा सेवा सं उ०प्र० जनपद शाखा-हाथरस की हार्दिक बधाई एवं हार्दि अभिनन्दन स्वीकार करें ।

हम सभी चिकित्साधिकारी बन्धु आपसे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास रखते हैं कि आपकी संरक्षता में आयुर्वेद-होम्योपैथी पद्धति निरन्तर उन्नति के पथपर अग्र होगी ।

आप से निवेदन है कि आप हमारी निम्न समस्या का निराकरण शासन से मिलकर अपनी जाँच आख्या में अंकित कर अवश्य करायेंगे ।

- हमलोगों को सम्पूर्ण सेवाकाल (सर्विस) में शासन/निदेशालय स्तर से दो ही पत्र निर्गत होते हैं 1. नियुक्ति पत्र (अपोईंटमेन्ट लेटर) 2. सेवा निवृ पत्र (रिटायरमेन्ट लेटर) । प्रोन्नति के कोई अव हमारे विभाग में नहीं है, जबकि एलोपैथिक पद्धति में प्रोन्नति के अनेक अवसर प्रदान होते हैं ।
- माननीय उच्चतम न्यायालय ने आयुर्वेदि चिकित्साप्रणाली को एलोपैथिक चिकित्सा प्रणाली से श्रेष्ठ माना है । हमारे चिकित्साधिकारी बन्धु सजग से अपनी ड्यूटी को अंजाम देते हैं । तब शासन का हमारे साथ सौतेला व्यवहार क्यों/यह विचारणीय वि है ।
- उच्च न्यायालय के आदेशों का पालन केवल एलोपैथि विभाग में होता है आयुर्वेद विभाग में क्यों नहीं उच्चन्यायालय के आदेश का पालन सिर्फ आयु विभाग में स्थानान्तरण नीति के सम्बन्ध में होता है, एक गम्भीर प्रकरण है । उच्च न्यायालय के आदेश का पालन सभी विभाग में एक समान होना चाहिए ।

- मुख्य चिकित्साधिकारी की तरह क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी एवं जिला होम्योपैथी अधिकारी को अधिकार मिलने चाहिए । यह असमानता कैसी ?
- क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी का पद नाम परिवर्तित कर जिला आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी होना चाहिए । जिन जनपदों में कार्यालय नहीं है, उन जनपदों में कार्यालय खुलने चाहिए ।
- वरिष्ठता क्रम में उपजिला आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी । उपजिला होम्योपैथी अधिकारी की नियुक्ति शासन को प्रस्तावित करने की कृपा करें।
- आयुर्वेदिक एवं यूनानी होम्योपैथी विभाग को एन.पी.ए. एवं वाहन भत्ता दिलवाने की अनुकम्पा करें ।
- निदेशक आयुर्वेदिक एवं यूनानी सेवायें, उ०प्र० लखनऊ ने अपने पत्र सं० 9686/ अधि. दिनांक 31 अगस्त 2004 के द्वारा प्रमुख सचिव, चिकित्साशिक्षा अनुभाग-2. उ०प्र० शासन लखनऊ को '' विषय - राज्य आयुर्वेदिक एवं यूनानी चिकित्साधिकारियों एवं चिकित्साधिकार (सामुदायिक स्वास्थ्य) के कैडर रिव्यू के सम्बन्ध में।'' जो पत्र भेजा है उस पर तुरन्त आवश्यक कार्यवाही होनी चाहिए । पत्र की छायाप्रति संलग्न है ।

आपसे पुन: अनुरोध है कि हमारी मांगों को शासन में भेजकर कार्यवाही कराने की कृपा करें, आप जो भी कार्य मुझे सौंपेंगे मैं उसका बहुत ही सर्तकता से पालन करूँगा ।

(डा० राकेश मोहन शर्मा)
मण्डलीय सचिव, आगरा मंडल
जाँच अधिकारी
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय,
बरई शाहपुर-हाथरस (उ.प्र.)

बैद्यनाथ
अश्वगंधारिष्ट
मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि आदि में लाभकारी

बैद्यनाथ
लवणभास्कर चूर्ण
मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

आरोग्य समाचार : अखबार की कतरनों से

निम्न व मध्यम आय वर्ग पर हृदय रोग की मार ज्यादा

दैनिकजनसत्ता में प्रकाशित समाचार के अनुसार हृदय रोग से पीड़ित मरीजों में 80 फीसदी मरीज निम्न और मध्यम आय वर्ग के लोग हैं । 25 से 30 फीसदी दिन के दौरे 40 साल से कम उम्र के लोगों को पड़े । फोर्टीज अस्पताल की ओर से जारी बयान में यह जानकारी दी गई। विशेषज्ञों के मुताबिक धूम्रपान या तंबाकू सेवन से इसके खतरे बढ़ जाते हैं । धूम्रपान में दस फीसदी कमी लाना 30 अस्पताल स्थापित करने से ज्यादा कारगर है ।

देश विदेश में हृदय रोगियों की बढ़ती संख्या पर अस्पताल ने एक रपट जारी की है । इसके मुताबिक विकसित देशों में हृदय रोगियों की आयवर्ग और आयुवर्ग विकासशील देशों से अलग है । विकासशील देशों में आय और आयु के लिहाज से निम्न व मध्यम आयुवर्ग के 30 से 40 साल की उम्र के लोग सबसे ज्यादा इसकी चपेट में हैं । इनकी संख्या 80 फीसदी है (कुल मरीजों में) । यानी यह धारणा भी टूट रही है कि यह मर्ज केवल अमीर लोगों को होता है । धूम्रपान, उच्च रक्तचाप, तनाव, मोटापा और मधुमेह इसके खतरे को बढ़ा देते हैं । विकसित देशों की तुलना में विकासशील देशों के लोग दस साल पहले ही इस बीमारी का शिकार हो जाते हैं ।

दक्षिण एशिया की दस फीसदी आबादी मधुमेह से पीड़ित है । यह हृदय रोग के प्रमुख कारणों में से एक है । तीन महीने में एक बार खून में शर्करा की जांच जरूर करा लेनी चाहिए । नियमित व्यायाम, संयमित जीवनशैली और उचित खानपान से इस बीमारी से बचा जा सकता है ।

लगातार बढ़ रहे हैं हड्डियों की कमजोरी के मरीज

दैनिक जनसत्ता में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार बहुमंजिली इमारतों में सिमटती जिंदगी और बच्चों में टेलीविजन के प्रति बढ़ते आकर्षण के कारण हड्डियों में कमजोरी के मरीज बढ़ रहे हैं । आनेवाले दशकों में हड्डियों की कमजोरी से पीड़ित मरीजों की कतार और लंबी हो सकती है । फिलहाल देश में हड्डियों की कमजोरी से होने वाली बीमारी ऑस्टियोपोरोसिस से पांच करोड़ लोग पीड़ित हैं। बिहार आर्थोपेडिक्स एसोसिएशन के महासचिव एवं हड्डी रोग विशेषज्ञ डा० अमूल्य कुमार सिंह के अनुसार टेलीविजन के प्रति बच्चों में बढ़ता आकर्षण और शारीरिक गतिविधियों तथा खेलकूद में कमी के कारण बच्चों की हड्डियों का विकास जितना होना चाहिए वह नहीं हो पा रहा है ।

उन्होंने बताया कि 35 की आयु तक आम आदमी की हड्डियों के मजबूत होने प्रक्रिया जारी रहती है लें
उसके बाद प्रति वर्ष 0.3 प्रतिशत से लेकर 0.4 प्रतिशत
दर से हड्डी का वजन गिरता है और हड्डियों की कम
की प्रक्रिया शुरू हो जाती है । 35 वर्ष की आयु तक ह
के मजबूत होने की प्रक्रिया चलती रहती है । इस दौ
यदि खान-पान और शारीरिक मेहनत के प्रति लापर
बरती जाए तो हड्डियों का सामान्य विकास बाधित होता
ऐसे लोगों को 35 वर्ष की आयु के बाद हड्डियों
कमजोरी का खामियाजा भुगतना पड़ सकता है ।

पहले जहां औसत आयु 50 वर्ष के आसपास
और 35 से 50 वर्ष के बीच के 15 वर्षों में लोगों को अ
कमजोर होती हड्डियों का शिकार होना पड़ता था
औसत आयु में वृद्धि के साथ ही लोगों को 72 वर्ष
आयु तक प्रति वर्ष 0.3 प्रतिशत से 0.4 प्रतिशत तक हड्डि
के गिरते वजन का शिकार होना पड़ रहा है ।

उन्होंने बताया कि धूम्रपान और शराब के
सेवन से भी आम आदमी की हड्डियों के विकास पर अ
पड़ रहा है । बच्चों के खेलकूद में भाग न लेने से
सूरज की रोशनी से प्राप्त होने वाले विटामीन डी से
वंचित होना पड़ रहा है जो कैलशियम को पचाने के
जरूरी होता है । उन्होंने बताया कि विटामीन डी की क
के कारण कम उम्र से ही हड्डियों के वजन में कमी
कमजोरी की शिकायतें बढ़ रही हैं । विभिन्न चिकि
शिविरों में ऐसे मरीजों की संख्या में वृद्धि दर्ज की जा
है ।

डा. सिंह ने बताया कि पूरे देश में अस्टिओपोरो
से पीड़ित पांच करोड़ की आबादी में महिलाओं की सं
करीब तीन करोड़ है और ऐसा माना जाता है कि अधि
समय घरों के अंदर गुजारने और खुली घूप से दूर रहने
खान-पान में लापरवाही बरतने के कारण अधिकांश महि
विटामिन डी की कमी की शिकार होती हैं जिसके का
महिलाओं की हड्डियां मजबूत नहीं हो पातीं और 35
की आयु के बाद उनकी हड्डियों का वजन तेजी से
लगता है । मासिक क्रिया बंद होने के बाद हड्डियों
कमजोरी की प्रक्रिया में तेजी आ जाती है । ऐसा देखा
है कि जहां पुरुषों की हड्डियों का वजन 35 वर्ष की
के बाद 0.3% से 0.4% की दर गिरता है वहीं मासि
क्रिया के बंद होने के बाद महिलाओं की हड्डियों के व
में 3% से 5% प्रति वर्ष गिरावट दर्ज की गई है ।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

उत्तर प्रदेश

इलाहाबाद

बैद्यनाथ निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सा शिविर सम्पन्न

350 से भी अधिक मरीजों को निःशुल्क परामर्श

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (प्रा०) लिमिटेड, नैनी (इलाहाबाद) के सौजन्य से रायबरेली (उ.प्र.) में निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सा परामर्श शिविर दिनांक 29/07/05 को अमर होटल, रायबरेली शिविर में मेसर्स मुनीष औषधालय, रायबरेली द्वारा आयोजित किया गया। शिविर में बैद्यनाथ विशिष्ट परीक्षण वैद्य समिति के नाड़ी वैद्य श्री शशिधर शर्मा, वैद्य श्री ज्योतिमय सिंह, वैद्य श्री सतीश चतुर्वेदी सम्मिलित हुए तथा इलाहाबाद (नैनी) के सुप्रसिद्ध नाड़ी वैद्य, वैद्य श्री बासुकी नाथ रौनियार (जड़ी-बूटी एवं चूर्ण-विभाग), श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन (प्रा०) लिमिटेड (नैनी) इलाहाबाद) ने भी रोगियों को परामर्श किया।

शिविर में प्रातः 9.00 बजे से सायः 7.00 बजे तक मरीजों का तांता लगा रहा। शिविर में लगभग 350 से भी मरीजों को निःशुल्क आयुर्वेदिक चिकित्सा परामर्श दिये गये। मरीजों में विशेषतया युवाओं एवं महिलाओं में आयुर्वेद के प्रति-विशेष रुझान देखने को मिला।

शिविर को सुव्यस्थित ढंग से संचालित करने में श्री वी.के. शर्मा जी का महत्वपूर्ण एवं सराहनीय योगदान रहा। उन्होंने बताया कि शिविर में अधिकांशतः मधुमेह, बहुमूत्र, जोड़ों के दर्द, अस्थमा, चर्मरोग, गुप्तरोग एवं स्त्रीरोग के मरीजों को देखा गया।

शिविर में आयुर्वेद की विशेषतां पर ध्यान केन्द्रित करते हुए श्री वी.के. शर्मा जी ने बताया कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति द्वारा रोगों का समूल निदान होता है।

श्री बैद्यनाथ नैनी (इलाहाबाद) जड़ी-बूटी विभाग के वैद्य श्री बासुकी नाथ रौनियार जी ने मरीजों को जड़ी-बूटियों के गुण-धर्म से अवगत कराते हुए कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति एक निर्दोष पद्धति है, जो रोगों को समूल नष्ट कर शरीर को स्वस्थ एवं दीर्घायु बनाता है। वैद्य रौनियार ने मधुमेह रोगियों को रेमजे फार्मा. नैनी का डायवेट सिरप लेने की सलाह देते हुए कहा कि रेमजे फार्मा द्वारा निर्मित मधुमेह रोगियों के लिए डायवेट सिरप एक अद्भुत आयुर्वेदिक योग है, जो कुदरती ढंग से शरीर के पेंक्रियाज ग्रन्थि को उत्तेजित कर इन्सुलिन सुचारु रूप में स्रावित कर मधुमेह रोगियों को स्वस्थमय जीवन प्रदान करनें में सफल पाया गया है।

चरक जयंती समारोह

विश्व आयुर्वेद परिषद्, साहिबाबाद, गाजियाबाद

दिनांक 10/08/05 श्रावण शुक्ल पंचमी बुधवार पूर्वाह्न 10 बजे श्रीमतहनुमत धाम आश्रम राजेन्द्र नगर, साहिबाबाद, गाजियाबाद में महर्षि चरक जयन्तीपर्व का आयोजन विधिविधानपूर्वक किया गया।

सर्वप्रथम पूज्य आचार्य श्री ब्र० चन्द्रपालजी महाराज जी की अध्यक्षता में मंगलाचरण कर महर्षि चरक तथा आयुर्वेदावतरण सूचक प्रतिकृति (फोटो) पर पुष्पांजलि अर्पित की गयी। तदनन्तर लाजपत राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय के भू०पू० प्राचार्य एवं संस्कृत तथा प्राच्यविद्या विशारद डॉ० गणेश दत्त जी शर्मा का सरगर्भित अभिभाषण हुआ। डॉ० शर्मा जी ने विशेपकर अथर्ववेद में समस्त आयुर्वेद के सूत्रों का आयुर्वेदीय चिकित्सा हेतु प्रयोगों का विस्तृत वर्णन किया। उन्होंने विदेशों में भी विशेपकर भारतीय संस्कृति की जीवन्तमूर्ति कवि कालिदास की प्रतिमा एवं शाकुन्तलम् से सम्बन्धित भित्ति चित्रों को जर्मनी (बर्लिन) के संग्रहालय का उल्लेख भी किया। अन्त में उन्होंने आयुर्वेदपदेशेषुः विधेयः परमादरः के साथ समापन किया।

केन्द्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान पंजाबी बाग, नई दिल्ली के स० आयुर्वेद निदेशक पद से सेवानिवृत्त डॉ० महेन्द्र कुमार जी त्यागी ने आचार्य अग्निवेश कृत तंत्र जिसका कि पुनर्वसुआत्रेय द्वारा अग्निवेशादि शिष्यों को उपदेश दिया गया तथा जो ग्रन्थमूल संहिता के रूप में उपलब्ध है एवं जिसको महर्षि चरक द्वारा प्रतिसंस्कृत किया गया, का विभिन्न स्थानों, अध्यायों तथा विषयों का विस्तृत उल्लेख किया।

चरक संहिता में आयुर्वेद की परिभाषा का विस्तृत उल्लेख इस प्रकार किया गया है।

हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम
मानं च तच्च यत्रोक्तं आयुर्वेदः स उच्यते ।

शरीर के समस्त क्रियाकलापो का वर्णन भी इस प्रकार वर्णित है यथा :

सर्वदा सर्वभावनां सामान्यं वृद्धि कारणम् ।
हासहेतु विशेषश्च प्रवृति रुमयस्यतु ॥

इस प्रकार से आयुर्वेद का सार फिजियोलोजी तथा पैथोलोजी का स्वरूप वर्णन किया गया है । किन-किन आवस्थाओं में कैसे-कैसे प्रकृति में विकार की उत्पत्ति होती है । आचार्य पुनर्वसु के अनेक योग्यतम शिष्यों द्वारा अपने-अपने विषयों को समर्पित संहिता ग्रन्थों में से आज सम्पूर्ण चिकित्सा ग्रन्थ के रूप में चरक प्रति संस्कृत अग्निवेश तंत्र (चरक संहिता) सांगोपाङ्ग उपलब्ध है जिसका अध्ययनाध्यापन समस्त आयुर्वेद महाविद्यालयों में होता है । इन शब्दों के साथ अपना सम्बोधन चरक प्रतिकृति पर पुष्पाजंलि अर्पित कर समाप्त किया।

चरकजयन्तीसमारोह

भारतीय वायु सेना से सेवानिवृत्त श्री राजकुमार ज़ी ने अपने अनुभवों का उल्लेख करते हुए बताया कि उन्हें बचपन से स्वास रोग प्रबल रूप में सताता था । सभी प्रकार की चिकित्सा की लेकिन कोई लाभ नहीं हुआ । अन्त में दिल्ली विश्वविद्यालय स्थित पटेल चेस्ट इंसिस्ट्यूट के डा० शिवपुरी द्वारा एक औषधि दी गयी जिसका टाइलोफोरा अस्थमेंटिकौ के वानस्पतिपक नाम से जाना जाता है । चार से पाँच दिन तक चबाकर खाया जाता है, इसके सेवन से दुबारा स्वास रोग नहीं होता । इसके सेवन से मुझे पूरा लाभ मिला । श्री वैद्य बालेश्वर जी द्वारा कुन्दरू फल के पत्तों का रस निकाल कर पिलाने से मधुमेह में आशातीत लाभ होता है । भकुम्बर (लम्बे-लम्बे पत्तों वाला) (वनस्पति बरसात में सूख जाती है), इसके पत्तों का रस पांच दिन तक पीने से हाई ब्लड प्रेसर निश्चि ठीक होता है । अन्त में वैद्यराज पं० शान्ति कुमार जी मि ने अपने चिकित्सा में प्राप्त अनुभवों द्वारा सभी को उपकृ किया । लांगली (कलीहारी) का सद्य वेदानाहार के रूप प्रयोग विशेषरूप से दन्तशूल तथा शिर:शूल आदि लाभप्रद है । पीलिया में भूमिआमला का प्रयोग निश्चि लाभदायक है । वैद्यजी द्वारा क्षेत्रीय संकलित वनौषधियों प्रदर्शनी का आयोजन वि आकर्षण का केन्द्र र जिसका उद्घाटन आचा ब्र० चन्द्रपाल जी सर्वप्रथम किया।

इस अवसर प केन्द्रीय आयुर्वेदानुसंधा संस्थान, नई दिल्ली द्वा सेवानिवृत्त एसिस्टें डायरेक्टर डॉ० राजत्या ने चरक जयन्ती के व में अपने विचार रखे। इ अवसर पर समाजवा पार्टी के स्थानीय नेता श्री रामदुलार यादव जी भारतीय संस्कृति एवं संस्कृत के प्रतिक्षीण होती रूचि गरिमा हमारी अवनति के विशेष कारण हैं जिनके प्रति हम समाज को सजग रहने की आवश्यकता है । श्री एस०के०मि जी ने भी अपने विचार आयुर्वेद के बारे में प्रस्तुत कि अन्त में श्री अवस्थी जी द्वारा सभी का धन्यवाद ज्ञाप किया गया । डा० श्री निवास मिश्र तथा श्री सियाराम मिश्र भी उपस्थित रहे ।

सभा के अन्त में वैद्यराज श्री सुरेश पाठक द्वारा सभी अगन्तुक विशिष्ट अतिथिगण पूज्य ब्र० जी त समस्त वैद्यराजमित्र वर्ग का हार्दिक आभार व्यक्त कि तथा समस्त पत्र प्रतिनिधियों, छायाकारों का विशेष धन्यवाद ज्ञापन कर एवं पूज्य महन्त श्री ब्र० चन्द्रपाल द्वारा श्रीमत हनुमतधाम आश्रम तथा यहां उपलब्ध सम

साधन सुविधाओं के उपयोग की सुविधा प्रदान करने हेतु आभार व्यक्त किया गया, इसी के साथ सभा का समापन हुआ। इसके अतिरिक्त डॉ० शिव कुमार त्यागी, डॉ० इन्द्रेश त्यागी, डॉ० नरेन्द्र कुमार बंसल, डॉ० राकेश मिश्रा ने जयन्ती कार्यक्रम में भाग लिया ।

हार्दिक अभिनन्दन

श्री आर.एस.यादवजी, निदेशक पद पुनः सुशोभित करने के उपलक्ष्य में मेरा एवं आगरा मण्डल के समस्त चिकित्साधिकारियों का हार्दिक अभिनन्दन तथा हार्दिक स्वागत स्वीकार करें ।

डा० राकेश मोहन शर्मा
मण्डलीय सचिव,
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय,
बरई शाहपुर-हाथरस (उ.प्र.)

छत्तीसगढ़

भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन आयुर्वेद विज्ञान शिविर

हृदय रोग नियंत्रण एवं शोध तथा आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति कार्यक्रम रविवार 13 नवम्बर से मंगलवार 15 नवम्बर 2005 तक त्रिदिवसीय शिविर आयोजन सेमिनार स्थान-उदय महाविद्यालय, छावनी, भिलाई (छ.ग.) भारत

शत्-शत् नमन सुखद स्वास्थ्य दीर्घायु की कामनाओं के साथ बसंत ऋतु पावन पर्व पर हार्दिक बधाई ।

उपरोक्त विषयान्तर्गत आपसे सादर निवेदन है कि छत्तीसगढ़ हिन्दी परिषद् द्वारा भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी/सम्मेलन/कार्यशाला के अंतर्गत शिविर में महामहिम राष्ट्रपति जी, मा० प्रधानमंत्री जी, मा. स्वास्थ्य मंत्री, भारत सरकार एवं राज्यपाल, मुख्यमंत्री, स्वास्थ्य मंत्री, छ.ग. शासन, मा. कुलपति जी, कुल सचिव, आयुर्वेदाचार्य चिकित्सकों, शोध पत्र, उद्योग समूह, औषधि निर्माता, औषधि डिलरों, औषधी प्रचारक, ग्रन्थ विक्रेता/प्रकाशकों, वनौषधि संरक्षकों/बुद्धिजीवियों, पत्रकारों, निजी संस्थानों, गणमान्य अतिथियों को आमंत्रित कर के अतिथि के रूप में सम्मान करना चाहता है ।

आपके सहयोग से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित कार्यक्रम दिन-रविवार 13 नवम्बर 2005 से मंगलवार 15 नवम्बर 2005 तक त्रि-दिवसीय अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी शिविर का आयोजन किया गया है । सेमीनार स्थान-उदय महाविद्यालय, छावनी, भिलाई, जिला-दुर्ग (छ.ग.) में सम्पन्न होना है जिसमें आप सादर आमंत्रित हैं । आपकी उपस्थिति एवं मार्गदर्शन में कार्यक्रम को सफल बनाना है ।

श्री वरिष्ठ, बुद्धिजीवी गण प्राचार्य, चिकित्सा अधिकारी, औषधि निर्माताओं, वनौषधि संरक्षकों, निजी संस्थानों, चिकित्सकों, वैद्यगण आदि हृदय रोग परिचय पर परिभाषा, रोग का कारण, नियंत्रण, विधि विषय पर शोध पत्र/आलेख हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा में साफ-सुथरा एवं टंकित लेख आमंत्रित है । राष्ट्रभाषा को प्राथमिकता दी जायेगी ।

समिति द्वारा प्रस्तावित प्रतिभागी पंजीयन शुल्क-900/- रु० (नौ सौ रुपये मात्र) (सुन्दर स्मारिका पर चित्र सहित आलेख 1/8 साईज पर 1200/- रु०मात्र) । विद्यार्थियों के लिए पंजीयन शुल्क 750/- रु. (स्मारिका पर चित्र सहित आलेख 1/8 साईज पर 950/-रु. मात्र) होगी ।

सम्मेलन में भाग लेने वाले प्रतिनिधि को 30 अगस्त 2005 तक पंजीयन शुल्क भेजकर पंजीयन करालेवे इसके बाद पंजीयन कराने पर 25 सितम्बर 2005 तक 200/- अतिरिक्त सहयोग राशि देकर पंजीयन करावें, इसके पश्चात् शिविर में भाग लेने वाले प्रतिनिधियों के प्रवेश आवेदन पर समिति विचार कर जगह रहने पर प्रवेश दी जायेगी ।

सम्मेलन प्रतिभागियों के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था समिति द्वारा की जायेगी ।

अतः आप से प्रार्थना है कि भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी पर अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन संगोष्ठी शिविर हृदयरोग नियंत्रण आयुर्वेद विज्ञान के विकास हेतु देश की जनता को स्वास्थ्य लाभ पहुँचाने के पुनित कार्य को देखते हुए सेमिनार आयोजित हेतु पंजीयन शुल्क का

बैंक ड्राफ्ट/मनीआर्डर/नगद वैद्य धनुषराम साहू के नाम से बनाकर कार्यालय-उदय महाविद्यालय, छावनी, भिलाई, पो०-हाऊसिंग बोर्ड, जिला -दुर्ग (छ.ग.) को भेजें । इस सहयोग के लिए छत्तीसगढ़ हिन्दी परिषद् आपका सदैव आभारी रहेगा।

इसी आशा व विश्वास के साथ आपके स्वीकृति पत्र के प्रतीक्षा में -

नोट - उक्त विज्ञापन कार्यक्रम को अपने इष्ट मित्रों को जानकारी देकर प्रवेश कराने का कष्ट करें ।

कार्यक्रमका उद्घाटन समारोह

मान्यवर,

आयोजक छत्तीसगढ़ हिन्दी परिषद् छावनी-भिलाई के तरफ से अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन, आयुर्वेद विज्ञान शिविर के पावन अवसर पर आप सादर आमंत्रित हैं । आपकी उपस्थिति प्रार्थनीय है ।

मुख्य अतिथि :.................................
विशिष्ट अतिथि :..............................
अध्यक्षता :..

कार्यक्रम की रूपरेखा

प्रात: 7.30 बजे से 9.00 बजे तक - दीप प्रज्ज्वलन, राष्ट्रीय गान विद्यालय द्वारा, सरस्वती वंदना एवं अतिथि स्वागत तथा उद्बोधन ।

प्रात: 9.00 बजे से 10.00 बजे तक - नाश्ता, दूध, बिस्कुट, खारा मीठा स्वल्पाहार, चाय ।

प्रात: 10.00 बजे से - दोप. 1 बजे तक - अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन आयुर्वेद विज्ञान शिविर, हृदय रोग विषय संबंधित प्रत्येक शोध पत्र प्रस्तुति 9 मिनट का होगा ।

दोप. 1 बजे से - 2 बजे तक - भोजनावकाश ।

दोप. 2 बजे से -3 बजे तक - अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन आयुर्वेद विज्ञान प्रत्येक विशेषज्ञों का संगोष्ठी 8.30 मिनट का होगा।

दोप. 3 बजे से संध्या 5 बजे तक - अन्तर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन आयुर्वेद विज्ञान, हृदय रोग विषय संबंधी शोध पत्र प्रस्तुति 8.30 मिनट का होगा प्रत्येक विशेषज्ञों का।

संध्या 5 बजे - नाश्ता, दूध, चाय ।

संध्या 7.30 बजे से 8.30 बजे तक - भोजन ।

रात्रि 8.30 बजे से रात्रि 9.30 बजे तक - सम्मेलन, कविता 12 मिनट का होगा ।

सांस्कृतिक कार्यक्रम रात्रि 9.30 बजे से 10 बजे तक - अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन आयुर्वेद वि संबंधी होगी।

आयोजक
वैद्य धनुष राम साहू
अध्यक्ष - छत्तीसगढ़ हिन्दी परिषद
विशेष जानकारी हेतु सम्पर्क सूत्र
वैद्य धनुष राम साहू (आयुर्वेद सेवा आश्रम, कुटेली कला वा
शासन द्वारा रजि. वैद्य नं. 42151 ए.एम.पी.एस.क्र. 667
तीस वर्षों का नाड़ी/हृदय रोग का विशेष अनुभव
निवास पत्रालय का पूर्ण पता :-
(आई.टी.आई.कालोनी के पास),छावनी भिलाई, पो. हाउसिंग बो
जिला-दुर्ग (छ.ग.) पिन-490 026
फोन:- 0788 - 2286227 (नि.)
5049233(आ.)

गुजरात

राजकोट शहर में आयुर्वेद महोत्सव संपन

दि० 3/7/05 रविवार पी.डी. मालविया संचालित नागरादि चिकित्सा समुह द्वारा आयोजित महोत् गुज.आयु. युनि. के पूर्व उपकुलपति गूरुपर्व वैद्य ठाकर जे. साहब की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। आचार्य वैद्य पी. शुक्ल एवं गुज.आयु.यूनि. जामनगर के उपकुलपति सावरीकर द्वारा एवं सौराष्ट्र यूनि. राजकोट के उपकुल वैद्य कनुभाई मावाणी के कर-कमलों द्वारा धन्वन्तरि एवं दीप जला करके कार्यक्रम का प्रारंभ किया गया।

आयुर्वेद महोत्सव में गुज.आयु.युनि. के डॉ०द्विवेदी द्वारा एवं कार्यक्रम को संचालक डॉ० सूरा ''अष्टांग हृदय'' पुस्तक का विमोचन पधारे हुए महानु द्वारा किया गया । इस कार्यक्रम में जयपुर के सुप्रसिद्ध दवे जी अहमदाबाद के सन्माननीय वैद्यगण एवं वि वैद्य मित्रों ने बड़े उत्साह से भाग लिया ।

कार्यक्रम के मुख्य सन्माननीय श्री वरुंणभाई

मालवीया, श्री के.एम. जानी, डा. विपिन वैष्णव, डा. संजय पटेल, डा. मिहिर वासा एवं अन्य गणमान्य वैद्य उपस्थित

रहे ।

गुज.प्रदेश आयु.सम्मेलन द्वारा सेवा यज्ञ

गुजरात में हुई भारी वर्षा के कारण कई जिलों और शहरों में अति वृष्टि से गुज. प्रदेश आयु. समे. के सदस्यों द्वारा प्रभावित इलाकों में अलग-अलग जगह पर अपनी टीम बनाकर राहत कार्य में प्रशंसनीय सेवा कार्य में गुज.के. डाक्टर कमलेश राजगारे द्वारा धोलका - धंधुका, बावला, राणपुर, बरवाळा एवं अहमदाबाद की असरग्रस्त तहसील में कई वैद्य मित्रों के साथ असरग्रस्त लोगों को पीने का पानी अनाज एवं औषध का वितरण किया गया ।

खेडा जिला वैद्य मंडल द्वारा आयोजित सेवा यज्ञ

खेडा जिला में हुई भारी वर्षा के कारण गुज.प्रदेश आयु. समे. के सदस्य एवं खेडा जिला वैद्य मंडल के अध्यक्ष तथा वैद्य मनीश चतुर्वेदी द्वारा खेडा जिला में अतिवृष्टि के दौरान गांवों में फंसे हुये लोगों को निकालकर सुरक्षित स्थान पर लाने का, भोजन एवं स्वास्थ्य के लिये औषध का प्रबंध दस दिन तक निःशुल्क सेवा करने पर दि. 24.07.05 रविवार के दिन जिला कलेकटर एवं खेड़ा मानर के विधायक श्री राकेश राव द्वारा वैद्य मनीष चतुर्वेदी को एवं वैद्य मनुभाई त्रिवेदी को सम्मानित किया गया । दि. 24.07.05 रविवार के दिन खेडा जिला वैद्य मंडल द्वारा आयोजित

नि:शुल्क आयुर्वेदिक निदान यज्ञ में ग्राम देथली जिला खेडा एवं अन्य आस-पास के गांवों में करीब दस हजार से अधिक असरग्रस्त लोगों को नि:शुल्क औषध वितरण करके बड़ा सेवा कार्य किया गया। इस कार्यक्रम में विशेष अतिथि के रूप में गुज.प्रदेश आयु. संमे. के प्रधानमंत्री वैद्य देवेन्द्र शाह और मंत्री श्री डा० आणेकर, अहमदाबाद उपस्थित रहे एवं वैद्य रिटावेन भट्ट, वैद्य निताषेन काठीया, डा० कंसारा, डा० पठाण, डा० जगदीश पटेल, वैद्य अरविन्द शर्मा, वैद्य दवे, सेवा कार्य में उपस्थित रहे ।

गुज.प्रदेश आयु.समे. द्वारा आयोजित किडनी मूत्ररोग पर आयुर्वेद परिसंवाद

दि. 28 अगस्त 2005 रविवार सुबह 9.00 से सायं 4.00 बजे तक (सुबह चाय नाश्ता एवं दोपहर को भोजन सहित) स्थान :- सृष्टि हॉल, सासुजी होटल, गोकुलेश, काम्पलेक्स, अलकापुरी, बड़ोदरा (गुज.) समाज में बहु चर्चित किडनी मूत्ररोग विषय पर प्राचीन आयुर्वेद निदान चिकित्सा एवं मार्डन निदान चिकित्सा पद्धति पर विशिष्ट समतोल ऑडियो-वीडियो सीडी द्वारा इस विषय के विशिष्ट चिकित्सकों द्वारा वैज्ञानिक परि-संवाद का आयोजन किया गया है । आयुर्वेद महाविद्यालय के विद्यार्थी के लिये रजि. मात्र 50/-, वैद्यों के लिए रजि.फीस मात्र 100/- जो वैद्यमित्र गुज.प्र.आयु. समे. के सदस्य नहीं हैं उनके लिए रजि.फीस मात्र 200/- रुपये स्पॉट रजि. फीस 400/- रुपये । रजि. के लिए गुज.प्र.आयु. समे. के प्रधानमंत्री/वैद्य देवेन्द्र के शाह (मो. 9824022376) पर संपर्क करें अथवा गुज.प्र.आयु. समे. के किसी भी पदाधिकारी का संपर्क करके अपना रजि. करवायें ।

उड़ीसा

''स्वास्थ्य विलास'' पत्रिका का स्वर्ण जयन्ती समारोह सम्पन्न

दि० 24 जुलाई 2005 को उड़िया भाषा में प्रकाशित एकमात्र आयुर्वेद मासिक पत्रिका ''स्वास्थ्य विलास'' का स्वर्णजयन्ती समारोह टाउन हॉल, पारलाखेमुण्डी में सम्पन्न हुआ ।

इस समारोह के पूर्व सांसद श्री अर्नाद साहु ने दीप प्रज्वलित करते हुए उद्घाटन किया । उत्कल सम्मेलन के केन्द्रीय सम्पादक श्री पूर्णयज्ञ महापात्र की अध्यक्षता में सभा सम्पपन्न हुयी । इसमें वरिष्ठ साहित्यक प्रो० डा० आचार्य मुख्य अतिथि निखिल उत्कल वैद्य सम्मेल अध्यक्ष कविराज श्री घनश्याम मिश्र मुख्यवक्ता, आकाशवाणी के केन्द्रीय निर्देशक श्री शान्तनु कुमार पाटला विधायक श्री त्रिनाथ साहु, रामगिरि विधायक भरत पाठक ने सम्मानित अतिथि के रूप में योगदान कि

पण्डित कुमुदरंजन दास और साथी के वेद और सरस्वती शिशु मन्दिर के छात्र-छात्राओं के प्रार संगीत परिवेषण के बाद अध्यापक डा० कान्हुचरण स्वागत भाषण दिये । पत्रिका के मुख्य संपादक कवि श्री रामनाथ पात्र ने विवरणी पाठ किये ।

''स्वास्थ्य विलास'' के स्वर्ण जयन्ती स के मुख्य अतिथि प्रोफेसर सुदर्शन आचार्य ने विन किया ।

पत्रिका के माध्यम से आयुर्वेद का प्रसार प्रचार, नये रोग की जानकारी और आयुर्वेद की उन्न लिए वृक्षलता रोपण आदि के बारे में अतिथियों ने अपने- मत व्यक्त किये ।

प्रतिष्ठाता संपादन कविराज स्वर्गगत सत्यना पात्र जी के अप्राण उद्यम से आज स्वास्थ विलास प अपना 50 साल पूरा कर रहा है और उड़ीसा की एक पत्रिका को जीवित रखने के लिए आयुर्वेद प्रेमि निवेदन किए ।

इस अवसर पर ''स्वास्थ्य विलास'' के 23 लेखकों को मानपत्र और से सम्मानित किया गया।

सभा के अन्त में वरिष्ठ संवाददाता श्री चन्द्र पाढ़ि ने धन्यवाद अर्पण किए थे ।

इस अवसर पर उड़ीसा के विभिन्न प्रान्त आयुर्वेद अध्यापक, चिकित्सक, लेखक समेत स्थ सरकारी और वेसरभारि भद्र व्यंक्ति ने योगदान किय

पंजाब

डा० गोपाल चड्ढा, चड्ढा ट्रेडर्स के आयोज में स्तन कैंसर पर एक गोष्ठी हुयी जिसमें 17 चिकि ने भाग लिया । इस अवसर पर डा० चड्ढा ने स्तन के निम्न कारण बताये :-

1. अधिक कोल्ड ड्रिंक एवं फास्ट फूड का प्रयो
2. मासिक धर्म की अनियमितता ।
3. अंकुरित एवं सन्तुलित आहार न लेना ।

सम्पादकीय

कामला (हेपेटाइटिस-बी) का बढ़ता प्रकोप

भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय के अनुसार हेपेटाइटिस बी ने मृतकों के मामले में एड्स को पीछे ढकेल दिया है । प्राप्त समाचार के अनुसार विश्व का सबसे ज्यादा वाहक (कामला का) हमारे देश में है । इसकी संख्या 4 करोड़ 30 लाख है जिसमें 10% अत्यन्त खतरनाक संक्रामक हैं । सरकारी आंकड़ों के अनुसार भारत में 20 में से प्रत्येक व्यक्ति इस वायरस के वाहक हैं जिसके चलते 80% लीवर कैन्सर उत्पन्न होता है । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के अनुसार हेपेटाइटिस बी के पास विभिन्न एण्टीजेन हैं जिसमें HBsAg सर्वाधिक खतरनाक वाहक माना जाता है। यह रोग यकृत का रोग है और इसका वायरस यकृत-तन्तु को नष्ट करता है । फलतः यकृत् कैन्सर उत्पन्न होता है । ज्ञात हुआ है कि राष्ट्रीय प्रतिरक्षण कार्यक्रम में हेपेटाइटिस बी के टीके को शामिल करने का निर्णय सरकार ने लिया है । सम्भवतः 2006 से बच्चों को अन्य टीकों के साथ इसका टीका भी दिया जाएगा । सरकार का यह स्वागत-योग्य कदम है, किन्तु बच्चों को ही क्यों, इसे वयस्कों को भी निःशुल्क देना चाहिए । सम्प्रति जो चिकित्सक इसका टीका देते हैं, वे प्रतिव्यक्ति 400-500 रुपये वसूल करते हैं । यदि घर में पांच व्यक्ति हैं, तो लगभग 2000-2500 रुपये खर्च हो जायेंगे । यह खर्चीला टीका है । अतः चाहते हुए भी पूरा परिवार इसका टीका नहीं ले सकता है । ऐसी स्थिति में सरकार को अनिवार्य रूप से सबों को टीका देने की व्यवस्था करनी चाहिए ।

इंजेक्शन (सुई) की आदत खतरनाक

आम तौर पर यह देखा जाता है कि रोगी और रोगी के साथ (एटेन्डेन्ट) इलाज के लिए जब चिकित्सक के पास जाते हैं, तो वे चिकित्सक से ऐसी औषधि की अपेक्षा रखते हैं जो शीघ्र आराम पहुंचा सके । आमतौर पर रोगी और उनके साथी चिकित्सक से सुई देने की अपेक्षा करते हैं । यद्यपि इन दिनों डिस्पोजेबुल सुई (एक बार इस्तेमाल के पश्चात् फेंक दिया जाता है) का प्रयोग होता है, इसके बावजूद देखा गया है कि अधिकांश सुई असुरक्षित होती है । ब्रिटिश मेडिकल जरनल (सितम्बर, 2005) में प्रकाशित एक शोध के अनुसार दक्षिण पूर्व एशिया के क्षेत्रों में 75% ऐसी सूइयों का इस्तेमाल होता है जो जीवाणुशून्य (Sterilised) नहीं होते हैं । परिणामतः वायरस एवं जीवाणुओं के कारण अनेक रोग उत्पन्न होते हैं । आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2000 में विकासशील देशों में 160 खरब सूइयों का प्रयोग रोगियों पर किया गया । परिणामतः 41% लोगों को हेपेटाइसिस सी, 30% को हेपेटाइसिस बी और 5% लोगों को एच.आई.व्ही. रोग उत्पन्न हुए । अर्थात् 76% आबादी रक्त में उपस्थित वायरस के चलते रोगग्रस्त हुयी । विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में 63% आबादी असुरक्षित सुई का शिकार होती है । सम्भवतः इसी कारण से भारत सरकार ने टीकाकरण कार्यक्रम में केवल आउटो-डिसेबुल सुई के इस्तेमाल पर बल दिया है । ऐसा देखा जाता है कि जो सुई फेंक दी जाती है, उसे भी कबाड़ी का व्यवसाय करने वाले एकत्रित करते हैं और उसे सस्ते दामों पर नकली सुई बनाने वालों को बेच देते हैं । मिलावट का बाजार इतना बृहत् पैमाने पर फैला हुआ है कि अग्रणी कम्पनियों के उत्पाद के नाम पर अपनी कम्पनियों में उत्पादित नकली माल को बेच देते हैं । इससे समस्या और गम्भीर पैदा हो जाती है । इसका निदान सरकार के साथ-साथ रोगियों, उनके अभिभावक एवं चिकित्सक के हाथ में है । सरकार निश्चित रूप से शीशे की

सुई पर प्रतिबन्ध लगावे, जहां सुई का निर्माण होता है, वहां देख-रेख चुस्त करे, रोगियों की सुई के प्रति अपने मोह को छोड़ना चाहिए तथा चिकित्सकों को भी चाहिए कि वे सुई का प्रयोग कम से कम करें ।

आयुर्वेद विरोधियों का मुकाबला अपने गुण से करें

विगत कई सौ वर्षों से आयुर्वेद के विरूद्ध प्रचार की प्रक्रिया निरन्तर जारी है । यह आशा की जाती थी कि आजादी के पश्चात् स्वदेशी सरकार में आयुर्वेद के साथ न्याय का व्यवहार किया जायेगा । खेद है कि हमारी सरकार के प्रतिनिधि आजादी के पूर्व जनता को दिये गये वचन से विमुख हो चुके हैं । अभी भी आयुर्वेद पर केन्द्रीय बजट का हिस्सा अत्यन्त कम है । एलोपैथी को जहां 100 रुपये में से 99 रुपये आवंटित किये जाते हैं, वहां आयुर्वेद के मद में केवल एक रुपया । यह सरकारी विषमता है । सरकार की ओर से कमजोर पक्ष को ज्यादा मजबूती प्रदान करनी चाहिए । वर्तमान स्थिति में आयुर्वेद की अपेक्षा एलोपैथी ज्यादा ताकतवर है । इसका कारण केवल हमारा देश नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण दुनिया में एलोपैथी के पक्ष में प्रचार किये जाते हैं । संक्षेप में इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं :-

1. पृथ्वी के तीन-चौथाई क्षेत्रों पर कभी गोरों का प्रभुत्व ।
2. सामान्यतया गोरों की चिकित्सा-पद्धति किसी न किसी रूप में एलोपैथी रही है ।
3. एलोपैथी दवाओं को राज्याश्रय प्राप्त है । अर्थात् सम्बन्धित सरकार अपने देश के बजट का ज्यादातर हिस्सा एलोपैथी पर खर्च करती है ।
4. एलोपैथी दवाओं के अनुसंधान में अरबों डालर प्रतिवर्ष विभिन्न देशों में खर्च किय जाते हैं जबकि स्वदेशी चिकित्सा-पद्धतियों के अनुसंधान में खर्च होने वाली राशि लाखों डालर में ही होती है ।
5. आयुर्वेद के पक्ष में प्रचार-मीडिया काफी कमज है जबकि एलोपैथी के पक्ष में तुलनात्मक दृष्टि से ज्यादा मजबूत है ।
6. हमारी अधिकांश नीति अमेरिका एवं यूरोप निर्देशित होती है । इन देशों में आयुर्वेद रसौषधियों के खिलाफ व्यापक जनमत तैय किया गया है । इन देशों में रसौषधियों पाबन्दी लगाने की बात की जा रही है ।

उपर्युक्त स्थिति से मुकाबला करने लिए हमें आयुर्वेद में छिपे गुणों को विश्व जनम के समक्ष लाना पड़ेगा । साथ ही हमें अप कमजोरियों पर भी विचार करना पड़ेगा । यह सत है कि अधिकांश आयुर्वेद-औषधि निर्मात्री कम्प रसौषधियों के निर्माण के सिलसिले में लापरवा होती है । रसौषधियों का निर्माण जिन तत्वों से हो है, उनका शुद्धिकरण पर्याप्त रूप से नहीं हो पा है । फलतः यह औषधि लाभ के बजाय नुकस पहुंचाती है । हमें रसौषधियों का निर्माण शास्त्रो विधि से करना पड़ेगा । इस सिलसिले में ह आधुनिक तकनीक का भी इस्तेमाल करना चाहि । रसौषधियों की बात छोड़ भी दी जाय, तो यह सत्य है कि अनेक विषैले पादपों का शुद्धिकर ठीक से नहीं हो पाता है । यह हमारी कमजोरी । लापरवाही के कारण अथवा ज्यादा से ज्या लाभ कमाने की प्रवृत्ति के कारण हम औषधि की गुणवत्ता पर ध्यान नहीं दे पाते हैं । इस परिणाम यह होता है कि आयुर्वेद का दुष्प्रचार हो है । विदेशियों की बात ही छोड़ दें, हमारे देश लोग भी दुष्प्रचार के शिकार हो जाते हैं । गल करती है कुछ कम्पनियां, शिकार होता है आयुर्वे

अतः समय का तकाजा है कि हमें अ गुणों के द्वारा आयुर्वेद-विरोधियों का मुकाबला क केवल कथनी से नहीं ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-71

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

सुश्रुत

सुश्रुत धन्वन्तरि के शिष्य थे । यह तथ्य स्वयं सुश्रुत संहिता से ज्ञात होता है ।[1] विद्वत्-सभा में उपस्थित विद्वानों में काशीराज भगवान धन्वन्तरि, औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौष्कलावत, करवीर्य, गोपुर रक्षित, सुश्रुत आदि थे। टीकाकारों के अनुसार सुश्रुत का नाम विद्वानों की सूची में अन्तिम जगह इसीलिए आया है कि श्रेष्ठ या प्रिय व्यक्ति का नाम या तो प्रारम्भ में आता है अथवा अन्त में । सुश्रुत के नाम कई जगह आये है । विद्वानों में इनकी एकरूपता के सम्बन्ध में मतभेद हैं । आचार्य प्रियव्रत शर्मा[2] ने सुश्रुत सम्बन्ध में निम्न मत व्यक्त किये हैं :-

1. सुश्रुत दो कहते जाते हैं - एक वृद्ध सुश्रुत और दूसरा सुश्रुत ।
2. कहीं-कहीं सुश्रुत और वृद्ध सुश्रुत दोनों के उद्धरण एक जगह मिलते हैं ।
3. ऐसा प्रतीत होता है कि दिवोदास का शिष्य आद्य या वृद्ध सुश्रुत था जिसने मूल सौश्रुत तंत्र की रचना की। यह संभवत: अग्निवेश तंत्र की पूर्व की रचना थी । उसके बाद सुश्रुत द्वितीय या सुश्रुत ने प्रतिसंस्कृत कर नवीन रूप दिया ।

आद्य सुश्रुत

आद्य सुश्रुत या वृद्ध सुश्रुत के विषय में आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने मत व्यक्त किये हैं :-

''आद्य सुश्रुत उपनिषत्कालीन हैं । अत: तत्कालीन सामग्री मूल सुश्रुत संहिता की मानी जानी चाहिए । इनमें निम्नांकित तथ्य महत्वपूर्ण हैं :-

1. शिष्योपनयनीय - यह अध्याय प्राचीन प्रतीत होता है यद्यपि विषय वस्तु में किंचित् परिवर्तन कालक्रम से सम्भव है । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के ही उपनयन का विधान है । यदि शूद्र कुलगुण सम्पन्न हो, तो उसे बिना उपनयन के आयुर्वेद पढ़ावे । अन्तिम विधान 'इत्येके' करके दिया है, सम्भवत: यह बाद में जोड़ा गया है । चरक संहिता में भी त्रिवर्ण को ही आयुर्वेद पढ़ने की अनुमति है -

2. दार्शनिक तथ्य - श्वेताश्वतर उपनिषद् के अनेक दार्शनिक विचार सुश्रुत संहिता में मिलते हैं । कुछ उदाहरण यहां दिये जा रहे हैं -

स्वभावमीश्वरं कालं यदृच्छां नियतिं तथा ।
परिणामं च मन्यते प्रकृतिं पृथुदर्शिनः ॥
- सु०शा० 1/7

यह श्लोक श्वेताश्वतर के निम्नांकित श्लोकों के आधार पर है -

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या । (1/2)
स्वभावमे के कवयो वदन्ति कालं तथाऽन्ये परिमुह्यमानाः ।
(6/1)

निम्नांकित श्लोक शैली में बिल्कुल मिलते-जुलते हैं :-

पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणेर्मि पञ्चबुद्धयादिमूलाम्।
पञ्चावर्तां पञ्चदुखौद्यवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ।
श्वे० 1/5

पञ्चाभिभूतास्त्वथ पञ्चकृत्वः पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयन्ति ।
पञ्चेन्द्रियं पञ्चसु भावयित्वा पञ्चत्वमायान्ति विनाशकाले ॥
सु०शा० 9/9

शारीर स्थान (प्रथम अध्याय) का आधिदैवत प्रकरण भी उपनिषदों से प्रभावित है ।

सुश्रुत संहिता में निर्दिष्ट सांख्य दर्शन ईश्वर कृष्ण की सांख्यकारिका में प्रतिपादित विचारों से साम्य रखते हुए भी किंचित् भिन्न है यथा ईश्वर कृष्ण ने तत्वों का वर्गीकरण तीन में किया गया है मूल प्रकृति, प्रकृति विकृति तथा विकृति, किन्तु सुश्रुत संहिता में दो ही वर्ग हैं प्रकृति और विकृति । आठ प्रकृतियां मानी गई हैं जिनमें अत्यक्त के साथ प्रकृति-विकृति भी सम्मिलित हैं ।

प्रकृति-पुरुष के साधर्म्य-वैधर्म्य की चर्चा करते हुए सुश्रुत ने प्रकृति और पुरुष को सर्वगत कहा है जबकि

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

आगे पुन: पुरुष अनेक माना है । वस्तुत: यह श्वेताश्वतर के त्रितत्ववाद का प्रभाव है जिसके अनुसार परमात्मा (ईश), जीवात्मा (अनीश) तथा प्रकृति (अजा) ये तीन तत्व प्रमुख हैं :-

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थ युक्ता ।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्तात्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥

- श्वे० 1/9

श्री मुखोपाध्याय[3] ने वृद्ध सुश्रुत या सुश्रुत प्रथम के सम्बन्ध में निम्न प्रकाश डाला है -

1. सुश्रुत द्वितीय से भिन्न वृद्ध सुश्रुत सौश्रुत तंत्र के प्रणेता थे ।
2. मूल ग्रंथ का प्रतिसंस्कार बौद्ध विद्वान, नागार्जुन ने किया और ग्रन्थ का नाम सुश्रुत संहिता पड़ा ।
3. टीकाकारों ने वृद्ध सुश्रुत का जिक्र किया है जिसका आशय यह है कि उन दिनों मूल ग्रन्थ उपलब्ध था ।
4. प्रमाण के अभाव में हम सौश्रुत तंत्र और सुश्रुत संहिता को पृथक् नहीं मान सकते हैं । इसके बावजूद यह तय है कि मूल सौश्रुत तंत्र वर्तमान सुश्रुत संहिता से पृथक् था, क्योंकि सौश्रुत तंत्र में दिये गये अनेक उद्घरण सुश्रुत संहिता की टीकाओं में नहीं पाये जाते हैं ।
5. सुश्रुत शल्य-क्रिया के विशेषज्ञ थे, जबकि चरक काय चिकित्सक थे ।
6. जहां तक ग्रन्थ के रचयिता का प्रश्न है, विद्वानों में मतभेद है, क्योंकि सुश्रुत संहिता के प्रारम्भ में ब्रह्मा, दक्ष, अश्विन, इन्द्र, धन्वन्तरि, सुश्रुत एवं अन्य के साथ वन्दना का जिक्र है । जैसे **नामो ब्रह्मप्रजापत्यश्विव बलभिद्धन्वन्तरि सुश्रुत प्रभृतिभ्य:** । यह सम्भव है कि सुश्रुत संहिता के प्रतिसंस्कर्त्ता ने मूल ग्रन्थ के लेखक के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की हो । प्रभृति (अन्य) का आशय यह हो सकता है कि सुश्रुत के अतिरिक्त भी अन्य शल्यतंत्री हों ।
7. सुश्रुत [4,5,6] ने अपने विषय का स्वयं पांच प्रमुख वर्गों में वर्गीकरण किया है । साथ ही वे कहते हैं कि उत्तरतंत्र का वर्णन बाद में किया जायगा । इससे स्पष्ट है कि उत्तरतंत्र बाद में लिखा गया, किन्तु इसे मूल ग्रन्थ में जोड़ दिया गया ।
8. पांचवें खण्ड[7] के अन्त में आयुर्वेद के महत्व पर प्र डाला गया है । सामान्यतया यह तब होता है लेखक अपनी बात कह चुके होते हैं ।
9. उत्तरतंत्र के प्रारम्भ में नेत्र-रोग के सम्बन्ध में निमि वर्णन किया गया है, न कि धन्वन्तरि का ।
10. सुश्रुत के काल का ठीक-ठीक निर्धारण नहीं कि जा सकता है । किन्तु, वे वैदिक युग के आस-पा अवश्य होंगे ।
11. महाभारत में सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र कहा है । इस महान ग्रन्थ का प्रणयन लगभग 1000 ई हुआ है । इसका अर्थ है कि सुश्रुत इसके पूर्व अवश्य होंगे ।
12. यदि शतपथ ब्राह्मण को आधार बनाया जाय, तो सु कम से कम 600 ई०पू० अवश्य हुए होंगे क्योंकि ग्रन्थ के लेखक को सुश्रुत के सिद्धान्तों की जान थी ।
13. हस्ति-आयुर्वेद में पालकाप्य ने सुश्रुत के उपकरणों उल्लेख किया है । अंग देश के राजा रोमामद दरबार में पालकाप्य पशु चिकित्सक थे । ये रा पिता, राजा दशरथ के समकालीन थे । अत: इससे सुश्रुत के युग का पता चलता है ।
14. सुश्रुत प्रथम के ग्रन्थ से व्याख्या कुसुमावलि, नि संग्रह, व्याख्या मधुकोष, तत्व चन्द्रिका, भावप्र आदि में दिये गये कुछ उद्धरण सुश्रुत प्रथम के से लिये गये हैं ।

डा० ज्योतिमित्र ने इस सम्बन्ध में निम्न प्र डाला हैं -

1. सुश्रुत संहिता को सुश्रुत तंत्र या सौश्रुत भी कहते
2. वृद्ध सुश्रुत या सौश्रुत सुश्रुत का प्रणीत मूल ग्रन्थ कालान्तर में यह वर्तमान संहिता संस्कृत होती है । संस्कार में तो काट-छांट तो होती ही है । अ जिन पाठों को संस्कर्त्ता ने काट दिया है या पृथक दिया है, वे ही इतस्तत: उद्धृत मिलते हैं । सम्भ कि इस सुश्रुत के टीकाकार (डल्हण) को सुश्रु

कोई दूसरी प्रति मिली हो और चक्रपाणि को उससे भिन्न । सुश्रुत में ही कुछ पाठ जो चक्रपाणि सम्मत हैं वे डल्हण की टीकावाले सुश्रुत में दृष्टिगत नहीं होते ।

3. मधुकोष द्वारा उद्‌धृत बहुत से उद्धरण सम्प्रति प्राप्त सुश्रुत में मिल जाते हैं और कुछ नहीं मिलते । अतएव यह मानना चाहिए कि वृद्ध सुश्रुत या सौश्रुत कोई पृथक् ग्रन्थ नहीं था, अपितु इसी सुश्रुत का पाठभेद था, जिस प्रकार चरक का काश्मीर पाठ चक्रपाणि की आयुर्वेद दीपिका मधुकोष में उद्‌धृत है और उनमें से कुछ अंश चरक में मिलता है और कुछ नहीं ।

यह सुश्रुत संहिता का सूत्र, निदान, शारीर, चिकित्सा, कल्प एवं उत्तर इन छः स्थानों में विभक्त है । जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि कतिपय व्यक्ति उत्तरतंत्र को नागार्जुन या अन्य किसी व्यक्ति के द्वारा सुश्रुत में जोड़ा गया मानते हैं पर इस विषय में लोगों के ये सहेतुक विचार हैं कि उत्तरतंत्र जोड़ा नहीं गया, यह पहले से ही विद्यमान था; क्योंकि यदि नागार्जुन द्वारा यह भाग जुड़ा होता तो इसमें पारद आदि के योगों का उल्लेख अवश्य होता, पर ऐसा नहीं है । किन्तु मेरे विचार से ये दलीलें ठीक नहीं, क्योंकि यदि वह उत्तर तंत्र स्थान होता तो उसका नाम उत्तरतंत्र न होकर उत्तरस्थान ही होता, जैसा कि अन्य स्थानों के साथ है । दूसरी बात यह है कि इसमें शालाक्य, बाल एवं काय-चिकित्सा के रोगों का वर्णन है जबकि सुश्रुत स्वतः इस ग्रन्थ का शल्यशास्त्र की प्रमुखता के रूप में उल्लेख करता है । तीसरी बात यह कि इस विभाग में पद्य ही पद्य हैं केवल 64 एवं 65 अध्यायों में थोड़ा-सा गद्य आ गया है, जो कि अन्यत्र से लिया गया प्रतीत होता है और तंत्रयुक्तियाँ 65 वें अध्याय में वर्णित तो साक्षात् कौटिल्य अर्थशास्त्र से ली गई हैं । चौथी बात तो यह है कि आयुर्वेदीय संहिताओं में यह क्रम रहा है कि वे सभी 120 अध्यायों में पूर्ण हों । चरक में भी 120 अध्याय हैं और संभवतः भेल में भी थे, इसी प्रकार सुश्रुत में भी होने चाहिए और यह 120 संख्या उत्तरतंत्र को छोड़कर पूर्ण बैठती है, अतएव इन सब बातों के आधार पर उत्तरतंत्र को बाद का जोड़ा हुआ मानना सर्वथा उचित है ।

(निरन्तर जारी)

संदर्भ :-

1. अथ खलु भगवन्तममरवरमृषिगण परि वृत्तमाश्रमस्थं काशिराज दिवोदासं धन्वन्तरिमौपधेनववैतरणोरभ्र पौष् कलावत करवीर्य (र) गोपुर रक्षित सुश्रुतप्रभृतय ऊचु : ।
सु०सू० 1/3
2. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास - डा०पी०व्ही०शर्मा, चौखम्बा आरियन्टालिया, वाराणसी ।
3. History of Indian Medicine - Girindranath Mukhopadhyaya, University fo Calcutta.
4. तञ्च सविंशमध्यायशतं पञ्चसु स्थानेषु ।
तत्र सूत्रनिदानशारीर चिकित्सत कल्पेष्वर्थवशात् ।
संविभज्योत्तरे तंत्रे शेषानर्थान् वक्ष्यामः । -सु०सू० 1/40
5. प्रागभिहितं 'सविंशमध्यायगतं पञ्चसु स्थानेषु' ।
तत्र सूत्रस्थानमध्याया; षट्चत्वारिंशत, षोडश निदाननि, दश शारीरापि, चत्वारिंशच्चिकित्सतानि, अष्टौ कल्पा०, तदुत्तर षट्षष्टिः । - सु०सू० 3/3
6. अध्यायानां शतं विंशमेवमेत दुरीरितम् ।
अतः परं स्वनाम्नैव तंत्रमुत्तरमुच्यते ॥
- सु०सू० 3/28-29
7. सविंशमध्यायशतमेत दुक्तं विभागशः ।
इहोद्दिष्टान निर्दिष्टानर्थान् वक्ष्याम्य थोत्तरे ।
सनातनत्वाद्वेदानामक्षरत्वात्तथैव च ।
तथा दृष्टफलत्वाच्च हितत्वादपि देहिनाम् ।
वाक्समूहार्थ विस्तारात् पूजितत्वाच्च देहिभि ।
चिकित्सितात् पुण्यतमं न किंचिदपि शुश्रुमः ।
ऋषिरिन्द्र प्रभावस्यामृतयोनेर्मिषग्गुरोः ।
धारयित्वा तु विमलं मतं परमसंमतम् ।
उक्ताहार समाचार इह प्रेत्य च मोदते ।
- सु०क० 8/140-143
8. इदानीं तत् प्रवक्ष्यामि तंत्रमुत्तरमुत्तमम् ।
निखिलेनोपदिश्यन्ते यत्र रोगाः पृथग्विधाः ।
शालाक्यतंत्रामिहिता विदेहाधिपकीर्तिताः ।
ये च विक्तरतो दृष्टाः कुमाराबाधहेतवः । सु०उ० 1/4-5
9. चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन - डा० ज्योतिर्मित्र आचार्य-श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना ।

दोषज उन्माद चिकित्सा संबंधी आयुर्वेदीय परिकल्पना (कुछ आ०वृ० पत्र सहित

वैद्य पी०एस०अंशुमान, एच.पी.ए. (निवृत्त प्रोफ०/प्राचार्य आयु०

परिचय [1]

आयुर्वेद साहित्य में जिन मानसिक रोगों का विस्तृत वर्णन मिलता है इनमें उन्माद भी एक है । आयुर्वेद की प्रचलित सुगम मान्यता के अनुसार एवं प्रवृद्ध दोष ऊर्ध्वगामी होकर मनोविभ्रम को उत्पन्न करते हैं तब (अत:) उस मानस रोग को उन्माद कहते हैं ।

उन्माद मन आदि की उन्मत्त या विभ्रमयुक्त अवस्था है । इसमें मन, बुद्धि, स्मृति-धृति, चित्त एवं चेता आदि विभ्रंशित होकर विविध रोग उत्पन्न करते हैं ।

उन्माद के संहिता ग्रंथों में प्राप्त विवरणों में, निज एवं आगन्तु दो प्रमुख उन्माद स्वरूप देखने को मिलते हैं । कायदोष जन्य, मानस विकार जन्य एवं विष, भूतादि आगन्तु निमित्त जन्य उन्मादों का वर्णन मिलता है ।

प्रस्तुत स्थल पर निज-काय दोष जन्य उन्माद पर संक्षिप्त टिप्पणी प्रस्तुत की गई है । यहां पर विविध रोग संदर्भों में प्राप्त 'चित्तविभ्रमादि' पर विचार नहीं किया गया, मात्र उन्माद संदर्भ में प्राप्त दोषज उन्मादों तक ही विचार सीमित रखा है ।

उन्माद हेतु [2]

(क) आहार

रस - कटु, अम्ल (पैत्तिक) (च)

गुण, कर्म आदि - रूक्ष, शीत (वातज) (च) उष्ण (पैत्तिक) (च)

अशनदोष - विरुद्धाशन (च) अल्पाशन (वातज)(च) उपवास (वातज)(च) अजीर्णाशन (पैत्तिक) (च)

आहार द्रव्यादि - अशुचि आहार (च) समल (च) सविष (च) दुष्टाहार (च) विकृत (च) विदग्धाहार (पैत्तिक)(च) अनुचित (च) उपहित (च)

(ख) विहार

निद्रा - (असम्यक निद्रा)

ब्रह्मचर्यादि - (अब्रह्मचर्य)

व्यायाम - मंद चेष्टिता या विचेष्टता (कफज) (च) विषम चेष्टा (च)

अन्य - विषमाचार (च) (चरकादि ने विवृत्त गर्भिणी को उन्मत्त संतान को जन्म देने कहा है) च०शा० 8/30

(ग) उपक्रमदोष

विरेकादियोग (च)

।। शिर-हृदय मर्माभिघात (च) यथा सीमन्तानाम तत्रोन्माद भयचित्तानाशैर्भरणं सु०शा० 6/27 तथा तत्र हृदयेभिहते अपस्मारोन्माद प्रलाप चित्तनाशादय: (च०सि० 9/6)

(घ) रोगानुबंधता

धातुक्षय कारक रोगानुबंध (वातिक)

विदग्धातीर्ण/अम्लपित्तादि अनुबंध (पैत्तिक)

कफप्रकोपक रोगानुबंध (कफज)

व्याधिवेग समुद्भवता (च)

(ङ) मानसिक

I देव प्रघर्षण (च) (आगन्तु)

II गुरु एवं द्विज प्रघर्षण (च) (आगन्तु)

III भय एवं हर्ष पूर्वक मनोभिघात (च)

IV उद्वेग - कामक्रोध, हर्ष, शोक, लोभ, चिन्ता जन्य उद्वेग (य चित्तोद्वेग), आयास मनोभिघात (च)

V विधिहीन तंत्र प्रयोग (च) (आगन्तु)

विकृति[3]

(क) घटक

1. दोष - (।) वातकोप एवं वात प्रतिबद्धत्व (च) उदीर्ण पित्त (पैत्तिक) (च), कफ वृद्धि कोप तथा संग्रह (कफज) (च) (सु) (अ) समग्रत: दोषोत्सन्नता (च)
   (।।) रज एवं तम मानसिक दोष वृद्धि
2. दूष्य - धातुक्षीणता (वातिक) (च)
3. अग्नि/आम - मंदाग्नि (कफज), आम/सामदोष
4. स्रोत एवं मर्म - (।) शिरोगत सीमन्त मर्माभि (सु) तथा हृदयाभिघात (च) एवं चेतना अधि

निवास : 1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुजरात) - 364001

बुद्धि निवास हृदय प्रदुष्टि (च)

(II) मनोवह स्रोत में दोषोधिष्ठन (च)

5. अन्य आगन्तु निमित्त - भूताभिषङ्ग ।

(ख) क्षेत्र संबंधी

(I) सत्व संबंधी

अल्प सत्वता (च) प्रदुष्ट मलीन सत्व (च) उपक्लिष्ट सत्व (च) उपहृत सत्व (च) कामादि उद्वेग से पुनः मनोभिघात (च) भीरुता युक्त सत्व चेतना का आशु प्रमोहन (च)

विषमवृत्त सेवी एवं विलोम चेष्टी (च) मानसिकता ।

(II)देह

अत्यन्त उपक्षीणं देह (च)

प्रवृद्ध वातादि दोष, रोगवेग से ग्रस्त (च)

मलीन विकृत आहार सेवी (च)

विषम वृत्त सेवी, विलोम चेष्टी (च)

(ग) चरण

संचय - निदान सेवन जन्य दोष संचय ।

प्रकोप - संचित दोषों का प्रकुपित होना, उदीर्ण होना ।

प्रसर - प्रकुपित दोषों का देह में प्रचलित हो सर्पण ।

स्थान संश्रय - मर्म (शिर/हृदय) एवं स्रोत (मनोवह/बुद्धिवह) में ।

व्यक्ति - उन्माद करना ।

भेद - वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तु (च) 5
- वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मानसिक एवं विषज आदि (6) (सु)
- वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मानसिक विषज एवं भूतोन्माद (अ) (7)

(घ) विशेष

I सामान्य चरण

- भीरू (स्वभाव) दुखीमन अल्पसत्व प्रवृद्धदोष युक्त, मलीन एवं विकृत आहार सेवी, विषमवृत्त सेवी, विलोम चेष्टारत क्षीणदेही* एवं रोग वेग से संत्रस्त *मनोविकार पीड़ित व्यक्ति में (च) निदान सेवन से शारीरिक-मानसिक दोष के दूषित होने पर (अ)* (अ)
- मन के अस्थिर होने से, बुद्धि के स्थिर न रहने (च) मन के हीन बनने पर (विषम चेष्टा जन्य दोष कोप होने से) (अ)
- प्रवृद्ध वातादि दोष हृदय में पहुंचकर (च) (अ)
- बुद्धि को मलीनकर (अ)
- मनोवह स्रोतों को आच्छादित कर (च) या नष्टकर (अ)
- उन्माद को करते हैं (च) (अ)

II विशेष चरण

- दोष प्रकोपक विभिन्न निदान सेवन करने से प्रकुपित दोष -
- अनिल प्रतिबद्धता पूर्वक (वातिक) (च) प्रवृद्धवायु चित्त को विजुष्टकर एवं हृदय को दूषित कर, बुद्धि-स्मृति का हनन कर - उन्माद उत्पन्न करते हैं (च)
- पित्त उदीर्णता पूर्वक (पैत्तिक) (च) उदीर्ण पित्त अनात्मवान, प्रदुष्टमन पुरुषों के हृदय में आश्रित हो शीघ्र ही उन्माद को उत्पन्न करते हैं (च)
- सोष्मा कफ का मर्म में संप्रवृद्ध (कफज) (च) हो (उपचित दोष, उन्मार्ग में आश्रित होकर मन को चलायमान देते हैं (सु) बुद्धि-स्मृति को उपहृत कर चित्त को प्रमोहित कर -उन्माद को करता है (च)

पूर्वरूप [4]

मानसिक - ध्यान (च) आभास (च) संमोह (च) मोह (सु) अतिउत्साह (सु) उद्वेग (च) (सु) (अस्थान में) उन्मत्त पित्तत्व (च)

एन्द्रिक - कानों में आवाज आना (च) (सु) चक्षु आकुलता (च)

देहिक - लोमहर्ष (च) उदर्द (च)
- शिरशून्यता (च) उच्वासाधिक्य (च) आस्य संस्रवण (च) अविपाक अरुचि (च) (सु) अन्नानभिलाषा (च) मात्रकर्षण (सु) ज्वर भीषणता (च) अर्दित आकृति (च)

स्वप्रदर्शन - कलुषित आहार (सु)
- भीषण - भ्रांत - कुरूप - अशस्त रूप दर्शन (च) चलित - अन्वस्थित स्वप्रदर्शन (च)

- तिल पीडक चक्रारोहण (च) चक्र, भ्रम (सु)
- वातकुण्डलिका भिमंथन (च) वायु-उन्मथित (सु)
- कलुषितजल भंवर में निमज्जन (च)
- चक्षु अपसर्पण (च)

उन्माद स्वरूप [5]

मन-भक्ति-शील-आचार विभ्रम (च), बुद्धि/धी-स्मृति-ज्ञान विभ्रम (च) विज्ञानविभ्रम (अ), संज्ञा-चेष्टा विभ्रम (च) मूढचेता - आचारधर्महीनता (सु) सुख-भ्रष्टता (सु) (अ) कहीं शान्ति नहीं पाना (इधर-उधर भटकना (सु) सारथी रहित रथ की जहां-तहां फिरना (अ)

सामान्य लक्षण [6]

सत्वपरिप्लवन (च), मन-उद्रभ्रम (च) बुद्धिवि (च) अधीरता (च); स्मृतिविभ्रम (च) पर्याकुलदृ अवद्धवाक्-हृदयशून्यता (च)

दोषानुसार - उन्माद लक्षण - तुलनात्मक दृष्टि से

क	घटक	वातज [7]	पित्तज [8]	कफज [9]
	रोगवेग	अन्तजीर्ण (अ)	-	रात्रि को (सु.)
				भोजन करने पर (सु) (अ)
	देहगत			
		अरूणवर्णता (च)	पीतवर्णता (च) (अ)	शुक्लता (सु) (मोवादि)
		कार्श्य (च) (अ)	-	-
		तनु (सु)	-	-
		परुष (च)	उष्णता (च)	-
		रूक्ष (सु)	दाह (सु)	स्तैमित्य (च)
		श्वास धमन (सु)	अतिसंताप (च)	अरोचक-छर्दि (च) (अ)
			(अभिताप)	
		-	तृष (सु)	लालास्राव (च) (अ)
		-	स्वेद (सु)	-
	अग्नि	-	-	अग्निसाद (सु)
	आनन	-	-	आननशोथ (च)
		मुख-फैनागम(च)(अ)	-	लालास्राव (च) (अ)
	नेत्र	उत्पिण्डित-अरुण-	ताम्र-हरित-हारिद्र	श्रृंघांनक लिप्तता (च) (उ
		अक्षि (अ)	स्तब्ध नेत्र (च)	श्वेत-मलयुक्त
	भोजन	-	-	निश्चलाक्षि (च)
				अल्पहार (सु) (अ)
		अजस्र अट्टनशील (अ)	-	अन्नपानाभिलाषा (च)
		स्फुरितरंग (सु)		एकान्तप्रियता (च)
	आदतें	-	-	एकदेशस्थल (च)
		संधि स्फुटन करना (सु)	छाया-शीतजल	रहस्कामता स्त्रि-प्रियता (च) (
			विहारी (अ)	ऊष्ण कामता या संविता (सु)।
			प्रछायाशीतोदकाभिलाषा (च)	

दोषज उन्माद चिकित्सा संबंधी आयुर्वेदीय परिकल्पना (कुछ आ०वृ० पत्र सहित)

क	घटक	वातज [7]	पित्तज [8]	कफज [9]
			शीतछायाकांक्षा (अ)	
		अलभ्य की इच्छा लव्ध की उपेक्षा (च)(अ)	–	–
	मनदोष	मात्सर्य (च)	अमर्ष, क्रोध (च) (पु)	अल्पशब्द (च) (अ)
	वाणी	आक्रोश बहुभाषित (अ) परुषवाक (सु)	(शेषपूर्णवाक)	मंदवाक् (च)
		–	विनिद्रा (सु)	अतिनिद्रा (सु) (अ) स्वप्ननित्यता (च)
	शुचिता	–	–	शौचद्वेष (च) (अ)
	वेश	अमंगलद्रव्यधारण (च)(अ)	नग्नत्व (च)(अ)	निभत्स्ण (च) (अ)
	विकृत चेष्टाएं	अक्षि-भ्रू-ओष्ठ हनु-परिचालन (च) हस्तपादः विक्षेपण (च) विक्षेप-स्फोटन (अ) अस्थान-हँसना-स्मित करना-नृत्य-गीत-वादन करना (च) (सु) वीणा-वंश-शंख-शम्य ताल-शब्दानुकरण (च) अयानरोहण (च) बहुभाषण आक्रोश-वाङ्ग-रूदन (च)	संतर्जन (च)(अ) संरंभ (आडम्बर) (च) अस्थान-क्रोध संरंभादि (च) अभिद्रवण (च) (अ) शस्त्र-लोष्ठ7 कशा-काष्ठ - मुष्टि-अभिहनन (स्वयं/पर को) (च)(अ)	तूर्ष्णीभाव (च) (शांत बैठे रहना) मंदचेष्टा (च) – – –
	मिथ्याभास	(अ) (अ) –	असत्य-ज्वल-दीप तारक-दर्शन (अ) दिन में तारे दीखना (सु) हिम जल में अग्निशंका (सु)	–

त्रिदोषज [10]

त्रिदोषज के भिन्न लक्षण होने का सर्वत्र निर्देश दिया गया है ।

असाध्य –

असाध्य के – अवांची या उदंची (नीचे या ऊपर देखना), क्षीण बल, क्षीणमांस, जागनेवाला, लक्षण कहे हैं।

(क) दोषज उन्माद चि०सू० एवं उपक्रम[11]

1. तीनों दोषज उन्माद में प्रयुक्त उपक्रम

स्नेहन, स्वेदन पूर्वक (आवश्यकता अनुसार) वमन,

विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, उपशमन-नस्य आदि का प्रयोग करें (च) तीक्ष्णविरेचन, नस्य (सु)

घृतपान (पुराण), धूमपान, अंजन, अवपीडन नस्य, प्रधमननस्य आदि का भी आवश्यकता अनुसार प्रयोग करें (च) सरषपादि अवपीड़न, प्रधमनस्य धूम प्रयोग (सु)

अभ्यङ्ग, प्रदेह, परिषेक, अनुलेप, जैसे (त्वचा पर प्रयुक्त बाह्य) उपक्रम प्रयोग में लिये जायें (च)

बंधन, वध (मार-मारना), अरोधन, वित्रासन, विस्मापन, विस्मरण, जैसे उपक्रमों का प्रयोग करें (च)

अपतर्पण, सिराव्यधन का शमनार्थ प्रयोग करें (च)

(2) उन्माद में प्रयुक्त आहार व्यवस्था

- दोषानुसार आहार व्यवस्था की जाय (च)
- एक-एक दिन के अन्तर से यवागू, तर्पण (सत्तू को जल के साथ), अर्धस्वित्र कुलमाष, हृद्य, हितकर, दीपन, पाचन, आहार देवें (सु)

(3) विपरीत भाव चिकित्सा (च)

(4) दोषानुसारी उपक्रम विशेष

- वातज में स्नेहन, कफपित्तावृत्त वात (ज) में स्निग्ध विरेचन (च) श्वास एवं आयासध्न उपचार
- पित्तज में स्नेह-स्वेद एवं विरेचन (या वमन) (च) तथा ज्वर एवं दाह-हर उपचार
- कफज में स्नेह-स्वेद, पूर्वक वमन (या विरेचन) (च) मंदाग्नि, आम एवं छर्दि हर उपचार
- शोधनान्तर ससर्जन (च)
- आवश्यकता अनुसार वस्ति (निरूह-स्नेह) तथा शिरोवस्ति प्रयोग (च)
- सभी उपक्रमों का पुनः पुनः किया जाना (च)

(5) देश, वय, सात्म्य, दोष, काल, बलावल विचारपूर्वक उपचार (च)

(6) सम्बद्ध रोग रूप लक्षणानुसार चिकित्सा भी की जानी आवश्यक है यथा वातज में श्वासघ्न, अपस्मारघ्न, पित्तज में ज्वरघ्न एवं मदहर, कफज में मंदाग्नि, आम, छर्दि, शोथ, प्रतिश्याय हर उपचार आदि ।

(7) मन-बुद्धि धृति-स्मृति आदि के भृष्ट या विभ्रमित
होने पर उनको प्रकृतिस्थ करने के लिये
उपक्रम कहे गये हैं यथा -

I विकृत मन को प्राकृतावस्था में लाने के
तर्जन, त्रासन, दान, सांत्वना, हर्ष, भय,
विस्मरण आदि का उपयोग करने को कहा गया

इसी प्रकार विलुप्त मन को प्राकृत करने के
अन्य उपक्रम भी कहे गये हैं यथा - देह को
देने वाले उपक्रम, भय कारक उपक्रम, प्राण का
(मृत्यु का भय) कारक उपक्रम ।

II मन-बुद्धि-स्मृति एवं संज्ञा के विभ्रमित या नष्ट
पर इनके प्रबोधनार्थ जो उपाय कहे गये हैं
भी उपरोक्त उपक्रमों का हो विस्तार किया
है यथा - (यहां कुछ उदाहरण देखें)

- हर्ष कर-इष्टप्राप्ति या तत्सम प्राप्ति ।
- आश्वासन-मित्र, धर्म वचन ।
- भयकर - देह दुख एवं प्राण व्याधि कारको
- वित्रासन या त्रास कर-शस्त्र, तस्कर,
  राजपुरुषादि से डराना - धमकाना ।
- विस्मापन - अदभुत दर्शन ।
- विस्मरण - अद्भुत दर्शन, कथा कथन श्रव
- अंधेरे घर या कुएं में बांध कर डालना तर्ज
  की रक्षा पूर्वक एवं मर्म रक्षा एवं नृपाज्ञा
  तर्जन उपक्रम प्रयोग यथा - पाश (सु)
  (च) (सु) से ताडन, रज्जु से ताडन (सु)
  कर तुषाग्नि स्पर्श, जल में डुबकी देना, पदा

बंधन - उग्ररोगी को स्व एवं पर की रक्षार्थ
बांधकर एकांत में रखना ।

वध एवं मृत्यु भय - दन्त रहित एवं विष रहित सर्प का
कराना (निर्यंत्रित) सिंह के सामने डालना,
पुरुष द्वारा मार डालने का भय बताना आदि

(8) उद्वेगित मन से उत्पन्न उन्माद में - काम-शोक-
क्रोध-हर्ष-ईर्ष्या-लोभ का परस्पर एक दूसरे
विरुद्ध उपयोग कर उद्वेग को शांत करना ।

(9) सिराव्यधन - विशेषतः रक्त-पित्तानुबंधी उन्माद
- उर - अपांग - ललाट स्थित सिरा वेधन

(10) अग्निकर्म चिकित्सा - (1) मूलरन्ध्र, शिर, भ्रू, कृकाट, पाद (लोह शलाका से) (2) भ्रुकुटि 2, कण्ठ 1 से 6 (जांववोष्ठ से) (3) कण्ठ, भ्रू, शंख-पाद कृकाट, मूलरन्ध्र आदि पर। (यो०चि०) (अ०प्र०) मूर्धा-ललाट-भ्रूमध्य (हा०स०)

(11) आधुनिकों द्वारा - विद्युत शॉक (SHOCK) एवं इन्स्युलीन शॉक का प्रयोग मन को प्रकृतिस्थ करने के लिये किया जाता है।

(12) निद्राजनन चिकित्सा

(13) विद्युत चिकित्सा (इलेक्ट्रीक थेरेपी)

(14) शस्त्रकर्म चिकित्सा - मस्तिष्क स्थित स्थायी रक्त ग्रंथि, ग्रंथि, अर्बुदादि के निर्हरणार्थ।

(15) विष्घ्न अगद प्रयोग (च) अपस्मार एवं मदोक्त प्रयोग (सु) रसायन कल्प प्रयोग (च)

(16) नव्य मानसोपचार :-

I विमर्श, व्याख्या, साहचर्यात्मक स्मरण।
II सामाजिक, वर्तन एवं मान्यता परिवर्तन।
III स्वप्नविश्लेषण, संमोहन, निद्रा।
IV समूह चिकित्सा, मनोनाटक, अस्तित्वादि विचार।

(ख) औषधोपचार 12

I कुछ उपयोगी कल्पनायें

स्वरस - ब्राह्मी शंखपुष्पी (यो.) (भै.) ताडरस (भै)
कल्क - वचा कुष्ठ कुष्माड बीज (यो) (भै) सारस्वत चूर्ण (भै.)
क्वाथ - दशमूलक्वाथ (भै.) रास्नादिक्वाथ गुडुच्यादि क्वाथ, मास्मादिक्वाथ।
तैल - सरषपतैल, शिवातैल, महानारायण तैल (भै)
घृत - नव्य-पुराण घृत, शतधौत घृत, महास्नेह कल्याण/ म० कल्याण घृत (च) (भै) (सु) चैतसघृत (भै.) (यो.), महापैशाचिक घृत, फलघृत (सु) (च) (भै) (यो) हिग्वाद्य (च) (भै.र.), लशुनाद्य (च) (भै.) ब्राह्मीघृत, पंचतिक्तघृत, शिवाघृत (भै)
अवलेह - कुष्माण्डावलेह (यो.)
अगद - सिद्धार्थक अगद (च) (भै.)
रसायन - मेध्यरसायन (च) ब्राह्मीरसायन (च) शंखपुष्पी वचा कल्प, विडङ्गघृत-कल्प, शिलाजीत कल्प।
रसकल्प - उन्मादगजांकुश (यो)(भै) भूतांकुश (यो)(भै) उन्मादभंजिनी (यो) (भै) उन्मादगजकेशरी (यो) (भै) चतुर्भुज रस (यो)(भै) उन्माद क्षयपर्पटी (भै.) त्रिकट्वारस (यो) स्मृतिसागर ब्राह्मीवटी, अपतंत्रकारिवटी, सर्पगंधावटी।

II बाह्योपक्रम प्रयुक्त कुछ कल्प

नस्य - अपामार्ग, शिरीष, व्योष (च), सरषपतैल (सु)।
अंजन - व्योषाद्य (च) कृष्णाद्य, दार्व्याद्य, मरिच्यादि (भै.)
वर्ति - ब्राह्मीवर्ति (सु.) (भै.) 3
धूप - श्वेताद्य (च), निम्बादि (भै.)
धूप (न) - महाधूप (भै.) मांसभक्षीप्राणिकृतधूपन (च) (भै.र.)

III अन्य प्रयोग

(क) शिरोपक्रम प्रयोग - निम्नलिखित शिरोपक्रम प्रत्यक्ष लाभप्रद पाये गये हैं -

- पिचु धारण (वातघ्नतैलकृत)
- कल्क धारण (आमलकीकल्क)
- शिरोधारा (वातघ्न तैल या तक्रादि से)
- शिरोवस्ति (वातघ्न तैल धारण पूर्वक)

(ख) सूचिकाभरण प्रयोग - निम्नलिखित रसों का यथाविधि प्रयोग करने का निर्देश मिलते हैं -

I - सूचिकाभरण रस (एकादश) (र.यो.सा.)
- सूचिकाभरण रस (षोडश) (र.यो.सा.)
II - सूचीमुख रस (द्वितीय) (र.यो.सा.) एवं तृतीय।

पथ्यापथ्य

क.	पथ्य	अपथ्य
(क)	आहार	
	* –	तिक्तापान
	* वर्षा जल	मद्यजलपान
	* धारोष्ण दूध, नव्य-पुराणघृत	–
	* गेहूं, शालि, मूंग	विरुद्धाहार, पत्रशाक
	* परवल, पेंठा, कटहल, चौलाई, वथुआ	करेलादितिक्तशाक
	* आम्र, पेठा, नारियल, किशमिश	विम्बीफल
	* कच्छप, कोकिल, चटक, जांगल मांस	आषाढ़ोत्पन्न शाक
(ख)	विहार	
	* सम्यक निद्रा	* निद्रा-क्षुधा-तृषा-वेगरोध
	* ब्रह्मचर्य	(अब्रह्मचर्य)
	धर्म सेवन	
(ग)	उपक्रम	
	स्नेह-स्वेद, वमन, विरेक	
	नस्य	
	अंजन, धूम, धूपन	
	लेप-अभ्यङ्ग-उद्वर्तन	
	परिषेक (शीत)	
	सिरावेधन	
	संशमन	
(घ)	अन्य	
	मूत्र-गर्दभ/अश्व मूत्र (नस्यादि)	–
	औषध-हरड़े, ब्राह्मी, स्वर्ण	
(ङ)	मन प्रकृतिस्थकर	मन उद्वेगकारक
	तर्जन-ताडन	काम-क्रोध
	त्रासन-भय	भय-शोक-हर्ष
	विस्मरण-अद्भुतदर्शन	ईर्ष्या-क्षोभ-लोभ
	आश्वासन	का अतियोग
	इच्छा पूर्ति	

उन्माद कुछ संख्या आतुर वृत्त पत्र

क्र०	आ०क०	1717	442	2605	4273	264	1030
(क)	आतुर						
	लिङ्ग	स्त्री	स्त्री	पु०	पु०	स्त्री	स्त्री
	वयवर्ष	32	30	70	59	62	17
	लक्षण	मदोन्मत्त	विचार	विचार	उद्वेगित	उन्मत्त	–
			अनियंत्रण	आधिक्य	–	–	–
		असम्बद्ध	व्यवहार	–	विचित्र	–	–
		विचारता	दोष		आभास		
		–	–	अशब्ग्रहण	–	असम्बद्ध	
				सततशब्द		भाषण	
				श्रवण			

(ख) चिकित्सा

1. रास्नादि/मास्यादिक्वाथ 2 तोला प्रातः ।
2. ब्राह्मी वटी, स्मृति सागर 1-1 गोली 2 बार ।
3. संशमनी, सूतशेखर 1-1 गोली 2 बार ।
4. सारस्वत चूर्ण, मेधाचूर्ण, कामदुधा, मिश्रण 2 मासा, 2 बार ।
5. लशुनादि/शंखवटी 1-1 गोली भोजनोत्तर ।
6. शिवाक्षार पाचन आधा चम्मच रात्रि में

SOS वेगावस्था में ।

1. सर्पगंधा घनवटी 2 गोली ।
   अपतंत्रकारी 1 गोली 2 बार जल से ।
2. निद्रोदय रस 1-2 गोली रात्रि में ।

(ग) परिणाम

- वेग शमन, संख्या घटी ।
- लक्षण शमन ।
- यापन ।

संदर्भ/आधार

1. **मदयन्त्युग्दता दोषा यस्मादुन्मार्गभार्गताः ।**
   मानसोऽयमतो व्याधिरून्माद इति कीर्तितः ।
   मा०नि० 20/1 सु०उ० 62/3
2. च०नि० 7/3/2 च०नि० 9/3-15 च०सू० 26/143, च०सि० 9/- सु०शा० 2/25, 2/27, च०शा० 8/30, अ०ह० 36, सु०उ० 62 ।
3. च०नि० 7/3, च०चि० 9/4-12 सु०उ० 62/3,4 अ०ह०उ० 6/2-5 ।
4. च०नि० 7/5, सु०उ० 62/6-7 ।
5. च०नि० 7/4, च०चि० 9/6-7, सु०उ० 62/3 ।
6. च०चि० 9/5, सु०उ० 62/- अ०हृ०उ० 6/5 ।
7. च०नि० 7/6, सु०उ० 62/8 च०चि० 9/9, अ०हृ०उ० 6/6-9 ।
8. च०नि० 7/7, च०चि० 9/-
   सु०उ० 62/9 अ०हृ०
9. च०नि० 7/8, च०चि० 9/10, 13 सु०उ० 62/10 अ०हृ० 6/12, 13 ।
10. I. च०नि० 7/, च०चि० 9/14
    II. सु०सू० 34/11, मा०नि० 20/16 ।
11. च०नि० 7/10, च०चि० 9/31-36, 37-38 च०सू० 11/49-50, 8/16-19 सु०उ० 62/14-15, 62/33-35, सु०सू० 1/31 अ०हृ० 6/55, 59
    पुनः च०चि० 9/85-93 ।
    सु०उ० 62/171-19
    मानसरोग चिकित्सा के कतिपय उपक्रम पी०एस० अंशुमान आयुर्वेद विकास 11/87 ।
12. च०चि० 9/-, भूतविद्या एवं मानसरोग, पी०एस०अंशुमान सु०उ० 62/- अ०हृ०उ० 6/- यो०र०(उन्माद चि०), भै०र० 24/-
    रसायन वाजीकरण, पी०एस०अंशुमान
    स्क्रिजोफ्रेनिया, सचित्र आयुर्वेद, 5/96 (पी०एस० अंशुमान) सत्वावजय उपयोगी-वनस्पति अंशुमान सचित्र आयुर्वेद 6/98 ।

बैद्यनाथ
आँवला
केश तेल

भूटान की वनसम्पदा एवं पारम्परिक जड़ी-बूटियाँ

डा० मायाराम उनियाल, वनौषधि विद्यापीठ (श्रील

भूटान का परिचय :- भूटान विशाल हिमालय की पर्वत श्रेणियों के दक्षिणी ढलान पर बसा हुआ है । इस प्रदेश के उत्तर में तिब्बत का पठार है, दक्षिण में पश्चिम बंगाल का जलपाईगुड़ी और असम के गोलपाड़ा कामरूप तथा दरांग जिले, पश्चिम में चुम्बी घाटी (तिब्बत) सिक्किम प्रदेश की पर्वत श्रेणियाँ, पश्चिम बंगाल का दार्जिलिंग जिला और पूर्व में अरुणाचल प्रदेश भूटान राज्य की सीमा बनाता है । भूटान का क्षेत्रफल लगभग अठारह हजार वर्ग मील (4,66,200) हेक्टेयर है । पूर्व से पश्चिम तक करीब 346 कि०मी० और उत्तर से दक्षिण में 168 कि०मी० है । प्रायः समूचा प्रदेश सदारहित वनों एवं पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है । भूटान में स्थित पारो, हा एवं थिम्फू घाटियाँ अत्यन्त मनोरम और सुन्दर हैं । यह प्रदेश 400 मीटर की ऊँचाई से लेकर, 7500 मीटर की ऊँचाई तक (समुद्र तल से) विस्तृत है । भूटान देश भारत के आर्थिक सहयोग से तेजी से नवनिर्माण की दिशा में अग्रसर है ।

इस प्रदेश की आबादी लगभग 10 लाख के करीब है । जिसमें 25% नेपाली हैं जो कि दक्षिणी भूटान के तराई क्षेत्र में बसे हुये हैं । थिम्फू इस प्रदेश की राजधानी है । वर्तमान में यहाँ के राजा जिगमें वाग्छू हैं । ऐसी मान्यता है कि भूटान के मूल निवासी तिब्बत से आये हैं । ये लोग हिमालय के ऊपरी भाग में रहने के कारण भोटिया कहलाते हैं। यह बौद्ध धर्म के मतावलम्बी हैं । ये लोग धर्म गुरु नागार्जुन, शक्यप्रभु, धर्मकीर्ति एवं बौद्ध के अवतार स्वरूप लामा संयासियों ''दलाई लामा'' आदि को अपना इष्ट मानते हैं । यह अपने धर्म गुरु लामाओं और पूजा स्थल गुम्पा (मठों) में असीम आस्था और श्रद्धा से पूजा करते हैं । भूटान की आदिम जन जातियां अधिकतर इन्डो मंगोलियन हैं । ऊपर ऊँचाई वाले भू-भाग में भोटिया जन जातियाँ निवास करती हैं । इसके अतिरिक्त सन् 1959 में करीब तीन हजार तिब्बती शरणार्थी भूटान में बसने के लिये आ गये थे । सदियों से भूटान का बाहरी दुनियाँ से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहा है । इनकी अपनी भाषा, खान-पान, रहन-सहन तिब्बत से मिलता-जुलता है ।

यातायात के साधन :- भूटान का भारत के यातायात मुख्यतया दो मार्गो से होता है । पश्चिम में मार्ग थिम्फू से पारो, फुन्शोलिंग तक जाता है । दूसरा में ताशिगाँग से रंगिया तक जाता है । पश्चिम बंगाल सिलिगुड़ी-न्यूजलपाईगुड़ी मार्ग तिस्ता नदी के किनारे थिम्फू तक जाता है । सारा मोटर मार्ग पहाड़ी है । ह मार्ग से भी भूटान जाने की व्यवस्था है । समस्त भूटान आवागमन के साधन मोटर मार्ग से ही है ।

रहन-सहन एवं जलवायु :- भूटान का स भू-भाग पर्वतीय है । इस क्षेत्र में बसनेवाले मूल निवासि की आकृति मंगोलियन से मिलती-जुलती है। भोटि खम्पा, नेपाली आदि जन जातियों का रहन-सहन खान-पान जलवायु के आधार पर अलग-अलग है। लोगों का स्वभाव सरल एवं मृदु होता है तथा पुरुषों अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक हँसमुख होती हैं । भूटान के नि तराई वाले भू-भाग में नेपाली लोग अधिक संख्या में हैं । ये लोग मक्की, मंड़वा, चावल, कोटू, गागली, अद हल्दी, संतरा, मटर, आलू, सलजम, गोभी, टमाटर की खेती करते हैं । इस प्रदेश के कुछ भागों में इलायची की खेती की जा रही है । सभी जन जा मांसाहारी हैं । नेपाली सूअर, भैंस का मांस अधिक प करते हैं । भोटिया चंवरी, याक, सूअर का माँस खाते हैं स्त्री-पुरुष सभी छंग (मादक-पेय), तुम्बा, खैनी (तम्बा खाते हैं । एतवार के दिन गाँव के समीप हाट (बा लगता है । ग्रामीण महिलायें दैनिक प्रयोग वाले खाद्य प (पनीर) छुपी, मक्खन, शाक-सब्जीं, मसाले आदि के लिये लाती हैं । भोटिया जनजातियों का खान- रहन-सहन तिब्बतियों के समान है । चँबरीगाय, अधिक पालते हैं । ऊँचाई वाले, बर्फीली घाटि ''याक'' भार वाहक के रूप में पाला जाता है । चंवरी का दूध, छुप्पी (पनीर), सुलजा (नमकीन चाय) अ पसन्द करते हैं । चंवरी गाय एवं याक के माँस का करते हैं । तुरवा माँस अधिक पसन्द करते हैं । जनजाति बौद्ध धर्म को मानती हैं । प्रायः गाँव के आस

निदेशक, महर्षि आयुर्वेद प्रोडक्टस लि०, एनएमईज़ेड, नोएडा (उ०प्र०)

गुम्पा (मठ) होते हैं । जहाँ लामा लोग रहते हैं । लामा धर्मगुरु होता है । पूजा-पाठ, जन्म-मरण, शादि आदि धार्मिक कार्य लामा द्वारा सम्पन्न किया जाता है । खान-पान में सुलजा (नमकीन चाय), छंग, सत्तू, मर (मक्खन), चंवरी गाय, याक एवं सूअर का माँस का सेवन करते हैं । घर के मकान एवं छत लकड़ी के बने होते हैं । ये लोग अपने घरों को सजा कर रखते हैं । लम्बे बांस के डण्डों में त्रिकोण झण्डे घरों पर या गांव गुम्पा के समीप लगाते हैं । प्रत्येक घर में स्त्री-पुरूष बाँस के बर्तनों में छंग पीते हैं । भूटान के लोग विशेष पर्व-त्याहारों को बड़े धूम-धाम से मनाते हैं । स्थानिक लामा इन पर्वों में भाग लेते हैं । वाद्य-संगीतों के साथ नाच-गान करते हैं । इस प्रदेश में प्राय: 3-4 प्रकार की बोली (भाषा) बोली जाती है । पश्चिमी उत्तरी भूटान में जोंगरवा, मध्य भूटान में बूंमथांगरवा, पूर्वी भूटान में सरचपरवा एवं दक्षिण भूटान में नेपाली बोली जाती है ।

जलवायु :- यह प्रदेश समुद्र तल से 400 मीटर की ऊँचाई से लेकर 7500 मीटर की ऊँचाई तक चला गया है । निचले भू-भाग गर्म जलवायु वाले हैं । सामान्यतया जलवायु की दृष्टि से भूटान को तीन भागों में बाँटा जा सकता है । दक्षिण क्षेत्र, मध्य क्षेत्र एवं उत्तरी क्षेत्र ये भू-भाग दक्षिण-पश्चिम से उत्तर-पूर्व की दिशा में एक दूसरे से प्राय: समानान्तर चले गये हैं । मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में वर्षा कम होती है । दक्षिणी क्षेत्रों में वर्षा का अनुपात औसतन 400 से.मी. होता है । मध्य और उत्तरी भागों का क्रमश: 200 से 300 से.मी. होता है । जून से अगस्त तक अधिक वर्षा होती है । सदारहित भाग में नमी के कारण जोंक अधिक होती है । इनके काटने से शरीर में खुजली और बुखार हो जाता है । इन घाटियों एवं पर्वत श्रेणियों में 2400 मीटर की ऊँचाई से लेकर 4600 मीटर की ऊँचाई पर रोड़ोडेन्ड्रोन, क्वरकस, एबीज आदि वृक्षों की कई किस्में एवं प्रिमुला, पोटेन्टिला, एनिमोन, पेड़िकुलेरिस, सीड़म, कैल्था, जिरेनियम आदि कई किस्म के रंग-बिरंगे पुष्पों वाली वनस्पतियाँ नैसर्गिक रूप से पायी जाती हैं । औषधीय पौधों में कुटकी, जटामाँसी, अतीस, रेवन्दचीनी, वत्सनाभ, चिरायता, विरवमा, पाषाणभेद, पोड़ोफिलम (वनककड़ी), ऐलियम, भूतकेशी, रतनजोत आदि अनेकों प्रकार की जड़ी-बूटियाँ ऊँचाई वाले भू-भाग में पायी जाती हैं । निचली गर्म घाटियों में शतावर, शालपर्णी, वचा, कपूरकचरी, कण्टकारी, विदारीकन्द आदि वनौषधियाँ पाई जाती हैं । भूटान के आर्थिक सहयोग एवं सामाजिक विकास के कार्यो में भारत ने वर्ष 1958 से आर्थिक सहयोग देना प्रारम्भ किया है । दूरसंचार, शिक्षा, अनुसंधान, चिकित्सा, सड़क निर्माण, पन बिजली उत्पादन, कृषि आदि हर क्षेत्र में भारत का सहयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है । यह प्रदेश खुशहाली एवं आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होता जा रहा है । भारत सरकार के केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय द्वारा वर्ष 1971 में श्री रामेश बेदी को हर्बल एक्सपीड़िशन के लिडर के रूप में वनौषधि सर्वेक्षण के लिये भेजा गया था । इस सर्वेक्षण काल में कई किस्मों की वनौषधियों के नमूने संग्रह किये तथा महत्वपूर्ण खनिज शिलाजीत के प्राप्ति स्थान आदि की खोज में सराहनीय कार्य किया । लेखक ने सिक्किम प्रदेश के वनौषधि सर्वेक्षण एवं अनुसंधान के कार्यकाल में सिक्किम राज्य से जुड़े भूटान की पर्वतीय श्रेणियों का वनौषधि सर्वेक्षण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ । इन वन क्षेत्रों के सर्वेक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है कि गहन रूप से इस प्रदेश की वनसम्पदा का अध्ययन करने की आवश्यकता है ।

वनौषधियाँ :- महर्षि चरक ने नगाधिराज हिमालय को जड़ी-बूटियों एवं दिव्यौषधियों का विपुल सम्पदा का भण्डार कहा है ।

''हिमवान् औषध भूमीनां श्रेष्ठम्''
''औषधीनां पराभूमि हिमवान् शैल सत्तमः ॥''
(चरक)

भूटान प्रदेश का हिमालय विशाल हिमालय के पाँच खण्डों में से नेपाल खण्ड में आता है । जो कि वेस्ट बंगाल के दार्जिलिंग, अरुणाचल प्रदेश, आसाम, सिक्किम, भूटान एवं तिब्बत तक परिसूत है । यह सर्वविदित है कि मानव इतिहास के साथ-साथ भारतीय चिकित्सा पद्धति का विकास होता गया । मानव ने अपने को स्वस्थ रखने में

औद्भिज द्रव्यों (जड़ी-बूटियों), खनिजों, जान्तव द्रव्यों, कस्तूरी, गोरोचन आदि का उपयोग तथा पारम्परिक ज्ञान वनेचरों, आदिवासियों एवं वन्य जन्तुओं जैसे सर्प, नेवला, गरूड़, सूअर एवं पशु-पक्षियों से इस पारम्परिक अनुभवों को प्राप्त किया । जैसा कि पूर्व प्रसङ्ग में बताया गया है कि सिक्किम एवं भूटान के मूल निवासी मंगोलियन के वंशज हैं तथा इसका उद्‌गम त्रिविष्ठक (तिब्बत) से है जिन्हें भोटिया, खम्पा, मारछा, लेपचा, नैपाली आदि जन-जातियाँ हिमालय प्रदेश में निवास करती हैं । आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति का विकास तिब्बत, चीन आदि देशों में बौद्ध धर्म के साथ हुआ । तिब्बत में आयुर्वेद के कतिपय शिक्षा केन्द्र थे जिनमें ल्हासा मुख्य है । इन चिकित्सा केन्द्रों में आयुर्वेद ग्रन्थों का अनुवाद भोट एवं तिब्बती भाषा में किया गया । इन शिक्षा केन्द्रों में गुरु-शिष्य परम्परा से आयुर्वेद का अध्ययन एवं अध्यापन किया जाता था । आयुर्वेद के मूल-सिद्धान्तों, रोग निदान, उपचार, औषधि-निर्माण, द्रव्यगुण विज्ञान, भैषज्य कल्पना, नाड़ी-विज्ञान, मूत्र-परीक्षा, अग्निदग्ध, जलौका आदि सभी विषयों को गुरुकुल आश्रमों में पढ़ाने की व्यवस्था थी । इस क्षेत्र में आज भी कतिपय स्थानिक परम्परा से ईलाज करने वाले (डन्सो) (गुणी) होते हैं । लेखक ने अपने वनौषधि सर्वेक्षण कार्यकाल में इस क्षेत्र में मिलने वाली जड़ी-बूटियों की पहचान, प्राप्ति स्थान, स्थानिक प्रयोग आदि की जानकारी घाटियों में बसने वाले ग्रामीणों से प्राप्त हुई इसकी जानकारी शीर्षक लेख में देने का प्रयास किया गया है ।

प्रमुख नदियाँ एवं घाटियों :- यहाँ थिम्फू नदी-थिम्फू घाटी, पारोनदी, पारो घाटी, जोग घाटी, हा-पारो, हा-घाटी, सोनलापास, चापछा, दोवजी गोंग, लिंगसी आदि प्रमुख घाटी एवं स्थान हैं । फुन्तशोलिंग नामक स्थान भारत भूटान की सीमा पर बसा हुआ है । यह स्थान व्यापार का प्रमुख केन्द्र है । इस प्रदेश में जिन वनौषधियों का ग्रामीण टुन्सो (गुणी) प्रयोग करते हैं । इसकी संक्षिप्त रूप से जानकारी दी जा रही है ।

भूटान में पायी जाने वाली परम्परागत जड़ी-बूटियाँ

1. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - अतिविषा
हिन्दी - अतीस
नेपाली - विरव
भोटिया - फोगंमा, पौंकर
लैटिन - *Aconitum heterophyllum W*
स्वरूप - द्विवर्षायु पौधा,
पुष्प - पीताभ नील वर्ण के
मूल - कान्दिल स्वाद में तिक्त, विषरहित ।
प्रयोग अंग - मूलकन्द ।
संग्रह काल- सितम्बर, अक्टूबर ।

प्राप्ति स्थान - हा घाटी, थिम्फूघाटी, चि चाँगना में 2700 मीटर से 3700 मीटर की ऊँचाई त

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण लोग मूलकन्द के का उपयोग उदरविकार, वमन, अतिसार में गर्म पानी साथ करते हैं । भोटिया टुन्सो (आमची) मूल का उप ज्वर एवं उदर सम्बन्धी रोगों में करते हैं ।

2. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - वत्सनाभ, विरव ।
नेपाली - विरव ।
भोटिया - चैन्दुक ।
लैटिन - *i. Aconitum Spicatum Stapf.*
ii. Aconitum naviculare St
(भोटिया-शोधु)
iii. Aconitum luridum Hook.
(भोटिया-शोधु)
स्वरूप - वत्सनाभ द्विवर्षायु तलोत्थ पौ
पुष्प - चमकीले नीलवर्ण के ।
मूल - द्विवर्षायु जोड़ों में कन्दिल, मारक विष वाला ।
प्रयोग अंग - मूलकन्द ।
संग्रह काल- सितम्बर, अक्टूबर ।

प्राप्ति स्थान - हा घाटी, पोमूला, लोलीथाँ स्थानों में 2800 मीटर से लेकर 3800 मीटर की ऊँ तक ये किस्में पाई जाती हैं ।

स्थानिक प्रयोग - स्थानीय ग्रामीण उपरोक्त किस्मों के मूल एवं पुष्पों को विषैला मानते हैं । गाय-बकरी यदि पुष्पित फूलों को घास समझ कर चर जाय तो मर जाती है । आमची मूलकन्दों और फूलों का उपयोग अपनी चिकित्सा में करते हैं । शोधु घातक विष हैं ।

3. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - निर्विषा ।
नेपाली - तीतोविखमा ।
भोटिया - सितोविखमा ।
लैटिन - *Aconitum Palmatum D.Don.*
स्वरूप - वत्सनाभ सदृष्य द्विवर्षायु तलोत्थ पौधा ।
पुष्प - नीलाभ वर्ण के ।
मूल - कान्दिल, स्वाद में तिक्त, विषरहित ।
प्रयोग अंग - मूलकन्द ।
संग्रह काल- सितम्बर, अक्टूबर ।

प्राप्ति स्थान - भूटान में यह किस्म 2800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3300 मीटर की ऊँचाई पर बुग्यालों एवं ढलानों पर पायी जाती है ।

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण इसे निर्विषी एवं विखमा कहते है । इनका कहना है कि यह प्रजाति अतीस की तरह विषरहित है । उदर विकार में मूलकन्दों का प्रयोग करते हैं । इसकी एक अन्य प्रजाति भी इन घाटियों में पायी जाती है जिसे *Aconitum Violaceum* कहते हैं इसे भी कुछ ग्रामीण निर्विष मानते हैं । लेखक के विचार से सभी सविष-निर्विष किस्मों पर शोध कार्य कर गुणधर्मों का निर्णय करना चाहिए ।

4. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - तालीस ।
नेपाली - सला ।
लैटिन - *i. Abies spectabilis spach.*
ii. Abies Webbiana Lindl.
स्वरूप - इसके बड़े वृक्ष भोटान में पाये जाते हैं । Abies की अन्य किस्में भी यहाँ पर पायी जाती हैं । निचली घाटियों में Pinus की प्रजातियाँ पाई जाती हैं । स्थानिक आमची पत्र कासघ्न मानते हैं ।

5. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - वचा ।
नेपाली - वजो ।
भोटिया - सूता ।
लैटिन - *Acorus calamus Linn.*

स्वरूप - बहुवर्षायु भौमिक काण्ड वाला पौधा । मूल गाँठदार, सुगन्धित, जलीय प्रदेशों में भूटान की निचली घाटियों में 1200 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाता है ।

प्रयोग अंग - भौमिक काण्ड (राईजोम) ।
संग्रह काल- अप्रैल - मई ।

स्थानिक प्रयोग - कफ एवं गले के रोगों में मूल का प्रयोग करते हैं । उदर शूल एवं उल्टी रोकने में प्रायः स्थानिक पारम्परिक गुणी इसका प्रयोग करते हैं ।

6. द्रव्यनाम :-

नेपाली - प्याजी, जंगली लशुन
भोटिया - गोरवलुम, लगोंप ।
लैटिन - *i. Allium tuberosum Roxb.* प्याजी
ii. Allium wallichii Linn. रम्पो
iii. Allium partii जंगली लशुन
स्वरूप - उपरोक्त प्रजातियों का काण्ड एक वर्षायु, मूल कान्दिल, बहुवर्षायु ।

पुष्प - श्वेत, रक्त एवं नीलवर्ण के होते हैं । पत्र एवं मूल लशुन की सदृश्य सुगन्धित होते हैं । भूटान के 2700 मीटर की ऊँचाई से 3600 मीटर की ऊँचाई तक सभी पर्वत श्रेणियों के ढलानों एवं मैड़ोज (बुग्यालों) में ये किस्में पाई जाती हैं ।

प्रयोग अंग - पंचांग, मूल ।
संग्रह काल- अगस्त, सितम्बर ।

स्थानिक प्रयोग - पत्तियों का शाक बनाकर खाते हैं । इन प्रजातियों के पंचांग एवं मूल का मशालों के रूप में प्रयोग किया जाता है । यह दीपन-पाचन का काम करता है । अग्निमांद्य में दाल के सूप में पंचांग चूर्ण मिलाकर सेवन

करनेसे लाभ होता है । पंचांग को दूध में पकाकर प्रसूता स्त्रियों को पिलाते हैं ।

7. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - अजगरी ।
नेपाली - लावा, तोऊ ।
भोटिया - सौं, तावा ।
लैटिन - *i.Arisaema wallichinum Hook.f.*
ii.Arisaema tortuosum schalt.
iii. Arisaema speciosum Mart.
स्वरूप - काण्ड एक वर्षायु, मूलकन्द बहुवर्षायु
पर्ण - मूलोद्भव ।
पत्र - अरबी पत्र सदृष्य, पाँच पत्रक एक साथ निकले रहते हैं ।
पुष्प - सनाल, सर्पाकार ।

मूल - कान्दिल एवं विषैले होते हैं । भूटान में इसकी कई प्रजातियां 1200 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3000 मीटर की ऊँचाई तक पायी जाती हैं । हा घाटी के ग्रामीण सूअरों को इसको खिलाते हैं । डण्ढल को पानी में धोकर, सुखाकर स्थानीक लोग सब्जी बनाकर खाते हैं । कन्द विषैला होता है । कन्द को पकाकर फर्मेन्ट कर स्थानिक मादक पेय (मद्य) भी तैयार किया जाता है । सीमान्त वासी कन्दों को काट कर लगातार बहते पानी में बार-बार धोकर और टुकड़ों को सुखाकर इसका चूर्ण रूप में आटा बनाते हैं । इस चूर्ण के आटे से रोटी बनाकर खाते हैं । कन्दों का शोधन करने पर विषैला प्रभाव समाप्त होता है ऐसी इनकी मान्यता है ।

8. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - नागदमनी ।
तिब्बती - बुरनक ।
नेपाली - तितपाती ।
भोटिया - थिम्पो ।
लैटिन - *i. Artemisia vulgaris Linn.* (तितपाती)
ii. Artemisia Parviflora Roxb. (बुरनक)
iii. Artemisia morcroftiana

स्वरूप - उपरोक्त किस्में 1200 मीटर की से लेकर 3300 मीटर की ऊँचाई पर भुटान की घाटियों में पायी जाती है । सभी किस्में 2 फीट से 4 फीट तक लम्बी, पत्र, पुष्प सुगन्धित, पुष्प मुण्डक पीताभ वर्ण के होते हैं । भुटान में Artemisia की प्रकार की जातियाँ पाई जाती है ।

प्रयोग अंग - पंचांग, पुष्पमुण्डक ।

संग्रह काल - सितम्बर ।

स्थानिक प्रयोग - तितपाती का पूतिहर, एवं कृमिध्न के रूप में ग्रामीण प्रयोग करते हैं । बुरन प्रजातियों का प्रयोग स्थानिक लामा एवं आमचं (मरचा) के मशाले के रूप में करते हैं । पुष्पों का उदरकृमि, उदर शूल में करते हैं । इसकी प्रजाति अफसन्तीन एवं सेन्टोनीन मुख्य औषधि है ।

9. द्रव्यनाम :-

संस्कृत - वृहद एला ।
हिन्दी - बड़ी इलायची ।
तिब्बती - सुकमेल ।
लैटिन - *Amomum Supulatum Rox*
स्वरूप - बहुवर्षायु, बहुशाखीय, 3- लम्बा पौधा होता है।
पत्र - हल्दी सदृश्य ।
पुष्प - मूलोद्भव, पीतवर्ण के गुच्छों
फल - गुच्छों में ।

फलकोष - रक्ताभ वर्ण के एवं परिपक्व काले रंग के सुगन्धित । भूटान में 1500 मीटर की से लेकर 2100 मीटर की ऊँचाई तक इसकी खेती रही है । सिक्किम की तरह भूटान में बड़ी इलाय व्यावसायिक खेती का कार्यक्रम चल रहा है ।

प्रयोग अंग - फल ।

संग्रह काल - शीतऋतु में ।

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण लोग इसके क्वाथ मसूड़ों की सूजन एवं दन्त विकार में कवल धारण के रूप में करते हैं । बीजों का प्रयोग

दीपन-पाचन एवं मूत्रल और वृक्क विकारों में करते हैं ।

10. **द्रव्यनाम :-**

संस्कृत - शतावरी ।
नेपाली - शतमूली ।
भोटिया - अराचु ।
लैटिन - *Asparagus racemosus Wall.*
Asparagus filicinus D.Don. (चिड़ियामूसली)
स्वरूप - बहुवर्षायु आरोही लता जाति का पौधा है ।
पत्र - बारीक, सूच्याकार ।
पुष्प - श्वेतवर्ण के ।
फल - पकने पर लाल ।
बीज - काले रंग के ।
मूल - कान्दिल गुच्छों में पाये जाते हैं । चिड़िया मुसली के पौध 1800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2400 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं ।
प्रयोग अंग - मूलकन्द ।
संग्रह काल - सितम्बर - अक्टूबर ।

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण लोग मूल का प्रयोग कण्ठार्त्तव के लिये करते हैं । शतावरी चूर्ण को गुड़ के साथ सेवन कराते हैं । बल्य एवं पित्त विकार में शतावरी स्वरस एवं चूर्ण का प्रयोग करते हैं ।

11. **द्रव्यनाम :-**

संस्कृत - पूग ।
हिन्दी - सुपारी ।
नेपाली - फुचु ।
भोटिया - जोगरवा ।
लैटिन - *Areca catechu Linn.*
स्वरूप - मध्यम आकार के गुल्म (वृक्ष) होते हैं । काण्ड मृसण ।
फल - गुच्छों में लगते हैं ।
फल कोष - फल के अन्दर सुपारी होती है । भूटान में घरों के आसपास इसके गुल्म लगाये हुये पाये जाते हैं ।

प्रयोग अंग - फल (नट) ।

स्थानिक प्रयोग - नेपाली एवं भोटिया लोग कच्ची सुपारी का उपयोग पान के साथ करते हैं । कच्ची सुपारी में मादकता (नशा) होता है । जिनको कच्ची सुपारी खाने की आदत नहीं उनको सिर में चक्कर एवं मिचली आती है । पान के मसाले में सुपारी का उपयोग ग्रामीण करते हैं ।

(क्रमश: अगले लेख में)

आभार :- लेखक निर्देशक, केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद्, केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार, आयुष विभाग के प्रति हृदय से अपना आभार प्रकट करता है । जिनके सहयोग से लेखक को अपने सेवाकाल में सिक्किम एवं भूटान की पर्वत श्रेणियों का वनौषधि सर्वेक्षण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ ।

संदर्भ ग्रन्थ :-

1. रामेश वेदी, वर्ष 1995 ''भूटान की घाटियों में वनस्पतियों की खोज'', प्रकाशक :- डाबर इंडिया प्रा०लि०, नई दिल्ली ।
2. डा० मायाराम उनियाल, वर्ष 1997 :- ''उत्तराखण्ड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज'', प्रकाशक :- श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद शोध संस्थान, पटना ।
3. डा० मायाराम उनियाल, वर्ष 1999 :- ''लद्दाख की संस्कृति एवं परम्परागत तिब्बती चिकित्सा प्रणाली'' उनियाल आरोग्य प्रकाशन, बी-18, अवन्तिका, रोहिणी, दिल्ली-85 ।
4. डा० मायाराम उनियाल, आर०के०इस्सर :- ''सिक्किम हिमालय का प्रजातीय औषध वानस्पतिक सर्वेक्षण'' केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ।
5. विश्वास, वर्ष 1956 :- ''कौमन मेडिसिनल प्लान्ट्स ऑफ दार्जिलिंग एण्ड सिक्किम हिमालय'' ।
6. करन, पी.पी., वर्ष 1952-53 :- हिमालय किंगडम भूटान, सिक्किम एण्ड नैपाल, न्यूयार्क ।
7. कोछू, वी.एच., वर्ष 1967 :- ''सिक्किम एण्ड भूटान'' इन्डियन कौन्सिल फार कलचरल रिलेशन, नई दिल्ली ।

कामला रोग (Jaundice) में विरेचन (Purgation) कर्म की उपयो

* प्रो० अजय कुमा
** डॉ० सीमा जैन

आयुर्वेद में वर्णित ''कामला'' रोग को सामान्य बोलचाल की भाषा में ''पीलिया'' कहा जाता है । इसका कारण इस रोग में नेत्र व त्वचा में पीलापन होना है ।

आचार्य चरक ने पाण्डु रोग से पीड़ित व्यक्ति के अत्यधिक पित्तवर्धक (ऊष्ण, तीक्ष्ण, विंदाही, मद्य आदि) पदार्थों के सेवन से, प्रकुपित पित्त द्वारा रक्त व मांस को दूषित करने से कामला रोग की उत्पत्ति बताई है ।

भेद(1) शाखाश्रित (Obstructive Jaundice)
(2) कोष्ठाश्रित (Hepatic Jaundice)
(3) कोष्ठशाखाश्रित (Haemolytic Jaundice)

कामला के लक्षण - आयुर्वेदीय संहिताओं में वर्णित कामला के लक्षणों की तुलना यदि हम आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Jaundice से करें तो हम पाते है कि आयुर्वेदोक्त कोष्ठशाखाश्रित व शाखाश्रित कामला के लक्षणों व आधुनिक चिकित्सा शास्त्रों में वर्णित Haem व Obstructive Jaundice के लक्षणों में पूर्णतः सा

कोष्ठशाखाश्रित कामला के लक्षण -

हारिद्रनेत्र सभृशं हारिद्रत्वङ्नखाननः ।
रक्तपीत शकृन्मूत्रो भेकवर्णो हतेन्द्रियः ॥
दाहाविपाक दौर्बल्य सदनारुचि कर्षितः ।
कामला बहुपित्तैषा कोष्ठशाखाश्रित मतः ॥
(च०चि० 16

शाखाश्रित कामला के लक्षण -

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक् श्वेतवर्चास्तदा नरः ।
भवेत साटोपविष्टम्भोगुरूणा हृदयेन व ॥
दौर्बल्याल्पाग्नि पार्श्वार्ति हिक्का श्वास अरुचि ज्व
क्रमेणाल्पेऽनुसज्येत् पित्ते शाखासमाश्रिते ॥''
(च०चि० 16/126-1

कामला के लक्षण	Signs and Symptoms of Jaundice
1. हारिद्र नेत्र, त्वक्, नख, आनन	1. Yellowness of conjuctiva, skin, nails and Buccal cavity.
2. रक्तपीत मल मूत्र	2. Yellow stool & urine
3. दाह	3. Burnig sensation in body.
4. अविपाक	4. Indigestion
5. दौर्बल्य	5. Weakness
6. सदन	6. Looseness in the body
7. अरुचि	7. Anorexia
८. भेकवर्ण	8. Greenish yellow tinge of body
9. छर्दि	9. Vomiting
10. हृल्लास	10. Nausea
11. ज्वर	11. Fever
12. भिन्नवर्च	12. Diarrhoea
13. अंगमर्द	13. Bodyache
14. तिलपिष्टनिभंवर्च (श्वेतवर्च) (शाखाश्रित कामला में)	14. White stool (in obstructive Jaundice)
15. हिक्का व श्वास	15. Hiccough and Dysponea.

---

* प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष ** पी.एच.डी. अध्येत्री, स्नातकोत्तर कायचिकित्सा विभाग, रा.आ.सं., जयपुर (राज.)

कामला चिकित्सा - कामला (Jaundice) की चिकित्सा आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की तुलना में आयुर्वेद में काफी सटीक व विस्तृत है । आचार्यों ने कामला को पित्तज विकार माना है । अतः इसकी चिकित्सा में विकृत पित्त को संशोधन चिकित्सा द्वारा शरीर से बाहर निकालने का विधान किया है । कामला की चिकित्सा के सिद्धान्त निम्न हैं ।

1. **संशोधन चिकित्सा** -
   - i) स्नेहन (तिक्त औषध सिद्ध घृतपान)
   - ii) विरेचन
2. **संशमन चिकित्सा** - विभिन्न संशमन योगों का प्रयोग

> **''तत्र पाण्ड्वायमयी स्धिस्तीक्ष्णैरूर्ध्वानुलोमिकैः ।**
> **संशोध्योमृदुभिस्तिक्तैः कामली तु विरेचनैः ॥''**
> (च०चि० 16/39)

आचार्य चरक ने साध्य पाण्डुरोग में स्नेहन करने के बाद तीक्ष्ण वमन व विरेचन से शोधन करने तथा कामला रोग से पीड़ित रोगी को तिक्त द्रव्यों से सिद्ध मृदु विरेचन औषधियों द्वारा विरेचन कराने का निर्देश दिया है ।

कामला रोग की सम्प्राप्ति विघटन में विरेचन कर्म की कार्मुकता -

चूंकि कामला पित्त प्रधान व्याधि है एवं ''विरेचनं पित्तहराणांश्रेष्ठम्'' के अनुसार विरेचन पित्तज व्याधियों में श्रेष्ठ कर्म है इसलिए आचार्य चरक ने कामला में विरेचन कर्म कराने का निर्देश दिया है । चूंकि शाखाश्रित कामला में मलभूत पित्त की उत्पत्ति अधिक होती है व यकृत में संग होकर वह मलभूत पित्त रक्त के साथ मिलकर शाखाओं (रस, रक्त, त्वचा आदि) में गमन कर जाता है व पित्त के आन्त्र में न पहुंच पाने के कारण मल का वर्ण श्वेत ''तिल-पिष्ट निभं'' होता है एवं त्वचा, नेत्र, नखादि का वर्ण पीला हो जाता है ।

कामला रोग में विरेचन कराने के पूर्व रोगी को औषध सिद्ध घृतपान व कटु, उष्ण, तीक्ष्ण व तिक्त द्रव्यों का प्रयोग कराया जाता है ताकि 'बृद्धया विष्यन्दनात् पाकात्' सिद्धान्त के अनुसार दोषों को बढ़ाकर शाखा से कोष्ठ में लाया जा सके । अतः इस क्रम से बढ़ा हुआ पित्त जो शाखाश्रित हो गया था पित्तवर्धक पदार्थों के सेवन से और अधिक बढ़ाकर कोष्ठ (आंत्र) में आ जाता है व आंत्र में पित्त के आने से मल का वर्ण प्राकृत होने लगता है । (चूंकि मल का प्राकृत वर्ण Bile pigment, Bilirubin and Biliverbin के कारण होता है जो कि आयुर्वेद सम्मत पित्त है ।) और फिर इस कोष्ठाश्रित पित्त को विरेचन योग देकर विरेचन कर्म द्वारा शरीर से निष्कासित कर दिया जाता है । तथा मल का प्राकृतवर्ण होना ही कामला मुक्ति का लक्षण है । इस प्रकार कामला की सम्प्राप्ति विघटन में विरेचन का महत्वपूर्ण योगदान है ।

कामला प्रयुक्त होने वाले स्नेह कल्प व विरेचन योग निम्न है - स्नेहनार्थ

1. दाक्षाघृत	मात्रा - 20-50 मि.ली. अनुपान - उष्णजल
2. हरिद्रादि घृत	
3. दन्तीघृत	
4. पथ्याघृत	

विरेचनार्थ -

I. **''दंत्यर्धपल कल्कं वा द्विगुणं शीतवारिणा ।**
कामली निवृतां वाऽपि त्रिफलायां रसैः पिवेत् ॥''
(च०चि० 16/59)

1. दन्तीमूल कल्क 20 ग्राम मात्रा में 20 ग्राम गुड़ मिलाकर शीतल जल से सेवन ।

2. श्वेत निशोथ का कल्प त्रिफला क्वाथ से सेवन ।

II. **''स्वर्णक्षीरी त्रिवृच्छाया में......पिवेद्दोषानुलोमनम्''।**
(च०चि० 16/66-67)

स्वर्णक्षीरी कालानिशोथ, देवदारु, सोंठ को समभाग लेकर 300 ग्राम गोमूत्र से कल्क बनाकर या इनका क्वाथ बनाकर या क्षीरपाक विधि से दुग्ध पकाकर पीना चाहिए इससे दोषों का अनुलोमन होता है ।

III. त्रिफला, स्वरस या क्वाथ + मधु	मात्रा -10 मि.ली. अनुपान - जल
गुडूच स्वरस + मधु	
दारुहरिद्रा स्वरस + मधु	
निम्बपत्र स्वरस + मधु	

IV. गोमूत्र + गोदुग्ध 15 दिन तक पान कराना चाहिए

भैंस का दुग्ध+भैंस का मूत्र मात्रा - 100 मि.ली.

गोमूत्र + त्रिफलाक्वाथ

व्यावहारिक रूप से प्रयोज्य विरेचन योग -

छोटी हरड़	-	10 ग्राम
अमलतास का गूदा	-	10 ग्राम
निशोथ	-	10 ग्राम
कुटकी	-	10 ग्राम

यवकुट कर 400 मि.ली. पानी में घोलकर धीमी आँच पर 100 मि०ली० शेष रहने तक क्वाथ विधि से पाक करें। शीतल होने पर पान करावें।

Conclusion -

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आचा चरक द्वारा वर्णित "कामली तु विरेचनैः" चिकित्सा सू कामला चिकित्सा में अतिशय उपयोगी है। कामला रोग कफ द्वारा पित्त के मार्ग का अवरोध होता है व वायु इस क पित्त को शाखा में ले जाती है। अतः कटु उष्ण तीक्ष पदार्थों से कफ शमन व वात का शमन होकर मार्गावरो दूर होता है व स्वधर्मी गुण कटु, तिक्त, ऊष्ण पदार्थों पित्त की अतिशय वृद्धि होकर उसका शाखा से कोष्ठ अर्थात् रसरक्तादि धातुओं से आन्त्र में गमन होता है जो बाद में विरेचन द्वारा निर्हरण कर दिया जाता है।

विरेचन कर्म द्वारा कामला रोग की सम्प्राप्ति विघटन प्रक्रिया

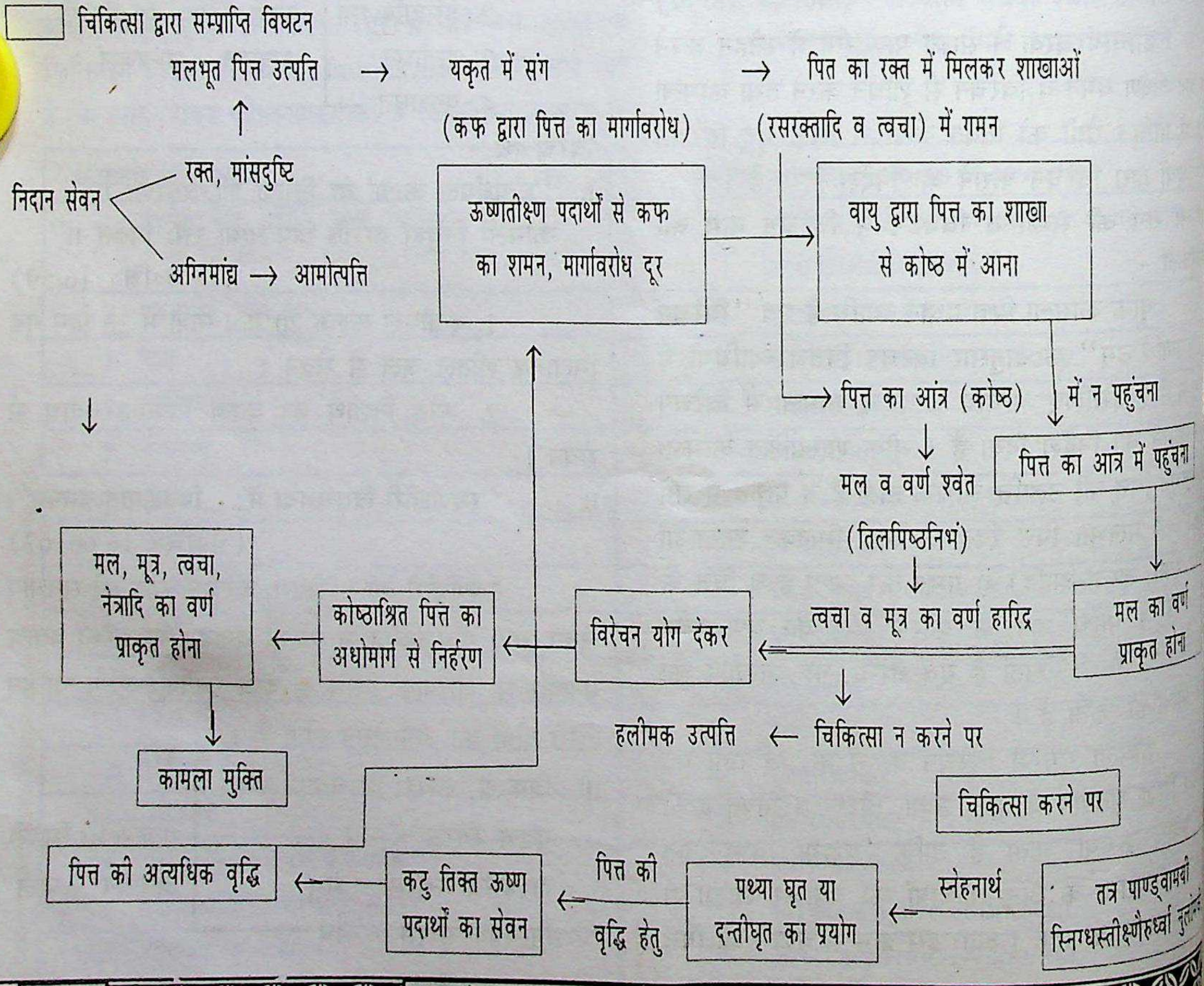
चिकित्सा द्वारा सम्प्राप्ति विघटन
मलभूत पित्त उत्पत्ति
यकृत में संग
(कफ द्वारा पित्त का मार्गावरोध)
पित का रक्त में मिलकर शाखाओं
(रसरक्तादि व त्वचा) में गमन
रक्त, मांसदुष्टि
निदान सेवन
अग्निमांद्य → आमोत्पत्ति
ऊष्णतीक्ष्ण पदार्थों से कफ का शमन, मार्गावरोध दूर
वायु द्वारा पित्त का शाखा से कोष्ठ में आना
पित्त का आंत्र (कोष्ठ)
में न पहुंचना
मल व वर्ण श्वेत
(तिलपिष्ठनिभं)
पित्त का आंत्र में पहुंचना
मल, मूत्र, त्वचा, नेत्रादि का वर्ण प्राकृत होना
कोष्ठाश्रित पित्त का अधोमार्ग से निर्हरण
विरेचन योग देकर
त्वचा व मूत्र का वर्ण हारिद्र
मल का वर्ण प्राकृत होना
हलीमक उत्पत्ति
चिकित्सा न करने पर
कामला मुक्ति
चिकित्सा करने पर
पित्त की अत्यधिक वृद्धि
कटु तिक्त ऊष्ण पदार्थों का सेवन
पित्त की वृद्धि हेतु
पथ्या घृत या दन्तीघृत का प्रयोग
स्नेहनार्थ
तत्र पाण्डवामयी स्निग्धस्तीक्ष्णैरुर्ध्वा नुलो

पाण्डुरोग की चिकित्सा में निर्दिष्ट चरकोक्त योग

*डा० अनूप कु० गक्खड़
**डा० अनिल कु० गक्खड़

चरक चिकित्सा स्थान में पाण्डु रोग की चिकित्सा का वर्णन करते हुए दाडिमाद्य घृत, कटुकाद्य घृत, पथ्याघृत, दन्तीघृत, द्राक्षाघृत, हरिद्रादि घृत, दार्वी घृत, कालीयक घृत, विशालादि फाण्ट, स्वर्णक्षीर्यादि योग, नवायस चूर्ण, मण्डूर भस्म योग, मण्डूर वटक, योगराज, शिलाजतु वटक, पुनर्नवा मण्डूर, दार्व्यादि लेह, धात्र्यवलेह, गौड़ अरिष्ट आदि का उल्लेख किया गया है । चरक चिकित्सा स्थान में अन्य रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते समय ऐसे योगों का उल्लेख भी किया गया है जिनकी उपयोगिता पाण्डु में भी कारगर सिद्ध होती है ।

यथा रसायन प्रकरण में हरीतकी एवं पिप्पली रसायन का प्रयोग पाण्डु में भी लाभकर है । गुल्म रोग में निर्दिष्ट हिंग्वादि गुटिका, शय्यादि चूर्ण, नीलिन्यादि घृत, क्षीर षटपल घृत, दन्ती हरीतकी का प्रयोग भी पाण्डु रोग में लाभ पहुँचाता है । प्रमेह चिकित्सा में वर्णित लोध्रासव व मध्यासव का प्रयोग भी पाण्डु चिकित्सा में उपयोगी है । कुष्ठ की चिकित्सा में निर्दिष्ट मुस्तादि चूर्ण, सिद्धार्थक स्नान, तिक्त षटपल घृत, महातिक्त घृत पाण्डु की चिकित्सा में लाभकर है । यक्ष्मा की चिकित्सा में निर्दिष्ट तालीशादि चूर्ण पाण्डु में भी लाभ पहुँचाता है । उन्माद की चिकित्सा में वर्णित कल्याणकघृत व द्वितीयलशुनादि घृत भी पाण्डु की चिकित्सा में उपयोगी है ।

अपस्मार की चिकित्सा में वर्णित महापञ्चगव्य घृत का प्रयोग पाण्डु की चिकित्सा में भी उपयोगी है । शोथ रोग की चिकित्सा में वर्णित पुनर्नवाद्यारिष्ट अरिष्ट, क्षार गुटिका, कंस हरीतकी भी पाण्डु की चिकित्सा में उपयोगी है । उदर चिकित्सा में निर्दिष्ट रोहीतक घृत, पटोलमूलाद्य चूर्ण, नारायण चूर्ण, हपुषाद्य चूर्ण, पाण्डु रोग की चिकित्सा में भी उपयोगी है । अर्श की चिकित्सा में वर्णित अभयारिष्ट, दन्त्यारिष्ट, फलारिष्ट, कनकारिष्ट, हीबेरदि घृत पाण्डु में भी लाभ पहुंचाते हैं । ग्रहणी की चिकित्सा में निर्दिष्ट भूनिम्नबाद्य चूर्ण, किरातदि चूर्ण, दुरालभासव, मूलासव, पिप्पलीमूलादि चूर्ण, भल्लातक क्षार, वत्सकादि क्षार, त्रिफलादि क्षार भी पाण्डु रोग में लाभकर है । त्रिमर्मीयाचिकित्सा ध्याय में त्र्यूषणादि घृत का प्रयोग पाण्डु रोग में लाभकर है । वातरक्त की चिकित्सा में निर्दिष्ट शतपाक मधुपर्णी तैल, बलाघृत व जीवनीय घृत भी पाण्डु में लाभकर है । इसके साथ-साथ कल्प स्थान में 2/8, 3/10, 6/4, 7/45 व 12/32 के संदर्भ पाण्डु में भी कारगर बताए गए हैं ।

---

*दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्धर **श्रीमति उर्मिला देवी आयुर्वेदिक कॉलेज, होशियारपुर

बैद्यनाथ

ईसबबेल

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री), कब्जियत आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

नारी स्वास्थ्य

घरेलू नुस्खों से स्त्री रोगों का इलाज

डा० हनुमान प्रसाद

हालांकि औरतों की व्याधि प्रतिरोधक सामर्थ्य पुरुषों से अधिक होती है, किन्तु यह भी सत्य है कि स्वयं की तरफ लापरवाही करके वे तमाम व्याधियों को स्वयं निमंत्रण देती हैं । हम ऐसी ही कुछ व्याधियों के निदान के बारे में परिचय दे रहे हैं, जिनका शिकार औरतें खान-पान और जीवन शैली में लापरवाही के चलते हो जाती हैं । रोगों के इलाज के घरेलू नुस्खे निम्नवत् हैं -

* पीपल, कूट, कटेरी, तगर, अश्वगंधा, सफेद सरसों, अपामार्ग, कालीमिर्च सम तादाद में लेकर बकरी के दूध में पीसकर इसे स्तनों पर लगाएं । स्तन सुडौल बनेंगे ।
* पीपल के पके हुए फल को बारीक पीसकर बराबर मात्रा में शक्कर मिश्रित करके दें । करीब 10-15 दिनों में प्रसूत एवं प्रदर रोग नष्ट हो जाएगा ।
* 10 ग्राम अजवाइन, 10 ग्राम पुराना गुड़ दो कप पानी में उबालें । आधा कप शेष रहने पर छानकर सबेरे-शाम तब तक पिएं जब तक मासिक ठीक न आए व गर्भाशय साफ होकर रक्त वृद्धि न हो जाए ।
* तुलसी की जड़ का चूर्ण पान में रखकर खिलाने से स्त्रियों का अनावश्यक रक्त स्राव बंद होता है ।
* भुनी फिटकरी तीन ग्राम पानी के साथ रोज लें, साथ ही नीम के पत्तों को पानी में उबालकर उसमें थोड़ी-सी फिटकरी पीसकर मिला दें । इस पानी से योनि में पिचकारी दें । श्वेत प्रदर कितना भी पुराना हो इससे राहत मिलेगी ।
* हिस्टीरिया रोग में हींग नाक में सुंघाने से होश आ जाता है । साथ ही दो मुट्ठी पुदीना, एक चम्मच जीरा और लहसुन की दस कली पीसकर एक गिलास पानी में मिलाकर रोज पीने से हिस्टीरिया जड़ से ठीक हो जाता है ।
* जीरे को नीबू के रस में भिगोकर नमक डालकर सुखाकर रखें । इसको लेने से गर्भवती महिलाओं का जी मिचलाना व उबकाई आने में लाभ मिलता है ।
* स्तनों का ढीलापन सौन्दर्य को कम करता है । ढीलापन दूर करने के लिए अनार के पत्तों का 500 ग्राम रस व 700 ग्राम तिल का तेल धीमी आँच पर पकाएं । जब केवल तेल की मात्रा रह जाए, तब छानकर बोतल में रख दें । इस तेल को दिन भर में दो-तीन बार स्तनों पर मालिश करें । धीरे-धीरे स्तनों के सौन्दर्य में कड़ापन आ जाएगा ।
* एनीमिया या खून की कमी की दशा में सरसों का साग सब्जी के रूप में प्रयोग करते से लाभ मिलता है साथ ही अनार या संतरा या टमाटर का सूप सेवन करें
* साफ लोहे के पात्र में रखा हुआ दूध सात दिन लगातार पीने से तथा सादा भोजन करने से खून कमी दूर हो जाती है ।
* एरंड बीजों का छिलका निकालकर उसका 100 गिरी एक लीटर गाय के दूध में पीसकर पकाएं । (खोया) सरीखा बन जाने पर उसे उतार लें । यह से बीस ग्राम तक सुबह-शाम तक सेवन कर कमरदर्द, गृध्रसी (साइटिका) और पक्षाघात में होता है ।
* गर्भवती स्त्री को 10 ग्राम धमीरा (भृंगराज) का 100 ग्राम गाय के दूध में मिलाकर पिलाने से ग का खतरा मिट जाता है ।
* प्याज को पकाकर उसके 50 ग्राम रस में पुराना गुड़ ग्राम मिलाकर लेने से मासिक धर्म साफ होता है हल्दी भूनकर गुड़ के साथ देने से गर्भाशय-शोथ दुर्बलता नष्ट होती है तथा मासिक धर्म ठीक होने है ।
* प्रसूतावस्था में गुड़ और अजवाइन देने से कम मिटता है, गर्भाशय की शुद्धि होती है, रक्त साफ है, भूख लगती है तथा बल बढ़ता है । दर्द एवं आने वाले मासिक धर्म में भी इससे लाभ होता है
* नारियल के तेल में थोड़ा-सा भीमसेनी कपूर मि योनि भाग में उसे लगाएं इससे योनि कंडु (जनना खुजली) का निवारण होता है ।
* खजूर को काली गाय के दूध में डालकर मिट्टी के में उबालें, फिर उसमें मधु मिलाकर पीने से ब विकृति नष्ट होती है ।
* मुनक्का, गोक्षुर (गोखरु) और मुलहठी को ज साथ पीसकर दूध में मिलाकर पीने से गर्भशूल नष्ट होता है ।
* शंखपुष्पी 3 ग्राम, मुलेठी 3 ग्राम, शतावरी 3 ग्राम एक ग्राम, इनको मिलाकर दो मात्रा बना दूध के सेवन करने से स्मरण शक्ति और बुद्धि बढ़ती पागलपन या हिस्टीरिया में आराम मिलता है । ग दौर्बल्य दूर होता है और गर्भस्थापन की शक्ति आ
* अगर बार-बार गर्भपात हो जाए, तो गर्भ ठहरने के से आधा चम्मच सोंठ, चौथाई चम्मच मुलहठी मिली दूध में उबालकर रोज पिएं । गर्भ ठहरेगा प्रसव में कष्ट भी नहीं होगा ।

बालों को काला रखने के उपाय

डा० वीरेन्द्र कुमार शर्मा, बी.ए.एम.एस, एम.डी. (विकृति विभाग)

हमारे सिर के बाल जहां हमारे मस्तिष्क को यांत्रिक अभिघातों से बचाते हैं वहीं हमारे सौन्दर्य के प्रतीक भी हैं। प्राचीन काल से ही स्त्री एवं पुरुषों दोनों बालों की सुरक्षा एवं सौन्दर्य के लिए प्रयत्नशील रहे हैं। चेहरे का बहुत कुछ आकर्षण और बनाव सिंगार केशों पर ही निर्भर है। महिलाओं के लम्बे घने एवं काले बाल तो चेहरे की वास्तविक सुन्दरता को निखारकर काली बदली से निकलते हुए चाँद के समान चौगुनी वृद्धि करने में सहायक होते है। पुरुषों में उनके कृष्ण बाल युवावस्था के प्रतीक माने जाते हैं। केशव कवि ने लिखा है – मेरे असमय ही सफेद हुए बालों ने मेरे साथ दुश्मनी की है क्योंकि चंचल किशोरियाँ अब मुझे देखकर बाबा कहकर चिढ़ाती हैं।

सिर के बाल त्वचा में लम्बे एवं गहरे केश पुटिकाओं में रहते हैं। ये केरेटीन नामक प्रोटीन द्वारा निर्मित है। इनका रासायनिक संघटन इस प्रकार है। कार्बन 50. 56 प्रतिशत, हाइड्रोजन 6.38 प्रतिशत, नाइट्रोजन 17.14 प्रतिशत गन्धक, 5 प्रतिशत आक्सीजन 20.85 प्रतिशत होता है। रासायनिक संघटन बालों के रंग को भी प्रभावित करता है। पूर्ण रूप से वृद्ध बाल के दो भाग होते हैं। मूल एवं उर्ध्व भाग बालों की वृद्धिदर लगभग 1/4 इंच प्रतिमाह होती है। बालों की वृद्धि 20-30 वर्ष की उम्र में एवं सर्दी से गर्मी में अधिक तीव्रता से होती है। बालों की वृद्धि का एक चक्र चलता रहता है। कुछ वर्ष बाल बढ़ते रहते हैं एवं कुछ समय निष्क्रियावस्था में रहते हैं। इस समय बालों का पतन भी ज्यादा होता है। बालों का गिरना होता है जब इनके मूल में जो कन्द सदृश अंकुरक होते हैं जिनका पोषण बन्द हो जाता है। केश कन्द केश का कुछ फूला हुआ भाग होता हैं जो केश मूल का अध: भाग बनाता है। यह भाग केश के अंकुरक भाग में रहता है। केश अंकुरक केश पुटिका में रहता है। बालों के पोषण के लिए केश अंकुरक में ज्यादा रक्त एवं नाड़ियों की व्यवस्था होती है जिसके कारण ही केशों की वृद्धि एवं पुनर्जनन होता है। यह कार्य केश अंकुरक के द्वारा होता है जो केशकन्द तक पोषण पहुँचाता है।

अत: यही भाग इसका उत्पादक अंग भी कहलाता है। बालों का निर्माण एवं वृद्धि उनके उचित पोषण पर निर्भर करती है। अगर बाल सामान्य एवं स्वस्थ है तो यह वृद्धि पतन एवं पुनर्जनन इस प्रक्रिया से होकर गुजरते रहते हैं। बालों की वृद्धि शरीर के विभिन्न अंगों के अनुसार लिंग के अनुसार जाति एवं उम्र के अनुसार कम या ज्यादा होती है।

बालों की दृढ़ता, मोटाई, लचकीलापन एवं घुंघरालापन व्यक्तिगत जातिगत एवं भौगोलिक आधार पर भिन्न-भिन्न होता है। शिर के बालों की ज्यादा वृद्धि 15-30 वर्ष की उम्र में होती है। लेकिन इनका क्षयकाल 50-60 वर्ष के बीच होता है। पुरुषों की तुलना में महिलाओं के बाल तीव्रता से वृद्धि करते हैं। कुछ बाल प्रतिदिन गिरते रहते हैं जो अनुमानत: 50-80 बाल होते हैं। इससे ज्यादा बालों का गिरना विकृति का सूचक है।

बालों का रंग विभिन्न व्यक्ति जातियों के अनुसार भिन्न-भिन्न तरह का होता है जो आनुवंशिकता पर भी निर्भर करता है। साधारणतया तीन प्रकार के रंग देखे जाते हैं। गौर, भूरा तथा कृष्ण वर्ण। बालों का यह वर्ण एक प्राकृतिक रंजक द्रव्य के द्वारा होता है जो बाल की प्रान्तस्था कोशाओं में रहता है जिसको मेलेनीन कहते हैं। मेलेनीन रंजक कोशाओं में उत्पन्न होकर केशकन्द एवं अग्रभाग तक जाता है। मेलेनीन दो रूपों में देखने को मिलता है। एक विकीर्ण रूप में जो पीले चकत्ते सदृश एवं सान्द्र रूप में गहरे भूरे रंग में। बालों का रंग मेलेनीन के अनुपात पर निर्भर करता है। मेलेनीन को कुछ पदार्थ प्रभावित करते हैं जो उपचायक एवं आक्सीकारक होते हैं। उनमें सूर्य का प्रकाश भी है।

सफेद बाल :-

सफेद बालों की उपस्थिति के विषय में आज तक बहुत अध्ययन किया गया है लेकिन सन्तोषजनक निष्कर्ष नहीं प्राप्त हुए। बालों के श्वेत होने का मुख्य कारण देश के प्रान्तास्था भाग में केश रंजन द्रव्य की अनुपस्थिति है। यह सत्य है कि उम्र के अनुसार रंजक कोशाओं की संख्या कम होने लगती है जिससे बालों की रंजन क्रिया भी कम होने लगती है लेकिन कम उम्र म बालों का श्वेत होना विकृति का परिणाम है। छोटी उम्र में बालों के श्वेत होने में मुख्य कारण भय, चिन्ता, दु:ख क्रोध, भावनात्मक गड़बड़ी माने जाते हैं। अचानक बाल के सफेद होने में किसी गम्भीर एवं चिरकारी रोग के उपद्र स्वरूप भी ऐसा हो सकता है।

रंजन क्रिया की विकृति के स्वरूप किसी भ

चिकित्साधिकारी (प्रभारी), राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, पारणावास (नागौर)

उम्र में बाल पकना आरम्भ हो सकते हैं । यह विकृति पारिवारिक एवं वंशगत भी देखी जाती है । अत्यधिक सूर्य के प्रकाश में काम करना, विकिरण का सेवन करना एवं कुपोषण भी कारण माने जाते हैं लेकिन अभी ऐसा कोई कार्य नहीं हुआ है जिससे यह कहा जा सके कि अमुक कारण सफेद बालों का मुख्य कारण है ।

बचाव :-

सफेद बालों को रोकने के लिए सर्वप्रथम उन सभी पदार्थों एवं कार्यों का परित्याग करना पड़ेगा जिनको थोड़ा बहुत भी सफेद बाल होने में कारण समझा जाता है । यथा विभिन्न प्रकार के साबुनों का केश धोने में बहुत कम प्रयोग करें । केश प्रसादक द्रव्यों का परित्याग करें । अधिक धूप एवं ठण्ड में बालों को ढांक कर रखें । केश प्रसादन के लिए प्राकृतिक द्रव्यों का ही ज्यादा प्रयोग करना चाहिए । भावनात्मक एवं मानसिक आवगों से दूर रहें । कोई मानसिक कष्ट हो तो उसे दूर करने की कोशिश करें ।

सफेद बालों से बचने एवं पुन: कृष्ण करने की चिकित्सा को तीन भागों में बांट सकते हैं :-

1. आहार ।
2. विहार एवं आसन ।
3. औषध ।

1. आहार :-

आहार में प्राय: संतुलित आहार का प्रयोग करना चाहिए । हरी एवं पत्तेदार सब्जी पालक, मैथी, बथुवा, मूली एवं आँवला इनका अत्यधिक प्रयोग करें । दूध एवं चोकर युक्त आटा प्रतिदिन के भोजन के आवश्यक अंग होना चाहिए ।

2. विहार एवं आसन :-

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए जिस प्रकार जल्दी प्रात: नियमित व्यायाम की जरूरत होती है उसी प्रकार रूग्ण बालों की जड़ों में ज्यादा पोषण पहुँचाने एवं विकृत रंजन प्रक्रिया को सुधारने के लिए कुछ आसनों का प्रयोग करना चाहिए । इनमें शीर्षासन, सर्वागासन एवं वृक्षासन मुख्य हैं । इनसे बालों को ज्यादा रक्त मिलता है । बालों को स्वस्थ रखने के लिए उनका स्नेहन भी आवश्यक है । अत: आँवला, त्रिफला या भृंगराज से तैयार किया हुआ शुद्ध तैल मालिश एवं अभ्यंग के रूप में प्रयोग करें । सिर में मालिश दिन में दो बार प्राय: सायं अंगुलियों से 15 से 20 मिनट तक धीरे-धीरे करनी चाहिए ।

बालों को स्वस्थ रखने के लिए उनको स्वच्छ रखना भी आवश्यक है । किसी भी कृत्रिम साबुन, शैम्पू की बजाय प्राकृतिक मुल्तानी मिट्टी, छाछ-दही से धोना चाहिए । आँवला, त्रिफला, अरिठा, शिकाकाई इनका दरदरा चूर्ण बनाकर नियमित लम्बे समय तक सायंकाल भिगोकर प्रात: धीरे-धीरे बालों को धोना चाहिए । यह प्रयोग लम्बे समय तक करने से निश्चित लाभ होता है ।

सफेद बालों की चिकित्सा हेतु आयुर्वेदीय ग्रन्थों में विभिन्न औषध योगों का प्रयोग बताया गया है जिनका प्रयोग भी लोग करते हैं एवं लाभ उठाते हैं ।

(1) नाक को सिर का द्वार माना जाता है । अत: सिर में होने वाली व्याधियों में नाक के द्वारा औषध पहुँचाई जाती है । इस रोग के लिए विभिन्न तैलों का प्रयोग नस्य के रूप में बताया है ।

बहेड़ा, नीम, गम्भारी, हरड़, लिसोड़ा एवं गुंजा इनमें से किसी एक पल की मीगी के द्वारा तैल सिद्ध कराकर प्रतिदिन दिन में चार बार नासा रन्ध्रों में एक-एक बूंद डालने से निश्चित सफलता मिलती है ।

(2) इन्द्रायण (गड्डुतुम्बा) फल के बीजों के तैल का प्रतिदिन सिर पर मालिश करने से बाल कृष्ण हो जाते हैं ।

(3 त्रिफला, नीलिका पत्र, लौह चूर्ण, भृंगराज इन चारों द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर भेड़ के मूत्र में पीसकर सिर पर लेप करने से कुछ समय पश्चात् बाल काले हो जाते है ।

(4 भृंगराज तैल की मालिश सिर पर दिन में दो बार करें । इस तैल को आप लोग भी बना सकते हैं । भांगरे का रस 4 भाग, तिल तैल एक भाग, लौह् हरा मैल, त्रिफला एवं सारिवा प्रत्येक समान भाग लेकर पकाकर तैल बनालें ।

(5) कनेर जो बागों में लगाई जाती है इसकी जड़ को दूध में पीसकर बालों को छोटे करवाकर लेप करने से भी बाल काले होते हैं ।

(6) नारसिंह चूर्ण जो आयुर्वेद औषधि है, की तीन-तीन ग्राम की मात्रा सुबह-सायं दूध से सेवन करने से बाल काले हो जाते हैं ।

इन सभी दवाओं की विस्तृत जानकारी आयुर्वेद चिकित्सक से परामर्श करके प्रयोग की जानी चाहिए ।

पर्णबीज (BRYOPHYLLUM PINNATUM)

*डा० गणेश चन्द्र उपाध्याय **प्रो०पी०पी०शर्मा

मनुष्य हमेशा से ही अपनी सुख-सुविधा के लिए भौतिक सम्पदा का दोहन किया है । सृष्टि की रचना के साथ अपने स्वास्थ्य की रक्षा व विकार दूर करने हेतु वानस्पतिक द्रव्य व जांगम द्रव्यों का प्रयोग किया है ।

चरक ने स्पष्ट किया है कि ऐसा कोई द्रव्य नहीं है जिसमें औषध गुण न हो, अत: चाहे व उद्यानों व गमलों में लगाया पौधा ही क्यों न हो, जिसमें घर की शोभा तो बढ़ती है साथ में घर में रहने वाले व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा कर सकता है । यह कहना उचित न होगा कि इससे रोग समूल नष्ट हो जाएगा, परन्तु यह रोगी की अवस्था को बेहतर बना सकता है तथा अंग्रेजी व अन्य दवाओं की मात्रा को कम कर सकता है, या किसी विशिष्ट व्याधि के उत्पन्न होने की संभावना को कम कर सकता है । कई द्रव्यों तो वेदों, संहिताओं, चिकित्सा ग्रन्थों व निघण्टुओं से ही औषध रूप में स्थापित है, समयानुसार नव्य ग्रन्थों ने नए द्रव्यों को स्थान दिया है तथा उसके गुणधर्म का विवेचन किया है । ऐसा ही एक द्रव्य है पर्णबीज (पाषाण भेद) जो वर्षों से ग्राम्य औषध के रूप में प्रचलित है ।

संदेहास्पदता :-

पर्णबीज का अन्य नाम पाषाण भेद (अशमरी नाशक गुण के कारण) भी है, इससे संदेह उत्पन्न हा गया है । डा०के.सी. चुनेकर ने कई द्रव्यों को पाषाणभेद के नाम से लिया है, जिसमें वृक्काश्मरी भेदन के गुण हैं, परन्तु डा०पी.वी.शर्मा ने Bryophyllum Pinnatum को ही पाषाणभेद (पर्ण बीज) माना है । संहिताओं में वर्णित पाषाणभेद भिन्न द्रव्य है । पर्णबीज का वर्णन आदर्श निघण्टु व पी.वी.शर्मा द्वारा उचित द्रव्य गुण विज्ञान-2 में मिलता है ।

लेटिन नाम :- Bryophyllum Calycinum
Synonyms : B. Pinnatum, Kalanchoe pinnate
. Rhizophylla cotyledon.

कुल : Crasulaceae
पर्याय : पर्णबीज, पत्रबीज, अस्थि भक्षक
स्थान्कि नाम : हिन्दी - पत्थरचटी
यूनानी - जख्मेहयात

स्वरूप :-

इसका बहुवर्षायु क्षुप 1-4 फीट ऊँचा होता है, पत्र-स्थूल अखण्डीय, गोल दन्तुर होते हैं । इसके पत्तों के किनारे लाल धारी होते हैं । इसकी पत्तियां जमीन में गिरने से वहाँ नया क्षुप उत्पन्न हो जाता है । अत: कतिपय विद्वानों ने इसका नाम पर्णबीज रखा है । गुजरात में इसके पत्तों की भजिया बनाकर खाते हैं ।

गुण	वैद्य पी.वी. शर्मा	वैद्य पी.ए. वैरियर
रस	कषाय, अम्ल	मधुर, अम्ल
गुण	लघु, रूक्ष	स्लघ्न, स्निग्ध
वीर्य	शीत	शीत
विपाक	मधुर	--

रस में मतभेद का कारण :- नवीनतम अनुसंधानों से पता चला है कि पर्णबीज के पत्र में Crassulacean acid, citric acid, Isocitric acid होते हैं जिस कारण इसका रस अम्ल होता है परन्तु सूर्य की रोशनी में पत्र के रासायनिक संगठन में बदलाव के कारण यह अपना अम्ल रस खो देता है, अर्धरात्रि में यह पुन: अम्ल रस युक्त हो जाता है ।

रासायनिक संगठन :-

Alkaloids, triterpenes, glycosides, flavonoids steroids & lipids, Cardiac glycosides-diagoxin & digetoxin.

कर्म :

यद्यपि वर्षों से इन पौधों का प्रयोग ग्राम्य औषध रूप में हो रहा है । इसी आधार पर अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान किये गये जिससे इसके रोगशामक शक्ति की

---

* एम.डी. स्कॉलर ** एच.ओ.डी.
द्रव्यगुण विभाग, आई.पी.जी.टी. एण्ड आर.ए. जामनगर, गुजरात

पुष्टि होती है । विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों के आधार पर पर्णबीज की रोगशामक शक्ति ।

(1) व्रण रोपण/शूल शोथहर :-

इसका स्वरस - कल्क व्रण पर लगाया जाता है । अब अनुसंधानों से इसके Anti-bacterial, anti-viral व Anti-fungal गुणों का पता चलता है । यह तो ऐसे Bacteria को नाश करने में सक्षम है जिन्होंने आधुनिक Antibiotic के प्रति प्रतिरोधक क्षमता पैदा कर ली है । Anti-inflammatory होने के कारण यह शूल व शोथ दोनों को शान्त करता है ।

(2) श्वास रोग :-

श्वास रोग में इसका चलन इस बात से सिद्ध होता है कि इसके पत्र स्वरस Anti histamine व Anti allergic गुण वाला है । पशुओं (चूहों व गिनी पिग्स) में परीक्षण से ज्ञात होता है कि इसका पत्र स्वरस Anaphylitic shock से होने वाली मृत्यु दर को कम करता है ।

(3) आमाशय व्रण :-

चिकित्सीय परीक्षणों व पशुओं के ऊपर लिये परीक्षणों से ज्ञात होता है कि इसका पत्र स्वरस Aspirin, Stress, ethanol (मद्यपान) व Histamine द्वारा उत्पन्न होने वाले व्रण से आमाशय की रक्षा करता है ।

(4) रक्तस्तम्भक :-

स्थानिक व आभ्यन्तर प्रयोग करने से यह सूक्ष्म धमनियों का संकोच कर रक्त प्रवृत्ति को कम करता है । अतः इसका प्रयोग रक्तप्रदर, रक्तार्श, रक्तप्रवाहिका में किया जाता है ।

(5) अशमरी नाशक :-

अनेक स्थान मुख्यतः बंगाल में इसका प्रयोग वृक्कांशमरी में किया गया है ।

(6) अतिसार नाशक, दाहप्रशमन, अर्बुधनाशक, ज्वरनाशक रूप में भी इसका प्रयोग किया गया है ।

अन्य कर्म : Anti-anaphyltic, central nervous system depressant, muscle relaxant, sedative, anti-convulsant.

प्रयोज्यांग : पत्र, पत्रस्वरस ।

मात्रा : 10-20 मि.ली. ।

विषाक्त मात्रा :-

पशुओं के ऊपर के लिए गए परीक्षणों से चलता है कि यह 5 ग्राम/किलो की मात्रा में भी शरीर कोई विषाक्ता उत्पन्न नहीं करता है ।

निषेध :-

- हालाँकि स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते मगर यह प्रस के दौरान दिया जाता है, अतः इसे गर्भावस्था नहीं देना चाहिए ।
- पर्णबीज का प्रयोग अधिक समय तक नहीं करन चाहिए क्योंकि यह व्याधिक्षमता को कम कर है।
- Barbiturates की शक्ति बढ़ा सकता है।
- Cardiac glycosides होने के कारण digoxin digetoxin जैसे दवाओं के प्रभाव को ब सकता है ।

निष्कर्ष :-

आधुनिक बदलते परिवेश में मनुष्य अपने स्वास्थ्य के प्रति गंभीर नहीं है । इस कारण उसे नाना प्रकार परेशानियों का सामना हर रोज करना पड रहा है, इस आधुनिक दवाओं के दुष्परिणाम भयावह हैं । जहां जानकारी अनावश्यक दवाओं के सेवन से बचाती है जीर्ण रोग/रोगियों की स्थिति को बेहतर बनाती है । आम नागरिक को सुलभ औषध द्रव्यों का ज्ञान आवश्य है ।

संदर्भ ग्रंथ :-

1. भावप्रकाश निघण्टु - विमर्शकर्ता गंगा सह पाण्डेय व कृष्णचन्द्र चुनेकर ।
2. आदर्श निघण्टु - बप्पालाल वैद्य द्वारा रचित
3. द्रव्य गुण विज्ञान - डा०पी.वी. शर्मा ।
4. Glossary Indian medicinal plants, Chop Nayar & Chopra PID, New Delhi.
5. The wealth of India, CSIR, New Delhi.
6. Other Journals.

मूलगामी चिकित्सा का सोपान पंचकर्म

डा० बी.एम. निर्मल, एच.पी.ए. पीएच.डी. (जाम.)

प्रयोजन

आयुर्वेद का प्रथम प्रयोजन स्वास्थ्य की रक्षा करना एवं द्वितीय प्रयोजन आतुर के विकार का प्रशमन करना है । प्रथम प्रयोजन की पूर्ति के लिये स्वस्थवृत्त के आदेशों का पालन आवश्यक है एवं विकारों के हेतु लक्षण चिकित्सा के ज्ञाता के लिये शमन एवं शोधन उपक्रम उपादेय है, इनमें भी शमन की अपेक्षा शोधन का कार्मुकत्व श्रेयस है क्योंकि रोगों का मूलोच्छेद करने से उनकी पुनरोद्भव नहीं होता है ।

आयुर्वेद की मूलगामी चिकित्सा का प्रथम प्रयोजन-संक्षेपतः क्रिया योगों निदानं परिवर्जमन् । अर्थात् रोगों की उत्पत्ति के हेतु का त्याग करे विद्वानों में लोकोक्ति है कि ''नास्ति मूले कुतः शाखा'' । इस उद्देश्य से रोगों के निदान पंचक में प्रत्येक रोगों का कारण एवं हेतु बतलाया गया है ।

सामान्य सिद्धान्त दिया गया है कि मिथ्या आहार-विहार दोषों का प्रकोप हेतु है । रोग दोष विकृति के बाद होती है । साथ में अग्नि, आम और स्रोतस का भी रोगोत्पत्ति में स्वीकृत किया गया है । अतः मूलगामी सात सोपान हैं यथा (1) निदान परिवर्जनम् (2) दोष शमन (3) अग्नि दीपन (4) आम पाचन (5) स्रोतस शुद्धि (6) बल वृद्धि (7) उर्ध्वअधो शोधन । शोधन प्रमुखतया दो प्रकार का होता है । (1) उर्ध्वभाग से दोष निकालना । (2) अधः भाग से विरेचन, वातानुलोम एवं रक्त मोक्षण ।

*** पंचकर्म मूलगामी चिकित्सा क्यों ?**

पंचकर्म एक संशोधन चिकित्सा है । वमन, विरेचन और बस्ति से कोष्ठ शुद्धि होती है और नस्य से मानसिक व्याधि की शांति होती है । दोनों प्रकार की शुद्धि क्रम से वातादि तीनों दोष धातुएं एवं मल की शुद्धि होती है । शुद्धि से व्याधि उत्पादक मूल हेतु का निर्मूलन होता है कहा है कि

दोषाः कंदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघन पाचनैः ।
जिता संशोधनैर्येतुं न तेषां पुनरूद्भवः ॥

च०सू० 16/20

वमन एवं विरेचन यह दो शोधन कर्म में आता है और निरूह बस्ति और नस्य शोधन उपरांत बृंहण एवं शमनादि क्रिया भी करते हैं । यदि पंचकर्म विद्या आयुर्वेद में न होती तो धातुगत एवं मानस विकार की कभी शान्ति न होती तात्पर्य यह है कि पंचकर्म चिकित्सा मनुष्य की नया जन्मदात्री है ।

मलापहं रोगहरं बलवर्ण प्रसादनम् ।
पीत्वा संशोधन सम्यगायुषा युज्यते चिरम् ॥

च०सू० 15/22

यहाँ संशोधनरूप क्रिया से विकृत दोषों का निर्हरण, रोगनाशक तथा बल-वर्ण की प्राप्ति होती है और दीर्घायु, जठराग्नि प्रदीप्त करना और शोधन प्रकार से उत्तम प्रकार का स्वास्थ्य का निर्माण होता है । विशेषतः रसायन कर्म के पूर्व देह शुद्धि करना आवश्यक है ।

1. पंचकर्म में से कोई भी एक कर्म से स्रोतस दुष्टि के जो लक्षण होते हैं उसको दूर करते हैं और रसवह नाड़ियों की शुद्धि करते हैं ।
2. जठराग्नि प्रदीप्त होती है - जठराग्नि प्रदीप्त होने से प्रथम व्याधि उत्पादक आम दोष को पक्व करते हैं - आम पक्व हो जाने से व्याधि उत्पादक हेतु का नाश करते हैं ।
3. व्याधि उत्पादक मूल तत्वों का विच्छेदन करते हैं ।
4. पुनः शरीर स्वास्थ्य टिकाने में योगदान होता है ।
5. ज्ञानेन्द्रियाँ निर्मल होने से अपने-अपने कार्यों में संलग्न होती हैं । अतः कोई भी मानसिक विकार का निर्माण नहीं होता ।
6. शरीर में व्याधि से जो विकृत भाव उत्पन्न होता है वह नष्ट होता है ।
7. शरीर में बल बढ़ने से रोग प्रतिकार शक्ति बढ़ती है।
8. शरीर में बल बढ़ने से शरीर की पुष्टि होती है ।
9. जरावस्था का लक्षण दीर्घकाल के बाद दिखाई पड़ता है ।
10. शरीर दीर्घकाल तक निरामय रहता है ।

तात्पर्य यह है कि पंचकर्म एवं शोधन दोनों एक नहीं है । पंचकर्म शोधन का पर्याय एवं एकार्थवाची नहीं है। पंचकर्म केवल शोधन नहीं है । अपितु वमनादि शोधनकर्मों का समावेश किया है । शोधन कर्मों की अधिकता है । शोधन प्रधान है क्योंकि वमन और विरेचन ये दोनों विशुद्ध शोधन कर्म है । निरुह बस्ति एवं नस्य शोधन उपरांत बृंहण एवं शमनादि कार्य भी करते हैं । अनुवासन का बृहण कार्य प्रसिद्ध है । अत: पंचकर्म का क्षेत्र शोधन प्रधान है, फिर भी चिकित्सा की दृष्टि से विशाल वटवृक्ष है अर्थात् पंचकर्म में शोधन कर्म का महत्वपूर्ण उल्लेख रहता है फिर भी भिन्न-भिन्न कर्मों में शोधन, बृंहण एवं शमन कार्य करते हैं । नस्य कर्म भी बृंहण एवं शमन प्रकार का है । अत: पंचकर्म के इस कर्म में शोधन उपरांत स्वस्थ को स्वस्थ रखने का भी कार्य है ।

*** शोधन का पूर्वक्रम ।**

स्नेहन और स्वेदन, वमन-विरेचन एवं बस्ति के पूर्वकर्म है क्योंकि दोषों का विलयन कर के कोष्ठ में आनयन करना प्रथम आवश्यकता है ।

*** पंचकर्म के नाम ।**

(1) वमन (2) विरेचन (3) निरुह बस्ति (4) अनुवासन बस्ति (5) नस्य में काय चिकित्सा मत से पंचकर्म है । शस्त्र चिकित्सक दो बस्तियों को एक मानते हैं एवं रक्तमोक्षण को विशेष मानते हैं । अत: वमन, विरेचन, बस्ति, नस्य एवं रक्तमोक्षण इन पंचकर्मों को शोधन हेतु मानते हैं ।

संहिताओं में कल्प एवं सिद्धिस्थान में पंचकर्म का सविस्तार वर्णन है, जिन में व्यापन का उल्लेख द्रष्टव्य है, महर्षि वाग्भट्ट ने सूत्रस्थान में 19 से 30 अध्यायों को में सागर की तरह सुख स्मरणीय श्लोकों में संकलित कि है ।

*** पंचकर्म की कार्मुकता के आधार (च०सि०9/2)**

चरक संहिता में सिद्धिस्थान में पंचकर्मीय द्वितीय अध्याय में उपसंहार में लिखा है कि बु व्यक्तियों को पंचकर्म के लिये रोगियों का चयन (पसं करना चाहिये ।

1. व्यक्ति कर्म के लिये योग्य है कि नहीं।
2. इसके कौनसा कर्म हितकर है ।
3. सद्यः शोधन कर्म है या नहीं वह लक्षण सूक्ष्मत देखना चाहिये और तत्काल वमन या विरेचन और परिवार को ज्ञात कराना चाहिये ।
4. यदि रसायन कर्म करना हो तो स्नेहन द्रव्य प्र बल एवं जठराग्नि की स्थिति देखकर अ रसायन योग्य है या नहीं, वह सब सर्वेक्षण क चाहिये ।
5. मानस व्याधि युक्त पुरुष हो तो नस्य, वमन शिरोबस्ति की योजना किस ढंग से करें।
6. किस औषध का प्रयोग करे जो वीर्यवान, एवं कोथ रहित होना चाहिये । उसकी मात्र प्रमाण एवं देश-काल-बल के अनुसार नि करना चाहिये । विशेषकर पथ्या-पथ्य पाल ध्यान देना चाहिये ।

संक्षेप में तर्क-वितर्क द्वारा औषधियों का बल और काल के अनुसार करते हुए अवस्थाओं निरीक्षण करना चाहिये ताकि सम्यक् योग हो ।

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

वानस्पतिक औषधियों के उत्पादन की आवश्यकता

*प्रोफेसर बी.एन. सिंह **डॉ० ए.के. शर्मा ***डॉ० प्रदीप श्रीवास्तव

स्वतंत्रता के बाद से औषधियों की दृष्टि से देश को स्वावलम्बी बनाने की दिशा में विशेष ध्यान दिया गया है। पहले औषधियाँ अधिकांश बनी-बनाई विदेशों से आती थीं, किन्तु अब देश में भेषज की भी समुन्नति के साथ-साथ भेषज-निर्माण में बहुत प्रगति हुई है । यद्यपि भारतवर्ष अपनी वानस्पतिक समृद्धि के लिये प्रसिद्ध है । तथापि अनेक कच्ची औषधियों का आयातं विदेशों से (मुख्यत: फारस, सिंगापुर, पूर्वी द्वीप समूह, चीन एवं अफ्रीका आदि) से होता रहा है । अब आयुर्वेदिक एवं यूनानी औषधियों के मानकीकरण की ओर जागरूकता हुई है। अभीष्ट गुण-कर्म वाले योगों के निर्माण के लिये उसमें पड़ने वाले उपादानों का उत्तम एवं अभीष्ट स्वरूप का होना आवश्यक है । भारतवर्ष जैसे विस्तृत राष्ट्र की औषधीय मांगों की पूर्ति के लिये केवल नैसर्गिक प्राप्त साधनों पर ही निर्भर नहीं किया जा सकता है । दूसरे बाहरी आयात रोकने तथा निर्यात में प्रगति लाने के लिये आवश्यक हो जाता है कि औषधियों के उत्पादन की ओर सुगठित प्रयास किया जाये। इसी लक्ष्य से इस शोधपत्र में वर्तमान स्थितियों की समीक्षा के साथ औषधि प्राप्ति की विभिन्न प्रकार की समस्याओं के सुलझाने का दिग्दर्शन कराया गया है ।

1. इस वर्ग में ऐसी औषधीय वनस्पतियों का समावेश होता है, जो अनेकानेक आयुर्वेदीय एवं यूनानी योगों में महत्वपूर्ण उपादान के रूप में पड़ती है । किन्तु वास्तविक औषधियाँ चिकित्सा-व्यवसायियों एवं औषध (भेषज) निर्माताओं को उपलब्ध नहीं हो पातीं । इनमें से कतिपय पहले संदिग्ध द्रव्यों में समाविष्ट की जाती थी, किन्तु अब आधुनिक शोधकार्यों के परिणामस्वरूप इनके वास्तविक वानस्पतिक साधनों का विनिश्चय किया जा चुका है किन्तु वास्तविक वनौषधि के उपलब्ध न होने से उनके स्थान में अभी भी नकली एवं गलत औषधियों का प्रयोग किया जा रहा है। दूसरी कठिनाई इन औषधियों में यह है कि या तो यह विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्रों में उत्पन्न होती हैं अथवा अभीष्ट मात्रा में नहीं उपलब्ध होतीं ताकि इनकी सार्वदेशिक आवश्यकताओं की पूर्ति नैसर्गिक साधनों से उपलब्ध औषधि जैसे हो सके । अतएव कृषि द्वारा विस्तृत परिमाण में इनको उत्पन्न करने की आवश्यकता प्रतीत होती है । उदाहरण स्वरूप इस वर्ग की कपितय औषधि का उल्लेख नीचे किया जा रहा है -

(1) त्रायमाण - GENTIANA KURROO ROYLE, FAMILY - GENTIANACEA
(2) मूर्वा - MARSDENIA TENACISSIMA W.& A., ASCLEPIADACEAE
(3) जीवन्ती - LEPTADENIA RETICULATA W. & A., ASCLEPIADACEAE

त्रायमाण (जेन्टिआना कुर्रो) हिमालय प्रदेश में ऊँचाई पर होने वाली छोटी वनस्पति है । जिसकी जड़ एवं मूल-स्तम्भ का प्रयोग त्रायमाण नाम से होना चाहिये, किन्तु एक तो इस रूप में इसकी सिद्धि न होने से तथा पर्याप्त परिमाण में औषधि की उपलब्धि नैसर्गिक साधनों से न होने के कारण देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में त्रायमाण नाम से अनेक सर्वथा भिन्न औषधि का व्यवहार हो रहा है जो वास्तविक त्रायमाण नहीं है । इसी प्रकार मूर्वा एवं जीवन्ती का संग्रह पूर्वोक्त वास्तविक वानस्पतिक साधनों से न होकर सर्वथा भिन्न वनस्पतियों का व्यवहार उक्त नामों से किया जाता है । इनमें शास्त्रोक्त गुण कर्म नहीं पाये जाते हैं । अतएव ऐसी स्थिति में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि उक्त वनस्पतियों का उत्पादन पर्याप्त परिमाण में तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में किया जाना चाहिये ताकि सभी क्षेत्रों की फार्मेसियों एवं चिकित्सकों को यथा समय एवं यथा आवश्यक मात्रा में उपलब्ध हो सके । ठीक औषधि की प्रसिद्धि अपने वास्तविक नाम से न होने के कारण अनेक बार इसका दुरुपयोग भ्रमवश अन्य औषधियों के नाम से भी किया जाने लगा है । जो पुन: एक गलत कदम है । जैसे - (MARSDENIA TENACISSIMA W.C.A.) जिसका प्रयोग मूर्वा के नाम से किया जाना चाहिये । आजकल सफेद निशोथ के नाम से वह व्यवहृत हो रहा है । प्रयोगों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि इसमें रेचक कर्म बिल्कुल नहीं पाया जाता है ।

---

* प्राचार्य ** रीडर *** प्रवक्ता — श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेदिक कॉलेज, रोहतक

2. अतिप्राचीन काल से ही समय-समय पर बाह्यगत (Exotic) नवीन औषधियों का प्रवेश एवं प्रसार देश में होता रहा है । नई औषधियों का प्रवेश नवागन्तुकों के साथ तथा प्राकृतिक साधनों से इन दोनों ही प्रकार से होता रहा है । विशेषत: मध्यकालीन युग में भवनों के साथ अनेक नई औषधियाँ लाई गयीं, जिनका व्यवहार आज भी यूनानी एवं आयुर्वेदीय दोनों पद्धतियों में किया जाता है । उक्त नवागत औषधियों में कुछ तो ऐसी रही हैं, तो कालान्तर से यहां के वातावरण का अनुकूल कर नैसर्गिक रूप से उत्पन्न होने लगी हैं । किन्तु उनमें अनेक ऐसी भी हैं जो यहां के वातावरण में अनुकूलन नहीं कर सकी । अतएव ऐसी औषधियों की मांग की पूर्ति बाहर से विशेषतया फारस से की जाती थी किन्तु आजकल आयात सम्बन्धी कठिनाइयों एवं मूल्य में वृद्धि हो जाने से अब बाजारों में इनके स्थान में सर्वथा भिन्न द्रव्यों की बिक्री होने लगी है ।

उदाहरणस्वरूप यूनानी औषधि 'सुदाब' इस वर्ग में विशेष उल्लेखनीय है । सुदाब (रूटा ग्राबेलोन्स) नामक वनस्पति से प्राप्त होता है । औषधि में इसके पत्र (वर्ग सुदाब), बीज (तुख्म सुदाब), एवं उत्पत्त तेल आदि का व्यवहार होता है । स्वयं जात न होने से सुदाब अभीष्ट मात्रा में उपलब्ध नहीं होता और इसके स्थान में बाजारों में एक सर्वथा भिन्न वनस्पति बिकने लगी है जो गेहूँ-जौ आदि के खेतों में घास की तरह उगती है और लोग बोलचाल की भाषा में इसे तितली कहते हैं । अतएव इस प्रकार की वनस्पतियों, वन औषधियों के उत्पादन की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

3. चव्य, गजपिपली, कबावचीनी एवं अगुरू आदि । चव्य एवं गजपिप्पली (पीपेरचाबा) काष्ठीयल काण्ड एवं पत्र होते हैं । किन्तु इस देश में उक्त लता नैसर्गिक उत्पत्ति इतनी परिमाण में नहीं होती है कि औषधि की आवश्यकता की पूर्ति हेतु इनका संग्रह कि जा सके । बंगाल के कतिपय क्षेत्रों में यह लता घरों बाड़ों में लगायी जाती है । कबाबचीनी का आयात समीपवर्ती पूर्वी क्षेत्रों यथा-मलाया, पूर्वी द्वीप समूह, सि आदि से होता है । किन्तु इनके उत्पादन के उप भौगोलिक क्षेत्र इस देश में है । अगुरु के सुगन्धित का ज्ञान भारत में अतिप्राचीन काल से है । सिलहट जंगलों में इसके जंगली वृक्ष प्रचुरता से पाये जाते हैं । कि इसके संरक्षण की समुचित व्यवस्था न होने से आज में शुद्ध अगुरु दुर्लभ हो गया है ।

अतएव इस प्रकार की औषधियों के उत्पादन समुचित व्यवस्था की आवश्यकता है ।

4. निम्नलिखित औषधियों की खपत बहुत अ परिमाण में होती है तथा यह अनेकानेक प्रमुख आयु एवं यूनानी योगों में मुख्य उपादान के रूप में पड़ती इनमें कतिपय आधुनिक परीक्षण कसौटी पर भी खरे हैं जिससे इनको भारत भैषज्य कोष (इन्डियन फर्माकॉ में भी मान्यता मिल गयी है । इनमें कतिपय औषधियों आयात विदेशों से होता है । अतएव आज की राज परिस्थिति में आयात की कठिनाइयों को देखते हुये देश को इनकी प्राप्ति की दिशा से स्वावलम्बी बना लिये उनके विस्तृत उत्पादन पर ध्यान देना युक्तिसंग नहीं अपितु नितान्त आवश्यक प्रतीत होता है ।

क्र.सं.	नाम	Latin Name	Family
1.	वनफ्शा	Viola Odorata L.	Violaceae
2.	गाँज़बा	Caccinia Glanca Sair	Boraginaceae
3.	जातिफल एवं जातिपत्री	Myristica Fragrans Houtt.	Myristicaceae
4.	गाफिस	Gentiana Olivieri Girsele	Gentianaceae
5.	मधुयष्टी (मुलेठी)	Glycyrrhiza Glabra L.	Leguminosae
6.	आलूबोखारा	Prunus Communis Hud.	Rosaceae
7.	मुसब्बर	Aloe Spp.	Liliaceae

8.	त्रिबृत (निशोथ)	Ipomoea Turpethum	Convolvulaceae
9.	दारूहरिद्रा (रसोत)	Berberis aristata DC.	Beraberidaceae
10.	कृष्णजीरक	Carum Carvi L.	Umbelliferae
11.	अश्वगन्धा	Withania Somnifera Dun.	Solanaceae
12.	दारुसिता (दालचीनी)	Cinnamomum Zeylanica	Lauraceae
13.	लवंग	Eugenia Caryophyllata	Myrtaceae
14.	जटामांसी	Nardostachys jatamansi	Varbinaceae
15.	सर्पगन्धा	Rauwolfia Serpentina	Apocynaceae
16.	वत्सनाभ	Aconitum Ferox wall	Ranunculacae
17.	तगर	Valeriana Wallichii	Valerianacae
18.	पिप्पली, पिपरामूल	Piper longum L.	Piperaceae
19.	निर्जीवी (जद्वार)	Delphinium Denupatum	Ranunculaceae
20.	बहमनसुई	Salvia Haemotodea	Labiatae
21.	बहमन सफेद	Bentaurea Behen L.	Compositae
22.	कुलिंजन	Alpinia Officinarum	Zingiberaceae
23.	चिरायता	Swertia Chirata Buch.	Gentianaecae
24.	हपुषा	Hyssopus Officinalis L.	Labiatae
25.	अतरीलाल	Anjhriscus Cerefolum	Umbelliferae
26.	अफ्सन्तीन	Artemisia Absinthium L.	Compositae
27.	करफ्स	Apium Graveolens L.	Umberlliferae
28.	गुग्गुल	Commiphora mukul	Burseraceae
29.	ईसबगोल	Plantago ovata	Plantaeinaceae
30.	नागकेशर	Mesua Ferea	Guttiferae
31.	कुटकी	Picrorhiza Kurroo	Gentianaceae

5. इस वर्ग में ऐसी औषधियों का उल्लेख किया जा रहा है जिनकी विदेशी प्रजातियों का उपयोग इस देश के यूनानी चिकित्सकों द्वारा प्रचुरता से लिया जाता है । इनका आयात विदेशों (मुख्यत: फारस) से होता है । किन्तु इनकी भारतीय प्रजातियाँ भी पाई जाती हैं जिनमें समान गुण कर्म पाये जाने की सम्भावना है । इस तथ्य का विनिश्चय कर भारतीय प्रजातियों के उत्पादकों को बढ़ाने का प्रयास किया जाना चाहिये । उदाहरण के लिये ऐसी कतिपय औषधियों का उल्लेख किया जा रहा है ।

क्र.सं.	नाम औषधि	विदेशी प्रजाति	भारतीय प्रजाति
1.	अंजुबा रूमी (मूल एवं मूलत्वक)	Polygonum Bistortal	P. VIVIPARUM L.
2.	असारून	Asarum Europaeum L.	(असारूने हिन्दी पश्चिमी हिमालय, काश्मीर)

3.	बिल्ली लोटन	Melia Officinals	M.PARVIFLORA एम. परवीफ्लोरा समशीतोष्ण हिमालय, गढ़वाल से सिक्किम तथा खासिया की पहाड़ियाँ

6. आधुनिक अनुसंधानों के परिणामस्वरूप अनेक नई औषधियों में भी विशिष्ट-रोगनाशक गुण पाये जाते हैं। किन्तु प्रकृति में ऐसी वनस्पतियाँ विरलता से पाई जाती हैं इनके उत्पादन एवं प्रसार का प्रयास किया जाना चाहिये। गौरव (DALBERGIA LANCEOLARIA FAMILY - LEGUMINOSAE) नामक वनस्पति इस प्रकार की है, लोक में कहीं-कहीं इसका व्यवहार पहले से आमबात में किया जा रहा है। अनुसंधानात्मक प्रयोगों द्वारा भी इसके उक्त औषधोपयोग की पुष्टि हो गयी है किन्तु इसके स्वयंजात पौधे बिरलता से ही पाये जाते हैं। अतएव इस प्रकार की वनस्पतियों के प्रसार का भी प्रयास किया जाना चाहिए।

वनौषधियों के उत्पादन एवं प्रसार की दिशा में कतिपय सुझाव -

पूर्वोक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि देश को वनौषधियों की प्राप्ति की दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने के लिये सार्वभौम प्रयास की आवश्यकता आपेक्षित है। अतएव एतदर्थ तत्सम्बन्धी राजकीय विभागों तथा वनविभाग बोटेनिकल सर्वे आफ इन्डिया, इन्डियन कॉसिल आफ एग्रिकल्चरल, रिसर्च, कस्टम विभाग तथा औषधि निर्माणशालाओं तत्सम्बन्धी अन्य संस्थाओं के माध्यम से औषधियों की एवं पूर्ति तथा आयात निर्यात की समीक्षा करके वि आंकड़ें प्राप्त किये जाने चाहिये। उन्हीं के आधार वनौषधियों के उत्पादन की प्राथमिकता क्रय का नि करना चाहिए। एतदर्थ वनविभाग एवं एग्रीकल्चर डिपा से भी परामर्श लिया जा सकता है। जिन वनौषधियों पारिस्थिकी एवं वृद्धि की भौगोलिक स्थितियों का विनि न हुआ हो, उनका प्रायोगिक अध्ययन किया जाना चा ताकि उनके विस्तृत उत्पादन में सहायता मिल सके।

संयुक्त राष्ट्र संघ अमेरिका की भाँति एक संगठन की स्थापना होनी चाहिये जिससे विभिन्न औष की मांग की वास्तविक स्थिति तथा उसकी पूर्ति के लि उपलब्ध विभिन्न साधनों के ज्ञान से वनौषधि उत् संग्रहकर्त्ता, व्यवसायी एवं ग्राहक को अवगत कराया सके।

सड़कों के किनारे तथा इस हेतु उपलब्ध में औषधीय वृक्षों के लगाने की ओर समुचित प्रोत्साहन चाहिये।

बैद्यनाथ
हिंगवष्टाक चूर्ण
मंदाग्नि; आंव तथा पेट दर्द में उपयोगी

श्लेष्मक ज्वर (Influenza) एवं चिकित्सा

*डॉ० एस०डी० शर्मा, एम.डी. (बाल रोग), पी.एच.डी. (आयु.)
**अरशा अहमद

यह एक जनपद व्यापक ज्वर है, जो तीव्र फैलने वाला एवं संक्रामक होता है, इसे वात श्लेष्मोल्वण सन्निपात ज्वर भी कहते हैं । आम बोल-चाल की भाषा में इसे "फ्लू" कहते हैं ।

वातश्लेष्माधिक्याद् वातश्लैष्मिक उदीरितः ।
(मा०नि०)

अर्थात् वात एवं श्लेष्मा दोष की प्रधानता होने से इसे वात श्लैष्मिक ज्वर कहते हैं, यह ज्वर त्रिदोषज होता है। तीनों दोषों के लक्षणों के साथ-साथ कफज लक्षण अधिक मिलते हैं, साथ में वात दोष का भी मन्द रूप में प्रकोप होता है अर्थात् श्लेष्मोल्वणता के साथ वातानुबन्ध इस रोग का आयुर्वेद मतानुसार कारण माना गया है ।

श्लेष्म जन्य लक्षण - प्रतिश्याय, कास, गुरुता, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, सिर में भारीपन आदि ।

वातजन्य लक्षण - वेदना (सिर, कटि, पार्श्व एवं शरीर के अन्य भागों में) आधुनिक मतानुसार श्लेष्मक ज्वर को Influenza के समकक्ष रखते हैं इसे दैवी प्रभाव जनित समझ कर लोग इसे Influenza कहने लगे । इसका कारण एक विषाणु (Influenza A,B etc) माना गया है । यह रोग 5 साल से कम उम्र के बच्चों में अधिक होता है ।

संक्रमण - इस रोग का संक्रमण मुख्यतः श्वास मार्ग से होता है । रोगी के नाक, गला, मुख आदि से छींकने, खांसने के द्वारा इसका प्रसार होता है । यह रोग शरद एवं वसन्त ऋतु में अधिक होता है ।

इस रोग का संचय काल - 1-4 दिन होता है ।

रोगोत्पत्ति - इसके विषाणुओं का प्रवेश श्वास मार्ग से होने के कारण प्रथम नासिका की श्लेष्मकला से आरम्भ होकर यह विषाणु (Virus) नासा.स्रोत तथा गले की श्लेष्मिक कला में शोथ उत्पन्न करता है । रोग स्वरूप के तीव्र होने पर श्वास नलिका तथा दोनों फेफड़ों में भी शोथ पूर्वक विकृति मिलती है ।

लक्षण एवं भेद - रोग संक्रमण होने के एक दो दिन के अन्दर ही ज्वर हो जाता है, जो सर्दी के साथ अकस्मात् 102^{0} या 103^{0} F तक पहुंच जाता है । ज्वर के साथ तीव्र शिरःशूल, कटि शूल, सूखी खांसी और अरुचि लक्षण होते हैं परन्तु इस रोग का प्रधान लक्षण "बल हानि" अर्थात् कार्य करने की क्षमता का ह्रास होना होता है । साथ में मांसपेशियों में वेदना, नेत्र वेदना एवं मुख तथा नेत्र रक्तता भी मिलती है ।

इस रोग की निम्न चार अवस्थाएँ (भेद) मिलती हैं -

 * साधारण   ** श्वसनीय
 *** आन्त्रिक   **** वातिक

 * **साधारण** - इस अवस्था में रोगी में अचानक शीत व रोमहर्ष सहित तीव्र ज्वर मिलता है । इसके अतिरिक्त समस्त शरीर में वेदना एवं नाड़ी गति तीव्र मिलती है, तापमान तीसरे या पाँचवे दिन सामान्य हो जाता है ।

 ** **श्वसनीय** - उपर्युक्त लक्षणों के साथ विषमयता बढ़ने के परिणामस्वरूप फुफ्फुसों में अधिक विकृति जन्य शोथ होने से लक्षणों में अधिक वृद्धि होती है यथा -

- कास की अधिकता तथा बलगम के साथ पूय या रक्त का आना ।
- ज्वर की तीव्रता में वृद्धि (104^{0} F या अधिक)
- ज्वर की अधिकता के कारण प्रलाप तथा बेचैनी होती है ।
- श्वांस गति में अत्यधिक वृद्धि (3 गुणा तक) परन्तु नाड़ी गति में वृद्धि इस अनुपात में नहीं मिलती ।
- मुख तथा त्वचा में श्यावता का दृष्टिगोचर होना ।

 *** **आंत्रिक** - इस रोग में अरुचि या वमन प्रायः मिलता है । कभी-कभी अतिसार एवं आमाशय प्रदेश पर शूल भी मिलता है, साथ में ज्वर मिलता है । मल के साथ रक्त की प्रवृत्ति भी मिल सकती है ।

---

* रीडर एवं विभागाध्यक्ष, कौमारभृत्य विभाग ** तृतीय व्यावसायिक अध्येत्री
श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

**** **वातिक** - इस प्रकार की विकृति में वात प्रकोप के लक्षण यथा - निद्रानाश, आक्षेप, पक्षाघात, प्रलाप तथा ज्वर मिलते हैं ।

चिकित्सा

- रोगी को विश्राम कराना चाहिए तथा उसकी स्वच्छता का विशेष ध्यान रखना चाहिए । .
- इस रोग में कफ वात शामक अर्थात् रूक्ष, उष्ण एवं बल्य चिकित्सा विशेषत: करनी चाहिए ।
- दशमूल क्वाथ के साथ कफकेतु वटी या संजीवनी वटी का प्रयोग कराना चाहिए ।
- कटेरी, सोंठ, गुडूची एवं पुष्कर मूल के समभाग क्वाथ का प्रयोग कास, श्वास एवं पार्श्व शूल में हितकर होता है ।
- अभ्यंग के लिए पुराने घृत में सैंधव लवण मिलाकर प्रयोग करें ।
- रोगी को तुलसी की पत्ती एवं काली मरिच डालकर बनाई गई चाय थोड़ी-थोड़ी मात्रा में बार-बार देना चाहिए ताकि वायु का प्रकोप न हो जाए ।
- गोजिह्वादि क्वाथ या पिप्पली, पिंपरा मूल, वचा, सोंठ, अतीस, पाठा, कृष्ण जीरा, निर्गुण्डी बीज, क्वाथ का प्रयोग लाभदायक होत
- बालक के रहने के स्थान को गुग्गुल, निम्ब शुष्क लोहवान, देवदारु और जटामांसी का अंगारे पर डालकर धूपित करना चाहिए ।
- इसके अतिरिक्त वात श्लेष्मान्तक रस, त्रिभुवन रस, महालक्ष्मीविलास रस, संजीवनी वटी, भस्म, गिलोय सत्त्व आदि का प्रयोग आवश्यकता निर्धारित मात्रा में चिकित्सक की देख-रेख में चाहिए ।

आधुनिक मतानुसार लाक्षणिक चिकित्सा वेदनाहर, ज्वर हर, कफनि:सारक एवं विषाणु नामक का प्रयोग आवश्यकतानुसार वर्णित है ।

बचाव - श्लेष्मक ज्वर से बचाव के टीकाकरण का विधान बताया गया है जो अध:त्वक जाता है ।

यह टीका 1-2 वर्ष तक रोग से बचाव कर

बैद्यनाथ

जीवनकल्प

दुर्बलता, कब्जियत, अग्निमांद्य, कैल्सियम एवं खून की कमी में लाभदायक

बेहद उपयोगी है काली मिर्च

परिधि जैन

काली मिर्च मसालों का सरताज माना जाता है और सभी मसालों में यह सबसे पुरानी और महत्वपूर्ण है। काली मिर्च का पौधा गठीला, हमेशा हरा-भरा रहने वाला बेल है, जो गांठों पर ज्यादा मोटा (सूजा जैसा) होता है।

काली मिर्च का समूचा दाना सुखाकर इस्तेमाल किया जाता है। जबकि सफेद मिर्च के दानों को पानी में भिगोकर भीतरी भाग निकाल कर उपयोग किया जा सकता है। दोनों तरह की मिर्च, काली और सफेद को पीसकर इनका उपयोग किया जाता है।

रासायनिक विश्लेषण :-

काली मिर्च का रासायनिक विश्लेषण इस प्रकार है : नमी 13.2 प्रतिशत, प्रोटीन 1.5 प्रतिशत, चिकनाई 6.8 प्रतिशत, खनिज 4.4 प्रतिशत, रेशा 14.9 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 49.2 प्रतिशत, कैल्शियम 460 मिलीग्राम, आयरन 198 मिलीग्राम, फास्फोरस 16.8 मिलीग्राम, थायामीन 0.09 मिलीग्राम, रिबोफ्लाविन 0.14 मिलीग्राम, नायसिन 1.4 मिलीग्राम और कैलोरी मात्रा 304 होती है।

खाद्य गुण

इसका उपयोग प्राचीन ग्रीस और रोम के लोगों ने किया था। मध्य युग तक मिर्च को बहुत महत्व मिलने लगा। इसका उपयोग स्वादहीन भोजन को स्वादिष्ट बनाने के लिए और मांस को लम्बे समय तक खराब होने से बचाने के लिए किया जाता है। कुछ दूसरे मसालों के साथ मिलाकर दुर्गन्धित भोजन की बदबू दूर करने के लिए भी इसका उपयोग किया जाता है।

दवाओं वाले गुण

काली मिर्च उत्तेजक होती है, तीखी, खुशबू देने वाली, पाचक और शक्तिदायक होती है। काली मिर्च में चाविसिन नामक, गोंद जैसा पदार्थ होता है जिसकी वजह से इसका स्वाद तीखा होता है। यह गोंद जैसा पदार्थ इसके मध्य भाग में ज्यादा होता है।

पाचक समस्याएं

शरीर के पाचक अंगों पर काली मिर्च का उत्तेजक प्रभाव पड़ता है और इसकी वजह से मुंह में लार तथा पेट में अन्य पाचक ज्यादा मात्रा में निकलते लगते हैं। इसके सेवन से भूख बढ़ती हैं। पाचन संबंधी बीमारियों की यह बेहतरीन घरेलू दवा है, इन परेशानियों को दूर भगाने के लिए गुड़ में काली मिर्च मिलाकर देना चाहिए।

इसके अलावा, यदि किसी को बदहजमी और पेट में भारीपन की शिकायत है तो उसे एक गिलास पतली छाछ में चौथाई चाय का चम्मच काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीना चाहिए। जल्दी और ज्यादा आराम के लिए इसमें इतना ही पीसा हुआ जीरा मिलाकर पीना चाहिए।

सर्दी-जुकाम

यदि जुकाम हो और शरीर में हल्की-हल्की हरारत हो तो काली मिर्च के 6 दाने बारीक पीसकर, एक गिलास गुनगुने पानी में 6 बताशे घोलकर लेना चाहिए। बताशे घुले गर्म पानी से यह पिसी हुई काली मिर्च कुछ दिनों तक रात को लेने से जुकाम और हरारत ठीक हो जाते हैं। यदि जुकाम बहुत ज्यादा है, 200 ग्राम पिसी हुई काली मिर्च को दूध में एक चुटकी हल्दी डालकर उबालना चाहिए और 3-4 दिन तक रोज रात को लेना चाहिए।

स्मरण शक्ति के लिए

याददाश्त कमजोर हो जाने और दिमाग ठीक से काम न करने की स्थिति में एक चुटकी काली मिर्च (बारीक पिसी हुई) शहद में मिलाकर चाटने से आशातीत लाभ होता है। यह देशी दवा सुबह शाम दोनों समय लेनी चाहिए।

खांसी

गले में खराश की वजह से खांसी हो तो यह मसाला दवा के रूप में बहुत काम आता है। काली मिर्च के 20 दानो को 180 मिली पानी में उबालकर, उनका काढ़ा दिन में तीन बार पीने से इस परेशानी से आराम मिलता है।

नपुंसकता

नपुंसकता दूर करने के लिए भी यह मसाला बहुत उपयोगी है। दिन में एक बार काली मिर्च के चार दाने और चार बादाम चबाकर ऊपर से दूध पी लेने से फायदा होता

है । इससे स्नायुओं की कमजोरी दूर होगी । कामोत्तेजना जागेगी, विशेषकर एक जवान नपुंसक व्यक्ति में ।

मांसपेशियों में दर्द

त्वचा पर काली मिर्च का लेप लगाने से, त्वचा की ऊपरी नसें खुल जाती हैं और खारिश या दर्द से आराम आ जाता है । लेप बनाने के लिए चाय की एक चम्मच भर पिसी हुई काली मिर्च को तिल के तेल में तब तक गरम करना चाहिए, जब तक काली मिर्च जलकर काली न हो जाए । अब इस तेल को दर्द निवारक लेप (मरहम) की तरह लगाकर मांसपेशियों का दर्द और गठिया वायु के दर्द से आराम पाया जाता है ।

दांतों की तकलीफ

पिसी हुई काली मिर्च और साधारण नमक मिलाकर दांतों पर लगाने से बहुत फायदा होता है । इस मंजन के दैनिक इस्तेमाल से दांतों का घिसना (क्षरण) रूकता है । सांसों की बदबू और मसूड़ों से खून जाना रुकता है
दांतों में ठंडी गरम, खट्ठी-मीठी-नमकीन चीजों से
वाले दर्द, मसूड़ों और दांत के दर्द दूर होते हैं । एक चु
पिसी हुई काली मिर्च में लौंग का तेल मिलाकर दां
पड़ गए गड्ढों में भरने से दर्द दूर होता है ।

अन्य उपयोग

काली मिर्च का सबसे ज्यादा उपयोग छौंक ल
या तड़का लगाने में किया जाता है । क्योंकि काली
में स्वाद, खुशबू और तीखेपन के मिश्रण से ज्यादातर व्य
स्वादिष्ट बन जाते हैं । रसोई घर में इसका व्यापक उप
होता है ।

अचार, मुरब्बे और चटनियों में भी तथा अ
खाद्य पदार्थों को लम्बे समय तक खराब होने से बचाने
लिए भी इनका उपयोग किया जाता है ।

बैद्यनाथ

मधु

शरीर को शीतलता पहुँचाता, भूख बढ़ाता है । आँखों के लिए उपयोगी एवं कान्तिवर्द्धक

स्थानीय उपचार में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ

डा० राजकुमार द्विवेदी

स्थानीय उपचार में प्रयुक्त होने वाली औषधियों में निम्न औषधियों का विशेष महत्व है ।

1. हरिद्रा (Curcuma domestica)
2. अपामार्ग (Achyranthus aspera)
3. घृतकुमारी (Aloe barbadensis)
4. नीम (Azadirachta indica)
5. लहसुन (Allium Sativum)

1. हरिद्रा (Curcuma Domestica)

(i) ताजी हलदी का स्वरस व्रणों, नील (ब्रूसेज़), क्रीड़ों आदि के कटे स्थानों पर लगाने से तुरंत लाभ करता है ।

(ii) पिसी हुयी हल्दी तिल के तेल में मिलाकर मर्दन करने से चर्मरोगों में लाभ होता है ।

(iii) कुष्ठ रोग में इसके स्थानीय प्रयोग से घाव जल्दी भरते हैं ।

(iv) कण्डूरोग में इसके पेस्ट का लेप खुजली को मिटाता है ।

(v) हर्पीस जोस्टर जैसी असाध्य त्वचा व्याधियों में हलदी को सरसों के तेल के साथ लगाने से शीघ्र आराम मिलता है ।

2. अपामार्ग (Achyranthus Aspera)

(i) इसका चूर्ण मात्र सुंघाने से आधा शीशी (माइग्रेन) बेहोशी, मिरगी में आराम मिलता है ।

(ii) कर्णशूल में अपामार्ग क्षार तेल का प्रयोग करते हैं।

(iii) चर्म रोगों में इसके मूल को पीसकर प्रयुक्त करते हैं ।

(iv) अपामार्ग के पत्रों का स्वरस दाँत के दर्द में लाभ करता है तथा दाँत के पुरानी से पुरानी कैविटी को भरने में मदद करता है ।

(v) कुत्ते के काटे स्थान पर, सर्पदंश, वृश्चिक दंश एवं अन्य जहरीले कीड़ों के काटे स्थान पर ताजा स्वरस तुरंत लगा देने से जहर उतर जाता है ।

3. घृत कुमारी (Aloe Barbadensis)

(i) इसके गूदे को पेट पर बाँधने से पेट के अन्दर की गाँठें गल जाती हैं । कड़ा पेट मुलायम हो जाता है तथा आंतों में जमा मल बाहर निकल जाता है ।

(ii) घृत कुमारी की पुल्टिस अर्बुद, सिस्ट, सूजन, दाह तथा अधपके व्रणों में अत्यधिक लाभ करती है।

(iii) पाइल्स में इसकी लुग्दी की पुल्टिस लगायी जाती है ।

4. नीम (Azadirachta Indica)

(i) नीम की छाल की पुल्टिस कुष्ठ व त्वचा की टी. बी. में प्रयोग करते हैं ।

(ii) नीम की छाल का प्रयोग एण्टीगैंग्रीनस कीटाणु नाशक, व्रण शोधक है ।

(iii) बालों की उत्पत्ति में सहायक है ।

(iv) मलहम बनाने के लिये नीम का तेल 250 ग्राम, मोम 125 ग्राम, हरी पत्तियों का स्वरस 1 किलो ग्राम, जड़ की छाल का चूर्ण 50 ग्राम तथा पत्तों की राख 25 ग्राम को मिलाकर कढ़ाई में तैयार करते हैं । पहले तेल व पत्र स्वरस हल्की आँच पर पकाकर मोम डालते हैं फिर कढ़ाई को आँच से उतारकर उसमें नीम छाल चूर्ण तथा नीम पत्रों की राख डालकर तैयार करते हैं ।

(v) नीम का तेल, मलहम, क्वाथ, कुष्ठ रोग में शरीर पर लेपन हेतु प्रयुक्त होता है ।

(vi) अधपकी गांठ-ग्रन्थि, व्रणों में पत्तियों का भर्त्ता बनाकर लेप करने से सूजन घटती है तथा अन्दर भरा मवाद बाहर निकल जाता है ।

(v) कुष्ठ रोग में स्पर्श संज्ञानाश होने पर नीम की पुल्टिस की स्थानीय सिकाई करने से नाड़ियों में संवेदना शक्ति पुनः आ जाती है ।

5. लहसुन (Allilim Sativlim)

(i) लहसुन का तेल, लिनीमेन्ट व पुल्टिस बाह्य प्रयोग में कड़ी गाँठ को गला देता है ।

(ii) वातरोगों में व लकवे में इसका बाह्य प्रयोग लाभ करता है ।

(iii) खुजली, दाद में लहसुन के तेल का लेप व स्वरस की मालिश करते हैं ।

(iv) सर्प तथा बिच्छू के काटने पर लहसुन की ताजा कलियाँ पीसकर लगाने से जहर उतर जाता है ।

प्रभारी चिकित्साधिकारी, राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, हाथवन्त (फिरोजाबाद) उ०प्र०

A COMPARATIVE STUDY OF TRIPHALA SHODHITA SHILAJEET AND GOMUTRA SHODHITA SHILAJEET IN THE MANAGEMENT OF STHAULYA

*** Dr. Renuka Joshi** *** Dr. Jagdev** **** Dr. Anand Kumar Choudhary** ***** Prof. K. Sin**

'First impression is the last' holds true in terms of sight, speech, gestures even etiquettes. But the first to create a desired or an undesired image is the sight. Profession, priorities, temptations all make a good number of people to perform such activities as are termed *'Pradnyaparadha'* in the classics of Ayurveda. The outcome '*Sthaulay*' then affects the social, physical, mental status of the being. A number of remedies are then sought, ranging from simple conservatives like diet control, regular exercise to very controversial and not so effective GIT surgeries.

Shilajeet, consistently suggested for ma of the ailments, bears such properties a *Rasayana, Vajikarana, Medoghna, tridoshghna* e If processed with certain herbal drugs, the qualities can be imbibed in it.

In order to search for a rationale behi the selection of various methods for its shodhan a study was planned in the department of R.S. B.K.I.P.G.T. & R.A. G.A.U., Jamnagar.

PHARMACEUTICAL STUDY :

Shodhana media : Triphala Kwath (Sh.Sam.)
Gomutra

Table - 1

Medium	Volume	Shilajeet	Shodhita Shilajeet	Time	Each	Yield
Triphala Kwath	8 liters	4 kg	1.470 kg	18 days	20 hrs	36.75%
Gomutra	8 liters	4 kg	0.890 kg	14 days	20 hrs	22.25%

Allowed to dry and then powdered
500 mg bd for 30 days

CLINICAL STUDY :

Registered :	31	LAMA	:	06
TSS :	16	GSS	:	09

EFFECT OF THERAPIES :

In the present study 31 patients of medoroga (obesity) were registered. Out of which 6 patients had left the treatment at different stages. Out of the remaining 25 patients of medoroga, 1 patients were treated in Triphala shodhita Shilaje group and 9 patients were treated in Gomut shodhita Shilajeet group.

Effect of Triphala shodhita Shilajeet :

In this group total 19 patients we registered, out of which 3 patients had left th treatment while remaining 16 patients ha completed the full course of the treatment.

Table - 2 Effect of Triphala shodhita Shilajeet on subjective signs and symptoms

Symptoms	Mean scores		$\overline{X}$	%	SD	SE	t	p
	BT	AT			±	±		
Chalatva	2.25	2.13	0.12	5.55	0.34	0.08	1.46	>0.05
Kshudra shvasa	0.87	0.5	0.37	42.85	0.50	0.12	3.0	<0.01
Atikshudha	0.37	0.25	0.12	33.33	0.34	0.08	1.46	>0.05
Swedadhikya	0.56	0.31	0.25	44.44	0.44	0.11	2.23	<0.05
Daurbalya	2.0	0.62	1.38	68.75	0.05	0.12	11.0	<0.001
Gatradaurgandhya	1.37	1.06	0.31	22.72	0.47	0.11	2.61	<0.05
Angagaurava	0.81	0.44	0.37	46.15	0.50	0.12	3.0	<0.01
Alasya	2.0	0.69	1.31	65.62	0.47	0.11	10.96	<0.001
Gatrasada	0.75	0.44	0.31	41.66	0.47	0.11	2.61	<0.05
Angashaithilya	1.0	0.69	0.31	31.25	0.47	0.11	2.61	<0.05
Atipipasa	1.0	0.57	0.43	43.75	0.50	0.12	3.41	<0.01
Atinidra	0.93	0.62	0.31	33.31	0.60	0.15	2.07	>0.05
Snigdha gatra	0.93	0.75	0.18	20.00	0.40	0.10	1.86	>0.05
Sandhishoola	0.56	0.31	0.25	44.44	0.44	0.11	2.23	<0.05

---

* Final MD **** Lecturer** ***** Ex.-HOD**

Department of Rasa Shastra and Bhaishajya Kalpana, Including Drug Research, Institute for Pos Graduate Teaching and Research in Ayurved, Gujarat Ayurved University, Jamnagar

Only 5.55% relief was observed in chalatva which was statistically insignificant (P>0.05). Relief in daurbalya was 68.75% and in alasya 65.62% was observed. These were statistically highly significant (P<0.001). Relief in kshudra swasa was 42.85% in angagaurava 46.15% and in atipipasa 43.75% was observed. These all relief were statistically significant (p<0.01). Relief in swedadhikya was 44.44%, in gatradaurgandhya 22.72%, in gatrasada 41.66%, in angashaithilya 31.25% and in sandishoola 44.44% was observed. These all relief were statistically significant (P<0.05). Relief in atikshudha, atinidra and snigdhagatra were respectively 33.33%, 33.31% and 20%. These all relief were statistically insignificant (P>0.05).

Table - 3 Effect of Triphala shodhita Shilajeet on objective criteria

Symptoms	Mean scores		X	%	SD ±	SE ±	t	p
	BT	AT						
Weight in kg	78.5	75.5	3	3.82	1.26	0.31	9.48	<0.001
BMI (kg/m²)	31.65	30.48	1.17	3.79	0.46	0.11	10.31	<0.001
Circumference (in cm):								
Chest	103.31	100.62	2.18	2.11	1.32	0.33	6.59	<0.001
Abdomen	104.84	101.34	3.5	3.33	1.87	0.46	7.48	<0.001
Hip	116.25	113.25	2.43	2.09	1.10	0.27	8.79	<0.001
Mid thigh	60.37	58.33	1.84	3.05	0.99	0.24	7.40	<0.001
Mid arm	31.31	30.28	1.03	3.29	0.71	0.17	5.74	<0.001

Relief in weight was 3.82% and BMI was also decreasing upto 3.79%. These both results were statistically highly significant.

Decrease in various body circumferences i.e. chest circumference 2.11%, abdomen circumference 3.33%, hip circumference 2.09%, mid thigh circumference 3.05% and mid arm circumference 3.29% were observed. These all results were statistically highly significant (P<0.001).

Table - 4 Effect of Triphala shodhita Shilajeet on biochemical values

Biochemical values	Mean scores		X	%	SD ±	SE ±	t	p
	BT	AT						
S. Tirglyceride	134.69	120.03	14.66	10.88	31.73	7.93	1.84	>0.05
HDL cholesterol	41.69	40.17	1.51	3.58	6.65	1.66	0.91	>0.05
LDL cholesterol	119.05	125.94	-6.88	-1.57	17.53	4.38	-1.57	-
S.cholesterol	189.06	190.12	-1.06	-0.52	20.0	5.0	-0.19	-
F. Blood Sugar	98.68	96.55	2.13	2.16	8.80	2.20	0.97	>0.05
VLDL	26.93	24.00	2.93	10.88	6.34	1.58	1.84	>0.05

Above table shows that the result of biochemical values were statistically insignificant.

Effect of Gomutra shodhita Shilajeet :

In this group 12 patients were registered, out of which 3 patients had left the treatment, while remaining 9 patients have completed the treatment:

Table - 5 Effect of Gomutra shodhita Shilajeet on subjective signs and symptoms

Symptoms	Mean scores		X	%	SD ±	SE ±	t	p
	BT	AT						
Chalatva	3.33	3.11	0.22	6.66	0.44	0.14	1.51	>0.05
Kshudra shvasa	1.0	0.33	0.66	66.66	0.5	0.16	4.0	<0.01

Atikshudha	0.88	0.55	0.33	37.5	0.5	0.16	2.0	>0.05
Swedadhikya	1.22	0.55	0.66	54.54	0.5	0.16	4.0	<0.01
Daurbalya	2.11	0.55	1.55	73.68	0.52	0.17	8.85	<0.001
Gatradaurgandhya	1.33	0.89	0.44	33.33	0.52	0.17	2.52	<0.05
Angagaurava	1.33	0.45	0.88	66.66	0.33	0.11	8.00	<0.001
Alasya	2.77	0.89	1.88	68.00	0.33	0.11	17	<0.001
Gatrasada	1.88	0.66	1.22	64.70	0.44	0.14	8.31	<0.001
Angashaithilya	1.33	0.55	0.77	58.33	0.44	0.14	5.21	<0.001
Atipipasa	0.89	0.45	0.44	50.00	0.52	0.17	2.52	<0.05
Atinidra	0.88	0.55	0.33	37.50	0.50	0.16	2.00	>0.05
Snigdha gatra	1.33	1.0	0.33	25.00	0.50	0.16	2.00	>0.05
Sandhishoola	1.55	0.55	1.0	64.28	0.50	0.16	6.00	<0.001

As shown in the table, only 6.66% relief was observed in chalatva (chala sphika udara stana) which was statistically insignificant (P>0.05) Relief in daurbalya was 73.68%, in angagaurava 66.66%, in alasya 68%, in gatrasada 64.70%, and in angashaithilya 58.33% was observed. These all relief were statistically highly significant (P<0.001). Relief in kshudraswasa was 66.66% and in swedadhikya 54.54% was observed. These relief were statistically significant (P<0.01). Relief in gatradaurgandhya was 33.33% and in atipipasa 50% was observed. Both these relief were statistically significant (P<0.05). Relief in atikshudha was 37.5% in atinidra 37.5% and in snigdhagatra 25% was observed. These all relief were statistically insignificant (p>0.05). Relief in sandhishoola 64.28% was observed. This relief was statistically highly significant (P<0.001).

Table - 6 Effect of Gomutra shodhita Shilajeet on objective criteria

Objective criteria	Mean scores		X	%	SD ±	SE ±	t	p
	BT	AT						
Weight in kg	76.94	73.55	3.38	4.40	1.76	0.58	5.76	<0.001
BMI (kg/m²)	31.76	30.15	1.58	4.98	0.69	0.23	6.85	<0.001
Circumference (in cm):								
Chest	105.77	103.33	2.44	2.31	1.50	0.50	4.85	<0.01
Abdomen	106.44	101.55	4.77	4.48	3.03	1.01	4.72	<0.01
Hip	115.55	112.44	3.11	2.69	3.44	1.14	2.71	<0.05
Mid thigh	58.22	55.22	3.00	5.15	2.39	0.79	3.75	<0.01
Mid arm	31.44	30.20	1.16	3.71	0.50	0.16	7.0	<0.001

Relief in weight was 4.40% and BMI was also decreasing upto 4.98%. There both results were statistically highly significant (P<0.001). Decrease in various body circumference i.e. chest circumference 2.31%, abdomen circumference 4.48%, mid thigh circumference 5.15% were observed, these all results were statistically significant (P<0.01). Hip circumference was observed 2.69%, the result was statistically significant (P<0.05). The decrease in mid arm circumference 3.71% was observed; this result was statistically highly significant (P<0.001).

Table - 7 Effect of Gomutra shodhita Shilajeet on biochemical values

Biochemical value	Mean scores		X	%	SD ±	SE ±	t	p
	BT	AT						
S. Triglyceride	141.53	210.4	-69.06	-48.71	113.67	37.83	-1.82	>0.05
HDL-cholesterol	35.02	41.71	-6.68	-19.09	8.47	2.82	-2.36	>0.05
LDL - cholesterol	124.15	105.54	18.61	14.99	33.79	11.26	1.65	>0.05
S. cholesterol	187.44	189.33	-1.88	-1.0	20.79	6.93	-0.27	>0.05
F. Blood sugar	97.26	104.57	-7.31	-7.48	22.09	7.36	-0.99	>0.05
VLDL	28.26	42.08	-13.81	-48.86	22.73	7.57	-1.82	>0.05

Above table shows that in biochemical tests, the result was statistically insignificant.

OVERALL EFFECT OF THERAPY :

Table - 8 Overall effect of therapy

Assessment	No. of patients in group		Total	Percentge
	TSS	GSS		
Cured	0	0	0	0
Markedly improved	0	1(11.12%)	1	4
Moderately improved	02(12.50%)	04(44.44%)	06	24
Improved	14(87.50%)	04 (44.44%)	18	72
Unchanged	0	0	0	0

TSS Group : The above table shows that maximum number of patients i.e. 87.5% were improved followed by 12.5% patients who showed moderate improvement.

GSS Group : From above table it can be stated that out of 9 patients treated with Gomutra Shodhita Shilajeet 4 patients i.e. 44.44% were found improved, 4 patients i.e. 44.44% showed moderately improvement. And 11.12% of patient had markedly improvement.

OVERALL EFFECT OF THERAPY :

* The Sodhana of Shilajeet in Triphala gives more yield.
* Shilajeet Shodhana by Gomutra comparatively takes lesser time.
* Gomutra Shodhita Shilajeet Group showed better effect on majority of signs and symptoms than Triphala Shodhita Shilajeet Group.
* Although both the drugs showed higly significant result in reducing the body weight but Gomutra Shodhita Shilajeet showed better results as compared to Triphala Shodhita Shilajeet.
* Both drugs showed insignificant, result in biochemical and pathological investigations.
* Increased dose and duration and large sample is required to explore the maximum therapeutic efficacy of the drug Shilajeet.

बैद्यनाथ सितोपलादि चूर्ण
पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

ROLE OF PATHYA (WHOLESOME REGIMEN) IN MADHUMEHA (DIABETES MELLITUS

Dr. Pradeep Kumar Sachan, M.D. (Ay.) B.H.

Introduction

Charka and Sushruta Samhita, the foremost treatise on Ayurveda, hold the description of Diabetes mellitus as *Madhumeha* or *Kshoudrameha*. It is considered as one of the twenty type of *Premeha.* Various drugs are mentioned in Ayurveda and modern medical science to treat this disease, but no one is able to control satisfactorily until and unless supplemented by the *Pathya Ahara* and *Vihara* (Wholesome diet and activities). The diet and activities which do not adversely affect the body (Conglomeration or *Dohas, Dhatus* and *Srotas*) and mind are regareded as *Pathya.*

"PATHYAM PATHONAPETAM
YADHACHCHOKTAM MANASAH PRIYAM"

(Cha. Su. 25/46)

Wholesomeness also includes personal likings of the patient. Therefore wholesome diet and activities are supposed to be one which suits the personal likings of the individual, that is to say a given diet will not be affective if it is taken unwillingly by the individual. The purpose of the *Pathya* is to maintain the normal health and alleviate the disease. Its importance in any disease including Diabetes is evident from the verse of Lolimbraje-

"PATHYE SATI GADARTTASYA KIMOUSHADHA
NISHEVANAIH PATHYEASATI GADARTTASYA
KIMOUSHADHA NISHEVANAIH"

That is, if patient follows the proper Pathya of a particular disease then there is no need of any medication, on the contrary if he dose not obey the same, then there is no benefit in giving him any medicament. Again it is said that -

"PATHYESATI VIKARASYA, PRATIKAROVRITHA
BHAVET PATHYEASATI VIKARASYA,
PRATIKAROVRITHA BHAVET"

The same importance of *Pathya* is also evident from this verse -

"VINASHI BHESHAJAVYADHIR PATHYADEVA
NIVARTATE NA TU PATHYA VIHINANAMA
BHESHAJAM SHATAIRAPI"

That patient gets rid from the disease only when he takes medication and *Pathya* simultaneously, otherwise in absence of *Pathya* medicines become useless in curing the disease. Regarding these importance of *Pathya* in mind various *Pathya Ahara* and *Vihara* were described for *Madhumeha,* which can be classified as follows

CLASSIFICATION OF *PATHYA AHARA* (WHOLESOME DIET)

Group	*Pathya Ahara Dravya*	Charak	Sushruta	Vagbhatta
Shuka Dhanya Varga	Yavaka / Barley (Hordium vulgare)	+	+	+
(Corns with Bristles)	Sasthika / Shali Dhanya (Oryza sativa)	+	+	+
	Godhuma (Triticum vulgare)			
Shami Dhanya Varga (Pules)	Mudga (Phaseolus mungo)	+	+	+
	Adhaki / Arahara (Cajanus-cajan)	–	+	–
	Chanaka (Cicer arietinum)	–	+	–
	Kulatha (Dolchos biflorus)	–	+	–
	Masura (Lens culinaris)	–	+	+
Kshudra Dhanya Varga	Kodrava / kondo (Paspalum scrobiculatum)	+	+	+
	Shyamaka / Sanwa	+	+	–
	Hasti Shyamaka	+	–	–

Lecturer, Deptt. of Maulik Siddhant & Samhita, Bundelkhand Govt. Ayurvedic College & Hospital, Jhansi (U

ROLE OF PATHYA (WHOLESOME REGIMEN) IN MADHUMEHA (DIABETES MELLITUS)

Group	*Pathya Ahara Dravya*	Charak	Sushruta	Vagbhatta
Mamsa Varga (Meats)	Pratuda Mamsa eg. Kapota (Pigeon)	+	–	–
	Viskira Mamsa eg. Lava (Common Quail) Tittira (Potridge)	+	–	–
	Jangala (Mamsa) eg. Sasha (Hare)	+	+	+
Shaka Varga (Leafy vegetables)	Tanduliyaka (Amaranthus tricolor)			
	Manduka Parni (Centella asiatica)			
	Vatsadani (Tinospora cordifolia)			
	Patola Patra (Trichosanthes dioica)			
	Palankya (Spinacea oleracia)			
	Katurtikta Shaka eg. Karvellaka (Momordica charantia) Methika (Trigonella foenumgraecum) Kushmanda (Benincasa hispida)	+	+	+
Phala Varga (Fruits)	Kapitha (Feronia limonia)	–	+	+
	Jambu (Syzgium cummi)	–	–	+
	Amalki (Emblica officinalis)	+	+	+
Harita Varga	Pallandu (Allium cepa)			
	Rasona (Allium sativum)			
Sneha Varga (Oils)	Danti Taila (Balanosporum montanum)	+	+	+
	Ingudi Taila (Balanites algyptiaca)	+	+	+
	Sarshapa Taila (Brassica compestris)	+	+	+
	Atasi Taila (Linum usitattissimum)	+	+	+
Ahara Yogin Varga (Adjuvents of food)	Haridra (Curcuma longa)	+	+	+
	Maricha (Piper longum)	–	+	–
	Hingu (Ferula foetida)	–	+	–
	Saindhava	–	+	–
Madhya Varga	Purana Madhya	+	–	+
Ikshu Varga	Madhu (Honey)	+	+	+
Mutra varga	Gomutra	–	+	–
Paniya Varga	Sarodaka	+	–	–
	Kushodaka	+	–	–
	Triphalodaka	+	–	–
	Madhodaka	+	+	–

Charaka has divided the patient of *Prameha* into two categories Viz., *Sthula* (Obese) and *Kri* (Asthenic). Both of these groups have different *Pathya* as follows.

STHULA PRAMEHI	*KRISHA PRAMEHI*
Anna Varga	
* Adhaki (Cajanus cajan) * Chanaka (Cicer arieticum) * Yavaka (Hordeum vulgare) * Kulatha (Dolichos biflorus) * Mudga (Phaseolus mungo)	Mudga (Phaseolus mungo) Masura (Lens culinaris) Purana Shali (Oryza sativa) Godhuma (Triticum vulgare) Shamaka (Prosopis cineraria)
Shaka Varga	
* Karvellaka (Momordica charantia) * Methika (Trigonella foenum-graecum) * Patola (Trichosanthes dioica)	Karvellaka (Momordica charantia)
Phala Varga	
* Amalki (Emblica officinalis) * Jambu (Syzygium cumini) * Tinduka (Diospyros peregrina) * Udumbara (Ficus glomerata)	Amalki (Emblica officinalis) Kharjura (Phoenix dactylifera) Kadali (Musa paradisiaca)
Ahara Yogin	
* Methika Beeja (Trigonella foenum-graecum) * Haridra (Curcuma longa) * Maricha (Piper nigrum)	Methika Beeja (Trigonella Foenum-graecu Haridra (Curcuma longa) Hingu (Ferula foetida)
Kritanna Varga	
* Yava Sattu * Yava Vatya * Yava Odana	Godhuma Sattu Yava Vatya Shuka-Shali Odana Godhuma Apupa

Major *Pathya Dravya* and their probable role in Diabetes

Out of various *Pathya Dravya* mentioned in the table *Yava* (Barley/H. vulgare), *Amalki* (E. officinalis), *Mudga* (P. mungo), *Methika, Jambu, Karvellaka* etc. were considered to be the important one. In the compendia major attention has been paid to the Barley and its preparations. Charaka said that, if a man uses habitually roasted Barley (*Bhrishta Yava*), and dry baked Barley powder (*Sattu)*, he does not suffer from *Prameha* (Ch.Su. 6/48). Thus Barley is useful in preventing the Diabetes. According to Ayurveda, *Yava* contains the physiological properties like *Lekhan* and *Balya* by which it is able to prevent and control the Diabetes. Due to its *Lekhana* property it may opens the channels (*Srotas)* for entrance of glucose inside the cells and thus facilitates the proper metabolism of glucose. *Lekhan* property also reduces the in obese person, which is the predisposing fa for Diabetes. Its *Balya* property provides stre to the body to cope against the secondary aff of the disease. Its *Ruksha* and *Laghu* prop *Katu, Vipaka* and *Kaphaghna Dosha Prab* reduces the excess of *Medodhatu* (Fat a glycerides), one of the predisposing factor Diabetes. All these action makes the Barley major wholesome diet for Diabetics.

Regular use of *Mudga* and *Amalki* prevents the occurrence of the Diabetes. *Am* has been shown to be a potent scavenger of radicals thus protects the body from develo auto-immune Diabetes. This property in *Ama* due to the presence of high level of super dimutase. *Amalki* is also a rejuvenator *(Rasa* by this property it may enhance ce regeneration in senile degenerated pancreatic cells. Many of the wholesome drugs like *Karvellaka* (M. charantia), *Methika* (Trigonella foenum-graecum), seeds and fruits of *Jambu* (Syzygium cumini), etc. augment the hypoglycemic action of certain anti diabetic medicines. According to the Indian journal of medical reserach (1990) the oral administration of leaf juice of M. charantia reduces the blood sugar level due to its active principle Pyaretorika. Also charantin, a mixture of equal parts of B-sitosterol, B-D glucoside and 5,25-stigmadian 2B-ol, is isolated from this plant which has potent hypoglycaemic activity. *Palandu* (Allium cepa) and *Rasona* (Allium sativum) are other *Pathya* containing antihyperglycaemic agents S-methyl cysteine sulphoxide and S-Allyl cysteine sulphoxide respectively. *Shaka varga* (Leafy vegetables) contains mainly fibres which increases satiety and reduces serum lipids and blood glucose level. Honey is not a prohibited substance for Diabetes, due to its *Vilekhan* property. It also pacifies *Kapha*, a momentous factor in pathogenesis of Diabetes. Its antigenic property may useful in Auto immune Diabetes. Honey purifies wounds by preventing putrefaction (*Vrana sodhana*) and promotes healing of wounds (*Vrana Ropana*) and thus good for Diabetic ulcer cases.

PATHYA VIHARA (wholesome activities) and their role in Diabetes

Great emphasis was laid on walking exercise and doing physical like digging of ponds, breaking of stones etc. for Diabetics in ancient treatise. Many of the yogic exercises were also proved better role in the Diabetes, amongst them few important ones are *Uttanapadasama, Naukasana, Paschimottanasama, Mayurasana, Vajrasana, Savasana* etc. It is found that excessive food intake, especially foods with a high fat contents, very little physical exercise, obesity may results in decline in pancreatic functions (Diamet 37-1994;p.p.6). These *Asanas* improve liver function, increase blood circulation to abdominal organs and stimulate pancreas. Yogic exercises also reduce stress and thus useful in stress induced diabetes.

Even in western system of medicine it is very clearly mentioned that exercise plays an important role in carbohydrates metabolism and thus reducing the blood sugar level. It is found by the scientist Dole that, obese persons have increased free fatty acids in the blood, these free fatty acids prevent the entrance of sugar inside the muscles and thus may lead to Diabetes. This free fatty acid level may be reduced by the exercise. Exercise probably control the blood sugar level by the following mechanism.

Exercise ⟶ Reduction of *Medodhatu* ⟶ Clearance of *Medovaha srotasa* ⟶ Facilitates the entrance of glucose and insulin inside the cells ⟶ Proper metabolism of glucose ⟶ Control of Blood sugar level and thus Diabeters.

CONCLUSION

It is concluded that *Pathya* -

1. May prevent the occurrence of Diabetes.
2. May check the progression of Diabetes.
3. May augment the hypoglycemic action of drug therapy.
4. May prevent or check the progression of complications of Diabetes.
5. May itself reduce blood sugar level in Diabetics.

बैद्यनाथ
अग्निमुख चूर्ण
हाजमा को बढ़ाने वाला उपयोगी दवा

BILWA - Chemical Constituents and Medicinal Properties

* Dr. Laxmi N. Gupta ** Dr. C.B. Jha ***Dr. R.K. Sharma

Aegle marmelos correa, commonly known as bael (or bel), belonging to the family Rutaceae, is a medium sized, slender and aromatic tree. It is found widely throughout the Indian peninsula and in Sri Lanka, Burma and most of the South East Asian countries. It is extensively planted near Hindu temples for its leaves and woods which are generally used for worship and is one of the most important plants used in the indigenous system of medicine.

The synonyms of Bilwa itself carry certain ideas about its morphology, habitat and properties such as thormy *Kantaki* tree growing in hilly areas *Sailusa*. Branches are nodular *Granthila* and leaves are trifoliate *Tripatra* and aromatic *Gandhapatra* offered to Lord Shiva *Sivesta*. Fruits are globose *Kucama*, large *Mahaphala* like kapittha *Mahakapittha*, aromatic *Hridyagandha*, with hard rind *Karkata* and pulp with resinous odour *Gandhagarbha, Sriphala, Srigandhaphala*.

The plant has been evidently used in the Ayurvedic system of medicines from time immemorial. A large number of compounds, viz., alkaloids, sterols and essential oils are isolated from different parts of the plant. Here we broadly describe the chemical constituents and medicinal properties of the plant.

Chemical Constituents :

The ripe fruits are woody, large, spherical, upto 20 cm in diameter, oblong or pear-shaped, with more or less smooth or slightly tuberculate surface. The peripheral part just within the rind is fleshy and thick, and has a pleasant resinous odour. The walls separating the chambers have a light yellow tint which becomes yellowish brown on exposure, and hava a warm or slightly acrid bitter taste. The chambers are full of amber or honey-coloured vicious, very sticky or glutinous, translucent pulp which is slightly sweet and feebly aromatic.

The first preliminary chemical examination on *Aegle marmelos* was carried out by Dikshit and Dutt (J. Indian Chemical Society 1932, 9, 271) who isolated a compound marmelosin, $C_{13}H_{12}O_3$ m.p. 103, from the fruit . The latter workers prove be a know furanocoumarin, imperatorin. composition of fruit is mentioned in the follo table :

S.No.	Contents	Composition (per100 g
A	Moisture	61.5 g
B	Protein	1.8 g
C	Fat	0.3 g
D	Carbohydrates	31.8 g
E	Fibre	2.9 g
F	Calcium	85.0 mg
G	Phosphorus	50.0 mg
H	Iron	0.6 mg
I	Thiamine	0.13 mg
J	Riboflavin	1.2 mg
K	Niacin	1.1 mg
L	Oxalic Acid	18.7 mg
M	Vit. C	8.0 mg
N	Carotene	55 µg
O	Calorific value	137 Kca

(Belavady & Balasubramanian, 1959, Sinha, R Chakraborty, 1976)

The fruit also contains a numbe coumarins, alkaloids, sterols, essential oils, imperatorain, marmelosin identical with impera and β – sitosterol. It contains marmelide (C O_4 m.p. 110ºC, 1.1 dimethylallyl ether), an is of imperatorin, which exhibits tyrosin accelerating and tryptophan pyrrolase-inhi effect in Bufo melanosticus. The presen psoralen (m.p. 162ºC) a powerful germin inhibitor and tannic acid is also reported. The and rind yield, respectively, 7-9 and 18-22% ta The fruit yield 2% of dried, water-soluble gu hydrolysis, the gum contents and their compo are mentioned in the following table :

S.No.	Name of the contents	Compositio
A	Galactose	20.4 %
B	Arabinose	10.7 %
C	D-galacturonic acid	25.2 %
D	Rhamnose	In traces

(Parikh et al.

---

* M.D. (Ay.) Dept. of Rasa Shastra, I.M.S., B.H.U., Varanasi
** Prof. & Head, Dept. of Rasa Shastra, I.M.S., BHU, Varanasi
*** Prof. & Head, Dept. of Physiology, I.M.S., B.H.U., Varanasi

The seeds yield an oil (34.4% on dry basis) having the characteristics shown in the following table :

S.No.	Characteristics	Value
A	Sp gravity 30^0	0.918
B	$n_D 40^0$	1.4647
C	Acid value	0.8
D	Saponification value	193.6
E	Iodine value	108.0
F	Thiocynogen value	70.4
G	Unsaponification matter	1.6%

(Eckey; 553; Hilditch & Williams, 268)

The composition of fatty acid found in the oil of the seed is mentioned in the following table:

S.No.	Name of the Fatty acid	Composition
A	Palmitic acid	16.6%
B	Stearic acid	8.8%
C	Oleic acid	30.5%
D	Linoleic acid	36%
E	Linolenic acid	8.1%

(Eckey, 553; Hilditch & Williams, 268)

The gummy substance surrounding the seeds serves as a good adhesive and is added to water paints to improve strength and brilliancy, It is move abundant in young fruits. The stem also contains a gum similar to gum Arabic. The yellow dye is extracted from the rind of unripe fruits (Parikh et al, 1958)

From the leaves of the plants Chatterjee & Bose (1952) isolated aegelin along with skimmianine. The sterol from the leaves, γ - sitosterol, was isolated (Chakravarti, R.N. & Dasgupta, 1955). Marmine isolated from the young bark, root and fruit pericarp (Karawya, Mirhom, Y.1980). Several other compounds, viz. umbelliferone, skimmianine and β - sitosterol isolated from the stem bark, (Chatterjee, A & Bhattacharya, A. 1959) dictamine, pyroligneous acid, β - sitosterol from the heart wood (Chatterjee, A. & Roy, S.K. 1959) and auraptene, umbellifroene, lupeol & skimmianine from the root. From the leaves the new alkaloids, O-isopentenyl halfordinol, 1-Phenyl-7-hydroxytetrahydroquinazoline-4-one, N-2-ethoxy-2(4-methoxy phenyl) ethyl cinnamide, N-2-methoxy-2(4-3,3 dimethylallyloxy) phenyl] ethyl cinnamide, N-2-methoxy-2-(4-mthoxy phenyl) ethyl cinnamide, N-2 [4-(3,3- dimethylallyloxy) phenyl] ethyl cinnamide, N-4-methoxysteryl cinnamide, N-2-hydroxy-2- (4-hydroxyphenyl) ethyl cinnamide were isolated by several workers. (Govindchari, Premila, 1983; Manadhar, Shoeb, A., Kapil, 1978; Chattrejee, A., Das, B. C. 1967).

Recent investigation on heart wood and stem bark, several known coumarins, viz. umbelliferone, xanthotoxin, imperatorin and auraptem from the stem bark were isolated (Patra & Ghose 1979, Karawya, M.S. Shehata, 1980). Xanthotoxin, 6,-7-dimethoxycoumarin, scopoletin, umbelliferone and 6, 7-epoxyauraptene isolated from the root (Shoeb, A. Kapil, R.S., 1973; Bhattacharya, P. et al 1989).

Imperatorin, alloimperatorin, alloimperatorin methylether, xanthotoxol, scoparone, scopoletin, umbelliferone, skimmin and psoralen from the fruit; (Rattan, Sharma et al 1980; 1982; Sinha, Roy 1976) and umbelliferone, xanthotoxol, scoparone, xanthotoxin, isoimperatorin, isopimpinellin, bergapten, osthol and auraptin from the fruit pericarp have been reported by several workers (Reisch, J., Hussain; 1985).

Two new aromatic compounds, 1, 5-dihydroxy-6-methoxy-2-methyl anthraquinone (Nema, D. & Srivastva, S.K., 1991) and 2-(2-hydroxy-4-methoxyphenyl)vinyl acetate (Jain, A. K. & Srivastva S.K., 1991) have been isolated from the stem bark & heart wood respectively.

Rutin, flavan-3-ols, anthrocyanins, flavone glycosides and tannins have been reported from the leaves (Sharma, B.R., Rattan, R.K. & Sharma P.; 1980, Bajaj, K.L. & Bhatia, I.S. 1975).

Endogenous gibberellins A_1, A_3 and A_9 were isolated from the developing fruits (Ghose, A.K., Nagar & Sircar, 1985).

The fruit with excellant flavour contained a large quantity of an isomeric compound of 3,7-dimethyl-1, 5,7-octatrien-3-ol (Macleod. A.J. & Pieris 1981; Tiktomo, Shimono, Kobayashi 1982.)

The carbohydrates of the bael gum, seed and the cambium layer of the bael plant have been thoroughly investigated. 3-0 – β – D – Galactopyransoyl – L – arabinose, a major product of partial hydrolysis of bael gum (Roy, A. Mukherjee, A.K. & Rao; 1975). B – D – Galactopyranosyl - (1 → 2)- [B – D - Galactopyranosyl - (1-4)]- Dgalactose & β - D Galactopyranosyl – (1 → 4)- β - D - Galactopyranosyl (1-4)-D- galactose were isolated from the partial acid hydrosate of the cambium polysaccharides of bael (Basak, R.K. & Mukherjee, A.K. 1982.)

Medicinal Properties :

Bilwa (*Aegle marments* Corr.) is one of the most important plants used in the Ayurvedic system of medicine. There are enumerable references of its uses in the traditional medicine. Almost all its parts are used by the Ayurvedic practitioners but the greatest medicinal value is ascribed to its furits. The unripe fruit of Bilwa has snigdha and teekshna guna and ushna virya. It improves the appetite and pacifies Kapha, Vata dosha, whereas the ripe fruit of Bilwa is not easily digestible, vitiates doshas and expels out apana vayu with foul smell (C.Su. 27/138).

The ripe fruit is aromatic, cooling, alternative, laxative and nutritive. It is used as astringent and febrifuge and acts as a tonic for heart and brain. It is also used for piles (Kirtikar, K.R. and Basu, B.D., 1980).

When taken fresh, it is valuable in habitual constipation, chronic dysentery and dyspepsia. It also relieves flatulent colic in patients suffering from a condition of chronic gastrointestinal catarrh. The astringent rind of the ripe fruit is employed in acute dysentery. Powder of the dried ripe pulp is used as a febrifuge, anti-scorbutic, nauseant, stimulant and antipyretic. Unripe fruit is astringent, digestive, stomachic and demulcent. It is prescribed in diarrhoea and dysentery, pr effectual in chronic cases (Nadkarni, K.M. 1

Unripe fruit showed activity ag Ranikhet disease virus and intestinal para such as *Ascaris lumbricoides, Entam histolytica* and *Girardia* sp. (Dhar, M.L. et al, 1

The leaves are astringent, diges laxative, diuretic and febrifuge. The fresh ju the leaves is used in jaundice and expresse in ophthalmia and other eye affections (Kirtik R. and Basu, B.D., 1980).

The aqueous and alcoholic extracts leaves are reported to possess cardiotonic like digitalis, on amphibian and mammalian h Both these extracts stimulate the ventric dog's heart, as seen from the ECG (Harave 1968).

The fresh leaves extract reduces period of convalescence in patients suffering cholera or choleric diarrhoea. It is also a against *E.coli* and *Micrococcus pyogen aureus* (Wealth of India: Raw materials, CSIR Delhi, 1985, vol. 1A, revised, p. 85).

The flowers are useful in dysente its water is reported to be aledipharmic (K K.R. and Basu, B.D., 1980).

The stem bark and root are emplo the form of decoction in the cure of inter fever, hypochondriasis, palpitation of diarrhoea, gastric irritability and infantile (Nadkarni, K.M. 1954).

The effect of methanolic extract bark on spontaneous beating of cultured myocardial cells has recently been examine extract at a concentration of 100 µg/ml in the beating rate by approximately 50% (Ka N. et al, 1991).

The medicated oil (Bilwa taila) pr with goat's milk and fruit of Bilwa is bene *Badhirya* (deafness) and is also used in th of Karnapurna (Cakradutta, Karnaroga C 29).

EYE Banking

Dr. Haramohan Moharana,M.S.(Ay.) Shalakya, I.M.S., B.H.U.

Eye bank is an organisation (Govt. or private) which deals with collection, storage and use of donor eye for the purpose of *corneal trasplantation. Filatove* of Ukraine is considered to be "*Father of eye banking*". He first of all suggested storage of the eye ball in a moist chamber.

The first eye bank- "The eye bank for sight restoration" was established in New York by Dr. R. Townley Paton, a corneal surgeon. He obtained the eye tissue by going to sing sing Penitentiary, where some prisoners was executed. There he sought pernission to use the eye for his patients with cornel blindness.

In India, the first eye bank was established in 1948, at the Regional Institute of ophthalmology Egmore, Chennai. The Eye Bank Association of India (EBAI) was formed in the year 1989. At present there are more than 200 eye banks in India, however, many of them are still quite rudimentary or even not functioning properly.

Functions of an eye bank :

The following functions are performed by Eye Bank :

- Collection of donor material .
- Processing and storage of donor eyes.
- Distribution and utilisation of the material.

Role of eye bank in eye donation :

- Eye bank provides eye pledge card to voluntary eye donors.
- On receiving the pledge card eye bank provides a pocket donor card to the volunter.
- The volunteer has to carry this donor card in his diary/pocket.

The instructions given by eye bank personnel to family members or relations of volunteer are as follows:-

- In case voluntary eye donor dies, inform immediately to the nearest eye bank as early as possible.
- Switch off fans, Switch on air conditioner it available.
- Co-operate eye bank personnel when they come to remove eyes.
- Eye lid should be closed immediately after death.
- Ice packs may be put on the closed eye lids.
- Raise head with a pillow.

The role of eye banks in collection of eyes is as follows:

- Eye collections are to be performed as soon as possible after death preferably within 6-8 hours of death.
- If donor card not available then consent form should be obtained from family member or relatives.
- A proper private place is secured for the procedure. Never work in an open hospital ward exposed to public.
- Prior to removal of eyes, a blood sample is collected to check for HIV, Hepatitis-B etc.
- Removal of eyes is done carefully and the eyes are closed skillfully without causing any disfigurement.
- Eyes after enucleation are kept in collection bottles with preservaties.
- Refrigerate the eyes as soon as possible at 4 degree centigrade and send it immediately to eye bank. Never freeze the collection bottles.

Ethics For Eye Banks :-

1. No eye should not be enucleated during life.
2. Eye tissue should be neither be bought nor sold.
3. Eye tissue should be distributed without discrimination based on caste, creed, colour or nationality.
4. The identity of donor is not to be disclosed to the recipient.
5. The identity of the recipient should not be disclosed to donor relatives.
6. Eye banks should maintain waiting lists according to priority of needs.
7. The Eye tissue (cornea) should be distributed only to qualified ophthalmologist on request.

Lecturer - Shalakya, Desh Bhagat Ayurvedic College, Mandi - Govindgarh

Evaluation of effect of Yakritpliharilauha in viral Hepatitis A

*Dr. Umesh Shukla * Dr. Charu Bansal * Dr. Anil Nagle

Introduction

Hepatitis is a condition where ordinarily hepatic pathogenic processes are seen some times reversible and occasionally in irreversible manner. The viral hepatitis is one among them which affects commonly with high incidence. Despite various preventive measures including vaccination have been taken, the incidence has not been substantially reduced. Viruses identified so far are A,B,C,E & F. Among these most prevalent is the hepatitis A. Though it is considered to be self limiting if appropriate measures not taken immediately, diseases may take months for its recovery.

In Ayurveda Jaundice symptoms are described under the broad heading Kamala which is characterized by yellow greenish discoloration of eye, skin, nails, face and yellow reddish discoloration of urine and stool. Other symptoms related to liver dysfunction exhibited are indigestion, weakness, fever, anorexia, vomiting and weight loss (C.ch.16). Ayurvedic drugs are considered holistic in use and in restoration of normal body physiology by alleviating the pathogenic process.

Treatment principles of Kamala as mentioned in the classics are mainly directed towards the elimination of Pitta out of the body, by means of virechana (C.ch.16). Another form of Kamala Rudhhpath Kamala is believed to be due to obstruction of path by kapha and at this stage surgical interventions are required to get optimum result. However it also can be achieved by Institutions of kapha and Pitta Shamak treatment measure (C.ch.16). Thus it would be appropriate to apply the treatment plan of Kamala on the cases of Hepatitis A. Though in Ayurvedic classics and other related literature, a number of drug compound including herbal and herbomineral have been suggested with high emphasis in the treatment of kamala, in the present clinical trial, the herbomineral Compound 'Yakritpliharilohа' was selected for its use in the patients of viral Hepatitis A, with a view to compare its efficacy with already approved drug Bhumayamalki (phylanthus ni

Material and method -

30 patients of Kamala having featu similar to viral Hepatitis A were selec irrespective of age, sex, caste religion and w divided into two groups namely group A and gr B. The patients in group A were subjected for drug Yakritpliharilohа in the dose of 125 mg w the lukewarm water and Bhumyamalki swaras the dose of 10 ml twice a day for seven days a after evaluation of the therapy further continua of the treatment was made for next two wee Group B patients were kept as controlled gr and were administered with only Phalatrika Kwath Ghanvati in the dose of 250 mg thrice day along with Bhumyamalki Swaras 10 ml B the same manner up to the satisfactory suppress of symptomatology. All the patients of both groups were advised for consumption of bo water and to avoid high spicy and fatty diet. Patie were also advised for complete bed rest.

Criteria for Diagnosis :-

1. The symptoms of the patients were reco on the basis of symptomatology of Kam and viral Hepatitis A.
2. All the patients were investigated for se bilirubin, SGOT, SGPT, tests.
3. Hematology test CBP, Hb, ESR were a investigated.
4. Hbsag test was opted to exclude the case Hepatitis B.
5. USG done wherever obstructive or se hepatic pathology was suspected and s cases were excluded.

Criteria for Assessment :-

Main symptoms were graded as follows :-

- (A) Loss of Appetite :-
  - (1) Complete loss of Appetite
  - (2) Moderate loss of Appetite
  - (3) Disturbed Appetite
  - (4) Normal Appetite
- (B) Anorexia :-
  - (1) Severe anorexia
  - (2) Moderate anorexia

---

* Lecturers of Pt. K.L.S. Govt. Ayurvedic College, Bhopal

(3) Mild anorexia - 01
(4) No anorexia - 00

(C) Vomiting :-
(1) Frequency of vomiting more then 05 - 03
(2) Frequency of vomiting more than 02 and less than 05 - 02
(3) Occasional vomiting - 01
(4) No vomiting - 00

About the drugs :-

The constituent of Yakritplihari Lauha are Sudha Parad, Sudha Gandhka, Lohabhasma, Abhark Bhasma, Sudha Manasila, Haridra (curcuma longa), Sudha Jaipal (croton tiglium), Sudha Tannkan, Sudha Shilajeet.

Bhawana Drugs :- Danthi (Buliosper montanum), Nishotha (Operculina turpethum), Chitraka (plumbago zeylanic), Nirgundi (vitex negando), Adrak, (zingiber officinale), Marrich (Piper nigrum), Pippali (piper longum), Bhangra (Elipta alba).

Observation result and Discussion :-

Among the 30 patients treated in this series Group A and Group B having 15 in each maximum belong to age range of 15-20 years (46.66%), were male (70%) having middle class socio. economic status (56.66%) and Hindu (76.66%) maximum patient (60%) had consumption of vegetarian diet and belonging to student community (63.33%) Table No. 7 shows the Patient registered under this study had typical symptoms and sign of kamala with reference to Hepatitis A. Among the main symptoms loss of Appetite was reported in all the patients of both the Group followed by fever (83.35%) anorexia (76.66%) vomiting (76%) and weakness (70%). On clinical examination all the patients in this series had mild to severe impairment in liver function e.g. S. Bilirubin, SGOT, SGPT.

Table 1: Age wise Distribution of patients of KAMALA

Sl. No.	Age in Years	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	15-20	8	6	14	46.66
2.	21-25	3	4	7	23.33
3.	26-30	1	2	3	10
4.	31-35	2	1	3	10
5.	36-40	1	2	3	10

Table 2 : Sex wise Distribution of patients of KAMALA

Sl. No.	Sex	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	Male	10	11	21	70
2.	Female	5	4	9	30

Table 3: Socio Economic status of 30 patients

Sl. No.	Status	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	Upper class	1	1	2	6.6
2.	Upper class	3	2	5	16.66
3.	Middle	9	8	17	56.66
4.	Lower	2	4	6	20

Table 4 : Distribution of patients by Religion

Sl. No.	Religions	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	Hindu	13	10	23	76.66
2.	Muslim	0	2	2	6.66
3.	Christian	1	1	2	6.66
4.	Others	1	2	3	10

Table 5 : Distribution of patients on basis of Diet

Sl. No.	Diet	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	Veg	8	10	18	60
2.	Mix	7	5	12	40

Table 6 : Occupational status of 30 patietns of KAMALA

Sl. No.	Occupational	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	Students	9	10	19	63.33
2.	Service class	2	3	5	16.66
3.	House wife	2	1	3	10
4.	Others	2	1	3	10

Table 7 : Cardinal symptoms by distribution

Sl. No.	Symptoms	No. of Pt.in Group A	No. of Pt.in Group B	Total Patients	
				No.	%
1.	Fever	13	12	25	83.33
2.	Loss of appetite	15	15	30	100
3.	Anorexia	12	11	23	76.66
4.	Vomiting	14	7	21	70
5.	Weakness	12	9	21	70

Effect of Therapy :-

Table No. 8 : Effect of Therapies on the mean score of different symptoms of Kamala

	Group A				Group B			
Symptom	Initial score	End of I weak	End of II weak	End of III weak	Initial score	End of I weak	End of II weak	End of III weak
Weakness	2.33	1.8 ± 0.516**	0.8± 0.915**	.533± 0.676**** 6*** 0.8± 0.352***	2.466	1.2± 0.457***	0.467± 0.535***	0.2± 0.703
Vomiting	2.266	1.8 ± 0.518***	0 ± 456***	0.333± 0.74	2.266	1.2 ± 0.703***	0-466 ± 0.66	0.133 0.64
Anorexia	2.466	1.866 ± 0.632	1.133 ± 1.25**	3	2.6	2.0 ± 0.51***	1.4 ± 0.775	0.866 ± 0.70
Loss of Appetite	2.73	1.466 ± 0.799	0.666 ± 743***	0.133 ± 0.51	2.53	1.66 ± 516**	1.26 ± 0.457	0.533 0.535
Fever	100.97	98.99 ± 0.81	98.85 ± 0.92**	98.92 ± 0.69	101.7 ± 0.82	100.97 ±0.82**	100.07 ± 0.89*	98.4 ± 0.8

*** P<0.001 ** P<0.01 * P<0.5 Paired 't' Test.

Table No. 8 : Effect of Therapies on the mean score of different symptoms of Kamala

	Group A				Group B			
Investigations	Initial score	End of I weak	End of II weak	End of III weak	Initial score	End of I weak	End of II weak	End of III weak
S.Bilirubin	8.14	4.48 ± 1.67***	2.72 ± 2.5**	1.83 ± 2.54***	6.4	5.76 ± 1.89	4.58 ± 1.83**	3.59 1.59
SGOT	1292.13	785.33 ± 447.77***	291.53 ± ±625.5***	66.33 ± 691.6***	895.6	874.33 ± 361.23*	427.8 ± 324.25***	267.4 382.7
SGPT	409.53	230.2 ± 163.53***	137.93 ± 197.38**	57.73 ± 207.8***	354	244.6 ± 76.78***	166.4 ± 86.79***	105. 132.6
Hapatic Enlargement	2.466	1.866 ± 0.63***	1.33 ± 1.25 ***	0.333 ± 0.74***	2.6	2.0 ± 0.51*	1.4 ± 0.775*	0.666 0.70

*** P<0.001 ** P<0.01 * P<0.5 Paired 't' Test

As mentioned earlier Group A patients were administered Yakrit Pliharilauhs with 125 mg tablet and Bhumyamalki Swaras in the dose of 10 ml 3 times a day. In Group B patients were treated with Phaltrikadhi kwath Ghanwati 250 mg 3 times a day along with the Bhumyamalki Swaras in the same dose. The therapy was continued to three weeks. Weekly assessment was made in both the groups and analyzed statistically applying paired 't' test. All the patients were advised for low fat diet, and plenty of oral glucose consumption and for bed rest.

Table No. 8 shows that at the end of third week treatment in both the groups reduction in initial mean score of main symptoms like loss of appetite, anorexia, vomiting etc, was significantly observed. It is, however, interesting to note that in Group A improvement was recorded within first week towards higher side as compared to Group B. In various biochemical investigations viz serum Bilirubin, SGOT, SGPT. Results were analyzed and presumpted in Table No. 9. As evident from the table the initial mean score of S.Bilirubin was 8.14 and within one week of the Gruop A therapy it was brought down to 4.488. Where as in second and third week in Group B statistically significant improvement in the reading of Serum Bilirubin was observed. Almost similar observations were noted in the improvement of SGOT and SGPT labels.

Kamala is considered to be a disease of Pitta for which Virechana has been the highly recommended treatment (Charak Chikitsa - 16). Yakrit Pliharilauha the test drug contains various Deepana Pachana and Virechana drugs especially the Croton tiglium which has been excepted as a drastic purgative drugs. And probably it was responsible for highly significant improvement in Group A patients within first week. Bhumyamalki Swaras and Phaltrikadhi kwath Ghanwati are known drug and widely used for the treatment of Kamala. In this study also both the drugs were further approved as liver corrective drugs. However the superiorrity of Yakrit Pliharilauha over these two is evident.

Conclusion :-

At the end of this study we humbly feel that virechana therapy as recommended in classics has strong clinical base for its appropriate use in the cases of viral hepatitis A. We do recommend for a multicentric clinical trial in hepatitis B cases. Further safety profile needs to assess through well planned experimental study.

बैद्यनाथ

चन्द्रप्रभा बटी

यह लौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म एवं शिलाजीत युक्त होने के कारण एल्ब्यूमिन आदि सभी प्रकार के विकारों को दूर करती है। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह समान उपयोगी है। धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और सब प्रकार के प्रमेह की निश्चित दवा है, श्वेत प्रदर में लाभदायक है।

हिन्दी भाषा विद्वान लेखकों से निवेदन

यद्यपि सचित्र आयुर्वेद में हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा में लिखे गये लेखों का प्रकाशन होता है, किन्तु ज्यादातर पाठक हिन्दी भाषा होने के कारण हिन्दी भाषा में ज्यादा से ज्यादा लेखों का प्रकाशन हमारी विवशता है। दुर्भाग्यवश हिन्दी भाषा विद्वान लेखक भी अंग्रेजी में लिखना पसन्द करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि अंग्रेजी भाषा के लेखों का अम्बार लग जाता है जिसके कारण प्रकाशन में विलम्ब होता है। वस्तुतः अंग्रेजी भाषा में लेखों का प्रकाशन दक्षिण भारतीय पाठकों के लिए किया जाता है।

अतः हिन्दी भाषा विद्वान लेखक हमारी विवशता को समझेंगे और वे हिन्दी भाषा में लेख भेजने का प्रयास करें। इससे हमें सुविधा होगी और विद्वान लेखकों को लेख-प्रकाशन के लिए ज्यादा प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

आजीवन सदस्य बनकर डेढ़ सौ मूल्य के पुस्तकों को निःशुल्क प्राप्त करें

मुद्रण-सामग्री एवं कागजों के मूल्य में इन दिनों अप्रत्याशित वृद्धि हो रही है। फिर भी जो व्यक्ति आजीवन ग्राहक बनना चाहते हैं, वे सम्प्रति 1000/- रुपये 'सचित्र आयुर्वेद' के नाम से बैंक ड्राफ्ट अथवा मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें। यदि कोई संस्थान ग्राहक बनना चाहता है, तो 2000/- दो हजार रुपये का बैंक ड्राफ्ट या मनीआर्डर से निम्नलिखित पते पर भेज दें। उन्हें अविलम्ब आजीवन ग्राहक बना लिया जायेगा एवं उपहार स्वरूप 'सचित्र आयुर्वेद' के उपलब्ध सभी विशेषांक एवं 'कर्मयोगी एवं रामदयाल जोशी : कृतित्व एवं व्यक्तित्व' नामक पुस्तक निबन्धित डाक से निःशुल्क भेज दिये जायेंगे।

ग्राहक अविलम्ब आजीवन सदस्यता शुल्क भेजकर इस आकर्षक उपहार-योजना का लाभ अवश्य उठावें।

निवेदक :-

संपादक

सचित्र आयुर्वेद, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, बैद्यनाथ भवन रोड, पटना - 800 001

पी. जी. प्रवेश परीक्षा हेतु प्रश्न संग्रह माला - 1

आयुर्वेद का इतिहास

1. प्र०:- अष्टांग आयुर्वेद के अंग हैं ?

(a) शल्य, शलाक्य, काय, अगद, भूतविद्या कौमारभृत्य, रसायन, वाजीकरण

(b) शल्य, शालाक्य, रसशास्त्र, द्रव्यगुण, पदार्थ विज्ञान, प्रसूति तंत्र, बालरोग

(c) शल्य, शालाक्य, भूतविद्या, पञ्चकर्म, रसायन, वाजीकरण, प्रसूति तंत्र, स्त्रीरोग

(d) शल्य, शालाक्य, भैषज्य विज्ञान, मौलिक सिद्धान्त, रसायन, वाजीकरण, प्रसूति तंत्र, काय चिकित्सा ।

2. प्र०:- त्रिसूत्र का अर्थ है ?

(a) शरीर एवं आत्मा

(b) शरीर एवं पंचमहाभूत

(c) शरीर, इन्द्रिय, मन एवं आत्मा का संयोग

(d) दोष, धातु, मल

3. प्र०:- वृहत्रयी में रखा गया है -

(a) चरक संहिता, सुश्रुत संहिता, वाग्भट्ट संहिता

(b) भेल संहिता, हारीत संहिता, अष्टांग हृदय

(c) अष्टांग संग्रह, निमि तंत्र, शार्ङ्गधर संहिता

(d) भेल संहिता, वाग्भट्ट संहिता, भालुकि तंत्र

4. प्र०:- आयुर्वेद पर सर्वप्रथम लिखित ग्रन्थ है -

(a) ब्रह्म संहिता (b) अग्निवेश तंत्र

(c) धान्वन्तरी संहिता (d) अञ्जन निदान

5. प्र०:- 'चरक चतुरानन', 'सुश्रुत सहस्रनयन' कहा गया है -

(a) डल्हण (b) चक्रपाणिदत्त

(c) हेमाद्रि (d) हारण

पदार्थ विज्ञान

6. प्र०:- न्याय दर्शन के प्रणेता हैं -

(a) कणाद (b) गौतम

(c) पातञ्जली (d) कपिल

7. प्र०:- अनवीक्षीकी नाम किस दर्शन को दिया गया है-

(a) न्याय (b) साख्यं

(c) योग (d) चार्वाक

8. प्र०:- आयुर्वेदानुसार षट् पदार्थों का क्रम है -

(a) द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय

(b) सामान्य, विशेष, गुण, द्रव्य, कर्म, समवाय

(c) द्रव्य, गुण, कर्म, समवाय, विशेष, सामान्य

(d) उपरोक्त में से कोई नहीं ।

9. प्र०: आयुर्वेद का व्यावहारिक पक्ष किस दर्शन का अनुसरण करता है -

(a) साख्यं (b) न्याय

(c) योग (d) None

10. प्र०:- तम को द्रव्य के रूप में किसने स्वीकार किया है -

(a) तार्किक (b) नैयायिक

(c) वेदान्ती (d) वैशेषिक

क्रिया शरीर

11. प्र०:- वाग्भट्ट के अनुसार 'हृदय' स्थान है -

(a) साधक पित्त एवं ओज

(b) व्यान वायु

(c) अवलम्बक कफ

(d) उपरोक्त सभी

12. प्र०:- "भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सते" इस सिद्धान्त का उल्लेख है -

(a) चरक संहिता (b) सुश्रुत संहिता

(c) अष्टांग संग्रह (d) अष्टांग हृदय

13. प्र०:- रात्रिजागरण से प्रकोप होता है -

(a) वात+पित्त (b) वात+कफ

(c) कफ+पित्त (d) वात+पित्त+कफ

14. प्र०:- अस्थि क्षय किस कारण से होता है -

(a) वातक्षय (b) वातवृद्धि

(c) कफक्षय (d) वात-पित्तवृद्धि

15. प्र०:- चरक ने अमृत कहा है -

(a) पित्त (b) ओज

(c) वायु (d) उपरोक्त सभी

रचना शरीर

16. प्र०:- चरकानुसार षडगं शरीर में सलंग्न प्रत्यगों की संख्या है -

(a) 60 (b) 55 (c) 56 (d) 59

17. प्र०:- ''आश्रयस्थान'' को किस दूसरे नाम से जाना जाता है -
(a) सूत्रस्थान (b) कल्पस्थान
(c) सिद्धिस्थान (d) शारीरस्थान

18. प्र०:- किस आचार्य ने धमनी मर्म माना है -
(a) चरक (b) वाग्भट्ट
(c) सुश्रुत (d) काश्यप

19. प्र०:- मासंधरा है -
(a) प्रथम त्वचा, षष्ठमकला
(b) सप्तम कला, प्रथम त्वचा
(c) प्रथम त्वचा, सप्तम धातु
(d) प्रथम कला, सप्तम त्वचा

20. प्र०:- ''मूलात खादन्तरं देहे प्रसृतं'' किसके लिए कहा गया है -
(a) स्रोतस (b) सिरा
(c) धमनी (d) मर्म

द्रव्यगुण

21. प्र०:- द्रव्यगुण को कितनी शाखाओं में विभाजित किया गया है-
(a) 5 (b) 6 (c) 3 (d) 7

22. प्र०:- रसादि में श्रेष्ठ है -
(a) वीर्य (b) रस
(c) विपाक (d) द्रव्य

23. Q.:- Pharmacokinetics means -
(a) Identification of drugs
(b) What the body does to the drug
(c) What the drug does to the body
(d) Collection & Preservation of drug

24. प्र०:- द्रव्य का जांगम, औदभिद् एवं भौम में वर्गीकरण किसके अनुसार है -
(a) प्रयोग भेद (b) कार्य-कारण भेद
(c) योनि भेद (d) चेतनाचेतन भेद

25. प्र०:- औषध है -
(a) फलपाकान्ता (b) वृक्ष
(c) लता (d) वीरूद्

रसशास्त्र

26. प्र०:- रस शास्त्र का उद्भव किनसे है -
(a) ब्रह्मा (b) रुद्र (c) भद्रकाप्य(d) नागा

27. प्र०:- रस रत्न समुच्चय के अनुसार त्रिसूत है -
(a) पारद, गन्धक, माक्षिक
(b) पारद, सूत, गैरिक
(c) पारद, गन्धक, अभ्रक
(d) पारद, मिश्रक, सूत

28. प्र०:- रसशाला का निर्माण किस दिशा में अभी है -
(a) पूर्व (b) दक्षिण
(c) उत्तर-पूर्व (d) पूर्व-दक्षिण

29. प्र०:- विभिन्न धातुओं के ज्वाला परीक्षण का उल्ले किस पुस्तक में है -
(a) कक्ष पुट तंत्र (b) रसार्णवम्
(c) रस रत्न समुच्चय(d) रस-तरंगिणी

30. प्र०:- पारंद द्वारा मोक्षप्राप्ति का उल्लेख मिलता है -
(a) रसार्णवम् (b) रसकामधेनु
(c) गोरक्ष संहिता (d) रसेश्वर दर्शन

रोग एवं विकृति

31. प्र०:- निदान पञ्चक से तात्पर्य है -
(a) प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोपदेश, उपमान युक्ति
(b) नाड़ी, मूत्र, मल, जिह्वा एवं आकृति
(c) दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न, शब्द, गन्ध
(d) निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्रा

32. प्र०:- षडविध परीक्षा है -
(a) रोग परीक्षा (b) रोगी परीक्षा
(c) रोगी-रोग परीक्षा(d) कोई नहीं

33. प्र०:- ''अन्यलक्षण व्याधि'' पर्याय है -
(a) पूर्वरूप का (b) उपद्रव का
(c) रूप का (d) सम्प्राप्ति का

34. प्र०:- कौनसा निदान प्रेरक है -
(a) व्यंजक (b) सन्निकृष्ट
(c) उत्पादक (d) कोई नहीं

35. प्र०:- विधि सम्प्राप्ति का वर्णन मिलता है -

(a) सुश्रुत संहिता (b) चरक संहिता

(c) माधव निदान (d) निबन्ध संग्रह

काय चिकित्सा

36. प्र०:- तदर्थकारी चिकित्सा होती है -

(a) हेतु प्रत्यनीक चिकित्सा

(b) व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा

(c) हेतु-व्याधि प्रत्यनीक चिकित्सा

(d) कोई नहीं

37. प्र०:- षड्उपक्रम का वर्णन किया है -

(a) चरक (b) सुश्रुत

(c) वाग्भट्ट (d) डल्हण

38. प्र०:- व्याधि चिकित्सा के मुख्य सिद्धान्त है - शोधन, शमन एवं .... ?

(a) रक्तमोक्षण (b) निदान परिवर्जन

(c) प्रसादन (d) अपतर्पण

39. प्र०:- "धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम् ॥" यह कथन है -

(a) चरक (b) वाग्भट

(c) सुश्रुत (d) शार्ङ्गधर

40. प्र०:- "युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा है -

(a) अन्त: परिमार्जन

(b) शस्त्रप्रणिधान

(c) बहि:परिमार्जन

(d) उपरोक्त सभी

स्त्री एवं प्रसूति

41. प्र०:- आयुर्वेद के अनुसार प्रथम रज:दर्शन काल है -

(a) 12 वर्ष (b) 15 वर्ष

(c) 14 वर्ष (d) 16 वर्ष

42. प्र०:- आर्तव रक्त की सामान्य मात्रा है -

(a) 1.4 - 4.0 औंस

(b) 3.5 - 4.5 औंस

(c) 3 - 7 औंस

(d) 4 - 10 औंस

43. प्र०:- आर्तव प्रवृति कर्म है -

(a) अपान वायु (b) उदान वायु

(c) समान वायु (d) प्राण वायु

44. प्र०:- विकारी गर्भ से तात्पर्य है -

(a) 12 मास के पश्चात का गर्भ

(b) मूढ गर्भ

(c) गर्भ जो माता के लिए मृत्युकारक हो

(d) मृत गर्भ

45. प्र०:- वातशुष्क गर्भ माना जाता है -

(a) उपविष्टक (b) संकीलक

(c) नागोदर (d) परिघ

बाल रोग

46. प्र०:- चरकानुसार अष्टांग आयुर्वेद में कौमारभृत्य किस स्थान पर रखा गया है -

(a) चौथे (b)पांचवे (c)सातवें (d) छटे

47. प्र०:- काश्यप के अनुसार उपवेशन संस्कार का काल है -

(a) 4 मास (b) 6 मास

(c) 8 मास (d) 5 मास

48. प्र०:- चरक एवं वाग्भट्ट के अनुसार नवजात शिशु के लिए कण्ठशोधक योग है -

(a) सैन्धव मिश्रित घृत

(b) स्वर्णभस्म मिश्रित मधु

(c) मधु एवं घृत सम मात्रा में

(d) मदनफल एवं मुलैठी सम मात्रा में

49. प्र०:- नवजात को स्तनपान कराने का विधान है -

(a) दूसरे दिन (b) तीसरे दिन

(c) चौथे दिन (d) पांचवे दिन

50. Q.:- Period of Partunate is -

(a) Upto 30 Second after birth

(b) From 12 weeks of gastatatio to birth

(c) From 7th months of pregnancy to 1st week of delivery

(d) Last month of gestation

भैषज्य कल्पना

51. प्र०:- भैषज्य कल्पना का वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित वर्णन प्राप्त होता है -

(a) चरक संहिता (b) अष्टांग संग्रह

(c) सुश्रुत संहिता (d) योगरत्नाकर

52. प्र०:- रुद्रभाग औषध का कितना भाग होता है -

(a) 1/9 (b) 1/11 (c) 1/6 (d) 1/14

53. प्र०:- सशंमन द्रव्यों के संग्रह का श्रेष्ठ आश्रय है -

(a) पृथ्वी-जल भूयिष्ठ भूमि

(b) आकाश भूयिष्ठ भूमि

(c) अग्नि-आकाश भूयिष्ठ भूमि

(d) जल-अग्नि भूयिष्ठ भूमि

54. प्र०:- लाक्षारस कल्पना है -

(a) कषाय (b) चूर्ण

(c) स्वरस (d) कल्क

55. प्र०:- तण्डुलोदक का निर्देश है -

(a) वातव्याधि में (b) अतिसार में

(c) सूतिकाज्वर में (d) प्रदर में

शल्य

56. प्र०:- सुश्रुत संहिता के किस अध्याय में शल्य कर्म के व्यावहारिक पक्ष की अपेक्षा की गई है -

(a) अध्ययन सम्प्रदानीय (b) प्रभाषणीय

(c) अग्रोपहरणीय (d) योग्यासूत्रीय

57. प्र०:- व्रणशोफ की प्रथम क्रिया है -

(a) रक्तमोक्षण (b) विम्लापन

(c) स्नेहस्वेदन (d) उपनाह

58. प्र०:- छिन्न एवं भिन्न व्रण के मिश्रित लवण किसमें मिलते हैं

(a) क्षतव्रण (b) विद्ध व्रण

(c) पिच्चित व्रण (d) घृष्ट व्रण

59. प्र०:- निम्न में से कौन-सा नाड़ी व्रण सुखसाध्य है -

(a) वातज एवं शल्यज

(b) सान्निपातिक

(c) पित्तज एवं कफज

(d) कोई नहीं

60. प्र०:- विद्रधि के प्रकार हैं -

(a) 9 (b) 6 (c) 5 (d) 16

शालाक्य

61. प्र०:- ''बुदबुद'' पर्याय है ....का ।

(a) नेत्र (b) दृष्टि (c)पक्ष्म (d) पटल

62. प्र०:- कनीनक सन्धि को नासा समीपस्थ सन्धि गया है -

(a) चक्रपाणि द्वारा (b) डल्हण द्वारा

(c) शार्ङ्गधर द्वारा (d) अरुणदत्त द्वा

63. प्र०:- नेत्र के चतुर्थ पटल का सम्बन्ध है -

(a) रस एवं रक्त से (b) मांस से

(c) मेद से (d) अस्थि से

64. प्र०:- ''सैन्धवादि अञ्जन'' का वर्णन किस नेत्र के लिए है -

(a) अजकाजात (b) पूयालस

(c) लिंगनांश (d) कृमिग्रन्थि

65. प्र०:- यक्ष्मा चिकित्सा का निर्देश है -

(a) अपीनस में (b) नासाशोष में

(c) दुष्टपीनस में (d) भ्रशंयु में

स्वस्थवृत्त

66. प्र०:- स्वस्थवृत्त चतुष्क का उल्लेख मिलता है -

(a) चरक सूत्रस्थान

(b) अष्टांग हृदय सूत्रस्थान

(c) सुश्रुव सूत्रस्थान

(d) काश्यप खिलस्थान

67. प्र०:- 'समदोषाः समाग्निश्च' की व्याख्या की गई

(a) चरक (b) सुश्रुत

(c) वाग्भट (d) भेल

68. प्र०:- दन्तधावन के लिए किस द्रव्य का निर्देश है

(a) अपामार्ग (b) विल्व

(c) शिग्रु (d) उपरोक्त सभी

69. प्र०:- निम्न में से किस अञ्जन का नित्य प्रयोग क चाहिए ।

(a) नीलाञ्जन (b) सौवीराञ्जन

(c) स्रोतोञ्जन (d) रसाञ्जन

70. प्र०:- शिशिर ऋतु में हरीतकी का सेवन किसके करना चाहिए -

(a) पिप्पली (b) शुष्ठी

(c) शर्करा (d) गुड़

अगद

71. प्र०:- सुश्रुत कल्प स्थान का मुख्य विषय है -
(a) नेत्ररोग (b) भूतविद्या
(c) भैषजकल्प (d) विष

72. प्र०:- वाग्भट्ट ने अगद तंत्र को किस नाम से परिभाषित किया है -
(a) विषगरवैरोधिक प्रशमन
(b) दंष्ट्रा चिकित्सा
(c) गर चिकित्सा
(d) जांगुली

73. प्र०:- विष की योनि है -
(a) पृथ्वी (b) जल
(c) तेज (d) वायु+तेज

74. प्र०:- विष का रस है -
(a) कटु (b) तिक्त
(c) कषाय (d) अव्यक्त

75. प्र०:- विष का जीवितहर गुण कहा गया है -
(a) चरक द्वारा (b) शार्ङ्गधर द्वारा
(c) सुश्रुत द्वारा (d) उपरोक्त सभी

अन्य

76. प्र०:- कविराज गंगाधर सेन का काल है -
(a) 17 वीं शती (b) 18 वीं शती
(c) 19 वीं शती (d) 20 वीं शती

77. प्र०:- पालकाप्य संहिता का सम्बन्ध है -
(a) आयुर्वेद (b) हस्त्यायुर्वेद
(c) वृक्षायुर्वेद (d) कोई नहीं

78. प्र०:- सर्वप्रथम योगरत्नाकर में उल्लिखित बालरोग -
(a) पारिगर्भिक (b) क्षीरालसक
(c) विलम्बिका (d) उत्फुल्लिका

79. प्र०:- 'कुचुमार तंत्र' का सम्बन्ध है -
(a) रसायन चिकित्सा
(b) शालाक्य चिकित्सा
(c) भूतविद्या
(d) वाजीकरण चिकित्सा

80. प्र०:- शिरोविरेचन द्रव्य में नहीं होता है -
(a) लवण रस (b) तिक्त रस
(c) अम्ल रस (d) कषाय रस

81. प्र०:- श्रेष्ठ भाव है -
(a) 124 (b) 168 (c) 152 (d) 172

82. प्र०:- पार्श्वशूल की श्रेष्ठ औषध है -
(a) पिप्पली (b) पुष्करमूल
(c) हिंगू (d) वृहती

83. प्र०:- ईथर की खोज किसके द्वारा की गई -
(a) लुईस पाश्चर (b) स्टेनले
(c) विलियम मार्टिन (d) जॉन राइट

84. प्र०:- स्त्री शुक्र की उपस्थिति किसके द्वारा बताई गई -
(a) चरक एवं सुश्रुत
(b) वाग्भट्ट एवं सुश्रुत
(c) भावप्राकश एवं वाग्भट्ट
(d) काश्यप एवं सुश्रुत

85. प्र०:- पुस्तक 'वंगसेन' किस दूसरे नाम से जानी जाती है -
(a) चिकित्सा सार संग्रह
(b) चिकित्सा संग्रह
(c) चिकित्सा प्रदीपिका
(d) चिकित्सादर्श

Modern

86. **Q.:- Axillary artery is the continuation of -**
(a) Common carotid artery
(b) Veretebral artery
(c) Brachial artery
(d) Subclavian artery

87. **Q.:- Gastric Pacemaker is -**
(a) Fundus (b) Pyloric end
(c) Body (d) Cardiac end

88. **Q.:- 'Islets of langerhans' present in -**
(a) Thymus (b) Lever
(c) Kidney (d) Pancreas

89. **Q.:- Duct of parotid gland is -**
(a) Stensom's duct (b) Wharton's duct
(c) Duct of bullinis (d) Gartener's duct

90. Q.:- Uterus is separated from rectum by -
(a) Uterovesical pouch
(b) Pouch of douglous
(c) Morrison's pouch
(d) Hartmann's pouch

91. Q.:- Weight of Ovary is -
(a) 15 gms (b) 8 gms
(c) 6 gms (d)10gms

92. Q.:- "Wrist drop" is seen in -
(a) Ulnar nerve palsy
(b) Median nerve Palsy
(c) Radial nerve palsy
(d) Axillary nerve

93. Q.:- Myxedema is due to -
(a) Hyperthyroidism
(b) Hypothyroidism
(c) Parathyroid harmone
(d) Hyperpituitarism

94. Q.:- Where are respiratory centres located-
(a) Medulla & pans (b) Spinal cord
(c) Frontal lobe (d) Occipital lobe

95. Q.:- The term bradycardia used to indicate heart rate -
(a) less than 100/min.
(b) more than 100/min.
(c) 100/min.
(d) less than 60/min.

96. Q.:- Musician nerves -
(a) Median nerve
(b) radial nerve
(c) Glossopharyngeal nerve
(d) Ulner nerve

97. Q.:- Where is the urea formed -
(a) Liver (b) Brain (c) Lungs (d) Kidney

98. Q.:- Immunoglobulins are -
(a) Simple protein (b) Lipo protein
(c) Glycoprotein (d) Nucleo protein

99. Q.:- The vector of 'Kala-azar' is -
(a) Sand fly (b) House fly
(c) Tse-Tse fly (d) black fly

100. Q.:- The drug of choice in Acute anaphyla shock is -
(a) Diphen hydramine
(b) Cortisone
(c) Epinephrine
(d) Isoproteronol

P.G. Exam.
Answer - Keys

(1) A (2) C (3) A (4) A (5) B (6)
(7) A (8) B (9) B (10) C (11) D (12)
(13) A (14) B (15) D (16) C (17) D (18)
(19) D (20) A (21) D (22) D (23) B (24)
(25) A (26) B (27) D (28) C (29) B (30)
(31) D (32) A (33) A (34) A (35) B (36)
(37) A (38) B (39) A (40) D (41) A (42)
(43) A (44) A (45) C (46) D (47) B (48)
(49) C (50) A (51) A (52) B (53) B (54)
(55) D (56) D (57) B (58) A (59) D (60)
(61) A (62) B (63) D (64) B (65) C (66)
(67) B (68) D (69) B (70) A (71) D (72)
(73) B (74) D (75) B (76) C (77) B (78)
(79) D (80) C (81) C (82) B (83) B (84)
(85) A (86) D (87) A (88) D (89) A (90)
(91) C (92) C (93) A (94) A (95) D (96)
(97) A (98) C (99) A(100) B

द्वारा

डॉ० कमला आर. नागर
एम.डी. स्कॉलर
द्रव्यगुण विभाग
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान
जयपुर

डॉ० राकेश कुमार नागर
जुनियर रेजिडेन्ट III
स्त्री, प्रसूति एवं बालरोग
आई.एम.एस., बी.एच.यू.
वाराणसी

जोड़ों में दर्द, सूजन, जकड़न (गठिया बाय) की अनुभूत रामबाण दवा

अखिल भारतीय आयुर्वेद सेवा संघ रजि० भारत सरकार के अध्यक्ष माननीय डा० वी.के. खुल्लर जी के द्वारा प्रशिक्षित एवं प्रमाणित आयुर्वेद की शुद्ध जड़ी बूटियों द्वारा तैयार औषधि जिसके प्रयोग से कोई साईड इफैक्ट नहीं है। गठिया के रोगी जो खाट पकड़ चुके हैं जिनके हाथ-पांव की उंगलियां मुड़ चुकी हैं, जो बदन दर्द, कमर दर्द से पीड़ित हैं, दवा का सेवन करके पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ उठायें। आयुर्वेद शिरोमणि उपाधि से सम्मानित डा० बसोदिया द्वारा मानव सेवा हेतु दस दिन की दवा मुफ्त में दी जाती है। पीड़ित रोगी स्वयं या अपने बारे में पूर्ण विवरण भेजकर निम्नलिखित पते से डाक खर्च भेजकर प्राप्त कर सकते हैं। बसोदिया, आयुर्वेदिक एवं नैचुरोपैथी हैल्थ सेन्टर, सी-57बी, इंन्दिरा एन्क्लेव, इग्नू रोड, नई दिल्ली - 110068

गठियामृत चूर्ण

गठियामृत चूर्ण आयुर्वेद की शुद्ध जड़ी-बूटियों से तैयार किया जाता है इसमें किसी प्रकार की एलोपैथिक ड्रग या स्ट्रीराइड नहीं है जिसको प्रयोग करने से शरीर पर कोई बिना साईड इफैक्ट के रोग को जल्दी व स्थाई रूप से ठीक करता है। गठियामृत चूर्ण जोड़ों की चिकनाई (साइनो वियल फ्लुड) को बनाकर हर प्रकार के दर्द व सूजन से आराम दिलाता है।

मात्रा और अनुपान :- प्रातः शौच के बाद एक चम्मच गर्म पानी से खाली पेट लें और शाम को खाने से एक घण्टा पहले गर्म पानी से लें और एक घण्टे तक कुछ न खायें-पियें।

गुण और उपयोग तथा सहायक उपचार

(1) जो व्यक्ति लम्बे समय से जोड़ों के दर्द, कमर दर्द, हाथ-पैर की अंगुलियों के जोड़ों में दर्द से परेशान हों उन्हें गठियामृत चूर्ण के साथ नागोरी अशगंध की जड़ का चूर्ण गठियामृत चूर्ण के एक घण्टे बाद कुछ खाने के बाद दो-दो चम्मच सुबह शाम मीठे दूध से सेवन करना चाहिए। जिन रोगियों की उंगलियों में गाठें पड़ गई हों और टेढी हो गई हों उन्हें बैद्यनाथ का शैधवादि तैल की मालीस करनी चाहिये। हमने यह प्रयोग अनेक रोगियों पर आजमाया है जिससे चमत्कारी लाभ मिला है।

नागोरी अशगंध का चूर्ण बनाने की विधि :- नागोरी अशंगध की जड़ को दूध में अच्छी तरह उबाल कर सुखा लें और चूर्ण बनाकर कांच के बर्तन में रख लें।

(2) जिन औरतों में प्रसव के बाद पेट बढ़ जाता है तथा जोड़ों में दर्द, कमर में दर्द या हाथ-पैरों में सूजन आदि रहती हो वे गठियामृत चूर्ण के सेवन के एक घण्टे बाद खाना खा कर गर्मपानी को चाय की तरह पीयें। गठियामृत चूर्ण शरीर से यूरिक एसिड व विषैले अंश निकालता है, पेट में गैस नहीं बनती, क़ब्ज दूर करके आंतों से सड़े मल को निकालता है। पेट से कीड़े निकालकर आंतों की कमजोरी दूर कर पेट की समस्त बीमारियों को दूर करता है। जिन औरतों को मासिक अनियमितता व ल्यूकोरिया की शिकायत रहती है उन्हें कुछ ही खुराक लेने से पूर्ण लाभ होता है और मोटापा भी कम करता है।

अपथ्य : तली हुई चीजें, अधिक तेल, खटाई, बादीकर चीजें केला आदि का सेवन न करें।

विशेष : प्रत्येक रविवार को बवासीर की दवा फ्री दी जाती है।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें :-

डा० रामेश्वर दयाल
बसोदिया, आयुर्वेदिक एवं नैचुरोपैथी हैल्थ सेन्टर,
सी-57बी, इन्दिरा इन्क्लेव, इग्नू रोड,
नई दिल्ली - 110068
मोबाइल नं० - 9811067617
9868257617

राष्ट्र-रक्षा-हित हम दृढ़ संकल्प लें

आयुर्वेद-सेवा का ध्येय

अक्टूबर 1965

हम इस व्यस्तता के समय में आपका विशेष समय नहीं लेना चाहते, परन्तु दो शब्दों में हम आयुर्वेद के सम्बन्ध में, अपनी भावना को व्यक्त करना आवश्यक मानते हैं, जिसके लिए हम आपसे क्षमाप्रार्थी होंगे । आयुर्वेद को हमने केवल उद्योग-व्यवसाय के रूप में नहीं अपनाया है, यह सर्वविदित है । आयुर्वेद का प्रचार-प्रसार, अध्ययन-अध्यापन, अनुसंधान, औषधि-निर्माण, चिकित्सा, वनौषधि-विकास, साहित्य-प्रकाशन सभी हमारे ध्येय रहे हैं और रहेंगे । आयुर्वेद - विश्वविद्यालयों का संचालन, आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालयों का संचालन, औषधियों का बिना मूल्य वितरण, अनुसंधान-केन्द्र-संचालन, चार अखिल भारतीय आयुर्वेद परिषदों के आयोजन पर लाखों रुपये का व्यय, वनौषधियों का व्यवयसाध्य सर्वेक्षण एवं विकास, लाखों रुपये के आयुर्वेदिक साहित्य का प्रकाशन तथा वैद्य समाज के संगठन का प्रयास हम करते रहे हैं और करते रहेंगे । वस्तुत: हम आयुर्वेदीय चिकित्सा को भारतीय राष्ट्रीयता का अनिवार्य अंग मानते हैं और सरकार से भी अनुरोध करते हैं कि वह इसे स्वीकार करे, आयुर्वेद की उपेक्षा का अन्त करे और आयुर्वेदिक औषधि निर्माण में सरकारी अड़ंगेबाजियों को समाप्त करे ।

- पं० हजारी लाल शर्मा

गुजरात-राज्य में आयुर्वेद-विश्वविद्यालय

हम गुजरात-राज्य के आयुर्वेद-हितैषी स्वास्थ्य-मंत्री श्री मोहन लाल जी व्यास को बधाई देते हैं कि उन्होंने अपने राज्य में न केवल सरकारी आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय की स्थापना का विचार घोषित किया बल्कि तत्पर होकर उन्होंने आयुर्वेद-विश्वविद्यालय-विधेयक भी तैयार कराकर विधान-मण्डल के विचारार्थ प्रस्तुत कर दिया । इस दिशा में उन्होंने समस्त देश का नेतृत्व किया है, इसमें संदेह नहीं । राजस्थान-राज्य में तो आयुर्वेद-मंत्री भी हैं, किन्तु, अभी तक वहाँ भी ऐसा प्रयास नहीं हो सका है ।

हम अनुरोध करेंगे कि प्रत्येक राज्य में आयुर्वेद-विश्वविद्यालय की स्थापना का अभियान अविलम्ब प्रारंभ किया जाय । अन्यथा देश में आयुर्वेद की स्नातकोत्तर शिक्षा की सम्भावनाएं सर्वथा नगण्य ही रहेंगी क्योंकि भारत-सरकार इस दिशा में उपेक्षा-भावना एवं उदासीनता का ही परिचय दे रही है । अतएव राज्य सरकारों को इस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए । राजस्थान के आयुर्वेद-मंत्री को तो जरा भी बिलम्ब नहीं करना चाहिए और शीघ्रातिशीघ्र वहाँ आयुर्वेद-विश्वविद्यालय की स्थापना करनी चाहिए । अन्य राज्य भी अधिक पीछे न रहें, यह हमारा साग्रह निवेदन है । यह स्वाभाविक है कि सरकारी आयुर्वेदिक विश्वविद्यालयों से आयुर्वेदिक अनुसंधान को भी बल मिलेगा, जिससे आयुर्वेद के गुणों का अधिकाधिक उद्घाटन सम्भव होगा और उससे आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार को बल मिलेगा ।

जय आयुर्वेद - विश्वविद्यालय

बैद्यनाथ

पंचसकार चूर्ण

पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

आयुर्वेदोत्थान

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना

महाशय,

मेरे इस लेख को पढ़कर आयुर्वेद के वैद्य बन्धु यह न समझें कि मेरा झुकाव एलोपैथी की तरफ है या मैं आयुर्वेद में विश्वास नहीं करता । आज मैंने जो आयुर्वेद में अपनी कमियों को देखा है उसे कहने की मैने कोशिश की है । अगर किसी को बुरा लगे तो क्षमा चाहता हूँ ।

आयुर्वेद एक ऐसा ज्ञान है जो कि अपौरुषेय है अर्थात् इसको किसी पुरुष ने नहीं बनाया बल्कि भगवान ब्रह्मा ने खुद आयुर्वेद को बनाया है । जिस प्रकार हम भगवान को सत्य मानते हैं उसी प्रकार आयुर्वेद भी सत्य है । परन्तु आज के इस वैज्ञानिक युग में हमें रुढ़िवादिता को छोड़कर आयुर्वेद में जो बात नहीं कही गई या उस समय वैज्ञानिक साधन नहीं थे इसे सिद्ध करने के उन्हें हमें इसमें जोड़ देना चाहिये । आयर्वुेद एक ऐसा सत्य है जिस पर आज वैज्ञानिकता का रंग देने की जरूरत है क्योंकि जिन व्याधियों को इसमें असाध्य कह दिया वह आज भी साध्य नहीं हो सकी । आज के इस वैज्ञानिक युग में हमारे सामने एक गंभीर समस्या है कि आयुर्वेद का उत्थान कैसे हो । ऐलोपैथी चिकित्सा के साथ आयुर्वेद को साथ रखकर या अकेले आयुर्वेद से, इस प्रकार के प्रश्न हमारे सामने आ रहे हैं । अगर हमारे स्नातक शुद्ध आयुर्वेद के निदान एवं चिकित्सा के ऊपर चिकित्सा करनी चाहें तो क्या वह इसके लिए समर्थ हैं या नहीं, अगर हैं तो कोई बात नहीं अगर नहीं तो हमें इसके बारे में सोचना विचारना होगा कि कमी कहां पर है, आयुर्वेद के सिद्धान्तों में या हमारे स्नातकों में । यह तो मानना पड़ता है कि आज का चिकित्सा विज्ञान काफी समुन्नत हैं । शरीर के अंग प्रत्यंग को देखने के साधन, रोग को देखने व समझने के साधन, औषधियों के निर्माण के तथा उनके सूक्ष्म से सूक्ष्म गुण व क्रियाशील भाग को भिन्न करने के साधन बहुत समुन्नत हैं । इसकी तुलना में हमारा शरीरोपांग का ज्ञान, रोग को देखने, समझने, जानने के साधन तथा औषध की व्यवस्था व निर्माण विधि बहुत पिछड़ी हुई दशा में है ।

इस समय चिकित्सा की दृष्टि से समस्त संसार को दो भागों में बांट सकते हैं - एक वह पद्धति जिसमें दो-तीन सहस्र वर्ष से लेकर आज तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ । वही क्वाथ, वही अवलेह, वही चूर्ण । दूसरी वह पद्धति है जिसने उन पूर्वरूपों को छोड़कर उन चीजों को नया रूप देने का प्रयत्न किया है और बड़ी-बड़ी मात्रा वाली औषधियों के क्रियात्मक भाग को भिन्न करके औषधि की मात्रा को छोटा से छोटा बना दिया । यही नहीं प्रत्युत् उन औषधियों को इस प्रकार तैयार किया कि वह सीधे रक्त में पहुँचाई जा सके । इस नई चिकित्सा पद्धति (ऐलोपैथी) का प्रचार इतना बढ़ा कि इस विश्व की पूरी आबादी में से 95 प्रतिशत उसके प्रभाव में आ गये । संसार का कोई भी देश इस समय नहीं जहां इस नव्य चिकित्सा पद्धति का प्रवेश न हुआ हो । भारत में ही जहां आयुर्वेद चिकित्सा प्रधान थी उसकी लगभग ज्यादातर आबादी इस नई चिकित्सा पद्धति से प्रभावित हो रही है । यही नहीं इसको पढ़ने व पढ़ाने वाले भी ज्यादातर इसके प्रभाव में हैं । इस संसृत होने वाले विश्व में सब चीजें बढ़ रही हैं कोई चीज स्थिर नहीं । जो कुछ हमने आज से हजार दो हजार वर्ष पूर्व समझा व जाना था आज का संसार भी उतना ही है ऐसा समझना व मानना भूल है । जितना ज्ञान हमें आयुर्वेद ने दिया आज इसके दिये उस ज्ञान पर तथा विद्यमान ज्ञान पर दृष्टि डालें तो पूर्व की अपेक्षा बहुत बढ़ा हुआ दिखाई दे रहा है ।

आयुर्वेद के पाठ्य ग्रन्थों में इन नये ग्रन्थों को सम्मिलित करके हमने स्वीकार कर लिया है कि यह ग्रन्थ हमने आयुर्वेद परीक्षा ग्रन्थों से कुछ विशिष्ट ज्ञान देते हैं । वरना इनके रखने का प्रयोजन क्या था, हमें वस्तु स्थिति को बिना भेद-भाव के देखना चाहिये । हमें इस युग के विद्यमान स्तर तक अपने को पहुँचाना चाहिये, जब हम विद्यमान ज्ञान को प्राप्त कर संसार के विद्यमान ज्ञान-विज्ञान के बराबर अपने को पूर्ण कर लेंगे तभी हम इस समय के ज्ञान से आगे बढ़ सकते हैं । अभी तो हम आज से दो या तीन हजार वर्ष के ज्ञान को लिये बैठे हैं जब कि संसार आज उससे बहुत आगे बढ़ चुका है, आज से कई वर्ष पूर्व जापान हमसे गया गुजरा था, उनके नेताओं ने देखा कि हम संसार के विवर्द्धित ज्ञान-विज्ञान से बहुत पीछे हैं, इसका

एक ही रास्ता है कि हम उसे सीखें, प्राप्त करें, जब हम उस समस्त ज्ञान-विज्ञान को प्रथम प्राप्त न कर लें तब तक हमारा उत्थान नहीं हो सकता । उन्होंने सैंकड़ों विद्यार्थी विदेशों में भेज कर विद्यमान समय का जितना भी ज्ञान विज्ञान था 25-30 वर्ष में ही प्राप्त कर अपने देश को संसार के बराबर ला खड़ा किया, आज जापान किस तरह संसार की प्रतिस्पर्द्धा में आगे बढ़ रहा है यह किसी से छिपा नहीं । आज यदि वैद्यों को आगे बढ़ना है तो उनके लिये भी एक ही मार्ग है कि वह इस समय देखें कि संसार की चिकित्सा पद्धतियां किस ज्ञान-विज्ञान के आधार को लेकर आगे बढ़ रही हैं उसका वह पूर्णतया ज्ञान प्राप्त करें । बिना किसी झिझक व संकोच के हमें इस समय जो भी ज्ञान-विज्ञान हमारी चिकित्सा पद्धति के मार्ग को विस्तृत करने वाला हो उस पर चलने में जरा भी झिझक नहीं करनी चाहिये, इस समय का जितना भी बढ़ा हुआ ज्ञान-विज्ञान है उसे सीख कर समझ कर हमें आत्मसात् कर लेना चाहिये । अभी तो आगे बढ़ने का हमारे लिये मार्ग खुल सकता है । यदि हम संसार की चिकित्सा पद्धति के बराबर अपनी चिकित्सा पद्धति को नहीं बना लेते तब तक इस प्रतिस्पर्द्धा में हमारा खड़ा रहना कठिन ही नहीं असम्भव है ।

आयुर्वेद के ग्रन्थों के इतिहास को देखने से स्पष्ट होता है कि जिस आयुर्वेद का जन्म आज से हजारों वर्ष पूर्व हुआ था उसके प्रत्येक अंग में धीरे-धीरे उन्नति होती चली आई । एक सहस्र वर्षों तक उसके किसी न किसी अंग में उन्नति होती रही इसके बाद उसका विवर्धन एकाएक रुक गया । उस समय उसमें एक नई चिकित्सा विधि (रस चिकित्सा) का समावेश होने लग गया था । वैद्यों का ध्यान उस ओर अधिक चला गया और रस-चिकित्सा द्वारा उन्हें अपने चिकित्सा व्यवसाय में अधिक सफलता मिली । इसलिये अवशेष आयुर्वेद की ओर से वैद्यों का ध्यान हट गया । रस चिकित्सा को अपनाने के साथ-साथ वैद्य समाज जिस तरह प्रायोगिक रसायन की ओर बढ़ा था और उसने तेजाब, तीव्रक्षार, रससिन्दूर, रसकपूर आदि कुछ रासायनिक वस्तुऐं निर्माण कर ली थीं । यदि इस ओर वह कुछ और प्रयत्न करता तो उसके रसायन शास्त्री बनने में कोई बाधा नहीं थी किन्तु उस समय उसकी आर्थिक पूर्ति तो केवल रस चिकित्सा से ही अच्छी होने लग पड़ी थी, इसीलिये आयुर्वेद आगे बढ़ने से रह गया । इसी प्रकार आज के नये वैद्यों की जीविका ऐलोपैथिक चिकित्सा से अच्छी चल रही है इसीलिये आयुर्वेद की तरफ वैद्यों का ध्यान हट कर अंग्रेजी दवाइयों की तरफ है ताकि उनकी आजीविका अच्छी चलती रहे ।

अब हम जब संसार के विद्यमान चिकित्सा सम्बन्धी ज्ञान से अपने आयुर्वेद और रस चिकित्सा व रसायन विद्या विषयक ज्ञान की तुलना करते हैं तो इस समय एक बात में नहीं प्रत्येक विषय के ज्ञान में हम अपने को दूसरों की विद्यमान चिकित्सा विषयक ज्ञान से काफी पिछड़ा हुआ पाते हैं । आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य आयु के अर्थात् स्वास्थ्य के हिताहित का ज्ञान है जिसका प्रधान अंग काय चिकित्सा है, यदि इसी पर विचार किया जाय और आज की विवर्द्धित काय चिकित्सा से तुलना की जाय तो हमें अपने में अनेक अपूर्णताएं देखने को मिलती हैं ।

शरीर रचना सम्बन्धी जो ज्ञान हमें आयुर्वेद के ग्रन्थों में मिलता है इस समय जो शरीर रचना सम्बन्धी प्रत्यक्ष ज्ञान हमें विद्यमान चिकित्सा पद्धति से मिलता है इन दोनों की तुलना में हमारा ज्ञान बहुत पिछड़ा हुआ सिद्ध होता है । जिन अनेक अंगों अनेक बातों का पता विद्यमान ग्रन्थ से लगता है हमारे ग्रन्थ में उनका चिन्ह तक नहीं मिलता। इसीलिये तो उन ग्रन्थों को हमारी सैन्ट्रल कौसिंल आफ इन्डियन मैडिसन ने अपने पाठ्यक्रम में ले लिया है । शरीर रचना विषय को हमारे विद्वानों ने कुछ ज्यादा ही पिछाड़ दिया जब आधुनिक शरीर रचना को हिन्दी में अनुवाद करके पढ़ाने लगे । प्रगण्डास्थि, अंसफलक, जत्रुकास्थि, हन्वास्थि, अन्तःप्रकोष्ठास्थि, वाह्य प्रकोष्ठास्थि, क्लोम, अग्न्याशय, आन्त्रपुच्छ आदि नाम जो हमनें शरीर के अंगों के दिये हैं उनको पढ़ाकर क्या हमारे विद्यार्थी विश्व के किसी कोने में अपने आप को खड़ा कर सकेंगे या नहीं । उनका ज्यादा समय दोनों तरह के नाम याद करने में नष्ट होता है जबकि विश्वभर में उसकी कोई मान्यता नहीं । क्यों नहीं हम अपने विद्यार्थियों को सीधी-सादी आधुनिक शरीर रचना पढ़ाते । क्या ऐसे नाम याद करने से जो हमारे बनाये हुए हैं आयुर्वेद का उत्थान होगा ।

गर्भ विज्ञान का हमारे यहां संकेत मात्र ही वर्णन है उसकी तुलना में विद्यमान गर्भविज्ञान के ग्रन्थ हमें बहुत अधिक जानकारी देते हैं इसीलिये तो सी.सी.आई.एम. ने प्रसूति शास्त्र आदि के आधुनिक ग्रन्थों को भी पाठ्य ग्रन्थों में स्थान दिया । इसी तरह से निदान शास्त्र या रोग विज्ञान में हमारे प्राचीन ग्रन्थों में निदानेमाधवः प्रोक्तः को सबसे श्रेष्ठ माना जाता है, उसकी तुलना में यदि आधुनिक निदान शास्त्र से करें तो दिखाई देता है कि माधव के अनेक रोगों के कारण को उस समय ठीक से नहीं समझा गया था । अनेक रोगों का वर्णन इतना संक्षेप में है जिसमें समय की पूर्त्ति नहीं होती, अनेक रोगों के सम्बन्ध में आधुनिक ज्ञान से काम न लें तो रोगी की तुष्टि नहीं होती । इसी प्रकार शल्य और शालाक्य के ज्ञान में भी पूर्व की तुलना में बहुत ज्यादा प्रगति हुई है ।

अनेक रोगों का पता पूर्वकाल में नहीं था, उनका पता अब आकर लगा है । इन नये रोगों को जब तक हम आधुनिक निदानशास्त्र की सहायता से न समझें उसकी चिकित्सा नहीं कर सकते । यदि चिकित्सा करें तो उसमें सफलता कम मिलती है । इस प्रकार आज अगर हम आयुर्वेद के आठ अंगो को देखें तो त्रिदोष का स्थान उसमें दिखाई नहीं देता और यह एक हमारे आयुर्वेद के स्नातकों के दिमाग पर बोझ के अलावा कोई अर्थ नहीं रखता । विद्यार्थी अपना बहुत समय त्रिदोष के चक्कर में निरर्थक गवा देते हैं क्योंकि कालेज से बाहर निकलने के बाद कोई विद्यार्थी न तो त्रिदोष से निदान करता है और न ही औषध के रस गुण वीर्य विपाक की तरफ ध्यान देता है । अर्थात् आयुर्वेदिक कालेजों में जो आज अन्दर है वह बाहर नहीं है और जो बाहर है वह आयुर्वेदिक कालेज के अन्दर नहीं है फिर ऐसे कालेज में विद्यार्थियों का समय बर्बाद नहीं तो और क्या है । अगर अंग्रेजी किताबों को हिन्दी में अनुवाद करके पढ़ना ही आयुर्वेद है तो ऐसी पढ़ाई का क्या फायदा । आज अगर हम किसी भी बड़े से बड़े वैद्य का चिकित्सा पत्र देखें तो उसमें कहीं भी त्रिदोष को ध्यान में रखकर चिकित्सा नहीं की जाती । हमारे विद्यार्थी ज्यादा समय प्राचीन और अर्वाचीन की तुलना में गँवा देते हैं जोकि आज के वैज्ञानिक युग में उनके ऊपर बोझ के अलावा कुछ नहीं । हम देखते हैं कि कोई शिरःशूल का रोगी हमारे पास आता है तो हम अपनी चिकित्सा से उसे ठीक कर देते हैं और उसका शूल शान्त हो जाता है, हम उसे इस प्रकार समझायें कि इसमें वात वृद्ध थी और हमने वात शामक औषधि दी तो वह ठीक हो गया । अगर हम उसी रोगी को पैरासिटामोल या एस्प्रीन आदि एलोपैथी की दर्दशामक औषधि में से कोई दवाई देते हैं तो भी वह ठीक हो जाता है तो हमें उन एलोपैथी की दर्दनाशक औषध को वातशामक औषधियों में रखकर अपनी पाठ्य पुस्तकों में उन्हें वातपित्तकफ के सिद्धान्तों से तालमेल करवा कर उन्हें अपना एक अंग बना कर आयुर्वेद एवं एलोपैथी की लड़ाई को या भेदभाव को खत्म कर सकते हैं और जो हमारे स्नातकों के ऊपर एलोपैथी की तलवार लटक रही है वह भी हट जायेगी ।

जो भी द्रव्य हमारे निघण्टु ग्रंथों में नहीं लिखे क्या हमने उनके बारे में कभी अपने सिद्धान्तों द्वारा आगे कुछ लिखने की कोशिश की है । हमारी सरकार भी जिन औषधियों पर अनुसंधान कर रही है वह कभी यह नहीं देखती कि यह दवाई कितने अंश में वात आदि दोष शामक है, उसमें भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से ही रिसर्च होती है न कि त्रिदोष सिद्धान्त अनुसार ।

ऊपर या आगे जो मैं कह रहा हूँ वहां मेरा कहने का अभिप्राय यह नहीं कि त्रिदोष है ही नहीं या गलत है । अपितु यह है कि उस समय हमारी रोग को समझने या समझाने की शैली त्रिदोष थी और वह उस समय के अनुसार बिल्कुल ठीक थी इसमें कोई शंका नहीं । आज हमारे शरीर क्रिया और रोगनिदान आदि को समझने या समझाने के तरीके में बहुत परिवर्तन हो चुका है और वह बहुत परिवर्द्धित रूप में है एवं संसार भर में मान्य है । हमें उसे तुलना के तरीके से भ्रम में न पड़कर अपनाना चाहिये । त्रिदोष को स्नातकोत्तर या पी.एच.डी. आदि के विषय बनाकर पढ़ना चाहिये । हमें रोग को कहने की या औषध के गुणधर्म को कहने की आज की वैज्ञानिक शैली द्वारा पढ़ाना या अपनाना चाहिये ।

आज आयुर्वेद जड़ी-बूटियों का ज्ञान वैज्ञानिक तरीके से हम आयुर्वेद वालों से ज्यादा एलोपैथिक फार्माकालोजी वाले या एलोपैथिक फार्मेसी विभाग, बोटेनी विभाग, फूड

टैक्नोलॉजी वाले जानते हैं और हम वहीं के वहीं बैठे हैं क्योंकि हम कुछ भी पुराना छोड़ने को तैयार नहीं । जो सत्य है वह त्रिकाल में सदा सत्य रहनी चाहिये ।

आयुर्वेद का प्रादुर्भाव उस काल में होता है जबकि प्रत्यक्ष साधनों का नितान्त अभाव था । इसीलिये उस युग में अनुमान, आप्त, उपमान आदि तर्काश्रयी साधनों का आश्रय लिया गया । जिस आप्त पर हम अधिक विश्वास रखते हैं वह भी अनुमान, उपमान आदि के आधार को लेकर वह लोग किसी निश्चय पर पहुंचे थे ।

महर्षि आइन्सटाइन ने भी आज से कई वर्ष पूर्व भविष्यवाणी की थी कि पदार्थ के परम सूक्ष्म रूप परमाणु के अन्दर इतनी महान् शक्ति छिपी हुई है जिसे कोई तोड़कर प्राप्त कर ले तो उसके हाथ में शक्ति का महान् स्रोत आ सकता है, यह उनकी कल्पना नहीं थी प्रत्युत उन्होंने गणित से इसकी सत्यता सिद्ध कर बतलाई थी कि परमाणु शक्ति का भंडार होता है । वह बात उनकी कई वर्ष बाद आज सही प्रमाणित हुई, उसी शक्ति की विच्छेद विधि को ज्ञात करके आज परमाणु बम बनाये जा रहे हैं ।

हमारे ऋषि मुनियों ने जो सिद्धान्त स्थापित किए थे, उनका आधार कुछ ही भौतिक प्रत्यक्ष था बाकी अनुमान, उपमान, आप्त और अर्थापत्ति आदि उस भौतिक प्रत्यक्ष के आश्रयीभूत थे, उन्हीं की सहायता से जो तर्कना होती थी और जिसकी उन तर्कनाओं में विजय रहती थी वही सिद्धान्त रूप धारण कर चुके हैं जो आज हमारे सामने उपस्थित हैं जिन्हें दर्शन के रूप में हम मान रहे हैं । आप्त वाक्य भी इन्हीं आठ प्रमाणों में से एक है । जिन दार्शनिक सिद्धान्तों के आधार पर आयुर्वेद के सिद्धान्त निर्धारित हुए हैं वह यदि आज प्रायोगिक प्रमाणों से अर्थात् विद्यमान विज्ञान की कसौटी पर खरे उतर जायें तो उन्हें अवश्य मानना चाहिये ।

बुद्धिमानी तो इसी में है कि विद्यमान प्रत्यक्ष प्रयोग विधियों द्वारा हम स्वतः उनकी असलियत मालूम करें और जितना अंश उसमें सत्य का हो उतना ग्रहण कर लें बाकी को छोड़ दें । जो बात क्रियात्मक विधियों से सही सिद्ध होती हो उसे मानने में आपत्ति नही होनी चाहिये । इस तरह प्राचीन और अर्वाचीन को मिलाकर आयुर्वेद को नए सिद्धान्त के अनुसार जानना चाहिये । आयुर्वेदिक औषधियों द्वारा हमारे वैद्य जीर्ण से जीर्ण रोगी जिनको एलोपैथिक वाले असाध्य कहकर छोड़ देते हैं उन रोगियों को ठीक करने में समर्थ देखे जाते हैं, किन्तु इस सफलता का अर्थ यह नहीं लगाना चाहिये कि यह लाभ हमारे सिद्धान्तों के कारण है, औषधि के गुण का हमारे सिद्धान्तों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं । औषधियों के गुण धर्म और स्वभाव, प्रभाव उनके प्राकृतिक अंश हैं जो उनके जीवन से उनमें हैं । हमारे आयुर्वेदिक सिद्धान्त आज हजारों वर्ष के हैं जिन्हें हमने एक ओर शरीर पर जिस तरह से लागू किया उसी तरह वनस्पतियों में भी मान लिया । जो तीन दोष हमने मनुष्य के शरीर में कल्पित किये उन्हीं के षट् रस रूप वनस्पतियों में भी कल्पित कर लिये । जो व्यक्ति यह समझते हैं कि आज से हजार दो हजार वर्ष पूर्व जिन दर्शन शास्त्रों के आधार पर आयुर्वेद के सिद्धान्त स्थापित किये गए थे उन सिद्धान्तों के कारण ही हमारी औषधियां लाभ पहुंचाती हैं ऐसा समझना भूल है । सैकड़ों वैद्य इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि इस भारत की भूमि पर अनेक आदमी ऐसे हैं जो आयुर्वेद का क ख भी नहीं जानते पर उन्हें एक टोटका मालूम है, उससे वह प्रति वर्ष हजारों रोगी ठीक करते हैं तो क्या इसका यह अर्थ लगाना चाहिये कि वह रोगी को आयुर्वेद का सिद्धान्त समझ कर औषधि देते हैं, हरगिज नहीं । न तो वह आयुर्वेदिक सिद्धान्त को सामने रखकर दवा देते हैं न वह आयुर्वेद नाम के किसी सिद्धान्त को जानते ही हैं ।

औषध के गुण प्रभाव का वास्तव में आयुर्वेदिक सिद्धान्तों से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं उनके अपने स्वतंत्र गुणधर्म हैं जिनको हमने अपने सिद्धान्त से मिलाकर उन्हें इच्छित रूप दिया है न कि वह आयुर्वेदिक सिद्धान्त के अनुसार अपना गुण, धर्म रखते हैं । यदि ऐसा होता तो दूसरी चिकित्सा पद्धति वाले औषधियों के गुण धर्म की व्याख्या जिस तरह से देते हैं वह होनी नहीं चाहिये थी । पर उनकी व्याख्या का शरीर पर ठीक-ठीक गुण प्रभाव जब देखा जाता है तो मानना पड़ता है कि हमारी व्याख्या इतनी

प्रायोगिक नहीं । वास्तव में तो जैसे औषधियां अनादि हैं इसी तरह उनके भीतर विद्यमान गुण धर्म भी अनादि हैं और उनका उपयोग मनुष्य अपने जंगली जीवन से करता चला आ रहा है । किसी भी तरह उनका उपयोग होने से धीरे-धीरे उनके गुण धर्मों का पता लगता चला गया । उस समय आयुर्वेद के सिद्धान्तों ने जन्म भी नहीं लिया था । वही आयुर्वेद सिद्धान्त के जन्मदाता जब कहते हैं कि वनस्पतियों के गुण, धर्म जंगली आदमियों से जानो तो इसका मेल हमारे सिद्धान्तों से किस तरह बैठा, किसी वैद्य को समझाना चाहिये ।

प्रत्येक वनस्पति के जो अपने गुणधर्म हैं हम उनको हजारों वर्षों से प्रयोग करते रहने के कारण जान गये हैं । और परस्पर मिलते गुणों वाली औषधियों को हमने मिलाकर उनसे अनेकों योग बना लिये हैं, वन वनस्पतियां परस्पर मिल कर विशेष गुणदायी बन गई हैं । अगर हम अपने द्रव्यगुण विज्ञान या रस शास्त्र या किसी भी औषध योग के ग्रन्थ का अवलोकन करें तो हमें पता चलता है कि हमारी औषधियां भी रोगानुसार ही दी हुई हैं और उनके प्रयोग हम रोगानुसार करते हैं जैसे ज्वराधिकार, आमवातधिकार आदि तो उसमें हमारे आयुर्वेद के सिद्धान्तों यथा वात पित्त कफ को न भी लें तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये और आज हमें उन सभी रोगों का लगभग आधुनिक नाम भी पता ही है रोगों में या दोषों की अंशांश कल्पना में हमारे स्नातकों को उलझाने के अलावा कुछ नहीं ।

यहां हमें यह नहीं समझना चाहिये कि यह वनस्पतियां अपने वातशामक, पित्तशामक या त्रिदोषशामक आदि दार्शनिक सिद्धान्तों से अपना गुण दिखाती हैं क्योंकि इन्हें हम विज्ञान की कसौटी पर प्रायोगिक रूप से सिद्ध नहीं कर सकते । वास्तव में हमारे विद्यार्थी वातपित्तकफ को पढ़कर आमतौर पर भ्रम में पड़ जाते हैं । इसलिये हमारे स्नातकों का भ्रम दूर हो एवं उनके विषय स्पष्ट हो इसलिये हमें आयुर्वेद को पूर्ण वैज्ञानिक बनाना होगा । जोकि त्रिदोष के दायरे से बाहर निकल कर ही हो सकता है । मेरा कहने का अभिप्राय यह नहीं कि हमें आयुर्वेद के ग्रन्थों को छोड़ देना चाहिये । इन्हें अनुसंधान के लिये रखना चाहिये न कि हमारे स्नातकों को भ्रम में डालने के लिये । इन पर अनुसंधान की आवश्यकता है ।

आज हमें भी अपनी औषध निर्माण प्रक्रिया को बदल कर इसे वैज्ञानिक विधि द्वारा निर्माण कर औषधियों का मूल्यांकन करना चाहिये । जो औषध अनुसंधान के द्वारा वैज्ञानिक विधि से प्रमाणित हो चुकी हो उसे हमारे पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिये यथा आयुष 64 मलेरिया के लिये तथा 777 आयल सोरायसिस के लिये । आज जो कुछ भी केन्द्र में अनुसंधान आयुर्वेद चल रहें हैं उनका पता हमारे विद्यार्थियों को नहीं चलता और न ही हमारे आयुर्वेदिक कालेजों को इसका पता चलता है । जो हमारी सी.सी.आई.एम. का पाठ्यक्रम चला आ रहा है वही चलता रहता है न ही उसमें बदलाव करने की सी.सी.आई.एम. सोचती है ।

हमें शरीर, निदान आदि की प्राचीन विचार धारा को छोड़कर नवीन शरीर और क्रिया शरीर निदान आदि को पूर्ण रूप से अपना लेना चाहिए ।

इस तरह से संसार में चिकित्सा विषयक जो क्रान्ति हो रही है इसका पूर्ण ज्ञान जब तक प्राप्त नहीं कर लेते तब तक कैसे आगे बढ़ सकते हैं । अभी तो हमें संसार के उस समस्त ज्ञान को लेना है जिसकी कृपा से अन्य चिकित्सा पद्धतियां अपने चिकित्सा ज्ञान को और आगे बढ़ा रही हैं । जब तक हम इस ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त नहीं कर लेते तब तक हमारे लिये आगे बढ़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता । क्या आयुर्वेद संसार इस सत्यता पर विचार करने के लिये तैयार है ? हमारे आज के आयुर्वेद को चलाने वाले विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिये और इस देश के केन्द्र में विद्यमान सैन्ट्रल कौंसिल आफ इण्डियन मैडिसन और सेहत एवं परिवार भलाई मंत्रालय के इण्डियन सिस्टम आफ मैडिसिन को इस ओर ध्यान देना चाहिये ।

आदर्श कुमार

विभागाध्यक्ष, रसशास्त्र विभाग, सरकारी आयुर्वेदिक कॉलेज, पटियाला

[यह आवश्यक नहीं है कि इस स्तम्भ में दिये गये विचार से सम्पादक के विचार मिलते हों - सम्पादक]

आरोग्य समाचार : अखबार की कतरनों से

चंचल बच्चों को शान्त करने की दवा खतरनाक

द टाइम्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित समाचार के अनुसार रिटेलिन नामक दवा की बिक्री 15% बढ़ गयी है। लिंकन शायर के एक मनोविश्लेषक, डा० सामी टिमिमि के अनुसार अधिकांश माता-पिता नटखट बच्चों के साथ उचित बर्ताव नहीं करते हैं, बल्कि औषधि पर निर्भर करते हैं। आंकड़ों के अनुसार इंगलैण्ड में 12.5 मिलियन पौंड की दवा 359,100 रोगियों को दी गयी। इन रोगियों में से 90% रोगी 18 वर्ष से कम आयु के थे। आंकड़ों के अनुसार अमेरिका में पांच बच्चों में से एक रिटेलिन या इस प्रकार की औषधि का प्रयोग करते हैं। इंगलैण्ड में इसकी दर सात में से एक हो जायेगी। शोध कर्मियों के द्वारा किये गये एक अध्ययन के अनुसार इस दवा के प्रयोग से पेट-दर्द, अनिद्रा, सर-दर्द आदि बीमारियां पैदा होती हैं।

शर्करा से जबरदस्त औषधि बनाने का प्रयास

द टाइम्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार आयरिश शोध कर्मियों ने दावा किया है कि संशोधित चीनी रोग से लड़ने के तरीकों में मदद कर सकती है। रसायनज्ञ डा० माइक ने दावा किया है कि वे शर्करा की रासायनिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन कर रहे हैं। प्रतिक्रियाओं के प्रारम्भिक शोध से ज्ञात हुआ है कि चीनी कैन्सर से लेकर मधुमेह तक की बीमारियों की औषधि खोजने में मदद कर सकती है।

पचास हजार लन्दनवासी कोकेन के आदी

गार्जियन न्यूजपेपर्स लि० में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार 15 से 44 वर्ष की आयु के मध्य लन्दनवासी कोकेन का इस्तेमाल या तो सुई के माध्यम से करते हैं या धूम्रपान के जरिये। इस आदत का परिणाम यह हो रहा है कि लोग मानसिक व्याधियों के शिकार हो रहे हैं साथ ही रक्त जनित रोगों के शिकार भी। कोकेन के आदी लोगों के हिंसक व्यवहार से पुलिस के सामने भी समस्या उत्पन्न हो रही है।

बाल से नशीले पदार्थों की जांच

द हिन्दू में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार बाल की जांच से पता लगाया जा सकता है कि सम्बन्धित व्यक्ति ने नशीले पदार्थ का सेवन किया है अथवा नहीं। दुर्भाग्यवश यहां भी रंग-भेद एवं नस्ल-भेद आड़े आता है। पता चला है कि काले रंगों के व्यक्ति में बाल घनात्मक तेज गति से होता है, जबकि गोरे आदमी में यह अत्यन्त कम होता है। कानूनविदों की राय में जांच का यह तरीका न्यायसंगत नहीं है।

हरी चाय से अलजाइमर के रोगी को लाभ

जरनल ऑफ न्यूरो सायन्स में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार हरी चाय में एपिगेलोकेटचिन-3-गैलेट (ई जी सी जी) नामक मौजूद तत्व एण्टी आक्सीडेन्ट का कार्य करता है। परिणामत: अलजाइमर एवं कुछ विशेष प्रकार के कैन्सर को रोकने में यह चाय मदद करती है। शोध कर्मियों के अनुसार अलजाइमर से सम्बन्धित प्रोटीन एवं बीटा-एमिलायड के उत्पादन को कम करता है। विदित है कि ये दोनों पदार्थ स्मृति-ह्रास एवं तन्तु का विनाश करते हैं। हरी चाय के प्रयोग से पाया गया है कि इससे बीटा-एमिलायड की मात्रा में कमी होती है।

सहयोगी कारकों के बिना मोटापा से हृदयाघात का खतरा नहीं

यह सुनने में विचित्र लगता है कि मोटापा से हृदयाघात को खतरा नहीं होता है। आम तौर पर चिकित्सक मोटापा कम करने की सलाह देते हैं। **हाईपरटेन्शन: जरनल ऑफ अमेरिकन हार्ट एसोसियेशन** में फ्रांसीसी शोधकर्मियों ने दावा किया है कि यदि व्यक्ति मोटा है, किन्तु रक्तचाप का मरीज नहीं है, तो हृदयाघात का खतरा कम होता है। पेरिस स्थित सेन्टर डी-इन्वेस्टीगेशन्स प्रिवेन्टिम भेट क्लीनीक्स के डा० अथानासे एवं उनके सहयोगियों ने 2,40,000 व्यस्कों पर 1972 एवं 1988 के मध्य परीक्षण किया। इसके पश्चात् 14 वर्षों तक इनके स्वास्थ्य पर नजर रखी गयी। इन वयस्कों में से 42% पुरुष एवं 21% महिलाओं का वजन काफी ज्यादा था। 5% प्रत्येक समूह में मोटे थे। परीक्षण में देखा गया कि मोटापा बढ़ने के साथ-साथ उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं कोलेस्ट्रोल भी बढ़ते गये। इनमें से 2,949 पुरुष एवं 929 महिलाओं की मृत्यु हृदयाघात से हुयी। जो व्यस्क मोटे थे, किन्तु उन्हें उच्चरक्तचाप, मधुमेह एवं कोलेस्ट्रांल नहीं थे, उन्हें हृदयाघात की शिकायत नहीं हुयी। इन परीक्षणों से यह भी निष्कर्ष निकला कि मोटे

व्यक्तियों में कारक रोगों की मात्रा ज्यादा तेज गति से बढ़ती है ।

लम्बे व्यक्ति में खतरा मोल लेने की प्रवृत्ति ज्यादा

द टाइम्स ऑफ इण्डिया में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार बर्लिन स्थित जर्मन आर्थिक अनुसंधान संस्थान एवं बोन विश्वविद्यालय के शोधकर्मियों ने पता लगाया है कि लम्बे व्यक्ति छोटे व्यक्ति की अपेक्षा ज्यादा खतरा मोल लेना पसन्द करते हैं । अनुसंधान के क्रम में शोधकर्मियों ने पाया कि प्रत्येक सेन्टीमीटर ज्यादा लम्बाई पर खतरा मोल लेने की दर 200 होती है । शिक्षित माता-पिता के बच्चे भी ज्यादा खतरा मोल लेना पसन्द करते हैं ।

शोधकर्मियों ने यह निष्कर्ष 20,000 व्यक्तियों पर किये गये परीक्षण के पश्चात् निकाला है ।

तनाव से रुक सकता है स्तन कैन्सर

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार एक नए शोध के मुताबिक रोजमर्रा की जिन्दगी में तनाव में रहने वाली महिलाओं में अन्य महिलाओं के मुकाबले पहली बार स्तन कैन्सर होने की आशंका कम होती है । ब्रिटेन की एक चिकित्सा पत्रिका में शुक्रवार को प्रकाशित इस शोध में डेनमार्क के वैज्ञानिकों ने 18 साल में 6689 महिलाओं के अध्ययन के बाद पाया कि रोज होने वाला तनाव 'स्तन कैन्सर के कारक' ओस्ट्रोजेन के निर्माण को कम कर देता है । शोध में यह पाया गया कि रोजमर्रा में हल्का लेकिन दीर्घकालिक तनाव ऐसे हार्मोस को बढ़ाता है जो ओस्ट्रोजन संश्लेषण को कम कर देता है जिसके कारण स्तन कैन्सर की आशंका कम हो जाती है । वैज्ञानिकों ने कहा कि इसकी जांच नहीं की गई है और इस पर अभी विस्तृत अध्ययन की जरूरंत है । हालांकि शोधकर्ताओं ने साथ ही आगाह किया कि तनाव कोई इलाज नहीं है और अधिक तनाव से हृदयाघात के कारण मौत की आशंका बढ़ जाती है । वैज्ञानिकों ने बताया कि फिनलैण्ड और स्वीडन में उनके अध्ययन में समानता नहीं है । फिनलैण्ड में तनाव का स्तन कैन्सर से कोई संबंध नहीं था जबकि स्वीडन में सीधा संबंध देखा गया ।

मशरूम खाइए और जानलेवा बीमारी भगाइए

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार वैज्ञानिकों के मुताबिक मशरूम एक ऐसे एंटी-ऑक्सीडेंट का मुख्य प्राकृतिक स्रोत है जो कई घातक बीमारियों से इंसान को बचाता है । खाद्य विज्ञान में शोध करने वाले जोय डुबोस्ट और उनके सहयोगियों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मशरूम खाने से कई जानलेवा बीमारियों से बचा जा सकता है । वैज्ञानिकों के मुताबिक इस्तेमाल में सबसे अधिक आने वाली मशरूम प्रजाति पोर्टाबेलास और क्रिमिनिस जटिल बीमारियों से मुक्ति दिलाने वाले एंटी-ऑक्सीडेन्ट इर्गोथायोनीन के मुख्य स्रोत हैं । दुनिया में सबसे अधिक इन्हीं दो मशरूम प्रजातियों का इस्तेमाल होता है । अमेरिका और यूरोपीय देशों की तरह एशियाई देशों में भी मशरूम की स्वीकार्यता बढ़ती जा रही है । सफेद धारियां वाला मशरूम भी इस एंटी-ऑक्सीडेण्ट का बड़ा स्रोत माना जाता है । मेडिकल न्यून टुडे द्वारा प्रकाशित एक खबर में कहा गया है कि मशरूम कई पोषक तत्वों से भरपूर है । मशरूप की सबसे बड़ी खासियत यह है कि गर्म या भूने जाने पर भी मशरूम में इर्गोथायोनीन एंटी-ऑक्सीडेण्ट की मात्रा में कमी नहीं आती । यह एंटी-ऑक्सीडेण्ट मानव शरीर में सेल ऑक्सीडेशन की प्रक्रिया को सीमित कर ऊर्जा का संरक्षण करता है ।

यौवन के लिए लाभदायक कैन्सररोधी दवा

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार कैन्सर के इलाज के लिए बनायी जा रही नई दवाओं ने परीक्षण के दौरान चौंकाने वाली क्षमता का प्रदर्शन किया है । वैज्ञानिकों ने दावा किया है कि इन दवाओं के जरिये उस जेनेटिक व्याधि को खत्म किया जा सकता है, जिसके कारण किसी व्यक्ति का यौवन जल्दी खत्म हो जाता है । इस शोध प्रबंध दल के प्रमुख ब्रायन चैपल ने वेबसाइट पर जारी एक रिपोर्ट के माध्यम से कहा है कि विशेष तौर पर बच्चों में जीन की व्याधि के कारण 'प्रोगेरिया' नाम का मर्ज हो जाता है । इसके लिए अब तक कोई मान्य इलाज नहीं है । यह भी सही है कि यह 40 लाख में से किसी एक बच्चे को होता है । चैपल ने कहा

कि यह जन्मजात बीमारी होती है । इससे पीड़ित बच्चा देखने में तो सामान्य लगता है, लेकिन बड़े होने के साथ ही ये मानसिक कमजोरी के शिकार हो जाते हैं और इनमें आश्चर्यजनक रूप से प्रौढ़ावस्था के लक्षण दिखने लगते हैं । इन बच्चों के बाल झड़ जाते हैं, त्वचा पर झुर्रियां आने लगती हैं और वसा की भी कमी होने लगती है । इसके अतिरिक्त कई मामलों में ऐसे बच्चों में स्नायुतंत्र सम्बन्धी शिकायतें भी होती हैं । यहां तक कि 12 वर्ष की उम्र में उसे दिल का दौरा या घात तक हो सकता है ।

राज केकड़े से मिल सकता है डायबिटीज का इलाज

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार पृथ्वी पर कई अरब साल पहले अस्तित्व में जल-जीव 'राज केकड़े' ने डायबिटीज के स्थायी इलाज की संभावना पैदा की है । लेकिन यह केकड़ा अस्तित्व के संकट से घिरा है । इस उभयचर जीव को जीता-जागता जीवाश्म कहा जाता है । तीस करोड़ साल से इसमें कोई विकास नहीं हुआ और इसका जैविक रूप ज्यों का त्यों रहा । राजकेकड़ा अब केवल जापान, अमेरिका, मलेशिया, चीन और भारत में बचा है । भारत में इसकी दो नस्लें बालासोर और सुदंरबन के तटवर्ती समुद्र में मिलती हैं । विज्ञान राज्यमंत्री कपिल सिब्बल ने आश्चर्य जताया है कि इस जीव को वन्य जीव कानून के अंतर्गत चौथी अनुसूची में क्यों नहीं डाला गया । वे अब इस सिलसिले में पर्यावरण और वन मंत्रालय को पत्र लिखने जा रहे हैं । बहरहाल इसके लुप्त होने के कारणों की दो थ्योरियां हैं । कुछ लोग लाल (लिम्यूलस अमीबोसाइट लाइसेट) इंडस्ट्री को तो कुछ पर्यावरणिक कारणों को जिम्मेदार मानते हैं ।

बैद्यनाथ स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना,
आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन,
भूख न लगना तथा ऋतु
धर्म के समय होने वाली तकलीफ
व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

गुजरात

गुजराज आयुर्वेद स्टुडेन्ट्स फेडरेशन परिवार

गुजराज आयुर्वेद स्टुडेन्ट्स फेडरेशन द्वारा दि० 15/08/05 सोमवार को अहमदाबाद के टेगोर हाल में माननीय सांसद श्री हरिन पाठक (पूर्व केन्द्रीय मंत्री, भारत सरकार) की अध्यक्षता में सांस्कृतिक कार्यक्रम का बड़ी धूमधाम से आयोजन किया गया। गुजरात के आयुर्वेद महाविद्यालयों के विद्यार्थियों द्वारा रंगारंग कार्यक्रम एवं हिमालयाहर्वल हेल्थ-केयर द्वारा आयुर्वेद महाविद्यालय के प्रथम तेजस्वी विद्यार्थियों का सम्मान सभारंभ के अध्यक्ष के कर-कमलों द्वारा किया गया। अतिथि के रूप में विधायक श्री जीतुभाई वाघेला एवं भाजपा डाक्टर सलेके डॉ० अनील पटेल अतिथि के रूप में गुज०प्र०आयु०सम्मे० के प्रधानमंत्री वैद्य श्री देवेन्द्र शाह, अहमदाबाद, आयु०कॉलेज के प्राचार्य डॉ० पुष्पा शाह, रेशमबाई हॉस्पिटल, अहमदाबाद के डायरेक्टर डा० हसमुख अग्रवाल, गुज०आयु०युनि०, गुज०आयु०बोर्ड के सेनेट सिन्डिकेट सदस्य डा० हसमुख सोनी, अहमदाबाद म्यु० स्कूल बोर्ड के सदस्य डा० आनंद मकवाणा, डा०एस०वी०त्रिपाठी, प्राध्यापक डा०गनी मनसूरी, प्राध्यापक डा०डोभी और अन्य महानुभाव इस कार्यक्रम में उपस्थित रहे।

संपूर्ण कार्यक्रम का संचालन गुजरात की आयुर्वेद महाविद्यालयों के विद्यार्थी, मित्रों, नितेश प्रजापति, चिराग पटेल, मनीष शर्मा, प्रशांत गोदाणी, जलेश पटेल, हार्दिक चंदासणा, अंकुर हाड़ा ने बहुत सुंदरता पूर्वक किया।

2. जामनगर

गुज० आयुर्वेद युनिवर्सिटी में अन्तरराष्ट्रीय छात्रावास का उद्घाटन लोकसभा के विपक्ष के नेता और भाजपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष श्री एल.के.आडवाणी द्वारा संपन्न -

विश्व प्रसिद्ध जामनगर, गुजरात की आयुर्वेद विश्व विद्यालय में विदेश से आयुर्वेद के अभ्यास के लिये आनेवाले विद्यार्थियों के लिये अंतरराष्ट्रीय छात्रावास का निर्माण गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की प्रेरणा से संपन्न हुआ।

गुज०आयु० युनि० के इस कार्यक्रम में श्रम-रोजगार मंत्री श्री मुन्नुभाई बेरा, विधायक श्रीमती वसुबेन त्रिवेदी, महानगर पालिका के मेयर श्री गौतमभाई, अ०भा०आ०महा० संमे० के अध्यक्ष वैद्य पद्मश्री वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा जी दिल्ली से विशेष अतिथि के रूप में पधारे थे।

3. गुज० राज्य कामदार बीमा योजना द्वारा आयोजित आयु० परिसंवाद एवं औषधीय वृक्षारोपण-पंचकर्म योग केन्द्र।

आयुर्वेद परिवार कामदार राज्य बीमा योजना गुजरात राज्य द्वारा दि० 9/10/11-2005 को बड़ोदरा स्थित ESIS जनरल हॉस्पिटल में औषधीय वनस्पति प्रदर्शन, परिसंवाद तथा औषधीय वृक्षारोपण का कार्यक्रम आयोजित किया गया। हॉस्पिटल में पंचकर्म एवं योग केन्द्र का प्रारंभ हुआ। गुज० राज्य के आरोग्य मंत्री एवं डायरेक्टर श्री मेडिकल कमिश्नर ESIS इस कार्यक्रम में उपस्थित थे। बड़ोदरा जिला वैद्य मंडल एवं गुज०प्र०आयु०सम्मे० के पदाधिकारियों को भी इस समारोह में आमंत्रित किया गया है।

4. किडनी एवं मूत्ररोग परिसंवाद संपन्न

गुज०प्रदेश आयु० सम्मे० द्वारा आयोजित वासु फार्मास्युटीकल्स, वड़ोदरा द्वारा होटल सासुजी, वड़ोदरा के सभागृह में दिनांक 28/8/05 के दिन किडनी एवं मूत्ररोग पर ऑडियो विज्युअल आयुर्वेदिक एवं आधुनिक वैज्ञानिक पद्धति से निदान चिकित्सा पर व्याख्यान संपन्न हुआ।

बड़ोदरा शहर के सुप्रसिद्ध युरोलोजिस्ट, नेफ्रोलोजिस्ट, रेडियोलोजिस्ट तथा आयुर्वेद विद्वान जिनका नाम पूरे गुज० में वैद्य ए०एस० गुजे०साहब को पहचाना जाता है, उनका सम्मान बड़ोदरा के वासु फार्मा० के मालिक वैद्य विह्ल भाई उन्ताणी द्वारा शाल, कलश एवं पुष्प माला से किया गया।

इस समारोह में अध्यक्ष के रूप में गुज०प्र०आयु० समे० के वरिष्ठ उपाध्यक्ष आचार्य वैद्य एच०एस० कस्तुरे एवं अतिथि के रूप में श्रीमती मणिबेन सरकारी आयु०हॉस्पि० के अध्यक्ष डा०टी०एल०स्वामी तथा सभा संचालन के लिये प्रधानमंत्री वैद्य श्री देवेन्द्र शाह उपस्थित रहे।

इस परिसंवाद में सूरत आयु० महाविद्यालय के पूर्व आचार्य वैद्य पी०डी० सुबेदार, अहमदाबाद आयु०महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य एवं पूर्व निदेशक वैद्य बी०डी० नंदूरबारकर ने अपना मननीय प्रवचन प्रस्तुत किया।

गुज० के सभी जिलों से एवं महाविद्यालयों से

करीब 300 से अधिक प्रतिनिधियों ने हिस्सा लिया ।

5. ''बंधत्व इनफर्टिलीटी अपडेट परिसंवाद''

गुज०प्र०आयु०महा०सम्मे० द्वारा आयोजित एवं सेटुंडा रेशमबाई फर्टिलीटी सेन्टर के सहयोग से ''बंधत्व इनफर्टिलीटी अपडेट परिसंवाद'' का आयोजन दि० 25/09/2005 रविवार को अष्ट मंगल कॉम्पलेक्स हॉल, तीसरा माला, रेशमबाई हॉस्पिटल के सामने, राजस्थान हॉस्पिटल के पास, शाहीबाग, अहमदाबाद में किया गया है । उपरोक्त विषय पर प्रवर्तमान आधुनिक और वैधकीय चिकित्सा पद्धति के अनोखे रसप्रद कार्यक्रम में प्रसिद्ध वैद्य/डाक्टर द्वारा LIVE ओडियो सीडी द्वारा डेमोस्ट्रेशन द्वारा ज्ञानरस परोसा गया ।

Karnataka

Free Consultation camp inaugurated

The N.S.S. unit of Government Ayurveda Medical College, Banglore has conducted free consultation and free distribution of Ayurveda medicines to about five thousand patients of Chikalsandr, Bangalore. Hon'ble Governor, HIs Excellency Mr. T.N. Chaturvedi jee, inaugrurated the camp and spoke on the role of Ayurveda in health and diseases for three fourth hour. Prof. Dr. T.L. Devraj, Deputy Director of Ayurveda (retd.) presided over the meeting and spoke about the importance of Ayurveda for general public. Prof. Dr. Chikkahumaiah, B.V venkatesh, Dasaratha, B.N. Ramesh and other doctors and students attended the camp and made it successful. Dr Sridhar N.S.S. head also attended the camp. The function was ended with vote of thanks.

उत्तर प्रदेश

धन्वन्तरि अष्टांग आयुर्वेद शोध संस्थान का स्थापना दिवस हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न

उन्नाव 15 अगस्त दारोग बाग स्थित ध०अ० आयु०शोध संस्थान का स्थापना दिवस भगवान धन्वन्तरि एवं माँ सरस्वती के पूजन एवं यज्ञोपरांत एक गोष्ठी का आयोजन किया गया। उन्नाव, कानपुर, रायबरेली तथा लखनऊ से पधारे वैद्यों एवं चिकित्सकों ने अपने विचार व्यक्त किये। सभा की अध्यक्षता करते हुए संस्थान के निदेशक, वैद्य डा०ओमवीर सिंह 'वीर' ने कहा कि आज हम संक्रमण के समय से गुजर रहे हैं । आयुर्वेद के साथ लगातार सौतेला व्यवहार हो रहा है । सरकार, न्यायालय, समाज सब ही आयुर्वेद के साथ अन्याय करे पर आयुर्वेद के प्रतिनिधि भी अपने निजी हितों को ध्यान में रखते हुए आयुर्वेद की जड़ों में मट्ठा डाल रहे हैं । इसीलिये आज इस विचार गोष्ठी का शीर्षक ही ''आयुर्वेद बचाओ'' रखा गया है । इस हेतु हमें आज यह संकल्प लेना चाहिए कि 1. हम अपनी चिकित्सा पद्धति के प्रति ईमानदार बनेंगे । 2. अपने अधिकारों के प्रति जागरूक बनेंगे । 3. हम वनौषधियों के प्रति अपनी जानकारी बढ़ायेंगे । 4. आयुर्वेद के सिद्धान्तों का पालन करेंगे तथा अपने रोगियों को तथा समाज को बतायेंगे 5. असहाय रोगियों को भी निष्ठा एवं लगन से सेवा करेंगे. 6. औषधियों की (कच्चे माल) की अंधाधुंध कटान को रोकेंगे तथा उसके कृषिकरण पर जोर देंगे । 7. स्वाध्याय की अपने जीवन में महत्ता को स्वीकारेंगे ।

उपरोक्त संकल्प करने के बाद उन्होंने कहा कि तभी हम आयुर्वेद की रक्षा कर सकेंगे । आज आयुर्वेद विदेशों में जा रहा है पर हर्बल के नाम पर विदेश इसे झुठला रहे हैं यह कह कर कि भस्मों में विषाक्त धातुओं के अंश हैं क्योंकि वे शोधनमारण का अर्थ नहीं जानते । हमारे विषय विशेषज्ञ उनसे यह कहने का साहस नहीं कर पा रहे हैं उनकी औषधियों का प्राणियों पर परीक्षण करने के बाद उनको विषाक्त कहा जाय, किसी स्थान पर किसी वस्तु की स्थिति मात्र यह प्रदर्शित नहीं करती है कि वह सक्रिय अवस्था में हैं या निष्क्रिय । दूसरी बात है कि धीरे-धीरे नयी पीढ़ी आयुर्वेद के सिद्धान्तों का अध्ययन न करने के कारण अपने चिकित्सा में आयुर्वेद का उपयोग खास करके क्वाथ एवं शास्त्रोक्त औषधियों का प्रयोग कम करती जा रही है और पेटेण्ट योग का बोल-वाला होता जा रहा है जो कि आयुर्वेद के लिये सबसे घातक साबित होगा। आयुर्वेद की दश विधा परीक्षा के महत्व को कम करके एलोपैथी की एण्टी चिकित्सा का पथ धीरे-धीरे ग्रहण करता जा रहा है । जब हम मूलभूत सिद्धान्तों को ही जीवित नहीं रख सकेंगे तब कभी हम अपने को आयुर्वेदज्ञ कैसे कह सकेंगे । इस हेतु सरकार एवं विशिष्ट पदों पर बैठे

महानुभावों से मेरी अपील है कि वे आयुर्वेद के संरक्षण हेतु निम्न बिन्दुओं पर विचार करें -

1. आयुर्वेद में शोध को बढ़ावा दिया जाय । वह भी औषधि मूलक होने के साथ-साथ सैद्धान्तिक पक्ष पर जोर दिया जाय । 2. ग्रामीण इलाकों में आयुर्वेद स्वास्थ्य रक्षकों की नियुक्ति की जाय जिससे एलोपैथी के चंगुल में फँसती जा रही अबोध ग्रामीण जनता को उसके चंगुल से बचाया जा सकता है क्योंकि शहरों के लोग अब आयुर्वेद की ओर भागने लगे हैं क्योंकि वे एलोपैथी की घातकता से पूर्ण परिचित हो चुके हैं । जबकि ग्रामीण लोग अब एलोपैथ की चकाचौंध की ओर अग्रसर हो रहे हैं । आयुर्वेद के छात्रों को एलोपैथी का ज्ञान कराया जाय । साथ ही उनको एलोपैथी का प्रयोग आपातकाल में करने की छूट भी दी जाये पर ऐसे प्रतिबन्ध एवं शिक्षण की व्यवस्था की जाय कि वे अपने रोगियों को एलोपैथिक औषधियाँ देने के बजाय आयुर्वेदिक चिकित्सा करें इस हेतु उन्हें प्रोत्साहन दिया जाये तथा M.O.C.M. जैसी जगहों पर बैठे आयुर्वेद के उन ग्रेजुएटों को जो आयुर्वेद की सेवा दें उनकी सेवा को देखते हुए उन्हें प्रोत्साहन राशियों के साथ-साथ पदोन्नति शीघ्र दी जाये जिससे आयुर्वेद के जानकारों में आयुर्वेद के प्रति उत्साह बढ़े और वे उसे मन से अपनायें । आज के उपभोक्तावादी युग में सभी शीघ्रतिशीघ्र धनवान होना चाहते हैं। इसी हेतु आयुर्वेद का ग्रेजुएट एलोपैथी की ओर खिंच जाता है और एलोपैथी उसकी जीविका का मूलाधार बन जाती है, वह अपनी पैथी को धीरे-धीरे भूल जाता है पर आवश्यकता इस बात की है कि आयुर्वेद के साथ अगर न्याय हो तो आयुर्वेद की शिक्षा को आत्मसात करने के लिए मजबूर हो जायेंगे । देखा जा रहा है कि एलोपैथी के चिकित्सक अपने रोगियों को आयुर्वेद के पेटेण्ट योगों का प्रयोग करा रहे हैं और एक रूढि-सी बन गयी है कि लिव 52, विक्स वेपोरेव आर॰ कम्पाउंड जैसी दवायें एलोपैथी की है ऐसा जनता के मानस पटल पर छा गया है, अगर आयुर्वेद का चिकित्सक उनका प्रयोग करता है तो वह अंग्रेजी दवा दे रहा है ऐसा उनको अभ्यास होता है । यह एक अच्छी बात है कि आयुर्वेद की दवायें समाज को लाभ दे रही हैं पर इसके साथ-साथ आयुर्वेद के चिकित्सकों को अंग्रेजी दवायें जिनके बारे में उन्हें पढ़ाया गया है कि उपयोग करने पर रोक लगाकर सरकार तथा न्यायालय प्रत्यक्ष रूप में आयुर्वेद का नाश करते नजर आते हैं, परोक्ष रूप में कोई नहीं देखता । मेरा विचार है कि इस हेतु सरकार को निम्न बिन्दुओं पर ध्यान देना चाहिए । 1. आयुर्वेद के कालेजों का शिक्षण सुचारु रूप से किया जाये जिससे आयुर्वेद को शिक्षण पर खास करके सैद्धान्तिक पक्ष पर विशेष जोर दिया जाये । आयुर्वेद की औषधियों का निर्माण एवं उपयोग का अभ्यास कराया जाये, समय-समय पर विषय विशेषज्ञों के विशेष शिक्षण सत्र चलाकर उनकी विशेषज्ञता का लाभ दिया जाये, छात्रों में शोध की भावना को जाग्रत किया जाये । एलोपैथी के चिकित्सकों को आयुर्वेदिक औषधियाँ लिखने देने पर रोक लगायी जाये जिससे आयुर्वेद के छात्रों में अपने पेटेण्ट योगों एवं शास्त्रीय औषधियों के सहारे रोजी रोटी की समस्या रूपी राक्षस से लड़ने की आशा बँधे और वे आयुर्वेदोन्मुख हो सकें । आयुर्वेद के वैद्यों तथा आयुर्वेद की जिन औषधियों पर शोध हो उनका लाभ आयुर्वेद के लोगों को मिले इस हेतु आयुर्वेद का मंत्रालय अलग बनाया जाये, आयुर्वेद के विश्वविद्यालयों का निर्माण किया जाये C.P.M.T. से अलग इनकी प्रवेश परीक्षा ली जाये या अलग से रूचि परीक्षा ली जाये । आयुर्वेद मेडि॰ आ॰ इत्यादि पदो के नामकरण C.M.O. (आयुर्वेद) इत्यादि किये जायें जिससे पदानुकूल उनका स्तर जनता समझे और उनको समाज में सम्मान मिले तभी आयुर्वेद का विकास सम्भव है । देखा यह जाता है कि आयुर्वेद की औषधियों पर शोध करने के बाद उनके सक्रिय पदार्थों को निकालकर एलोपैथी की दवाओं का निर्माण कम्पनियाँ करने लगती हैं और आयुर्वेद का चिकित्सक मुँह देखता रह जाता है । भला वह अपना पेट कब तक काटता रह सकता है । उ॰प्र॰ में 2200 चिकित्सालय हैं जिनमें अब भी 40% जगह, खाली हैं जहाँ चिकित्सक भी हैं दवायें नहीं; एक मोटे आंकलन के आधार पर 9 पैसे वार्षिक की दर से प्रति व्यक्ति आयुर्वेद चिकित्सा पर सरकार खर्च कर रही है क्या इतने कम पैसे में आयुर्वेद को जिन्दा रखा जा सकता है जब 12

रुपये लीटर पानी मिल रहा है । अतः सरकार एवं जनता आयुर्वेद के चिकित्सकों पदाधिकारियों से मैं आज स्वतंत्रता दिवस के अक्सर पर अपील करता हूँ कि वे स्व=निज (अपनी) तंत्र =व्यवस्था (चिकित्सा व्यवस्था) यानी देशी चिकित्सा पद्धति को तन-मन-धन से अपनायें और करें। तभी हम चिकित्सा के मामले में पूर्ण स्वतंत्र हो सकते हैं। हम गुलामी की जंजीरों में न जकड़े रहें और एलोपैथी का पृष्ठ पोषण करते रहें एवं स्वयं भूखो मरते रहें । सच्चे अर्थों में आयुर्वेद जब सिद्धान्तों के साथ देश एवं विदेशों में अपनाया जायेगा तभी हम कह सकेंगे ''विजयी विश्व तिरंगा प्यारा'' और विश्व गुरु कहा जाने वाला भारत विश्व चिकित्सा का सरताज हो सकेगा । इसी आशा के साथ भारत माता की जय। जय हिन्द जय धन्वन्तरि, जय आयुर्वेद सभा को डा० कंधारी (बाल रोग विशेषज्ञ उन्नाव जिला चिकित्सालय) डा० सुभा चन्द्र करियार (प्रभारी राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय, उन्नाव) वैद्य देवदत्त द्विवेदी (प्रान्तीय प्रचार मंत्री, आयु०महासम्मेलन, उ०प्र०) वैद्य मुरली प्रसाद (अ०आयु० सम्मेलन अध्यक्ष, उन्नाव) डा०संतोष कुमार दीक्षित (उपाध्यक्ष नीमा उन्नाव) डा० हरि शंकर मिश्रा (अध्यक्ष नीमा उन्नाव) वैद्य सी०एल० वाल (कानपुर) वैद्य सुधीर (लखनऊ) वैद्य जी०वी०सिंह (रायबरेली) डा० राजेश सिंह ने सभा को सम्बोधित किया तथा अन्त में श्री ओम प्रकाश सिंह, एडवोकेट, उन्नाव ने सभी का धन्यवाद ज्ञापन किया, स्वल्पाहार के बाद सभा का समापन किया गया ।

बिहार

सूईया बाजार में बैद्यनाथ की ओर से निःशुल्क सेवा शिविर आयोजित

पूरा श्रावण मास सुल्तानगंज (भागलपुर के पास) से लेकर बैद्यनाथ धाम (देवघर) तक का सड़क मार्ग कांवरियों के 'बोल बम' से गुंजायमान होता रहता है। श्रद्धालु सुल्तानगंज में पवित्र गंगा नदी में स्नान करने के उपरान्त अपने कांवर में जल लेते हैं और पैदल बिना चप्पल-जूता के कंटकाकीर्ण, उबड़-खाबड़ चट्टानी रास्तों से छोटे-छोटे पत्थरों का मुकाबला करते हुए लगभग 105 किलोमीटर की यात्रा के उपरान्त बैद्यनाथ धाम में भगवान महादेव को जल का अर्पण करते हैं । श्रद्धालुओं की

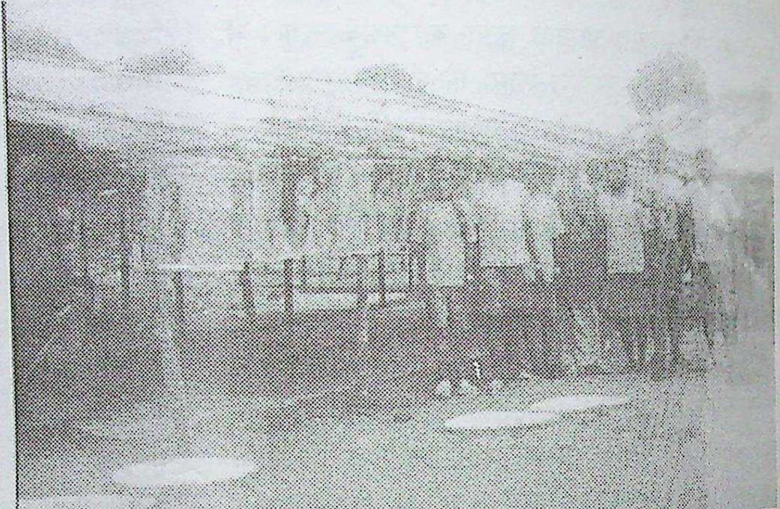

बैद्यनाथ सेवा-शिविर के कर्मी का एक दृश्य

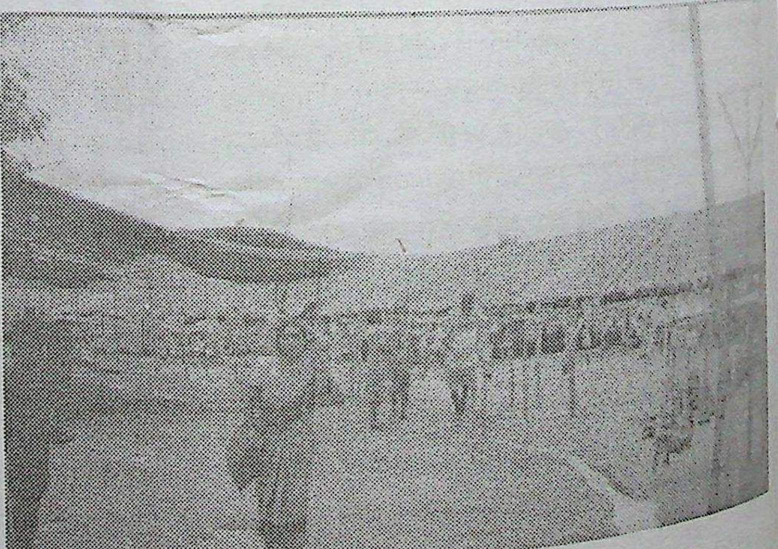

बैद्यनाथ सेवा-शिविर एक दृश्य

सेवा-भक्ति नास्तिकों को भी आस्तिक बना देती है । उनके दोनों पैर कांटों एवं पत्थरों से लहुलुहान हो जाते हैं । काफी कष्ट होता है, किन्तु वे (श्रद्धालु) बिना कष्ट की परवाह करते हुए निरन्तर आगे बढ़ते रहते हैं । इन्हीं श्रद्धालुओं की सेवा के लिए **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, पटना** निःशुल्क औषधि, विश्राम करने की जगह देते हैं और रास्ता आराम से तय करने के लिए उचित निर्देश देते हैं । संक्षेप में श्रद्धालुओं को आराम पहुंचाने के लिए हर सम्भव उपाय करते हैं ।

इस वर्ष सेवा-दल का नेतृत्व श्री विजय किशोर राय ने किया । उन्हें सहायता प्रदान की सर्वश्री उमा सिंह उर्फ साधु बाबा, सिकन्दर, प्रमोद सहित दर्जनों व्यक्तियों ने। यात्रियों की सुरक्षा के लिए सुरक्षा-प्रहरी भी तैनात थे।

श्रद्धालुओं में अनेक विशिष्ट व्यक्ति भी शामिल रहते हैं । वे अपने सुझाव शिकायत पुस्तिका में दर्ज कराते हैं । इस वर्ष विशिष्ट व्यक्तियों में प्रभुत्व थे - दिल्ली के श्री राजेश जैन, तिलरथ (बरौनी) के श्री गंगाधर झा, राजकीय पोलीटेकनिक, धनबाद के श्री रमाकान्त प्रसाद सिंह, जामतारा महाविद्यालय के प्राचार्य, श्रीरामजी, बनगांव (सहरसा) के व्याख्याता, श्री नटवर खां, उड़ीसा के श्री संजय कुमार बिलासपुर (छत्तीसगढ़) के श्री अशोक शर्मा, मुगलसराय (उ०प्र०) के श्री रवि सिंह, जोधपुर (राजस्थान) डा०एस०के०चन्द्रा आदि ।

इस तरह पूरे श्रावण मास तक **श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना** के सौजन्य से लाखों श्रद्धालुओं की सेवा निःशुल्क की गयी ।

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध ।
संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है । इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है । प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं ।

॥ बैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन ॥

P.Cd.		भाषा	
9801	अभिनव शरीर	हिन्दी	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9804	अभिनव शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9807	अग्न्यतिसार संग्रहणी-कोष्ठवात प्रकरणानि	हिन्दी	
9810	अम्लपित्त प्रकरण	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9813	AROGYA PRAKASH	ENG.	
9816	आरोग्य प्रकाश	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9819	अष्टांग संग्रह की वनौषधियाँ एवं वर्गीकरण	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9820	अष्टांग संग्रह	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9821	बिहार की वनस्पतियाँ	हिन्दी	
9822	अष्टांग संग्रह (शरीर, निदान चिकित्साकल्पसिद्ध स्थान)	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9825	अष्टांग संग्रह सूत्र स्थान	हिन्दी	पं. लालचन्द्र शास्त्री
9828	अष्टांग संग्रह उत्तरस्थान	हिन्दी	डा. माथाराम उनियाल
9831	आत्ययिक चिकित्सा	हिन्दी	
9834	औषधि विज्ञान शास्त्र	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9835	आयुर्वेद अनुसंधान दर्शिका	हिन्दी	
9837	आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान	हिन्दी	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे
9840	आयुर्वेद सार संग्रह	हिन्दी	संकलित
9843	आयुर्वेदीय औषध सेवन विधि	हिन्दी	संकलित
9846	आयुर्वेदीय हितोपदेश	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9849	आयुर्वेदीय क्रिया शरीर	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9852	आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9855	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9858	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9861	BAIDYANATH BOOK OF AYURVED KNOWLEDGE	ENG.	
9864	BAIDYANATH THERAPEUTIC GUIDE	ENG.	PT. DURGA PD.' SHARMA
9867	BASIC PRINCIPLE OF AYURVEDA RESEARCH	ENG.	SRI D.P. SHARMA AND R.P. SHAH
9868	बिहारी के आदिवासी एवं जड़ी बूटियाँ	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9869	उत्तराखंड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9870	भारतीय रस शास्त्र	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9871	बेदी वनस्पति कोष	हिन्दी	रामेश बेदी
9873	चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन	हिन्दी	डा. ज्योतिमित्र आचार्य
9876	चर्मरोग निर्देशिका	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9879	DIGESATION & METABOLISM IN AYURVED	ENG.	DR. C. DWARKANATH
9882	द्रव्यगुण विज्ञानम् (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9885	द्रव्यगुण विज्ञानम् (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9888	किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9891	मानष रोग विज्ञान	हिन्दी	श्री बालकृष्णजी अमरजी पाठक
9894	MEDICINAL FLORA OF GARHWAL HIMALAYAS	ENG.	DR. MAYARAM UNIYAL
9897	मोटापन कम करने के उपाय	हिन्दी	श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
9901	नेत्र चिकित्सा	संस्कृत	डा. बालकृष्णा शिवराम मुंजे
9904	नेत्र रोग विज्ञान	हिन्दी	
9907	निदान चिकित्सा हस्तामलक (प्रथम खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9910	निदान चिकित्सा हस्तामलक (द्वितीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9913	निदान चिकित्सा हस्तामलक (तृतीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9916	निदान चिकित्सा हस्तामलक (चतुर्थ खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजीत राय देसाई
9919	पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9922	पारद विज्ञानयम	हिन्दी	वैद्य वासुदेव मूलशंकर द्विवेदी
9925	परिषधं शब्दार्थ शरीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9928	PROBLEMS OF AYURVEDIC RESEARCH	ENG.	SRI S.K. SHASTRI 9931
	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञाणम् (पुस्तकालय संस्करण)	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9934	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञाणम् (छात्र संस्करण)		
9937	पंडित रामदयाल ज़ोशी स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	दिनकर पाण्डेय
9940	रस-भस्म सेवन विधि	हिन्दी	पं. वेनी प्रसाद वैद्य
9943	संक्रामक रोग विज्ञान	हिन्दी	कविराज बालकराम शुक्ल
9946	SCIENCE AND PHILOSOPHY OF INDIAN MEDICINES	ENG.	SRI K.K. UDUPPA
9949	शारंगधर संहिता	हिन्दी	आचार्य राधाकृष्ण पराशर
9952	सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9953	शरीर क्रिया विज्ञान	हिन्दी	
9955	THERAPEUTIC GUIDE TO AYURVEDIC MEDICINES	ENG.	PT. RAMRAKSHA PATHAK
9958	TREATISE ON 30 BAID. AYUR. PRODUCTS	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9961	त्रिदोश तत्व-विमर्श	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9964	यूनानी चिकित्सा सार	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9967	यूनानी सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9970	उपचार पद्धति और पथ्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9973	वैद्य सहचर	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9976	वनौषधि शतक	हिन्दी	पं. दुर्गा प्रसाद शर्मा
9979	यादव स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9982	यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश	हिन्दी	डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा

बैद्यनाथ
लवणभास्कर चूर्ण
मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है।

सम्पादकीय

धन्वन्तरि जयन्ती-एक संकल्प दिवस

हम आयुर्वेदज्ञ सम्पूर्ण विश्व में कार्त्तिक कृष्ण त्रयोदशी को धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह धूमधाम से मनाते हैं। इस समारोह को व्यापक स्तर पर मनाने का श्रेय श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० को जाता है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अनुसार अपने पूर्वजों को आदर एवं सम्मान प्रदान करने के कई तरीके हैं। उन तरीकों में से एक समारोह आयोजित करना भी है। भगवान धन्वन्तरि न केवल हमारे पूर्वज थे, बल्कि समस्त जीवधारियों के भी पूर्वज थे। आयुर्वेद के प्रवर्त्तक होने के कारण उन्होंने समस्त प्राणियों पर उपकार किया है जिसमें मनुष्य भी शामिल है।

आज नित नये रोग का जन्म हो रहा है। जिन रोगों के बारे में चिकित्सा-विज्ञानी जानते भी नहीं थे, आज हम उन रोगों से ग्रस्त हैं। इन रोगों की चिकित्सा करने में आयुर्वेद समर्थ है - ऐसा हम दावा करते हैं। यह सत्य है कि आयुर्वेद किसी भी रोग की चिकित्सा करने में समर्थ है, किन्तु विश्व की अधिकांश आबादी इस सत्य से अपरिचित है। हमारा दावा वास्तविकता पर आधारित होना चाहिए, कल्पना पर नहीं। यदि हम केवल दावा करते रहेंगे ओर इसे प्रमाणित नहीं कर पायेंगे तो लोग विश्वास नहीं करेंगे। विश्वास जमाने के लिए हमें साक्ष्य देने पड़ेंगे। साक्ष्य से हमारा आशय है कि चिकित्सा के द्वारा रोगियों को स्वस्थ करना पड़ेगा। आज अर्बुद, ओजक्षय (एड्स) जैसे अनेक रोग है जिनकी पूर्ण चिकित्सा किसी भी पैथी में नहीं है। जो चिकित्सा उपलब्ध भी है, वह शत-प्रतिशत सफल नहीं हो पाती है। आयुर्वेद इसमें क्रान्तिकारी भूमिका अदा कर सकता है। दुर्भाग्यवश हममें अहंकार की मात्रा ज्यादा है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि हममें जिज्ञासा का अभाव हो रहा है। किसी भी विज्ञान की पहली शर्त्त जिज्ञासा है। यदि हम जिज्ञासा उत्पन्न नहीं करेंगे, तो समस्या का हल नहीं कर पायेंगे। अधिकांश चिकित्सक जो चिकित्सा-क्रम अपनाते हैं, उससे आयुर्वेद का दूर-दूर तक कोई सम्बन्ध नहीं होता है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि आधुनिक जांच को नहीं अपनावें, बल्कि चिकित्सा-क्रम को वैज्ञानिक रूप देने के लिए यह आवश्यक भी है। विज्ञान किसी पैथी की बपौती नहीं है। यदि हम आधुनिक खोज जैसे बिजली, कार, ट्रेन, हवाई-ज़हाज उपयोग कर सकते हैं, तो जांच के तरीकों का उपयोग क्यों नहीं कर सकते हैं? हमें करना चाहिए, किन्तु रोग-निदान के एवं चिकित्सा का परिणाम जानने के लिए करना चाहिए, न कि आयुर्वेदिक सिद्धान्तों को छोड़कर इसी पर पूरी तरह अवलम्बित हो जाना चाहिए। हमें किसी भी हालत में आयुर्वेद के सिद्धांतों की तिलांजलि नहीं देनी चाहिए।

हमें आशा है, आज चिकित्सक-समुदाय इस बात का संकल्प लेंगे कि हमें आयुर्वेद के सिद्धान्तों के आधार पर ही चिकित्सा करेंगे।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-72

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

आद्य सुश्रुत / वृद्ध सुश्रुत

कविराज सूरमचन्द्र[1] ने यद्यपि दो सुश्रुत की मान्यता को स्वीकार नहीं किया है, इसके बावजूद उन्होंने जो उद्धरण दिये हैं, उससे दो सुश्रुत अर्थात् सुश्रुत प्रथम या आद्य सुश्रुत या वृद्ध सुश्रुत के अस्तित्व का बोध होता है। स्वयं सूरमचन्द्रजी ने लिखा है -

1. सुश्रुत विश्वामित्र के पुत्र थे या शालिहोत्र के - इस सम्बन्ध में उन्होंने दो सम्भावनाएं व्यक्त की हैं - (क) कदाचित् - दो सुश्रुत थे तथा संहिताकार सुश्रुत के लिए वैश्वामित्रि विशेषण प्रयुक्त हुआ है। (ख) सम्भवतः संहिताकार वैश्वामित्रि सुश्रुत को शालिहोत्र ने अपना लिया हो, जैसे शुनःशेप को विश्वामित्र ने अपनाया था।
2. हर्नलि तथा गिरिन्द्रनाथजी ने लिखा है कि सुश्रुत संहिता के पंच स्थानों के रचयिता की उत्तरतंत्र के रचयिता से पृथक्ता स्पष्ट करने के लिए सुश्रुत तथा वृद्ध सुश्रुत नाम प्रयुक्त हुए हैं।

आलोचना - दोनों विद्वानों की यह युक्ति पंगु है। हम स्पष्ट कर चुके हैं कि वृद्ध संहिता किसी आचार्य का नाम नहीं। अपितु संहिता का नाम है।

3. सम्भवतः सुश्रुत संहिता के तीन पाठ थे। सुश्रुत, वृद्ध सुश्रुत तथा लघु सुश्रुत। वृद्ध सुश्रुत का पाठ अधिक था, सुश्रुत का संक्षिप्त। लघु सुश्रुत का पाठ कदाचित् अत्यधिक संक्षिप्त हो। अतः टीकाकारों द्वारा उद्धृत वृद्ध सुश्रुत के अनेक पाठ वर्तमान सुश्रुत संहिता में नहीं मिलते।

अन्त में श्री सुरमचन्द्रजी ने स्वीकार किया कि ''यह पाठभेद सुश्रुत की भिन्न-भिन्न संहिताओं तथा किञ्चित लेखक-प्रमाद के कारण है।

श्री दासगुप्ता[2] के निम्नलिखित मत हैं :-

1. यह लगभग तय है कि सुश्रुत-संहिता के नाम से जो ग्रन्थ उपलब्ध है, वह वस्तुतः वृद्ध सुश्रुत द्वारा लिखित ग्रन्थ के समान पूरी तरह नहीं है।
2. सुश्रुत-संहिता के प्रतिसंस्कर्त्ता नागार्जुन थे।
3. श्री दासगुप्ता ने सुश्रुत-संहिता के विषय में जो लिखा है, उससे आद्य सुश्रुत या सुश्रुत प्रथम या वृद्ध सुश्रुत के अस्तित्व का बोध होता है।

हिन्दी विश्वकोश[3] में दिये गये निष्कर्ष में निम्नलिखित तथ्य हमारे सामने उपस्थित होते हैं -

1. सुश्रुत संहिता का सम्बन्ध सुश्रुत से है।
2. सुश्रुत संहिता में सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र कहा जाता है।
3. विश्वामित्र से कौन से विश्वामित्र अभिप्रेत है, यह स्पष्ट नहीं है।
4. सुश्रुत ने काशीपति दिवोदास से शल्यतंत्र का उपदेश प्राप्त किया था। काशिपति दिवोदास का समय ईसापूर्व की दूसरी या तृतीय शती संभावित है।
5. सुश्रुत का नाम नावनीतक में भी आता है।
6. अष्टांग-संग्रह में सुश्रुत का जो मत उद्धृत किया गया है; वह मत सुश्रुत संहिता में नहीं मिलता; इससे अनुमान होता है कि सुश्रुत संहिता के सिवाय दूसरी भी **कोई संहिता सुश्रुत के नाम से प्रसिद्ध** थी।
7. यह सुश्रुत राजर्षि शालिहोत्र के पुत्र कहे जाते हैं।
8. सुश्रुत के उत्तरतंत्र को दूसरे का बनाया मानकर कुछ लोग प्रथम भाग को सुश्रुत के नाम से कहते हैं, जो विचारणीय है।
9. वास्तव में सुश्रुत संहिता एक ही व्यक्ति की रचना है

प्रस्तुत कोश से भी हमें इस तथ्य को स्थापित करने में सहायता नहीं मिलती है कि वृद्ध सुश्रुत थे अथवा नहीं। यदि नहीं थे, तो सुश्रुत संहिता के वास्तविक जन्मदाता कौन थे ? क्या विश्वामित्र के पुत्र या शालिहोत्र के पुत्र अथवा किसी और के पुत्र ? प्रस्तुत कोश में भी इसका निर्णय नहीं है।

पं० हेमराज शर्मा[4] ने सुश्रुत पर विस्तृत प्रकाश

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

डाला है । संक्षेप में ये निम्न हैं :-

1. खोटाङ् प्रदेश से प्राप्त भोजपत्र पर लिखे हुए नावनीतक मापक ग्रन्थ की लिपि को देखकर विद्वानों ने इसे तृतीय या चतुर्थ शताब्दी का निश्चित किया है ।
2. इस ग्रन्थ में मङ्गलाचरण के रूप में बुद्ध का उल्लेख मिलने से बुद्ध के कितने समय पश्चात् इस ग्रन्थ की रचना हुई है यह नहीं कहा जा सकता ।
3. चरक नाम से प्रसिद्ध चरक संहिता के आविर्भाव के बाद यदि नावनीतक का निर्माण हुआ हो, तो वाग्भट्ट आदि ग्रन्थों के समान प्रसिद्ध चरक का इसमें उल्लेख अवश्य होता । इस प्रकार यह **चरक के समय से भी प्राचीन प्रतीत होता है** ।
4. सुश्रुत न केवल आर्य नागार्जुन तथा नावनीतक से ही, प्राचीन है, अपितु, महाभाष्यकार के **'तद्धितेंष्वचामादे;** (7-2-117) तथा इको गुणवृद्धी (1-1-3) सूत्रों की व्याख्या में "सौश्रुत:" तथा **'शाकमार्थिवादीनामुपसंख्यानम्'** (2-1-170) इस वार्तिक में 'कुत पवासा: सौश्रुत: कुतपसौश्रुत:?' निर्देश से यह महाभाष्यकार तथा कार्तिककार से भी प्राचीन प्रतीत होता है ।
5. पाणिनि द्वारा 'कार्तकौजपादयश्च' (6-2-37) इस सूत्र के गण में "सौश्रुतपार्थिवा:" में अपत्य अर्थ के सूचक प्रत्ययान्त सौश्रुत शब्द के दिया होने से न केवल सुश्रुत अपितु उसके वंशवाले अथवा उसके शिष्य और सम्बन्धी भी पाणिनि से प्राचीन प्रतीत होते हैं ।
6. शालिहोत्र का शिष्य एवं पुत्र सुश्रुत तथा धन्वन्तरि द्वारा उपदिष्ट विश्वामित्र का पुत्र सुश्रुत दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते हैं ।
7. ग्रन्थों के मिलने से, अन्य ग्रन्थों के निर्देश होने से, अन्य आचार्यों द्वारा ग्रहण किया जाने से तथा शिलालेख आदि के उल्लेख से धान्वन्तर सुश्रुत की जिस प्रकार प्रसिद्धि है वैसी शालिहोत्र के पुत्र सुश्रुत की प्रसिद्धि नहीं है । इसलिए जहां भी सुश्रुत के नाम का निर्देश मिलता है वहां साधक और बाधक प्रमाणों के अभाव में शल्य चिकित्सक एवं धान्वन्तर सुश्रुत की ही प्रतीति होती है ।

उपर्युक्त सभी तथ्यों का विश्लेषण करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि सुश्रुत अनेक थे । उन सुश्रुतों में से एक वृद्ध सुश्रुत या सुश्रुत प्रथम हो, तो कोई शक नहीं ।

सुश्रुत

आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने सुश्रुत के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये हैं, वे संक्षेप में निम्नानुसार हैं :-

1. सुश्रुत शातवाहन साम्राज्य के काल में हुए थे ।
2. गुदों, कृत्या और राक्षसों पर विश्वास था तथा इसके निवारण के लिए यंत्र, बलि आदि का प्रयोग होता था । सुश्रुत संहिता का एक पूरा अध्याय (अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध, 3.6.) इसी विषय पर है ।
3. 'रिपवो विक्रमाक्रान्ता:' (क०1/2) में 'विक्रम' शब्द सम्भवत: विक्रमादित्य का संकेतक है जो गौतमीपुत्र शातकीर्णि की उपाधि थी ।
4. दक्षिण भारतीय नामों की अधिकता के कारण ऐसा अनुमान होता है कि सुश्रुत दक्षिण भारत से विशेष परिचित थे ।

   सम्भवत: वह शातवाहन सम्राट से सम्बद्ध थे या उसी कुल के कोई आचार्य थे ।
5. ऐतरेय ब्राह्मण में आन्ध्रप्रदेश की उत्पत्ति विश्वामित्र से मानी जाती है । क्या इस कारण सुश्रुत को विश्वामित्र पुत्र कहा गया इस तथ्य पर भी विचार करना चाहिए ।
6. सुश्रुत ने शोभाञ्जन के लिए 'मुरंगी' शब्द का योग किया है (चि० 16/2) जो दक्षिण भारतीय शब्द है ।
7. प्रतिभू 'साक्षित्व, समाह्वान, गोष्ठी, वाहित्र निषिद्ध किया गया है (चि० 24/98) । इससे तत्कालीन सात्विक विचारधारा स्पष्ट होती है तथा गुप्त कालीनस्थिति से इसका वैलक्षण्य स्पष्ट होता है ।
8. वृद्ध सुश्रुत का काल 1000-1500 ई०पू० है ।
9. सुश्रुत 2री शती का है । इसने मूल संहिता का प्रतिसंस्कार किया ।

श्री अत्रिदेव विद्यालंकार[3] ने निम्न मत व्यक्त किये हैं :-

1. सुश्रुत और चक्रदत्त में सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र कहा गया है, परन्तु कौन विश्वामित्र यह स्पष्ट नहीं है । सत्य हरिश्चन्द्र की कथा या त्रिशंकु की कथा से

सम्बन्धित विश्वामित्र का भी इससे सम्बन्ध नहीं जुड़ता ।

2. महाभारत के अनुशासन पर्व के चौथे अध्याय में विश्वामित्रों के पुत्रों में सुश्रुत का नाम आता है । भावप्रकाश में विश्वामित्र द्वारा अपने पुत्र सुश्रुत को आयुर्वेद पढ़ने के लिए काशिराज दिवोदास धन्वन्तरि के पास भेजने का जो उल्लेख है, वह इसी उपलब्ध सुश्रुत के आधार पर है ।
3. सुश्रुत का समय बौद्धकाल के अनन्तर ही निश्चित होता है ।
4. धन्वन्तरि दिवोदास का समय ही सुश्रुत का समय है, जो कि ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी सम्भावित है।
5. शालिहोत्र में सुश्रुत धन्वन्तरि से न पूछकर शालिहोत्र से प्रश्न करता है । यद्यपि शिष्य के लिए भी पुत्र शब्द मिलता है, परन्तु सुश्रत संहिता में शालिहोत्र का नाम तथा शालिहोत्र-कृत अश्ववैद्यक में धन्वन्तरि का नाम न होने से स्पष्ट है कि उक्त ग्रन्थ में आये हुए नाम इतिहास की दृष्टि से महत्व नहीं रखते ।

श्री सूरमचन्द्रजी[6] ने सुश्रुत के सम्बन्ध में निम्न मत व्यक्त किये हैं :-

1. धन्वन्तरि के सातों शिष्यों में से केवल सुश्रुत का तंत्र उपलब्ध है ।
2. सुश्रुत महर्षि विश्वामित्र का पुत्र था ।
3. राम को धनुर्विद्योपदेष्टा विश्वामित्र सुश्रुत का पिता था । गाधिराज-विश्वामित्र का पुत्र होने से ही सुश्रुत को ऋषि कहा है ।
4. दो सुश्रुत सम्बन्धी सम्भावनाएं स्वयं कविराज जी ने व्यक्त की हैं ।
5. भेल संहिता के आधार पर उन्होंने लिखा है कि सम्भवत: एक ही काल में सुश्रोता तथा सुश्रुत दो व्यक्ति थे, अथवा कहीं-कहीं सुश्रोता शब्द का भ्रष्ट पाठ सुश्रुत हो गया हो ।
6. सुश्रुत ऋषि, वाग्भट का पूर्ववर्त्ती था, तथा अग्निवेश आदि का समकालिक था ।
7. नागार्जुन ने लम्बे काल में सुश्रुत संहिता का प्रतिसंस्कार कब किया, यह अभी अज्ञात है ।
8. ऋषि सुश्रुत वार्तिककार कात्यायन से पूर्व हो चुका था ।
9. सुश्रुत अवश्य ही पाणिनि का पूर्ववर्त्ती था ।
10. सुश्रुतकार ऋषि था । महाभारत के 300 वर्ष उत्तर तक ऋषिकाल रहा । अत: ऋषि सुश्रुत उस काल के पश्चात् नहीं हो सकता ।
11. सुश्रुत तथा आत्रेय को छठी शती ईसा-पूर्व रखना भारी भूल है ।
12. जोसेफ नीधम के लेख पर उनकी आलोचना है कि "गप्प की कोई सीमा होती है । सुश्रुत-संहिता को वर्तमान पाठ पर गयदास और जेज्जट आदि की टीकाएं थीं । जेज्जट विक्रम भी चतुर्थ शती में था । उसकी स्वीकृत सुश्रुत-संहिता को 11वीं शती ईसा में रखना महा पक्षपात और पराकाष्ठा का अज्ञान है ।
13. काशिराज दिवोदास ने धन्वन्तरि को आयुर्वेदोपदेश दिया ।
14. सुश्रुत ने जिन शिष्यों को पढ़ाया वे सौश्रुत कहाए ।
15. सुश्रुत संहिता के उत्तरतंत्र में कविराजजी की आलोचना है कि "वस्तुत: ऋषि सुश्रुत ने ही उत्तरतंत्र की रचना की । आचार्य प्रवर श्री यादवजी ने सुश्रुत संहिता, निर्णय सागर-संकरण, तृतीयावृत्ति भूमिका पृ०20 पर अनेक सबल युक्तियों से इस मत को उत्पादित किया है । एतद्विषयक एक युक्ति का उल्लेख हम नीचे करते हैं -

पूर्वपक्षी कहते हैं कि सुश्रुत संहिता के उत्तरतंत्र के आरम्भ में ऊर्ध्वजत्तु रोगों के प्रकरण में विदेहादि का प्रामाण्य माना है, तथा कुमारतंत्र में पार्वतक, जीवक आदि का । अत: यह तंत्र सुश्रुतरचित नहीं ।

उत्तरपक्ष - प्राचीन परम्परा के अनुसार शालाक्य तथा कौमारभृत्य को परतंत्र विषय समझ ऐसा उल्लेख किया है ।

स्मरण रहे कि उत्तरतंत्र को भी अनेक आचार्य अपनी-अपनी मूल संहिताओं में स्वयं लिखते थे । यथा -

क. अष्टांग हृदय में ।

ख. अष्टांग संग्रह में

ग. वृद्ध जीवकीय तंत्र में खिल स्थान के रूप में।

श्री जी.पी. श्रीवास्तव[7] ने सुश्रुत के सम्बन्ध में निम्न प्रकाश डाला है -

1. सुश्रुत धान्वन्तर-सम्प्रदाय के प्रतिनिधि थे ।
2. सुश्रुत धन्वन्तरि के प्रथम शिष्य थे ।
3. हार्नले के अनुसार सुश्रुत ई०पू० 6ठी शती में पैदा हुए थे । ''सुश्रुत संहिता का प्रारम्भिक भाग वृद्ध सुश्रुत के द्वारा लिखा गया था जो सम्भवतः ई०पू० 6ठी शती में रहते थे ।'' (स्रोत - फर्माकोपिया इण्डिका - बसु के. सी. हार्नले के अनुसार)
4. ''सुश्रुत संहिता की वास्तविक तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु सही कारणों से यह 6ठी शती का ज्ञात होता है,'' (स्रोत: ब्रेडफील्ड मेजर जेनरल ई० डब्लु० सी० इण्डियन मेडिक रिव्यू, 1938-हार्नले के अनुसार)
5. डा० रे के अनुसार ''इस अवधि की दो महान कृति चरक और सुश्रुत हैं, इन दोनों में से चरक ज्यादा प्राचीन है ।'' (स्रोत: ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ हिन्दू मटेरिया मेडिका-चक्रवर्ती सी)।
6. डा० उदय चन्द्र दत्त लिखते हैं - ''चरक सामान्यता सुश्रुत से प्राचीन माने जाते हैं और परिणामतः उपलब्ध चिकित्सा-विज्ञान पर संस्कृत में लिखी गयी सर्वाधिक प्राचीन कृति'' (स्रोत: इण्डिजेनस ड्रग्स ऑफ इण्डिया: चोपड़ा आर.एन.)
7. ''अस्थि विज्ञानीय सिद्धान्तों का सारांश जैसा हम चरक और सुश्रुत में पाते हैं, वैसा ज्ञात प्राचीन ग्रीक चिकित्सा-विज्ञान में नहीं पाया जाता है ।'' (स्रोत: यूनानी चिकित्सा विज्ञान-दलजीत सिंह -हार्नले के अनुसार)
8. बावर पाण्डु लिपि में सुश्रुत ने स्वयं को ऋषि के रूप में दर्शाया है । प्रथम भाग के सातवें और आठवें भाग में कहा गया है कि ''उस पर्वत पर निम्नलिखित मुनि निवास करते हैं - आत्रेय, हारीत, पराशर, भेल, गार्ग्य, सामवाय, सुश्रुत, वशिष्ठ, कवल और काप्य - वे औषधीय पादपों के स्वाद, गुण-धर्म, प्रकृति, प्रभाव और नामों को जानने के लिए विचरते रहते थे,'' (स्रोत: इण्डिजेनस ड्रग्स: डे.के.एल) । इस तरह सुश्रुत वशिष्ठ के समकालीन थे जो विश्वामित्र के समकालीन थे जिनके वे पुत्र कहे जाते हैं ।
9. यह एकदम असामान्य बात है कि सुश्रुत के दो पिता विश्वामित्र और शालिहोत्र हों ।
10. 'मेटोरिया मेडिका ऑफ हिन्दूज'' में श्री उदय. चन्द्र दत्त ने लिखा है कि सुश्रुत प्राचीन बनारस नगर में रहते थे और अपने ग्रन्थ की रचना वहीं पर की । हार्नले भी इस मत से सहमत थे । उन्होंने ''स्टडीज इन द मेडिसीन ऑफ एनसियेन्ट इण्डिया' में लिखा है कि बुद्ध के समय अर्थात् ई०पू० 6ठी शती में भारतवर्ष में विद्या के दो स्थान थे पश्चिम में तक्षशिला और पूर्व में बनारस ।
11. इसमें कोई संदेह नहीं कि **सुश्रुत संहिता का मुख्य भाग** बड़े सुश्रुत अर्थात् वृद्ध सुश्रुत ने लिखा और उत्तर तंत्र या मुख्य ग्रन्थ का पूरक अन्य सुश्रुत ने लिखा ।
12. दूसरे सुश्रुत या अन्य सुश्रुत ने मुख्य ग्रन्थ का प्रतिसंस्कार इस तरह किया है कि सम्पूर्ण ग्रन्थ एक ही व्यक्ति की रचना मालूम होती है । छोटे सुश्रुत या दूसरे सुश्रुत या अन्य सुश्रुत प्रख्यात् वैद्य रसायनज्ञ, नागार्जुन (ई०पू० प्रथम शती से ई० पश्चात् प्रथम शती) के समकालीन थे या दोनों एक थे ।

सुश्रुत का काल

13. डा० राय के इस कथन के सम्बन्ध में श्री जी.पी. श्रीवास्तव ने लिखा है कि उन्हें (श्रीवास्तव) उनके इस वाक्य से भय है कि '' 5वीं शती के प्रारम्भ में सुश्रुत का अस्तित्व था जो निस्संदेह स्थापित हो चुका है, ''(स्रोत: मेटेरिया मेडिकाज आफ हिन्दूज, 1922-दत्त यू.सी.) । इस कथन से भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो चुकी है । हम नहीं जानते हैं सुश्रुत से उनका आशय मूल सुश्रुत से है या प्रतिसंस्कर्त्ता से । यदि मुद्रण की भूल है अर्थात् - बी.सी. (ई.पू.) की जगह एडी (ई पश्चात्) छप गया है, तो भ्रम का निदान कुछ हद तक सम्भव दिखलायी पड़ता है ।

14. निम्नलिखित विद्वानों ने सुश्रुत के निम्न काल का विवरण दिया है -

हेसलर - सुश्रुत संहिता के लैटिन अनुवाद में सुश्रुत का काल 1000 ई.पू. है ।

श्री जी.एन.मुखोपाध्याय-हिस्ट्री ऑफ इण्डियन मेडिसीन, Vol. III के अनुसार 1000 ई०पू०।

हार्नले-स्टडीज इन मेडिसिन ऑफ एनसियेन्ट इण्डिया के अनुसार - 600 ई.पू. ।

पी.सी.राय - हिस्ट्री ऑफ हिन्दू केमिस्ट्री, Vol.I - 5वीं शती ? (यह मानकर कि मुद्रण की भूल है) ।

लेटार्ड - लेटर्स हिस्टोरिक्स सर लेटाट डे ला मेडिसिन चेज लेस हिन्दूज के अनुसार वर्त्तमान शती के प्रारम्भ में ।

न्यूबर्गर - हिस्ट्री ऑफ मेडिसीन, Vol. I के अनुसार 5वीं शती ।

लेनसेराक्स - ट्रीटाइज ऑन सिफलिस के अनुसार - 400 ई. पश्चात् ।

मैकडानेल - हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटचेर 4थी शती ।

डायमॉक - फर्माकोग्राफिया इण्डिया के अनुसार 10 वीं शती ।

हैस - एसे ऑन द ओरिजिन ऑफ हिन्दू मेडिसिन के अनुसार - 12 वीं शती ।

हैस ने न केवल यह साबित करने के लिए कि पश्चिम पूर्व से श्रेष्ठ है, सुश्रुत सुकारात का अनुवाद बताया जिससे ग्रीक हिप्पोक्रेट्स का अरबी अनुवाद 'बुकरात' के नाम से संशय उत्पन्न होता है । वे तो काशी को भी हिप्पोक्रेट्स की जन्म स्थली कोस को बताते हैं । वे तो यहां तक बताते हैं कि भारतीय चिकित्सा पद्धति का विकास 10 वीं शती से 16 वीं शती के मध्य हुआ है । श्री हैस का यह तर्क बेबुनियाद एवं सत्य से परे है ।

15. सारे निष्कर्षों पर विचार करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि सुश्रुत का काल 1000 ई.पू. है ।
16. महाभारत का काल 7वीं शती ई.पू. है - ऐसा इतिहासकार बताते हैं । शतपथ ब्राह्मण में सुश्रुत के सिद्धान्तों का जिक्र है जो 6ठी शती ई.पू. है । कात्यायन ऋषि 4थी शती ई.पू. में रहते थे । इन सभी साक्ष्यों से इस बात का संकेत मिलता है कि न केवल चरक बल्कि सुश्रुत भी बौद्ध काल के पूर्व थे ।
17. चरक और सुश्रुत के काल में अन्तर कम रहा होगा। अतः सुश्रुत का काल 1000 ई.पू. से लेकर 600 ई. पू. के मध्य मानना उचित होगा ।
18. दो सुश्रुत थे । प्रथम (1000 ई.पू.-600 ई.पू.) सुश्रुत और छोटा अर्थात् द्वितीय सुश्रुत (पहली शती ई.पू. से लेकर पहली शती ई. पश्चात् के मध्य) ।

श्री दासगुप्ता[8] ने अपनी पुस्तक में निम्नलिखित मत व्यक्त किये हैं :-

1. यह स्पष्ट है कि सुश्रुत संहिता में जो कुछ भी लिखा गया है, वह सुश्रुत के पारम्परिक उपदेश से लिया हुआ है, अथवा नागार्जुन के द्वारा पूरी तरह से प्रतिसंस्कृत है, किन्तु, प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या नागार्जुन अकेले व्यक्ति हैं कि जिन्होंने सुश्रुत संहिता का प्रतिसंस्कार किया है ? डल्हण के कथन से ज्ञात होता है कि नागार्जुन सुश्रुत-संहिता प्रतिसंस्कारकर्त्ता थे। किन्तु 'इव' शब्द से ज्ञात होता है कि सुश्रुत संहिता का कोई अन्य संस्करण होगा या अन्य कोई प्रतिसंस्कर्त्ता होगा ।
2. यह सोचना भी उचित नहीं है कि सुश्रुत-संहिता को प्रतिसंस्कृत करने का कार्य चक्रपाणि के पूर्व तक था।
3. यह पूरी तरह से कहना सम्भव है कि चक्रपाणि के पश्चात् एक संस्करण सुश्रुत-संहिता में जोड़ा गया है अथवा डल्हण को जो सुश्रुत संहिता ज्ञात थी, वह चक्रपाणि को ज्ञात नहीं था । इसका प्रमाण यह है कि बस्ति-क्रिया में औषधि प्रयोग करने की जो विधि थी और जिस पर डल्हण ने अपनी टिप्पणी दी थी, वह वस्तुतः चरक संहिता (उत्तर-बस्ति, सिद्धि स्थान, XII) के बस्ति स्थान में अनुपस्थित है । चरक संहिता का यह संस्करण दृढ़बल द्वारा जोड़ा गया है विदित है कि दृढ़बल आठवीं या नौवीं शती में कश्मीर या पंजाब में थे ।
4. यह तथ्य है कि सुश्रुत का प्रतिसंस्कार ईश्वरकृष्ण (200 ई. पश्चात्) की कृति के पश्चात् किया गया है

जो इस दृष्टिकोण से सहमत हैं कि इसका प्रतिसंस्कार नागार्जुन ने किया है । विदित है कि नागार्जुन चौथी या पांचवीं शती में थे । किन्तु, यह एकदम असम्भव प्रतीत होता है कि जो व्यक्ति **6ठी शती इ.पू. में** थे, उनकी कृति का प्रतिसंस्कार 7, 8 या 9 सौ वर्ष पश्चात किया गया है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि सुश्रुत की कृति अत्यन्त पूर्व से उपलब्ध थी ।

5. सुश्रुत-संहिता के प्रतिसंस्कार का कार्य केवल एक अवधि तक सीमित नहीं था ।

श्री मुखोपाध्याय[9] की सम्मति में सुश्रुत के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य स्थापित थे - इस सम्बन्ध में अक्टूबर, 2005 में प्रकाशित आलेख में निष्कर्ष दिये गये हैं, किन्तु वे निष्कर्ष केवल सुश्रुत प्रथम या वृद्ध सुश्रुत के निष्कर्ष तक सीमित थे । सुश्रुत द्वितीय अर्थात् सुश्रुत जिनके बारे में आम लोग जानते हैं, उनके बारे में श्री मुखोपाध्याय के मत को उद्धरित करना उचित होगा । इस सम्बन्ध में उनके मत निम्न हैं :-

1. सुश्रुत द्वितीय सुश्रुत तंत्र के प्रतिसंस्कर्त्ता थे - इस विषय पर मतभेद है ।
2. सुश्रुत का अस्तित्व 1000 ई.पू. के पूर्व था । अन्तिम अवधि जो इतिहासकारों ने बतायी है, वह 600 ई.पू. है ।
3. अन्तिम निष्कर्ष यह है कि सुश्रुत का अस्तित्व 1000 ई.पू. के पहले अवश्य था ।
4. ट्वेन्टीथ सेन्च्यूरी प्रेक्टिस ऑफ मेडिसिन (Twentieth Century Practice of Medicine, Vol. X VIII) के अनुसार सुश्रुत का अस्तित्व ईसाई संवत् प्रारम्भ होने के काफी पूर्व था । यद्यपि वास्तविक तिथि ज्ञात नहीं है, किन्तु आत्रेय ने कुष्ठ का जो वर्णन किया है, उसके अनुसार कम से कम 600 ई.पू. या इसके पूर्व अवश्य होनी चाहिए ।
5. श्री मुखोपाध्याय की कृति 'द सर्जिकल इन्स्ट्रूमेन्ट्स ऑफ हिन्दूजा' के अनुसार सुश्रुत का अस्तित्व 1000 ई.पू. के पहले अवश्य था । उन्होंने श्री दास के इस कथन पर सप्रमाण घोर आपत्ति प्रकट की कि सुश्रुत का अस्तित्व 5वीं शती में था ।
6. सुश्रुत संहिता का प्रतिसंस्कार निम्नलिखित विद्वानों ने किया :-
   - क. नागार्जुन जो राजा कनिष्ठ के समय में थे अर्थात् ई.पू. प्रथम शती में थे, सुश्रुत संहिता के प्रतिसंस्कारकर्त्ता थे ।
   - ख. इसके पश्चात् चिकित्सा-कलिका के रचयिता जेज्जट थे । उनका अस्तित्व नौवीं शती में था ।
   - ग. इसमें कोई संदेह नहीं कि सुश्रुत की कृति का प्रतिसंस्कार किया गया था । यदि ऐसा नहीं होता तो यह श्लोक[10] कभी भी सुश्रुत संहिता में नहीं लिखा होता ।

औपधेनवमौरभ्रं सौश्रुतं पौष्कलावतम् ।
शेषाणां शल्यतंत्राणां मूल्यान्येतानि निदुर्दशेत् ॥

शेषाणां शब्द के प्रयोग से ज्ञात होता है कि "औपधेनव, औरभ्र, सुश्रुत और पौष्कलावत् की शल्य कृति इस विषय से सम्बन्धित अन्य ग्रन्थों पर आधारित है ।"

- घ. लघु सुश्रुत (MS. Pheh,2) की संक्षिप्त आवृत्ति मौजूद है और इसी प्रकार का एक अन्य ग्रन्थ सुश्रुतकार (MS. Radh, 23) भी उपलब्ध है । सुश्रुत संहिता[10,11] के अनुसार सुश्रुत का पिता

विश्वामित्र था ।

सभी तथ्यों का विश्लेषण करने के उपरान्त हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचते हैं :-

1. सुश्रुत संहिता में 'संहिता' नाम से ही स्पष्ट है कि यह एक व्यक्ति की रचना नहीं है, बल्कि अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत इसमें व्यक्त किये हैं । अतः 'संहिता' शब्द के प्रयोग से यह निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सुश्रुत संहिता के मूल लेखक केवल एक विद्वान नहीं थे, बल्कि अनेक थे । संहिता शब्द का अर्थ ही होता है - संग्रह ।
2. वृद्ध सुश्रुत या सुश्रुत प्रलप का अस्तित्व निश्चित रूप से था ।
3. सुश्रुत द्वितीय ने शेष अध्याय का प्रणयन या संस्कार इस तरह किया कि समग्र ग्रन्थ एक व्यक्ति की रचना

मालूम हो । इसके बावजूद शेषाणो शब्द के प्रयोग से उनका मनोरथ पूरा नहीं हो सका ।

पं० हेमराजजी[12] ने सुश्रुत के सम्बन्ध में निम्न प्रकाश डाला है :-

1. सुश्रुत न केवल आर्य नागार्जुन तथा नावनीतक से भी प्राचीन हैं अपितु महाभाष्यकार के **''तद्धितेष्वचामादेः''** (7-2-117) तथा **इकोगुणवृद्धी** (1-1-3) सूत्रों की व्याख्या में **'सौश्रुतः'** तथा 'शाकपार्थिवादीनामुयसंख्यानाम्। (2-1-170) इस वार्तिक में 'कुतपवासाः सौश्रुतः कुत सौश्रुतः निर्देश से यह महाभाष्यकार तथा वार्तिककार से भी प्राचीन प्रतीत होता है । इतना ही नहीं, पाणिनि द्वारा **'कार्तकौजपादयश्च'** (6-2-37) इस सूत्र के गण में **''सौश्रुतपार्थिवाः''** के अपत्य अर्थ के सूचक प्रत्यान्त सौश्रुत शब्द के होने से न केवल सुश्रुत अपितु उसके वंश वाले अथवा उसके शिष्य और सम्बन्धी भी पाणिनि से प्राचीन प्रतीत होते हैं ।
2. व्याकरण के अनुसार सुश्रुत का वैद्यकाचार्यत्व, प्रतीत न होने पर भी **'सुश्रुतस्य छात्राः सौश्रुताः'** द्वारा सौश्रुत शब्द का अर्थ लिखने वाले काशिकाकार तथा न्यासकार आदि प्राचीन वैयाकरणों के लेख से भी वह मूलभूत सुश्रुत साधारण व्यक्ति प्रतीत न होकर विद्या-सम्प्रदाय का प्रवर्तक होने से सौश्रुतों का आचार्य प्रतीत होता है । विद्या सम्प्रदाय के प्रवर्तक के रूप में इस शल्याचार्य सुश्रुत को छोड़कर अन्य किसी सुश्रुत का कहीं उल्लेख नहीं मिलता है ।
3. भिषगाचार्य सुश्रुत का नागार्जुन द्वारा उपायहृद्य में, वाग्भट, नावनीतक, ज्वर समुच्चय आदि में तथा जय वर्मा के शिलालेख में भी उल्लेख मिलने एवं इसी के ग्रन्थ का अरब आदि देशों में अनुवाद होने से, हरिवंश पुराण के सदृश दिवोदास का ब्राह्मण उपनिषत् आदि में मिलने से सुश्रुत संहिता में विश्वामित्र के पुत्र सुश्रुत द्वारा दिवोदास से आयुर्वेद के ग्रहण का उल्लेख होने से तथा महाभारत में भी विश्वामित्र के पुत्रों में सुश्रुत का उल्लेख होने से प्राचीन समय से ही इस शल्य चिकित्सक सुश्रुत की ही सम्प्रदाय-प्रवर्तक आचार्य के रूप में प्रसिद्धि प्रतीत होती है ।
4. व्याकरण के सूत्रकार, वार्तिककार तथा भाष्यकारों द्वारा निर्दिष्ट, सुश्रुत भी यही है जो पाणिनि से पूर्व दिवोदास के समान ही उपनिषत्कालीन प्रतीत होता है ।
5. आग्नेय पुराण में (अ०279-292) नर, अश्व तथा गौओं से सम्बन्धित आयुर्वेद के विषय में जिज्ञासापूर्वक प्रश्न करने पर सुश्रुत को धन्वन्तरि द्वारा उसके उपदेश का वर्णन मिलने से धन्वन्तरि के समान उसका शिष्य सुश्रुत भी मनुष्यों के आयुर्वेद की तरह गौ तथा अश्व सम्बन्धी आयुर्वेद का भी ज्ञाता प्रतीत होता है ।
6. शालिहोत्र के ग्रन्थ में प्रष्टा (शिष्य) रूप से सुश्रुत का नाम आता है । शिष्य के लिए भी किसी-किसी ग्रन्थ में पुत्र शब्द का निर्देश मिलता है । परन्तु यहां **'पुत्राः शिष्याश्च पृच्छन्ति विनयेन महामुनिम्'** इस वाक्य द्वारा पुत्र एवं शिष्यों का पृथक्-पृथक् निर्देश होने से तथा सुश्रुत का अनेक बार पुत्ररूप से स्पष्ट उल्लेख होने से शालिहोत्र अश्वशास्त्र के विषय में उपदिष्ट सुश्रुत शालिहोत्र का पुत्र ही प्रतीत होता है । इसके विपरीत सुश्रुत संहिता में शल्य चिकित्सक सुश्रुत का विश्वामित्र के पुत्र रूप में निर्देश दिया गया है । महाभारत आदि में भी ऐसा ही मिलता है ।
7. यदि शालिहोत्र तथा धन्वन्तरि द्वारा उपदिष्ट सुश्रुत एक ही हो तो अश्ववैद्यक के आचार्य शालिहोत्र या उसके शिष्य सुश्रुत ने आयुर्वेद के अन्य आचार्यों के साथ तत्कालीन एवं अत्यन्त प्रसिद्ध धन्वन्तरि तथा दिवोदास का उल्लेख क्यों नहीं किया तथा सुश्रुत संहिता के कर्त्ता सुश्रुत को भी अश्वशास्त्र के आचार्यं होने पर भी एक प्रस्थान रूप में इतने प्रसिद्ध अपने पिता या शालिहोत्र का कहीं प्रसंङ्गवश निर्देश करना चाहिए था । अन्य आचार्यों के वैद्यक विषयों से परे तथा पीछे से मिलाये गये उत्तरतंत्र में सुश्रुत, सौश्रुत, या प्रतिसंस्कर्ता ने इसका नाम क्यों नहीं दिया । इस प्रकार शालिहोत्र का शिष्य एवं पुत्र सुश्रुत तथा धन्वन्तरि द्वारा उपदिष्ट विश्वामित्र का पुत्र सुश्रुत दोनों भिन्न-भिन्न व्यक्ति प्रतीत होते हैं ।

8. शालिहोत्रेण गर्गेण सुश्रुतेन च भाषितम् ।
तत्वं यद्वाजिशास्त्रस्य तत्सर्वमिह संस्थितम् ॥

सिद्धोपदेशे संग्रह नामक अश्ववैद्यक ग्रन्थ के उपर्युक्त श्लोक में सुश्रुत का अश्ववैद्यक के उपदेष्टा के रूप में उल्लेख किया गया है । परन्तु, अग्निपुराण के अनुसार धन्वन्तरि के शिष्य सुश्रुत का भी अश्ववैद्यक का ज्ञाता होना प्रकट होता है । इस प्रकार यह नहीं कहा जा सकता कि इस श्लोक में अश्वशास्त्र के उपदेशक के रूप में दिया हुआ सुश्रुत शालिहोत्र का शिष्य है या धन्वन्तरि का। यदि शालिहोत्र तथा गर्ग के साहचर्य से इस दुर्लभ गणोक्त सुश्रुत को शालिहोत्र का शिष्य मान भी लें तो उसी के वचन के अनुसार इसका अश्वशास्त्र सम्बन्धी कोई ग्रन्थ होना चाहिए । परन्तु इस शालिहोत्र के पुत्र सुश्रुत का आजकल एतद्विषयक कोई ग्रन्थ नहीं मिलता है । उसके ग्रन्थ का उल्लेख वचनों का उद्धरण तथा नाम मात्र भी इस गणकृत ग्रन्थ के अतिरिक्त अन्य किसी भी आयुर्वेद के ग्रन्थ में नहीं मिलता है । इसलिए इस सुश्रुत के विषय में अब कुछ भी कहना कठिन है । ग्रन्थों के मिलने से, अन्य ग्रन्थों में निर्देश होने से, अन्य आचार्यों द्वारा ग्रहण किया जाने से तथा शिलालेख आदि के उल्लेख से धान्वन्तर सुश्रुत की जिस प्रकार प्रसिद्धि है वैसी शालिहोत्र के पुत्र सुश्रुत की प्रसिद्धि नहीं है। इसलिए जहां भी सुश्रुत के नाम का निर्देश मिलता है वहां साधक एवं बाधक प्रमाणों के अभाव में शल्य चिकित्सक एवं धान्वन्तर सुश्रुत की ही प्रतीति होती है। (निरन्तर जारी)

संदर्भ :-

1. आयुर्वेद का इतिहास - प्रथम भाग - कविराज सूरमचन्द्र - दक्षिण पटेल नगर मार्कीट, नयी दिल्ली ।
2. A history of Indian Philosophy Vol. II- Surendranath Das Gupta, Cambridge University Press.
3. हिन्दी विश्वकोश - खण्ड 12 - नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी ।
4. काश्यप संहिता - उपोद्घात पं० हेमराज शर्मा - चौखम्बा संस्कृत - सीरिज, बनारस - 1
5. आयुर्वेद का बृहत् इतिहास - श्री अत्रिदेव विद्यालंकार, प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश ।
6. देखें क्र.सं. -1 ।
7. History of Indian Pharmacy - G.P. Srivastava - Vol. I- Pindars Limited 7, Lower Rawdon Street, Calcutta - 20.
8. A history of Indian Philosophy - Vol. II - Cambridge at the University Press, 1968 .
9. History of Indian Medicine - Vol.III- Girindranath Mukhopadhyaya, University of Calcutta.
10. धन्वन्तरिर्धर्मभूतां वरिष्ठो वाग्विशारदः ।
    विश्वामित्र सुतं शिष्यमृषिं सुश्रुत मन्वशात् ॥
    सु.चि. 2/3
11. अष्टांङ्ग वेद विद्वांसं दिवोदासं महौजसम् ।
    छिन्न शास्त्रार्थ संदेहं सूक्ष्मागाधागमोदधिम् ॥
    विश्वामित्र सुतः श्रीमान् सुश्रुतः परिपृच्छति ।
    सु०उ० 66/
12. काश्यप संहिता - पं० हेमराज शर्मा - चौखम्बा-संस्कृ - सीरिज, बनारस - 1।

बैद्यनाथ

लवणभास्कर चूर्ण

मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

अनुवांशिक रोग (GENETIC DISORDERS)

वैद्य पी. एस. अंशुमान, एच.पी.ए. (निवृत्त प्रोफेसर / प्राचार्य)

परिचय[1]

आयुर्वेद साहित्य में कुलज रोग, मातृ-पित्र बीज दोष जन्य आदि विकारों को आदिबल प्रवृत्त विकारों के रूप में ग्रहण कर विचार किया जाता रहा है । साथ ही अनेक रोगों में बीज, बीजभाग, बीजभागावयव विकृति से संबन्धित भी कहा गया है ।

इस के साथ ही भारतीय हिन्दू विधिग्रंथों में कुलज या आनुवांशिक रोगों के नियंत्रण की दृष्टि से कुछ निषेधों की सूची भी दी गई है। इनको निषिद्ध कुल (कन्या) एवं निषिद्ध कन्या के रूप में निरूपित किया गया है।

(क) विवाहनिषिद्ध कुल :

(1) हीनक्रिया, निश्छेद,

(2) निष्पुरुष,

(3) अतिलोमा (अलोमाजी), श्वित्र (अतिश्वेत/अतिकृष्णादि) विरूप या निन्दिक दोष युक्त

(4) अर्श, क्षय, अपस्मार आदि रोग युक्त ।

(ख) विवाह निषिद्ध कन्या लक्षण :

(1) कपिला (कपिश या पीतवर्णा), एवं पिंगल नेत्रा

(2) अतिलोमा, अलोमा, विरूपता युत्त निन्दित लक्षणा

(3) अधिकांगी (अतिदीघ या अंगुलादि होना) हीनाङ्गी अतिह्स्व या अगंलादि कम होना)

(4) बहुभाषी, रूदनशील, बाहरघूमनेवाली, निद्रालु, गुप्त

(5) वृषभा (पुरुषसंस्थाना), विनता (नतस्कंधा) विकटा (स्थूलनितंब)

(6) पृषता (श्वेत दाग), विमुण्डा (वृ. ललाट या खल्वाटा) फलिनी (मूक), वर्षकरी (स्वेदल)

(7) शुचिदूषिता (मृतपिता) सांकरिकी (व्यभिचारी) राका,

(8) सगोत्रा, अतुल्यवर्णा

अनुवांशिक रोगों को समझने के लिये प्राचीनों ने गर्भोत्पत्ति कर भावों में मातृज-पित्तृज भावों की तालिकायें दी है जो तत्सम्बन्धित रोगों का पूर्वानुमान लगाने में उपयोगी है। ये भाव संक्षेपत: निम्नानुसार कहे गये हैं :

मातृज भाव[3]

रक्त (च) (सु), मांस (च)(सु), मेद (च)(सु), मज्जा (मु) आदि धातुएं, त्वक (च), नाभि (च)(सु) जैसे अवयव हृदय (च) क्लोम (च), यकृत (च)(सु) प्लीहा (च) (सु), वृक्क (च) वरित (च) आदि अवयव, मातृज भाव हैं । इन्हीं के साथ आमाशय एवं पक्वाशयादि आशय, अंत्र (सु) क्षुद्रांत्र (च), स्थूलान्त्र, आदि अंत्रावयव, तथा पुरीषाधान, उत्तरगुद (य) अधरगुद (च) एवं गुद (सु) आदि भी मातृज भाव कहे गये हैं । इसी के साथ स्तन्याशय, गर्भाशय, आर्तव स्रोत एवं योनि भी मातृज है। अत: इनसे सम्बद्ध रोगों में यदि मातृबीज का इनके उत्पादक बीजभाग की दृष्टि हो गई हो तो उनकी संतान में वे रोग या तो आ सकते हैं या उनके होने की जन्मज़ात अनुकूलता रहती है ।

पितृजभाव[4]

अस्थि (च) (सु) एवं शुक्र (च) (सु) जैसी धातुओं को पितृज कहा गया है ।

लोम, केश, श्मश्रु, नख, दन्त, आदि अस्थि जैसे ही भावों को भी पितृज भाव कहा गया है। (च) (सु)

सिरा, स्नायु एवं धमनी (च) (सु) भी पितृज भाव कहे गये हैं । इन्हीं के साथ कण्डरा, आदि कठिन एवं स्थिर अन्य भाव भी पितृज ही माने गये हैं ।

शिश्न, वृषण, शुक्राशय, शुक्रप्रणाली एवं स्रोत पुरुष योनावयत होने से पुरुष भावों में माने जाते हैं ।

अत: अस्थि एवं तत्सम केश-लोम, नख-दन्त तथा सिरा, धमनि, स्नायु-कण्डरा, आदि के रोगों में यदि उनसे पुरुष बीज का इन अवयवों के उत्पादक बीज भाग की पुष्टि हो गई हो तो वे रोग उसकी संतान में आ सकते हैं या उनके होने की संभावना होती है। प्रदुष्ट शुक्रज क्लीवता, विरूपता (अष्टनिंदित), गर्भासंजयन, गर्भपात,

1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि, सर्कल, भावनगर (गुज.)364001

गर्भस्राव, सापत्य (संतान की संतान) एवं सदारबाधा एवं अल्पायुता आदि के होने का अनुमोद आधुनिक भी करते हैं।

अनुवांशिक प्रकृति विकृति[4]

अनुवांशिक प्रकृति

आयुर्वेद में जिन प्रकृतियों को स्वीकार किया गया है उनमें - जातिप्रसत्ता, कुल प्रसत्ता, देशानुपातिनी, कालानुपातिनी, वयोनुपातिनी तथा प्रत्यात्मनियता का परिगणन किया गया है। इनके अतिरिक्त दोषज एवं पंचभूतात्मक प्रकृतियां भी कही गई हैं जो प्रत्यात्मनियता में ग्रहण की जाती रही हैं।

इनमें से जाति (Race) एवं कुल प्रसक्ता तथा देशानुपातिनी प्रकृतियों का सम्बंध अनुवांशिकता से भी रहा है। इनमें भी कुल प्रसक्त प्रकृति तो पूर्णतः अनुवांशिक प्रकार ही है।

अष्टविरूपतायें

वैदिक काल से ही आठ विरूपतायें चर्चा में रही हैं। इनमें अतिदीर्घ-अतिह्रस्व, अतिस्थूल-अतिकृश्च, अतिशुक्ल-अतिकृष्ण, अतिलोमश-अलोमशत्व का परिगणन किया जाता रहा है। यह सभी बीज स्वाभावज मानी गई हैं।

विनहानिकारक-लक्षण

कुछ ऐसे हानि नहीं करने वाले लक्षण मिलते हैं जो जेनेटिक अनुवंद्धता रखते हैं यथा -

- जीभ का रोल वना पाना या जीभ को अंदर की ओर मोड़ पाना।
- गाल में खंजन पड़ना।
- कान की कर्णचुचुक का छोटा या जुड़ा होना या बड़ा एवं पृथक होना।
- शिर के बाल ललाट तक होना, या शिर के बाल सीधे या घुंघराले होना।
- हाथ के अंगूठे को पीछे की ओर समकोण पर मोड़ पाना।

क्रोमोजोम सम्वद्ध विकृति विशेष

विविध क्रोमोजोम विकृति से सम्बद्ध कई विकार देखे जाते हैं जिनको आगे की तालिका में देखा जा सकता है।

रंग (वंश) सूत्र सम्बद्ध कुछ विकार[5]

क्र.	वर्ग	सूत्र क. सं.	सम्बद्ध	विकृति
1.	ए एम-3	सबसे बडे मेटा-सेन्ट्रिक रंग सूत्र तीन जोड़े 1,2,3 क्रमशः सूत्रक्रम	ए-3 विकृतिजन्य विकृतियां- आंख, तालु, कान अस्थि विकृतियां	शिशु का प्रसूतागार में ही मृत हो जाना।
2.	बी एस एम-2	बड़े परन्तु 'ए' से छोटे-सबमेटासेन्ट्रिक रंग सूत्र 2 जोड़े क्रम नं. 4, 5 सूत्र क्रम	–	गर्भस्राव, गर्भपात, मृतगर्भ (गर्भ में हो)।
3.	सी एस एम -7	मध्यम कद सब-मेटासेन्ट्रिक रंग सू.क्र. 6,9,8,9,10,11,12	–	–
4.	डी एक्रो -3	मध्यम कद एक्रोसेन्ट्रिक रंग सूत्र 3 जोड़े, सूत्र क्र. 13,14,15	ऊपर का होट कटा होना (खण्डौष्टता)	–

क्र.	वर्ग	सूत्र क. सं.	सम्बद्ध	विकृति
5.	ई एस एम-3	सी से छोटे सबमेटासेन्ट्रिक रंग सूत्र 3 जोड़े सूत्र क्र. 16, 17, 18	ई-18 विकृति जन्य कर्ण विकृत या असामान्य, ग्रीवा छोटी, वक्ष विकृत हृदय असामान्य पादांगुल	–
6.	एफ एम-2	छोटे मेटासेन्ट्रिक रंग सूत्र, 2 जोड़े, सूत्रक 19, 20	–	–
7.	जी ए-2	बहुत छोटे एक्रोसेन्द्रिकरंग सूत्र 2 जोड़े, सूत्र क्र. 21, 22	जी-21 विकृतिजन्य डाऊन सिंड्रोम यौनविकासदोष	
8.	एच	लिंग सूत्र	लैंगिक दोष बन्ध्यता आदि	

इसमें 'X' रंग सूत्र 'सी' जैसा तथा 'Y' सूत्र 'जी' जैसा । सूत्र सं. 1 क्र. 23

कुछ जेनेटिक रोग

(1) **क्रोमोजोम एनॉमलीज या वंशसूत्रज विकार :** इस श्रेणी में ओटोसोम अप्राकृतिक अवस्था एवं सेक्स क्रोमोजोम सम्बन्धित विकृतियों का समावेश किया जाता है। (i) ओटोसोम एवनोर्लमल्टीज में डाऊनस सिंड्रोम एवं एडवर्डस सिंड्रोम जैसी विकृतियां समाविष्ट की जाती हैं । (ये दोनों क्रमशः 47 . 21 तथा 47 . 18 से सर्म्बंधित विकार है) (ii) जबकि सेक्स क्रोमोजोम या लिगीं वंश सूत्र विकृतियों के अन्तर्गत स्त्रियों से सम्बंधित टर्नर्स सिंड्रोम (X) एवं ट्रिपल एक्स सिंड्रोम (XXX) का तथा पुरुषों से सम्बंधित क्लिनफीतरर्स (XXY) सिंड्रोम एवं एकाधिक वाय (XYY) सिंड्रोम का समावेश किया जाता है।

(2) **एकल जनीन विकार या सिंगल जीन डिफेक्टस :** इस श्रेणी में ऑटोसोमल डोमिनेन्ट (AD) ऑटोसोमल रिसेसिव (AR), एक्सलिंक्ड रिसेसिव (XLR) तथा हेट्रोजेनिसिटी जैसी विकृतियों का ग्रहण किया जाता है।

(i) **ऑटोसोमल डोमिनेन्ट विकारों में :** डिस्ट्रोफिया मायोटोनिया, फेस्योस्केपुलोह्यूमरल, मस्क्युलर डिस्ट्रोफी, मारफनस सिंड्रोम, हन्टिगंटनस कोरिया, न्युरोफाइब्रोमेटॉसिस, पोलीपोसिस कोली, एक्यूट इन्टरमिटेन्टपोरफीरिया, हाईपर कोलेस्टेरोलेमिया, टयुबरस स्क्लेरोसिस, एक्न्डोप्लासिया जैसी कम गंभीर विकृतियां ग्रहीत की जाती है।

(ii) **ऑटोसोमल रिसेसिव विकृतियों में** - सिक्लसेल एनेमिया, बीटा (ठ) थेलेसेमिया, सिस्टिक फाइब्रोसिस, फिनाइल कीटोनयूरिया, ग्लेक्टोमिया, जॉन्स थोरेकिक, डिस्फेसिया, स्केपुलोह्यूमेरल मस्क्युलर डिस्ट्रोफी एवं TAISACHA डिसीज आदि गंभीर, शीघ्र घातक जन्म के बाद प्रथम वर्ष में प्रगट विकारों का ग्रहण होता है। (इसमें सिस्टिक फाईब्रोसिस अपवाद है।)

(iii) **एक्स लिन्क्ड रिसेसिव (XLR)** वर्ग की विकृतियों में रक्तहरितांध्यता से लेकर कई गंभीर विकार भी शामिल माने जाते हैं यथा- हेमोफीलिया ए/बी, जी 6 पी डी- डेफिसेन्सी मेन्केस सिन्ड्रोम, टेस्टीक्युलर फेमिनीजेशन, एन्डरसन- फेब्री रोग, लेस्च-नाइहान सिंडोम, नेफ्रोजेनिक ज्यावेटिस इन्सीपिडस, डकें

एंड वेकर मस्क्युलर डिस्ट्रोफी जैसे रोग इसी के अन्तर्गत रखे जाते हैं ।

हेट्रोजेनीसिटी वर्ग के विकार में कई समान रोग विभिन्न कुलज अनुवंध वाले हो सकते हैं । इन रोगों में पोलीसिस्टिक डिसीज आफ किडनी, रेटिनाइटिस पिगमेन्टोसा, बाधिर्य स्पाईनो सेरबेल्लर एटाक्यास, मस्क्युल डिस्ट्रोफी तथा म्युकोपोलीसेकेरिडोसिस जैसे विकार गिने जाते हैं।

(3) **मल्टीफेक्टोरियल डिसार्डर्स :** इस श्रेणी में सहज विकृत संरचना सहित पर्यावरण एवं जेनेटिक विकृतियां संयुक्त रूप से मिल सकती हैं जो परिवार में अलग-अलग अनुपात, अलग-अलग लोगों में होती देखी जा सकती हैं ।

सहज या कॉन्जेनेटल प्रकार के रोगों में सहज हृदोग, न्युरल टयूब डिफेक्ट, क्लिफटलिप एवं तालु, डिस्लोकेशन ऑफ हिप, पारालोरिक स्टेनोसिस आदि समाहित है ।

प्रौढों में प्राप्त विकारों में - डायवेटिसमेलिटस, आई एच डी, पेप्टिक अल्सर, एसेंशियल हाईपरटेंशन, एपेलेप्सी, सायकोसिस आदि गिने जाते हैं ।

इस प्रकार जेनेटिक रोगों की काफी लम्बी सूची प्राप्त होती है ।

आयुर्वेद में वर्णित कुछ बीजदोष सम्बद्ध सहज/कुलज रोग

आयुर्वेद साहित्य में कुछ संदर्भों में अनुवांशिक या बीज दोष जन्य रोगों को स्पष्ट स्वीकार किया गया है। इनका अध्ययन आदिबल प्रवृत्त (मातृ-पितृ बीज दोषज) विकारों के रूप में किया गया मिलता है । इनको कुलज भी कहा है। सहज संज्ञक रोगों में आदिबल प्रवृत्त (बीज दोषज) एवं जन्मबल प्रवृत्त दौहृद्यादि (गर्भिणी) अपचारज एवं रसकृत-दोनों का ग्रहण हो जाता हैं । (यहां विचार बीजदोषज रोगों तक ही सीमित रखा गया है ।)

स्थौल्य या मेदोरोग[6]

अष्टनिंदितों में इस का विवरण 'अतिस्थूल' या अदिमेद/मांस वृद्धि जन्म विकृति के रूप में दिया गया है अतिस्थूलता को बीजस्वभावज भी कहा गया है क्योंकि अतिस्थूलता कारक घटकों में मेद-मांस दोनों का ग्रहण है। मांसज वृद्धिजन्य एवं मेदोजवृद्धि जन्य विकारों की उत्पत्ति में भी बीज स्वभाव का ग्रहण किया जा सकता है।

सहज प्रमेह/मधुमेह[7]

यहाँ बीजदोषज या कुलज प्रमेह मधुमेह का ग्रहण किया गया है। (गर्भिणी अपचार एवं रसकृत जन्मबल प्रवृत्त रूप मधुमेह या प्रमेह का भी वर्णन मिलता है जिसका यहां उल्लेख नहीं किया गया है)

इस प्रकार सहज या कुलज या बीजदोषज रोग के रूप में वर्णित मधुमेही के कुछ विशेष लक्षण भी कहे गये हैं यथा- अतितृषा युक्त परन्तु अल्पाशी, परिसरणशील एवं कृश तथा रूक्ष होना सहज प्रमेही की कुछ अपनी विशेषतायें कही गई हैं । (इसके विपरीत-स्थूल-स्निग्धा, वहुआशी (अधिक खानेवाला) तथा शय्या-आसन-निद्राशील होना जातोत्तर या आथ्य निमित्तज की विशेषतायें कही गई हैं । सहज प्रमेह/मधुमेह को असाध्य कहा गया है । अतः इनमें यापन ही एकमात्र चिकित्सा उपाय माना जाता है ।

सहज अर्श[8] **(बीजदुष्टिज)**

अर्श दो प्रकार के कहे गये हैं यथा सहज एवं जातोत्तर। इनमें से सहज अर्श माता-पिता के बीज (शुक्र-शोणित (डिम्ब) पुष्टि से होता है ।

इस संदर्भ में ऐसी परिकल्पना प्राचीनों द्वारा प्रस्तुत की गई है कि-(जब) बीज का गुदवली उत्पादक भाग पुष्ट होता है, तब बीज के गुदवली उत्पादक भाग की दृष्टि में दो हेतु होते हैं यथा - (1) माता पिता का अपचार (तज्जन्य बीज दुष्टि एवं गर्भ दुष्टिकर भावों का सेवन) (2) पूर्वकृत कर्म (या अज्ञात कारण से गुदवली उत्पादक भाव विकृति होना)

यहाँ यह भी स्पष्ट कर दिया गया है कि जिस प्रकार अर्श में माता-पिता के बीज दोष से आदिबल प्रवृत्त रूप अर्श होते हैं या मातृदोष (दौहृद्यापचार एवं गर्भिणी अपचार) से जन्म-बल प्रवृत्त रूप अर्श होते हैं उसी प्रकार अन्य सहज रोग होना भी संभव है ।

सहज रोग उन्हीं को कहा गया है कि जो जन्म के

साथ ही शरीर में विद्यमान होते हैं ।

यहाँ अर्श को अधिमांसज विकार कहा गया है, अतः इसी परिकल्पना के अनुसार अन्य मांसज वृद्धि क्षमज या अधिमांसता सम्बद्ध अन्य मांस विकारों के सहज रूपों की कल्पना की जा सकती है।

आचार्यों ने यहां सहज अर्श से सम्बद्ध अनेक रोगों की तालिका दी है जो चिकित्सा करते समय घ्यान में रखने योग्य है।

सहजकुष्ठ[9]/श्वित्र (बीजदोषज)

कुष्ठ रोग को मातृ-पितृ बीज पुष्टि से उत्पन्न होने की संभावना प्राचीनों परिकल्पित की मिलती है । तदानुसार कुष्ठ दोष के कारण जिन माता पिता का शुक्र और श्रोणित (मातृ-पितृ बीज) दूषित होता है, उनकी यदि संतान उत्पन्न होती है, तो वह भी कुष्ठ रोग से पीड़ित होती है ।

यह कथन कुष्ठ का ही भेद रूप किलास के संदर्भ में अधिकतर देखा जाता है ।

इसी संदर्भ में एक अन्य परिकल्पना अनुसार कुष्ठ रोग से पीड़ित मनुष्य की मृत्यु के बाद पुर्नजन्म होने पर फिर उसको कुष्ठ होने की कल्पना की गई है ।

'अतिशुक्लता' से वर्णित निन्दित या विरूप रूपा विकृति तथा श्वित्र तथा आधुनिकों द्वारा वर्णित चर्म श्वेतता या आल्वीनीजम इसके ही उदाहरण हैं । इस विकृति में डी एन ए (DNA)में स्थित दोष के कारण या विकृति के कारण आवश्यक उत्सेचक उत्पन्न नहीं होने के कारण टायरोसिन का मेलेनीन में रूपान्तर नहीं होने से त्वचा, केश का रंग सफेद रह जाता है या आँख की पुतली का रंग भूरा रहता है क्योंकि टायरोसिन का उपयोग थायरोक्सिन -अन्तः स्राव निर्माण में भी होता है । अतः इस सम्यक स्रावित नहीं होने से ऐसे रुग्णों में बुद्धिमांद्य या कुंठित बुद्धि के लक्षण भी मिलते हैं ।

समग्र शक्लता में केश, भ्रू, पक्ष्म, रोम, त्वचा सभी शुक्ल रहते हैं । इसमें फिनाइल ऐलेनीम का टायरोसिन संज्ञक एमीनो एसिड में रूपान्तर नहीं होता है। अतः चयावचय अवरोध, मानसिक विकासावरोध देखा जाता है ।

जेनेटिक रोगों की चिकित्सा[10]

(क) आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में इस प्रकार के रोगों की चिकित्सार्थ 'जीन थेरेपी' का आश्रय लिया जाता है। इस पद्धति में स्वस्थ जीन का रोगी में प्रवेश कराया जाता है जिसके द्वारा रोगी में विद्यमान दूषित जीन को दूर किया जाता है ।

यह चिकित्सा पद्धति जहां सिस्टीक फाईथ्रोसिस एवं डी एम डी जैसे एकल जीन डिफेक्ट में उपयोग में ली जा सकती है वहीं न्यूरोडिजेनेरेशन एवं कार्डियक रोग जैसे मल्टी जीन डिफक्ट में भी उपयोगी होता है। उसके लिये वायरल एवं नॉनवायरल थेरेपी प्रयुक्त की जाती है ।

(ख) इसके लिये - (1) रिट्रोवायरस पद्धति की जिसमें वाईल्ड वायरस का उपयोग जीन प्रेषण के लिये किया जाता यथा कुलज हाईपर कोलेस्टरोलेमिया में एल डी एल एलोडेन्सिटी लोपोप्रोटीन जीन का यकृत कोषों में सिरम कोलेस्टरोल घटाने हेतु उपयोग किया जाता है।

(2) एडोनोवायरस प्रेषण पद्धति का प्रयोग सिस्टिक फाईब्रोसिस तथा सी एन एस में जीन प्रवेशार्थ किया जाता हैं ।

ये दोनों पद्धतियां वायरल मीडियेटेड डिलेवरी के प्रकार ही हैं ।

(ब) नॉनवायरल थेरेपी

इसमें 1. लाइपोसोम्स, 2. डी. एन. ए.- रिसेप्टर कोम्प्लेक्षस, 3. हाई एनर्जी बॉम्र्वाडमेंट आफ टिश्यु तथा 4. डायरेक्ट डी एन ए अपटेक का उपयोग किया जाता है।

(ख) आयुर्वेद में इस प्रकार के रोगों के नियन्त्रण एवं चिकित्सा के लिये निम्नलिखित उपाय मिलते हैं-

(i) **अनागतबाधा प्रतिषेधार्थ :**

- अनुवांशिक रोगों से पीड़ित माता-पिता से उनके बच्चों में रोग को आने से रोकने हेतु

- अनुवांशिक या जेनेटिक रोगग्रस्त कुटुम्बों में परस्पर विवाह निषेध कर या विवाह होने पर सन्तति नियमन ।

- गर्भाधान पूर्व माता-पिता के दुष्ट वीज की चिकित्सा पंचकर्म पूर्वक दुष्ट शोणित (डिम्ब) एवं दुष्ट शुक्र की चिकित्सा करना ।
- गर्भाधान के बाद अवशिष्ट दोष अवरोधानार्थ गर्भिणी (दौहृद्या) की चिकित्सा द्वारा गर्भ चिकित्सा अन्नपान एवं औषध द्वारा करना ।

(ii) **आगतबाधा प्रतिषेधार्थ** : सामान्यत: अनुवांशिक कुलज-सहज रोग असाध्य ही माने जाते हैं । फिर भी यापनार्थ कई उपाय किये जाते रहे हैं । यथा-

(1) जहाँ संभव एवं उपयोगी हो शस्त्रकर्म द्वारा चिकित्सा यथा खण्डौष्ट में ओष्टसंधान तथा संयुक्त कर्णपाली में कर्णपाली वृद्धि आदि करना ।

(2) विभिन्न धातु प्रदुष्टि सम्बद्ध रोगों में उनमें की चिकित्सा द्वारा यापन यथा रक्तज में रक्त शोधक, रक्तसिवध्न, ज्वरध्न, कुष्ठध्न चि. एवं शुक्रज विकारों में वृष्ण एवं पंचकर्म ।

(3) अवयव विशेष से सम्बद्ध विकारों में तदानुसार चिकित्सा कर यापन करना यथा - क्लोमज रोगों में पित्तध्न, प्रमेहध्न, यकृतज में यकृतोदर वात उपचार ।

(4) विकृत विशेष में भी तदानुसार यथा ग्रंथि -अर्वुदादि में शोथहर-ग्रंथि-अर्बुद हर उपक्रम एवं रसायन कर्म ।

संदर्भ :-

1. स्त्रीसम्बन्धे दर्शतानि कुलानि परिवर्जयेत् ।
हीन क्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शनम् ।
क्षच्यामा व्यवपस्मारिश्वितृकुष्ठिकुलाणिच ।
भीद्वहेत्कपिलां कन्यां नाऽधिकांङ्गींन रोगिणीम् ।
ना लोमिकां नातिलोमां न वाचाहात्रं पिङ्गलम् ।

यजु० 3/6,7,8

अप्रशस्तधेयां च गुप्तां दत्तां घोनां पृषतावृषभां विनतां स्वमुजां वर्षकरीं च वर्जयेत् ।

बा.का.सू. 3/1/11

2. XXX यदा स्त्रिया दोष प्रकोपणोक्तान्यासेवमानाया दोषाः प्रकुपिता: शरीरमुपसर्पन्त: शोणित गर्भाशयावुपपद्यन्ते न च तु कात्स्न्येंन शोणितगर्भाशयौ दूषयन्ति तदेयं गर्भं लभते स्त्री, तस्य तदागर्भस्य मातृजानामवयवानामन्यतयो ऽवयवो विकृतिमपाद्यत एकोऽथानेके: यस्य यस्य ह्यवुयवस्य बीजे बीजभागे वा दोषा: प्रकोपमापद्यन्ते तं तमवयवंविकृति राविशति; XXX

च.शा. 4/30

मांसशोणित मेदोमज्जहृन्नाभियकृत्प्लीहान्त्रगुद प्रभृतीनि मृदुनि मातृजानि ।

सु०शा० 3/33

XX त्वक् च लोहितं च मांसं च मेदश्च नाभिश्च हृदयंन्त्रं XX पुरीषाधानं चामाशयश्च पक्वाशयश्चोत्तरगुदं चाधरगुदं च क्षुद्रान्त्रं च स्थूलान्त्रं च वपा च वपावहनं चेति मातृजानि ।

च.शा. 3/12

बीजसंपत्प्रहर्षभूयस्त्वं चेति सात्म्यजानि ।

च.शा. 3/17

XX यस्य यस्य ह्यङ्गावयवस्य बीजे बीजभाग उपतप्तो भवति तस्य तस्याङ्गवयवस्य विकृतिरूपजायते, नोपजायते चानुपतापात् तस्मादुभयोपपत्तिरप्यत्र । ।

च.शा. 3/24

3. एवमेव पुरुषस्य यदा बीजे बीजभाग: प्रमोषमापद्यते, तदा बन्ध्यं जन्यति, यदा पुनरस्य बीजोभागावयव, प्रदोषमापद्यते तदा पूति प्रजं जनयति; यदात्वस्य बीजे बीजभागावयव: पुरुषकाराणां च शरीर बीज भागा नामेकदेश: प्रदोषमाषद्यते तदा पुरुषाकृतिभूयिष्ठप्र पुरुष तृण पूत्रिंक नाम जनयति, तां पुरुष व्यापदमाचक्षते ।

च.शा. 4/31

ऐतेन मातृजानां पितृजानां चावयवानां विकृतिव्याख्यानेन सात्म्यजानां रसजानां सत्वजानां चावयवानां विकृतिर्व्याख्यिाता भवति ।

च.शा. 4/32

XXX केशश्मश्रुनखलोमे दन्तास्थिसिरा स्नायुधमन्य: शुक्रमिति पितृजानि ।

च.शा. 3/13

केशश्मश्रुलोमास्थिनखदन्तसिरास्नायुधमनीरेतः प्रभृतीनि स्थिराणां पितृजानि ।

सु.शा. 3/30

XX गर्भस्य सात्म्यजानि XX बीजसम्पत प्रहर्ष भूयस्त्वं चेति सात्म्यजानि XXX शरीरस्याभिनिर्वृत्तिरभिवृद्धि प्राणानुबंधस्तृपिः पुष्टिरूत्साहश्चेति रसजानि ।

च.शा. 3/11-12

4. कुलप्रसक्ता आदि प्रकृतियां । च.इ. 1/4

अथैतानष्टौविरूपानां तथतेऽतिदीर्घचातिह्रस्वं चाति स्थूलं चातिकृशं चातिशुक्लं चातिकृष्ण चातिकुल्वं चातिलोमशं च ।

यजु. 30/22

इह खलु शरीरमधिकृत्याष्टौ पुरुषानिन्दिता भवन्ति, तद्यथा-अतिदीर्घश्चातिह्रस्वश्चातिलोमा चालोमा चातिकृष्णश्चातिगौरश्चातिस्थूलश्चाति कृशश्चेति ।

च.सू. 21/2

5. वंश सूत्र (रंग सूत्रा विरुद्ध विकार (अंशुमान)

6. XX तत्रतिस्थूलकृशयोर्भूय एवापरे निन्दित विशेषा भवन्ति। XX बीज स्वभावाच्योप जायते।

च. सू. 21/3

7. जातः प्रमेहो मधुमेहिनो वा, न साध्य उक्तः स हि बीजदोषात्। ये चापि केचित्कुलजा विकाराः भवन्ति तांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ।

च. चि. 6/56

द्वौ प्रमेहो भवतः सहजोऽडपश्यनिमित्तश्च । तत्र सहजो मातृपितृबीज दोषकृतः, अहिताहारजोऽपश्यनिमित्तः। तयांः पूर्वेणोपद्रुतः कृशो रूक्षोऽल्पाशी पिपासुर्भृशः परिसरणं शीलस्य भवति । उत्तरेण स्थूला वह्वाशी स्निग्धः श्य्यासन स्वप्नशीलः प्रायेणति ।

सु. नि.

8. द्विविधान्यर्शासि कानिचित् सहजानिकानिचित् कालजानि ।

XX तत्र बीज गुदवलिबीजोपतप्तमायतनममर्शसां सहजानाम् ।

तत्र द्विविधों बीजोपतप्तौ हेतुः मातापित्रोपचारः पूर्वकृतं च कर्म तथाऽयेषामपि सहजानां विकाराणाम् ।

XX तत्र सहजानि सहजातानि शरीरेण अर्शांसीत्यधिमांस विकाराः ।

च. चि. 15/4

सहजानि दुष्टिशोणितशुक्रनिमित्तानि तेषां XX दुर्दर्शनानि परुषाणि पाण्सूनि दारुणान्यन्तर्मुखानि। तैरूपद्रुतः XX सततमन्त्रकूजाटोप हृदयोपलेपारोचक प्रभृतिभिः पीड्यते।

सु.नि. 2

9. स्त्रीपुंसयोः कुष्ठदोषात् दुष्टशोणित शुक्रयोः यदपत्यं तयोर्जात जेयं तदपि कुष्ठितम् ।

सु. नि. 5/28

म्रियते यदि कुष्ठेन पुनर्जातेऽपि गच्छति जातः कष्टतो रोगो यथा कुष्ठं प्रकीर्तितम् ।

सु नि. 5/31

किलासमपि कुष्ठ विकल्प एवं XX ।

सु. नि. 5/17

10. संक्षिप्त रसायन एवं वाजीकरण तत्र (अंशुमान)

स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढ़मनुंवासितम्। योजयेच्छुक्रदोषार्त सम्यगुत्तरबस्तिना।

सु.शा. 2/10

तेषवाद्यान् शुक्रदोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् क्रिया विशेषैर्मतिमांस्तथा चोत्तरवस्तिभिः ।

सु. शा. 2/6

स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां च तसृष्वार्तवर्तिषु कुर्यात्ल्कान

XX

सु. शा. 2/14

शुक्रशोधन च. स्. म. 17(4), शुक्रजनन च. स्. 4/17(3)

प्रजास्थापन च. स् 4/48

आमवात का निदान सम्प्राप्तिपरक एवं अलम्बुषादि घनवटी का उपशयात्मक अध्ययन

*प्रो० लोकनाथ शर्मा
**डा० मनमोहन शर्मा

आमवात विवेचन

व्युत्पत्ति - आमवात शब्द आम एवं वात इन दो शब्दों से बना है ।

1. आमेन सहित: वात: आम वात: अथवा आमश्च वातश्च आम वात: ऐसी व्युत्पत्ति की जा सकती है ।
2. अमाश्चासौ वात: आमवात: ।
3. आम: अपाक: हेतु: वात: ।

निरुक्ति

युगपत्कुपितावन्तस्त्रिक संधि प्रवेशकौ ।
स्तब्धं च कुरूते गात्रमामवात: स उच्चते ॥

(मा.नि. 25/5)

आमवात के निदान

विरूद्धाहार चेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।
स्निग्धं भुक्तवतो ह्न्नं व्यायामं कुर्वतस्तथा ॥

(मा.नि. 25/6)

हारीत संहिता में इसके निदानों में लिखा है -

गुर्बन्नाहार पुष्टेन मन्दाग्निना व्यवायिन: ।
तर्पितै: कन्दशाकैस्तु आमो वायु समीरित...॥

(हा.सं. 12/1-2)

आमवात के सामान्य लक्षण

अंगमर्दोऽरुचिस्तृष्णा ह्यालास्यं गौरवं ज्वरं: ।
अपाको शूनताऽङ्गांनामामवातस्य लक्षणम् ॥

(मा.नि. 25/6)

जनयत्याशु दौर्बल्यं गौरवं हृदयस्य च ॥

(मा.नि. 25/4-5)

प्रवृद्ध आमवात के लक्षण

आचार्य माधवकर के अनुसार प्रवृद्ध आमवात की अवस्था सब रोगों से कष्ट साध्य होती हैं । उसमें हाथ, पैर, सिर, गुल्फ, त्रिक, जानु तथा ऊरू की सन्धियों में पीड़ा युक्त शोथ उत्पन्न होता है । इसके अतिरिक्त भी जिस स्थान पर आमदोष पहुंच जाता है वहां भी वृश्चिक दंश के समान वेदना का अनुभव होता है ।

इसके अतिरिक्त अग्निमांद्य, लालास्राव, अरुचि, गौरव, उत्साह हानि, मुख में विरसता, दाह, बहुमूत्रता, पेट में भारीपन और शूल निद्राविपर्यय, तृष्णा, छर्दि, भ्रम, मूर्च्छा, हृदग्रह आदि लक्षण भी पाये जाते हैं ।

दोषानुबंध होने पर आमवात के विशेष लक्षण -

1. पित्त का अनुबंध होने पर आमवात में दो लक्षण - 1. दाह, 2. रोग अवश्य मिलते हैं ।
2. वात का अनुबंध होने पर शूल एक लक्षण के रूप में विशेषकर मिलता है ।
3. कफ का अनुबंध होने पर - 1. स्तैमित्य, 2. गुरुता, 3. कंडू ।

सम्प्राप्ति घटक

आमवात की सम्प्राप्ति संरचना में निम्न घटक भाग लेते हैं -

1. उद्भव स्थान - आमाशय
2. संरचना - रसायनियां
3. अधिष्ठान - अस्थि, मांस, संधियां, स्नायु
4. रोग मार्ग - मध्यम रोग मार्ग
5. अग्नि - जठराग्नि, धात्वाग्नि
6. आम - जठराग्नि एवं धात्वाग्नि दौर्बल्य जन्य आम
7. स्रोतस् एवं स्रोतोदुष्ट - रसवह, अन्नवह, स्वेदवह संग (रसवह स्रोतोदुष्टि)
8. दोष - वात - समान वायु, व्यान वायु, अपान वायु,
   कफ - क्लेदक एवं श्लेषक कफ
   पित्त - पाचक पित्त
9. दूष्य - रस, रक्त
10. उपद्रव - जाड्यता, आंत्रकूजन, आदि
11. भेद - सामान्य एवं प्रवृद्ध आमवात, दोषानुसार भेद इत्यादि ।

आधुनिक मतानुसार आमवात

RHEUMATOID ARTHRITIS (RA)

Introduction

Rheumatoid arthritis (RA) is a chronic multisystem disease of unknown cause. although these are a variety of systemic manifestations.

---

*एम.डी., रोग एवं विकृति विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

**डीन (एकेडमिक) एवं विभागाध्यक्ष, रोग एवं विकृति विज्ञान विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर ।

The characteristic feature of RA is persistent Inflammatory synovitis, usually involving peripheral joints in a symmetric distribution. The potential of the synovial inflammation to cause cartilage destruction and bone erosions. And subsequent changes in joint integrity is the hallmark of the disease. The cause of RA can be quite variable.

Pathology

The earliest change is swelling and congetion of the synovial membrane and the underlying connective tissue, which become infiltrated with lymphocytes, plasma cells, and macrophages, effusion of synovial fluid into the joint space takes place during active phases of the disease. Hypertrophy of the synovial membrane occurs, with the formation of lymphoid follicles resembling an immunologically active lymphnode Inflammatory granulation tissue spreads over and under the articular cartilage, which is progressively eroded and destroyed.

अध्ययन सामग्री एवं विधि विवेचन

विषय चयन का उद्देश्य - विषय चयन के निम्न लिखित उद्देश्य हैं ।

1. आयुर्वेदीय ग्रंथों में वर्णित आमवात रोग के निदान, सम्प्राप्ति एवं लक्षणों आदि का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषणात्मक अध्ययन करना ।
2. आमवात में दूषित होने वाले शारीरिक घटकों का यथा दोष, द्रव्य एवं अन्य अवयवों की अवस्थाओं का विश्लेषण करना ।
3. आमवात के मुख्य हेतु ''आम'' दोष का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करना ।
4. इस रोग के पथ्य में सहायक आहार-विहार का विवेचन करना ।
5. आमवात में ''अलम्बुषादि घनवटी'' का उपशयात्मक अध्ययन करना ।

इस अध्ययन में निम्नलिखित रोगियों का चयन नहीं किया गया ।

1. 12 वर्ष से कम एवं 70 वर्ष की आयु से अधिक के रोगी ।
2. 6 सप्ताह से कम अथवा 5 वर्ष से ज्यादा की जीर्णावस्था वाले रोगी ।
3. वात रक्त एवं संधिवात के रोगी ।
4. आमवात के अतिरिक्त अन्य संस्थान गत विकृति वाले रोगी ।
5. मधुमेह, राजयक्ष्मा एवं कैंसर आदि से युक्त रोगी ।

आतुर चयन

इस अध्ययन हेतु प्रथमतः 42 रोगी पंजीकृत किये गये जिनमें अध्ययन हेतु 30 रोगियों का चयन राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर स्थित आरोग्यशाला से किया गया। आमवात रोग निदान में सहायक अनेक प्रयोगशालीय परीक्षणों यथा RA-factor, CRP, ASO, ESR, TLC, DLC, Hb% एवं X-ray आदि परीक्षण चयनित रोगियों पर राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान में स्थित प्रयोगशाला में किये गये ।

वर्ण निर्धारण एवं औषधि प्रयोग

इस शोध कार्य हेतु चयन किये गये 30 आतुरों को दो वर्गों में विभक्त किया गया ।

☑ वर्ग अ जिसमें RA - Factor धनात्मक रोगियों को
☑ वर्ग ब जिसमें RA - Factor ऋणात्मक रोगियों को शामिल किया गया ।

उपशय प्रयोग

इस अध्ययन में उपशय प्रयोग हेतु प्रत्येक वर्ग तथा वर्ग अ एवं वर्ग ब के रोगियों में अलम्बुषादि घनवटी का प्रयोग कराकर प्रत्येक वर्गानुसार रोगियों पर लाभालाभ के परिणाम का विश्लेषण सांख्यिकीय दृष्टिकोण से किया गया ।

☑ औषध मात्रा 2-2 गोली दिन में दिन बार ।
☑ अनुपान - उष्ण जल ।
☑ उपशय प्रयोग अवधि - 45 दिन । रोगी का चिकित्सा काल में 15-15 दिन के अन्तराल में परीक्षण किया गया ।

उनमें लाभालाभ की स्थिति का विवेचन निम्नलिखित लक्षणों एवं परीक्षणों के आधार पर किया गया ।

1. संधिशूल, 2. संधि शोथ, 3. स्पर्शासहत्व (प्रभावित संधियों में) 4. रक्तिमा एवं उष्णता संधियों में

5. प्रातः कालीन स्तब्धता, 6. ज्वर, 7. प्रभावित संधि संख्या, 8. अन्य लक्षण जैसे :- अंगमर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, गौरव, अपाक, अग्निदौर्बल्य क्रियात्मक परीक्षण हेतु निम्नलिखित पद्धतियां प्रयोग में ली गई ।

1. दाब शक्ति, 2. ग्रहण शक्ति, 3. उत्कटासन में बैठने का समय

अलम्बुषादि घनवटी के घटक द्रव्य एवं मात्रा

1. अलम्बुषा (लज्जालु)	- 1भाग
2. गोखरू	- 2 भाग
3. आंवला	- 3 भाग
4. हरीतकी	- 4 भाग
5. विभीतक	- 5 भाग
6. सोंठ	- 6 भाग
7. गुडूची	- 7 भाग
8. निशोथ	- उपरोक्त सभी द्रव्यों के समान मात्रा ।

OBSERVATION (पर्यवेक्षण)

वयानुसार सर्वाधिक 43 प्रतिशत रोगी 41 से 60 वर्ष के मध्य के पाये गये हैं । सबसे कम 7 प्रतिशत रोगी 12 से 18 वर्ष के मध्य आयु वर्ग के पाये गये है । 19 से 60 वर्ष के मध्य का विश्लेषण करने पर इस अध्ययन में इस आयु के मध्य के 83 प्रतिशत रोगी पाये गये ।

लिंगानुसार वर्गीकरण करने पर सर्वाधिक 70 प्रतिशत रोगी स्त्री रोगी हैं तथा पुरुष रोगियों की संख्या 30 प्रतिशत रहीं ।

देश के अनुसार सर्वाधिक 93 प्रतिशत रोगी जांगल देश के पाये गये ।

धर्म के अनुसार हिन्दू धर्म के रोगी सर्वाधिक पाये गये जिनका योगदान 87 प्रतिशत रहा । मुस्लिम धर्म के रोगी 13 प्रतिशत रहे ।

आहार के अनुसार सर्वाधिक 73 प्रतिशत रोगी शाकाहारी पाये गये । व्यामिश्र आहार लेने वाले रोगी 27 प्रतिशत रहे ।

वैवाहिक स्थितिं के अनुसार विवाहित रोगियों की संख्या 87 प्रतिशत थी तथा अविवाहित रोगी 13 प्रतिशत रहे ।

आर्थिक स्थिति के अनुसार मध्यम आर्थिक स्थिति वाले रोगी सर्वाधिक जिनका योगदान 70 प्रतिशत रहा उससे कम 30 प्रतिशत रोगी निम्न आर्थिक स्थिति वाले पाये गये ।

आहार शक्ति के अनुसार रोगियों को वर्गीकृत करने पर सर्वाधिक मध्यम आहार शक्ति वाले रोगी 50 प्रतिशत रहा तथा अवर आहार शक्ति वाले रोगी 43 प्रतिशत रहे ।

व्यायाम शक्ति के अनुसार सर्वाधिक 66 प्रतिशत संख्या व्यायाम न करने वाले रोगियों की पायी गई ।

आनुवांशिक इतिहास की उपस्थिति का विश्लेषण में सर्वाधिक 83 प्रतिशत रोगियों में इसकी अनुपस्थिति रही । केवल 17 प्रतिशत रोगियों में यह उपस्थित पाया गया ।

सत्व के अनुसार सर्वाधिक 60 प्रतिशत रोगी मध्यम सत्व वाले पाये गये । वहीं अवर सत्व वाले रोगियों की संख्या 30 प्रतिशत रही ।

देह प्रकृति के अनुसार सर्वाधिक वात कफज प्रकृति के रोगी जिनकी उपस्थिति 50 प्रतिशत रही । वात पैतिक प्रकृति के रोगी 23 प्रतिशत तथा कफ पैतिक प्रकृति के रोगी 20 प्रतिशत पाये गये ।

कोष्ठ के अनुसार सर्वाधिक 63 प्रतिशत रोगी मध्यम कोष्ठ वाले इससे कम 20 प्रतिशत रोगी क्रूर कोष्ठ वाले पाये गये ।

सार के अनुसार वर्गीकृत करने पर सर्वाधिक 37 प्रतिशत रोगी अस्थिसार वाले पाये गये । 27 प्रतिशत रोगी मेदसार वाले पाये गये ।

संहनन का विश्लेषण करने पर सर्वाधिक 60 प्रतिशत रोगी मध्यम संहनन वाले एवं 30 प्रतिशत रोगी अवर संहनन के पाये गये ।

व्यवसाय के अनुसार वर्गीकृत करने पर सर्वाधिक 43 प्रतिशत रोगी शारीरिक कार्य करने वाले रहे । सुखास्य कार्य करने वालों की संख्या 40 प्रतिशत रही ।

आहारज निदानों के सेवन में उपर्युक्त सभी 3 रोगियों द्वारा विरुद्ध सेवन करना बताया गया है । जिनक

योगदान 100 प्रतिशत रहा । विषमाशन करने वाले रोगियों की संख्या 66 प्रतिशत रही । समशन करने वाले रोगी 53 प्रतिशत अध्यशन करने वाले रोगी 47 प्रतिशत पाये गये ।

विहारज निदानों के सेवन में सर्वाधिक 66 प्रतिशत रोगी पूर्वी वायु का सेवन करते हैं । 36 प्रतिशत रोगी निश्चलत्व का सेवन करते हैं । 53 प्रतिशत रोगी मेघाच्छन्न आकाश में प्रभावित होते हैं । वेगविधारण करने वाले रोगियों की संख्या 47 प्रतिशत रही ।

मानसिक निदान सेवन में सर्वाधिक 77 प्रतिशत रोगी चिंता रूपी मानसिक निदान का सेवन करने वाले हैं । मोह करने वाले रोगी 53 प्रतिशत एवं शोक करने वाले रोगी 50 प्रतिशत एवं भय करने वाले रोगी 43 प्रतिशत थे ।

अलम्बुषादि घनवटी का उपशयात्मक प्रभाव देखने पर वर्ग अ में धनात्मक रोगियों को लिया गया जिनकी कुल संख्या 15 रही वहीं कुल 30 रोगियों में इनका योगदान 50 प्रतिशत रहा । वर्ग ब में RA Factor ऋणात्मक रोगियों को र्जिनकी कुल संख्या 15 तथा 50 प्रतिशत रही ।

चयनित 30 रोगियों में CRP धनात्मक कुल 10 रोगी पाये गये इनमें से सर्वाधिक 9 रोगी जिनमें RF भी धनात्मक था वर्ग अ में शामिल हुए केवल एक CRF धनात्मक रोगी RF ऋणात्मक पाया गया, जिसे वर्ग ब में शामिल किया गया । ASO धनात्मक कुल 14 रोगी पाये गये । जिनमें 9 रोगियों में RF धनात्मक पाया गया एवं वे वर्ग अ में शामिल किये गये 5 रोगी जो ASO धनात्मक पर RF ऋणात्मक पाये गये उन्हें वर्ग ब में सम्मलित किया गया ।

सामान्य आमवात के लक्षणों में अंगों में शोथ सभी 30 रोगियों में (100 प्रतिशत रोगियों में) पाया गया । अंगमर्द कुल 26 रोगियों कुल 87 प्रतिशत में पाया गया तथा वर्ग अ के 14 रोगियों में वर्ग ब के 12 रोगियों में पाया गया अरुचि लक्षण वर्ग अ के 12 व वर्ग ब के 11 कुल 23 रोगी (77 प्रतिशत) में पाया गया ।

प्रवृद्ध आमवात के लक्षणों का विश्लेषण करने पर सरूजं शोथ सभी रोगियों कुल 30 (100 प्रतिशत) में पाया गया। वृश्चिक वंशवत वेदना कुल [illegible] रोगियों (36 प्रतिशत) में पाई गई । वर्ग अ में यह 8 रोगी तथा वर्ग ब में 3 रोगी में उपस्थित थी । अंगवैकल्यता कुल 4 (13 प्रतिशत) रोगियों में पाई गई, ये सभी रोगी वर्ग अ के थे । गात्रस्तब्धता या जाड्यता सभी 30 (100 प्रतिशत) रोगियों में पाई गई ।

आतुरों में प्रभावित संधि संख्या का सर्वाधिक 28 (93 प्रतिशत) रोगियों में हस्तांगुल्य संधि प्रभावित हुई जो वर्ग अ के सभी 15 रोगियों एवं वर्ग ब के 13 रोगियों में प्रभावित हुई । उसके बाद 27 रोगियों (90 प्रतिशत)में हस्ततल संधि MCP Joints प्रभावित हुई जो वर्ग अ के सभी 15 और वर्ग ब के 12 रोगियों में प्रभावित रही।

पादांगुल्य संधि 20 (66 प्रतिशत) रोगियों एवं पादतल संधि 19 (63 प्रतिशत) रोगियों में प्रभावित रही। मणिबंध संधि कुल 18 (60 प्रतिशत) रोगियों यथा वर्ग अ के 10 एवं ब के 8 रोगियों में प्रभावित हुई ।

लिंग भेद का विश्लेषण करने पर वर्ग अ के सर्वाधिक 12 रोगी संख्या स्त्रियों की रही जिनका 15 रोगियों में योगदान 80 प्रतिशत तथा कुल 30 रोगियों में 40 प्रतिशत रहा । उसके बाद वर्ग ब के कुल 15 रोगियों में भी स्त्री रोगी संख्या 9 रही जिनका कुल 15 रोगियों में 60 प्रतिशत तथा 30 रोगियों में 30 प्रतिशत योगदान रहा । वर्ग अ में पुरुष रोगियों की संख्या केवल 3 पाई गई जो कुल 30 रोगियों में 10 प्रतिशत तथा 15 रोगियों में 20 प्रतिशत रहे । वर्ग ब में पुरुष रोगी संख्या 6 पाई गई जो कुल 30 रोगी में 20 प्रतिशत तथा 15 रोगियों में 40 प्रतिशत रहे ।

परिणाम विवेचन (Results)

तालिका - 1 विभिन्न लक्षणों पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
अंगमर्द	वर्ग अ	14	3.286	1.357	1.927	58.70%	1.592	0.425	4.534	<0.001
	वर्ग ब	12	3.000	1.083	1.917	63.89%	1.881	0.543	3.530	<0.001

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
अरुचि	वर्ग अ	12	2.833	1.000	1.833	64.71%	1.642	0.474	3.867	<0.001
	वर्ग ब	11	2.727	0.818	1.909	70.00%	1.221	0.368	5.186	<0.001
तृष्णा	वर्ग अ	7	2.429	0.857	1.571	64.71%	1.618	0.612	2.569	<0.025
	वर्ग ब	6	2.667	0.833	1.833	68.75%	0.408	0.167	11.00	<0.001
आलस्य	वर्ग अ	13	2.846	1.231	1.615	56.76%	1.502	0.417	3.877	<0.001
	वर्ग ब	13	2.692	1.000	1.692	62.86%	1.750	0.485	3.486	<0.001
गौरव	वर्ग अ	13	3.077	1.000	2.077	67.50%	0.641	0.178	11.691	<0.001
	वर्ग ब	11	2.545	0.727	1.818	71.43%	1.079	0.325	5.590	<0.001
ज्वर	वर्ग अ	6	2.667	0.833	1.833	68.75%	0.753	0.307	5.966	<0.001
	वर्ग ब	3	2.667	0.667	2.000	75.00%	1.000	0.577	3.464	<0.05
अपाक	वर्ग अ	10	2.200	0.700	1.500	68.18%	0.850	0.269	5.582	<0.001
	वर्ग ब	13	2.000	0.538	1.462	73.08%	1.198	0.332	4.398	<0.001
अग्निदौर्बल्य	वर्ग अ	11	2.182	0.727	1.455	66.67%	1.368	0.413	3.525	<0.001
	वर्ग ब	12	2.167	0.583	1.583	73.08%	0.996	0.288	5.506	<0.001
उष्णता	वर्ग अ	5	1.800	0.600	1.200	66.67%	0.447	0.200	6.000	<0.001
	वर्ग ब	3	2.3333	0.667	1.667	71.43%	0.577	0.333	5.000	<0.25
रक्तिमा	वर्ग अ	6	2.167	0.833	1.333	61.54%	0.516	0.211	6.325	<0.001
	वर्ग ब	2	2.000	0.500	1.500	75.00%	0.707	0.500	3.000	<0.002
स्पर्शासह्यता	वर्ग अ	12	2.917	1.333	1.583	54.29%	1.505	0.434	3.644	<0.001
	वर्ग ब	9	2.556	1.000	1.556	60.87%	1.130	0.377	4.128	<0.001

तालिका - 2 सन्धिशूल पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
सन्धिशूल	वर्ग अ	15	3.267	1.933	1.333	40.82%	0.976	0.252	5.292	<0.010
	वर्ग ब	15	3.200	1.733	1.467	45.83%	1.187	0.307	4.785	<0.010

तालिका - 3 संधिशोथ पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
सन्धिशोथ	वर्ग अ	15	3.133	1.933	1.200	38.30%	1.699	0.439	2.736	<0.010
	वर्ग बं	15	2.800	1.533	1.267	45.24%	1.792	0.463	2.738	<0.010

तालिका - 4 प्रात:कालीन स्तब्धता पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
प्रात:कालीन स्तब्धता	वर्ग अ	15	2.533	1.333	1.200	47.37%	1.740	0.449	2.671	<0.010
	वर्ग ब	15	1.933	0.867	1.067	55.17%	1.580	0.408	2.615	<0.010

तालिका - 5 प्रभावित संधि संख्या पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
प्रभावित सन्धि	वर्ग अ	15	8.733	5.733	3.000	34.35%	2.070	0.535	5.612	<0.001
	वर्ग ब	15	7.667	4.200	3.467	45.22%	1.407	0.363	9.539	<0.001

तालिका - 6 दाब शक्ति पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	हस्त प्रकार	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
दाब शक्ति	वर्ग अ	द.ह.	15	146.0	163.6	17.667	12.10%	16.6	4.36	4.103	<0.001
		वा.ह.	15	128.53	141.2	12.67	9.85%	12.69	3.26	3.875	<0.001
	वर्ग ब	द.ह.	15	157.0	176.67	19.67	12.53%	11.09	2.86	6.86	<0.001
		वा.ह.	15	146.0	161.0	15.00	10.27%	9.45	2.44	6.15	<0.001

तालिका - 7 ग्रहण शक्ति पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	हस्त प्रकार	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
ग्रहण शक्ति	वर्ग अ	द.ह.	15	150.67	163.67	13.00	8.63%	11.14	2.87	4.51	<0.001
		वा.ह.	15	129.3	142.0	13.67	9.79%	10.99	2.84	4.46	<0.001
	वर्ग ब	द.ह.	15	161.67	179.33	17.66	10.93%	12.37	3.19	5.53	<0.001
		वा.ह.	15	145.3	160.3	15.00	10.32%	6.27	1.62	9.27	<0.001

तालिका - 8 उत्कटासन में बैठने के समय पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
उत्कटासन	वर्ग अ	15	10.93	15.67	4.73	43.29%	3.15	0.80	5.90	<0.001
	वर्ग ब	15	9.93	15.13	5.2	52.35%	3.89	1.00	5.171	<0.001

तालिका - 9 Daily Function (रोगी प्रतिदिन क्रियात्मक गतिविधि) पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
Daily function	वर्ग अ	15	10.53	7.2	3.33	31.65%	1.79	0.46	7.17	<0.001
	वर्ग ब	15	8.33	5.47	2.87	34.40%	1.06	0.27	10.47	<0.001

तालिका - 10 हीमोग्लोबिन पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
उत्कटासन	वर्ग अ	15	10.48	10.97	0.49	4.71%	0.39	0.10	4.83	<0.001
	वर्ग ब	15	11.68	12.05	12.05	3.14%	0.35	0.09	3.96	<0.001

तालिका - 11 ESR पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
ESR	वर्ग अ	15	52.46	39.00	13.47	26.67%	22.59	5.83	2.30	<0.025
	वर्ग ब	15	31.33	26.33	5.00	15.96%	6.96	1.79	2.78	<0.001

तालिका - 12 RA Factor (titre value) पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
RA Factor	वर्ग अ	15	2.8	2.47	0.33	11.90%	0.81	0.21	1.58	<0.01
	वर्ग ब	-	-	-	-	-	-	-	-	-

तालिका - 13 CRP (Titre Value) पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
CRP	वर्ग अ	9	3.33	2.89	0.44	13.33%	0.73	0.24	1.83	<0.1
	वर्ग ब	1	4.000	3.000	1.000	25.00%	-	-	-	-

तालिका - 14 CRP (Titre Value) पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
ASO	वर्ग अ	9	3.00	2.78	0.22	7.41%	0.67	0.22	1	<0.1
	वर्ग ब	5	3.00	2.6	0.4	13.33%	0.89	0.04	1	<0.2

तालिका - 15 क्ष-किरण चित्रानुसार संधिशोथ पर उपशयात्मक औषध का प्रभाव

लक्षण	वर्ग	रोगी संख्या	चि.पू. मध्य	चि.प. मध्य	माध्य अन्तर	माध्य प्रतिशत	S.D.	S.E.	t	p
क्ष-किरण	वर्ग अ	5	3.6	2.6	1	27.78%	0.71	0.32	3.16	<0.025
	वर्ग ब	4	3	2.25	0.75	25.00%	0.5	0.25	3.00	<0.05

निष्कर्ष

"स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ।"

(मा.नि. 25)

अर्थात् आमवात रोग प्रकुपित होने पर सभी रोगों से कष्टप्रद रोग है । यह रोग आम दोष जनित है । आमोत्पत्ति दो प्रकार की होती है - 1. जठराग्निमांध जनित, 2. धात्वाग्नि जनित ।

दोनों ही अवस्थाओं में अग्नि मांद्य की उपस्थिति अनिवार्य हैं । अग्नि मांद्य को आमवात रोग की उत्पत्ति में प्रमुख कारण माना गया है । शरीरस्य आम का निष्क्रमण सहसा ही नहीं कराया जा सकता । प्रथम उसके पाचन हेतु क्रियाएं एवं औषध प्रयोग करना जरूरी है । उसे आमाशयस्य करके शरीर से बाहर निकाला जा सकता है ।

आमवात रोग की आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के Rheumatoid arthritis रोग से तुलना की गई है ।

इस अध्ययन में देखा गया कि जिन रोगियों में RA Factor धनात्मक पाया गया उनकी व्याधि की अवस्था किंचित उग्रता के साथ पाई गई, यह 60-80 प्रतिशत के मध्य के RA रोगियों में धनात्मक पाया जाता है । इस शोध कार्य में अलम्बुषादि घनवटी के उपशयात्मक अध्ययन हेतु रोगियों को दो वर्गों में विभाजित किया गया । RA factor धनात्मक रोगियों के अनेक लक्षणों यथा शूल एवं शोथ आदि में RA factor ऋणात्मक रोगियों की अपेक्षा कम प्रतिशत में लाभ मिला जिसका कारण RA Factor का इस रोग में Prognosis marker होना सिद्ध होता है ।

आमदोषोत्पत्ति की जड़ अन्नवह स्रोतस् है । उन सभी लक्षणों यथा अरुचि, अपाक, अग्नि दौर्बल्य आदि पर अलम्बुषादि घनवटी का प्रभाव दोनों ही वर्गों पर अतिसार्थक प्राप्त हुआ है । फिर भी वर्ग अ में वर्ग ब की अपेक्षा किंचित अल्प लाभ मिला । निश्चित ही इस औषध का आम पाचन में अच्छा योगदान रहा है ।

यदि इस औषध का दीर्घकाल तक सेवन किया जाय तो इससे प्रथमतः अग्निवर्द्धन एवं आम पाचन होने के साथ ही सन्धि शूल एवं सन्धि शोथ आदि लक्षणों में भी स्वतः ही कमी आयेगी । ऐसा होने पर आयुर्वेद रोग को जड़ से समाप्त करता है । इससे जनमान्यताओं को अवश्य बल मिलेगा ।

बैद्यनाथ
ईसबबेल
आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री),
कब्जियत आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

ऋतु प्रभावात उत्पन्न Peptic Ulcer एवं परिणामशूल:एक आयुर्वेदीय अध्ययन

प्रो. हरिभाई के. त्रिवेदी

प्रास्ताविक -

वर्षासु चीयते पित्त शरत् काले प्रकुप्यति । अर्थात् वर्षाकाल का संचित पित्त को शरद ऋतु में सहसा (एकाएक तीक्ष्ण) सूर्य की किरणों द्वारा सन्तत्य शरीर में पित्त कुपित हो जाता है, तब पित्तजन्य विकारों जैसे विदग्धाजीर्ण अम्लपित्त एवं परिणामशूलजन्य व्याधि उत्पन्न होते हैं ।

आजकल यह एक व्यापक रोग है । रोगियों में 3-4 प्रतिशत में यह रोग पाया जाता है । आमाशय की अपेक्षा ग्रहण्याशय में यह रोग का प्रभाव ज्यादा होता है, क्योंकि यहां अन्न का पाचन होता है । भूक्ते जीर्यति यत् शूलं तदेव परिणामजम् । अर्थात् आहार पचन के अम्लीभाव के समय में जो शूल होता है उसे परिणाम शूल कहा जाता है। महर्षि चरक ने (च.चि.अं. 15) आहार का पाचन की द्वितीय अवस्थापाक में कहा है कि - परंतु पच्यमानस्य विदग्धाम्ल भावत: । यहाँ आहार रस की द्वितीयावस्था में पाक में अन्न रस का अम्लीभाव होता है अर्थात् पच्यमानावस्था में जो शूल उत्पन्न होता है, उसे परिणाम शूल कहा जाता है, प्रारंभ में दूषित पित्त के प्रभाव से विदग्धाजीर्ण होता है। बाद में अम्लपित्त और अम्लपित्त की उपेक्षा करने से दूषित पित्त आंत्र के पारंभिक भाग में अर्थात् आमाशय के अधोभाग में व्रण हो जाते हैं । आंत्र के प्रारंभिक भाग में ग्रहणी कला (डयुसोडीनम्) में जो व्रण उत्पन्न होता है उसमें परिणाम शूल का लक्षण मिलता है ।

आधुनिक विज्ञान के नाम :-

जिनके आमाशय में स्वभावत: श्लेष्म द्रव्य या Mucus का जो कि Mucopoly Saccharides तथा Mucoproteins का मिश्रण है । Mucus की मात्रा कम और एसिड तथा पेप्सीन की मात्रा अधिक उत्पन्न होती है, यह रोज होता है । इस प्रकृति के व्यक्तियों का आमाशय भोजन करने के बाद शीघ्र खाली हो जाता है, क्योंकि इनमें आमाशय स्राव की अधिकता के साथ-साथ आमाशय गति भी अधिक होती है । अत: इनके आमाशय की श्लेष्मकला पर आमाशय रस एसिड तथा पेप्सीन का पाचन प्रभाव होकर क्षत या व्रण होने का भय रहता है । पेप्सीन के द्वारा उत्पन्न होने के कारण इस व्रण को (Peptic Ulcer) कहा जाता है ।

लक्षण

यह रोग मध्य आयु जैसे 25 से 50 वर्ष तक की आयु में धीरे-धीरे अज्ञात रूप से आरम्भ होता है तथा चिरस्थायी अजीर्ण के रूप में रहता है जिससे छाती में जलन या दाह प्रतीत होता है । आमाशय में व्रण हो तो भोजन करने के बाद विशेषत: अधिक भोजन करने के, आधा-एक-डेढ़ घण्टे बाद और याद ग्रहण्याशय में व्रण हो तो भोजन करने के 2-3 घंटे बाद पेट में शूल होने लगता है, लगभग एक घण्टे तकं रहकर स्वयमेव शान्त हो जाता है ।

रोगी का यह शूल नित्य प्रति हो तथा प्रत्येक ऋतु में हो ऐसा नहीं है, जब-जब वह अधिक मात्रा में भोजन लेता है या गरिष्ठ एवं विक्षोभक आहार करता है या कभी-कभी ऋतु परिवर्तन काल में जैसे शरत् तथा वसन्त में साधारण मात्रा में भोजन करने पर भी शूल उड़ जाता है । जिन अवस्थाओं में आमाशय शोथ होता है, उन्हीं में शूल होने की अधिक आशंका रहती है, कुछ महीने शूल उड़कर फिर कुछ महीने शान्त रहता है, परन्तु क्रमश: शूल शान्ति का यह समय घटता जाता है । हृद्राह (Heart Burn) अम्लोदगार (Acid eructations) के लक्षण भी बहुधा होते हैं । अम्लीय आमाशय रस के भोजन-नली में आने से हृदाह भी होता है ।

शूल व्याधि में वायु का प्रभुत्व ।

माधव निदान में सर्वेष्यतेषु शूलेषु प्रायेम पवन: प्रभु: । अर्थात् सब दोषों में वायु प्रबल एवं स्वतंत्रकर्त्ता होता है । अत: वात के अतिरिक्त शेष शूलों में भी वात का प्रवण, अनुबंध रहता है । महर्षि चरक ने वायु को सर्व शरीर का संचालन, दोषों, धातुओं और मलों की सम्यक् स्थिति रखने में, रसादि धातुओं के पोषण कर्म, में एवं यंत्र अर्थात् मस्तिष्क, हृदय एवं किडनी (बस्ति) आदि प्रधान मर्मों की सम्यक् स्थिति रखने में वायु ही प्रधान है । महर्षि सुश्रुत ने "शङ्कस्फोटनवत्तस्य यस्नात्तीव्रा हि वेदना । शूलासक्तस्य भवति तस्माच्छलमिहोच्यते ।। (सु०उ०तं०अ०43) अर्थात्

सेवानिवृत्त प्राध्यापक, सरकारी आयुर्वेद महाविद्यालय, बड़ौदा

शंकु (कील) गाड़ने के समान इस में तीव्र पीड़ा वायु की वजह से ही होता है । इसलिये इसे शूल कहते हैं ।

आचार्य गणनाथ सेन एवं सिद्धान्त निदान में संज्ञावह नाड़ियों का वहन करने में वायु का ही प्रभुत्व, स्रोतोरोध करने में व्रण, शोथ, क्षत, आघात, शरीर में विषमता युक्त कार्य एवं दौर्बल्यता लाने में प्रधान वायु ही है । आगे सि.नि. में कहते हैं कि वात, मूत्र, पुरीषादि का निष्कासन एवं निग्रह वायु ही करते हैं ।

संज्ञावहानां नाडीनां प्रतानोद्वेजनांभ्दवः ।
सर्वेऽपि शूलास्तेन हुः शूलानामनिलः प्रभुः ॥
गणनाथ सेन

स्रोतो निरोधानावतौ व्रण शोथस्तथा क्षतम् ।
आघातः कार्य वैषम्यं दौबल्यं शूलं भूमयः ॥
सि.नि.

परिणाम शूल का निर्देश :-

यद्यपि परिणाम शूल त्रिदोषज होता है तथापि चूंकि यह नियत रूप से भोजन के पच्यमान काल में हुआ करता है, अतः इसे पित्तोलवण त्रिदोषज मानना चाहिये । जैसे अन्यत्र कहा भी है कि कफ अपने स्थान से च्युत होकर जब पित्त स्थान (ग्रहणी) में पहुंचता है तो पित्त के साथ मूर्च्छित होकर समान वायु को भी साथ लेकर भोजन की पच्यमानावस्था में शूल उत्पन्न कर देता है । यह शूल कुक्षि में उदर में, पसवाडो में, नाभि प्रदेश में, बस्ति प्रदेश में, स्तनान्तर अर्थात् हृदय प्रदेश में, पृष्ठ में, त्रिक प्रदेश में अथवा इन सब में समकालीन ही पीड़ा उत्पन्न कर देता है, यह परिणाम शूल भोजन के पश्चात् ही वमन कर देने से शान्त हो जाता है अथवा आहार के पच जाने के पश्चात् शान्त हो जाता है । माधव निदान में कहा है कि -

भूक्ते जीर्यति यच्छलं तदेव परिणामजम् ।

यह शूल साठी के, बीही धान्य अथवा शालि चावल, खाने से बढ़ता है । इस घोर एवं दुर्विज्ञेय महारोग को परिणामशूल कहते हैं । यह शूल रसवाहि स्रोतों को दूषित करनेवाला होता है ।

भोजन के परिणाम काल में सामान्यतः पित्त की विशेषता रहती है । पित्तजशूल पच्यमानावस्था में ही होता है । इस तरह पित्तजशूल एवं परिणाम शूल में साम्यता होती हैं मधुकोषकार ने कहा है कि -

अस्य च त्रिदोषजस्यापि नियत परिणाम ।
काल सम्भवत्वेन पित्तोल्वणत्वं दृष्टव्यम् ॥
मधुकोष

परन्तु इनमें - पैत्तिक शूल एवं परिणाम शूल में भिन्नता

पैत्तिक शूल	परिणाम शूल
1. पैत्तिक शूल पित्त प्रधान होती है ।	1. परिणाम शूल त्रिदोषजन्य होता है ।
2. पैत्तिक शूल मध्यन्दिन, अर्धरात्रि विदाहकाल तथा शरद् ऋतु में विशेष होता है ।	2. परिणाम शूल का पित्त प्रकोप समय से विशिष्ट सम्बंध न होकर भोजन के पाचन के समय से शूल होने का सम्बन्ध है ।
3. पित्तज शूल का परिणाम काल में होना भी उतना स्पष्ट नहीं है ।	3. परिणाम शूल पच्यमानावस्था में ही होता है ।
4. पैत्तिक शूल के मुख्य कारण पित्त प्रकोपक पदार्थ है ।	4. किन्तु परिणाम शूल का आधुनिक दृष्टि से मुख्य कारण ग्रहणीव्रण (Duolenal Ulcer) है । आमाशय में पाचन होने के पश्चात जब अन्न ग्रहणी कला में प्रवेश करता है तब नाभि के निम्न भाग और दोनों पार्श्वों में शूल होता है ।

परिणाम शूल एवं अन्नद्रवशूल में भिन्नता

परिणाम शूल	अन्नद्रवशूल में भिन्नता
1. भूक्ते जीर्यते यच्छलं तदेव परिणामजम (माधव) अर्थात् शूल भोजन के परिपाक काल में होता है ।	1. जीर्णत्यजीर्णेवा - (माधव) अर्थात् किसी भी काल में होने वाला तथा पथ्य और अपथ्य के प्रयोग से भोजन करने या न करने पर भी शूल शान्त न होने वाले उदरशूल को अन्न-द्रव शूल कहते हैं ।
2. आधुनिक दृष्टि से परिणाम शूल की तुलना ग्रहणी व्रण (Duodenal Ulcer) से कर सकते हैं क्योंकि आमाशय में पाचन होने के पश्चात् जब पच्यमान अन्न ग्रहणी (Duodenal) में पहुँचता है तो सव्रण ग्रहणी (Duodenal Ulcer) के कारण तीव्र शूल होता है ।	2. रोगी को निरन्तर शूल रहता है । रोगी को कभी आराम नहीं मिलता, परन्तु कदाचित् वमन हो जाने से पित्त का निकल जाने से शूल तुरन्त शान्त भी हो जाते हैं । वान्त मात्रे जरत्पित्तं शूल माशुंव्यपोहति किसी भी काल में होता है (माधव निदान)
3. परिणाम शूल रसवाही स्रोतों की दुष्टि से उत्पन्न होता है ।	3. अन्नद्रव शूल अन्नवाही स्रोतसों की दुष्टि से उत्पन्न होता है ।
4. इस में उदरगत विकृति के कारण ही बस्ति तथा पृष्ठ आदि प्रदेशों में शूल की अनुभूति होती है ।	4. इस वात शूल का अधिष्ठान आमाशय है । अत: उर्ध्व आमाशय एवं अधो आमाशय में सतत वेदना होती है ।
5. यह शूल पित्तोल्वण होने से आहार पाक काल तक ही सीमित रहता है और भोजन का पाक पूर्ण हो जाने पर फिर से भोजन कर लेने पर या वमन हो जाने पर यह शूल स्वयं शान्त होते हैं ।	5. आमाशय में शोथ या व्रण हो जाने से इसमें बराबर शूल होता रहता है तथा अन्न द्रव ग्रहण करने पर शूल में वृद्धि हो जाती है ।
6. यह Duodenal Ulcer का प्रतिनिधित्व करते हैं ।	6. यह Gastric Ulcer का प्रतिनिधित्व करता है ।

परिणाम शूल का चिकित्सा सिद्धान्त एवं उपक्रम

यहाँ अन्न के पाचन के समय शूल होता है, यहाँ अन्न की पच्यमानावस्था में अन्न विदग्ध होता है तब अन्न का अम्ली भाव-अपक्वरूप में होता है अत: हमें विरेचन में अवित्तकर चूर्ण-शोधन रूप में देते है ।

1. अविपत्तिकर चूर्ण - चूर्णअम्लपित्तविनाशनम ।

भैषज्यरत्नावली ।

अत: अत्रे अविपत्तिकर चूर्ण विदग्ध-अर्ध परिक्व पित्त को निकालकर कोष्ठ शुद्धि करते हैं ।

अविपत्तिकर चूर्ण रात्रि को 3 से 4 मात्रा शीत जल के साथ देने से वायु का अनुलोमन होने के विदग्ध विकृत पाक गुदा से बाहर निकल जाते हैं और वायु का अनुलोमन होने से शूल भी शान्त होता है और दूसरी महत्व वात यह है कि कोष्ठ शुद्धि होने से दोष एवं व्याधि औषध देने से उत्तम कार्य करते हैं ।

2. कपर्दिका (कौड़ी) भस्म :- 2 से 8 रत्ती

सुबह-शाम घी के साथ मिलाकर देने से आम दोष का पाचन करने से प्रथम अग्निमांद्य को दूर करते हैं यहाँ कौड़ी रूक्ष-लघु होने से आम का पाचन करते हैं बाद में परिणामवस्था में होने वाले शूल को घृत शान्त करते हैं, परिणाम शूल में गौघृत उत्तम कार्य करते हैं। यहाँ कपर्दिका भस्म के साथ देने से घृत की गुणवत्ता बढ़ जाती है और आमाशयस्थ अपक्व पित्त एवं ग्रहणी कला में जो व्रण एवं शोथ होता हो सब की शान्ति करते हैं।

3. शंख भस्म :- 2 से 8 रत्ती घृत के साथ अथवा कपर्दिका भस्म के साथ मिलाकर देने के उत्तम कार्य करता है। शंख भस्म लघु एवं उष्ण होने से दीपन और पाचन होने से अम्ल पित्त, पेट का दर्द और विशेष रूप से परिणाम शूल में सद्यः फलदायी है।

4. शतावरी घृत :- पित्तज एवं आमपित्त अर्थात् विदग्धावस्था में देने से शतावरी, पित्त शामक है और घृत वात का अनुलोमन कर शूल को सद्यःशांत करते हैं। शतावरी घृत ½-½ चम्मच, सुबह-शाम गोदुग्ध के साथ देने से विदग्धाजीर्ण-अम्लपित्त एवं ग्रहणी व्रण में उत्तम कार्य करता है।

पथ्य :- जीर्णशक्ति लघु एवं पाचक है-पटोल, कारवेल्लक, वास्तुक, शिग्रु घृत-दुग्ध इत्यादि।

अपथ्य :- विरूद्ध अन्नपान, तिक्त, कषाय, शीतल, गुरु, शिम्बीधान्य, तैल की बनी, जागरण एवं व्यायाम का त्याग करें।

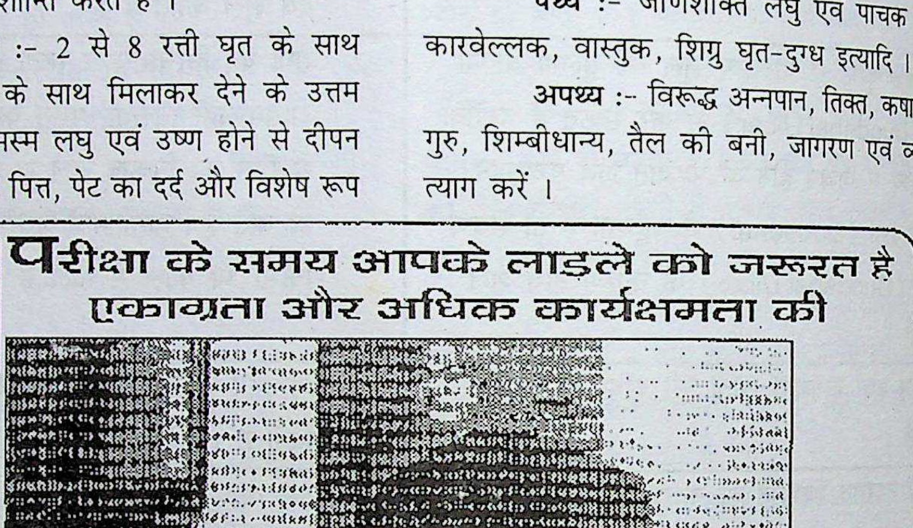

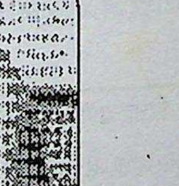

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है। पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है। ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत

एकाग्रता लाए, समझ जगाए।
आज, हररोज़ और वर्षभर

आयुर्वेद में मानसिक रोग की अवधारणा एवं चिकित्सा

* डॉ० जितेन्द्र कुमार ** डॉ० अश्विनी शर्मा *** प्रो० लोकनाथ शर्मा

वर्तमान युग, विज्ञान का युग है । यह विज्ञान आज सभी क्षेत्रों में प्रगति का मुख्य कारण है । परन्तु साथ ही अनेक दुष्परिणामों के कारण मनुष्य को अनेक प्रकार से मानसिक रोगी बनाने में भी इसका योगदान दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है । विशेषतः समाज में बढ़ता कम्प्यूटरीकरण युवाओं को पथभ्रष्ट, अश्लीलता की ओर आकर्षित कर रहा है, साथ ही बढ़ते मुद्रण के कारण सस्ता एवं स्तरहीन साहित्य के पठन के कारण युवा वर्ग में निरन्तर सात्विकता के अंश का ह्रास होता जा रहा है तथा रज व तम आदि मानसिक दोष वृद्धि को प्राप्त हो रहे हैं ।

आयुर्वेद मतानुसार सभी प्रकार के मानसिक रोगों का कारण यह मानसिक दोष (रज व तम) ही है । आयुर्वेद एक सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान है । इसमें शारीरिक रोगों के विस्तृत विवरण के साथ-साथ मानस रोगों पर भी महत्वपूर्ण विवेचन मिलता है । शारीरिक रोगों की उत्पत्ति में मूलकारण वात, पित्त, कफ इन तीन दोषों का माना है जबकि रज और तम दो दोषों को मानस रोगों को कारण माना गया है । शारीरिक और मानसिक रोगों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। इस सिद्धान्त पर आयुर्वेद ही सबसे अधिक जोर देता है। किसी शारीरिक व्याधि का अधिक समय तक अनुबंध रहने पर बढ़े हुए शारीरिक दोष, मानसिक दोषों को भी कुपित कर देते हैं । इसी प्रकार अधिक समय तक मानसिक व्याधि से ग्रस्त रहने पर शारीरिक दोष भी कुपित हो जाते हैं ।

आयुर्वेद मतानुसार कोई भी मानस रोग तब तक पूर्ण बल को प्राप्त नहीं करता, जब तक कि शारीरिक दोष भी साथ में विकृत न हो जाय ।

मानस रोगों में दो प्रकार की विकृति मिलती है-

नाड़ी विकृति जन्य (Neurological)

मानस विकृति जन्य (Psychotic)

एक भारतीय सर्वेक्षण के अनुसार -

लगभग 29% रोगियों में मानसिक विकृति का इतिहास मिलता है । इनमें प्रमुख रूप से Psychosis, Depression Anxiety या Childhood behavioural problems आदि मानस रोगों का इतिवृत्त मिलता है ।

मानस रोगों का वर्गीकरण

आयुर्वेद में समस्त मानस रोगों को मुख्यतः दो भागों में बाँटा गया है - 1) निज मानस रोग एवं 2) आगन्तुज मानस रोग ।

1. **निज मानस रोग -**
   - अ) मानस दोषजन्य (रज-तम से उत्पन्न)-मानस रोगों के अन्तर्गत-काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, मान, मद, शोक, चिन्ता, उद्वेग, भय, विषाद इत्यादि ।
   - ब) वातादि शारीर दोषों के अनुबंध से होनेवाली मानस दोष विकृतिजन्य - अपस्मार, मद, मूर्च्छा और संयास, अतत्वाभिनिवेश इसमें उदाहरण है ।
2. **आगन्तुज मानस रोग -**
   - अ) भूतबाधाजन्य - भूतोन्माद ।
   - ब) ग्रहबाधाजन्य - बालकों में होने वाले ग्रहबाधाजन्य विकार ।

मानस रोगों के कारण -

1. सामान्य कारण -

आयुर्वेद में समस्त मानस रोगों का मूल कारण प्रज्ञापराध बताया है ।

> ''ईर्ष्याशक्तिभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये ।
> मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वं प्रज्ञापराधजाः ॥
> (च०सू० 7/52)

संक्षेप में प्रज्ञा अपराध से तात्पर्य है - सही व गलत को समझते हुए भी गलत कार्य में प्रवृत्ति । अर्थात् बुद्धि से विषम, अनुचित ज्ञान, अनुचित प्रवृत्ति (वाणी, शरीर और मन चेष्टा) करना प्रज्ञापराध है ।

स्पष्ट है कि बुद्धि से विषम अर्थात् अनुचित ज्ञान करना तथा विषय या अनुचित प्रवृत्ति (वाणी, शरीर और मन चेष्टा) करना प्रज्ञापराध कहलाता है ।

प्रज्ञापराध से मानसिक विकृति के उत्पन्न होने में सर्वप्रथम इन्द्रियों का उसके विषयों से असात्म्य संयोग होता

---

* एम.डी. स्कॉलर, स्नातकोत्तर रोग विकृति विज्ञान विभाग, रा.आ.सं., जयपुर ** आयुर्वेद चिकित्साधिकारी, जयपुर
*** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर रोग विकृति विज्ञान विभाग, रा.आ.सं., जयपुर

है जिसके कारण इच्छा, द्वेष तथा तृष्णा का जन्म होता है। सुख और दु:ख से इच्छा और द्वेष रूप तृष्णा उत्पन्न होती हैं। तृष्णा से पुन: सुख/दुख उत्पन्न होते हैं। इससे इष्ट वस्तु की प्राप्ति या अप्राप्ति तथा अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति से मानस रोग उत्पन्न होते हैं।

- **प्रज्ञापराध अधर्म** का मूल है, जबकि अधर्म कर्मज व्याधियों का कारण है। अत: जन्मजात - आदि बल प्रवृत्त मानव व्याधि के प्रति प्रज्ञापराध उत्तरदायी होता है।

2) अन्य कारण -

शारीर भावों का मन पर भी प्रभाव पड़ता है। जैसे वातक्षय से अप्रहर्ष एवं मूढ़संज्ञता, वातवृद्धि से निद्रानाश, पित्तक्षय होने पर भय, क्रोध, मोह, मूर्च्छा, मद, अरति, भ्रम, अतृप्ति, ग्लानि, इन्द्रिय, दौर्बल्य, पित्त बृद्धि होने पर अल्प निद्रता, मूर्च्छा इत्यादि, कफक्षय होने पर प्रजागरण, कफ वृद्धि होने पर तन्द्रा एवं निद्रा इत्यादि।

इसी प्रकार अतिलंघन, गरविष, दुष्टान्न, मद्य, आमविष (आमदोष) ऋतु विपर्यय भी मानसिक रोगों में सहायक होते हैं।

वस्तुत: मानसिक रोगों के प्रति विविध प्रकार के मनोविज्ञान एवं हीनसत्वता ही प्रमुख कारण है।

सम्प्राप्ति -

निदानसेवन + अहितकर आहार-विहार सेवन
↓
प्रकुपित शारीरिक एवं रज तमादि मानसिक दोष
↓
उर्ध्वगमन करके मनोवाही धमनियों में आश्रय
↓
मानस रोग

मानस रोगों की चिकित्सा -

आयुर्वेद में मानस रोगों की तीन चिकित्सा विधियां बतायी गयी हैं -

- **दैवव्यपाश्रय चिकित्सा** - इसमें मंत्र, औषधि धारण, होम, उपवास, नियम, तीर्थगमन आदि बताया है। इनके द्वारा मन एवं शरीर दोनों प्रभावित होते हैं और ये मानस रोगों की रोकथाम के लिए विशेष उपयोगी हैं।
- **युक्तिव्यपाश्रय चिकित्सा** - इसके अन्तर्गत औषधि, पंचकर्म, पथ्यापथ्य आदि का प्रयोग चिकित्सा में किया जाता हैं इसके अन्तर्गत संशोधन एवं शमन दो प्रकार की क्रियायें की जाती हैं। इन शोधन उपायों से मन एवं शरीर शुद्ध हो जाते हैं। व्यक्ति की स्मृति, मेधा एवं चैतन्यशक्ति में सुधार होता है।

औषधि प्रयोग -

- एकल औषधि प्रयोग - ब्राह्मी, कुष्माण्ड बीज, वचा, अश्वगंधा, जटामांसी, शंखपुष्पी आदि।
- तैल प्रयोग - पलंकषादि तैल, जटामांसी तैल, हिंग्वादि घृत, ब्राह्मी घृत इत्यादि।
- चूर्ण एवं कषाय - मेध्य वानस्पतिक द्रव्यों के चूर्ण व कषाय। सारस्वत चूर्ण + सारस्वतारिष्ट।
- रस - उन्माद गजकेशरी, उन्माद गजांकुश, चतुर्भुजरस इत्यादि।
- मेध्य रसायन का प्रयोग।

सत्वावजय चिकित्सा

यद्यपि मानस रोगों की चिकित्सा में औषधि का महत्व है, परन्तु मानस रोगों की चिकित्सा के लिए सत्वावजय चिकित्सा विशेष उपयोगी है जिसके द्वारा रोगी के धी, धृति तथा स्मृति की सामान्यवस्था में लाने का प्रयास किया जाता है। इसके अन्तर्गत विपरीत मानस भावों को उत्पन्न करने (Replacement of emotions) से रोग शान्त होता है। जैसे काम को क्रोध से शान्त किया जाता है। इस प्रकार मानस रोगों की चिकित्सा की आयुर्वेदीय विधि अत्यन्त वैज्ञानिक है।

पथ्य -

- **उपक्रम** - स्नेहन, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण, अंजन, धूप, धूम, नस्यकर्म, प्रदेह और सेक आदि।
- **विहार** - आश्वासन, ताडन, त्रासन, लंघन, भय, दान, स्नान, निद्रा, अभ्यंग और सुशीतल अनुलेप इत्यादि।
- **आहार** - गेहूँ, मूंग, लाल शालीचावल, शत धौत घृत, नारियल, कुष्माण्ड फल, पटोल, ब्राह्मी, स्वर्ण भस्म, इत्यादि।

ये सब मानस रोगों में हितकर होते हैं।

अपथ्य - मद्य, विरुद्ध भोजन, उष्ण भोजन, भूख प्यास के वेग को रोकना, करेला, तिक्तशाक और कुन्दरू ये सब मानस रोगों में अहितकर होते हैं।

आयुर्वेद परक - डायबिटिक फुट जानलेवा रोग

डा॰ सुरेश चन्द, एम.डी. (आयु.)

परिचय - मधुमेह में निकलने वाला अपर ओज मधुर स्वभाव का होता है ।मधुमेह का प्रधान कारण वायु है और इसका प्रकोप धातुक्षय तथा अन्य दोषों के आवरण से हो सकता है । मधुमेह व्याधि से ग्रसित व्यक्तियों को मुख्य रूप से जिन खतरों से खेलता पड़ता है उनमें डायबिटिक फुट अल्सर भी एक बड़ा खतरा है । जो गलत नाप के तथा हाई हीलवाले जूते-चप्पल का प्रयोग करने से डायबिटिक फुट अल्सर का कारण बन सकता है । अथवा पैरों की धमनियों की अंदरूनी दीवार के मोटे होने (माइक्रोएंजियोपैथी) तथा चर्बी एवं कैल्शियम जमा होने की प्रक्रिया काफी तेज होती है जिससे पैरों की रक्त धमनियाँ काफी संकरी हो जाती हैं। इससे खून का बहाव कम हो जाता है । मधुमेह रोगियों में डायबिटिक न्यूरोपैथी की वजह से पैरों की त्वचा की संवेदनशीलता कम हो जाती है ।

लक्षण - उपरोक्त कारणों से मरीज को पैरों पर किसी प्रकार के दबाव, खरोंच एवं मामूली चोट का एहसास नहीं होता और रोगी इसके प्रति लापरवाह हो जाता है जो एक बड़ा जख्म का रूप ग्रहण कर लेता है । इसके अलावा डायबिटिक न्यूरोपैथी की वजह से पैरों की मांसपेशियों में कमजोरी एवं सिकुड़न आ जाती है । इससे पैरों की हड्डियों पर अनावश्यक दबाव बढ़ जाता है और पैरों के घाव गहरे हो जाते हैं । डायबिटीक फुट में गैंगरीन एवं घाव अधिक होने के कारण पैरों की रक्त धमनियों का संकरा हो जाना है, जिससे पैरों में रक्त प्रवाह सुचारु रूप से नहीं होता है। इसके अलावा ऐसे पैरों में किसी भी तरह का संक्रमण बहुत तेजी से फैलता है ।

कई बार जख्म इतना गंभीर हो जाता है कि अनेक उपायों के बाद भी कोई लाभ नहीं होता है और तब मरीज की जान तथा शरीर के महत्वपूर्ण अंगों को बचाने के लिए पैर के गैंगरीन तथा संक्रमण युक्त हिस्से को काटना पड़ता है। इसे आधुनिक चिकित्सा भाषा में डिजिटल एम्प्यूटेशन अथवा ट्रांसमेरारारसल एक्प्यूटेशन कहा जाता है ।

क्रिया शारीर का दृष्टिकोण - प्राकृत अर्थात् स्वस्थ दशा में मूत्र में शर्करा नहीं रहती है । प्राकृत अवस्था में मूत्र का सापेक्ष गुरुत्व (Specific gravity) 1015 से 1025 तक होती है, मूत्र शर्करा के होने पर यह 1030 से अधिक हो जाती है । मूत्र में शर्करा की उपस्थिति का प्रधान कारण कार्बोहाइड्रेट्स के समवर्त (Metabolism) की विकृति है । कार्बोहाइड्रेट्स का समवर्त कार्बोहाइड्रेट्स आंत्रिक पाचन के द्वारा मधुशर्करा (Glucose) के रूप में परिणत होकर शोषित हो जाता है और रक्त वाहिनियों द्वारा यकृत में पहुँचकर ग्लाइकोजन के रूप में संचित हो जाता है । इसका कुछ भाग पेशियों में भी संचित हो जाता है । जरूरत पड़ने पर यह पुनः ग्लाइकोजिनेज नामक किण्व (Enzyme) के द्वारा ग्लूकोज के रूप में परिवर्तित होकर शरीर के काम में आता है । पेशियों को शक्ति प्रदान करके निर्मित रक्त में भी वह एक निश्चित प्रमाण में बना रहता है ।

रक्त में आवश्यकता से अधिक शर्करा रहने पर उसका ग्लाइकोजन के रूप में Liver में संचय हो जाता है । जब यकृत भी इससे परिपूर्ण हो जाता है तो ग्लूकोज मेद में परिवर्तित होकर शरीर की विभिन्न धातुओं में संचित हो जाता है । शर्करा रक्त से वृक्कों द्वारा छनकर ही मूत्र में आती है ।

वृक्क के अतिरिक्त कार्बोहाइड्रेटस-बहुल पदार्थों के अत्यधिक सेवन से वृक्क देहली मर्यादा का अतिक्रमण होने पर मूत्र में शर्करा की उपस्थिति मिलती है । इसे संतर्पण जन्य शर्करामेह कहते हैं जो कार्बोहाइड्रेटस की मात्रा कम करने से ठीक हो जाता है ।

बचाव - डायबिटिक फुट के इलाज के दरम्यान घाव की उचित देखभाल एवं इसे संक्रमण से बचाए रखना जरूरी होता है । इसके लिए रोजाना घाव की ड्रेसिंग की जानी चाहिए, सड़ गए ऊतकों को समय-समय पर काट कर निकालते रहना चाहिए, रक्त शर्करा के स्तर पर नियंत्रण रखना चाहिए, मवाद या पस को इकट्ठे नहीं होने देना चाहिए और एंटिबायोटिक तथा अन्य दवाइओं की मदद से पैरों को संक्रमण से बचाना चाहिए ।

आहार - विहार पर विशेष रूप से कोलेस्ट्रोल की

रीडर/विभागाध्यक्ष, शरीर क्रिया विभाग, शहीद करतार सिंह सराभा आयु॰, मेडिकल कॉलेज, ग्रा.+पो.-सराभा, लुधि॰

मात्रा पर ध्यान देना चाहिए । सर्दी में या बहुत ज्यादा ठंडे मौसम में अपने पैरों को ठण्ड से बचाएँ । अपने पैरों को हमेशा गर्म रखें और गर्म जुर्राव पहनें । अपने पैरों को सीधा आग पर मत सेकें ।

निष्कर्ष - उपरोक्त तथ्यों से यह निष्कर्ष निकलता है कि मधुमेह के रोगी को सर्वप्रथम अपने स्वास्थ्य के प्रति सचेत रहना चाहिए और अपनी दिनचर्या को सावधानी पूर्वक निर्वाह करना चाहिए और आहार-विहार का विशेष ध्यान रखना चाहिए । रोगी को हमेशा पैरों में चप्पल पहनकर रहना और पैरों को अच्छी तरह से धोकर मुलायम कपड़े से पोछकर रखना चाहिए ।

स्वानुभूति चिकित्सा - मैंने अपनी संस्था के अंतर्गत अस्पताल में एक दो मरीजों के पैरों की चिकित्सा कुछ इस प्रकार की, जिससे उनको 75% लाभ प्राप्त हुआ।

सर्वप्रथम रोगी को इस रोग के बारे में पूरी तरह से अच्छी जानकारी दे देनी चाहिए और फिर उसके पश्चात् प्रतिदिन निम्ब+करवीर के पत्रों को उबालकर उसके गुन-गुने जल से धोना चाहिए फिर उपरोक्त हर्बल पत्रों का स्थानाश्रय पर लेप करना चाहिए । ऐसा एक महीने लगातार करने से इस जानलेवा व्याधि से मुक्ति मिल सकती है । साथ ही साथ स्वस्थ के स्वास्थ्य के नियमों का पालन करना चाहिए।

आयुर्वेदीय औषधि के रूप में करेला + निम्ब + मेंथी के बीज + जामुन की गुठली (पाउडर) को + चिरायता + गुड़मार की समान मात्रा लेकर पीसकर छानकर पाउडर को एक-एक चम्मच दिन में 3 बार लेना चाहिए और शुद्ध शिलाजीत का सेवन करते रहना चाहिए।

बैद्यनाथ

जन्मघूँटी

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी

जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती । इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं ।

उत्तरांचल की कुछ कीटनाशक वनस्पतियाँ

डा० जी० सी० जोशी

वनौषधियों के सक्रिय तत्वों में वानस्पतिक क्षार, ग्लाइकोसाइड, वाष्पशील तेल, रेजिन एवं एण्टीबायोटिक मुख्य हैं। वानस्पतिक क्षारकों में 'ऐमील' एवं 'एल्केलाइड' महत्वपूर्ण हैं। इनका शारीरिक क्रियाओं पर अधिक प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक वनौषधि में जो भी सक्रिय तत्व है उनके संभावित दुष्परिणाम को सीमित करने वाले घटक भी रेजिन, पेप्टाइड एवं रेशे के रूप में उसी में विद्यमान होते हैं; इस प्रकार वनौषधि स्वयं में एक पूर्ण योग है जिसमें इसके उपयोगी तत्वों के साथ बुरे प्रभावों को दूर करने वाला एण्टीडोट भी होता है। वनौषधियाँ शरीर की प्रत्येक क्रिया-प्रतिक्रिया में अधिक छेड़-छाड़ किये बिना उन्हें सामान्य स्थिति में लाने में सहायक बनती हैं।

वनस्पतियों के सक्रिय तत्वों में एक घटक वाष्पशील तेल होता है जिससे पौधों में विशिष्ट सुगंध रहती है। इन तेलों में कीटनाशक एवं कीट निवारक क्षमता होती है। पौधों में विद्यमान सक्रिय तत्वों की मात्रा भूमि की किस्म, जलवायु, ऋतु, पौधों की वृद्धि की अवस्था, प्रकाश के स्वरूप व उसकी तीव्रता तथा इनकी कृषि पर निर्भर करता है।

वनस्पतियों में गंधयुक्त पौधों का संवर्धन पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से उपयोगी है। गंधयुक्त पौधों में उड़नशील तेल पाया जाता है जो कीटों को दूर भगाने में, अनुवंश समाप्त करने एवं कीटनाशक की भाँति प्रयोग में लाया जा सकता है। उड़नशील तेलों के रासायनिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि इनमें अल्फा पिनीन, सिट्रल, फेरनीसोल आदि उपलब्ध होते हैं जो प्रबल कीटनाशक हैं; 'पाइनस' की कुछ प्रजातियों में उड़नशील तेल में बेंजल्डीहाइड, सिनामिल्डीहाइड व यूगीनोल पाया जाता है, जो कि कीटों को नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। कुछ पौधों के उड़नशील तेल को टर्मेसाइड के रूप में प्रयोग किया जाता है।

उड़नशील तेलों को "सिनरजिस्ट" के रूप में भी प्रयुक्त किया जा सकता है। यद्यपि ये स्वयं उदासीन होते हैं परन्तु किन्हीं अन्य क्रियाकारी यौगिकों के साथ मिलाने से कीटनाशक प्रवृत्ति उत्पन्न कर देते हैं। नवीन अनुसंधानों से ज्ञात होता है कि "दिल तेल" बुलूमियां लेसरा एवं बुलूमियां अन्य प्रजातियों के तेल प्रभावशाली सिजराजिस्ट पाये गये, इनको पायरेथ्रम के साथ मिलाया गया।

कीटों के अंडों को नष्ट करने वाले पदार्थ "ओबिसाइड्स" कहे जाते हैं। ये भ्रूण को प्रारंभिक अवस्था में ही नष्ट करने की क्षमता रखते हैं। कई वनस्पतियों जैसे धनिया, कड़वे बादाम, सिट्रोनेला, लौंग, पिपरमिंट, नींबू, लेवण्डर, पिरूल एवं सरसों से प्राप्त उड़नशील तेलों में कीटों के अण्डों को नष्ट करने की प्रवृति विद्यमान होती है।

कीटों को आकर्षित एवं दूर भगाने वाले रासायनिक तत्वों का सूक्ष्म जीवों के विकास में बहुत महत्व है। इन रसायनों को 'फीरोमोन' कहा जाता है। मादा कीट नरकीट को वंशवृद्धि के लिए इसी रसायन से प्रेरित करता है। वनस्पतियों से प्राप्त उड़नशील तेलों द्वारा कई हानिकारक कीटों को गुमराह कर उन्हें समाप्त किया जा सकता है। इन उड़नशील तेलों में कुछ रासायनिक यौगिक जैसे बोरोनायल एसिटेट, बीटा-सेन्टेलोल उपस्थित रहते हैं; इसी प्रकार वनस्पतियों से प्राप्त अल्फा-पिनीन, लिमोलीन टरपिनोलीन जैसे प्रभावशाली रासायनिक घटक मक्खी, मच्छर पिस्सू आदि कीटों को दूर भगाने की प्रवृत्ति रखते हैं। कुछ वनस्पतियों से ऐसे उड़नशील तेल प्राप्त किये गये हैं जिन्हें मादा कीटों पर छिड़कने से इनकी प्रजनन शक्ति समाप्त हो जाती है। नम जगहों पर पाये जाने वाले पौधे "वचा" एकोरस केलेमस के उड़नशील तेल में इसी प्रकार के गुण पाये जाते हैं। उत्तरांचल में गंधयुक्त वनस्पतियाँ समुचित मात्रा में उपलब्ध हैं जिनसे उड़नशील तेल प्राप्त करने के उद्योग लघुस्तर पर संचालित किए जा सकते है और अत्यन्त उपयोगी, निरापद कीटनाशक प्राप्त किये जा सकते हैं जिससे राज्य के बेरोजगार युवकों को रोजगार उपलब्ध होंगे एवं प्रदेश की आर्थिक स्थिति में योगदान हो सकता है।

क्षेत्रीय आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान, केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनु. परिषद, ताड़ीखेत (रानीखेत) 263663 (उत्तरांचल)

उत्तरांचल में पाई जाने वाली निम्नलिखित वनस्पतियाँ कीटनाशक बनाने हेतु प्रयोग की जा सकती हैं ।

परिशिष्ट (1)

1. तितपाती (दमनक) - आर्टीमिसिया वलगेरिस ।
2. धुड़वच (वचा) - एकोरस केलमस ।
3. पिस्सूमार - वोइनिनछुसिनिया एलबीफ्लोरा ।
4. जंगली बथुआ (वास्तुक)-चीनोपोडियम एम्ब्रीसोइडिस।
5. खुरसानी एजवाइन - हायोसाइमस नाइजर ।
6. वन अजवाइन, - थाइमस सरफिलम ।
7. सोआ - एनीथम सोआ ।
8. सम्यो (टगर) - वेलेरियाना जटामांसी ।
9. तुलसी - ओसियम की प्रजातियां ।
10. कर्कटश्रृंगी - पिस्टेसिया इंटिगिरिया ।
11. कूट - ससोरिया कोस्टस ।
12. लेमनग्रास - सिम्बोपोगोन की प्रजातियां ।
13. जंगली हजारी - टैगेरीज माइन्यूरा ।
14. भांग (विजया) - कैनेबिस सेटाइवा ।
15. देवदारू - सिड्रस देवदास ।
16. पुदीना - मेंथा प्रजाति ।
17. रोजमरी - रोजमरीनस आफिसिनेलिस ।
18. पिपरमिट - मेंथा पिपरेटा ।
19. वन तुलसी - औरिगेनम वलगेयर ।
20. पीलू - ग्लाइकोसमिस पेन्टाफिला ।
21. - - नैपिरा प्रजाति ।
22. - - फ्लैक्टैरैन्थस प्रजाति ।
23. तुम्बुरू - जैन्थोजाइलम एलेटम ।
24. निर्गुडी - वाइटेकस निगंडो ।
25. अखरोट - जुगलैंस रिजिया ।
26. लैपटोडर्मिस लैंसलियोलेय ।
27. सोमाइडा फेब्रीफ्थूजा ।

उत्तरांचल जैव विविधता के रूप में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है, वनौषधियों की संख्या अनगिनत है लेकिन गुण धर्म की दृष्टि से उनके वर्ग सीमित हैं । उत्तरांचल को "हर्बल स्टेट" घोषित किया गया है । कुछ उपयोगी वनस्पतियाँ अपनी बढ़ती मांग के कारण अंधाधुंध दोहन का शिकार हुई हैं । अभी भी कई ऐसी वनस्पतियाँ हैं जिनकी जानकारी जनसामान्य को नहीं है । अत: यह बिना किसी व्यावहारिक ज्ञान के नष्ट हो जाती है । आज आवश्यकता इस बात की है कि उपयोगी वनस्पतियों के बारे में जनसामान्य को जागरूक कराया जाय और इनके कृषिकरण को प्रोत्साहन दिया जाय; जिससे गाँव-गाँव में वनस्पतियों पर आधारित कुटीर उद्योग़ लग सकें और हमारा पर्यावरण भी दूषित होने से बच पायेगा ।

बैद्यनाथ

जीवनकल्प

दुर्बलता, कब्जियत, अग्निमांद्य, कैल्सियम
एवं खून की कमी में लाभदायक

एक उपयोगी औषधि : जटामांसी

डा० विनय शौनक, आयुर्वेदाचार्य, पी.एच.डी.

संस्कृत में जटामान्सी को भूतजटा, वालछड, भूतकेसी, जटिला, तपस्वी बूटी कहा जाता है अंग्रेजी में Muckroot (मकरूट) भी इसे कहा जाता है । Spikenard यह जटामान्सी का एक वानस्पतिक नाम है । अरबी में इसे सम्बुलहिन्द और फारसी में सम्बलुति कहा जाता है । गुण में यह तिक्त, कसैली बुद्धिवर्धक, कान्ति-बल प्रदायक मधुर शीतल प्रदोष हरने वाली रक्त-विकार नाशक दाह विसर्प और कुष्ठ को दूर करने वाली है । इसमें मन्द सुगन्ध निकलती है तथा छोटे-छोटे रोओं से यह घिरी रहती है । हिमालय प्रदेश में यह प्रचुरता से मिलती है । यह रक्तचाप को दूर करती है । इस अद्भुत बूटी में निद्रापक तथा तत्काल हृदय को बल देने का गुण मौजूद है । आयुर्वेद में जटामांसी का प्रयोग प्राचीन काल से होता चला आ रहा है । बढ़े हुए रक्तचाप को सामान्य करने में, शरीर में बढ़ने वाले आक्षेपों को दूर करने में यह एक पीड़ा नाशक औषधि मानी जाती है । प्राय: इसका काढ़ा बनाकर और चूर्ण बनाकर प्रयोग किया जाता है । काढ़ा बनाने के लिए 2 से 4 चम्मच तक का चूर्ण रोग तथा रोग की अवस्थानुसार पानी में उबालकर आधा रहने पर प्रयोग करना चाहिए । मानसिक थकान में एक चम्मच चूर्ण शहद से देने का प्रावधान है । अनिद्रा रोग में, सामर्थ्य से अधिक श्रम करने वाले लोगों को मानसिक थकान के कारण नींद नहीं आती तथा घुटन महसूस होती है तो शक्ति प्रदान करने के लिए यह अभूतपूर्व औषधि है । यह सिर का दर्द कम करती है, इसका तेल बालों को काला करता है तथा चूर्ण का दन्त मंजन करने से दांत दर्द दूर होता है । ब्राह्मी अथवा शतावरी, श्वेत कूष्मांड के रस के साथ उन्माद रोग में अच्छा लाभ होता है । जटामान्सी निश्चय ही एक निरापद योग है जो तनाव कम करते हुए शरीर पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं डालता । कुछ विद्वान इसे संजीवन बूटी भी कहते हैं । जो मूर्च्छा दूर करने में सहायक है । इसके चूर्ण का नस्य देने का प्रावधान भी विद्वान बताते हैं ।

आयुर्वेदाचार्य, पी.एच.डी., सहावर भेट कासगंज, उ.प्र.

बैद्यनाथ

चन्द्रप्रभा बटी

यह लौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म एवं शिलाजीत युक्त होने के कारण एल्ब्यूमिन आदि सभी प्रकार के विकारों को दूर करती है । स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह समान उपयोगी है । धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और सब प्रकार के प्रमेह की निश्चित दवा है, श्वेत प्रदर में लाभदायक है ।

एक पौष्टिक फल : बेल

राजकुमार जैन

बेल गर्मियों में सब्जीमण्डी में बहुतायत से आने वाला एक बहु-उपयोगी और पौष्टिक फल है, जो गर्मी के मौसम में स्वस्थ रहने में हमारी मदद करता है । बेल स्वाद में एक रुचिकर और स्वादिष्ट फल है । आयुर्वेद में बेल को स्वास्थ्य के लिए काफी लाभप्रद फल माना गया है । आयुर्वेद के अनुसार, पका हुआ बेल मधुर, रुचिकर और पाचक तथा शीतल फल है । कच्चा बेल फल रूखा, कटु, पाचक, गर्म, वात, कफ, शूलनाशक व आंतों के रोगों में उपयोगी होता है । बेल का फल ऊपर से कठोर होता है तथा इसमें पर्याप्त मात्रा में बीज होते हैं । इसके गूदे में एक खास प्रकार की मनमोहक सुगंध होती है । बेल के फल को ताजा सेवन करने के अलावा, सुखा कर भी उपयोग में लिया जाता है । इसे संस्कृत में 'बिल्व' तथा हिन्दी में 'बेल' अथवा 'बेलुझा' कहा जाता है । भारत में बेल का वृक्ष काफी पवित्र माना जाता है । बेल की पत्तियां भगवान शिव की प्रतिमा पर चढ़ाई जाती हैं । बेल-पत्रों को यदि व्यवस्थित रूप से रख दिया जाए, तो महीनों बाद भी यह वैसे ही रहते हैं । बेल भारत का एक प्राचीन वृक्ष है । इसका जिक्र धार्मिक ग्रंथ 'यजुर्वेद' में भी मिलता है । बेल का वृक्ष पूरे भारत में, खास तौर पर हिमालय की तराई में, सूखे पहाड़ी क्षेत्रों में 5000 फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है ।

बेल के फल के सौ ग्राम गूदे का रासायनिक विश्लेषण इस प्रकार है : नमी - 61.5 प्रतिशत, वसा -0.3 प्रतिशत, प्रोटीन - 1.8 प्रतिशत, फाईबर - 2.9 प्रतिशत, कार्बोहाईड्रेट - 31.8 प्रतिशत, कैल्शियम - 85 मिलिग्राम, फास्फोरस - 50 मिलिग्राम, आयरन - 0.6 मिलिग्राम, विटामिन सी - 2 मिलिग्राम । इनके अलावा, बेल में 137 कैलोरी ऊर्जा तथा कुछ मात्रा में विटामिन बी भी पाया जाता है । इस प्रकार बेल के इस रासायनिक विश्लेषण से भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है कि यह काफी स्वास्थ्यप्रद फल है ।

पश्चिमी देशों में भी बेल पर काफी शोध कार्य हुआ है । डा. एक्टन और डा. नोल्स ने अपनी 'डिसेन्ट्रीज ऑफ इण्डिया' पुस्तक में तथा डा. हेनेरी ने 'ट्रांजेक्शन ऑफ रायल सोसायटी फार ट्रापिकल मेडिसन एण्ड हाईजीन' नामक पुस्तक में बेल के चमत्कारिक औषधीय गुणों पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है ।

उदर-विकारों में बेल का फल रामबाण दवा है । वैसे भी अधिकांश रोगों की जड़ उदर-विकार ही है । बेल के फल के नियमित सेवन से कब्ज जड़ से समाप्त हो जाती है । कब्ज के रोगियों को इसके शर्बत का भी नियमित सेवन करना चाहिए । बेल का पका हुआ फल उदर की स्वच्छता के अलावा, आंतों को भी साफ कर उन्हें ताकत देता है ।

यदि कोई विषैला पदार्थ खाने में आ गया हो, तो बेल-फल भरपेट खाना चाहिए । इससे दस्त के साथ जहर निष्प्रभावी होकर बाहर निकल जाता है ।

मधुमेह के शिकार लोगों को भी बेल के फल का नियमित सेवन करना चाहिए । इसके अलावा मधुमेह के रोगी को बेल की पत्तियों का रस दिन में दो बार सेवन करना चाहिए । एक माह तक नियमित सेवन से डाईबिटीज की बीमारी में काफी राहत महसूस होगी ।

रक्ताल्पता में पके सूखे बेल की गिरी का चूर्ण बनाकर उबलते हुए दूध में मिश्री के साथ इस पाउडर का एक चम्मच प्रतिदिन सेवन करें । इससे शरीर में नये रक्त का निर्माण होगा और स्वास्थ्य लाभ होगा ।

गर्मियों में प्रायः अतिसार की वजह से पतले दस्त होने लगते हैं । ऐसी स्थिति में कच्चे बेल को आग में भूनकर उसका गूदा रोगी को खिलाएं ।

गर्मियों में लू लगना एक सामान्य बात है । लू लगने की स्थिति में बेल के ताजे पत्तों को पीसकर मेंहदी की भांति पैरों के तलुओं पर भली प्रकार मलें । इसके अलावा, सिर, हाथ, छाती पर भी इसकी मालिश करें । वह रोगी को बेल का मिश्री मिला शर्बत भी पिलाएं । वह जल्दी ही राहत महसूस करेगा ।

पेप्टिक अल्सर होने पर बेल की पत्तियों को धोकर पानी में भिगो दें । सबेरे इस पानी को छानकर रोगी को पिलाएं । लम्बे अर्से तक यह प्रयोग करने पर लाभ

राज स्टेशनर्स, पंचपहाड़ रोड, भवानीमण्डी, (राजस्थान)

मिलेगा । दरअसल बेल की पत्तियों में पाया जाने वाला टैनिन अल्सर को भरने में सहायक होता है ।

बुखार होने पर बेल की पत्तियों के काढ़े का सेवन लाभप्रद है । यदि मधुमक्खी, बर्र अथवा ततैया ने काट लिया है, तो भारी जलन होती है । ऐसी स्थिति में बेल-पत्र का रस काटे हुए स्थान पर लगाने से राहत मिलती है तथा जलन व सूजन भी कम पड़ जाती है । बेल की पत्तियों का रस पीने से श्वास-रोग में काफी लाभ होता है । मुंह में गर्मी के कारण यदि छाले हो गए हैं, तो बेल की पत्तियों को मुंह में रखकर चबाएं ।

नेत्रों में दर्द व जलन होने पर बेल की पुल्टिस बांधे । इससे दर्द व जलन कम होगी व आंखों की शीतलता व राहत मिलेगी । बेल की पत्तियों को पीसकर शरीर पर उबटन करने के बाद स्नान करने से शरीर में मनमोहक सुगंध आने लगती है ।

बेल की पत्तियां और अन्य औषधियों से निर्मित तेल कई बार होने वाले जुकाम में लाभ पहुँचाता है । पीलिया के रोगी को बेल की पत्तियां का ताजा रस काली मिर्च के साथ मिलाकर दिये जाने से रोगी को राहत मिलती है ।

बवासीर आजकल एक आम बीमारी हो गई है । खूनी बवासीर तो बहुत ही तकलीफ देने वाला रोग है । बेल की जड़ का गूदा पीसकर बराबर की मात्रा में मिश्री मिलाकर उसका चूर्ण बना लें । इस चूर्ण को सुबह-शाम लें । लेकिन यदि पीड़ा अधिक है, तो दिन में तीन बार लें । इससे बवासीर में काफी लाभ आप महसूस करेंगे । यदि किसी कारण से बेल की जड़ें उपलब्ध न हो सके, तो कच्चे बेलफल का गूदा, सौंफ और सोंठ मिलाकर उसका काढ़ा बनाकर सेवन करना भी लाभ पहुंचाएगा । यह प्रयोग कम-से-कम एक सप्ताह करें ।

इस तरह सुस्पष्ट है कि बेल चमत्कारिक औषधि फल है । चरक संहिता में कहा गया है - ''रोगानि विलत्ति मिनतित्त बिल्व:' अर्थात् रोगों को जड़ से खत्म करने की अद्भुत क्षमता के कारण ही 'बेल' को 'बिल्व' कहा गया है । समुचित स्वास्थ्य लाभ हेतु बेल का नियमित सेवन कीजिए ।

बैद्यनाथ

प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं । इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता ।

खतरनाक है - शरीर में अधिक आयरन !

परिधि जैन

लौह तत्व शरीर के लिए बहुत जरूरी है । ये तत्व हीमोग्लोबिन रूप में खून में रह कर सांस द्वारा फेफड़ों में आयी आक्सीजन को शरीर के अंगों में पहुंचाते हैं ।

शरीर में लौह तत्वों की कमी से होने वाला रोग एनीमिया (अल्प रक्तता) है । विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार विकासशील देशों में लगभग 25 करोड़ से अधिक महिलाएं और लगभग इतने ही बच्चे एनीमिया के शिकार हैं, किन्तु शरीर में जरूरत से ज्यादा लौह तत्व भी नुकसानदेह है और ज्यादा होने की दशा में भी बीमारी हो सकती है ।

कुछ साल पहले तक 'हीमोक्रोमेटोसिस' (रक्त वर्णकता) नाम की यह बीमारी दुर्लभ समझी जाती थी । लेकिन ज्यों-ज्यों इसके बारे में जानकारी मिलती गई, इससे पीड़ित लोगों के बारे में ज्यादा पता चलता गया । आज यह रोग 'सामान्य' श्रेणी में आ गया है । आस्ट्रेलिया, फ्रांस, स्वेडन, ब्रिटेन और अमेरिका से मिली रिपोर्ट के अनुसार हजार में दो से तीन लोग इसका शिकार होते हैं । भारत में यह संख्या अभी स्पष्ट नहीं है ।

अब तक के अनुसंधानों और अध्ययनों से चिकित्सा वैज्ञानिक इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि यह रोग आनुवांशिक है यानी यह संतान को अपने माता-पिता से होता है । 'हीमोक्रोमेटोसिस' के जीन माता और पिता दोनों से मिलते हैं, उनमें यह रोग होता है । हमारी कोशिकाओं के नाभिक में डीएनए अणुओं के जीन ही माता-पिता के गुणों को संतान में ले जाते हैं । पर जरूरत से ज्यादा लौह तत्व भी नुकसान पहुंचाते हैं । लौह तत्व धीरे-धीरे शरीर में इकट्ठा होते रहते हैं और बीमारी का पता चलने में लगभग 20 से 40 साल तक लग जाते हैं ।

एक स्वस्थ शरीर में आमतौर पर 4 ग्राम लौह तत्व होते हैं । इसके अलावा शरीर को हर रोज लगभग 2.2 मिलीग्राम लौह तत्वों की जरूरत होती है और साधारणतः आतें भोजन में उपस्थित लौह तत्वों में से केवल 10 फीसदी ही ग्रहण करती हैं । लेकिन जब यह संतुलन बिगड़ जाता है, तब आंतें ज्यादा लौह तत्व पचाने लगती हैं । यह बढ़ी हुई मात्रा खर्च नहीं होती और शरीर के अंगों में जमा होने लगती है ।

इन अंगों में अग्नाश्य, यकृत, हृदय, हाथ-पैरों के जोड़ आदि खास हैं । अग्नाशय और यकृत में लौह तत्वों की मात्रा 50-100 गुना, थायरॉयड ग्रंथि में 25 गुना, हृदय और अधिवृक्क ग्रंथियों में 10-15 गुना बढ़ जाती है । लौह तत्वों की बढ़ी मात्रा से शुरू में शरीर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और कुछ पता नहीं चल पाता लेकिन जब यह मात्रा 20-40 ग्राम तक पहुंच जाती है, तब बीमारी के लक्षण का पता चलता है ।

जिन अंगों में लौह तत्व मात्रा से ज्यादा जमा हो जाते हैं, वे अंग काफी नुकसान उठाते हैं । सबसे पहले मधुमेह होता है । फिर त्वचा का रंग बदलता है । गोरे रंग की त्वचा का रंग बदलकर भूरा हो जाता है । यकृत को नुकसान होने से यकृत सिरोसिस हो जाता है जो बाद में कैन्सर को जन्म देता है । हीमाक्रोमेटासिस से होने वाली मौतों का कारण यकृत का कैंसर ही है । हृदय में लौह तत्वों की बढ़ी मात्रा मांसपेशियों को नुकसान पहुंचाती है, जिससे हृदय गति बंद हो सकती है । हाथ-पैरों के जोड़ों में लौह तत्व जमा हो जाने से गठिया हो जाती है और वृषणों (टेस्टिस) में इकट्ठे लौह तत्वों से नंपुसकता और पुरुष बांझपन हो सकता है ।

चिकित्सा वैज्ञानिक को ज्यादा शराब पीने वालों के खून की जांच में ज्यादा तादाद में लौह तत्वों के होने का पता चला है । यह लौह तत्व शराब तैयार करने के बर्तनों से आते हैं । शराबियों को होने वाली यकृत सिरोसिस में लौह तत्वों का काफी हाथ है ।

हीमाक्रोमेटोसिस के 80 प्रतिशत रोगी मधुमेह के शिकार होते हैं, लेकिन दिल की धड़कन बंद होने की घटनाएं केवल 15 प्रतिशत रोगियों में देखी गई है । यह भी देखा गया है कि यह रोग आमतौर पर पुरुषों को ही होता है । महिलाओं को यह रोग मासिक चक्र बंद होने के बाद ही हो सकता है ।

इसका संदेह होते ही खून की जांच बहुत जरूरी

34, बन्दा रोड, भवानीमण्डी - 326502 (राज०)

हो जाती है । मधुमेह, हृदय और यकृत रोगों से पीड़ित ऐसे लोगों को, जिनमें उन बीमारियों का कोई साफ कारण न हो, हीमोक्रोमेटोसिस के लिए रक्त की जांच जरूर करा लेनी चाहिए । इस बीमारी का इलाज वक्त पर होना जरूरी है । इसके लिए चिकित्सक रोगी को काफी दिनों तक ऐसे पदार्थों का इंजेक्शन देते हैं, जो शरीर में जमा अतिरिक्त लौह भंडार में कमी लाते हैं । फिर कम से कम एक या दो साल तक हर सप्ताह या दो सप्ताह में एक बार शरीर से खून निकलवाने की सलाह दी जाती है । लेकिन यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि इलाज से फायदा तभी तक होता है, जब तक ज्यादा लौह तत्वों से शरीर के उत्तकों को नुकसान न पहुंचा हो । यह देखा गया है कि बीमारी का पता चलने के पांच साल बाद शल्य क्रिया द्वारा जमा हुए लौह तत्वों को हटाने में 66 प्रतिशत सफलता मिली है । लेकिन यदि शल्य क्रिया 10 साल बाद की जाए तो सफलता की संभावना केवल 32 प्रतिशत रह जाती है ।

हीमोक्रोमेट्रोसिस के रोगियों को बगैर लौह तत्व वाले भोजन की सलाह नहीं दी जाती क्योंकि भोजन में बहुत थोड़ी मात्रा में ही लौह तत्व पाए जाते हैं, जो शरीर की रोजमर्रा की जरूरतों के लिए होते हैं । हां, जिन व्यक्तियों में लौह तत्व की कमी नहीं है, उन्हें लौह तत्व गोलियां या लौह संपूरित विटामिन कभी नहीं खानी चाहिए । इससे लौह शक्ति बढ़ने के बजाए हीमाक्रोमेटासिस जैसे रोग हो सकते हैं !

पल-पल जीवन में आनन्द अविरल
जब उत्साह हो जीने का,
जब हर पल आप जीना चाहें भरपूर
बैद्यनाथ का वीटा-एक्स गोल्ड ।
स्वर्ण भस्म (शुद्ध सोना) की ताकत से भरपूर ।
जोश के लिए, उमंग के लिए
आनंद से भरपूर जीवन के लिए

बैद्यनाथ
वीटा-एक्स
गोल्ड

स्वर्ण भस्म की ताकत से भरपूर

ROLE OF JALAUKAVACHARAN AND PANCHA NIMBA CHURNA VATI IN VICHARCHIKA

* Dr. Uday Patankar ** Dr. Ujwala Patankar *** Prof. S.S. Sharma

In this age of technology man has discovered various measures for his physical satisfaction. In this race of gaining satisfaction he has forgotten the codes of conduct prescribed for the maintenance of health; both physical & mental. Though these codes are prescribed for long healthy life by the ancient scholars of India, running behind the artificial measures for physical satisfaction has made a man artificial, machine dependent and the mithyahar-vihar consumed by him during this process leads to several disorders.

Eczema is one of the most commonly encountered skin diseases all over the world. The prevalence of eczema is increasing because of rapid industrialization, use of chemicals, cosmetics, stress of life. It is estimated that 10% of general population worldwide is affected by eczema.

What is eczema ?

Eczema is a distinctive pattern of inflammatory response of skin induced by a wide range of external & internal factors acting singly or in combination.

Etiological factors -

After scanning Charaka, Susruta, Ashtanga, Hridaya, Bhel, Harit, Madhav Nidan, Bhav Prakash and Anjan Nidan we found out following points :

Nidan -

6 +
- Viruddha Ahar
- Navanna Ati Sevan
- Dadhi, Matsya, Lavan, Amla
- Masha, Moolak, Pishtanna Ati Sevan

5 + Divashayan Grishma Varjeshu Kaleshu

4 + Ajeerne - Adhya Shane Panchakarma apachar;
- Chardi Vega Dharan
- Papakarma

3 + Gharmartanam Druta Shitambu Sevan, Ajirne Vyavayam Acharatah, Vipragaharshanam.

2 + Ratri jagaran, Bhaktasyodak-Sevan, Purvakruta Karmayog, Vidagdha bhukte Gramya dharma.

Lakshana -

5 + Kandu, Pidika Shyava Varna, Bahusrava

2 + Atiruja, Rukshata, Daha
Shweta varna, Pitavarna, Rakta varna

Samprapti Ghatak -

Dosha - Kapha pitta pradhan Tridosha
Dushya - Twak, Rakta, Mamsa, Lasika
Srotas - Raktavaha, Rasavaha, Mamsavaha.
Dushti prakar - Sanga
Udbhav Stan - Aam pakwashaya
Adhisthan - Twak - Charak 4th
Susruta - 4th & 5th
Modern - Generally ectoderm

Samprapti - Mithaya Ahar Vihar
↓
Vatadi dosha prakop
↓
Rakta dushti
↓
Vicharchika

Scholars of all pathies are trying their best to gain control over this mighty disorder. With the same view research study was carried out in P.G. Dept. of Shalya Tantra at National Institute of Ayurveda, Jaipur.

Aims & Objective -

1. To relieve symptoms of vicharchika,
2. To study the efficacy of Jalaukavacharn in Vicharchika,
3. To study efficacy of Pancha Nimba Churna (PNC) Vati in Vicharchika,
4. Comparative & combined study of efficacy of Shodhan (Jalaukavacharan) and shaman (PNC vati) in Vicharachika,

Importance of Rakta Mokshan -

Susruta, Father of Indian surgery has stated raktamokshan as a half of the whole treatment.

He rightly quotes importance in following verse -

"त्वगदोषा ग्रन्थयः शोफा रोगाः शोणितजाश्च ये ।

---

* P.G. Scholar, Dept. of Shalya Tantra, NIA, Jaipur

** P.G. Scholar, Dept. of Shareer Rachana, Ayurvedic College, Nanded

*** Head, Dept. of Shalya Tantra, NIA, Jaipur

रक्तमोक्षणशीलानां न भवन्ति कदाचन ॥''

(Su. Su. 14 : 33)

Person who does blood letting regularly will never suffer from the diseases of skin, granthi, shopha, raktaj roga.

Again in stating Rx of Kushtha Charaka says -

''वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनम श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनचाग्रे ॥''

(Cha. Chi 7 : 40)

Rakta Mokshana -

Dosha	Method	Dushtisthan
V	Shringa	Twakgata Rakta Dushti
P	Jalauka	Gambhir Prantrakta Dushti
K	Alabu	Twakgata Rakta Dushti
	Siravyadha	Sarva Sharirgata dushti
	Prachchhan	Granthita rakta

In this study we have chosen Jalauka for rakta mokshan due to following characters -

Less pain	Easy handling
Cost effective	No complications

Classification of Jalauka -

Jaluka is classified under 2 categories in Susruta samhita

* Savisha (Poisonous)

* Nirvisha (Nonpoisonous)

Savisha Jaluka -

Krishna, Karbura, Alagarde, Indrayudha, Samudrika, Gochandana.

Nirvisha jalauka -

Kapila, Pingala, Shankumukhi, Mushika, Pundarikmukhi, Svarika.

Though these are described in Sustruta, their poisonous & nonpoisonous nature is analyzed roughly depending on the lakshanas produced (like burning sensation, severe pain etc.) after application of leech.

Research is going on all over the world on this parasurgical procedure. Scholars have found following constituents in different types of fluid of Jalauka likely -

Hirudin	- Most powerful anticoagulant
Bdellin	- protease inhibitor
Apyrase	- Platelet anti Aggregate factor
Eglin	- Antioxidant
Hyaluronidase	- Factor of diffusion and antibiotic

Though the 1st modern medicine document belongs to 200-130 B.C. by Nicander of Greek, ayurvedic texts have prescribed this method centuries ago.

Procedure of leech application -

1 tsf. turmeric powder is added to 1 glass of fresh water, 2-3 jalauka, which are to be applied, are left in that water for about 15-20 minutes. The part where jalauka are to be applied is washed thoroughly with water. Then it is dried with swab. Again it is made wet with swab soaked in fresh water. A cylindrical plastic container whose base is cut down horizontally is kept on the affected area and gentle pressure is applied. 2-3 Jalauka kept in turmeric added water are washed in plain water and left inside the container.

By this method the leech attaches early as compared to the routine method of applying the leech by taking in hands.

As soon as the leech bites the affected area its mouthend becomes hook shaped with persistent waves of sucking blood.

The plastic container is removed and cotton deeped in water is kept over the leech which allows early blood sucking.

Generally leech is allowed to detach itself. If patient complains of severe pain, itching the leech is detached by dropping turmeric powder at the mouth of leech.

Shuddha sphatik powder is sprinkled over the bite and pressure bandage is applied.

Precautions during leech applications -

1. No Direct Handling of jalauka (Wear Rubber gloves)
2. Before applications keep the jalauka in Haridra Kalka for some time, then wash it with water & leave in water for some time.
3. Patient should have light diet.
4. Clean the site with water and then apply Jalauka.
5. If Jalauka is not biting drop 1-2 drops of blood sucked from vein at other site (Preferably cubital fossa)

6. Though in texts prachchan is advised our results with it are not good. So no prick.
7. During sucking keep Jalauka wet with cotton soaked in water.
8. After detachment deep mouth of Jalauka in turmeric powder, hold it in left hand and drain out blood by applying slow pressure on Jaluka with right hand.
9. Jalauka should move freely in water after removing blood.
10. Same Jalauka can be repeated in same patient after 7 days.
11. For dressing of wound use Haridra and shubhra.

Drug Review -

In this research we have selected Pancha Nimba Churna of Sharangdhar samhita madhyam Khand 6th chapter. Contents of this yoga are -

Nimba Panchang, Loha bhasma, Haritaki, Amalaki, Chakramarda, Chitrak, Bhallatak, Sharkara, Haridra, Trikatu, Bakuchi, Aragwadha, Gokshur, Vidang.

Bhavana dravya -

Bhringaraj, Khadir, Vijayasar

Tablet of 500 mg of above yoga were made for easy administration.

Posology -

Adult - 2 gm. tds Children - 1 gm tbs.

Anupan - water Duration - 30 days

Drugs of this yoga are having following properties -

Tridoshashamak, Dipan, Panchan, Kushthaghna, Shothahara, Vedanahar, Swedajanak, Rasayan

Selection of patients -

40 patients suffering from Vicharchika were selected from OPD and IPD of NIA, Jaipur.

Grouping -

Patient were grouped in 4 groups

1. Only Jalaukavachran
2. Only PNC Vati internally
3. Both 1 and 2
4. Placebo

Follow up -

During the period nidan parivarjan and pathya was advised for the patient and the changing signs and symptoms were noted weekly.

Assessment Criteria -

Following 8 lakshanas were considered Kandu, Pidika Srava, Rukshata, Ruja, Daha, Panipadasphutan, Shyava varnata.

Following observations were noted during study-

1- More pts. were male .

2- Most of the pts. were of middle age.

3- More of the pts. were labour followed by housewives.

4- Middle and lower class pts. were more.

5- More of the pts. were found consuming excessive salts and guruahar.

6- Most of pts, were having mandagni.

7- In patients the most affected sites were feet followed by hands and then followed by hand and feet.

8- Most pts. were chronic.

9- Symptomatically kandu was found in all pts. Though pidika, srava, ruja, daha etc. were also found.

Tables Showing the symptomatic relief in percentage.

Relief percentage in Kandu in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	66.6	7.217	<0.001
2.	II	73.07	10.58	<0.001
3.	III	88.48	10.76	<0.001
4.	IV	13.6	1.4058	>0.02

Relief percentage in Pidika in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	84.61	6.472	<0.001
2.	II	65.00	9.461	<0.001
3.	III	88.2	6.708	<0.001
4.	IV	-12.5	0.0555	>0.1

Relief percentage in Srava in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	81.8	13.5033	>0.001
2.	II	68.42	8.589	<0.001
3.	III	92.00	8.833	<0.001
4.	IV	15.38	0.6882	>0.001

Relief percentage in Rukshata in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	56.25	6.194	<0.001
2.	II	46.67	4.581	<0.001
3.	III	73.68	8.673	<0.001
4.	IV	12.5	1.499	>0.1

Relief percentage in Ruja in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	66.66	6.601	<0.001
2.	II	66.67	6.601	<0.001
3.	III	87.5	4.581	<0.001
4.	IV	7.699	0.1	>0.1

Relief percentage in Daha in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	84.21	9.797	<0.001
2.	II	71.04	8.987	<0.001
3.	III	87.5	4.581	<0.001
4.	IV	16.6	0.6882	>0.5

Relief percentage in Panipada Sphutan in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	60.00	5.0139	<0.001
2.	II	46.16	18.96	<0.001
3.	III	84.61	3.917	<0.001
4.	IV	5.55	0.0555	>0.1

Relief percentage in Shyava Varnata in all four groups.

Sr. No.	Group	Relief %	T Value	P Value
1.	I	54.54	7.217	<0.001
2.	II	53.33	3.2064	<0.001
3.	III	64.24	4.44	<0.001
4.	IV	0	0	0

Weekly Percent relief in 4 Groups during followup

Sr. No.	Group	% Relief			
		After 1 week	After 2 week	After 3 week	After 4 week
1.	I	30.23	48.28	61.72	69.34
2.	II	23.45	45.56	55.98	61.42
3.	III	37.46	6.072	73.34	83.27
4.	IV	0.6	1.73	5.3	7.35

Conclusion :-

This clearly indicates that in relieving symptomatology of Vicharchika both Shodhan (jaiaukavacharan) & Shaman (PNC Vati internally) when used simultaneously are highly effective.

बैद्यनाथ

हिंग्वष्टाक चूर्ण

मंदाग्नि, आंव तथा पेट दर्द में उपयोगी

THERAPEUTIC USES OF GHEE IN AYURVEDA

* Dr. Mayank Bhatkoti
** Proff. V.D. Shukla

Ghee is one of the products very widely used in India from the immemorial times. There is very much classical description of this product in Ayurveda literatures. Truly speaking it has been the integral part of our culture. It has been the essential ingredient in many Ayurvedic medicinal formulations. Its use has been so extensive that one of the separate formulations termed sneha kalpana has been aroused. In our classics. the use of ghee has been either in pure form or in form of recipes or in the form of various medicaments.

In Ayurveda four types of unctuous substances i.e. Ghee, Oil, Vasa, Majja are generally used for the human beings. Out of these ghee is considered as best. In the Ayurvedic classics the milk obtained from eight animals are advised for the theprapeutic use & the properties of these milk are also different. Regarding the milk Acharya Charaka mentions that the properties of ghee of these animals are similar to their milk Acharya Sushruta opines the properties of each type of ghee separatly, amongst these cow's milk is considered best for the therapeutic use. Also whenever there is not any indication of the particular ghee, cow's ghee can be used as a general rule.

E CHEMICAL CONSTUTIENTS OF GHEE -

Chemically ghee is the complex molecule of lipid containing -

Triglycerides
Phospholipids
Sterol esters
Tocopherol
Hydrocarbons etc.

Free fatty acid
Sterol
Fat soluble vitamins
Carbonyls
Carotenoids

Traces minerals like: Ca, P, Fe, Cu etc.

TYPES OF GHEE -

According to Ayurveda, depending on method of procession ghee can be classified as following -

1) Puran ghrut 2) prapuran ghrut
3) Kumbh ghrut 4) Maha ghrut

Puran ghrut –

Which is properly preserved for more than one year but less than 11 years is called Puran ghrut. Dalhan opines that 10 year old ghee is puran ghrut. Its odour is pungent & colour is like that of Lac. It is one of the best purgative medicines, tridoshara, sheet & intellect promoting agent.

Prapurana Ghrut -

Ghrut that is kept for more than 10 years but less than hundred years is called Prapuran ghrut. It is more potent than Puran ghrut.

Kumbh Ghrut -

This is the ghrut which one is preserved for more than hundred years but less than 111 years is termed as Kumbha Ghrut. Chakrapani opines that only 10 year old ghrut as Khumb ghrut. Its indication is mostly for mental disorders.

Maha Ghrut -

More than 111 year old Ghee is considered as Maha ghrut. It is considered beneficial for Timir & all types of Bhuta-Disorders.

QUALITIES OF GHEE -

Among the Sneha dravya, Ghee is considered as best among all the unctuous substances. It is considered as best owing to its special property i.e. "*SAMSKARASYA ANUVARTAN*", meaning that ghee carries the properties of drug without leaving its own inherent properties. This unique nature of ghee makes its wider application in different disease by processing it with specific drug as per the conditions. (Ch.Su. 13/13)

Describing the properties of ghee Acharya Charak opines that -

It is pitta & vata hara, conducive for Ras dhatu, Shukra dhatu & Ojas. It is refrigerant & emollient & adds clarity of the voice. (Ch. Su. 13/14).

It is specifically indicated to those who have vata & pitta predominant body constitution &

---

* M.D. Scholar, Deptt. of Kayachikitsa, I.P.G.T. & R.A., Gujrat Ayurved University, Jamnagar.
** H.O.D., Deptt. of Kayachikitsa, I.P.G.T. & R.A. Gujrat Ayurved University, Jamnagar.

who are injured, weak, old & children. Also who are desirous of longevity, strength, complexion, voice, nourishment, youthfulness, memory, intelligence & stimulation of Agni for digestion & metabolism. The individual which are affected with heat & that are injured by weapons, poison & are also the indication for the administration of Ghrut. (Ch.Su. 13/41-43).

Also due to the palatability of ghee even at higher dose relative to the oil it is most acceptable to the internal environment of body. On the other hand oil is mostly accepted by the patients for external application.

According to Acharya Sushruta "The essence of the body is the unctuousness present the body. The life is sustained by the presence of unctuousness. The vital organs are having the dominance of sneha and sneha is necessary for the maintenance of life." (Su.Ci. 31/3)

In the field of Ayurvedic science equal importance has been given to preventive and promotive medicine in comparison to the curative medicine.

Uses of Ghrut as a preventive medicine :

Ghrut has been used extensively as in order to prevent the occurrence of seasonal disorders & to maintain the health of the healthy person. In both daily & seasonal dietetics, Ghee is advised either in pure form or medicated or mixed with food articles etc. Along with this its external application is also indicated. Acharya Charak while describing the most wholesome dietetic regulation considered that the benefits of unctuous food is that it give relish & after being consumed exites the secretion of digestive juices & food is rapidly being digested. It strengthens the sense organ, increases the vigour, brightness & complexion.

Uses of Ghrut as a promotive medicine.

Daily use of ghee mixed with milk is considered as the best among the rejuvenators (Ch.Su. 5/40). Apart from this ghee is used in preparation of most of the Rasayana or it is used as the adjuvant because ghee apart from its rejuvenation carries the drug with it even to the deepest recess owing to its minute properties. In most of the Vajikaran formulation ghee is used which suggest it aphrodisiac effect. Apart from these Brhimana sneha is particularly used to enhance the tissue, when ghee is taken with food in little quantity.

Uses of Ghrut as a curative medicine.

Mainly two types of therapeutics are described i.e. Samshodhana & Samshana. In Samshodhana, Snehana is administered prior to indulging to Samshodhana, Here Ghee is used either in pure form or in medicated form with specific drug in accordance with the condition. It is termed as Samshodhanartha snehapana. Here Ghrut is used in the increasing dose as per the disgestive power of the particular patient.

Thus ghee can be used either in pure or medicated form for the process of Vaman & Virechana. Similarly various medicated ghrut according to dosha predominance can be used in the nasaya karma for supraclavicular disorder.

In Samshana, Ghee is administered in the moderate dose when the vitiation of Dosha is mild to moderate, here again both pure & medicated ghee are used according to the condition.

Conclusion :

1. Ghrut can be used both as a part of diet & as a part of medicine.
2. Ghrut is advised in both preventive & promotive medicine.
3. Ghee is advised as a curative medicine in both Shodhana & Shamana therapy.
4. It can be concluded that Ghrut plays an important role in the field of Ayurvedic medicine specially Panchakarma.
5. Along with its own qualities ghrut can absorb & assimilate the qualities of drugs added to it.

Diabetes and its Applied aspect in Ayurveda

Dr. G.C. Nanda
Dr. N.N. Pathak

Introduction

The *panchamahabhoota tatwa* is a basic and original factor of the universe. The total creation is nothing but compound complexity of *mahabhautic* elements as :-

"Sarvam dravyam panchabhautikam"

The ancient authors have finely co-related the bodily elements with the objects of the universe and have identified the relationship with *panchabhoota*. The concept of *purusha* or bodymaster is also conceptualised with the association of *panchamahabhoota*. Every compound of the universe are more or less the mixture of *panchamahabootic* elements. In order to concise the complexity, the ancient philosophers have condensed the thought of *panchmahabhoota* to *'tridosha' as Vata, pitta & Kapha*. In this three *tatwa* the original philosophy of *panchamahabhoota* focused in the human body and other elements of the universe in general. The colour, taste, compactness, integration of every object all are differentiated due to the variation of the basic *gurvadigunas* of *panchmahabhoot*. It was established that the *gurvadigunas* are limited but their proportional percentage in the objects are unlimited. It was also seen that the natural law of their adherance & separation depend on their own qualities as -

"Sarvada sarvabhavanam samanyam vridhikaranam"

The creation and destruction of every object is dependent only on *gurvadi gunas* even in human body as :

"Panchabhootatmake dehe hyaharam panchabhautikam vipakwa panchadha samyaka..."

When the concept of *panchamahabhoota* concised to *tridosha* and the body was found to be *tridosha*, apparently all the *dhatus* (tissues and organs) are also found to be inherited with the *gurvadigunas* and they were found variably in different parts of the body. *Dravya* where *panchabhautic* qualities alongwith their functional motivation belongs, so the variable presence of *gurvadigunas* in different object of the body also shows different functions, but it was found that their deviation in action or change of the position depends on the addition and substraction of the *gurvadigunas*. When a man takes food, the inherent *gurvadigunas* come into change due to *samanya & vishesha sidhanta*. We live on food, water and air and they also influence to our body through their *gurvadigunas* and the metabolism takes place. Since the body is nothing but physically the changeable stature of *saptadhatus*, the *tridosha* are the functional units (*Sanjoga-vibhagaja*) so the *panchabhautic gunas* of diet influence the pre food conditions of the body and then the *sukhsma* change takes immediately due to *samanya & vishesha sidhanta*. This change (*dhatupak*) usually occurs unnoticed and gradually the body gets either *vridhi* (development) or *khyaya* (destruction) but if they succeed more than the expected position they are found in the body through symptoms (deviations of *tridosha*) and are declared to be the disease.

"Aharasambhavasastu rogaschahara sambhavah"

When the eco-sym-biosis ratio (*swasthavastha*) of the body is derailed the condition is not accepted in the bodily atmosphere and the non acceptance of the condition is noticed through the *vrikrit*.

"Rogastuh doshavaisamyaam doshasmyamarogata"

This *samya* and *vaisamya* are two conditions of our body where these *mahabhootaja* qualities (*gurvadigunas*) are staged naturally depending on the internal eco-sym-biosis method. The *samya* is tolerable co-existance of *gurvadigunas* but *vaisamya* is derailment in ratio resulting disturbances in functional i.e. doshas. This predominance attitude develops if the sym-bosis is not corrected further by food and environment.

Central Research Institute (Ayurveda) CCRAS, Ministry of Health & F.W.,
Govt. of India, Unit-1, Bhubaneswar - 9

"Samchaye apahruta
doshalabhantinottaragati"

These derailment is noticed collectively and known as *rupama* like *snigdhata, guruta, usmata* which are reflected in different *dhauts* or *malas*. These findings are interpreted calculating these *gurvadiguna vaishamya*. These derailments are based only on *gurvadigunas*, where the need is to correct them by *samanya & vishesha sidhanta*.

"Ya bhi kriyabhi yayantedhatavasama sa
chikitsa vikaranam karma tat
bhisajasmrutam"

The *gunas* which have become less than normal have to be enhanced, which are more than the ratio are to be lessened and accordingly the ratio has to be maintained because it is the theory to modify the deranged bodily factors and this management process is called *chikitsa*.

"Dosha kheena vrinhyaitavya kupita
prasamaitavya vrudhya nirhatavya
samaparipalya iti sidhanta"

Here two aspects are followed, the *vridhi* or addition, *ksyaya* or substraction after which a condition comes where these two aspects are found equal (*samya vastha*). Enhancement of *gurvadigunas* are done by three ways.

- Samanaya by providing materials consisting of same compositon to compensate the particular factor in the body as blood in blood loss condition.
- *Samana guna* means to provide substances which possess the same *gurvadigunas* required not directly in prepared form but to assist in the process of preparation of the particular group of factor in the body, for example *lauha bhasma* in cases of *pandu*, etc.
- *Samanaguna bhuistha* means where the *gurvadigunas* are advocated through diet and certain elements at par with the qualities requried. For example *punarnava, manijistha, etc. for sotha & pandu etc.* Adopting of these methods, *khyayadoshas* are brought to normal. Similarly in case of *vardhi dosha guna*, methods adopted are as :-

- *Samsodhan*, elimination of objects from the body contained increased *gurvadigunas*, the method directly concerned in the eco-system of the body, which is found in patients through elevated materials of the body consisting *dravya* having consitutents of similar *gurvadigunas*, like *kapha* or sputum as elevation of *guru, snigdha*, etc. *gunas* of *mahabhoots*.
- *Samsaman*, process by which the *gurvadigunas* are unable to be eliminated. Sometimes the qualities which are responsible for derailment so disintegrated are required to be palliated inside the body. These two fold management is based on doshas having *samchaya rupa & prakopa rupa*. During *samchaya rupa*, these derailed qualities are to be adjusted there through *samsaman* and in *prakopa rupa* the derailed qualities are to be adjusted there through *samsaman* and in *prakopa rupa* the derailed *gurvadigunus* are to be expelled adopting *samsodhan* process of management. Sometimes the *prakopa rupa* happens in two ways either through *samchaya purvaka* or *samchaya nirapekhya* where *somsodhan & samsaman* are followed respectively.

The cause or *nidan*, which contains unmeasurable lumsum of *gurvadigunas* responsible derailment of doshas of the body. When these factors are identified then the process of normalisation of the systemic *doshci* status becomes easier. The qualities (*gurvadigunas*) responsible for enhancement of *doshic* status in body are to be stopped. In addition to advocation of antagonistic qualities of the earliers ingested qualities will be only way of normalisation of bodily system.

"Tyagat visamahetunam
samanachopasevanat visamananuvadhnanti
jayante dhatava sama"

Diet is essential to maintain the normalcy of body. The environmental equilibrium is affected by day, night and seasons the bodily homours are equally influenced. The dietary sehedule must be followed to keep the body normal otherwise the body leads to destruction.

Madhumeha is a desease of *prameha* variety and is described to be the chronic condition of *prameha*. The symptoms may have similarity with the condition of *ikshumeha* or *khaudrameha*. In both the conditions sweeetness or *madhuratwa* or *madhurata* in urine is interpreted. Since the *meha* is conjucted with madhu, so the total meaning denotes to the sweetness of urine along with the change in colour also, which may be correlated with renal glycosuria.

"Madhuram yaccha mehesa prayamadhwiva mehati Sarvepi mabhumehakhya madhuryacha tonoratah"

The condition of *madhumeha* is diagnosed under, two specific conditions as : *Madhura and madhuvat* (honey like urine). It may be sweetness of urine or glycosuria and honey like colour & density (turbidity). *Madhurvaccha tonoratah:* means the sweetness of the body where it indicates increasing in blood sugar or hyperglycemia. Usually in hyperglycemic condition alongwith glycusuria considered to be *madhumeha* or diabetes mellitus. The *panchamahabhoot & tridosha* theory are directly involved in causing the disease *madhumeha* under the following conceptual study of Ayurveda as :

Nidanam

- *Asyasukham swapnasukham :* These factors enhance *kaphadosha* being *prithivi & Apa bhoota* due to *guru* and *piccilguna*.
- *Dadhini :* The curd & related preparations are enriched with *guru, sita, snigdha, manda* like qualities and increase *kapha dosha* due to samamya bhava.
- *Gramyaunupaudakarasa :* All these factors are of *apa & prithivi guna* constituents and get *kapha prakopa* after *bhootapak*.
- *Payansi :* Milk and related preparations are usually *madhura* and are enriched with *prithivi & apa bhoota guna*, become responsible for virdhi of same qualities in the body.
- *Navannapana :* Unparched freshly harvested rice & freshly collected, season related water, formented preparations are enriched with *apa & prithivi guna* and increase *kapha* in the body.
- *Gudavaikrutam :* Jaggery, sugar and all other raw preparation of sugarcane and prepared items of food varieties are *madhura* consisting of *prithivi & apa guna*.

All these *nidan* have been told in favour of *kapha vridhi*. When *kapha* is elevated the qualities of *prithivi & apa*, generated *gurvadigunas* are enhanced. Due to *guru & drava* they are mixed with the liquid substance of the body i.e. urine, *rasa, rakta, etc.*, where the *prithivi & apa gurvadigunas* are found ecogenecally. Subsequently they are excreted through urine with sweetness.

Samprapthy

In *madhumeha, kapha* is found dushit, and it affects more similar *mahabhoota* related objects of the body, like -

Dosha - *Kapha, pitta* and *vata* due to *anyonyashree bhava yukta*

Dushva - When *doshas* or functional units are derailed, the physiological status or *dhatus* are also affected due to the presence of similar qualities in them. They are *meda, rakta, sukra, ambu, vasa, lasika, majja, rasa, ojha & mamsa*. In all these *dhatus* the common minimum qualities are *guru, snigdha, chala, drava, piccila, sara* etc which are basic qualities of *kapha* inherited from *prithivi & apa mahabhoota.*

Adhisthan - Since the *rasa, rakta, lasika* etc. are affected the *madhuratwa* due to *kapha* is also increased in these *dhatus* and since they move all over the body naturally, the whole body *tanumdhura* will be *madhura guna bhuyistha*. Moreover, they are excreted out of the body through urine as it is the direct waste product of *rasadi dhatu.*

"Aharasyarasa sara sarahina maladrava sirabhistajalam nitam vastau mutratwamapnuyat

Due to the guru, *chala* like *dravyaguna* of vitiation, they usually try to accomodate with the qualities similar in the body and that is urine and the urine becomes *madhura.*

"Medascha manscha sarirajancha kledam kapho vastigata pradushya karoti mehan....."

It seems clear that the disease is manifested through a process involved with the objects of body by *kapha* under following changes:

Objects	: *gunas* accredited
Kapha	: *guru, madhura, snigdha, piccila,*
Pitta	: *khyaya* due to *srotorodha* (neuritis)
Vata	: *vridhi*, due to *srotorodha* (neuritis)
Meda	: *guru, piccila, sandra* (lipids)
Asra	: *guru, sandra, madhura* (blood sugar or hyperglycemia)
Sukra	: *guru, snigdha, sara, drava* causes in urine (turbidity)
Ambu	: *guru, snigdha, sara, drava* cause frequency. (polyuria).
Vasa	: like *meda* causes *srotodusti* (cholesterol - LDL)
Lasika	: like *ambu* cause *guruta* (high blood pressure)
Majja	: *snigdhata, piccilata* causes viscosity of body. (serum tryglycerides)
Rasa	: *madhura, guru, sandra, chala, drava* (serum protein & cholesterol)
Ojha	: *Khayaya* due to loss of previous *sukradhatu* causus *daurvalya* (weakness)
Pisita	: *kapha vridhi, guru abhisyandhi* cause *srotavarodha* (myopathy).

Poorvarupa

It is a pre settlement condition where the *gurvadi gunas* are proliferated and are unable to adjust with the eco-biological condition of prevailing circumstances but due to admixure of own qualities. of *mahabhoota gunas*, they create some conditions as :

- Deposition of *kapha* like substances on the teeth due to involvement of *prithivi & apa dhatu.*
- Burning sensation of hand & feet due to confinement of *pitta* (Avarana).
- *Trishna* or thirst due to obstruction of *udakavaha srotas* by *kapha.*
- Muco- sweetness of mouth due to presence of *kapha* in its one of own places.

All the conditions are directly concernted with the dominant role of *kapha.*

Roopam

It is a final stage or the condition of non-adjustment of the inherent qualities of *doshas* in the body, where the result of constant serial change of *mahabhautic* inherited qualities dismantle the function. So to say, misadjustment of antagonistic qualities. The symptoms reflected are general & special. The general catagories are concerned with the genetic qualities of *kapha* as :

- *Prabhuta mutrata* or profuse urination due to *drava* of *apa.*
- *Avila mutrata* or turbidity of urine due to *guru & sandhra* of *prithivi.*

  The special symptoms are concerned with the *dosha & dushya* in the body with two important manifestations.
- Symptoms related to *mala* (*mutra*-urine)
  ● Symptoms related to *dushya* (*dhatu*-body)
  In the first category the conditions are *Ikshyumeha udaka meha & knaudrameha.* In *Ikshyumeha* the urine becomes sweet due to *madhura*. In *udaka meha*, quantity is more due to *apa mahabhoota. Sheeta, sita & swachha* or whitish due to *apa guna. Udakopam* or more quantities due to *apa.* In *Khaudra meha-kasaya, madhura, rukhya* or turbidity with the presence of honey like substance in urine. The totality of the urine symptoms are condensed to frequency glycosuria. The symptoms related to body is *madhuryatcha tanoratah* or the body becomes sweet or which can be called as hyperglycemia.

This condition happens due to : ● *Kapha vrita pitta - pitta* is confined due to enhancement of *kapha* due to *prithivi & apa dravyaguna* so, the functions of *pitta* is less observed and most probably attributed to the lack of insulin condition. ● In *kaphavrita vata* the channels are obstructed due to *kaphaja sandra, drava* and *guru* like qualities resulted to most probably diabetic neuropathy. ● In *dhatukhyaja vayuprakopa.* or an another condition arises in delayed condition or chronic condition of *madhumeha*, when *vayu* is aggravated due to constant loss of *ojha, lasika* etc. However, the concept seems to be identical to *kaphaja sadhya* or NIDDM and subsequently *vataja asadhya* or IDDM.

Roga & Rogi Pariksha

The important aspect of the treatment depends on diagnosis of the disease, where both patient and investigations are done or *dosha dushya vivechanam.*

Roga parikhyanam

In this context the five factors like *nidanam, purvaroopam, rupam, upashaya & samprapthy* are investigated from which the actual identification of the disease known.

Nidanam : *Kaphaja ahara & vihar* related to disease *madhameha.* Purvaroopan : The illigible symptoms of *mahabhoota (prithivi* and *apa).* Roopam - The symptoms found in urine & body having resemblance with *prithivi & apa dhatu.* Samprapthy - Derailment of *dosha, dhatu & mala* alongwith *srotas* due to dominance of *mahabhoota guna.* Upasava - Administration of pro and antagonostic medicines, diet & habits related to *mahabhootaguna* and observation on change (remission & aggravation).

Rogi Parikhyanam

They are of different types and are also applied suitably in different diseased conditions as -

- **Trividha parikhva**

  Darshan - *medaswi* due to *kapha* and *kheena* or *dourvalya* due to *vayu.* Sparshan - *Snigdhata* due to *kapha* and *rukshyata* due to *pitta.* Prasna - Investigation related to the disease and confirmation of *doshic* involvement accordingly.

- **Chaturvidha parikhva**

  Nadi - rate, rythm, volume etc, and relevance in *kapha & vayu dosha* are detected as *mruda* and *Manda* etc. Netra - *sajala* in *kapha* and *rukhya* in *vata.* Mala - *ama mala* in *kapha* and *nirama* in *vayu.* Mutra - *prabhuta, avila* etc. *pippilikha sthiti, satpada abhisarana* are identical *madhumeha.* Sabda - *gambhira* in *kapha* and *karkasha* in *vata.* Sparsha - *snigdha* in *kapha* and *rukhya* in *vata.* Druk - *varna swetabha* in *kapha* and *krishnava* in *vata.* Akriti - *medaswi* in *kapha* and *doubalya* in *vata.*

  Anuman - apprehension made on the qualities found in urine like *avila, prabhuta, gandha, madhura etc.*, basing on *tridosha* involvement.

  Yukti - Since the symptoms are related to *prithivi & apa* so, *kapha* might be vitiated and post vitiated symptoms are *authentic* to happen where antagonostic approach may be helpful in *chikitsa.*

  Aptopadesha - Considering the description of the disease according to text, relevant confirmative steps are taken for diagnosis as urine examination, *nidan, roopam* and complications etc.

- **Panchvidha Pariksha-**

  Related to *panchendriya parikshya* as - Chakhyu - to findout the *dosic* involvement in urine, skin etc. Twak - feeling of pulse of the patients & confirmation of the position. Jihwa - inference on the presence of sweetness in urine. Karna - listening the variety related to organs. Nasa - ascertaining the smell etc. of the urine & body of the patient.

- **Sadvidha parikha** - Interrogation in addition to *panchvidha parikhya* includes the determination of *khyaya* and *vridhi* of the *doshas* in the body.

- **Dasha vidha parikhva** - which gives clear presentation of the disease along with percentage of vitiation as -

  Prahkriti - Usually disease of same *prakriti* is difficult to cure and opposite will be suitable. Vikruti - The sphere of derailment body as *kapha* in *madhumeha* and involvements in the bodily factors. Sara - The *meda, mansa, majja, sukra sara* persons desire langhan & rest are for *vrimhama chikitsa.* Satwa - The *pravara satwa* persons are suitable during treatment of *madhumeha.* Samhanam - The good physical status can bear up *langhana chikitsa* where the weak person deserves *vrimhana.* Vaya - Usaully the *madhumeha* of youth is curable but difficult in old age, where in juvenile it is incurable due to *sahaja.* Satmya - The patients homologated for all the *rasas* can bear up the treatments but rest are difficult due to non homologation. Pramana The relevancy is felt better by the physician. Aharshakti - Required to administer the drug & diet for easy digestion & assimilation. Vyayam - Essential to know the physical activity and capability where the physician has to judge suitably.

Roga Nirnayam

Out of the procedures described earlier the following points are essential to confirm the diagnosis.

- Urine examination both *tailavindu, pippilika, satpada abhisarana* alongwith *gandha, varna, gati,* etc.
- History of either variety of *prameha* like *ikshu, sandra, harita, sukrameha* etc.
- Physical sign & symptoms through many fold examination.
- *Upsayamupasaya* or therapeutic measures.
- Estimation of blood sugar or glucose tolerance test to strengthen the classical expertise.

Chikitsa Padhati

The recovery from the disease is called *chikitsa* where the administration of drugs depend on either antagonostic for elevated & progonostic for diminished conditions of the *doshas* which is judged only on the *gurvadi gunas* of the drug or diet provided to the patient as :

- Factors causing *samanyatwa* for derailment of *doshas* must be avoided.
- *Sansodhan* for *sthula* (obese) or elimination therapy.
- *Samsaman* or palliative therapy for *krusha* or emaciated.
- Administration of drug and diet accordingly.

A. Bhesaja :

- must be *tikta, katu, kasaya rasa* oriented to counter the *madhura* in body.
- Established antidiabetic drugs or *pramehaghna* drugs from *dravya guna varg* have to be administered.
- As far as herbal preparations are to be advocated in the form of *swaras, kasaya, phamta* etc.
- Timely administration of *snehan* for *valavan rogi* for *samsodhan* purpose the *vaman & virechan* in *kaphaj* involvement.
- *Snehana* for *krusha rogi* for *shaman* purpose then *santarpana* in *vatik* involvement where *sodhana* is contraindicated.

B. Pathvapathya :

- Diet must be restricated to *tikta rasa* oriented *laghu, ushna* etc of *agni & vayuguna bhuyistha* so as to produce *vishesha bhava* in *madhumeha* considering also the longing of the patient, more often *yava* is recommended.
- The dietary articles described in *Charaka, sutra, sthana* 21 & 23 chapter for the management of *meha* related diseases are to be followed here.
- Considering the derangement condition of *apadhatu. kleda, medas* and *kapha dosha,* the physician should manage *kapha & pitta* through *apatarpana.*
- Symptomatic management depending on the condition & demand of the body.
- Yoga & exercise to counter the *kaphaj bhava.*
- Prescription of different formulations as per requirement.

Conclusion

Madhumeha (diabetes mellitus) is one of the most obscure and intractable diseases, the mankind has ever witnessed. However, it can be prevented and controlled by inreasing awareness.

Reference

Charaka Samhita, Susruta Samhita and Vagabhatta Samhita.

Acknowledgement

Authors are thankful to Director, CCRAS, New Delhi and Organisers of Sowparnika Ayurvedic Foundation for Research, Health & Education, Chennai for giving opportunity to prepare th paper.

Status of Ojasa and Agni in Prameha vis a vis Diabetes mellitus : A critical consideration

* Sanjay Kumar
** Pandey A.K.

Diabetes mellitus is a chronic health hazard, affecting millions of people all over the world. The Ayurvedic physicians since ancient time had the knowledge of *Prameha,* a disease synonymous with diabetes mellitus. Apart from various etiological factors responsible for the causation of *Prameha* the impaired *Agni* i.e. Biofire system leads major role in the pathogenesis of this disease resulting in loss of *Ojasa* i.e. *Apara ojasa* in urine. Hence, the patients of *Prameha* are believed to possess impaired status of Agni and reduced status of *Ojasa* i.e. *Ojah-ksaya.* Though in modern medicine various etiological factors have been described for both types of diabetes, but the real factors are unexplored and under process of research. It is a chronic disorder of carbohydrate, accompanied by various degree of Insulin resistance. It is characterized by hyperglycemia and in its most flourished form is accompanied by ketoacidosis and Coma. The disease can be complicated by the development of small blood vessels disease (microangiopathy) and large blood vessels diseases (macroangiopathy) diseases, in long standing cases metabolic and immune function derangement.

In this context the possible status of *Ojasa* and *Agni* have been described in relation to modern concept of diabetes mellitus.

Status of *Ojasa* in *Prameha* :

The concept of *Ojasa* in Ayurveda is very subtle and fundamental. It is the quintessence of all seven *Dhatus* and is responsible for biological strength, vitality and immunity against disease. *Ojasa* itself is the main determinant of *Bala* and *Vyadhi ksamatva* or resistance against disease (C.S. 15/20). Vagbhata has also called *Ojasa* as *Dhari* because it is important in bringing about co-ordination among all factors responsible to sustain life. It is the first substance formed from the medium of *Rasadhatu* (Cakrapani, C.S. 30/8-12) through *Dasamahamula dhamani* (the channel of transport).

Susruta (S.S. 15/26) has also described the qualities of *Ojasa* as it contains predominance of water element and is the important seat of life (*Pranayatanamuttamam).* Caraka (C.S.,17/74-75) describes the odour of *Ojasa* is like *Ghrta* and the taste is like honey and smell like fried paddy (Laja). In *Nidanasthana* Caraka again states that *Ojasa* is by nature sweet in taste. Susruta in *Sutrasthana* describes different functions of *Ojasa (Bala)* i.e. there will be strong and well framed musculature, pleasant vice, attractiveness, bright complexion, proper functioning of all motor, sensory and psychic functions (S.S. 15/25). The life cannot exist for a moment without Ojasa and its derangement makes human being prone to disease. *Ojoksaya* is not clearly mentioned as a specific disease in Ayurvedic classics. However, Caraka and Susruta categorically stated *Ojoksaya* as symptoms in certain diseases and *Prameha* is one of them. Among different types of *Premeha, Madhumeha* has been specifically termed as "*Ojomeha*". Here loss of *Ojasa* is the main prominent feature. While describing the pathogeneses of *Premeha,* Caraka states that *Vata* by its *Ruksa guna* affects *Ojasa,* which is *Madhura* (sweet) in nature altering it into *Kasaya rasa* (astringent) and it into *Mutrasaya* (U.B.) leading to loss of *Ojasa (Apar-ojasa)* in urine. This loss of *Ojasa* is the real cause of the cardinal symptoms i.e. sweet urine (glycosuria) in *Prameha.* As per Madhavakara *Prameha* is of two types viz.

1. *Avrtavatajanaya*
2. *Dhatuksayajanya*

In the above two forms of *Premehas,* *Avrtavatajanya* correlated with *Vataja Prameha,* specially Madhumeha, where *Ojasa* is primarily depleted along with other *Dusyas* (Rasa, Mamsa, Meda, Majja etc.). Probably seeing this fact, Susruta rightly pointed out *Madhumeha* as *Ojomeha.* Patients of such type are very lean, thin, weak and timid were comparable to IDDM (insulin dependent diabetes mellitus) of modern system of medicine. In IDDM immunity (specially auto-immunity) plays an important role in the pathogenesis of diabetes, which was clearly conceive in the classics of Ayurveda. Similarly

---

* Lecturer, Dept. of Rasa Shastra, Babe-Ke Ayurvedic Medical College, Daudhar, Moga (Pd)
** Lecturer, Dept. of Kayachikitsa, Babe ke Ayurvedic Medical College, Daudhar, Moga (Pd)

Dhatuksayajanya prameha of Madhavakara are very near to *Vataja* and *Pittaja* type of *Prameha* comparable to NIDDM (non insulin dependent diabetes mellitus). In such type obesity and emotional factor contributing with insulin resistance, play an important role in the aetiopathogenesis of disease. As compared to other clinical symptoms, loss of *Ojasa* is a secondary feature of this chronic disease.

Prameha seems to be fulminated from the very beginning as there has been found loss of watery element of *Dhatu* including *Apara ojasa* in urine. In Ayurvedic classics diabetes has been categorized in term of *Sahaja* (genetic) and *Apathyaja* (acquired) and further as *Krsa* (thin) and *Sthula* (obese), and is outstandingly scientific, comparable to the IDDM & NIDDM of the latest modern development in this field.

In the view of Caraka, when *Ojasa* is diminished the person becomes timid, weak, always worried having disorder of senses, loss of lusture, neurosthenic, dry and emaciated (C.S. 17/33). This seems to be very near to *Prameha*. Here loss of *Ojasa* not only leads to progression of disease but also speak about the reduced state of immunity in *Prameha*.

Status of *Agni* in *Prameha* :

In Ayurveda it is supposed that Agni controls physiological functions of the body. In common language *Agni* means fire. According to Caraka strength, health, longevity and all the other living process are mainly dependent on *Agni*. If *Agni* function is disturbed it leads to altered the physiological functions (digestion and metabolism) and consequently diseases are manifests and may die after some time. Therefore the *Agni* function is said to main stay of life (C.C. 15/3-4).

Twenty type of *Agni* have been described in Ayurvedic classics. These grouped in four are —

Jatharagni Pacakagni (1) : It is the master *Agni* and located in GIT.

Pacakamsa (7) : Generated in GIT as a part of *Pacakagni* but imports their function in 7 *Dhatu*.

Dhatvagni (7) : Located in respective 7 *Dhatu*.

Bhutagni (5) : One in each of the 7 *Mahabhuta*.

Jatharagni is a combination or group, which includes different types of enzyme and secretion at GIT level. It is located in between the stomach and large intestine and responsible for digestion of foods. If the *Jatharagni* function is diminished it leads to indigestion of foods ie, Ajirana and formation of *Ama-anna* and *Ama-rasa*, which if retained in the body act as autotoxin. There are seven *Dhatvagni* of respective seven *Dhatu* responsible for specific tissue metabolism. It represents the entire range of enzyme and hormone functioning in the respective tissue, taking part in tissue metabolism and assimilation.

All Dhatvagni and their functions mainly depend on Jatharagni (A.S.Su. 19/16-19). The human body is composed of five basic elements called *Pancamahabhuta* and *Agni* associated with these are called *Bhutagni*. This *Agni* helps in synthesis and break down of material at molecular level. The lowering of *Agni* at *Dhatu* and *Bhuta* level not only impairs the functions of the body at those levels, but also leads to formations of *Ama* (unwanted by product) of systemic nature. This *Ama* block the micro-channel and precipitates antigenic reaction in the body. Vagbhata rightly pointed out that all diseases are caused by lowering of Agni i.e., - *"Rogah sarve api mandeagnau"*. Hence in this context it is possible to predict the *Mandagni (Ama)* in the initial stage of disease.

Śusruta emphasized it an *Apathyanimittaja*, where the cause of disease is attributed to the faulty life style and dietary habits. The whole process vitiates *Tridosa* in general and *Kapha* in specific, resulting in *Mandagni* and formation of *Ama* takes place at GIT level. After absorption *Ama* is converted into fat (*Medodhatu*), due to its physical similarity and metabolic block, it contributes to the adiposity of the body leading to over weight. So the present day concept of metabolic pattern in obese patients, where most of the dietary component are converted in fatty acid is well conceived by Susruta. Over weight in prediabetics has been observed to be associated with hyperinsulinism and increase FFAs level. Because of the impairment of *Medodhatnagni*, qualitative and quantitative defects are observed in *Medasa*. Due to this the FFAs level increases in the serum, the glucose entry to the cell is hampered, resulting insulin resistance and it finally leads to diabetes.

The Fats are the soluble form of fat, which are fit for untilization in energy metabolism, coming from adipose tissue. So we can conclude the TG constituted of adipose tissue is an example of *Baddha medasa* and FFAs may be compared with *Abaddha medasa*. Beside this emotional factors are also responsible for manifestation of *Prameha* (C.Ni. 4/23). Due to this emotional factors, the level of counter regulatory hormone in the serum are increased (Adrenaline, Cortisones, GH, Glucagons), where as insulin level is suppressed. In human being adrenaline have potent lipolytic effects, resulting increases level of FFAs. The classical studies of Porte and coworker (1967) have demostrated that Catecholamine directly inhibits the secretion, the whole anabolic processes were shifted towards the catabolic process, resulting hyperglycemia.

Thus, the involvement of *Agni* appears to be the initial pathological event in *Prameha*, which is rightly pointed out by Vagbhata.

We finally conclude that patient of *Premeha* not only reflects the symptoms of *Ojoksaya* but also that of *Agnimandya*. Hence the improvement of status of *Ojasa* and *Agni* are of prime importance, apart from correction of dosic imbalance.

References :

1. *Astanga Samgraha of Vrddha Vagbhata, Ed- Anant Damodar Athawale, Pub.- Mahesh Anant Athawale, Srimad Atreya Prakashan, Nandanandan, Pune - 4, 1980.*
2. *Caraka Samhita with Ayurvedadipika commentary of Cakrapani Dutta, Ed.-Yadvaji Trikamji Acharya, Nirnaya Sagar Press Bombay 1941.*
3. *Dwarkanath C. (1967) : Digestion and metabolism in Ayurveda, Baidyanath Ayurveda Bhawan Pvt. Ltd. Calcutta.*
4. *Nepon G.I. (1993): Immunogenitics and IDDM, Diabetes Rev., 1:93.*
5. *Pandey A.K. (2000) : A study of immune status in patient of diabetes mellitus and the role of Pancakarma and Naimittika Rasayana, M.D.(Ay.), Kayacikitsa thesis, IMS, BHU, Varanasi.*
6. *Singh R.H. (1985) : Ayurvediya Nidana Cikitsa ke Siddhanta, Vol.II, Chaukhambha Amarbharti Prkashan, Varanasi (Ist Ed.).*
7. *Singh R.H. (1998) : The Holistic medicine, Chaukhambha Pub., Varanasi.*

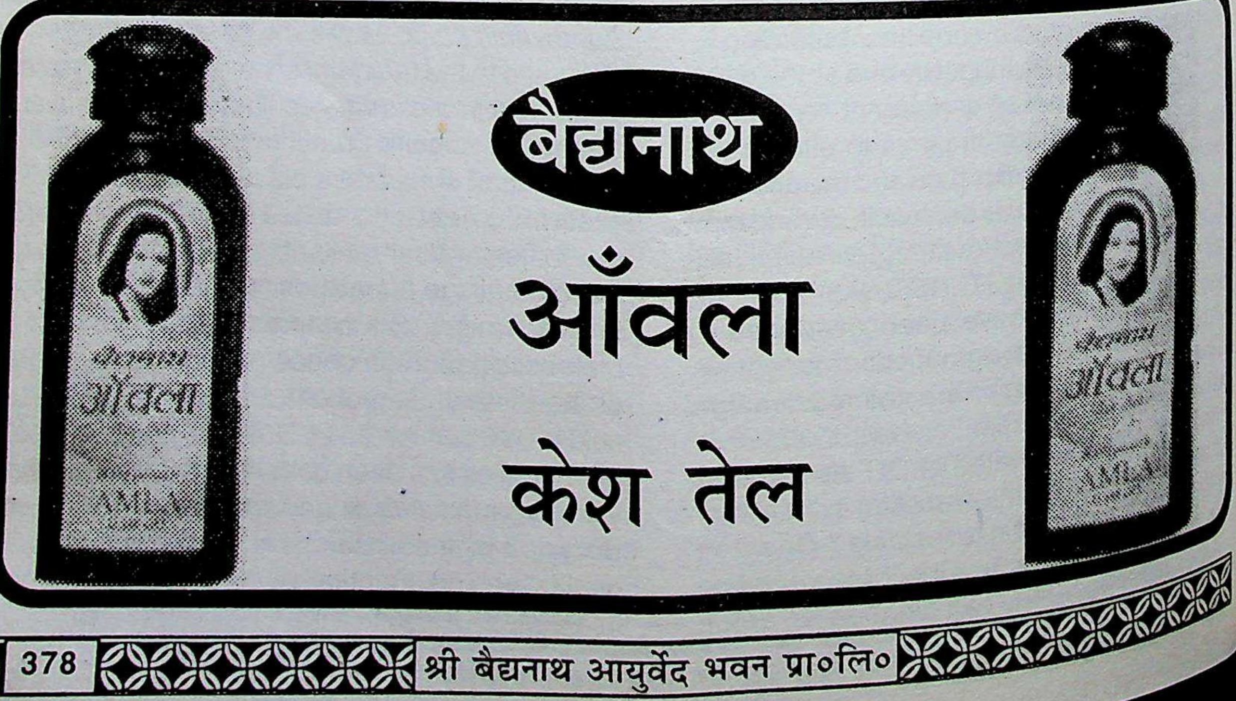

UTILITY OF ANIMAL BLOOD IN HUMAN WELFARE (PRELIMINARY STUDY)

* Abha Prasad ** Dr. Dinesh Kumar *** Dr. Alka Sharan **** Dr. R.R. Prasad

INTRODUCTION

1. I have inculcated tremendous interest in Zoology. Consequently I used to study the books on Ayurveda possessed by my father. Dr. Dineshwar Prasad, Sr. Lecturer, Govt. Ayurvedic College. Patna. The application of animal products & blood in the treatment of various diseases & deficiency of blood excited me the most.
2. It has recently come to light that artificial blood can be chemically prepared & kept in powder form. I think it is a breakthrough. If this idea becomes successful practically, hundreds of lives can be saved which are otherwise lost due to deficiency of blood either accidentally or due to any disease. It can particularly be helpful when blood of the required blood group is not available. (Reference as according to Dr. Chris Cooper, Professor of Bio-chemistry, Aisex University, appeared in the newspaper Hindustan dated 23.08.05).
3. In the present scenario, it will be very helpful according to me if biomedical researches are concentrated basically on natural products instead of synthetic one as our body can accept the natural products more easily. In different Ayurvedic texts applications of natural products in various diseases has been mentioned. It can prove to be very rewarding if scientific bases of such practises are searched.

AIMS & OBJECTIVES

4. Since ancient times deficiency of blood & its components have been a major problem in our country. Pregnant ladies & lactating mothers are the frequent sufferers. There are many other chronic & acute causes of blood loss or deficiency like accidents, haemorrhage, peptic ulcers, G6PD Deficiency etc. In cases of dialysis, preialysis, anaemia due to chemotheraphy, radiotherapy, malignant blood cancer, thallsemia, sickcle cell anaemia, etc., death is very probable. In such cases blood or any component of it like plasma, serum or specific blood proteins or factor can save the life of sufferer of such disorders, it will be very rewarding. Various animal products like meat, liver (Kaleji), bone, bone-marrow etc. have been used to increase the amount of blood. Although it is not a common practice, use of animal blood orally (RAKTA PAN) has also been mentioned in Ayurvedic texts (Reference - Sushruta Samhita, Chikitsa Sthan, Addhyaya -2.)

मृंगगो महिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृकं ।
पिवेज्जीवाभिसन्धानं जीवं तद्ध्याशु गच्छेति ॥
तदेव दर्भमृदितं रक्तं वस्तिं प्रदापयेत् ।
श्यामाकाश्मर्यबदरी दूर्वो शीरैः श्रृतं पवः
घृतमण्डाञ्जनयुतं शीतं वस्तिं प्रदापयेत् ।
पिच्छावस्तिं सुशीतं वा घृतमण्डानुवासनम् ॥

& Charak Samhita, Siddhi Sthan, Addhyaya-6/83-84)

This has also been a common custom in village where blood is even now consumed after frying. On discussion with Dr. R.K. Sinha, Professor, Deptt. of Zoology, Science College, Patna & Dolphin Specialist, I came to know about a common custom in Ladakh where fresh blood of goat is filled in the small intestine of goat and then it is cooked. After that the cooked intestine filled with blood is cut into pieces & eaten.

So the main aim & objective of my project is to search for scientific bases of such practices and also look for authenticity of what is mentioned in Ayurvedic texts concerning the matter.

Hence first part of my project comprises haematological & histopathological study of blood so as to make a comparison between animal & human blood. The second part of the project which will be carried out in near future is to perform animal & clinical trials of such application. Later on I will also try to prepare a consumption as a drug. Other components like plasma, serum, proteins, factors, will also be searched for whether these may prove

---

* M.B.B.S. Ist year student, Patna Medical College
** Lecturer, Deptt. of Physiology, Patna Medical College
*** Research Officer, Institute of Animal Health & Production, Patna - 14
**** HOD, Deptt. of Physiology, Patna Medical College, Ashok Rajpath, Patna

beneficial or not. Later on I will also try to look for possibilities of transfusion of animal blood in humans.

The studies which I have carried so far have been performed basically on blood of healthy goat. Goat has been selected for the research work as mention of this animal is found in Ayurvedic texts and most importantly, this animal as well as its blood are easily available.

Another aspect of the project is that if it becoms successful it might become possible to reduce cruelty towards animals. If proper nutrition is provided by blood itself then it will not be necessary to kill the animal. Little amount of blood can be ejected out from tamed healthy animals.

MATERIAL & METHODS :-

Initially sample of blood of goat was collected from healthy goats of age 3 months - 2 years

Time of Collection - Morning

Kit for collection of blood - Frozen Kit

Certified by Veterinary Doctor regarding health of selected animal.

Blood sample was studied in Haematology Laboratory, Physiology Department, Patna Medical College, Patna & Zoological Survey of India, Patna Branch, Rajendra Nagar, Patna.

For this following procedure was applied and work carried out under the supervision of Veterinary Doctor :-

- First of all a blood film of the sample was made & properly stained.
- Next it was observed under microscope and data were collected.
- Its comparison was made with the blood of human blood.

For studying animal blood, sample was collected from Butcher's shop, Opp. N.C.C. Office, Near Saidpur Golambar, Rajendra Nagar, Patna. Blood film was prepared over there itself. Then 1 went to office of Zoological Survey of India, Patna Branch, Rajendra Nagar, Patna. The Officer-in-Charge, Dr.Gopal Sharma, scientist & others provided me the lab, microscope & other equipments for studying the slide.

For verifying my observations I went to the Veterinary College & consulted the library books present there & also talked to the concerned teachers. At both the places, I received co-operation from the staff & they also promised future co-operation.

The data regarding the composition of goat & human blood was collected from Veterinary College & Patna Medical College, Patna respectively. I will also try to study the composition of plasma myself later on. The part of research which I have conducted so far is a preliminary one. In future I will perform my work in a more specified manner by dividing the goats from which blood are to be taken, into various groups on the basis of their age, sex, breed etc. & look for the difference in their applications.

IMPLICATIONS :

The studies done so far show the similarities in goat & human blood & implicates that blood of goat can be used orally. No components have been found yet in blood of goat which can prove to be dangerous. This also comes to light if we see the local traditions of consuming blood of goat.

On discussion with Dr. S.P. Srivastava, Ex-HOD, Deptt. of Paediatrics, Patna Medical College, I also came to know that Blood in Jelly form is consumed by African people but this has also led to many complications on detailed analysis it was known that conversion of blood to jelly form leads to an increase in Urea percentage. In my project I will try to keep away from this problem. Hence I will try to prepare a concentrate of blood in other consumable form.

Project work comprises of 3 phases -

PHASE - I : Haematological & Histopathological studies of animal & human blood & comparison between them. I have already begun working on this part & the results which I have obtained so for or collected are attached at the back. I will try to complete this part of my research till the completion of 1st year of my M.B.B.S. Course.

PHASE - II : Clinical trials on Animals. On discussion with Dr. Chaturbhuj Singh. University Professor & Head of Department of Physiology, Bihar Veterinary College, Patna, he suggested me to perform clinical trials on animals close to humans evolutionarily like chimpanzees or monkeys. He himself & Dr. Alka Sharan (Veterinary, M.V.Sc., Pathology, Gold Medalist), Junior Assistant Research Officer, Institute of Animal Health & Products, Patna have agreed to certify the health of the animals selected for carrying the studies & also the animals of which blood will be extracted. My project is being carried out under the able supervision of Dr. Rajeev Ranjan Prasad, HOD, Deptt. of Physiology, Patna Medical College, with the permission of our honourable Prinicipal Dr. M.L. Verma, Patna Medical College, Patna and the guidance of the earlier mentioned Veterinary Doctors.

Though up till now, I have conducted studies on blood of Goat, later I will perform the studies on the blood of cattles & other various animal forms by giving blood or plasma extract to the animals on which clinical trials will be performed.

PHASE - III : This will be carried later on will comprise clinical trials on humans i.e. voluntary patients suffering deficiency of blood especially due to serious diseases like leukaemia, myeloma, multiple myeloma, thalassaemia, G6PD deficiency, etc. as in most diseases death is very probable & if consumption of Animal blood or its Plasma or Serum extract, proteins or factors may be helpful in treatments of these diseases or at least increasing the life span of such patients is will be a great success for my project.

DATA

Total RBC per μ1 of blood in :—

(1) Humans – 5 x 10^6

(2) Goat – 14 x 10^6

Life Span of RBC of :-

(1) Goat – 125 - 150 days.

(2) Human - 120 days

	GOAT	MAN
Total Leucocyte Count per μ 1	**8,000 - 12,000**	**4,000 - 11,000**
Neutrophil	35–40%	60–70%
Lymphocyte	50–55%	25–30%
Monocyte	5%	2-8%
Eosnophil	2-5%	1-4%
Basophil	< 1%	0.2-1%

Specific Gravity of Blood of Goat – 1.036 to 1.051

Specific Gravity of Blood of Man -1.048 to 1.066 (avg.)

RANGES OF SOME CHEMICAL CONSTITUENTS OF BLOOD FROM MATURE GOATS :-

	GOAT	MAN
Glucose (mg/dl)	40-75	110 (fasting level)
Urea Nitrogen (mg/dl)	10-28	15-40
NPN (mg/dl)	30-44	15-40
Uric Acid (mg/dl)	0.3-1	2-7
Creatinine (mg/dl)	1-2	<1.5
Cholesterol (mg/dl)	80-160	150-250
Sodium (mEq/L)	142-155	135-145
Potassium (mEq/L)	3.5-6.7	3-5

PROTEINS OF BLOOD PLASMA :- (g/dl)

	Albumin	Globulin	Fibrinogen	Total
Goat :	3.7-4.5	2.4-3.2	0.2-0.5	6.5-7.5
Human :	4.0-5.8	1.5-3.3	0.2-0.39	6.2-7.9

MEAN BLOOD pH VALUES :-

	BLOOD SAMPLE	MEAN BLOOD pH
Cattle :	Arterial	7.38 (7.27-7.49)
Human :	Arterial	7.31 (7.33-7.45)

1. My project work mainly comprises comparative study of animal and human blood and searching for its applications for human welfare. For this blood film was studied, blood collected & data collected. Also discussions were done with many people concerned with the subject. Clinical trials will be done in near future.

   Till now I have obtained positive result. No such components have been found yet that can be harmful to man. This will further be realized after clinical trials. So possibly animal blood can be consumed orally.

2. Large amount of blood is wasted in butcher's shop. However if animal blood can be collected or stored in a scientific manner for use, large amount of blood which is otherwise wasted can help fulfil requirement of blood in humans. Also cruelty against animal can be lessenned

as for extracting little amount of blood, it is not necessary to kill the animal. Hence I have chosen this project. Moreover, HOD, Physiology Deptt., PMCH, Dr. Rajeev Ranjan Prasad & our learned Principal Dr. M.L. Verma also encouraged me & supported me.

While doing this project I have practically seen the similarities between blood of goat and humans and also noted the difference between them. At this time, I feel that probably animal blood consumption can be helpful.

3. Similarities between blood of goat and man specially in properties like pH, Specific Gravity, Protein concentration has particularly excited me. Also many operations & investigations, cannot be carried due to low Haemoglobin. Vegetarians are unable to consume animal protein. If animal blood can be given to them in the form of drug it can be helpful.

Most important in doing the project I am trying to prove the authenticity of implications made by Indian physicians in Ayurvedic texts years ago. This is the most exciting part of my project.

There are many hazards of deficiency of blood. Many people suffer as a result of this. Many operations & investigations cannot be conducted if the amount of Haemoglobin is not in right proportion. If this project meets with success, these hazards can be solved.

Also, vegetarian people are unable to consume the animal products. If animal blood can be consumed in the form of medicine, it can prove to be beneficial to them.

Further more the authenticity of implications that have been made years ago in Ayurvedic texts by India physicians can be verified.

In this manner volumes of blood which is wasted can benefit millions of people by helping them combating with blood deficiency.

Mr. T.K.Sinha, Officer-in-Charge, Food & Nutrition Board also suggested that this project can be successful as Animal Proteins can be more acceptable than that obtained from plants.

The part of the project that has been completed so far suggests that animal blood can probably be consumed by humans. No such components have been found in the blood of Goat that can be dangerous to main. However nothing can be said assuredly till the completion of the project i.e. clinical trials & the observation thereafter. Later on its trials on animals will be conducted to prove this followed by clinical trials.

बैद्यनाथ

अश्वगंधारिष्ट

मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि
आदि में लाभकारी

परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी

1. प्र०:- पादलिप्तसूरि का काल कौन-सा है ?

(a) प्रथम-द्वितीय शती
(b) तृतीय शती
(c) चौथी शती
(d) पांचवीं शती

2. प्र०:- लंघन के कितने प्रकार हैं ?

(a) 7 (b) 10 (c) 5 (d) 3

3. प्र०:- उपस्तम्भ कितने हैं ?

(a) 1 (b) 3 (c) 2 (d) 4

4. प्र०:- आम्र किस स्कन्ध का द्रव्य है ?

(a) कटु (b) अम्ल
(c) मधुर (d) उक्त कोई नहीं

5. प्र०:- जनपदोध्वंस का वर्णन किस स्थान (चरक) में मिलता है ?

(a) शारीर (b) विमान
(c) निदान (d) सूत्र

6. प्र०:- क्षमा किस दोष का प्राकृत कर्म है ?

(a) वात (b) कफ
(c) पित्त (d) त्रिदोषज

7. प्र०:- उदररोग कितने हैं ?

(a) 7 (b) 8 (c) 5 (d) 1

8. प्र०:- रोहिणी किस दोष के कारण होता है ?

(a) वात-कफ (b) वात-पित्त
(c) त्रिदोष (d) कफपित्त

9. प्र०:- क्षय के कितने प्रकार बताये गए हैं ?

(a) 20 (b) 18 (c) 16 (d) 10

10. प्र०:- सन्धि शैथिल्य किस धातु के क्षय के कारण होता है ?

(a) मेद (b) सन्धि
(c) रक्त (d) रस

11. प्र०:- चरक ने प्रमेह पिड़िकाएं कितनी बताई हैं ?

(a) 8 (b) 7 (c) 5 (d) 2

12. प्र०:- किस संहिता के कल्प स्थान में अगद तंत्र का वर्णन है ?

(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) उक्त दोनों (d) कोई नहीं

13. प्र०:- किस रोग के सन्निपातज भेद के लिए निचय शब्द का वर्णन किया गया है ?

(a) गुल्म (b) रक्तपित्त
(c) प्रमेह (d) उक्त कोई नहीं

14. प्र०:- कफज प्रमेह के कितने भेद हैं ?

(a) 4 (b) 6 (c) 10 (d) 2

15. प्र०:- कुष्ठ के कितने भेद हैं ?

(a) 5 (b) 7 (c) 1 (d) 6

16. प्र०:- सुश्रुत ने मध्यम अवस्था के कितने भेद माने हैं ?

(a) 1 (b) 2 (c) 3 (d) 4

17. प्र०:- नपुसकों के प्रकारों का उल्लेख चरक चिकित्सा स्थान के किस अध्याय में हुआ है ?

(a) 10 (b) 20 (c) 30 (d) 28

18. प्र०:- क्रिमिकर कौन-सी दाल है ?

(a) मुद्ग (b) मकुष्ठ
(c) राजमाष (d) कुलत्थ

19. प्र०:- कुपित दोष किस धातु में आश्रित होकर चतुर्थक ज्वर उत्पन्न करता है ?

(a) रस (b) मज्जा
(c) अस्थि (d) मज्जा व अस्थि

20. प्र०:- प्राकृत वात ज्वर क्या होता है ?

(a) सुखसाध्य (b) दु:साध्य
(c) याप्य (d) असाध्य

21. प्र०:- किस धातु में स्थित ज्वर साध्य होता है ?

(a) रस (b) रक्त (c) मांस (d) उक्त सभी

22. प्र०:- किस में होने वाले ज्वर को ईश्वर भी कहा जाता है ?

(a) गाय (b) भैंस
(c) हाथी (d) अश्व

23. प्र०:- चरक में वात प्रकोपक, कारणों का वर्णन किस आचार्य द्वारा किया गया है ?

(a) कुमार शिरा भारद्वाज
(b) वाह्लीक भिषक् कांकायण
(c) अग्निवेश (d) जीवक

24. प्र०:- वातकलाकलीय अध्याय में, वात के किस उस गुण का उल्लेख मिलता है जिसका वर्णन सूत्र स्थान के प्रथम अध्याय में नहीं किया गया ?

(a) गुरु (b) लघु
(c) कक्ष (d) दारुण

25. प्र०:- अगस्त्य हरीतकी किस रोगाधिकार का है ?

(a) कास (b) श्वास
(c) हिक्का (d) अतिसार

26. प्र०:- इन्द्रयव क्वाथ सेवन किस प्रकार के अतिसार को जीत लेता है ?

(a) वातज (b) पित्तज
(c) कफज (d) त्रिदोषज

27. प्र०:- प्रवाहिका का वर्णन चरक के चिकित्सा स्थान के किस अध्याय में मिलता है ?

(a) 15 (b) 19 (c) 21 (d) 23

28. प्र०:- ऐन्द्र जल किसे कहते हैं ?

(a) वर्षा का जल (b) कुएं का जल
(c) बाबड़ी का जल (d) तडाग का जल

29. प्र०:- विसर्प रोग में दूष्य व दोष कितने होते हैं ?

(a) 4 (b) 5 (c) 7 (d) 9

30. प्र०:- जामनगर के आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना कब हुई ?

(a) 1946 (b) 1950
(c) 1953 (d) 1959

31. प्र०:- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय संस्थान का उद्घाटन कब हुआ ?

(a) 15 अगस्त 1969
(b) 15 अगस्त 1963
(c) 26 जनवरी 1969
(d) 26 जनवरी 1963

32. प्र०:- किस आयुर्वेदिक कालेज का उद्घाटन महात्मा गांधी ने किया था ?

(a) दयानन्द आयुर्वेदिक, जालंधर
(b) तिब्तिया आयुर्वेदिक कालेज, दिल्ली
(c) राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, लखनऊ
(d) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

33. प्र०:- चरक सूत्र स्थान के प्रथम अध्याय में कुल कितने शब्द हैं ?

(a) 4 (b) 6 (c) 8 (d) 10

34. प्र०:- चरक सूत्र स्थान प्रथम अध्याय में वर्णित ऋषि परिषद् में उपस्थित लगभग कितने ऋषियों के नाम हैं ?

(a) 40 (b) 55 (c) 65 (d) 70

35. प्र०:- शतकृतु किसका पर्याय है ?

(a) इन्द्रक (b) भारद्वाज
(c) खर (d) आत्रेय

36. प्र०:- फणमर्म संख्या में कितने होते हैं ?

(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 3

37. प्र०:- किस मर्म के विद्ध होने पर गंधज्ञान नष्ट होता है ?

(a) शंख (b) श्रृगांटक मर्म
(c) फण (d) स्थापनी

38. प्र०:- ओज का अस्थित्व लक्षण किस मास में होता है ?

(a) नवम (b) सप्तम
(c) अष्टम् (d) नव

39. प्र०:- कफ की उत्पत्ति किन तत्वों से होती है ?

(a) आप व पृथिवी (b) वायु व आकाश
(c) आप व वायु (d) वायु व पृथिवी

40. प्र०:- पुरीष की उत्पत्ति किस तत्व से होती है ?

(a) अग्नि (b) पृथिवी
(c) वायु (d) आकाश

41. प्र०:- किस तत्व से गंध की उत्पत्ति होती है ?

(a) तेज (b) पृथ्वी (c) वायु (d) आकाश

42. प्र०:- मांस धातु की उत्पत्ति किस तत्व से होती है ?

(a) वायु (b) अप
(c) पृथिवी (d) आकाश

43. प्र०:- किस मास में गर्भ की लम्बाई 15 से.मी. होती है ?

(a) द्वितीय (b) चतुर्थ

(c) पंचम (d) सातवें

44. प्र०:- स्त्रियों में पुरुषो की तुलना में कितने आशय ज्यादा होते हैं ?

(a) तीन (b) चार (c) पांच (d) छह

45. प्र०:- पुरुष की तुलना में स्त्री की श्रोणी क्या होती है ?

(a) बड़ी (b) छोटी (c) समान

46. प्र०:- पारद शब्द का प्रयोग नहीं है ?

(a) चरक संहिता में

(b) सुश्रुत संहिता में

(c) अष्टांग संग्रह में

(d) तीनों में

47. प्र०:- पारद कितने प्रकार की होती है ?

(a) 2 (b) 3 (c) 5 (d) 6

48. प्र०:- भारतीय रसशास्त्र का मुख्य स्तम्भ क्या है ?

(a) पारद (b) गन्धक

(c) अभ्रक (d) वैक्रान्त

49. प्र०:- पर्पटी कल्पना का शुभारम्भ किस ग्रन्थ में हुआ था ?

(a) रसार्णव (b) चक्रदत्त

(c) रसरत्न समुच्चय (d) रसकौमुदि

50. प्र०:- वाराहपुट होता है ?

(a) अरहिन प्रभाव, लम्बा, चौड़ा और गहरा ।

(b) एक हाथ लम्बा, चौड़ा व गहरा ।

(c) ½ हाथ लम्बा, चौड़ा व गहरा ।

(d) तीनों गलत ।

51. प्र०:- रसशास्त्र का प्रारम्भिक काल क्या है ?.

(a) 2री शतीं (b) 5वीं-8वीं शती

(c) 9-12वीं शती (d) 13-16वीं शती

52. प्र०:- सुश्रुत संहिता में पारद का स्पष्ट उल्लेख है -

(a) बाह्य प्रयोग (b) आभ्यन्तर प्रयोग

(c) केवल भोजन के प्रक्षेप में ।

53. प्र०:- पारद का मुख्य खनिज प्राप्ति स्थान है :

(a) स्पेन (b) रूस (c) फ्रांस (d) हंगरी

54. प्र०:- रसरत्न समुच्चय के अनुसार पारद के कञ्चुक (आवरण) कितने होते हैं ?

(a) 5 (b) 6 (c) 7 (d) 12

55. प्र०:- गोक्षुर का रस क्या है ?

(a) मधुर (b) अम्ल

(c) लवण (d) कटु

56. प्र०:- धतूरा बीज क्या होते हैं ?

(a) गुरु (b) स्निग्ध

(c) लघु (d) श्लक्षण

57. प्र०:- ताम्बूल पत्र का गुण क्या होता है ?

(a) लघु (b) तीक्ष्ण

(c) विशद (d) उक्त सभी

58. प्र०:- कफ के गुणों का वर्णन सूत्र स्थान के किस अध्याय में किया गया ?

(a) प्रथम (b) द्वितीय

(c) तृतीय (d) चतुर्थ

59. प्र०:- संतप्त किस ज्वर का भेद है ?

(a) आन्तिरक (b) शोकज

(c) भयज (d) विषम

60. प्र०:- दारुण किस कुष्ठ का भेद है ?

(a) मण्डल कुष्ठ (b) कपाल

(c) किलास (d) पुण्डरीक

61. प्र०:- रोगोत्पत्ति में दोष प्रकोप कौन-सा कारण है ?

(a) समवायि (b) असमवायि

(c) निमित्त (d) उक्त कोई नहीं

62. प्र०:- पीलूपाक किस दर्शन का सिद्धान्त है ?

(a) न्याय दर्शन (b) वैशेषिक

(c) बौद्ध (d) जैन

63. प्र०:- सृष्टि उत्पत्ति क्रम में मूल प्रकृति किसे कहा

गया है ?

(a) अव्यक्त (b) व्यक्त

(c) विकार (d) उक्त कोई है ?

64. प्र०:- अभिधा कौन-सी वृत्ति है ?

(a) शब्दार्थ (b) तंत्र

(c) आर्ष ग्रंथ (d) उक्त कोई नहीं

65. प्र०:- कनकबिन्दु अरिष्ट का प्रमुख घटक क्या है ?

(a) आरग्बध (b) खदिर

(c) अपामार्ग (d) पिप्पली

66. प्र०:- मिश्रक स्नेह का रोगाधिकार क्या है ?

(a) प्रमेह (b) रक्तपित्त

(c) गुल्म (d) कास-श्वास

67. प्र०:- भगन्दर की चिकित्सा चरक चिकित्सा के किस अध्याय में बतलाई गई है ?

(a) 10 वें अध्याय (b) 9 वें अध्याय

(c) 12 वें अध्याय (d) 11वें अध्याय

68. प्र०:- विस्फोटक में कौन-सा लक्षण नहीं मिलता ?

(a) दाह (b) छर्दि

(c) ज्वर (d) पिपासा

69. प्र०:- व्योष किस शोथ की चिकित्सा में निर्दिष्ट है ?

(a) रक्तशोथ (b) कफजशोथ

(c) वातज शोध (d) वातज शोथ

70. प्र०:- कटुकाद्य घृत किस रोग में प्रयुक्त होता है ?

(a) भगन्दर (b) अर्श

(c) विस्फोटक (d) उक्त सभी

71. प्र०:- गुर्वादि गुण कितने हैं ?

(a) 5 (b) 7 (c) 20 (d) 15

Answer-Keys

(1) A (2) B (3) B (4) B (5) B (6) B
(7) B (8) C (9) B (10) C (11) B (12) B
(13) A (14) D (15) B (16) C (17) C (18) B
(19) D (20) B (21) D (22) A (23) A (24) D
(25) A (26) B (27) B (28) A (29) D (30) A
(31) B (32) B (33) C (34) B (35) B (36) A
(37) A (38) C (39) A (40) B (41) B (42) B
(43) C (44) C (45) A (46) A (47) A (48) C
(49) A (50) B (51) A (52) B (53) A (54) A
(55) C (56) B (57) A (58) A (59) C (60) A
(61) B (62) A (63) A (64) B (65) C (66) C
(67) B (68) B (69) D (70) C (71) C

लेखक

डा० अनुप कु० गक्खड़
दयानन्द आयुर्वेदिक कॉलेज
जालन्धर

एवं

डा० अनिल गक्खड़
श्रीमती उर्मिला देवी आयुर्वेदिक कॉलेज
होशियारपुर

बैद्यनाथ
पंचसकार चूर्ण
पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

गुजरात

GOLDEN JUBILEE YEAR CELEBRATIONS

July 2005 – July 2006

Institute for Post Graduate Teaching and Research in Ayurveda
Gujarat Ayurved University
Jamnagar - 361008

All India Quiz Competition

Dear Sir/Madam,

We are pleased to announce that as a part of Year long Golden Jubilee Year Celebrations of foundation of I.P.G.T. & R.A., the institute is going to conduct an all India quiz competition for which subject and rules are under mentioned.

Rules

- The competition will be open for the post graduate colleges of Ayurveda only.
- From each college 2 students may participate as a team.
- All the teams will be divided into groups and inter groups competition will be organized.
- After first round 2 terms from each group will be selected for semi-finals.
- Four teams will be qualified for the final round.
- Teams will be sponsored/endorsed by the Head of PG department or Principles of College. It is advisable that college administration may organize a proper competition to select the team to represent the college.
- Participants will be provided local hospitality (lodging and boarding) in the university hostels.
- All the participants will be given certificate of participation.

Quiz format

Topics to be covered

- Ayurveda
    - Classics
    - Genral Ayurveda
    - Recent advances
    - International status of Ayurveda
    - Administrative setup of Ayurveda at central and state level.
- Ayurveda and technology
- Contemporary modern medical knowledge
- General knowledge & current affairs

The quiz competition will be organized at Jamnagar on 10-11th February 2006. Therefore you are requested to send the nomination of the team of your institute to Dr. M.S. Baghel, Chairman, Subcommittee of Quiz Competition, Golden Jubilee Year Celebrations, I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayurved University, Jamnagar in person or by post, courier and email etc on or before 14th January 2006. Please contact Dr. M.S. Baghel (Office Ph. 0288-2664866, E-mail icasjam@ayurveduniversity.com)for any further query in this regard.

Kindly again note that the only post graduate and Ph.D. scholars of your institute may participate in this competition. Winning team of the final round will be honored by certificate and prizes.

Please circulate this communication to all concerns of your institute.

Alumni Directory of I.P.G.T. & R.A.

Dear Sir / Madam,

We are pleased to announce that as a part of Year long Golden Jubilee Year Celebrations of foundation of I.P.G.T. & R.A., the institute is going to publish a directory of alumni of I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayurved University, Jamnagar (from 1st batch to the on going 50th batch).

Profroma required to be filled and submitted to the Prof. V.D. Shukla, Chairman, Subcommittee of Publication of Directory, Golden Jubilee Year Celebrations, I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayurved University, Jamnagar in person or by post, courier and email etc on or before 30th November 2005 is under mentioned.

GOLDEN JUBILEE CELEBRATIONS

1955 - 2005

INSTITUTE OF POST GRADUATE TEACHING AND RESEARCH IN AYURVEDA
GUJARAT AYURVED UNIVERSITY, JAMNAGAR

FORMAT TO BE FILLED BY ALUMNI OF I.P.G.T. & R.A.

Full Name		
Designation		
Date of Birth		
Official Address		
Residential Address		
Telephone / Mobile	(O)	(R)
	Mobile :-	
E-mail / Website		
B.A.M.S.	Year	University
P.G.	Year	University
	Specially	
Ph.D.	Year	University
Academic Awards & Achievements		
Teaching Experience	UG (Years)	PG (Years)
Subject of Teaching	UG	PG
Books / CD Publications		
Experience in Practice/ Pharmacy		
Specify Specialty if any		
Affiliation to other Professional organization of Ayurveda		

Kindly circulate this communication to all alumni of I.P.G.T. & R.A. working in your institution or in your city.

Prof. R.R. Dwivedi
I/c. Director & Chairman, Golden Jubilee Year Celebrations

5th INTERNATIONAL SEMINAR
ON
Ayurvedic Education, Research & Drug Standardization - A Global Perspective

January 5-7, 2006
Second Circular
INFORMATION BROCHURE
(Seminar on Ayurveda & Yoga)
Organized by
Institute for Post Graduate Teaching and Research in Ayurveda
(1955-2005)
As part of its Golden Jubilee Year Celebrations
July, 2005 - July, 2006
Gujarat Ayurved Universtiy , Jamnagar
(On the eve of 40th university foundation day)

Patron
Dr. S.S. Savrikar
Vice-Chancellor
Gujarat Ayurved University, Jamnagar

Organizing Committee

Chairman
Prof. R.R. Dwived
I/c. Director & Dean, I.P.G.T. & R.A.

Vice- Chairman
Dr. M.N. Gohil
Principal, G.A. Mahavidyalaya

Members
Prof. P.P. Sharma
Head, Deptt. of Dravyaguna
Prof. V.D. Shukla
Head, Deptt. of Kayachikitsa
Dr. M.A. Pandya
Head, Deptt. of Kaumarbhritya
Dr. P.K. Prajapati
Head, Deptt. of RS & BK
I/c Director, Pharmacy
Dr. Manjusha R.
I/c Head, Deptt. of Shalya
Prof. M.G. Chauhan
Dean, IAMPS
Dr. M.S. Baghel
Director, ICAS
Dr. A.A. Bhatt
Director, MPYNER
Dr. M.N. Gohil
I/c. Dean, IAPS

Consultative Committee
Shri R.M. Jhala
Registrar, G.A.U.
Smt. Vasuben Trivedi
Syndicate member
Dr. A.R. Dave
Syndicate & P.G. Board member
Dr. A.R. Trivedi
Senate member
Shri Indubhai Vora
Gulabkunverba Ayurveda Society

Organizing Secretary
Dr. Anand K. Choudhary

Joint Organizing Secretary
Dr. Mahesh Vyas

Address for All Communications :
Organizing Secretary
5th International Seminar on Ayurveda
Room No. 106, First Floor, O.P.D. Block
I.P.G.T. & R.A.
Gujarat Ayurved Universtiy Jamnagar - 391 008
Gujarat ((India)
(O) 0288-2552014 (R) 0288-2670006
(Mob.) 9328111863 Fax : +91-288-2676856
E-mail : deanipgt@ayurveduniversity.com
Visit : www.ayurveduniversity.com

Dear Sir/ Madam,

On behalf of the authorities of Gujarat Ayurved University and Organizing Committee we have great pleasure in inviting you to attend and participate in the 5th International Seminar on Ayurvedic Education, Research and Drug Standardization - A Global Perspective being held at Jamnagar, Gujarat (India) during January 5-7, 2006.

The venue of this seminar, Gujarat Ayurved University (GAU) is exclusively devoted to Ayurvedic education, research and drug development since last more than 37 years. In addition to Bachelor's Master's and Doctorate courses, many short-term and long term courses in Ayurveda have been designed and implemented for Indian and foreign medical professionals. GAU is also conducting Diploma, Degree and Post Graduate courses in Ayurvedic Pharmaceutical Sciences leading to D. Pharm (Ayurveda), B.Pharm (Ayurveda) and M.Pharm (Ayurveda) degree, M.Sc. (Medical Plants) and Diploma & P.G. Diploma in Yoga and Naturopathy. Scholars from almost all continents of the world are coming to study in this University.

The ensuing seminar will focus its attention on strengthening and globalizing Ayurvedic Education in its original classical form. It will also focus on integrated approach of Alternative and Complementary Medicines and Traditiaonal Medicine prevalent in different countries with Modern Medicine in health delivery programmes. It will endevour to formulate uniform pattern of education in Ayurvedic subjects globally through a panel discussion. The pharmaceutical research on Ayurvedic dosage form, clinical and experimental research on diseases and drugs will be discussed through guest lectures and invited papers. The need of the hour is to focus attention on establishing chemical, biological, physical, phytochemical and clinical parameters of Ayurvedic drugs and formulations for achieving ultimate standardization. Foreign institutions with whom the University has entered into a Memorandum of Understanding will also participate in the seminar.

Registration

Participation in the seminar is open to all individuals interested in Indian systems of medicine, modern medicine, other complimentary, alternative and traditional medicine, medicinal plant sciences, drug research and ayurvedic & modern drug industries. Those who desire to attend the seminar should fill the Registration Form A and mail it to the Organizing Secretary along with the registration fee as per the schedule given below.

Category	Upto Nov. 30 2005	After Nov. 30 2005
Indian Delegates	Rs.1000.00	Rs. 1200.00
Accompanying persons	Rs. 800.00	Rs. 1000.00
Students*	Rs. 400.00	Rs. 400.00
Foreign Delegates	US$ 200	US$ 250
Accompanying Persons	US$ 150	US$ 175
SAARC & Neighbouring Countries	US$ 150	US$ 175
SAARC & Neighbouring Countries Students**	. US$ 100	US$ 125

* P.G. & Ph.D. Students

** Proof of Head of Dept. or Principal/Dean required for both Indian and foreign students.

N.B. : Special rates may be considered for delegates from developing & underdeveloped countries.

Delegates Privileges

Tea/Coffee, breakfast, lunch and dinner during seminar and workshop days, seminar material, souvenir, abstract book, certificate of participation etc.

Accommodation

Moderate accommodation will be provided to the registered delegates on first come first served basis in hostels or dormitories. However, those interested in having hotel accommodation, it will be provided on payment basis. The hotel tariffs in Jamnagar are given in table. All accommodation requests must be communicated latest by December 10, 2005 to the Organizing Secretary by filling up Form - 'B' along with a bank draft of requisite advance amount for reserving hotel accommodation, drawn in favour of Director, I.P.G.T. & R.A. Gujarat Ayurved University payable at Jamnagar. Hotel accommodation will not be guaranteed without remitting advance amount.

List of Major Hotels in Jamnagar and their Tariff in rupess
(Taxes as applicaple)

Name of Hotel		Hotel Tariff (In Rupees)				Dist. from vanue
		Single		Double		
		A/C	Non-A/C	A/C	Non- A/C	
Hotel Vishal International	(Deluxe)	1400	650	1700	700	3 KM
	(Economy)	1100	550	1500	---	
Hotel Bansi	(Deluxe)	1650	—	1800	—	< 1 KM
	(Economy)	800	500	950	550	
Hotel Aaram	(Deluxe)	1600	—	2000	—	< 1 KM
	(Economy)	1000	550	1300	800	
Hotel Regency	(Deluxe)	950	—	1100	---	< 1 KM
	(Economy)	650	500	800	600	
Hotel President	(Deluxe)	1000	---	1200	—	1 KM
	(Economy)	800	550	950	650	
Hotel Royal Stay	(Deluxe)	900	—	1000	—	< 1 KM
	(Economy)	700	500	800	600	

Kindly note that all the Hotel rates shown in the list are current rates but the delegates will be charged as per actual.

Call for Papers

The Chairman, Scientific Committee invites delegates desirous of presenting papers to submit abstract of their paper in the format 'C'. Paper presentation both oral as well as poster can be made in different sessions on the titles such as -

Ayurvedic Education

- Ayurvedic education prevalent in Indian sub-continent : Problems & solutions.
- Status of Ayurvedic education in developed countries : Problems & solutions
- Status of Ayurvedic education in developing countries : Problems & solutions.
- Recognition and accreditation of Ayurvedic practitioners in foreign countries.

Ayurvedic Research

- Present status of research in Ayurvedic and other complementary & Alternative systems of medicine
- Research methodology in Ayurveda.
- Contemporary research in concepts of Ayurveda/CAM and Ayurvedic drugs
- Role of Ayurveda in various acute and chronic clinical conditions from preventive, promotive & curative point of view.
- Role of Ayurveda, CAM/TM and other Systems of Medicine and its integrated approach in health delivery programme - A global perspective.
- Development of experimental models suitable to Ayurvedic concepts and diseases.
- Experimental research on Ayurvedic drugs: Medicinal Plants & herbo-mineral preparations.

Ayurvedic Drug Standardization

- Standardization of raw drugs.
- In process standardization - drug manufacturing.
- Standardization of finished products.
- Acceptability of Ayurvedic drugs in global market.

Yoga & Naturopathy

- Application of Yoga to release stress and strain.
- Application of Yoga to treat Chronic disorders of various systems of human body.
- Application of Naturopathy in good living practice.

Instructions for preparation of abstracts (Last date for submission : Nov. 30, 2005)

a. The title should be in brief and self explanatory and should be written in capital letters.

b. Name (s) of author (s) should appear as surname first, followed by first and middle initials and presenting author's name should be underlined.

c. Abstract should not exceed 250 words and should be typed in single space using computer or electronic typewriter only. Handwritten abstracts will not be considered.

d. Each participant will be allowed to present only one paper and will be given eight minutes for presentation and two minutes for discussion.

e. Facilities for Overhead Projector, Slide Projector and Multimedia Projector will be available.

f. Each participant will be allowed to present one poster only. Attractive posters may be prepared and arranged in such a way so as to cover not more than one square meter area.

g. Poster must be presented to cover title, name (s) of author (s), address, introduction, methods and materials, results and conclusions. Posters may include graphs, charts, photographs etc.

h. Presenting author should remain present during poster presentation, at least for two hours and explain his work to the visiting delegates.

i. Abstract of paper as mentioned above may be sent by e-mail on icasjam@ayurveduniversity.com or info@ayurveduniversity.com along with three hard copy by post to Chairman, Scientific Committee on or before November 30, 2005.

Note : The authors should send full paper before December 20, 2005 Exhibition.

A scientific exhibition is being organized on the eve of the seminar during January 5-7, 2006. University departments will exhibit their scientific activities including varieties of original species of medicinal plants. Several stalls have been earmarked for Ayurvedic Pharmaceutical Industries for exhibiting their products and other activities. Demonstration of traditional methods used in dentistry, yoga and naturopathy will be the part of exhibition.

The rate for each stall of 15' x 15' is Rs. 10000/- for three days. The stall holders will be provided one lunch and dinner coupons free for three days. Accompanying person (s) will be given coupons on payment basis. Requirement like furniture, electricity points etc in the stall should be informed atleast eight days in advance. The bank draft of stall charges drawn in favour of Director, I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayurved University payable at Jamnagar should be sent to the Organising Secretary along with the request for reserving stall on or before December 15, 2005. Exhibition layout will be available from Chairman, Exhibition Committee on request.

Souvenir

It has been decided to bring out a colourful souvenir on this occasion, providing information on current status and future prospects of globalization of ayurvedic education and reseach. It will contain invited articles from experts in various disciplines of ayurveda and from foreign experts in comlimentary, alternative and traditional medicine prevalent in different countries.

The University solicits co-operation and support from industrialists, business community in the field of ayurveda, and well wishers and invites advertisements, sponsorships and participation in exhibition for the successful organization of this international seminar.

Adverstisement tariff in the Souvenir :

Back Cover Page	: Rs. 25,000 (Coloured)
Inside Front Cover Page	: Rs. 20,000 (Coloured)
Inside Back Cover Page	: Rs. 20,000 (Coloured)
Full Page	: Rs. 15,000 (Coloured)
	: Rs. 10,000 (B/W)
Half Page	: Rs. 7,000 (B/W)
Quarter Page	: Rs. 5,000 (B/W)
For one Lunch	: Rs. 1,00,000 (Full Page B/W Advertisement free)
For one Dinner	: Rs. 75,000 (½ page B/W Advertisement free)
For one Breakfast	: Rs. 25,000 (Quarter page B/W Advertisement free)
For one Tea/Snacks	: Rs. 10,000

The Souvenir will be printed on an A4 (8.5 x 11 inch) size paper. The advertisement matter on 1.44 Floppy Diskette or CD Rome should reach the organising Secretary along with a bank draft of requisite amount drawn in favour of the Director, I.P.G.T. & R.A. Gujarat Ayurved University, payable at Jamnagar, on or before 30 Nov. 2005.

5th International Seminar on

Ayurvedic Education, Research & Drug Standardization - A Global Perspective January 5-7, 2006

(Golden Jubilee Year Celebrations of I.P.G.T. & R.A.)

Form - A

REGISTRATION FORM

Name : Dr./Mr./Ms...

Surname First Name Other Initials

Date of Birth..............................Sex............. ....Nationally...

Designation...

Address for correspondence...

....

Phone Nos. with STD/ISD Code ....(Office)...................................(Residence)

Fax.. E-mail..

Accompanying persons : Spouse Yes/No...

Children upto 12 yrs (No charge)..

Adults ....

Medicinal System :

Ayurveda ☐

Allopathic ☐

Homoeopathy ☐

Unani ☐

Others, please specify ....

Registration No. & Date..

Name of the Registering authority...

Details of payments

Registration fees delegates Rs...

Accompanying persons Rs...

Accommodation chargees (Form B) Rs...

Total Rs...

Demand Draft No. ....Dated..

Bank ....Branch...

Signature

1. Payments should be made only by Demand Draft in favour of Director, I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayurved University payable at Jamnagar.
2. Only vegetarian food will be served during the Seminar.
3. Photocopies of Form A, B, and C may be used for registration and submission of abstract.

5th International Seminar on

Ayurvedic Education, Research & Drug Standardization - A Global Perspective January 5-7, 2006

(Golden Jubilee Year Celebrations of I.P.G.T. & R.A.)

Form - B

HOTEL ACCOMMODATION

Name : Dr./Mr./Ms...

Age.................................Sex.............................Nationally.............................

Designation...

Address for correspondence...

....

City ....State ....Pin code.......................

Phone..Fax.......................................

E-mail ....

Accompanying persons :

1. ....Age...............Male/Female.....................
2. ....Age...............Male/Female.....................
3. ....Age...............Male/Female.....................
4. ....Age...............Male/Female.....................

Type of accommodation according to preference

1. ....
2. ....
3. ....
4. ....

Arrival at Jamnagar

Date.. Time ....

Railway Train No. & Name...

Bus...

Advance payment for...........................days of stay (From.................01/2006 to............../01/2006.)

Rs. ....

Mode of payment D.D. No. ....Date.............................

Bank..Branch.............................

Signature

1. Please write Hostel/guest house//hotel category and names in order of preference. Also indicate prefernece for single room/double room/room shared by 3 persons.
2. Full advance payment for accommodation required.

5th International Seminar on

Ayurvedic Education, Research & Drug Standardization - A Global Perspective January 5-7, 2006

(Golden Jubilee Year Celebrations of I.P.G.T. & R.A.)

Form - C

Abstract Proforma

(Laser/inject Print or Electronic Typing)

Title of Presentation ....

Authors ....

Department (s)...

Institution (s)..

City ....State ....Pin code..........................

Presentation code : Oral [ ] Poster [ ]

Presentation Requirement [ ] OHP [ ] Slide Projector [ ] Multimedia Projector

Title :

Author (s) :

Address :

Abstract :

Please send three copies (one original & 2 photocopies)

Signature

Date :

Place :

जयपुर

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का 57वाँ महाधिवेशन जयपुर में धूमधाम से सम्पन्न ।

27 एवं 28 सितम्बर 2005 को जयपुर के बिरला सभागार में अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के महाधिवेशन से सम्बन्धित समस्त कार्य आनन्द एवं उल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ ।

कार्यक्रम का शुभारम्भ प्रात: 9 बजे आयुर्वेद के ध्वजोत्तोलन से प्रारम्भ हुआ । वैद्य श्री देवेन्द्र त्रिगुणा, नवनिर्वाचित महासम्मेलनाध्यक्ष ने आयुर्वेद की ध्वजा को फहराया । महासम्मेलन के समस्त पदाधिकारी एवं विभिन्न प्रान्तों से आये प्रतिनिधि इस अवसर पर उपस्थित थे । ध्वजा फहराने के बाद वैद्य श्री श्रीनिवास शर्मा, अध्यक्ष, उत्तर प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन ने झण्डा गान किया और भगवान धन्वन्तरि के जय-जयकार से समस्त वातावरण गुंजायमान हुआ ।

9.30 बजे आयुर्वेद प्रदर्शनी का उद्घाटन माननीय श्री हरिशंकर भामड़ा, उपाध्यक्ष, आर्थिक सुधार आयोग, राजस्थान सरकार व पूर्व मुख्यमंत्री, राजस्थान सरकार के करकमलों से सम्पन्न हुआ । प्रदर्शनी में आयुर्वेद की अनेक औषध निर्माणशालाओं यथा - श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन, नैनी, इलाहाबाद, धूतपापेश्वर, आयुर्वेदिक इंडिस्ट्रिज, पनवेल, महाराष्ट्र, डाबर इण्डिया लि०, कौशाम्बी, झण्डू फार्मास्यूटिकल्स, मुम्बई, श्री कृष्ण गोपाल आयुर्वेद भवन, कालेड़ा, अजमेर आदि ने अपने स्टॉल सुन्दर रूप से लगाये थे । इसके अतिरिक्त आयुर्वेद एवं सिद्ध की केन्द्रीय अनुसंधान परिषद् ने भी अपने अनुसंधान की उपलब्धियों का विस्तार से प्रदर्शन किया था । महासम्मेलन के प्रधानमंत्री वैद्य श्री शिव कुमार मिश्र ने श्री भामड़ा जी को प्रत्येक स्टॉल और वहाँ की विशेषताओं तथा आयुर्वेद में किये जा रहे अनुसंधान आदि कार्यों से अवगत कराया । तदुपरांत बिरला सभागार में प्रदर्शनी में उद्घाटन का समारोह सम्पन्न हुआ जिसमें माननीय श्री भामड़ा जी ने आयुर्वेदीय

57TH PLENARY SESSION
ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS

राजस्थान के भू०पू० मुख्यमंत्री एवं कांग्रेस के महामंत्री श्री अशोक गहलौत जी शिक्षा सत्र में अध्यक्ष पद से बोलते हुए दिखाली पड़ रहे हैं ।

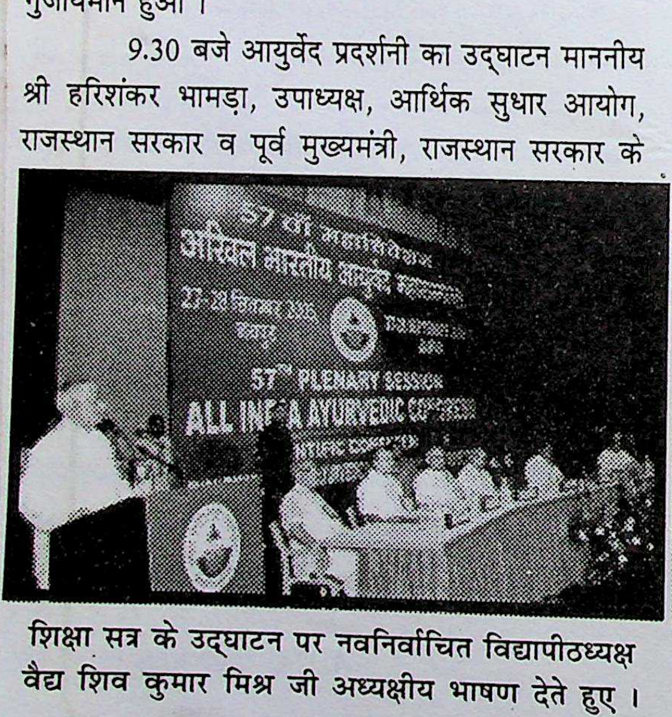
57TH PLENARY SESSION
ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS

शिक्षा सत्र के उद्घाटन पर नवनिर्वाचित विद्यापीठध्यक्ष वैद्य शिव कुमार मिश्र जी अध्यक्षीय भाषण देते हुए ।

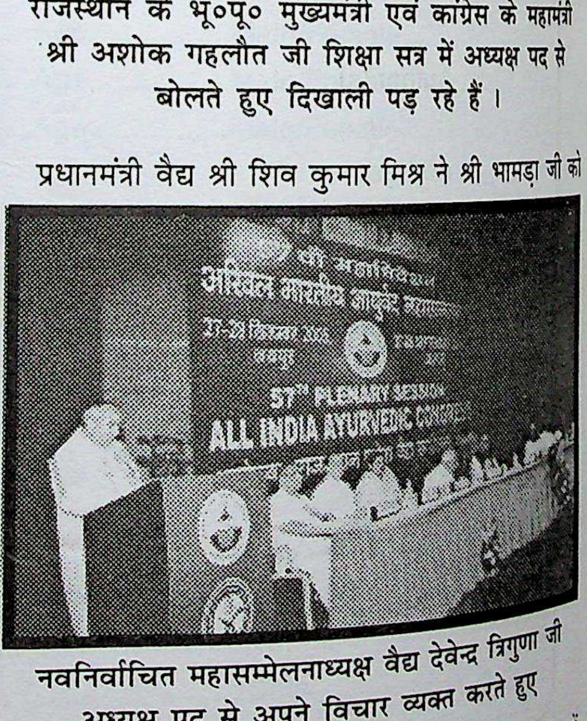
57TH PLENARY SESSION
ALL INDIA AYURVEDIC CONGRESS

नवनिर्वाचित महासम्मेलनाध्यक्ष वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा जी अध्यक्ष पद से अपने विचार व्यक्त करते हुए

औषधि निर्माण एवं अनुसंधान के क्षेत्र में हो रही प्रगति की भूरि-भूरि प्रशंसा की । उन्होंने औषधि निर्माताओं को युगानुरूप आवश्यकताओं से अपने को सम्पन्न करने पर जो दिया और नयी-नयी बीमारियों की चिकित्सा के लिए भी आयुर्वेदीय उपचार पर अनुसंधान की आवश्यकता बताई ।

अपराह्न 1.00 बजे से महासम्मेलन की कार्यकारिणी, स्थायी समिति, विद्यापीठ की प्रबन्ध समिति एवं अन्तत: विषय निर्वाचनी समिति की बैठक हुई । प्राय: 300 से अधिक नये सदस्यों के सदस्यता आवेदन-पत्र स्वीकार किये गये और दो दिवसीय महाधिवेशन की रूपरेखा को भी अन्तिम रूप दिया गया । विषय निर्धारिणी समिति में सारे भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों से प्राप्त प्रस्तावों पर विचार हुआ और योग्य प्रस्तावों को महाधिवेशन के खुले अधिवेशन में रखने का निर्णय हुआ ।

सायं 5.30 बजे महाधिवेशन का उद्घाटन सत्र प्रारम्भ हुआ जिसका उद्घाटन भारत सरकार के उपराष्ट्रपति महामहिम श्री भैरों सिंह जी शेखावत ने किया । इस अवसर पर महासम्मेलन के निवर्तमान अध्यक्ष वैद्य श्री पी.के. वारियर, नवनिर्वाचित अध्यक्ष वैद्य श्री देवेन्द्र त्रिगुणा, निवर्तमान विद्यापीठाध्यक्ष, वैद्य श्री महेशदत्त शास्त्री, नवनिर्वाचित विद्यापीठाध्यक्ष वैद्य श्री शिव कुमार मिश्र, पूर्व महासम्मेलनाध्यक्ष एवं भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् के अध्यक्ष वैद्य श्री श्रीराम शर्मा, महासम्मेलन के कोषाध्यक्ष वैद्य श्री गौरी लाल चानना, प्रधानसमपादक वैद्य श्री ताराचन्द शर्मा, राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति डा० रामहर्ष सिंह आदि उपस्थित थे । बिरला सभागार जिसमें 1250 लोगों के बैठने की व्यवस्था है, ऊपर से नीचे तक खचाखच भरा हुआ था । सारे देश से प्राय: एक हजार प्रतिनिधि इस समारोह में सम्मिलित हुए । अपने देश के अतिरिक्त नेपाल के भी अनेक प्रतिनिधि महासम्मेलन में उपस्थित थे ।

श्री अजय शर्मा, स्वागताध्यक्ष, अध्यक्ष, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०, नैनी, इलाहाबाद जो इस महाधिवेशन के स्वागताध्यक्ष हैं, उन्होंने महामहिम उपराष्ट्रपति जी, मंचासीन समस्त विद्वानों एवं महासम्मेलन के सारे देश से एकत्रित प्रतिनिधियों एवं उपस्थित लोगों का स्वागत करते हुए आयुर्वेदीय औषधि निर्माण के क्षेत्र में आ रही कठिनाइयों का संक्षेप में उल्लेख किया और यथाशीघ्र दूर करने आ आह्वान किया ।

महाधिवेशन के इस समारोह में एक वृहद स्मारिका का प्रकाशन डा० रामहर्ष सिंह के प्रधान सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ जिसका विमोचन महामहिम उपराष्ट्रपति श्री भैरों सिंह जी शेखावत के करकमलों से सम्पन्न हुआ । आयुर्वेद के क्षेत्र में अति विशिष्ट योगदान देने वाले निम्नांकित विद्वानों को आयुर्वेद महर्षि की उपाधि से भी अलंकृत किया गया -

1. डा०पी.एन.वी. कुरूप, नई दिल्ली
   पूर्व कुलपति, गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर
2. वैद्य श्री दयाराम अवस्थी, लखनऊ
   पूर्व विद्यापीठाध्यक्ष
3. वैद्य श्री मुरारि मिश्र, जयपुर
   पूर्व प्राचार्य, श्री जगदम्बा आयुर्वेद महाविद्यालय

निम्नांकित आयुर्वेद के विशिष्ट विद्वानों को आयुर्वेद पीयूषपाणि की उपाधि से भी सम्मानित किया गया -

1. वैद्य श्री श्रीराम शर्मा, मुम्बई
2. पद्मश्री डा० पी.के. वारियर, कोट्टाकल
3. प्रो. रामहर्ष सिंह
   कुलपति, राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जोधपुर
4. पद्मश्री वैद्य सुरेश चतुर्वेदी, मुम्बई ।

आयुर्वेदीय औषधि निर्माण के क्षेत्र में विशिष्ट योगदान के लिए निम्नांकित औषधि निर्माताओं को नागार्जुन अवार्ड से सम्मानित किया गया -

1. श्री अजय शर्मा
   अध्यक्ष, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि., नैनी, इलाहाबाद
2. श्री रणजीत पुराणिक
   मुख्य कार्यकारी, श्री धूतपापेश्वर लि०, मुम्बई

महासम्मेलनाध्यक्ष पद्मश्री वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा ने महासम्मेलन द्वारा आयुर्वेद के विकास के लिए किये जा रहे कुछ विशिष्ट उपलब्धियों का वर्णन किया । भारतीय सेना की सेवाओं के लिए आयुर्वेदीय औषधालय की स्थापना, भारत सरकार में स्वतंत्र आयुष विभाग की स्थापना और उसके बजट में निरन्तर अभिवृद्धि, दिल्ली में आयुर्वेद का एक अखिल भारतीय आयुर्वेद संस्थान की स्थापना एवं 6 नये खुलने वाले अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थानों में आयुर्वेद का भी विभाग होने का निश्चय आदि बातों को उन्होंने सभा के समक्ष प्रस्तुत किया और महामहिम उपराष्ट्रपति जी से आयुर्वेद को और अधिक समर्थन देने के लिए अनुरोध किया ।

महामहिम उपराष्ट्रपति जी ने अपने उद्घाटन भाषण में आयुर्वेद को न केवल अपने देश में अपितु समस्त विश्व में बढ़ रहे आकर्षण का उल्लेख करते हुए वैद्यों को आयुर्वेद निष्ट बनकर आयुर्वेदीय सिद्धान्तों एवं औषधियों के माध्यम से विश्व के पीड़ित मानवता को रोग मुक्त करने का आह्वान किया । कुछ आयुर्वेदीय चिकित्सकों द्वारा एलोपैथी की दवाओं का प्रयोग पर उन्होंने चिन्ता जाहिर की और अपनी पद्धति पर दृढ़ रहकर असाध्य रोगों का भी निवारण करने पर जोर दिया ।

कैन्सर आदि अनेक असाध्य रोगों का आज किसी भी पद्धति में सफल इलाज नहीं है । आयुर्वेदज्ञ यदि चाहें तो ऐसे असाध्य रोगों का भी इलाज ढूंढ़ने में समर्थ हो सकते हैं । आयुर्वेदीय दवाओं के प्रमाणीकरण की आवश्यकता को बताते हुए उन्होंने विदेशों में आयुर्वेदीय औषधियों के विषय में हो रहे दुष्प्रचार पर ज्यादा ध्यान देते हुए आयुर्वेदीय शुद्ध दवाओं के निर्माण पर जोर दिया और सरकार के साथ अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन को इस कार्य के लिए आगे आने का आह्वाहन किया ।

राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के महामंत्री एवं 57वें महाधिवेशन के स्वागत मंत्री वैद्य श्री राम प्रसाद मिश्र ने धन्यवाद ज्ञापन किया ।

28 सितम्बर, 2005 को प्रातः 8.30 बजे से महासम्मेलन का खुलाधिवेशन प्रारम्भ हुआ जिसमें पिछले महाधिवेशन से अब सम्पन्न कार्यों का प्रतिवेदन प्रधानमंत्री वैद्य श्री शिव कुमार मिश्र ने प्रस्तुत किया । विद्यापीठ मंत्री के अनुपस्थित रहने के कारण वैद्य श्री ताराचन्द्र शर्मा, प्रधान सम्पादक, आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका ने विद्यापीठ मंत्री की रिपोर्ट प्रस्तुत की । महासम्मेलन के सदस्यों के करतल ध्वनि द्वारा इन प्रतिवेदनों की स्वीकृति दी । इस अवसर पर महासम्मेलन द्वारा प्रस्तुत तथा महासम्मेलन के सारे देश के सदस्यों से प्राप्त विभिन्न प्रस्तावों पर खुले अधिवेशन में विचार किया गया और प्रस्तावों को उसी रूप में अथवा संशोधन के साथ स्वीकार किया गया ।

महाधिवेशन में उपस्थित अनेक सदस्यों ने महासम्मेलन को सम्पुष्ट करने तथा आयुर्वेद की उन्नति के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत किये ।

11 बजे खुले अधिवेशन का कार्यक्रम स्थगित कर आयुर्वेद शिक्षा सम्मेलन एवं वैज्ञानिक विचार गोष्ठी पर उद्घाटन सत्र प्रारम्भ हुआ । राजस्थान के राज्यपाल महामहिम श्रीमति प्रतिभा पाटिल ने इस समारोह का उद्घाटन किया। राजस्थान के पूर्व मुख्यमंत्री एवं अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी के महासचिव माननीय श्री अशोक गहलोत ने इस उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की । वैद्य श्री शिव कुमार मिश्र, नवनिर्वाचित विद्यापीठध्यक्ष ने विद्यापीठ का कार्यभार सम्भाला तथा शिक्षा एवं अनुसंधान की प्राथमिकताओं पर अपने विचार व्यक्त करते हुए भविष्य में विद्यापीठ के कार्यों को नयी दिशा प्रदान करने से सम्बन्धी कुछ सुझाव प्रस्तुत किये ।

इस अवसर पर अपने उद्घाटन भाषण में महामहिम राज्यपाल श्रीमती प्रतिभा पाटिल ने आयुर्वेद के जीवन दर्शन स्वरूप का विस्तार से विवेचन करते हुए आयुर्वेद को पुनः न केवल अपने देश में अपितु विश्व में मुख्य चिकित्सा पद्धति का स्थान दिये जाने की आवश्यकता पर बल दिया। एलोपैथी में हो रहे निरन्तर अनुसंधान की चर्चा के

साथ उन्होंने आयुर्वेद में भी तेजी से अनुसंधान करने पर जोर दिया ।

माननीय श्री अशोक गहलोत ने उनके कार्यक्रम में राजस्थान में हुए आयुर्वेद की प्रगति को बताया । राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए सभागार में उपस्थित सभी प्रतिनिधियों ने जोरदार करतल ध्वनि से उनका स्वागत एवं अभिवादन किया ।

वैद्य श्री राम प्रसाद मिश्र, स्वागत मंत्री ने माननीया श्रीमती प्रतिभा पाटिल एवं माननीय श्री अशोक गहलोत तथा मंचासीन सभी विद्वानों एवं उपस्थित प्रतिनिधियों के सहयोग के लिए आभार व्यक्त किया ।

भोजनोपरांत 2 बजे से महासम्मेलन का खुला अधिवेशन पुनः प्रारम्भ हुआ जिसमें अनेक विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये और अन्त में कार्यक्रम के अध्यक्ष वैद्य श्री श्रीराम शर्मा ने समस्त क्रियाशालाओं की संक्षिप्त प्रस्तुति के साथ समापन भाषण दिया ।

इसके बाद वैज्ञानिक गोष्ठी का कार्य प्रारम्भ हुआ जिसकी अध्यक्षता काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पूर्व आचार्य वैद्य श्री दामोदर जोशी ने की । इस वैज्ञानिक सत्र में पहला प्रमुख वैज्ञानिक शोध पत्र राजस्थान आयुर्वेद विश्वविद्यालय के कुलपति श्री रामहर्ष सिंह जी ने आयुर्वेदिक औषधियों का निर्विष प्रभाव पर व्याख्यान प्रस्तुत किया । तदुपरांत धूतपापेश्वर के डा० शैलेष नाडकर्णी, श्री एम.एस. दसौरा, प्रो. लक्ष्मीकान्त द्विवेदी, डाबर के श्री कुलवन्त राज कोहली, श्री अजय कुमार शर्मा, प्रोफेसर, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान आदि अनेक विद्वानों ने इस विचार गोष्ठी में अपने शोध पत्र प्रस्तुत किये ।

इस प्रकार दो दिनों का अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का 57वाँ महाधिवेशन हर्ष और उल्लास के वातावरण में सम्पन्न हुआ ।

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

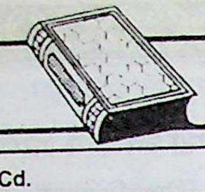

॥ बैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन ॥

P.Cd.		भाषा	
9801	अभिनव शरीर	हिन्दी	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9804	अभिनव शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9807	अग्न्यतिसार संग्रहणी-कोष्ठवात प्रकरणानि	हिन्दी	
9810	अम्लपित्त प्रकरण	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9813	AROGYA PRAKASH	ENG.	
9816	आरोग्य प्रकाश	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9819	अष्टांग संग्रह की वनौषधियाँ एवं वर्गीकरण	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9820	अष्टांग संग्रह	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9821	बिहार की वनस्पतियाँ	हिन्दी	
9822	अष्टांग संग्रह (शरीर, निदान चिकित्साकल्पसिद्ध स्थान)	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9825	अष्टांग संग्रह सूत्र स्थान	हिन्दी	पं. लालचन्द्र शास्त्री
9828	अष्टांग संग्रह उत्तरस्थान	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9831	आत्ययिक चिकित्सा	हिन्दी	
9834	औषधि विज्ञान शास्त्र	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9835	आयुर्वेद अनुसंधान दर्शिका	हिन्दी	
9837	आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान	हिन्दी	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे
9840	आयुर्वेद सार संग्रह	हिन्दी	संकलित
9843	आयुर्वेदीय औषध सेवन विधि	हिन्दी	संकलित
9846	आयुर्वेदीय हितोपदेश	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9849	आयुर्वेदीय क्रिया शरीर	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9852	आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9855	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9858	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9861	BAIDYANATH BOOK OF AYURVED KNOWLEDGE	ENG.	
9864	BAIDYANATH THERAPEUTIC GUIDE	ENG.	PT. DURGA PD.'SHARMA
9867	BASIC PRINCIPLE OF AYURVEDA RESEARCH	ENG.	SRI D.P. SHARMA AND R.P. SHAH
9868	बिहारी के आदिवासी एवं जड़ी बूटियाँ	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9869	उत्तराखंड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9870	भारतीय रस शास्त्र	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9871	बेदी वनस्पति कोष	हिन्दी	रामेश बेदी
9873	चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन	हिन्दी	डा. ज्योतिमित्र आचार्य
9876	चर्मरोग निर्देशिका	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9879	DIGESATION & METABOLISM IN AYURVED	ENG.	DR. C. DWARKANATH
9882	द्रव्यगुण विज्ञानम् (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9885	द्रव्यगुण विज्ञानम् (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9888	किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9891	मानष रोग विज्ञान	हिन्दी	श्री बालकृष्णजी अमरजी पाठक
9894	MEDICINAL FLORA OF GARHWAL HIMALAYAS	ENG.	DR. MAYARAM UNIYAL
9897	मोटापन कम करने के उपाय	हिन्दी	श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
9901	नेत्र चिकित्सा	संस्कृत	डा. बालकृष्णा शिवराम मुंजे
9904	नेत्र रोग विज्ञान	हिन्दी	
9907	निदान चिकित्सा हस्तामलक (प्रथम खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9910	निदान चिकित्सा हस्तामलक (द्वितीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9913	निदान चिकित्सा हस्तामलक (तृतीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9916	निदान चिकित्सा हस्तामलक (चतुर्थ खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजीत राय देसाई
9919	पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9922	पारद विज्ञानयम	हिन्दी	वैद्य वासुदेव मूलशंकर द्विवेदी
9925	परिषधं शब्दार्थ शरीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9928	PROBLEMS OF AYURVEDIC RESEARCH	ENG.	SRI S.K. SHASTRI 9931
	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञाणम् (पुस्तकालय संस्करण)	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9934	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञाणम् (छात्र संस्करण)		
9937	पंडित रामदयाल जोशी स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	दिनकर पाण्डेय
9940	रस-भस्म सेवन विधि	हिन्दी	पं. वेनी प्रसाद वैद्य
9943	संक्रामक रोग विज्ञान	हिन्दी	कविराज बालकराम शुक्ल
9946	SCIENCE AND PHILOSOPHY OF INDIAN MEDICINES	ENG.	SRI K.K. UDUPPA
9949	शारंगधर संहिता	हिन्दी	आचार्य राधाकृष्ण पराशर
9952	सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9953	शरीर क्रिया विज्ञान	हिन्दी	
9955	THERAPEUTIC GUIDE TO AYURVEDIC MEDICINES	ENG.	PT. RAMRAKSHA PATHAK
9958	TREATISE ON 30 BAID. AYUR. PRODUCTS	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9961	त्रिदोश तत्व-विमर्श	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9964	यूनानी चिकित्सा सार	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9967	यूनानी सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9970	उपचार पद्धति और पथ्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9973	वैद्य सहचर	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9976	वनौषधि शतक	हिन्दी	पं. दुर्गा प्रसाद शर्मा
9979	यादव स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9982	यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश	हिन्दी	डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा

बैद्यनाथ
सितोपलादि चूर्ण
पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

सम्पादकीय

श्रवण-यंत्र के लिए राष्ट्रपति को बधाई

भारत के राष्ट्रपति, श्री ए.पी.जे. कलाम ने वस्तुतः अपना जीवन मानव-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया है । उनकी प्रेरणा से रक्षा अनुसंधान एवं विकास संगठन (डीआरडीओ) एवं देश के शीर्ष चिकित्सा विज्ञानियों ने मिलकर श्रवण-यंत्र के निर्माणं में सफलता पायी है । यद्यपि श्रवण-यंत्र बाजार में सैकड़ों प्रकार के उपलब्ध हैं, लेकिन यह श्रवण-यंत्र सबों से पृथक् है । इस यंत्र को रोगी की खोपड़ी में प्रत्यारोपित किया जाता है जिसका सम्बन्ध मस्तिष्क से होता है। यह यंत्र विद्युत क्रिया के द्वारा अपना संदेश मस्तिष्क को प्रेषित करता है । इस यंत्र के निर्माण में स्वदेशी उपकरणों का प्रयोग किया गया है । अभी तक जो विदेशी श्रवण-यंत्र उपलब्ध हैं, उसकी कीमत बाजार में 5 लाख से 9.50 लाख के मध्य है । इस कीमत के अतिरिक्त अस्पताल, चिकित्सक एवं औषधि का खर्च है । गरीब रोगी इसका लाभ नहीं उठा सकते हैं । जो स्वदेशी-यंत्र तैयार किया जा रहा है, उसकी कीमत वर्तमान कीमत से पांच गुनी कम कीमत होगी । इस यंत्र की विशेषता यह है कि इससे जन्मजात बहरे भी सुन सकते हैं । बच्चों एवं वयस्कों में यह समान से रूप से कार्य कर सकता है । शीघ्र ही इस यंत्र का प्रयोग सर्वप्रथम जानवरों पर किया जायगा । यदि प्रयोग सफल रहा, तो बाजार में यह शीघ्र ही उपलब्ध हो ज़ायेगा ।

अनुवांशिक तरीकों से संशोधित पदार्थ से स्वास्थ्य को खतरा

देश में अभी तरह-तरह के प्रयोग खाद्य पदार्थों पर हो रहे हैं । फल-सब्जी-अनाज ज्यादा से ज्यादा पैदा करने की होड़ में वैज्ञानिकों ने आरोग्य-पहलुओं पर ध्यान नहीं दिया है । बीटी कपास के उत्पादन का विरोध सम्पूर्ण देश में हो रहा है । इसके बावजूद सरकार किसानों को इसके उत्पादन के लिए प्रोत्साहित कर रही है । मध्यप्रदेश के निमड क्षेत्र में किसानों ने इसका उत्पादन प्रारम्भ कर दिया है, किन्तु इसके बीजों को खाने से जानवर मर रहे हैं । किसानों को भी एलर्जी हो जाती है । वैज्ञानिकों के अनुसार इसके बीजों से त्वचा रोग काफी तैजी से फैल रहे हैं ।

बिहार में नयी सरकार एवं आयुर्वेद

बिहार राज्य देश का एक महत्वपूर्ण राज्य है । अभी नवम्बर माह में जो चुनाव के नतीजे आये हैं, वे चौंकाने वाले हैं । नयी सरकार का निर्माण भी हो गया है । जनता को इससे काफी अपेक्षायें हैं । आयुर्वेद को भी नयी सरकार से अपेक्षा है । विगत 15 वर्षों में आयुर्वेद के क्षेत्र में प्रगति के बजाय ह्रास हुआ है । आयुर्वेद औषधालयों में औषधियों का अभाव रहता है । महाविद्यालयों एवं अस्पतालों में प्राध्यापक एवं शिक्षक नहीं है । अनेक महाविद्यालयों की मान्यता समाप्त हो गयी है । जो बचे भी हैं, उनपर तलवार लटक रही है । इस दयनीय स्थिति से निपटने में सरकार कारगर कदम उठा सकती है। हम आशा करते हैं कि नयी सरकार आयुर्वेद के उत्थान एवं विकास के लिए उचित कदम उठायेगी।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-73

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

सुश्रुत संहिता

विभिन्न विश्लेषणों से यह निष्कर्ष लगभग निकाला जा सकता है कि सुश्रुत संहिता के मूल लेखक सुश्रुत प्रथम या आद्य सुश्रुत या वृद्ध सुश्रुत थे । अर्थात् आशय यह है कि सुश्रुत संहिता केवल एक विद्वान की रचना नहीं है । ऐसे भी 'संहिता' शब्द ही इस बात का प्रमाण है कि ग्रन्थ का प्रणयन केवल एक विद्वान ने नहीं किया है । पं० हेमराज शर्मा[1] जी के इन शब्दों में तथ्य प्रतीत होता है कि ''बहुत से प्राचीन ग्रन्थों के विलोप के कारण क्षतिग्रस्त आयुर्वेद की बची हुयी महिमा को स्थिर रखने के लिए अत्यन्त प्राचीन काल से आत्रेय तथा **'धन्वन्तरि की संहिताएं'** क्रमशः **चरक तथा सुश्रुत संहिता** नाम से प्रसिद्ध आज भी मिलती हैं ।'' उन्होंने पुनः इसी पुस्तक में लिखा है कि **'सुश्रुत संहिता'** में आर्ष रचना के दिखाई देने, **बौद्ध छाया न दीखने**, रस धातु आदि औषधियों के प्रायः न मिलने, शौनक, कृतवीर्य, पाराशर्य, मार्कण्डेय, सुभूति गौतम आदि कुछ प्राचीन आचार्यों के ही उल्लेख होने तथा दिवोदास और सुश्रुत शब्द के स्वर प्रक्रिया में उदाहरणस्वरूप में मिलने से सुश्रुताचार्य प्राचीन ही प्रतीत होता है । ''श्री अत्रिदेव विद्यालंकार[2] इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि ''सुश्रुत में बौद्ध विचार नहीं है ।'' उनके अनुसार सुश्रुत में ''भिक्षु संघाटी'' (उ०अ० 33/6) शब्द आता है । उन्होंने इस शब्द के प्रयोग के पीछे निम्न तर्क प्रस्तुत किया है -

1. डल्हण ने भिक्षु का अर्थ शाक्य भिक्षु ही किया है, संघाटी भिक्षुओं की दोहरी चादर होती है, जिसे वे ऊपर से ओढ़ते हैं । इसलिए इसका समय बौद्धकाल के अनन्तर ही निश्चित होता है ।
2. साथ ही इसमें राम और कृष्ण का नाम आता है (चि. अ. 30) । इससे भी स्पष्ट है कि जिस समय अवतार रूप में देवतापूजा प्रारम्भ हो गयी थी, उस समय इसका निर्माण हुआ है । केवल नाम से निर्णय करने पर सही निश्चय नहीं होता । इसलिए धन्वन्तरि दिवोदास का समय ही सुश्रुत का समय है, जो कि ईसा की दूसरी या तीसरी शताब्दी सम्भावित है ।

यदि हम यह मानकर चलें कि सुश्रुत संहिता का प्रतिसंस्कार विभिन्न विद्वानों ने किया है (जो सत्य प्रतीत होता है) तो यह सम्भव है कि प्रतिसंस्कर्त्ता ने विवादास्पद शब्द प्रतिसंस्कार के समय जोड़े हों । इस शब्द का प्रयोग उत्तरतंत्र में हुआ है । कुछ विद्वानों के अनुसार यह अध्याय उत्तर संहिता का मूल अध्याय नहीं है । ऐसे भी 'भिक्षु संघाटी' शब्द की यह व्याख्या डल्हण की है । भाषा-विज्ञान के इतिहास के अनुसार भिक्षु और संघाती शब्द पृथक-पृथक रूप में संस्कृत भाषा में बौद्ध-काल के पूर्व भी प्रयोग होते आये हैं । भिक्षु का अर्थ यदि बौद्ध भिक्षु से है, तो भिक्षु का अर्थ भिखारी और ब्राह्मणों के जीवन के चौथेपन से भी है । इसी तरह संघाती का अर्थ यदि चीवर से है, तो पुराने फटे-पुराने कपड़ों से भी है । केवल कुछ शब्दों के अर्थ के आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित प्रतीत नहीं होता है ।

अतः हमारे दृष्टिकोण से लगभग यह तय है कि सुश्रुत संहिता विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये प्रतिसंस्कार का प्रतिफल है और इसके मूल लेखक आद्य सुश्रुत हैं जो बौद्धकाल से भी प्राचीन हैं । आचार्य प्रियव्रत शर्मा[3] ने भी निम्नलिखित आधार पर लिखा है कि ''सुश्रुत का आदि संस्करण तो चरक संहिता के पूर्व था, किन्तु दूसरा संस्करण (प्रति संस्कृत) उसके बाद आया है'':-

1. अनेक वचन दोनों संहिताओं में समान रूप से मिलते हैं ।
2. अनेक समान तथ्य शब्दान्तर से दोनों संहिताओं में वर्णित हैं ।
3. सुश्रुत संहिता में चरक संहिता के अनेक मतों को पूर्वपक्ष के रूप में उपस्थित कर उनका खण्डन किया गया है ।
4. चरक संहिता में धान्वन्तर सम्प्रदाय का उल्लेख अनेक स्थलों में सादर किया गया है ।

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

सुश्रुत संहिता के अनुसार इसमें 120 अध्याय हैं और ये एक सौ बीस अध्याय पांच स्थान में विभक्त हैं । यथा - सूत्र स्थान, निदान स्थान, शारीर स्थान, चिकित्सा स्थान और कल्प स्थान । दिलचस्प बात यह है कि इसमें उत्तर तंत्र का नाम नहीं है । सम्भवत: यही कारण है कि उत्तरतंत्र को प्रतिसंस्कर्त्ता या अन्य विद्वानों के द्वारा जोड़ा हुआ मानते हैं । आचार्य ज्योतिर्मित्र[5] के द्वारा इस सम्बन्ध में दिये गये तर्क सार्थक प्रतीत होते हैं :-

1. यदि उत्तरतंत्र स्थान होता तो उसका नाम उत्तरतंत्र न होकर उत्तरस्थान होता ।
2. इसमें शालाक्य, बाल और काय चिकित्सा के रोगों का वर्णन है जबकि सुश्रुत स्वत: इस ग्रन्थ का शल्यशास्त्र की प्रमुखता से उल्लेख करता है ।
3. इस विभाग में पद्य ही पद्य हैं । केवल 64 और 65 अध्यायों में थोड़ा-सा गद्य आ गया है, जो कि अन्यत्र से लिया गया प्रतीत होता है और तंत्रयुक्तियां 65वें अध्याय में वर्णित तो साक्षात् कौटिल्य अर्थशास्त्र से ली गयी हैं ।
4. आयुर्वेदीय संहिताओं में यह क्रम रहा है कि वे सभी 120 अध्यायों में पूर्ण हों ।

सूत्र स्थान - इसमें 46 अध्याय हैं । प्रथम अध्याय में **वेदोत्पत्ति, औपधेनव, सुश्रुत आदि ऋषियों** का भगवान् धन्वन्तरि के पास अध्ययन के लिए जाना, आयुर्वेद के आठ अंगों का जिक्र, शल्य, शालाक्य, काय चिकित्सा, भूतविद्या, कौमारभृत्य, अगदतंत्र, रसायन तंत्र एवं वाजीकरण तंत्र के लक्षणों एवं परिभाषाओं का संक्षिप्त वर्णन, आयुर्वेद के उपदेश, प्रयोजन, निरूक्ति, प्रार्थना, शल्यतंत्र की विशेषता, आयुर्वेद की गुरु परम्परा, धन्वन्तरि का आत्म परिचय, अधिष्ठान पुरुष, व्याधियों के प्रकार, रोगों के आश्रय, निग्रह, संशोधन, निग्रह, संशमन, आहार, आचार, औषधियों के प्रकार, जांगम औषधियों के चिकित्सा उपयोगी अवयव, पार्थिव औषधियां, कालकृत औषधि निरूपण एवं प्रयोजन, शारीरिक रोगों के प्रकोप तथा शान्ति के कारण, पुरुष, व्याधि, औषध, क्रियाकाल भी संक्षिप्त व्याख्या, चिकित्सा शास्त्र के बीज, सुश्रुत के 120 अध्याय और 5 स्थान, सुश्रुत से लौकिक एवं पारलौकिक-दोनों प्रकार के सुखों के वर्णनों का जिक्र है । प्रथम अध्याय का नाम वेदोत्पत्ति अध्याय है ।

द्वितीय अध्याय का नाम **शिष्योपनयनीय अध्याय** है । इसमें इस अध्याय का अवतरण, शिष्य परीक्षा, दीक्षा-विधि, आयुर्वेद अध्ययन के अधिकारी, शिष्य के कर्त्तव्य, रोगी परिचर्या के उपदेश एवं अनध्याय काल का वर्णन किया है ।

तृतीय अध्याय का नाम अध्ययन सम्प्रदानीय है । इसमें सूत्र स्थान में 46 अध्याय, निदान स्थान में 16, शारीर स्थान में 10, चिकित्सा स्थान में 40, कल्प में 8 एवं उत्तरस्थान में 66 अध्याय (तदुत्तरं षट्षष्टि:) हैं (एक सौ बीस अध्यायों में उत्तर स्थान के अध्यायों की गिनती नहीं है । यह वर्णन सूत्र स्थान के 1/39-40 के विपरीत है । इसमें 120 अध्याय पांच स्थानों में विभक्त किये गये हैं ।) इस अध्याय में विभिन्न अध्यायों में वर्णित रोगों के नाम, निदान, शारीर-रचना, चिकित्सा, कल्प, उत्तर, शालाक्य, कुमार तंत्र, काय-चिकित्सा, भूतविद्या, तंत्रभूषण आदि का वर्णन है । उत्तर तंत्र के नाम एवं कारण, आयुर्वेद के आठ अंग, वैद्यों को मारने का कारण, शास्त्र को न जानने वाला वैद्य, आयुर्वेद के पाठ करने की विधि एवं अध्ययन के समय शिष्य के कर्त्तव्य आदि विषयों का जिक्र है ।

चतुर्थ अध्याय का नाम **प्रभाषणीय अध्याय** है । इसमें व्याख्या का प्रयोजन, आवश्यकता, शास्त्रों को जानने का उपाय, वैद्य शब्द का अधिकारी एवं अन्य शब्द तंत्र शामिल हैं ।

पंचम अध्याय का नाम **अग्रोपहरणीय अध्याय** है । इसमें अग्रोपहरणीय अध्याय की व्याख्या, कर्म एवं शस्त्र कर्म के प्रकार, शस्त्रकर्म के पूर्व योग्य उपकरण, शास्त्र क्रिया का उपदेश, व्रण की आकृति, वैद्य के गुण, व्रण, छेदन, धूपन, धूपन द्रव्य, रक्षा कर्म, आहार-विहार, कषाय, लेपन, बंधन आहार, विहार-विधि, तीव्र वेदना को शान्त करने का उपाय, व्रण-रोपण आदि विषयों का समावेश है ।

छठे अध्याय का नाम, **ऋतुचर्या अध्याय** हैं । ऋतुओं में आचरण, काल की व्याख्या, काल-विभाग, ऋतु विभाग, दक्षिणायन और उत्तरायन विभाग, युग-वर्णन,

वायु-पालन, वातादि दोषों के संचय के कारण, प्रकुपित दोषों को दूर करने का उपदेश, वात-पित्तादि दोषों की शान्ति, सांवत्सरिक विधि, ऋतुओं में विपरीतता, महामारी, जनपद का नष्ट होना, सामान्य चिकित्सा, अव्यापन्न ऋतुओं के लक्षण, रोगों के उत्पन्न होने के पूर्व दोषों का शमन आदि विषय शामिल हैं।

सातवें अध्याय का नाम **यंत्र विधि अध्याय** है। इसमें यंत्र-विधि का वर्णन, यंत्र की संख्या, परिभाषा, भेद, बनावट, उपसंकार आदि विषय शामिल हैं।

आठवें अध्याय का नाम **'शस्त्रावचारणीय'** अध्याय है। इसमें शस्त्रों की संख्या, उपयोग, गुण-दोष, अष्टविध में धार का निश्चय, बडिश तथा एषणी यंत्र की धार, पायना, धार की पहचान, शस्त्रों को तेज करने का उपाय, अनुशास्त्र का उपयोग एवं शस्त्रों का परिचय आदि विषय शामिल हैं।

नवम् अध्याय का नाम **योग्यासूत्रीय अध्याय** है। इसमें इसकी व्याख्या, कर्माभ्यास, छेदन के सभी भेदों का वर्णन एवं उपसंहार शामिल है।

दशम् अध्याय का नाम **विशिखानु-प्रवेशनीय** अध्याय है। इसमें शास्त्र कर्म के लिए किस तरह वैद्यों को प्रवेश करना चाहिए, रोग जानने के उपाय एवं प्रकार, साध्य रोगों की चिकित्सा, वैद्यों के नियम आदि विषयों का समावेश है।

एकादश अध्याय का **क्षारपाक विधि अध्याय** हैं। इसमें इसकी व्याख्या, क्षार निर्युक्ति, गुण-कर्म, क्षार के प्रकार, प्रतिसारणीय, पानीय क्षार, क्षार-निर्माण विधि, मृदु, मध्यम तथा तीक्ष्ण क्षार, सम्यक् दग्ध होने के लक्षण तथा उसके पश्चात् कर्म, अम्ल से क्षार की शान्ति, सम्यक्, कम एवं अति जलने पर क्षार-कर्म, प्रदेश विशेष से निषेध, साध्य रोगों में किन अवस्थाओं में क्षार-कर्म सफल नहीं होता है आदि विषयों का समावेश है।

द्वादश अध्याय का नाम **अग्निकर्म विधि अध्याय** है। इसमें अग्निकर्म की व्याख्या, श्रेष्ठता, दहन कार्य के साधन, प्रकार, किस ऋतु में अग्नि-कर्म करना चाहिए, शिर के रोगों तथा अधिमन्थ, किनमें अग्निकर्म करना चाहिए, प्रवृत्ति-निवृत्ति, अन्य प्रकार से जले हुए व्यक्तियों के लक्षण, पीड़ित व्यक्तियों के लक्षण, वमन, उष्णवात आदि विषयों का समावेश है।

त्रयोदश अध्याय का नाम **जलौकावचारणीय** अध्याय है। इसमें इसकी व्याख्या, जलायु शब्द की निर्युक्ति, प्रकार; विष एवं निर्विष युक्त जौंक, जौंक पालने के उपाय, जौंक रक्त ले रही है या नहीं - इसको जानने का उपाय, व्रण-चिकित्सा आदि विषयों का इसमें समावेश है।

चतुर्दश अध्याय का नाम **शोणितवर्णनीय** अध्याय है। इसमें इसकी व्याख्या, रस-वर्णन, रक्त तथा आर्त्तव की उत्पत्ति, भेद, शुक्र की उत्पत्ति, रस शब्द की निरूक्ति, रस का अवस्थान काल, वाजीकरण औषधियों का शीघ्र शुक्र विरेचन, बालकों की शुक्र अदर्शन में युक्ति, अन्न रस का बुढ़ापे में पुष्ट न करना, धातु शब्द निरूक्ति, विकृत शोणित का दोष-भेद से लक्षण, शुद्ध शोणित का वर्णन, विस्राव्य रक्तों की व्याख्या, रक्तमोक्षण के अयोग्य व्यक्ति, शस्त्र विस्रावण के प्रकार, रक्त के अति उपयोग और उसके उपद्रव, रक्त विस्रावण योग्य काल, रक्त शुद्धि के लक्षण, रक्त के सम्यक् प्रवाह के उपाय, रक्त के अधिक प्रवाह को रोक के योग, रक्त विस्रावण के चार उपाय एवं रक्तावरोध के पश्चात् आदि विषयों का समावेश है।

पन्द्रहवें अध्याय का नाम **दोषधातुमलक्षय वृद्धि विज्ञान** है। इसमें इसकी व्याख्या, वातादि कर्म, धातु रक्षा के उपदेश, क्षय की चिकित्सा, रसक्षय, मलक्षय, आर्त्तवक्षय, बढ़े हुए दोष धातु मलों के लक्षण और उनकी चिकित्सा बल और बलक्षय के लक्षण, ओज का क्षय, ओज के क्षय एवं चिकित्सा, स्थूलता और कृशता की चिकित्सा एवं मध्य की श्रेष्ठता का जिक्र है।

सोलहवें अध्याय का नाम **कर्णव्यधबन्धन विधि अध्याय** है। इसमें कर्ण बेधन की व्याख्या, दोष, चिकित्सा, पश्चात् कर्म, कानों को लम्बा करना, कानों को जोड़ने की विधि, पन्द्रह कर्ण बन्ध्या कृतियां, कपाट सन्धिक तथा अर्घकपाट सन्धिक बन्धन, कर्णपाली को बनाना, कर्ण सन्धि, कर्ण बन्ध के समय परित्याग करने योग्य बातें संधान न करने के कारण, अभ्यंग, उद्वर्तन, असंख्य कर्ण बन्धन,

माली के उपद्रवों के नाम एवं लक्षण, श्याव रोग, नासिका का शल्य कर्म एवं ओष्ठ सन्धान विधि शामिल है ।

सप्तदश अध्याय का नाम **आमपक्वैपनीय अध्याय** है । इसमें इसकी व्याख्या, शोथ के लक्षण, प्रकार, आम शोथ के पकने के लक्षण, छेदन, शस्त्रकर्म के पूर्व कर्म, कष्टसाध्य शोथ, पक्वशोध का चिकित्सासूत्र आदि विषयों का समावेश है ।

अष्टादश अध्याय का नाम **व्रणालेपन बन्धविधि अध्याय** है । इसमें इसकी व्याख्या, आलेप के प्रकार, प्रमाण, प्रतिषेध, कब करना चाहिए, व्रण बन्धन द्रव्यों की प्रधानता, पट्टियां, व्रण स्थान-भेद, प्रकार, किन अवस्थाओं में बन्धन नहीं बांधना चाहिए, कब बांधना चाहिए, उपसंहार सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

उन्नीसवें अध्याय का नाम **व्रणितो पासनीय अध्याय** है । इसमें व्रणी पुरुष के लिए क्या व्यवस्था करनी चाहिए, प्रशस्त प्रदेश में बने घर का लाभ, व्रणी, पुरुष को कभी दिन में नहीं सोना चाहिए, दिन में नहीं सोना, आहार का परित्याग, आधिदैविक रक्षा, धूप देने का नियम, औषधियों को सिर पर धारण करना, सेवन-विधि आदि विषयों का समावेश है ।

बीसवें अध्याय का नाम **हिताहितीय अध्याय है** । इसमें द्रव्य-हितकारी एवं अहितकारी, आहार-विहार, अग्नि आदि पदार्थों को देखकर एकान्त अहित पदार्थों का उपयोग, अन्य संयोगरूपी अहितकारी द्रव्य, कर्म विरुद्ध द्रव्य, मान विरुद्ध द्रव्य, रस, वीर्य, विपाक विरुद्ध द्रव्य, दो का प्रकोपक एवं शान्त करने वाला द्रव्य, रस आदि धातुओं में विकार, चिकित्सा-सूत्र, किन अवस्थाओं में विरुद्ध भोजन निष्फल हो जाता है, दिशा के योग से वायु की हितकारिता और अहितकारिता आदि का वर्णन है ।

इक्सीसवें अध्याय का नाम **व्रण-प्रश्न अध्याय** है । इस अध्याय में इसकी व्याख्या, शरीर-उत्पत्ति में कारण, निरूक्ति, दोषों का स्थान, विभाग, पित्त के लक्षण, कार्य, कफ के स्थान, गुण-दोषों के प्रकोपक कारण, प्रसार, रोग की उपलब्धि, व्रण शब्द की निरूक्ति आदि विषय शामिल हैं ।

बाइसवें अध्याय का नाम **व्रणस्रावविज्ञानीय अध्याय** है । इसमें व्याख्या, व्रण के अधिष्ठान, आकृतियां, दुष्ट व्रण, त्वचा स्थित व्रण, स्राव, असाध्य स्राव, वायु के कारण, व्रणों की वेदना, पैत्तिक, कफजन्य व्रण के लक्षण, रंग आदि विषयों का समावेश है ।

तेइसवें अध्याय का नाम **कृत्याकृत्य** है । इस अध्याय में व्याख्या, अतिशय सुखसाध्यव्रण, कृच्छ्रसाध्य व्रण, व्रण का रोपण होना, याप्य गुण, याप्य का लक्षण, असाध्य रोग, शुद्ध व्रण के लक्षण, रोपण होते हुए व्रण के विकार, वात आदि दोषों का ज्वर आदि रोगों के लक्षण, सम्यग् गढ़ के लक्षण आदि विषयों का समावेश है ।

चौबीसवें अध्याय का नाम **'व्याधिमुद्देशीय अध्याय** है । इसमें व्याख्या, रोग के प्रकार, दुःख, व्याधियां, शोणित बलजाता, आगन्तुज रोग, कालबल प्रवृत्ता, रसादि धातुओं के बिकार, वात आदि दोषों का ज्वर आदि रोगों के साथ सम्बन्ध सम्बन्धित विषयों का समावेश है ।

पच्चीसवें अध्याय का नाम **अष्टविध शस्त्रकर्मीय अध्याय** है । इसमें रोग के छेदन, भेदन, लेखन, वेधन, शलाका द्वारा एषण करने योग्य रोग, स्रवण करने योग्य रोग, सीने योग्य रोग, किन अवस्थाओं में सीना नहीं चाहिए, संशोधन करने योग्य, सीने की विधि, प्रकार, सूई के भेद, सीने के पश्चात् कर्म व्यापद, वैद्यों का परित्याग, शस्त्र के अतियोग से होने वाले लक्षण, अमर्मविरुद्ध शिरा आदि के लक्षण, स्नायु-विद्ध, सन्धि-विद्ध, अस्थि-विद्ध, शिरादि मर्म विद्ध, वैद्य को रोगी की रक्षा कैसे करनी चाहिए और उसका फल आदि विषयों का समावेश है ।

छब्बीसवें अध्याय का नाम **प्रनष्टशल्य विज्ञानीय अध्याय** है । इसमें व्याख्या, शल्य के प्रकार, भेद, गति, लक्षण, त्वचा में शल्य होने पर, वात आदि दोषों से अदूपित व्रण, त्वचा में शल्य छिप जाना, सामान्य विज्ञानीय उपाय, नि:शल्य के लक्षण, अस्थिरूप लक्षण आदि विषयों का समावेश है ।

सत्ताइसवें अध्याय का नाम **'शल्यापनयनीय'** अध्याय है । इसमें व्याख्या शल्य के प्रकार, सभी प्रकार के शल्यों

को निकालने के उपाय, उत्तुण्डित मुखवाले शल्य को निकालने का उपाय, कुक्षि, वक्ष आदि के शल्य को निकालने का उपाय, पश्चात्, हृदय के समीप से शल्य निकालने का उपाय, अस्थि छिद्र में प्रविष्ट को निकालने के उपाय, कर्णवाले शल्य को निकालने का उपाय, लाख आदि वस्तु के गले में फंस जाने से उसे निकालने का उपाय, मछली का शल्य आदि निकालने का उपाय, पानी में डूबे हुए मनुष्य के पेट में से जल निकालने का उपाय, भोजन का ग्रास गले में फँस जाने पर उपाय, गला घोंटना आदि विषयों का समावेश है ।

अट्ठाइसवें अध्याय का नाम **विपरीताविपरीत व्रण विज्ञानीय अध्याय** है । इसमें व्याख्या, रिष्टलक्षण, निवारण, प्राकृतिक गन्ध, वैकृत गन्ध, किन व्रणों का परित्याग करना चाहिए , शब्द वैकृत, स्पर्श वैकृत, आकृति विशेष वैकृत, उपद्रव आदि विषयों का समावेश है ।

उनतीसवें अध्याय का नाम **विपरीता विपरीत दूत-शकुन-स्वप्न-निदर्शनीय** अध्याय है । इसमें व्याख्या, मानसिक चेष्टाओं से रोगी के शुभ-अशुभ भाव का पता लगना, चेष्टायें, वेला, नक्षत्र, तिथि, शुभ-अशुभ शकुन, शुभ तथा निन्दित वाय, स्वप्न, विफल स्वप्न, उत्तरतंत्र में पढ़े हुए रोगों के लिए अन्य स्वप्न, अशुभ स्वप्न दर्शन में चिकित्सा, शुभ स्वप्न आदि विषयों का समावेश है ।

तीसवें अध्याय का नाम **'पंचेन्द्रियार्थ विप्रतिपत्ति'** अध्याय है । इसमें अरिष्ट के लक्षण और न बचने वाले रोगी के लक्षण हैं ।

इकतीसवें अध्याय का नाम **छायाविप्रतिपत्ति** है । इसमें व्याख्या, मरसान्न रोगियों के लक्षण और मृत्यु-कारण का जिक्र है ।

बत्तीसवें अध्याय का नाम **स्वभाव विप्रतिपत्ति** अध्याय है । इसमें व्याख्या, मृत्यु के लक्षण, असाध्य लक्षण आदि विषयों का जिक्र है ।

तैतींसवें अध्याय का नाम **अवारणीय** अध्याय है । इसमें व्याख्या, उपद्रवों का लक्षण, प्रकृति से आठ **कष्ट साध्य** रोग, वैद्यों को किन रोगियों का परित्याग करना चाहिए आदि विषयों का समावेश है ।

चौत्तीसवें अध्याय का नाम **युक्तसेनीय** अध्याय है । इसमें व्याख्या, स्थावर, जङ्गम एवं कृत्रिम विषों से राजा की रक्षा, 101 साल की काल-मृत्यु, वैद्यों से पुरोहित श्रेष्ठ, राजा के व्यसनों में फंसने के कारण, चिकित्सा-कर्म की सफलता में चार कारण वस्तुएं, वैद्य, रोगी, भेषज, परिचारक के गुण आदि विषयों का समावेश है ।

पैंतीसवें अध्याय का नाम **आतुरोपक्रमणीय** अध्याय है । इस अध्याय में चिकित्सा से पूर्व रोगी की आयु की परीक्षा, दीर्घायु, मध्यम आयु एवं जघन्य आयु के लक्षण, अंग-प्रत्यंग का ज्ञान, प्रमाण एवं सार, क्रिया के लक्षण अग्नि के प्रकार, वय के प्रकार, औषध-मात्रा, देह परीक्षा, देश के प्रकार, सुख साध्य रोग आदि विषयों का समावेश है ।

छत्तीसवें अध्याय का नाम **भूमिप्रविभागीय** अध्याय है । इसमें व्याख्या, भूमिका के प्रकार, विशेष भूमि परीक्षा, गन्ध, वर्ण एवं रस से युक्त भूमि के प्रकार, औषधियों को रखने का स्थान आदि विषयों का समावेश है ।

सैंतीसवें अध्याय का नाम **मिश्रक** अध्याय है । इसमें व्याख्या, शोथ नष्ट करने के प्रलेप, लेप का संस्कार, पाचन, दारण, पीड़न एवं शोधन द्रव्य, वर्त्ति, कल्क, संशोधनधृत, तैल, शोधन चूर्ण, शोधनी रसक्रिया, धूपन, रोपण कषाय, रोपण वर्ति, कल्क, सिद्ध घृत, रोपण तैल एवं चूर्ण, रसक्रिया, प्रशस्त औषधियां, उभरे हुए मांस काटना आदि विषयों का समावेश है ।

अड़तीसवें अध्याय का नाम **द्रव्यसंग्रहणीय** अध्याय है । इसमें व्याख्या एवं द्रव्य समूह के नाम एवं गुण-धर्म का परिचय शामिल है ।

उन्तालीसवें अध्याय का नाम **संशोधनसंशमनीय** अध्याय है । इसमें संशोधन के प्रकार, शिरोविरेचन द्रव्य, संशमन द्रव्य, उचित मात्रा में दी गयी औषध आदि विषयों का समावेश है ।

चालीसवें अध्याय का नाम **द्रव्यरसगुणवीर्य विपाक**

विज्ञान है । इसमें व्याख्या, द्रव्य के लक्षण, रस, वीर्य, विपाक की प्रधानता, पाक विपाक के प्रकार, द्रव्य, शास्त्र की प्रधानता आदि विषयों का समावेश है ।

इकतालीसवें अध्याय का नाम **द्रव्य-विशेष-विज्ञानीय** है । इसमें व्याख्या, द्रव्य की उत्पत्ति, पार्थिक द्रव्य, आप्य द्रव्य, वायवीय द्रव्य, आकाशीय द्रव्य, द्रव्य की कार्यशीलता, काल तथा कर्म, द्रव्य के भेद, संशमनगुण वाले द्रव्य, संग्राहक, दीपन, आग्नेय, लेखन, बृंहण, वीर्यसंज्ञक गुण, रस की विलक्षणता आदि विषयों का समावेश है ।

बयालीसवें अध्याय का नाम **रसविशेष विज्ञानीय** है। इसमें व्याख्या, भूतों में परस्पर सम्बन्ध वृद्धि तथा ह्रास, जलीय रस के प्रकार, रसों के भेद, पित्त, कफ, रसों के लक्षण, गुण, प्रकार आदि विषयों का समावेश है ।

तैंतालीसवें अध्याय का नाम **वमनद्रव्यविकल्प विज्ञानीय** है । इसमें व्याख्या, विभिन्न कल्प, औषधियों की योजना के प्रकार आदि विषयों का समावेश है ।

चौवालीसवें अध्याय का नमा **विरेचनद्रव्य विकल्प विज्ञानीय अध्याय** है । इसमें व्याख्या, विरेचन में प्रधान द्रव्य, त्रिवृत्कल्प, पित्तजन्य एवं कफरोग, मोदक, विरेचनीय द्रव्य, मोदक, यूषविधि, पुटपाक, वैरेचन लेह, मोदक, लेह गुटिका, चूर्ण, आसव, पैष्टी सुरा, सौवीर, तुषोदक त्रिवृन्मूल, दन्ती, तिल्वककल्प, त्रिफला कल्प, हरीतकी विधान, चतुरङ्गुलकल्प, ऐरण्ड तैल कल्प, स्नुहीक्षीर कल्प, त्रिवृदमोदक, औषध कल्पना विधि आदि विषयों का समावेश करता है ।

पैंतालीसवें अध्याय का नाम **द्रव द्रव्य विधि** है । इसमें व्याख्या, अन्तरिक्ष जल के गुण, दोष, प्रकार, अभाव, भूमि के पानी का प्रकार, न बरतने योग्य जल, दूषित पानी को स्वच्छ करने के उपाय, पानी को शुद्ध करने वाला पदार्थ, पानी रखने का बर्तन, पानी के गुण-दोष, विभिन्न दूध्यों के गुण-दोष, मलाई, दही, तक्र, मधु, मूत्र, इक्षुवर्ग, मस्तु, घी, मण्ड, तैल आदि विषयों का समावेश किया गया है ।

छियालीसवें अध्याय का नाम **अन्नपान विधि** है । इसमें व्याख्या, शालिवर्ग, कुधान्य वर्ग, मांसवर्ग, फलवर्ग, शाकवर्ग, पुष्पवर्ग, कन्दवर्ग तथा लवण वर्ग के प्रकार, गुण, दोष, मणियों के गुण, कृतान्न वर्ग, भक्ष्यवर्ग, अनुपान वर्ग सम्पूर्ण आहार विधि आदि विषयों का समावेश किया गया है ।

निदान स्थान

निदान स्थान में 16 अध्याय हैं । प्रथम अध्याय का **वातव्याधि निदान** है । इसमें व्याख्या, वात के स्वरूप, प्रकार, प्रश्न, शरीर में विचरण का क्रम, वात से उत्पन्न रोग जैसे पक्षाघात, अपतंत्रक, मन्यास्तम्भ, अर्दित, असाध्य, गृध्रसी, विश्वाची, क्रोष्टुक शीर्ष, खञ्ज और पंगु, कलाय खञ्ज, वात कण्टक, पाददाह, पादहर्ष, अबबाहुक, बाधिर्य, कर्णशूल, तूनी-प्रतूनी, आध्मान, प्रत्याध्मान, अष्ठीला, प्रत्यष्ठीला आदि रोगों का वर्णन है ।

(निरन्तर जारी)

संदर्भ

1. काश्यप संहिता - पं० हेमराज शर्मा - चौखम्बा संस्कृत - सीरिज, बनारस ।
2. आयुर्वेद का वृहत् इतिहास - अत्रिदेव विद्यालंकार प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश ।
3. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास - आचार्य प्रियव्रत शर्मा - चौखम्बा ओरियन्टालिया ।
4. **बीजं चिकित्सितस्यैतत् समासेन प्रकीर्तितम् ।**
   सविंशमध्यायशतमस्य व्याख्या भविष्यति ॥
   - सु०सू० 1/39

   तञ्च सविंशमध्याय शतं पञ्चसु स्थानेषु ।
   तत्र सूत्रनिदान शारीर चिकित्सित कल्पेष्वर्थ
   वशात् संविभज्योत्तरे तंत्रे शेषानर्थान् वक्ष्यामः ॥
   - सु०सू० 1/40
5. चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन - डा० ज्योतिर्मित्र आचार्य - श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०।

शुक्र प्रदुष्टियों की चिकित्सा : प्राच्य संदर्भ

वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए. (निवृत्त प्रोफ./प्राचार्य आयु.को.)

परिचय'

आयुर्वेद में जिस को गर्भोत्पत्ति के लिये पुरुष द्वारा स्त्री में आधान किया जाता है उसको शुक्र कहा गया है । यह शुक्र वायु, अग्नि, पृथ्वी और जल आदि चार (महाभूत रूप) पाद एवं छः रसों से उत्पन्न होता है । यह पुरुष द्वारा सेवित आहार (अन्न) से उत्पन्न धातु एवं पुरुष बीज रूप घटक है या गर्भकर भाव है ।

यह वीर्य युवा अवस्था में (मध्यम वय) फूल में यथा काल उत्पन्न सुगंधि की तरह उत्पन्न होता है ।

उसको इक्षु में रस, दहि में घी या तिल में तैल की तरह पुरुष देह में व्याप्त माना गया है जो पुरुष संयोग, चेष्टा, संकल्प एवं अंग पीड़न के द्वारा स्थानच्युत होकर गीले वस्त्र में से निचुड़े जल की भांति शरीर में से बाहर निकलता है । इस शुक्र प्रसेक के लिये हर्ष, तर्ष (भोगेच्छा), वीर्य का सर, पिच्छिल, गुरु, अणु प्रवणभाव वायु द्वारा द्रुत (गतिशील) होना आदि आठ को कारण माना गया है । इन आठ कारण से अनुप्लावित हो बाहर आया शुक्र नाना योनियों में संचार करते हुए विश्व रूप (आत्मा) का रूप द्रव्य है ।

शुक्र को सातमी धातु एवं पुरुष बीज माना गया है । इसका प्रमाण अर्धांजलि माना गया है ? क्योंकि - मैथुन के समय पुरुष का शुक्र हर्षयोनि (काम) के कारण उत्पन्न हुआ 'बीज' कहलाता है ।

(जैसे बीज से धान्यादि उत्पन्न होते हैं वैसे ही शुक्र से संतान उत्पत्ति होती है । सुश्रुत ने सभी आठ शुक्रदोषों को गर्भधारण न करा सकने वाला कहा है जबकि चरकादि ने विशेष का फेन-रूक्ष-तनु आदि वातदुष्ट शुक्र को अगर्भकर कहा है और सामान्यतः सभी शुक्रदोष असंतानकर कहे गये है ।

शुद्ध एवं फलवत शुक्र लक्षण तुलनात्मक दृष्टि से

क्र०	घटक	शुद्ध शुक्र	फलवत शुक्र
(क)	वर्ण	+ (च) (सु)	-
	स्फटिकाभ शुक्ल	-	+ (च)
	तैल-क्षौद्राभ	+ (सु.)	-
(ख)	गुण		
	द्रव	+ (सु)	-
	वहल (घन)	+(च)(धन)	+(च)
	स्निग्ध	+(सु)(च)	+(च)
	गुरु	-	+ (च)
	वहु	-	+ (च)
	पिच्छिल	+(च)	+(च)
	अविदाही	+(च)	-
(ग)	रस		
	मधुर	+(सु)(च)	+ (च)
(घ)	गंध		
	मधुगंधिं	+(सु)	-
	अविस्र	-	+ (च)

प्रदुष्ट शुक्र की निरर्थकता एवं तज्जन्य विकार

जिस प्रकार बीज, अकाल वर्षा, कृमि, कीट, अग्नि से दूषित होने से अंकुरित नहीं होता है उसी प्रकार वीर्य (रूप बीज) भी इसी प्रकार के विभिन्न हेतुओं से दूषित होकर गर्भोत्पत्ति नहीं करता है ।

विकृत या प्रदुष्ट शुक्र - क्लैव्य, अहर्षण, रोगिष्ट एवं अल्पायु संतान तथा विरूप (अष्टनिन्दित) एवं क्लीव संतानोत्पत्ति या गर्भाधारण, गर्भ रहने कर गर्भस्रावपात होना, संतान एवं स्त्री बाधन तथा शुक्राश्मरी, शुक्रमेह, शुक्रदोष कारक कहा गया है ।

शुक्र परीक्षा

क्र०	घटक	प्राकृत	वैकृत
1.	मात्रा	2. मि.लि.	< इससे न्यून
2.	वर्ण	दुग्धवतश्वेत	पीत(पूयमेह में) रक्ताभ(रक्तयुक्त)
3.	संगठन	घन-घट्ट परन्तु कुछ देर में द्रव (पतला) हो जाना	तनु, जलवत अतिकठिन या यथा समय पतला न हो पाना (पूयमेह जीर्णावस्था में)

1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुज.) 364001

4.	शुक्राणु संख्या	1 लाख (प्रति मि.लि.)	इससे न्यून, कम होना या बिल्कुल न होना ।
5.	प्राकृत शुक्राणु	80% से अधिक	< इससे कम ।
	अप्राकृत शुक्राणु (अणुमहत-द्विशिर अशिर-अपुच्छलीकी लघु-द्विपुच्छ टेपरिंग एवं एभारकस आदि ।	20% से कम	> इससे अधिक ।
6.	संसृष्टता		
	रक्तकण (RBC)	-	+ (सत्व) ।
	श्वेतकर्ण (WBC)	-	+ (सपूय) ।
	ईपी.सेल	-	+
	बेक्टीरियादि	-	बेक्टीरिया, गोनो कोकाई, स्टेप्टो-कोकाई, स्टेफेलो कोकाई का सिमेन्ट में मिलना ।

शुक्र दुष्टि के हेतु[3]

(क) आहार

- तिक्त, कषाय, अतिलवण, अम्ल सेवन (च) ।
- रूक्ष, उष्ण सेवन (च) ।
- यथा दोष कोपक आहार ।
- असात्म्य सेवन (च) ।
- वीर्य प्रदुष्टिकर या हानिकर अन्नपान यथा-चणक ।

(ख) विहार

निद्रा - (असम्यक निद्रा सेवन)

वयवाय - अतिव्यवाय (च) अकाल मैथुन (च) सर्वथामैथुनत्याग (च) अयोनिगमन (च) अतिवीर्यस्राव करना (च) अतिस्त्रीगमन (अधातु संसृष्ट) ।

व्यायाम - अतिव्यायाम (च) ।

वेग - वेगरोध (च) शुक्रवेगरोध (अवसादी/ग्रंथित में) (च) अभिघात-दण्डादि का अभिघात (च) (अन्य धातु संसृष्ट) ।

(ग) मानसिक

- चिन्ता, शोक (च) ।
- भय, क्रोध (च) ।
-
- स्त्रियों या अरसज्ञ होना (च) केलि कलह या प्रणयाभाव (च) ।

(घ) रोगानुबद्धता आदि अन्य कारण ।

- स्रवण (वीर्य का अति स्राव) (च) ।
- रसादि धातुओं की अत्यन्त दुष्टि (च) ।
- जरा अवस्था (च) ।
- भय, क्रोध क्षीण देह (च) ।
- अतिसार जन्य क्षीणता, (भगन्दर (पुरीषरेतस) बस्तिनाड़ी व्रण (रसमूत्र शुक्रता में) ।

(ङ) कर्म दोष

- शस्त्र कर्म, अग्निकर्म विभ्रम (च) ।
- क्षत (च) (अन्य धात युक्त में) ।

विकृति

1. विभिन्न निदान सेवन से 1-1 या समस्त दोष कोप ।
2. रसादि धातुओं की प्रदुष्टि होना (च) ।
3. शुक्रवह सिरा (स्रोत) में जाकर शुक्र को दूषित करना (च) ।

विविध शुक्र प्रदुष्टियां[4] - संहिता ग्रंथों में वर्णित अष्ट शुक्र विकृतियों को समन्वयात्मक रूप से निम्नानुसार रखा जा सकता है ।

क्र०	शुक्र दुष्टि /	लक्षणादि[5]
1.	वातदुष्ट (सु)	- वातिक वर्ण (श्याव, अरुणादि) वातिक वेदना शूलादि युक्त (सु) साध्य/अल्प विच्छिन्न, चिरातप्रसेक (अ) ।
	(I) फेनिल (च)	- वातज शुक्र विकार, फेनयुक्त शुक्र गर्भाधारणत्व (च) (अ) ।
	(II) तनु (च)	- वातिक शुक्र विकार, शुक्र का पतला होना, गर्भाधारणत्व (च) (अ) ।
	(III)रूक्ष (च)(शुष्क)	- वातिक शुक्र विकार, शुक्र का रूक्ष होना (अस्निग्ध होना या स्निग्धता रहित) (च)(अ)।
2.	पित्तदुष्ट (सु)	- पैत्तिक वर्ण (पीतादि), पैत्तिकवेदना (दाह आदि) युक्तता, साध्य (सु) अपिच्छिल(अ)।
	(I) विवर्णता (च)अश्वेत	- पैत्तिक विकार, नील, पीत वर्ण एवं उष्ण शुक्र होना, दाहादि का होना (च)।
	(II) पूति (दुर्गन्धी) (च)	- पैत्तिक विकार, सदाह, पूति (विस्रादिगंध) युक्त । शुक्र प्रवृत्ति (च) ।
3.	श्लेष्मिक दुष्टि (सु)	- श्लेष्मिक वर्ण (अतिश्वेत) तथा कफ वेदना (कण्डू आदि) युक्त शुक्र (सु.) साध्य । मज्जा उपसृष्ट, प्रभूत, विवद्ध, मज्जाम (अ) ।
	(I) पिच्छिल (च)	- अतिपिच्छिल शुक्र प्रवृत्ति (च) (अ) श्लेष्मा/कफ द्वारा उत्पन्न स्रोतोरोध पूर्वक अति चिपचिपा शुक्र होना ।
4.	अवसादी (च) ग्रंथित (सु) - (संसर्गज)	श्लेष्मवात जन्य (सु) शुक्रवेगरोध जन्य अवसादी शुक्रता (रुका रहना) या कृच्छ्रता होना (च) पड़ा रहा शुक्र ग्रंथित हो जाना (च) (सु) कृच्छ्रसाध्य । विवृद्ध(अ)।
5.	(I) पूतिपूय (सु)	- पित्तश्लेष्मज विकार, सपूय शुक्र प्रवृत्ति (पूतिगंधिता युक्त) (सु) ।
	(II) कुणप गंधी (सु)	- रक्तज विकार, मुर्दे जैसी गंध, अनल्पता, कृच्छ्रसाध्य (सु) ।
6.	क्षीण शुक्र (सु)	- पित्तमारूत विकार, शुक्रकाक्षीण होना (गुण/प्रमाणाल्पता) (सु) ।
7.	मूत्रपुरीषरेतस (सु)	- त्रिदोषज विकार, मूत्रपुरीषगंधी (सु) ।
8.	अन्य धातु संसृष्ट (च)	- अतिगमन या दण्डादि अभिघात से सरक्त (सशूल) शु प्रवृत्ति (च) साध्य ।

दुष्टशुक्र चिकित्सा[6]

(क) सामान्य चिकित्सा सूत्र

- वातादि दोष जन्य शुक्र प्रदुष्टियां में स्नेहन, स्वेदन पूर्वक शोधन करायें (यथा दोष) (सु.) ।
- स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन एवं वस्तियों द्वारा चिकित्सा करायें (च) उत्तरबस्ति का प्रयोग करायें (च)(सु) ।
- शुक्र चिकित्सार्थ 'वृष्य चिकित्सा' (क्षीण शुक्रोक्त) का प्रयोग करें (सु) वाजीकरण चिकित्सा का आवश्यकता अनुसार उपयोग करें (च) ।
- सामान्यत: पित्तघ्न (तथा वातघ्न, कफघ्नादि यथा दोष) द्रव्यों द्वारा चिकित्सा करें (च) ।

- योनिव्यापद में कहे गये फलघृतादि का प्रयोग युक्ति पूर्वक करें ।
- रसायनोक्त कल्पों द्वारा चिकित्सा करें ।

(ख) विशिष्ट चिकित्सा
- यथा दोष उपचार यथा वातघ्न, पित्तघ्न, कफघ्न आदि (यथा वातज में वस्ति, पित्तज में विरेचन, कफज में वमनादि) ।
- यथा विकृति चिकित्सा यथा पूयघ्न, दुर्गंधहर, रक्तपित्तघ्न आदि तथा ग्रंथिघ्न क्षार चिकित्सा ।
- क्षीण शुक्रादि में शुक्रकर/शुक्रल या स्वयोनिवर्धक द्रव्यों द्वारा उपचार करें ।
- क्षत आदि में सद्यव्रण, क्षतक्षीण, रक्तपित्तघ्न आदि द्रव्यों द्वारा उपचार ।

(ग) विकृति विशेषानुसारी चि०सू०
- फेनिल, तनु, रूक्ष शुक्र प्रदुष्टि में वातघ्न ।
- विवर्णता, पूति, में पित्तघ्न ।
- पिच्छिल दोष में कफघ्न ।
- अन्यधातु (रक्त) संसृष्ट में रक्तपित्तघ्न ।
- अवसादी एवं ग्रंथि में अश्मरीवत ।
- कुणणग्रंधि एवं पूतिपूय में पूयघ्न, सुगंधकर ।
- क्षीण शुक्र में वृष्य कल्प ।
- मूत्रपुरीष रेतस में (भगंदरवत या) सुगंधकर ।

(घ) विकृति अनुसार उपयोगी कुछ कल्प[7]
- वातिक शुक्र विकृति में - निरूह, अनुवासन पूर्वक, (च्यवनप्राश) रसायन कल्पों द्वारा उपचार (च) (फैन मेहघ्ने, उदकमेह, ओजोमेह हर कल्प प्रयोग)।
- पैत्तिक शुक्र विकृति में - (शोधन पूर्वक) जीवनीयघृत अभयामलकी रसायन, आमलकी रसायन (च) का प्रयोग (च) (ज्वरघ्न, कामलाहर कल्प प्रयोग) ।
- श्लेष्मिक शुक्र विकृति में - (शोधन पूर्वक) पिप्पली रसायन, त्रिफला रसायन, भल्लातक रसायन, लोह रसायन (च) शिलाजीत (च) ।
- कुणणगंधी विकृति में - (शोधन पूर्वक) धायपुष्प, खदिर, अनार, अर्जुनसिद्धघृत पान (सु) या सालसारादि घृत (सु) प्रयोग । (अवसादी एवं ग्रंथित में - (शोधनपूर्वक) शरी (कचूर) सिद्धघृत (सु) या पलाशक्षार युक्त) सिद्धघृत (सु) पान ।
- पूय/पूतिपूय विकृति में - (शोधन पूर्वक) परूषकादि घृत (सु) वटादिघृत (सु) का प्रयोग ।
- क्षीण शुक्रदोष में - (शोधन पूर्वक) स्वयोनिवर्धक द्रव्य सेवन, वृष्य कल्प प्रयोग या क्षीणवलीय में कहे कल्प प्रयोग (सु) जीवनीयघृत (च) च्यवनप्राश (च)।
- अन्य धातु संप्रट में - यथा प्रकुपित दोषहर तथा क्षीणधातु शामक उपचार यथा रक्तपित्तघ्न कल्प (च) आमलकी रसायन, चन्द्रकलारस आदि ।
- मूत्रपुरीष गंधी शुक्र प्रदुष्टि में - (शोधन पूर्वक) चित्रक, खस, हींग, सिद्धघृत (सु) का प्रयोग करें ।

पथ्य सेवन -
- यथा योग्य वस्ति / उत्तरवस्ति सेवन (च) ।
- गेहूँ, यव, चावल, सांठी का सेवन (च) ।
- दूध, घी, सेवन (च) ।
- मांस रस सेवन (च) ।

वीर्य क्षीणता[8]

परिचय

शुक्र की प्रमाणाल्पता या गुणाल्पता को 'क्षय' या 'क्षीण' शुक्र शीर्षक के अन्तर्गत रख कर चला जा सकता है । क्षीण शुक्र के लक्षण आदि का संक्षेपतः यहाँ विचार प्रस्तुत है ।

हेतु[8]
- (दोष प्रकोपक अन्नपान) ।
- उपवास (अनशन) (च) ।
- अति स्त्री संग (च) ।
- चिन्ता (च) ।
- जरा अवस्था (च) ।
- व्याधि अनुबंध (च) ।
- कर्म-कर्षण (शोधनादि के द्वारा कर्षण) देह क्षीणता (च) ।
- मज्जादि की क्षीणता या क्षय (सु.) ।

क्षीण शुक्र

लक्षण -
- शिश्न एवं अण्ड (वृषण) में वेदना (सु) ।
- मैथुन असमर्थता (सु) क्लैव्य (च) ।
- चिरात शुक्रस्रवण (सु) ।
- अल्प शुक्र स्रवण (सु) शुक्र अविसर्ग (च) ।
- रक्तमिश्र शुक्र प्रवृत्ति (सु) ।
- धातु क्षीणता (सु) ।
- दौर्बल्य (च) ।
- मुख शोष पाण्डुता (च) ।
- सदन, श्रम (च) ।
- क्लैव्य (च) (शुक्रक्षयज क्लैव्य) ।
- शुक्र क्षयज रोगों का होना ।
  यथा शोष, क्षीण, वातरोग आदि ।

क्षीण शुक्र चिकित्सा
- स्वयोनिवर्धक द्रव्य सेवन (स्वयं शुक्रप्राशन या शुक्र

	3. अश्वगंधा, यष्टि विदारी, आमलकी रसायन 1 मा. 2 बार	–	–	3. अश्वगंधा, यष्टि रसायन, विदारी नारसिंह पि० 1 मा. 2 बार
	4. च्यवनप्राशावलेह 1 चम्मच प्रा./रात्रि	–	–	–
(ग)	परिणाम			
	1. लक्षणों में लाभ	–	–	शुक्र प्रमाण कुछ वृद्धि
	2. क्लीवता घटी	–	–	कुछ हर्षण, शेष अलाभ

संदर्भ/आधार

1. **शुक्रं तदस्य प्रवदन्ति धीरा, यद्धीयते गर्भसमुद्भवाय ।**
वाय्वग्निभूम्य गुणपांदवत् (तत् षड्भ्यो रसेभ्यः प्रभवश्च तस्य) ॥

च०शा० 2/2

यथा मुकुल पुष्पस्य सुगन्धौ नोपलभ्यते ।
लभ्यते तद्विकाशात्तु तथा शुक्रं हि देहिनाम् ॥

च०चि० 2/4/39

रस इक्षौ यथा दध्नि सर्पिस्तैलं तिले यथा ।
सर्वत्रानुगतं देहं शुक्रं संस्पर्शने तथा ॥

च०चि० 2/4/45

तत्स्त्रीपुरुषसंयोगे चेष्टासंकल्पपीड़नात् ।
शुक्रं प्रच्यवते स्थनाज्जलमार्द्रात्पटादिव ।
हर्षात्तर्षात्सरत्वाच्च पैच्छिल्याद् गौरवादपि ।
अणुप्रवगभावाच्च द्रुतत्वान्मारूतस्य च ।
अष्टाभ्य एभ्यो हेतुभ्यः शुक्रं देहात्प्रसिच्यते।
चहतो विश्वरूपस्य रूपद्रव्यं यदुच्यते ।

च०चि० 2/4/46-48

मस्तिष्कस्यार्धाञ्जलिः शुक्रस्य तावदेव प्रमाणं ।

च.शा. 7/16

बीजं यस्माद्व्यवाये तु हर्षयोनि समुत्थितम् ।
शुक्रं पौरुषमित्युक्तं XXX ।

च०चि० 30/131

2. **स्निग्धं घनं पिच्छिलं च मधुरं चाविदाहि च ।**
रेतः शुद्ध विजानीयाच्छ्वेतं स्फटिकसन्निमम् ॥

च.चि. 30/144

स्फटिकाभं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगंधि च ।
शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैल क्षौद्रनिभं तथा ॥

सु०

बहलं मधुरं स्निग्धमविस्रं गुरु पिच्छिलम् ।
शुक्लं बहु च यच्छुक्रं फलवत्तदसंशयम् ॥

च.चि. 2/4/

यथा बीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ।
न विरोहति संदुष्टं तथा शुक्रं शरीरिणाम् ॥

च.चि. 30/1

XXX शुक्रस्य दोषात्क्लैव्यमहर्षणम् । रेगिणंक्लीवमल्
विरूपं वा प्रजायते । न चास्य जायते गर्भः प
प्रसवत्यपि । शुक्रं हि दुष्टं सापत्यं सदारं बाधते ना

च.सू. 28/18-

क्लैव्याप्रहर्ष शुक्राश्मरीशुक्रमेह शुक्रदोषाश्चतदोषजा

सु.सू. 2

3. **अतिव्यवाया द्व्यायामाद सात्म्यानां च सेवनात् ।**
अकाले वाऽप्ययोनौ वा मैथुनं न च गच्छतः ।
रूक्षतिक्त कषायाति लवणाम्लोष्ण सेवनात् ।
नारीणाम रसज्ञत्वात, स्रवणाञ्जरंया तथा ।
चिन्ताशोकादविसम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात् ।
भयात्क्रोधादतीसार/द्व्याधिभिः कर्शितस्य च ।
वेगाधातात्क्षताच्यापि धातूनां संप्रदूषणात् ।
दोषाः पृथक् समस्ता वा प्राप्य रेतोवहाः सिराः
शुकं सदूषयन्त्माशु XX ।

(च.चि. 30/133-1

4. **XX तद्वक्ष्यामि विभागशः ।**
फेनलं तनुरूक्षं च विवर्ण पूति पिच्छिलम् ।
अन्यधातूपसंसृष्टमवसादि तक्षाष्टमम् ।

च.चि. 30/138

XXXअष्टौ रेतोदोषा इति तनु शष्कं फेनिलभश्वेतंपूत्यति पिच्छिलमन्यधातूपहिमतसादि चेति ।

च.सू. 19/3

वात-पित्त-श्लेष्म-कुणप-ग्रंथि-पूतिपूय-क्षीण-मूत्र पुरीषरैतस: प्रजोत्पादनेन समर्था भवन्ति ।

सु.शा. 2/3

5. तेषु वातवर्णवेदनं वातेन, पित्तवर्णवेदनं पित्तेन, श्लेष्मवर्णवेदनं श्लेष्मणा, कुणपगन्धनल्पं च रक्तेन, ग्रंथिभूतं श्लेष्मवाताभ्यां, पूतिपूयनिभं पित्तश्लेष्मम्यां, क्षीणं प्रागुक्तं पित्तमारूताभ्यां, मूत्रपुरीषग्रंधि सन्निपातेनेति । तेषु कुणपग्रंथिपूतिपूय क्षीणरेतस: कृच्छ्रसाध्या: मूत्रपुरीषरेतसस्त्वासाध्या इति ।

(सु.शा. 2/4)

फेनिलं तनु रूक्षञ्च कृच्छ्रेणाल्पञ्च मारूतात् ।
भवत्युपहत शुक्रं न तद गर्भाय कल्पते ।
सनीलमथवा पीतभत्युष्णं पूतिगंधिता ।
दहल्लिग विनिर्याति शुक्रं पित्तेन दूषितम् ।
श्लेष्मणा रूद्धमार्गन्तु भवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ।
(इति दोषा: समाख्याता: शुक्रस्य तु विशेषत:।)
स्त्रीणामत्यर्थगमनादभिघातात्क्षतादपि ।
शुक्र प्रवर्तते जन्तो: प्रायेण रूधिरान्वयम् ।
वेगसंधारणाच्छुक्रं वायुना विहतं पथि ।
कृच्छ्रेण याति ग्रथितभवसादि तथाष्टमम् ।
इतिदोषा: समाख्यात: शुक्रस्याष्टौ सलक्षणा ।

(च.चि. 30/139-143)

तत्र तनु रूक्षं फेनिलमरूणमतपं विच्छिन्नं
सहजं चिराच्च निषिच्यते वातेन ।
किंञ्चित्पीतपिच्छिलमानीलं वा दहादित प्रवर्तते पित्तेन ।
मज्जोपसंसृष्टं प्रभूतं विवद्धं चाम्यसि च किञ्चिन्मज्जति श्लेष्मणा ।

(अ.स.शा. 1)

*वातमूत्रपुरीषाणि कृमय: शुक्रमेव च भगन्दरा: स्रवन्तस्तु नाशयन्ति तमातुरम् । (सु०)

तेष्वाद्यान् शुक्रदोषांस्त्रीन् स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ।
क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथा चोत्तरवस्तिभि: ।

सु.शा. 2/6

पञ्चकर्मविशुद्धस्य पुरूषम्यापि चेन्द्रियम् ।
परीक्ष्य वर्णैर्दोषाणां दुष्टं तद्ध्नैरूपाचरेत् ।

च०चि० 30/125

वाजीकरणयोगै स्तैरूपयोगसुखैर्हितै: ।
रक्तपित्तहरैर्योगै योनि व्यादिकैस्तथा ।
दुष्टं यदा भवेद्वेतस्तदा तत्समुपाचरेत् ।

च.चि. 30/45

7. वातान्विते हिता: शुक्रे निरूहा: सानुवासना: ।
अभयामलकीयं च पैत्ते शस्तं रसायनम् ।
माडाध्यमृतलोहानां, त्रिफलाया रसायनम् ।
कफोत्थितं शुक्रदोषं हृदयाद्भल्लातकस्य च ।
यदन्यधातु संसृष्टं शुक्रं तद्वीक्ष्ययुक्तित: ।
यथादोषं प्रयुञ्जीत दोषधातु भिषिग्जित: ।
सर्पि: पयोरसा: शालिर्यवगोधूम षष्टिका : ।
प्रशस्ता: शुक्रदोषेषु वस्तिकर्म विशेषत: ।
इत्यष्ट शुक्रदोषाणां मुनिनोक्तं चिकित्सितम् ।

च.चि. 30/145-159

पाययेत् तं नरं सर्पिर्भिषक् कुणपरेतसि,
धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ।
पायेदथवा सर्पि: शालसारादिसाधितम्,
ग्रंथिभूते शरीसिद्धं पलाशे वाऽपि भस्मनि ।
परुषकवटादिभ्यां पूयप्रख्ये च साधितम् ।
प्रायुक्तं वक्ष्यते यच्च तत् कार्य क्षीणरेतसि ।
विट्यमे पाययेत् सिद्धं चित्रकोशीरहिङ्गुभि: ।
स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूदयनुवासितम् ।
योजयेच्छुक्रदोषार्त सभ्यगुत्तरवस्तिना ।

सु.शा. 2/7-10

8. जरयाचिन्तया शुक्रं व्याधिभि: कर्मकर्षणात् ।
जयं गच्छत्यनशनात्स्त्रीणां चाति सेवनम् ।

च.चि. 2/4/42

शुक्रक्षये मेढ्रवृषणवेदनाऽशक्तिमैथुने चिराद्वा प्रसेक: प्रसेके चाल्परक्त शुक्रदर्शनम् ।

सु.सू. 15/9

दौर्वल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदन श्रमक्लैव्यं शुक्राविसर्गश्चक्षीणशुक्रस्य लक्षनम् ।

च.सू. 17/68

तत्रापि स्वत्रोनिवर्धन द्रव्योपयोग (प्रतिकार:)

सु.सू. 15/10

शुक्रक्षये क्षीरसर्पिषोरूप योगो मधुरस्निग्धसभाख्यातानां चापरेषामेव द्रव्याणां ।

च.शा. 6210

वृक्क के अन्तर्गत व्याधिः एक आयुर्वेदीय अध्ययन

प्रो. हरिभाई के. त्रिवेदी

प्रास्ताविक

वर्त्तमान समाज में सुख की अभिलाषा के कारण मानव शय्या सुख एवं आस्यासुख के कारण व्यायाम में अपेक्षा रखता है । आहार में भी गुरु, स्निग्ध, तैलीय एवं वसायुक्त दूषित जल, फ्रीज का अतिशीतल जल आदि स्वास्थ्य के बारे में घातक, आहार एवं सतत टी.वी. के पास बैठकर रात्रि जागरण और रात्रि के समय यहाँ-वहाँ भटकना इत्यादि विहार से और प्रधानतः मल-मूत्रादि वेगावरोध से अपान क्षेत्र दूषित होने प्रवृत्ति करता है । अन्ततोगत्वा त्रिविध मर्म में 'बस्ति' एवं वृक्क दूषित कर विविध वृक्क रोगों की उत्पत्ति होती है ।

शरीर के त्रिविध मलों में मूत्र भी एक है, मूत्र की रचना एवं निर्गमन में भाग लेने वाले अवयवों में दो वृक्क, दो गविनियाँ और एक बस्ति (मूत्राशय) तथा एक मूत्र प्रसेक है । इनमें वृक्क उदरगुहा में दक्षिण और वाम दोनों पार्श्व में एक-एक होता है । वृक्कों की 'आंत्र' नाम की प्रणालिकाओं द्वारा सूत्र का निर्माण होता है । ये प्रणलिकायें संख्या में सहस्र होती हैं, अतिसूक्ष्म होने से इनके मुख दिखाई नहीं देते । सहस्रों नदियों का प्रवाह जैसे सर्वदा समुद्र को तृप्त किया करता है, वैसे इनसे निर्मित मूत्र निरन्तर मूत्राशय को आपूर्ति करता रहता है । द्रव की क्रिया दिन-रात, मनुष्य सोता हो या जागता हो, चालू रहती है । नये घड़े को मुख पर्यन्त जल में रखें तो जैसे उसके अतिसूक्ष्म छिद्रों से रिस-रिस कर जल कालक्रम से संपूर्ण घड़े को भर देता है, वैसे आंत्रों के सूक्ष्म छिद्रों से रिस कर मूत्र प्रथम वृक्कों को तथा पीछेगविनियों द्वारा बस्ति को संपूरित किया करता है । (सु.नि.अ. 3) (''पक्वाशयगवास्तत्र. ......बस्तिमूत्रेण पूर्यते ॥'')

✱ बस्ति सद्यः प्राणहर मर्म है

वृक्कों में तैयार हुए मूत्र को बस्ति पर्यन्त पहुँचाने का काम प्रणालियों का है जिन्हें गविनी या मूत्रवह कहते हैं । बस्ति तुम्बी के आकार का अस्प मांसमय और कुछ रक्तवाहिनियों से युक्त पतली त्वचा से बना एक आशय है । इसका मुख नीचे की ओर होता है । स्नायु और सिराओं से यह अपने स्थानं पर सुबद्ध रहता है । मूत्र नामक मल का यह आहार है । यह एक सद्यः प्राणहर मार्ग है ।

''**नाभिपृष्ठकटीमुष्क**........................... ।
..............................**प्राणायतनमुत्तमम्** ॥
(सु.नि.अ. 3)

✱ वृक्क को आधुनिक शारीर विदों ने 'किडनी' कहा है -

यहाँ वृक्क से आधुनिक शारीर विदों का 'किडनी' नामक अवयव का ग्रहण किया गया है । अतः वृक्क विकार से 'किडनी' के विकारों को (Diseases of the Kidney) ग्रहण होता है । वृक्क कोष्टाङ्ग है । वृक्कों का आकार लोबिया (राजमाष) के समान अन्तर्वक्र होता है । ये (दोनों) उदर गुहा के पृष्ठकोष में अन्तिम पर्शुकाओं पर स्थित होते हैं । इसकी लम्बाई लगभग 4 इंच, चौड़ाई लगभग 2½ इंच और मोटाई 1½ इंच तथा भार 12-13 तोला होता है । प्रत्येक वृक्क से एक-एक गविनी बस्ति को जाती है । इनकी लम्बाई 12 से 16 इंच होती है । मूत्र निरन्तर बन कर बूंद-बूंद वृक्कों से गविनियों द्वारा बस्ति में प्रविशष्ट होता रहता है । बस्ति में मूत्र नियत परिमाण में ही रह सकता है । इसके पश्चात् मूत्र का वेग उत्पन्न होता है । इच्छाकृत प्रयत्न से मूत्राशय के अधोवर्ति द्वार का कोष्ठ शिथिल होता है तथा मूत्राशय के संकोच से मूत्र प्रसेक द्वारा मूत्र बाहर आता है ।

वृक्क विसर्ग संस्थान का (Excretary System) एक प्रधान अंग है । ये अन्य अंगों विशेषतः त्वचा के सहकार से कार्य करते हैं । अतः वृक्क रोगों में वृक्क का भार हल्का करने के लिये त्वचा को उदीप्त करना चिकित् का आवश्यक अङ्ग है । इसके लिये रोगी को स्वेदन दे की आवश्यकता होती है । वृक्क का सामर्थ्य हृदय के सामर्थ्य पर आश्रित है । हृदय स्वस्थ एवं शक्तिमान हों तो पर्याप्त मात्रा में रस-रक्त पहुंचा सकेगा, जिससे वृक्क भी रसरक्त से मलों को ठीक-ठीक परिमाण में निकाल सकेंगे । अतः हृदय रोग में वृक्क अपना कार्य उत्तम प्रका से नहीं कर सकते । अतः वृक्कों की रुग्णना में हृदय की भी परीक्षा परमावश्यक है ।

78, अजीतनगर सोसायटी, उर्मि सोसायटी के पास, अकोटा, बड़ौदा (गुजरात)

* आयुर्वेद के मत से मूत्रोत्पत्ति

आयुर्वेद के मत से मूत्रोत्पत्ति आमाशय तथा पक्वाशय में होती है तथा यहां से मूत्र सूक्ष्म स्रोतसों द्वारा बस्ति में पहुँचता रहता है । आयुर्वेद के मत से आहार के पचने पर दो भाग होते हैं । इस किट्ट भाग से मल और मूत्र बनता है । यह कार्य आमाशय तथा पक्वाशय में पाचकपित्त और समानवायु करता है । जैसे लिखा भी है - **'आहारप्रसादाख्यो रसः किट्ट मलाख्यमभिनिर्बतते । किट्टात्स्वेदमूत्रपुरीषाः पुष्यन्ति** (चरक) **किट्ट मलस्य विण्मूत्रम्** (च) । **विण्मूत्रमाहारमलः सारः प्राजीरितोरसः** (सुश्रुतः) **तच्चादृष्टहेतुकेन विशेषेण पक्वाशयमध्वस्थं पित्तं यतुर्विध मन्नपानं पचति, विवेचयति च रसमूत्रपुरीषाणि ।** (सुश्रुत)। परन्तु आधुनिक विज्ञान ने मूत्रोत्पत्ति इस प्रकार से नहीं मानी है । अैंदरिक तंहत धमनी (Abdominal Aorta) की दो शाखाएं (वृक्कीय धमिनियाँ (Renal Arteries) दोनों वृक्कों में जाती हैं तथा वहां पर उनकी अनेक सूक्ष्म शाखाएं (कोशिकाएं Capilariese) होकर वृक्कस्थ नालियां अपने विशिष्ट प्रभाव से रक्त में निकम्मे किट्ट रूप या मलरूप भाग (यूरिया, यूरिक अम्ल, सेन्द्रिय Organic)तथा निरिन्द्रिय Inorganic घन पदार्थ तथा त्यक्त जल को पृथक् कर लेती है । इसे मूत्र कहते हैं तथा यह मूत्र वृक्कस्थ नालियों द्वारा ही बनी हुई गविनियां (Ureters) द्वारा बूंद-बूंद के रूप में बस्ति में आता रहता है । आयुर्वेद के संहिता ग्रंथों में वृक्क का स्थान, स्वस्थ और संख्या का ठीक वर्णन है किन्तु मूत्रोत्पत्ति के साथ कोई सम्बन्ध न मानकर मेदोधातु की पुष्टि करने का कार्य इनका माना गया है ।

* वृक्कों का विशिष्ट कार्य

वृक्कों का विशिष्ट कार्य मूत्रविष (Urea) को निकालना है । शरीर की क्लिन्नता (आर्द्रता) ही पृथक् होकर मूत्र के रूप में प्रकट होती है । मूत्रका 96 प्र.श. जल होता है । परन्तु साथ ही इस में 4 प्र.श. घन द्रव्य भी होते हैं । घन द्रव्यों में अर्धांश यूरिया (Urea) होता है । यह प्रोटीन के धातु-पाक से उत्पन्न मल है । तदुपरांत अन्य भी सेन्द्रिय अथवा निरिन्द्रिय (Organic and Inorganic) घन द्रव्य होते हैं । कभी-कभी ये द्रव्य मूत्र से च्युत हो जाते हैं अर्थात् उसमें घुले नहीं रहते । परिणाम स्वरूप उनमें सिकता छोटी-मोटी शर्कराओं (Gravels) या अश्मरियों (Stones) की रचना होती है । इनकी रचना और स्थिति वृक्क, गविनी या मूत्राशय कहीं भी हो सकती है ।

मूत्र का वर्ण याकृत पित्त तथा भोजन के वर्ण के कारण होता है । यानी मूत्र की विशिष्ट नवसार (Amonium carbonate) के कारण होती है । यह एक जीवाणु की क्रिया से हुआ यूरिया का परिणाम (परिवर्तित रूप) हैं । कई विकारों में मूत्र में असाधारण द्रव्य पाये जाते हैं जैसे - वृक्कों के शोथ में अल्ब्युमेन, मधुमेह में ग्लाइकोजन, कामला में याकृत पित्त, विशेषतः पूयमेह में पूय इत्यादि । मूत्र एक नियत परिणाम में वृक्कों से निकलना चाहिये । साधारण रूप में अहोरात्र में 50 औंस (125 तोला) मूत्र निकलता है ।

* वृक्क मेँ व्याधि उत्पत्ति कारणानि

(1) वृक्क में दोषों का अभिघात होने से अहित आहार - विहार से अपान वायु दुष्टि होने से मूत्रवह स्रोतस् की दुष्टि होती है । मूत्रवह स्रोत का मूल बस्ति और वंक्षण है, इन स्रोतों के दुष्ट होने पर मूत्र का अधिक होना, रुक-रुक के आना, विकृत मूत्र आना, थोड़ा-थोड़ा शूल के साथ गाढ़ा मूत्र निकलते देख मूत्रवह स्रोत दूषित हो गए हैं ऐसा जानना चाहिए । (च.वि.अ. 5/6)

(2) चयापचय द्वारा उत्पन्न विष उत्सर्गों के प्रमाण में वृद्धि होना जैसे कि मेटोबोलिक टोक्सिन जब उत्पन्न होते हैं और वृक्क द्वारा उसका निष्कासन होता है ।

(3) **जीवाणु संक्रमण** - जब वृक्क में जीवाणु का संक्रमण होता है तब वृक्क में व्याधि क्षमत्व का अभाव होता है और रक्त संचार मंद होता है तब जीवाणु स्थिर का होकर वृद्धि होने मिलती है और उसमें संक्रमण जन्य वृक्क विकारों होते हैं ।

(4) **हृदय की क्रिया में विकृति होने से** - हृदय की विकृति हेतु वृक्क में रक्त संचार अल्प होता है तब वृक्क में गतिमान तत्वों में विकृति होने से शोथ और जलोदर जैसी जलियांश व्याधि होती है ।

(5) वृक्क प्रणालियों में अवरोध से - वृक्क प्रणालियों में उपरोक्त कोई हेतुओं से जब अवरोध उत्पन्न होता है तब हृदय को रक्त संचरण के लिये ज्यादा प्रेशर (बल) करना पड़ता है तब उच्च रक्तचाप लक्षण होता है।

- **वृक्क को विकृत करने वाला रोग**

मधुमेह वृक्क द्वारा उत्पन्न व्याधि है अर्थात् वृक्क द्वारा प्रेजनटेशन होता है। अत: किडनी को दूषित करते हैं - इसे 'डायेबिटीक रीनल डीसऑर्डर' कहते है।

- **सामान्य वृक्क दूषित में (पूर्वरूप में)**

''त्करूक्षोष्णा वेगवती धमनी कठिना तथा।
निद्रानाशोवह्निमान्धं शोथोक्ष्णि च मुखे पदे ॥
वृक्कामयस्य पूर्वाणि रूपाप्याहुभिषग्वरा:।''

आचार्य विनोद लाल सेन रचित आयु. विज्ञान

- **उग्रवृक्कशोथ में**

1. मूत्र में शुक्ति (ओज) अधिक मात्रा में आती है और मूत्र को उबालकर सान्द्र हो जाता है।
2. मूत्र की मात्रा न्यून हो जाती है अर्थात् 24 घंटों में 10 से 20 औंस हो जाता है।
3. सापेक्ष घनत्व मूत्र का बढ़ जाता है यद्यपि यूरिया की मात्रा कम होती है।
4. मूत्र का वर्ण आविल तथा धूमिल हो जाता है।

- **प्रत्यक्ष जब वृक्क रोगी आते हैं तब निम्नोक्त लक्षण दिखाई पड़ते हैं।**

1. अक्षिकूट शोथ के साथ हाथ और पैर पर शोथ स्पष्ट दिखाई पड़ता है।
2. शरीर में पाण्डुता, मन्द ज्वर और मन को असुख होता है। (रक्ताल्पता)।
3. छर्दि, शिर:शूल, श्वासकष्टता।
4. रक्तचाप भी बढ़ जाता है।

वृक्क (किडनी दूषित) के अन्तर्गत व्याधियाँ जैसे कि वृक्कशोथ, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एवं अश्मरी होता है। इन सब व्याधियों में दूषित दोष-दूष्य, आशय (जैसाकि-पक्वाशय-मूत्राशय इत्यादि) और औषधियों के गुण-कर्म के माध्यम से चिकित्सा करते हैं।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. वृक्क एवं किडनी प्राणघातक मर्म है। इसलिये व्याधि का (उद्भव) विकृत प्रदेश, दोष-दूष्य समूर्च्छना, स्रोतस की दुष्टि, आवृत्त-आवरण दोष और वातादि दोषों का वृद्धि-क्षय माध्यम से चिकित्सा करें।
2. वृक्क में यदि कोथ एवं शोथ होतो उस अवस्था को ध्यान में रखकर चिकित्सा करें।
3. वृक्क स्थान में पक्वाशय प्रदेश में अपान दुष्टि से विबंध एवं मूत्रवह स्रोतस की दुष्टि होती है। अत: स्रोतोशुद्धि कर, शोथघ्न, अनुलोमन एवं बल्य औषधियाँ की योजना करें।

अत: 'किडनी' मे होने वाले व्याधियाँ लक्षण एवं उपक्रम निम्न हैं।

व्याधि	नाम लक्षण	औषध योजना
वृक्क शोथ	1. मूत्र में घनरूपता, अविल तथा धूमिल होता है। 2. वृक्क क्रे अन्तस्थल में शोथ हो वृक्क में सतत वेदना, कोथ हो तो पूय आता है और कष्ट पूर्वक अल्प मूत्र आता है। 3. रक्तचाप पर भी असर होता है। 4. शरीर में दौर्बल्य आता है।	1. पुनर्नवा चूर्ण - 5 ग्राम गोक्षुर चूर्ण - 5 ग्राम हरितकी चूर्ण - 5 ग्राम इन तीनों चूर्णो का मिश्रण दिन में तीन बार सुबह, दोपहर और शाम देते हैं। दूध के साथ।

व्याधि	नाम लक्षण	औषध योजना
मूत्रकृच्छ्र	1. मूत्र की कष्टप्रद प्रवृत्ति होती है । 2. थोड़ा-थोड़ा बार-बार कष्ट के साथ मूत्र त्याग । 3. मूत्र पथ में शोथ एवं पीड़ा होती है । 4. जलीयांश का ह्रास होने से पानी-पीने की इच्छा बार-बार होती है । 5. अल्प विबंध होता है ।	उपरोक्त तीनों औषध द्रव्य देते हैं ।
मूत्राघात	1. इस रोग में मूत्र का अवरोध विशेषतया होता है । 2. साथ में कृच्छ्र (मूत्रता) भी अल्पमात्रा में रहता है । 3. मूत्राघाते तु विबन्धो बलवान् और कृच्छत्वमल्पमिति (मधुकोष)	उपरोक्त तीनों औषध द्रव्य देते हैं ।
अश्मरी	1. अश्मरी जब मूत्र मार्ग में आती है तब बस्ति में वेदना और मूत्र रुक-रुक कर आता है । 2. जब मूत्र आता है तब रोगी अपने शिश्न को मसलते हैं । 3. सेवनी में वेदना साथ मूत्र विशर्ण धार होती है । 4. मूत्र प्रवृत्ति न होने से क्षोभ, क्षत होने से रक्त-मूत्र के साथ कष्टतापूर्वक आता है । 5. रोगी को चलने से और वाहन पर बैठने से वेदना होती है ।	उपरोक्त तीनों औषध द्रव्य देते हैं ।

• औषध द्रव्यं कथं कार्यं करोति ।

1. **पुनर्नवा** - उष्णवीर्य होने से वृक्क शोथ को लेखन कर शोथ को छेदन-भेदन कर मिटाते हैं, वृक्कशोथ रक्त दूषित एवं अल्प हो जाता है । अब यहाँ पुनर्नवा मधुर रस वाली और मधुर पाकी होने से रक्त की वृद्धि कर शरीर में हुई पाण्डुता को मिटाता है । इस तरह, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात एवं अश्मरी को पुनर्नवा उष्ण वीर्य होने से मूत्रवह स्रोत की दुष्टि से जो मार्गावरोध होता है उसको तोड़ डालता है ।

2. **गोक्षुर** - को भावप्रकाश में बस्तिशोधनः और अश्मरीहर कहा है । गोक्षुर को दूध के साथ देने से मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी एवं वृक्क शोथ को मिटाते हैं । महर्षि चरक ने गोक्षुर को - मूत्रकृच्छ्रानिल हराणाम् । (च.सू. 24)कहा है । शीत वीर्य होने से मूत्र में होने वाला दाह एवं जलन को मिटाता है ।

3. **हरितकी** - त्रिदोषहर एवं रसायनी होने से शरीर के तमाम व्याधि को मिटाती है । हरते सर्वरोगाश्च तस्मात् प्रोक्त हरीतकी । (म.नि.) हरितकी उष्णवीर्य होने से हरितकी अनुलोमन होने से मूत्रवह स्रोतस का आवरण दूर करती है । व्रण, शोफ और मूत्रकृच्छ्र दूर करती है । लेखनी होने से मूत्र के आवरण एवं अवरोध को तोड़ डालती है । महर्षि सुश्रुत ने हरितकी को शोथकुष्ठनुत कहा है ।

पित्त एवं अग्नि विवेचन

* डॉ. माण्डवी गौतम ** प्रो. ओम् प्रकाश उपाध्याय *** डॉ. विनोद कुमार गौतम

तत्र जिज्ञास्यं किं पित्त व्यतिरेकादन्योऽग्निः ?
आहोस्वित् पित्तमेवाग्निरिति ?
(सु.सू. 21/9)

आचार्य सुश्रुत के उपरोक्त कथन में उन्होंने जिज्ञासा व्यक्त की है कि क्या शरीर में रहनेवाला पित्त अग्नि से अलग है या पित्त ही अग्नि है ? आचार्य की यह जिज्ञासा आज भी आयुर्वेद के विद्वानों के समाने उसी रूप में है क्योंकि आयुर्वेद के ग्रन्थों में पित्त एवं अग्नि का वर्णन इस तरह से प्राप्त होता है कि जिससे स्वतः ही यह जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है । इसका निराकरण करना अतिआवश्यक है ।

इस विषय में आचार्य स्वयं ही शंका का समाधान करते हैं कि -

न खलु पित्तव्यतिरेकादन्योऽग्निरूपलभ्यते, आग्नेयत्वात् पित्ते दहनपचनादिष्वभिप्रवर्तमानेऽवग्निवदुपचारः क्रियतेऽन्तरग्नीरिति ॥
(सु.सू. 21/9)

अर्थात् पित्त के अतिरिक्त शरीर में अन्य अग्नि नहीं होती क्योंकि पित्त में अग्नि गुण होने से दहन पाचनादि क्रियाओं के बढ़ जाने पर अग्नि के समान ही उपचार किया जाता है, जैसे पित्त के क्षीण होने पर, अग्नि समान उष्ण गुण वाले द्रव्यों का उपयोग करते हैं एवं पित्त की वृद्धि होने पर शीतल द्रव्यों का उपयोग करते हैं । यहाँ "न खलु पित्त व्यतिरेकादन्योऽग्निः...." कहा है, वहाँ खलु शब्द निश्चयात्मकता का बोध कराता है । आचार्य सुश्रुत ने **आगम प्रमाण द्वारा** भी **"ऊष्म तेजोमय पित्तम्, पित्तोष्मा यः सः पक्तिमान्"** ऐसा कहकर पित्त व अग्नि को एक ही स्वीकारा है ।

आचार्य भोज के अनुसार - जो तेजोमय पित्त की पित्तोष्मा है वही पक्तिमान् जाठ्राग्नि है ।

त[illegible] तेजोमयं पित्तं पित्तौष्मा यः सः पक्तिमान् ।

चरक संहिता में भी सूत्रस्थान 12 वातकलाकलीय अध्याय में कहा है कि -

अग्निरेव शरीरे पित्तान्तर्गत कुपिताकुपितः शुभाशुभानि करोति।

लेकिन **आचार्य चक्रपाणि** ने इसकी टीका में कह दिया कि **पित्तान्तर्गत** वचन से तात्पर्य शरीर में ज्वा रूप अग्नि के निषेध तथा पित्तोष्मा रूप अग्नि के भाव दर्शाना है किन्तु अग्नि का पित्त से अभेद नहीं है क्यों ग्रहणी अध्याय में पित्त वृद्धि होने पर भी अग्निमांद्य बताया है तथा पित्तहर सर्पि भी अग्नि का वर्धन कर अर्थात् आचार्य चक्रपाणि ने पित्त व अग्नि में समानता मानी है 7 (च.सू. 12/11 पर चक्रपाणी टीका)

इसी प्रकार आचार्य वाग्भट्ट ने भी कहा है कि

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति, ज्वरोनास्त्युष्मणा बिना ॥
(अ.हृ.चि. 2

अर्थात् शरीर में ऊष्मा की सत्ता पित्त के बिना न है । इसका मतलब शरीर में ऊष्मा की सत्ता पित्त में नि है लेकिन ऊष्मा सम्पूर्णतः पित्त नहीं है क्योंकि ज्वर ऊष्मा वृद्धि होने पर भी अग्नि वृद्धि नहीं होती है ।

इस प्रकार अग्नि व पित्त में पूर्णरूपेण अ आचार्य सुश्रुत का ही एकीय मत प्रतीत होता है । आ सुश्रुत के अतिरिक्त कुछ अन्य आचार्यों ने पित्त व अग्नि कर्मात्मक रूप से साधर्म्य माना है और कुछ ने इस मत यथावत् स्वीकार नहीं करते हुए पित्त व अग्नि में वै बताया है ।

पित्त व अग्नि में साधर्म्य -

इसे हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं जैसे

1. **परिणमन** - बाह्य अग्नि जिस प्रकार पदार्थों का पाक, शोषण एवं विघटन आदि क्रियाएं कर उन्हें रूप प्रदान करती है, उसी प्रकार शरीर के अन्दर भी भुक्ताहर पर उपरोक्त क्रियाएँ करते हुए उ विघटन, विश्लेषण कर उसे सार व किट्ट रूप करता है ।
2. **वर्ण प्रसादन** - जैसे सूर्य या अग्नि की रश्मियाँ पदार्थों पर पड़ने से उनके विविध वर्ण प्रकट हों तदवत् पित्त भी त्वचा एवं रक्त आदि का रंजन, आदि करके उनको वर्ण प्रदान करता है ।

---

* स्नातकोतर अध्येत्री, स्नातकोत्तर मौलिक सिद्धान्त विभाग, रा.आ.सं., जयपुर
** स्नातकोतर अध्येता, स्नातकोत्तर काय चिकित्सा विभाग, रा.आ.सं., जयपुर
*** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर मौलिक सिद्धान्त विभाग, रा.आ.सं., जयपुर

3. **निर्मलीकरण** - बाह्य अग्नि जिस प्रकार स्वर्ण आदि धातुओं के मल को दूर कर उनको विशुद्ध एवं निर्मल रूप प्रदान करती है उसी प्रकार पित्त भी हृदयादि प्रदेशों पर विकृत श्लेष्मा एवं तम रूप मल का अपनयन करके विशुद्धता प्रदान करता है ।
4. **रूपदर्शन** - अग्नि का प्रकाश, द्रव्यों पर पड़कर उनका दर्शन कराता है । पित्त भी नेत्रों में आलोचक नाम से रहते हुए दर्शन में सहायक होता है ।
5. **आप्यांश का शोषण** - अग्नि, आप्य व स्नेहांशों के सौम्यांश का शोषण करता है । पित्त भी त्वचा पर किए गए अभ्यंगादि के स्नेहांश का शोषण करता है ।
6. **उत्पत्ति** - सृष्टि में पाषाण, वायु, लोहादि धातुएँ एवं काष्ठ आदि द्रव्यों के परस्पर घर्षण से ऊष्मा की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार शरीर में भी दोष, धातु एवं मल के सन्निपात से ऊष्मा रूपी पित्त की उत्पत्ति होती है ।

दोषधातु मलादीनामुष्मेत्यात्रेय शासनम् ।

(अ.हृ.शा. 3/49)

7. पाचक पित्त की अनल संज्ञा -

पित्तं पंचात्मकं तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।
पंचभूतात्मकत्वेऽपि यत्तैजसगुणोदयात् ॥
व्यक्तद्रवत्वं पाकादि कर्मणाऽनलशब्दितम् ।

(अ.हृ.सू. 12/9-12)

पाचक पित्त का स्थान पक्वाशय तथा आमाशय का मध्यवर्ती भाग है । यद्यपि यह पंचभूतात्मक है फिर भी आग्नेय गुण के आधिक्य के कारण तथा सोमतत्व के क्षीण होने पर यह द्रवत्व भाग को छोड़कर काठिन्य भाव को प्राप्त होने से **अनल संज्ञा** से अभिहित किया जाता है ।

8. पित्त के प्राकृत कर्मों में भी अग्नि का स्वरूप उपस्थित रहता है । जैसे - पाचक पित्त का पाचनकर्म आग्नेय अंशों की उपस्थिति के कारण ही सम्पन्न होता है। इसी प्रकार त्वचागत पित्त का एक कर्म शारीरिक ऊष्मा या ताप का उत्पादन करना है । यह ऊष्मा या ताप वस्तुत: पित्त का ही परिणत रूप है । यह बात आचार्य चरक ने भी स्पष्टत: कही है -

यत् पित्तोष्मा य यो या च भा: शरीरे तत्सर्वमाग्नेयं रूप दर्शनं च ।

(च.शा. 7)

9. पित्त का वर्गीकरण करते समय आचार्य सुश्रुत ने पित्त के पाँच भेदों की पाचकाग्नि, रंजकाग्नि, आदि संज्ञा दी हैं, जिससे पित्त ही अग्नि है । ऐसा मान सकते हैं
10. इसी प्रकार प्राकृत पित्त के स्थानों में भी अग्नि क स्वरूप दृष्टिगोचर होता है । आचार्य चरक व अन्‍ आचार्यों ने पित्त का मुख्य स्थान अधोआमाशय अथव पक्वाशय एवं आमाशय के बीच बताया है । यह स्थान पाचन पित्त का उद्गम स्थल है । यहाँ पर स्थित विभिन्न स्रोतों से अनेकानेक आग्नेय पाचक स्रा परिस्रुत होते हैं । जैसे - आमाशय का अम्लीय स्राव यकृतस्राव, अग्न्याशय स्राव व पित्तधरा कला क स्राव । इनमें भी अग्न्याशय का स्राव अधिक आग्ने है । अत: यह वीर्यवान् व विशेष महत्वपूर्ण है । य स्राव अग्न्याशय से नि:स्रुत होकर नलिका द्वारा ग्रहण के भीतर तिल बराबर स्थित एक सूक्ष्म छिद्र में गिरता है । इस स्राव सहित सभी स्रावों व उनकी ऊष्म को पाचक पित्त कहा जाता है जिसका उल्ले शार्ङ्गधर संहिता में भी मिलता है । **अग्न्याशये भवे पित्तमग्निरूपं तिलोन्मितम् पाचकम् ।** (शा.पू. 5/48 अर्थात् अग्न्याशय में जो पित्त है व अग्नि जैसे लक्षण वाला है यह अग्नि रूपी पित्त तिलोन्मित है, जिसक नाम पाचक है । आचार्य निरंजन देव ने **तिलोन्मित** की व्याख्या करते हुए कहा कि पित्त, पित्तप्रणाली द्व के तिलोष्म स्थान से परिस्रुत होता है ।

यहाँ हमने पित्त व अग्नि में कर्मात्मक दृष्टि साधर्म्य बताने की कोशिश की है और आचार्य सुश्रुत ने उपचारात्मक दृष्टि से ही पित्त व अग्नि में अभेद माना है

पित्त व अग्नि में वैधर्म्य -

कुछ आचार्य व टीकाकार आचार्य सुश्रुत के पित्तमेवाग्निरिति हैं इस कथन से सहमत नहीं हैं, उन्हो पित्त व अग्नि वैधर्म्य के पक्ष में कहा कि -

1. यदि पित्त ही अग्नि है जो कटु, विदाही, अम्ल, क्षारा

निदानों से जब पित्त की अभिवृद्धि होती है तब अग्निवृद्धि न होकर शरीर में अग्निमांद्य देखा जाता है एवं मत्स्यमांस, पित्त की वृद्धि करते हुए भी अग्निवृद्धि नहीं करता । इसी प्रकार घृत पित्त का शमन करता है लेकिन अग्निदीपक है ।

2. सुश्रुताचार्य ने स्वस्थ की परिभाषा देते हुए कहा कि - **समदोषः समाग्निश्च समधातु मलःक्रियः।** (सु.सू.15/48) यहां **दोष** व **अग्नि** शब्द दोनों आचार्य ने लिये हैं । यदि पित्त व अग्नि एक ही है तो दोषों के अलावा अग्नि-साम्यता का निर्देश करने का कोई औचित्य नहीं रह जाता है ।
3. आयुर्वेद में पित्त के पाँच प्रकार बताये व अग्नि के तेरह । यदि दोनों में साधर्म्य हो तो दोनों के भेद भी एक ही होने चाहिए ।
4. पित्त दहन पाचनादि कर्मों के साथ, क्लेदन, स्नेहन आदि कर्म भी करता है जबकि अग्नि मात्र दहन पाचनादि कार्य ही करती है ।
5. पित्त केवल जीवित प्राणियों में ही पाया जाता है, जबकि अग्नि जीवित के साथ निर्जीव सभी पाँच भौतिक द्रव्यों में भी रहता है ।
6. पित्त में तेज व जल महाभूत की प्रधानता होती है लेकिन अग्नि में केवल तेज महाभूत ही है ।
7. पित्त भौतिक द्रव्य होने के कारण रस, वीर्य, विपाक आदि भावों से युक्त है तथा उष्ण, तीक्ष्ण, ईषत् स्निग्ध, द्रव आदि गुणों एवं अधोगति वाला है जबकि अग्नि अस्निग्ध, अद्रव, अतीक्ष्ण, उष्ण आदि गुणों एवं ऊर्ध्वगति वाली तथा रस विपाकादि से रहित है ।
8. पित्त सत्व गुण वाला है, जबकि अग्नि सत्व व रजोगुण बहुल है ।
9. चरक ने पित्त को विस्रगंधी कहा है जबकि अग्नि में गंध नहीं होती ।

उपरोक्त विवरण से अब पुनः यह प्रश्न होता है कि यह साधर्म्य वैधर्म्य रूपी दो विचार धाराएं क्यों अब तक बनी हुई है । यदि कोई एक विचार त्रुटिपूर्ण है तो उसे त्याग देना चाहिए, लेकिन ऐसा सम्भव नहीं है क्योंकि दोनों विचार धाराओं के कुछ ठोस आधार हैं, अतः दोनों विचार, धाराओं की उपयुक्तता की सिद्धि अपेक्षित है ।

हमारा प्रथम विचार था - पित्तमेवाग्नि यदि पित्त व अग्नि को एक स्वीकार न किया जाए तो सर्वथा रस, गुण, वीर्य, विपाकादि से रहित अग्नि की चिकित्सा रस, गुण, वीर्य विपाकादि युक्त द्रव्यों से कर पाना कदापि सम्भव नहीं होता । अतः दोनों की चिकित्सा सिद्धान्तों में साम्यता होने से यह विचारधारा उपयुक्त व समीचीन है। आचार्य सुश्रुत ने भी इसी उपचारात्मक व कर्मात्मक दृष्टि से पित्त व अग्नि में साधर्म्य स्थापित किया था ।

हमारा दूसरा विचार था - न हि पित्तमेवाग्निः .. इसे इस प्रकार समझें कि चिकित्सा में कुछ अपवाद देखे जाते हैं, यथा - घृत द्वारा पित्त शमन व अग्निवृद्धि होना दोनों परस्पर विरोधी बातें हैं, जिन्हें स्पष्ट करना भी आवश्यक हो जाता है । आचार्य चरकानुसार (च.सं. 1/12) में बताया गया है कि जिस प्रकार **अणुमात्र अग्नि तृणगोमयादिं** पर गिरकर धीरे-धीरे अग्नि की वृद्धि करती है, उसी प्रकार अल्पमात्रा में लिया गया घृत अग्नि का संधुक्षण करता है। अल्प मात्रा में घृतपान से अग्नि जिस पित्त में रहती है, उस पित्त का स्राव ग्रहणी में ज्यादा करती है, इसलिये वहां अग्नि की मात्रा बढ़ती है और प्रभाव के कारण घृत दीपन कार्य करता है । घृत में उष्णता को समा लेने की शक्ति जल से अधिक होती है इसलिए द्रव गुण युक्त पित्त को घृत शमन करता है । अर्थात् पित्त व अग्नि में स्वरूपात्मक वैभिन्य प्रतीत होता है ।

निष्कर्ष -

इस प्रकार उपरोक्त दोनों सम्भावनाओं पर विचार करने के बाद निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अग्नि व पित्त मूलतः कर्मात्मक या उपचारात्मक दृष्टिकोण से साम्यता रखते हैं लेकिन स्वरूपात्मक दृष्टि से पृथक् होते हैं । इस प्रकार अग्नि व पित्त दोनों शरीर में पृथक्-पृथक् सत्ता रखते हुए एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, सहयोग प्रदान करते हैं एवं एकाकार स्वरूप भी धारण करते हैं।

संक्षेपतः प्राकृत पित्त में 'उष्णता' इसका विशेष गुण है । इस उष्णता के रूप में ही देह के भीतर पित्त की

अनुभूति प्रायः हुआ करती है । पित्तवर्ती इस उष्मा से ही सब प्रकार के पाक सम्भव है, इसी कारण पित्त व अग्नि को अनेक स्थानों में एकाकार भी माना गया है । अतः यह भी कहा जा सकता हैं कि पित्त व अग्नि एक ही वर्ग के दो घटक है जिसमें अग्नि को पित्त का प्रतिनिधि मान सकते हैं ।

ये बात आचार्य निरंजन देव द्वारा दिए पित्त के पाँच भौतिक संगठन को देखने से भी स्पष्ट होती है । उन्होंने बताया है कि –

पित्त में वायु व आकाशीय अंश	-	10%
पार्थिवांश	-	20%
आप्यांश	-	30%
आग्नेयांश	-	40%

यहाँ भी आग्नेयांश की प्रधानता पित्त में दिखाई देती है । अर्थात् पित्त में जो अग्नि का 40% भाग है वह भाग अग्नि सम्बन्धित सभी कर्म सम्पादित करता है एवं पित्त के शेष भौतिक संगठन वाले भाग पित्त के शेष कर्म सम्पादित करते हैं । अतः स्पष्ट है कि पित्त एक समूह है जिसका एक सदस्य अग्नि है ।

यहां आचार्य सुश्रुत के कथन का अभिप्राय लिया जाना चाहिए कि पित्त एवं अग्नि समान वर्ग के हैं, पित्त में से ही अग्नि अलग हुई है और पित्त के अलावा अन्य कहीं से भी अग्नि उत्पन्न नहीं होती है । अतः अन्ततः निष्कर्ष निकलता है कि अग्नि एवं पित्त एक ही वर्ग के दो पृथक्-पृथक् घटक हैं कि या यह कहें कि पित्त की अग्नि सम्बन्धित कार्य करने वाला पित्त का ही एक भाग अग्नि है ।

सन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. शार्ङ्गधर संहिता ।
2. अष्टाङ्ग हृदय ।
3. चरक संहिता - विद्योतीनि टीका ।
4. प्राकृत अग्नि विज्ञान - आचार्य निरंजन देव ।
5. सुश्रुत संहिता - डल्हणाचार्य कृत निवन्ध संग्रह टीका ।
6. चरक संहिता - चक्रपाणि दत्त विरचित - आयुर्वेद दीपिका टीका ।

बैद्यनाथ

प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं । इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता ।

निद्रा तु वैष्णवी प्रोक्ता

* वैद्य (डा.) ओमवीर सिंह ''वीर'', एम.डी. (आयु.)
** सुरेन्द सिंह, बी.ए.एम.एस. (छात्र)

वर्तमान भौतिकतावादी परिवेश में मानव मात्र की दिनचर्या बहुत अस्त-व्यस्त हो गयी है । हर स्थान पर प्रतिस्पर्धा हो रही है चाहे वह खाने-पीने या रोजी रोजगार कोई भी क्षेत्र हो । देर रात तक पार्टी, क्लबों में मनोरंजन तथा सुबह देर से उठना, आज युवा वर्ग की प्राथमिकता बन गयी है । फास्ट फुड तथा शीतल पेयों दिनचर्या में शामिल है । इस भागम-भाग जिन्दगी में प्रत्येक व्यक्ति थोड़ी-सी शान्ति चाहता है जिसके लिए उसे उचित विश्राम, निद्रा तथा अध्यात्म, योग आदि अनेक विधियों का सहयोग लेना पड़ता है इनमें निद्रा का प्रमुख स्थान है ।

महर्षि चरक ने आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य को जीवन के तीन उपस्तभों के रूप में बताया है । इसमें आहार के बाद निद्रा (स्वप्न) का दूसरा स्थान है । जिस तरह शरीर में भूख लगने पर आहार पेट का भोजन होता है उसी प्रकार निद्रा मन का भोजन है । पुरुष को ज्ञान की प्राप्ति इस प्रकार होती है : इन्द्रियां विभिन्न विषयों को ग्रहण करती हैं । यह ग्रहण मन के संयोग से होता है । जब मन का इन्द्रियों से संयोग नहीं होता है तो वह अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थ हो जाता है तथा मन जब आत्मा से संयोग करता है तो ज्ञान की उत्पत्ति होती है । जब मन थक जाता है तो वह इन्द्रियों से संयोग नहीं करता है और निद्रा आने लगती है । कहा भी गया है -

''अभाव प्रत्यात्मा लम्बनावृत्ति निद्रा''

अर्थात् अभाव के कारण आश्रम लेने वाली पित्त वृत्ति का नाम निद्रा है अर्थात् मन द्वारा समस्त विषयों को ग्रहण करने की क्रिया से परित्याग की वृत्ति का नाम निद्रा है । इस समय केवल आन्तरिक मन जागृत रहता है। आचार्य वाग्भट्ट ने निद्रा के सात भेद बताए हैं :-

1. काल स्वभाव जन्म निद्रा ।
2. आमय (रोग) जन्य निद्रा ।
3. चित्त खेद जन्य निद्रा ।
4. देह खेद जन्य निद्रा ।
5. कफ जन्य निद्रा ।
6. आगन्तुज निद्रा ।
7. तमोभाव निद्रा ।

इन उपरोक्त निद्राओं में प्रथम निद्रा (काल स्वभाव जन्म) शरीर की उपस्तम्भ स्वरूप है । शेष निद्रायें विकार युक्त पापस्वरूप होती हैं ।

इन सभी निद्राओं में तमोभाव निद्रा रोगोत्पादक वृता आयु को नष्ट करने वाली होती है । जिस प्रकार विधि पूर्वक लिया गया आहार शरीर की पुष्टि के लिए सुखकर होता है, इसी प्रकार विधि पूर्वक ली गयी निद्रा भी सुखकर होती है । शरीर की स्थूलता और कृशता विशेषकर निद्रा और आहार के कारण होती है ।

जिस प्रकार सत्य, ज्ञान योगी पुरुष को सिद्धि से मुक्त करता है उसी प्रकार यथा विधि सेवित निद्रा शरीर में सुख एवं आयु देने वाली होती है । विधिवत रात्रि में निद्रा सेवन से मनुष्य निरोग, प्रसन्न चिंत्त, बलवर्ण युक्त, धैर्यमान, नति स्थूल और नअति कृश तथा धनवान होकर सौ वर्ष की आयु तक जीता है । रात्रि में जागना नहीं चाहिए । बुद्धिमान पुरुष दिन में सोता नहीं है । रात्रि में उचित मात्रा में (4 से 6 घण्टे) निद्रा का सेवन करें । रात्रि में जागरण से शरीर में रूक्षता उत्पन्न होती है तथा दिन में सोने से स्निग्धता उत्पन्न होती है । बैठकर, उंघने से स्रोतोवरोध उत्पन्न होता है । ग्रीष्म ऋतु में आदान काल के कारण रूक्षता और वायु की वृद्धि हो जाती है तथा रात्रि बहुत छोटी होती है । अतः इस ऋतु में दिन में भी डेढ़ से दो घण्टे सो लेना चाहिए। अन्य ऋतुओं में नहीं सोना चाहिए क्योंकि दिन में सोने से कफ और पित्त प्रकुपित हो जाते हैं । तृष्णा, शूल, हिक्का, अजीर्ण और अतिसार (दस्त) के रोगी को दिन में सोना हितकर है ।

निद्रा का वेग रोकने से हानि :- निद्रा का वेग रोकने से शरीर तथा नेत्रों की पीड़ा, भारीपन, सिर में दर्द, आलस्य, तन्द्रा, जम्हाई तथा अंगमर्द आदि दुष्प्रभाव होते हैं।

---

* निदेशक -धन्वन्तरि अष्टांग आयुर्वेदिक शोध संस्थान, दरोगाबाग, उन्नाव (उ०प्र०)

** राजकीय ललित हरि आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पीलीभीत (उ०प्र०)

निद्रा नाश के कारण :- आचार्यों का मत है कि रोगी, कामी तथा चोर को रात्रि में निद्रा नहीं आती तथा आयुर्वेदज्ञों के महानुसार वात अथवा पित्त की वृद्धि या विकार से, मानसिक अमिताप (चिन्ता, क्रोध, दुःख उन्माद से) से क्षय रोग, दूर्बलता, चोट आदि कारणों से निद्रा का नाश हो जाता है ।

निद्रा लाने के उपाय तथा रोगनिवारण :- शरीर में पीड़ा, भारीपन तथा तन्द्रा आदि होने पर निद्रा का सेवन करें तथा शरीर को हल्के दबाना हितकर होता है । मानसिक क्लेश से बचने के लिए सकारात्मक सोच विकसित करें तथा दुःखोत्पादक विचारों से मन को हटाकर सुखोत्पादक विचारों में मन लगायें ।

निद्रा का नाश होने पर- :- शरीर में तैलमालिश, उबटन, स्नान करें तथा शरीर को हल्के दबाना हितकर होता है । देशीय जलचर प्राणियों का मांसरस, दही, दूध (भैंस का), स्नेह अर्थात् कफवर्धक द्रव्यों का सेवन करें । मन को प्रिय, मन अनुकुल गंध (इत्र) तथा संगीत का सेवन करें । इन सभी उपायों के अतिरिक्त सोने का विस्तर भी निद्रा लाने में अहम भूमिका निभाता है । सोने के लिए श्रेष्ठ आसन होना चाहिए, जिस पर स्वच्छ कपड़ा बिछा हो । जिस पर आरामदेह तकिया लगा हो और बिस्तर ऊँचा-नीचा न हो, घोड़े के बराबर ऊँचा हो, नरम और सुखदायी हो तथा जिस पर सुगंधित द्रव्य तथा पुष्प आदि बिखेरे गये हों, ऐसे आसन पर सुखपूर्वक, प्रसन्न मन से तथा अपने ईष्ठ, गुरु आदि का स्मरण करते हुए सात्विक गुणों से सम्पन्न होकर, पूर्व और दक्षिण दिशा में सिर करके सोना चाहिए ।

इस प्रकार नियम तथा संयम से निद्रा का सेवन करने से मनुष्य दीर्घ आयु तथा निरोग प्राप्त कर सकता है ।

तभी तो कहा है - **''निद्रा तु वैष्णवी प्रोक्ता''**

मुक्ते सुश्रुत तु देहिनम् ।

[लेखक अपने गुरुजनों - डा.ए.के.गुरु (प्रवक्ता पदार्थ विज्ञान) तथा डा. आर.एस. अग्रवाल (प्रवक्ता शरीर क्रिया विज्ञान) का उनके उत्कृष्ट मार्गदर्शन एवं सुझावों हेतु विशेष आभारी है ।]

परीक्षा के समय आपके लाडले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाडले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की. उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाडले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत
एकाग्रता लाए, समझ जगाए।
आज. हररोज और वर्षभर

दर्शनशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में आत्मा एवं मन का परस्पर सम्बन्ध - एक समीक्षा

डा० सुरेश चन्द, एम.डी. (आयु.)

संस्कृति मनुष्य की अन्तरात्मा का आध्यात्मिक अस्तित्व है । यह उदात्त है, इसमें 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' की चाह है । दया, प्रेम, सहानुभूति, करुणा, मंगल कामना, कल्याणकारी जीवन मूल्यों का ग्रहण, आत्मा का उदात्तीकरण और उन्नयन संस्कृति के कार्य हैं ।

आज की दानवी संस्कृति का वाहक बना मानव अपने सामर्थ्य और क्षमता का वास्तविक आकलन किये बिना किसी भी प्रकार प्राप्त भौतिक सुख-सुविधाओं का अम्बार खड़ा कर देने की मानसिकता बना लेता है जो इस काल की तथाकथित सभ्यता का सामाजिक मानक बन गया है ।

यह संसार अपने आप बिना विश्वदृष्टा के स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हो जाता है । वे कहते हैं कि आज के वैज्ञानिक युग में तो टेस्ट-ट्यूब में बच्चा पैदा किया जा सकता है, फिर ईश्वर का अस्तित्व क्या ? यह शरीर ही सब कुछ है । जब तक जीवित है, संसार का उपभोग कर लो । आत्मा, परमात्मा, पुनर्जन्म, स्वर्ण, नरक, मोक्ष आदि की बातें अवैज्ञानिक, तथ्यरहित, आडम्बर एवं ढकोसला मात्र है ।

दर्शन शब्द की निरुक्ति :- 'दृश' धातु में 'ल्युट्' प्रत्यय लगाने से दर्शन शब्द बनता है । भाव करण, अधिकरण में भी प्राय: 'ल्युट्' प्रत्यय का प्रयोग किया जाता है । इस प्रकार देखने की क्रिया देखने का यत्न और दर्शन क्रिया जिसके लिए है वह भी दर्शन कहलाता है । यहाँ पर दर्शन शब्द का ताप्पर्य 'दृष्टा' से है, जो कि स्वयं कभी नहीं देखा जाता, अपितु स्वयंसत्ता (स्वयं के अस्तित्व का अनुभव किया जा सकता है ।)

''सत्वात्मा शरीरं च त्रयमेतत्त्रिदण्डवत् ।
लोकस्तिष्ठति संयोगातत्र सर्व प्रतिष्ठितम् ॥
स पुमांश्चेतनं तच्च तस्याधिकरणं स्मृतम् ।
वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं संप्रकाशितः ॥''

आयुर्वेद चिकित्साशास्त्र और दर्शनशास्त्र का एक ऐसा सम्बन्ध है जिसका वर्णन सृष्टि उत्पत्ति के साथ-साथ देखने को मिलता है । आचार्यों ने ऐसा कहा है कि तिपाई के तीन दण्ड के समान सत्व (मन), आत्मा और शरीर है। इनके संयोग से यह लोक अर्थात् सजीव सृष्टि अवस्थित है और इसी में सबकुछ प्रतिष्ठित है ।

सत्व, आत्मा और शरीर इन तीनों का संयोग ही चेतन पुरुष होता है और वही चेतन पुरुष इस आयुर्वेद शास्त्र का अधिकरण (चिकित्सा का विषय) है । इसी सत्वादि विशिष्ट पुरुष के लिए यह आयुर्वेद शास्त्र प्रकाशित किया गया है ।

''दृश्यते अनेन इति दर्शनम् ॥''

जो शास्त्र जीवन को यथार्थ रूप से देखने और समझने की वास्तविक दृष्टि प्रदान करता है उसे दर्शन कहते हैं । यह दृष्टा ही चेतनातत्व या साक्षी या परमतत्व है, जो सर्वत्र व्याप्त है ।

दर्शनों के भेद :- भारतीय संस्कृति के आधार पर दर्शन शास्त्रों को मुख्य रूप से दो वर्गो में विभाजित किया है -

1) आस्तिक दर्शन ।
2) नास्तिक दर्शन ।

आस्तिक दर्शन :- परलोक, ईश्वर तथा वेद में आस्था रखता है । वेदमूलक आस्तिक दर्शनों की संख्या आचार्यों ने छः बतलाई है जो निम्न प्रकार से है -

i) न्याय दर्शन (गौतम कृत)
ii) वैशेषिक दर्शन (कणाद् कृत)
iii) सांख्य दर्शन (कपिल कृत)
iv) योग दर्शन (पतञ्जलि कृत)
v) मीमांसा दर्शन (जैमिनी कृत)
vi) वेदान्त दर्शन (व्यास कृत)

नास्तिक दर्शन :- जो दर्शन परलोक, ईश्वर तथा वेद में आस्था या विश्वास नहीं रखता उसे नास्तिक दर्शन कहते हैं । ये वेदों को प्रमाण नहीं मानते हैं यथा :-

i) चार्वाक दर्शन ।
ii) जैन दर्शन ।
iii) बौद्ध दर्शन ।

आयुर्वेद पर दर्शनों का प्रभाव :- आयुर्वेद अर्थववेद

रीडर/विभागाध्यक्ष, शरीर क्रिया विभाग, शहीद करतार सिंह सराभा आयु०, मेंडिकल कॉलेज, ग्रा.+पो.-सराभा, लुधियाना

का ही उपांग है, और इसका ज्ञान अनादिकाल से चला आ रहा है । साथ ही दर्शन का उद्भव भी वेदों के समय में हो गया था ।

आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र एक ऐसा सागर है जिसमें अनेक ज्ञान रत्न छुपे हुए रहते हैं और इनका गहन अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद के जितने भी मौलिक सिद्धान्त हैं, वे सभी षड्दर्शन के मध्य किसी न किसी दर्शन से सम्बन्धित होते हैं । उदाहरण स्वरूप दर्शन से सम्बन्धित कुछ आयुर्वेदीय मौलिक सिद्धान्त इस प्रकार है -

i) चरक ने दार्शनिक दृष्टि से छः पदार्थों का विवेचन किया है । इन पदार्थों के नाम वे ही हैं जो वैशेषिक दर्शन में आये हैं ।

ii) न्याय दर्शन में वर्णित प्रमाण की तरह ही आयुर्वेद में भी आगम्, प्रत्यक्ष, अनुमान तथा उपमान प्रमाण का वर्णन प्राप्त होता है ।

iii) आयुर्वेद में वर्णित कर्म पुरुष (24 तत्व) तथा सांख्य दर्शन में वर्णित पुरुष में साम्य प्राप्त होता है ।

iv) योग दर्शन की भांति ही योग एवं मोक्ष का वर्णन आयुर्वेद में भी प्राप्त होता है ।

v) वेदान्त दर्शन सम्मत् आध्यात्मवाद से आयुर्वेद भरा पड़ा है ।

vi) मीमांसा दर्शन में यज्ञ आदि कर्मों का विस्तृत वर्णन है । आयुर्वेद में भी मंत्रादि विधान, सदाचार, तम, दान आदि का वर्णन प्राप्त होता है ।

इस प्रकार षड्दर्शन वर्णित दार्शनिक विषयों से आयुर्वेद सर्वथा ओतप्रोत है । इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि आयुर्वेद चिकित्सा का ही नहीं अपितु दर्शन का शास्त्र भी है ।

आत्मा क्या है ?

आत्मा शब्द 'अत्' धातु अथवा 'अम्' धातु से निष्पन्न है । अप् धातु का अर्थ है सतत् चलना और 'अत्' धातु का अर्थ है सर्वत्र व्याप्त होना है । आत्मा वह निरावयव तथा नित्य द्रव्य है जिसे चैतन्य, ज्ञान एवं कर्म का आधार माना जाता है । सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, बुद्धि आदि ये आत्मा के विशेष गुण होते हैं ।

'ATMA' is a witness and it is luminous like the lamp, in whose light man reads and writer, works and talks and performs all the actions in the world.

''ज्ञानधिकारमात्मा'' ।

ज्ञान का अधिकरण आत्मा है, अर्थात् जिस द्रव्य में समवाय सम्बन्ध से ज्ञान हो वही आत्मा है । आत्मा के भेद जो कि आयुर्वेद सम्मत है :-

1) परमात्मा (शरीरयुक्त)

2) जीवात्मा (शरीरबद्ध) — सूक्ष्म शरीर युक्त आत्मा
— स्थूल शरीर युक्त आत्मा

मन :- 'मन् ज्ञाने' धातु से मन शब्द निष्पन्न होता है ।

''मन्यते अवबुध्यते ज्ञायते अनेन इति मनः ।''

जिसके द्वारा मनन किया जाता है, सोचा समझा जाता है तथा जाना जाता है, उसे ही मन कहते हैं ।

''सुखाघुप्लब्धिसाधनमिन्द्रियं मनः ।''

सुख और दुख के साक्षात्कार की साधनभूत इन्द्रिय को मन कहते हैं । स्वस्थ शरीर और प्रसन्न मन के सन्दर्भ में आहार एक महत्वपूर्ण उपक्रम है । यह शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है । हमारा आहार शुद्ध, स्वच्छ शाकाहारी एवं सुपाच्य तथा पौष्टिक होना चाहिए ।

''युगपत् ज्ञानानुत्पत्तिमनसो लिङ्गम ॥''

एक साथ अनेक विषयों का ज्ञान होना मन का लक्षण है ।

The world appears to us as we look at the world the world is a reflection of our mind.

अणुत्व तथा एकत्व - ये मन के दो गुण कहे गये हैं । चिन्त्य, विचार्य, ऊध्य, ध्येय, संकल्प और अन्य जो भी सुख दुखादि मन द्वारा जाने जाते हैं - वे सभी मन के विषय हैं ।

''सत्वादिधाम हृदयं स्तनारेः कोष्ठमध्यगम् ॥''

मन का स्थान हृदय है और यह हृदय दोनों स्तनों के बीच में उरःकोष्ठ में स्थित है ।

आत्मा और मन का परस्पर सम्बन्ध :- ज्ञान का अधिकरण आत्मा है । वही वास्तविक ज्ञाता या प्रमाता है । जीवात्मा ही मन के द्वारा आभ्यान्तरिक जगत् का तथा मन एवं इन्द्रिय दोनों के द्वारा बाह्य जगत ज्ञान प्राप्त करता है । आभ्यान्तरिक ज्ञान आत्मप्रत्यक्ष है । जबकि बाह्य ज्ञान इन्द्रिय प्रत्यक्ष है । जब आत्मा मन से, मन इन्द्रिय से और इन्द्रिय अर्थ से क्रमशः जुड़ते हैं तभी प्रयत्क्षीकरण होता है ।

अर्थात् आत्माज्ञानी है, लेकिन आत्मा को ज्ञान तभी होता है जब वह कारणों (मन, बुद्धि और इन्द्रियों) से संयुक्त होता है । जब आत्मा मन के साथ, मन इन्द्रियों के साथ, इन्द्रियाँ, इन्द्रियार्थों के साथ होती है तब ज्ञान होता है ।

आधुनिक वैज्ञानिकों ने मानव शरीर की रचना करते हुए कहा है कि मनुष्य का सम्पूर्ण सन्तुलन भार मूर्धा (सिर) होता है । मन हृदय में रहकर मन की समस्त मनोव्यापार क्रियाओं का प्रतिपादन करता है । जब किन्हीं कारणवश मन में विकृति उत्पन्न हो जाती है तो मन दूषित होकर मानव शरीर को भी प्रभावित करता है । महर्षियों का ऐसा मानना है कि जब आत्मा मन के साथ, मन इन्द्रियों के साथ तथा इन्द्रियों का विषयों के साथ सम्पर्क होता है तभी मनुष्य को निश्चित ज्ञान की प्राप्ति होती है । आत्मा एक वह जीव है जो अक्रियशील होते हुए भी चेतना का स्वरूप ग्रहण किए हुए है और मन क्रियाशील होते हुए भी अचेतन है ।

मेरा अपना स्वयं का मत यह है कि मन और आत्मा दार्शनिक दृष्टि से एक दूसरे के पूरक हैं अगर आत्मा में किसी प्रकार का क्षोभ उत्पन्न होता है तब मन भी दुःखी हो जाता है ।

सारांश :- उपरोक्त तथ्यों का विस्तार पूर्वक अध्ययन करके मैंने इस विषय वस्तु में यह निर्णय लिया है कि मन और आत्मा का जो वर्णन प्राचीन शास्त्रों में मिलता है और भगवत् गीता में भी तो भगवान श्रीकृष्ण ने मन के संदर्भ में उपदेश दिया है कि मन चंचल होता है, जिस व्यक्ति ने अपनी अभयेन्द्रिय (मन) पर पूर्ण रूप से अधिकार जमा लिया तब वह व्यक्ति मन का राजा कहलाता है । मन और आत्मा का सम्बन्ध बड़ा घनिष्ठ है जिसका एक दूसरे से परस्पर सम्बन्ध होता है ।

मैंने इस विषय वस्तु को पाठकों के समक्ष विभिन्न मूल ग्रंथों का अवलोकन करके प्रस्तुत करने की चेष्टा की है जो आज के पर्यावरण में भ्रमित (शंकाओं) वार्ताओं को दूर करने की कोशिश की है । अगर मेरे इस शोध पत्र में कोई त्रुटि हो तो शुद्धिकरण करके मुझे लाभान्वित करने की कृपा करें । लेखक आपके सहयोग के लिये महत्वाकांक्षी है ।

बैद्यनाथ

जीवनकल्प

दुर्बलता, कब्जियत, अग्निमांद्य, कैल्सियम
एवं खून की कमी में लाभदायक

द्वादश प्राण में वायु - एक विवेचन

डॉ० आशुतोष कुमार यादव[1]
डॉ० सुमन यादव[2]
प्रो० एस०डी० दूबे[3]

परिचय - द्वादश प्राण वास्तव में आयुर्वेद के मौलिक सिद्धांत के विषय होने के साथ-साथ यह शरीर रचना एवं क्रिया से घनिष्ठ संबंध रखता है। आयुर्वेद आदि काल में "त्रिसूत्री" रूप में वर्णित था। कालान्तर से समाज व युग की आवश्यकता के अनुसार यह "अष्टांग" रूप में विकसित हुआ। यह अष्टांग आयुर्वेद पुनः विस्तृत व विभक्त हुआ और वर्तमान में यह आयुर्वेद अनेक उपांगों व पठनीय विषयों के रूप में परिणत हो चुका है। आयुर्वेद आयुर्ज्ञान का विज्ञान है, आयुर्ज्ञान तभी सम्भव है जब आप शरीर रचना एवं क्रिया के विषय का सम्यक ज्ञान रखेंगे। इस बात की महत्ता अग्निवेश तंत्र के प्रति संस्कर्त्ता चरक ने निम्न रूप में प्रतिपादित किया है।

शरीरं सर्वथा सर्वं सर्वदा वेद यो भिषक्।
आयुर्वेदं स कार्त्स्न्येन वेद लोकसुखप्रदाम्॥

च०शा० 6/19

अर्थात् वही आयुर्ज्ञान में निपुण हो सकता है जो शरीर रचना एवं क्रिया को सम्पूर्ण रूप से एवं सर्वकाल में होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का ज्ञान रखता हो।

अतः सर्वप्रथम आयु एवं प्राण के सम्बन्ध के विषय में ज्ञान होना अनिवार्य है।

अब प्रश्न उठता है यह आयु क्या है ? आचार्य चरक ने आयु को परिभाषित करते हुए कहा है, कि **शरीरेन्द्रियसत्त्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्** (च०सू० 1/42) अर्थात् शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। इसी संदर्भ में शाङ्गर्धर कहते हैं - शरीर प्राणयोरेवं संयोगादायुरुच्यते अर्थात् शरीर और प्राण का संयोग बना रहना ही आयु है।

प्राण क्या हैं ?

आचार्य सुश्रुत ने बारह प्राण कहे हैं

अग्निः सोमोवायुः सत्वंरजस्तमः पंचेन्द्रियाणि भूतात्मेति प्राणाः (सु०शा० 4/2) अर्थात्- अग्नि, सोम, वायु, सत्व, रज, पंचेन्द्रिय (ज्ञानेन्द्रिय) और भूतात्मा (पुरुष) ये 12 प्राण हैं।

प्राण के विषय में विभिन्न ग्रंथों में वर्णित कुछ अंश -

यावदस्मिन शरीरे प्राणो वसति तावदायु

(कौषीतकी उपनिषद् 3/2)

प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्व प्रतिष्ठतम्

(अर्थववेद 11/4/15)

प्राणः प्रीणाति भूतानि प्राणो जीव इति स्मृतः

(भेल सू० 16/19)

प्राणो वा आयुः (कौषीतकी उपनिषद् 3/2)

प्राणो हि प्रजापति (शतपथ ब्राह्मण 4/5/12)

योगशास्त्र की दृष्टि में प्राण का अपना विशिष्ट महत्व है। योग शास्त्री शरीरस्थ व्याप्त वायु को प्राण मानते हुए प्राणायाम यौगिक क्रिया के अन्तर्गत वायु का निरोध कर प्राण रक्षा व दीर्घायु का विधान करते हैं।

प्राणः स्वदेह जीवायुरायामस्तनिरोधनमिति (गोरक्षनाथ) अर्थात् अपनी देह की जीवन-अवस्था का नाम प्राण कहा है। उक्त आप्त वचनों के आधार पर हम प्राण को निम्नरूप में परिभाषित कर सकते हैं।

"प्राण शरीर में रहने वाले वह ऊर्जा रूप महाशक्ति (BIO MOTOR FORCE) है, जो शरीर के सम्पूर्ण अंग-प्रत्यंगों में लीन रहती हुयी चैतन्य का संचार एवं प्रयत्न, चेष्टाओं (Movements) आदि का संचालन करती रहती है, वह पंचभौतिक विशेषतः अग्निसोमवायवीयादि द्वादश रूपा शक्ति ही प्राण है अथवा संक्षेप में हम यह भी कह सकते हैं कि पंच भूतात्मक जड़ शरीर में जीवन या चैतन्यता के लक्षण जिन तत्वों के कारण होते हैं वे तत्व प्राण कहलाने हैं और यही प्राण शक्ति विभिन्न नामों से यथा अग्नि, सोम, वायु, सत्व, रज, तम, पंचेन्द्रिय व आत्मा, विभिन्न शरीरावयवों में अवस्थित होकर जीवन का संचालन करती है।

---

1. जूनियर रेजिडेण्ट, मौलिक सिद्धान्त विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, का०हि०वि०वि०, वाराणसी
2. एम०डी० स्कालर, शल्य तंत्र, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर।
3. विभागाध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, का०हि०वि०वि०,वाराणसी

वायु ही प्राण क्यों :- इस सम्बन्ध में आयुर्वेदीय एवं अन्य संहिता ग्रन्थों में उल्लिखित कुछ प्रमुख तथ्य:-

प्राणमाहुर्मातरिश्वानं वातो ह प्राण उच्यते । (अर्थववेद 11/4/15) **यः प्राणः स वायु - यो वै प्राणः स वातः** (शतपथ ब्राह्मण 5/2/4/9) जो प्राण है वही वायु है,

सर्वाहि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां स्मृतः ।

(च०सू० 17/118)

सर्वतंत्राणां विधाता, वायुरेव भगवानिति । (च०सू०12/8)

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम् ।

वायुर्विश्वमिदं सर्व प्रभुवायुश्च कीर्तितः । (च०चि०28/3)

शरीरांतः संचारी वायुः प्राणः । स चैकोऽप्युपाधिभेदेन प्राणापानादि संज्ञा लभते । (तर्कसंग्रह)

उपर्युक्त संहिता ग्रंथों के आधार पर वात बाह्य जगत व शरीर दोनों की उत्पत्ति, स्थिति एवं विनाश का मुख्यकारी घटक है । हम जब प्राण के विषय में विचार करते हैं तो यही निष्कर्ष निकलता है कि प्राण ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति, विनाश का मुख्य आधार है । अत: प्राण को यदि उपयुक्त दृष्टांतों के आधार पर वायु में ही समावेश करें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

आशय यह है कि वायु वाह्य जगत एवं मानव देह का प्राणांश रूप है । आयुर्वेद के आचार्यों की मान्यता है कि प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवाणु की या सचेतन देह घटक की सत्ता उस अन्तर्घट में विद्यमान वायु के ही कारण है । जब तक यह वायु अविकृत अर्थात् प्राकृत या धातु (देहधारणातधात्वः) रूप में विद्यमान है तब तक उक्त चेतन शरीर स्वस्थ दशा में रहेगा और अपने प्रत्येक कर्म तथा चेष्टा को सुचारु रूप से सम्पन्न करता रहेगा, परन्तु वात के विगुण या विकृत होते ही उक्त चेतन शरीर विनाश की ओर अग्रसर होने लगेगा । आचार्य चरक ने उपर्युक्त तथ्य को ही स्पष्ट करते हुए कहा **स प्राणः प्राणिनां स्मृतः** अर्थात् वात जीवित प्राणी का जीवन है; जीवन का मूल होने के कारण ही वायु को प्राण नाम दिया गया है ।

वात या वायु शब्द ''वा'' नामक धातु से निष्पन्न होता है जिसका अर्थ गति और गन्धन (उत्साह) है । गति अर्थ रखने वाले धातुओं का ज्ञान-गमन-प्राप्ति इन तीन अर्थों में प्रयोग होता है । इस प्रकार वात या वायु नाम गतिमूलक, ज्ञान मूलक, प्राप्ति मूलक और उत्साह मूलक होता है ।

माता के गर्भाशय में गर्भोत्पत्ति के समय हमें ज्ञात होता है कि वायु के गति कर्म द्वारा ही शुक्र-शोणित का परस्पर संयोग होता है । संभोगोपरान्त विभिन्न गतियों व विवर्धन के लिये वायु ही उत्तरदायी है । इसी संदर्भ में आचार्य भेल ने कहा है

मधुच्छिष्टमयं पिण्ड चिन्वन्तिभ्रमरा यथा ।
तथाकोष्टेषु पवनः धातूस्तान विचिनोत्यपि ॥
प्रभूर्हि सर्वभूतानां वायुः प्राणेश्वरोवली ।

(भेल चि०अ० 5)

अर्थात् जिस प्रकार मधुमक्खियाँ मोम से मधु कोष्ठों का निर्माण करती हैं, उसी प्रकार मानव कोष्ठ के भीतर ''वात'' विभिन्न धातु कणों को चुन-चुन कर अंगाव्रयवों की रचना करता है । वात प्राणवान जीवों के प्राणों का अधिष्ठाता है । यह सबसे अधिक बलवान है ।

इसी आशय में चरक ने वात के कर्मों का उल्लेख करते हुए कहा है -

सन्धानकरः शरीरस्य.......कर्त्ता गर्भाकृतिनाम् (च०सू०12/8) अर्थात् शरीर का सन्धानकर (अंगावयवों का जोड़ने वाला) एवं गर्भ को आकृति प्रदान करने वाला भी वायु है ।

वायुस्तंत्रयंत्रघरः यह कहकर आचार्य चरक ने वायु को प्राणरूप में स्पष्ट रूप से सिद्ध कर दिया है तंत्र यंत्र धर का अर्थ तंत्र-शरीर, यंत्र-शरीरावयव हैं । अतः वायु गर्भोत्पत्ति के समय से ही शरीर का आधार रूप में उपकारक है ।

इसी सन्दर्भ में महर्षि जीवक कहते हैं -

वायुर्हि काल सहितः शरीरं विभजाति संदघाति च (का०शा० गर्भवक्रान्ति) अर्थात वायु ही काल के सहयोग से देह में अंग-प्रत्यंगों का विभाजन करता है और उन्हें परस्पर जोड़ता है ।

अष्टांग हृदय में कहा गया है -

''स विश्वकर्मा विश्वात्मा विश्वरूपः प्रजापतिः ।
स्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरन्तकः ॥

(अ०हृ०नि० 15/2)

अर्थात् वायु विश्वकर्मा (शरीर की उत्पत्ति, स्थिति व विनाश इत्यादि करने वाला) विश्वात्मा, विश्वरूप रूप (नाना विध रूप) धारण करने वाला, स्रष्टा (निर्माण करने वाला) धाता (जगत को धारण करने वाला) सामर्थ्यवान, प्रत्यक्ष मृत्यु ही है ।

यहां यह स्पष्ट है कि वायु जगत का स्रष्टा रूप है । शरीर की उत्पत्ति में वायु प्राण रूप में कार्यकारी है इस तथ्य को प्रतिपादित करते हुये सुश्रुत ने कहा है -

"प्रस्पन्दन-उद्वहन-पूरण-विवेक धारण लक्षणों वायुः पंचद्या प्रविभक्तः शरीरं धारयति" (सु.सू. 15/4)

यहाँ पर प्रस्पन्दन आदि कर्म वात के प्राण धारण कर्म ही है और शरीरोत्पत्ति में जिस प्रकार वायु कारण रूप कार्यकारी है उसी प्रकार शरीर के यथावत संचालन में वायु प्राणांश रूप में कार्यकारी है इसी को प्रस्पन्दनादि कर्मों द्वारा व्यक्त किया गया है । यहाँ प्रस्पन्दन का तात्पर्य - नाड़ी, हृदय, नेत्रच्छद्, पेशी आदि को गति देना, उद्वहन का अर्थ - इन्द्रियों से उनके विषयों को ग्रहण कराना, पूरण का तात्पर्य - फुफ्फुसों में वायु को और आमाशय में खाद्य पेय आदि को भी भीतर पहुँचाना, विवेक का अर्थ-प्रसाद भाग व मल भाग को पृथक करना और धारण का अर्थ - वेग रहित अवस्था में शुक्र, मल मूत्रादि को उनके आशयों में स्थिर रखना तथा वेगकाल में प्रवृत्त कराना । ये सभी वायु प्राणधारक कर्म हैं जो कि जीवित शरीर के लिए अत्यंत आवश्यक हैं, इन कर्मों को वायु ही निर्वाह कर प्राणधारण करता है । इन कर्मों के अभाव में शरीर का जीवित रहना असंभव है । इसी संदर्भ में चरक ने कहा है -

उत्साहोच्छवासनिःश्वासचेष्टा धातु गतिः समा ।
समो मोक्षो गतिमतां वायोः कर्माविकारजम् ॥

(च०सू० 18/49)

वायु शरीर एवं जगत का धारक -

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा ।
धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा ॥

(सु०सू० 21/8)

अर्थात् जिस तरह चन्द्रमा, सूर्य और वायु क्रम से विसर्ग आदान और विक्षेप इन क्रियाओं से जगत् का धारण करता है उसी तरह सोमांश कफ, सूर्य समान पित्त तथा वायु देह का धारक है । इसी को स्पष्ट कर चरक ने कहा है -

अध्यात्मलोको वाताद्यैर्लोको वातरवीन्दुभिः ।
पीड्यते धार्यते चैव विकृताविकृतैस्तथा ॥

(च०चि० 26/292)

वायु शरीर का मूल है -

मूल का अर्थ आधार से है, अर्थात् वायु शरीर का धारक (प्राण) है ।

दोष धातु मल मूलो ही देहः (अ०सं०सू०19)
दोषधातुमलमूलं हि शरीरं (सु०सू०15/3)
वातपित्तश्लेष्माण एवं देहसम्भवहेतवः ।
XXX तैरेवाव्यापन्नैरधोमध्योर्ध्वसन्निविष्टैः शरीरमिदं
धार्यते, त एव च व्यापन्नाः प्रलयहेतवः ।

(सु०सू० 21/3)

नर्त्ते देहः कफादस्ति न पित्तान्न च मारुतात् ।
शोणितादपि वा नित्यं देह एतैस्तु धार्यते ॥

(सु०सू० 21/4)

यहाँ यह स्पष्ट है कि वायु देह धारण में आधार (प्राण) रूप है, वायु के बिना देह की सत्ता नहीं हो सकती अतः वायु इस देह (शरीर) की प्राणशक्ति है ।

प्रकृति प्राण का द्योतक :- आयुर्वेद के आचार्यों का मानना है कि देह प्रकृति अपरिवर्तनशील है अर्थात वात प्रकृति के पुरुष आजीवन वातज प्रकृति के रुप में ही रहता है । जब वह प्रकृति में परिवर्तन होती है तो शरीर का नाश हो जाता है । अर्थात् इस प्रकृति के परिवर्तन के कारण शरीरस्थ प्राणों की सत्ता का विचलन हो जाता है । अतः प्रकृति जो कि दोषज (वात पित्त कफ) है प्राण रूप में शरीर में रहती है । इसमें परिवर्तन या विकृति की वृद्धि शरीर नाश (प्राण नाश) का द्योतक है ।

शुक्रशोणितसंयोगे यो भवेद्दोष उत्कटः ।
प्रकृतिर्जायते तेन ....।

(सु०शा० 4/62)

प्रकृतिर्हीयतेऽत्यर्थं विकृतिश्चाभिवर्धते ।

(च०ई० 8/60)

स्वस्थ अवस्था में वायु का कारणत्व -

सुश्रुत ने स्वस्थ पुरुष के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है -

समदोषः समाग्निश्च समाधातुमलक्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥
(सु०सू० 15/48)

अर्थात् जब शरीर में दोष (वात, पित्त, कफ) साम्यावस्था में रहेंगे तो मनुष्य स्वस्थ रहेगा । इससे भी यह स्पष्ट है, कि वायु शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक तत्व है जिसकी साम्यता के बिना न तो स्वस्थ ही रहा जा सकता है और न ही जीवित ।

अतः जिस तत्व के बिना शरीर स्वस्थ व जीवित न रह सके उसी को तो प्राण कहते हैं और यही प्राणतत्वरूप वायु है ।

वायु एवं प्रकृति (Nature)- आयुर्वेद में अधिकांश शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं का मूल वात को माना गया है क्योंकि शारीरिक व मानसिक व अन्य गत्यात्मक क्रियायें वाताधीन ही हैं । चरक ने सूत्र 12/3 में शरीरगत वायु की स्पष्टरुपेण असंघात (रूपहीन) एवं **अनवस्थित** (चंचल) माना है । महर्षि चरक ने लोक गत वायु के विविध गुण धर्मों का वर्णन करते हुए कहा है कि वायु वह शक्ति है जिसके द्वारा सूर्य, चन्द्र, विविध नक्षत्र व ग्रह गणों की गति होती है ।

''आदित्यचन्द्रनक्षत्रग्रहगणानां सन्तानगतिविधानं''
(च०सू० 12/8)

आधुनिक भौतिक विज्ञान में इस क्रिया को Space Science (दिक् विज्ञान), Time (काल), Gravitational field(गुरुत्वाकर्पण क्षेत्र) एवं Electro Magnetic field (वैद्युत चुम्बकीय क्षेत्र) से सम्बन्ध माना है । अतः यह शक्ति भी वायु ही है । सुश्रुत ने भी शरीर गत वायु को, जो कि समस्त शरीर में संचरण करता है को स्वयं भू, सूक्ष्म तथा विभु माना है ।

स्वयंभू -- (सु०नि० 1/5) यद्यपि यह अव्यक्त है तथापि कर्माद्वारा व्यक्त हैं **अव्यक्तो व्यक्तकर्मा च** - ।
(सु०नि० 1/7)

शार्ङ्गधर ने कहा है :-

पित्तं पंगुः कफः पंगुः पंगवो मलधातवः ।
वायुना यंत्र नीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत् ॥
(शा०पू० 5/43-

अर्थात् शरीरगत वायु वह शक्ति है जो दो पित्त एवं कफ को तथा धातुओं एवं मलों को जो पंगु गति प्रदान करता है ।

अष्टांग हृदयकार ने कहा है -

उत्साहोच्छ्वास निःश्वास चेष्टा वेगप्रवर्तनैः ।
सम्यग्गत्या च धातूनामक्षाणां पाटवेन च ॥
(अ०हृ०सू० 11/1-

अर्थात् वायु प्राकृतिक अवस्था में उत्साह, उच्छ् निःश्वास, शरीर की शारीरिक व मानसिक क्रियाओं (चेष्टा का) प्रवर्तक है तथा स्वाभाविक वेगों का नियंत्रक, (मस्ति जनित प्रत्यावर्तित क्रियायें जिन्हें हम इच्छा पूर्वक दबा बढ़ा सकते हैं ।), सप्त धातुओं के समुचित प्रवाह उनके कर्मों का नियंत्रण तथा ज्ञानेन्द्रियों की क्रियाओं नियंत्रण वायु करता है ।

चरक ने सूत्र स्थान अध्याय 12 में वात प्राकृतावस्था एवं विकृतावस्था के कर्मों का विशद किया गया है । कहा गया है कि वायु शरीर में कुपित पर अनेक प्रकार से शरीर का अहित करता है, व प्राणों भी नाश करता है ।

प्राणांश्चोपरुणादि (च०सू० 12/8), **पीडयन्त्येते प्राणानाशु हरन्ति च** ॥ (च०चि० 28/ इसलिए आचार्य चरक ने वायु को प्राण कहा है ।

सर्वा हि चेष्टा वातेन स प्राणः प्राणिनां स्मृतः ।
(च०सू० 17/1

इसी बात को स्पष्ट रूप से सुश्रुत ने निदान में निम्न रूप में कहा है -

वायुर्यो वक्त्र संचारी स प्राणो नाम देहधृक ।
(सु०नि० 1/

अर्थात् वह वायु जो मुख में विचरण करती है नाम से जानी जाती है और वही देह को धारण करती इसी प्राण वायु के कार्यात्मक स्वरूप का वर्णन करते

शार्ङ्गधर ने कहा -

नभिस्थः प्राणपवनः स्पृष्ट्वा हत्कमलान्तरम् ।
कण्ठाद् बहिर्विनिर्याति पातुं विष्णुपदामृतम् ॥
(शा०पू० 5/89-90)

इसी प्राणरूपी शरीर गत वात के उपरोक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि वात एक ऐसी शक्ति है जो स्वयंभू है, स्वयं गतिशील है तथा जो शरीर की समस्त महत्वपूर्ण रचनाओं व उनके कर्मों को नियमन तथा एकरूपता के लिए उत्तरदायी है । इससे स्पष्ट होता है कि शरीरगत वायु, लोकगत वायु से अभिन्न है। यह शक्ति अदृश्य होते हुये भी अपने कर्मों द्वारा व्यक्त है । यह हमारी ज्ञानेन्द्रियों से ग्राह्य न होने से अतीन्द्रिय है । यह एक सर्वशक्तिमान तत्व है जो सभी पदार्थों में कारण (आधार/प्राण) रूप में विद्यमान है । अन्य दोष, धातु को यही अपने आश्रित रखकर शरीरोपकारक कार्यों का संचालन करता है ।

इस बात रूपी तत्व का ज्ञान, साहस, एकाग्रता, गतिशीलता, ज्ञानाज्ञानता आदि शारीरिक व मानसिक क्रियाओं द्वारा होता है । यह बात रुप तत्व शारीरिक अणु-अणु में व्याप्त है । परन्तु पाँच रुपों "प्राण, उदान, समान, व्यान एवं अपान" शरीर में स्थित है ।

यह वायु शब्द, स्पर्श की प्रकृति, श्रवणेन्द्रिय व त्वचा का उपादान कारण है । हर्ष व उत्साह की योनि है, अग्नि का उद्दीपक है यही दोषों के शोषण में, मलों के उत्सर्जन में कारण है । यह वात तत्व आयुष्य की उचित अनुवृति (आयुषेऽनुवृतिप्रत्ययभूतो - च०सू० 12/8) में कारण भूत होने से प्राण शक्ति रूप में आचार्यों द्वारा वर्णित है जो युक्ति युक्त व विवेक पूर्ण है ।

इस प्रकार उपरोक्त शास्त्रोक्त आप्त वचनों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वायु शरीर में होने वाली सभी प्रकार की गतियाँ (Movement) चाहे वह श्वास-प्रश्वास की या रक्त परिभ्रमण का या चलने फिरते की हो, सभी प्राणरूपी इस वायु पर ही निर्भर है । बिना गति (Movement) के शरीर की सत्ता संभव नहीं है । अतः वायु के शरीर धारक होने से ही द्वादश प्राण में गिना गया है ।

बैद्यनाथ

मधु

शरीर को शीतलता पहुँचाता, भूख बढ़ाता है । आँखों के लिए उपयोगी एवं कान्तिवर्द्धक

स्वास्थ्यवर्द्धक शरदऋतु

कविराज डा० दिवाकर ठाकुर, जी.ए.एम.एस. औनर्स (पटना) डी.एससी.ए. (आयुर्वेद वृहस्

शरद ऋतु का लक्षण :- जिस काल में वातावरण सुहावना हो, रात्रि सुहावनी हो, प्रकृति शस्य श्यामला एवं दिलोदिमाग को आनन्दित करने वाली हो वही शरद ऋतु है। राजशेखर कवि ने भी इसको सुहावनी ऋतु माना है। संत तुलसी दास ने इस ऋतु को देखकर अपनी अभिव्यक्ति का वर्णन इस प्रकार किया है।

वर्षा विगत शरद ऋतु आई।
लछिमन देखहु परम सुहाई॥
फूले कास सकल महि छाई।
जनु बरसा कृत प्रगट बुढ़ाई।
बरसा गत निर्मल ऋतु आई॥

सम्प्रति हम लोग शरद ऋतु का आनन्द ले रहे हैं। यह आश्विन और कार्तिक दो माह की होती है, अर्थात् 16 सितम्बर से 15 नवम्बर तक इसका समय निर्धारित किया गया है। यह दक्षिणायन में होती है। सूर्य पृथ्वी से दूर हो जाता है. इसलिए सूर्य की शक्ति क्षीण और चन्द्रमा शक्तिशाली हो जाता है। आचार्य चरक इस ऋतु को "नृणां मध्य बलावहा" कहा है। वर्षा में संचित पित्त सूर्य की किरणों से तप्त होकर प्रकुपित हो जाता है। इस समय लवण रस की वृद्धि और वात का शमन होता है।

सड़ी गरमी एवं गुम्मस झेलने के बाद निर्मल एवं स्वच्छ शरद ऋतु में सभी कोई आनन्द की अनुभूति कर अपने-अपने व्यवसाय में लग जाते हैं। शरद ऋतु में ही शारदीय नवरात्र प्रारम्भ होता है और पूजा-पाठ में आस्था रखने वाले धार्मिक लोग नौ दिन व्रत रखकर जगतजननी माँ दुर्गे की आराधना करते हुए उनसे आधि-व्याधि से मुक्ति पाकर सदैव नीरोग एवं प्रसन्नचित रहने की कामना करते हैं। आयुर्वेद के अधिष्ठाता आराध्य देव भगवान धन्वन्तरि का प्रादुर्भाव भी शरद ऋतु में कार्तिक कृष्ण पक्ष त्रयोदशी को ही हुआ था। स्वच्छता एवं निर्मलता का त्योहार दीपावली भी इसी ऋतु में आती है। अतएव आधिभौतिक, आधिदैविक एवं दैहिक व्याधियों को विनष्ट करने में यह ऋतु सर्वथा अनुकूल रहती है।

गौरतलब हो कि यदि इस ऋतु में खान- अनियमितता बरतने से पीलिया, आमाशय के रोग, प्रदाह, अम्लपित्त, रक्तपित्त, पेचिश, रक्त विकार आदि प्रकार के पित्तज रोग उत्पन्न हो जाने पर यह कष्टदायिनी हो जाती है, जिससे चिकित्सकों को अर्थ का बढ़िया अवसर मिल जाता है।

शरद ऋतु में खान-पान की व्यवस्था - लघु, शीत और तिक्त रसों की प्रधानता होनी चाहि पित्त प्रकोप को शान्त करे। प्रातः उषापान करना इस के लिए परमोपयोगी है। ताम्र जल पात्र अति उपयोगी विसंक्रमित माना गया है। रात ताम्र पात्र में जल रख प्रातः उठकर कुल्ला कर पीने से पित्त की शांति मलावरोध दूर होता है। शरीर में चुस्ती-फुर्ती और दिमाग तरोताजा रहता है। तिक्त रसों में नीम, मधुर महुआ और कषाय रस में बबूल की दतमन श्रेष्ठ मानी है। कागजी नीबू को पानी में निचोड़कर शर्करा जल पीना भी स्वास्थ्यप्रद होता है। अनार, ईख एवं का पानी भी लाभप्रद एवं पित्त नाशक होता है। डबल रोटी, बिस्कुट, मूंग का हलुआ, जिलेवी, पेड़ा, आँवला, बेल का मुरब्बा, मिश्री, चावल का खीर उ होता है। बंदगोभी, तोरई, मौसम अनुसार हरे शाक का प्रयोग होना चाहिए। इस ऋतु में उत्पन्न फल जैसे अनार, नारियल, केला, पपीता, मीठा अन्नानास, सिंघाड़ा आदि फलों का रसास्वादन लेने से उत्तम एवं शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता मिलती है। ताजा गाय का दूध, मक्खन, मलाई खाने का भी यही अनुकूल है। शरद पूर्णिमा की रात्रि में खीर पकाकर में रख प्रातः सेवन करने का विधान आज भी देखने को मिलता है। जड़ी-बूटी के जानकार इस श्वास उपयोगी जड़ी मिलाकर दम्मा के रोगियों को रोग मुक्त करते हैं। जो जल दिन में सूर्य की कि तत्प हो और रात्रि में चन्द्रमा की शीतल किरणों से हो, ऐसे जल को हंसोदक कहते हैं। हंसोदक का

इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ़ आयुर्वेद, रिसर्च एण्ड हॉस्पीटल, सर्किट हाउस के सामने, पकड़ी, आरा (भोज

प्रशस्त स्वास्थ्यवर्द्धक माना गया है ।

पीने और स्नान करने के लिए स्वच्छ एवं विसंक्रमित जल का व्यवहार करना चाहिए । रेशमी, सफेद सूती वस्त्रों का पहनावा व्यवहार में लाना चाहिए क्योंकि ये प्रकृति के अनुकूल होते हैं, हवा इनसे आती-जाती रहती है । नाइलोन, टेरीकॉट एवं टेलरीन इसलिए व्यवहार में नहीं लाना चाहिए क्योंकि ये चर्मरोग को उत्पन्न करते हैं ।

शरीर शोधन का उपयुक्त समय शरद ऋतु ही है । पित्त एवं रक्त शुद्धि के लिए विरेचन एवं रक्त मोक्षण सुयोग्य चिकित्सक से कराना चाहिए । प्रकुपित पित्त की शान्ति के लिए निसोथ, अमलतास का गुदा, हरड़ चूर्ण, त्रिफला एवं मुनक्का क्वाथ, कुटकी चूर्ण पाँच ग्राम में पाँच ग्राम मिश्री मिलाकर दें । मृदुरेचन के लिए गुलकन्द का प्रयोग करना हितकर होता है ।

इस ऋतु में रक्तज व पित्तज रोग होने पर स्वर्णसूतशेखर रस, योगेन्द्र रस, कुमदेश्वर रस, प्रवालपिष्टी, चन्दनासव, उशीरासव, कुष्माण्डावलेह, ब्राह्म रसायन, आमलकी रसायन, दाडिमावलेह, खसखस का शर्बत, गुलाब या केवड़े का शर्बत, चन्दन का शर्बत, अर्जुनत्वक चूर्ण, अश्वत्थत्वक चूर्ण, आम्रत्वक चूर्ण, पंचतिक्त घृत, शतावरी घृत, वंशलोचन, गुलर, पित्त पापड़ा, धनिया, दुर्वा आदि पित्त शामक का प्रयोग स्थानीय सुयोग्य चिकित्सक के परामर्श अनुसार करके स्वास्थ लाभकर सकते हैं ।

बैद्यनाथ स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना,
आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन,
भूख न लगना तथा ऋतु
धर्म के समय होने वाली तकलीफ
व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

अपना शब्द ज्ञान परखिये !

*डा० गोपेश कुमार न.शर्मा
**डा० दिनेश कुमार शर्मा

ज्ञान की प्राप्ति, अनुभूति या उपलब्धि में शब्द प्रमाण या आप्तोपदेश का अपना महत्त्व है । सामान्य वार्तालाप से ईश्वर प्राप्ति तक की क्षमता या सामर्थ्य रखने वाला यह 'शब्द' है । आद्य महाभूत का आद्य गुण 'शब्द' है । शब्दों का संसार काफी आकर्षक, मनोरंजक एवं ज्ञानवर्धक है ।

संख्या अर्थात् सम्यक् ज्ञान (True Knowledge) इस प्रकार ज्ञान के साधक रूप संख्या का अपना विशेष स्थान है । विश्व की न्यूनतम से अधिकतम संख्या 0 से 9 तक के अंकों पर निर्भर तथा नियत होती है । असत् से सत् की अनुभूति संख्या से होती है ।

यदि ज्ञान के ये दो स्तंभ एक हो जाएँ या मिलकर काम करें तो कितने महत्वपूर्ण हो सकते हैं इसका अनुमान लगाया जा सकता है और वास्तव में होता भी है । व्याकरण शास्त्र में इसे द्विगु समास कहते हैं । बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनकी प्रसिद्धि संख्याओं के मेल के कारण है । जैसे त्रिदेव, त्रिफला, पंचामृत, सोलह श्रृंगार, सप्तपदी, नवग्रह, षोडश संस्कार आदि आदि ।

इनमें अनेक शब्द ऐसे भी हैं जिनका हम व्यवहार में प्रचुरता से प्रयोग करते हैं किन्तु उनकी विस्तृत व्याख्या से परिचित नहीं होते । आपके शब्द ज्ञान को तरोताजा करने के लिये तथा मनोरंजन के लिये आयुर्वेद, शरीर, स्वास्थ्य एवं सामान्य ज्ञान संबंधी ऐसे शब्दों की श्रृंखला प्रस्तुत है । आशा है आप अपने विचारों/सुझावों से सूचित करेंगे ।

एक -(संख्या 'एक' के महत्त्व को बताते हुए कुछ शब्द)

एकाक्ष	- एक आँख वाला (काना); कौआ; शिव का एक नाम ।
एकाक्षर	- पवित्राक्षर 'ओम्' ।
एकदन्त	- श्री गणेश ।
एक देव	- परमेश्वर ।
एकशफ	- ऐसे पशु जिनके खुर कटे न हों जैसे - घोड़ा, गधा आदि ।
एकश्रृंग	- गैंडा; विष्णु का एक नाम ।
एक कुष्ठ	- एक प्रकार का त्वक् विकार ।
एकताल	- शालाक्य का एक यंत्र ।
एकवृंद	- एक कण्ठगत व्याधि ।
एकांगक	- बच्चों में रेवती ग्रह के कारण होने वाला पक्षवध ।
एकांगवात	- ऐसा वातिक विकार जो शरीर के किसी एक हिस्से को प्रभावित करता हो; पक्षाघात का समानार्थी शब्द ।
एकायाम	- अर्दित रोग ।
एकैविषा	- पाठा या त्रिवृत या मयूर शिखा ।
एकमार्ग	- शरीरस्थ तीन रोगमार्गों में से कोई एक।
एकदंष्ट्र	- एक विषाक्त प्राणी (चरक) ।
एकान्त	- एक तंत्रयुक्ति (सुश्रुत) ।
एकावर्त	- विषाक्त अन्न की अग्नि परीक्षा करने पर उत्पन्न होने वाली आवर्ताकार ज्वाला।

द्वि - (द्वि उपसर्ग से निर्मित्त कतिपय शब्द)

द्विक्षार	- यवक्षार एवं सज्जी क्षार ।
द्विदल	- द्विबीजपत्र, प्राय: शिम्बी या द्विदल वर्ग के द्रव्य ।
द्विजींरक	- श्वेतजीरक एवं कृष्ण जीरक ।
द्वितालक	- शालाक्य तंत्र में प्रयुक्त यंत्र ।
द्विकरंज	- विटप (वृक्ष) करंज एवं लता करंज ।
द्विककुद्	- ऊँट ।
द्वितिक्ता	- कटुका एवं चिरायता-स्तन्यशोधन गण में प्रयुक्त ।
द्विनिशा	- हरिद्रा एवं दारुहरिद्रा ।
द्विपंचमूल	- लघु एवं बृहत्पंचमूल (दशमूल) ।
द्विपाद	- दो पाँवों पर चलनेवाले प्राणी जैसे - मनुष्य, वानर, वक, कुक्कुट आदि । इनके दन्त नख क्षत से विषाक्त जख्म होते हैं ।
द्विप्रभव	- दो उद्गमस्थान वाला रोग - रक्तपित्त ।
द्विमार्ग	- उर्ध्व एवं अधोमार्ग ।

---

* दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालंधर - 8 ** जे.एस.एस.आयु. कालेज, मैसूर - 15

द्विमुख	- दो मुख वाला पुरीषज कृमि; जलौका का एक नाम ।
द्विरद	- दो दांत वाला - हाथी (नाग) + किंजल्क-नागकेसर ।
द्विरदाह्वया	- गजपिप्पली ।
द्विरेतस	- नपुंसक, स्त्री एवं पुरुष दोनों चिन्हों से युक्त व्यक्ति; खच्चर ।
द्विवार्ताकी	- बृहती एवं कंटकारी ।
द्विशफ	- दो खुर वाले पशु - गाय, भैंस, बकरी, हिरण आदि ।
द्विहृदया	- दो हृदयवाली - गर्भवती स्त्री ।
द्विज	- दो बार उत्पन्न होनेवाला - 1) दाँत 2) अण्डों से उत्पन्न प्राणी जैसे - सर्प, मत्स्य, पक्षी आदि । 3) हिन्दुओं की प्रथम तीन जातियाँ - ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ।
द्विक	- दो ककार वाले शब्द - काक (कौआ), कोक (चकवा) ।
द्वामुष्यायण	- दो पिता वाला पुत्र - दत्तक जाने के बाद भी अपने मूल पिता का उत्तराधिकारी रहने वाला व्यक्ति ।
द्वयणुक	- दो अणुओं वाला ।
द्विजिह्व	- दो जीभवाला; सर्प; भेदी या अविश्वसनीय व्यक्ति (दोगला) ।
द्विमातृक	- 1) दो माताओं वाला - अपनी तथा सौतली माँ वाला; गणेश एवं जरासंध के पर्याय 2) वर्षा एवं नदी दोनों से सिंचित क्षेत्र ।
द्वैत	- द्वित्व का दर्शन - प्रकृति एवं पुरुष, ब्रह्म एवं जगत् ।
द्विपपिप्पली	- गजपिप्पली ।
द्विव्रणीय	- आभ्यतर या आघातज व्रण सम्बन्धित ।
द्विरेफ	- दो रकार वालाशब्द-भ्रमर (भौंरा) ।
द्विशीर्ष	- अग्नि का एक नाम ।
द्विष्ट	- अरुचिकर, द्वेषपूर्ण, मन को न भानेवाला ।

(क्रमशः अगले अंक में)

बैद्यनाथ

पंचसकार चूर्ण

पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

बैद्यनाथ

अग्निमुख चूर्ण

हाजमा को बढ़ाने वाला उपयोगी दवा

Critical Evaluation of ASTHAVIDHA PARIKSHA

*Dr. Parameswarappa.S.Byadgi, MD.Ph.D. ** Vasudha P. Rao

Introduction

Naadi, mala, mutra, jihwa, shabdha, sparsha, drik, akruti are the eight types of examination technique mentioned in Ayurveda for the diagnostic analysis of patient.

रोगाक्रन्त शरीरस्य स्थानान्यष्टौ परीक्षयेत् ।
नाडी मूत्रं मलं जिह्व शब्दं स्पर्शं दुगाकृर्ति ॥
(यो.र.)

Our Acharyas were able to diagnose a disease on the basis of these 8 factors.

Now-a-days a physician needs technical skill, scientific knowledge, interpretation and analysis both laboratory and clinical findings for accurate diagnosis and treatment. There are many methods described for the rogi pariksha like dwidha (Pratyaksha and Anumana). Trividha (darshana, sparshana and prashanai) and (Prastyaksha, Anumana and Aptopadesha). Chaturvidha (Pratyaksha, Anumana, Aptopadesha and Yukti). Shasvidha (Pancha jnanendriya and Prashanai) Ashtavidha (Naadi, mala, mutra, jihwa, shabdha, sparsha, drik, akruti). Dashavidhaparik (Prakriti, Vikriti, Sara, Samhanana, Satwa, Satmya, Ahar ashakti Vyayama shakti Pramana vaya).

NADI PARIKSHA

This is the examination of pulse to know its rhythm, rate, speed, force, thus by which the physician can know the disease involved.

Nadi pariksha was first of all explained by Sharangadhara. It deals with the anatomy, structure, situation, presentation of nadi in diseased condition, dosha involvement etc.

करस्य गुष्टमूले या धमनीजीवसक्षिणिइई ।
तत्वेष्टय सुखं दुःखं कायस्य पुण्डिताः ॥
(शा.सं.)

The one which is situated at the root of thumb and which is pulsating is nadi and this is the proof for life. If it is pulsating normally then it refers to sukha and dukha if abnormal. This should be well elicited by Physician, then he will be called as NADI Pundita (the wellversed)

Synonyms of nadi :

हिंस्त्र स्नायुर्वसा नड़ी धमनी धरा ।
तन्तुकी जीवितघ्न शिरा पर्यायावचकः ॥
(ना.प

These are the names given to nadi, whic indicates its structure, situation of identificatio

Nadipariksha vidhi :

प्रातः कृतसमाचरः कृताचरपरिग्रहम् ।
सुखासीनः सुखसीनं परीक्षर्थमुपाचरेत् ॥
(ना.प

- The nadi should be examined early in mornin
- The physician should leisurely examine th patient with due concentration so as to elic pulse reading accurately.
- The physician should be to the right the th patient. hold his writs, just below the root o thumb, keeping his forefinger, middle an ringfinger in the inner side of the wrist and fe the pulse.
- Fore finger indicates vata.
  Mid finger indicates pitta.
  Ring finger indicates kapha.

Repeatedly pressure has to be applied an relieved for 3 times so as to accurately asses the exact Nadi.

- This can be done on any hand but usually rig hand for males, left for females.

पुंसः सडा दक्षकरप्रकोष्टे वामे बलायास्तुपरीक्षणीय ।
अतद्द्वयी धर्मटयायूतस्यमन्ये द्वयोरेव नपुंसकस्य ॥

Contraindication :

Pulse examination should not be do when

- the patient feels for urge of mala mut
- hungry.
- tired.
- drunkard
- sadhya bhukta
- krodhita
- after vyayama

सद्यः स्नातस्यभुक्तस्य क्षुतृष्णां तपसेविनः ।
व्यायामक्लान्त देहस्य सम्यक् नाडी न बुद्यते ॥
(ना.प

---

*Assistant Professor and HOD, Department of Roga Nidana, SDMCA & H, Hassan - 573201
** 3rd Professional B.A.M.S., SDMC & H, Hassan

Nadi to touch :–

ज्वर वेगे तु धमनीसोष्णा वेगवति भवेत् ॥

(शा.सं.)

Katina	Mridu
- vriddavastha	- balya
- raktabhara	- Raktabharapata
- vata roga	- Kapha roga

Doshanusara :

1	vata	vishama
2	pitta	Tikshana
3.	kapha	Manda

Rogeshu nadi gati :

स्थित्वास्थित्वा चलटि या सा स्मृता प्राणनाशिनि ॥

(शा.धृ.स.)

Sl.	Roga	Status of nadi
1.	Deeptagni	Tkishna
2.	Mandagni	Manda
3.	Dhatu kshina	Feeble
4.	Bhaya soka chinta	Kshina
5.	Ajeerna	Manda or kathina
6.	Jwara	Ushna sparsha, vegavan
7.	Vataja jwara	Kathina
8.	Pittaja jwara	Kathina, ativega
9.	Kaphaja jwara	Manda
10.	Atisara	Fast initially, kshina later
11.	Grahani	Vchalita
12.	Visoochica	Sookshma frog like irregular
13.	Arsha	Sthira, manda
14.	Vatarsha	Vakragati
15.	Pittarsha	Frog like
16.	Kapharsha	Manda irregular
17.	Pandu kamala	Chanchala, tikshna
18.	Rajayakshama kaphaja kasa	Kampayaukta, kshina manda
19.	Shwasa	Tivra gati
20.	Hikka	Asthira vegavan
21.	Krimi	Mridu, tivra, vega, lupta
22.	Swara bhanga	vega, lupta
23.	Gulma	Sookshma, kshina
24.	Raktapitta	Chanchla, speed
25.	Unmada	Manda kathina
26.	Vatarakta	Chanchala aniyamita
27.	Kushta	Manda vakra
28.	Visha	Kathina
29.	Hrudroga	Manda like hamsa kathina lupta tivra
30.	Vata vyadhi	Vakra, manda and vishama
31.	Pradara	Sthira mada gati
32.	Tridosha asadhya vyadhi	Manda tivra, shitila alternative lupta.

Physiologically normal pulse rates.

Sl.	AGE	RATE/min.
1.	Foetus	140
2.	Upto 1yr. Child	130
3.	1 yr. Child	120
4.	2 yrs.	110
5.	3 yrs.	100
6.	7 yrs.	95
7.	14 yrs.	90
8.	Upto 20 yrs.	85
9.	40 yrs.	75
10.	vridda	75-80

Pulse Examination

Aim : To determine the rate of arterial puls

Principle with the ventricular contracti the blood is not pumped into the aorta but als generate pressure waves that are transmitted alor the walls of the vessels. These pressure wav expand the arterial wall and expansion is palpat as pulse.

NOTE :

- ▲ Ratio of pulse rate to respiratory rate is 1:4
- ▲ During puppusa shotha 1:3

- ▲ With every degree raise of temperature of body 8-10 pulses increase.
- ▲ Pulse rate <50 and >150 indicates dangerous serious diseases.

Procedure : Arterial pulses are detected by gently compressing the vessels aganist the bone.

The radial pulse is examined by compressing the radial artery against the head of radius.

For better elicitation of the pulse the forearm of subject be semi pronated and wrist slightly flexed.

Pulse study includes
Rate,
Rhythm,
Volume,
Character,
Condition of arterial wall.
Radio femoral delay and
other peripheral pulses.

other pulses that can be examined are :
Radial Ulnar, Brachial, Carotid, Femoral, Popliteal, Posterior tibial, Dorsalis pedis Etc.

ABNORMALITIES :

PULSUS ALTERNANS : in this condition the pulse is regular but alternately big and small in amplitude. This is seen in left ventricular diseases where it develops strong and weak, beats alternatively.

BIFERIENT PULSE : it is a slow rising and collapsing pulse. It is seen in aortic stenosis and aortic regurgitation.

WATER HAMMER PULSE : It is also called collapsing pulse. It is seen in aortic regurgitation, characterized by rapid upstroke and rapid down stroke. Upstroke is due to increased stroke volume and down stroke is due to collapse of pulse.

AORTIC STENOSED PULSE : Due to abnormalities is aorata incomplete closing of the value is seen. Blood takes time to enter the aorta; a slow rising pulse is seen

MUTRA PARIKSHA

This includes the examination of urine, its consistency. color, dosha involved etc. so as to elicit the diseases by observing changes in it.

DOSHANUSARA :

Vata dushita mutra	Pandu, neela, snigdhaabhava, when put on floor moves like sarpa.
Pitta dushita mutra	Peeta, aruna, snigdha, when put on floor heeps up.
Kapha dushita mutra	Shwetha, thick and more when put on floor looks like pearl

ROGANUSARA

Sl.	Mutra lakshana	Roga	Roga in modern
1.	Clean like water odour less, turbid, viscous	Udakameha	Polyuria, hydrauria, diabetis, chronicnephrities.
2.	Sweet like viscous, turbid	Ikshu meha	Temporary glycosuria.
3.	Dense deposit of ppt in vessel.	Sandrameha	Phosphaturia fibrinuria chyluria.
4.	Dense urine	Sandra prasada meha	Acetonuria phosphaturia chyluria
5.	White like floor and frequent micturition.	Shuklameha	Bacteriuria chyluria phosphaturia
6.	Seminal fluid like	Shukra meha	Spermaturia
7.	Cold, sweet, odour	Sheetameha	Phosphaturia
8.	Hard and small particles particles.	Sikatameha	Lithuria Graviluria.
9.	Slow passage of urine	Shanairmeha	Benign prostrate hypertrophy
10.	Full mucous and thready.	Alalmeha	Albuminuria polyuria

11.	Clear salty	Lavanameha	Oxaluria.
12.	Slow mic. with air bubbles	Phena meha	Pneumaturia.
13.	Alkali in taste and smell	Kalameha	Haematuria melininuria
14.	Like the colour of the bird jay and of acidic	Neelameha	Indiguria
15.	Urine with blood and small of raw meat.	Lohita meha	Haematuria
16.	With blood	Rakta meha	Urinary calculus, tumours, malaria.
17.	Manjista water like	Manjishtameha	Haemoglobinuria.
18.	Turmeric water like	Haridra meha	Urobilinuria.
19.	Acidic in taste	Amlameha	Lithuria
20.	Urine mixed with lipid.	Vasameha	Lipuria.
21.	Myelous, marrow in urine.	Majjameha	Myeluria Byelitis osteomalacia hypercalcinuria
22.	Profuse mic. Like elephant	Hastimeha	Diabetis, polyuria.
23.	Odour and colour like honey	Madhumeha	Diabetis Mellitus.
24.	Like ghrita	Sarpi meha	Phosphaturia.
25.	Krishna pita sarakta	Panaki	Hepato-renal failure.

Some other diseases :

Sl.	Roga	Mutra Lakahna
1.	Ajeerna	Like tender coconut water.
2.	Jwara Vataja Pittaja	Dark, colour, alpamatra. Nagakesara colour Pita
3.	Dwandwaja	White, dumrayukta, burning sensation.
4.	Atisara	Raktayukta, Avilatha.
5.	Jalodara	Granules like.
6.	Amavata	Consistency like takra.
7.	Visoochika vrikka shota	Atyalpa matra

TAILA BINDU PARIKSHA :

In this examination taila is used to assess the abnormalities depending on the character of taila that changes when put on the urine sample.

Procedure :

- mutra is collected early in morning.
- kept in wide mouthed sterilized vessel.
- a drop of taila is put on the surface of the urine.

INTERPRETATION

If the TAILA bindu splits roga is sadhya
- floats & does not spread kastasadhya
- sinks & settles asadhya.

Dishanusara :

Sl.	Disha	Condition of disease.
1.	Purva	Recover soon.
2.	Pashchimama	Delayed recovery.
3.	Dakshina	Jwarotpatti gradual recovery.
4.	Uttara	Very soon recovery.
5.	Eshanya	Death within 1 month.
6.	Agneya	Death is sure.
7.	Nairutya	Upadrava of disease.
8.	Vayavya	Death shortly

URINE EXAMINATION

This is to find the changes in urine color, specific gravity, consistency, etc and thus find abnormalities.

Preservation of the urine sample.

Urine examination should be done with fresh sample only or it should be preserved properly as it gets decomposed very quickly. Some of the preservatives are :

- Toluol - 2ml/100ml urine.
- Thymol - can store for many days but shows +ve in protein test.
- Formalin - 1 drop/30 ml
- Boric acid-0.3gm/120 ml

hysical examination :

ormal is pale straw yellow color

Sl	Urine state	Disorder
1.	Colorless	DM Alcoholic Nervousness
2.	Milky purulent	Genitor-urinary tract
		infection.
3.	Orange	Urobilinogenuria, fever
4.	Red	Haematuria Phenphtalein
		pyridium, sulphanol.
5.	Greenish	Jaundice
6.	Dirty brown	Acute febrile disease
7.	Brown yellow	Due to rhubarb cascara
8.	Dirty blue	Putrefying urine.
9.	Blackish	Hemorrhage in UT

NORMAL AND ABNORMAL VALVES

		Normal	Abnormal	Diseases.
1.	Specific gravity	1.27-1.30	>1.30 hyper sthenuric <1.10 hypo sthenuric	Glycosuria acute nephritis albuminuria chronic nephritis, DI
2.	Volume	1200-1500ml/day 400ml-night	<500ml/day >2000ml/day no urine	Oliguria Polyuria Anuria.
3.	Turbidity	Fresh Clear	-cloudy -precipitated -more blurred	Presence of RBC or bacteria changed ph. Presence of other Urinary constituents Presence of Phosphates & urates in urine.

onclusion :

Ashtavidha pariksha described by Yogaratnakara are the main diagnostic tools by which we can scertain the diagnosis of the disease with prognosis. Eightfold examination methods will help to diagnose he disease accurately. So knowledge of this is very important to get success as clinician. It is need of he hour to evaluate critically to assess the present developments in clinical medicine.

बैद्यनाथ

चन्द्रप्रभा बटी

यह लौह, स्वर्णमाक्षिक भस्म एवं शिलाजीत युक्त होने के कारण एल्ब्यूमिन आदि सभी प्रकार के विकारों को दूर करती है। स्त्री-पुरुष दोनों के लिए यह समान उपयोगी है। धातु का पतलापन, शीघ्रपतन, स्वप्नदोष और सब प्रकार के प्रमेह की निश्चित दवा है, श्वेत प्रदर में लाभदायक है।

Effect of Bilwa (Aegle marmelos) Phala Majja Churna on Gastrointestinal Tract

* **Dr. Laxmi N. Gupta** ** **Dr. R.K. Sharma** *** **Dr. C.B. Jha**

Bilwa (*Aegle marmelos* Corr.) is a well known drug used in the management of diseases of gastrointestinal trect. It is abundantly available through out the country. It is the chief constituent of Dashamoola (Su.Su. 38/69). Unripe fruit of Bilwa pacifies Vata and Kapha doshas. It has katu, tikta and kashaya rasa, snigdha and teekshna guna and ushna virya, It has grahi property and improves appetite. The ripe fruit of Bilwa has madhura rasa as anurasa. It is heavy to digest and produces vidaha and vistambha in the body. It vitiates the doshas and expels out foul smelling vayu (Su.Su. 46/174-175). The fruit and leaf are also useful in curing various diseases. No scientific work has been reported so far on the effect of Bilwa Phala Majja Churna on gastrointestinal motility. Efforts were made to evaluate the effect of Bilwa on gastrointestinal tract in albino rats experimentally.

Pharmaceutical Study :

Preparation of Bilwa Phala Majja Churna was done by following the general method of Churna Nirmana vidhi described by Sharngadhara Smahita Madhyama Khanda (S.S.M.K. 6/1).

Prepration of Bilwa Phala Majja Churna :

Material :

For the preparation of Bilwa Phala Majja Churna, unripe fruit of Bilwa was collected in the month of February and March

Name of the ingredient	Latin name	Part used	Quantity
Bilwa	*Aegle marmelos* Corr.	Fruit (Phala Majja)	As per requirement

Equipments :

Knife, Steel tray, Cloth, Mortar and pestle, Mixie, Sieve (No. 80), Steel container.

Principle :

Powdering.

Procedure :

1. The fruit of Bilwa was washed properly then it was cut with a knife into big pieces.
2. The outer hard covering of the fruit was removed with knife. Then the pulp of the fruit was cut into small pieces.
3. The small pieces of fruit pulp are taken in a steel tray and dried in sun light.
4. The dried pieces of the fruit pulp were crushed in mortar and pestle.
5. The crushed material was teken in a mixie and powdered.
6. The powder was sieved through sieve No. 80.

Observations :

1. A typical smell of Bilwa was observed.
2. Colour of the Churna was light yellow.
3. The taste of the Churna was sweet, astringent and bitter.

Precautions :

1. Unripe fruit of Bilwa should be taken.
2. It should be free from any infected material.
3. It should be sieved carefully.
4. The Churna should be protected from moisture.

Result :

Quantity of Bilwa Phala Majja taken = 100gm
Quantity of Churna obtained = 96 gm

Yielding rate of Bilwa Phala Majja Churna was 96% of the weight of Bilwa Phala Majja.

Chemical study :

Bilwa Phala Majja Churna was subjected for following tests:

1. Organoleptic tests
2. Physico-chemical test

1. Organoleptic tests :

The following table shows the different characteristics of Bilwa Phala Majja Churna:

Name of Sample	Colour	Odour	Taste	Consistency
Bilwa Phala Majja Churna	Light Yellow	Typical smell of Bilwa	Sweet, astringent & bitter	Churna

---

* **M.D. (Ay.) Dept. of Rasa Shastra, I.M.S., BHU, Varanasi**
** **Prof. & Head, Dept. of Physiology, I.M.S., BHU, Varanasi**
*** **Prof. & Head, Dept. of Rasa Shastra, I.M.S., BHU, Varanasi**

2. Physico-chemical test :

The following table shows the result of Physico-chemical test of Bilwa Phala Majja Churna :

S. No.	Name of the Experiment	Result
i.	Determination of Loss on Drying	5.40%
ii.	Determination of Ash Value	3.11%
iii.	Determination of Acid Insoluble Ash	0.34%
iv.	Determination of Water Insoluble Ash	3.33%
v.	Determination of Water Soluble Extractive	27.53%
vi.	Determination of Alcohol Soluble Extractive	30.20%

Aim of the experimental study :

Experimental study was conducted with an objective of evaluating the effect of Bilwa Phala Majja Churna on gastrointestinal tract.

Material and Methods :

The whole study was conducted on inbread albino rats of Charles-Foster strain, weighing 125 gm to 225 mg of both sexes which were procured from Central Animal House, I.M.S., B.H.U., Varanasi. The animal were housed in plastic cages (43 x 27 x 15 cm) and were kept under standard laboratory condition with controlled tempature (25 ± 5^{0}C) and lighting. The animals were allowed free access to food (Hindustan Lever rat pellets) and water.

Grouping of the animals :

Eight albino rats were used in the study; four animals were kept under control group and four animals in treated group (Bilwa Phala Majja Churna).

These animals were acclimatized for ten days in the animal house of Department of Physiology, I.M.S., B.H.U., Varanasi before commencement of the experiment. The amimals of the treated group were administered the trial drugs for a period of 6 days. The animals were kept on fast for 18 to 20 hours before starting the experiment to clear their stomach of any food particles. The animals were allowed free access to water during the fasting period.

Dose determination and administration of the trial drug :

Bilwa Phala Majja Churna was given in a dose of 200 mg/100 mg body weight of albino rats twice a day intragastrically. The animals were fed the dose twice a day i.e. between 10 to 11 a.m. to 4 to 5 p.m. The control group animals were fed with water in identical volume. The animals were weighed daily in the morning and the diet consumption of the animals was recorded daily.

* Bilwa Phala Majja Churna was mixed with 5 ml of distilled water and then administered.

Procedure :

The animal was given 5 ml of Barium suspension in isotonic saline (0.9% w/v) containing 1.5 gm of Barium Sulphate (Eskay Fine Chemicals, Mumbai) was introduced into the stomach by a 5 ml syringe. After half hour the animal was sacrificed, the abdomen was opened by a midline incision.

The length of small intestine was measured by the method of Barry et al. (1961) with some modifications. A wooden block, fixed with a meter scale was used for the purpose; upper surface of the block was kept continuosly wet with 0.9% w/v saline (37^{0}C). The small intestine extending from the gastroduodenal junction to ilecaecal junction was laid out on the block, closely along the meter scale and given manual stretch gently, on either of its ends, until it was just straight, thereafter the organ was left lying free on the block for one mintue. At the end of the period. its total length was measured and then cut open lengthwise, to ascertain accurately the position of Barium-head on the scale.

The stretch was isolated between two ligatures, one at the oesophageogastric junction and the other at gastroduodenal junction. The stomach was weighed and then cut open and washed for its luminal contents into a beaker with normal saline (0.9% v/v) till no Barium particles could be visualized on the mucosal surface. The wall of the stomach was dried mobbed with filter paper and the weight of empty stomach was recorded. The total luminal content was found by difference in the weight.

The intestinal transit and the gastric emptying were calculated on the basis of the method described earlier.

Calculation :

Gastric emptying is defined as the percentage of the administered Barium Sulphate which has left the stomach during the specified period (half hour) and is calculated by the formula:

$$\frac{Px - Pa}{Px} \times 100$$

Where Pa = Barium Sulphate recovered from the stomach.

Px = Barium Sulphate introduced into the stomach.

Chemicals :

The sodium Chloride used was of Analar grade and was obtained from Sigma Chemicals. For the Barium meal, Microbar powder from Eskey Fine Chemicals, Mumbai was used. Stastistical significance was assisted by Student's 't' test.

Observations and Results :

The following effects of Bilwa Phala Majja Churna are observed.

1. Body Weight -

The effect of Bilwa Phala Majja Churna on the body weight of animals is shown in the table

Details	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
* Day 1	163.00 ±28.88	150.00 ± 50.79	14.440	25.394	t=0.14 p>0.05
* Day 2	162.00 ± 30.93	160.50 ± 52.44	15.465	26.219	t=0.05 p>0.05
* Day 3	166.75 ±31.57	155.75 ±51.64	15.787	25.818	t=0.36 p>0.05
*Day 4	168.25 ±28.66	162.00 ±52.74	14.332	26.369	t=0.21 p>0.05
#Day 1	169.75 ±29.68	165.75 ±54.31	14.840	27.155	t=0.13 p>0.05
#Day 2	174.50 ±29.18	170.50 ±53.61	14.592	26.803	t=0.13 p>0.05
#Day 3	179.75 ±30.48	167.75 ±52.20	15.239	26.100	t=0.40 p>0.05
#Day 4	172.00 ±28.11	173.25 ±53.24	14.053	26.622	t=0.04 p>0.05
#Day 5	173.00 ±30.31	176.00 ±55.35	15.155	27.677	t=0.10 p>0.05
#Day 6	169.00 ±29.14	177.75 ±56.28	14.572	28.141	t=0.28 p>0.05

* During Acclimatization # During treatment

The body weight of control group animals increased by approximately 1gm/day. The increase was seen continuously for more than 10 days. In the rats fed with Bilwa Phala Majja Churna also increase in the body weight at the same rate was observed for a period of 6 days. Therefore feeding of Bilwa Phala Majja Churna does not seem to effect the growth of the animals.

2. Diet Consumption :

The dietary consumption by the control and treated groups of animals is shown in the table.

Days	Diet consumption (per gm body weight in mg)	
	Control group	Treated group
* Day 1	97	99
* Day 2	98	105
* Day 3	106	99
* Day 4	111	103
# Day 1	107	107
# Day 2	116	115
# Day 3	115	110
# Day 4	114	118
# Day 5	109	116
# Day 6	109	119

* During Acclimatization # During Treatment

When presented as food consumption/g body weight of the animal, the control group anima consumed approximately 97 to 109 mg/gm bod weight. The animal fed with Bilwa Phala Maj Churna also consumed a diet of approximately 9 to 119 mg/gm body weight. The difference i consumption of food between the control an treated group of animals was not significan statistically (P>05).

3. Effect on Small Intestine :

The effect of Bilwa Phala Majja Churna on the small intestine is shown in the table.

Small Intestine	Mean ± SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Length	102.75 ±10.81	96.25 ± 12.31	5.406	6.156	t=0.79 p>0.05
Intestinal Transit	73.75 ± 7.89	78.00 ± 13.93	3.945	6.964	t=0.53 p>0.05
Weight	7.32 ±0.95	8.65 ±2.51	0.477	1.255	t=0.99 p>0.05

(i) Effect on the Length of Small Intestine :

The totals of four animals were fed with Bilwa Phala Majja Churna and identical numbers of animals fed with tap water were used as control. The length of small intestine is found to be decreased in the animals treated with Bilwa Phala Majja Churna. This is a significant observation. Despite of the fact, this observation is not statistically significant. The experiment provides evidence that Bilwa Phala Majja Churna might have produced spasm of the small intestine in albino rats.

(ii) Effect on Intestinal Transit :

The values obtained from four treated animals when compared with control group showed a significant increase in intestinal transit of Bariu meal in the treated group. When the values of th length of small intestine in the treated group o animals are observed, the increase in the intesti transit of Barium meal in the treated gro becomes self explanatory i.e. the Bilwa Phala Ma Churna increases the intestinal transit of Bari meal by increasing the tone of musculature o small intestine.

(iii) Effect on Weight of Small Intestine :

There was an increase in the weight o small intestine in the treated group as compa to the control. However, the difference in the wei of small intestine in the control and treated gro was not statistically significant.

4. Effect on Large Intestine :

The effect of Bilwa Phala Majja Churna on the Large intestine is shown in the table.

Large Intestine	Mean & SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Length	17.25 ±1.71	17.25 ± 3.69	0.854	1.843	t=0.00 p>0.05
Weight with contents	4.84 ± 0.48	6.45 ± 1.97	0.242	0.987	t=1.59 p>0.05
Weight without contents	2.57 ±0.27	3.23 ±0.93	0.134	0.464	t=1.36 p>0.05

(i) Effect on the length of large intestine :

There was no change in the length of large intestine in response to drug treatment.

(ii) Effect on the weight of Large Intestine :

The animals treated with Bilwa Phala Majja Churna showed as increase in the weight of large intestine when compared with the control group. However, the difference in the weight of the large intestine in the control and treated animals was statistically not significant.

(iii) Effect on the contents of Large Intestine :

The mean difference between the contents of the large intestine of control and treated groups was found statistically non significant.

5. Effect on Stomach contents :

The effect of Bilwa Phala Majja Churna on the stomach contents are shown in the table.

Stomach	Mean & SD		S E		Unpaired 't' test
	Control group	Treated group	Control group	Treated group	
Weight with contents	2.36 ±0.25	2.23 ± 0.55	0.125	0.274	t=0.41 p>0.05
Weight without contents	2.05 ± 0.48	1.80 ± 0.58	0.200	0.291	t=0.74 p>0.05

Though the weight of the content of the stomach in the treated group of animal was higher as compared to the control, but it does not report the dry weight of the content. Therefore it does not provide any idea about emptying of the stomach.

Discussion :

Bilwa Phala Majja Churna did not influence the normal body growth of the animal and also did not influence the dietary consumption of the treated animals when compared with the control.

The observation made on the animals treated with Bilwa Phala Majja Churna suggests that when given daily for 6-7 days it enhances the tone of the musculature of small intestine in albino rats. This is indicated by the reduction in the length of small intestine. The feature of reduction in length of intestine in treated group of animals was constant but the value when compared with the controls was not statistically significant. Nevertheless, observations seem to be of great importance. This is for the simple reason that continuous intake of Bilwa Phala Majja Churna for serveral days might produce spasm of the put with resultant accompanied features of constipation or diarrhoea and abdominal pain.

The intestinal transit of Barium meal was seen to be enhanced in albino rats treated with Bilwa Phala Majja Churna when compared to the control. These observations support the earlier observation of decrease in the length of small intestine in treated group. Since the increase in tone of intestinal musculature would cause both decrease in the length of small intestine and increase in the transit rate of the Barium meal in the organ.

The classical texts such as Caraka Samhita, Sushruta Samhita, Astanga Hridaya and Bhavaprakash do not describe the limitations of intake of the Bilwa preparations. The present study, however, suggets that Bilwa Phala Majja Churna should not be taken for longer periods.

Conclusion :

Bilwa Phala Majja Churna did not influence the dietary consumption and normal body grow of the experimental animals. Bilwa Phala Majja Churna when given twice a day for 6-7 days enhanced the tone of the musculature of small intestine in albino rats. There was reduction in the length of small intestine and increase in the intestinal transit. These findings prove the gra effect of the drug Bilwa.

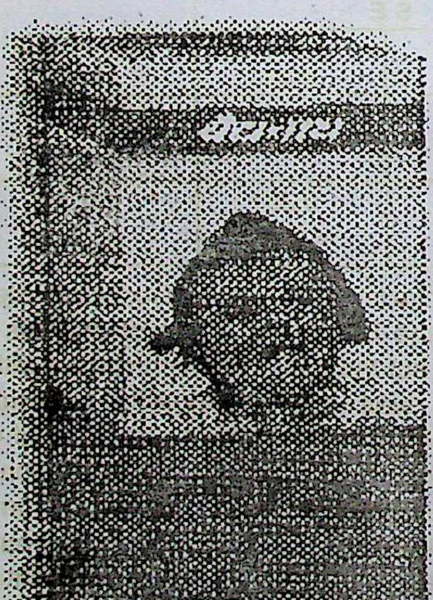

बैद्यनाथ

जन्मघूँटी

जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती । इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं ।

छात्रोपयोगी

M.D. B.H.U. (OPEN COMPETITION) स्मृति पर आधारित हल प्रश्न-पत्र

1. प्र०:- कुवज्रक किसका पर्याय है -
(a) वैक्रान्त (b) माक्षिक
(c) अभ्रक (d) रजत

2. प्र०:- त्रय उपस्तम्भ है -
(a) वात, पित्त, कफ
(b) सत्व, आत्मा, शरीर
(c) आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य
(d) सत्व, रज, तम

3. प्र०:- कारण द्रव्यों की संख्या होती है -
(a) 6 (b) 9 (c) 15 (d) अनन्त

4. प्र०:- Trendelenburg Test is for -
(a) Saphenous Femoral incompitance
(b) Deep vein thrombosis
(c) Twisted (Collateral tributries)
(d) Gluteus paralysis

5. प्र०:- कटु तैल अध्याय में काश्यप ने किस व्याधि का वर्णन किया है -
(a) प्लीहा (b) प्रतिश्याय
(c) क्रिमि (d) अर्श

6. प्र०:- Kehr's Sign is related with
(a) Pancreatic rupture
(b). Liver rupture
(c) Stomach rupture
(d) None

7. प्र०:- ''कर्षफल'' किसका पर्याय है -
(a) हरीतकी (b) विभीतक
(c) कोशातकी (d) कर्कटश्रृंगी

8. प्र०:- काश्यपानुसार पांचभौतिक तैल का रोगाधिकार है -
(a) पंचेन्द्रिय विवर्धन (b) बालातिसार
(c) बालशोष (d) कोई नहीं

9. प्र०:- राजतैल का अभ्यंग काश्यप ने निर्दिष्ट किया है -
(a) त्वक रोगों में (b) प्रतिश्याय में
(c) फक्क में (d) क्षीरालसक में

10. प्र०:- प्रियंगु का प्रयोज्यांग है -
(a) मूल (b) कन्द
(c) फल/पुष्प (d) पंचांग

11. प्र०:- कटफल का प्रयोज्यांग है -
(a) फल (b) काण्डत्वक
(c) मूल (d) पुंकेशर

12. प्र०:- निर्विषा का प्रयोज्यांग है -
(a) कन्द (b) मूल
(c) फल (d) पंचांग

13. प्र०:- शंखपुष्पी का प्रयोज्यांग है -
(a) पुष्प (b) फल
(c) मूल (d) पंचांग

14. प्र०:- चरकानुसार श्रेष्ठ फल है -
(a) आमलकी (b) द्राक्षा
(c) दाड़िम (d) हरीतकी

15. प्र०:- द्राक्षा का कुल है -
(a) Vitaceae (b) Verbenaceae
(c) Combretaceae (d) Solanaceae

16. प्र०:- श्रेष्ठ संग्राही द्रव्य है -
(a) दाड़िम (b) जीरक
(c) अतिविषा (d) पिप्पली

17. प्र०:- श्रेष्ठ विषघ्न द्रव्य है -
(a) वत्सनाभ (b) चौलाई
(c) शिरीष (d) स्वर्ण

18. प्र०:- श्रेष्ठ कृमिघ्न द्रव्य है -
(a) पलाश (b) सुहागा
(c) निम्ब (d) विडंग

19. प्र०:- विडंग का वानस्पतिक नाम है -
(a) Embelia ribes (b) Cesalpenia crista
(c) Mucuna prurita (d) Anethum sowa

20. प्र०:- 'पित्तहृन्मधुरा तिक्ता सर्वकण्डुनाशिनी'' भावप्रकाश का उक्त कथन है -
(a) हरिद्रा हेतु (b) दारुहरिद्रा हेतु
(c) अम्रगंधी हरिद्रा हेतु (d) बांकुची हेतु

21. प्र०:- ज्योतिष्मति का वानस्पतिक नाम है -
(a) Curcuma amada
(b) Celastrus panniculatus

(c) Vitis vinifera
(d) Moringo oliefera

22. प्र०:- वत्सनाभ का कुल है -
(a) Menispermaceae
(b) Valerianaceae
(c) Rennunculaceae
(d) Combretaceae

23. प्र०:- वत्सनाभ का प्रतिविष है -
(a) गौमूत्र (b) टंकण
(c) नारियल तैल (d) सभी

24. प्र०:- सर्पगंधा का कुल है -
(a) Valerianacy (b) Solanacea
(c) Apocynacea (d) None

25. प्र०:- कुटकी का कुल है -
(a) Maraceae (b) Fabaceae
(c) Scrophulariaceae
(d) Bambacaceae

26. प्र०:- पूर्वरूप के भेद होते हैं -
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) भेद नहीं होते।

27. प्र०:- पूर्वरूप किस अवस्था में प्रकट होते हैं -
(a) प्रकोपावस्था (b) स्थानसंश्रयावस्था
(c) प्रसरावस्था (d) संचयावस्था

28. प्र०:- लाल रूधिराणुओं का जीवन काल होता है -
(a) 3-4 दिन (b) 60 दिन
(c) 120 दिन (d) कुछ घंटे

29. प्र०:- शार्गंधरानुसार शुक्रजनन द्रव्य है -
(a) अश्वगंधा (b) शतावरी
(c) दोनों (d) आमलकी

30. प्र०:- "C" cells are found in -
(a) Thymus gland
(b) Parathyroid gland
(c) Thyroid gland
(d) Plancrease

31. प्र०:- Which one is an Iodine rich food -
(a) Desert food (b) Sea food
(c) Mountain food (d) All

32. प्र०:- अलाबू का प्रयोग किस दोष के प्राधान्य रक्तनिर्हरणार्थ करते हैं -
(a) वात (b) पित्त
(c) कफ (d) त्रिदोष

33. प्र०:- सुश्रुतानुसार आभ्यान्तर विद्रधि में प्रयुक्त है -
(a) सालसरादि (b) लोघ्रादि
(c) वरूणादि (d) सभी

34. प्र०:- अतिविषा का रस होता है -
(a) मधुर (b) तिक्त (c) कषाय (d) कटु

35. प्र०:- शुष्क मरीच का रस होता है -
(a) मधुर (b) तिक्त (c) कटु (d) कषाय

36. प्र०:- एरण्ड का रस होता है -
(a) मधुर (b) तिक्त (c) कटु (d) कषाय

37. प्र०:- "कृत्सनो हि लोको बुद्धिमतामाचार्य........ संद है -
(a) च०सू०-17 (b) च०वि०-8
(c) सु०शा०-1 (d) सु०चि०-13

38. प्र०:- चरक के चिकित्सा स्थान में कितने अध्याय हैं।
(a) 30 (b) 40 (c) 46 (d) 60

39. प्र०:- चरक पर लिखी गयी आयुर्वेद दीपिका टीका के लेखक हैं -
(a) डल्हण (b) आषाढ़वर्मा
(c) चक्रपाणि (d) जेज्जट

40. प्र०:- सिंहनाद गुग्गुलु का रोगाधिकार है -
(a) आमवात (b) वातरक्त
(c) पाण्डु (d) कामला

41. प्र०:- भावप्रकासानुसार "चटकाशिर" किसका पर्या है -
(a) पिप्पली (b) पिप्पली मूल
(c) मरीच (d) जायफल

42. प्र०:- क्षीरत्रय है -
(a) अर्क, अश्मन्तक, वट
(b) अर्क, पारीष, वट

(c) अर्क, स्नूही, वट

(d) गौ, माहिष, मानूषी

43. प्र०:- ''रामठ'' किसका पर्याय है -

(a) सौंफ (b) लशुन

(c) हिंगु (d) धान्यक

44. प्र०:- जन्म के पश्चात् 5वें महीनें में बालक का भार जन्म के भार से हो जाता है -

(a) दो गुना (b) तीन गुना

(c) चार गुना (d) पाँच गुना

45. प्र०:- Riampacin is the drug of choice in -

(a) Influenza (b) Leprosy

(c) Typhoid (d) None

46. प्र०:- Zidovudine is indicated in -

(a) Tuberculosis (b) Leprosy

(c) AIDS (d) All

47. प्र०:- Average Amount of blood in menstruction -

(a) 20 ml (b) 30 ml

(c) 40 ml (d) 50 ml

48. प्र०:- Oral dose of ephedrine is -

(a) 5-10 mg (b) 10-15 mg

(c) 15-2 mg (d) 30-60 mg

49. प्र०:- What is the average age of menarchi -

(a) 10 years (b) 13 years

(c) 15 years (d) 16 years

50. प्र०:- ब्राह्मा कृमि किस आचार्य ने नहीं माने हैं -

(a) चरक (b) सुश्रुत

(c) वाग्भट (d) हारीत

51. प्र०:- Incubation period of leprosy is -

(a) 1 week (b) 1 month

(c) 1 year (d) 3-5 year

52. प्र०:- निम्न में से कौन Phagocytosis की क्रिया नहीं करते हैं -

(a) Neutrophill (b) Lymphocyte

(c) Monocyte (d) Macrophage

53. प्र०:- UNICEF is not related with -

(a) Child Health education

(b) Child nutrition

(c) Immunization

(d) Family planning

54. प्र०:- ''कल्याण मातृका में'' नहीं करते हैं -

(a) कर्णवेधन (b) लेहन

(c) स्वेदन (d) स्नेहन

55. प्र०:- हेमेटाइट है -

(a) गैरिक (b) मण्डूर

(c) लौहकान्त (d) माक्षिक

56. प्र०:- ''स्त्रीपुष्पहरण'' कहा गया है -

(a) पत्र हरताल (b) पिण्ड हरताल

(c) कासीस (d) कुमारी

57. प्र०:- हस्त स्वेद शिशु में किस मास तक करते हैं-

(a) 4 मास (b) 6 मास

(c) आठमास (d) निर्देश नहीं है ।

58. प्र०:- What will be the expected cause of Black stool -

(a) Upper G.I. bleeding

(b) Lower G.I. bleeding

(c) Cirrhosis of Liver

(d) All

59. प्र०:- पिण्ड स्वेद के कितने आसन हैं -

(a) 6 (b) 7 (c) 8 (d) 2

60. प्र०:- कूपीपक्व रसायन का प्रथमतः वर्णन आया है -

(a) रसार्णव में (b) र०र०स० में

(c) रस प्रकाश सुधाकर में

(d) रसतरंगिणी में ।

61. प्र०:- हरताल की सामान्य मात्रा होती है -

(a) 30-60 mg (b) 60-120 mg

(c) 120-250 mg (d) 250-500 mg

62. प्र०:- गंधक रसायन का रोगाधिकार है -

(a) कास (b) कुष्ठ

(c) ज्वर (d) वाजीकरण

63. प्र०:- रस कर्पूर में पारद व सैंधव का अनुपान होता है -
(a) 1:2 (b) 1:3 (c) 1:1 (d) 1:4

64. प्र०:- मूषक विष है -
(a) सोमल (b) हरताल
(c) कासीस (d) माक्षिक

65. प्र०:- "Crucible" is -
(a) वंकनाल को (b) मूषा को
(c) कलछुल को (d) कोष्ठी को

66. प्र०:- पारद की गतियाँ हैं -
(a) 3 (b) 4 (c) 5 (d) 8

67. प्र०:- National Tuberculosis controlling programme (NTCP) started In -
(a) 1952 (b) 1958 (c) 1962 (d) 1994

68. प्र०:- World Health Organization day is celebrated on -
(a) 5 June (b) 1 December
(c) 7 April (d) 1 April

69. प्र०:- हिंगुल किसका अयस्क है -
(a) हरताल का (b) मनःशिला का
(c) पारद का (d) लोह का

70. प्र०:- पारद का अयस्क है -
(a) एजुराईट (b) हेमेटाइट
(c) हिंगुल (d) सभी

71. प्र०:- Drug of Choice is mysthenia gravis is -
(a) Neostigmine (b) Physostigmine
(c) Naloxone (d) N-Acetyl-cysten

72. प्र०:- शिरोकण्डु किसका लक्षण है -
(a) शिरःशूल निवृत्ति का
(b) ज्वर निवृत्ति का
(c) रक्तज कृमि का
(d) सभी का

73. प्र०:- भ्रम में दोष है -
(a) वात, पित्त, तम (b) वात, कफ, र
(c) वात, पित्त, रज (d) कफ, तम

74. प्र०:- मानस रोगों की चिकित्सा है -
(a) धैर्य (b) स्मृति (c) समाधि (d) स

75. प्र०:- आर्द अर्श के दोष हैं -
(a) वात, पित्त (b) वात, कफ
(c) पित्त, कफ (d) पित्त, रक्त

76. प्र०:- "पंचगुणातीत" कहा गया है -
(a) कुष्ठ को (b) राजयक्ष्मा को
(c) उरूस्तम्भ को (d) सभी को

77. प्र०:- सामान्यतया दृष्ट है -
(a) उपमान (b) अनुमान
(c) प्रत्यक्ष (d) युक्ति

78. प्र०:- "योगिज" भेद है -
(a) लौकिक प्रत्यक्ष का
(b) अलौकिक प्रत्यक्ष का
(c) समाधि का (d) युक्ति का

79. प्र०:- Main site of the carcinoma of breast is -
(a) Upper, Inner quadrant
(b) Upper, outer quadrant
(c) Lower, Inner quadrant
(d) Lower, Outer quadrant

80. प्र०:- अर्श का भेद नहीं है -
(a) सहज (b) शुष्क
(c) आर्द्र (d) आगन्तुज

81. प्र०:- लेखन कर्म किस व्याधि में करते हैं -
(a) रोहिणी (b) विसवर्त्म
(c) लगण (d) गलशुण्डिका

82. प्र०:- कर्ण बंधन की कितनी विधियाँ हैं -
(a) 5 (b) 10 (c) 15 (d) 2

83. प्र०:- "वल्लूरक" क्या है -
(a) कमल नाल (b) कर्णबंधन की वि
(c) सीवन कर्म (d) व्रण बंधन

84. प्र०:- सुश्रुतानुसार कला के भेद हैं -
(a) 5 (b) 6 (c) 7 (d) 7

85. प्र०:- कर्णमूल शोथ किसका उपद्रव है -

(a) राजयक्ष्मा का (b) सान्निपातिक ज्वर का

(c) मसूरिका (d) रोहिणी का

86. प्र०:- Oligouria term will be used when the amount of urine will be -

(a) < 100 ml (b) < 250 ml

(c) < 500 ml (d) < 1000 ml

87. प्र०:- सुश्रुतानुसार व्रणवस्तु नही है -

(a) मांस (b) सिरा

(c) स्नायु (d) मेद

88. प्र०:- चरकानुसार अस्थि का निर्माण होता है -

(a) मेद से (b) मज्जा से

(c) दोनों से (d) रक्त से

89. प्र०:- निम्न में से कौन-सा सार का एक भेद है -

(a) रक्त (b) ओज

(c) वायु (d) रस

90. प्र०:- चरकानुसार यकृत प्लीहा किस प्रकार के भाव हैं -

(a) मातृज (b) पितृज

(c) सात्म्यज (d) सत्वज

91. प्र०:- मन का प्रादुर्भाव किस माह में माना गया है -

(a) चतुर्थ (b) पंचम

(c) षष्टम (d) द्वितीय

92. प्र०:- चरकानुसार ओज क्या है -

(a) प्राणायतन (b) धातु

(c) उपधातु (d) सभी

93. प्र०:- चरक ने किस प्रमेह की ओजोमेह संज्ञा दी है -

(a) उदकमेह (b) वसामेह

(c) मधुमेह (d) मज्जामेह

94. प्र०:- जनपदोध्वंस में सर्वाधिक दुष्परिहार्य भाव होगा-

(a) जल (b) वायु (c) काल (d) देश

95. प्र०:- निम्न में से धारणीय वेग है -

(a) जृम्भा (b) अश्रु

(c) रेतस (d) अभिध्या

96. प्र०: ग्रहणी किस अवस्था में साध्य मानी गयी है -

(a) बाल्यावस्था (b) युवावस्था

(c) वृद्धावस्था (d) गर्भावस्था

97. प्र०:- ग्रहणी दोष का मुख्य कारण है -

(a) अभोजन (b) अजीर्ण

(c) अतिभोजन (d) अग्नि की दुष्टि

98. प्र०:- काश्यपानुसार अगर गर्भिणी की योनि से किंशुकोदक वर्णी स्राव हो रहा है तो उत्पन्न संतान होगी -

(a) पुत्र (b) पुत्री

(c) नपुंसक (d) गर्भपात होगा

99. प्र०:- विमार्गगमन किसका लक्षण है -

(a) स्रोतोवैगुण्य का (b) स्रोतोदुष्टि का

(c) स्रोतावरोध का (d) ख वैगुण्य का

100. प्र०:- फलिनी योनि व्यापद में दोष होगा -

(a) वात (b) पित्त

(c) पित्त + कफ (d) त्रिदोष

101. प्र०:- वातरक्त में कौन-सा गुग्गुलु श्रेष्ठ होगा -

(a) सिंहनाद गुग्गुलु (b) कैशोर गुग्गुलु

(c) पुष्कर गुग्गुलु (d) योगराज गुग्गुलु

102. प्र०:- जैविक स्नेहों में श्रेष्ठ है -

(a) सर्पि (b) तैल

(c) वसा (d) मज्जा

103. प्र०:- श्रेष्ठदीपन पाचन द्रव्य है -

(a) मिशि (b) भल्लातक

(c) चित्रक (d) मरीच

104. प्र०:- किस महाभूत में केवल एक ही गुण पाया जाता है -

(a) ख (b) वायु

(c) अग्नि (d) क्षिति

105. प्र०:- In which part of colon cancer occurs maximum -

(a) Ascending colon

(b) Descending colon

(c) Sigmoid colon
(d) Rectum

106. प्र०:- **Inguinal ligament is formed by -**
(a) External oblique aponeurosis
(b) Internal oblique aponeurosis
(c) Transversus obdominis
(d) Rectus abdominis

107. प्र०:- **Hinge Joint is -**
(a) Knee (b) Elbow
(c) Both (d) none

108. प्र०:- **महासहा किसका पर्याय है -**
(a) मुद्गपर्णी (b) माषपर्णी
(c) मंजिष्ठा (d) मायाफल

109. प्र०:- **विस्रावण कर्म हेतु शस्त्र की धार होगी-**
(a) अर्द्धकेशिकी (b) केशिकी
(c) मासूरी (d) अर्द्धमासूरी

110. प्र०:- **स्वस्तिक यंत्र के प्रकार हैं -**
(a) 18 (b) 6 (c) 24 (d) 20

111. प्र०:- **Which is not found in femoral sheth -**
(a) Femoral vein (b) Femoral Artery
(c) Femoral nerve (d) Genito Femoral Nerve

112. प्र०:- **Anorexia will be found in -**
(a) Heart disease (b) Supression of liver
(c) Kidney diseease (d) All

113. प्र०:- **In Hypertension Tachycardia will be due to stimulation of which receptor -**
(a) 2_1 (b) 2_2 (c) K_1 (d) K_2

114. प्र०:- **How many lobes are found in Kidney -**
(a) 5 (b) 7 (c) 9 (d) 10

115. प्र०:- **Xeropthamia is due to lack of vitamin -**
(a) A (b) B_{12} (c) C (d) E

116. प्र०:- **सांख्य दर्शन के प्रणेता हैं -**
(a) गौतम (b) कपिल
(c) शंकराचार्य (d) पतंजलि

117. प्र०:- **एक ही प्रमाण किस आचार्य ने माना है -**
(a) जैनाचार्य (b) बौद्ध
(c) गौतम (d) चार्वाक

118. प्र०:- **उपमान प्रमाण किसने माना है -**
(a) सांख्य (b) योग
(c) सुश्रुत (d) जैन दर्शन

119. प्र०:- **''सिद्धै रसे करिष्यामि निर्दारिद्रयमयं जगत्.'' किसका कथन है -**
(a) व्याडि (b) रसनागार्जुन
(c) भगवान शिव (d) रस वाग्भट

120. प्र०:- **दोलायंत्र का प्रयोग करते हैं -**
(a) उर्ध्वपातन में (b) मर्दन में
(c) स्वेदन में (d) कोई नहीं

121. प्र०:- **श्वेत पर्पटी का पर्याय है -**
(a) क्षारपर्पटी (b) अम्ल पर्पटी
(c) कुष्ठान्तपर्पटी (d) मधुरपर्पटी

122. प्र०:- **जिंक किसके सत्वपातन से प्राप्त होता है -**
(a) अभ्रक (b) मन:शिला
(c) रसक (d) माक्षिक

123. प्र०:- **सौलह पदार्थ किसने माने हैं -**
(a) सांख्य (b) जैन
(c) नव्य न्याय (d) पुराण न्याय

124. प्र०:- **चौबीस तत्व किसके माने हैं -**
(a) चरक (b) सांख्य
(c) जैनदर्शन (d) योगदर्शन

125. प्र०:- **अग्निवेश तंत्र के प्रतिसंस्कर्त्ता हैं -**
(a) चरक (b) दृढ़बल
(c) चक्रपाणि (d) भट्टार हरिश्चन्द्र

126. प्र०:- **इन्द्र के पास आयुर्वेद का ज्ञान लेने गये -**
(a) अग्निवेश (b) आत्रेय
(c) भारद्वाज (d) चरक

127. प्र०:- **सर्वव्यापक इन्द्रिय है -**
(a) चक्षु (b) त्वचा
(c) श्रोत (d) घ्राण

128. प्र०:- **चरकानुसार तंत्रयुक्ति संख्या है -**

(a) 32 (b) 36 (c) 40 (d) 41

129. प्र०:- इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्यं ज्ञानं..... ।
(a) प्रत्यक्षं (b) उपमानं
(c) अनुमानं (d) संभवं

130. प्र०:- दारू हरिद्रा का क्वाथ है -
(a) स्रोतोअंजन (b) पुष्पांजन
(c) सौवीरांजन (d) रसांजन

131. प्र०:- चरकानुसार मद (मधावस्था) के भेद हैं -
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

132. प्र०:- कासहर द्रव्यों में श्रेष्ठ है -
(a) कंटकारी (b) कर्कटश्रृंगी
(c) वासा (d) बृहती

133. प्र०:- ''धमनी व्याकरण'' अध्याय किस संहिता में मिलता है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) शार्गंधर (d) माधव निदान

134. प्र०:- **Which one is not a local harmone -**
(a) Acetylchoin (b) Bradykinin
(c) Cholicystokinin (d) Insulin

135. प्र०:- **Moist skin is found in -**
(a) Hypoglycaemia
(b) Hyperglycaemia
(c) Hypothyroidism
(d) None

136. प्र०:- **Increased BMR will be found in -**
(a) Hypothyroidism
(b) Hyperthyroidism
(c) Both
(d) NONE

137. प्र०:- **Aortic opening is at the level of -**
(a) T_8 (b) T_{10} (c) T_{12} (d) L_3

138. प्र०:- **In resting stage cardiac out put will be -**
(a) 2.5 litre (b) 3 litre
(c) 5.2 litre (d) 6 litre

139. प्र०:- **Which harmone is secreted by pineal body-**
(a) Melanin (b) Melatonin
(c) Kolip Harmone (d) NONE

140. प्र०:- ....अनुषंगिणाम्
(a) ज्वर (b) कुष्ठ
(c) राजयक्ष्मा (d) प्रमेह

141. प्र०:- **Life span of carpus luteum is -**
(a) 3-5 days (b) 8-10 days
(c) 12-14 days (d) 1 month

142. प्र०:- **Which one is not in the blood as a buffer-**
(a) Nacl (b) Haemoglobin
(c) Plasma Protein (d) HCO_3

143. प्र०:- **Alveolar ventilation is maximum affected by -**
(a) CO_2 (b) Acidosis
(c) Anaemia (d) NONE

144. प्र०:- **Shifting dulness is found in -**
(a) Ascitis (b) Tympanitis
(c) Hepatitis (d) Oopheritis

145. प्र०:- ''तस्मात् नित्यमेव विरेचयेत'' कथन है -
(a) उदररोग हेतु (b) पक्षाघात हेतु
(c) तमक श्वास हेतु (d) उर्ध्वग रक्तपित्तहेतु

146. प्र०:- आर्त्तववह स्रोतस का मूल है -
(a) अण्डाशय (b) योनि
(c) गर्भाशय (d) स्तन

147. प्र०:- ''विमल'' का वर्ग है -
(a) महारस (b) उपरस
(c) साधारण रस (d) उपरत्न

148. प्र०:- नौसादर का शोधन द्रव्य है -
(a) कांजी (b) जल
(c) दुग्ध (d) शोधन आवश्यक नहीं है ।

149. प्र०:- शनिग्रह का रत्न है -
(a) मुक्ता (b) माणिक्य
(c) ताक्ष्‍र्य (d) नीलम

150. प्र०:- अम्बर ग्रिस है -
(a) कस्तूरी (b) कपर्दिका
(c) शंख (d) अग्निजार

131415

151. **प्र०:- Wrist drop is due to -**
(a) Redial N. Palsy (b) Ulnar N. Palsy
(c) Median N.Palsy (d) None

152. **प्र०:- Iron is not stored in -**
(a) Gall bladder
(b) Reticuloendothelial system
(c) Bone marrow (d) Liver

153. **प्र०:- सूर्य के सभी पर्याय हैं -**
(a) माणिक्य के (b) ताम्र के
(c) लौह के (d) स्वर्ण के

154. **प्र०:- केदारी कुल्या न्याय के समर्थक हैं -**
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) दोनों (d) दोनों नहीं

155. **प्र०:- वाजीकरण का निषेध है -**
(a) बाल्यावस्था में (b) युवावस्था में
(c) वृद्धावस्था में (d) सभी में

156. **प्र०:- Pilonidal sinus is found in**
(a) Hairy person (b) Young person
(c) Child (d) Old person

157. **प्र०:- Alzheimer's disease is related with**
(a) Child (b) Young person
(b) Old age (d) Women

158. **प्र०:- शिरोघात में कौन-सी वर्त्ति का प्रयोग निर्दिष्ट है -**
(a) पंचांगी (b) बालवर्त्ति
(c) व्रणवर्त्ति (d) फलवर्त्ति

159. **प्र०:- सुश्रुतानुसार किस माह में गर्भिणी में वस्ति दी जा सकती है -**
(a) सातवें (b) आठवें
(c) नवें (d) पाँचवें

160. **प्र०:- ....तं विधात् सर्वदोषप्रकोपणम् ।**
(a) असात्मेन्द्रियार्थ संयोगं (b) प्रज्ञापराधं
(c) अधर्मं (d) क्रोधं

161. **प्र०:- Which one is the bad conductor of heat**
(a) खटिका (b) बदराश्म
(c) कौशेयाश्म (d) जहरमोहरा

162. **प्र०:- अर्जुन का कुल है -**
(a) Verbenaceae (b) Valerianacae
(c) Apocynacea (d) Combretacae

163. **प्र०:- अश्वगंधा का प्रयोज्यांग है -**
(a) पत्र (b) फल
(c) मूल (d) पुष्प

164. **प्र०:- सुश्रुत ने कफ का विशेष स्थान माना है -**
(a) हृदय (b) त्रिक
(c) उरः (d) आमाशय

165. **प्र०:- औषध कर्म हेतु श्रेष्ठ अभ्रक है -**
(a) पीनाक (b) नाग
(c) मण्डूक (d) वज्र

166. **प्र०:- अन्तःकरण चतुष्ट्य है -**
(a) मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त
(b) मन, आत्मा, हृदय, चित्त
(c) आत्मा, इन्द्रिय, बुद्धि, अर्थ
(d) कोई नहीं

167. **प्र०:- Main source of vitamin E is**
(a) Wheat germ oil (b) Sunflower oil
(b) Soyabean (d) All

168. **प्र०:- भिषगकर्मसिद्धि के लेखक हैं -**
(a) गणनाथ सेन (b) रमानाथ द्विवेदी
(c) ए.एन.शर्मा (d) घाणेकर

169. **प्र०:- पी.सी.राय रचित पुस्तक का नाम है -**
(a) History of Chemistry in Ancient and medieval India.
(b) Pre historic India
(c) History of Indian medicine
(d) Survey of Sanskrit Literature

170. **प्र०:- 1 वर्ष के बालक के सिर का व्यास होगा-**
(a) 12 इंच (b) 16 इंच
(c) 18 इंच (d) 20 इंच

171. प्र०:- पंचमहाभूत को मूल प्रकृति माना है -

(a) चरक ने (b) सांख्य ने

(c) सुश्रुत ने (d) सभी ने

172. प्र०:- S.A. node is found in

(a) Epicardial (b) Sub-epicardial

(c) Endocardial (d) Endo-myocardial

173. प्र०:- चरक संहिता में सृष्टि उत्पत्तिक्रम किससे प्रभावित है -

(a) वेदान्त (b) सांख्य

(c) योग (d) न्याय

174. प्र०:- What is the side effect of Idoguinol

(a) Headache (b) Nausea

(c) Hypertension (d) Fever

175. प्र०:- स्वप्न में गर्भिणी द्वारा कमल व कुमुद को देखने पर उत्पत्ति होगी -

(a) पुत्र की (b) पुत्री की

(c) नपुंसक की (d) यमज की

Answer-Keys

(1) A (2) C (3) B (4) D (5) A (6) A
(7) B (8) A (9) C (10) C (11) B (12) B
(13) D (14) B (15) A (16) B (17) C (18) D
(19) A (20) C (21) B (22) C (23) B (24) C
(25) C (26) A (27) B (28) C (29) C (30) C
(31) B (32) C (33) C (34) B (35) C (36) A
(37) B (38) A (39) C (40) A (41) B (42) C
(43) A (44) A (45) B (46) C (47) D (48) D
(49) B (50) B (51) D (52) B (53) D (54) B
(55) A (56) B (57) A (58) A (59) B (60) C
(61) A (62) B (63) C (64) A (65) B (66) C
(67) C (68) C (69) C (70) C (71) A (72) B
(73) C (74) D (75) D (76) C (77) B (78) B
(79) B (80) D (81) A (82) C (83) B (84) C
(85) B (86) C (87) D (88) A (89) A (90) A
(91) B (92) A (93) C (94) C (95) D (96) A
(97) D (98) B (99) B(100) D(101) B(102) A
(103)C(104) A(105) C(106) A(107) B(108) B
(109)B(110) C(111) C(112) B(113) A(114) D
(115)A(116) B(117) D(118) C(119) B(120) C
(121)A(122) C(123) D(124) A(125) A(126) C
(127)B(128) B(129) A(130) D(131) B(132) A
(133)B(134) D(135) A(136) B(137) C(138) C
(139)B(140) D(141) C(142) A(143) A(144) A
(145)A(146) C(147) A(148) B(149) D(150) D
(151)A(152) A(153) B(154) B(155) A(156) A
(157)C(158) B(159) B(160) B(161) C(162) D
(163)C(164) D(165) D(166) A(167) A(168) B
(169)A(170) C(171) A(172) D(173) B(174) B
(175) A

द्वारा डा० गोविन्द पारिक
(जूनियर रेजिडेन्ट)
आयुर्वेद संहिता विभाग,
बी.एच.यू., वाराणसी, यू.पी.

बैद्यनाथ
हिंग्वष्टाक चूर्ण
मंदाग्नि, आंव तथा पेट दर्द में उपयोगी

नेपाल में आयुर्वेद का स्तुत्य स्थान

दिसम्बर ,1965

भारत का पड़ोसी देश नेपाल आयुर्वेद का गढ़ रहा है और आज भी है । वहाँ की जनता आयुर्वेद-प्रेमी है । नेपाल की आर्थिक स्थिति भी एलोपैथी जैसी महँगी पद्धति की नहीं बल्कि, आयुर्वेद जैसी सस्ती पद्धति को ही अपनाने योग्य है, क्योंकि नेपाल अभी अविकसित एवं गरीब देश है । प्राय: जनता और सरकार दोनों की स्थिति एक जैसी ही है ।

हमें पता चला है कि नेपाल-सरकार 76 आयुर्वेदिक औषधालयों को चला रही है जिनमें दवाओं पर वह प्रतिवर्ष 76000 नेपाली रुपये व्यय करती है । जनसंख्या के अनुपात में शायद यह अनुपात किसी भी भारतीय राज्य से अधिक है, क्योंकि नेपाल की जनसंख्या लगभग एक करोड़ ही है । प्रत्येक औषधालय में नेपाल सरकार कम-से-कम तीन आयुर्वेदज्ञों को रखती है - प्रधान वैद्य, सहायक वैद्य एवं औषधि-वितरक । इतनी बड़ी संख्या में भारत की कोई भी राज्य सरकार आज वैद्यों को नहीं रखे हुए है । भारत की केन्द्रीय सरकार ने भी इतनी बड़ी संख्या में आयुर्वेदज्ञों को शायद नहीं ही नियुक्त किया है ।

नेपाल की केन्द्रीय सरकार ने आयुर्वेद-निदेशालय रखा है जबकि भारत की केन्द्रीय सरकार अभी भी यह निदेशालय नहीं कायम कर रही है । नेपाल-सचिवालय में एक आयुर्वेदिक औषधि-निर्माण विभाग भी है जिसका नाम ''श्री 5 सरकार का वैद्य-खाना'' है । नेपाल सरकार आयुर्वेदिक औषधियों का निर्माण भी बड़े पैमाने पर करती है ।

भारत-सरकार तथा भारत की राज्य-सरकारों के लिए नेपाल-सरकार का यह आयुर्वेदिक प्रयास सर्वथा अनुकरणीय है । यों हम अवश्य ही अनुरोध करेंगे कि नेपाल में आयुर्वेदिक स्नातकोत्तर शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान भी होना चाहिए और क्रमश: एक आयुर्वेद विश्वविद्यालय भी स्थापित होना चाहिए. जिससे भारत सरकार तथा भारत की राज्य सरकारों को भी कुछ प्रेरणा मिल सके ।

आयुर्वेद-प्रेमियों से दो बातें

आज जब हम वैद्यों की चिकित्सा-पद्धति पर ध्यान देते हैं तो 100 में से 10 वैद्य ऐसे मिलेंगे जो विदेशी इंजेक्शन तथा दवाइओं को काम में लाते हैं । विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार हमारा उद्देश्य नहीं किन्तु जो आयुर्वेद में न हो उसे ही ग्रहण करना उचित है । आयुर्वेद में आशुफलदायी रस-भस्मों के होते हुए भी यदि ''पेनिसिलीन'' और ''सल्फा'' औषधियों का (जिनका कि कई वैद्यों को ज्ञान भी नहीं होता) उपयोग किया जाता है तो यह आयुर्वेद का दुर्भाग्य ही है ।

सभाओं में वैद्यों से आयुर्वेदीय औषधियों की बड़ी-बड़ी बातें और चमत्कार सुनते हैं और जब रोगी चिकित्सा के लिए उनके पास जाता है तो वे ही महाशय विदेशी इंजेक्शन से उसका स्वागत करते हैं, तथा खाने-पीने के लिए विदेशी औषध लिखकर देते हैं - ऐसी स्थिति में समझदार रोगी को जो आयुर्वेद में विश्वास लेकर चिकित्सा के लिए आया था बड़ी ही निराशा होती है तथा इस प्रकार उसका आयुर्वेद से विश्वास उठता है ।

कई वैद्य जब अपने परिवार में या स्वयं रोग-ग्रस्त होते हैं तो दौड़े-दौड़े डाक्टर की शरण में जाते हैं, साधारण जनता जब उन्हें रोगी अवस्था में देखती है तो उसे ऐसे वैद्यों में तथा उनकी चिकित्सा पद्धति में अश्रद्धा ही उत्पन्न होती है ।

प्राय: वैद्य महाशय विदेशी औषधियों के लिए यह दलील देते हैं कि उनका असर तुरन्त होता है तथा वे विशुद्ध होती हैं; वास्तव में आज आयुर्वेदीय औषधियों की शुद्धता संदिग्ध हो चली है, क्योंकि सस्तेपन के लोभ में कई निर्माता निम्न श्रेणी के द्रव्यों से दवाइयाँ तैयार करके बाजार में बिक्री के लिए होड़ लगाते हैं; किन्तु नतीजा उल्टा ही निकलता है उनकी बिक्री तो किसी सूरत में हो भी जाती है किन्तु हमारी प्राचीन पद्धति बदनाम होती है ।

आयुर्वेद की प्राय: समस्त औषधियाँ पेटेण्ट नहीं हैं तथा सभी निर्माता एक ही फार्मूले पर उनका निर्माण करते हैं, किन्तु स्वाद एवं गुण में सबमें समानता नहीं पायी जाती। द्राक्षासव, अशोकारिष्ट, कुमार्यासव, दशमूलारिष्ट आदि आसव-अरिष्ट को ही लें । सभी कम्पनियों में अलग-अलग स्वाद के मिलेंगे, गुण-धर्म में भी समानता प्राय: नहीं होती है ।

आलोचक की दृष्टि में

आयुर्वेद के छः दशक अर्थात् आयुर्वेद मनीषी आचार्य प्रियव्रत शर्मा की उपलब्धियों के छह दशक

लेखन योग की स्थिति है । लेखक लिखते समय बाह्य जगत् से विच्छिन्न होकर चैतन्य से एकाकार हो जाता है और उसी की प्रेरणा और प्रकाश में लिखता जाता है; अतः लेखक निमित्तमात्र रहता है । इसी कारण लिखने के बाद स्वयं आश्चर्य होता है कि यह कैसे लिख गया - 'आश्चर्यवत पश्यति कश्चिदेनम्' । विधाता ने जो कार्य मुझे सौंपा था वह, मेरी दृष्टि में, पूर्ण हो चुका । पता नहीं कुछ अभी भी शेष हो, कौन जनता है निःशेष कब होगा ?

(इसी पुस्तक से साभार-स्वयं विद्वान लेखक के शब्दों में)

पुस्तक का नाम - आयुर्वेद के छः दशक (Six decades of Ayurveda - 1941 - 2000)
लेखक का नाम - आचार्य प्रियव्रत शर्मा
सम्पादक के नाम - प्रो० सत्यदेव दुबे, अध्यक्षः द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद - संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं
डा० अनुग्रह नारायण सिंह, प्राध्यापक, द्रव्यगुण विभाग, राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी ।
प्रकाशक का नाम - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान (भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)
38 यू.ए. बंगलो रोड, जवाहर नगर, पो.बा.नं.-2113, दिल्ली - 110007
अन्य प्राप्ति स्थान : 1. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, के. 37/117, गोपाल मन्दिर लेन, पो.बा.नं. - 1129, वाराणसी - 221001
2. चौखम्बा विद्याभवन चौक (बैंक ऑफ बड़ौदा भवन के पीछे), पो.बा.नं. - 1069, वाराणसी - 221 001
मुद्रक का नाम - ए.के. लिथोग्राफर्स, दिल्ली ।
मूल्य - 1500.00 रुपये ।

जन्म एवं मृत्यु मानव-जीवन का शाश्वत नियम है। कोई इससे परे नहीं है, किन्तु वह मनुष्य धन्य होता है जिनका जीवन सोद्देश्य होता है, मानव-कल्याणार्थ अपने निजी सुखों को तिलांजलि देकर समाज की सेवा किसी न किसी रूप में करता है । इस दृष्टिकोण का यदि हम विश्लेषण करें, तो आचार्य प्रियव्रत शर्मा का जीवन न केवल सफल रहा है, बल्कि सार्थक भी रहा है । उन्होंने विद्यारूपी सागर के अमूल्य रत्न, आयुर्वेद के चहुँमुखी विकास के लिए अपने जीवन को समर्पित कर दिया । आयुर्वेद के लिए कार्य करने का मतलब है, न केवल स्वास्थ्य-विज्ञान के विकास के लिए कार्य करना, बल्कि एक लम्बी विदेशी दासता के कारण अवरुद्ध आयुर्वेद जो सदियों से दबा-कुचला व प्रताड़ित एवं उपेक्षित रहा है, उसके उत्थान के लिए वैज्ञानिक रूप से कार्य करना । आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण अंग 'द्रव्यगुण विभाग' के विषय में स्वयं आचार्यजी ने लिखा है - "ग्रन्थ-लेखन विधिवत्-प्रारम्भ हुआ 1953 के बाद; जब मैं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आयुर्वेद का अध्यापक होकर आया । वहां मेरे अध्यापन का मुख्य विषय था द्रव्यगुण । समस्या यह थी कि इस विषय में कोई पाठ्य पुस्तक नहीं थी । परिस्थिति का तकाजा था कि पहले की तरह भावप्रकाश निघण्टु का पारायण नहीं चल सकता था और विषय को युगानुरूप बनाने के लिए आधुनिक शैली पर प्रस्तुत करना था । द्रव्यों का कर्म त्रिदोष के साथ-साथ विभिन्न संस्थानों पर भी देखना था । इसके अतिरिक्त अन्य अपेक्षित वानस्पतिक और रासायनिक जानकारी भी देनी थी ।

इन सबके लिए मैं अन्य पुस्तकों का अध्ययन करके नोट बनाता था और उसी के आधार पर पढ़ाता था । यह शैली छात्रों को अनुकूल लगी और सभी लोग इससे प्रभावित हुए । फलतः इस प्रकार का एक ग्रन्थ ही

प्रकाशित हो गया । तदनुसार 1955-56 में द्रव्यगुण-विज्ञान के प्रथम और द्वितीय भाग प्रकाशित हो गये । यह शैली युगानुरूप 1955-56 में द्रव्यगुण विज्ञान के प्रथम और द्वितीय भाग प्रकाशित हो गये । यह शैली युगानुरूप एवं सर्वग्राही होने के कारण सारे देश में अपनायी गयी और द्रव्यगुण-विज्ञान व्यवहारतः पाठ्यग्रन्थ के रूप में पढ़ाया जाने लगा । बाद में केन्द्रीय भारतीय चिकित्सा परिषद् की स्थापना हुयी, तब द्रव्यगुण का पाठ्यक्रम प्रायः इसी आधार पर निर्धारित किया गया ।

आचार्यजी का व्यक्तित्व बहुमुखी था । केवल द्रव्यगुण के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि आयुर्वेद इतिहास एवं पाण्डुलिपियों के क्षेत्र में व्यापक कार्य किया । इन्होंने न केवल ग्रन्थों का मंथन किया, बल्कि सम्पादित कर इन्हें विद्वत् समाज के समक्ष प्रस्तुत भी किया । स्वयं आचार्यजी के शब्दों में "आयुर्वेदीय पाण्डुलिपियों पर दीर्घकालीन कार्य हुआ । जैसा कि पहले लिखा गया है, 1962 में इस सन्दर्भ में मेरी पहली रचना प्रकाशित हुई जिसमें मैंने अपने पूर्वजों द्वारा रचित एवं सुरक्षित पाण्डुलिपियों का विवरण प्रस्तुत किया है । यह क्रम निरन्तर चलता रहा । द्रव्यगुण सम्बन्धी कृतियों पर विशेष ध्यान दिया गया । इस क्रम में लगभग एक दर्जन दुर्लभ पाण्डुलिपियों का सम्पादन कर उन्हें प्रकाश में लाया गया; इनमें अष्टांग निघण्टु, माधव द्रव्यगुण, सोढल निघण्टु, सिद्धमंत्र प्रकाश, शब्द चन्द्रिका, चरक तत्व प्रदीपिका, चक्रदत्त-रत्नप्रभा आदि प्रमुख हैं । इनका पहली बार प्रकाशन हुआ ।"

प्रस्तुत ग्रन्थ चार खण्डों में विभाजित है । प्रथम खण्ड का शीर्षक इतिहास है । इस खण्ड में प्राचीन काल के वैदिक एवं उत्तर-वैदिक काल से सम्बन्धित लेखों का संग्रह है । दोनों काल मिलाकर लगभग 14 लेख हैं । मध्यकाल से सम्बन्धित 11 लेखों एवं आधुनिक काल से सम्बन्धित 5 लेखों का संग्रह है ।

द्वितीय खण्ड का शीर्षक मौलिक सिद्धान्त एवं शारीर है । मौलिक सिद्धान्त से सम्बन्धित 13 आलेख एवं एवं शारीर से सम्बन्धित 5 लेखों का संग्रह है ।

तृतीय खण्ड का शीर्षक है - द्रव्यगुण । इसे पुनः चार भागों यथा मौलिक सिद्धान्त, द्रव्य-विमर्श, वाङ्मय-सर्वेक्षण एवं ऐतिहासिक अध्ययन में विभाजित किया गया है । मौलिक सिद्धान्त में 12 आलेख, द्रव्य-विमर्श में 15 आलेख, वाङ्मय-सर्वेक्षण में 10 आलेख एवं ऐतिहासिक अध्ययन में 9 आलेखों का संग्रह है ।

चतुर्थ खण्ड का शीर्षक है - विविध । इसे भी चार भागों यथा आयुर्वेद : प्रकृति एवं पद्धति, व्याधि-विमर्श, शिक्षण एवं अनुसंधान तथा गवेषणा में विभाजित किया गया है । आयुर्वेद : प्रकृति एवं पद्धति में 7 आलेख, व्याधि-विमर्श में 6 आलेख, शिक्षण और अनुसंधान में 7 आलेख एवं गवेषणा में 7 आलेखों का संग्रह है ।

परिशिष्ट -1 में लेखों एवं व्याख्यानों की कालक्रमानुसार सूची एवं परिशिष्ट-2 में आचार्य प्रियव्रत शर्मा द्वारा विरचित ग्रन्थों की सूची दी गयी है । लगभग 63 पत्र-पत्रिकाओं (हिन्दी एवं अंग्रेजी मिलाकर) में आचार्यजी के लेख प्रकाशित हुए हैं । पत्र-पत्रिकाओं के नाम भी प्रकाशित किये गये हैं । कुछ आलेख संस्कृत भाषा में भी हैं । 1941 से 2000 के मध्य आचार्यजी के जो लेख प्रकाशित हुए हैं, केवल उनका ही समावेश प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है । पुस्तक में पृष्ठों की कुल संख्या लगभग 970 है । मुद्रण काफी अच्छा है, कागज उत्तम है । छपाई साफ-सुथरी है ।

पुस्तक के सम्पादन में सम्पादक द्वय, प्रोफेसर सत्यदेव दुबे एवं डा० अनुग्रह नारायण सिंह ने काफी परिश्रम किया है । उनके कठोर परिश्रम का ही परिणाम है कि पुस्तक श्रेष्ठ कृति के रूप में हमलोगों के समक्ष उपलब्ध है । यद्यपि मूल्य ज्यादा है, फिर भी, पुस्तक में समाविष्ट सामग्री एवं मुद्रण को देखते हुए पुस्तक का मूल्य नगण्य हो जाता है । पुस्तक का श्रेष्ठ सम्पादन करके सम्पादक द्वय न केवल आचार्यजी की उपलब्धियों को एक जगह एकत्रित किया है, बल्कि आयुर्वेद-जगत् को एक अमूल्य निधि प्रदान करके उपकृत किया है । उनका प्रयास स्तुत्य है ।

हमें विश्वास है कि पुस्तक लोकोपयोगी एवं लोकप्रिय होगी । प्रत्येक घर एवं पुस्तकालय में यह संग्रहणीय है । प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन एवं प्रकाशन के द्वारा वस्तुतः सम्पादक द्वय एवं प्रकाशक ने आचार्यजी के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की है । एतदर्थ सम्पूर्ण आयुर्वेद-जगत् इनका ऋणी रहेगा ।

- विमल चन्द्र झा

कनाडा, अमेरिका एवं ब्रिटेन में आयुर्वेदिक दवाओं पर प्रतिबंध

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

कनाडा, अमेरिका एवं ब्रिटेन ने भारत से आयातित आयुर्वेदिक दवाओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया ऐसा दैनिक समाचारपत्रों में पढ़ने को मिला । इन देशों ने अपने निवासियों को आयुर्वेदिक उत्पाद काम में नहीं लेने की सलाह दी है । अमेरिका ने जामा (जर्नल ऑफ अमेरिकन मेडिकल एसोसियेशन) की रिपोर्ट पर, ब्रिटेन ने 'मेडिसिन एण्ड हेल्थ केयर प्रोडक्ट रेग्यूलेटरी एजेन्सी' की सलाह पर एवं कनाडा ने 'कनाडा ड्रग रेग्यूलेटरी एजेन्सी, की रिपोर्ट पर आयुर्वेदिक दवाओं के क्रय-विक्रय एवं उपयोग पर प्रतिबन्ध लगा दिया है । इन सबकी रिपोर्ट यही कहती है कि आयुर्वेदिक दवाओं में धात्विक भस्में में होती हैं जिनका विपाक्त प्रभाव उपयोग कर्ताओं में देखा गया है ।

इस प्रतिबन्ध का सबसे बुरा प्रभाव भारतीय आयुर्वेदिक दवा निर्यात पर पड़ेगा एवं करोड़ों डालर विदेशी मुद्रा का नुकसान भी देश को उठाना पड़ेगा । दूसरा, करोड़ों भारतीयों द्वारा उपयोग में ली जानेवाली सदियों पुरानी चिकित्सा पद्धति की विश्वसनीयता पर एक प्रश्न चिन्ह लग गया है । अत: इस समस्या से निपटने के लिए केन्द्र सरकार के आयुष एवं स्वास्थ्य मंत्रालय को त्वरित कदम उठाकर तीनों देशों की सरकार से बात करनी चाहिए एवं पूरी रिपोर्ट का तथ्यों सहित अध्ययन करना चाहिए । जिन दवाओं के विपाक्त प्रभाव की बात कही जा रही है उनका किसी अन्तर्राष्ट्रीय लेब से एनालाइसिस करवाकर किसी मानक एजेन्सी की देख-रेख में ट्रायल होनी चाहिए । जबतक यह कार्य चले तव तक दवा कम्पनियों को भस्म रहित हर्बल मेडिसिन का निर्यात जारी रहे ऐसी व्यवस्था सरकार को करनी चाहिए ।

आयुर्वेदिक दवा कम्पनियों को संयुक्त रूप से किसी अन्तर्राष्टीय लेब जो विश्व स्वास्थ्य संगठन से मान्य हो, के द्वारा एनालाइसिस करवाकर धात्विक भस्मों के दुष्प्रभाव के आरोप का निराकरण करवाने का कदम उठाना चाहिए क्योंकि कई बार इस प्रकार का विवाद उठता रहता है कि धात्विक भस्में निरापद नहीं हैं । अत: इसका युगानुरूप विश्लेषण एवं ट्रायल की आवश्यकता है जो आज के युग में आयुर्वेद को विश्वस्तर पर पुन: पूर्णत: वैज्ञानिक प्रतिपादित करे ।

हालांकि सभी प्रकार की एलौपेथिक मेडिसिन बिना दुष्प्रभाव के कार्य करती हो ऐसा नहीं है लगभग सभी मेडिसिन अपना थोड़ा बहुत दुष्प्रभाव छोड़े बिना नहीं रहती निमुस्लाइड एवं डाइक्लोफेनिक जैसे दर्द निवारकों से देश में लाखों लोग के गुर्दे खराव हो रहे हैं, लेकिन इस पद्धति को पूरे विश्व में मान्यता है । अरबों डालर का व्यवसाय बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा होता है । अत: कई देशों का अर्थतंत्र दवा कम्पनियों पर ही टिका हुआ है । आयुर्वेदिक दवाओं पर प्रतिवन्ध भारतीय अर्थ व्यवस्था को कमजोर करने के लिए भी हो सकता है क्योंकि कई बार भारतीय उत्पादों को अमेरिका ने प्रतिबन्धित किया है ।

आवश्यकता है आयुर्वेद को आज के अर्थों में, आज के मानकों पर खरा उतार कर पूर्णत: वैज्ञानिक सिद्ध करने की, यह जिम्मेदारी है केन्द्र एवं राज्य सरकारों की । दवाकम्पनियों की एवं अनुसंधान एवं शिक्षक संस्थान की ।

डा० धीरेन्द्र शर्मा, पो. खींवसर, नागौर

बैद्यनाथ
लवणभास्कर चूर्ण
मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

आपके अनुभूत प्रयोग

आरोग्य अंक के 3 अनुभूत योग

1. ऐपेन्डीसाईटिस (आंत्र पुच्छ पर सफल योग)

डॉक्टर लोग आपरेशन कराने की सलाह देते हैं । पर अब आपरेशन कराने की आवश्यकता नहीं है । इस अनुभूत उपचार को अपनाइये । यह परीक्षित नुस्खा है । लोगों ने इसको अपनाया है । पूर्ण लाभ प्राप्त हुआ ।

कई रोगियों पर इसका प्रयोग करके शत-प्रतिशत सफलता पायी है । जंगल की एक बूटी (वनतुलसी) है । उसको पीस कर लुगदी बनाकर किसी लोहे की कलछुल आदि पर उसे गरम करके (भूनकर) उसपर थोड़ा-सा नमक छिड़क दें और दर्द के स्थान पर उस लुगदी की टिकिया को 48 घंटा में तीन बार बदल कर बाँधें और आराम करना चाहिए । 48 घंटे के उपचार के बाद रोग सदैव (हमेशा) के लिए चला जाता है ।

2. गृध्रसी हर अनुभूत चूर्ण

सुरांजन शीरी तीन तोला, नागौरी असगन्ध तीन तोला, सोंठ एक तोला, सौंफ तीन तोला, काला जीरा एक तोला, सनाय एक तोला, पोदीना शुष्क एक तोला, काली मिर्च 6 माशा, खमी, मस्तगी असली एक तोला ।

निर्माण विधि - सर्वप्रथम रूमी मस्तगी कूटकर अलग रख लें फिर सभी वस्तुओं को कूटकर मिला दें और कपड़छन कर लें ।

सेवन विधि - 6 माशा चूर्ण प्रातः संध्या दूध से सेवन करें । गृधसी को निर्मूल करने में अद्वितीय है । वैसे समस्त वात विकार में यह औषधि प्रयोग की जाती है । यह एक सफल योग है । लाभ शीघ्र ही हो जायेगा पर यह दवा चालीस दिन तक सेवन करना होगा ।

3. गठिया रोग की सफल चिकित्सा

दवा बनाने की विधि - 2.5 लीटर शुद्ध जल में 350 ग्राम चीनी के साथ 1-2 चम्मच चाय की पत्ती को उबाल कर साफ कपड़े से छानकर चौड़े मुँह के काँच की बोतल में गुनगुना होने तक ठंडा करके इसमें कल्चर की 20 ग्राम मात्रा मिला देते हैं । गर्मियों में 7 दिन में और जाड़ों में 15 दिन में कल्चर का किण्वीकरण हो जाता है । वह जम जाता है जिसे अलग करके साफ काँच के बरतन में पानी में डुबोकर रख देते हैं । यह मदर कल्चर दूसरी चाय बनाने के काम आयेगा । किण्वीकरण कल्चर को सुबह-शाम खाली पेट एक कप पीते हैं । इसका स्वाद के रस की तरह या एपिल साइडर की तरह का होता है

सुबह-शाम एक-एक प्याला (कप) तीन तक पीने से असाध्य गठिया वात रोग भी ठीक हो जाता है सर्वप्रथम यह पेट की गंदगी तथा स्थायी रूप से गैस बाहर निकाल देता है । शुरू में पेट में कुछ हलचल पर भी घबड़ाना नहीं चाहिए । इसके पीने से पेशाब मात्रा भी बढ़ जाती है । 21 दिनों के बाद यह जोड़ों एकत्र युरिक-एसिड को बाहर निकाल देता है तथा हड्डि के बीच एवं तरल पदार्थ होता है उसमें वृद्धि करके के संचालन में सहायक होता है ।

मुफ्त यह मन्चूरियन चाय का कल्चर मिलने का **पता** :- डा० रामलखन मिश्रा, प्रथम वैज्ञानिक भू- अनुभाग, भारतीय कृषि अनुसंधान, पूसा परिसर, नई दिल्ली के पास । निःशुल्क उपलब्ध है ।

दीवान-संत
राम विलास दास
सद्गुरू कबीर वचन वंश अनुयायी
पवई (पन्ना) - 488446

दद्रु की सफल चिकित्सा

दद्रु क्षुद्रकुष्ठों के अन्तर्गत आता है । यहां राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय गैर खेत (अल्मोड़ा) के बहिरंग विभाग में किशोर नामक उम्र 28 स्थानीय निवासी चिकित्सा में आया । उसके हाथ पर दद्रु रोग था स्राव, कण्डु, रूजा, दाह आदि लक्षण थे । लगभग 2 से वह परेशान था । विभिन्न प्रकार की एलोपैथिक मल लगा लगा कर परेशान था । मेरी चिकित्सा में आया । चिकित्सालय में उपलब्ध औषधियों से उसकी चिकि की । लेप में रूप Sulta Oint + स्वर्ण गैरिक + स्फटि + बोरिक एसिड का लेप बनाकर दिन में 3 बार लगाने के लिए कहा एवं निम्बादि चूर्ण 3 ग्राम तीन बार खाने के लि कहा । समय से औषध सेवन का निर्देश दिया 2 माह रोग जड़ से समाप्त हो गया ।

डा० प्रमोद कुमार
चिकित्साधिकारी
राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय
गैरखेत (अल्मोड़ा)

सम्पूर्ण देश में धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह की धूम । बैद्यनाथ प्रतिष्ठान ने इसे स्वास्थ्य-दिवस-समारोह के रूप में मनाया

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० ने इस वर्ष धन्वन्तरि-जयन्ती-समारोह को स्वास्थ्य-दिवस-समारोह के रूप में मनाने के लिए देशवासियों से आह्वान किया । इस अवसर पर प्रस्तुत स्वागत-भाषण निम्नानुसार है :

भगवान धन्वन्तरि के अवतरण-दिवस के उपलक्ष्य में आयोजित इस महोत्सव में आप-महानुभावों ने पधारने का अनुग्रह किया, इस हेतु हार्दिक आभारपूर्वक आपके प्रति धन्यवाद है तथा आपके उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य के लिए आयुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि से प्रार्थना करते हैं।

संसार में आयुर्वेद का शंखनाद

आयुर्वेद की विश्वसनीयता के शंखनाद की गूंज से आज संसार चमत्कृत हो रहा है । विदेशों में आयुर्वेद सक्षमताओं और उपलब्धियों से लाभ उठाने की होड़ निरन्तर बढ़ रही है । वहाँ डाक्टर व दवा निर्माता कम्पनियाँ आयुर्वेद के अष्टांगों पर व्यापक रिसर्च कार्यों में उदारता पूर्वक खर्च कर रही है और दवा निर्माण में आयुर्वेदिक वनस्पतियों व जड़ी-बूटियों का प्रयोग बढ़ रहा है । जटिल रोगों के लिए भी आयुर्वेदिक दवाओं का निर्माण प्रचार व व्यवहार उत्साहपूर्वक किया जा रहा है । आयुर्वेद के उज्जवल भविष्य के ये सब शुभ संकेत हैं । भारत ने इस वर्ष में अब तक अमेरिका, चीन, जापान, स्पेन, ईरान, इटली, मलेशिया, फ्रांस, जर्मनी, पोलेण्ड, ब्राजील, अर्जेन्टीना, सीरिया, श्रीलंका, पाकिस्तान, बांगलादेश, हांगकाँग, मालद्वीप, थाईलैण्ड व अरब देशों में लगभग 5 अरब से अधिक रुपयों की जड़ी-बूटियां सप्लायी कर ली है । पूरे वर्ष में यह राशि 8 से 10 अरब रुपयों तक पहुँचने की उम्मीद है । इसी भांति तैयार आयुर्वेदिक दवाएं अब तक करीब 5 अरब रुपयों की बाहर जा चुकी है । विदेशी नागरिकों व सरकारों में आयुर्वेद चिकित्सा के प्रति रूझान दिन-ब-दिन बढ़ रहा है । रूस, श्रीलंका, मॉरीशस, ब्राजील, बर्मा एवं नेपाल में आयुर्वेद के नियमित अध्यापन व शिक्षण की व्यवस्था की जा चुकी है । मॉरीशस में तो आयुर्वेद को राज्य मान्यता प्राप्त है । जिनेवा में प्रतिवर्ष विश्व स्वास्थ्य संगठन एवं भारत सरकार के सहयोग से आयुर्वेद व योग प्रदर्शनी का आयोजन होता है । फिर भी यह अजीब विडम्बना है कि, भारत में आयुर्वेद 'घर का जोगी-जोगना' बन कर रह गया है । भारत सरकार बजट में आयुर्वेद के लिए पूरे स्वास्थ्य बजट का 3-4 प्रतिशत रखती है । यह राशि भी एलोपैथी डॉक्टरों की कृपा से आयुर्वेद के बजाय एलोपैथ के लिए ही कमोवेश खर्च होती है जिन्हें न तो आयुर्वेद की वास्तविक सक्षमता का ज्ञान है और न ही उसके विकास के लिए उनमें कोई रुचि, उत्साह ही है । वे ही आयुर्वेद की नैया के खिवैया है । उधर अन्तर्राष्ट्रीय षड़यंत्र के तहत पश्चिम का एकाधिकार एवं बौद्धिक सम्पदा कानून बनने के बाद अश्वगंधा, तुलसी, हल्दी, सरसों, करेला व गिलोय आदि को पेटेन्ट कर लिया गया है । भारत सरकार को यह जानकारी बाद में दी गयी । अस्तु सम्मिलित प्रयासों से कुछ पेटेन्टों को मुश्किल से भारत के नाम कराया जा सका । इसी तरह आयुर्वेद दवाओं को घटिया व हानिकारक प्रचारित करने के कुचक्र अनेक स्तरों पर बराबर चल रहे हैं । इस स्थिति में आयुर्वेद के शुभचिन्तकों को सामूहिक चिन्तन-मनन करके अपने दायित्व को समझने की और जिम्मेदारी को भलीप्रकार निभाने की चुनौती संभालनी है ।

आयुर्वेद प्राचीनतम चिकित्सा-विज्ञान है । संसार की रचना के बाद पृथ्वी पर ज्यों-ज्यों स्त्री-पुरुषों की संख्या बढ़ी, त्यों-त्यों रोगों का प्रादुर्भाव हुआ । बीमारियों का चलन बढ़ा । तब आयुर्वेद ग्रन्थ रूप में नहीं था, लगभग 5,000 वर्ष पहले चरक, सुश्रुत आदि ने आयुर्वेद को लेखनीबद्ध किया । विद्यालयों व चिकित्सालयों की स्थापना का काल 3,000 वर्ष प्राचीन माना जाता है अर्थात् तब से आयुर्वेद का बाकायदा शिक्षण और चिकित्सा के रूप में उपयोग हो रहा है । उस समय तक कोई अन्य पैथी प्रकाश में नहीं आयी थी । आयुर्वेदिक दवाओं और जड़ी-बूटियों पर प्रायोगिक अनुसंधान होते रहे और समय के साथ आयुर्वेद का रूप आज के स्वरूप में आ गया । आज भी आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति संसार की सभी चिकित्सा पद्धतियों में विश्वसनीय और निरापद माना जाता है ।

बैद्यनाथ की आयुर्वेद निष्ठा

बैद्यनाथ की स्थापना सन् 1917 ई. में हुई थी । उस समय की तरह तैयार और पैकिंगबद्ध दवाओं का चलन नहीं था । जड़ी बूटियों की पहचान करने वाले इक्के-दुक्के थे । विधि विधान से आयुर्वेद पढ़े लोगों की संख्या भी

उंगलियों पर गिनने लायक थी । अस्तु शुद्ध तैयार आयुर्वेदिक दवाओं की प्राप्तिं बहुत कठिन थी । श्री बैद्यनाथ के संस्थापक पं० राम दयाल जोशी एवं वैद्य पं० रामनारायण शर्मा को आयुर्वेद विकास में आ रही कठिनाई एक बड़ी चुनौती लगी । उन्होंने उसे ऐसे स्वीकारा और जड़ी बूटियों के प्रबन्ध से लेकर निर्माण, पैकिंग, प्रचार व सप्लायी प्रत्येक काम को नए-नए रूप में विकसित किया । फिर तो तमाम लोगों ने अनुगमन स्वरूप ये कार्यक्रम अपनाए । धीरे-धीरे बैद्यनाथ के द्वारा आयुर्वेद के अंग उपांगों पर प्रतिसंस्कार व अनुसंधान हुए । नई-नई दवाओं पर रिसर्च, लुप्तप्राय: आयुर्वेदीय ग्रन्थों का नये सिरे से प्रतिपादन, उनका प्रकाशन, वनस्पतियों की खोज खबर, आयुर्वेद शिक्षण, प्रशिक्षण में योगदान, शास्त्रचर्चा परिषदों का आयोजन करके उच्चकोटि के आयुर्वेद मनीषियों के बीच आयुर्वेद के जटिल विषयों पर विचार-विमर्श, आयुर्वेद विद्वानों को आयुर्वेद सेवाओं के लिए पुरस्कार आदि नियमित दिया जाना और छात्रवृत्तियाँ व पुस्तकीय सहायता जैसे आयुर्वेद उत्थान के कार्य सन् 2000 से बराबर किए जा रहे हैं । उक्त सेवाओं का क्षेत्र और भी व्यापक हो गया है ।

वर्ष 2005 में इग्लैंण्ड और स्विट्जरलैण्ड में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में भवन द्वारा हिस्सा लिया गया । जिसमें बैद्यनाथ दवाओं को अच्छा फल मिला । साथ ही इन देशों में बैद्यनाथ के प्रचलित उत्पादनों के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया शुरु करने का प्रयास जारी किया गया है ।

बैद्यनाथ रिसर्च फाउण्डेशन के माध्यम से दीर्घ अनुसंधान व परीक्षण के पश्चात् विनरेंज की दवाइयों का निर्माण किया गया है । इस रेंज की औषधियाँ पूर्णत: हर्बल हैं तथा इसका निर्माण आयुर्वेद तज्ञ की देखरेख में किया जाता है । प्रत्येक जड़ी-बूटी (घटक द्रव्यों) की जाँच H.P.T.L.C.के माध्यम से कराई जाती है । इन दवाओं की Toxicity-studies मान्यताप्राप्त प्रयोगशाला द्वारा प्रमाणित की गई है । विनरेंज की औषधियाँ उच्चतम गुणवत्ता (क्वालिटी) के कारण वैद्यों एवं डॉक्टरों द्वारा अब प्रचुर मात्रा में रोगियों को लेने की सलाह दी जा रही है ।

प्युमा आयुर्वेदिक हर्बल प्रा.लि. नागपुर के अधिग्रहण के बाद बैद्यनाथ परिवार ने वर्तमान में सौन्दर्य, प्रसाधन के युग को ध्यान में रखते हुए हर्बल पद्धति के द्वारा 100 प्रतिशत वेजीटेरियन उत्पादन नीम-तुलसी पावडर, शैम्पू, क्रीम इत्यादि के निर्माण व मार्केटिंग में कदम रखे हैं जिसका अच्छा प्रतिसाद प्रतिष्ठान को प्राप्त हो रहा है । साथ ही इनकी बिक्री में निरंतर वृद्धि हो रही है ।

आयुर्वेद तथा बैद्यनाथ की विशिष्टताएँ

स्थापना काल से अब तक की यात्रा के दौरान कलकत्ता, पटना, झाँसी, नागपुर, नैनी (इलाहाबाद), बद्दी (हि.प्र.), सिवनी (म.प्र.) और हाजीपुर में बड़ी-बड़ी 8 फैक्टरियाँ स्थापित हो चुकीं है जिनमें लगभग 750 आयुर्वेदिक व पेटेन्ट दवाएँ विभिन्न साइज-पैकिंग में तैयार होकर देश के प्राय: हर कस्बे व नगरों में समान मूल्यों पर बिकती हैं। आयुर्वेद व बैद्यनाथ की विशिष्टताओं का व्यापक प्रचार और जटिल समस्याओं के समाधान के लिए सैकड़ों आयुर्वेदतज्ञ व जे.पी.एस. डाक्टर देश के हर कोने में तैनात हैं । आयुर्वेद के विकास और रोगी सेवा के पुनीत आयोजन में प्राचीन ऋषियों और कम्पनी के संस्थापक पूज्य वैद्यजी के आदर्शों पर सम्पूर्ण निष्ठा एवं उत्साह के साथ हम निरन्तर आगे बढ़ रहे हैं । आपका आत्मीय सहयोग एवं प्रोत्साहन हमारे लिये सम्बल व प्रेरणा है ।

आपके आरोग्य और दीर्घायु के लिए हार्दिक मंगल कामनाओं के साथ एक बार पुन: हम आपका विनम्र अभिनन्दन करते है ।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभागभवेत् ॥
जय आयुर्वेद । जय धन्वन्तरि ।

विनयावनत

संवत् 2062

बैद्यनाथ परिवार

उत्तर प्रदेश

धन्वन्तरि जयन्ती पर राज्यपाल ने औषधि पौधे रोपित किये

उत्तर प्रदेश के राज्यपाल, श्री टी.वी. राजेस्वर ने धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर राजभवन स्थित ''धन्वन्तरि वाटिका'' में रीठा (Sapindus Trifoliatus) एवं दालचीनी (Cinnomomum Zeylanicum) आदि आयुर्वेदीय औषधि पौधे रोपित किये । इसके पूर्व उन्होंने आयुर्वेद के प्रवर्तक

29.10.05 **को धन्वन्तरि जयन्ती के अवसर पर ''धन्वन्तरि वाटिका'' राजभवन, उ.प्र. लखनऊ में ''रीठा'' का पौधा रोपित करते हुए महामहिम श्री टी.वी. राजेस्वर, राज्यपाल, उ.प्र.।**

भगवान धन्वन्तरि के चित्र पर माल्यार्पण किया । इस अवसर पर प्रमुख सचिव राज्यपाल, श्री लव शर्मा ने तेजपत्रा (Cinnamomum tamala) के पौधे रोपित किये । इस कार्यक्रम में राजभवन के समस्त अधिकारी एवं कर्मचारी उपस्थित थे । चिकित्साधिकारी (आयुर्वेद) एवं प्रभारी अधिकारी धन्वन्तरि वाटिका, आयुर्वेदाचार्य डा० शिव शंकर त्रिपाठी ने बताया कि राजभवन में स्थापित इस धन्वन्तरि वाटिका का मुख्य उद्देश्य आयुर्वेदीय औषधि पौधों के ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाना है । डा० त्रिपाठी के अनुसार इस वाटिका में अर्जुन, रूद्राक्ष, कुटज, कंचनार, आँवला, हरड़, बहेड़ा, बादाम, समी, पुंत्रजीव, कदम्ब, पारिजात, कर्पूर, नारियल, सर्पगन्धा, अश्वगंधा, मौलश्री, निर्गुण्डी, लताकस्तुरी, श्योनाक, आकाशी घुइयां, कियोकन्द, कर्चूर आदि अनेक दुर्लभ औषधि पौधों सहित 200 से अधिक प्रजाति के पौधे यहाँ रोपित हें ।

पंजाब

आडॉम विज्ञान शोध संस्थान का माछीवाड़ा (पंजाब) में धन्वन्तरि जयन्ती सम्पन्न

माछीवाड़ा (पंजाब), रविवार दि. 30-10-2005 तदनुसार तिथि कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी की रात्रि में आडॉम विज्ञान शोध संस्थान, दुग्धपुरा - मंगलगढ़ की धन्वन्तरि जयन्ती माछीवाड़ा में विद्युत की ललित कलामय चकाचौंध में बड़े ही धूमधाम, अपूर्व सुन्दर नजारे वाली सजावट, गगनभेदी आयुर्वेद के जयजयकार के नारों, अत्यधिक हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाई गई । समस्त चित्ताकर्षक सुन्दर नियोजित व्यवस्था करने में श्री अजय कुमार जी, श्री दयारामजी, श्रीमती सीता मौर्या, श्री गजेन्द्र कुमार जी, श्रीमती श्वेता देवी, सरदार श्री बलवीर सिंह 'मान'जी, श्रीमती करमजीत कौर जी, श्री एस.एन. गर्ग जी आदि का बहुमूल्य योगदान एवं श्रमदान अपूर्व परम प्रशंसनीय था । माछीवाड़ा में भी आचार्य डॉ० महेश्वर प्रसाद जी द्वारा दूसरे आयुर्वेद के विद्वान वैद्य का नाम अध्यक्ष के लिए प्रस्तावित करने पर भी किसी ने समर्थन नहीं किया उल्टे आचार्य डा० महेश्वर प्रसाद जी को ही हर्ष एवं उल्लास से मेज थपथपाकर सर्वसम्मति से यहाँ अध्यक्ष मनोनित किया ।

इसके बाद भगवान धन्वन्तरि की विधिवत पूजा-अर्चना की गई । कुमारी श्वेता मौर्य, राहुल कुमार एवं कुमारी नन्दिनी ने भगवान धन्वन्तरि का स्तवन गीत गाया। तब अनेक विद्वान वैद्यों, मान्य आयुर्वेदज्ञों, आयुर्वेद के स्नातकों एवं स्नातकोत्तरों, दिल्ली से आए एलो. सर्जन डा० सुमन कुमार, एम.बी.बी.एस., एम.एस. (छात्र शोधकर्ता) तथा अन्य एलो. डॉक्टरों के आयुर्वेद से सम्बन्धित ओजस्वी एवं सारभूत भाषणों के बाद अन्त में अध्यक्ष पद से बोलते हुए आचार्य डॉ० श्री महेश्वर प्रसाद जी ने भगवान धन्वन्तरि के जन्म और कृति पर संक्षिप्त प्रकाश डाला । आगे उन्होंने अपने ओजस्वी एवं सारभूत भाषण में कहा- माछीवाड़ा हिन्दू सिक्ख वीर संत श्री गुरूगोविन्द सिंह जी की साधना एवं कर्म भूमि रही है । यहाँ पहले भयानक जंगल था; अब भी इनमें दिव्य जड़ी-बूटियाँ मिलती हैं । पर अब यहाँ भव्य और विस्तृत नगर बस गए हैं । बड़े गुरूद्वारे के पुराने वृक्ष, राहट कूंआ, आम आदि के पुराने पेड़ गुरूदारे में प्रतिदिन गुरूग्रन्थ साहब की सामूहिक प्रार्थना भजन-कीर्तन एवं आगन्तुकों के लिए लंगर (सामूहिक भोजन) और समीप में सटे अजायब घर इसके ज्वलंत प्रमाण हैं । इस परम पावन साधना स्थली एवं सिक्खों की दिव्य नगरी में अनेक आयुर्वेदज्ञ एवं जन-गण इतनी अधिक संख्या में उपस्थित

होकर प्रेम भक्ति, आकांक्षा एवं श्रद्धा के साथ भगवान धन्वन्तरि की जयन्ती मना रहे हैं, यह परम हर्ष की बात है। मुझे इस बात की सुखद अनुभूति हुई है कि पंजाब के प्रायः सभी व्यक्तियों में आयुर्वेद के प्रति अपार प्रेम श्रद्धा एवं जागरूकता है। मैंने इस लघु समय तीन महीने में अपने नवीन शोध कार्यों की औषधियों एवं क्रियाओं से पंजाब के व्याधि-पीड़ितों की संतोषप्रद उत्तम सेवा की है तथा पर्याप्त यश भी अर्जित किया है। मैंने औषधियों के साथ-साथ शल्य क्रिया (Surgical operation) की आचार्य सुश्रुतोक्त विधि पर अनेक रोगियों पर प्रत्यक्ष परीक्षण कर उनमें उत्तम सफलता प्राप्त की है। आयुर्वेदज्ञों को अब आयुर्वेदीय विधि से शल्यकर्म करने में हिचकिचाहट, भय एवं संकोच करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि शीघ्र व्रण विनाशिनी लेप, सूक्ष्म जीवाणु-कीटाणुरहित करण प्रक्रियाएँ और संज्ञाहरण की उत्तम आयुर्वेदीय औषधियों का नये युग के अनुरूप नव आविष्कार कर लिया गया है जो बड़े काम की है और निरापद है। कैन्सर, एड्स, मधुमेह, राजयक्ष्मा, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, जटिल व्रण, श्लीपद, कालाजार, अस्थिभंग, अस्थिक्षय की नव आविष्कृत आयुर्वेदीय औषधियाँ पूर्ण निरापद एवं आशुगुणकारी प्रमाणित हुई हैं। बड़े-बड़े रूग्णालयों के नवीन, जीर्ण एवं जटिल रोगियों पर प्रत्यक्ष परीक्षण, अध्ययन एवं शोधकार्य निरन्तर प्रगति पर हैं। हम आयुर्वेद के स्नातकोत्तर एवं स्नातक के आयुर्वेद की असुविधाओं, अभावों, नवयुग के अनुसार रंग-रूप, आकर्षण एवं शीघ्र प्रभाव की न्यूनता की भावनाओं को समझते हैं तथा उन्हें दूर करने का हर संभव प्रयास कर रहे हैं तथा काफी हद तक उनमें सफलता भी मिली है। हमारा हर शोधकार्य आयुर्वेद के प्रति श्रद्धा, प्रेम, भक्ति एवं जिज्ञासा जगाने वाला हो रहा है। प्रत्येक आयुर्वेदज्ञ को विशुद्ध आयुर्वेद की ओर आकर्षित हो उत्कट अभिलाषा से अपनाने की प्रेरणा एवं सुविधा दी जा रही है।

अन्त में समारोह 'आयुर्वेद की जय' के नारों के साथ समाप्त हुआ।

उत्तर प्रदेश

धन्वन्तरि जयन्ती समारोह

आयुर्वेद अनुसंधान संस्थान, साहिबाबाद,

धन्वन्तरि भगवान की पावन जयन्ती के अवस पर आज दिनांक 30.10.2005 रविवार पूर्वाह 11 बजे वि विधान से पूजन अर्चनाकर कर दीप प्रज्वलित किया ग तथा तदनन्तर डा० किरण मिश्रा जी (वरिष्ठ चिकित्सक के.आ.चि. सेवा भारत सरकार की अध्यक्षता में नि:शुल् रोग निदान शिविर का भी आयोजन किया जिसमें प्रा समाज के निम्न आय वर्ग के 150 रोगियों ने लाभ उठा। शिविर में खांसी, जोड़ों के दर्द, बुखार, दस्त, सिर द विबन्ध (कब्ज) जैसे बीमारी के मरीज, उपस्थित हु तथा औषधि प्राप्त कर लाभ उठाया। स्त्री रोगों तथा वा रोगियों की चिकित्सा डा० श्रीमती राज त्यागी भू.पू. वरि चिकित्सक, पंजाबी बाग, आयुर्वेदिक अस्पताल, नई दिल्ल द्वारा की गयी। शिविर का संचालन डा० महेन्द्र कुम त्यागी भू.पू. वरिष्ठ चिकित्सक स. निदेशक केन्द्रीय आयु अनुसंधान संस्थान, पंजाबी बाग, नई दिल्ली की अध्यक्ष में हुआ। इस अवसर पर वैद्य श्री शान्ति कुमार जी मिश्र वैद्य सुरेश जी पाठक, डा०आर.सी. श्रीवास्तव, डा० शिवकु त्यागी, डा. इन्द्रेश जी त्यागी, डा० नरेन्द्र बंसल व सराहनीय योगदान रहा। इस अवसर पर डा० त्यागी जी वैद्य समाज से इस प्रकार के शिविर भविष्य में भी ल रहने की अपील की। शिविर में दिल्ली से पधारे डा० दत्त कौशिक ने भी अपना अमूल्य सहयोग दिया। इ समस्त आयोजन की प्रबन्ध तथा व्यवस्था वैद्य राज शान्ति कुमार जी मिश्र के सान्निध्य एवं संरक्षण में गयी।

धन्वन्तरि जयन्ती एवं वयोवृद्ध वैद्यों का सम्मान समारोह सम्पन्न

मंडल आयुर्वेद सम्मेलन, लखनऊ मंडल तत्वावधान में दिनांक 29/10/2005 दिन शनिवार को उमानाथ वली प्रेक्षागृह, कैशरवाग में धनवन्तरि जयन्ती वयोवृद्ध वैद्यों का सम्मान समारोह मंडलाध्यक्ष वैद्य

मंगलदेव त्रिवेदी की अध्यक्षता में सपन्न हुआ जिसमें मुख्य अतिथि श्री सुरेश कुमार श्रीवास्तव, विधायक मध्यक्षेत्र लखनऊ, विशिष्ट अतिथि श्री राधेश्याम गुप्त पूर्व अध्यक्ष गो सेवा आयोग एवं वैद्य श्री दयाराम अवस्थी पूर्व अध्यक्ष निखिल भारतीय आयुर्वेद विद्यापीठ दिल्ली ने भगवान धन्वन्तरि पर दीप प्रज्ज्वलित कर माल्यार्पण किया ।

सर्व प्रथम वयोवृद्ध वैद्यों सर्वश्री दयाराम अवस्थी वैद्य बाबूराम मिश्र, डा० सत्यपाल गुप्ता, डा० पूर्ण चन्द्र जैन, डा० रमेश चन्द्र सक्सेना, डा० आनन्द कुमार वर्णवाल, डा० दिनकर गोविन्द थत्ते, वैद्य श्री श्रीनारायण विद्यार्थी एवं डा० राजनारायण सिंह का मंडलाध्यक्ष वैद्य मंगल देव त्रिवेदी एवं मुख्य अतिथि विधायक श्री सुरेश कुमार श्रीवास्तव द्वारा सभी वैद्यों को माल्यार्पण कर प्रतीक चिन्ह देकर सम्मानित किया गया ।

समारोह में मंडलाध्यक्ष श्री द्विवेदी ने आए सभी अतिथियों एवं वैद्यों का अभिनन्दन एवं स्वागत किया गया । भारतीय चिकित्सा पद्धति विश्व की तमाम चिकित्सा पद्धति में सर्वश्रेष्ठ है । भारतीय चिकित्सा पद्धति का विस्तार भारत के साथ-साथ विश्व के सभी उन स्थानों पर होना चाहिए जहाँ भारतीय समुदाय के लोग रहते हैं । यह उद्‌गार गो सेवा आयोग के अध्यक्ष श्री राधेश्याम गुप्ता एवं विधायक श्री सुरेश कुमार श्रीवास्तव ने व्यक्त किए । विशिष्ट अतिथि वैद्य श्री दयाराम अवस्थी ने बताया कि आज आयुर्वेद का पतन हो रहा है आयुर्वेद कालेजों में शिक्षकों का अभाव है । प्रयोगशालाएं मृतप्राय पड़ी है । आयुर्वेद कालेजों से निकले छात्र अपने वैद्य लिखने में शर्म महसूस करते हैं । आयुर्वेद का उत्थान कैसे हो आज इस पर विचार करने की आवश्यकता है । समारोह में डॉ० सत्यपाल गुप्ता वैद्य श्री नारायण विद्यार्थी, डा० आनन्द कुमार वर्णवाल, डा० शिव शंकर त्रिपाठी एवं वैद्य बृज बिहारी मिश्रा ने भगवान धनवन्तरि के जीवन पर प्रकाश डालते हुए आयुर्वेद एवं भारतीय चिकित्सा पद्धति की उपयोगिता के महत्व पर प्रकाश डाला । समारोह का संचालन डा० भानु प्रकाश आर्य ने किया । अन्त में मंडल महामंत्री वैद्य भगवती प्रसाद दीक्षित ने समारोह में आए अतिथियों एवं सभा में उपस्थित सभी वैद्यो को धन्यवाद देकर जलपान के साथ आयोजन समाप्त करने की घोषण की । समारोह में जलपान की व्यवस्था बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की ओर से वैद्य सतीश शर्मा ने की ।

दिव्य चिकित्सा भवन की धन्वन्तरि जयंती

का.सं. पनगरा (बाँदा) 30 अक्टूबर, चिकित्सा पल्लव कार्यालय दिव्य चिकित्सा भवन में विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी आद्यायुर्वेद प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि जयन्ती महोत्सव वैदिक रीति से सोल्लास पूर्वक मनाया गया । इस समारोह में क्षेत्र के प्रबुद्ध वर्ग, पत्रकार, एडवोकेट्स, केमिस्ट, साहित्यकार विभिन्न पैथियों के चिकित्सक एवं आयुर्वेद प्रेमी उपस्थित रहे । सर्वप्रथम परमानन्द वाजपेयी द्वारा आचार्य वियजकान्त शास्त्री ने वैदिक रीति से हवन-पूजन कराया । कार्यक्रम की शुरूआत मुख्य अतिथि श्रीमान् आर.के. पाण्डेय पी.सी.एन. उपजिलाधिकारी, नरैनी ने दीप प्रज्जलित कर किया । इसी क्रम में दिव्य आयुर्वेद भवन (फार्मेसी) द्वारा गरीब, असहायों के लिए धर्मार्थ चिकित्सालय की भी शुरूआत की गयी जिसका उद्‌घाटन फीता काटकर मुख्य अतिथि श्री आर.के. पाण्डेय ने किया । मुख्य अतिथि ने दिव्य चिकित्सा भवन को इस युग का एक धन्वन्तरि संस्थान बताया जहाँ शोधपरक विशुद्ध आयुर्वेदीय पंचकर्मा द्वारा दमा, मिरगी, सोरायसिस, सफेद दाग, किडनीफेल्योर, गठिया, मधुमेह आदि जीर्ण-जटिल रोगों की सफल चिकित्सा की जा रही है । बुन्देलखण्ड नहीं पूरे उत्तर भारत में ऐसी पंचकर्म की व्यवस्था अन्यत्र नहीं जैसी दिव्य चिकित्सा भवन में है । विशिष्ट अतिथि श्री के.वी. श्रीवास्तव उपजिलाधिकारी, बबेरू ने कहा कि डा. वाजपेयी मेरे बहुत दिनों से करीब हैं । आप जितने विद्वान् चिकित्सक उतने ही दबंग लेखक है । इस महोत्सव में उपस्थित सभा को डा० श्रीराम त्रिपाठी, पू.क्षे.आयु.यू. अधि, डा०वीरू कटियार, श्री काली प्रसाद बरनवाल एवं कुमकुम बरनवाल (वाराणसी), श्री कृष्ण कुमार ओझा (पटना), डा. अखिलेश प्रताप सिंह, जालौन, डा. आर.एस. द्विवेदी बिसण्डा ने भी विचार प्रस्तुत किये । कार्यक्रम में ही चार आयुर्वेद विद्वान चिकित्सकों को

भगवान धन्वन्तरि को पुष्पाञ्जलि अर्पितकरते श्रीमान आ.के. पाण्डेय पी.सी.एस. उपजिलाधिकारी नरैनी, साथ में चिकित्सा पल्लव के प्रधान सम्पादक एवं निदेशक डा० वाजपेयी

अमृत कलश, प्रशस्ति पत्र, शाल समर्पित कर सम्मानित भी किया गया । कार्यक्रम के अंत में प्रसाद वितरण हुआ । उसी समय श्री राम औतार द्विवेदी की संगीत पार्टी ने सांस्कृतिक गीत प्रस्तुत किये । कार्यक्रम का संचालन श्री विजयकान्त मिश्र 'शास्त्रीजी' ने किया । संस्था के सभी कर्मचारियों/पदाधिकारियों को डा. श्रीराम त्रिपाठी, पू.क्षे. आयु.यू.अधि. ने वस्त्र देकर सम्मानित किया । कार्यक्रम का समापन वैद्य फूलचन्द्र शर्मा, गायत्री नगर, झालावाड़ (राजस्थान) द्वारा रचित धन्वन्तरि आरती और धन्वन्तरि चालीसा पाठ के पश्चात् किया गया ।

धन्वन्तरि जयन्ती समारोह सम्पन्न

विश्व आयुर्वेद परिषद् की शाखा एटा जिला ईकाई के तत्वावधान में कासगंज में जिलाध्यक्ष डा० विनय शौनक्र आयुर्वेदाचार्य, पी.एच.डी. की अध्यक्षता में धन्वन्तरि जयन्ती का आयोजन आर्य समाज मन्दिर नदरई गेट पर किया गया ।

इस कार्यक्रम में मुख्य अतिथि इतिहासकार एवं संस्कृत के विद्वान् डा० श्री निवास शर्मा शास्त्री ने कहा कि भगवान धन्वन्तरि भारतीय संस्कृति के द्योतक हैं, जिसके कारण दैत्य-देवताओं द्वारा समुद्र मंथन के उत्पत्ति इसी दिन उनका प्राकट्य होने से (धन तेरस) की सार्थकता है

कासगंज में विश्व आयुर्वेद परिषद् जिला इकाई की ओर से धन्वन्तरि जयन्ती का आयोजन किया गया ।

विश्व आयुर्वेद परिषद् के जिलाध्यक्ष, डा. विनय शौनक ने कहा कि स्वास्थ्य की कामना करने वालों को भगवान धन्वन्तरि का पूजन-अर्चन करना चाहिए । उन्होंने कहा कि आयुर्वेद की उपेक्षा और आलोचना करने वालों को समझ लेना चाहिए कि विश्व में सिर्फ आयुर्वेद ही ऐसी पैथी है जो रोग के कारण यथा (मिथ्याहार विहार, आसात्मेन्द्रियार्थ संयोग) कर्मज व्याधि बताती है । बाकी कोई अन्य पैथी इतना गहन अध्ययन नहीं करती है ।

इस कार्यक्रम में परिषद् की ओर से डा० राजेन्द्र महेश्वरी, मोहनलाल आर्य, राधेश्याम आर्य, डा० के.डी. पाण्डेय, प्रदीप माहेश्वरी, डा०रामेश्वर सिंह यादव विनो दीक्षित एडवोकेट ने सम्बोधित किया ।

कार्यक्रम का संचालन बाबूपुर इन्टर कालेज के प्रवक्ता मोहन लाल शर्मा ने किया । कार्यक्रम के संयोजक डा० रामेश्वर सिंह यादव थे ।

राजस्थान

ऐलोपैथी पर आधारित स्वास्थ्य नीति को समाप्त किया जाए । योग एवं अष्टांग आयुर्वेद को अपनाया जाए ।

बीकानेर 30 अक्टूबर । भगवान श्री धन्वन्तरि जयन्ती समारोह पर स्थानीय भारत अस्पताल में आयोजित बीकानेर जिला वैद्य सभा के विशेषाधिवेशन में आयुर्वेद र सम्मेलन में वक्ताओं ने गम्भीर आरोप लगाये । स्वतंत्रता के बाद से सरकार बार-बार आयुर्वेद को अपनाने की घोष

करके जनता को धोखा देती रहती है । घोषणाएं भ्रामक निरर्थक प्रमाणित होती रही है । एम.बी.बी.एस. के तृतीय वर्ष के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद सहित सात चिकित्सा पद्धतियों को शामिल कर अध्ययन की घोषणा कर चुकी है । इसी श्रृंखला में घोषणा की यह एक और कड़ी है । यह पद्धति आयुर्वेद का ही अंश है । आयुर्वेद से पृथक-पृथक नहीं है फूट डालो और एलोपैथी को थोपे रखो नीति पर चल रही है । आयुर्वेद से वंचित रहने के कारण भारत की आज की जनसंख्या से भी अधिक लोग रोगाक्रमण से मर चुके है ।

अ.भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के पूर्व केन्द्रीय संगठन मंत्री वैद्य श्री मक्खनलाल शास्त्री ने अध्यक्षीय उद्बोधन में कहा कि विगत 57 वर्षों से जनता के स्वास्थ्य की निरंतर दुर्दशा हो रही है । लगभग 80 प्रतिशत लोग एक या एकाधिक रोगों से ग्रस्त हैं । एक करोड़ साठ लाख लोग प्रति वर्ष विभिन्न रोगों से मारे जा रहें है एक करोड़ गर्भस्थ भ्रूणों की हत्याए हो रही है । जीवन रक्षा के प्रति सरकार गम्भीर नहीं है । सौ से भी अधिक रोगों की शीघ्र लाभकारी, सफल, प्रमाणिक चिकित्सा एलोपैथी में नहीं है फिर भी एलोपैथिक काल्पनिक चिकित्सा दी जा रही हैं लोगों को मृत्यु के मुंह में धकेला जा रहा है ।

श्री शास्त्री ने कहा कि जब मस्तिष्क ज्वर, गर्दनतोड़ ज्वर, घातक मलेरिया, प्लूरसी, निमोनिया, गठिया, पक्षाघात, पीलिया, आंत्रशोथ, आन्त्रिक ज्वर, मस्तिष्क ट्यूमर, हृदय रोग, मधुमेह, रक्तचाप वृद्धि, पार्किन्सन आदि रोगों से आयुर्वेद द्वारा जीवन सुरक्षा एव्रं चिकित्सा संभव है तब आयुर्वेद की घोर उपेक्षा को कोई औचित्य नहीं है, आयुर्वेद में विद्यमान हजारों अनुसंधानों, जीवनरक्षा सूत्रों, उन्नत शल्य क्रियाओं, प्रसव संकटों के समाधानों, रसायन, बाजीकरण आदि विधाओं से समृद्ध सर्वांगीण आयुर्वेद को भारत से समूल समाप्त करने का कोई औचित्य नहीं है ।

श्री शास्त्री ने बताया कि कथित विश्व स्वास्थ्य संगठन, केन्द्र एवं राज्यों के स्वास्थ्य मंत्रालय एवं स्वास्थ्य विभाग केवल एलोपैथी पर आधारित है । इनको एलोपैथिक मंत्रालय एवं एलोपैथिक विभाग कहा जाना चाहिए । विश्व स्वास्थ्य संगठन को भी विश्व एलोपैथी संगठन कहा जाना चाहिए स्वास्थ्य सेवाओं में मानव कल्याणकारी बनाने के लिए प्रधानता का सिंहासन आयुर्वेद को सौंप देना चाहिए । एलोपैथी सहित अन्य को वैकल्पिक चिकित्सा की मान्यता मिलनी चाहिए और एलोपैथी पर आधारित स्वास्थ्य नीति को समाप्त कर योग और अष्टांग आयुर्वेद पर आधारित स्वास्थ्य नीति अपनाई जानी चाहिए ।

मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ स्वंतत्रता सेनानी श्री रामनारायण शर्मा ने बीकानेर के दानदाताओं के सहयोग से स्थापित-संचालित श्री सनातन धर्म आयुर्वेद महाविद्यालय को चालू करने की मांग की । शर्मा ने कहा कि क्षेत्रीय संकीर्णता के कारण आयुर्वेद विश्वविद्यालय जोधपुर में बनाया जा रहा है जबकि प्रचुर भूमि एवं नहर के कारण जड़ी-बूटियां उगाने के लिए यहां प्रचुर साधन उपलब्ध है ।

विशिष्ट अतिथि के रूप में बार एसोसिएशन के पूर्व अध्यक्ष वरिष्ठ अधिवक्ता श्री अजयप्रकाश भटनागर ने योग और आयुर्वेद को एक दूसरे का पूरक बताया तथा अकेले ही योग मनुष्य को पूर्ण स्वस्थ रख सकता है । इसी तरह आयुर्वेद सर्वांगीण चिकित्सा है और दोनों मिलाकर तो सभी कमियों को पूरा कर सकते हैं इसलिए योग और अष्टांग आयुर्वेद को सरकार द्वारा अपनाया जाना अत्यावश्यक है ।

समारोह में बीकानेर जिला वैद्य सभा की ओर से वयोवृद्ध वैद्य श्री अमानाराम वर्मा का सम्मान किया गया । इस अवसर पर पतंजलि योग के योग साधकों श्री विनोद जोशी, श्री किशन छंगाणी, श्री चन्दनमल सोनी, श्री अरविन्द स्वामी, श्री रतन तम्बोली का उल्लासपूर्वक सम्मान किया गया । इस अवसर पर योग साधक श्री विनोद जोशी, श्री किशन छंगाणी, डा० नन्दलाल वर्मा, वैद्य बनवारी लाल शर्मा आदि ने भी विचार व्यक्त किए ।

बिहार

पकड़ी (आरा) 3, नवम्बर, 2005 । इंडियन इन्स्टीट्यूट ऑफ आयुर्वेद रिसर्च और हॉस्पीटल सर्किट हाउस के सामने, पकड़ी में भगवान् धन्वन्तरी की जयन्ती मनायी गई । इस जनहितार्थ संस्था के संस्थापक श्री राम सिंह ने अपना उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र मानव जीवन का पूर्ण विज्ञान है और विश्व

का प्राच्य चिकित्सा जिसका इतिहास वैदिक काल से भी पूर्व का है। ऋषि-मुनि, संत-तपस्वी, साधु-महात्मा आदि मनीषियों द्वारा अथक परिश्रम, गहन अध्ययन-मनन, अनुसंधान कर आयुर्वेद आदि चिकित्सा की उपलब्धि हासिल कर समस्त मानव कल्याण के लिए धरोहर के रूप में छोड़ गए हैं। इन्होंने कहा कि मैं आयुर्वेद शास्त्र का जानकार नहीं हूँ लेकिन आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्त का अनुयायी जरूर हूँ। इन्होंने जोरदार शब्दों में कहा कि रोग को दूर करने एवं स्वस्थ समाज बनाने के लिए आयुर्वेदीय सिद्धान्त एवं जीवनचर्या का पालन करना जरूरी है। सम्प्रति कुछ रोग जैसे वृक्क विकार, एड्स, कैन्सर, फुफ्फुसीय प्रदाह, सॉर्स, सुगर, उच्च व निम्न रक्तचाप, हृदयाघात आदि सुरसा की तरह मुँह बाए हुए हैं। इन रोगों के निदान एवं रोकथाम के लिए आधुनिक चिकित्सा विज्ञानी भी जी तोड़ मेहनत कर रहे है लेकिन ठोस प्रतिफल संदिग्ध है। इस रोग की सफल चिकित्सा एवं निदान करने में आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान पूर्ण सक्षम रहा है। इन्होंने मार्मिक स्वरों में कहा कि एलोपैथी चिकित्सा की व्यवस्था में सरकार अपार धन राशि खर्च कर रही है, किन्तु इसकी तुलना में आयुर्वेद दवा एवं चिकित्सा के अनुसंधान पर नहीं के बराबर खर्च किया जा रहा है। गौरतलब हो कि सरकार व जनता द्वारा यथोचित सहयोग नहीं मिलने पर भी आयुर्वेद अपने शाश्वत एवं सनातन गुण-धर्म के बदौलत जीवित है।

संस्था के प्रबन्ध निदेशक, श्री वीरेन्द्र सिंह जी ने आयुर्वेद चिकित्सा के प्रति सरकार की उपेक्षा पूर्ण रवैये पर खेद प्रकट किया।

संस्था के द्रव्य मिश्रण – औषध निर्माण व्यवस्थापक श्री डा० शकील अहमद ने जड़ी बूटी की महत्ता एवं आयुर्वेद चिकित्सा की सफलता पर ध्यान दिलाया।

संस्था के कर्मठ व्यवस्थापक श्री अशोक कुमार गुप्ता आगत सज्जनों का स्वागत एवं धन्यवाद ज्ञापन के बाद प्रसाद वितरण कर संगोष्ठी समाप्त की गई।

अन्त में संस्थापक के द्वारा यह घोषणा की गई की संस्था के मुख्य चिकित्सक कविराज डा० दिवाकर ठाकुर जी.ए.एम.एस. व डी.एससी.ए. आयुर्वेद वृहस्पति के प्रत्युत्पन्नमतित्व से जटिल रोगों का निराकरण विशुद्ध आयुर्वेदीय पद्धति से किया जा रहा है।

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध।
संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है। इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है। प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

विशेष संवाददाता की रपट

छत्तीस गढ़

भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी पर त्रिदिवसीय अन्तराष्ट्रीय संगोष्ठी सम्पन्न । हृदय रोग पर विशेष सम्मेलन आयोजित

दिनांक :- 13.11.2005 से 15.11.2005

छत्तीसगढ़ हिन्दी परिषद् के तत्वावधान में - "भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं हौम्योपैथी'' पर त्रिदिवसीय अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी सम्मेलन एवं आयुर्वेद विज्ञान शिविर-2005 आयोजित कार्यक्रम का शुभ आरम्भ वैद्य आर.के. वार्ष्णेय, जरारा, मथुरा उ.प्र. के कर कमलों से दीप प्रज्जवलित करके किया गया एवं प्रमुख रूप से आयोजन के अध्यक्ष वैद्य धनुषराम साहू जी, एवं श्री विमलचंद झा जी की अध्यक्षता में विशेष अतिथि :- डा० रूधा राम चौधरी, राजस्थान, डा० भाना राम खोखर, राजस्थान, डा० विनोद कुमार खोखर, राजस्थान, वैद्य वेनीराम, सिकन्दरपुर (उ.प्र.) एवं अनेक पूरे देश से आए हुए आयुर्वेद के वैद्य एवं विशेषज्ञों के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन का उद्घाटन किया गया । इसकी जानकारी कार्यक्रम के सचिव डा० बी.आर.साहू द्वारा की गई । इस कार्यक्रम में मुख्य रूप से डॉ० मिलापराम साहू, डा० सी.एल. वर्मा, डा० विश्वकर्मा, डा. विनायक राधोका नायक, डा. राजा राम सिंह, श्री राधेश्याम सिन्दुरिया जी, विशम्भर यादव 'मरहा' मेवाला कौशल, डा. नरेन्द्र कुमार साहू, डा. विमला साहू, डा. सीता राम साहू, भोजराम शर्मा, डा.पी.के.गुप्ता, डा.वी.पी. ताम्रकार, डा. गोस्वामी, डा. खिलावन साहू, डा. उमरे डा. एल.आर. साहू, डा. द्वारिकाशरण साहू, डा. रेखलाल साहू, डा. गणपति राम साहू, डा. हनस राम पटेल, डा. वैद्यचरण ध्रुव की उपस्थिति एवं सचिव डा. तीरथराम साहू ने भाग लिया ।

देश के लगभग सभी जगहों से आये हुए वैद्य एवं डाक्टरों द्वारा 'हृदय रोग पर आयोजित' संगोष्ठी में शामिल होकर अपने शोथ-पत्र का पठन-पाठन किया गया । इस अवसर पर संगीत गायन में कु. सोनी साहू, कु. रिद्धी साहू, कु. रेणका, कु. नेहा एवं कु. रीना शर्मा ने प्रस्तुत किये । प्रभारी शिक्षिकाएं कु. मंजुवर्मा, कु. करुणा ठाकुर, श्रीमती जमुना जैन तथा वालइन्टीयर में छात्र राहुल साहू, विजय कुमार जंघेल, मुन्ना सिंह, मनोज, प्रकाश शर्मा, यशवंत, प्रमोद, अश्वनी कुमार, राजेश शैलेन्द्र इनके प्रभारी श्री व्ही. पी. देवांगन, श्री जगदेव कुमार साहू, प्राचार्य-श्री एस.एल. मिथलेश, उदय उ. मा.वि. छावनी भिलाई विशेष सहयोग रहा ।

इस आयुर्वेद विज्ञान शिविर, 2005 का समापन दिनांक 15.11.2005 को सम्पन्न हुआ । इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि माननीय श्री ताराचंद जी साहू, सांसद दुर्ग, माननीय डा. श्री कृष्ण मूर्ति बांधी जी, स्वास्थ्य मंत्री छत्तीसगढ़ शासन एवं माननीय श्री मेघाराम साहू जी मंत्री स्कूल शिक्षा, खेल एवं युवक कल्याण छत्तीसगढ़ शासन विशेष रूप से उपस्थित थे ।

यद्यपि इस अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन में प्रतिनिधियों की उपस्थिति कम थी, किन्तु इसकी पूर्त्ति आयोजकों के स्नेहिल दिल एवं शानदार आतिथ्य सत्कार ने कर दी । छत्तीसगढ़ हिन्दी परिषद् के संस्थापक अध्यक्ष, वैद्य धनुषराम साहू का अथक प्रयास सराहनीय था । उनके एवं आयोजकों के उत्साह ने सम्मेलन के कार्यक्रम को रंगीन बना दिया था । संध्या को कवि-गोष्ठी का आयोजन किया गया था । इस गोष्ठी में न केवल भिलाई, बल्कि दुर्ग एवं निकटवर्ती क्षेत्रों के अनेक प्रख्यात् कवि उपस्थित थे जिनमें राष्ट्रकवि श्री राधेश्याम सिन्दूरिया, कवियित्री श्रीमती प्रतिमा मिश्र, शीलाजी, श्री रामवरण कोरी, 'कशिश' श्री विशवम्भर यादव (मरहा), प्रमोदजी आदि प्रमुख थे । वैद्यराज साहू जी एवं उनके सहयोगियों का प्रयास स्तुत्य था । इस अवसर पर अनेक शोध-पत्र पढ़े गये । व्याख्यानदाताओं में प्रमुख थे - वैद्य आर.के.वार्ष्णेय, विमल चन्द्र झा, वैद्य सीताराम साहू, वैद्य धनुष राम साहू, डा. मिलाप राम साहू, सर्वश्री रूधाराम चौधरी, विनोद कुमार खोखर, वैद्य वी.पी. ताम्रकार, वैद्य दैनीराम इत्यादि ।

धन्यवाद ज्ञापन डा. बी. आर. साहू ने किया ।

गुजरात

वन्धत्व-इनफर्टीलीटी अपडेट परिसंवाद

गुज.प्र.आ.सम्मेलन द्वारा आयोजित, रोटुंडा रेशमबाई फर्टिलीटी सेन्टर के सहयोग द्वारा दि० 25.9.05 रविवार सुबह 9.00 बजे अष्टमंगल काम्प्लेक्स, शाहिबाग, अहमदाबाद

के सभागृह में 482 वैद्यों एवं आयुर्वेद महाविद्यालयों के अध्यापक गण-विद्यार्थी मित्रों की उपस्थिति में गुजरात राज्य के मंत्री श्री भरतभाई बाराटे के कर-कमलों द्वारा दीप जला करके भगवान धनवन्तरि की स्तुति के साथ गुज.प्र.आ.सम्मे. के अध्यक्ष वैद्यश्री कांतिभाई जानी एवं वरिष्ठ उपाध्यक्ष वैद्य श्री एच.एस. कस्तूरे साहब, डॉ० हसमुख अग्रवाल, डा० हसमुख वैद्य, श्री गुप्तानी, वैद्य मंडल के उपाध्यक्ष एवं मणिबेन सरकारी आयुर्वेद हॉस्पिटल के सुप्रसिद्ध वैद्य टी. एल. स्वामी की उपस्थिति में परिसंवाद का प्रारंभ किया गया । माननीय मंत्री श्री भरतभाई बारोट के सुदर उद्बोधन न पश्चात् गुजरात की श्रेष्ठतम वैद्या एवं स्त्रीरोग विशेषज्ञ वैद्या ईलाबेन देशपांडेजी का सम्मान शॉल, श्रीफल एवं माल्यार्पण करके किया गया । अन्यवक्ता वैद्या पारूलवेन जोशी (प्राध्यापाक, अखंडानंद-आयु. महाविद्यालय, अहमदाबाद) तथा वैद्या ज्योत्साबेन रावल (रिसर्च ऑफिसर CCRAS सिविल हॉस्पि.अ.बाद युनिट) ने ऑडियो Visual द्वारा वन्धत्व पर किये गये अपने Reseach work का उद्बोधन किया ।

वन्धत्व इन्फर्टिलीटी परिसंवाद समारोह के सहयोगी डा०हसमुख अग्रवाल (एम.डी.) ने अपना वक्तव्य बहुत ही सुंदर Audio Visual द्वारा प्रस्तुत किया एवं उन्होंने रेशमबाई हॉस्पिटल द्वारा हो रहे वन्धत्व के निदान-परीक्षण के आधुनिक Instrument द्वारा Live Demontration करके सभी वैद्य मित्रों एवं विद्यार्थीयों को अपने आधुनिक ज्ञान से लाभान्वित किया एवं विश्व के श्रेष्ठतम Instrument का कर्म एवं उसकी उपलब्धियों का परिचय करवाया । इस कार्यक्रम को सफल बनाने में गुज.प्र.आयु.सम्मे. के प्रधानमंत्री वैद्य श्री देवेन्द्र शाह मंत्री, श्री डॉ० दिनकर आणेकर, डॉ० सिमाबेन अन्य पदाधिकारी गण ने अपना पूरा सहयोग दिया ।

National Seminar - Ayurved in 21st Century

गुज.प्र.आयु.सम्मे. के सहयोग द्वारा गुज.बोर्ड. ऑफ आयु. एण्ड यूनानी सिस्टम ऑफ मेडिसीन गुजरात सरकार, डायरेक्टरेट ऑफ इन्डीयन सिस्टम मेडीसिन एण्ड होमियोपैथी, गुजरात स्टेट द्वारा आयोजित एक दिवसीय National Seminar Ayurved in 21st Century का आयोजन दि० 23.10.2005 के दिन धन्वंतरि सप्ताह के प्रारंभ में अहमदाबाद स्थित राजपथ क्लब के विशाल सभागृह में आयोजित किया गया है ।

इस समारोह के Organising Chairman Dr. A.P.Singh (I.F.S.) Dir, I.S.M&H, Govt. of Guj. Organising Secretary Dr. Hasmukh C. Vaidya. President Guj. Board of Ayu. U. System of Medicine Co-ordinators - Dr. Janak Upadyay. Dy. Dir., I.S.M & H., Dr. Meghaben Jani Supri. of Ayu. M.H.G., Dr. R.D. Patel, Asstt. Dir., I.S.M.& H., Dr. H.M. Dare Asstt. Dir, I.S.M. & H., Dr. T.L. Swami, Supri. Maniben Ayu. Hosp. Ahmedabad. Organising Committee : Dr. Ramesh M. Patel (A.bad), Dr. Sukhdevsingh Vasiya (Surat) Dr. H.S. Kasture (Ahmedabad), Dr. Narendra Bhatt (Mumbai), Dr. K.R. Kohli (Mumbai), Dr. C.K. Katiyar (Ghaziabad), Dr. Gopal Krishna Wagralkar (Nagpur), Prof. Dr. Ajay Sharma (Jaipur), Dr. D.P. Gadgil (Pune), Prof. Dr. Ram Harsh Singh (V.C. Raj. Ayu. Uni.), Dr. Dilip C. Vaidya (Ahmedabad).

इस समारोह के उद्घाटन के लिये गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी एवं स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री श्री अशोकभाई भट्ट तथा अन्य मंत्रियों को भी आमंत्रित किया गया था ।

आयुर्वेद के इस राष्ट्रीय समारोह में अ.भा.आ. महा. समे. के अध्यक्ष पद्मश्री वैद्यराज देवेन्द्र त्रिगुणाजी एवं नि.भा.आ. विद्यापीठ के अध्यक्ष वैद्य श्री एस.के.मिश्र तथा भारत सरकार आयुर्वेद विभाग, नई दिल्ली के सलाहकार डा०एस.के. शर्माजी, विशेष रूप में आमंत्रित किया गया ।

महाराष्ट्र

विपश्यना एवं आयुर्वेद पर राष्ट्रीय सम्भाषा-परिषद

विश्व को भारत की दो महान देन

'विपश्यना' जिसका अर्थ है 'अंतदृष्टि', भारत की एक अत्यंत पुरातन ध्यान पद्धति है । 2600 वर्ष पूर्व भगवान गौतम बुद्ध द्वारा पुनः अन्वेषित 'विपश्यना', उनकी सार्वभौमिक तथा सम्प्रदायातीत शिक्षा का व्यावहारिक, सारभूत तत्व है । विश्व स्तर पर 100 से अधिक देशों के विभिन्न धर्मावलंबी तथा विभिन्न सामाजिक, आर्थिक

पृष्ठभूमि के लोगों द्वारा इसका अभ्यास किया जा रहा है। विपश्यना व्यक्ति को उसके चित्त और काया में अंतर्निहित प्रकृति, निसर्ग के वैज्ञानिक विधान, ऋतु, धर्म का दर्शन कराती हुई समरसता और सामंजस्य की शिक्षा देती है। विपश्यना का लक्ष्य है व्यक्ति की नकारात्मकता का मूलोच्छेद कर, उसे वास्तविक शांति प्रदान करना; जिससे वह अंततोगत्वा अध्यात्म की इंद्रियातीत अनुभूति-मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण अवस्था का अधिगम कर सके, जो उसके सभी प्रकार के दु:खों का तात्विक रोगोपचार है।

इस देश में आयुर्वेद का उपयोग चिकित्साशास्त्र के रूप में प्राचीनकाल से चला आ रहा है। तथापि इस समझना महत्त्वपूर्ण है कि आयुर्वेद केवल रोगोपचार की प्रक्रिया नहीं है, अपितु इसके नामानुरूप इसका अर्थ है 'आयु का विज्ञान'। यह अपनी संपूर्ण शाखा-प्रशाखाओं सहित समग्र जीवन के यथार्थ स्वरूप की समीक्षा करता है तथा व्यक्ति के सुख-स्वास्थ्य हेतु, काया तथा चित्त दोनों के अभिज्ञान को अपरिहार्य समझता है।

यह परिषद् मानवता के लिए पुरातन भारत की दो महान देन 'विपश्यना एवं आयुर्वेद' के पारस्परिक संबंधों का सम्मर्षण करेगी। परिषद् में विचारार्थ विषय हैं - 1) बुद्धकालीन आयुर्वेद, 2) विपश्यना और आयुर्वेद , 3) आध्यात्मिक स्वास्थ्य और 4) वर्तमान कालीन उपयोगिता। विशेषत: इस अवसर पर 'विपश्यना विशोधन विन्यास' द्वारा प्रकाशित दो ग्रंथों - 'अग्रपाल राजवैद्य जीवन' (हिन्दी) तथा "भैषज्जसञ्जुसा" (पालि) का भी विमोचन किया गया।

कुल प्रमुख वक्ताओं के नाम हैं - डॉ०वी.एन. पाण्डेय, वैद्य शिवकुमार मिश्र, डॉ० महादेव प्रसाद पाण्डेय, डॉ०एस.के. मिश्र, वैद्य मायाराम उनियाल, वैद्य जी.एस. लव्हेकर, डॉ०एच.एस.पालेप

अधिक विवरण हेतु कृपया संपर्क करें - डॉ० ओ.पी. पाठक, सचिव, विपश्यना एवं आयुर्वेद राष्ट्रीय सम्भाषा-परिषद्, विपश्यना विशोधन विन्यास, इगतपुरी - 422403 दूरभाष : (02553) 244076, 244086 फैक्स :-244176 इमेल :-info@giri.dhamma.org.

नववर्ष उमंग कार्यक्रम आयोजित

उत्तर प्रदेश, विश्व आयुर्वेद परिषद्, एटा की जिला ईकाई द्वारा जिलाध्यक्ष, आयुर्वेदाचार्य डा०विनय शौनक के निर्देशन में गॉव वजीरपुर में नववर्ष सम्वतसर वि. स. 2062 के अवसर पर 'नववर्ष उमंग' कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर विश्व आयुर्वेद परिषद् के कार्यकर्त्ताओं ने पर्यावरण संवर्धन हेतु एक यज्ञ-हवन का आयोजन भी किया तथा साठ बच्चों को खसरा प्रतिषेधक आयुर्वेदिक औषधि का नि:शुल्क वितरण किया।

इस कार्यक्रम में पूर्व विधायक समाज सेवी अमापुर के सिया राम ने मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए कहा कि आयुर्वेद साक्षात् ईश्वरीय वाणी है। अत: उसमें किसी तरह की शंका, संदेह मूर्खता ही कहा जा सकता है। उन्होंने सरकार और समाज से अपील की कि डा० विनय शौनक के निर्देशन में क्षेत्र में आयुर्वेद के उत्थान के लिए हर संभव सहयोग किया जाय।

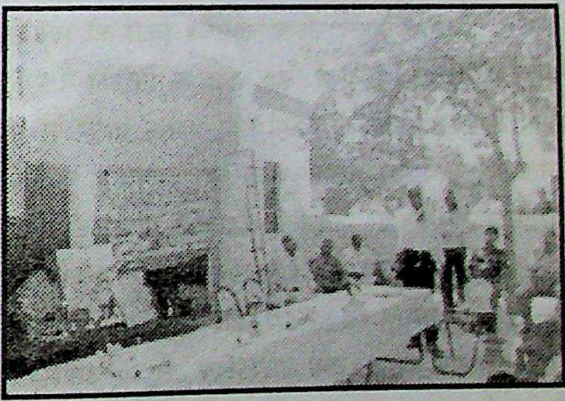

विश्व आयुर्वेद परिषद् जिला इकाई एटा द्वारा जिलाध्यक्ष डा० विनय शौनक के नेतृत्व में गांव वजीर पुर में खसरा निरोधक औषधि बांटते हुये एवं कार्यक्रम करते हुये विश्व आयुर्वेद परिषद् के कार्यकर्त्ता

जिलाध्यक्ष डा० विनय शौनक आयुर्वेदाचार्य, पी. एच.डी. ने कहा कि आयुर्वेद प्रकृति प्रदत्त एक ऐसा 'सुपर साइन्स' है जिसे विज्ञान की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। आयुर्वेद के अवैज्ञानिक कहने वाले भ्रम में हो

क्योंकि गूढ़ ज्ञान सर्व साधारण या दिग् भ्रमित लोगों की सोच से परे है ।

इस कार्यक्रम को वाई. खान मुख्य स्वास्थ्य एवं खाद्य निरीक्षक न.पा: परिषद् कासगंज, घी व्यवसायी राजीव गुप्ता, मुक्ति फार्मास्यूटिकल्स कासगंज के अमित वशिष्ठ इन्द्रपाल सिंह, नाथूराम वर्मा, वजीरपुर के मुन्ना लाल, मानपाल 'निर्भय' जगदीश उपाध्याय (प्राधानाचार्य), कुवंर बहादुर, डा० सेवती लाल, डा० शिवकुमार अग्रवाल, राजेन्द्र शर्मा, प्रवक्ता मोहन लाल आर्य, रमेश चन्द्र यादव आदि ने भी सम्बोधित किया ।

नगर अध्यक्ष विश्व आयुर्वेद परिषद् डा० रामेश्वर सिंह यादव ने कहा कि परिषद् का प्रयास होगा कि जिलाध्यक्ष डा० शौनक निर्देशन में जनपद में जगह-जगह आयुर्वेदिक चिकित्सा शिविर लगाये जायें ।

शोक सभा आयोजित

विश्व आयुर्वेद परिषद् कासगंज ईकाई की ओर से नगर अध्यक्ष डा० रामेश्वर सिंह यादव के निर्देशन में एक शोक सभा का आयोजन किया गया, जिसमें वजीर पुर में तैनात आयुर्वेद चिकित्साधिकारी डा० रामबाबू गुप्तांक असामयिक निधन पर भावभीनी श्रंद्धाजलि अर्पिल की गई ।

इस कार्यक्रम में जिलाध्यक्ष डा० विनय शौनक, महामंत्री डा० केशव देव पाण्डेय, डा० रामेश्वर सिंह यादव, डा० गंगा राम यादव, उमा आयुर्वेदिक के पं० उमाशंकर शर्मा, शक्ति फार्मा के अमित पाटकर, मुक्ति फार्मास्यूटिक्ल के अमित वशिष्ठ, इन्द्रपाल सिंह, बच्चू सिंह वर्मा, मौ. राशिद कुरैशी, योगेश गुप्ता 'पत्रकार' सहित बड़ी संख्या में गण मान्य व्यक्ति मौजुद थे ।

डॉ० वाजपेयी की अवमानना याचिका पर मुख्य सचिव को नोटिस

(चिकित्सा पल्लव न्यूज सर्विस, (पनगरा) बाँदा)

जमीन ही नहीं है तो मकान कहाँ बने, बीज ही नहीं है पेड़ और फल कैसे बढ़े ऐसे ही जब विगत 30 वर्षों से 'बोर्ड' ही नहीं है तो कोर्सों की मान्यता, पैरा 50 और पैरा 4 के रजिस्ट्रेशन कैसे हो ? चिकित्सा पल्लव के पाठकों को ज्ञात ही है विगत 20 वर्षों से उ.प्र. भारतीय चिकित्सा परिषद् के चुनाव ही नहीं हुए, बोर्ड था ही नहीं, एक याचिका में मा. उच्च न्यायालय, इलाहाबाद द्वारा 20 जनवरी 2005 को उ. प्र. भारतीय चिकित्सा परिषद् के चुनाव एवं गठन के सम्बन्ध में उ.प्र. सरकार को आदेश पारित किया गया था कि 3 माह में बोर्ड का चुनाव एवं गठन करा लिया जाय। किन्तु सरकार ने इस पर कोई अमल नहीं किया। जिससे क्षुब्ध होकर चिकित्सा पल्लव के प्रधान सम्पादक एवं दिव्य चिकित्सा भवन के मुख्य चिकित्सक डॉ० मदन गोपाल वाजपेयी ने मा०उच्च न्यायालय में अवमानना याचिका सं. 820/2002 में मध्यावर्ती प्रार्थना पत्र 135263/2005 दाखिल की जिस पर डॉ० वाजपेयी की ओर से बहस मा०उच्च न्यायालय के विद्वान् अधिवक्ता जीवन प्रकाश शर्मा ने की। मा० न्यायालय ने बहस को सुनने के उपरान्त दि.22 नव. 2005 को मुख्य सचिव, चिकित्सा एवं स्वास्थ्य को व्यक्तिगत रूप से उपस्थित होने का आदेश पारित किया तथा यह भी निर्देशित किया कि बोर्ड के चुनाव व गठन के सम्बन्ध में एक शपथ पत्र न्यायालय में प्रस्तुत करें।

इस न्यायालयीय प्रक्रिया आ जाने के पश्चात् बोर्ड गठन की प्रक्रिया सम्पन्न होगी, बोर्ड के गठन के पश्चात् पैरा 3 के रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त हो सकता है ।

डॉ० वाजपेयी के नामांकन को साजिशन रद्द करने की अपील को निस्तारित करने का मा० उच्च न्यायालय का आदेश

(चिकित्सा पल्लव न्यूज सर्विस, (पनगरा) बाँदा)

चिकित्सा पल्लव के पाठकों को ज्ञात ही है कि उ.प्र. सी.आई.एम. चुनाव में डॉ. मदन गोपाल वाजपेयी जैसे लोकप्रिय आयुर्वेद समर्थक चिकित्सक के नामांकन को डॉ. रक्षा गोस्वामी ने साजिशन रद्द कर दिया था ताकि ऐसे

जुझारू व्यक्ति का चुनाव में स्थान न रहे, जिसका सजीव प्रकाशन जनवरी-फरवरी 2005 के विशेषांक पेज 16-17 में किया गया था । डॉ० वाजपेयी ने इस भ्रष्टाचार के विरूद्ध तत्काल मा० उच्च न्यायालय लखनऊ में याचिका दाखिल की । दि० 08.10.2004 को मा० उच्च न्यायालय ने डॉ० वाजपेयी को सी.सी.आई.एम. एक्ट 1970 की धारा 4(2) में दिए प्रावधानों के अनुसार सेन्ट्रल गवर्नमेण्ट के समक्ष जाने का निर्देश दिया । डॉ० वाजपेयी ने दि. 30.12. 2004 को मा. मंत्री स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय आयुष विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली के समक्ष अपना प्रस्तुत किया, किन्तु कोई सुनवाई नहीं हुई, इसके बाद दि. 21 फरवरी 2005 एवं 13 जुलाई 2005 के अनुसार दिया किन्तु पक्षापात के चलते केन्द्रीय सरकार ने कोई सुनवाई नहीं की । जिससे क्षुब्ध होकर डॉ० वाजपेयी ने मा० उच्च न्यायालय के समक्ष एक याचिका प्रस्तुत की । मा० उच्च न्यायालय ने दोनों पक्षों की दलीलें सुनने के बाद दि० 27. 10.2005 को केन्द्रीय सरकार को आदेश दिया कि दो माह के अन्दर स्पष्ट आदेश पारित करते हुए अपील को निस्तारित करें, डॉ० वाजपेयी की ओर से बहस उच्च न्यायालय के विद्वान अधिवक्ता श्री जीवन प्रकाश शर्मा ने की ।

चिकित्सा पल्लव, दिव्य चिकित्सा भवन
पनगरा, (बॉदा) उ.प्र. पिन-210129

उत्तरांचल

बैठक सम्पन्न

आज दिनांक 26 सितम्बर 2005 को राजकीय आयुर्वेद फार्मेसिस्ट ऐसोसिएशन जनपद शाखा उत्तर काशी की वार्षिक (आम) बैठक ऐसोसिएशन के अध्यक्ष डा० सुशील चन्द्र बिजल्वाण की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई, बैठक का संचालन संघ के मंत्री श्री प्रकाश चन्द्र व्यास ने किया, बैठक में निदेशालय/शासन स्तर एवं क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी कार्यालय स्तर के निम्न लिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किये गये तथा उनपर शीघ्र कार्यवाही करने का अनुरोध किया गया ।

इस अवसर पर 11 प्रस्ताव एवं 8 सूत्री मांग-पत्र पेश किये गये ।

हिमाचल प्रदेश

आधुनिक जीवन शैली ही कैंसर का मूल कारण

विश्व की प्रथम आयुर्वेदिक कैंसर सम्मेलन अतिथि होटल पास चामुण्डा माता मंदिर जिला कांगड़ा में सम्पन्न

इस सम्मेलन में बड़ी संख्या में कैंसर विशेषज्ञ-परम्परागत कैंसर चिकित्सक-चिकित्सा विशेषज्ञ-आयुर्वेद औषध निर्माता-औषध विक्रेता-आयुर्वेद विद्यार्थी एवं जन प्रतिनिधियों ने भाग लिया ।

आयोजक :- डा० गोपाल चड्डा कैंसर विशेषज्ञ, निर्माणाध्यक्ष, चड्डा ट्रेडर्ज (रजि०) पिन-176047 फोन 01892-252319 इस कांफ्रेंस में डा० रामेश्वर शर्मा पूर्व सी.एम.ओ. कांगड़ा एम.एस. टांडा पूर्व सदस्य सेवा आयोग हिमाचल प्रदेश ने अपने उद्घाटन भाषण में कैंसर परिचय पर चर्चा की । इस अवसर पर डा० गोपाल चड्डा ने कहा कैंसर के सामान्य कारण आज की जीवन शैली है ।

1. तम्बाकू - शराब व मांस कैंसर का मुख्य कारण है ।
2. खाद से पैदा किये जाने वाले फल सब्जियां अनाज ।
3. एलोपैथी तीव्र औषधियां लीवर कैंसर व वृक्क कैंसर का प्रमुख कारण है ।
4. कोल्ड ड्रिंक व फास्ट फूड में कैमीकल ही होते हैं ।
5. प्रसाधन-सामग्री प्रयोग करने के कारण महिलाओं को कैंसर रोग पुरुषों से दो गुणा अधिक होता है । कैमिकल कास्मैटिक के कारण गर्भ में शिशु को 3 गुणा अधिक कैंसर की सम्भावना हो जाती है । कैमिकल कास्मैटिक के कारण त्वचा कैंसर स्तन कैंसर व यकृत कैंसर की सम्भावना रहती है ।

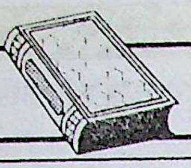

॥ बैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन ॥

P.Cd.		भाषा	
9801	अभिनव शरीर	हिन्दी	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9804	अभिनव शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9807	अग्न्यतिसार संग्रहणी-कोष्ठवात प्रकरणानि	हिन्दी	
9810	अम्लपित्त प्रकरण	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9813	AROGYA PRAKASH	ENG.	
9816	आरोग्य प्रकाश	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9819	अष्टांग संग्रह की वनौषधियाँ एवं वर्गीकरण	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9820	अष्टांग संग्रह	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9821	बिहार की वनस्पतियाँ	हिन्दी	
9822	अष्टांग संग्रह (शरीर, निदान चिकित्साकल्पसिद्ध स्थान)	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9825	अष्टांग संग्रह सूत्र स्थान	हिन्दी	पं. लालचन्द्र शास्त्री
9828	अष्टांग संग्रह उत्तरस्थान	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9831	आत्ययिक चिकित्सा	हिन्दी	
9834	औषधि विज्ञान शास्त्र	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9835	आयुर्वेद अनुसंधान दर्शिका	हिन्दी	
9837	आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान	हिन्दी	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे
9840	आयुर्वेद सार संग्रह	हिन्दी	संकलित
9843	आयुर्वेदीय औषध सेवन विधि	हिन्दी	संकलित
9846	आयुर्वेदीय हितोपदेश	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9849	आयुर्वेदीय क्रिया शरीर	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9852	आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9855	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9858	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9861	BAIDYANATH BOOK OF AYURVED KNOWLEDGE	ENG.	
9864	BAIDYANATH THERAPEUTIC GUIDE	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9867	BASIC PRINCIPLE OF AYURVEDA RESEARCH	ENG.	SRI D.P. SHARMA AND R.P. SHAH
9868	बिहारी के आदिवासी एवं जड़ी बूटियाँ	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9869	उत्तराखंड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9870	भारतीय रस शास्त्र	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9871	बेदी वनस्पति कोष	हिन्दी	रामेश बेदी
9873	चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन	हिन्दी	डा. ज्योतिमित्र आचार्य
9876	चर्मरोग निर्देशिका	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9879	DIGESATION & METABOLISM IN AYURVED	ENG.	DR. C. DWARKANATH
9882	द्रव्यगुण विज्ञानम् (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9885	द्रव्यगुण विज्ञानम् (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9888	किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9891	मानष रोग विज्ञान	हिन्दी	श्री बालकृष्णजी अमरजी पाठक
9894	MEDICINAL FLORA OF GARHWAL HIMALAYAS	ENG.	DR. MAYARAM UNIYAL
9897	मोटापन कम करने के उपाय	हिन्दी	श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी
9901	नेत्र चिकित्सा	संस्कृत	डा. बालकृष्णा शिवराम मुंजे
9904	नेत्र रोग विज्ञान	हिन्दी	
9907	निदान चिकित्सा हस्तामलक (प्रथम खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9910	निदान चिकित्सा हस्तामलक (द्वितीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9913	निदान चिकित्सा हस्तामलक (तृतीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9916	निदान चिकित्सा हस्तामलक (चतुर्थ खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजीत राय देसाई
9919	पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9922	पारद विज्ञानयम	हिन्दी	वैद्य वासुदेय मूलशंकर द्विवेदी
9925	परिषधं शब्दार्थ शरीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9928	PROBLEMS OF AYURVEDIC RESEARCH	ENG.	SRI S.K. SHASTRI 9931
	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञाणम् (पुस्तकालय संस्करण)	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9934	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञाणम् (छात्र संस्करण)		
9937	पंडित रामदयाल जोशी स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	दिनकर पाण्डेय
9940	रस-भस्म सेवन विधि	हिन्दी	पं. वेनी प्रसाद वैद्य
9943	संक्रामक रोग विज्ञान	हिन्दी	कविराज बालकराम शुक्ल
9946	SCIENCE AND PHILOSOPHY OF INDIAN MEDICINES	ENG.	SRI K.K. UDUPPA
9949	शारंगधर संहिता	हिन्दी	आचार्य राधाकृष्ण पराशर
9952	सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9953	शरीर क्रिया विज्ञान	हिन्दी	
9955	THERAPEUTIC GUIDE TO AYURVEDIC MEDICINES	ENG.	PT. RAMRAKSHA PATHAK
9958	TREATISE ON 30 BAID. AYUR. PRODUCTS	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9961	त्रिदोश तत्व-विमर्श	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9964	यूनानी चिकित्सा सार	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9967	यूनानी सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9970	उपचार पद्धति और पथ्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9973	वैद्य सहचर	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9976	वनौषधि शतक	हिन्दी	पं. दुर्गा प्रसाद शर्मा
9979	यादव स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9982	यौवन विज्ञान पर नया प्रकाश	हिन्दी	डा. लक्ष्मीनारायण शर्मा

बैद्यनाथ सितोपलादि चूर्ण

पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

सम्पादकीय

नववर्ष मंगलमय हो ।

विगत वर्ष 2005 में आयुर्वेद पर विश्वव्यापी प्रहार हुआ है । अमेरिका एवं पश्चिमी देश आयुर्वेद की बढ़ती हुयी लोकप्रियता से भयभीत हैं । सम्भवत: यही कारण है कि रसौषधियों की गुणवत्ता पर सन्देह प्रकट किया गया है । पश्चिमी विज्ञानियों के अनुसार रसौषधियों में प्रयुक्त खनिज एवं धातु मनुष्य के लिए लाभप्रद नहीं हैं। इसके विपरीत ये यकृत् एवं प्लीहा को हानि पहुंचाती हैं । उनका तर्क यह है कि ये पाचन-क्रिया के तहत घुलती नहीं हैं । परिणामत: ये यकृत् और प्लीहा में एकत्रित होकर इन्हें नुकसान पहुंचाती हैं । उनलोगों ने अपने तर्क को प्रमाणित करने के लिए बाजार से आयुर्वेदिक औषधियों के कुछ नमूने एकत्रित किये एवं उनकी जांच की। जांचोपरान्त उनलोगों ने अपने निष्कर्षों को विद्वत्जन के समक्ष प्रेस के माध्यम से प्रस्तुत किया ।

पश्चिमी विज्ञानियों के निष्कर्षों से निम्नलिखित प्रश्न उपस्थित होते हैं :-

1. क्या जांच पूर्वाग्रह से प्रभावित नहीं थी ?
2. क्या वस्तुत: रसौषधियां मानव स्वास्थ्य के हानिकर होती हैं ?
3. क्या आयुर्वेदिक औषधियों के उत्पादक रसौषधियों के निर्माण-क्रम में सही प्रक्रिया का पालन करते हैं ?
4. क्या अधिकतम लाभ कमाने के उद्देश्य से जल्दीबाजी में एवं लागत मूल्य कम करने के लिए निर्मातागण गलत तरीकों का प्रयोग करते हैं ?
5. या कोई अन्य कारण है ?

हम यह मानकर चलते हैं कि पश्चिमी विज्ञानियों की जांच पूर्वाग्रह से प्रभावित हो सकती है । किन्तु, यदि हम सही हैं, तो उनकी जांच का उत्तर वैज्ञानिक ढंग से क्यों नहीं दे सकते हैं । निश्चय ही हममें कुछ कमजोरी है। आमतौर पर यह देखा जाता है कि औषधि निर्मातागण शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित प्रक्रियाओं का सही पालन नहीं करते हैं । निर्माताओं का तर्क है कि हमें बड़े पैमाने पर औषधियों का निर्माण करना पड़ता है । यदि हम शास्त्रीय ग्रन्थों में वर्णित प्रक्रियाओं का पालन करते हैं, तो बड़े पैमाने पर औषधियों का निर्माण नहीं कर सकते हैं क्योंकि प्रक्रिया जटिल एवं समयसाध्य है । हमारी दृष्टि में उनका यह तर्क सही नहीं है । मानव-जीवन अनमोल होता है । ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने के लिए हम लोगों के स्वास्थ्य से खिलवाड़ नहीं कर सकते हैं ! कानून को भी इसकी इजाजत नहीं देनी चाहिए । अभी तक किसी भी शोध संस्थान या विश्वविद्यालय ने शास्त्रीय निर्माण-प्रक्रिया पर सन्हेंद उपस्थित नहीं किया है । बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय एवं अन्य अनेक संस्थानों में रसौषधियों के स्तरीकरण प्रयास किया जा रहा है । इन संस्थानों में कार्यरतशोध कर्मियों ने शास्त्रीय प्रक्रिया का अनुमोदन किया है । इसका अर्थ है कि शास्त्रीय प्रक्रिया आज भी आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर खरी उतर रही है । स्पष्ट है कि रसौषधियों के निर्माण में सही प्रक्रिया का पालन नहीं किया जा रहा है । इस तरह हम दोषी हैं । हमारा कर्त्तव्य है कि रसौषधियों का निर्माण सही ढंग से किया जाय, ताकि किसी को कुछ कहने का अवसर नहीं मिले ।

आमतौर पर हम आयुर्वेदज्ञों के मुख से सुनते हैं कि आयुर्वेदिक औषधि मानवरूपी प्रयोगशाला में सदियों से खरी उतरती आयी है । यह आत्म श्लाघा है, और कुछ नहीं । हम यह क्यों नहीं सोचें कि मानव-रूपी प्रयोगशाला में उन औषधियों पर प्रयोग होता था जिनका निर्माण शास्त्रोक्त विधि से होता था । हम यह भी क्यों नहीं सोचें कि रसौषधियों के निर्माण के समय ज्यादा से ज्यादा लाभ कमाने के उद्देश्य से निर्मातागण सही प्रक्रिया का पालन नहीं करते हैं । आज विज्ञान का युग है । हमें अपनी औषधियों को विज्ञान के तराजू पर तौलना पड़ेगा । वैज्ञानिकों को आधुनिक उपकरणों से जांच करके अपने तर्कों को प्रमाणित करना पड़ेगा । यदि हम इसमें सफल होते हैं, तो निश्चय ही भविष्य आयुर्वेद का है । हमें विश्वास है कि आयुर्वेदिक औषधि निर्मातागण एवं शोधकर्मी आयुर्वेद के उत्थान एवं विकास के लिए तथा जनता के मध्य अपनी विश्वसनीयता कायम रखने के लिए सही शास्त्रीय निर्माण प्रक्रिया का पालन करेंगे । यदि उनकी नजर में प्राचीन निर्माण-प्रक्रिया वैज्ञानिक रूप से त्रुटिपूर्ण

है, तो त्रुटियों को विद्वत्जन के समक्ष प्रस्तुत करे, ताकि इनका निदान खोजा जा सके ।

हमें विश्वास है कि आयुर्वेद से जुड़े हुए लोग हमारे सुझाव पर अमल करेंगे ताकि आयुर्वेद के लिए वर्ष 2006 मंगलमय साबित हो सके ।

मानव जीनोम परियोजना एवं आयुर्वेद

विश्वस्त सूत्र से ज्ञात हुआ है कि अमेरिका ने मानव जीनोम परियोजना की स्थापना की है । इस परियोजना में एक अरब डालर से ज्यादा पैसा खर्च किया जा रहा है । उन कारणों का पता लगाना है जिससे कैन्सर उत्पन्न होता है । शोध में वैज्ञानिक उन हजारों कोशिकाओं की सूची तैयार करेंगे जो निर्जीव होकर स्वस्थ मनुष्य के शरीर में कैन्सर पैदा करती हैं । वैज्ञानिकों का एक बड़ा दल संवेदनशील जीन तकनीक की मदद से पढ़ने की कोशिश करेगा । राष्ट्रीय स्वास्थ्य संस्थान (एनआईएच) के अधिकारी और वैज्ञानिक इस परियोजना को अनुदानों एवं अनुबन्धों के जरिये पूरा करेंगे ।

अमेरिका की यह महत्वाकांक्षी परियोजना सफल हो - इसके लिये हमारी हार्दिक शुभकामना है । किन्तु एक सलाह है । आयुर्वेदिक ग्रन्थों में अर्बुद के नाम से यत्र-तत्र सामग्री परिलक्षित होती है । शोधकर्त्ताओं को आयुर्वेदिक ग्रन्थों, आयुर्वेदिक शोधकर्मियों एवं चिकित्सकों की मदद लेनी चाहिए । किसी भी विज्ञान में प्रच्छन्न ज्ञानरूपी खजाने का उपयोग मानव-हित में करना चाहिए । आशा है, शोध विज्ञानी इस ओर ध्यान देंगे ।

मधुमेह, हृदयरोग और आयुर्वेद

अबतक यह अवधारणा रही है कि मधुमेह के रोगियों को हृदयरोग उत्पन्न होने की सम्भावना ज्यादा होती है । नवीनतम खोज से यह ज्ञात हुआ है कि ज्यादातर हृदयरोगी मधुमेही होते हैं । अर्थात् यह कहा जाय तो ज्यादा उत्तम होगा कि जो पहले से मधुमेही नहीं हैं, हृदयरोगी होने पर मधुमेही हो सकते हैं । चेन्नई स्थित एम.व्ही. अस्पताल के प्रबन्ध निदेशक, डा० ए० रामचन्द्रन ने अपने अध्ययन में उक्त अवधारणा को प्रतिपादित किया है । अमेरिकी पत्रिका 'डायबिटीज केयर' में प्रकाशित 282 रोगियों पर किये गये अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि 50% अर्थात् 141 रोगी ज्ञात मधुमेही थे । बचे हुए 141 रोगियों पर ग्लूकोज सहन शक्ति की जांच की गयी । जांचोपरान्त पाया गया कि 84% रोगियों को ग्लूकोज सहन नहीं होता था अर्थात् उन्हें मधुमेह था, किन्तु इसके में वे अनजान थे (24%), 46% आई जी टी के शिकार थे और 14% तनाव (मधुमेह) के शिकार थे । केवल 16% सामान्य रोगी थे जिन्हें मधुमेह नहीं था । द लान्सेट में प्रकाशित स्वीडिश अध्ययन एवं टोकियो अध्ययन (डायबिटीज केयर, 2005) भी इस तथ्य को प्रतिपादित करते हैं कि हृदय रोगी मधुमेह के शिकार हो जाते हैं ।

चरक संहिता के सूत्र स्थान 30/6-7 में हृदय को ओज का स्थान कहा गया है -

यद्धि तत् स्पर्शविज्ञानं धारि तत्तत्र संश्रितम् ।
तत् परस्यौजसः स्थानं तत्र चैतन्य संग्रहः ।
हृदयं महदर्थश्च तस्मादुक्तं चिकित्सकैः ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि हृदय को महत् एवं अर्थ भी कहा गया है । डा० राम करण शर्मा एवं वैद्य भगवान दाश द्वारा सम्पादित चरक संहिता में उक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि अपर ओजस् का स्थान हृदय के महाभूत से जुड़ा हुआ है । प्रमेह (मधुमेह) अपर ओजस ही है । महर्षियों के वचन से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भी यह बात चिकित्सकों को ज्ञात थी कि हृदयरोग एवं मधुमेह का आपस में गहरा सम्बन्ध है । ऐसे भी ओज़स् का अर्थ होता है - प्राणबल, सामर्थ्य, शक्ति आदि और मधुमेह में शक्ति का ह्रास होता है । इस तरह यह प्रमाणित होता है कि मधुमेह के चलते हृदयरोग उत्पन्न होने की संभावना हो सकती है या हृदय रोगियों को मधुमेह हो सकता है - दोनों का लक्ष्य एक ही है । किन्तु यह अवधारणा शत प्रतिशत नहीं है । कई ऐसे मधुमेही हैं जो काफी लम्बे समय से इस रोग के शिकार हैं, किन्तु हृदयरोगी नहीं हैं । इसी तरह कई ऐसे हृदय रोगी हैं जो लम्बे समय से इस रोग से ग्रस्त हैं, किन्तु मधुमेही नहीं हैं । लेकिन इस तरह का प्रतिशत कम है । वस्तुतः दोनों रोग एक-दूसरे के प्रति संवेदनशील हैं ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-74

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

सुश्रुत संहिता

निदान स्थान के **द्वितीय अध्याय** में अर्श निदान की व्याख्या, प्रकार, कारण, कफजन्य अर्श, रक्तजन्य अर्श, सन्निपातजन्य अर्श, सहजन्य अर्श, मेढ्रादि में अर्श एवं अग्निमांद्य सहित अनेक विषय हैं ।

तृतीय अध्याय में अश्मरी निदान, प्रकार, लक्षण, श्लेष्माश्मरी, पैत्तिक अश्मरी, वातजन्य अश्मरी, शुक्राश्मरी, शर्करा, रोगी के लक्षण, अश्मरी के मूत्रमार्ग में पहुँचने पर उपद्रव, बस्ती का मूत्र द्वारा सदा भरना, अश्मरी की उत्पत्ति, वायु के प्रतिलोम होने पर नाना प्रकार के रोग आदि विषयों का समावेश है ।

चतुर्थ अध्याय में भगन्दर निदान, प्रकार, पूर्वरूप, शतपोनक भगन्दर, उष्ट्रग्रीव भगन्दर, परिस्रावि भगन्दर, शम्बूकावर्त भगन्दर, उन्मार्गगामि भगन्दर, सूजन के कारण गुदा के समीप पिड़का, असाध्य भगन्दर आदि विषयों का समावेश है ।

पञ्चम अध्याय में असाध्य कुष्ठ निदान, कुष्ठ के कारण, क्षुद्र कुष्ठ, लक्षण, क्षुद्र कुष्ठों में कफ, वायु पित्तजन्य, किलास का वर्णन, त्वचा में कुष्ठ के लक्षण, कुष्ठ के रक्त में होने पर, मेद में कुष्ठ के पहुंचने पर, माता-पिता में कुष्ठ दोष के कारण संतान पर प्रभाव, जितेन्द्रिय पुरुष का साध्य तथा असाध्य कुष्ठ रोग, कर्मजन्य कुष्ठ, दुखदायी कुष्ठ, कुष्ठ रोग से मुक्ति, एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में कुष्ठ का संक्रमण आदि विषयों का समावेश है ।

छठे अध्याय में त्रिदोषजन्य प्रमेह, निदान, कारण, पूर्वरूप, कफ के कारण दस प्रमेह, पित्त के कारण छह प्रमेह, वायु के कारण चार प्रमेह, कफजन्य प्रमेह, पित्तजन्य प्रमेह एवं वायुजन्य प्रमेह की व्याख्या, उपद्रव, दशा पिड़िकाओं की उत्पत्ति, बीस प्रकार के प्रमेहों की उत्पत्ति आदि विषयों का समावेश है ।

सप्तम अध्याय में उदर रोग की व्याख्या प्रकार, कारण, सम्प्राप्ति, पूर्वरूप, वातोदर, पित्तोदर, कफोदर, सन्निपातोदर, प्लीहोदर, बद्धगुहोदर, प्ररिस्राव्युदर, दकोदर, सामान्य लक्षण एवं साध्यासाध्य लक्षण का जिक्र है ।

अष्टम अध्याय में मूढ़गर्भ रोग निदान, कारण, प्रकार, आठ गतियां, असाध्य के लक्षण, असमय में गर्भ गिरना, गर्भस्राव और गर्भपात, असाध्य मूढ़गर्भ तथा गर्भिणी के लक्षण, शिशु के गर्भकाल में मरने के लक्षण माता के मरने पर जीवित गर्भ को निकालने के उपाय आदि विषयों का समावेश है ।

नवम् अध्याय में विद्रधि निदान व्याख्या, सम्प्राप्ति, वातजन्य विद्रधि, पित्तजन्य विद्रधि, कफजन्य विद्रधि, सन्निपातजन्य विद्रधि, आगन्तुज विद्रधि, रक्तजन्य विद्रधि, आभ्यन्तर विद्रधि, स्थान, स्थान भेद से विशेष लक्षण, रक्त विद्रधि, गुल्म और विद्रधि में भेद, विद्रधि के अस्थि में पहुंचकर पक जाने के लक्षण आदि विषयों का समावेश है ।

दशम अध्याय में विसर्प नाड़ी स्तनरोग की व्याख्या, विसर्प के लक्षण, वातादि दोष के भेदों से लक्षण, पित्तजन्य विसर्प, कफजन्य विसर्प, सन्निपात जन्य विसर्प, क्षतजन्य विसर्प, साध्यासाध्य नाड़ी, आठ प्रकार के नाड़ी व्रण, स्तन्य निदान, स्तन विहीन आतुर, स्तन्य, प्रवृत्ति के कारण, स्तन्य वायु से दुषित होने पर सम्प्राप्ति, वातादिजन्य पांचों स्तन रोगों के लक्षण आदि विषयों का समावेश है ।

एकादश अध्याय में ग्रंथि, अर्बुद, गलगण्ड, अपची निदान की व्याख्या, ग्रन्थि के लक्षण, वात, पित्त, कफजन्य ग्रन्थि, मेदो ग्रन्थि, शिराजन्य ग्रन्थि, अपची रोग की सम्प्राप्ति, अर्बुद, अर्बुद के लक्षण, मांसजन्य अर्बुद, द्विरर्बुद तथा अध्यर्बुद असाध्य, न पकने के कारण, गलगण्ड सम्प्राप्ति, वात, कफ, मेदजन्य गलगण्ड, असाध्यता, गलगण्ड का स्वरूप आदि विषयों का समावेश है ।

द्वादश अध्याय में वृद्धि, उपदंश तथा श्लीपद निदान, वृद्धिरोग के सात प्रकार, पूर्वरूप लक्षण, उपदंश के लक्षण, उपदंश के पांच प्रकार, श्लीपद के लक्षण आदि

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

विषयों का समावेश है ।

त्रयोदश, चतुर्दश एवं पञ्चमदश अध्याय में क्षुद्ररोगों के निदान की व्याख्या, 44 क्षुद्र रोगों के नाम तथा पृथक्-पृथक् लक्षण, शूकदोष निदान व्याख्या, 18 प्रकार के शूक दोषजन्य रोग तथा उनके पृथक्-पृथक् लक्षण, भग्न निदान व्याख्या, भग्न रोग के कारण, सन्धियुक्त भग्न के 6 प्रकार, लक्षण, विशेष लक्षण, सामान्य लक्षण तथा पांच प्रकार की अस्थियां सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

16 वें अध्याय में मुखरोग निदान व्याख्या, 65 प्रकार के मुखरोग, सात स्थानों में उत्पन्न, ओष्ठ रोग, वायु, पित्त, कफ, सन्निपात, रक्त, मांस, मेद, अभिघात के कारण, ओष्ठ रोग, दन्तमूल में स्थित 15 रोग तथा उनके लक्षण, जिह्वागत रोग, वायु, पित्त, कफ अलास, उपजिह्विका के कारण, जिह्वागत रोग, तालुजन्य नौ रोग और उनके लक्षण, कण्ठगत सत्रह रोग और उनके लक्षण, सर्वसर रोग के 4 प्रकार तथा उनके लक्षण सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

शारीर स्थान

प्रथम अध्याय में सर्वभूत चिन्तानामक शरीर की व्याख्या, अव्यक्त निरूपण, 24 तत्वों की व्याख्या, ज्ञान तथा कर्मेन्द्रियों के विषय, आठ प्रकृतियों तथा 16 विकार, चौबीस तत्वों का वर्ग अचेतन, प्रकृति तथा पुरुष के साधर्म्य तथा वैधर्म्य की व्याख्या, पुरुष भी सत्व, रज, तमोमय कई आचार्यों का मत, मनुष्य इन्द्रियों द्वारा निश्चित इन्द्रिय के अर्थ का ही ग्रहण, शरीर, आत्मा तथा मन के संयोग से उत्पन्न गुण, मन के सात्विक गुण सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

द्वितीय अध्याय में शुक्र और शोणित का स्वरूप, दूषित शुक्र, क्षीणवीर्य के लक्षण, साध्य तथा असाध्य, दूषित आर्तव, चिकित्सा, शुद्ध शुक्र की परीक्षा, आर्तव शुद्धि की चिकित्सा, शुद्ध आर्तव की परीक्षा, रक्त प्रदर, संतान के उपयुक्त स्त्री-पुरुष, ऋतुकाल के समय स्त्री का कर्त्तव्य, सहवास के पहले पुरुष तथा स्त्री का कर्त्तव्य, उत्तम तथा निन्दित तिथियां, ऋतुमती स्त्री के साथ सहवास के दोष, गर्भस्थिति होने पर वैद्य का कर्त्तव्य, वर्णों की उत्पत्ति का कारण, नपुंसक के लक्षण, पापजन्य गर्भ आदि का वर्णन सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

तृतीय अध्याय में गर्भ विक्रान्ति की व्याख्या, शुक्र और आर्त्तव का सौम्याग्नेय स्वरूप, मैथुन तथा शुक्रार्त्तव संयोग, आत्मा के पर्याय तथा शुक्रार्त्तव के संयोग के समय प्रवेश, गर्भ में पुरुष, स्त्री, नपुंसक होने के कारण, ऋतुकाल ऋतुमती के लक्षण, ऋतुकाल के पश्चात् योनि स्थिति, आर्त्तव स्वरूप और उसके स्रवण की युक्ति, आर्त्तव का प्रारम्भ और अन्त, समविषम दिन और समागम का फल, गर्भधारण करते ही स्त्री लक्षण, गर्भिणी के लक्षण, गर्भिणी के त्यागने योग्य, प्रथम मास लेकर चतुर्थ मास तक गर्भ का तीस्वरूप, गर्भवती स्त्री की इच्छा पूर्ण करने का फल, गर्भवती की इच्छा पूर्त्ति न करने से दोष, गर्भवती की जैसी इच्छा होती रहती है उसी स्वभाव वाली संतान उत्पन्न होती है । पूर्वजन्म के कारण बालक का भविष्य पांचवें, छठे, सातवें, आठवें मास में गर्भ का स्वरूप, गर्भ की विकृति, उपस्नेह होने से गर्भ का जीवित रहना, शौनक, कृतवीर्य, पाराशर्य, मार्कण्डेय सुभूति गौतम, भगवान् धन्वन्तरि आदि के गर्भ सम्बन्धी विचार, गर्भ के पितृज, मातृज, रसज, आत्मज, सत्वज, सात्म्यज शरीर लक्षणों की व्याख्या, पुत्र अथवा कन्या को उत्पन्न करना, महागुणशाली या निर्गुण संतान, धर्म-अधर्म के कारण अङ्ग-प्रत्यंग का निर्माण सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

चतुर्थ अध्याय में गर्भ व्याकरण, शरीर का प्रीणन, सात त्वचा का निरूपण, सात कलायें तथा लक्षण, पुरुष में शुक्र प्रवृत्त होने का मार्ग, गर्भिणी में अनार्त्तव का हेतु, गर्भ के यकृतादि अंगों की उत्पत्ति की कल्पना, हृदय का स्वरूप, निद्रा का स्वरूप और प्रकार, स्वप्नदर्शन का कारण, इन्द्रियों की विकलता के कारण आत्मा का सोया हुआ मालूम होना, दिन में सोने का योग्यकाल, दोष, रात्रि जागरण दोष, निद्रा एवं 100 वर्ष का जीवन, निद्रा नहीं आने पर चिकित्सा, निद्रा का अतियोग, तन्द्रा, जम्भाई, क्लम, आलस्य, ग्लानि, गौरव, गर्भ का शरीर बढ़ना, दृष्टि और रोमकूप, नाक और केश, सात प्रकार की प्रकृतियां, प्रकृति की उत्पत्ति का हेतु, वात प्रकृति लक्षण, पित्त प्रकृति लक्षण,

कफ प्रकृति लक्षण, पार्थिव तथा आकाश प्रकृति, राजस प्रकृति एवं तामस प्रकृति ।

पञ्चम अध्याय में शरीर संख्या व्याकरण, शरीर, शरीर के अंग-प्रत्यंग, आशय, आंत, स्रोत, कण्डरायें, जालकों, कूर्च बड़ी मांस रज्जु, सेवनी, अस्थियों के संघात, सीमन्त, अस्थियों की संख्या, सन्धियों के दो प्रकार, सन्धियों की संख्या, स्नायु, पेशियां तथा उनका आकार, प्रत्यक्ष तथा शास्त्र-दोनों ज्ञानवृद्धि के कारण, आत्मा को देखने के उपाय सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

षष्ठ अध्याय में मर्म निर्देश शरीर का व्याख्यान, मर्म के 100 प्रकार, टांग, पेट और छाती, पीठ, बाहु, जत्रु के ऊपर के मर्म, मांसमर्म, सिरा मर्म, स्नायु मर्म, अस्थि मर्म, सन्धि मर्म, मर्म के पांच भेद, प्राणहर मर्म, मर्म का लक्षण, शरीर का पालन करने वाली चार प्रकार की सिरायें, मर्मों की परीक्षा कर शल्य निकालना, प्राणहर मर्मों की मारने की कालविधि, टांग के मर्मों का व्याख्यान, उदर और छाती के मर्मों का व्याख्यान, पृष्ठ के मर्मों का व्याख्यान, जत्रु के ऊपर मर्मों का व्याख्यान मर्मों की लम्बाई--चौड़ाई, मर्म स्थान को बचाकर शस्त्रकर्म, अमर्म आदि स्थानों के छेदन, भेदन से मृत्यु नहीं होती । सद्यः प्राणहर मर्मों पर आघात लगने से इन्द्रिय विषय, मर्मों पर आघात लगने से प्रायः विकलता सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

सप्तम अध्याय में सिरा वर्ण विभक्ति शरीर, सात सौ शिरायें, स्वरूप, नाभि, प्राण और सिराओं का सम्बन्ध, मूल सिरा और दोषवह सिराओं की संख्या, वातवह सिराओं का प्राकृत कार्य, वात पित्तकफ सिराओं का रंग और अवध्य सिरायें हैं ।

अष्टम अध्याय में सिराव्याध विधि शरीर का व्याख्यान, किन अवस्थाओं में सिरावेध नहीं करें, निषिद्ध रोगियों में सिरावेध के प्रयोजन, सिरावेध विधि, सिरावेध का अयोग्य काल, सिरावेध के लिए यंत्रविधि, प्रदेश विशेष से शस्त्र का प्रमाण, सिराभेद ऋतुभेद से कालभेद, सुविद्ध सिरा लक्षण, सिरावेध से पहले दूषित रक्त का निकलना, क्षीण व्यक्ति के सिरावेध का समय, दोषयुक्त शेष रक्त की चिकित्सा संशमन से, बलवान व्यक्ति के रक्त निकालने का परिमाण, भिन्न-भिन्न रोगों में सिरावेध का परिमाण, दूषितरूप में वेधन हुई सिराऐं, दूषित सिराओं का विवरण, सिराओं का वेधन यत्नपूर्वक, सिरावेध रोग जल्दी शान्त होते हैं । शल्य तंत्र में आधा भाग सिरावेध है । सिरावेध के लिए त्याज्य विषय, दूषित रक्त को निकालने का तरीका सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

नवम अध्याय में धमनी व्याकरण, शारीर, धमनी की 24 संख्या, ऊपर को जाने वाली धमनियां, नीचे की ओर जाने वाली धमनियां, तिर्यगगत धमनियां, स्रोतों के मूल में विद्ध होने से उत्पन्न लक्षण सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

दशम अध्याय में गर्भिणी व्याकरण, गर्भिणी के प्रथम दिन से कर्त्तव्य, गर्भिणी को मासक्रम से सेवने योग्य, नवम मास में सूतिका गृह प्रवेश, प्रसव के स्पष्ट लक्षण, प्रसव को जानकर करने योग्य उपचार, प्रतिलोम को अनुलोम करना, गर्भ की योनि में रूकने पर धूपन, प्रसव होने पर शिशु के उपचार, प्रसव के 3-4 दिन बाद दूध का आना, पहले 3-4 दिन में बच्चे को पिलाना, सूतिका के उपचार, प्रसूता के मिथ्या आचार आदि से उत्पन्न रोग, अपरा के बाहर न आने से दोष और चिकित्सा, प्रसूता में मल्ल लक्षण तथा उनकी चिकित्सा, बालक के उपचार, दसवें दिन बालक का नामकरण, धात्री के लक्षण, बच्चे को कैसा दूध नहीं देना चाहिए, दूध को बढ़ाने के उपाय, दूध की परीक्षा, धात्री के दूषित स्तन का हेतु, अनजान बच्चे के रोग को जानने का उपाय, उन रोगों की चिकित्सा, बालक को निरोग तथा उसमें बल आदि के उपाय, बालक को कैसे उठाना, बिठाना चाहिए । माता का दूध पर्याप्त मात्रा के अभाव में देने योग्य दूध, बालक के ग्रहों से रक्षा, ग्रहों से आक्रान्त शिशु के सामान्य लक्षण, बालक का विद्याध्ययन, छोटी आयु की कन्या में गर्भाधान नहीं करना चाहिए, गर्भाधान के अयोग्य स्त्री-पुरुष, गर्भिणी के उपद्रवों की चिकित्सा, मांस में देने वाली औषधियां, शरीर अध्याय के कोष्ठक शाामिल हैं ।

चिकित्सा स्थान

प्रथम अध्याय में द्विव्रणीय चिकित्सा, व्रणों के

प्रकार, आगन्तुज तथा दोषों के उपप्लव भेद से व्रणभेद, व्रण के लक्षण, वातजन्य व्रण, व्रण के साठ उपक्रम, व्रण के अवस्था भेद करने योग्य उपचार, अपतर्पण का निरूपण, किनको उपवास लंघन न कराना चाहिए, आलेपन विषय, आलेपन का फल, परिषेक का फल तथा प्रयोग, अभ्यंग का फल, स्वेदन, विम्लापन तथा प्रयोग, उपनाह, पाचन तथा प्रयोग, स्रावण, स्नेहपान वमन, विरेचन, छेदन, भेदन, दारूण, लेखन, ऐषण, शल्यकर्म व्यधन-स्रावण, सीना और सन्धान, पीड़न, रक्त-स्थापन, निर्वापण, उत्कारिका, शोधन कषाय, शोधनवर्ति, घृत सिद्ध करके शोधन, तैल से व्रण शुद्ध नहीं होने वाले उनसे सम्बन्धित विषय, शोधनीय चूर्ण, रोपण-कषाय, रोपण-वर्ति, रोपण-कल्क, रोपण-सर्पि, रोपण तैल, रोपण रस-क्रिया, रोपण चूर्ण, शोधन रोपण विधि मंत्र की भांति, गणों को दोषों के अनुसार मिलाकर बरतें, धूपन प्रयोग, उत्साहन, अवसाहन, कोमल उपचार दारूण कर्म, क्षार क्रिया, अग्निकर्म, कृष्ण कर्म, प्रतिसारण, बाल उत्पन्न करने हेतु, व्रण में बल उगना, वायु से दूषित व्रण में बस्ति, उत्तर बस्ति, व्रण का शोधन, वातजन्य, कफजन्य व्रण, व्रण में शोथ, रक्तपित्त व्रण शिरोविरेचन, नस्य का प्रयोग, शोधन एवं लेपन के लिए उष्ण या शीत, धूमपान, यम और नियम से रक्षा, योग्य द्रव्य, व्रण के पांच उपद्रव से सम्बन्धित अनेक विषयों का समावेश है ।

द्वितीय अध्याय में सद्योव्रण चिकित्सा, भिन्न-भिन्न प्रकार के व्रणों के लक्षण, आगन्तुज व्रण के प्रकार, छिन्न, भिन्न, कोष्ठ, कोष्ठ भेद के सामान्य लक्षण, विशेष लक्षण, विद्ध, क्षत, पिच्चित घृष्ट लक्षण, छिन्न-भिन्न आदि चारों की चिकित्सा, पिच्चित तथा घृष्ट की चिकित्सा, छिन्न व्रणों एवं कान की चिकित्सा, चौड़ा व्रण, पीठ में व्रण की चिकित्सा, रोपण क्रिया, व्रण रोपण के लिए चन्दनादि तैल, दूसरा चन्दनादि तैल, नेत्र में भिन्न व्रण की चिकित्सा, नेत्राभिघातों में बकरी के घी का प्रयोग, मेद की वर्ति निकालने की चिकित्सा, कोष्ठगत शल्य लक्षण, कोष्ठगत असाध्य व्रण, कोष्ठ के फट जाने पर रक्त-पीना एवं जिन्दा रहना, अन्त्रभेद चिकित्सा, रोपण के लिए तैल, अण्ड बाहर आने पर चिकित्सा, शिर के व्रण की चिकित्सा, अन्य भाग के व्रण की चिकित्सा, तैल का प्रयोग, तालिशादि तैल, व्र तथा पिच्चित व्रण की चिकित्सा, घृष्ट व्रण और मर्म स्थान की चिकित्सा, घी एवं तैल का प्रयोग, तेल से परिषे दूषित सद्यक्षत व्रणों में तैल, दूषित व्रणों में वमन विरेचन द्रवन्ती आदि तैल, कल्क, छह प्रकार के सद्यः व्र सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

तृतीय अध्याय में भग्न चिकित्सा, भग्न रोगी क न सेवन करने योग्य, देने योग्य, ऋतुओं को देखकर पट्टं बांधना, साधारण बन्ध, परिषेचन में कषाय, दोष और काल की विवेचना, भग्न में पीने योग्य दूध, लेप, घी और मधु सुखसाध्य भग्न, सन्धि को दृढ़ होने का समय, सन्धियों को ठीक से बैठाना, नख सन्धि, भग्न की चिकित्सा, अंगुल, पैर के तलुए, जंघा और उरू, ऊर्वस्थि, कटि, पर्शुकाओं, अंस सन्धि, कर्पूर संधि, जानु-गुल्फ, हथेली, अक्षक सन्धि के भग्न की चिकित्सा, बाहु भग्न, ग्रीवा, हनुसन्धि, दांत, नासा, कर्ण, शिर, जंघा और अरू श्रोणी, पृष्ठ अंश, वक्ष स्थल, अक्षक के भग्न होने पर, स्नेहन तथा स्वेदन, शिरोबस्ति तथा अनुवासन बस्ति, भग्न के लिए स्वस्थ करने वाला तैल, भग्न पकना नहीं चाहिए सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

चतुर्थ अध्याय में वात व्याधि चिकित्सा, षड्धरण, वायु का पक्वाशय, वायु प्रकोप में स्नेहन, स्वेदन, रक्तमोक्षण आदि, वायु के स्नायु-सन्धि और अस्थि में आने पर, अस्थि में वायु के मर जाने पर, वायु के शुक्र में आने पर, सर्वांगगत वायु में, कफ, पित्त से मिली वायु को, रक्त से आवृत्त वायु में, वात रोगी, साल्वण, संकुचित या जड़ अंग, स्कन्ध, वक्ष, त्रिक और मन्यागत वायु, वात रोगी के सेवनीय, तिल्वक घृत, अणु तैल, शतपाक तैल, स्नेह लवण, कल्याण लवण आदि विषयों का समावेश है ।

पञ्चम अध्याय में महावात व्याधि चिकित्सा, वात रक्त के भेद, कारण और पूर्वरूप, वातरक्त के कारण, वात प्रबल, पित्त प्रबल एवं कफ प्रबल वात रक्त में लेप, सब प्रकार के वात रक्त में लेपन, तीव्र वेदना के लिए क्वाथ, संवाहन, अपतंत्रक, पक्षाघात एवं मन्यास्तम्भ की चिकित्सा, अपतर्पण रोगी की वातकफ नाशक चिकित्सा, अर्दित रोगी

की वात व्याधि चिकित्सा, सिरावेध नहीं करना, कर्णशूल, तूनी, प्रतूनी, आध्मान, अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला एवं ऊरूस्तम्भ की चिकित्सा, हिंग्वादि चूर्ण और गुग्गुल आदि विषयों का समावेश है ।

षष्ठ अध्याय में अर्शों की चिकित्सा, क्षार प्रयोग, वातकफ जन्य अर्शों की चिकित्सा अग्नि और क्षार से, पित्तरक्त जन्य अर्शों की मृदु से, जलाने की विधि, खाने के लिए पदार्थ, जलाने के बाद स्नेहकर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, अर्शयंत्र का प्रमाण, लेप न दिखने वाले अर्शों के लिए, दशमूलादि क्वाथ, पिप्पल्यादि क्वाथ, भल्लातक विधि, द्वितीय विधि, दोष की प्रधानता देखकर अवलेह देना चाहिए आदि विषयों का समावेश है ।

सप्तम अध्याय में अश्मरी चिकित्सा, पूर्वरूपों में स्नेहन, वातजन्य अश्मरी को नष्ट करने वाला घृत, कुश आदि के कल्प से सिद्ध किया घृत वरूणादिगण के कल्क से सिद्ध किया बकरी का घृत, शर्करा नाशक चूर्ण, अश्मरी, गुल्म, शर्करा को नष्ट करने वाला क्षार, शर्करा नाशक क्षार, अश्मरी में शस्त्र कर्म, किसकी पथरी नहीं निकालनी चाहिए । मूत्रमार्ग का शोधन, शस्त्र कर्म के समय आठ अंगों को बचाने सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

अष्टम अध्याय में भगन्दरों की चिकित्सा, भगन्दर के पांच प्रकार, अपक्व पिड़िका वाली भगन्दर का 11 उपद्रवों से चिकित्सा, विशेष चिकित्सा, शतपोनक में व्रण को कभी चौड़ा नहीं करें, कष्टसाध्य शतपोनक, स्वेद विधि , उष्ट्रग्रीव चिकित्सा, परिस्राविक भगन्दर चिकित्सा, बच्चों में भगन्दर, वर्ति गति द्वारा व्रणों को नष्ट करना, आगन्तुज भगन्दर, वेदना नष्ट करने के उपाय, भगन्दर के शोधन कर्म में उत्तम द्रव्य, शोधन में हितकारी एवं नाशक तैल तथा अन्य प्रकार के तैलों का समावेश है ।

नवम अध्याय में कुष्ठ चिकित्सा, त्वग् रोग के कारण, वमन, विरेचन, असाध्य कुष्ठ, संशोधन देकर स्नेहपान विधि से चिकित्सा, महातिक्तक घृत, तिक्तक घृत, सात सिद्ध लेप, छद्रु और श्वित्रों के लिए विशेष योग, श्वित्र और पुण्डरीक कुष्ठ में छाला उत्पन्न करना, छालों के फूटने पर लेप, श्वित्र नष्ट करने के कई उपाय, नीमघृत, महानीम घृत कुष्ठ रोगी के लिए वमन, विरेचन, चटनी, पुरातन घृत, कुष्ठ नाशक, स्नान में क्वाथ, नीम का क्वाथ, कुष्ठ में क्रिमि नाश के लिए वज्रक तैल, महावज्रक तैल, लाक्षादि तैल, दोषों के शान्त होने पर स्नान, क्वाथ, दोष का प्रकोप न हो, इसके उपाय, सम्पूर्ण रूप में वरता, खैर, कुष्ठ आदि विषयों का समावेश है ।

दशम अध्याय में महाकुष्ठ चिकित्सा, कुष्ठ रोग में, प्रमेह, कफ रोग, सर्वांग शोफ, मन्थ की विधि, जौ की विधि से गेहूं, वेणुयव बीज, शालमारादिगण, न्यग्रोधादि गण और आरग्वधादि गण से अरिष्ट का निर्माण, सुरा, लेह, चूर्णक्रिया, अयस्कृति, खदिर विधान, गिलोय का स्वरस या क्वाथ, सौ वर्ष तक शरीर का निरोगी होना, बीज रूपी लोगों से सुरामन्थ, आसव-अरिष्ट, लेह, चूर्ण, क्षयस्कृति आदि विषयों का समावेश है ।

एकादश अध्याय में प्रमेह चिकित्सा, प्रमेह के प्रकार, कृश और स्थूल व्यक्ति की चिकित्सा, प्रमेह रोगी को त्याग करने वाला पदार्थ, भोज्य पदार्थ, न्यग्रोधादिकषाय से वस्ति, पांच प्रकार के प्रमेह को नष्ट करने वाला पदार्थ, ऐश्वर्य एवं पैसे वालों के भोज्य पदार्थ सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

द्वादश अध्याय में प्रमेह पिड़का चिकित्सा, साध्य पिड़कायें, प्रमेह रोगी की प्रारम्भ में चिकित्सा, धान्वन्तर घृत, तीक्ष्ण विरेचन, स्वेद, अपक्व तथा पक्व पिड़काओं की चिकित्सा, लेह, नवायस, लोहारिष्ट आदि विषयों का समावेश है ।

त्रयोदश अध्याय में मधुमेह चिकित्सा, शिलाजतु, सब प्रकार के शिलाजतु, शिलाजतु और माक्षिक सेवन वाला कपोत और कुलत्थ को छोड़ना । तुवरक फल का तैल आदि विषयों का समावेश है ।

चतुर्दश अध्याय में उदर रोग की चिकित्सा, वद्ध गुदोदर और परिस्रावी असाध्य और कष्ट साध्य, उदर रोगी को खाने योग्य, वातोदर रोगी को विदारि गन्धादि पित्तोहर रोगी को काकोल्यादि, कफोहर रोगी को पिप्पल्यादि दूष्योदर रोगी के लिए घृत, सामान्य योग, कोष्ठ के क्रिमियों को नाश करना, आनाहवर्ति क्रिया, प्लीहोदर रोगी, षट्पलक

घृत, प्लीहा की शान्ति के लिए, बद्धगुह उदर तथा परिस्रावी उदर, दकोदर रोगी के लिए आदि विषयों का समावेश है ।

पन्द्रहवें अध्याय में मूढ़गर्भ चिकित्सा, इसे निकालना महाकठिन, इसके आठ प्रकार, गर्भ के जीवित रहने पर अपरापातन की औषधियों का प्रयोग, अन्य उपाय, पिप्पली आदि का योग, बला तैल, तिलों को बला क्वाथ से भावितकर तैल निकालना, शतपाकी तैल, बला तैल के समान तैल आदि विषयों का समावेश है ।

सोलहवें अध्याय में विद्रधि की चिकित्सा, पांच साध्य विद्रधियां, वातजन्य, पित्तज विद्रधि, करंजादिघृत, कफजन्य विद्रधि, रक्तजन्य और आगन्तुज विद्रधियां, कफजन्य अन्तः विद्रधि, पकी विद्रधि की चिकित्सा, मज्जाजन्य विद्रधि आदि विषयों का समावेश है ।

सतरहवें अध्याय में विसर्प-नाड़ी-स्तन रोग की चिकित्सा, वातजन्य विसर्प, पित्तजन्य विसर्प में लेप, गौर्यादिघृत, कफजन्य विसर्प के लिए अजगन्धा आदि लेप, वरूणादिगण का प्रयोग, व्रण को शोधन करने वाला तैल, पित्तजन्य नाड़ी, कोष्ठ स्थित नाड़ी को नष्ट करने वाला घृत, कफजन्य एवं शल्यजन्य नाड़ी में, कृश दुर्बल पुरूष की नाड़ी, सब वर्तियां नाड़ियों में बरतनी चाहिए, दूध के विकृत होने पर उसका शोधन, स्तन विद्रधि आदि विषयों का समावेश है ।

अठारहवें अध्याय में ग्रन्थी, अपची, अर्बुद, गलगण्ड चिकित्सा, अपक्व ग्रन्थियों में शोथ चिकित्सा, तैल, घृत अथवा स्नेह को पीना, वातजन्य, पित्तजन्य एवं कफजन्य ग्रन्थि में, ग्रन्थि का चीरकर निकालना, मांस कन्दी के लिए, मेदोजन्य ग्रन्थि में, जीमूतक आदि से सिद्ध घृत, अपक्व ग्रन्थि, इन्द्रवस्ति मर्म, अपचियों की निवृत्ति के लिए रोपणकाल में कर्कारू, एर्वारूक, नारियल, चिरौंजी एवं एरण्ड बीज का चूर्ण, पित्तार्बुद में, कफार्बुद में अर्बुद पर लेपादि, मेदोर्बुद स्वेदन आदि, वातजन्य गण्ड में स्वेद, कफजन्य गण्ड में स्वेदन आदि, गलगण्ड रोग में त्रिकटु, मेदोजन्य गलगण्ड में स्नेहन आदि विषयों का समावेश है ।

उन्नीसवें अध्याय में श्लीपद चिकित्सा, अन्त्रवृद्धि को छोड़कर बाकी छह वृद्धि रोग, वातवृद्धि, पित्तजन्य, कफजन्य, मेदजन्य वृद्धि, साध्य उपदंशों में, वातजन्य उपदंश, पैत्तिक उपदंश, कफजन्य उपदंश, उपदंश चिकित्सा, उपदंश के लिए चूर्ण, उपदंश में रोपण के लिए तैल, व्रणजन्य विसर्प के लिए चूर्ण, रक्तजन्य और सन्निपातजन्य उपदंश, विशेष चिकित्सा, वातजन्य श्लीपद में स्नेहन आदि, कफ जन्य शलीपद, पित्तजन्य श्लीपद, पानीयक्षार, काकादनी आदि में सिद्ध किया तैल, त्रिफला क्वाथ मिलाया क्षार आदि विषयों का समावेश है ।

बीसवें अध्याय में क्षुद्ररोग चिकित्सा, अपक्व अंजगल्लिका, स्वेद तथा लेप, पित्तजन्य विसर्प, चिप्प रोग, पकी विदारिका को चीरना, शर्करार्बुद की चिकित्सा, पाददारी में स्नेहन अलस रोग, इन्द्रलुप्त, अरूंषिका, दारूणक रोग, मसूरिका, जतुमणि, न्यच्छ, व्यंग और नीलिका, युवान पिड़का, पद्मिनी कंटक रोग, परिवर्तिका, निरूद्ध प्रकश, वल्मीक, अहिपूतना एवं गुदभ्रंश रोग आदि विषयों का समावेश है ।

इक्कीसवें अध्याय में शुकदोष चिकित्सा, सर्षपी में व्रण रोपक तैल, अष्ठीलिका, ग्रंथित को निरन्तर नाड़ी स्वेद, अलजी को जौंक लगाकर, मृदित को बला तेल से, समृढ़ पिड़का में, भवमन्थ में, उत्तमा में, शतपोनक एवं रक्तजन्य सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

बाइसवें अध्याय में मुखरोग चिकित्सा, साध्य ओष्ट प्रकोपों की चिकित्सा, दन्तमूल, दन्तवेष्ट, उपकुश रोग, शिरोविरेचन, दन्तनाड़ी की सामान्य चिकित्सा, नस्य में बरतने के लिए सिद्ध तैल, जिह्वागत साध्य रोग, तालु रोग, कण्ठ रोग की चिकित्सा, स्नैहिक धूप, असाध्य मुख रोग।

तेइसवें अध्याय में शोथों की चिकित्सा, अवयव में उत्पन्न छह प्रकार के शोथ, पांच प्रकार के सर्वसर शोथ, श्वयथु शोथ, वातजन्य शोथ, आमाशय में स्थित दोष ऊपर के भाग में शोथ, सामान्य चिकित्सा, शोथ को नष्ट करने के त्याज्य सम्बन्धी विषयों का समावेश है ।

चौबीसवें अध्याय में अनागता प्रतिषेध, प्रतिदिन कर्म का नियम जैसे प्रथम दातुन करना, जिह्वा को साफ के लिए जिभ्भी, मुख प्रक्षालन, आंखों में अंजन, कब अंजन

नहीं करना चाहिए, पान का प्रयोग, शिर का अभ्यंग, कंघी करना, कानों में तेल डालना, स्नेह का अभ्यंग सम्पूर्ण शरीर पर करना, सम्पूर्ण अंगों का परिषेक, परिषेक, आमयुक्त दोषों में असंस्कृत तेल का निषेध, तरूण ज्वर रोगी और अजीर्ण रोगी के लिए अभ्यंग का निषेध, व्यायाम, अति व्यायाम, उद्घर्षण और उद्वर्त्तन, स्नान, मुखलेप, नेत्रांजन, आहार, पैरों का धोना, पैरों पर तेल मलना, जूते का पहनना, शिर पर पगड़ी, छाते का धारण, हाथ में दण्ड का धारण करना, बैठना, मुसाफरी, सुखदायक शय्या पर सोना, संवाहन, सामने की ओर वायु, कुछ स्थानों पर जाने का निषेध, सेवा-कार्य पर प्रतिबन्ध, कुछ जगहों पर जाने पर प्रतिबन्ध, अनुगमन पर प्रतिबन्ध, वेगों को रोकने पर प्रतिबन्ध, भूमि को कुरेदने पर प्रतिबन्ध, अंगुली डालने पर प्रतिबन्ध, अधिक मात्रा में व्यायाम आदि करने पर प्रतिबन्ध, वायु सेवन, मैथुन में योग्य और अयोग्य स्त्री, दूध-दही के सेवन का नियम, दोषों का कुपित होना, ऋतु के अनुसार आहार का सेवन सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

पच्चीसवें अध्याय में मिश्रक चिकित्सक, परिपोट, स्नेहादि उपचार, पलित रोग को नष्ट करने के लिए तैल, बालों के तैल, मुख पर अभ्यंग करने के लिए सिद्ध घृत, राजाओं के योग्य लेप आदि विषयों का समावेश है ।

छब्बीसवें अध्याय में क्षीणबलीय वाजीकरण, वाजीकरण योग, वाजीकरण के प्रकार, क्लीवता का वर्णन, श्रेष्ठ वाजीकर विधि, वाजीकर अनेक योग आदि विषयों का समावेश है ।

सत्ताइसवें अध्याय में सर्वोपघात शमनीय, वय स्थिर रहने का उपाय, विडंग-तण्डुल चूर्ण, रक्तपित्त जन्य रोगों में गम्भीरी कल्प, बल को चाहने वालों के लिए औषधियां, वाराही कन्दमूल का चूर्ण, आंखों को तेज करना सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

अट्ठाईसवें अध्याय में मेधायुष्कामीय रसायन चिकित्सा, मेधा और आयु की कामना वाले के लिए चूर्ण, मेधावी के लिए मण्डूकपर्णी का योग, मेधावी के लिए ब्राह्मी आदि का योग, आयुवर्धक मंत्र और औषध के साथ एक वर्ष में फल देने वाला रसायन, पार दौर्भाग्य नष्ट करने के लिए रसायन । वचा चूर्ण आदि योग, मधु का योग आदि विषयों का समावेश है ।

उनतीसवें अध्याय में स्वभाव व्याधि प्रतिषेधनीय रसायन, सोम का विधान, चौबीस नाम के सोम, सोम सेवन विधि, सोम के पत्ते, सोम की उत्पत्ति आदि विषयों का समावेश है ।

तीसवें अध्याय में निवृत्त सन्तापीय अध्याय, रसायन के सेवन से देवताओं को आनन्द, सात पुरुषों द्वारा रसायन सेवन पर प्रतिबन्ध, सात कारणों से रसायन गुण नहीं करते, औषधि (सोम के सदृश) का व्याख्यान औषधियों की पृथक्-पृथक् पहचान, सात औषधियों को उखाड़ने के मंत्र, सात औषधियों को ढूढ़ने के साथ आदि विषयों का समावेश है ।

इकतीसवें अध्याय में स्नेहोपयौगिक चिकित्सा का व्याख्यान, स्नेह की उत्पत्ति के दो स्थान, स्थावर स्नेहों का वर्णन, कषाय स्नेह पाकविधि, पलकुडव आदि का परिमाण, स्नेहपाक विधि, स्नेह पान विधि, घृतपान, तैल, वसा, मज्जा के योग्य, पित्त विकार, वायु रोग और कफ की अधिकता में घी सेवन का विधान, तिरसठ प्रकार के रसों से घी का सेवन, स्नेहपान उत्तम है, ऋतुओं में स्नेहपान का समय, स्नेह पान के पश्चात् प्यास लगने पर गरम पानी, स्नेह की मात्रा जीर्ण होने पर किनके लिए उत्तम है, स्नेह के जीर्ण होने पर घृत, स्नेहपान का निषेध, स्नेहन के आयोग में, सम्यक् स्निग्ध के लक्षण, अति स्निग्ध के लक्षण स्नेह तथा रूक्षण, स्नेह के नित्य सेवन का फल आदि विषयों का समावेश है ।

बत्तीसवें अध्याय में स्वेदावचारणीय चिकित्सा, चार प्रकार का स्वेद, ताप स्वेद, ऊष्मास्वेद, उपनाह स्वेद, द्रव स्वेद, निरग्नि स्वेद और साग्नि, नस्य, बस्ति और शोधन के पहले स्वेदन का लेना, बिना स्नेहन के स्वेद का दोष, छिपे हुए दोष का स्वेदन द्वारा बाहर निकलना, भली प्रकार दिया हुआ स्वेद से जड़ बनी सन्धियां क्रियाशील, स्वेद पर प्रतिबन्ध आदि विषयों का समावेश है । **(निरन्तर जारी)**

मधुमेह के प्रतिरोधक पहलू

प्रो.जी.के. चतुर्वेदी, एच.पी.ए., एम.ए., एल.एल.बी.
डा० प्राजक्ता-अम्बाडकर, बी.ए.एम.एस., एम.डी., (पूणे)

"The diabetic who knows most will live the longest" जो मधुमेही मधुमेह के विषय में जितना अधिक जानता है, वह उतना ही अधिक जीवित रहता है, यह सूत्र मधुमेह से पीड़ित रोगियों के लिए सर्वधा सार्थक हैं, यह उनके लिए बीजमंत्र है । जो रोगी इस सूत्र की उपेक्षा करते हैं या इस सूत्र से अपरिचित हैं, उन्हें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है क्योंकि मधुमेह रोग मधुमेही के साथ इतना संसक्त हो जाता है कि दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या एवं आहारविहार का प्रत्येक क्षण उसे प्रभावित करता रहता है । उसके प्रत्येक क्रियाकलाप का प्रभाव उसके रोग पर अवश्य पड़ता है । उपरोक्त सूत्र मात्र उनके लिए ही उपयोगी नहीं है जो मधुमेह की चपेट में आ गये हैं किन्तु उनके लिए भी अत्यन्त उपयोगी है जो अभी तक उसकी लपेट में नहीं आए हैं । हम लोग अब ऐसी अवस्था में पहुंच गये हैं जहाँ संसार का कोई भी सुखी, सुशिक्षित एवं सम्पन्न व्यक्ति दावे से यह नहीं कह सकता कि उसे कभी भी मधुमेह नहीं होगा । ये सभी इस अज्ञात भय से त्रस्त हैं कि उन्हें मधुमेह (Diabetes Mellitus) कब हो जाय ? केवल वे ही लोग इस रोग के विषय में निश्चित हैं जो इतने गरीब हैं कि अपने भोजन एवं आवास की व्यवस्था दिनभर कड़ी मेहनत करने के बाद भी नहीं कर पाते । अत्यन्त श्रमयुक्त जीवन ही जिनकी आजीविका का माध्यम है, जो अत्यन्त दयनीय गरीबी से एवं अनिश्चित भविष्य में जी रहे हैं, ऐसे लोग ही इस जटिल-व्याधि से बच पाये हैं ।

जिस तीव्र गति से इस व्याधि का विस्तार हो रहा है वह सभी बुद्धिजीवियों को भयग्रस्त कर रहा है । वर्तमान में मधुमेहियों की संख्या अत्यन्त तीव्र गति से बढ़ रही है । लोग इस व्याधि से ग्रस्त रोगियों का सही अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं । इसीलिए कम से कम तीन करोड़ से लेकर सतरह (17) करोड़ तक मधुमेही बताए जा रहे हैं । इतना बड़ा अन्तर अन्य किसी व्याधि के सम्बंध में नहीं है । इस संख्या के साथ यह भी दावा किया जा रहा है कि जगत में सर्वाधिक मधुमेही भारतवर्ष में हैं जो कुल संख्या के तृतीयांश है, इससे भी अधिक चिंताजनक स्थिति यह है कि इनकी संख्या प्रति दस वर्ष में दुगुनी होती जा रही है । यदि यही क्रम चलता रहा तो कुछ समय बाद ही इसे राष्ट्रीय संकट मानना पड़ेगा एवं इसका स्वरूप Epidemic हो जायगा ।

आजकल सर्वाधिक मृत्यु हार्ट अटैक से हो रही है । CAD (Coronary Artery Disorder) से पीड़ित रुग्णों की संख्या भी मधुमेह की तरह ही बढ़ रही है क्योंकि दोनों के कारणों में बहुत समानता है । हार्ट अटैक से अधिकांश व्यक्ति शीघ्र मर जाते हैं किन्तु मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति यदि इस रोग की उपेक्षा करता है तो न तो वह अच्छी तरह जी पाता है एवं न ही अच्छी तरह मर पाता है । आजकल ऐसी व्याधियों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है जो जीवन भर साथ-साथ चलती है । वे मृत्युपर्यन्त पीछा नहीं छोड़ती, इस समय सारे जगत के लिए समस्या रूप रोगों में से हार्टअटैक, कैंसर, एड्स, मधुमेह एवं उच्चरक्तचाप आजीवन साथ चलती है इनमें से हद्रोग, उच्च रक्तचाप एवं मधुमेह परस्पर संबंध बना लेते हैं एवं एक-दूसरे को प्रोत्साहित करते हैं । इन व्याधियों का आतंक इतना अधिक है कि सभी शिक्षित व्यक्ति इस अज्ञात भय से त्रस्त रहते हैं कि वे कब इनकी परिसीमा में आ जायेंगे ।

इनमें से मधुमेह एक अत्यन्त विचित्र व्याधि है जो मनुष्य जाति का छुपा दुश्मन है । इसकी शरीर में उपस्थिति का ज्ञान कई लोगों को वर्षों तक नहीं हो पाता क्योंकि बाहर से शरीर में कोई विशेष परिवर्तन दिखाई नहीं देते एवं कुछ लक्षण इतने मंद होते हैं कि उनकी ओर व्यक्ति का ध्यान नहीं जाता । इसका स्पष्ट आभास तब होता है जब किसी अन्य व्याधि का उपचार कराते समय मूत्र या रक्त का परीक्षण कराया जाता है या कभी-कभी रक्तशर्करा की अधिक वृद्धि होने पर लक्षण तीव्र हो जाते हैं । मधुमेही को अपने लक्षणों के प्रति हमेशा सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि उनकी उपेक्षा करके व्यक्ति शांति से जी नहीं पाता एक बार मधुमेह हो जाने पर व्यक्ति को अपने आहार-विहार एवं

रोग निदान विभाग, पं० डा० डी.वाय. पाटील आयुर्वेद कॉलेज एवं रिसर्च केन्द्र, पीम्परी, पुणे - 411 018

सभी क्रियाकलापों के प्रति सचेत हो जाना पड़ता है एवं जीवनपर्यन्त नित्य उपचार लेना पड़ता है । जो लोग इस रोग को जानने, समझने एवं उपचार करने से उपेक्षा करते हैं, उन्हें यह अपना घातक स्वरूप भी बताता है, जो लोग मधुमेह के अनुकूल आहार-विहार एवं उपचार का आयोजन नहीं कर पाते उन्हें सड़ने एवं गलने को मजबूर होना पड़ता है। मधुमेह से उत्पन्न होनेवाले उपद्रव पिटिका (Carbuncle) एवं कोथ (Gangrene) अत्यन्त विद्रूप एवं पीड़ाकारी होते हैं। इन उपद्रवों के होने पर व्यक्ति अत्यन्त दयनीय स्थिति को प्राप्त हो जाता है । कोथ होने पर अंगों का विच्छेदन करना पड़ता है । पीटिकाएं कई महीनों तक पीड़ा देती हैं एवं मूर्ध्व कभी-कभी मृत्यु का वरण भी करा देती हैं । इसीलिए कहा जाता है कि जो लोग मधुमेह होते हुए भी इसके विषय में विस्तार से जानना नहीं चाहते वे लोग दुखी होते हैं एवं जो लोग मधुमेही न होते हुए भी मधुमेह के विषय में विस्तार से जानते हैं वे स्वयं भी सुखी होते हैं एवं दूसरों को भी सुखी करते हैं, मधुमेह से पीड़ित जो लोग केवल अपने चिकित्सक के आदेशों का पालन करते हैं, उनकी अपेक्षा वे लोग अधिक कुशल सिद्ध होते हैं जो इस व्याधि का ज्ञान संकलित कर अपने अनुकूल आहार-विहार एवं दिनचर्या का निर्धारण कर लेते हैं । मधुमेह के रोगी को एक बात बहुत अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि वे चाहे जितने बुद्धिमान, धनवान, व्यवसायी, नेता, अभिनेता, कार्यकर्त्ता, समाजसेवी, धर्मात्मा या दुरात्मा हों, उन्हें आजीवन मधुमेह के साथ समझौता करके ही रहना होगा एवं मधुमेह की शर्तों पर ही अपना जीवन व्यतीत करना होगा ।

मधुमेह का इतिहास :- इस व्याधि का इतिहास नया नहीं है । चिकित्साशास्त्र से सम्बन्धित प्राचीनतम ग्रंथों से भी इसका वर्णन मिलता है । लगभग 3500 वर्ष पूर्व लिखे गये एबर्स पेपीरस एवं आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ चरक संहिता में इस योग का विस्तृत एवं अर्थपूर्ण वर्णन दिया गया है। मधुमेह के इतिहास से जो महत्वपूर्ण घटनाएं अभी तक प्रकाश में आयी है उन्हें निम्नक्रम दिया जा सकता है :-

तथ्य :-

1. लगभग 3500 वर्ष पूर्व लिखे गये एबर्स पेपीरस में इसका प्रधान लक्षण बहुमूत्रता बताया गया है एवं उसे दूर करने के उपाय भी बताए हैं ।
2. गेलन (121-201 B.C.) ने मधुमेह से मूत्रपिण्ड की दुर्बलता होना बताया । उन्होंने यह भी बताया कि इससे मूत्राधिक्य के साथ ही तृषा, शरीर क्षय एवं अतिक्षुधा भी होती है ।
3. ऐरीटीयस दी कोपोडोशियन (30-90 A.D.) ने स्पष्ट किया कि मधुमेह एक विचित्र व्याधि है जिसमें मांस एवं अवयव घुलकर मूत्र में परिणित हो जाते हैं । यह चिरकारी स्वभाव की व्याधि शरीर में स्थिर हो जाय तो जीवन दुखी एवं त्रासमय हो जाता है ।
4. प्रख्यात हकीम अबीसेन्ना (ई.स. 980-1027) ने बताया कि मधुमेह से पीड़ित व्यक्ति ज्ञानतंतुओं की दुर्बलता, थकान, कार्य में अक्षमता एवं क्लीवता (नपुंसकता) से पीड़ित रहते हैं । उन्होंने मधुमेह के उपद्रव भी बताए तथा इसे दो प्रकार का बताया है ।
5. सन् 1776 में मेथ्युडोब्स को यह ज्ञात हुआ कि मधुमेह में मधुरता शरीर में स्थित शर्करा के कारण होती है ।
6. सन् 1780 में रोलो की मान्यता थी कि मधुमेह उदर का रोग है जिसके द्वारा शर्करा अतिमात्रा से उत्पन्न होती है, किन्तु आत्मसात होने में विकृति होती है उसने प्राणिज आहार लेने की सलाह दी ।
7. बाउचर्ट (1806-1886) ने पेरिस के घेरावकाल में अन्न की कमी के कारण मधुमेह के रोगियों को अधिक दीर्घजीवी देखकर कार्बोदित के बदले ताजा चरबी लेने का आग्रह रखा । उसने दूध का सेवन उसमें स्थित शर्करा के कारण बंद करवाया एवं अनाज का सेवन कम करने के लिये सुरा (Alcohol) का सेवन करने को कहा । उसने Gluten Bread की शोध किया, हरी शाकभाजी खाने का आग्रह रखा एवं क्षारों (Alkalies) का उपयोग किया । उसने अल्प भोजन, अपर्याप्त पोषण पर ध्यान दिया तथा व्यायाम करने का आग्रह किया ।
8. पेवी (1829-1911) ने इस आहार योजना को विकसित कर यह स्पष्ट किया कि इससे मूत्र से निष्कासित

शर्करा बंद हो जाती है ।

9. पेरिस का ग्वेल्पा (Gualpa) मधुमेह के रोगियों को क्षारीय विरेचन (Saline Laxative) देकर एवं उपवास करवा कर तीन दिन में मूत्रगत शर्करा बन्द कर देता था।
10. सन् 1818 में वेटानेब ने रक्तगत शर्करा कम करने हेतु डेकापिथीलीन को प्रभावशाली बताया किन्तु अन्य दुष्प्रभावों के कारण निष्कासित हो गया ।
11. सन् 1826 में एबेल ने स्फटिकात्मक इन्सुलिन (Crystalline Insulin) तैयार किया तथा स्कोट एवं फिशर ने अधिक समय तक प्रभावशाली रहनेवाले इन्स्युलीन को तैयार किया । इन्स्युलीन की Hyper Sensitivity एवं अन्य विरोधी कारणों से मुख द्वारा सेवनीय (Oral hypoglycaemic agent) औषध समूह चिकित्सा जगत में आए ।
12. 1876 में एब्स्टाईन एवं गोर्टजिन ने सोडियम सेलिसिलेट का उपयोग मुख द्वारा सेवनीय औषध के रूप में किया।
13. 1901 में मान्चेस्टर विलियम्स ने भी इसका विस्तृत व्यवहार किया ।
14. रेन्डेल एवं स्मिथ ने एस्पीरिन का उपयोग किया एवं बताया कि एस्पीरिन उदर पटल में अधिक मात्रा में ग्लुकोज को ग्रहण करने में मदद करती है किन्तु यह चिकित्सा अधिक सफल नहीं हुई क्योंकि इससे सेलिसीलिजम (Salicylism) उत्पन्न होता था ।
15. सन् 1921 में कनाडा के दो जीव विज्ञानियों फेड्रीक वेन्टींग एवं चार्लवेस्ट ने सर्वप्रथम कुत्ते के पेंक्रियाज में से इन्स्युलीन निकाला एवं उसका प्रयोग कुत्तों पर ही किया ।
16. इन्स्युलीन के लिए बेन्टींग को जे.जे. मेकल्युड के साथ नोबल पुरस्कार दिया गया ।
17. 1856 तक यह ज्ञात नहीं हो सका था कि मधुमेह में रक्तगत शर्करा बढ़ती है ।
18. सन् 1869 मे लेंगरहेन्स ने पेंक्रियाज स्थित श्रावक द्वीपों (Islets of langerhans) की शोध की ।
19. सन् 1902 मे सोविलो एवं शल्ज ने पेंक्रियाज स्थित भावों को पृथक किया ।
20. सन् 1920 में पेंक्रियाज स्थित बीटासेलो में स्थित स्राव के कम होने को मधुमेह का सबसे बड़ा कारण माना गया ।
21. लगभग 1950 के बाद मधुमेह कर सम्बंध शरीर के चयापचय (Metabolism) एवं अन्तःश्रावी ग्रंथियों (Endocrine) के साथ जोड़ा गया ।
22. 1980 में औषध निर्माण कम्पनियों ने यह ढूंढ़ निकाला कि मानव शरीर के पेंक्रियाज के कोशों (जो इन्जेक्शन द्वारा लिए जाते हैं) को अलग कर उनके साथ विशेष प्रकार के वेक्टरिया रखकर इन्स्युलीन प्राप्त किया जा सकता है ।
23. गाय एवं सूअर के पैंक्रियाज से 25 करोड़ का एवं मानव शरीर से 251 करोड़ का इन्स्युलीन भारत में बेचा जाता है ।

वर्तमान में मधुमेह का स्वरूप :- वर्तमान में जिस गति से मधुमेहियों की संख्या बढ़ रही है एवं समाज में मधुमेह के प्रति भय बढ़ता जा रहा है, वह अकारण नहीं है । समाज के सुशिक्षित, मध्य एवं उच्चवर्ग में मधुमेहियों की संख्या तीव्र गति से बढ़ रही है । यही वह वर्ग है, जो देश की सभी समस्याओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस समय सबसे अधिक चिंता उन लोगों के प्रति की जा रही है, जो भविष्य में मधुमेही बनने वाले हैं । प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में नये मधुमेही शिकार हो रहे हैं । इन सबको मधुमेह के नियमों का प्रशिक्षण देना जरूरी होता है अन्यथा वे मधुमेह की विभीषिका में फंस जाते हैं । प्रत्येक रोगी को आहार की योग्यता, अयोग्यता, नियमितता, निषिध्यता, आवश्यक व्यायाम, योगाभ्यास आदि के बारे में प्रशिक्षित करना पड़ता है । ऐसा वहीं संभव है, जहां व्यक्तिगत एवं सामूहिक सम्पर्क के माध्यम हैं । जहां ऐसे माध्यम नहीं हैं, ऐसा क्षेत्र इस देश में बहुत बड़ा है क्योंकि छोटे-छोटे गांवों में कोई भी माध्यम उपलब्ध नहीं है इस देश में असंख्य मधुमेही बिना निदान एवं उपचार के दम तोड़ देते हैं। बड़े-बड़े उनकी संख्या को गिनने वाला भी काई नहीं है ।

शहरों में आजकल Diabetic Societies बनी है किन्तु उनमें भी अधिकांशतः उच्चवर्ग की ही पहुंच है, मध्यम वर्ग के लिए कुछ सामाजिक संस्थाएं विशेषज्ञों के प्रवचन आयोजित करती हैं किन्तु वे भी अपने निजी चिकित्सकों के सतत् सम्पर्क का ही आग्रह रखते हैं ।

मधुमेह के विस्तार पाने का एक मुख्य कारण इसकी अनुवांशिकता है । एक बार ज़िस व्यक्ति पुरुष या महिला को होता है उनकी संतानों में इसके आने की संभावना बढ़ जाती है । यदि स्त्री एवं पुरुष दोनों ही मधुमेही हों तो संभावना का प्रतिशत लगभग 80% हो जाता है । इस अवस्था मे केवल वे ही संतानें बच पाती हैं जो अत्यंत जागरूक एवं व्यायाम प्रिय हो, मधुमेह की अनुवांशिकता मधुमेहीयों की संख्या बढ़ाने में भी मुख्य कारण है ।

आजकल विशेषज्ञ ऐसा मानने लगे हैं कि मधुमेह हमारी जीवन शैली (Life style) में आए प्रतिवर्तन का परिणाम है । हमारे पूर्वज बड़ी मेहनत एवं नियमित आहार के कारण इससे बच पाते थे किन्तु वर्तमान में अल्प श्रम एवं अध्यशन, विषमाशन तथा विरुद्धासन का व्यापक उपयोग होने से भी संख्या बढ़ती जा रही है । एक और कारण की ओर भी संकेत किया जाता है, वह है 'पर्यावरण दुष्टि' । इसकी मात्रा प्रतिदिन बढ़ती जा रही है एवं यह अनेक व्याधियों का मूल बनता जा रहा है । अन्य रोगों की तरह अब अनेक शहरों में 'मधुमेह विशेषज्ञ' (Diabetologist) बढ़ते ज़ा रहे हैं जो मधुमेह के व्यापक प्रसार का प्रतीक है ।

मधुमेह के कारण :- प्रत्येक चिकित्सक का प्रथम कर्त्तव्य रोग के कारणों को ढूँढ़ना है क्योंकि कारणों से ही रोग का निर्माण होता है । आयुर्वेद के मत से बिना निदान, दोष एवं दूष्य के सन्निकर्ष के किसी रोग की उत्पत्ति नहीं हो सकती । आयुर्वेद के आचार्यों ने इस तथ्य को भी उजागर किया है कि जिन कारणों से रोग की उत्पत्ति होती है उन कारणों का परिवर्जन यथाशीघ्र करना चाहिए, यदि ऐसा नहीं किया गया तो व्याधि बढ़ती रहती है, निदान परिवर्जन से व्याधि आगे नहीं बढ़ पाती क्योंकि उसे पोषण या वृद्धिकर भाव नहीं मिल पाते । आयुर्वेद का एक दूसरा सिद्धांत यह भी है कि जिन हेतुओं के सेवन से व्याधि उत्पन्न हुई है उन हेतुओं के विपरीत द्रव्यों का सेवन करके उपचार का प्रारम्भ करना चाहिए । इससे लाभ यह होता है कि हेतुओं की वृद्धि ही नही एकती वरन् विपरीत स्थिति उत्पन्न होने से सम्प्राप्ति विघटन भी हो जाता है । इन दो सिद्धान्तों का अनुपालन सभी रोगों के लिए उपयोगी है ।

मधुमेह के कारणों को जानने में आयुर्वेद के आचार्य आधुनिक चिकित्साशास्त्र की अपेक्षा अधिक कुशल ज्ञात होते हैं । उन्होंने मधुमेह के कारणों की जितने विस्तार से समीक्षा की है वह एक श्रेष्ठ चिकित्सा पद्धति के अनुरूप ही है । आधुनिक चिकित्साशास्त्र मधुमेह के भेदों एवं उसकी विकृतियों में इतना उलझ गया है कि उत्पादक कारणों की विविधता की ओर उनका ध्यान ही नही जा रहा है । वे अभी तक जिन कारणों के प्रति संकेत कर पाये हैं उनमे मेदोवृद्धि, आयु (Ageing), अपर्याप्त व्यायाम, अतिसंतर्पण (Over nutrition) अतिभार वृद्धि (Over weight) Refined food, मानसिक तनाव, बार-बार प्रसूति होना, बीटा सेल की जेनेटिक विकृतियाँ, अन्तःश्रावी ग्रन्थियों की विकृतियाँ पेंक्रियाज के विभिन्न रोग, आधुनिक चिकित्साशास्त्र की अनेक औषधियाँ, रोगों को संक्रमण एवं अन्य बीज दोष कारण रूप मे बताए हैं इनमें से अधिकांश कारण अन्तरंग विकृति सूचक हैं फिर भी वे इस बात पर भार अवश्य दे रहे हैं कि इस रोग के विषय में जनसामान्य को शिक्षित किया जाना चाहिए, किन्तु अधिकतम भार मेदोवृद्धि को रोकने पर ही दिया जा रहा है ।

मधुमेह के आयुर्वेदीय कारण :- आयुर्वेद के आचार्यों ने मधुमेह के कारणों की विस्तृत समीक्षा की है उनके बताए हुए कारण इस देश के आहार-विहार के आधार पर ही लिखे गये हैं । यदि हमें इस देश में मधुमेह के प्रसार को रोकना है तो हमें उनके बताए हेतुओं की ओर ध्यान देना ही होगा, विभिन्न आचार्यों ने निम्न् कारणों को प्रधानता दी है -

(1) अधिक समय तक लगातार गुरू अन्न का सेवन ।

(2) स्निग्ध पदार्थों यथा घी, तैल, मक्खन, दूध, दही, आदि का अतिमात्रा में सेवन ।

(3) मधुर, अम्ल एवं लवण रस प्रधान आहार का अतिमात्रा में सेवन ।

(4) नवान्न (नये गेहू, चावल, बाजरा, जौ, जुवार एवं दालों का सेवन) ।

(5) नवपान (मदिरा, आसव, अरिष्ट) आदि का समय से पूर्व सेवन ।

(6) अधिक समय तक सोना या पड़े रहना ।

(7) अधिक गद्देदार बिस्तरों पर सोना एवं बैठना (बड़े सोफा सेट आदि) ।

(8) व्यायाम का त्याग - शारीरिक श्रम बिल्कुल नहीं करना ।

(9) चिंतामुक्त हो जाना या मानसिक चिंतन बिल्कुल नहीं करना ।

(10) शरीर की शुद्धि नहीं करना (शरीर की शुद्धि ऋतुओं के अनुसार पंचकर्म की विधियों से की जाती है) ।

(11) ग्राम्यमांस, जलीयमांस एवं आनूप मांस का सेवन ।

(12) गुड़ विकार यथा - शक्कर, मिश्री इक्षु गुड़ मिठाइयाँ आदि का अतिसेवन ।

(13) दूध का अतिमात्रा में उपयोग ।

(14) दही का अतिमात्रा में उपयोग एवं नित्य सेवन ।

(15) कफ को उत्पन्न करनेवाले आहार-क्षीर, भात, मधुर एवं शीत आहार, आईसक्रीम, श्रीखण्ड, केले, सीताफल, आम, द्राक्ष, क्रीम, जागरी आदि ।

(16) भोजन के प्रति अधिक लोभ करना-बारबार खाने की इच्छा रखना ।

(17) अधिक मात्रा में भोजन करना-सामान्यतः व्यक्ति भोजन समारम्भों उपवास से पूर्व एवं पश्चात् शादी-विवाह एवं दूसरों के यहां अधिक खाते हैं, इसी प्रकार होटलों में एवं होस्टलों में भी अधिक खाने की आदत पड़ जाती है ।

(18) स्नान के प्रति विद्वेष रखना या नित्य स्नान नहीं करना ।

(19) चक्रमण द्वेष - पैदल चलने के प्रति अनुत्साह बताना ।

(20) आलस्यवश जीवन व्यतीत करना-दिनभर बेकार के रहना ।

(21) कफवर्धक, मेदवर्धक एवं मूत्रवर्धक आहार का अति सेवन ।

(22) अधिक शाक का सेवन ।

(23) तिल, तिलपिष्ट एवं मिष्टान्न का अतिसेवन ।

(24) किसी भी द्रव पदार्थ का अतिसेवन-आजकल खूब पानी पीने का प्रचार किया जाता है ।

(25) विधि वर्जित रति ।

(26) विधि वर्जित शयन ।

(27) शीत द्रव्यों का अतिसेवन ।

(28) द्रवान्न पान का अतिसेवन ।

(29) एक स्थानासन - अधिक समय तक एक ही स्थान पर बैठे रहना ।

(30) परिवार में कुलज प्रवृत्ति का होना ।

इन स्पष्ट कारणों के अतिरिक्त उस काल में प्रचलित आहार द्रव्यों का विस्तृत वर्णन भी चरक संहिता में उपलब्ध है । वर्तमान में उन आहार द्रव्यों का प्रचलन न होने से यहाँ उनका उल्लेख करना समुचित नही है ।

हेतु समीक्षा - ये हेतु उस काल के वर्णित किए गये हैं जब जगत के अन्य देश मधुमेह के विषय में बहुत अल्प ज्ञान भी प्राप्त नहीं कर पाये थे, आयुर्वेद के हेतुओं का वर्णन वर्तमान आधुनिक चिकत्साशास्त्र के वर्णन की अपेक्षा भी अधिक समृद्ध है । कई कारणों के प्रति वे अभी भ्रमित अवस्था में है एवं कुछ के प्रति उनका निर्णय विपरीत भी है । उन्होंने आयुर्वेदीय हेतु विज्ञान को समझने का प्रयास ही नहीं किया है इसीलिए मधुमेहियों की बाढ़ को रोक पाना असम्भव हो रहा है । यहां कुछ ऐसे उदाहरण दिये जा रहे हैं जिनकी जनसामान्य में प्रचार-प्रसार की

अत्यन्त आवश्यकता है ।

नवान्नपान :- आयुर्वेद की मान्यता है कि मनुष्यों को नव अन्न का सेवन नहीं करना चाहिए । नया अन्न एक वर्ष के पश्चात् खाने का विधान है । इस तथ्य से आधुनिक विज्ञान भले ही अपरिचित हों किन्तु भारतीय गृहिणियां जो भोजन बनाती हैं वे नये गेहूँ, चावल एवं पुराने गेहूँ चावल के प्रभाव को बहुत अच्छी तरह समझती है किन्तु नई एवं आधुनिकता से प्रभावित नारियां एवं आहार का व्यापारीकरण इन तथ्यों की उपेक्षा कर रहा है ।

दधि पेवन :- मधुमेह की उत्पत्ति में दही का नित्य सेवन प्रमुख कारण माना गया है । लगभग सभी आयुर्वेदीय ग्रंथों में दही का उल्लेख हेतु रूप में किया है, किन्तु आधुनिक आहार शास्त्री दही को मधुमेह में उपयोगी बताते हैं । आयुर्वेदीय मान्यतानुसार दही अभिष्यंदी होने से स्रोतोरोध करता है एवं शरीर के मार्गों में अवरोधक बल के रूप में कार्य करता है, दही स्निग्ध एवं मधुर होने से श्लेष्म वृद्धि एवं मेदोवृद्धि करता है तथा शरीर में अनुत्साह बढ़ाता है इसीलिए इसे मधुमेही के लिए अयोग्य माना गया है ।

आसन एवं स्वप्नसुख :- आयुर्वेद में आसनसुख एवं स्वप्न सुख को मधुमेह का कारण बताया है । बड़े गद्देदार गद्दी एवं बिस्तरों पर सोना, फोम का उपयोग करना अत्यंत महंगे एवं सुकोमल शय्याओं (Double Beds) का उपयोग आजकल फैशन हो गया है प्रत्येक सम्पन्न व्यक्ति ड्राईंग रूम में नरम एवं महंगे सोफासेट तथा सोने के लिए स्प्रींग एवं मोटे बिस्तर का आदी होता जा रहा है । यह आसन एवं शयन की व्यवस्था मधुमेह का कारण बन सकती है क्योंकि इससे शरीर की मांस पेशियों को व्यायाम नहीं मिलता एवं उनमें शिथिलता आती है । सोने एवं बैठने के लिए आप जैसी आदत शुरू से डालेंगे, उसे शरीर स्वीकार कर लेता है इसीलिए श्रमजीवी लोग रूखा-सूखा खाकर एवं जमीन पर सोकर भी नींद पूरी कर लेते हैं । वे सोने के लिए बहुत पतले बिस्तर का उपयोग कर लेते हैं। सम्भवत: यह भी उनके मधुमेही न बनने का कारण हो सकता है । आधुनिक वैज्ञानिकों ने इस तथ्य पर विचार नहीं किया है एवं ये स्वयं भी अच्छे आसन एवं शयन का उपयोग करते हैं । कृपया पतले बिस्तर या मात्र कम्बल का उपयोग करें ।

त्यक्त चिंता :- आजकल मानसिक चिन्ता को मधुमेह का प्रधान कारण माना जा रहा है, अधिक चिंता से शरीर की अन्त:स्रावी ग्रंथियों पर प्रभाव होकर रोग बढ़ने की सम्भावना रहती है किन्तु आयुर्वेद में बताया है - "त्यक्त व्यायाम चिंतानाम्" यह चिंता का त्याग सम्भवत: उन लोगों के प्रति संकेत है जो बेशर्म होकर लापरवाही से जीवन व्यतीत करते हैं ऐसे लोगों को 'लफ्फट' भी कहा जा सकता है । ऐसे व्यक्ति आहार-विहार में उपेक्षा कर मेदोवृद्धि एवं धातु की शिथिलता आने पर मधुमेही बनते हैं।

मधुर सेवन :- आयुर्वेद की मान्यता है कि जो लोग मधुरपदार्थ यथा गुड़, शक्कर, मिश्री, मिठाई आदि का अधिक सेवन करते हैं एवं नित्य स्वादुयुक्त पदार्थ खाते हैं, उन्हें कालान्तर में मधुमेह हो सकता है । वैसे भी प्रत्यक्षत: ऐसा देखने में भी आता है कि नित्य मधुर पदार्थ अधिक मात्रा में खाने वाले समृद्ध लोग कालान्तर में मधुमेही हो जाते हैं । आधुनिक चिकित्साशास्त्र कहता है कि मधुर पदार्थ खाने से मधुमेह नहीं होता वरन् जिन्हें मधुमेह हो जाता है उन्हें मधुर पदार्थ नहीं खाना चाहिए । यदि कोई मधुमेही मधुर पदार्थ खाता रहता है तो उसके घातक परिणाम हो सकते हैं। वे मधुर पदार्थों को मधुमेह का उत्पादक कारण नहीं मानते हैं ।

शरीर शुद्धि :- आयुर्वेद के आचार्यों ने शरीर में उत्पन्न होने वाली अशुद्धियों को शरीर से ब्राहर निकालने हेतु संशोधन कर्म की विशेष व्यवस्था बताई है, अधिक श्लेष्म संचय होने पर वमन कर्म, अधिक पित्त संचय होने पर विरेचन एवं अधिक वात संचय होने पर बस्तिक्रिया बताई है । आचार्यों ने दो ऋतुओं के आहार पर दोषों के प्रकोपकाल में इनका संशोधन करने को कहा है । ये

क्रियाएं सभी स्वस्थ व्यक्तियों के लिए बताई गई है । आजकल इन क्रियाओं का उपयोग कोई नहीं कर रहा है । ये क्रियाएं थोड़ी जटिल एवं व्यय साध्य होने से इनकी और किसी का भी ध्यान जाता ही नहीं है ! आधुनिक चिकित्साशास्त्र शरीर शुद्धि हेतु कोई क्रिया नहीं बताता एवं न ही ऐसी क्रियाओं को उपयोगी मानता है, आयुर्वेद की मान्यता है कि ऋतुओं के आधार पर शरीर की शुद्धि कर लेने से शरीर में ऐसी गम्भीर व्याधियां स्थिर नहीं हो पातीं, सम्भवत: मधुमेह, हृदरोग, कैन्सर आदि व्याधियां संशोधन न करवाने का परिणाम भी हो सकता है । इस विषय में व्यापक चर्चा विचारण एवं जनजागृति आवश्यक है ।

नित्य स्नान :- शरीर की अन्त:शुद्धि पंचकर्म द्वारा होती है किन्तु मधुमेह में जितना महत्व अन्त:शुद्धि का है उतना ही महत्व बाह्यशुद्धि का भी है क्योंकि अधिकांशत: मेदस्वी पुरुषों को स्वेदाधिक्य होता है एवं त्वचा के माध्यम से ही मल बाहर आता है, यदि स्वेदवह स्रोतस् की दुष्टि होगी तो स्वेदाधिक्य, अतिस्निग्धता, त्वचा में दाह एवं रोमहर्ष जैसे लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं । इन्हें रोकने एवं त्वचा की शुद्धि के लिए स्नान आवश्यक है । इसीलिए मधुमेह के कारणों में स्नान न करना भी बताया है, स्नान की क्रिया को आयुर्वेद के आचार्य बहुत महत्वपूर्ण मानते हैं । उनके अनुसार स्नान करने से शरीर में पवित्रता आती है, उससे शुक्र एवं आयु की वृद्धि होती है, यह थकावट स्वेद एवं मल को दूर करनेवाला तथा शरीर में बल एवं ओज को बढ़ाता है । प्रात:काल में किया हुआ स्नान केवल शरीर मल को ही दूर नहीं करता वरन् पापहरण भी करता है, यह रूप को निखारनेवाला, तेज को बढ़ाने वाला, सुखदेनेवाला, कामाग्नि, निद्रा, दाह, श्रमहर, स्वेद, कण्डु एवं तृषा हर, हृदय के लिए हितकारी एवं सर्व इन्द्रियों का विशोधक है । इसके अतिरिक्त भी स्नान के अनेक गुण आयुर्वेद के आचार्यों ने बताए हैं, जो आधुनिक वैज्ञानिकों की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं वे मधुमेह के साथ स्नान का कोई सम्बंध स्वीकार नहीं करते ।

अध्यशन - अधिक मात्रा में भोजन करना ए भोजन के प्रति लालायित रहना या भोजन का लोभ का मधुमेह का कारण बताया गया है, जो लोग भोजन समारम्भ में शादी विवाह के भोजन, पार्टियों एवं प्रसंगवश भोजन के आमंत्रण हेतु अधिक उत्सुक रहते हैं एवं ऐसे अवसर प सामान्य से अधिक खाते हैं । शरीर कृश हों या स्थूल उन्हें मधुमेह जैसे रोग शीघ्र भले उनके हो जाते हैं । यह स्थौल्य मात्र मधुमेह ही नहीं वरन् अन्य कई रोगों का कारण ब सकता है । भोजन के लोभियों के प्रति आचार्य चरक ने अत्यन्त कड़े शब्दों में चेतावनी दी है, वे कहते हैं कि भोजन के लोभी तथा स्नान एवं चक्रमण के द्वेषियों के पास प्रमेह उसी प्रकार आ जाता है जैसे घोंसले वाले वृक्ष पर पक्षी आता रहता है । वे और भी चेतावनी देते हुए कहते हैं कि कम उत्साह वाले, अधिक स्थूल, अतिस्निग्ध पदार्थों का सेवन करनेवाले तथा बहुत अधिक भोजन करने वाले पुरुषों के पास मृत्यु शीघ्र ही प्रमेह के रूप में आ जाती है।

अनुभव की सम्पदा :- मधुमेह के विषय में हमारे आचार्यों का इतना सूक्ष्म अध्ययन हमारी चिकित्सा पद्धति विशेषता की ओर ध्यान दिलाता है । ऐसे उपदेश हमारे ऋषिमुनियों के सूक्ष्म अनुसंधान का प्रसाद है । उन्होंने बिन किसी अपेक्षा के हमें जो शास्त्र सम्पत्ति प्रदान की है उसका समुचित मूल्यांकन करना या उसकी उपेक्षा करना हमारे भविष्य का सौभाग्य या दुर्भाग्य बन सकता है । हमें आधुनिक विज्ञान की उपयोगी उपलब्धियों के साथ भूतकाल की सम्पत्ति का भी सदुपयोग करना चाहिए । आयुर्वेद के ऋषियों ने नि:स्वार्थभाव से जो अनुभव का अमृत प्राप्त कराया है उसे निर्दोष एवं अकाल में कालकलवित होनेवाले मधुमेहियों के हित में उपयोग किया जाना चाहिए ।

उपरोक्त उदाहरण या स्पष्ट करते हैं कि हमारे आचार्यों ने जिन हेतुओं का निर्देश किया है वे व्यावहारिक एवं उपयोगी हैं । साथ ही जीवन के सभी पहलुओं को ध्या उन्होंने स्पष्ट किया है । उन्होंने मधुमेह के कारण रूप में जिनका उल्लेख हजारों वर्ष पूर्व किया है वे वर्तमान में भी

उपयोगी होने से उनका प्रचार-प्रसार किया जाना चाहिए ।

नये हेतु :- समय के परिवर्तन के साथ भी कुछ नये हेतु आ जाते हैं । आहार-विहार एवं आचार-विचार के परिवर्तन से भी कई नये हेतु आ जाते हैं । पिछले 100 साल में मुख्यत: आजादी के बाद इनमें बहुत परिवर्तन आया है जैसे-जैसे जीवनस्तर बढ़ता जा रहा है वैसे-वैसे मधुमेहियों की संख्या भी बढ़ती जा रही है । लोगों में चक्रमण द्वेष बढ़ता जा रहा है, छोटे-छोटे कामों के लिए मध्यम एवं उच्चवर्ग के लोग स्कूटर या कार का उपयोग करने लगे हैं । शारीरिक श्रम लगभग समाप्त हो गया है । आजकल शारीरिक श्रम वे ही लोग करते हैं जो मजदूरी करने के लिए मजबूर हैं जो बिना श्रम किये सायं काल का भोजन प्राप्त नहीं कर सकते, जो पर्याप्त वस्त्र नहीं पहन पाते, जिन्हें रहने के लिए मकान नहीं है एवं सोने के लिए बिस्तर नहीं है ऐसे लोग सचमुच मधुमेह से मुक्त होते हैं । हमारे देश में ऐसा वर्ग अतिशीघ्रता से बढ़ रहा है जो पहले निर्धन था किन्तु बाद में शिक्षित होकर सम्पन्न हो गया । इस निर्धनता में से सम्पन्न हुए वर्ग ने श्रम की सारी मर्यादाएं तोड़ दी । धनिक वर्ग ने अपने आहार-विहार में इतना परिवर्तन कर लिया कि शरीर ने पुरस्कार स्वरूप मधुमेह की भेंट दे दी । अब प्रत्येक सम्पन्न हो रहा व्यक्ति श्रम का त्याग करता जा रहा है एवं श्रम न करने की सुविधाएं जुटाने में व्यस्त है, संयोगवश आहार में आया परिवर्तन भी मधुमेह वर्धक सिद्ध हो रहा है। विभिन्न प्रकार के पेय, कोल्डड्रिंक्स, आईसक्रीम, जागरी, बिस्कीट्स, पेस्ट्री, प्रेड्स, श्रीखंड, पनीर, बटर एवं असंख्य मिठाइयों की विविधता ने मधुमेह का स्वागत किया है । जैसे-जैसे इन विविधताओं का विस्तार होता जा रहा है वैसे-वैसे मधुमेह का भी विस्तार हो रहा है । आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि अधिकांश शिक्षित लोग मधुमेह के विषय में जानने लगे हैं फिर भी वे इसकी चपेट में आ रहे हैं । बहुत कम शिक्षित एवं सम्पन्न वर्ग ऐसा है जो नित्य व्यायाम का अनुपालन करता है एवं मधुमेह से मुक्त रहने का प्रयास करता है ।

हम क्या कर सकते हैं ।

आयुर्वेदज्ञ अभी तक किसी भी राष्ट्रीय समस्या के समाधान में सहयोगी नहीं बन पाये हैं इस तथ्य को जितना शीघ्र हम समझ लेंगे उतना आयुर्वेद के हित में होगा, मलेरिया, फाइलेरिया, राजयक्ष्मा, कैन्सर, एड्स, हेपेटाइटिस, हृद्रोग, कालेरा, संक्रमण जन्य रोग, शल्यसाध्य रोग आदि में हमारी भूमिका नहीं के समान है । देश के नागरिकों को हम किसी भी रोग के प्रति पूर्णत: आश्वस्त नहीं कर पाये है । यही स्थिति मधुमेह की है । मधुमेहियों का सारा वर्ग आधुनिक चिकित्साशास्त्र को समर्पित हो गया है । वे बिना आधुनिक उपचार लिए सामान्य जीवन नहीं जी पाते, जो लोग आयुर्वेद के समर्थक एवं श्रद्धालु हैं या स्वयं आयुर्वेद के ज्ञाता हैं वे भी मजबूरी से आधुनिक उपचार ले रहे हैं ।

यदि हमें इस दयनीय स्थिति से बाहर आना हो तो सर्वप्रथम विश्व उपचार व्यवस्था में अपना स्थान बनाना होगा । प्रारम्भ में हम चाहे रोगों के समूल निर्मूलन का प्रयास नहीं कर पाये किन्तु राष्ट्रीय समस्या रूप रोगों के प्रतिरोधक पक्ष (Preventive aspect)के सहयोगी अवश्य हो सकते हैं । यदि हम हमारे हेतु पक्ष का हेतु परिवर्जन एवं हेतु विपरीत स्वरूप जगत एवं चिकित्साजगत को समक्ष रखें तो हम प्रतिरोधक पक्ष के सहयोगी बन सकते हैं । हमारा यह प्रयास उज्जवल भविष्य का सोपान हो सकता है । यदि हम मधुमेह के हेतु परिवर्जन एवं हेतु विपरीत पक्ष का प्रभावशाली प्रचार-प्रसार करके नये मधुमेहियों की संख्या को कम कर सकें तो भी यह एक बड़ी उपलब्धि होगी । एक बार यह सिद्ध हो गया कि मधुमेह को रोकने में हमलोग उपयोगी हैं तो करोड़ों लोगों को हमारे प्रति आशा एवं श्रद्धा का संचार होगा । आजकल संचार साधन एवं प्रचार माध्यमों का जिस व्यापक रूप मे प्रभावशाली उपयोग हो रहा है उसमें हमें भागीदार बनना चाहिए । हमारे शास्त्र भी कहते हैं कि व्याधि विपरीत चिकित्सा से पूर्व ही हेतु विपरीत उपचार कर लेना चाहिए । यदि हम इसमें सफल हो जाते हैं तो रोगों के उपचार में भी हमारी भूमिका महत्वपूर्ण हो जायेगी । हमें प्रथम इस जटिल समस्या के समाधान मे भागीदार बनना पड़ेगा अन्यथा हम स्वयं भी एक समस्या बन जायेंगे ।

संस्कृत ग्रन्थों में भोजन की अवधारणा

डॉ० ज्योत्सना निगम

मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं में सर्वप्रथम एवं सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता भोजन है । भोजन जहाँ व्यक्ति की शारीरिक वृद्धि एवं पोषण करता है वहीं दूसरी ओर उसे कार्य करने की शक्ति भी प्रदान करता है । अत: भोजन कैसा हो जिससे हमारा समुचित विकास हो सके ? अपने इस शोध पत्र में मैंने संस्कृत ग्रन्थों में उल्लिखित तथ्यों को संकलित कर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि संस्कृत ग्रन्थों में उल्लिखित वे तथ्य आधुनिक दृष्टिकोण से अधिक उचित, व्यापक एवं सर्वांगीण है ।

संस्कृत ग्रन्थों में भोजन की अवधारणा के संबंध में निम्न तत्वों पर विशेष बल दिया है –

1. भोजन की मात्रा एवं भोज्य पदार्थ के साथ-साथ व्यक्ति को अपनी, वात, पित्त या कफ प्रवृत्ति के अनुसार भोजन करना चाहिए ।

2. भोजन का प्रभाव शरीर के साथ-साथ मन पर भी पड़ता है अत: भोजन सात्विक होना चाहिए ।

संस्कृत ग्रंथों की इस परम्परा के विपरीत आधुनिक पोषण वैज्ञानिक भोजन के संबंध में दो दृष्टि से विचार करते हैं । 1- भोजन में किन तत्वों की प्रधानता होनी चाहिए और 2- भोजन की मात्रा कितनी होनी चाहिए । वे भोजन का संबंध केवल शारीरिक पोषण से ही मानते हैं ।

आधुनिक पोषण वैज्ञानिकों के अनुसार भोजन में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, खनिज लवण आदि तत्वों की प्रधानता होनी चाहिए । भोजन की मात्रा के संबंध में 17 वीं शताब्दी में पेरिस में एन्टोनी लेवोसियर (1743-1794) जो (*Father of Nutrition*) कहे जाते हैं, ने मनुष्य के (*Metabolism*) (1) को मापा । कालान्तर में ग्राहम लस्क (1866-1932) ने जर्मनी में कैलोरी मीटर का निर्माण किया । अत: बीसवीं शती से भोजन में पोषक तत्वों की उपयोगिता, उसकी संतुलित मात्रा एवं कैलोरी पर अत्यधिक बल दिया जाने लगा । आजकल यह बल इतना अधिक हो गया है कि भोजन की सात्विकता एवं पौष्टिकता से अधिक महत्वपूर्ण कैलोरी हो गई है । व्यक्ति एक समोसा खाकर सोचता है कि इसमें इतनी कैलोरी हो गई । शेष भोजन की क्या आवश्यकता है ? किन्तु पोषक तत्वों की मात्रा आयु, लिंग, स्थान, क्रिया, शरीर के आकार इत्यादि के अनुसार भिन्न-भिन्न होती है, यह तथ्य पोषण वैज्ञानिक भी मानते हैं । इसके अतिरिक्त इससे संबंधित एक अन्य प्रश्न भी अत्यधिक महत्वपूर्ण है कि कैलोरी उष्मा को मापने की इकाई हैं, वह यह नहीं बताती कि जिस पदार्थ से यह कैलोरी प्राप्त हुई है वह पदार्थ उस व्यक्ति की प्रकृति के अनुरूप अर्थात् उस के स्वास्थ्य के लिये हितकर है या नहीं । निष्कर्षत: पोषण वैज्ञानिक भोजन में दो तत्वों की ही प्रधानता मानते हैं, कैलोरी एवं भोज्य पदार्थ ।

आयुर्वेद में भोजन की मात्रा (कैलोरी) एवं द्रव्य के साथ-साथ भोजन करने वाले व्यक्ति कौन हैं ? अर्थात् उसका अग्नि बल कैसा है इस पर भी विशेष जोर दिया गया है –

मात्राशी स्यात् । आहार मात्रा पुनरग्निबलापेक्षिणी ।
न च नापेक्षते द्रव्यम् । (2)

अत: आहार की मात्रा के निर्धारण हेतु आयुर्वेद ने अग्निबल और द्रव्य (3) दोनों को ही महत्वपूर्ण माना है । अग्निबल और द्रव्य को ध्यान में रखकर भोजन करना उचित है क्योंकि वह भोजन वात पित्त कफ को दूषित न करते हुए पूर्ण आयु को बढ़ाता है । अग्नि को नष्ट नहीं करता है और निरापद पच जाता है । यह अग्नि बल वात पित्त और कफ की प्रधानता के अनुसार स्वस्थ पुरुष में भी भिन्न-भिन्न होता है । अत: वात पित्त और कफ की प्रधानता के अनुसार स्वस्थ पुरुष के लिये भोजन आदि का ग्रहण हितकर होता है । वस्तुत: अन्न से ही जीव उत्पन्न होते हैं एवं उसी अन्न को खाकर वे जीवन धारण करते हैं किन्तु सभी व्यक्तियों के लिये न तो आहार की मात्रा समान हो सकती है और न ही आहार । उदाहरणार्थ: दुग्ध के समान हितकर पदार्थ भी कुछ लोगों के अनुकूल नहीं होता है । यह प्रत्यक्ष देखा जाता है । घृत के सदृश पुष्टिकर पदार्थ भी मंदाग्नि वालों के लिये अहितकर होता है । इस प्रकार स्थूल शरीर में भी भिन्न-भिन्न प्रकृति वालों के लिये भिन्न-भिन्न आहार की व्यवस्था होती है क्योंकि

प्रकृति के व्यक्त में अग्नि अधिक होती है अत: उसे भोजन की मात्रा वात के व्यक्ति की अपेक्षा अधिक चाहिए । (4)

आजकल आधुनिक चिकित्सक भी संभवत: इसी सिद्धान्त को मानकर पित्त प्रधान व्यक्ति को ठंडा दूध पीने की सलाह देते हैं किन्तु वही ठंडा दूध कफ प्रधान व्यक्ति के लिये अहितकर होगा । अत: व्यक्ति की वात, पित्त एवं कफ प्रकृति को अनदेखा करके सिर्फ कैलोरी को आधार मानकर भोजन करना उचित नहीं है ।

आधुनिक चिकित्सा शास्त्र में शारीरिक स्वास्थ्य को ही सर्वोपरि माना गया है और सामान्यतया शारीरिक रोगों पर ही विस्तार से विचार हुआ है ।

शारीरिक स्वास्थ्य संतुलित भोजन से प्राप्त होता है ऐसी उनकी अवधारणा है । वहाँ पर मानसिक रोगों पर जो भी विचार हुआ है वह शरीर को मन से अलग करके ही हुआ है किन्तु आजकल मनोदैहिकता का सिद्धान्त वे भी स्वीकार करने लगे हैं तदनुसार ही विश्व स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य की परिभाषा दी है -

Health is the physical, mental, social and mental wellbeing of man and not merely the absence of disease or infirmity.

इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य भी स्वास्थ्य सामान्य का ही अंग है । स्वास्थ्य की यह परिभाषा संस्कृत के अति प्राचीन ग्रन्थ सुश्रुत संहिता में प्राप्त होती है -

समदोषः समाग्निश्च समधातु मल क्रियः ।
प्रसन्नात्मेन्द्रिय मनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते ॥

सुश्रुत सू० 15:41

अत: शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य को ही स्वास्थ्य माना गया है । स्वस्थ के स्वास्थ्य का रक्षण तथा आतुर के रोग का प्रशमन आयुर्वेद के दो प्रयोजन कहे गये हैं (5) । यहाँ रोग प्रशमन की उपेक्षा स्वास्थ्य रक्षण को अधिक महत्व दिया गया है । शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य का पोषण एवं स्वास्थ्य रक्षण भोजन के द्वारा ही संभव है ।

भारतीय परंपरा आहार का प्रभाव स्थूल शरीर के पोषण तक ही सीमित नहीं मानती है बल्कि उसके अनुसार स्थूल शरीर के पोषण के अतिरिक्त वह सूक्ष्म शरीर का भी सूक्ष्म रूप से आहार बनता है । छान्दोग्य उपनिषद (6) में वर्णित है कि जो अन्न खाया जाता है वह तीन रूप में परिणत होता है । उसका जो सबसे स्थूल भाग है वह पुरीष (मल) बनता है । जो मध्यम भाग है वह मांस बनता है (जो स्थूल शरीर का पोषक है) और जो सबसे सूक्ष्म भाग है वह मन बनता है (मन को शक्ति प्रदान करता है) । इसी प्रकार जो जल पिया जाता है उसकी भी शरीर के भीतर तीन अवस्थाएँ होती हैं । स्थूल भाग से मूत्र बनता है, मध्यम भाग से लोहित बनता है और सूक्ष्मतम भाग से प्राण बनता है । तेज पदार्थ (आग्नेय प्रधान पदार्थ) के भी तीन रूप होते हैं । स्थूल से अस्थि का निर्माण होता है, मध्यम भाग से मज्जा और सबसे सूक्ष्म तेज पदार्थ का परिणाम वाक शक्ति का पोषक बनता है । इसी कारण मन अन्नमय हैं, प्राण अपोमय है और वाक् तेजोमयी है ।

वृहदारण्यक उपनिषद में आत्मा ही मन प्राण वाङ्मय कही गयी है -

स वा एष आत्मा वाङ्मयः प्राणमयो मनोमयः ।

इस प्रकार यह त्रिविध आहार अत्यन्त सूक्ष्म रूप से आत्मा का परिपोष करता है । छान्दोग्य उपनिषद में आचार्य ने इसका प्रयोग कराके भी दिखाया । उन्होंने छात्र को आदेश दिया कि पन्द्रह दिन तक भोजन न करो, इच्छानुसार जल पियो । पानी-पीते रहने से प्राण का विच्छेद न होगा क्योंकि प्राण अपोमय है । छात्र बिना भोजन के पन्द्रह दिन व्यतीत करके आचार्य के समीप पहुँचा । आचार्य ने कहा-ऋक यजुः और साम बोलो । छात्र ने उत्तर दिया मुझे उनका स्फुरण नहीं हो रहा है अर्थात् वे स्मरण पथ में नहीं आ रहे हैं । आचार्य ने कहा अच्छा अब भोजन करो । भोजनोपरान्त वह आचार्य के पास आया तब उन्होंने जो कुछ पूछा वह सब उसे याद आ गया । इससे स्पष्ट होता है कि मन अन्नमय है, प्राण जलमय और वाक् तेजोमयी ।

इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् के सप्तम अध्याय के सोलहवें खण्ड में वर्णित है कि आहार शुद्धि होने पर अन्तःकरण की शुद्धि होती है और क्रमशः अविद्या की निवृत्ति होती है (7) । वस्तुतः आहार शुद्धि से शरीर स्वस्थ होगा जिससे मन भी सत्व युक्त होगा फलस्वरूप अविद्या

का विनाश होगा ।

भोजन का प्रभाव मन पर किस प्रकार पड़ता है आयुर्वेद में यह विस्तार से बतलाया गया है । भोज्य पदार्थ में षड् रस होते हैं तथा जिस रस की भोजन में अधिकता होती है वही रस भोजन का होता है । इन रसों का शरीर तथा मन पर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है । किसी भी रस या स्वाद का भोजन यदि सही अनुपात में लिया जाता है तब वह शरीर एवं मन पर अच्छा प्रभाव डालता है किन्तु अनुचित अनुपात में वह शरीर पर दुष्प्रभाव डालता है । चरक संहिता के सूत्रस्थान अध्याय 26 में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है –

षडेव रसाः इत्युवाच भगवानात्रेयः पुनर्वसुः । मधुराम्ललवण कटुतिक्तकषायाः (16)

1. तत्र मधुरो रसः शरीरसात्म्याद्रसरूधिरमांसमेदोस्थिमज्जौजः शुक्राभिवर्धन आयुष्यः षडिन्द्रियप्रसादनो बलवर्णकरः पित्तविषमारूतघ्न तृष्णा........ स एवं गुणोऽप्येक एव अत्यर्थमुपयुज्यमानः स्थौल्यं मार्दव आलस्य अतिस्वप्न.. ..संज्ञाप्रणाश....इत्येवं प्रभृतीन कफजान् जनयति । //60//
2. अम्लो रसो भक्तं रोचयति अग्निं दीपयति, देहं वृंहयति ऊर्जयति, मनोबोधयति, इन्द्रियाणि दृढीकरोति, बलं वर्धयति. ..स एवं गुणो पि एक एवात्यर्थ उपयुज्यमानः दंतान् हर्षयति तर्षयतिकफं बिलापयति......परिदहति कण्ठमुरो हृदयंचा । //61//
3. लवणो रसः पाचनः क्लेदनो........वातहरः........कफं विष्यंदयति, सर्वशरीरावयवान् मृदु करोति......स एवं गुणोपि एक एवात्यर्थ उपयुज्यमानः पित्तं कोपयति, ...मोहयति मूर्छयति, ...इन्द्रियाण्युपरूणद्धि । //62//
4. कटुको रसो वक्त्रं शोधयति, अग्निं दीपयति, भुक्तं शोषयति स्फुटीकरोति इन्द्रियाणि......मासं विलिखति शोणितसंधात भिनत्ति..... स एव गुणो प्येकं एवात्यर्थमुपभुज्यमानो विपाक प्रभावात् पुंस्त्वमुपहन्ति रसवीर्यप्रभावान्मोहयति.......मूर्छयति.....भ्रमयति....मारूतजान् विकारानुपजनयति । //63//
5. तिक्तो रसः स्वयंमरोचिष्णुः अरोचकघ्नः ..... मूर्छादाहकण्डूकुष्ठ तृष्णाप्रशमनः....... स एव गुणो प्येकं एवात्यर्थमुपयुज्यमानो रौक्ष्यात् खरविशदस्वाभावाच्च रसरूधिरमांसमेदो स्थि......... मज्जाशुक्राणि उच्चोषयति .... मोहयति भ्रमयति.... अपरांश्च वातविकारानुपजनयति । //64//
6. कषायो रसः संशयनः..... श्लेष्मपित्तरक्तप्रशमनः..... स एवंगुणोप्येक वात्यर्थमुपयुज्यमान आस्यं पीडयति....वातविकारानुपजनयति । //65// एवेते षड्रसाः पृथक्त्वेन एकत्वेन वा मात्रशः सम्यगुपयुज्यमान उपकाराकरा भवन्त्यध्यात्मलोकस्य । अपकारकरा पुनरतो न्यथोपयुज्यमानाः तान् विद्वानुपकारार्थमेव मात्रशः सम्युगुपयोजयेत् । //66//

चरक सं० विमान स्थान अ-1

भगवदगीता (8) और कल्किपुराण (9) में भोजन के सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन प्रकार वर्णित है जिनके कारण व्यक्ति के मन की प्रवृत्ति सात्विक, राजसिक एवं तामसिक हो जाती है । सुश्रुत एवं चरक संहिता में सत्वप्रकृति वाला व्यक्ति उत्तम मनोबल वाला, राजसी प्रकृति का व्यक्ति मध्यम मनोबल वाला तथा तामसी प्रकृति वाला व्यक्ति अल्प मनोबल वाला होता है । इसी मनोबल तथा सत्व की प्रकृति पर ही मानस स्वास्थ्य निर्भर होता है जिसका पोषण भोजन द्वारा होता है । यह तथ्य वैज्ञानिक कसौटी पर भी खरा उतरता है क्योंकि यह सिद्ध है कि अधिक कटु, तीक्ष्ण, अम्ल आदि रस पित्त को कुपित करते हैं जिसके फलस्वरूप व्यक्ति शीघ्र क्रोध करने वाला चंचल आदि हो जाता है । वास्तव में यही राजसी प्रवृत्ति है । संभवतः यही कारण है कि ध्यान करने वाले व्यक्ति के लिये अम्ल, रूक्ष और तीक्ष्ण भोजन का निषेध किया गया है (10) जबकि सात्विक प्रवृत्ति वालों के लिये अथवा ध्यान आदि में मन को एकाग्र करने वाले के लिये मधुर भोजन का विधान है क्योंकि वह व्यक्ति के पित्त का नाश करता है (11)

भोजन के द्वारा शरीर एवं मन का पोषण होता है। शरीर और मन जीवित प्राणी के मुख्य परिपूरक घटक हैं। यही दोनों स्वास्थ्य अथवा व्याधि के स्थान हैं । अतः हमें सात्विक भोजन के लिंये प्रयत्नशील होना चाहिए ।

संदर्भ सूची --

1. भोजन के पोषक तत्वों को शरीर के योग्य बनाने के लिये आक्सीजन की अत्यधिक आवश्यकता होती है एवं यह प्रक्रिया (Metabolism) कहलाती है ।
2. स्वस्थवृत्त समुच्चय पृ-88 डॉ अखिलेश्वर दत्त मिश्र ।
3. पुनर्नाग्निसन्धु क्षणस्वभावान्यसामान्यदतश्चातिमात्रं दोषवन्ति सौहित्योपयुक्तान्यन्यत्र व्यायामाग्निबलात, सैषा भवत्यग्निबलापेक्षिणी मात्रा । वही पृष्ठ 89

   दीप्ताग्नय: खरहारा: कर्मनित्या महोदरा: ।
   ये नरा: प्रति तांश्चिन्त्यं नावश्यं गुरू लाघवम ॥

   वही पृष्ठ ०२
4. मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषम: समश्चेति चतुर्विध: ।
   कफपित्तानिलाधिक्यात् तत्साम्याज्जाठरोऽनल: ।।
   विषमो वातजान रोगान्तीक्ष्ण: पित्तनिमित्तकान् ।
   करोत्यग्निस्तथा मन्दो विकारान्कफसंभवान् ॥
   समा समाग्नेरशिता मात्रा सम्यग्विपच्यते ।
   स्वल्पापि नैव मन्दाग्नेर्विषमाग्नेस्तु देहिन: ॥
   कदाचित्पच्यते सम्यक्कदाचिच्च न पच्यते ।
   तीष्णग्निरीति तं विद्यात्समाग्नि: श्रेष्ठ उच्यते ।

   मा०नि० वैद्यकग्रन्थे
5. प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्यस्वास्थ्य रक्षणमातुरस्य विकारं प्रशमनं च । च.सू. 30 26
6. छान्दोग्य उपनिषद् 6/5/1 2,3,4
7. आहारशुद्धौ सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृति: ।
   स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्ष: ॥

   छान्दोग्य -7-26-2
8. आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रिय: ।
   यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदभियं च श्रृणु ॥
   आयुस्सत्वबलारोग्यसुख प्रीतिविवर्धनाँ ।
   रस्या: स्निग्धा: स्थिरा हयद्या आहारा: सात्विकप्रिया: ॥
   कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहित: ।
   आहारा राजसस्थेष्या दु:ख्यशोकामय प्रदा: ॥
   यतयामं गतरसं पूत्रिपर्युवितं च यत् ।
   उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥

   (भगवद्गीता अध्याय -17/7-10)
9. उच्छिष्टमवशिष्टं वां पथ्यं पूतमभीक्षितय ।
   भक्तानां भोजनं विषणोर्नवधं सात्विकम् मतम् ॥
   इन्द्रियप्रीतिजननं शुक्रशोणितं वर्धनम् ।
   भोजनं राजसं शुद्धमायुरारोग्यवर्धनम् ॥
   अत: परं तामसानां कटवम्लोष्णाविदाहिकम
   पूतिपर्युषितं ज्ञेयं भोजनं तामसप्रियम् ॥

   कल्कि पुराण अ-25/44
10. अम्लं रूक्षं तथा तीक्ष्णं लवणं सार्षपं कटु
    वृहदयोगसोपान उपोद्धात प्रकरण ।
11. शुद्धं सुमधुरं स्निग्धमुदरार्थविवर्जितम् ।
    भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदु: ॥

    वृहद्योग सोपान

बैद्यनाथ
अश्वगंधारिष्ट
मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि आदि में लाभकारी

पोटाशियम के चयापचय जन्य विकार एवं उनका आयुर्वेदीय प्रतिकार

*डॉ. अनूप कुमार इन्दोरिया
**प्रोफेसर अजय कुमार शर्मा

आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम वैज्ञानिक चिकित्सा पद्धति है। वर्तमान में पायी जाने वाली अनेक आत्ययिक रोगावस्थायें आयुर्वेदीय ग्रन्थों में वर्णित नहीं हैं किन्तु उन व्याधियों के आधुनिक साहित्यिक विवेचन को समझकर आयुर्वेदिक चिकित्सा व्यवस्था करना सम्भव है । पोटाशियम के चयापचय जन्य विकार कोई स्वतन्त्र व्याधि न होकर अनेक व्याधियों में उत्पन्न आत्ययिक रोगावस्था या उपद्रव है ।

शरीर में लगभग 130 ग्राम पोटाशियम रहता है। पोटाशियम की कुल मात्रा का 95% भाग शरीर के ऊत्तकों में समाहित रहता है तथा शेष 5% भाग रक्त अथवा अन्य द्रवों के साथ शरीर में संवहित या परिसंचरित होता रहता है। ऊतकों में समाहित पोटाशियम का भी अधिकांश भाग 60-70% मांसपेशियों में रहता है । मांसपेशियों एवं शरीर के अन्य ऊत्तकों में पोटाशियम की सान्द्रता 160 mEq/L होती है जबकि सीरम पोटाशियम का सामान्य स्तर 3.5-5 mEq/L होता है । रक्त एवं उत्तकों के बीच पोटाशियम के स्तर का बड़ा अन्तर सोडियम पोटाशियम पम्प ($Na^+ K^+$ Pump) एवं सोडियम पोटाशियम ए टी पेज एन्जाइम ($Na^+ K^+$ ATpase Enzyme) द्वारा नियन्त्रित होता है। प्रत्येक व्यक्ति को पोटाशियम की प्रतिदिन आवश्यकता 2-3 ग्राम होती है। इसमें से 50-100 mEq/L पोटाशियम का प्रतिदिन अवशोषण होता है। अवशोषित मात्रा के बराबर मात्रा का उत्सर्जन 90% मूत्रमार्ग के माध्यम से एवं शेष 10% का स्वेद एवं मलमार्ग से होता है। इससे शरीर में पोटाशियम का सामान्य स्तर बना रहता है। मुखमार्ग से पोटाशियम के अधिक सेवन की परिस्थिति में भी एक स्वस्थ व्यक्ति में मूत्र द्वारा अधिक पोटाशियम का उत्सर्जन होकर पोटाशियम का सामान्य स्तर बना रहता है। मूत्राघात या अल्पमूत्रता की स्थिति में मलमार्ग से पोटाशियम के उत्सर्जन का प्रतिशत बढ़ जाता है । आघात के कारण शरीरस्थ प्रोटीन अपचित होकर ऊत्तकों से रक्त में पोटाशियम के स्थानान्तरण को बढ़ा देता है । ऐसी परिस्थिति में बाहर से पोटाशियम के बिना अतिसेवन के भी रक्तगत पोटाशियम का स्तर बढ़ जाता है । एल्फा एंड्रेनर्जिक (andrenergic) उत्तेजन से रक्तगत पोटाशियम के स्तर में वृद्धि एवं बीटा एंड्रेनर्जिक (andrenergic) उत्तेजन से ऊत्तकीय सान्द्रता में वृद्धि होती है। कार्टीसोन (Cortisone)ए एल्डेस्टेरोन (Aldesterone) मूत्रल द्रव्यों एवं एसीटीएच (ACTH) की अधिकता से पोटाशियम के उत्सर्जन में वृद्धि होती है।

पोटाशियम की अल्पता (हाइपोकेलिमिया - Hypokalaemia)

निदान - अवस्थाएं जिनमें पोटाशियम की कमी परिलक्षित होती है -

(i) पोटाशियम का अल्प मात्रा में ग्रहण :

भूखहड़ताल, शल्यक्रिया के बाद, आन्त्रों का छोटा हो जाना (एनास्मोसिस) (Anasmosis of intestines) दीर्घकालिक पोटाशियम रहित अन्तःसिराधान.

(ii) अतिउत्सर्जन :

मूत्रमार्गीय उत्सर्जन : अतिमूत्रता या मूत्रल औषधियों का अतिप्रयोग, मिनरलोकोर्टिकोइड्स (Mineralocorticoides) की अधिकता, एल्डेस्टेरोन (Aldesterone) की अधिकता, चयापचय क्षारीयता, मैग्निशियम की कमी, कशिंग सिन्ड्रोम (Cushing Syndrome)

पाचनसंस्थान या मलमार्गीय उत्सर्जन : छर्दि, अतिसार, क्षतोद्र (आन्त्रगत भगन्दर), अल्सरेटिव कोलाइटिस (Ulcerative colitis) कफस्रावक अर्बुद, विलियस अर्बुद (Villious Tumor), अलसक (पैरालाइटिक इलियस- Paralytic ileus)

(iii) ऊत्तकीय स्थानान्तरण वृद्धि :

इन्सुलिन की अधिकता, ग्लूकेगॉन की अल्पता, क्षारीयता (एल्केलोसिस Alkalosis), बीटा एड्रेनर्जिक क्रियाकलापों में वृद्धि (तनाव, कर्डिअक इश्चिमिया (Cardiac Ischemia), डिलिरियम ट्रेमेन्स (Delirium

---

* पी.एच.डी. स्कॉलर, पी.जी. कायचिकित्सा विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, पी.जी. कायचिकित्सा विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

Tremens)

लक्षण : निद्रालुता या निष्क्रियता, सिर का एक ओर लटक जाना, आँखों का धीरे-धीरे खुलना, वाणी का लड़खड़ाना, रुकरुककर बोलना, चिड़चिड़ापन, आक्षेप, थकान, प्यास की अधिकता, अतिमूत्रता, आन्त्र गति में कमी, पेट फूलना, अफारा, विबन्ध, मांसपेशियों में शिथिलता, रक्तचाप या नाड़ीगति में कमी, चेहरा लाल तमतमाया हुआ, त्वचा उष्ण, शुष्क एवं सिराएं रक्त से पूर्ण मिलती हैं ।

प्रयोगशालीय परीक्षण :

i. सीरम इलेक्ट्रोलाइटस् (Serum Electrolytes) - सीरम इलेक्ट्रोलाइटस् का एक घटक सीरम पोटेशियम है जिसका सामान्य स्तर 3.5 - 5 mEq/L होता है । पोटाशियम का 3mEq/L से कम होना पोटेशियम अल्पता का द्योतक है ।

ii. ई.सी.जी. (E.C.G.) (विद्युत हल्लेख) - रक्त में पोटेशियम के स्तर के अनुरूप ही ई.सी.जी. में परिवर्तन प्रकट होते हैं जो निम्न प्रकार है-

< 3.0 mEq/L - टी तरंग का छोटा होना

< 2.5 mEq/L - टी तरंग का समतल होना एवं यू तरंग का वर्णित क्रम में प्रकट होना

< 2.0 mEq/L - समतल टी तरंग, बड़ी यू तरंग एवं एस.टी सेगमेन्ट का डिप्रेशन (Depression of ST Segment)

इसके अतिरिक्त और गम्भीर स्थिति में अलिन्द व निलयों का समय पूर्व संकोच मिल सकता है। क्यू-टी अन्तराल (QT interval) बढ़ा हुआ मिल सकता है।

iii. रक्त की अम्ल क्षार परीक्षा, मूत्रगत पोटेशियम का मापन आदि परीक्षण भी रोगावस्था विभेदक, निदान आदि में सहायक होते हैं ।

iv. रक्त में रेनिन, एल्डेस्टेरान एवं मैग्निशियम का स्तर मापन भी विभेदक निदान में सहायक हैं ।

v. ट्रान्स ट्यूबुलर पोटेशियम कन्सन्ट्रेशन ग्रेडिएण्ट टेस्ट (टी.टी.के.जी) (Transtubular potassium concentration gradient Test) पोटेशियम के असन्तुलन के विभेदक निदान को बताता है ।

$$\text{टी.टी.के.जी.} = \frac{(\text{[के}^{+}\text{] X प्लाज्मा ओस्मोलिटी})}{(\text{[के}^{+}\text{] X प्लाज्मा ओस्मोलिटी})}$$

टी.टी.के.जी. - का 4 से अधिक होना पोटेशियम के वृक्कीय उत्सर्जन की अधिकता को बताता है ।

चिकित्सा सिद्धान्त :-

i. पोटेशियम की कमी स्वतन्त्र व्याधि न होकर अनेक व्याधियों में उत्पन्न आत्ययिक अवस्था है । इसलिए मूलव्याधि का उपचार निरन्तर करना चाहिए। "निदान परिवर्जन एवं निदानार्थकर हेतु का परिवर्जन"

ii. "सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणं" सिद्धान्त का अनुपालन करते हुए आहार में पोटेशियम का पर्याप्त मात्रा में ग्रहण। 20–10CmEq प्रतिदिन ।

iii. "पोटेशियम अल्पता में स्रोतोदुष्टिप्रकार "अतिप्रवृत्ति है । इसलिए संग्राहक या स्तम्भक चिकित्सा करनी चाहिए । यदि मूत्रल चिकित्सा आवश्यक भी है तो पोटाशियम रोधक मूत्रल चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए।

iv. पोटाशियम अल्पता के साथ प्रायः मैग्निशियम, कैल्शियम, सोडियम एवं जल की अल्पता भी मिलती है इसलिए इनका भी चिकित्सा प्रयोग करना चाहिए।

चिकित्सा :

i. पोटाशियम घटक वाली औषधियां -

चूर्ण - मात्रा - 2-5 ग्राम

सुखोष्ण जल या नारिकेल जल से

1) यवानी खाण्डव चूर्ण,

2) गोमूत्र क्षार चूर्ण,

3) स्वल्पत्रिफला प्रयोग

भस्म/क्षार/सत्व- मात्रा - 250 - 500 मि. ग्रा.

अनुपान - शहद से

1) शुभ्राभस्म,

2) अभ्रक भस्म

3) अरिष्टक भस्म

4) गिलोय सत्व

5) सर्जिक्षार

लवण - मात्रा - 500 मि.ग्रा. -1 ग्राम

अनुपान - सुखोष्ण जल

1) नारिकेल लवण,

2) अर्कलवण

ii. पोटाशियम रोधक मूत्रल चिकित्सा- मात्रा - 20-50 मि.ली.

1) त्रिकण्टकादि क्वाथ,

2) चन्दनादि अर्क

3) अर्कमकोय,

4) अर्क मंजिष्ट

iii. **आहार :** मौसमी, सन्तरा, फालसा, किन्नु, आदि फलों का रस, नारियल पानी, निम्बूपानक, आमपानक, इमलीपानक आदि का प्रयोग

आदर्श व्यवस्था पत्र :

प्रात: दोपहर सायं

i. गोमूत्रक्षार चूर्ण 1 ग्राम,

शुभ्राभस्म 500 मि.ग्रा.

अभ्रक भस्म 125 मि.ग्रा.

1X3 मौसमी के रस या नारियल पानी के साथ

ii. भोजनोत्तर

नारिकेल लवण 1 ग्राम निम्बूपानक के साथ

1 X 2 मात्रा

पोटाशियम आधिक्य (हायपर केलिमिया Hyperkalaemia)

निदान या अवस्थाएं : जिनमें पोटाशियम का आधिक्य परिलक्षित होता है-

i. अतिसेवन- मुखमार्ग अथवा अन्त:सिरामार्ग द्वारा अधिक पोटेशियम का सेवन।

ii. अपर्याप्त उत्सर्जन- पोटेशियम उत्सर्जन का मुख्य मार्ग मूत्र है इसलिए किसी भी प्रकार का मूत्राघात हाइपरकेलिमिया कर सकता है। तीव्र वृक्कनिपात (Acute renal failure), दीर्घकालिक वृक्कीय निपात (Chronic renal failure) रक्त की मात्रा में कमी (हाइपोवोल्यूमिया), एडिसन्स डीजीज (Addisons disease) एल्डेस्टेरान की अल्पता (Hypoaldesteronism) दर्दनिवारक औषधियों का अतिप्रयोग (Analgesic Nephropathy) आदि।

iii. ऊत्तकों में संग्रहित पोटेशियम का रक्त में स्थानान्तरण - आघात, एसिडोसिस (Acidosis) परासरणीय दबाव का आधिक्य (हाइपर ओस्मोलिटी- Hyperosmolity) एइन्सूलिन की कमी (Insulin deficiency) बीटा ब्लोकर (β - blocker) औषधियों का प्रयोग रक्त में पोटेशियम के स्थानान्तरण को बढ़ा देते हैं ।

iv. **स्यूडोहाइपर केलिमिया (Pseudohyperkalaemia)** : रक्तकणों का अपघटन (हीमोलाइसिस- Haemolysis) थ्रोम्बोसाइटोसिस (Thrombocytosis) आदि।

लक्षण :

मांसपेशियों एवं नाड़ीतन्त्र में शैथिल्य एवं कमजोरी, स्नायुदौर्बल्य, मांसपेशियों की प्रत्यावर्तन क्रिया का ह्रास, अधर प्रदेश में ऊपर की ओर बढ़ता हुआ लकवा (Ascending paralysis) श्वासप्रश्वास क्रिया का बन्द होना (Respiratory failure) हृत्कार्यावरोध (Heart failure), हृदय गति का कम होना (Bradycardia), निलयिक कम्पन (Ventricular fibrilation) आदि स्थितियां पोटेशियम के आधिक्य से होती है । रेस्पाईरेट्री फैल्योर एवं वेन्ट्रीकूलर फिब्रीलेशन अत्यन्त आत्ययिक अवस्था है जिसमें चिकित्सा के लिए समय मिनिटों में रह जाता है । इसलिए पूर्वकालिक स्थितियों में ही शीघ्रतापूर्वक चिकित्सा करनी चाहिए ।

प्रयोगशालीय परीक्षण :

i. **सीरम इलेक्ट्रोलाइट्स (Serum Elctrolytes):** सीरम पोटाशियम (Serum potassium) के स्तर का मापन। पोटाशियम के स्तर का 5 mEq/Lls अधिक होना। 6 mEq/Lrd प्रकट होने वाले लक्षण अल्प घातक होते हैं । 6.5 से ऊपर अत्यन्त घातक (चेतावनी पूर्ण) लक्षणों की उत्पत्ति होती है ।

ii. **ई.सी.जी (Elctrocardiogram)**- पोटाशियम के स्तर के अनुरूप ही ई.सी.जी. में परिवर्तन प्रकट होते

हैं।

6.5mEq/L	टी तरंग का बड़ा होना।
7.5mEq/L	पी आर अन्तराल में वृद्धि, टी तरंग का बडा एवं नुकीला होना, एस.टी. सेगमेन्ट का नीचा होना।
8.0mEg/L	क्यू.आर.एस. समूह का चौड़ा होना, टी तरंग का नुकीला एवं बड़ा होना, पी वेव का लुप्त होना।
8.5mEq/L	हृदयावरोध (Heart block) होने सम्बन्धी परिवर्तन, क्यू.आर.एस. समूह एवं टी तरंग का आपस में मिल जाना, अन्तत: वेन्द्रीकूलर फिब्रीलेशन होकर मृत्यु को प्राप्त होना।

आधुनिक चिकित्सा सिद्धान्त :

आत्ययिक अवस्था अत्यन्त घातक होती है। चिकित्सा हेतु समय मिनटों में होता है। इसलिए रोगी के जीवन को बचाना मुख्य कार्य है । अत: निम्नांकित औषधियों के प्रयोग से जीवन रक्षा की जा सकती है।

i. इन्जे. कैल्शियम ग्लूकोनेट 10%, 10-30 मिली अत्यन्त धीमी गति से अन्त: सिरा द्वारा प्रयोग।

ii. 20% ग्लूकोज 300-500 मि.ली अन्त: सिरा द्वारा प्रयोग । साथ ही इन्सुलिन 0.3 यूनिट प्रतिग्राम ग्लूकोज।

iii. इन्जे. सोडाबाई कार्ब 1.4% 1mEq/L प्रतिकिलोग्राम के अनुसार अन्त: सिरा प्रयोग/ परन्तु सोडियम की अधिकता में इसका प्रयोग नहीं करना चाहिए।

iv. सोडियम पोलीस्टेरेन सल्फोनेट (Sodium Polysterene Sulphonate) का मुख मार्ग एवं एनिमा द्वारा गुदामार्ग से प्रयोग।

v. श्वास कष्ट निवारण हेतु नेबुलाइजर (Nebulizer) द्वारा श्वसनिका विस्फारक औषधियां एवं आक्सीजन प्रयोग।

vi. अन्त:सिरा जलाधान के साथ मूत्रल औषधि (Frusemide 20.100 मि.ग्रा.)

चिकित्सा सिद्धान्त :- हाइपरकैलिमिया की अल्पघातक अवस्था को आयुर्वेदिक औषधियों के प्रयोग से भी नियन्त्रित किया जाता सकता है :-

i. मूत्रल चिकित्सा

ii. विरचेन एवं बस्तिप्रयोग (ह्रास हेतुर्विशेषश्च)

iii. कैल्शियम प्रयोग

iv. क्षारीय औषधियां

v. श्वासहर औषधियां

vi. हृदय को बल देने वाली औषधियां

vii. मधुर एवं तिक्तद्रव्यों का एक साथ प्रयोग

चिकित्सा :

एकल औषधियां : पुनर्नवा, गोखरू, वरूण, सुरंजान, चन्दन, मंजिष्ठा, पाषाण भेद, शिलाजतु, भूम्यामलकी आदि वनस्पतियों का विभिन्न स्वरूपों में प्रयोग किया जा सकता है ।

चूर्ण मात्रा- 2-5 ग्राम
अनुपान-सुखोष्ण जल से
1) मूत्रकर चूर्ण, 2) न्योग्रोधादि चूर्ण,
3) गोक्षुरादि चूर्ण, 4) खर्जुरादि चूर्ण

वटी मात्रा - 2-4 गोली
अनुपान - सुखोष्ण जल से
1) वृक्कशूलान्तक वटी, 2) गोक्षुरादि गुग्गुलु,
3) पुनर्नवा गुग्गुलु 4) चन्द्रप्रभावटी

रस/भस्म/पिष्टी - मात्रा - 125-500 मि.ग्रा.
अनुपान-शहद से
1) चन्द्रकलारस, 2) कामदुधा रस,
3) त्रिविक्रमरस, 4) हजरूलयहूद भस्म,
5) प्रवालपिष्टी, 6) मुक्तापिष्टी

अर्क मात्रा - 20 -50 मि.ली.
1) पुनर्नवा अर्क, 2) अर्कमकोय,
3) अर्कमंजिष्ठा, 4) वरूणादि अर्क

क्वाथ मात्रा - 20-50 मि.ली.
1) तृणपंचमूल क्वाथ 2) वीरतर्वादि क्वाथ,
3) त्रिकण्टकादि क्वाथ 4) मूत्रविरेचनीय कषाय

आसव अरिष्ट मात्रा- 10.30 मि.ली.
अनुपान-सम भाग जल मिलाकर

1) पुनर्नवासव 2) देवदार्व्यारिष्ट
3) सारिवाद्यासव

क्षार मात्रा- 250 -500 मि. ग्रा.
1) पुनर्नवाक्षार 2) कदलीक्षार,
3) मूलकरक्षार 4) यवक्षार,
5) कोकिलाक्षक्षार

विरेचन एवं बस्तियां - मूत्राघात या अमूत्रता की स्थिति में पोटाशियम उत्सर्जन हेतु विरेचन प्रयोग एवं बस्ति प्रयोग । उपरोक्त वर्णित क्वाथों से निर्मित निरूह बस्ति एवं विरेचनार्थ अभयादि मोदक या आमविध्वंसनी वटी का प्रयोग ।

श्वासकष्ट निवारणार्थ - पुष्करमूल, सोम, रूदन्ति कर्कटश्रृंगी आदि का प्रयोग ।

आदर्श चिकित्सा व्यवस्था पत्र -

प्रातः सायं

1. मूत्रकर चूर्ण 2 ग्राम
हजरूलयहूद भस्म 500 मि. ग्रा.
त्रिविकम रस 250 मि. ग्रा.
कदली क्षार 250 मि. ग्रा.
1 X 2 मात्रा मूत्र विरेचनीय महाकषाय 20 मि.ली. के साथ
2. वृक्कशूलान्तक वटी 2 गोली X 2 मात्रा अर्कपुनर्नवा, मंजिष्ठा, मकोय 50 मि.ली. के साथ
3. चन्द्रभावटी 2 गोली X 3 जल पानी से

सन्दर्भ ग्रन्थ-

i. Siddharth N. Shah & M. Paul Anand - API Text book of Medicine 7th edition, The association of Physician of India, 2003.
ii. Kurt J., Isselbacher et al., Harrison's Principles of Internal medicine, 13th edition, 1997.
iii. ASPIF, Golwalla & Sharukh A Golwalla, Medicine for Students, 19th Edition, 2000
iv. आयुर्वेदीय रसशास्त्र: सिद्धिनन्दन मिश्र: चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी-2002
v. भैषज्य रत्नावली: डॉ अम्बिकादत्त शास्त्रीय: विद्योतिनी हिन्दी व्याख्या, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2002

बैद्यनाथ स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना, आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन, भूख न लगना तथा ऋतु धर्म के समय होने वाली तकलीफ व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

अम्लपित्त: कारण, लक्षण एवं चिकित्सा

*डा०श्रीमती कुसुम गुप्ता
**डा० गोविन्द गुप्ता (एम.डी.)

आधुनिक खानपान एवं रहन-सहन के कारणों से वर्तमान में अधिकांश व्यक्ति अम्लपित्त से ग्रसित दिखाई देते हैं। भोजन का समय पर पाचन न होना एवं छाती में जलन के साथ खट्टी डकारों का आना इस रोग का प्रमुख लक्षण है।

आयुर्वेदीय ग्रन्थों में चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में इस रोग का स्वतंत्र वर्णन नहीं मिलता लेकिन माधव निदान, काश्यप संहिता में इसका स्वतंत्र एवं विस्तार से वर्णन मिलता है।

"अम्लं विदग्धं च तत् पित्तं अम्लपित्तम् ।

अर्थात् पित्त के बढ़ जाने से जब आहार विदग्ध होकर अम्लीय हो जाता है, तब वह रोग अम्लपित्त कहलाता है।

कारण :- आहार सम्बन्धी कारण :- अम्ल, कटु, पित्त प्रकोपक अन्नपान, विदाही, मिष्टान्न सेवन, इक्षु विकार सेवन के अधिक मात्रा में सेवन, दही, अधिक मिर्च-मसाला युक्त भोजन, फास्ट फूड, कोल्ड ड्रिंक्स, असमय भोजन करने, अत्यधिक धूम्रपान, मद्यपान, तम्बाकू-गुटखा का सेवन करने से पित्त प्रकुपित होकर अम्लपित्त का कारण बनता है।

विहारज कारण :- खाने के बाद स्नान करना, वेग व धारण, असमय भोजन करना।

मानसिक कारण :- मानसिक तनाव, चिन्ता, शोक, भय, क्रोध चिड़चिड़ा स्वभाव पित्त को शरीर में बढ़ा देते हैं जो अम्लपित्त को उत्पन्न करता है।

सम्प्राप्ति :- अम्लपित्त जाठराग्नि की मन्दता से उत्पन्न होने वाला रोग है। अहित आहार-विहार के सेवन से जब जठराग्नि मन्द हो जाती है तब पित्त को बढ़ाने वाला आहार का सेवन किया जाता है तो इस आहार का समुचित परिपाक नहीं हो पाता और यह अन्न विदग्ध हो जाता है। विदग्ध अन्न अम्लीय भाव या शुक्त भाव को प्राप्त होता है। अम्लत्व को प्राप्त हुआ यह अन्न रस आमाशय में स्थित होकर पित्त को और अधिक प्रकुपित कर देता है। इसी को अम्लपित्त कहते हैं। आधुनिक विज्ञान के मतानुसार इसको हाइपरएसिडिटी कहते हैं।

रोग के लक्षण :- भोजन का न पचना, कड़वी व खट्टी डकार आना, मुंह में खट्टा पानी आना, जी मिचलाना, प्रातःकाल उल्टी होना, कंठ या हृदय प्रदेश में जलन व भारीपन महसूस होना, छाती में जलन व दर्द होना, शिरःशूल, शरीर में भारीपन, मल पतला आना, पेट में गुड़गुड़ाहट, बेचैनी, किसी भी काम में मन न लगना, चिड़चिड़ापन, पेट में अफारा, अरुचि, अकारण थकावट आदि।

साध्यासाध्यता: - नवीन अम्लपित्त, उचित चिकित्सा व पथ्य सेवन से ठीक हो जाता है लेकिन 2 से 5 वर्ष पुराना एवं उपद्रव युक्त अम्लपित्त कष्टसाध्य व याप्य होता है।

पथ्य :- इस रोग में पुराना गेहूँ, जौ, मूंग की दाल, चावल, दूध, शक्कर, मधु, घी, मिश्री, इलायची, आंवला, पेठा, केला, अनार, नींबू, पालक, बथुआ, गरम करके ठण्डा किया हुआ पानी, गाजर, अंगूर, काली मिर्च, जीरा, धनिया, सेंधानमक, सोंठ, अदरक, गन्ना का रस आदि अहितकर है।

अपथ्य:- उड़द की दाल, दही, छाछ, आलू, मिर्च, आम की खटाई, मिठाई, खीर, हलुवा, चाट-पकौड़े, दाल, धूम्रपान, गरिष्ठ भोजन, रात्रि जागरण, दिवा स्वप्न, अण्डे, मांस, प्याज, लहसुन, कोल्ड ड्रिंक्स, तम्बाकू आदि।

चिकित्सा :- 1) अम्लपित्त का मूल उत्पत्ति स्थान, कफ एवं पित्त का आश्रय स्थान आमाशय है। अतः स्थान की शुद्धता आवश्यक है। इसलिए अम्लपित्त के रोगी के रोग की उग्रता के अनुसार 2 या 3 दिन के अंतराल में प्रातःकाल "आमाशय प्रक्षालन" अवश्य करना चाहिए। वमन प्रक्रिया के द्वारा अम्लीय अन्न बाहर निकल जाते हैं जिससे रोग के लक्षण शीघ्र शांत हो जाते हैं।

2) बचे हुए दोषों को शांत करने के लिए लंघन

---

* आयुर्वेदिक चिकित्सा अधिकारी, राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, इटुण्दा, भीलवाड़ा (राजस्थान)
** लेक्चरर, रोग एवं विकृति विज्ञान, श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेदिक कालेज, अस्थल बोहर, रोहतक

एवं शमन योगों का प्रयोग करना चाहिए ।

अम्लपित्त में निम्न औषध योगों का प्रयोग अत्यधिक हितकारी होता है :-

1) अविपत्तिकरचूर्ण	- 3 ग्राम
कामदुधा रस	- 500 मि.ग्रा.
सूतशेखर रस	- 250 मि.ग्रा.
धात्री लौह	- 250 मि.ग्रा.

1 X 3 शहद से

2) मधुयष्ठी चूर्ण	- 3 ग्राम

दुग्ध पाक करके सुबह-शाम

3) कुष्माण्डावलेह या द्राक्षावलेह -

1 चम्मच दूध से सुबह-शाम

इसके अतिरिक्त - आमलकी चूर्ण, शिवा पाचन चूर्ण, शतावरी चूर्ण, त्रिफला चूर्ण, शंखवटी, प्रवा पिष्टी, वराटिका भस्म, प्रवाल पंचामृत, नारिकेल लवण, स्वर्ण सूतशेखर रस, गिलोय सत्व, अग्नितुण्डी वटी, अग्नि संदीपन चूर्ण, चन्द्रकला रस, कुष्माण्डावलेह, द्राक्षावलेह का सेवन करना चाहिए ।

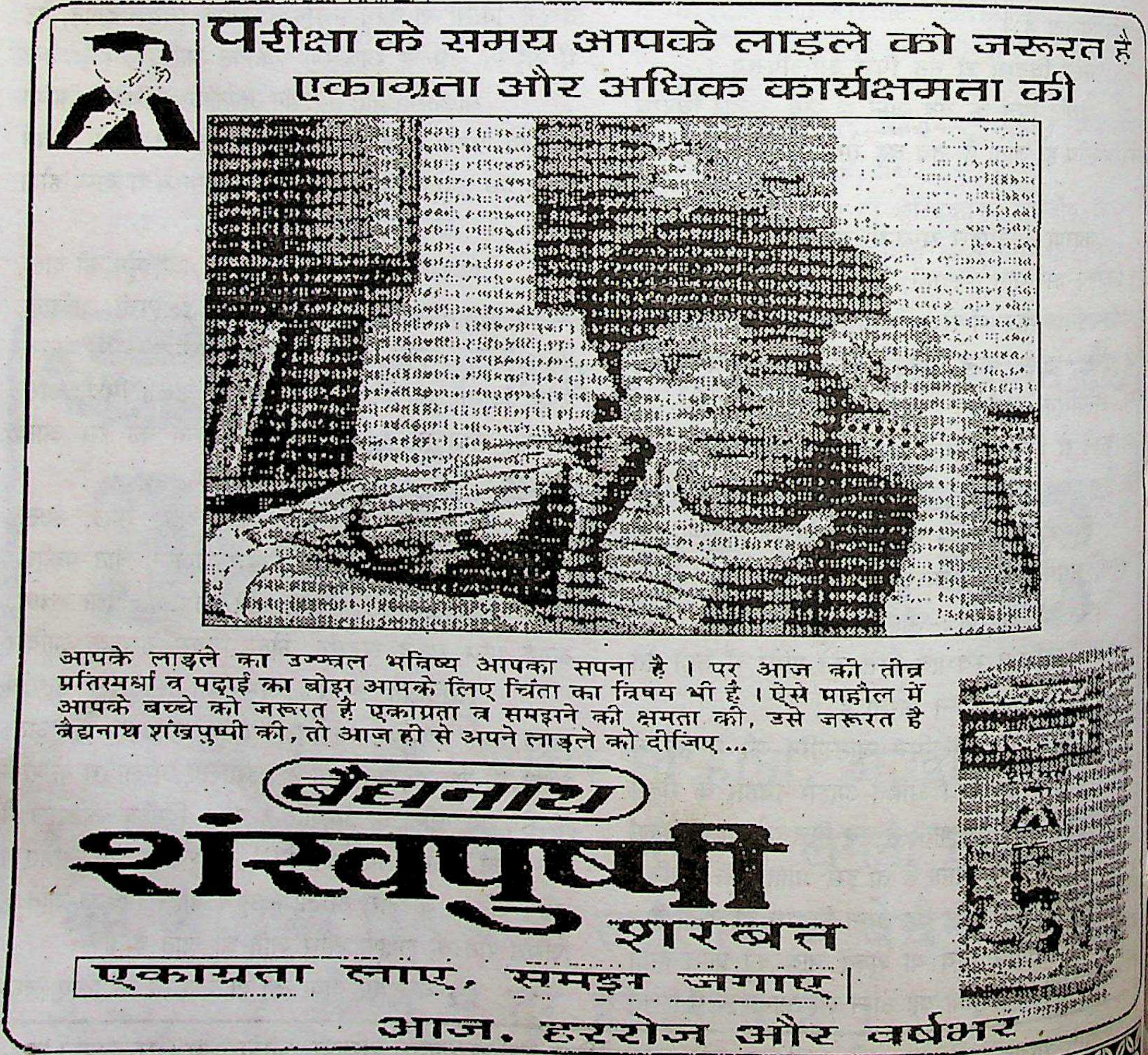

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत

एकाग्रता लाए, समझ जगाए।

आज, हररोज और वर्षभर

वासा (अडूसा) - एक दिव्य औषधि

*डा० रामानन्द, एम.डी. (द्रव्यगुण छात्र) तृतीय वर्ष
**डा० आर० बी० यादव, एम.डी., पी.एच.डी.

आयुर्वेद के अन्दर वर्णित औषधियों में वासा भी एक दिव्य औषधि है । इस औषधि के अन्दर अनेकानेक ऐसे गुण मौजूद हैं जो मनुष्यों को अनेक भयंकर व्याधियों से बचा सकते हैं । इसीलिए वासा अत्यन्त प्राचीन काल से भारतवर्ष में औषधि रूप में प्रयुक्त होता आ रहा है ।

जिस प्रकार आयुर्वेद शास्त्र में वासा का विस्तृत वर्णन मिलता है उसी प्रकार अशिक्षित एवं आयुर्वेद ज्ञान के अनभिज्ञ ग्रामीण लोग इस दिव्य औषधि को खांसी, अतिसार, वमन, बुखार आदि रोगों में उपयोग करते हैं । आयुर्वेद के ग्रन्थ इसको खांसी, श्वास व क्षय रोग (Tuberculosis) की अद्‌भुत औषधि मानते हैं । इसीलिए वृन्द माधव ने इस औषधि के बारे में सही ही कहा है -

> **"वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।**
> **रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ "**
> (वृन्दमाधव)

अर्थात् जीवन अवशेष रक्तपित्त, क्षय तथा कास के रोगियों को जब तक इस पृथ्वी पर वासा विद्यमान है तब तक अवसाद करने की जरूरत नहीं है ।

परिचय :- इसका झाड़ीदार 4-8 फुट ऊँचा क्षुप होता है । इसके पत्ते 3-8 इंच लम्बे रोमश दुर्गन्धयुक्त अण्डाकार-भालाकार लंबाग्र होते हैं । पुष्प श्वेतवर्ण सिंहमुखवत 1-3 इंच लम्बी मंजरियों में लगे होते हैं । पुष्प प्रायः फरवरी-मार्च में आते हैं । यह समस्त भारत में 4000 फीट की ऊंचाई तक पाया जाता है । इसका लैटिन नाम Adhatoda Vesica तथा अंग्रेजी में Malabar nut इसे कहते हैं ।

रासायनिक संगठन :- इसमें गन्धयुक्त उड़नशील तैल, वसा, राल, एक तिक्त क्षाराभ Vasicine एक कार्बनिक अम्ल Adhatodic Acid शर्करा एवं लवण पाये जाते हैं । इसमें Vasicine क्षाराभ त्वक में .35% तथा पत्तियों में .2-.4% तक होती है । इसकी औषधीय क्रिया मुख्य रूप से Vasicine नामक क्षाराभ के कारण होती है ।

प्रयोज्य अंग :- पत्र, मूल, पुष्प ।

मात्रा :- पत्रस्वरस 10-20 मि.ली.
पुष्प स्वरस 10-20 मि.ली.
मूल क्वाथ - 40-80 मि.ली. ।

गुण कर्म :- यह गुण में लघु, रूक्ष, रस में तिक्त, कषाय, वीर्य शीत तथा इसका विपाक कटु होता है ।

प्रयोग :- आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार वासा बहुत ही गुणकारी औषधि है तथा इसका प्रयोग अनेक व्याधियों में किया गया है ।

भावप्रकाश के अनुसार वासा वातकारक, स्वर को उत्तम करने वाला कफघ्न, रक्तपित्त नाशक, हृदय को हितकारी, शीतल, तृष्णा, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, कुष्ठ, क्षय आदि रोगों को नष्ट करने वाला है ।

उपयोग :-

1. **खांसी तथा श्वास में** :-

- वासा पत्र स्वरस को मधु के साथ लेने से कफज तथा पित्तज कास में लाभ मिलता है ।
(वृन्द माधव)
- वासा स्वरस, हरिद्रा चूर्ण को दूध में पकाकर पीने से शुष्क कास में लाभ मिलता है । (सिद्धभेषजमणिमाला)।
- कंटकारी, गुडूची तथा वासा को काढ़ा बनाकर मधु के साथ लेने से कास, श्वास, ज्वर रोग ठीक होते हैं ।
(वंगसेन)
- Indigenous Drug Commettee of India के अनुसार वासा Bronchitis तथा Ashthma के रोगियों में लाभदायक सिद्ध हुआ है ।
- Pharmacopia of India पुस्तक में खांसी व दमे के लिए इसे उत्तम औषधि बताया है ।

नोट :- इसका स्वरस पुटपक्व विधि से निकाला जाता है, जो थोड़ा कठिन विधि है । ताजा स्वरस निकालने के लिए इसके पत्तों को गर्म तवे पर गरम कर तथा हाथ से मसलने से स्वरस निकाला जा सकता है । यह स्वरस मधु

---

* ल०ह०राज०आयु० महा० पीलीभीत (उ०प्र०)

** प्रवक्ता एवं विभागाध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग, ल०ह०राज०आयु० महा०, पीलीभीत (उ०प्र०)

के साथ या गरम जल के साथ लेने से खांसी तथा श्वास में तुरन्त लाभ मिलता है ।

2. **आन्तरिक रक्त स्राव में :-** (रक्तप्रदर तथा नकसीर)

- * अष्टांग हृदय के कर्ता वाग्भट्ट ने इसे रक्तपित्त की सर्वश्रेष्ठ औषधि कहा है ।
- * इसका स्वरस रक्तप्रदर, नकसीर द्वारा रक्त स्राव को रोकता है ।
- * वासा, द्राक्षा तथा हरीतकी का क्वाथ शक्कर या मधु के साथ लेने से कास, श्वास तथा आन्तरिक रक्तस्राव ठीक होता है । (वृन्दमाधव) ।
- * छायाशुष्क वासा के पुष्पों का चूर्ण मधु के साथ लेने से रक्तस्राव में लाभ होता है ।

ज्वर में :-

- * वासा पत्र स्वरस को मधु तथा शर्करा के साथ लेने से कफज तथा पित्तज ज्वर, रक्तपित्त तथा कामला रोग दूर होते हैं । (अष्टांग संग्रह तथा वृन्द माधव)
- * वासा घृत का प्रयोग मलेरिया ज्वर में लाभप्रद है । (भेल संहिता)
- * वासा या गुडूची द्वारा सिद्ध घृत जीर्णज्वर, शोथ तथा पाण्डु में लाभप्रद है । (अष्टांग संग्रह)

कुष्ठ में :-

- * वासा तथा त्रिफला के क्वाथ का वाह्य तथा आभ्यन्तर रूप से प्रयोग कुष्ठ नाशक है । (चरक संहिता) ।
- * वासा कुटज, सप्तपर्ण, करवीर, करञ्ज, निम्ब तथा खदिर को गोमूत्र के साथ बाह्य तथा आभ्यन्तर प्रयोग से कुष्ठ दूर होता है । (च.स.)
- * परिपक्व वासा पत्र को हरिद्रा तथा गोमूत्र के साथ पीसकर कल्क बनाकर त्वचा पर लगाने से तीन दिनों में Scabies दूर होता है । (वृन्दमाधव)

शोथ में :-

- * वासा, गुडूची तथा वृहती का क्वाथ शहद के साथ प्रयोग करने से शोथ, श्वास, कास, ज्वर तथा वमन ठीक होता है । (वृन्द माधव)

प्रदर :- वासा पत्र स्वरस का प्रयोग पित्तज प्रदर में लाभकारी है । (वृन्द माधव)

कष्ट प्रसव :- वासा मूल का कल्क बनाकर योनि तथा वंक्षण प्रदेश पर लेप करने से गर्भ बाहर आ जाता है। (गदनिग्रह, चक्रदत्त)

वमन में :- वासा पत्र स्वरस, वमन, कास तथा रक्तपित्त की अचूक औषधि है । (अष्टांग हृदय)

रसायन के लिए :- वासा मूल के क्वाथ से सिद्ध तैल का प्रयोग वुद्धि तथा आयु को बढ़ाने वाला है । (सु०सं०)

मूत्राघात :- वासा मूल का क्वाथ मूत्राघात में प्रयोग करते हैं । (गद निग्रह)

इस प्रकार वासा मानव जीवन के लिए बहुत ही उपयोगी औषधि है ।

बैद्यनाथ

ईसबेल

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री), कब्जियत आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

रसेन्द्रमंगल का रसशास्त्र में योगदान

डा० वी. नागेश्वर राव, एम.डी.(आयु.)(बी.एच.यू.), पी.एच.डी., डिप्लोमा, योग

आचार्य नागार्जुन ने रसशास्त्र की उन्नति के लिए रस ग्रन्थों की रचना की है । उसमें से एक है रसेन्द्रमंगल। रसशास्त्र के विकास में सर्वाधिक महत्व तंत्रों का है । आचार्य नागार्जुन रसशास्त्र के प्रणेता हैं तथा उन्होंने ही रसशास्त्र का मार्गदर्शन किया है । लोह वेध से देह वेध की ओर उसका विकास किया । इससे पूर्व लोह वेध ही अधिक प्रचलित था । देह वेध बाद में प्रचलित हुआ । आचार्य नागार्जुन से लिखे गये इस रसेन्द्र मंगल को अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि नागार्जुन हेम, रजतादि निर्माण के साथ-साथ वे चिकित्सा विशेषज्ञ थे । यह स्पष्ट है कि रसशास्त्र विज्ञान में नागार्जुन का नाम एक ऋषि, अन्वेषक, उच्चकोटि के वैज्ञानिक तथा कुशल चिकित्सक के रूप में जाना जाता है, क्योंकि इन्होंने अनेक आचार्यों से समय-समय पर सम्पर्क करके ज्ञान ग्रहण किया जो कि महर्षि चरक की इस उक्ति को चरितार्थ करता है –

कृत्स्नो हि लोको बुद्धिमतां आचार्यः ।
अबुद्धिमतांश्च शत्रवः ॥ (चरक)

अर्थात् बुद्धिमान मनुष्य के लिए सारा संसार ही गुरु है एवं मूर्ख के लिए शत्रु के समान है । आचार्य नागार्जुन ने सभी धर्मावलम्बियों के साथ सम्पर्क करके रस विद्या, चिकित्सा, सामाजिक व भौगोलिक ज्ञान व आध्यात्मिक ज्ञान को ग्रहण किया था । रसशास्त्र के गुप्त ज्ञान को भी उन्होंने रससिद्धों से प्राप्त किया था तथा मयूरी विद्या व जल पर चलने की कला या विद्या स्वर्ण सिद्धि प्राप्त करना, क्योंकि नीतिशास्त्र में भी विद्या प्राप्ति के तीन ही उपाय बतलाये हैं –

गुरू सुश्रुषया विद्या, पुष्कलेन धनेनवा ।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थ नैव कारणम् ॥

अतः कहा जा सकता है कि आचार्य नागार्जुन जैसा विद्वान प्रकट में भगवान् शिव के पश्चात् न कोई हुआ न कोई होगा ।

रसशास्त्र में पारद एक महत्वपूर्ण द्रव्य है । इसका क्षेत्र असीमित है । इस पारद के बिना रसशास्त्र की कल्पना नहीं की जा सकती । इसीलिए नागार्जुन ने भी अपनी रसेन्द्र मंगल में पारद को अधिक महत्व दिया है । इसमें पारद के अष्टादंश संस्कारों का वर्णन किया है । इसी के साथ रस की प्रशंसा भी की है । इसके बाद राजावर्त्त, रसक, दरद और माक्षिक की शुद्धि बताया है । राजावर्त्त और रसक के शोधन विधान में कृत्रिम स्वर्ण बनाने का सरल तरीका बताया है । रसशास्त्र में लोह वेध की एक विशिष्ट प्रक्रिया है । इस विधान से हल्की धातुओं से स्वर्ण निर्माण आसान तरीके से किया जा सकता है । रसशास्त्र में लोहादि धातुओं की अधिक प्रमुखता है । इसका अच्छी तरह से शोधन करना आवश्यक है । अच्छी तरह से शोधन करने के बाद ही उसकी भस्म बनाई जाती है । इसलिए नागार्जुन ने हेम, रजत आदि धातुओं के साथ वैक्रान्त और अभ्रक का भी शोधन विधान स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है ।

रसशास्त्र में द्रुति का भी अधिक महत्व है । नागार्जुन ने अभ्रक, स्वर्ण आदि सर्वधातुओं का भी द्रुति विधान बताया है । इसी के साथ वज्र, वैक्रान्त का द्रावण और मारण प्रक्रिया का भी विस्तार से उल्लेख है । सभी धातुओं का मारण करके भस्म बनाके तभी रोगियों को देना पड़ता है । इसलिए आचार्य नागार्जुन ने इन धातुओं के मारण में काम आने वाले अरिलोहों का विस्तार से वर्णन किया है । स्वर्ण के लिए नाग, वज्र स्वरस; रजत के लिए माक्षिक, स्नूही क्षीर; ताम्र के लिए गंधक, भेड़ का दूध; वंग के लिए तालक, पलास स्वरस; नाग के लिए मनःशिला, अर्क क्षीर और तीक्ष्ण लोह के लिए हिंगुल, स्त्री स्तन्य का वर्णन किया है. ।

रसेन्द्रमंगल में सत्वपातन का भी वर्णन किया गया है, जिसमें अभ्रक, वैक्रान्त, माक्षिक, रसक, तालक, मनःशिला, विमल और दरद इन सबका सत्व निकालने की विधियों का वर्णन मिलता है । आचार्य नागार्जुन रसशास्त्र में विशेषज्ञ थे । साथ में ये विशिष्ट चिकित्सक भी थे । इसलिए नागार्जुन ने अपने रसेन्द्रमंगल में विविध रसऔषधि योगों का वर्णन किया है, जिसे विविध वातादि रोगों के नाश करने में लिये जा सकते हैं । इनमें कुछ योग अन्य रस ग्रन्थों में भी उपलब्ध हैं, जो कि रसेन्द्रमंगल से ही लिए गए हैं ।

नागार्जुन ने विविध द्रव्यों के शोधन, मारण में प्रयोग आने वाले बहुत से यंत्रों का वर्णन किया । इसका नाम रसरत्नाकर में उपलब्ध है । डा०पी.सी. राय ने रसरत्नाकर और रसेन्द्रमंगल को एक ही ग्रन्थ माना है ।

नागार्जुन ने द्वंद्व मेलक क्रिया एवं क्रामण के बारे में विस्तार से बताया है । इसी के साथ ग्रन्थकार ने अभ्रक वटी, वैक्रान्त वटी जैसे वटी का भी उल्लेख किया । खोटबद्ध रस, जलूका वन्ध के साथ कुछ लिंग लेप और स्त्रीद्रावण योगों के बारे में नागार्जुन ने वर्णन किया है ।

Assistant Prof. & I/C Pharmacy, P.G. Dept. of Rasa Shastra & Bhaishajaya Kalpana, National Institute of Ayur., Amer Road, Jaipur - 302004

मांसाहर एवं परीक्ष्य भाव

*डा० राजीव श्रीवास्तव, एम.डी. (आयु.) **डा० दुर्गावती देवी, एम.डी. (आयु.) ***डा० बी.के. द्विवेदी

चरक संहिता में सभी रोगों की चिकित्सा के लिये काष्ठौषधियों और मांस का प्रचुर मात्रा में प्रयोग है । आहार के लिये इष्ट सभी प्रकार के माँसों में प्राय: मधुर व कषाय रस हैं । कतिपय मांसों में कटु अम्ल रस भी है । विपाक व वीर्य में एक रूपता न होकर भिन्नता है । कुछ मांस का विपाक मधुर और कुछ का कटु होता है, वैसे ही कुछ मांस का वीर्य शीत है और कुछ का मांस उष्ण है । मांस वृंहण करता है, किन्तु अविहित रूप से सेवन करने पर दोषों का उत्पादक होता है । मांसाहार का श्रेष्ठ अनुपान मद्य होता है । चरक संहिता में मांस के गुण कर्मों का उल्लेख किया गया है, और क्षेत्र विशेष से प्राप्त जन्तुओं के आधार पर आहारोपयोगी विशिष्ट जन्तुओं के मांस के गुण-कर्म की तालिका विशद् रूप से दी गयी है । तालिका से स्पष्ट है कि बकरे का मांस उत्तम होता है क्योंकि इससे कोई भी दोष प्रकुपित नहीं होता है तथा इसके मांस को मनुष्य के धातुओं का समानधर्मी कहा गया है । इसके अतिरिक्त यह वृष्य, बल्य और त्रिदोषघ्न होता है । अत: जनसामान्य मांसवर्ग में सर्वाधिक अजामांस का ही सेवन करते हैं । आयुर्वेद में एण का मांस उत्तम कहा गया है । यह मांस बृहण होने के साथ-साथ शिव व त्रिदोषघ्न होता है । परन्तु यह प्रचलित नही है, प्रचलित मांसों में वाराह मांस व विभिन्न मछलियाँ हैं । वाराह मांस से बृंहण, बल्य व वृष्य होता है तथा इसका कर्म स्वेदन करने में भी बतलाया गया है । अर्थात् बृहण, वृष्य के साथ-साथ उष्ण भी होता है, अत: यह शीत प्रदेश के लिये पथ्य है । मछलियाँ बृंहण कर्म तो करती हैं पर उन्हें बहुदोषकारी कहा गया है । ये रस में मधुर, गुरू, स्निग्ध के साथ-साथ उष्ण होती हैं पर उन्हें बहुदोषकारी कहा गया है । ये रस में मधुर, गुरू, स्निग्ध के साथ-साथ उष्ण होती हैं, इसलिये दोषकोपन कर सकती हैं । मछलियों में रोहु को सर्वोत्तम कहा गया है क्योंकि यह मधुर रस विपाकयुक्त महाबल्य यानि अत्यधिक बल प्रदान करती है । गोधा साही आदि का मांस क्षेत्र विशेष या व्यक्ति विशेष में किया जाता है । इससे बृंहणादि कर्म के साथ उष्णता में वृद्धि होती है । पक्षियों में अधिकत्तर मांस को वातशामक, बृंहण व बल्य कहा जाता है । मयूर, हंस व कुक्कुट के मांस को उत्तम कहा जा सकता है, क्योंकि इसका मांस बृंहण, बल्य, बृष्य, वर्ण्य, स्वरवृद्धिकर, चक्षुष्य आदि कहा गया है । आधुनिक काल में कुक्कुट मांस का प्रचलन उत्तरी भारत में अधिक है । अन्य आहारोपयोगी प्रचलित पक्षियों के मांसों का बृंहण, बल्यादि कर्म कहा गया है, पर उनका उपयोग विशेष रोगों में है और उनका मांस सामान्यतया क्षेत्र विशेष व उपलब्धता के आधार पर है । लगभग समस्त मांस गुरू व स्निग्ध होते हैं, अत: उनका सेवन करते समय अष्टविधिविशेषायतन, दशविध आहारनियम, विरूद्ध अन्न परीक्षा के साथ-साथ, रोग या स्वास्थ्य के उपयुक्त निम्न भावों की परीक्षा करनी अभिष्ट है ।

मांसाहार परीक्ष्य भाव -

चर: शरीरावयवा: स्वाभावो धातव: क्रिया ।
लिंङ्ग प्रमाणं संस्कारो मात्रा चास्मिन् परीक्ष्य ते ॥

(च०सू० 27/331)

मांसाहार ग्रहण करते समय निम्न भावों की परीक्षा करनी चाहिये । ये भाव हैं - (1) चर (2) शरीरावयव (3) स्वभाव (4) धातुयें (5) क्रिया (6) लिंङ्ग (7) प्रमाण (8) संस्कार (9) मात्रा ।

1. चर :-

चरोऽनूपजला:...........................।
गुरूभक्ष्या ....।
लधुभक्ष्या ....लघवो ।

---

* जूनि. - III, सिद्धान्त एवं दर्शन ** जूनि. - III, स्वस्थवृत्त एवं रोग *** रीडर
सिद्धांत एवं दर्शन विभाग, आई.एम.एस., बी.एच.यू., वाराणसी

(च०सू० 27/332)

चर परीक्षा में ग्रहण क्रिया जाने वाला मांस किस देशोत्पन्न है क्योंकि एक ही प्रकार का मांस विभिन्न देशों में उत्पत्ति के आधार पर भिन्न-भिन्न गुण वाले होते हैं, जो जीव आनूप देश में या जल में उत्पन्न होते हैं या विचरण करते हैं, उनमें देशानुसार गुणाधान होता है, उनका मांस गुरू होता है । उसी प्रकार जो जीव लघु आहार करता है या आकाश में विचरण करते हैं या जांगल प्रदेश में उत्पन्न होते हैं या जांगल प्रदेश में विचरण करते हैं । उनका मांस प्रायः लघु होता है ।

2. शरीरावयव -

यहाँ जीवों के विभिन्न अंगों की परीक्षा से है । शरीर के विभिन्न अंगों के मांस भिन्न-भिन्न गुण वाले होते हैं, इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के धातुओं के गुण होते हैं । प्रथमतः यह परीक्षा होनी चाहिए कि व्यक्ति विशेष के लिये किस अवयव का मांस या धातु विशेष का सेवन करना हितकर है । यथा - (सक्थिमांसाद् गुरूः स्कन्धस्ततः) सक्थि के मांस की अपेक्षा स्कन्ध का मांस गुरू होता है । (स्कन्ध-स्ततः क्रोडस्ततः शिरः) कन्धे के मांस की अपेक्षा वक्ष का व उदर का मांस तथा इसकी अपेक्षा शिर का मांस गुरू होता है । इसी प्रकार -

वृष्णौ चर्म मेढ्रं च श्रौणी वृक्कौ यकृद् गुदम ।
.... मध्यमास्थि च ॥

(च०सू० 27)

अर्थात् मांस की अपेक्षा दोनों अण्ड, चर्म, मूत्रेन्द्रिय, श्रोणीप्रदेश, वृक्क, यकृत, गुदा, मध्यदेह का मांस उत्तरोत्तर गुरू होता है, मांस से अस्थि गुरू होती है ।

3. स्वभाव -

कुछ द्रव्य स्वाभाव से गुरू व लघु होते हैं, गुरू द्रव्यों का पाचन देर से व लघु का पाचन शीघ्र होता है । इस प्रकार द्रव्य के स्वाभाविक गुणकर्मों की परीक्षा करके सेवन करना चाहिये । जैसे - लावा व कपिन्जल का मांस स्वभावतः लघु होता है; वाराह व भैंस का मांस स्वभावतः गुरू होता है ।

4. धातु परीक्षा -

प्राणियों की धातुयें उत्तरोत्तर गुरू होती हैं अर्थात रस से शुक्र पर्यन्त तक क्रमशः गुरूत्तर होते हैं । अतः व्यक्ति अपने शारीरिक अवस्था व दोषानुसार धातुविशेष का चयन करना चाहिये । सामान्यतः जिस धातु का क्षय होता है, उसका चयन करना चाहिये ।

5. क्रिया परीक्षा -

जिस प्राणीविशेष के मांसादि का सेवन करना हो तो उसकी क्रिया की परीक्षा कर लेनी चाहिये, क्योंकि अलस अर्थात् कम-काम करने वाले प्राणियों की अपेक्षा बहुक्रिय का मांस हल्का होता है ।

अलसेभ्यो विशिष्यन्ते प्राणिनो ये बहुक्रिया ।

6. लिङ्ग परीक्षा -

गौरवं लिङ्गसामान्ये पुंसां स्त्रीणां तु लाघवम् ।

(च०सू० 27)

एक ही प्रकार के जीवन में पुरुष का मांस गुरू होता है तथा स्त्री जीव का मांस लघु होता है ।

7. प्रमाण -

महाप्रमाणः गुरवः स्वजातौ लघवोऽन्यथा ॥

(च०सू० 27)

एक ही जाति के स्थूलकाय प्राणी का मांस गुरु तथा कृशकाय का मांस लघु होता है । आयुर्वेद में शरीर की बनावट दोषानुसार होती है । अतः गुण भी उसी प्रकार के होते हैं । जैसे उत्तम बनावट वाले पुष्ट शरीरावयव वाले प्राणियों में कफ उत्कृष्टावस्था में होता है । अतः उसके मांस व धातु में गुरू गुण विशेष होता है, इसके विपरीत कृश काय प्राणी का वात प्राबल्य से लघु होता है ।

8. संस्कार -

संस्कार गुण परिवर्तनकारी होता है । अतः मांस ग्रहण करते समय संस्कारों की परीक्षा अवश्य करनी

चाहिये क्योंकि संस्कार से गुरू द्रव्य लघु होता है और लघु गुरू । सामान्य संस्कारों के गुण धर्म निम्न दिये गये हैं ।

		गुण	विशेष
1.	मांस (रसदार)	अतिवीर्यवर्धक, बृंहण, रोचक, बल्य, अग्निदीपक, त्रिदोषशामक (भा०प्र०)	यह गुण जल, घृत या वेशवार सिद्ध के हैं ।
2.	आसा (लिपटा हुआ)	गुरू, शीतोष्ण, स्निग्ध सारक, सन्धानकर बृंहण, पित्तशामक (भा०प्र०)	
3.	भुना मांस (तंदूरी)	बल्य, मेध्य, अग्नि, मांस, ओजशुक्र वृद्धिकर, तर्पक, लघु, स्निग्ध व स्थैर्यकर (भा०प्र०)	घृत में भून कर ही प्रयोग करना चाहिये ।
4.	कबाब	लघु, स्वाद, रूचिकर अग्निदीपक, बल्य, कफवातनाशक (भा०प्र०)	किन्चित पित्तवर्धक है, अतः मात्रानुसार लेना चाहिये ।
5.	सिद्धमांस रस (सुरूवा)	रूच्य, श्रमहर, श्वासहर प्रीणन, वातपित्तशामक	क्षय, शुक्र शीणता, संधिभग्नता, शोधन पश्चात, स्मृति-बलहीनंता ज्वर, क्षतक्षीण, स्वरक्षय में प्रयोगी है ।

मात्रा परीक्षा -

> **अल्पादाने गुरूणां च लघुनां चातिसेवने ।**
> **मात्राणां कारणमुद्दिष्टं द्रव्याणां गुरूलाघवे ॥**
> **गुरूणामल्पादेयं लघुनां तृप्तिरिष्यते ।**
> **मात्रां द्रव्याव्यपेक्षन्ते मात्रा चाग्निपेक्षते ॥**
> (च०सू० 27/340-41)

व्यक्ति को अपनी अग्नि के अनुसार ही मांस सम्मिलित सम्पूर्ण आहार की मात्रा लेनी चाहिये । मात्रा का निर्धारण स्वाभाविक या संस्कारित गुणों के आधार पर होनी चाहिये । इस प्रकार यदि गुरूद्रव्यों का सेवन भी यदि अल्पमात्रा में दिया जाय तो लघुता होती है और लघु द्रव्यों का सेवन भी अधिक मात्रा में किया जाय तो गुरूता होती है । अतः आधार मात्रा ही परीक्षा अवश्य करनी चाहिये, क्योंकि आहार द्रव्य मात्रा की अपेक्षा करते हैं और मात्रा अग्नि की अपेक्षा करती है ।

विमर्श -

मनुष्य की सबसे मौलिक एषणा प्राणैषणा है, अतः प्राण धारण के तीन प्रमुख उपस्तम्भों में आहार का सर्वप्रथम वर्णन है, साधारणतया आहार से मुख्यतः अन्न का ग्रहण होता है, और मांस इसका एक घटक है, परन्तु छान्दोग्योपनिषद में मांस की प्रथम उत्पत्ति बताते हुये, इसे अन्न, अप व तेज के परस्पर साहचर्य से माना है; अन्न के स्थूल भाग से पुरीष, मध्य भाग से मांस व सूक्ष्म भाग से मन की उत्पत्ति मानी है । इसलिये अन्नवर्ग के सदृश ही मांस का रस प्रायः मधुर व कषाय होता है ।

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि ये नव परीक्षा भाव मुख्यतः माँसाहार की दृष्टि से उल्लिखित हैं, क्योंकि उपर्युक्त नव परीक्षा भावों में चर, अवयव धातुयें, क्रिया लिङ्ग, प्रमाण ये छः भाव केवल मांसाहार के परीक्षा भाव हैं । शेष तीन स्वभाव, संस्कार, मात्रा शाकाहार व मांसाहार दोनों के लिये है । अतः उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः सभी व्यक्तियों को मांसाहार ग्रहण करते समय इन नव भावों की परीक्षा करनी चाहिये, जिससे स्वास्थ्य का अनुवर्तन हो सके तथा यदि कोई रोग हो तो पथ्य और आहार नियंत्रण से उसका शमन हो ।

मधुमेह : लक्षण व उपचार

डॉ० राजीव गुप्ता

मधुमेह एक जटिल रोग है । एक बार यह रोग हो जाने पर जीवनपर्यंत बना रहता है । इसको नियंत्रित तो किया जा सकता है, पर समाप्त नहीं । मधुमेह का असर कमोवेश सारे शरीर पर पड़ता है और लगभग सभी अंग इस रोग से प्रभावित होते हैं ।

इस रोग में क्लोमग्रंथि से निकलने वाले इंसुलिन की मात्रा कम हो जाती है या इंसुलिन का निकलना बिल्कुल बन्द हो जाता है, जिस कारण रक्त में शर्करा का चयापचन ठीक ढंग से न होने के कारण रक्त में ग्लूकोज का स्तर बढ़ जाता है । बढ़ी हुई शर्करा की यह मात्रा गुर्दों द्वारा भी ठीक तरह से अवशोषित नहीं हो पाती, जिससे मूत्र द्वारा शर्करा निकलने लगती है । रक्त शर्करा का स्तर सामान्य से अधिक हो जाने की इस स्थिति को ही मधुमेह कहते हैं ।

रोग के लक्षण

* बहुमूत्र की शिकायत । विशेषत: रात को अधिक मूत्र के साथ लवण भी अधिक मात्रा में बाहर निकलते हैं ।
* पेशाब द्वारा पानी अधिक निकल जाने के कारण प्यास भी बहुत अधिक लगती है ।
* पेशाब द्वारा शरीर से अधिक मात्रा में ग्लूकोज निकल जाने के कारण भूख अधिक लगती है, फिर भी वजन घटता जाता है ।
* कमजोरी के कारण लगातार थकान एवं हाथ-पैरों में झनझनाहट रहती है ।
* बहुत जल्दी-जल्दी संक्रमण होना, घाव का देर से भरना एवं अक्सर थक जाना ।
* पैरों की पिंडलियों में लगातार दर्द रहना व सुन्न पड़ जाना ।
* गुप्तांगों के आसपास खुजली, स्त्रियों में भगकण्डु एवं पुरुषों में यौन दुर्बलता व नपुंसकता ।
* जांघों में नाड़ी शोथ के लक्षण एवं कम उम्र में धमनियों के रोग होना ।
* शरीर की त्वचा सूखी रहना व पैरों के तलवों में फड़कन व जलन ।
* बार-बार फोड़े-फुन्सी जिन्हें मधुमेह पिड़िकाएं भी कहते हैं, का निकलना ।
* एक विशेष प्रकार का फोड़ा जिसमें अनेक छिद्र होते हैं, अक्सर पीठ पर निकलता है । इसको कार्बंकल फोड़ा कहते हैं ।
* क्योंकि मधुमेह का रोगी मूत्र द्वारा ग्लूकोज का त्याग करता है, अत: उसके मूत्र में प्राय: चींटियाँ लगती हैं ।

आयुर्वेदिक उपचार

आयुर्वेदिक औषधियाँ दुष्प्रभाव रहित होती हैं । बिना किसी भय के इनका उपयोग लम्बे समय तक किया जा सकता है । निम्नलिखित औषधियाँ मधुमेह को नियंत्रित रखने में बहुत उपयोगी हैं -

* जामुन के फल की मज्जा 4 भाग, निम्बपत्र 4 भाग, आंवला 4 भाग, गुड़मार पत्र 2 भाग, बिल्वपत्र 2 भाग और सूखा करेला 8 भाग लेकर, सबको कूट-पीसकर महीन चूर्ण बनाएं । इस चूर्ण को 2 ग्राम की मात्रा में दिन में दो-तीन बार गुनगुने पानी से लें ।
* सूखा करेला 4 भाग, जामुन की गुठली 2 भाग, त्रिवंग भस्म 2 भाग, अभ्रक भस्म 1 भाग, लौह भस्म 1 भाग, शिलाजीत 2 भाग, अफीम आधा भाग मिलाकर बनाई गई गोली 250 ग्राम की मात्रा में दिन में चार बार सेवन करें ।
* त्रिवंग भस्म 120 मि.ग्रा. की मात्रा में 1 ग्राम हरिद्रा चूर्ण एवं 6 ग्राम आंवले का चूर्ण मिलाकर दिन में तीन बार

5/11 बाग कूँचा फर्रुखाबाद, उत्तर प्रदेश - 209625

मधु के साथ लें ।

- * फलत्रिकादि क्वाथ 60 मि.ली. की मात्रा में पीने को दें ।
- * देवदार्वारिष्ट 20 मि.ली. की मात्रा में भोजन के बाद सुबह-शाम देना हितकारी है ।
- * एक ग्राम चन्द्रप्रभा में 3 ग्राम त्रिफला चूर्ण मिलाकर गो-दुग्ध के साथ रात में सोते समय सेवन करें ।
- * इंद्रवटी, शिवागुटिका, शुद्ध शिलाजीत, न्यग्रोधादि चूर्ण, नागभस्म, वंगभस्म, प्रमेहगजकेसरी रस, सोमनाथ रस, बसंत कुसुमाकर रस, पूर्णचन्द्र रस बृहत, वंगेश्वर रस आदि लाभप्रद औषधियां हैं ।
- * अरुणी, गुडूची, हल्दी, नीम, गोखरू, जामुन, आंवला, दारुहल्दी, मंजीठ, देवदारु, त्रिफला, विजयसार, खैरसार, करेला, पाठा, बबूल, गुड़मार, शतावर, लोध्र, अर्जुन, श्योनाक, आम की छाल आदि वनस्पतियों का सेवन मधुमेह में करना चाहिए ।
- * त्रिफला जल में 24 घंटे भिगोया हुआ चना सुबह के नाश्ते के साथ लेना हितकारी है ।
- * सारिवा के तने का चूर्ण 1 भाग, तेज पत्ता 1 भाग, यष्टीमधु मूल 1 भाग से बनी औषधि को जल के साथ दिन में दो बार लेना चाहिए ।
- * समपरिमाण में श्वेत खदिर छाल, रक्त खदिर छाल और सुपारी बीज का क्वाथ 14 से 28 मि.ली. दिन में तीन बार लेना चाहिए ।
- * बिल्वपत्र स्वरस 14 से 28 मि.ली. 5 से 10 ग्राम शहद के साथ दिन में 3 बार लेना चाहिए ।
- * मधुयष्टी चूर्ण 3 से 6 ग्राम, 5 से 10 ग्राम शहद के साथ दिन में 3 बार लेना चाहिए ।

बैद्यनाथ

प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं। इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता ।

NIDANATMAK AND UPSHAYATMAK STUDY OF TRIDOSHAJA YONIVYAPADA W.S.R. TO BACTERIAL VAGINOSIS

■ **Prof. Loknath Sharma**
● **Dr. Rizwana Parveen**

Woman has a unique existence in the universe, created by the God. In the new millennium life expectancy of woman has increased considerably world wide including India. India is a developing country and rural women are not so advanced here as compared to western countries. Their freedom is still restricted as they have to abide by the rules, regulations and social conducts as a part of tradition. Due to the shyness and an attitude for making sacrifices, most of Indian women don't care about their health. As a customary thing, Indian females serve their family members at the cost of their own health. They hide their problems even from their husbands and fellow women of their family. There is not much awareness in majority of Indian females about their health and health related problems. Women health is of prime importance to get a healthy society.

A woman takes many journeys in their lives. Puberty, reproductive period and new pause are the three phases in the life of women. During reproduction period, vaginal infections causing excessive white discharge is one of the most common infective conditions met within gynaecological practice in the country. Women not knowing about this infective condition they term it as leucorrhoea and don't understand the seriousness of this condition, they live with this disease for years unless and until it starts bothering their day to day life.

Vaginal infections are the most common women health problem and have been increasingly linked to a growing array of serious health risks; vaginal infections known medically as vaginitis are the most frequent reasons. American women see their doctors accounting for more than 10 million office visits each year, some vaginal infection are transmitted through sexual contact (trichomoniasis) but other such as candidiasis (yeast-infections) are not bacterial vaginosis can be transmitted by sexual contact, however, overgrowth of certain of the bacteria in the vagina can also result in a case of vaginitis.

A recent Gallup survey found that very few women have an understanding of vaginitis while 95% of a women surveyed, had heard about yeast infections only 36% had ever heard of a more common vaginal infection called bacterial vaginosis (Barbara A Majeroni 1998).

Bacterial vaginosis is the most common vaginal infection among the child-bearing age. It may be the cause of up to one half of cases of vaginitis (eschenbach DA et.al, 1998). In all women and the cause of from 10-20% of cases in pregnant women (Colli E.et.al, 1996), the disease had been found in 12 to 25 percent of women in routine clinics populations. 10-26% percent of women in obstetric clinics and 32 to 64 percent of women in clinics for sexually transmitted diseases (STD's).

Normally the physiologic vaginal discharge comprises vaginal secretions, exfoliated cells and cervical mucus. The frequency of vaginal discharge varies with age, menstrual cycle, pregnancy and use of oral contraceptives, the normal discharge of vagina is just sufficient to lubricate the vagina and labia minora but without staining or moistening the underclothes except at certain times when the secretion is increased. These times are at ovulation, the immediate premenstrual phase. During pregnancy and under the stimulus of sexual excitation.

The normal vaginal enviroment is characterized by a dynamic interrelationship between lactobacillus acidophilus and other endogenous flora, estrogen, glycogen, vaginal pH and metabolic by products of flora and pathogens L. acidophilus produces hydrogen peroxide, which is toxic to pathogens and keeps the healthy vaginal pH between 3.8 and 4.2. Vaginitis occurs because the vaginal flora has been latered by the introduction of pathogens or changes in the vaginal environment that allow pathogens to proliferate.

In bacterial vaginosis, it is believed that some inciting event decrease the number of

---

■ Prof. & H.O.D., Rog and Vikriti Vigyana, N.I.A., Jaipur

● P.G. Scholar, Rog and Vikriti Vigyana, N.I.A., Jaipur hydrogen peroxide producing L. acidophilus organisms. The resultant change in pH allows proliferation of organisms that are normally suppressed, such as G. vaginalis, M hominis and Mobiluncus species. These organisms produce metabolic by product, such as amines, that further increases the vaginal pH and cause exfoliation of vaginal epithelial cells. The amines are also responsible for the characteristic malodorous discharge in bacterial vaginosis.

The vaginal fluid of women with bacterial vaginosis is characterized by markedly increased prevalence and concentration of G. vaginalis and several other anaerobic bacteria. This clinical syndrome is now recognized as a polymicrobial superficial vaginal infection involving a loss of the normal lacto-bacilli and an overgrowth of anaerobes. While commonly found in increased numbers in women with bacterial vaginosis, gardnerella vaginalis is not invariably present. G. vaginalis has been reported in about 16.42% of women with no signs and symptoms of vaginitis (Hill et al, 1993), the vaginal fluid usually lacks hydrogen peroxide producing lactobacillus species which constitute most of the normal vaginal flora and perhaps help protect against certain cervical and vaginal infections.

Vaginal douching, use of intravaginal non-oxynol-9-spermicide and new sexual partner can all result in loss of vaginal colonization by hydrogen peroxide producing lactobacilli risk factors include multiple sexual partners but antibiotic treatment of male partners has not reduced the rate of recurrence among affected women (Harrisons - Fg. 843), women who have been diagnosed with bacterial vaginosis have been found to have up to 1000 times more anaerobic than women without the diseases.

Bacterial vaginosis is characterized by symptoms of vaginal malodor in varying degrees. Women often report that the odor is particularly embarrassing after sexual intercourse. When semen mixes with vaginal secretions, it lowers the acidity levels to make the odor particularly strong; odor may also be more noticeable around the time of menses.

The other symptom is slightly to moderately increase white discharge which appears homogenous, is low in viscosity and smoothly coats the vaginal mucosa. Vaginal itching or burning is also times present.

Ayurveda has described twenty types of Yonivyapada and almost all of the gynaecological disorders come under Yonivyapada. A specific group of the disease of the women i.e. Yonivyapada has been mentioned in our Ayurvedic classics which exclusively occur in females and which disrupt the womenhood in various ways. Out of the twenty Yonivyapada the Tridoshaja Yonivyapada also have the symptoms which are found to be similar to bacterial vaginitis as the symptomatology are similar symptoms described are all the type of doshas, eg-yoni srava, yoni daha, yoni kandu, yoni darugandha, yoni shula etc. in Ayurveda classics various aetiological factor like mithya aharvihar, beeja dosha, artava dusthi and daiva are mentioned. Vata is said to be the prominent dosha in all types of yonivyapada. When these etiological factors are detailed then it can be made clear that these involve a larger numbers of factors.

MATERIALS & METHODS

AIMS AND OBJECTIVES

- To study Bacterial vaginosis in Ayurvedic perspective.
- To develop an Ayurvedic aetiopathogenesis of Bacterial vaginosis in terms of Tridoshaja Yonivyapada.
- To study the therapeutic effects of Veg-Cure oil and Veg-Cure kwatha in the treatment of Tridoshaja Yonivyapada w.s.r. to Bacterial vaginosis.
- To study the antimicrobial sensitivity of the drug.

The patients for the present study were selected from the OPD/IPD of Arogyashala, Madhava Vilas Hospital, National Institute of Ayurveda, Jaipur. Any patient coming as a new case except pregnant, diabetic and chronically ill patients were included in the study. They belonged to all socio-economic groups, illiterate and literate, rural and urban people. The study was carried out in all on 40 patients.

Complete history of present illness, family history and past history relevant to the complaints, patient's age, socio-economic status and hygienic conditions, nature of work, diet, menstrual history, obstetrics history, dash-vidha pariksha, srotopariksha were recorded on proforma based on Ayurveda and modern parameters designed according to WHO pattern. Maximum of questions, were answered in yes or no according to WHO History of dysuria and penile discharge, venereal disease in husband was also taken.

While recording the history of past illness following points were kept in mind -

1. Venereal diseases.
2. Contraceptive therapy.
3. Antibiotic therapy.
4. Hormonal therapy.
5. Chronic disease - Tuberculosis, Hypertension, diabetes mellitus.
6. History of vaginal discharge and recurrence after treatment and history of treatment.
7. Any surgery done - vaginal, cervical, tubectomy, etc.

Inclusion criteria.

- Patients with signs and symptoms of Tridoshaja Yonivyapada (w.s.r. to Bacterial vaginosis) will be included in the study.
- Diagnosis will be done by relevant laboratory investigations.
- Age 20-40 years i.e., child bearing age.
- Married women.

Exclusion criteria -

- Pregnancy.
- Diabetes mellitus.
- Menopausal women.
- Unmarried women,
- Other systemic illness.
- Other sexually transmitted disease (e.g., syphilis, gonorrhoea).

alcohol mixture equal parts.

Clinical study

Clinical study was done on 40 patients selected from IPD and OPD of Arogyashala, National Institute of Ayurveda, Jaipur and were diagnosed as patients of Tridoshaja Yonivyapada on the basis of symptomatology and laboratory investigations.

Grouping of cases

The patients were divided into two groups- - Group A and Group B.

Group A

20 patients of Tridoshaja Yonivyapada (bacterial vaginosis) were given Veg-Cure Kwatha douche followed by Veg-Cure oil picchu dharana for 15 days. Dosage of kwatha for douching was about one and half liters and the picchu was soaked in 10 ml of Veg-Cure oil and kept high in vagina for at least 12 hours.

Group B

15 patients of Tridoshaja Yonivyapada (Bacterial vaginosis) were given allopathic treatment as control group. Patients were asked to use clotrimoxazole vaginal tablets for first 6 days along with Betadine vaginal Tablets for 14 consecutive nights.

In both the group

1. Treatment was given for 15 days.
2. Treatment was started from 6th day of menstrual cycle.
3. During trial period, abstinence from husband was advised.
4. All the investigations were done both before and after treatment.

Criteria for Assessment.

During the trial the patients were assessed on the following parameters -

- Subjective improvement.
- Clinical improvement.
- Microscopic examination of vaginal discharges.

Subjective improvement.

Attempts were made to work out the incidence of subjective improvement produced by the durg under tiral in the form of increase in the feeling of well being, physical and mental fitness.

Management of the patients

After the diagnosis, the pateints were randomly distributed into the two groups and treated by Veg-Cure kwath and Veg-Cure oil picchu dharana in one group and allopathic drug vaginal tablets was given in the other group.

Duration of the treatment - For 15 days

Sensitivity Study

The test organisms used were E.coil, Staphylococcus aureus, Streptococcus haemolyticus, Pseudomonas aeruginosa and Salmonell typhymureum. Anaerobic bacteria of the present case study were not available for the sensitivity study hence only the above said bacteria were tested for the in-vitro sensitivity study of veg-cure kwatha and Veg-Cure oil.

Conceptual stuyd of Tridoshaja Yoniyapada and Bacterial Vaginosis

Diseases of female reproductive organs are mainly described in Ayurvedic classics under the name of yonirogas. These are enumerated 20 in number with very short descriptions, at times that it is difficult to be identified and understood as any existing clinical condition. Abnormal vaginal discharge & menstrual bleeding are the main problems faced by woman of reproductive age; any correlation of Ayurvedic and modern concepts is beset with the usual problem. Ayurveda belives in the Tridosha theory while the germ theory dominates modern theories in the present study an attempt is being made to discuss the similarities and differences between Tridoshaja Yonivyapada and Bacterial vaginosis. Acharya Charaka says that it is not essential that all the disease be named and that the researcher should not despair but treat the patient on the basis of the dosha prakopa (Ch.Su. 19/44).

All the classical texts have explained Tridoshaja Yonivyapada in sutra form. The cardinal symptoms are given as Yoni shula, yoni daha, sweta picchila srava and symptoms are all the three dosha, the nidanas are also mentioned in very concise form i.e., consumption of congenial and non-congenial both type of rasa together and tridosha prakopaka ahar & vihar responsible for development of Tridoshaja yonivyapaka, nidana of shotha are predisposing factors for tridoshaja yonivyapada to develop i.e. deha ashuddhi, vishamaprasuti, achesta, Arsha, Marmopghata. Mithyopchara, abnormal ahara & vihara are precipitaing factors. All these nidana leading to shotha of vagina, dosha involved is vata, pitta and kapha, dushya is rasa, rakta and mamsa. Precipating factors along with krimis (microorganisms) help in manifestation of the diseases.

From the symptom point of view Tridoshaja Yonivyapada could be easily equated with bacterial vaginitis. The excessive white discharge, yonidaha, yonishula, yoni daurgandh and kandu are the symptoms characterizing both the condition.

From the treatment aspect modern drug act on the property of bacteriostatic or bactericidal prinicipal. This is a form of prakriti vighata mentioned in krimi chikitsa. The restoration of the normal equilibrium of doshas is the main aim of treatment in Ayurveda as all the diseases are said to be caused by the imbalance in these doshas. This is ture even in cases of Aagantuja vyadhis. Hence the present study has been undertaken to accomplish a relation between Tridoshaja Yonivyapada and Bacterial vaginosis and to find out the efficacy of Veg-Cure kwath doucha and Veg-Cure oil. Picchu dharma in curing the disease.

Discussion regarding observations

It was found that maximum number of patients were in between age range 20-35 years i.e. 90%. This age incidence i.e. 20-30 years a period of greatest sexual activity can be explained by factors such as trauma of intercourse, childbirth and abortion passage of infective organism by infected semen. This finding was similar to Donald et al 1952 who has also given the age incidence of 21-35 years.

57.5% of the women in study were Hindus. High frequency of Hindu may be due to predominance of Hindu community in the surrounding area. To draw any inference an extensive study is needed in large number of patients of different communities.

27.5% patients were found to be illiterate, 15.00% had education up to middle school, 40.00% went to school only for primary education and only 17.5% have ever been to collage.

45.00% of women affected belong to middle socio-economic status because they face a more stessful life. Only 0.500% case was found from high socioeconomic status. It can be predicted that women from affluent families. prefer private practitioners & good socioeconomic status provides access to better hygienic facilities. 50% patients belonged to low-income groups. Valayudhan and Kurup 1965 also found that most of their patients belonged to poor class. The high incidence and susceptibillity in poor class may be in part due to vitamin B complex and Vitamin A deficiency which predisposes to vaginal infection as reported by Desa Souza et al 1963. The other factors which are operative in poor ill fed patients are poor hygienic conditions ignorance about the proper cleaning the toilet habits and bad nutritional state of these patients giving decreased resistance due to high incidence of anaemia. Yet another factor operating is increased quantum of trauma because of repeated abortion, childbirth and high frequency of intercourses.

Maximum number of women was house wives i.e 75 % still they suffer from discharge and Infection. This observation is similar to P. Mayaued et.al. 1988. In the present study it was observed that 95% patients were leading a married life while 0.500% was either separated or widows. This shows that coital history plays an important role in the causation of this disease.

Maximum no. of patients have parity more than one account of the incidence of the disease one cannot come to a conclusion on the relationship of parity & incidence of disease as it was found to be distributed among cases of different parity. The present observation was similar to that reported by William 1963 & Negi et al 1972. The finding is similar to Sapkal et al 2000 who reported parity more than one in 100% patients. However, observations are different from J. paavenan et al 1988 who reported parity more than one in 30% patients according to M. Kpembwa et al 2001 maximum number of patients were nulliparous 55.5%.

While noting the menstrual history, it was observed that maximum patients 70% were having normal menstrual cycle. It is observed that there is no relation between menstruation & bacterial vaginosis. Showing maximum number of patients employed barrier methods, 37.5% and surgical method 20% for contraception. But about 32.5% did not employ any method of contraception. Shows those maximum patients had normal sleep pattern 70%. Maximum patients had Madhya kostha 57.50% and 30.00% had kroora kostha. Shows that 45.00% had samagni and 25.00% had manda agni, 30.00% had vishamagni. Shows that 50% were having an addiction to tea. While 27.5% did not have any addiction. No conclusion could be drawn in relation to disease.

Frequency of vata kapha and kapha pitta is almost equal i.e. 32.25% and 47.50% respectively suggesting that these two prakriti are more prone to suffer from bacterial vaginosis. 75% had madhyama type of samhana, madhyana type of satva was found in 85% patients. Table No.19.shows that 75% had madhyama ahara shakti, 92.50% has madhyam type of sara, no conclusion could be drawn from this data. Maximum patients belonged to Jangala dosha 95% except two patients belonged to anoopa desha becasue the study was conducted in jangala desha. Shows that 50% are vegetarian while 50% non-vegetarian.

Shows that maximum patients were suffering from recurrent vaginal infection i.e. 80.43%. This may be because of the fact that most of the patients were observed with 10-15 years of married life indicating that vulvo-vaginitis quite common in reproductive life due to the frequency common in reproductive life due to the frequency of excessive coitus. Shows that almost equal distribution of presence or absence of cervical erosion was observed. Cervical erosion is one of the etiologies behind the production of excessive veginal discharges.

Shows that among Aharaja nidana snakeerana bhojana 25%, Ajeerna bhojana 27.50% dushta asamyaka bhojana 35% and vishmasana, adhyashana and virudhasana constituted maximum incidence. Viharaja nidana deha ashuddi accounted for 75% and ativyavaya was found in 55% multiparity was see in 42.50%. These observations show that wrong modes of life either in terms of Ahara or vihara lead to infection.

As already said, gynecological disorders 42.50% abortion 52.50% and multiparty 42.50% all effect the normal physiology of the reproductive system. Pandu was seen in 45% and krisha 62.50%. These two conditions lower the resistance of the body to the pathogenic microorganisms. They easily get a good environment for their growth and manifest in to disease. Shows the incidence of dusthi of artava vaha srotas 47.50% of cases has maithuma asahishnuta and 45% were suffering from Artava dosha. It may be said that artava vaha srotas is definitely involved in pathology of Tridoshaja Yoni vyapada by acting as a carrier for vitiated vata pitta and kapha dosha to the site of khavaigunya i.e. kshubdha yoni.

Shows the cardinal symptoms found in 40 cases of Tridoshaja, yonivyapada. Excessive vaginal discharges i.e., yoni srava was present in all the cases (100%). Along with this yoni daurgandhya was seen in 62.5. Kandu was seen in 55% cases, yoni daha was found in 87.5%. It was seen that due to itching and inflammation of vulva and vagina the patients felt daha in yoni. It may be either due to the contact of urine, sweat or other secretion with the raw inflamed areas. It is difficult to draw any conclusion out of such a small sample but still it can be said that most of infections of vulva and vagina can be compared with Tridoshaja Yonivyapada due to the similarity of the symptoms.

Shows the incidence of associated symptoms in 40 cased of Tridoshaja Yonivyapada. It was found that pain in lower abdomen 85% and backache 82.5% was the most common associated symptom. Pain in lower abdomen was found to be usually of mild form. Presence of backache and pain in lower abdomen can be explained by the presence of sub clinical involvement of surrounding tissues or irritation of Para cervical nerves by chronic irritation. Pain abdomen can also be due to pelvic congestion.

Burning micturition was found in 67.5%. It can be explained due to the closeness of the vaginal anal and urethral orifice, the infection can easily pass form one area to another. It was seen that 50% of patients also suffered from cervical erosion. The excessive white discharges in these cases can also be attributed to the fact that eroded intracervical columnar epithelial cell produce discharge. Now this creates an alkaline atmosphere and results into increased growth of anaerobic bacteria resulting into commencement of infection.

General weakness was complained by 77.5% of cases. Fatigue, anaemia and peurperium act by lowering the resistance of the patient.

Discussion regarding subsidence of symptoms and investigations.

In the present study, as stated earlier two groups were formed. Group A received Veg-Cure kwath douche and Veg-Cure oil picchu dharana, as local treatment while Group B received modern treatment in the form of clotriz and betadine vaginal tablets for local use.

Group A professed 73.47% relief in yoni srava (vaginal discharge), 55% relief in yoni kandu, 60% relief in yoni daurgandhya and 61.11% relief in yoni daha, and the results were highly significant. Group A showed 57.14% relief in yoni shotha, 59.52% relief in backache, 64.71% relief in pain in lower abdomen and 59.46% relief in general weakness and these results were also highly significant. In every day observations it was found that the discharge after removal of picchu were coming out as coagulated thick material and they gradually reduced in amount as the treatment was carried on patients also stated that the discharges which were watery earlier in consistency now came as coagulum.

There was about 52.00% relief in burning micturition. This was highly significant. The patients suffering from burning micturition were advised to take lots of water, lemon water and sugarcane juice. The above results may be due to this pathya taken for burning micturition. Usually the patients relate weakness with vaginal discharges and the above effect may be a psychological effect as there was relief in vaginal discharge they thought that they felt better. Group B had 66.67% relief in yoni shotha which was significant. Group B professed more than 70% relief in yoni srava. Yoni Kandu, pain in more than 70% relief in yoni srava. Yoni kandu, pain in lower abdomen and yoni daha these result were highly significant. Group B patients exhibited 69.23%relief in yoni daurgandhya, 64.29% relief in backache, 58.62% relief in burning micturition and 63.89% relief in general weakness. Patients of Group B were also asked to drink lots of water, lemon water and sugarcane juice who were suffering from burning micturition.

The changes in Hb%, T.L.C. and E.S.R. was found to be insignificant in both the groups VDRL was found negative in all the patients. It may be because there was no internal medication other wise also they were in normal range.

Improvement in pH reverted back to normal acidic pH. It may be duet to the douching as the pH of Veg-Cure kwath was highly acidic (pH 3.5), second reason may be the healing of cervical erosion. Improvement in pus cells were also highly significant in both the groups though the relief percentage was 55.81% in Group A and 75.69% in Group B this was because of the cleansing and anti inflammatory effect of the durg.

As study was conducted in small number of patients and in limited time period follow-up could not be done after three cycle. So further extensive studies are to draw definite conclusion.

Discussion regarding mechanism of action of drug.

Tridoshaja yonivyapaka is caused by the vitiation of vata, pitta and kapha sthansamshraya in kshubdha yoni. This is responsible for excessive white discharges, itching, pain and daha. Excessive discharges are also due to Aagantuka krimi which when gets proper environment for their growth aggravated in the yoni and in turn increase white discharges. So for the treatment of Tridoshaja yonivyapada drug should fulfill the following criteria as already mentioned in drug review -

a. Shodhana karma
b. Stambhana and Yoni sankochana karma.
c. Krimighna.
d. Shothahara and kandughna.
e. Shulprashmana and vrana ropana.
f. Tridoshahara specially.

On analysis of components of Veg-Cure kwatha and Veg-Cure oil most of the drugs were tridosha shamaka few are vata-shamaka, pitta-shamaka and Kapha shamaka. All the drugs were kashaya rasa pradhana dravys and are katu in vipaka. Most of the drug were stambhana, yoni sankochana, krimighna, shothahara and vranaropana in their karma. All the drugs were laghu in guna, few were ruksha and few were snigdha also.

Gandhaka present in the oil and kwatha acted by krimighna yoni sankochana and kandughna karma. Sphatika acts as shothahara dravya. It also helped in stambhana, yoni sankochana, kandughna and vrana ropana effect.

Douche of Veg-Cure kwatha helped in cleaning and washing away the contaminated or infected discharges. This helped in removal of shedded epithelial cells and the clue cells on which the bacteria are adherent. As already mentioned the pH of Veg-Cure kwatha was found to be strongly acidic, hence it helped in restoring the acidic pH of vagina. Normally the pH of vagina is about 4.5 but due to low resistance or unhygienic condition of the part affected the lactobacilli are reduced and the pH of vagina increased towards alkalinity. Cervical erosion also acts in increasing the pH by increased cervical discharged which are alkaline in nature. Thus the anaerobic bacteria grow very easily and result in bacterial vaginosis.

Now by washing with the acidic kwatha pH reduced and the anaerobic bacteria are not allowed to grow further. Thus the physiology of vagina is restored.

Similarly the Veg-Cure oil picchu-dharana helps in healing the cervical erosion, having an astringent and constriction effect on the epithelial cells so that their shedding is reduced and clue cells seen are also lesser in number. Dhataki, amalaki, neem vata, lodhra, vibhitaka, gandhaka and sphatika are all predominantly kashaya in rasa thus having stambhana and yoni sankochana karma.

Yashtimadhu, neem gandhaka and sphatika are kandughna. Dhataki, nimb gandhaka, Vibhitaka, are kimighna while amalaki, yastimadhu, lodhra and are shothahara, And vranaropana.

It was seen that on removal of the talla picchu the discharges came out as coagulated material. So it can be hypothesized that this drug selectively coagulation necrotic or pathologically altered tissue. It does not affect healthy squamous epithelium. The protein coagulation property makes it potent antimicrobial. In vitro antimicrobial sensitivity study however did not show zone of inhibition against the pathogenic bacteria but it may be hypothesized that they may be bacteriostatic instead of being bactericidal. This drug helps in restoring the normal physiology of vagina and if proper hygiene is maintained afterwards then infection subsides and chances or recurrence are lesser. When the vagina becomes healthy the infection causing organisms die off and thus the disease subsides. One advantage of using this drug is that along with giving relief in the symptoms of Tridoshaja Yonivyapada it also heals cervical erosion.

CONCLUSION :

1. The disease Tridoshaja Yonivyapada described in Ayurvedic classics is comparable to Bacterial Vaginosis.
2. Vata, pitta & kapha (Tridoshas) are vitiated & nidana of shotha is responsible for development of Tridoshaja yonivyapada.
3. Excessive vaginal discharge, irritation in vulvo-vaginal region, foul smell, yoni daha, yoni shula are main cardinal symptoms and lower abdomen pain, backache, general weakness, burning micturition, cervical erosion etc are other associated symptoms.
4. Sthanika chikitsa is more applicable for the treatment of Tridoshaja Yonivyapada.
5. Veg-Cure oil dharana and Veg-Cure kwath mixed with sphatika douche is a simple, Safe, least expensive approach for treatment of Bacterial Vaginosis.
6. **This oil dose not destroy healthy squamous epithelium. It is antimicrobial; it selectively** coagulates pathologically altered tissue.
7. The treatment has got following advantages.
   - No side effects
   - Can be used as O.P.D. proceduce.
   - Can be used by the patient herself with out any assistance.
   - No special training is requied.
   - Has a broad application.
   - Can be used at periphery subcentres.
8. Veg-Cure kwatha with sphatika and Veg-Cure oil showed no adverse effects on vagina cervix and even on other vital signs. It not only cures Tridoshaja Yonivyapada but also cures cervical erosion; hence this method helps in improving the health of a female and prevents her from unwanted complications as outlined before.
9. Wet smear examination, pH and gram stain are the methods which at least must be used to diagnose the infective condition. And if possible culture should also be employed. But some times these infection-causing organisms are normal inhabitants hence culture is not the main tool for diagnosis of bacteria.
10. Per vaginum, per speculum and bimanual examination of pelvic region are compulsory as one may overlook the presence of other pathologies responsible for causing excessive vaginal discharges, for example, cervical erosion, fibroid etc.
11. Etiology of Tridoshaja Yonivyapada involves mithya-achara, tridosha prakopaka ahara vihara, krimi, deha-ashuddhi and other nidanas described for nija shotha.

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

Prevention of Bacterial Water Borne Disease

Sakarkar D.M., Faria Fatima, Gonsalves L.

Introduction

Water is capable of dissolving and suspending a tremendous variety of materials; so getting pure water is very difficult. Inorganic contaminants are compounds that typically do not contain the element carbon in their structure. Inorganic contaminants can become dissolved in water from natural sources or as the result of human activity. Inorganic contaminants are regulated in public water supplies due to their ability to cause acute poisoning, cancer and other health effects. Many of the naturally occurring compounds in water are either benign or even good for our health. Some minerals may be even essential to human health e.g. calcium and magnesium.

Sources of water contamination.

There are many causes for water pollution but two broad categories : direct and Indirect sources of contamination.

Direct sources : Outfalls from factories, refineries, waste treatment plants etc. directly into urban water supplies.

Indirect sources : Contaminants that enter the water supply from soils/groundwater system and from the atmosphere via rain water e.g. fertilizers and pesticides.

Symptoms

The levels of contaminants in drinking water are seldom high enough to cause acute health effects but generally associate with chronic health effects or cancers especially if the contaminants have carcinogenic potential.

Acute health effects : nausea, lung irritation, skin rash, vomiting and dizziness.

Chronic health effects : Effects that occur long after repeated exposure to small amounts of chemicals. Examples of chronic health effects may be liver and kidney damage, damage to the immune system or neurological system.

Detection of inorganic contaminants

There are specific tests to determine each of the inorganic contaminants. Many of them are present in minute quantities in water due to naturally occurring sources but are significant only if they cross over the maximum concentration level (MCL).

Microorganism

Microbes are small organisms that are present in the environment and some are capable of causing diseases in humans. They are present all around us in air, soil and water. Prior to the advent of modern water treatment involving disinfections and filtration, water borne diseases killed thousands of people all around the world. In areas that lack modern sanitation and water treatment, water-borne diseases are still a major contributor to mortality.

Clinical features : A range of syndromes, including acute dehydrating diarrhea (cholera) prolonged febrile illness with abdominal symptoms (typhoid fever) acute body diarrhea (dysentery) and chronic diarrhea (Brainerd diarrhea).

Etiologic agent : Common agents include Vibrio cholerae, Campylobacter, Salmonella, Shigella and the diarrhegenic Escherichia coli.

Incidence : Each year, an estimated 4 billion episodes of diarrhea result in an estimated 2 million deaths, mostly among children. Waterborne bacterial infections may account for as many as half of these episodes and deaths. Many deaths among infants and young children are due to dehydration, malnutrition or other complication of waterborne bacterial infections.

Over two billion persons living in poverty in the developing world are at hight risk. Sporadic cases are under reported. Despite global efforts during the water and sanitation decade, improvements in water and sanitation infrastructure have barely kept pace with population increases and migrations in India and other parts of the developing world.

Centralized water treatment and distribution systems are expensive and take years to complete. To provide the under-served with potable water in the short term requires innovative practical soluations such as point-of-use disinfection and safe water storage vessels. Electrolytic generations that produce sodium hypochlorite from salt water are now afforadable and available for use in the developing world. Village that produce and use sodium hypochlorite and that store treated water in vessels to protect it from recontamination have had neraly 50% reductions in diarrheal disease incidence for pennies per family.

Spreading of diseases

A person may be infected by drinking contaminated water, or by direct to hand-to-mouth transfer to the bacteria from faces or contaminated surfaces. Many people have no symptoms but can pass the disease on when they do not wash their hands after changing diapers or using the toilet.

Symptoms

Human symptoms for water-borne ilinesses range from fever and malaise to the better-know gastro intestinal symptoms such as diarrhea and stomachaches. Two to twelve days after contaminated food or water is swallowed symptoms may appear; the average is seven days. Most water-borne illnesses cause :

- Abdominal discomfort or cramping
- Fever
- Vomiting
- Diarrhea (Characteristics of each depend on the pathogen)
- Loss of weight and fatique may accompany several of the viral illnesses.
- Symptoms are more severe for people with weakened immune systems and can lead to death.

Treatment of diseases

For many of the sufferers gastroenteritis is a self-limited disases of few days duration. The main risks are of dehydration and electrolyte imbalance. Maintaining a good hydration is the most important thing in gastroenteritis. There is generally treatment available for bacterial and protozoal infections but for viral its more symptomatic relief. For bacterial infection anti-bacterial drugs can be given and for protozoal infections anti-protozoal drugs can be given.

Prevention of diseases

- Always wash your hands before handling food especially after using the toilet or handling pets or soil.
- Wash fruits and vegetables with clean water especially if you plan to eat them raw.
- Avoid unpasteurized milk and dairy products. Cooking kills germs.
- Don't swallow water from lakes, rivers or pools. Water swallowed while swimming may contain harmful bacteria.
- Clean sufaces where diapers are changed after every use.
- More precautions are needed travelling to developing countries. Foods and drinks, in particular raw fruits and vegetable may be contaminated if not washed properly.

Test for microbial quality of drinking water

Coliform Test : If is more reliable for bacteria.

Turbidity Test : It is more reliable for protozoa.

Reference :

1. Park's, textbook of Preventive & Social Medicine 18th Edition K. Park M/S Banarsidas Bhanot, Jabalpur, India.
2. Remington's The Science & Practice of Pharmacy, Vol.I & Vol.II 20th Edition, Alfanso R. Gennaro, Lippincott Williams & Wilkins Publishing Company, Philadelpia, U.S.A.
3. Health Education & Community Pharmacy 3rd Edition N. Murugesh Sathya Publishers Madurai, India.

बैद्यनाथ

सितोपलादि चूर्ण

पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

AYURVEDA AND LIVER CARE

Amit K. Jain*, R. Sagar, Anurekha Jain, Avijeet Jain, R. Gupta, M.S. Sikarwar

Introduction

The liver is the largest glandular organ in the body, and has more functions than any other human organ. A person's entire blood supply passes through the liver several times a day, and at any given time there is about a pint of blood there.

The liver has a pivotal role in human metabolism.

- The liver produces and secretes bile (to be stored in the gallbladder until needed) that is used to break down and digest fatty acids.
- It also products prothrombin and fibrinogen, both blood-clotting factors, and heparin, a mucopolysaccharide sulfuric acid ester that helps keep blood from clotting within the circulatory system.
- The liver converts sugar into glycogen, which it stores until the muscles need energy ant it is secreted into the blood stream as glucose.
- The liver synthesises proteins and cholesterol and converts carbohydrates and proteins into fats, which are stored for later use.
- It also produces blood protein and hundreds of enzymes needed for digestion and other bodily functions.
- The liver also produces urea, while breaking down proteins, which it synthesises from carbon dioxide and ammonia. It is eventually excreted by the kidneys.
- The liver also stores critical trace elements such as iron and copper, as well as vitamins A, D, and B12.
- The liver is also responsible for detoxifying the body of poisonous substances by transforming and removing toxins and wasts. There are five main sources of body toxins and wastes that the liver deals with: toxins from food (traces of pesticides, preservatives) and alcohol; toxins from outside (drugs, adulterants, and environmental pollutants), internally produced chemicals, such as hormones, that are no longer needed; nitrogen-containing waste left over from protein re-use; and energy production.

These toxins and wastes are converted into less harmful substances by the liver and then eliminated from the body.

Because of the significant role the liver plays in maintaining our health, we must do all we can to keep it functioning properly.

Symptoms of a "sluggish liver"

These are fatigue, general malaise, digestive problems, blood sugar regulation disorders (such as hypoglycaemia), high cholesterol, psoriasis, allergies and chemical sensitivities and constipation. Extreme caes of liver problems would be jaundice, hepatitis and cirrhosis.

In this article, we'll review the most common liver disease - hepatitis and cirrhosis. Then will see what Ayurveda can offer for the protection of this vital organ and survey Ayurvedic treatment of liver disease.

Hepatitis

Among the many disease that can affect the liver the most common is hepatitis. Hepatitis can be caused by drugs, viruses, bacteria, mushrooms, and parasites like amoebas or giardiasis. The most common hepatitis vruses affecting the liver are named for letters of the alphabet; hepatitis A, hepatitis B, hepatitis D and hepatitis E.

Hepatitis A - takes 14 to 21 days after infection to cause symptoms, It is transmitted through food.

Once infected with HAV, some symptoms such as dark yellow urine and fatigue will begin to appear within 25 days.

Hepatitis B - is on the increase world-wide. It is transmitted through direct contact with blood serum, saliva, faeces, urine and sexual contact.

Hepatitis C - is a truly serious disease with no known effective treatment. It is transmitted through blood and body fluids in transfusions, injections the sharing of IV needles with drug users and possibly by sexual contact with exposed partners.

---

* Sn. Lecturer, B.R. Nahata College of Pharmacy, Mandsaur, M.P. - 458001

Hepatitis D - Only occurs in the presence of Hepatitis B virus.

Hepatitis E - is another common type of hepatitis in developing countries. It occurs in epidemics. The infection route for it is faecal-oral, the same as the route for Hepatitis A virus; therefore, again you must be very careful in what you eat and drink.

Treatment of Hepatitis

Usually Hepatitis A is self-limiting. Most os the Hepatitis A virus patients will return to normal in between four to six weeks time. The antibodies that the body's immune system develops kill the infection and also produce immunity to Hepatitis A virus.

But with Hepatitis B virus and Hepatitis C virus, many people will go into a chronic phase that leads to chronic phase. With chronic HBV and HCV, 30% of patients develop cirrhosis of the liver or hepatocellular carcinoma.

In modern medicine, the only protection against hepatitis are the HAV and the HBV vaccines. There is nothing available for HCV protection so far. Therefore, limiting our exposure to hepatitis is the best prevention. We have to take the responsibility for prevention of hepatitis ourselves. This means using safe sexual practices, taking precautions when exposed to blood and blood products; avoiding the sharing of IV needles; taking care to eat in restaurants that enforce hand-washing policies among their employees; and avoiding scavenger seafood. These measures can cut your chances of being infected with hepatitis to a minimum.

Cirrhosis

Cirrhosis of the liver is a chronic, diffuse degenerative liver disease in which the parenchyma (the functional organ tissue) degenerates, the lobules are infiltrated with fat and structurally altered, dense perilobular connective tissue forms, and areas of regeneration often develop.

Cirrhosis is the seventh leading cause of death by disease in the United States. In most cases, though, there is a loss of liver cell function, and an increased resistance to blood flow through the damaged liver tissue (a condition known as portal hypertension) leading to oesophageal varices. Severe cirrhosis leads to ammonia toxicity hepatic coma, gastrointestinal haemorrhage, and kidney failure. As liver cells are destroyed, they are systematically replaced by scar tissue.

The most common cause of cirrhosis is believed to be alcohol abuse. Though it affects many organs, alcohol is especially harmful to the liver, and is a factor in about three-fourths of the cases of liver cirrhosis. Alcohol must be metabolized, and the liver performs most of that job, suffering serious damage in the process. Not only does alcohol destroy liver cells, it also robs them of their ability to regenerate. Such cofactors as hepatitis C virus can increase the risk of cirrhosis.

Treatment of liver cirrhosis

More than half of all liver disease could be prevented if we acted on the knowledge we already have. A voiding or limiting the use of alcoholic beverages. Man- made chemicals also pose an extreme threat to the liver.

Once cirrhosis has been diagnosed sodium and fluids should be restricted, and all alcohol consumption must cease. Antiemetics, diuretics and supplemental vitamins are prescribed. Patients should avoid exposure to infections and eat small but frequent meals of nutritious foods. The liver is the only organ that can generate healthy, new tissue. It is therefore possible to regenerate a cirrhosis-damaged liver if extraordinary therapies are followed and the underlying cause of the cirrhosis is eliminated.

Interferon-alpha, a powerful antiviral, may reduce the risk of cancer in some cirrhosis patients. In cases of totol liver failure, transplantation has been successful.

Ayurvedic Medicine in Treating Liver Disease :

Hepatitis A virus can be taken care of very easily with herbs. Many of the Ayurvedic herbs have shown remarkable results in clinical trials and studies. One of these is *Eclipta alba* (Bhringaraj), and others. are *Boerhavia diffusa* (Punarnava), and *Picrorhiza kurroa* (Katuki).

It is recommend that people take these herbs on a prophylactic basis when travelling to parts of the world where hepatitis infection is a risk.

HBV and HCV are more serious infections. We must be careful how we use Ayurvedic herbs for prevention of HBV and HCV. The herbs mentioned earlier have shown a protective action in HBV, and using them on a regular basis may be a good way to prevent HBV.

Ayurvedic medicines play a significant role in protecting the liver from cirrhosis and from liver cancer. Animal and clinical studies done with *Phyllanthus amarus*, *Phyllanthus niruri*, and *Eclipta alba* have proven their ability to reverse HBV infections in approximately 60% to 70% of patients. More significantly, with these herbs we are able to stop the process, which leads to cirrhosis and cancer of the liver.

This means that even if we are not able to make some patients negative for HBV and HCV, we can still protect them from cirrhosis of the liver, in which the liver stops functioning, and liver cancer.

Take very good care of your health. To protect your liver, avoid alcohol and caffeine. Drink green tea, exercise, reduce stress, and use the herbs mentioned above. Give this hard-working and essential part of your body a rest and a tune-up, and you will be rewarded with better health, more energy and higher disease resistance.

Reserch work on Hepatoprotective Plants -

***Andrographis paniculata* (kalmegh)**

Andrographolide, the active constituent isolated from the plant *Andrographis paniculata*, showed a significant dose dependent (0.75 - 12 mg/kg p.o. x 7) protective activity against paracetamol-induced toxicity on ex vivo preparation of isolated rat hepatocytes. It significantly increased the prevent viability of the hepatocytes as tested by trypen blue exclusion and oxygen uptake tests. It completely antagonized the toxic effects of paracetamol on certain enzymes (GOT, GPT and alkaline phosphatase) in serum as well as in isolated hepatic cells. Andrographolide was found to be more potent than silymarin, a standard hepatoprotective agent. [4]

***Phyllanthus Amaris* (Bhuiamala)**

Phyllanthus Amaris has been researched for its effects on hepatitis, and in 1998 Thyagaran et al. reported that 22 of 37 cases of Hepatitis B lost their "carrier" status after using the herb for a month.

***Boerhavia diffusa* (Punarnava)**

An alcoholic extract of whole plant *Boerhavia diffusa* given orally exhibited hepatoprotective activity against experimentally induced carbon tetrachloride hepatotoxicity in rats and mice. The extract also produced an increase in normal bile flow in rats suggesting a strong choleretic activity. The extract does not show any signs of toxicity up to an oral dose of 2g/kg in mice.[7]

***Eclipta alba* (Bhringaraj)**

The hepatoprotective effect of the ethanol/ water (1:1) extract of *Eclipta alba* was studied at subcellular levels in rats against (CCl_4)- induced hepatoxicity. The loss of heaptic lysomal acid phosphatase and alkaline phosphatase by (CCl_4) was significantly restored by *Eclipta alba*. The study shows that hepatoprotective activity of *Eclipta alba* is by regulating the levels of hepatic microsomal drug metabolising enzymers. [5]

***Swertia Chirata* (Chirayata)**

Simultaneous treatments with *Swertia Chirata* (in different doses, viz, 20, 50 and 100 mg/kg body wt daily) and (CCl_4) caused improvement at both biochemical and histopathological parameters compared to that of (CCl_4) treatment alone but it was most effective when *Swertia Chirata* was administered in a moderate dose (50 mg/kg body wt).[2]

***Terminalia belerica* (Baheda)**

Compound I isolated from fraction TB5 of *Terminalia belerica* and finally identified as 3,4,5 trihydroxy benzoic acid (gallic acid) was evaluated for its hepatoprotective activity against carbon tetrachloride (CCl_4) - induced physiological and biochemical alterations in the liver. Administration of compound I led to to significant reversal of majority of the altered parameters. Our results confirm the presence of hepatoprotective activity in altered parameters. Our results confirm the presence of hepatoprotective activity in Compound I. [3]

***Tinospora cordifolia* (Guduchi)**

Outstanding results in people suffering from jaundice have been obtained using a herb called *Tinospora cordifolia:* In 1993, Rege et al. (ibid) used the herb in malignant obstructive jaundice: half of the group received conventional treatment - drugs and drainage - the other half were treated with drainage plus *Tinospora cordifolia.* After conclusion of treatment, 50% of the drug-treated group was found to have blood poisoning while none of the herb treated group developed this problem. After surgery, only 40% of the drug-treated group survived, whereas an amazing 92.4% of those treated with the herb lived.

The hepatoprotective effect of *Tinospora cordifolia* been studied in carbon tetrachloried induced liver damage in rats. While acute damage was enhanced by prior exposure to the drug, it proved effective in the prevention of fibrosis, and in stimulating regeneration of hepatic tissue. [1]

Picrorrhiza kurroa (Katuki)

Picrorrhiza kurroa is one of the herbs they recommend to support the liver not only in everday situations, but in cases where severe viral infections attack; a 1996 study by Vaidya found protection against viral hepatitis, and other studies have demonstrated its helpfulness in protecting against alcohol. [8]

The hepatoprotective activity of picroliv, the irridoid glycoside mixture from Picrorrhiza kurroa, was determined in adult male albino rats. Pretreatment with picroliv prevented the hepatotoxic effects of paracetamol and galactosamine as evidenced by various biochemical and histopathological observations. Maximum hepatoprotective effect was observed woith daily oral doses of 6 and 12 mg/kg for 7 or 8 days. The antihepatotoxic action of picroliv seems likely due to an alteration in the biotransformation of the toxic substances resulting in decreased formation of reactive metabolitis. [4]

References

1. Rege, N. et. al. : Ind. Drugs Sept. 544 (1984)
2. Mukherjee S, Sur A, Maiti BR. Hepatoprotective effect of Swerita chirata on rat. Indian J Exp Biol, 1997 Apr; 35(4): 384-388.
3. Anand KK, Singh B, Sexena AK, Chandan BK, Gupta VN, Bhardwaj V. 3,4,5-Trihydroxy bezoic acid (gallic acid), the hepatoprotective priniciple in the fruits of Terminalia belerica bioassay guided activity. Pharmacol Res 1997 Oct; 36(4): 315-321.
4. Visen PK, Shukla B, Patnaik GK, Dhawan BN. Andrographolide protects rat hepatocytes against paracetamol-induced damage. J Ethnopharmacol 1993 Oct; 40(2):131-136.
5. Saxena AK, Singh B, Anand KK. Hepatoprotectice effects of Eclipta alba on subcellular levels in rats. J Ethnopharmacol 1993 Dec; 40(3): 155-161.
6. Chandan BK, Sharma AK, Anand KK. Boerhavia diffusa: a study of its hepatoprotective activity. J Ethnopharmacol 1991 Mar; 31(3) 299-307.
7. Ansari RA, Tripathi SC, Patnaik GK, Dhawan BN. Antihepatoxic properties of picroliv: an active fraction from rhizomes of Picrorhiza
8. Vaidya (Better Nutrition June 1999 p. 29)

बैद्यनाथ

पंचसकार चूर्ण

पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

ONION AND ITS PHARMACOGNOSTICAL ASPECTS

Mukesh S. Sikarwar, Sushil K. Dubey, Amit K.Jain*

Introduction

Onion consists of the fresh or dried, thick and fleshy leaf sheaths and stipules of *Allium cepa* Linn. Family-alliaceae.

Pharmacopeial Name : Allii cepae bulbus.

Description

Onion is a bulbous perennial or biennial herb believed to be native to western Asia. Numerous varieties are cultivated worldwide[1]. It is cultivated throughout India[2]. Onion bulb has been used as a food for thousands of years. It has also been used medicinally. According to traditional herbalists, onions are antiseptic and diureitc in action[3]. They are used therapeutically in the Ayurvedic, Siddha and Unani systems of Indian medicine, in various dosage forms including the decoction, infusion and fresh juice, as well as raw, cooked, and/or roasted bulb. The juice form is usually combined with honey, ginger rhizome juice, and ghee (liquid clarified butter)[4]. Its introduction into traditional Chinese medicine is fairly recent and its use limited[1]. The official onion bulb of the Pharmacopoeia of the People's Republic of China is a different species (Allium macrostemon Bge.) than that of the Commission E monographs (*A.cepa.*). The Chinese pharmacopeia indicates its use for treatment of angina pectoris, cough and dyspnea (painful, difficult breathing), and also tenesmus (painful spasmodic contraction of anal or vesical sphincter) in dysentery[5].

Chemistry and Pharmacology

Onion bulb contains alliin, essential oil, peptides and numerous organic sulfur compounds, including trans-S-(1-propenyl) cysteine sulfoxide, S-methyl-cysteine sulfoxide, S-propylcysteine sulfoxide, and cycloalliin; flavonoids; phenolic acids; sterols including cholesterol, stigmasterol, b-sitosterol; saponins; sugars; and a trace of volatile oil composed mainly of sulfur compounds, including dipropyl disulfide[1]. A fresh onion bulb contains fructans with a low degree of polymerization, flavonoids and sulfur-containing compounds. When an onion bulb is bruised, the sulfoxides are degraded by alliinase and release pyruvic acid and alkylthiosulfinates, which repidly form into disulfides[6].

The Commission E reported antibacterial, lipid and blood pressure-lowering properties and inhibition of thrombocyte aggregation.

Onions have appetizer and gastric tract stimulant actions[7]. An animal study concluded that serum, liver and aorta triglyceride levels were decreased after use of an aqueous extract of onion[8]. In vitro studies have shown antimicrobial activity and animal studies have demonstrated hypoglycemic activity[6]. The antibacterial activity of onion was determined by a study that researched the activity of oral bacteria, including Streptococcus mutans and Porphyromonas gingivalis[9].

Uses

In Germany, onion bulb is approved in the Commission E monographs for loss or appetite and prevention of atherosclerosis. The World Health Organization supports Commission E, noting that the following use is supported by clinical data: "treatment of age-dependent changes in the blood vessels, and loss of appetite"[10]. Onions are also cooked in milk and eaten in order to clear congestion in the lungs. In the United States, onion bulb was used somewhat in the Eclectic system of medicine during the nineteenth century and early twentieth century. Its actions were considered to be comparable to those of garlic, though milder. It was dispensed as syrup, made from the fresh juice with sugar, for treatment of cough and bronchial conditions. It was also given as a tincture, made with gin, for kidney gravel and/or dropsy. Onion is presently classified in the Homeopathic Pharmacopoeia of the United States as an OTC Class C drug prepared as a (1:10) (w/v) alcoholic tincture of the mature bulb (preferably the red variety), in 45% v/v alcohol.

Several clinical studies have been found in the literature. Recent investigations suggest that therapies aimed toward the prevention of atherosclerosis should include a diet rich with onions. Contemporary studies have shown that onions, like garlic, may inhibit platelet aggregation and interfere with fibrinolysis[11]. The antiplatelet

---

* Sn. Lecturer, B.R. Nahata College of Pharmacy, Mandsaur, M.P. 458 001 (INDIA)

activity is genotype dependent and correlates directly with bulb sulfur content[12]. Antihypercholesterolemic and hypoglycemic use for onions have also been supported by research. Clinical studies have reported that onions lowered lipid levels and inhibited the formation of blood clots in study subjects. Other studies have investigated the effect of butter fat and onion on coagulability of blood[13], its effects on serum triglyceride, betalipoprotein-cholesterol and phospholipids in alimentary lipemia[14], the fibrinolytic activator action of steam-distilled and ether extract of onion[15], the effects of an oily chloroform extract of onion on platelet aggregation and thromboxane synthesis[16], the effects of an aqueous extract of onion on the inhibition of platelet aggregation[17], the use of crude onion oil in the treatment of hypertension and hyperlipidemia[18], and the relationship between consumption of onions with a reduced risk of stomach carcinoma[19].

The Commission E approved onion for loss of appetite and prevention of atherosclerosis.

Supporting the Commission E uses, the World Health Organization notes the following uses are supported by clinical data:age related change in blood vessels and loss of appetite[10].

A preliminary epidemiological study suggests that increased consumption of onion, as well as other Allium vegetables, may reduce the risk of gastric cancer[21].

Use During Pregnancy and Lactation

No restrictions known.

Dosage and Administration

- √ 50g per day of fresh bulb or 20g per day of cut dried bulb, pressed juice from fresh onions and other oral galenical preparations.
- √ Dried bulb : 20g (Commission E).
- √ Fresh bulb : 50g (Commission E).
- √ Infusion : Steep 1-2 teaspoons in 120 ml water (Lust, 1974).
- √ Tincture : 5 ml (1 teaspoon), three to four times daily.

Duration of administration:

Note: If onion preparations are used over several months, the daily maximum amount for diphenylamine is 0.035 g.

References

1. Leung, A.Y. and S. Foster. 1996. Encyclopedia of Common Natural Ingredients Used in Food, Drugs, and Cosmetics, 2nd ed. New York: John Wiley & Sons, Inc.
2. Kapoor, L.D. 1990. Handbook of Ayurvedic Medicinal Plants, Boca Raton: CRC Press.25
3. Grieve, M. 1979. A Modern Herbal. New York: Dover Publications, Inc.
4. Nadkarni, K.M. 1976. Indian Materia Medica. Bombay: Popular Prakashan. 63–64.
5. Tu, G.(ed.). 1992. Pharmacopoeia of the People's Republic of China (English Edition 1992). Beijing:Guangdong Science and Technology Press.8.
6. Bruneton, J. 1995. Pharmacognosy, Phytochemistry, Medicinal Plants. Paris: Lavoisier Publishing.
7. Taber, C.W. 1962. Taber's Cyclopedic Medical Dictionary, 9th ed. Philadelphia: F.A. Davis Company. O-9.
8. Sebastian, K.L., N.T. Zacharias, B. Philip, K.T. Augusti. 1979. The hypolipidemic effect of onion (Allium cepa Linn) in sucrose fed rabbits. Indian J Physiol Pharmacol 23(1):27-30.
9. Kim, J.H.1997. Anti-bacterial action of onion (Allium cepa L.) extracts against oral pathogenic bacteria, J Nihon Univ. Sch. Dent. 39(3):136-141.
10. World Health Organization (WHO). 1999. "Alli cepae bulbus." WHO Monographs on Selected Medicinal Plants, Vol. I. Geneva: World Health Organization 5-15.
11. Reynolds, J.E.F. (ed.). 1989. Martindale: The Extra Pharmacopoeia, 29th ed. London: The Pharmaceutical Press. 1597.
12. Goldman, I.L. M. Kopelberg, J.E. Debaene, B.S. Schwartz. 1996. Antiplatelet activity in onion (Allium cepa) is sulfur dependent.

Thromb Haemost 76(3):450-452.

13. Jain, R.C. 1971. Effect of butter fat and onion on coagulability of blood. Indian J Med. Sci. 25(9):598-600.

14. Jain, R.C., K.N. Sachdev, S.S.Kaushal. 1973. Effect of onion ingestion on serum triglyceride, betalipoprotein-cholesterol and phospholipids in alimentary lipaemia. J Assoc Physicians India 21(4):357-360.

15. Augusti, K.T., M.E. Benaim, H.A. Dewar, R. Virden. 1975. Partial identification of the fibrinolytic activators in onion. Atherosclerosis 21(3):409-416.

16. Makheja, A.N., J.Y. Vanderhoek, J.M. Bailey. 1979. Effects of onion (Allium cepa) extract on platelet aggregation and thromboxane synthesis. Prostaglandins Med. 2(6):413-424.

17. Srivastava, K.C. 1984. Aqueous extra onion, garlic and ginger inhibit plate aggregation and alter arachidonic acid metabolism. Biomed Biochim Acta 43(8-9): S335-S346.

18. Louria, D.B. et al, 1985. Onion extract in treatment of hypertension and hyperlipidemia: A preliminary communication. Curr Ther Res 37(1):127-131.

19. Dorant, E., P.A. van den Brandt. R.A. Goldbohm, F. Sturmans. 1996. Consumption of onions and a reduced risk of stomach carcinoma. Gastroenterology 110(1):12-20.

20. Lust. J. 1974. The Herb Book. New York: Bantam Books. 298.

21. You, W.C. et.al. 1989. Allium vegetables and reduced risk of stomach cancer. J Natl Cancer Inst 81(2): 162-164.

बैद्यनाथ

जन्मघूँटी

जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती। इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं।

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी

Applied Aspect of Dashavidha Pariksha with Special Reference to Samhanana and Pramana

Dr. Ashutosh Kumar Yadav, MD[1], Dr. Suman Yadav[2],
Dr. Parameswarappa S. Byadgi[3], MD, Ph.D., Prof. C.B. Jha[4]

Introduction :

A patient constitutes the Karyadesa or the site for the administration of therapies with a view to bring back the homeostasis of the factors which brings normalcy among dhatus. The purpose of examination is to obtain knowledge regarding the span of life, strength and the intensity of morbidity, because if a Physician having not examined properly administers intensely potent drug suddenly, it may kill the patient. Weak patients are incapable of resisting strong therapies like medicaments dominating in agni and vay mahabhutas, application of alkalies and heat (Cauterization) and surgical operations. They may cause instantaneous death due to unbearable and over intense impulse of the drug. Keeping this in mind, the Physicians treat the weak patients with drugs which are unharmful, mild, delicate, heavy in progressive order, without complication, and not creating any emergent condition, particularly ladies because they have unstable, soft, bare and timid heart and are mostly delicate, weak and subordinate to others. In brief, given medicines should not be injurious to the body and mind. Stronger therapies that are neither distressing during their digestion nor associated with serious complications may be administered slowly and gradually. Similarly; if weak therapies are administered to a strong individual having a serious disease without proper examination, the disease does not get cured. Hence, the patient should be examined in respect of Prakriti (constitution), Vikriti (Morbidity), Sara (Excellence of dhatus), Samhanana (Compactness of organs) Pramana (Measurements of the organs of the body), Samya (Suitability), Sattva (Psychic conditions), Ahara sakti (Power of intake and digestion of food), Vyayama sakti (Power of performing exercise) and Vayas (age) in order to ascertain his strength and the intensity of the malady.

Thus, the strength of individuals can be classified depending upon the superiority, mediocrity and inferiority of the above mentioned factors, viz. Prakriti (Physical constitution), Sara etc., except vikriti or morbidity.

Three types of the strength of the Doshas are inferred from the three types of the intensity or morbidity. Thereafter, depending upon the nature of the Doshas involved, three types of medicaments, viz. strong, mild and moderate should be administered. With a view to ascertaining the life span of an individual, symptoms described in Indriyasthan and also in the 8th chapter of Sharira Sthana should be taken into account.

Ten fold examinations should be cone to understand the overview condition of the person in order to carry out scientifically and methodically therapeutic treatment in a systemic planned manner to get desirable and satisfying successful results. Exception to this rule is vikriti pariksa, which helps to elicit the factors which help to generate the disease process.

1. Samhanana (Compact)

(Examination of compactness of body organs)

Patient must be examined with reference to his samhanana or compactness of the body. Samhanana, samhati and samyojana–these terms are synonymous. A person having compact body and he reflects the quality of the overall body built. Clinically patient may be assessed Pravara (Superior), Madhyama (Moderate), and Avara (Inferior) Samhanana depending on the compactness of body organs.

A. Pravara Samhanana :

1. Symmetrical and well demarcated bones
2. Well knit joints.
3. Well bound muscles and blood.
4. Strong built.
5. Excellent strength.

B. Madhyama Samhanana:

---

1. J.R., IMS, BHU, Varanasi. 2. M.D. Scholar, NIA, Jaipur
3. Lect., Dept. of Kayachikitsa (Vikriti Vigyan), Institute of Med. Sci., BHU, Varanasi - 221 005
4.Prof. & Head, Department of Rasa Shastra, IMS, BHU

1. Moderately symmetrical and moderately demarcated bones.
2. Moderately knit joints.
3. Moderately bound muscles and blood.
4. Moderate built.
5. Moderate strength.

C. Avara Samhanana :

1. Weakly demarcated bones
2. Weakly knit joints
3. Weakly bound muscles and blood
4. Weak built
5. Weak strength

2. Pramana (Anthropometry)

(Examination of measurements of bodily organs)

This is determined by measuring the height, length and breadth of the organs by taking the fingerbreadth of the individual as the unit measurement. A body possessed of organs having proper measurement is endowed with longevity, strength, ojas (energy), happiness, power, wealth and virtues.

If the measurement is either on the high or low side the individual possesses qualities contrary to what are mentioned for proper measurement body.

For clinical assessment it can be subdivided into -

A) Pravara Pramana

Height Length Breadth	A person who fulfils standard measurement criteria excellently.

B) Madhyama Pramana

Height Length Breadth	A person who fulfils standard measurement criteria moderately.

C) Avara Pramana

Height Length Breadth	A person who fulfils standard measurement criteria up to lesser extent.

Factors modifying drug action

Variation in response to the same dose of a drug between different patients and even in the same patient on different occasions is a rule rather than exception. A multitude of host and environmental factors influence drug response. Though, individual variation cannot be totally accounted for by these factors, their understanding can guide choice of appropriate drug and dose for an individual patient. This concept was clearly defined while describing Dashavidha pariksha to understand and to implement a suitable therapeutics in a suitable dose.

Various qualitative and quantitative factors modify drug actions :

A. Quantitatively - The plasma concentration and/or the action of the drug is increased or decreased. This view was clearly defined when describing the state of ahara sakti, pramana and samhanana.

B. Qualitatively - The type of response is altered e.g. drug allergy on idiosyncrasy. The various factors are discussed below -

1. Body size - it influences the concentration of the drug attained at the site of action. For exceptionally obese or lean individuals and for children dose may be calculated on body weight (BW) basis;

$$\text{Individual dose} = \frac{\text{BW (Kg)}}{70} \times \text{average adult dose}$$

Ayurvedic acharyas defined the Samhanana and pramana to implement strong, moderate and mild dose of the medicine depending on their pravara, madhyama and avara characteristics properties respectively.

2. Age : The dose of a drug for children often calculated from the adult dose.

$$\text{Child dose} = \frac{\text{BW (Kg)}}{70} \times \text{adult dose (young's formula)}$$

Solid dosage forms and aerosol inhalations are difficult to administer to young children. Children are growing and are susceptible to special adverse effects. This view was described clearly and that's why mild therapeutics was described in Ayurveda for the management of child health problems. That's why mercurial preparations. Purificatory procedures etc. are strictly contraindicated in children to prevent adverse effects.

Elderly — in the elderly, renal function progressively declines (intact nephron loss) and drug does have to be reduced. This principle is clearly described in Ayurveda i.e. elderly patients must be handled delicately and mild therapeutics should be employed to lessen the adverse effects and to gain good results. Keeping this in mind purificatory measures are contraindicated in elderly patients to avoid the incidence of adverse drug reactions and mild to moderate medicaments advised.

3. Sex : Females have smaller body size and require doses that are on the lower side of the range. Subjective effects of drugs may differ in females because of their mental make up. In women consideration must also be given to menstruation, pregnancy and lactation. There are marked physiological changes during pregnancy, especially in third trimester, which can alter drug disposition.

This concept was accepted in Ayurvedic literature i.e. females are having moderate compactness, measurements, essence of dhatus, power of digestion and exercise etc. That's why moderate therapeutic must be employed to lessen the incidence of adverse drug reactions. During pregnancy mild therapeutic approach was described and stronger therapies like alkali, cauterization, purificatory proceudures are contraindicated.

4. Species and race : There are many examples of differences in responsiveness to drugs among different species.

Different species having Prakriti of different type, this leads to the responsiveness of the medicine.

5. Genetics: The dose of the drug to produce the same effect may vary 4-6 folds among different individuals. This is mainly because of differing rates of drug metabolism as the amount of microzomal enzymes in genetically controlled. There are also differences in target organ sensitivity.

This concept was defined under Prakriti and Sara Pariksa. This varies in different constitution and essence of dhatus because drug metabolism varies among different subclassification of Prakriti and Sara.

6. Environmental factors and time of administration : Several environmental factors affect drug responses; exposure to insecticides, carcinogens, tobacco smoke and consumption of charcoal broiled meat are well known to induce drug metabolism. Type of diet and meals can alter drug absorption. Subjective effect of a drug may be markedly affected by the setup in which it is taken.

This view was clearly defined under Kala and Desa pariksa. Pathya regimen, time period for the ingestion of medicine was described in detail in Ayurvedic texts and that's why different time period for the consumption of medicine described to enhance the efficacy of the prescribed compound.

7. Psychological Factor : Efficacy of a drug can be affected by patient's beliefs, attitudes and expectations.

This view was clearly stated by our Acharyas under sattva pariksa and sattva Sara pariksa in detail.

8. Pathological state : Not only drugs modify disease processes, several diseases can influence drug disposition and drug action.

This concept was clearly defined under vikriti pariksa.

9. Tolerance : It means requirement of higher dose of a drug to produce a given response. It is a widely occurring adaptive biological phenomenon. It may be natural or acquired. This concept was described under Satmya Pariksa.

Conclusion :

Patient is the substratum of the act. Examination of the patient is conducted for the knowledge of the span of life or of the degree of strength and morbidity. Thus one should determine the strength of entities like Pramana, Samhanana etc. (except vikriti) in three divisions – superior, moderate and inferior. According to serverity to vikriti (morbidity) the three degrees of strength of dosas are inferred. Depending on the severity of pathogenesis factors strong, mild and moderate medicaments must be prescribed. So, examination of dashavidhi pariksa is necessary to get success in treatment by employing proper suitable therapeutics to the diseased individuals.

Message

Concept of Dashavidha Pariksa described in Ayurveda is very much scientific in terms of understanding the strength of diseases, person, causative factors etc.

Before going to plan any therapy to the patient proper understanding of patient's physique and mind, both are equally important to get success in treatment.

Knowledge of strength, morbidity and span of life may be obtained through Dashavidha pariksa.

Understanding of concept of dashavidha with special emphasis to Samhanana and pramana pariksha is need of the hour. In this regard Rachana specialists should prepare a protocol to implement standard easily accessible criteria at OPD&IPD levels, so that one can understand and plan suitable appropriate therapeutics to get desirable results.

References :

1. Charaka Samhita, P.V. Sharma, Chaukhambha Publications, Varanati.
2. Essentials of Medical Pharmacology, K.D. Tripathy, Jaypee Publications, 2004

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध । संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है । इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है । प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं ।

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०

अपना शब्द ज्ञान परखिये !

*डा० गोपेश कुमार न.शर्मा
**डा० दिनेश कुमार शर्मा

(दिसम्बर माह का शेषांश)

त्रि. (संख्या 'तीन' को प्रदर्शित करने वाले कुछ शब्द)

त्रिकटु - शुण्ठी, मरिच व पिप्पली ।

त्र्यूषण -

त्रिकाल - 1) भूतकाल, वर्तमान काल एवं भविष्य काल
2) प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल ।

त्रिगुण - सत्व, रज तथा तम ।

त्रयी - तीन वेद - ऋक्, यजु एवं साम ।

त्र्यक्षक, त्र्यम्बक - शिव के पर्यायवाची नाम ।

त्रिलोचन -

त्र्यक्षर - ओम् (अ, उ तथा म) ।

त्रिकर्मन् - (ब्राह्मण के) तीन मुखा कर्म - यज्ञ, वेदाध्ययन एवं दानपुण्य ।

त्रिकूट - आधार पर्वत जहाँ राक्षसराज की राजधानी लंका बसी थी ।

त्रिगर्त - जालन्धर का एक नाम ।

त्रिगण - धर्म, अर्थ एवं काम-इनका समूह ।

त्रिजगत - तीन लोक - 1) स्वर्ग, धरती एवं पाताल
2) भूलोक, वायुमंडल एवं द्युलोक ।

त्रिदण्ड - शरीर मन एवं वाणी के संयम को दर्शाती तीन लकड़ियों को एक साथ बांधकर बनाया हुआ साधु का दण्ड (डंडा) ।

त्रिदोष - वात, पित्त एवं कफ ।

त्रिपत्रक - पलाश वृक्ष ।

त्रिपथगा - गंगा नदी (तीन मार्गों का अनुसरण करनेवाली)

त्रिपुण्ड्रक - मस्तक (भाल) पर भस्म या चंदन से तीन रेखाओं वाला तिलक ।

त्रिपुर - राक्षसों द्वारा बनाई गई स्वर्ण रजत एवं लौह की पुरियाँ (नगर) जिसे भगवान् शिव ने राक्षसों समेत नष्ट किया ।

त्रिफला - हरितकी (हरड़), विभीतकी (बहेड़ा) तथा आमलकी (आँवला) ।

त्रिमुर्ति - ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश का संयुक्त रूप ।

त्रिवर्ग - 1) धर्म अर्थ काम 2) क्षय स्थान तथा वृद्धि ।

त्रिवेणी - तीन नदियों का संगम - मुख्यतः गंगा यमुना एवं भूमिस्थ सरस्वती का संगम (प्रयागराज) ।

त्रिस्थली - तीन पवित्र स्थान - वाराणसी, प्रयाग एवं गया ।

त्रिक - 1) वह स्थान जहाँ तीन रास्ते मिलते हैं। (तिराहा) ।
2) मेरुदण्ड का निम्न भाग - त्रिकास्थि (Sacrum)।
3) ज्योतिष के अनुसार कुण्डली का छठा आठवाँ एवं बारहवाँ पर।
4) त्रिफला, त्रिकटु एवं त्रिजात - तीनों का समूह ।

त्रितय - श्रद्धा, वित्त एवं विधि (अनुशासन) का समूह ।

त्रिपथ - अध्यात्म के तीन मार्ग-ज्ञान, कर्म एवं भक्ति ।

त्रिप्रश्न - दिशा, देश (स्थान) एवं समय (काल) संबंधित प्रश्न ।

त्रिभम - तीन मंजिला भवन ।

त्रिमद - 1) विडंग, मुस्तक एवं चित्रक ।
2) ज्ञान, धन एवं कुल संबंधित मद (अहंकार) ।

त्रिमधुर - 1) दूध, शर्करा एवं मधु ।
2) घृत, शर्करा एवं मधु ।

त्रिमुनी - पाणिनि; कात्यायन एवं पतञ्जलि ।

त्रिशर्करा - शर्करा, गुड़ एवं हिमोत्पन्न या मिश्री ।

त्रिलवण - सैंधव, सौवर्चल एवं विड् ।

त्रिकरण - अग्नि, जल तथा अन्न का समूह ।

त्रिजात - जात = सुगंध तीन सुगंधित द्रव्य - इलायची,

---

* दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालंधर & ** जे.एस.एस. आयुर्वेद कालेज, मैसूर - 15

दालचीनी तथा तेजपत्र ।

त्रिकण्टक - 1) बृहती, कंटकारी तथा धन्वयास (धमासा) ।
2) गोक्षुर, स्नूही तथा टेंगरा (एक प्रकार की मछली)।

त्रिकर्षिक - अतिविषा (अतीस), मुस्तक (मोथा) तथा शुंठी (सोंठ) ।

त्रिक्षार (क्षारत्रय)-यवक्षार, सज्जीक्षार एवं टंकणक्षार ।

त्रिलौट - सुवर्ण, रजत तथा ताम्र ।

त्रिगंधक - गंधक, हरताल तथा मन:शिला ।

त्रिकूर्चक - एक प्रकार का शस्त्र ।

त्र्यञ्जन - तीन अंजन का समूह-रसाजन, पुष्पांजन एवं कृष्णांजन ।

त्रिभण्डी - त्रिवृत्त का पर्याय ।

त्रिविक्रम - 1) वामन - विष्णु का अवतार ।
2) एक रसौषधि - अश्मरी रोग में प्रयुक्त

त्रिसूत्र या त्रिस्कन्ध- हेतु (कारण), लिंग (लक्षण) तथा औषध (चिकित्सा) इन तीन भागों में वर्गीकृत आयुर्वेद ।

त्रिस्थूण - शरीर के तीन स्तंभ - वात, पित्त एवं कफ ।

मधुरत्रिफला - द्राक्षा, गंभारी एवं परूषक फल ।

समत्रितय - हरितकी, शुण्ठी एवं गुड़ ।

लघुत्रयी - शपर्ङ्गधर संहिता, भावप्रकाश एवं योगरत्नाकर

वृहत्रयी - चरक संहिता, सुश्रुत संहिता तथा अष्टांग हृदय ।

प्रस्थानत्रयी - उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र एवं गीता ।

त्रिकण्ट - एक विषाक्त कीट-कणभ (सुश्रुत)।

त्रिकण्टक - 1) गोक्षुर 2) कणभ ।

त्रिकोश - वस्तिकर्म में उपयोगी नली ।

त्रिप्रकृति - दोषप्रकृति, ऋतुप्रकृति तथा रोग प्रकृति (काश्यप ।

त्रिप्रकोपण - दोषप्रकोप या रोगोत्पत्ति के तीन कारण - असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग, प्रज्ञापराध तथा काल।

त्रिमण्डला - विषैला कीट (सुश्रुत) ।

त्रिमर्मीय - हृदय बस्ति तथा शिर-इनसे संबंधित ।

त्रिविधशिष्य - तीव्रबुद्धि, मध्यबुद्धि एवं मंदबुद्धि शिष्य ।

त्र्यम्बक - नारिकेल ।

त्रियामा - रात्रि का पर्याय ।

त्रियोनि: - काम क्रोध व लोभ से जुड़े निम्न कर्म ।

त्रिसंध्या - सूर्योदय, मध्याह्न तथा सूर्यास्त ।

चतुर् (संख्या 'चार' का प्रभाव प्रदर्शित करने वाले शब्द)

चतुर्बीज - कलौंजी, मेथी, अजवायन तथा चन्द्रशूर ।

चतुर्भद्र - 1) धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष (पुरुषार्थ)
2) एक बस्ति कल्प-4-4स्नेह बस्ति आस्थापन से पूर्व एवं पश्चात् ।

चतुर्दिक - प्राची (पूर्व), प्रतिची (पश्चिम), उदिची (उत्तर) तथा अवाची (दक्षिण) ।

चतुष्पाद - चार पाँव वाला - प्राणी (जानवर) ।

चतुर्वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र ।

चतुर्मूर्त्ति - ईश्वर की चार अवस्थाएँ - विराट्, सूत्रात्मा (जीव), अव्यक्त (कारणरूप) तथा तुरीय (परब्रह्म) ।

चतुर्मास - वर्षाऋतु के चार महीने - आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद तथा कार्तिक ।

चतुर्मुख - चार मुँह वाला - ब्रह्मा ।

चातुर्थक - एक प्रकार विषम ज्वर ।

चतुर्व्यूह - चार वस्तु या व्यक्तियों का समूह -
1) वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध
2) रोग, रोगनिदान, भेषज तथा आरोग्य
3) हेय (विश्व), हेयहेतु, हान (मोक्ष) तथा मोक्षोपाय

चतुरंग - सुसज्जित चार प्रकार की सेना - हाथी, घोड़ा, रथ तथा पैदल ।

चतुराश्रय - जीवन की चार अवस्थाएँ - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा सन्यासाश्रम ।

चतुस्नेह - 4 प्रकार के स्नेह - घृत, तैल, वसा तथा मज्जा ।

चतुर्जात - त्रिजात (इलायची, दालचीनी तथा तेजपत्र) तथा नागकेशर ।

चतुरंगुल - अमलतास का मात्रा के कारण बना पर्याय ।

चतुरम्ल - वृक्षाम्ल, अम्लवेतस, दाडिम तथा बदर ।

चतुर्श्रेयस - शरीर, मन, अग्नि तथा बल को सुधारने वाली श्रेष्ठ चिकित्सा ।

चतुष्पाणि - चार हाथ वाले - श्रीविष्णु का पर्याय ।

चतुष्प्रयोग - स्नेह के चार प्रयोग - पान, नस्य, अभ्यंग तथा अनुवासन वस्ति ।

बालचतुर्भद्र - बालकों के रोगों में काम आनेवाली 4 प्रमुखौषधियों का गण- मुस्तक, पिप्पली, अतिविषा तथा कर्कटश्रृंगी ।

चतुर्थभक्त - तीन भोजन काल अनशन कर चतुर्थकाल में भोजन करने वाला ।

पंच - (संख्या 'पांच' का महत्त्व बताने वाले शब्द)

पंचकन्या - अहिल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा तथा मंदोदरी

पंचकर्म - 1) वमन, विरेचन, निरूह बस्ति, अनुवासन बस्ति तथा नस्य
2) उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन, प्रसारण तथा गमन ।

पंचेन्द्रिय - ज्ञानेन्द्रिय - नेत्र, कर्ण, नासा, जिह्वा तथा त्वचा तथा वाक ।

पंचकाम - काम, मन्मथ, कंदर्प, मकरध्वज तथा मीनकेतु ।

पंचकरण - काल, स्वभाव, नियति, पुरुष तथा कर्म ।

पंचक्रिया - ईश्वर के पांच कार्य - सृष्टि, स्थिति, ध्वंस, विधान (नियमन) तथा अनुग्रह (कृपा) ।

पंचोपचार - पूजा हेतु पदार्थ - पुष्प, धूप, गंध, दीप तथा नैवेद्य ।

पंचक्लेश - योगदर्शन में - अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष व अभिनिवेश ।

पंचामृत - 1) दूध, दही, घी, शर्करा तथा मधु ।
2) गुडुची, गोक्षुर, मुसली, मुण्डी तथा शतावरी ।

पंचांग - 1) ज्योतिषानुसार - तिथि, वार, नक्षत्र, योग व करण ।
2) राजनीति में - सहाय (साधन), उपाय, देश, काल व विपत्प्रतीकार ।
3) वानस्पतिक - मूल (जड़), काण्ड (तना), पत्र (पत्ते), पुष्प (फूल) तथा फल ।
4) शरीरस्थ - बाहु, जानु, शिर, वक्ष तथा नेत्र (पंचांग प्रमाण) ।
रस पंचक - द्रव्य का रस, गुण, वीर्य, विपाक तथा प्रभाव ।

पंचशर - कामदेव के बाण -
1) कमल, अशोक, आम्र, चमेली तथा नीलोफ ।
2) सम्मोहन, उन्मादन, शोषण, स्थापन तथा स्तम्भन ।

पंचकोश - अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनंदमयकोश ।

पंचाग्नि - 1) उपनिषद में - स्वर्ण, पृथ्वी, पर्जन्य (वर्षा), पुरुष तथा योषित् ।
2) तप का प्रकार - तीव्र सूर्यप्रकाश में चारों दिशाओं में अग्नि जलाकर तप करना ।
3) पाचन (जठराग्नि), आह्वनीय (यज्ञाग्नि), आवसस्थ (घर की) गार्हपत्य (अग्निहोत्र) तथा सभ्य ।
4) शरीरस्थ (पित्त) - आलोचकाग्नि, भ्राजकाग्नि, रंजकाग्नि, साधकाग्नि तथा पाचकाग्नि ।
5) द्रव्य गुण - चित्रक, भल्लातक, गंधक, अर्क तथा अपामार्ग ।

पंचकोल - शुण्ठी, मरिच, पिप्पली, पिपलामूल, चित्रक तथा चव्य ।

पंचगव्य - गाय की पाँच चीजें - दूध, घी, दही, मूत्र तथा मल; इसी प्रकार पंचाज (बकरी की) पंचमाहिष् (भैंस की) तथा पंचाविक (भेड़ की)

(क्रमशः)

वृक्क अकर्मण्यता (गुर्दे फेल होना) RENAL FAILURE की उत्तम चिकित्सा

केवल चिकित्सकों हेतु

यह रोग आयुर्वेद व अन्य चिकित्सा पद्धतियों में असाध्य माना गया है । परन्तु जब तक रोगी में प्राण है चिकित्सा तो करनी ही होती है और करनी भी चाहिए । आयुर्वेद में एक मंत्र है कि यावत कंठगता: प्राण स्तावत कार्य प्रतिक्रिया, कदाचिदेवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपिजीवति अर्थात् जब तक तन में प्राण है औषध अवश्य करनी चाहिए क्या पता है कब ईश्वर कृपालु हो जाये और रोगी स्वस्थ हो जाये ।

हम गुर्दा फेल होने के सैकड़ों रोगियों की सफल चिकित्सा करने में कामयाब हुए हैं । हर रोगी की फाइल पूरी तरह बना कर रखी गई है जिसमें रोगी के ऐलोपैथिक द्वारा किये गये सारे टेस्ट व चिकित्सा और हमारी चिकित्सा तत्पश्चात् के टेस्ट आदि का रिकार्ड रखा गया है ।

असाध्य रोगों को आयुर्वेद में कर्म रोग माना गया है अर्थात् पूर्व जन्म व इस जन्म के कुकर्मों के फलस्वरूप मनुष्य असाध्य रोगों से ग्रसित होता है । रोगों को तीन श्रेणियों में रखा गया है अर्थात् साध्य, कष्ट साध्य व असाध्य अर्थात् आसानी, कठिनाई से तथा न आराम होने वाले या अति कठिनाई से आराम होने वाले ।

वृक्क अकर्मण्यता का विशेष विशद वर्णन आयुर्वेद में नहीं मिलता है । भैषज्यरत्नावली में वृक्क रोग अधिकार में छोटा-सा वर्णन मिलता है, उसे भी पढ़ कर हर वैद्य जान नहीं सकता कि यह गुर्दा फेल होने का विवरण है । जो वैद्य इसकी चिकित्सा कर रहे हैं वे ही जान पाते हैं । गुर्दा फेल होने की चिकित्सा करने वाले वैद्य, डॉक्टर व होम्योपैथ बहुत कम संख्या में हैं । हजारों में से एक ही चिकित्सक इसकी चिकित्सा कर पाता है । हमारे परिवार में चिकित्सा कार्य 150 वर्षों से चल रहा है । इस कारण अनुभव के आधार पर हम चिकित्सा कर रहे हैं । इस समय 11 चिकित्सक हमारे पिता वैद्य बालमुकन्द बिन्दल जी के परिवार में चिकित्सा कार्य में संलग्न हैं व 6 चिकित्सक दो साल में और नये पढ़ कर आ रहे हैं ।

रोग का कारण :- आजकल यह रोग बड़ी तेजी से फैल रहा है । ग्रामों में, पहाड़ों में शारीरिक श्रम करने वालों को भी यह रोग होने लगा है तथा मधुमेह (शुगर) का रोग भी पहाड़ में होने लगा है । मुख्य कारण तनाव (मानसिक टैंशन) होना पाया गया है । पढ़ाई का भारी दबाव, घर में झगड़े, परिवार में माता-पिता, भाई-बहनों, पति-पत्नी, बच्चों व सम्पत्ति के झगड़े या सगे सम्बन्धियों की मृत्यु से घर का भार वहन करने आदि की मजबूरी में तनाव बढ़ जाता है और कुछ लोग तनाव सहन करने में सक्षम नहीं होते व इस प्रकार उच्च रक्त चाप से ग्रसित हो जाते हैं । अत्यधिक रक्त चाप होने पर गुर्दे फेल होने लगते हैं और कइयों को मस्तिष्क में रक्त का स्राव (ब्रेन हैमरेज) व हार्ट अटैक आदि या अन्य रोग भी होते हैं । तनाव के कारण पेट, यकृत व अंतड़ियों वृक्क में जहरीले तीक्ष्ण स्राव होते हैं जिस कारण गुर्दे शनै:शनै: कमजोर होते-होते फेल होने लगते हैं ।

यकृत की खराबी :- इस रोग के होने से पूर्व यकृत का कमजोर होना अवश्य ही पाया जाता है । आंत्रविकार, शोथ, कब्ज अथवा कभी-कभी दस्त लगना, पेट में हवा होना, पाचन दोष होना अवश्य ही रहता है । सर्वप्रथम तनाव से आमशय में तीव्र स्राव होते हैं और यहां से ही इस रोग का प्रारम्भ होता है । अम्लपित्त भी इस रोग में रहता है । पाचन दोष के कारण भोजन पूरा नहीं पचता, मूत्र कम हो जाता है और शोथ प्रारम्भ हो जाता है ।

हृदय भी इस रोग में प्रभावित रहता है । अत: घबराहट, कमजोरी, चक्कर, सिर दर्द, बेचैनी और कभी-कभी मूर्च्छा भी होती है और हाई बी.पी. तो अवश्य ही होता है ।

विष का प्रभाव :- साँप, बिच्छू आदि जहरीले जानवरों के काटने से भी गुर्दे फेल होते हैं ।

विष खा लेने, कीड़े मारने की दवाइयाँ, स्प्रे करते समय ध्यान न रखना और इनका सांस द्वारा शरीर में प्रवेश करते रहना अथवा तेज जहरीली दवाएं यथा ऐन्टीबायटिक्स या दर्दनाक तेज दवाइयां डॉक्टर की सलाह के बगैर खाते रहना आदि से भी गुर्दे फेल होते हैं । कारण है कि सब प्रकार के जहरों का निष्क्रमण गुर्दों से मूत्र द्वारा होता है । इस कारण गुर्दों पर भारी प्रभाव पड़ता है और गुर्दे फेल हो जाते हैं ।

मधुमेह :- मधुमेह के कारण भी गुर्दे फेल होते हैं, जो लोग शुगर की चिकित्सा करने में लापरवाही बरतते

हैं और डॉक्टर की सलाह लिए बगैर गोलियां या और दवाइयां खाते रहते हैं । इसमें सल्फा ड्रग्स होने के कारण लम्बे समय में व मधुमेह के दुष्प्रभाव के कारण चिकित्सक को सलाह की कमी से भी गुर्दे फेल होते हैं ।

लक्षण :- इस रोग में प्रायः मूत्र कम आता है, रोगी को सर्वांगशोथ अर्थात् चेहरे, हाथ, पाँव, पेट आदि में सूजन हो जाती है । किसी-किसी को पेट में पानी भर जाता है अर्थात् जलोदर हो जाता है । यह स्थिति बड़ी खतरनाक होती है इस पर काबू पाने के लिए वैद्य को भारी सोच-विचार व मेहनत करनी पड़ती है । सारे शरीर में दर्द, थकावट, सुस्ती, बेचैनी, घबराहट, चक्कर, कमजोरी, भूख कम व शरीर में खारिश होती है और अधिकतर रोगियों के शरीर से मूत्र की दुर्गंध आती है ।

उच्च रक्तचाप बहुत बढ़ जाता है, यहां तक कि 250/110 और 300/120, 130 तक भी पहुँच जाता है । इसकी चिकित्सा किसी भी तरह से तुरन्त करनी पड़ती है । रक्त में क्रीटिनीन (Creatinine) की मात्रा .5 से 1.5 तक की बजाय 5,6,7,8,9,10,12,14,15,20 यहां तक कि 23 तक भी पहुँच जाती है । 10 के बाद की स्थिति खतरनाक होती है और शीघ्र ही उत्तम चिकित्सा करनी पड़ती है । यदि 15 से बढ़ जाये तो डायलसिस करावें व साथ-साथ चिकित्सा जारी रखें । अनेक रोगियों को यह क्रम जारी रखना पड़ता है जो कि धीरे-धीरे घटता जाता है और कुछ समय के बाद डायलसिस की जरूरत नहीं पड़ती और औषधि का एक-दो साल तक सेवन करने से रोगी पूर्णतया ठीक हो जाता है ।

रक्त में यूरिया की मात्रा 15/45 से बढ़कर 100, 125, 150, 200, 250, 270 तक भी पहुँच जाती है । इसकी भी शीघ्र चिकित्सा करनी चाहिए ।

रक्त की कमी हो जाती है, हीम्गोलोबिन की मात्रा 12, 15 ग्राम प्रतिशत से घटकर 9, 8, 7, 6, 5, 4 तक भी हो जाती है । रोगी का रंग सफेद पीला पड़ जाता है । अत्यन्त कमजोरी, हाथ पांव, शरीर में दाह व मुखपाक भी होता है । समय-समय पर उपरोक्त टेस्ट अच्छी लेबोरेट्री से कराते रहना चाहिए ।

हल्का रोग :- कुछ डॉक्टरों को यह गन्दी आदत हो गई है या अज्ञानतावश थोड़ी सूजन होने पर या एलब्यूमिन होने पर किडनी फ्लयोर कह देते हैं । यह स्थिति कोई गहरी बीमारी नहीं है, एक-दो माह में ही लाभ हो जाता है । हमारी चिकित्सा से हजारों रोगी स्वस्थ हो चुके हैं ।

प्रकार :- यह आमतौर पर त्रिदोषज़ होता है अर्थात् वात्, पित, कफ तीनों ही दोष रहने से चिकित्सा करने में भारी क़ठिनाई होती है । विद्वान वैद्य को गहन चिन्तन से दवा का निदान करना होता है और दवा में बार-बार परिवर्तन भी करना पड़ता है । कहीं पर पित्त वृद्धि होती है तो कहीं वात तो कहीं कफ की वृद्धि होती है और दोष तो तीनों रहते ही हैं और पित्त की वृद्धि अधिकतर रोगियों में पाई जाती है । जलोदर में कफ की वृद्धि होती है तो भी त्रिदोश रहता ही है । इसमें गुर्दे फैल जाते हैं अर्थात् बड़े हो जाते हैं ।

द्वितीय प्रकार :- गुर्दों का सिकुड़ जाना - इस रोग में पित्त वृद्धि अधिकतर पाई जाती है और यह होता भी अधिकतर जवानों में है । इसमें बड़ी की कठिनाई से कम लाभ होता है । चिकित्सा करने के साथ-साथ रोगी को हिदायत देनाी चाहिए की गुर्दा बदलवाने (Kideny Transplant) लिए प्रयास जारी रखना चाहिए और गुर्दा मिल जाने पर बदलवा लेना चाहिए । गुर्दा फैल जाने वाले रोगी की चिकित्सा करना अपेक्षाकृत आसान है और इसमें लाभ का प्रतिशत भी अधिक है ।

चिकित्सा :- ऐलोपैथी में बड़े-बड़े शहरों में प्रसिद्ध विशेष डॉक्टर चिकित्सा करते हैं और प्रायः स्पष्ट बता देते हैं कि यह चिकित्सा केवल समय बढ़ाने अर्थात् समय टालने के लिए है और गुर्दा मिलने पर Transplant करवाना पड़ेगा । वैद्यों के पास प्रायः सभी रोगी ऐलोपैथी से चिकित्सा व टेस्ट करवाकर आते हैं और सारे कागज (Test Reports, Diagnosis & Treatment) लेकर आते हैं और सब कुछ बताते हैं और वैद्यों को भी कोई बड़ा आश्वासन या गारण्टी नहीं देनी चाहिए । हमारे पास आने वाले रोगियों में 80 प्रतिशत डायलसिस करवा कर आते हैं । इस रोग की चिकित्सा में कम से कम 6 माह अथवा

एक-दो साल तक लग जाते हैं । अतः रोगी को स्पष्ट बता ना चाहिए ।

वैद्य को स्वयं उत्तमोत्तम औषधियों का निर्माण करना चाहिए । उत्तम जड़ी-बूटियों को स्वयं देखकर दवा बनवानी चाहिए तथा रोगी से जहां तक संभव हो कम दाम लेना चाहिए क्योंकि रोगी पहले ही परेशान व लुट कर आता है। उसकी क्षमता अधिकतर खर्च करने की नहीं होती तो वह और भी परेशान व तनाव में हो जाता है तथा लाभ होने की संभावना कम हो जाती है । अतः रोगी को बड़े प्यार व धैर्य से समझाना चाहिए । ऐसे रोगी बड़े निराश व चिड़चिड़े हो जाते हैं और बड़े अधीर होते हैं । रोगी को समझने में समय लगावें, जल्दी न करें । धन महत्वपूर्ण नहीं है, रोगी को लाभ होने पर वैद्य को जो आशीर्वाद व यश मिलता है वह अमूल्य है ।

औषधियां :- सर्वप्रथम मूत्रल औषधि नमक व क्षार रहित (यव क्षार मूली क्षार आदि) प्रयोग करनी चाहिए। यदि अति आवश्यक हो तो थोड़ी मात्रा में प्रयोग करें। गुर्दा फेल होने के रोगी को नमक प्रायः बन्द हो जाता है या दिन भर में केवल एक-दो ग्राम कुल मिलाकर दिया जाता है । यदि आवश्यक हो तो ऐलोपैथिक मूत्रल दवा Lasix Tablet or Injection का प्रयोग करें ।

वृक्क रोगारि क्वाथ :- यह हमारे पास सदा तैयार मिलता है । नुस्खा इस प्रकार है - वरूण छाल, छोटा गोखरू, पुनर्नवा, सोंठ, पाषाण भेद, मकोह, पीपल छाल, पत्ते व छाल नीम, अनन्तमूल, जीरा, गिलोय, खीरा बीज, खरबूजा बीज, कासनी बीज, कासनी पंचांग, दारुहल्दी, गुल बनफशा, जटामांसी सबको समभाग लेकर जौ कुट करें, फिर इसका 25 ग्राम लेकर क्वाथ पद्धति से बनाकर 75/100 मि.लि. दो समय खाली पेट मिश्री मिलाकर पिलावें। साथ में 'बिन्दल महाचन्द्रक्रांत बटी' दो-दो गोली या चन्द्र प्रभा वटी दो-दो गोली या गोक्षुरादि गुग्गलु दो-दो गोली सुबह-शाम खिलावें । जहां पर पित्त की अधिकता और मूत्र बहुत कम हो, रोगी को दाह हो तो मिश्री के स्थान पर इस क्वाथ में बिन्दल इदरार स्पैशल मिलावें या शर्बत बजूरी या शर्बत ठंडाई मिलावें । जहां पर रोगी को शुगर हो तो वह शर्बत व मिश्री नहीं डालें ।

भोजन के बाद - पुनर्नवारिष्ट स्पेशल 25 मि.लि. भोजन के बाद थोड़ा जल मिलाकर दें, साथ में पुनर्नवामण्डूर 500 मि.ग्रा. व संजीवनीबटी 250 मि.ग्रा. दें । पुनर्नवारिष्ट स्पेशल में आयुर्वेद के नुस्खे में जो 12 तोला पुनर्नवा के स्थान पर 200 तोला पुनर्नवा डाली गई है क्योंकि 12 तोला पुनर्नवा से बनने वाले 15 लीटर रिष्ट में प्रति खुराक आधी रत्ती भी पुनर्नवा नहीं आती तो वह क्या कार्य करेगी । आप स्वयं भी बना सकते हैं ।

गुर्दा फेल होने में कैल्शियम की कमी होती है और उपरोक्त वर्णित हृदय के लक्षण रहते हैं । अतः मोती पिष्टी या भस्म सर्वोतम काम करती है । साथ में स्वर्ण भस्म दें तो और भी गुणकारी होगी । एक रत्ती (125 मि. ग्रा.) स्वर्ण भस्म (4 से 8 मि.ग्रा.) सुबह 6 बजे खाली पेट दूध या शहद से दें । यदि रोगी मूल्य दे सकने की स्थिति में न हो तो मुक्ताशुक्ति बढ़िया किस्म की भस्म या पिष्टी या प्रवाल भस्म अथवा पिष्टी दो-दो रत्ती दो बार दें ।

बी.पी. कम करने की चिकित्सा अत्यधिक जरूरी है । ऐलोपैथिक दवाओं से तुरन्त लाभ होता है परन्तु नाड़ी दौर्बल्य होता है और लंबे समय में रोगी कई अन्य रोगों से ग्रसित हो जाता है परन्तु मजबूरी में प्रयोग करनी चाहिए । बी.पी. का उत्तम नुस्खा=रक्तचाप हरी हमारे पास तैयार रहता है । इसका नुस्खा इस प्रकार है - मुक्तापिष्टी, सर्पगन्धा, शुद्ध वत्सनाभ प्रत्येक 1 भाग, मुक्ताशुक्ति पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, लौह भस्म, जटामांसी, ब्राह्मी, सुगन्धवाला प्रत्येक 8 भाग को कूट पीसकर उपरोक्त बूटियों की चार भावना दें व गोली बनावें । 500 मि.ग्रा. की मात्रा में 1-2 बार दें ।

कमजोरी दूर करने व बी.पी. चक्कर, घबराहट, हौल, बेचैनी को दूर करने के लिए बिन्दल खमीरा जवाहरात दो-दो ग्राम दो बार दें या खमीरा मरवादीद या खमीरा गौजबान अम्बरी ज्वाहरमाला 3-3 ग्रम दो बार दें । नुस्खा खमीरा जवाहरात:-मोती, मूंगा, पन्ना, नीलम, पुखराज, माणिक्य, गौमेद, लहसुनिया, संगेयशव, लाजवर्द, मुक्ताशुक्ति, अकीक, स्फटिकमणी, वंशलोचन, समभाग लेकर एक माह तक गुलाब जल में घोटें पश्चात् चार गुणा खमीरा गौजबान

सादा में मिला लें ।

कमजोरी के लिए :- उत्तम द्राक्षासव 15-20 मि. लि. 2 बार दें ।

अम्लपित्त के लिए :- आमलकी लौह या धातृ लौह या अमल पित्तांतक लौह का प्रयोग करें । सर्वोत्तम है कि बिन्दल अमलांतक लौह प्रयोग करें । इसका नुस्खा इस प्रकार है - लौह भस्म 100 पुटी, मुक्ताशुक्ति भस्म, शंख भस्म, कपर्दक भस्म, स्वर्ण माक्षिक भस्म, जटामांसी, ब्राह्मी, सुगन्धवाला, पीपल, सब 1-1 भाग । ताम्र भस्म 1/4 भाग वचा 1/2 भाग, आंवला 2 भाग को आंवला, जटामांसी, ब्राह्मी, वच, सुगन्धवाला, मधुयष्टी और पीपल के क्वाथ की चार भावना देकर 500 मि.ग्रा. की गोली बनावें । 1-1 गोली दो बार खिलावें । यह गैस, अम्लपित्त में उत्तम काम करती है और किडनी फ्लयोर में कैल्शियम और लौह की कमी दूर कर रक्त बनाती है ।

महेश सर्वतोभद्रबटी :- भैषज्य रत्नावली में वृक्काधिकार रोग में सर्वतोभद्रबटी व महेश्वरीबटी का वर्णन आता है । यह अत्यन्त कष्ट में निराश हताश रोगियों को भी लाभ करती है परीक्षित है । हमने इन दोनों को मिलाकर एक बना दिया है । नुस्खा देखकर स्वयं बना सकते हैं । इसमें सोना, मोती, चाँदी होने के कारण उत्तम गुणकारी है । इसमें 6 बूटियों की 7-7 भावना देनी चाहिए अर्थात् 42 दिन तक भावना में घोटना चाहिए । 200 मि. ग्रा. दैनिक सुबह 6 बजे खाली पेट दूध से दें । जब इसे देना हो तो मोती पिष्टी और स्वर्ण भस्म की जरूरत नहीं है ।

भस्में किसी भी स्थिति में कच्ची व कम पुट वाली नहीं होनी चाहिए, हानि करती है । हम स्वर्ण भस्म अपनी बनाते हैं जो कि 50 पुट से कम नहीं बनाते । आमतौर पर बड़ी-बड़ी कम्पनियों की भी हमने प्रयोग की है । 15-20 पुट की बनी होती है और यह जलोतरित नहीं होती है ।

इस रोग में पारद व नाग भस्म का प्रयोग नहीं करना चाहिए हानिकारक होता है ।

यदि मूत्र कम आ रहा हो उपरोक्त दवायें प्रयोग करने के बाद भी व पाचन कमजोर हो और खारिश काफी हो तो बिन्दल महाबूटीसार 10-10 बूँद 2 बार प्रयोग करायें या होम्योपैथिक अर्टिका यूरेन्स की 10-10 बूँद प्रयोग या हरी कासनी का रस या काढ़ा प्रयोग करायें । खारिश लिए महामरिच्यादि तेल मालिश करावायें ।

शक्ति के अनुसार हल्का प्राणायाम, कपाल भसरिका, ध्यान, ओऽम, राम नाम का जाप और सुबह खुली साफ हवा में भ्रमण करना उत्तम होता है ।

परहेज :- गुड़, तेल, घी, तली चीजें, सब प्र की खटाई, सारे कोल्ड ड्रिंक्स, नींबू व संतरा प्रजाति सब खट्टे फल, मिर्चें, प्रोटीन वाली चीजें अर्थात् दालें, पनीर, मशरूम, अण्डा मीट व शराब नशीली चीजें, व डिब्बा बंद भोजन, नमक बंद करें । शुगर हो तो बंद, तनाव, सोच, फिकर, गुस्सा, काम की चिंता बंद क पानी कम पीवें जब दवा खाकर पेशाब खूब आये, सू कम हो जाये तो पानी बढ़ायें ।

पथ्य :- हरी सब्जियां, घीया, तोरी, परवल, पा साग, मेथी, मूली, गाजर, शलगम, खीरा, ककड़ी, त खरबूजा, पपीता, मीठा सेब, मीठी नाशपती, सि दलिया, खिचड़ी, तवे का फुलका, ब्रेड आटे की, म की रोटी, चावल, दूध, मीठा दही, हल्की चाय व आदि प्रयोग करें ।

जिन्हें सूजन बहुत हो तो भी जलीय वस्तु दूध, चाय, सब्जी, दवाई, पानी लेवें, इससे दिन भ कितना द्रव लिया गया को नोट करें और जितना पेशाब भर में आये नाप कर फेके ताकि मालूम हो सके कि ज़ाने वाला जलीय अंश अधिक निकल रहा है कि न

जिन्हें यूरिया बढ़ा हो उन्हें काली या ब्राउन गाय का मूत्र छानकर 20 एम.एल. सुबह शाम पिलायें कामधेनु अर्क या गौझरण अर्थात् गौमूत्र अर्क 20 एम. सुबह शाम पिलायें ।

हर रोगी को गौमूत्र अर्क एक बार हल्दी 2 एक बार व तुलसी के 10 पत्ते एक बार रोज खिला

ईश्वर ने चाहा तो 80 प्रतिशत रोगियों को होगा और हर रोगी को कुछ न कुछ लाभ जरूर हो

वैद्य रामकुमार बिन्दल
वैद्य रमेश कुमार बिन्दल
श्री बिन्दल रसायनशाला, सोलन (हि.प्र.) - 1732

परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी M.D. 2005 JAMNAGAR स्मृति पर आधारित हल प्रश्न-पत्र

1. प्र०:- सुश्रुतानुसार किसके विद्ध होने का लक्षण ''कौबज्यं शरीरावयवावसाद'' है -
(a) स्नायु (b) त्वक
(c) मांस (d) संधि

2. प्र०:- ''पीड़नासहिष्णुता चौषपाकौ च'' किसका लक्षण है -
(a) त्वकगत शल्य का
(b) स्नायुगत शल्य का
(c) मांसगत शल्य का
(d) स्रोतोगत शल्य का

3. प्र०:- ''शुनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोभितापः'' सुश्रुतानुसार किसका लक्षण है -
(a) वातिक शिरोरोग
(b) पैत्तिक शिरोरोग
(c) कफज शिरोरोग
(d) रक्तज शिरोरोग

4. प्र०:- ''शार्गंधरानुसार'' लेखन व वृंहण'' कमार्थ औषध काल होगा -
(a) द्वितीय (b) तृतीय
(c) चतुर्थ (d) पंचम (रात्रि)

5. प्र०:- ''कुर्यात विण्मूत्रसंगार्त्ति शोषं योनि मुखस्य च ......'' किस योनि व्यापद का लक्षण है -
(a) परिप्लुता (b) उपप्लुता
(c) शुष्का (d) वातला

6. प्र०:- ''नितान्तं रक्तं स्रवति मुर्हुर्मुहुरथार्तिमान.....'' किसका लक्षण है -
(a) दुष्टार्त्तव (b) असृजा योनिव्यापद
(c) रक्तज प्रदर (d) पित्तज प्रदर

7. प्र०:- ''अकाले वाहमानाया गर्भेण पिहितोऽनिल...'' किस योनिव्यापाद का कारण है -
(a) कर्णिनी (b) अर्न्तमुखी
(c) सूचीमुखी (d) उपप्लुता

8. प्र०:- अहिपूतन में दोष संबंध है -
(a) वात, रक्त (b) कफ, रक्त
(c) वात, पित्त (d) कफ

9. प्र०:- किस आचार्य ने कुकुणक को दन्तोद्भव जन्य उपाधि बताया है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) काश्यप (d) वाग्भट

10. प्र०:- ''अलजी'' किस स्थान की उपाधि है -
(a) वर्त्मगत (b) संधिगत
(c) शुक्लगत (d) कृष्णगत

11. प्र०:- विधुर मर्म के विद्ध होने का फल होगा -
(a) आन्ध्य (b) रसज्ञानाभाव
(c) वेपन (d) वाधिर्य

12. प्र०:- गृध्रसी में सिरावेध स्थल है -
(a) जानुसंधेरूपर्यधो वा चतुरंगुले (2)
(b) क्षिप्रमर्मज उपरिष्टाद द्वयंगुले
(c) जंघायां, गुल्फस्योपरं चतुरंगुलं
(d) कोई नहीं

13. प्र०:- वाग्भट के अनुसार ''ज्ञापक'' किसका गुण है-
(a) भिषक (b) द्रव्य
(c) उपस्थाता (d) आतुर

14. प्र०:- कोष्ठ में पेशियों की संख्या होती है -
(a) पंचषष्टि (b) षटषष्टि
(c) पंचविंशति (d) षष्टि

15. प्र०:- आदान काल में कौन-सा रस बलवान होता है -
(a) तिक्त (b) कषाय
(c) कटु (d) अम्ल

16. प्र०:- ''चिकित्सा सार संग्रह'' के लेखक हैं -
(a) वंगसेन (b) अश्विनी कुमार
(c) चक्रपाणि (d) रविगुप्त

17. प्र०:- लोलिम्बराज का काल है -
(a) 20वीं शती (b) 17वीं शती
(c) 16वीं शती (d) 13वीं शती

18. प्र०:- पित्तज अधिमन्थ में दृष्टि नाश कितने समय बाद हो जाता है -
(a) 7 दिन (b) 3 दिन
(c) 5 दिन (d) सद्यः

19. प्र०:- ताम्बुल के साथ किसके सेवन का निषेध है -
(a) रससिन्दूर (b) मकरध्वज
(c) कंकुष्ठ (d) सभी

20. प्र०:- रसभस्म सेवन काल में अपथ्य है -
(a) बिल्व एवं कुष्माण्ड
(b) पटोल व लवण
(c) हंसोदक व मुद्गयूष
(d) सभी

21. प्र०:- Which is the 3rd blood clotting factor-
(a) Prothrombin (b) Fibrinogen
(c) Thromboplastin (d) Proconvertin

22. प्र०:- "हृदय.......सुप्तं स्तिमितभारिकाग....... भवत्यश्मावृतं यथा" किसका लक्षण है -
(a) रक्तज गुल्म (b) निचय गुल्म
(c) कफज हृद्रोग (d) मूढ़गर्भ

23. प्र०:- हीन, मध्य व उत्तम प्रकृति का क्रम है -
(a) वात, पित्त, कफ (b) कफ, पित्त, वात
(c) पित्त, कफ, वात (d) कफ, वात, पित्त

24. प्र०:- वाग्भटानुसार "अनेकोरोगनुतो बहुरोगपुरोगम" रोग है -
(a) ज्वर (b) राजयक्ष्मा
(c) प्रमेह (d) स्थौल्य

25. प्र०:- "......प्रोक्तं द्विविधं पीत पाण्डूरम् सदलं निर्दलं तस्य जनिगुर्जरमण्डले" है -
(a) हरताल (b) पीताभ्रक
(c) स्वर्ण (d) मृद्दारश्रृंग

26. प्र०:- गौरीपाषाण की चिकित्सकीय मात्रा है -
(a) 1/120-1/30 रत्ती
(b) 1/60 -1/15 रत्ती
(c) 1-2 रत्ती (d) 1--3 रत्ती

27. प्र०:- शार्ङ्धरानुसार अवलेह की सवीर्यतावधि है -
(a) मासात (b) मासात द्वय
(c) वत्सरात्परम (d) वर्षातद्वय

28. प्र०:- "........ च दिवा अनुवास्यो ।"
(a) शरद, ग्रीष्मे (b) शीते, वसन्ते
(c) शरद, धनागमेषु (d) धनागमेषु

29. प्र०:- भाव प्रकाशानुसार "भेदनी दीपनी कफपित्तज्वरापहा" है -
(a) मत्स्यशक्ला (b) सोमवल्ली
(c) सुवहा (d) स्नुक

30. प्र०:- भावप्रकाशानुसार "मूर्वा" का प्रतिनिधि है -
(a) अपामार्ग (b) मानकन्द
(c) नीलकमल (d) जिंगणी छाल

31. प्र०:- "Fox nut" is -
(a) Trapa (b) Euryale Ferox
(c) Semicarpus (d) None

32. प्र०:- सर्जरस प्राप्त करते हैं -
(a) Boswellia Serreta
(b) Liquid amber
(c) Shorea robusta
(d) Commifera mukul

33. प्र०:- लेखन-शोषण-पीड़न क्लेदोपशोषण कौन-सा रस है -
(a) कटु (b) तिक्त
(c) कषाय (d) लवणरस

34. प्र०:- "काले हितं.....ब्रुयाद विसंवादि पेशलं वाग्भटानुसार है -
(a) मितं (b) मधुरं
(c) क्लिष्टं (d) अनृत

35. प्र०:- "मर्मसुच्छिधमानेषु परिदेवी वाग्भटोक्त उर्ध्वश्वास के लक्षण में परिदेवी अर्थ है -
(a) कम्पन (b) दुःखार्त
(c) ज्वर (d) श्वास

36. प्र०:- शार्ङ्धरानुसार "लघुतरा ज्ञेया ग्राहिणी पुष्टिप्रदा" किसका लक्षण है -
(a) पेया (b) मण्ड
(c) विलेपी (d) यवागु

37. प्र०:- मन को क्रियावान होते हुए भी कर्त्ता क्यों नहीं कहा गया है -

(a) चेतन होने से (b) अचेतन होने से

(c) चंचल होने से (d) मन क्रियावान नहीं है

38. प्र०:- रस वाग्भटानुसार ''सर्पे स्थावरे'' विष की प्रवर मात्रा होती है -

(a) 2 यव (b) 4 यव

(c) 8 यव (d) तिलमात्र

39. प्र०:- ''.... उदकं विस्रं लवगं सर्वदोषकृत'' किस जल का लक्षण है -

(a) नादेयं (b) ताडागं

(c) सामुद्रं (d) सारसं

40. प्र०:- सर्वश्रेष्ठ कन्द शाक है -

(a) सूरण कंद (b) आलुक

(c) कदली (d) कोई नहीं

41. प्र०:- चरकानुसार दौहृदावस्था काल है -

(a) द्वितीय मास (b) तृतीय मास

(c) चतुर्थ मास (d) पंचम मास

42. प्र०:- ''.....हस्त पाद शिरसां पंच पिण्डिका विर्निर्वतन्ते'' सुश्रुतानुसार गर्भ की कौन से महीने की स्थिति है -

(a) द्वितीय मास (b) तृतीय मास

(c) चतुर्थ मास (d) पंचम मास

43. प्र०:- दाड़िमाष्टक चूर्ण में शर्करा व दाड़िम का अनुपात होता है -

(a) 1:4 (b) 4:1

(c) 1:2 (d) 2:1

44. प्र०:- वाग्भटानुसार निम्न में से किस ग्रह में ज्वर नहीं मिलता है -

(a) शकुनी (b) पूतना

(c) रेवती (d) पित्रग्रह

45. प्र०:- 'अनिमित्तभीक्ष्णं च यस्योदगारः प्रवर्तते निद्रा जृम्भा'-काश्यपानुसार किस व्याधि का लक्षण है

(a) उर्ध्ववात (b) कास

(c) छर्दि (d) कृमि

46. प्र०:- ''आशु आगमन'' अनुवासन वस्ति में क्या करते हैं -

(a) पुन: वस्ति देते हैं

(b) वस्ति नहीं देते हैं

(c) स्वेदन करवाते हैं

(d) वमन करवाते हैं

47. प्र०:- सुश्रुतानुसार वस्तिनेत्र दोष कितने है -

(a) 6 (b) 8 (c) 11 (d) 10

48. प्र०:- ''नरो विरिक्तस्तु निरूहदानं वर्जयेत.....दिनानी अवश्यं''

(a) अष्ट (b)सप्त (c) षष्ट (d) चर्तु

49. प्र०:- 'विट्पित्तकफऽनिलाम्बितम्'' किसका लक्षण है-

(a) सम्यक वचन

(b) असम्यक वचन

(c) सम्यक विरेचन

(d) असम्यक विरेचन

50. प्र०:- ''भीरूं भीषयितारं'' चरकानुसार किस प्रकृति का लक्षण है -

(a) सर्पकाय (b) पैशाच काय

(c) प्रेतकाय (d) राक्षस काय

51. प्र०:- ''बुद्धया विषमविज्ञानं विषमं च प्रवर्तनम..... जानीयान्मनसो गोचरं हि तत् ॥

(a) अतत्वाभिनिवेश (b) उन्मादं

(c) अपस्मारं (d) प्रज्ञापराधं

52. प्र०:- ''ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसंन भ्रमः... '' किस ज्वर का लक्षण है -

(a) आम ज्वर (b) निराम ज्वर

(c) पच्यमान (d) पित्तज ज्वर

53. प्र०:- ''तृट ताप तोद सदन....'' किस नाडीव्रण का लक्षण है -

(a) वातिक (b) पैत्तिक

(c) सान्निपातिक (d) शल्यजनाड़ी

54. प्र०:- "दाह समन्विते तु विनि:सरेद धूम इवहे:वायु" किस रोग का लक्षण है -

(a) दीप्त (b) नासाप्रतिनाह

(c) अपीनस (d) नासाशोष

55. प्र०:- "दुग्धे दघ्नि रसे तक्रे कल्को देयो....." से स्नेह सिद्धि में कल्क की मात्रा होगी

(a) षष्टमांशक (b) अष्टमांशिकं

(c) चतुर्थांश (d) दशमांशिकं

56. प्र०:- "अनुक्त मान अरिष्टेषु व्रत द्रोणे......गुडं"

(a) तुला (b) माशां

(c) कुडवं (d) खारीं

57. प्र०:- चरकानुसार "जिज्ञासा नाम....."-

(a) प्रश्न (b) समाधान

(c) उह्या (d) परीक्षा

58. प्र०:- "कर्तारमवश्यमनुबघनाति कार्पादुत्तरकालं कार्य निमित:" सम्बन्धित है -

(a) कर्म से (b) कर्त्ता से

(c) करण से (d) अनुबन्धय से

59. प्र०:- ".......मनोदौषोषधं परम्"-

(a) समाधिं

(b) धी,धैर्यात्मादिं विज्ञानं

(c) आत्मविज्ञानं (d) चित्तविज्ञानं

60. प्र०:- वाग्भटानुसार तृतीयक ज्वर में दोषों का अधिष्ठान होगा -

(a) रस (b) रक्त

(c) अस्थि (d) मेद

61. प्र०:- "येन-येन हि चांचल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति" किसका लक्षण है -

(a) नियामन संस्कार (b) बोधन संस्कार

(c) पारद बंध का (d) दीपन संस्कार का

62. प्र०:- "कटुभद्रा" है -

(a) पिप्पली (b) मरीच

(c) नागर होने से (d) कोई नहीं

63. प्र०:- Commonest carcinoma in Indian women is-

(a) Ca Breast (b) Ca cervix

(c) Oral (d) Rectal

64. प्र०:- द्वापर युग में लोक से साम्य है -

(a) बाल्यावस्था (b) युवावस्था

(c) वृद्धावस्था (d) आतुरावस्था

65. प्र०:- Mortality rate in India per thousand is-

(a) 6.8 (b) 8.7 (c) 10 (d) 5.5

66. प्र०:- शोधन गण में सम्मिलित नहीं है -

(a) काँच (b) टंकण

(c) क्षिप्र (d) कुलत्थ

Answer-Keys

(1)	A	(2)	C	(3)	C	(4)	D	(5)	C	(6)	D
(7)	A	(8)	B	(9)	D	(10)	B	(11)	D	(12)	A
(13)	D	(14)	B	(15)	C	(16)	A	(17)	B	(18)	D
(19)	C	(20)	A	(21)	C	(22)	C	(23)	A	(24)	B
(25)	D	(26)	A	(27)	C	(28)	B	(29)	A	(30)	D
(31)	B	(32)	C	(33)	C	(34)	A	(35)	B	(36)	A
(37)	B	(38)	C	(39)	C	(40)	A	(41)	B	(42)	B
(43)	A	(44)	B	(45)	C	(46)	A	(47)	C	(48)	B
(49)	C	(50)	B	(51)	D	(52)	C	(53)	B	(54)	A
(55)	B	(56)	A	(57)	D	(58)	D	(59)	B	(60)	D
(61)	C	(62)	C	(63)	A	(64)	C	(65)	B	(66)	D

द्वारा
डा० गोविन्द पारीक
(जूनियर रेजिडेन्ट)
आंयुर्वेद संहिता विभाग
बी.एच.यू., वाराणसी (यू.पी.)

सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व

जनवरी,1966

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित 'सचित्र आयुर्वेद' का भारत में कुष्ठ रोग की समस्या के सम्बन्ध में सर्वधारण जनता की जानकारी बढ़ाने की दृष्टि से एक विशेषांक प्रकाशित होने जा रहा है - यह जानकर मुझे प्रसन्नता हुई । मैं विशेषांक की सर्वतोभोवन सफलता की कामना करता हूँ ।

जाकिर हुसैन
उपराष्ट्रपति (भारत)

यह खुशी की बात है कि "सचित्र आयुर्वेद" का कुष्ठ रोग विषयक विशेषांक निकालने का आयोजन इसके संचालकों ने किया ।

कुष्ठरोग बहुत ही भयानक और दुखदायी होता है। यह संक्रामक रोग भी है । दूषित खान पान, गन्दी आदत तथा निम्न स्तर के रहन-सहन के कारण तो इस रोग की उत्पत्ति होती ही है, छुआ-छूत की वजह से भी यह फैलता है। इस रोग से हजारों लोग पीड़ित होते रहते हैं । इसकी रोकथाम तथा पीड़ित लोगों को छुटकारा दिलाने के लिए यद्यपि बहुत प्रयास हो रहा है पर वह पर्याप्त नहीं है और अधिक प्रयत्न की जरूरत है ।

मैं आशा करता हूँ, इस विशेषांक से इस प्रयास में सहायता मिलेगी । मैं इसकी सफलता की शुभकामना करता हूँ।

अब्दुल कयूम अन्सारी
स्वास्थ्य मंत्री, बिहार

आप कुष्ठ व्याधि के सम्बन्ध में "सचित्र आयुर्वेद" का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं, यह जानकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई ।

जैसा कि सभी को ज्ञात है कि कुष्ठ वस्तुत: अत्यन्त भयंकर संक्रामक व्याधि है और सैकड़ों की संख्या में लोग इस व्याधि के चंगुल में पड़ते रहते हैं । इस दिशा में आप द्वारा जो कुछ प्रयत्न हो रहा है, वह सर्वथा प्रशंसनीय है । मेरा विश्वास है कि इस भयंकर व्याधि की रोगथाम तथा उपचार के बारे में सामान्य जनता की जानकारी बढ़ाने की दिशा में आपका प्रस्तावित विशेषांक निःसंदेह अत्यंत उपयोगी होगा ।

इस उपयोगी प्रकाशन की सफलता की कामना करता हूँ ।

भीखा भाई
आयुर्वेद मंत्री, राजस्थान सरकार

राज्यपाल महोदय को यह जानकर अत्यंत हर्ष हुआ कि आप शीघ्र ही कुष्ठ रोग के सम्बन्ध में "सचित्र आयुर्वेद" का एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहे हैं । आप उक्त विशेषांक में कुष्ठरोग के नियंत्रण एवं विरोध के सम्बन्ध में एक पंचवर्षीय कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत करते हुए इसकी रोकथाम के लिए जोरदार प्रयत्न किए जाने पर बल दे सकते हैं । राज्यपाल महोदय इस शुभ प्रयत्न की कामना करते हैं - उनका विश्वास है कि इस विशेषांक के माध्यम से सरकार, कुष्ठ-व्याधि से पीड़ित व्यक्तियों एवं सामान्य जन के लिए भी उपयोगी तथा रचनात्मक सुझाव प्रस्तुत किए जायेंगे और विशेषांक सभी दृष्टियों से उपयोगी होगी ।

पी०झा
निजी सचिव, राज्यपाल, बिहार

बैद्यनाथ
लवणभास्कर चूर्ण
मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

दस हजार वैद्य एक साथ 29 वर्षों के बाद बेरोजगार

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

अन्य प्रान्तों से राजस्थान की समस्या भिन्न है । क्योंकि राजस्थान में सन् 1976 के पश्चात् भारत की सर्वोच्च संस्था भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् (सी.सी. आई.एम. दिल्ली) ने केन्द्रीय मेडिसिन एक्ट का खुलमखुल्ला उलंघन करके अपनी इच्छानुसार राजस्थान में अपनी मतदाता सूची तैयार की थी ।

इस मतदाता सूची को निर्वाचन नामावली में अन्य वैद्यों के साथ हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के डिग्रीधारी वैद्यों का नाम, पता, उपाधि, क्रम संख्या, पंजीयन संख्या प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी का नाम अंकित है । 29 वर्षों के लम्बे समय से सी.सी.आई.एम. दिल्ली की मतदाता सूची में इस सम्मेलन के वैद्यों के नाम आज भी मौजूद हैं ।

सी.सी.आई.एम., दिल्ली द्वारा इन सम्मेलन के वैद्यों को मतदान करने का अधिकार देने हेतु राजस्थान में सी.सी.आई.एम., दिल्ली का चुनाव सन् 1983 एवं सन् 1994 में हुआ था । इन चुनावों में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद के डिग्रीधारी वैद्यों के वोटों से जीते हुए तीन सदस्य श्री रघुनन्दन जी शर्मा, श्री वेदप्रकाशजी त्यागी एवं श्री महेशजी शर्मा जो वर्तमान में सी.सी.आई.एम.; दिल्ली के कार्यालय में बैठते हुए वेतन, यात्रा भत्ता एवं सम्पूर्ण सरकारी सुविधाऐं प्राप्त कर रहे हैं ।

सन् 1976 में केन्द्रीय इण्डियन मेडिसन एक्ट बन गया था तो सी.सी.आई.एम. दिल्ली ने अपनी मतदाता सूची क्यों बनाई ? मतादाता सूची में सम्मेलन के वैद्यों का नाम क्यों लिखा ? राजस्थान में सी.सी.आई.एम., दिल्ली के सन् 1983 व सन् 1994 के दोनों चुनावों में सम्मेलन के वैद्यों से वोट क्यों लिये ?

याचिकाकर्ता वेदप्रकाश त्यागी ने अपनी याचिका में लिखा था कि सम्मेलन के वैद्यों का नाम मतदाता सूची से हटाया जाये । वेद प्रकाश त्यागी को ज्ञान था कि 19 व के पूर्व मतदाता सूची में नाम सी.सी.आई.एम., दिल्ली सन् 1976 के पश्चात् लिखाया था । 29 वर्षों के बाद न हटाने की क्या जरूरत पड़ी । सम्मेलन के वैद्य ने कि के पास जाकर नहीं कहा कि हमारा नाम सी.सी.आ एम., दिल्ली की मतदाता सूची में लिखा जाय । सी. आई.एम., दिल्ली का एक सदस्य वेद प्रकाश त्या राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर ने याचिका लगाक मतदाता सूची के नाम हटाने की मांग की थी । इससे सा जाहिर होता है कि सी.सी.आई.एम., दिल्ली के सदस्यों मे आपसी मतभेद है ।

वेदप्रकाश त्यागी याचिका लगाने के पूर्व सी.सी. आई.एम., दिल्ली, अखिल भारतीय आयुर्वेद महा सम्मेलन दिल्ली के, राजस्थान प्रदेश वैद्य सम्मेलन के, तथा राजस्थ विभागीय चिकित्सक संघ, जयपुर के अध्यक्ष से इन चा आयुर्वेद संगठनों के अध्यक्षों से याचिका लगाने के पू सलाह या परामर्श नहीं लिया । याचिका लगाने की अनुम नहीं ली । याचिकाकर्ता की दृष्टि में आयुर्वेद संगठनों व्यर्थ (निक्कमा) मानते हुए इन संगठनों की कोई आवश्यक नहीं समझ कर राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर में इ दस हजार वैद्यों के विरूद्ध अकेले ने ईर्ष्या एवं द्वेष भाव से याचिका लगाई ।

आयुर्वेद संगठनों के अपने-अपने नियम होते हैं इन नियमों के विरूद्ध यदि कोई वैद्य काम करता है । उ आयुर्वेद संगठन से निकाल दिया जाता है क्योंकि फिर क याचिका लगाकर हजारों वैद्यों को परेशानी में डाल सक है । सम्पूर्ण आयुर्वेद समाज की बदनामी होती है ।

8/1/2005 को फैसला सुनते ही हजारों वैद्यों घरों में भोजन नहीं बन इनके घरों में मातम छा गया । इ 55-56 वर्षों के वृद्ध वैद्यों के बाल बच्चे भूखे मरने नौबत आ गई । इस दुःख के अवसर पर हमारे देश अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन, दिल्ली एवं राजस्थ प्रदेश वैद्य सम्मेलन, जयपुर जो सम्पूर्ण भारत के वैद्यों

प्रतिनिधित्व करते है । प्रतिनिधियों ने इन वैद्यों के हित में कुछ नहीं किया (फ़िर यह कैसा आयुर्वेद संगठन है ?)। आयुर्वेद जगत में एक साथ दस हजार वैद्य बेरोज़गार होने की एशिया में तथा भारत में प्रथम घटना है ।

दोनों आयुर्वेद संगठनों से निवेदन है कि इन वृद्ध वैद्यों के भविष्य का ध्यान रखते हुए गम्भीरता से विचार करके इन आयुर्वेद चिकित्सकों का सहयोग एवं सहायता करावें ।

अध्यक्ष
आयुर्वेद विकास चिकित्सक संघ रजि०
जोधपुर (राजस्थान)

आधुनिकता एवं परम्परा का योग (एम.बी. बी.एस. में आयुर्वेद)

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

मेडिकल के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद और योग को शामिल करना केन्द्रीय सरकार का यह एक महत्वपूर्ण पहल हैं, इसका हम सभी को स्वागत करना चाहिए । चिकित्सा को विज्ञान सम्मत पेशे में परंम्परा का समावेश कुछ लोगों को अटपटा और पीछे की ओर लौटना लग सकता है, लेकिन बदलते हुए दौर में चिकित्साशास्त्र के ठहरे हुए पाठ्यक्रम को देखते हुए सरकार ही इस मौलिक योजना का सचमुच स्वागत हम सभी को करना चाहिए । एम.बी.बी.एस. में आयुर्वेद को शामिल करने का मतलब एलोपैथी के वर्चस्व या उसके महत्व को कम करना नहीं है, बल्कि उसके साथ-साथ चिकित्सा के क्षेत्र में आयुर्वेद का भी समुचित लाभ उठाना होगा, जिसका हमारे यहाँ गौरवशाली इतिहास रहा है, लेकिन आधुनिकता के नाम पर जिसे उपेक्षित कर दिया गया है । प्राचीन काल में चरक और सुश्रुत जैसे दिग्गजों ने चिकित्साशास्त्र को जिस ऊँचाई पर पहुँचाया था, उसकी कल्पना भी चकित करने वाली है । चिकित्सा के क्षेत्र में जिस देश की परम्परा इतनी मौलिक और इतनी व्यापक रही हो, वहाँ चिकित्सा के पाठ्यक्रम में पश्चिम की पिटी-पिटाई लीक पर लगातार चलते रहने का कोई औचित्य नहीं है । तब तो और नहीं, जब बदलती जीवन शैली के कारण तनाव, अनिद्रा, मधुमेह, मोटापा आदि जैसी बीमारियों के निदान में एलोपैथी के बजाय आयुर्वेद और योग ज्यादा मुफीद बैठते हैं ।

हालांकि मेडिकल के पाठ्यक्रम में बदलाव लाने की योजना के पीछे सरकार किसी अन्य देशों की नकल नहीं कर रही है । सच्चाई यही है कि हाल के वर्षों में कई देशों ने इलाज की अपनी पुरानी परम्परा को चिकित्सा के पाठ्यक्रम में जोड़ा है, ऐसे देशों में मरीजों की जाँच आधुनिक तरीकों से की जाती है लेकिन उपचार देशी पद्धति से । भारतीय प्राकृतिक चिकित्सा की ख्याति इटली, फ्रांस, अमेरिका और जर्मनी तक है । जब विदेशी पर्यटकों के भारत आने के पीछे एक बड़ा कारण यहाँ की प्राकृतिक चिकित्सा का लाभ उठाना है, तब हमारे यहाँ चिकित्सा के पाठ्यक्रम में आयुर्वेद का समावेश तो होना ही चाहिए । इसका एक लाभ और होगा । भारत गांवों का देश है, चिकित्सा के क्षेत्र में हमने कितनी भी उपलब्धि हासिक क्यों नहीं की हो । वास्तविकता यही है कि दूर-दराज के गाँवों में एम.बी.बी.एस. डाक्टर नहीं, बल्कि देसी इलाज करने वाले वैद्य-हकीम हो सुलभ और विश्वस्त होते हैं । एक योग्य, कुशल, अनुभवी चिकित्सक का यह कर्तव्य है कि वह अपने रोगी को चाहें एलोपेथी, आयुर्वेद, यूनानी योग पद्धति क्यों न हो जीवन प्रदान कर सकें ।

(डा० राकेश मोहन शर्मा)
मण्डलीय सचिव - आगरा मण्डल
राजकीय आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा सेवा संघ,उ.प्र.
प्रभारी चिकित्साधिकारी
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
बरई शाहपुर, हाथरस (उ.प्र.)

आरोग्य समाचार

अखबार की कतरनों से

कैन्सर की औषधि की खोज

द हिन्दू में प्रकाशिक एक समाचार के अनुसार द जार्जिया इन्स्टीच्यूट ऑफ टेक्नालाजी के शोधकर्मियों ने Callophycus Serratus नामक एक पौधे की खोज फिजी में की है जिससे जीवाणु जन्य संक्रमण, कैन्सर एवं एड्स की औषधि तैयार की जा सकती है । शोध-कर्मियों के अनुसार इस पौधे में 10 ऐसे सूक्ष्म यौगिक हैं जिनका इस्तेमाल औषधि-निर्माण में हो सकता है ।

चीन ने एड्स की औषधि विकसित की

द हिन्दू में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार ने चीन ने डायकेफियोकुनिक एसिड नामक एक गोली का निर्माण किया है जिसका प्रयोग बन्दरों पर किया गया और यह सफल रहा । एकेडेमी ऑफ मिलिटरी मेडिकल सायन्स के उपाध्यक्ष, श्री हे फुचू ने इस औषधि की खोज की है । यह भी परीक्षण के दौर में है । राज्य खाद्य एवं औषधि प्रशासन विभाग ने औषधि का मनुष्यों पर प्रयोग करने की अनुमति दी है ।

चेहरे का प्रत्यारोपण पहली बार

ले प्वांयट में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार विश्व का प्रथम चेहरे पर प्रत्यारोपण एक 38 वर्षीय फ्रांसीसी महिला पर किया गया । महिला के ओष्ठ एवं नाक को कुत्ते ने घातक प्रहार से नष्ट कर दिया था । डा० डूबर नार्ड एवं बर्नार्ड देवोशेले की संयुक्त टीम ने इसका सफल आपरेशन एपिन्स में किया । चेहरे का तन्तु, मांसपेशी धमनी और नस का प्रत्यारोपण एक मृतक से प्राप्त अंगों से किया गया ।

एच.आई.व्ही. से मुक्ति-चिकित्सा जगत् का आश्चर्य

गार्जियन न्यूजपेपर्स लि० में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार एक 25 वर्षीय स्काट, एन्ड्रू स्टिम्पसन का रक्त एक वर्ष तक एच.आई.व्ही. धनात्मक था जिसका रक्त एक वर्ष पश्चात् ऋणात्मक (निगेटिव) हो गया है । रोगी के अनुसार उसने कोई औषधि नहीं ली थी, केवल विटामिन्स का प्रयोग किया था । चेलेसिया एवं लन्दन स्थित वेस्टमिनिस्टर अस्पताल में जहां चिकित्सकों ने रोगी के रक्त की जांच की थी, अब चिकित्सक कहते हैं कि या तो उसे एच.आई.व्ही. होगा ही नहीं या जांच में कहीं गड़बड़ी हुयी है । विशेषज्ञों के अनुसार गड़बड़ी की घटना 10 लाख में एक हो सकती है ।

संगीत से हृदयरोगियों को लाभ

हार्ट नाम पत्रिका में प्रकाशित समाचार के अनुसार धीमे या मध्यम स्तर में संगीत सुनने से श्वास-क्रिया एवं हृदय-दर में लाभकारी प्रभाव देखा गया है । इसके विपरीत तेज स्वर में संगीत सुनने से श्वास-क्रिया एवं हृदय-दर बढ़ सकती है । अनुसंधान से पता चलता है कि संगीत सुनने से तनाव कम होता है, खेल-कार्य में गति मिलती है, नस-सम्बन्धी रोग एवं यहां तक कि दूध के उत्पादन में भी लाभ मिलता है ।

उच्च रक्तचाप से हृदयाघात के खतरों में अन्तर

यूरोपियन जरनल ऑफ कार्डियोवेस्कुलर प्रिवेन्शन एण्ड रिहेविलिटेशन में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार उच्चरक्तचाप से एशिया में कोरोनरी हृदयरोग के होने की सम्भावना पश्चिम से ज्यादा होती है । अनुसंधान कर्मियों के अनुसार सिस्टोलिक रक्तचाप में 10 mm Hg की वृद्धि से एशिया में 72% लोगों को हृदयरोग की सम्भावना होती है जबकि आस्ट्रेलिया एवं न्यूजीलैण्ड में मात्र 49% ।

हृदय रोगों का संबंध है मसूड़ों से भी

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार हृदय रोगों का संबंध मसूढ़ों से भी होता है । वर्जीनिया कामनवेल्थ यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं ने एक हालिया अध्ययन के दौरान पाया कि 'पेरियोडोंटाइटिस' के रोगियों के प्लाज्मा लिपोप्रोटीन प्रोफाइल में परिवर्तन रोगी में हृदय रोगों और हृदयाघात का खतरा बढ़ा देता है । दरअसल 'पेरियोडोंटाइटिस' मसूढ़ों में सूजन और पुराने संक्रमण से उत्पन्न विशेष स्थिति होती है । 'लिपिड रिसर्च' पत्रिका के दिसंबर वाले संस्करण में प्रकाशित शोध-रिपोर्ट के अनुसार अध्ययन में मिले परिणाम 'पेरियोडोंटाइटिस' रोगी में प्लाज्मा लिपोप्रोटीन प्रोफाइल में परिवर्तन के लिए किये जाने वाले परीक्षण में लाभप्रद हो सकता है । अध्ययन के दौरान शोधकर्ताओं ने पाया कि 'पेरियोडोंटाइटिस' सामान्य तौर पर कम घनत्व वाले लिपोप्रोटीन के प्लाज्मा का स्तर बढ़ाता है । शोध के प्रमुख लेखक और वर्जीनिया कामलवेल्थ यूनिवर्सिटी में बायोकेमिस्ट्री के एसिस्टेंट प्रोफेसर रिक बैन एंटवेरपेन ने बताया कि इसके पहले किये गये शोधों में पाया गया था कि 'पेरियोडोंटाइटिस' से पीड़ित लोगों के रक्त में तीन से लेकर छह परतें होती हैं, जो हृदय रोगों और हृदयाघात का खतरा बढ़ाता है । खात बात यह है कि ऐसे रोगियों के रक्त में कोलेस्टेरोल का स्तर भी स्वभाविक तौर पर बढ़ा होता है, जिसका कोलस्टेरोल की नियमित जांच में हमेशा पता नहीं चल पाता है ।

तनाव से बीमारी की वैज्ञानिक पुष्टि

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार आस्ट्रेलियाई में सिडनी के गैरवान इंस्टीटयूट के शोधकर्ताओं ने इस बात की वैज्ञानिक पुष्टि करने में सफलता हासिल की है कि तनाव व्यक्ति को बीमार बना देता है । उन्होंने आज कहा कि सामान्य अरसे से यह संदिग्ध बना रहा कि भावनात्मक तनाव का सर्दी-जुकाम से लेकर कैन्सर तक का संबंध हो सकता है । इस बाबत हालिया अध्ययनों में वैज्ञानिक साक्ष्य मिले हैं । शोध कर्ताओं ने उम्मीद जताई है कि इस शोध से नये उपचार की खोज में मदद मिलेगी ।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

गुजरात

श्री शंखेश्वर औषधालय का उद्घाटन

वैद्य दिलीप मेहता के द्वारा संचालित यश रेमेडीज प्रा०लि०, श्री शंखेश्वर औषधालय का दिनांक 10/10/2005 को गिरधरनगर, शाहीबाग, अहमदाबाद में आचार्य वैद्य श्रीएच.एस. कस्तुरे द्वारा दीप प्रज्वलित करके शुभारंभ किया गया। इस समारोह में सरकारी मणिवेन आयुर्वेदिक अस्पताल के अधीक्षक, वैद्य टी.एल. स्वामी, गुजरात प्र. आयु. सम्मेलन के प्रधानमंत्री, वैद्य देवेन्द्र शाह, वैद्य श्री अमितभाई भट्ट, वैद्य श्री कीरीटभाई पटेल, वैद्य बी.डी. मेहता, वैद्य अश्विनभाई महावदिया उपस्थित थे ।

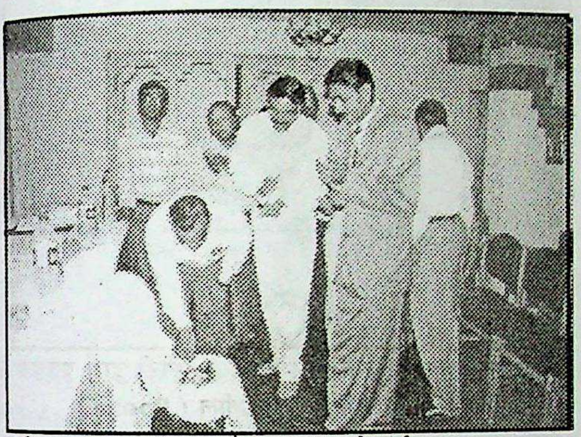

दीप प्रागट्य करते हुए सौराष्ट्र युनि. के पूर्व वाइस चान्सलर तथा CCRAS के चेयरमैन वैद्य कानुभाई मावाणी

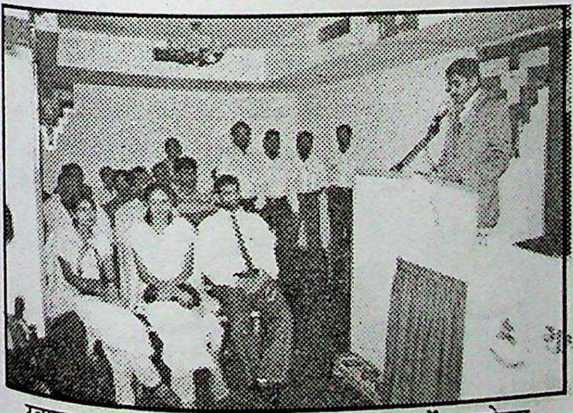

स्वागत भाषण करते हुए सूरत जिला आयुर्वेद सम्मेलन के अध्यक्ष वैद्य निपेश पटेल

सूरत जिला आयुर्वेद सम्मेलन समाप्त

सूरत जिला आयुर्वेद सम्मेलन (शाखा गु.प्र.वै. मंडल) की ओर से "Research & Development in Ayurveda, Standardization of drug of Ayurved" पर राष्ट्रीय सेमिनार दिनांक 10/10/2005 रविवार टारेल युवराज, सुरत (द.गु.) में सम्पन्न हुआ । इस समारोह में राष्ट्रीय एवं अन्तराष्ट्रीय स्तर पर आयुर्वेद में रिसर्च और डेवलमेन्ट एवं आयुर्वेदीय औषधियों का स्तरीकरण विषय पर विद्वान वक्ताओं अपने विचार प्रस्तुत किये । वक्ताओं में आचार्य एच.एस. कस्तुरे (पूर्व नियामक, आयु.गुज.राज्य) डा. कनुभाई मावाणी, (चेयरमैन CCRAS, न्यू दिल्ली), वैद्य श्री टी. एल. स्वामी (अधीक्षक, सरकारी मणिबेन आयुर्वेदिक हॉस्पिटल), वैद्य देवेन्द्र शाह (प्रधानमंत्री गुज.प्र.आयु.), डा० रणजीत सोलंकी (आयुर्वेदिक कैन्सर विशेषज्ञ) श्री जे. के. वानपरिया (रजि.साउथ गुज.युनि. सूरत) आदि थे । सूरत जिला आयु. सम्मेलन के अध्यक्ष, वैद्य निपेश पटेल एवं उपाध्यक्ष वैद्य एस.आर. जैन, मंत्री वैद्य देवाणी, वैद्य युसुफ शेख, वैद्य चेतन शाह, वैद्य नंदलाल ठेसिया, कोषाध्यक्ष, वैद्या मनिषा पटेल, वैद्य नानुभाई हरखाणी (प्रिन्सिपल, आयु, कॉलेज, सूरत) वैद्य संदीप पटेल, वैद्य बाराटे, वैद्य सुनील पटेल, वैद्य अश्विन पटेल अन्य साथी मित्रों के कार्यक्रम को सफल बनाने में सहयोग दिया ।

समारोह में उपस्थित वैद्य गण

पंचकर्म अनुसंधान केन्द्र का शुभांरभ

वैद्य स्वप्नील बी मोदी के श्री हरि आयु. क्लीनिक एवं पंचकर्म रिसर्च सेन्टर का शुभारंभ 16/09/05 सुबह 9 बजे श्री हरि स्वामी के कर कमलों द्वारा गणेश प्लाजासरखेज रोड, वासणा, अहमदाबाद में हुआ । इस समारोह में अहमदाबाद एवं गुजरात के सुप्रसिद्ध वैद्य उपस्थित रहे ।

निदान शिविर का आयोजन

खिरसरा (घेटिया) में आयु. निदान शिविर का

आयोजन श्री स्वामीनारायण गुरुकुल, खीरसरा एवं जिला पंचायत आयुर्वेद दवाखाना द्वारा सर्परोग निदान चिकित्सा यज्ञ का आयोजन किया गया । इस यज्ञ का उद्घाटन गुरुकुल के महंत शास्त्री नारायण स्वरूपदारूजी के कर कमलों द्वारा किया गया । इस यज्ञ में जिला आयु. अधिकारी, सी.एन. वाघेला एवं डा. जी.के.नायक ने अपना प्रवचन किया ।

सरकारी आयुर्वेद कॉलेज टीचर्स एशोसिएशन

वैद्य गनीभाई मन्सूरी, अहमदाबाद वर्ष 2005-06 के लिये अध्यक्ष पद पर नियुक्त किये गये । उपाध्यक्ष, वैद्य वी.डी. डाभी, वैद्य टी.ए. जादव, महामंत्री, वैद्य अजित याज्ञिक, वैद्य जी.जी. पंडया, कोषाध्यक्ष, वैद्य कुबावन, वैद्य दवे, वैद्य शेख, वैद्य भट्ट, वैद्य महोदय झा, वैद्य त्रिवेदी, वैद्य मधुबेन, वैद्य कानुभाई राय को कमिटि मेम्बर्स के लिये नियुक्त किया गया ।

60Th Foundation Day Celebrations of Shree Gulabkunverba Ayu. Mahavidyalaya

The 60th Foundation Day of Shree Gulabkunvarba Ayurved Mahavidyalaya was celebrated on 01/07/2005 with the august presence of Swami Shri Krishnamaniji Maharaj. Head of Khijadia Mandir as Chief guest - Prof. Vasuben Trivedi, MLA as guest of Honour & Dr. S.S. Savrikar V.C. as Chairman of the function. In his presidential address. Hon'ble V.C. highlighted the contribution & achievements made by college for promoting Ayurveda. He congratulated staff & students for multidimensional growth of college in recent yrs. This institution will achieve heights of new successes of achievements, Dr. Savrikar added. The V.C. released project for whole year School Health Awareness Programme, Balaroga Prakalp and varions short term courses on Ayurveda. Dr. Savrikar inaugurated hightech video conferencing system under which class rooms & depts. are linked with office of the prinicipal. Chief Guest Swami Krishan mangi blessed the student for their service. Prof. Vasuben highlighted efforts of State Govt. for promoting Ayurveda, Dr. A.M. Gadhia Chairman, Students union proposed Vote of Thanks.

सेमिनार आयोजित

अहमदाबाद वैद्य सभा, अहमदाबाद जिला वैद्य मंडल गुज. प्र.आयु. सम्मेलन के संयुक्त उपक्रम से "Computerised Diagnostic Software in Ayurved" पर दिनांक 23/10/2005 रविवार को अहमदाबाद होटल Le-meridion के सभागृह में सेमिनार आयोजित किया गया । इसमें 150 से अधिक वैद्य मित्रों, चिकित्सकों, विद्यार्थी, मित्रों के समक्ष तिलक महाराष्ट्र, विद्यापीठ, पूणे Dept. of Ayurveda के प्रो. वैद्य दिलीप गाडगील ने आयु. के. ''त्रीस्कंध कोष'' का Computerised Demonstration प्रस्तुत किया । सभी वैद्य मित्रों को इस कार्य से आश्चर्य एवं प्रशंसनीय कार्य के

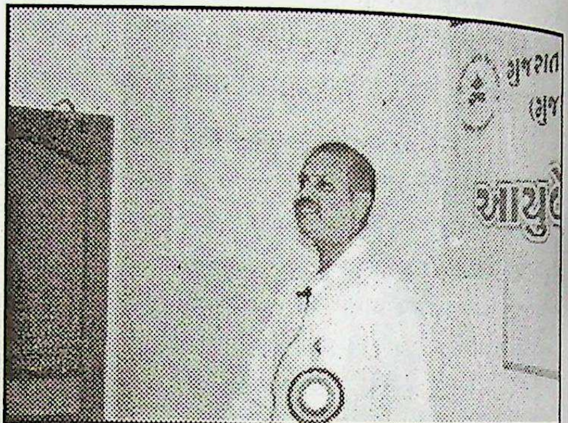

त्रि-स्कंध कोष का ऑडियो, विडियो, सीडी द्वारा प्रवचन करते हुए वैद्य दिलीप गाडगील (Poona)

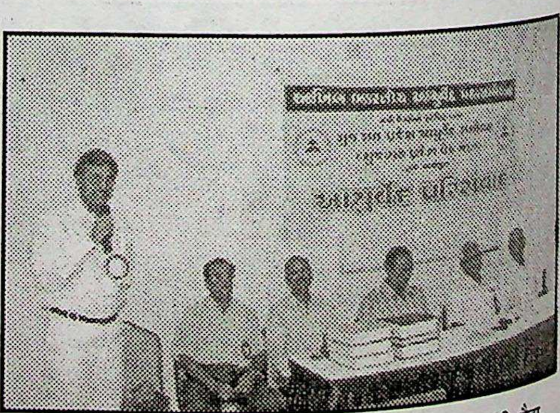

स्वागत प्रवचन करते हुए गु.प्र.आ.सं. के प्रधानमंत्री वैद्य देवेन्द्र शाह

लिए बधाई दी ।

इस कार्यक्रम में अन्य वक्ता श्री रमेश जोशी, जिन्हें गुजरात में मेनेजमेन्ट गुरू के नाम से पहचाना जाता है,

अहमदाबाद वैद्य सभा के अध्यक्ष वैद्य माधव प्रसाद आचार्य वैद्य दिलीप गाडगील (Poona) का स्वागत भाषण करते हुए ।

उन्होंने आयु. में Computer का स्थान एवं महत्व पर अपना भाषण Audio - Video CD द्वारा अपनी शैली में प्रस्तुत किया । इस समारोह में अहमदाबाद वैद्य सभा के अध्यक्ष वैद्य माधव प्रसाद आचार्य तथा गुज.प्र.आयु.सम्मेलन के वरिष्ठ उपाध्यक्ष आचार्य एच.एस. कस्तुरे साहब तथा मणिबेन आयु. हॉस्पिटल के अधिक्षक वैद्य टी.एल. स्वामी ने दोनों वक्ताओं का पुष्प माला से तथा शाल, श्रीफल प्रदान कर अभिवादन किया ।

सूरत जिला आयुर्वेद सम्मेलन 2005-06 के लिए पदाधिकारियों का चयन

गुजरात प्र.आ.सम्मेलन के नेतृत्व में सूरत जिला आयुर्वेद सम्मेलन की पुनः संगठन रचना दिनांक 14/09/2005 के शुभ दिवस पर की गई । उनमें निम्नलिखित पदाधिकारियों को अंक वर्ष के लिये चयन किय गया ।

अध्यक्ष :- वैद्य निपेश पटेल, उपाध्यक्ष, वैद्य एस. आर. जैन, मंत्री वैद्य जतिन त्रिवेदी, सहमंत्री, वैद्य युसुफ शेख, संयोजक : वैद्य नंदलाल डेसिया, वैद्य चेतन शाह, कोषाध्यक्ष : वैद्या मनीषा पटेल, अडेवाइजर श्री वैद्य नानुभाई हरखानी, वैद्य सुकदेवसिंह वासिया, प्रबंधक समिति: वैद्य रणजीत सिंह सोलंकी, वैद्य भूपेन्द्र वैद्य, वैद्या प्रतिभाबेन सोलंकी, वैद्य संदीप पटेल, वैद्य मुनेश देवानी, वैद्या तृप्ति बारोट, वैद्या अर्पणा चौधरी, वैद्य सुनील पटेल, वैद्य अश्विन पटेल ।

बैठक सम्पन्न

गुजरात. प्र. आयु. सम्मेलन बड़ोदरा जिला आयुर्वेद सम्मेलन प्रबंधक समिति की बैठक आचार्य गुरुवर्य वैद्य श्री एच.एस. कस्तुरे (वरिष्ठ उपाध्यक्ष - गुजरात प्र. आयु. सम्मेलन) की अध्यक्षता में बड़ोदरा शहर में होटल सासुजी के सभाखंड में करीब 50 से अधिक प्रतिनिधिओं के साथ जिले के प्रतिनिधि मंडल की बैठक सम्पन्न हुई ।

नयी दिल्ली

'आयुर्वेद की अमान्य उपाधि एवं सूचीकरण के सावधान'

(अखिल भारतीय आयुर्वेद समाचार सेवा - दिल्ली - 110034)

नई दिल्ली 6 दिसम्बर, भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् ने एक प्रेस विज्ञप्ति द्वारा जनता को सावधान करते हुए कहा है '' अधिनियम 1970 की द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अनुसूचित में सम्मिलित अर्हताएं की मान्यता प्राप्त चिकित्सीय अर्हताएं हैं । इनमें से कुछ अर्हताएं केवल सीमित अवधि के लिए ही मान्य हैं । उदाहरण के तौर पर हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग द्वारा प्रदत्त वैद्य विशारद और आयुर्वेद रत्न अर्हताएं केवल 1931 से 1967 तक ही मान्य हैं । आगे हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद द्वारा प्रदत्त उपर्युक्त अर्हताएं आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति में चाहे किसी भी अवधि के लिए प्रदान की गई हों किसी भी उद्देश्य हेतु मान्य नहीं है ।

आगे यह भी सूचित किया जाता है कि किसी भी राज्य बोर्ड / परिषद् द्वारा अनुभव के आधार पर सूचीकरण का भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद अधिनियम, 1970 के अधीन कोई प्रावधान नहीं है ।

प्रेस विज्ञप्ति की फोटो प्रति, अखिल भारतीय आयुर्वेद सेवा संघ, रिषी नगर, दिल्ली-34 से मुफ्त मंगवाई जा सकती है । सरकार द्वारा घोषित अमान्य/अनाधिकृत संस्थाओं की सूची जो लोगों को गुमराह कर रही है, मुफ्त

मंगवाई जा सकती है ।

डा०वी.के. खुल्लर, प्रधान
अखिल भारतीय आयुर्वेद सेवा संघ
24 ऋषि नगर, देहली - 34

उत्तर प्रदेश

भारतीय चिकित्सा परिषद् उ०प्र० के गठन के सम्बन्ध में सूचना

समस्त उ०प्र० के भारतीय चिकित्सा परिषद् के पंजीकृत चिकित्सकों से निवेदन है कि नियंत्रक भारतीय चिकित्सा परिषद्, उ.प्र. लखनऊ की विज्ञप्ति के अनुसार परिषद् से पंजीकृत चिकित्सक निम्न आवेदन पत्र के प्रारूपानुसार अपनी समस्त कार्यवाही 31 दिसम्बर 2005 तक व्यक्तिगत अथवा पंजीकृत डाक से अपना आवेदन प परिषद् को भेजना सुनिश्चित करें ताकि चुनाव सूचि संशोधित कर उनका नाम अंकित किया जा सके । परिष ने मृत चिकित्सकों के नाम हटाने के उद्देश्य से यह कद उठाया है । उक्त अवधि के अन्दर उक्त प्रारूपानुसार क सूचना परिषद् को नहीं प्रेषित की गई, तो उनका न पंजीयन रजिस्टर से पृथक कर दिया जायेगा, जिसके लि चिकित्सक स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

अत: आप सबसे अनुरोध है कि शीघ्र की उक् फार्म भरकर परिषद् को भेजने की कृपा करें ।

आवेदन का प्रारूप

सेवा में

रजिस्टार
भारतीय चिकित्सा परिषद्, उ.प्र., लखनऊ
धन्वन्तरि भवन -7 लाल बाग, लखनऊ

महोदय,

मैं .... पुत्र / पुत्री / पत्नी ....
ने .... परीक्षा .... विश्वविद्यालय / बोर्ड ....
से .... सम्बद्ध .... संस्था / कालेज .... से व
.... में उत्तीर्ण की थी एवं भारतीय चिकित्सा परिषद्, उ०प्र० में वैद्य / स्कीम के रूप में पंजीयन संख्
.... पर पंजीकृत है, तथा वर्तमान समय में निम्नलिखित पत्ते पर चिकित्साभ्यास कर रहा हूँ ।

पता ....
....
....

कृपया मेरा उपरोक्त पता कार्यालय अभिलेख में अंकित करने का कष्ट करें ।

स्थान ....

दिनांक ....

नाम एवं हस्ताक्षर

प्रेषक :- (डा० राकेश मोहन शर्मा)
मण्डलीय सचिव-आगरा मण्डल
राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी चिकित्सा सेवा संघ, उ.प्र.
प्रभारी चिकित्साधिकारी, राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, बरई शाहपुर - हाथरस

वृन्दा बनाम स्वामी : विज्ञान को राजनीति से प्रदूषित नहीं करें ।

इन दिनों सम्पूर्ण देश में वृन्दा करात एवं स्वामी रामदेव के मध्य आरोप-प्रत्यारोप हो रहे हैं । प्रदर्शन, धरना, प्रेस वक्तव्य एवं राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप से मूल बिन्दु की ओर से जनता का ध्यान हटा दिया है। श्रीमती वृन्दा करात एक सांसद हैं । वे अपने दल, माकपा की सर्वोच्च नीति-निर्धारक समिति (पोलित ब्यूरो) की सदस्या हैं । उनके पतिदेव श्री प्रकाश करात उनके दल के ही महासचिव हैं । वर्त्तमान केन्द्रीय सरकार वाम पंथियों के सहारे टिकी हुयी है । श्रीमती करात उत्तरांचल में अपनी पार्टी की प्रभारी हैं । साथ ही स्वामी रामदेव द्वारा संचालित दिव्य योग फार्मेसी में कार्यरत श्रमिकों की नेत्री भी हैं । स्वाभाविक है कि अपने समर्थकों के हितों की रक्षा के लिए कार्य करेंगी। दूसरी ओर स्वामी रामदेव प्रख्यात योगाचार्य हैं। विद्युत संचार तंत्र के साधनों पर उनका काफी प्रभाव है । दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों पर उनके कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं । साथ ही वे योग शिविर का भी आयोजन करते रहते हैं । इसमें कोई शक नहीं कि उनके योग-प्रदर्शनों से लाखों लोगों ने लाभ प्राप्त किया है । कुछ खास रोगों में योग काफी लाभप्रद होता है । लोगों को निरन्तर स्वस्थ रहने की प्रेरणा योग देता है । ऐसे भी योग प्राचीन भारतीय गौरव है। अभी तक कि आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने भी योग को निष्प्रभावी नहीं बताया है । योग के क्षेत्र में भारतीय जनता स्वामी रामदेव के योगदान को भूल नहीं सकती है । साथ ही स्वामी जी ने मानव-आरोग्य के लिए आयुर्वेद का भी सहारा लिया है । वे न केवल आयुर्वेद का उपदेश देते हैं, बल्कि आयुर्वेदिक औषधियों के निर्माण द्वारा जनता की सेवा कर रहे हैं । विषय-वस्तु पर प्रकाश डालने के पूर्व इस बात की ओर सुधी जनों का ध्यान आकर्षित करना उचित है कि आयुर्वेद एक गूढ प्राचीन भारतीय चिकित्सा विज्ञान है । इसे किसी भी पैथी या मान्यता से दुराग्रह नहीं है । ''आयुर्वेद'' शब्द से ही स्पष्ट है कि यह ''आयु'' (जीवन) ''वेद'' (विज्ञान) का शास्त्र है । जो भी शास्त्र मानव-आरोग्य का पाठ पढ़ाता हो, जो भी विधि मानव को दीर्घायु प्रदान करने के लिए कार्य करती है एवं जिस विद्या में मानव-कल्याण की भावना निहित है, वस्तुत: वही आयुर्वेद है ।

वर्तमान विवाद का विषय यद्यपि श्रमिक विषय है, किन्तु श्रीमती करात ने इसे राजनीतिक रंग दे दिया । श्रीमती करात ने आरोप लगाया है कि दिव्य योग फार्मेसी में निर्मित औषधियों में मानव-अंग एवं जानवरों की हड्डियों के चूर्ण का प्रयोग होता है । अपने अरोपों को प्रमाणित करने के लिए उन्होंने कुछ नमूनों को जांच करने के लिए भारत सरकार के भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होम्योपैथी विभाग के पास भेज दिया । विभाग ने उन नमूनों को हैंदराबाद की दो प्रयोगशालाओं, चेन्नई की एक प्रयोगशाला एवं पश्चिम बंगाल की एक प्रयोगशाला में भेज दिया । सरकार का यह सही कदम था । विभिन्न कानून के प्रावधानों के अनुसार यह नियम है कि सम्बन्धित राज्य सरकार के औषधि प्रशासन विभाग के अधिकारी नमूनों को एकत्रित करते हैं एवं जांच के लिए प्रयोगशालाओं में भेजते हैं । इस परिपाटी की यहाँ अवहेलना हुयी है । श्रीमती करात ने अपने अथवा कामगारों के द्वारा नमूना प्राप्त किया एवं उसे सरकार के पास जाँच के लिए भेज दिया । किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं है कि वह नमूना को जाँच के लिए भेज सके । चूंकि श्रीमती करात एक सांसद हैं, इसलिए वह यह तर्क दे सकती हैं कि जनहित में वह कोई भी कार्य कर सकती हैं । हम उनके तर्क से सहमत भी हो सकते हैं, किन्तु किसी जाँच परिणाम को प्राप्त किये बिना आरोप लगाना प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त के विपरीत है । चूँकि

वर्त्तमान केन्द्रीय सरकार में उनका समर्थन है और उत्तरांचल की सरकार भी केन्द्र में शासित राजनीतिक दल की ही सरकार है, अत: वह किसी प्रकार का प्रचार किये बिना अपना कार्य जनहित में करवा सकती थी । विदित है कि आयुर्वेद में जान्तव द्रव्यों का प्रयोग निषिद्ध नहीं है । आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में इसके स्पष्ट प्रमाण हैं । अत: प्रश्न यह नहीं है कि दिव्य योग फार्मेसी में निर्मित औषधियों में जानवरों के अंगों का प्रयोग हुआ है अथवा नहीं । प्रश्न केवल इतना ही है कि जिन औषधियों के निर्माण के लिए उन्हें अनुज्ञप्ति प्राप्त हुयी है, उनके अनुसार वे कार्य करते हैं अथवा नहीं । वर्तमान सरकार के अनुसार यदि हम किसी शास्त्रीय औषधि का निर्माण करते हैं, उस लेबुल खोली में सम्बन्धित ग्रन्थों का उल्लेख करना ही पर्याप्त है और प्रयोग किये जाने वाले द्रव्यों का उल्लेख शास्त्रीय ग्रन्थों में नहीं है तो ऐसी स्थिति में सम्बन्धित द्रव्यों का उल्लेख लेबुल खोली में करना अनिवार्य है । यदि ऐसा नहीं है तो कानून का उल्लंघन होगा ।

श्रीमती करात का दुर्भाग्य है कि चेन्नई और हैदराबाद की एक प्रयोगशाला ने औषधियों में मानव अंगों के उपस्थित होने की पुष्टि नहीं की है । पश्चिम बंगाल की प्रयोगशाला और हैदराबाद की एक दूसरी प्रयोगशाला ने मानव या जानवरों के अंगों की पुष्टि की है ।

हमारा आशय यह नहीं है कि स्वामी रामदेव सत्य कह रहे हैं या श्रीमती करात, किन्तु यह जिज्ञासा अवश्य है कि तथ्य वैज्ञानिक साक्ष्यों के साथ जनता के समक्ष उपस्थित होना चाहिए । यदि किसी प्रयोगशाला में जाँच रसायनज्ञ जांच प्रतिवेदन में हेराफेरी करते हैं तो उन्हें दण्ड मिलना चाहिए । यह बच्चों का खेल नहीं है, बल्कि मानव आरोग्य का प्रश्न है ।

श्रीमती करात पर स्वामी रामदेव ने आरोप लगाया है कि वे बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों का खिलौना बनी हुयी हैं । आरोप सत्य हैं कि सम्पूर्ण विश्व में आयुर्वेद की बढ़ती लोकप्रियता को एलोपैथी औषधि उद्योग जगत भयभीत है । इस के अधिकांश मालिक बहुराष्ट्रीय कम्पनी है । यह बात जनता समझ सकती है कि श्रीमती प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से बहुराष्ट्रीय कम्पनी के का खिलौना बन चुकी हैं । स्वामी रामदेव के अनु वे 29 दिसम्बर 2005 को आधुनिक दवा उद्योग प्रतिनिधियों से चुपचाप मिल चुकी हैं । यदि रामदेव का आरोप सत्य है तो श्रीमती करात के यह दुखदायी प्रसंग होगा ।

निस्संदेह यह सत्य है कि स्वामी रामदेव योग का जनतंत्रवाद किया है । लाखों मरीजों को इस लाभ मिला है, किन्तु कानून के ऊपर कोई नहीं है स्वयं रामदेव स्वामी जी ने निरन्तर वक्तव्य के द्वारा की मांग की है । यदि जांच में उनके खिलाफ सत्य होते हैं तो कानून को अपना काम करना चा किन्तु किसी भी स्थिति में विज्ञान को राजनीति प्रदूषित नहीं करना चाहिए । दुर्भाग्य है कि दोनों विवादों के मध्य मूल समस्या अर्थात् श्रमिक अलग-थलग पड़ गयी है । स्वामी रामदेव के अनु जिन श्रमिकों की सेवा समाप्त की गयी है, उनमें कुछ अपराधी हैं एवं वे जेल में हैं । हो सकता है स्वामी रामदेव के कथन में सच्चाई हो किन्तु यह नहीं हो सकता है कि सभी श्रमिक अपराधी हों । श्रमिकों की समस्याओं का समाधान हो जाता है श्रीमती करात एवं स्वामी रामदेव के मध्य वाक् समाप्त हो सकता है । श्रमिक भी मानव है । यदि कल्याणार्थ वे योग एवं आयुर्वेद का सहारा लेते हैं अपने कर्त्तव्यों से भी श्रमिकों का कल्याण एक की तरह कर सकते हैं एक उद्योगपति की तरह

जो भी हो दोनों के युद्ध में आयुर्वेद एवं का नुकसान हुआ है जिसकी भरपाई निकट भवि संभव नहीं है ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-75

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

सुश्रुत संहिता

तैंतीसवें अध्याय में वमन-विरेचन साध्य उपद्रव कित्सा, दोषों के लिए सिद्धान्त, दोषों को निकालने के ए वमन और विरेचन, वमन, विरेचन की विधि, वमन ने के लक्षण, वमन होने के बाद क्या देना चाहिए, वमन रने वाले व्यक्ति को जो दोष नहीं होते, वमन द्वारा कफ धन, वमन का निषेध, ऊर्ध्व वायु का लक्षण, वमन के ग्य पुरुष को वमन देने से कष्टसाध्य, अपवाद, वमन योग्य, विरेचन किसे देना चाहिए, विरेचन से पहले लघु जन, कोष्ठ के प्रकार, विरेचन लेने पर मल को रोकने पर तिबन्ध, मल, मूत्र का क्रम से आना, भली प्रकार विरेचन हीं होने पर दोष, पेया पिलाने पर निषेध, विरेचन से जन्य दोषों का नाश, विरेचन के योग्य, अयोग्य, स्वाभाव दोषों का अधोमार्ग से निकालना, मृदु कोष्ठ वाले व्यक्ति र अति तीक्ष्ण विरेचन, प्रशस्त औषध, दुर्बल मनुष्य के ों को थोड़ा-थोड़ा करके बाहर निकालना, पके हुए दोषों ी उपेक्षा करना ठीक नहीं, मदाग्नि और क्रूर कोष्ठ, तिशय स्नेहपान पर विरेचन का प्रयोग नहीं करना, स्नेह न्य व्यक्ति और कोमल प्रकृति, स्नेहन और स्वेदन के ना संशोधन, स्नेहन, स्वेदन में चलायमान दोष वमन रेचन आदि विषयों का समावेश है ।

चौंतीसवें अध्याय में वमन विरेचन व्यापत् चिकित्सा, मन, विरेचन की 15 प्रकार की व्यापत्ति, तीक्ष्ण विरेचन, शुद्ध आमाशय तथा प्रचुर कफ वाले को विरेचन ठीक न ने पर तुरन्त अतिशय, भली प्रकार विरेचन होने पर लक्षण खकर विरेचन कराना, अवस्थानुसार अतितीक्ष्ण विरेचन, यु की अधिकता से अतिशय स्नेहन देकर स्वेदन कराकर धन कराना, वमन और विरेचन का अतियोग, शुद्ध और शुद्ध रक्त की परीक्षा, अन्न के शेष रहने पर, निर्बल शरीर दि के अति तीक्ष्ण, उष्ण, अतिलवण आदि पीने पर, क्रूर कोष्ठ व्यक्ति, अतिरूक्ष या अति स्निग्ध पुरुष में बरती हुयी औषध, मूर्खता से औषध के वेग को रोकना, पुरुष के दोष ऊपर या नीचे होने पर चिकित्सा, गुडपरिकर्त्तिका, परिस्राव, प्रवाहिका आदि विषयों का समावेश है ।

पैंतीसवें अध्याय में नेत्रबस्ति प्रमाण प्रविभाग, स्नेहादि कर्मों में बस्ति, बस्ति का बरतना, बस्ति का उत्तम होना, नेत्र और बस्ति का परिमाण रोगी के बल, वय और शरीर के अनुसार बढ़ाना, उम्र के अनुसार बस्ति, स्नेह-कषाय बरतना, बस्ति के प्रकार, निरूह, शोधित भाग, आस्थापन, अनुवासन, बस्ति का सब जगह पहुंचना, भली प्रकार सेवन की हुयी बस्ति, व्यापद और हानियां आदि विषयों का समावेश है ।

छत्तीसवें अध्याय में नेत्र बस्ति व्यापत् चिकित्सा, नेत्र का हिल जाना या घूम जाना, बस्ति के मोटा होने या छोटा होने से दोष, अतिशय धीरे से दबाना, अतिस्निग्ध में रूक्ष बस्ति तथा रूक्ष में स्निग्ध, बस्ति का दोष करना, अयोग्य जन्य हानियों की चिकित्सा आदि विषयों का समावेश है ।

सैंतीसवें अध्याय में अनुवासन उत्तर बस्ति चिकित्सा, अनुवासन कब देना चाहिए, बिना शोधन के स्नेह बस्ति पर प्रतिबन्ध, अर्श, ग्रहणी रोग आदि वायुजन्य रोगों को नष्ट करने का योग, वात रोगियों में अनुवासन रूप से बरतने वाला तैल; बस्ति में देने योग्य अनेक प्रकार के तैल, भली प्रकार निरूहण होने पर अनुवासन के लिए विविध तैल, रात्रि में बस्ति का प्रयोग करने पर प्रतिबन्ध, अपवाद, अनुवासन लेने का काल, कब स्वेदन लें, स्नेह का ऊपर की ओर पहुंचना, कम मात्र में खिलाकर अनुवासन देना, स्नेह बस्ति देना, नियम का पालन, स्नेहहीन अनुवासन के दोष, अग्नि प्रदीप्त होना एवं भोजन में रुचि होना, अट्ठारह बस्तियां, हजार वर्ष की आयु वाला, पित्त, कफ या वात कोप की आशंका नहीं होना, रूक्ष एवं बुर्जुग को बस्ति देना, स्नेह बस्ति की हानियां, आस्थापन बस्ति, अनुवासन के साथ आस्थापान, शोधनीय बस्ति में आस्थापन, पच जाने पर थोड़ा गुण करना, रूक्षता के कारण उपेक्षा करना और

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

संशोधन द्वारा निकालना, दूसरी बस्ति देने पर प्रतिबन्ध, उत्तर बस्ति का स्नेह की अधिक मात्रा, बस्ति की विधि, स्त्री में बस्ति देने का नियम, गर्भाशय के शोधन के लिए स्नेह की मात्रा का उपयोग, अनुवासन चिकित्सा में नितम्ब थपथपाना, शीतल कषाय में दूध मिलाकर बस्ति देना, प्रभेदों में उत्तरबस्ति का नष्ट होना, उत्तरबस्ति के सम्यग् योग के लक्षण आदि विषयों का समावेश है ।

अड़तीसवें अध्याय में निरूहक्रम चिकित्सा व्याख्यान, निरूहवस्ति देने का प्रकार, निरूह वस्ति बंद, कोमल प्रकृतिवालों को अधिक मात्रा में बस्ति नहीं देना, निरूह जानने के लक्षण, निरूह के पश्चात् कर्म, आस्थापन और स्नेह वस्ति से रोगी को शान्ति, वायु के कोप का भय, निरूह बस्ति के बाहर न आने पर, विपरीत गतिमान वायु से दोष, आस्थापन नहीं देना, निरूह योग्य, स्वस्थ अवस्था में क्वाथ आदि का भाग, कल्पना विधि, बारह प्रसृत वाले निरूह, पृथक् बस्तियां, शोधन, लेखन, बृंहण, वाजीकर, पिच्छा एवं ग्राही बस्तियां, वन्ध्या स्त्रियों के लिए बस्तियां माधुतैलिक बस्तियां, युक्तरथ, दोषहर एवं सिद्ध बस्ति आदि विषयों का समावेश है ।

उनतालीसवें अध्याय में आतुरोपद्रव चिकित्सा स्नेहपान, वमन विरेचन आदि से कायाग्नि का मन्द हो जाना, तीन माप, यवागू, कफपित्त की अधिकता वाले के लिए तर्पणादि विधि, रोगी का एक अनुवासन बस्ति से लेकर तीन-तीन दिन परहेज करना, व्रण रोगी, कुपित पित्त, दाह, प्यास आदि विषयों का समावेश है ।

चालीसवें अध्याय में धूमनस्य कवलग्रह चिकित्सा, धूम के प्रकार, प्रायोगिक धूम के लिए वर्ति, वमन कराने वाले द्रव्यों को वामनीय धूम बरतना, धूम नेत्र बनाना, धूम पीने के प्रकार एवं समय, स्नैहिक धूम स्नेहन एवं उपलेप से वायु का शमन, धूम के गुण, योग, घूंट की मात्रा एवं प्रक्रिया, नस्य की विधि, नस्य के प्रकार, रोगों को ठीक करने के लिए नस्य लेना, समय, नस्य के पूर्व, स्नेह की मात्रा, नस्य में व्याज्य, नस्य के योग, अतियोग, अयोग के लक्षण, शिरो विरेचन स्नेह की मात्रा, प्रयोग की दृष्टि से नस्य के तीन लक्षण, सर्पदष्ट, मूर्च्छित पुरुषों के लिए, महिलाओं के शिर का शोधन, नस्य के लि अतिमात्रा, अतिशीत से हानियां, चिकित्सा, प्र का उपयोग, नस्य के गुण, कवल ग्रहण की वि का लक्षण, कवल में शुद्धि के लक्षण, तिल कवल, मुख-दाह को नष्ट करना, औषध का आदि विषयों का समावेश है ।

कल्प स्थान

प्रथम अध्याय में अन्नपान रक्षा कल्प, विष से रक्षा, राजा द्वारा विश्वास नहीं किया जान योग्यता, रसोई की स्थिति, योग्य पुरुष, भव्यता, के अधीन, विषदाता की पहचान, सज्जन पुरुषों का जैसी चेष्टा करना, विष देने के साधन, विषैले परीक्षा में पशु-पक्षियों का उपयोग, विषैले अन्न हाथों में लगा विषैला अन्न, विषैला अन्न खाने आमाशय और पक्वाशय में पहुंचा विष, दूध, आदि तरल द्रव्यों में विष से विकार, शाक, आदि में विष के विकार, दातुन में विष का सं अभ्यंग, कंघी आदि के विष से दोष, शिर, घोड़े विष लगने से विकार तथा चिकित्सा, कान विषैला होने पर, विषैला अंजन, विषैले चू आभूषण के विकार एवं चिकित्सा, वैद्य द्वारा रा से बचाना, विषघ्न द्रव्यों के साथ भक्ष्य और सेवन सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

द्वितीय अध्याय में स्थावर विष, स्थावर भेद से विष के प्रकार, दस स्थावर विष के अ विष, फल, पुष्प, त्वक्, क्षीर, धातु, कन्द सहित विष, आवान्तर भेद, भिन्न-भिन्न विषों के ल कन्दों का विस्तार, विष के दस गुण, दूषी, वि विष के लक्षण, चिकित्सा, अजेय घृत, दूषी वि अगद आदि विषयों का समावेश है ।

तृतीय अध्याय में जंगम विष, जंगम स्थानों का विस्तार, विष से दूषित जल और उ के उपाय, विष से दूषित भूमि, घास, भूसा, गे विष से दूषित हो जाने पर उसकी चिकित्सा, का विष से मुक्त होना, विष की उत्पत्ति, विष के

का सांप के शरीर में फैलना, शीतल परिषेक और स्वेद, विष से मरे प्राणी का मांस खाने पर प्रतिबन्ध, विषमान के लक्षण, उष्ण उपचार से विष का आगे बढ़ना, असाध्य लक्षण सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

चौथे अध्याय में सर्पदष्ट विज्ञानीय कल्प, 80 प्रकार के दंष्ट्राविषवाले सांप, पांच प्रकार के भेद तथा आकार दृष्टि से तीन प्रकार, अतिशय क्रोधी सांप, सर्पाङ्गामिहत, सांपों के प्रकार, चार वर्ण, दर्वीकर, मण्डलि पित्त और रात्रिमान कफ को कुपित करने वाले सांप, तीनों के घूमने का काल, मृत्युकारक अवस्था, डरने वाला सांप, पुरुष, स्त्री तथा नंपुसक जाति के सर्प, दष्ट लक्षणों के सामान्य रूप, सांपों के कांटने का प्रभाव, सात वेग, पशु-पक्षियों पर प्रभाव प्रमुख सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

पांचवें अध्याय में सर्पदष्ट चिकित्सित कल्प, दंश स्थान से ऊपर अरिष्टा बांधना, दंश स्थान को अग्नि से जलाना, छेदन, चूषण और दाह का प्रयोग, मंत्रों से बांधना, मंत्रों द्वारा विष को नष्ट करना, सिद्धि के उपाय, अगद उपचार, सिराओं का बेधन, दूध, मधु, कचनार, शिरीष, आक्, कोपल (अपराजिता), तैल, कुलत्थी, यूष, मद्य एवं कांजी का दर्वीकर मण्डलि और राजिमान सांपों के विषों की चिकित्सा, गर्भवती, बालक या वृद्ध में सिरा वेधन करने का निषेध, रक्तावसेचन, परिषेक और प्रदेह में अतिशीतल द्रव्यों का सेवन, स्थावर और जंगम विषों की चिकित्सा, विषयुक्त वस्तु से विद्ध के लक्षण, अस्थि विष, महागद, अजित अगद, तार्क्ष्य अगद, ऋषभ अगद, संजीवन अगद, लसूड़ा आदि से बनाया अगद, द्राक्षा आदि से मिलाया अगद, लेप, अंजन, नस्य, कीर विषों को नष्ट करने के लिए क्वाथ, चूहों के विष को नष्ट करना, एकमरगण आदि विषयों का समावेश है ।

छठे अध्याय में द्रन्दुमिस्वनीय कल्प, धावड़ी आदि से क्षार की भांति अगद विष का नाश करना, कल्याणक घृत, अमृत घृत, महासुगन्धि अगद, विष पीड़ित व्यक्तियों के लिए अन्न, अविष मनुष्य आदि विषयों का समावेश है ।

सातवें अध्याय में मूषिक कल्प 18 प्रकार के चूहे, काटने के लक्षण, मूषिकों में संशोधन, सिरावेधन, दंश में मुखदलक योग, विरेचन, सारिवा आदि के कषाय और क्वाथ में सिद्ध घृत, व्रण को चीरकर चिकित्सा करना, पागल विष वाले पशु का काटना, प्राणी के समान मनुष्य का व्यवहार करना, जलत्रास का लक्षण, असाध्य जलत्रास, पागल जानवरों के विष को नष्ट करना, शरपुंखा आदि का योग, नहलाना और संशोधन देना, हिंसक पशुओं के नख और दांतों का क्षत होना आदि विषयों का समावेश है ।

आठवें अध्याय में कीट कल्प, प्रकार, 18 प्रकार के वात स्वभाव के कीट, 24 कीट पित्त प्रकृति के, 13 कीट कफ प्रकोपक एवं 12 कीट प्राण नाशक, तीक्ष्ण विष में मन्द विष, चूर्ण को गर कहना, लक्षणों से साध्य, असाध्य, पांच गोधरेक और छह गलगोलिका के काटने से, आठ प्रकार के शतपदी, आठ प्रकार के मण्डूक, विश्वम्भरा, अहिण्डुका, कण्डूका, शूकवृन्त के काटने से, छह प्रकार की मिलीलिका, छल प्रकार की मक्खियां, पांच प्रकार के मशक, छह असाध्य, विषैले शव, मूत्र, मल से दोष, कष्ट साध्य दंश, उग्र विष, स्वेदन, आलेपन, उत्कारिका स्वेदन में उत्तम, कूठ आदि त्रिकण्टक विष में उत्तम, गलगोलिका के विष को नाश करने वाला अगद, कानखजूरा, मण्डूक, विश्वम्भरा, अहिण्डूका, शूकवृन्त अगद, बिच्छू के प्रकार, 30 प्रकार के बिच्छू, मन्द, मध्यम और तीक्ष्ण विष वाले बिच्छू, तीव्र और मध्य विष वाले बिच्छू की चिकित्सा, मकड़ी विष, मछलियां सात प्रकार के विषों को निकालती हैं, भूताओं, कीटों एवं कर्णिका को निकालने के लिए विषों की चिकित्सा आदि विषयों का समावेश है ।

उत्तरतंत्र

प्रथम अध्याय का नाम औपद्रविक अध्याय है । इसमें शिर के रोग, आंख की आकृति, आंख में मांस पृथ्वी से, रक्त अग्नि से आदि, कृष्ण मंडल तथा दृष्टि के दो भाग, आंख में पांच मंडल, छह सन्धियां एवं छह पटल, सिरायुक्त श्लेष्मा, अतिशय भयानक रोग, रोगों का पूर्व रूप एवं चिकित्सा, वातादि दोष, आंख के 76 रोग, वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, रक्तजन्य तथा सर्वगत नेत्र रोगों में, बाह्यज रोगों में दो असाध्य आदि रोगों का वर्णन है ।

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ एवं पंचम अध्याय में सन्धिगत रोग, सन्धिगत 9 रोग, मूयालस, कनीन का प्रदेश, पूयस्राव, पित्तस्राव के लक्षण, पर्वणी, अलजी, कृमि ग्रन्थि के लक्षण, वर्त्मगत रोग, 21 रोग वर्त्मगत, शुक्लगत रोग, आंख के शुक्ल भाग में 11 रोग, कृष्णगत रोग, कृष्ण भाग में होने वाले 4 रोगों का समावेश है ।

छठे अध्याय में सर्वगत रोग, कुल 17 रोग, अभिष्यन्द के कारण रोग, वाताभिष्यन्द, पित्ताभिष्यन्द, कफाभिष्यन्द तथा रक्ताभिष्यन्द, वातज, पित्तज, कफज, रक्तज अधिमन्य, दृष्टिनष्ट करना, सशोफ पाक, हताधिमन्य, वात पर्याय, शुराकाक्षिपाक, अन्यतो वात, अम्लाध्युपित एवं सिरोत्पात-सिराग्रहण का समावेश है ।

सप्तम अध्याय में दृष्टिगत रोग, दृष्टि का प्रमाण, उत्पत्ति, दृष्टि में आश्रित 12 भयानक रोग, तिमिर रोग, परिम्लापि रोग, रक्त जन्य मण्डल, छह लिंगनाश, पित्त विदग्ध दृष्टि, धूमदर्शी, हृस्वजाड्य, नकुलान्ध्य, गम्भीरका, निमित्तजन्य रोग, अनिमित्तज लिंगनाश एवं आंख के कुल 76 रोगों का समावेश है ।

अष्टम अध्याय में चिकित्सक प्रयाग, 11 प्रकार के छेदन करने योग्य रोग, नौ रोग लेखन के योग्य, पांच रोग भेदन के योग्य, 15 रोग शिरोवेधन के योग्य, 12 रोग शस्त्रकर्म के अयोग्य, याप्य रोग 7 एवं 15 रोग असाध्य हैं ।

नवम् अध्याय में वाताभिष्यन्द प्रतिषेध चिकित्सा, अभिष्यन्द और अधिमन्थ वाले रोगी का सिरोमोक्षण, योग्य उपनादों में स्वेदन, भोजनोपरान्त घृत पान, सिद्ध किया तैल नस्य में सिद्ध किये दूध परिषेक, आश्च्योतन में, अभिष्यन्द में अंजनादि आदि विषयों का समावेश है ।

दशम अध्याय में पित्ताभिष्यन्द, पित्तजन्य अधिमन्थ में रक्तस्राव, विरेचन, आखों पर परिषेक, आलेप, नस्य और अंजन, पित्त विसर्प की चिकित्सा, पित्तज अभिष्यन्द में पित्तनाशक उपचार, अंजन, आश्च्योतन, सिरामोक्षण, घी का उपयोग आदि विषयों का समावेश है ।

एकादश अध्याय में श्लेष्माभिष्यन्द प्रतिषेध, कफजन्य अभिष्यन्द, सिरोमोक्षण, स्वेद, अंजन करने के लिए वर्त्ति, वलासग्रथित रोग में सिरावेधन, विरेचन, शिरोविरेचन, अभिष्यन्द और अधिमन्थ की सम्पूर्ण चिकित्सा अनेक विषयों का समावेश है ।

द्वादश अध्याय में रक्ताभिष्यन्द प्रतिषेध, अभिष्यन्द, सिरोत्पात, सिराहर्ष, शोधन, आश्च्योतन, अंजन, तर्पण, स्निग्ध पुटपाक योग से परहेज करना, यों के द्वारा चारो ओर प्रलेप, कोमल स्वेदन और जौंक, की बड़ी मात्रा, पित्ताभिष्यन्द की चिकित्सा, रसक्रिया अंजन, आश्च्योतन और अंजन, नेत्रपाक को नष्ट करने सम्पूर्ण विधि, पूयालस में अंजन, प्रक्लिन्नवर्त्म में सिरावेध, विरेचन, शिरोविरेचन, आस्थापन आदि । बनाकर वर्ति बनाना, प्रत्यंजन, जड़ता और कण्डू को नष्ट करना आदि विषयों का समावेश है ।

तेरहवें अध्याय में लेख्य रोग प्रतिषेध, लेखन योग्य 9 रोग, रक्तस्राव और लेखन, लेखन के अतिस्रावित का लेखन, किन-किन में लेखन करना आदि विषयों का समावेश है ।

चतुर्दश अध्याय में मेद्य रोग का प्रतिषेध, हुयी विषग्रन्थि, लगण का भिन्न हो जाना, अंजन में स्वेदन, कृमि ग्रन्थि में स्वेदन, कफज उपनाह, आदि पांचों मेद्य योग्य रोगों के अपक्व होने पर स्नेहन, अपतर्पण आदि सामान्य शोथ विधि से चिकित्सा विषयों का समावेश है ।

पन्द्रहवें अध्याय में छेद्य प्रतिषेध रोग का है । इसमें आंखों में क्षोभ उत्पन्न करना, अर्स के (ढीला) हो जाने पर तुरन्त हल्दी से स्वेदन करके मण्डलाग्र से काटना, आंखों में प्रतिसारण, शिर पर प्रलेप, अर्म का छेदन, अर्म की चिकित्सा, मण्डलाग्र छेदन, अर्म में यवक्षार से प्रतिसारण, लेखन द्रव्यों से लेखनीय चूर्ण, सुरमा, अर्प, पिड़का और शिराजाल का होना, वर्त्य के अन्दर के अर्श, शुष्कार्श, वर्त्मार्बुद चिकित्सा, वातादि दोष के अनुसार अभिष्यन्द का परहेज आदि विषयों का समावेश है ।

सोलहवें अध्याय में पक्ष्मकोप प्रतिषेध, होने वाला पक्ष्मकोप, अग्नि या क्षार से प्रतिसारण, तुवरक फल से रगड़ना, विरेचन, आश्च्योतन, धूम,

लेप, अंजन, स्नेहपान, रसक्रिया, बालों का उखाड़ना आदि विषयों का समावेश है ।

सतरहवें अध्याय में दृष्टिगत रोग प्रतिषेध, साध्य, असाध्य और याप्य का उल्लेख, पित्त विदग्ध दृष्टि, अंजन का उत्तम होना, दिवान्ध और रात्र्यन्ध नष्ट करने के लिए अंजन, पित्त विदग्ध दृष्टि में रसौंत, सौवीरांजन आदि चूर्ण, अंजन, गोमूत्र, क्षुद्रांजन, नक्तान्ध में अंजन, रात्र्यन्ध को नष्ट करने के लिए योग, वातजन्य तिंमिर में संस्कृत तैल, पुरातन घृत आदि तिमिरों में उत्तम, पित्तजन्य तिमिर, बकरी का घी नस्य में उत्तम, अणु तैल, वायु एवं रक्तजन्य तिमिर में, वातज तिमिर, पुटपाक विधि से पाक करके अंजन, तीक्ष्ण अंजन के पीछे मृदु अंजन या मृदु अंजन के पीछे तीक्ष्ण अंजन का बरतना, पित्तज तिमिर में स्नेहन, अंजन, प्रत्यंजन, नस्य, कफज तिमिर में धूमपान, अक्षितर्पण में सिद्ध घृत, कफज तिमिर, सन्निपात तिमिर, वातातिमिर, अभिष्यन्द में नस्य आदि दोष जन्य तिमिरो में बरतना, भयानक तिमिर में भय का नहीं होना, दृष्टि के प्रसाधक, साध्य, याप्य और असाध्य तिमिर, श्लैष्मिक लिंगनाश की चिकित्सा, वेधन के बाद धावन स्वेद, दृष्टिमंडल में स्थित कफ को उच्छिंदन से बाहर करना, वातनाशक द्रव्यों से कोमल सेक, लघु अन्न की मात्रा, सिरावेध विधि, अमांग के पास वेधन, पूर्ण पका फल शलाका के अग्रभाग के छूने मात्र से नष्ट होना, लिंगनाश का अपूर्ण कच्चा होना, शलाका दोष, प्रशस्त शलाका, व्यधन के दोष से रोग, वेदना में अन्य योग, दृष्टि की निर्मलता के लिए शुभ अंजन आदि विषयों का समावेश है ।

अष्टादश अध्याय में क्रियाकल्प का व्याख्यान, आंखों पर तर्पण, तर्पण में तृप्ति के लक्षण, अतितर्पण से दोष, हीन तर्पण में दोष, दोष की अधिकता के अनुसार चिकित्सा, तर्पण द्वारा बल मिलना, पुटपाक कब करना चाहिए, पुटपाक के प्रकार, पित्त रक्तज व्रण के लिए पुटपाक, स्वेदन पुटपाक 200 गिनने तक, लेखन द्रव्यों को मिलाकर लेखन पुटपाक, रोपण पुटपाक 300 गिनने तक, लेखन आदि पुटपाक का बरतना, परहेज पालने का समय, त्याज्य व्यक्ति, तर्पण और पुटपाक के मिथ्या आचरण में, पुटपाक का सम्यक और अतियोग, पुटपाक प्रसाधन, अति उष्ण और अति तीक्ष्ण तर्पण एवं पुटपाक, ठीक मात्रा में तर्पण का बरतना, दोष के अनुसार आश्च्योतन, तीन रूपों में सेक और आश्च्योतन, कितनी बूंद बरतनी चाहिए, परिषेक का धारणकाल, कफज रोग, शिर में उत्पन्न अति प्रबल रोगों को नष्ट करना, दोष के लक्षण स्पष्ट होने पर मधुर रस को छोड़कर पांच रस, प्रसादन अंजन, सायं या रात्रि में बरतने वाला अंजन, गुटिका, रसक्रिया, चूर्ण भेद से तीन प्रकार के अंजन, लेखन, अंजन वर्ति का प्रमाण, रसांजन की मात्रा, अंजनों के लिए समान गुण वाले पात्र, शलाकाओं का आकार, शलाकाओं के आकार प्रत्यंजन कब बरतना चाहिए, पलकों पर लगाने वाले अंजन को अंगुली से लगाना, ज्यादा अंजन लगाने पर प्रतिबन्ध, आंखों को नहीं धोना, लेखन अंजन के लिए प्रतिषेध नियम, धूम-कवल, नस्य आदि से शान्त करना, लेखन अंजन का सम्यग् एवं अतियोग, हीन योग, प्रसादन अंजन का सम्यग् एवं अतियोग, मात्रा से अंजन करना, मात्रा में अंजन करना, अनुक्त अंजनों में हजारों रूप की कल्पना, दृष्टिबल बढ़ाने के लिए श्रेष्ठ अंजन आदि विषयों का समावेश है ।

उन्नीसवें अध्याय में नयनाभिघात प्रतिषेध, तीक्ष्णांजन, धूम, धूल आदि से आघात की चिकित्सा, उपचार तुरन्त सात दिनों से पूर्व करना, चोट लगी आंख पर, पटलों में हुये क्षत का साध्यासाध्य, नेत्र बहुत अन्दर दब जाने पर, कुकूणक रोग और उसकी चिकित्सा, पलकों को धोने के लिए उपयोगी अंजन लेपादि आदि विषयों का समावेश है ।

बीसवें अध्याय में कर्णगत रोग विज्ञान, कर्णगत 28 रोग, कष्ट साध्य शूल, कर्ण प्रणाद रोग, बाधिर्य रोग, कर्णसंस्राव, कर्ण कण्डू, कर्णगूथ, कर्णप्रतिनाह, कृमिकर्ण, कर्णपाक, पूतिकर्णक आदि विषयों का समावेश है ।

इक्कीसवें अध्याय में कर्णगत रोग प्रतिषेध, कर्णशूल, कर्ण प्रणाद, बाधिर्य और कर्णक्ष्वेड, इन रोगों में सामान्य औषध, स्नेह द्रव्यों से विरेचन; कर्णशूल का नष्ट होना, वेदना का बन्द होना, भोजन के पीछे घृतपान और बस्तिकर्म, वसा का कानों में डालना, वेदना की शान्ति के लिए कान भरना, कर्णशूल वाले रोगी के कान में घृत डालना, दीपिका

तेल, समुद्रफेन का चूर्ण कान में डालना, वैद्यों द्वारा आठों मूत्रों या कांजी आदि अम्लगण में, अथवा वातघ्नगण में घी-तैल, वसा और मज्जा चारों स्नेह सिद्ध करके कान में डालना, काकोल्यादिगणं के कल्क से दस गुणे दूध में सिद्ध किया घृत का उत्तम होना, कफयुक्त कर्णशूल में हिंगोट या सरसों का तेल डालना, तिक्त औषधियों का यूष और कफनाशक स्वेद उत्तम होना, सुरसादिगण में या बृहत् पंचमूल में बनाया तैल कान में डालने के लिए उत्तम होना, तीक्ष्ण शिरोविरेचन, कर्णशूल, कर्णप्रसाद, बाधिर्य, क्ष्वेड की सामान्य चिकित्सा, तैल को बिल्व के क्वाथ से गाढ़ा बनाकर बधिरता में कान भरना, प्रतिश्याय की श्रेष्ठ विधि, कर्णस्राव, पूतिकर्ण औंर कृमिकर्ण की चिकित्सा, शिरोविरेचन, धूपन, कान में भरना, प्रमार्जन और प्रक्षालन कार्यों को राजवृक्षादि कषाय से या सुरसादिगण से दोष, दूष्य, मल का विचार करना, कान को धोने तथा कान में चूर्ण भरना, पंचकषाय चूर्ण, तैल कान में डालने से स्राव बन्द करना, पूतिकर्ण, कृमिकर्ण में कृमिनाशक चिकित्सा, गोमूत्र में हरताल मिलाकर कान में डालना कृमिनाशक, वमन, धूमपान, कवल धारण करना उत्तम है, पंचकषाय चूर्ण, पूतिकर्ण में द्रव्यों का भरना, कृमिकर्ण में कृमिनाशक चिकित्सा, वमन, धूमपान, कवल धारण, कर्णविद्रधि में विद्रधि की चिकित्सा, कर्णकण्डू को नष्ट करना, शिरोविरेचन देकर चिकित्सा करना, कर्णपाक की चिकित्सा पित्त विसर्प की भांति करना, कान के छेद में कीड़ा या मल अथवा क्लोद होने पर सोंग से चूसकर या शलाका से बाहर निकालना आदि विषयों का समावेश है ।

बाइसवें अध्याय में नासागत रोग विज्ञान, इकतीस नासा रोग, रोग उत्पन्न होने के कारण और लक्षण, पूतिनासा, नासापाक, पूयरक्त, क्षवथु, भ्रंशय, नासाप्रतिनाह, नासा परिस्राव, नासा परिशोष, अर्श, शोथ, अर्बुद पांच प्रकार के प्रतिश्याय, शोथ के लक्षण एवं अर्श के निदान आदि विषयों का समावेश है ।

तेइसवें अध्याय में नासागत रोग प्रतिषेध, अमीनस और पूतिनासा में रोगी की चिकित्सा, नस्य देना, नासापाक में पित्तनाशक सम्पूर्ण चिकित्सा, पूयरक्त में चिकि क्षवथु और भ्रशथु रोग, दीप्त रोग में पित्त चिकि नासानाह में स्नेहपान, नासास्राव में शिरोविरेचन द्रव्यों क चूर्ण, नासाशोष में तैल नस्य आदि विषयों का समावेश है

चौबीसवें अध्याय में प्रतिश्याय प्रतिषेध, तु प्रतिश्याय उत्पन्न होने के कारण, वातजन्य प्रतिश्याय, पि प्रतिश्याय, कफजन्य प्रतिश्याय, सन्निपात जन्य प्रतिश्या दुष्ट प्रतिश्याय, नूतन प्रतिश्याय, अपक्व प्रतिश्याय, दोषों क देखकर विरेचन, आस्थापन, धूम, नस्य और कवल तीक्ष्ण शिरोविरेचन एवं धूमपान, पीनस रोग की चिकि आम प्रतिश्याय की चिकित्सा, वातिक प्रतिश्याय, पि रक्तजन्य प्रतिश्याय, कफजन्य प्रतिश्याय, सिद्ध तैल नस् एवं शिरोविरेचन में बरतना, कृमिरोग की चिकित्सा आ विषयों का समावेश है ।

पच्चीसवें अध्याय में शिरोरोग विज्ञान, वायु के कारण शिरोरोग, पित्त एवं कफ के कारण शिरोरोग, सन्नि शिरोरोग, रक्तजन्य शिरोरोग, अनन्तवात, अर्धभेद, शंख आदि विषयों का समावेश है ।

छब्बीसवें अध्याय में शिरोरोग प्रतिषेध, वातज शिरोरोग, आहार, पित्तजन्य एवं रक्तजन्य शिरोरोग, नस्य आस्थापन, पान-आलेंपन, कफजन्य शिरोरोग एवं कफनाश शिरोविरेचनादि द्रव्य, शिर पर लेप, त्रिदोषजन्य शिरो क्षयजन्य शिरोरोग, कृमि प्रतिषेध, नस्य, घृत का सेवन अनन्तवात, शंखक रोग, सिरामोक्षण, 76 नेत्ररोग, 28 क रोग, 31 नासा रोग, 67 मुख रोग आदि विषयों का समावे है ।

सत्ताइसवें अध्याय में बालकों के ग्रहों के लक्ष उनकी चिकित्सा, उत्पत्ति और कारण, बालकों के नौ ग्र (नाम सहित) और युवा व्यक्तियों के आठ ग्रहों का दि है । ग्रहों को मनुष्य द्वारा नहीं देखा जाना स्कन्द ग्र स्कन्दास्मार शकुनिग्रह, देवतीग्रह, पूतनाग्रह, अन्धपूत शीतपूतना, मुखमण्डिका, नैगम ग्रहों द्वारा पीड़ित रोगों लक्षण, चिकित्सा, आहुति, हवन आदि विषयों का समावे है ।

आयुर्वेद में संस्कार और उसकी उपयोगिता

आचार्य राजकुमार

जिस प्रकार भारतीय संस्कृति में और भारतीय जनजीवन में विभिन्न प्रकार के संस्कारों का महत्व और उपयोगिता है उसी प्रकार आयुर्वेद में संस्कारों का महत्व एवं उपयोगिता प्रतिपादित की गई है क्योंकि आयुर्वेद में संस्कारों के द्वारा विभिन्न औषधियों और अन्न (आहार द्रव्यों) को विविध प्रक्रिया विशेषों (संस्कारों) के द्वारा संस्कारित कर प्रयोग और सेवन के योग्य बनाया जाता है । यह निर्विवाद है कि हमारे जीवन यापन के लिए अन्न (आहार द्रव्यों) का सेवन अपरिहार्य है । क्योंकि वह हमारे दैनिक जीवन की एक ऐसी आवश्यकता है जिसके बिना हमारा जीवन यापन ही सम्भव नहीं है । प्रतिदिन हम जो अन्न या आहार का सेवन करते हैं उसमें विभिन्न अनाज, (गेहूँ, चावल आदि), दालें, शाक-सब्जी, फल आदि सम्मिलित हैं । इस में यह भी महत्वपूर्ण है कि सभी प्रकार के अनाज, दालों, शाक-सब्जी आदि का सेवन उसी रूप में नहीं किया जाता है, अपितु उन्हें छानकर, कूट-पीस कर, पानी में धोकर या भिगोकर, अग्नि पर उबाल कर या पकाकर अथवा घी-तेल आदि में धनिया-मिर्च आदि से छोंक बघार लगाकर' स्वादिष्ट एवं खाने के योग्य बनाया जाता है । इस प्रकार आहार द्रव्यों पर जो भी क्रिया की जाती है वह 'संस्कार' कहलाती है ।

उपर्युक्त पाक आदि क्रियाओं के द्वारा आहार द्रव्यों को केवल खाने के योग्य ही नहीं बनाया जाता है अपितु उनके गुणों की वृद्धि, गुणों में परिवर्तन अथवा प्रकृति स्वभाव, में परिवर्तन किया जाता है । आयुर्वेद शास्त्र में विस्तार से इसकी चर्चा की गई है । आचार्य वाग्भट्ट ने आहार का स्वरूप प्रतिपादित करते हुए निम्न प्रकार से अपना दृष्टिकोण व्यक्त किया है -

"विधि विहितमन्नपानमिष्टेन्द्रियार्थ मायतनमायुषो ब्रुवते ।
यत्तदायत्तानि ह्योजस्तेजोधात्विन्द्रियबलतुष्टि प्रतिभारोग्यादीनि ।
तदिन्धनो चान्तराग्नेः स्थितिः । अग्निमूलं च देहधारणमिति ।"

अष्टांग संग्रह, सूत्र स्थान 10/3

अर्थात् जो अन्नपान (आहार) विधि पूर्वक बनाया गया होता है और जिसका वर्ण (रूप), गन्ध, रस तथा स्पर्श इष्ट (अभीष्ट-इच्छित-प्रिय) होता है वह आयु का कारण कहा जाता है, क्योंकि ओज, तेज, रस आदि चक्षु-श्रोत्र आदि इन्द्रियों का बल, शारीरिक शक्ति, तु पुष्टि, प्रतिभा (प्रज्ञा-मेधाशक्ति) तथा आरोग्य आदि उसी के अधीन है । इसी आहार रूपी ईंधन से जठराग्नि स्थिति है और जठराग्नि ही शरीर धारण का मूल है

इसी प्रसंग में आचार्य वाग्भट्ट ने आहार की कल्पना विशेष बतलाई है । यथा -

"अथात्मवान् स्वभाव संयोग संस्कार म
देशकालोपयोगव्यवस्थासप्ताहारकल्पनविशेष
स्वास्थ्यास्वास्थ्यकलानां हेतु भूता समीक्ष्य हितमेवानुरूध्ये

अर्थात् आत्मवान (संयमी) मनुष्य स्वास्थ्य अस्वास्थ्य रूप फल (परिणाम) हेतु भूत स्वभाव, स संस्कार, मात्रा, देश, काल तथा उपयोग व्यवस्था इन आहार कल्पना विशेषों को भली-भांति विचार कर आहार का सेवन करे ।

महर्षि चरक ने उपर्युक्त सात कल्पना अतिरिक्त 'उपयोक्ता' नामक एक और कल्पना को कर "अष्टौआहार विधि विशेषायतनानि" का प्रति किया है । साथ ही महर्षि चरक ने संस्कार के स्था 'कारण' शब्द का व्यवहार किया है । दोनों शब्द अभिप्रेत एक ही है । यथा -

"खल्विान्यष्टावाहारविधि विशेषायक्तानि भवन्ति; तद
प्रकृतिकरणसंयोराशि देश कालोपयोग संस्थोपायोक्त्र
भवन्ति ।"

चरक संहिता, विमान स्थान,

आयुर्वेद शास्त्र में मनुष्य के द्वारा ग्रहण (किए जाने वाले सम्पूर्ण आहार (अन्नपान) को क्रिया के द्वारा रूपान्तरित-संस्कारित करके सुपाच्य एवं बनाने का निर्देश किया गया है । वह क्रिया विश 'संस्कार' कहलाता है । उसके द्वारा आहार द्रव्य केवल स्वरूप परिवर्तन किया जाता है, अपितु द्रव स्वाभाविक गुणों में वृद्धि अथवा परिवर्तन किया या ह है । संस्कार को परिभाषित करते हुए आचार्य वाग

अपने ग्रन्थ अष्टांग संग्रह (सूत्र स्थान, 12/8) में निम्न कार से कथन किया है -

'संस्कारस्तु तोयाग्निसन्निकर्ष शौचमन्थन देश कालभावनाभोजनादिभिरूप जन्यते ।''

अर्थात् जल तथा अग्नि के सन्निकर्ष सें, स्वच्छता ने, मन्थन से, देश एवं काल के प्रभाव से, भावना देने से, मट्टी एवं ताम्र से निर्मित भाण्ड (पात्र) में रखने से, वशिष्टता पूर्ण लक्षण उत्पन्न कर दिए जाते हैं अथवा उस व्य विशेष में गुणान्तर (अन्य गुण) उत्पन्न हो जाते हैं ।

महर्षि चरक ने संस्कार के लिए 'करण' शब्द का यहार किया है । उन्होंने अपने ग्रंथ 'चरक संहिता' (विमान थान, 1/21(2) में विस्तार पूर्वक इसकी चर्चा करते हुए नम्न प्रकार से उसकी व्याख्या की है -

'करणं पुनः स्वाभाविकानां द्रव्याणामभिसंस्कारः । संस्कारों ह गुणान्तराधानमुच्यते । ते गुणाश्चतोयाग्निसन्निकर्ष ौचमन्थनदेशकालवशेनभावनादिभि कालप्रकर्ष भाजनादिभिश्चाध यन्ते ।''

अर्थात् स्वाभाविक गुणयुक्त द्रव्यों में जो संस्कार कया जाता है उसे 'करण' कहते हैं । द्रव्यों में विद्यमान णों के अतिरिक्त अन्य गुणों का आधार करना 'संस्कार' हलाता है । जल सन्निकर्ष, अग्नि सन्निकर्ष, शौच शुद्धि), मन्थन, देश, काल, वासन, भावना आदि के द्वारा था काल प्रकर्ष (अधिक समय तक रखना एवं विभिन्न तांबा, पीतल, रजत, सुवर्ण आदि) धातुओं से निर्मित पात्रों बर्तनों) में रखने से द्रव्य में स्थित गुणों की वृद्धि अथवा न्य गुणों का आधान किया जाता है ।

इससे स्पष्ट है कि आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार त्येक द्रव्य, चाहे वह आहार द्रव्य हो अथवा औषध द्रव्य , वानस्पतिक द्रव्य हो अथवा खनिज (धातु आदि) द्रव्य , जांगम द्रव्य हो अथवा विष द्रव्य हो उनका उपयोग रने से पूर्व विधि पूर्वक (प्रक्रिया विशेष के द्वारा) उन्हें शोधित या संस्कारित किया जाता है तभी वे मनुष्य के ए ग्राह्य अथवा सेवन योग्य बनते हैं । यदि उन्हें विधि र्वक संस्कारित नहीं किया जाता है तो वे शरीर के लिए भदायक होने की अपेक्षा शरीर के लिए अपाय (हानि) कारक हो सकते हैं । अतः महर्षि चरक ने करण या संस्कार के अन्तर्गत जिन विधियों या प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है उन पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डालना अप्रासंगिक नहीं होगा ।

सर्व प्रथम करण शुद्ध को देखें । उन्होंने संस्कार को करण क्यों कहा ? इसका समाधान करते हुए बतलाया गया है - 'क्रियते यत्तत्करणम् ।' अर्थात् जो किया जाता है वह करण कहलाता है । उसे ही संस्कार कहते हैं । वह संस्कार अनेक प्रकार का होता है जो निम्न है :-

1. जल सन्निकर्ष :- जल के संयोग से कठिन-खर गुण वाले द्रव्यों को मृदु या मसृण बनाया जाता है । जल के संयोग से सूखी मिट्टी मृदु बन जाती है । जल के संयोग से गेहूं का आटा या बेसन गूंथा जाता है, जल के संयोग से सत्तू घोला जाता है, नींबू की शिकंजी, शर्बत, ठंडई आदि बनाई जाती है । जल में चने तथा त्रिफला आदि औषध द्रव्य भिगोए जाते हैं । भोजन बनाने की प्रक्रिया में अधिकांशतः जल का सन्निकर्ष (संयोग) अत्यावश्यक होता है ।

2. अग्नि सन्निकर्ष :- अग्नि सन्निकर्ष के बिना कोई भी पाक क्रिया सम्भव नहीं है । गूंथे हुए आटे की रोटी के रूप में परिवर्तित होना, चावल, दाल, शाक-सब्जी आदि पकाना, खीर, पुड़ी आदि पकवान बनाना इत्यादि समस्त क्रियाएं अग्नि सन्निकर्ष का ही परिणाम है जिससे आहार द्रव्य ग्राह्य स्वादिष्ट एवं सुपाच्य बनते हैं । अग्नि सन्निकर्ष से पकाई गई रोटी गूंथे हुए आटे की अपेक्षा लघु एवं सुपाच्य होती है । आयुर्वेद शास्त्रानुसार अनेक औषधियों का निर्माण अग्नि सन्निकर्ष के बिना सम्भव नहीं है । समस्त क्वाथों का निर्माण अग्नि द्वारा किए गए पाक से ही सम्भव है । अग्नि सन्निकर्ष से ही धान से लाई बनाई जाती है जो लघु गुण वाली होती है । अग्नि संयोग से भूना गया चना लघु एवं सुपाच्य होता है । लौह आदि धातुएं सात बार या इक्कीस बार अग्नि में संतप्त कर क्रमशः तैल, तक्र, गोमूत्र आदि में बुझायी जाती है जिससे वे धातुऐं दोष रहित, शुद्ध होकर मृदु एवं भस्म बनाने योग्य हो जाती हैं । आयुर्वेदोक्त समस्त रस-रसायन, भस्में च्यवनप्राशावलेह आदि अग्नि सन्निकर्ष के ही सुपरिणाम हैं । इसी प्रकार और

भी अनेक उदाहरण अग्नि सन्निकर्ष के हैं । चाहे आहार पाक (निर्माण) प्रक्रिया हो अथवा औषधि निर्माण प्रक्रिया हो सभी में अग्नि संस्कार अपेक्षित रहता है ।

3. शौच - शौच से द्रव्य का शोधन या शुद्धिकरण की प्रक्रिया का संकेत मिलता है । जैसे चावल को पकाने से पूर्व जल से धोकर उसकी मलिनता दूर की जाती है । गंधक को सात बार अग्नि पर तपाकर पिघला कर सात बार गोदुग्ध में डुबाया जाता है । सात बार ऐसा करने से उसके दोष दूर होकर वह शुद्ध (निर्दोष) बन जाता है । इसी प्रकार विभिन्न औषधियों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले कुचला, संखिया, भिलावा, अफीम, भांग आदि विष द्रव्यों का प्रक्रिया विशेष के द्वारा शोधन कर उन्हें निर्दोष बनाया जाता है । तत्पश्चात् उपयुक्त मात्रा में विभिन्न औषधियों में उनका प्रयोग किया जाता है । विष द्रव्यों के अतिरिक्त अनेक औषधियों में लोहा, लौह किट्ट, तांबा, पीतल, रांगा, सीसा, जसद आदि धातुओं का प्रयोग किया जाता है । उनके प्रयोग से पूर्व प्रथमतः शोधन प्रक्रिया के द्वारा उनमें स्थित दोषों-मलों का निर्हरण कर उन्हें शुद्ध किया जाता है । तत्पश्चात् उनका मारण कर औषधि में प्रयोग किया जाता है। औषधियों में प्रयोग किए जाने वाले पारद का भी प्रथमतः अष्ट संस्कारों के द्वारा शोधन किया जाता है । शोधन प्रक्रिया से पारद में विद्यमान नाग, बंग, मल, बह्नि, चाञ्चल्य, विष, गिरि और असह्याग्नि दोष दूर होकर वह शुद्ध बन जाता है ।

इस प्रकार आयुर्वेदीय औषधियों के निर्माण में शौच (शोधन) संस्कार अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है । पूर्वोक्त आहार पाक क्रिया एवं औषधि निर्माण प्रक्रिया में सामान्यतः जल संयोग, अग्नि सन्निकर्ष और शोधन क्रिया इन तीनों संस्कारों का मिश्रित रूप पाया जाता है । जैसे चावल (भात) पकाने की प्रक्रिया में प्रथमतः चावल को जल संयोग से धोया जाता है जिससे उसकी मलिनता दूर होकर उसकी शुद्धि हो जाती है । यह शौच संस्कार है । तत्पश्चात् उसमें जल मिलाकर अग्नि सन्निकर्ष के द्वारा उसे पकाया जाता है । इस प्रकार चावल से ओदन बनाने की प्रक्रिया में उसे तीन संस्कारों जल संभोग, शौच अग्नि सन्निकर्ष से संस्कारित होना पड़ता है । महर्षि चरक क प्रस्तुत वचन से भी यह सुस्पष्ट है -

"सुधौतः प्रस्रुतः स्विन्नः सन्तप्रश्चोदनो लघुः ।"

च०स० सूत्र 27/

4. मन्थन - अर्थात् मथना या विलोना । जैसे दह को मथकर या बिलोकर मठा (छाछ) बनाया जाता है दही स्वभावतः गुरू और शोथ उत्पन्न करने वाला होता है किन्तु मथने के बाद वह लघु एवं शोथ को दूर करने वाल बन जाता है । यथा -

"शोथकृद् शोथघ्नं सस्नेहमपि मन्थनाद" ।

5. देश - देश की अपेक्षा से द्रव्य और उसक गुण कर्मों में भिन्नता पाई जाती है । आयुर्वेद शास्त्र त्रिविध देश बतलाए गए हैं - जांगल, आनूप और साधारण जांगल देश में समुत्पन्न द्रव्य आनूप और साधारण देश व अपेक्षा अधिक रूक्ष, लघु, कठिन, उष्ण, तीक्ष्ण गुण वा होते हैं । इसी प्रकार आनूप देश में समुत्पन्न द्रव्य स्निग मृदु, गुरु, शीत, मन्द, श्लक्ष्ण, विच्छिल गुण वाले होते । साधारण देश में उत्पन्न होने वाले द्रव्य मिश्रित गुण वा होते हैं । यही कारण है कि आयुर्वेद में देशानुसार औष और अन्न ग्रहण करने का निर्देश दिया गया है ।

6. काल - काल का प्रभाव सम्पूर्ण जगत् अ उसमें अवस्थित समस्त प्राणियों एवं द्रव्यों पर पड़ता है जैसे चावल स्वभावतः गुरु होता है, किंतु एक वर्ष पुरा चावल लघु गुण वाला हो जाता है । खेत में बोया हुआ ब काल प्रभाव से पौधा बन जाता है जो कालान्तर में पक अनाज या धान्य के रूप में बन जाता है और हमारे उपय में आता है । कच्चे फल काल प्रभाव से पककर से योग्य बन जाते हैं और अधिक समय तक रखे रहने पर स या गल जाते हैं । सभी खाद्य पदार्थ अधिक समय तक न रखे जा सकते । क्योंकि वे कालान्तर में सड़कर अखाद्य जाते हैं । शाक-सब्जी भी अधिक समय तक अप स्वाभाविक स्थिति में नहीं रह पाता है । किसी भी य में उत्पन्न हुआ प्राणि काल के प्रभाव से ही शैशव बा किशोर, युवा, प्रौढ़, वृद्ध आदि अवस्थाओं को प्राप्त अन्ततः मृत्यु को प्राप्त होता है । संसार में होने वाला स

ार का परिवर्तन काल प्रभावजन्य होता है । संसार का भी द्रव्य काल के प्रभाव से अछूता नहीं रहता । प्रत्येक की उत्पत्ति एवं विनाश काल प्रभाव का ही परिणाम

7. भावना - यह एक प्रक्रिया विशेष है जिसके औषधियों के गुणों में अपेक्षित वृद्धि होती है । यह एक संस्कार है जिसके बिना अनेक आयुर्वेदीय औषधियों निर्माण ही सम्भव नहीं है । सामान्यत: औषध द्रव्यों को न्न वनस्पतियों के स्वरस या क्वाथ जो द्रव रूप होता े साथ खरल में तब तक घोटा जाता है जब तब वह शुष्क या घनीभूत नहीं हो जाता है । जैसे मोती या सीप बारीक पीस कर उसे गुलाब जल में घोटना । घोटते ते गुलाब जल सूख जाने पर पुन: पुन: सात बार गुलाब में डालकर घोटना । इससे मोती का चूरा पिस-पिस श्लक्ष्ण पाऊडर के रूप में हो जाता है, वह मुक्तापिष्टी लाती है जो पित्तशामक और हृदय के लिए बल एवं कारक होती है । इसी प्रकार अकीक पिष्टी, प्रवाल ी, कहरवा पिष्टी आदि का निर्माण किया जाता है । न्न औषधियों के निर्माण जैसे आरोग्यवर्धिनी वटी के ण में निम्ब पत्र स्वरस की भावना, पुष्पधन्वा रस के ण में धत्तूर मूल स्वरस की भावना दी जाती है । समस्त धियों, भस्मों, वटी आदि के निर्माण में अनिवार्य रूप ावना संस्कार कीं अपेक्षा रहती है । विभिन्न रसौषधियों नेर्माण में प्रमुख रूप से प्रयुक्त होने वाले पारद की के लिए जो अष्ट या अष्टादश संस्कार किए जाते हैं ो भावना प्रधान होते हैं । विभिन्न द्रव्यों की भावना के वे संस्कार अपूर्ण रहते हैं ।

इसके अतिरिक्त कतिपय औषध द्रव्यों को जल, आदि में रात्रि पर्यन्त या दो तीन दिन तक भिगो कर ा भी भावना के अन्तर्गत आता है । जैसे भिलावा, ला, वत्सनाभ आदि को गोमूत्र, क्वाथ, तक्र आदि में कर रखना आदि । इससे भिलावा आदि निर्विष हो जाते था कठोर द्रव्य मृदु हो जाते हैं । विभिन्न औषधियों के ण हेतु भावना देने के लिए सामान्यत: गोमूत्र, निम्बपत्र, न, आर्द्रक स्वरस, मूली स्वरस, अर्क मूल स्वरस, धत्तूर मूल स्वरस, गोमूत्र, निम्बपत्र स्वरस, आर्द्रक स्वरस, मूली स्वरस, अर्कमूत्र स्वरस धत्तूर मूल स्वरस, गुलाब जल, गोरखमुण्डी अर्क, विभिन्न औषध द्रव्यों के क्वाथ आदि का प्रयोग किया जाता है ।

8. कालापकर्ष - विभिन्न आसव-अरिष्टों के निर्माण में संधान प्रक्रिया महत्वपूर्ण होती है यद्यपि संधान प्रक्रिया स्वयं एक संस्कार है जिससे औषध द्रव्य का स्वरूप परिवर्तन के साथ-साथ पर्याप्त रूपेण गुणान्तराधान होता है । काष्ठौषध द्रव्यों के प्रयोग से जिन अपेक्षित गुणों और रोगनाशक क्षमता को प्राप्त नहीं किया जा सकता उन्हें आसव-अरिष्ट रूप औषधियों के सेवन से प्राप्त किया जा सकता है । किसी भी औषधि या औषध द्रव्यों को नियत कालावधि तक एक ही अथवा भिन्न-भिन्न स्थिति में रखना कालापकर्ष कहलाता है । संधान प्रक्रिया के अन्तर्गत काष्ठौषधियों को जल या क्वाथ में निश्चित अवधि (लगभग एक माह) तक मिट्टी के घड़े या बड़े भाण्ड में रखा जाता है । उसमें उचित प्रमाण में धाय के फूल मिलाकर घड़े का मुख कपड़े से बन्द कर दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् उसमें किण्वन (संधान) क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और लगभग एक माह में वह सन्धान क्रिया पूर्ण हो जाती है जो कालापकर्ष का ही सुपरिणाम है ।

9. भाजन :- पात्र या बर्तन को भाजन कहते हैं। भाजन के बिना कोई कल्पना पूर्ण होना सम्भव नहीं है चाहे वह आहार कल्पना हो या औषध कल्पना । आहार पाक एवं औषध पाक (क्वाथ निर्माण आदि) भाजन या पात्र में ही किया जाता है । द्राक्षावलेह, वासावलेह, मूसलीपाक, क्रौंचबीज पाक आदि के लिए बड़े-बड़े भाजन की आवश्यकता रहती है । मिट्टी से बने हुए कुल्हड़, सकोरा आदि का औषधि निर्माण में विशेष महत्व है । विभिन्न धातुओं की भस्म बनाने के लिए मिट्टी के सकोरों का प्रयोग विशेष रूप से किया जाता है । प्राचीन काल में नींबू, आम आदि का आचार रखने के लिए मिट्टी के घड़ों का ही प्रयोग किया जाता था । संधान प्रक्रिया के लिए मिट्टी के घड़े ही सर्वोत्तम माने जाते थे । मिट्टी के घड़े में लम्बी अवधि तक रखा गया पक्व या अपक्व कोई भी द्रव्य खराब

नहीं होता, क्योंकि उसमें किसी प्रकार की विकृति या जीवाणु संक्रमण नहीं हो पाता, साथ ही उस द्रव्य की गुण हानि भी नहीं होती । इसी प्रकार त्रिफला (हरड़-बहेड़ा-आंवला) को मिट्टी के कुल्हड़ में पानी डालकर रात भर रखा जाता है । प्रात:काल उसे मसलकर छानकर उस पानी से आंखें धोई जाती हैं जिससे नेत्र ज्योति बढ़ती है और चश्मा लगाने की नौबत नहीं आती । अत: संस्कार की दृष्टि से भाजन या पात्र का विशेष महत्व है ।

यहां आयुर्वेद की दृष्टि से संस्कार के लिए विभिन्न साधनों एवं प्रक्रियाओं पर प्रकाश डाला गया है । इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रक्रियाएं हैं जो औषधि निर्माण के लिए प्रयुक्त की जाती हैं । जैसे द्रव्यों को कूटना, पीसना, छानना, मंत्रों से अभिमंत्रित करना इत्यादि । वे सभी क्रियाएं-प्रक्रियाएं ऊपर कहे गए संस्कारों से व्यक्तिरिक्त नहीं हैं, अत: संस्कारों में ही उनका समावेश है।

उपर्युक्त विवेचन के द्वारा यह सुस्पष्ट किया गया है कि संस्कार के द्वारा द्रव्य में स्थित गुणों में परिवर्तन किया जाता है । यहां यह विचारणीय है कि क्या संस्कार के द्वारा द्रव्य में विद्यमान स्वाभाविक गुणों में परिवर्तन किया जाना सम्भव है ? क्योंकि ''स्वभावो निष्प्रतिक्रिया: ।'' अर्थात् स्वभाव परिवर्तनीय नहीं होता है । इसका समाधान यह है कि किसी भी द्रव्य में उसके उत्पन्न होने के समय उसका जो स्वभाव होता है या उसमें जो स्वाभाविक गुण होते हैं वे अपरिवर्तनीय हैं । जैसे उड़द में स्वभावत: गुरु गुण होता है उसमें किसी भी प्रकार से परिवर्तन किया जाना सम्भव नहीं है । इसी प्रकार अग्नि में उष्णता, वायु में चंचलता, घृत-तैल में स्निग्धता आदि । द्रव्य में उसका स्वभाव तब तक रहता है जब तक द्रव्य अवस्थित क्योंकि उसका द्रव्य से नित्य सम्बन्ध रहता है । द्रव्य में जो गुण उसकी उत्पत्ति के पश्चात् प्रादुर्भूत होते हैं वे जन्मोत्तर कालीन होते हैं और वे ही संस्कार के द्वारा परिवर्तनीय होते हैं । जैसे गुर्वादि गुण । इसके अतिरिक्त द्रव्य में विद्यमान गुण की वृद्धि और गुणान्तराधान (अन्य गुणों का आधान) संस्कार के द्वारा किया जाता है । जैसे दूध को सुपाच्य बनाने के लिए उसमें शुण्ठी चूर्ण डालकर उबालना अथवा दूध को विरेचक (दस्तावर) बनाने के लिए उसमें द्राक्षा (मुनक्का) अथवा अमलतास का गूदा डालकर उबालना ।

इस प्रकार आयुर्वेद में संस्कार का विशेष महत्व एवं उपयोगिता है जिसके बिना औषधियों का निर्माण और उनका गुणकारी होना सम्भव नहीं है । इसके अतिरिक्त औषधियों में रोगों का शमन या नाश करने की जो क्षमता उत्पन्न होती है वह संस्कारजन्य ही होती है । विभिन्न रोगों का समूल नाश करने में जितनी उपयोगिता और अनिवार्यता औषधि की होती है उससे कहीं अधिक उपयोगिता संस्कार की होती है । सम्भवत: इसीलिए आज भी आयुर्वेद को विश्व में अपाय (हानि) रहित अथवा निरापद सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा के रूप में स्वीकार किया गया है ।

बैद्यनाथ

ईसबेल

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री), कब्जियत
आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म

वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे, एम.ए., जी.सी.ए.एम., एच.पी.ए., काव्यतीर्थ

हृद्रोग और पंचकर्म चिकित्सा के सम्बन्ध में विचार करते समय प्रारंभ में हृद्रोग चिकित्सा की लाक्षणिक मर्यादा और अवस्थाओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। हृद्रोग लक्षण समुच्चय, निदान, संप्राप्ति इत्यादि विषय में अन्यत्र सविस्तार वर्णन किया गया है। अतः पुनरोक्ति न करते हुए इस प्रकरण का पंचकर्म की दृष्टि से विचार करना उचित होगा। निम्न उल्लिखित शीर्षक के अनुरूप हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म अंतर्गत विचार करेंगे।

पंचकर्म के पूर्व कर्म का विचार :-

1. हृद्रोग तथा पंचकर्म का सामान्य विचार।
2. हृद्रोग तथा स्नेहकर्म विचार।
3. हृद्रोग तथा स्वेदनकर्म विचार।
4. हृद्रोग तथा पाचनकर्म विचार।

पंचकर्म के प्रधानकर्म का विचार :-

5. हृद्रोग में वमनकर्म का विचार।
6. हृद्रोग में विरेचनकर्म का विचार।
7. हृद्रोग में बस्तिकर्म का विचार।
8. हृद्रोग में नस्यकर्म का विचार।
9. हृद्रोग में रक्तमोक्षण का विचार।
10. हृद्रोग में रसायन एवं शमन का विचार।

पंचकर्म के पश्चातकर्म का विचार।

हृद्रोग तथा पंचकर्म का सामान्य विचार :- हृद्रोग शब्द से ही आतुर ही नहीं वैद्य भी चिंतित होते हैं कि पंचकर्म किया जाय या नहीं? वह ऐसा विचार करते हुए उन क्रियाओं को टालने की कोशिश भी करते हैं। इसका कारण पंचकर्म और हृद्रोग दोनों के विषय में अपूर्ण ज्ञान एवं अकर्मन्यता कारण रूप होती है। जैसे कि पंचकर्म आरंभ करने हेतु स्नेहपान, अभ्यंग इत्यादि के प्रथम उसकी विधि-मर्यादा-सम्यग् योग-अयोग-अतियोग का निरीक्षण, व्यापद एवं प्रतिकार इत्यादि के पूर्ण अध्ययन का अभाव। दूसरी ओर आधुनिक विज्ञान के द्वारा जो हृद्रोग चिकित्सा की जाती है उसमें स्नेहपान आदि क्रियाओं का तीव्र रूप से निषेध किया जाता है। अतः उन क्रियाओं का विचार करना भी वैद्य को अपराध के समान प्रतीत होता है। वस्तुतः ऐसी कोई बात चिंतनीय नहीं होती यह अनुभवी पंचकर्म विशेषज्ञ जानते हैं। उदाहरण - लिइपीडलेवल (कालेस्टीरोल इत्यादि) का इतना भय पैदा किया जाता है कि बुद्धिमान रोगी की बात छोड़ें आम आदमी भी 5-10 सवाल किये बिना स्नेह का सेवन करना स्वीकार नहीं करता। अनुभव से यह सिद्ध है कि औषधीय घृत-तैल आदि शमनादि रूप में प्रयोग करने पर ऐसा भय नहीं रहता। जो हृद्रोग के कारण को उत्तेजित करे अपितु यह प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण स्नेहन का निषेध हानिकर्त्ता होता है जिसकी चर्चा आगे की जायेगी। इसी तरह वमनादि के विचार में भी आतुर की शारीरिक क्षमता या बल परीक्षण महत्वपूर्ण विषय है। यहाँ पर देहबल एवं रोगबल दोनों की परीक्षा करके पंचकर्म किया जाना चाहिये। तदनुसार किया हुआ सम्यग् प्रयोग ही लाभप्रद होता है। अन्यथा नहीं। इसका उल्लेख आयुर्वेद के ग्रथों में बार-बार किया गया है तथापि उस पर ध्यान नहीं दिया जाता है। दोष-दूष्य-बल-प्रकृति-सत्व-सात्य-वय-काल इत्यादि की अवस्था का परीक्षण करके किया हुआ कर्म सफल होता है।[1,2] यद्यपि यह संदर्भ बस्ति प्रकरण में है। चक्रपाणि ने इसे सभी स्थानों में परीक्ष्यभाव के तरीके पर विचार करने का निर्देश किया है।

सामान्यतया हृदयाभिघातु, हृद्शूल, उरःशूल इत्यादि से रोगी इतना भयभीत हो जाता है कि आधुनिक चिकित्सा हेतु अस्पताल में जाता है। इसी कारण से हृद्रोग की तीव्रावस्था (Acute cardiac attack) का अध्ययन एवं पंचकर्म चिकित्सा का अनुभव करना संभव नहीं होता। रोगी हृद्रोग की जीर्ण अवस्था में व्याधि प्रशम हेतु या आधुनिक औषधियों के दुष्प्रभाव से डरकर आयुर्वेद की शरण लेते हैं। तब आयुर्वेद चिकित्सक को हृद्रोग का ज्ञान होता है। अतः इन प्रक्रियाओं की जटिलता को देखते हुए नये वैद्य साहस नहीं जुटा पाते। उदाहरण - वमन विषय ही लीजिये - 'वमन के विषय में आचार्य चरक ने वाम्य-अवाम्य, विरेच्य-अविरेच्य इत्यादि का वर्णन किया वहीं पर हृद्रोग को अवाम्य (वमन करने में अयोग्य कहा है।) तथापि हृद्रोग प्रकरण में अवस्थागत वमन का निर्देश

निवृत्त आयुर्वेद निर्देशक, गुजरात राज्य, पंचकर्म कन्सलटंट, आयुर्विज्ञान, अग्रवाल सेन्टर, अहमदाबाद

किया गया है । इस लिये च.सि.अ. में पंचकर्म का सविस्तार निर्देश करने के बाद उपसंहार में आचार्य चरक कहते हैं कि यहाँ पर संहिता में पांचों कर्मों का सविस्तार वर्णन कर दिया है । और किसे कर्म करना चाहिये या नहीं । तथापि इन श्लोकों में जो अर्थ प्रतीत होता है उसमें एकान्तिक दृष्टि 'लकीर के फकीर' नहीं रखनी चाहिये । अर्थात् आग्रह नहीं रखना चाहिये । स्वयं वैद्य को चाहिये कि तर्क कर जो-जो अवस्थाएं उत्पन्न होती हैं उसी अवस्थानुसार देशवल-कालबल-रोगीवल को देखकर स्वयं ऊहापोह करके कर्म को निश्चित करना चाहिये । उसके उदाहरण में ही चरक अवाम्य हृद्रोग का दृष्टांत दिया है ।

ग्रंथ के उदाहरणों को अनुभव के बल पर परीक्षण करके नववैद्यों के सामने प्रस्तुत किया हो ऐसे विवरणों का अभाव (Documantation) होने से वैद्य ''किम् कर्तव्यम्'' होता है । जैसे कि वमन-विरेचन में भी पंचकर्म के व्यापद में हृद्शूल, हल्लास, हृद्रग्रह ऐसे रोगों का उल्लेख किया गया है । अतः हम ऐसा मानते हैं कि पंचकर्म से निश्चित ही हृद्रोग बढ़ेगा । वमन विरेचन व्यापद-अयोग में भी हृदय की अशुद्धि, हृद्शूल जैसे लक्षण प्राप्त होते हैं वहाँ ग्रन्थकार ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि ऐसी अवस्था में शीघ्रता से वमन देना चाहिये जिससे यह लक्षण समाप्त हो । आचार्य सुश्रुत ने इसको विशेष स्पष्ट करते हुए कहा है कि वमन या विरेचन औषध पिलाने पर अगर आतुर घृणा या संकोच के कारण वेगावरोध करेगा तो वात प्रकोप होकर (उर्ध्वगामी होकर) हृदशूल या हृदग्रह को उत्पन्न करता है, यह भयंकर व्यापद है । उसमें हिक्का, श्वास, कास, पार्श्वशूल, अत्यंत दैन्य, लालस्राव, आँखों का घूमना, दांत का किटकिट, जुबान दब जाना, संज्ञानाश जैसे लक्षण उत्पन्न है । ''तम परिवर्जयन्ति मूर्खाः'' अर्थात् अज्ञानवश वैद्य डरकर उसको छोड़ देते हैं । किन्तु ऐसे समय में हृदय प्रदेश पर अभ्यंग, धान्य से स्वेदन, नस्य और यष्टिमधु मिश्रित तांडुलाम्बु पिलाकर वमन देवें । पश्चात् आवश्यकता अनुसार बस्ति भी देनी चाहिये जिससे दोष का शमन होता है ।[4] इस तरह वस्तुतः अवस्था का अध्ययन करके पंचकर्म चिकित्सा करो तो किसी प्रकार का भय रखने की आवश्यकता नहीं है ।

एक दूसरे उदाहरण को भी देखें । पक्षाघात (Hemiplagia) अवाम्य वेग है । स्व० वैद्य श्री मो.य.लेले जो महाराष्ट्र में अनेक वर्ष तक आयुर्वेद महाविद्यालय में प्राचार्य पद एवं गुजरात आयुर्वेद विश्व विद्यालय में कार्यकारी कुलपति रह चुके हैं । वे नित्य स्थानुभव युक्त प्रवचन में कहते थे कि कफानुबंध या आवरणयुक्त पक्षाघात में वमन कराना चाहिये । उसमें जब मणीबेन आयुर्वेद अस्पताल अहमदाबाद में अधीक्षक के पद पर कार्यरत था तब पक्षाघात के कारण संपूर्ण शय्याशीत (चलते-उठने में असमर्थ) आतुर को अपने आप ही वमन हुआ और वमन के पश्चात् वह चलने लगा । यह मैंने प्रत्यक्ष रूप से देखा है, जिससे पक्षाघात में दोष की अवस्था आदि के अनुरूप वमन कराने का साहस भी उत्पन्न हुआ । इस तरह हृद्रोग के संबंध में भी लोक मत तैयार करना जरूरी है ।

चरक संहिता को कायचिकित्सा प्रधान और सुश्रुत को शल्य चिकित्सा प्रधान ग्रंथ माना जाता है । यह ठीक है तथापि सुश्रुत ने भी हृद्रोग में वमन क्रिया का विधिवत् वर्णन किया है । भेल संहिता में हृदगद्पीड़िताय लोगों को तीन प्रकार के तैल देकर चिकित्सा करने का निर्देश दिया गया है । शतयाकी बल तैल, शैरीष तैल और सुकुमार तैल के पान का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार पंचकर्म के कर्मों का हृद्रोग में निषेध दिखाई नहीं देता है ।

हृद्रोग में निर्दिष्ट लक्षणों को समझकर उरःशूल से भेद करते हुए चिकित्सा करनी चाहिये । संहिताग्रंथों में उदावर्त चिकित्सा में विशेषकर अनेक बार इसका निर्देश किया है । वेगावरोध जन्य अवस्था में भी हृदशूल उत्पन्न होता है । इसको भी ध्यान में रखें । उदाहरण - याष्पवेग (उदन) का निग्रहण करने से प्रतिश्याय, अक्षिरोग एवं हृद्ररोग उत्पन्न होता है । निद्रावेग धारण करना, अतिव्यायाम एवं अभिघात से भी हृद्रोग होता है । इसमें भी अवस्थाअन्तर से पंचकर्म का निर्देश किया गया है । अतः इसका विचार भी करना चाहिये । वस्तुतः हृद्रोगी का सभी प्रकार से एवं सभी लक्षणों के आधार पर परीक्षण करके हृद्रोग का निश्चित निदान करना चाहिये । इस प्रकार के हृद्रोगी वैद्य

के पास आते हैं तब उसकी चिकित्सा किस प्रकार से करनी चाहिये उसका निर्देश हम इस प्रकरण में करेंगे ।

आवान्तर हेतु जन्य हृद्रोग में पंचकर्म :- यहाँ आवान्तर हेतु जन्य ऐसी कोई शास्त्रीय परिभाषा नहीं है । शास्त्र में हृद्रोग में पांच प्रकार के बताये गये हैं :- 1. वातज, 2. पित्तज, 3. कफज 4. सन्निपातज 5. कृमिज हृद्रोग का वर्णन चरक आदि ग्रंथों में किया है । और उसकी चिकित्सा का भी वर्णन किया गया है । तथापि हृद्रोग के प्रमुख पांच भेद के उपरांत अनेक अध्याय एवं स्थान में हृदशूल-हृदग्रह-हृल्लेप-हृदशोष-हृदयविदारण-हृल्लस- हृदद्रवत्व-हृद्रव्यथा- जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है । जहां पर हृदय में शूल होना मुख्य लक्षण है । अवान्तर हेतु जन्य हृद्रोग में पंचकर्म अन्तर्गत ऐसे हृदय रोगों का संक्षिप्त चिकित्सा क्रम देखेंगे ।

वेगनिग्रहण के कारण उत्पन्न हृद्रोग :- अधारणीय वेगों को धारण करने से अनेक प्रकार के हृद्रोग उत्पन्न होते हैं । जैसे उद्गार का वेग निग्रहण करने पर हृद्शूल उत्पन्न होता है । आचार्य चरक ने कहा है कि ऐसे समय में हिक्का-श्वास, अरुचि, कंप, हृदय और उर में विबंध लक्षण होता है ।[8] यहाँ पर विबंध का अर्थ हृदय का रस-रक्त संवहन अवरुद्ध होना या मंद होना ऐसा लेना चाहिये । क्योंकि मलविबंध शब्द से मल का निकलना अवरुद्ध या मंद होना ऐसा अर्थ होता है । ऐसी अवस्था में हिक्का रोग की चिकित्सा करनी चाहिये । आचार्य चरक कहते हैं कि कारण स्थान और मूल दोनों रोगों में एक ही होने से चिकित्सा भी एक प्रकार की होती है । यहाँ स्नेहन एवं स्वेदन हृदय प्रदेश के ऊपर किया जाता है । इसमें लवणयुक्त तैल का प्रयोग करने के लिये कहा गया है । स्वेदन में नाड़ी, प्रस्तर या शंकरस्वेद का निर्देश है ।[9] आभ्यांतर स्नेहन के लिये-दशमूलाद्य घृत, तेजोवत्थादिघृत (तेजोवती यानि चविका या चवक) शमन विधि से देकर मृदुविरेचन देना चाहिये । विरेचन के लिये हरीतकी, अमलतास, द्राक्षा, एरंडस्नेह इत्यादि का प्रयोग किया जा सकता है ।

पिपासा निग्रहण या तृष्णा निग्रहण करने पर :- गले में शोष, बाधिर्य, श्रम हृदयव्यथा और पिपासा लक्षण उत्पन्न होते हैं ।[10] इसमें शीतचिकित्सा और तर्पण चिकि करनी चाहिये । शीतचिकित्सा से शीतजल, पानक शीतपरिषेक ऐसा अर्थ लेना चाहिये । जबकि तर्पण का मधुर-स्निग्ध द्रव पदार्थो का सेवन होता है ।

बाष्प निग्रहण करने पर :- दुःख या व्यथा कारण उत्पन्न रूदन से जब अश्रुस्राव हो रहा हो तब बलपूर्वक रोकना वाष्पनिग्रहण है । इससे प्रतिश्याय, नेत्र हृद्रोग, अरुचि और भ्रम जैसे लक्षण होते हैं ।[11] इस चिकित्सा में मन को आश्वास्नित करना, प्रियकथा श्रव मद्य सेवन एवं निद्रा का प्रयोग ही उपाय है । अनिद्रा स्थिति में अभ्यंग, शिरोधारा करना हितकर है ।

श्रमजन्य श्वास का निग्रहण करने से :- गुल्म हृद्रोग, बुद्धि सन्मोह, लक्षण उत्पन्न होते हैं । इसमें वात क्रिया करनी चाहिये । वातघ्नक्रिया से वात का सामा उपक्रम स्नेहन-स्वेदन और मृदु संशोधन लेना चाहिये ।

चरक के मतानुसार वेगनिग्रहण जन्य रोगों वेगधारण करना मुख्य चिकित्सा है । आतुर शरीर बल सक्षम हो, कफ-पित्त एवं रक्त की प्रभूत दुष्टि हो, और दोष से संसृष्ट या आवृत्त हो तब रोगी को लंघन एवं शोध चिकित्सा करवानी चाहिये । अर्थात् लघुभोजन, उपवा मृदुविरेचन, वात प्रधान में बस्तिकर्म इत्यादि ।[13] मध्यमव युक्त रोगी को कफ-पित्त की प्रधानता एवं हृद्शूल हो पाचन चिकित्सा करनी चाहिये ।

ज्वर रोगों में अनेक प्रकार की अवस्था में हृदशू का वर्णन किया गया है :- जैसे कि तरूण ज्वर में दोषों उत्क्लेश को न समझते हुए[14] यदि वमन दिया जाय तो हृद रोग उत्पन्न होता है । यहाँ पर ज्वरपाचन हेतु लंघना चिकित्सा करनी चाहिए । विषमज्वर में हृदव्यथा, कफ में हृदल्लेप, सन्निपात ज्वर में हृदयव्यथा लक्षण का निर्दे किया है । इनमें तद्-तद् ज्वरानुसार पंचकर्म चिकि करनी चाहिये । ज्वर में पंचकर्म अंतर्गत गुरूप्राव अणसदन में रहना, क्षुधारण, मदनफल+सैंधव+वचा से वमन, त्रिफल-त्रिवृत्त-आरग्वध-हरीतकी जैसे-द्रव्यों से विरे चंदनबल लक्षादि तैल या अगुरवादि तैल से अभ्यं शीतजल-घृत या दुग्ध परिषेक, गोघृत-वासाघृत- बल

का शमन विधि से सेवन, गुडुची सिद्ध बस्ति, नस्य और रक्तमोक्षण इत्यादि चिकित्सा अवस्थाभेदानुसार करनी चाहिये ।[15]

गुल्म में हृदशूल - गुल्म रोग में मल एवं वायु का संग होने के कारण कण्ठशोष शरीर का घाव व अरुण होना शीतज्वर, शिर-हृदय-कुक्षि-पार्श्व में शूल होना ये लक्षण होते हैं । उसे वातगुल्म कहते हैं ।[16] इसमें स्नेहचिकित्सा, स्नेह भोजन, स्नेहपान, स्नेहयुक्त अनुवासन, स्नेहयुक्त आस्थापन एवं स्वेदन करने से वातानुलोमन होकर स्रोतो शुद्धि होती है ।

वात के आवरण से उत्पन्न हृद्रोग - वातव्याधि चिकित्सा अध्याय में आचार्य चरक ने अनेक प्रकार के वायु के आवरणों का उल्लेख किया है जिसमें वात का परस्पर आवरण और दोष-धातु एवं मल से भी आवरण कहां गया है । यहां पर भी हृदशूल या हृद्व्यथा लक्षण मिलते हैं । जैसे समानवायु के द्वारा अपानवायु आवृत्त होता है तो ग्रहणी पार्श्वशूल और हृद्रोग उत्पन्न होता है ।[17] व्यान में हृद्रोग-मुखशोष आदि लक्षण होते हैं । आवरण में मुख्य सिद्धान्त यह है कि आवृत्त के क्षय के लक्षण और आवरक के प्रकोप के लक्षण सामान्यत: उत्पन्न होते हैं । इसलिये आचार्य चरक ने विभिन्न प्रकार के आवरणों की कल्पना करके स्वयं चिकित्सा निश्चित करने का निर्देश दिया है । आवरण की अनुचित चिकित्सा से हृद्रोग, विद्रधि, प्लीहा रोग, गुल्म और अतिसार रोग उत्पन्न होते हैं जो असाध्य या दुरउपक्रम की अवस्था में चले जाते हैं ।[19] साधारणत: इसकी चिकित्सा में वातानुलोमन विरेचन यापन बस्ति, मधुर अनुवासन मृदुस्त्रंशन और रसायन चिकित्सा[20] जिसमें शिलाजतु का प्रयोग करना चाहिये । अनेक प्रकार के घृतों का सेवन, आवरणजन्य हृद्रोग के प्रकरण में दिया गया है । जैसे कि हपुषाद्य घृत, त्रायमाणादि घृत, शतयाकी यष्टिमधु तैल, वासाघृत, महातिक्त घृत, शतावरी घृत इत्यादि ।

क्षय की अवस्था में हृद्रोग :- पुरीषक्षय होने से हृदशूल उत्पन्न होता है । ऐसा सुश्रुत का मत है ।[21] रसक्षय या रसवृद्धि में क्रमश: हृदशूल एवं हृदयोत्क्लेद उत्पन्न होता है । ऐसी अवस्था में संतर्पण क्षय में तथा स्रोतोशोधन वृद्धि की अवस्था में करना चाहिये । भेल संहिता में कहा गया है कि श्लेष्मा प्रवृद्ध होकर वायु के द्वारा प्रेरित होने पर पित्त और रक्त को साथ में लेकर स्रोतस् और शिराओं में अवरोध उत्पन्न करता है और धातुओं का परस्पर संवरोध होता है । अवरुद्ध कफ रसवहा में प्रकुपित होने पर हृदय के कार्य में बाधा उत्पन्न होती है ।[22]

विषजन्य हृद्रोग :- विष पित्त के लक्षणों में भी हृदशूल का उल्लेख किया गया है । यहाँ विषघ्नक्रियाओं में वमन विरेचन रक्तमोक्षण का समावेश होता है ।[23]

उदावर्त में हृद्रोग :- उदावर्त में उर्ध्वगामी वायु हृदशूल को उत्पन्न करता है । इसमें वमन विरेचन किया जाना चाहिये ।

बध्योदर में हृद्रोग :- बध्योदर में तृषा, दाह, शोष, कास, श्वास, अरुचि, अविपाक, आध्मान, छर्दि, क्षवथु, हृदय और नाभिशूल इत्यादि लक्षण होते हैं । यहाँ उदररोग चिकित्सावत स्नेहन मृदुविरेचन चिकित्सा हितकारी है । तथापि इसमें शस्त्रकर्म का भी निर्देश है, जो असाध्य माना गया है ।[25]

राजयक्ष्मा में हृद्रोग :- यक्ष्मा में जब हृद्पीड़ा होती है, तब बल्य और रसायन चिकित्सा हितकर है । जैसे कि क्षीर, घृत, मांसरस आदि से यापन बस्ति का प्रयोग ।[26]

वातज प्रमेह में हृद्रोग :- आचार्य वाग्भट्ट ने वातज प्रमेह में हृद्रोग का निर्देश किया है । प्रमेह चिकित्सा में लंघन, अपतर्पण और मृदुशोधन करने का विधान है ।

हृद्रोग रोग में पंचकर्म :- जैसा कि प्रारंभ में कहा गया है कि हृद्रोग पांच प्रकार का होता है । वातिक हृद्रोग चिकित्सा, पैत्तिक हृद्रोग चिकित्सा इत्यादि क्रम से इस विषयक विवेचन किया जा सकता है । किन्तु इसका विवरण शास्त्र में रोग के प्रकरण में दिया गया है । अत: पंचकर्म वैद्य का यह कर्तव्य है कि वह तद्-तद् प्रकार के रोगों में किस प्रकार से कौन-सा कर्म करना चाहिये उसका विचार करें । हृद्रोग और पंचकर्म नामक इस प्रकरण में हमनें पंचकर्म की दृष्टि से प्रत्येक कर्म का स्पष्टीकरण करना अधिक उचित समझा है । पंचकर्म की पूर्वकर्म प्रधान कर्म और पश्चात् कर्म में विभाजित किया जाता है एवं उन तीनों कर्मों पर निम्नरूप से विस्तृत वर्णन किया है ।

आयुर्वेद वाङ्गमय में सुख की अवधारणा

* डा० राकेश कुमार श्रीवास्तव ** डा० अनुपम कुमार श्रीवास्तव *** डा० बृजकुमार द्विवेदी

आयुर्वेद मानव के समग्र जीवन का एक सर्वांगीण दर्शन एवं विज्ञान है, वह भी अनेक मूलभूत सिद्धान्तों के आश्रयभूत होकर प्राचीनकाल से अद्यावधि पर्यन्त अक्षुण्ण रूप से मानव समाज के आरोग्य की रक्षा करता हुआ तथा अद्यतन चिकित्सा विज्ञान की प्रतिभाजित आविष्कारों की चुनौतियों का मौन भाव से सामना करता हुआ आज भी निरपेक्ष भाव से मानव मात्र के लिए उपादेय बना हुआ है। आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य धातु साम्य द्वारा आरोग्य प्राप्ति करना हो। आचार्य चरक ने आरोग्य को सुख की संज्ञा दी है।[1] और आरोग्य का मूल पुरुषार्थ चतुष्ट्य को माना है।[2] पुरुषार्थ चतुष्ट्य का मूल सम्बन्ध जीवन की मूल प्रवृत्तियों से है। आचार्य चरक के अनुसार सृष्टि के समस्त प्राणियों की समस्त प्रवृत्तियाँ सुख के लिए होती हैं।[3] यहाँ आचार्य चरक ने सभी प्राणियों की मूल प्रवृत्तियाँ एक ही मानी ही वह है सुख। चाहे वह प्राणी एककोशीय हो या विकसित मन वाला प्राणी अर्थात् सभी की प्रवृत्ति का मुख्य लक्ष्य सुख होता है। प्रशस्तपाद भाष्य में कहा गया है कि मन के अनुकूल धर्मजन्य भाव ही सुख है।[4] इस सृष्टि के समस्त प्राणियों की प्रत्येक प्रवृत्ति मनोनुकूल विषय प्राप्ति ही होती हो। पुरुषार्थ चतुष्ट्य में धर्म, अर्थ, काम ये तीनों विषय एहलौकिक सुख के साधन तथा मोक्ष चरम सुख अर्थात् पारलौकिक सुख के साधन हैं। आचार्य चरक ने सूत्रस्थान के त्रयएषणीय अध्याय में कहा है कि बुद्धिमान व्यक्ति को हित या अहित का विचार कर हितकर धर्म, अर्थ, काम के सेवन में प्रयत्नशील रहना चाहिए क्योंकि इस संसार में धर्म, अर्थ, काम के बिना न सुख हो सकता है, न दुःख।[5] चरक संहिता में अनेक स्थलों पर इन तीनों को जीवन के लक्ष्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। धारणीय वेगों के सन्दर्भ में आचार्य चरक ने कहा है कि धारणीय वेगों के धारण करने से मनुष्य के मन वचन कर्म पाप रहित हो जाते हैं जिससे मनुष्य पुण्य का भागी हो जाता है तथा सुखपूर्वक धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति कर उसके फलों का उपभोग करता है।[6] अर्थात् एहलौकिक सुख का आश्रय धर्म, अर्थ, काम रूपी त्रिवर्ग है।

धर्म - धारणात धर्म के अनुसार प्राणी सुख प्राप्ति जिन प्रवृत्तियों को धारण करता है, उसे धर्म कहते हैं। आचार्य वाग्भट्ट ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि सभी प्राणियों की सभी प्रवृत्तियाँ सुख के लिए होती हैं और वह सुख बिना धर्म के प्राप्त नहीं किया जा सकता है।[7] अतः प्राणियों को धर्म को श्रेष्ठ मानकर धर्म परायण होना चाहिए। मूल प्रवृत्ति का सबसे प्रथम एवं प्रमुख साधन धर्म ही माना गया हैं क्योंकि धर्म ही सुखदाता है। प्रशस्तपाद भाष्य में कहा गया है कि धर्म ही गुण है।[8] प्रत्येक प्राणी अपनी उन्नति के लिए सतत् प्रयत्नशील रहता है पर अन्तर यह होता है कि जिसकी बुद्धि सात्विक होती है वही वास्तविक धर्म को धारण करता है। सत्व में प्रकाशत्व होता है। अतः सात्विक पुरुष द्वारा धारित धर्म से पूरा समाज प्रकाशित होता है।

श्रीमद्भागवत गीता में यह स्पष्ट किया गया है कि सात्विक बुद्धि वाले व्यक्ति धर्म, अधर्म को यथावत् रूप में जानते हैं। अतः इनके द्वारा धारण की गई वृत्तियाँ ही मानव धर्म होती हैं।[9] राजस बुद्धि वाले व्यक्ति धर्म-अधर्म की जानकारी तो रखते हैं पर यथावत नहीं।[10] तामस बुद्धि वाले व्यक्ति अधर्म को ही धर्म मानकर धारण करते हैं।[11] तात्पर्य यह है कि आधुनिक काल में धर्म के नाम पर अधर्म का ही प्रचार है, जैसा कि गीता में अधर्मधर्ममिति से कहा गया है। यदि मानव धर्म अहिंसा है तो तामस की अधिकता के कारण धर्म के नाम पर हिंसादि किये जाते हैं। साम्प्रदायिक हिंसा, दंगा, अपने धर्म को श्रेष्ठ कहना तथा दूसरे धर्म से घृणा करना आदि सब अधर्म है, परन्तु वर्तमान काल में इसी को धर्म माना जाता है। इस तरह गीता या चरक संहिता में प्रस्तुत धर्म अधर्म की युगानुरूप अवधारणा अक्षरशः सत्य है। अतः राजस एवं तामस बुद्धि वाले व्यक्ति अपनी उन्नति का सही मार्ग नहीं चुन पाते हैं। अतः इसके द्वारा धारित कृतियों का परिणाम दुख होता है।

---

* सीनियर रेजीडेन्ट, मौलिक सिद्धान्त विभाग ** जूनियर रेजीडेन्ट, रसशास्त्र विभाग *** रीडर, मौलिक सिद्धान्त विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

अर्थ - मूल प्रवृत्ति सुख के दूसरे साधन रूप में 'अर्थ' दो अर्थ रखता है । प्रथम अर्थ विषयोपलब्धि द्वारा सुख की प्राप्ति जो इन्द्रियों के सात्म्य से संभव है तथा असात्म्य संयोग होने पर दु:ख की प्राप्ति होती है । दूसरा अर्थ इन विषयों के उपभोग करने के लिए आवश्यक साधन अर्थ यानि धन होता है । सात्विक प्रकृति के व्यक्ति अर्थ का उपभोग बाँटकर करने वाले होते हैं । उनमें संचय की प्रवृत्ति नहीं होती है पर राजस एवं तामस प्रकृति के व्यक्तियों में संचयादि की प्रवृत्ति होती है । वर्तमान काल में संचयादि की प्रवृत्ति अत्यधिक बढ़ती जा रही है । अत: दु:ख भी बढ़ता जा रहा है । आचार्य चरक ने कहा है कि अर्थ सुख व दु:ख दोनों का कारण है । अर्थ का हीनयोग, मिथ्यायोग तथा अतियोग और हीन, अति, मिथ्या अर्थोपभोग ये सब दु:ख देने वाले होते हैं तथा सम्यक् अर्थोपभोग एवं अर्थोपार्जन सुख देने वाले होते हैं । समस्त लोग व्यवहारों का साधन अर्थ ही होता है । लोक व्यवहार में बिना अर्थ सृष्टि व्यर्थ हैं । इसी संदर्भ में राजा भृर्तहरि की एक लोकोक्ति प्रचलित है कि जिसके पास अर्थ नहीं है, उसकी प्रवृत्ति अर्थ प्राप्ति में ही संलग्न रहती है अर्थात् जीवित रहने के लिए अर्थ आवश्यक है ।[12]

काम - मूल प्रवृत्ति, सुख का तीसरा एवं अन्तिम साधन काम है । काम शब्द विभिन्न इच्छाओं या कामनाओं से सम्बन्धित अर्थ रखता है । पाश्चात्य मनोवैज्ञानिक फ्रायड ने तो काम को जीवन का सुख का आधार मानकर इसकी विस्तृत व्याख्या की है । मैथुनादि की कामना समस्त प्राणियों में सामान्यतया किसी न किसी रूप में अवश्य रहती है । अत: काम शब्द प्राय: मैथुनादि कर्म या मिथुन भाव अर्थ में व्यवहृत होता रहता है । भगवद्गीता में योगियों के लक्षण में प्रत्येक कार्य में काम संकल्परहित होना बताया गया है ।[13] जबकि आयुर्वेद में स्पष्टत: संकल्प से कामोत्तेजक भाव वृष्यता की उत्पत्ति कही गई है ।[14] इसके अतिरिक्त आचार्य चरक ने वाजीकरण के महत्व को प्रतिपादित करते समय परोक्षत: निर्देश दिया है कि कामोपभोग से मनुष्य धर्म अर्थ का उपयोग सम्यक् रूप से करता है ।[15] आयुर्वेद में एक तरफ काम को सुख का साधन स्वीकार करते हुए पुरुषार्थ चतुष्ट्य तथा त्रिवर्ग में रखा गया है तथा दूसरी तरफ काम को मनोविकार माना गया है । आचार्य चरक के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य रक्षण में काम सुख का सम्यक् महत्व है । काम सुख द्वारा मानसिक वेगों - शोक, भय, उद्वेग, बैचेनी आदि से व्यक्ति मुक्त हो जाता है ।[16] कतिपय रोगों में काम सुख का चिकित्सा रूप में उपयोग दर्शाया गया है । अतिस्थूलता की चिकित्सा में मैथुन कर्म बतलाया गया है । रक्तपित्त चिकित्सा में आचार्य चरक ने अलंकृत स्त्री का आलिङ्गन करना माना है । उपर्युक्त तथ्यों से ज्ञात होता है कि आयुर्वेद व भारतीय वाङ्मय के अन्य शास्त्रों मे काम को जीवन का एक आवश्यक सुख का आधार माना गया है । विभिन्न व्यक्ति अपने मन के अनुकूल विभिन्न रूप से काम सुख की प्राप्ति करते हैं । मात्र शारीरिक रूप से आलिङ्गनबद्ध होना ही मैथुन नहीं वरन् भारतीय शास्त्रों में काम सुख की प्राप्ति आठ प्रकार से मानी गई है । अर्थात् इस लोक में मनुष्य आठ प्रकार से काम सुख की प्राप्ति करते हैं । काम सुख के ये आठ साधन निम्न हैं यथा - स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसान, क्रियानिवृत्ति ।[17] मनुष्य में एक जन्मजात प्रवृत्ति होती है कि किसी प्रकार सुख की प्राप्ति हो । इस प्रवृत्ति की तुष्टि धर्म, अर्थ, काम द्वारा इस लोक में तथा मोक्ष द्वारा परलोक में चरम सुख की प्राप्ति होती है । इस लोक में सुख, दुख दोनों के कारण त्रिवर्ग ही है । सन्मार्ग में प्रवृत्ति सुख का तथा कुमार्ग में प्रवृत्ति दुख का कारण होता है । आज के भौतिकवादी युग में मानव समाज अनेक प्रकार के दुखों से पीड़ित है । इस प्रकार के चिन्तनीय व कष्टप्रद परिस्थितियों से बचने के लिए आयुर्वेदोपदिष्ट हितकर धर्म, अर्थ, कामरूपी पुरुषार्थ त्रितय जो कि एहलौकिक सुख का साधन है, का ज्ञान एवं तदनुसार उसका आचरण मानव समाज के लिए आधुनिक परिप्रेक्ष्य में अत्यन्त उपादेय एवं प्रासंगिक है जिसका सेवन करने से मानव समाज इस लोक

में सुखी जीवन बिता सकता है ।

1. सुखसंज्ञकमारोग्यं विकारो दु:खमेव च ।
(च०सू० 9/4)

2. धर्मार्थकाम मोक्षाणामारोग्यं मूलमूत्तमम् ।
(च०सू० 1/15)

3. सुखार्था: सर्वभूतानां मता: सर्वा: प्रवृत्तय: ।
ज्ञानाज्ञानविशेषातु मार्गामार्गप्रवृत्तय: ।।
(च०सू० 28/35)

4. धर्मजन्यमनोनुकूलवेदनीयं गुण: सुखम् ।
(प्रशस्तपाद भाष्य)

5. सता बुद्धया हिताहितम वेक्ष्यावेक्ष्य धर्मार्थ कामानामहिता नामनुपसेवतेहितानां चोपसेवने प्रयतितव्यं ।
(च०सू० 11/46)

न ह्यन्तरेण लोके त्रयमेतन्मानसं किंचिन्निष्पद्यते सुखं वा दुखं वा ।
(च०सू० 11/46)

6. पुण्यशब्दो विपापत्वान्मनोवाक्कायकर्मणाम् ।
धर्मार्थकामान् पुरुष: सुखीभुङ्क्ते चिनोहि च ।।
(च०सू० 7/30)

7. सुखार्था: सर्वभूतानां मता: सर्वा: प्रवृत्तम: ।
सुखं च न बिना धर्मात् तस्माद् धर्मपरोभवेत् ।।
(अ०ह०सू०अ०1)

8. विहितकर्मजन्योगुणो धर्म: ।
(प्रशस्तपादभाष्य)

9. प्रवृत्ति च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धि: सा पार्थ सात्विकी
(भ०गी० 8/50

10. यथा धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत् प्रजानीति बुद्धि: सा पार्थ राजसी ।।
(भ०गी० 18/37

11. अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृत्ता ।
सर्वाथीन् विपरीतांश्च बुद्धि: सा पार्थ तामसी ।।
(भ०गी० 18/32

12. टका धर्म: टका कर्म टका: हि सर्व परम् ।
यस्य गृहे टका नास्ति स टका टकटकायते ।।
(राजा भर्तृहरि

13. यस्य सर्वे समारम्भा: कामसङ्कल्पवर्जिता ।।
(भ०गी० 4/20)

14. सङ्कल्पो वृष्याणाम् ।
(च०सू० 25

15. बाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषो नित्यमात्मवान् ।
तदायत्तौ हि धर्मार्थो प्रीतिश्च यश एव च ।।
(च०चि० 2/1/3

16. शोकोद्वेगारहिभयैर्यां दृष्टवा नाभिभूयते ।
याहि यां प्राप्य विस्रम्भं दृष्टवा दृष्यत्यतीवयाम् ।।
(च०चि० 2/1/13

17. स्मरणं कीर्तनं केलि प्रेक्षणं गुङ्यभाषणम् ।
सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ।।
एवन्मैथुनमष्टाङ्गं प्रवदन्ति मनीषिण: ।।
(या०व०स्मृ

बैद्यनाथ

दाद मलहम

बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

नारी स्वास्थ्य

योनिभ्रंश-वात व्याधि के परिप्रेक्ष्य में एक विमर्श

वैद्या निशा गुप्ता

योनि भ्रंश स्त्रियों में पाया जाने वाला जननाङ्ग विकार है जिसे आधुनिक विज्ञान में Uterine Prolapse or Procidentia के नाम से जाना जाता है । यद्यपि आचार्य चरक ने अशीति वात विकारों में इसकी गणना नहीं की तथापि उन्होंने गुदभ्रंश रोग का वर्णन करके एक उपलक्षण अवश्य ही प्रस्तुत किया है, जिसने अन्य अङ्गों का भ्रंश भी वातविकारों में शामिल किया जा सकता है । इस बात की पुष्टि वात के प्रत्यात्मक कर्मों के निर्देश स्थल पर हो जाती है ।

तद्यथास्रंस भ्रंसव्याससङ्ग भेद.......

चं०सू० 20/12

यहां पर भ्रंस शब्द सभी अंगों के भ्रंश का सूचक प्रतीत होता है । इसी तथ्य को और अधिक सम्पुष्ट करता हुआ आचार्य चरक का यह कथन -

'न हि वाताहते योनिर्नारीणां सम्प्रदुष्यति '

समस्त योनि रोगों का वात दोष के बिना असम्भव सिद्ध करता है ।

योनि भ्रंश मूलत: दो शब्दों से से मिलकर बना है ।

योनि + भ्रंश

योनि शब्द कारणवाची है जो चतुर्विध भूतग्राम के प्राकट्य स्थल का द्योतक है जबकि भ्रंश शब्द 'भ्रंशु अध: पतने' अर्थात् अध: पतनार्थक ।

भ्रंश धातु के भाव में घञ् प्रत्यय करके निष्पन्न होता है । अत: योनि शब्द का स्त्री जननाङ्ग अर्थ स्वीकार करते हुए उसके भ्रंश में वात कर्तृत्व निर्धारण करना ही इस विमर्श का प्रयोजन है ।

योनि भ्रंश योनिबहिर्द्वार से गर्भाशय पर्यन्त स्त्री जननाङ्ग की एकाङ्गिक अथवा सर्वाङ्गिक स्वस्थानच्युति योनि भ्रंश कहलाती है । इसमें प्रधानत: Retroversion of uterus एवं Uterine prolapse को स्वीकार करते हुये इन्हें विंशति योनि व्यापद् के ही किञ्चित् विकारों में समाविष्ट किया जा सकता है, यथा

Retroversion of the uterus - उदावर्त्तिनी योनि
(गर्भाशय का पश्चिम भ्रंश)

Uterine prolapse (गर्भाशय का अधोभ्रंश)
Ist degree — प्रस्रंसिनी योनि
IInd degree — प्रस्रंसिनी योनि
IIIrd degree — महायोनि
Rectocele/ Cystocele फलिनी

निदान आचार्य चरकोक्त वात प्रकोपक निदानों में से चुनिन्दा योनि भ्रंश के निदानों को दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है -

1. निज निदान -
(i) अति व्यवाय Excessive indulgence in sex
(ii) दोषासृक्स्रवणादति Excessive blood loss due to menorrhagia or metrorrhagia
(iii) धातूनांसंक्षय * Malnutrition or undernutrition
(पोषणाभाव)* Weakness of ligaments during menopause
* Atrophy
(iv) रोगातिकर्षणात् Chronic debilitating disorders
(v) भयात् Suppression of females in the society.
ये सब निदान धातुक्षयजन्य वात प्रकोप करते हैं ।
(vi) वेग संधारण Suppression of urges of defaecation, micturition and flatus
वेग संधारण आवरण जन्य वात प्रकोप का प्रमुख हेतु है ।

2. आगन्तुज निदान
(i) अभिघातात् Child birth trauma to the pelvic supports due to
(a) Stretching and tearing of pelvic fascia
(b) Early bearing down pains with improper cervical dilatation.
(c) Delivery of the head without emptying the bladder.
(d) Forceps delivery
(ii) विषमादुपचाराच्च
(i) Mismanagement of the

लेक्चरर, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

tears of pelvic fascia

(ii) Improper management during puerperium.

आचार्य ने अभिघात शब्द को स्पष्टत: विवेचित करते हुये शस्त्रलोष्टकशाकाष्ठमुष्टि आदि हेतुओं से होने वाला कहा है, जिसमें गर्भपात करने के सभी उचित एवं अनुचित विधानों का समावेश हो जाता है एवं साथ ही प्रसव को व्यवस्थित न करने के कारण उसमें होने वाली समस्त व्यापत्तियां भी समाविष्ट हैं ।

रूप योनि भ्रंश में अधोलिखित लक्षण पाये जाते हैं :-

(i) योनि द्वार से कुछ नीचे आने की प्रतीति
(ii) कटि शूल (Backache)
(iii) योनि से श्वेत स्राव (whitish Vaginal discharge)
(iv) मासिक सम्बन्धी अनियमितताएं (Menstrual Irregularities)
(v) मूत्र की प्रवृत्ति बढ़ जाना (Increased frequency of micturition)
(vi) वस्ति को पूर्णतया रिक्त करने में असमर्थता (Retention of urine)
(vii) अधोगुद को पूर्णतया रिक्त करने में असमर्थता (Loss of complete evacuation of lower pain of rectum)
(viii) विबन्ध (constipation)
(ix) बन्ध्यत्व (Infertility)

भेद वस्तुत: भ्रंश शब्द उक्त व्याधि का प्रत्य लिङ्ग है । यह भ्रंश स्थानिक विकृति विशेष में विभि प्रकार का हो सकता है ।

1. गर्भाशय का पश्चिम भ्रंश (Retroversion of uterus इसकी तीन अवस्थाएं हैं :-

प्रथमावस्था :- गर्भाशय का ऊर्ध्वभाग (Fundus Sacral promontary की तरफ झुका हो ।

द्वितीयावस्था :- गर्भाशय का ऊर्ध्व भाग (Fundus Sacrum bone के hollow भाग में स्थित हो।

तृतीयावस्था :- गर्भाशय का ऊर्ध्व भाग (Fundus गर्भाशय के अन्त:मुख (Internal Os) के स्तर से नीचे चला जाये ।

2. गर्भाशय का अधोभ्रंश (Uterine Prolapse) इसकी भी तीन अवस्थाएं हैं :-

प्रथमावस्था - गर्भाशय का अपनी सामान्य अवस्थि से च्युत होकर योनि नलिका (Vagina) में आना

द्वितीयावस्था - Cervix की Vaginal introitus त अथवा बहिर्च्युति जबकि गर्भाशय (Uterus) का Vagina में ही रहना ।

तृतीयावस्था - सम्पूर्ण गर्भाशय का Vaginal introitus से बाहर निकलना ।

सम्प्राप्ति - संघटन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को अधोलिखित प्रकार से समझा जा सकता है :-

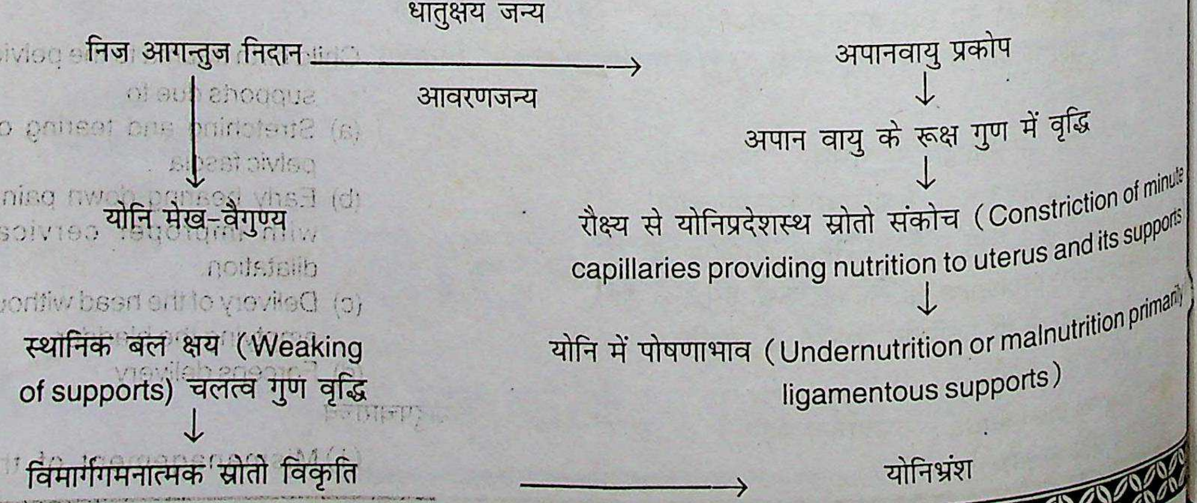
धातुक्षय जन्य
निज आगन्तुज निदान
आवरणजन्य
अपानवायु प्रकोप
अपान वायु के रूक्ष गुण में वृद्धि
रौक्ष्य से योनिप्रदेशस्थ स्रोतो संकोच (Constriction of minute capillaries providing nutrition to uterus and its supports
योनि में पोषणाभाव (Undernutrition or malnutrition primarily ligamentous supports)
योनि मेख-वैगुण्य
स्थानिक बल क्षय (Weaking of supports) चलत्व गुण वृद्धि
विमार्गगमनात्मक स्रोतो विकृति
योनिभ्रंश

चिकित्सा :- चिकित्सा सूत्र निदान एवं सम्प्राप्ति को लक्ष्य कर व्यवस्थित किये जाते हैं । इस दृष्टि से संशोधन अथवा संशमन चिकित्सा को अभिहित किया जाता है । वात दोष के लिये संशोधन रूप में वस्ति का विधान है एवं संशमन दृष्टि से तैल का विधान है । इनमें योनिभ्रंश के कारकतत्व आवरणजन्य प्रकोप, धातुक्षयज प्रकोप, अभिघातज धातुक्षयज प्रकोप, भ्रंशात्मकस्रोतो विकृति रूप, स्थानिक बल एवं सार्वदैहिक बल को ध्यान में रखकर चिकित्सा अपेक्षित है ।

संक्षेप में चिकित्सा कही गयी है :-

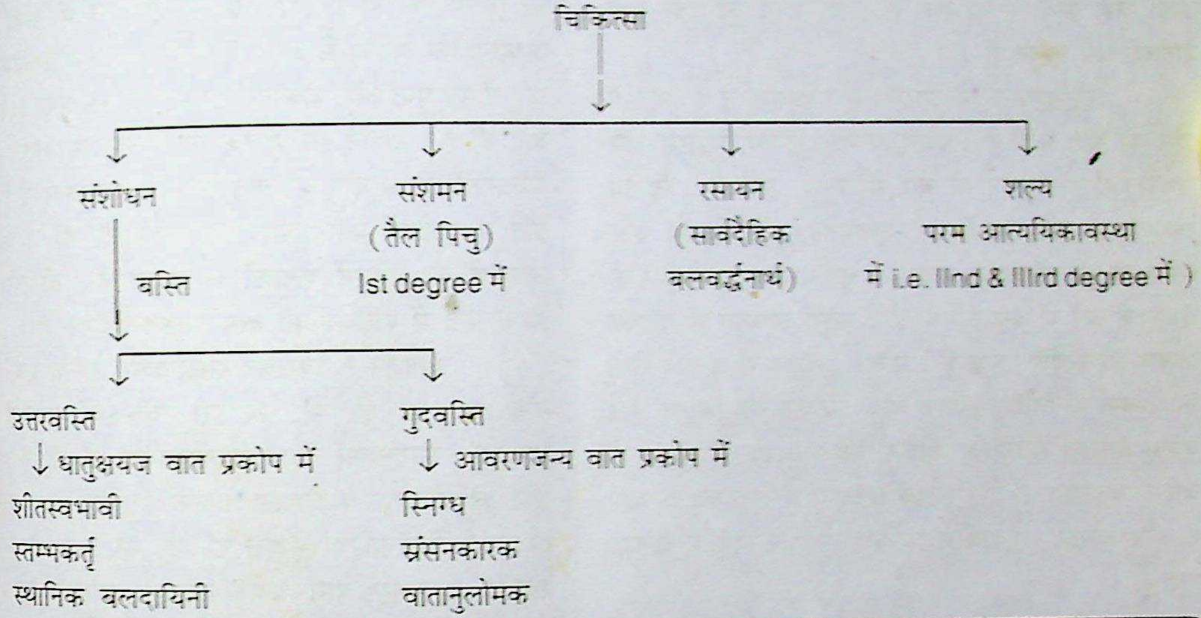
चिकित्सा
संशोधन
वस्ति
संशमन
(तैल पिचु)
Ist degree में
रसायन
(सार्वदैहिक
बलवर्द्धनार्थ)
शल्य
परम आत्ययिकावस्था
में i.e. IInd & IIIrd degree में)
उत्तरवस्ति
↓ धातुक्षयज वात प्रकोप में
शीतस्वभावी
स्तम्भकर्तृ
स्थानिक बलदायिनी
गुदवस्ति
↓ आवरणजन्य वात प्रकोप में
स्निग्ध
स्रंसनकारक
वातानुलोमक

बैद्यनाथ
स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक
अशोकारिष्ट
कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना, आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन, भूख न लगना तथा ऋतु धर्म के समय होने वाली तकलीफ व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

रसेन्द्रमंगल का ऐतिहासिक विवेचन

डा० वी. नागेश्वर राव, एम.डी. (आयु.) (बी.एच.यू.), पी.एच.डी., डिप्लोमा योग

रसशास्त्र के साहित्य के बारे में लिखे गये अनेक ग्रन्थों में से रसेन्द्रमंगल एक है। इसकी रचना नागार्जुन ने की थी। आचार्य नागार्जुन ने अनेक महान ग्रन्थों की रचना की थी, उसमें से बहुत ग्रन्थ अनुपलब्ध हैं। रसेन्द्र मंगल उन्हीं जैसे ग्रन्थों में से एक है। इस ग्रन्थ को 7वीं-8वीं शताब्दी का मानते हैं।

रसेन्द्रमंगल के आरम्भ में ग्रन्थकर्ता ने 8 अध्याय होने की बात कही है। प्रथम अध्याय में रस, महारस और उपधातुओं के शोधन के बारे में बताया गया है। द्वितीय अध्याय में कुछ द्रव्यों का सत्वपातन, द्रुति, द्रावण और मारण के बारे में बताया गया है। तृतीय अध्याय में पारे के बंधन के बारे में बताया गया है। चतुर्थ अध्याय में गुटिका विधान का निर्देश किया हैं। पांचवें अध्याय में वातादि रोगों के सम्बन्ध में विविध औषध योगों का उल्लेख मिलता है। षष्टम् अध्याय में चित्रक, अंजन, गंधक आदि की युक्ति के बारे में बताया गया हैं। सातवें अध्याय में विष तंत्र के बारे में और आठवें अध्याय में विविध गुणों के बारे में बताया गया है।

लेकिन आंजकल रसेन्द्रमंगल का पूर्ण ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है, किन्तु प्राप्त पुस्तक में चार अध्याय ही उपलब्ध हैं। इस रसेन्द्रमंगल की कुछ प्रतियां सन् 1924 में रसशाला-औषधाश्रम, गोंडल-काठियावाड़ से मूल श्लोक मात्र छापकर बिक्री के लिए प्रकाशित हुयी थी, किन्तु इसका पुन: प्रकाशन नहीं हो पाया। रसेन्द्रमंगल में केवल पहले चार अध्याय ही उपलब्ध हैं, शेष 5, 6, 7 और 8 अध्याय अनुपलब्ध है। प्रथम, द्वितीय अध्याय समाप्ति के बाद, तृतीय अध्याय के प्रारम्भ में "अथातो रसबंधाधिकारं व्याख्यास्याम:" बताकर केवल एक ही श्लोक के अन्दर चारण, जारण बिड़ के बारे में बताया। इसके बाद ग्रन्थकर्ता ने "अथातो वातादि रोग निग्रह रसयोगान् व्याख्यास्याम:" करके सभी वातादि रोगों में प्रयोग करने वाले रसयोगों के बारे में बताया, लेकिन ग्रन्थकर्ता ने प्रथम अध्याय के आरम्भ में वातादि रोगों की चिकित्सा पांचवें अध्याय में होने की बात की, लेकिन ये चिकित्सा प्रस्तुत उपलब्ध ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में मिलते हैं। गुजरात और बीकानेर से मिली प्रतियां पाण्डुलिपि में हैं। ये पाण्डुलिपियों में लिखा हुआ विषय और गोंडल- काठियावाड़ से प्रकाशित हुआ रसेन्द्रमंगल का विषय एक ही है। प्रो.एच.एस. शर्मा ने भी इन्हीं चार अध्यायों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है। उन्होंने जामनगर प्रति में 37 पृष्ठ और बीकानेर की प्रति में 56 पृष्ठ होने की बात की है। उन्होंने इस पुस्तक को मलयालम, तेलुगु और देवनागरिलिपि में होने की बात की है। जामनगर से मिली प्रति में श्लोकों की क्रम संख्या नहीं दी गई। केवल अध्यायों के अनुसार श्लोकों को दिया है। बीकानेर से मिली प्रति में श्लोकों की क्रम संख्या दी गई है।

नागार्जुन से विरचित रसरत्नाकर नामक एक और ग्रन्थ था। डॉ. पी. सी. राय इसे 7वी-8वीं शताब्दी का मानते हैं। रसरत्नाकर तथा रसेन्द्रमंगल को डॉ. पी. सी. राय तथा श्री जीवाराम कालिदास ने एक ही माना है। इसकी दो हस्तलिखित प्रतियां - एक डॉ. पी. सी. राय और दूसरी स्वर्गीय श्री तनसुख राम त्रिपाठी के पास उपलब्ध थीं। श्री राय संग्रहित प्रति के अन्त में "नाग़ार्जुन विरचित रसरत्नाकर" तथा श्री त्रिपाठी के पास उपलब्ध प्रति के अन्त में "नागार्जुन विरचित रसेन्द्रमंगल" लिखा है। श्री जीवनराम कालीदास ने गोंडल से 1924 में रसेन्द्रमंगल को प्रकाशित किया। श्री राय ने भी अपने पास उपलब्ध अंश को प्रकाशित कराया था। दोनों को मिलाने से दोनों ग्रन्थ एक ही प्रतीत होता है। इसमें पारद के स्वेदनादि संस्कार, हल्की धातु से सोना बनाने की किमियागिरी, रस, महारस और लोह शोधन, सब लोहों का मारण, अभ्रक, माक्षिक आदि का सत्वपातन, अभ्रक की द्रुति आदि रसतंत्र सम्बन्धी विषयों के सात मन्थानभैरव, दशमूल क्वाथ आदि रोगनाशक योग इसमें हैं। इसी में धातुओं का मारण अन्य धातुओं की सहायता से भली प्रकार से बतलाया है। पारद और स्वर्ण के योग से दिव्य देह प्राप्त करने की विधि भी इसमें दी गयी है। आचार्य प्रफुल्ल चन्द्र राय ने अपने इतिहास के

सहा० प्रो० एवं प्रभारी फार्मेसी, स्नातकोत्तर विभाग, रसशास्त्र और भैषज्य कल्पना, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, आमेर रोड, जयपुर - 302004 (राजस्थान)

अन्त में रसरत्नाकर शीर्षक के अन्तर्गत जो उदाहरण दिये हैं, उनमें इस ग्रन्थ का नाम रसेन्द्रमंगल भी प्रतीत होता है। एक स्थल पर तो द्वितीय अधिकरण के अन्त में निम्न प्रकार लिखा है –

''इति नागार्जुन विरचितरसरत्नाकरे वज्रमारणसत्व पातन-अभ्रकादि द्रुति-द्रावण-वज्रलोहमारणाधिकारो नाम द्वितीय: । और अन्यत्र इस प्रकार से भी लिखा है –

''अथातो रसेन्द्रमंगलानि यंत्र विधि: ।''

'' इति रसेन्द्रमंगल समाप्तम् ॥''

ऐसा लिखा मिलने से दोनों ग्रन्थ एक ही प्रतीत होते हैं। ये ग्रन्थ तंत्र ग्रंथों में प्रमुख हैं और महायान सम्प्रदाय से सम्बन्धित हैं । इसके कई स्थानों पर ''प्रणिपत्य सर्वबुद्धान्'' शब्द आया है, लेकिन ये ग्रन्थ खण्डित एवं अव्यवस्थित हैं ।

इसी ग्रन्थ में **''अथातो रसेन्द्रमंगलानि यंत्र विधि:''** कहते हुए यंत्रों की एक सूची दी गयी है । उन यंत्रों का नाम इस प्रकार है –

शिलायंत्र	पाषाणयंत्र	भूधरयंत्र	वंशयंत्र
नलिकायंत्र	गजदन्तयंत्र	दोलायंत्र	अध:पातनयंत्र
भुव:पातनयंत्र	पातनयंत्र	नियामकयंत्र	गमनयंत्र
तुलायंत्र	कच्छपयंत्र	चाकीयंत्र	बालुकायंत्र
अग्निसोमयंत्र	गंधकत्रहिकयंत्र	मूषयंत्र	हण्डिकायंत्र
कमभाजनयंत्र.	घोणायंत्र	गुडाभ्रकयंत्र	नारायंणयंत्र
जालिकायंत्र	चारणयंत्र		

इन यंत्रों का केवल नाम निर्देश ही है । इनमें से कुछ का विस्तृत उल्लेख आगे के रस ग्रन्थों में पाया जाता है।

इसी रसेन्द्रमंगल में नागार्जुन विरचित कक्षपुट का खण्ड भी है । रसेन्द्रमंगल के चौथे अध्याय के मध्यम में कक्षपुट नाम देकर उसका कुछ भाग संवाद रूप में दिया गया है । इसमें नागार्जुन को महान सिद्ध और पर्वत प्रदेश श्रीशैल का रहने वाला बताया गया है । इसी में रसायन सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन संवाद रूप में दिया है । यह संवाद रत्नघोष, नागार्जुन, वटयक्षिणी, शलिवाहन और माण्डव्य के बीच में हैं । रत्नघोष और माण्डव्य उसे समय के बड़े विख्यात रसायनाचार्य माने जाते थे ।

रत्नघोष हाथ जोड़कर नागार्जुन के समक्ष उपस्थित हैं और रसकर्म सम्बन्धी विद्यादान के लिये प्रार्थी है । नागार्जुन उस पर प्रसन्न हो जाता है और वचन देता है कि तुम जो पूछोगे उसका उत्तर दूंगा, उन सभी औषधियों को बताऊंगा, जिनसे मुख की झुरियाँ दूर हों, बाल श्वेत न पड़े और बुढ़ापा न आये । उसने घोषित किया है कि इन औषधियों का जैसा प्रभाव धातुओं पर पड़ता है, वैसा ही प्रभाव शरीर पर भी । नागार्जुन ने यह भी बताया कि जीवित प्राणियों के हित के लिये मैंने बारह वर्ष महाक्लेश सहते हुए साधना की और वटयक्षिणी सेवा की, तब मैंने दिव्यवाणी सुनी । उस वाणी ने मुझ पर प्रसन्न होकर कहा ''महासिद्धि साधु ! साधु ! जो कुछ तुमने प्रार्थना की है वह सब दूँगी ।'' इसके उत्तर में नागार्जुन ने माँग की ''हे देवी ! यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो तो, मुझे रसबन्ध की विधि बताओ, जो तीनों लोकों में दुर्लभ है ।'' आगे चलकर संवाद में शालिवाहन कहता है कि ''हे देवी ! मैंने स्वर्ण और रत्न यह सब निछावर किये । अब मुझे आदेश दो ।'' इस पर देवी ने कहा, ''साधु-साधु ! हे महाप्राज्ञ, मेरी आज्ञा के प्रपालक ! मैं तुझे वह विधियाँ बताऊँगी, जिनको माण्डव्य ने सिद्धि किया है । ऐसे-ऐसे योग बताऊँगी, जिनसे सिद्ध किये हुए पारे द्वारा साधारण तांबा, सीसा आदि धातुएं स्वर्ण बन जाती हैं । इस विद्या को प्राप्त करने वाला शिष्य कुलीन, प्रज्ञा, निरालम्ब और पाप वासना से हीन होना चाहिए । इन विधियों में कोष्ठिका, वक्रनाल, गोबर, लकड़ी का ईंधन, लोहपात्र, औषध विड़, काञ्जी आदि के प्रयोग होंगे, अत: इनका संग्रह होना चाहिए । रत्नघोष ने कोटिवेधी महारस तैयार किया था, जिसका एक भाग करोड़ भाग सामान्य धातु को सोने में परिवर्तित कर सकता था । इस तरह रसायन सम्बन्धी विषयों का प्रतिपादन संवाद रूप में किया गया है ।

रसेन्द्रमंगल के साथ कक्षपुट जुड़ा होने के बाद भी यह लगता है कि रसेन्द्रमंगल स्वतंत्र ग्रन्थ है । दूसरे कक्षपुट में भी इसके प्रसंग से रसेन्द्रमंगल के पूर्व साढ़े तीन अध्यायों से इसका कोई मेल नहीं बैठता । एक और बात-

इस रसेन्द्रमंगल का आरम्भ करते समय ग्रन्थकार ने कहा है -

''नत्वासुरेन्द्रं शिवसौक्ष्य दायकं'' ।

लेकिन चौथे अध्याय के मध्य जहाँ कक्षपुट शीर्षक देता है वहां फिर बिना किसी प्रसंग के कहता है कि -

''प्रणिपत्य सर्वबुद्धान् सकल दोष विनिर्मुक्तान्सिद्धान'' !

ऐसा कहकर सर्व बुद्धों को तथा सिद्धों को पुन: नमस्कार करता है । इससे प्रतीत होता है कि इस कृति और पूर्व की कृति में कई अन्तर है । सबसे स्थूल अन्तर जो लगता है, वे निम्न हैं -

1. रसेन्द्रमंगल के 3½ अध्यायों में कहीं संवाद नहीं मिलता है ।
2. श्री शैलपर्वत का वटयक्षिणी साधनपूर्वक रससिद्धि प्रकरण से आगे का भाग संवाद रूप से चलता है।
3. फिर इस भाग में विड़ वर्ग, क्रामण वर्ग, रस
 आदि कई रसायन विद्याओं का उल्लेख है ।
4. और इन्हीं वर्गों का वर्णन रसेन्द्रमंगल में पहले
 आ जाता है । जब रसेन्द्रमंगल के आरम्भ में
 ग्रन्थकार प्रतीत करता है कि -

''अष्ठाध्यायाच्श्रय संप्रोक्ता: शास्त्रोऽस्मिन् रसमंगले'' !

इसमें आठ अध्याय हैं और रसेन्द्रमंगल में
प्रत्येक अध्यायों में भिन्न-भिन्न विषय नाम रखा है । फि
उसी विषय का उसके द्वारा पुनरुक्ति होना युक्तियुक्त नहीं लगता है । इसी ग्रन्थ से संवाद रूप अंश को भिन्न करके देखें तो वह अंश अपने में पूर्ण दिखाई देता है । इन्हीं विषयों को देखने से लगता है कि कक्षपुट सर्वत्र अलग ग्रन्थ दिखता है ।

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत

एकाग्रता लाए, समझ जगाए।

आज, हररोज और वर्षभर

पुरुषों में शुक्र धातुक्षय - एक जटिल समस्या एवं समाधान

डा० सुरेश चन्द, एम.डी. (आयु.) एवं डा० नरेश कुमार गुप्ता एम.डी. (आयु.)

आजकल की आर्थिक स्थितियों के परिप्रेक्ष्य में पोषण आहार की कमी, भय, ईर्ष्या, शोक, चिन्ता आदि मनोभाव तथा बाल-विवाह भी शुक्रक्षय के कारण हैं। इक्कीसवीं सदी का युवा वर्ग पश्चिम की संस्कृति में क्रमश: डूबकर भारतीय संस्कृति को भूलता जा रहा है पश्चिमी संस्कृति का अनुसरण करते हुए तंग तथा सिंथेटिक वस्त्र धारण करना, फास्टफूड, रासायनिक शीतल पेय, गुटखा, तम्बाकू, ड्रग्स का सेवन, अश्लील साहित्य पढ़ना तथा ब्लू फिल्में देखने आदि कृत्यों के प्रति आज का युवा आसक्त हो गया है। इन सभी कारणों से उनके पास रात्रि में सोने, दिन में उठने तथा भोजन का कोई निश्चित समय नहीं रह गया है।

युवा वर्ग अनुशासन हीन हो गया है। माता-पिता, अभिभावकों की बातों को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल देना उनकी आदत बन गई है तथा वे उच्छृंखल होते जाते हैं। पश्चिमी संस्कृति का उनके मन-मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव होने से यौन विकारों की आधी-अधूरी जानकारी होते हुए भी सेक्स के प्रति उनकी अभिरुचि तीव्रतर होती जाती है तथा सेक्स की पूर्ति हेतु वे कुसंगति के शिकार होकर हस्तमैथुन, अप्राकृतिक मैथुन, वेश्यागमन आदि कृत्यों में लिप्त हो जाते हैं, जिसके फलस्वरूप वे स्वप्नदोष, शीघ्रपतन, प्रमेह, जनन अंगों का पर्याप्त विकास न होना, नपुंसकता तथा मानसिक तनाव से ग्रस्त होकर रह जाते हैं। इन सभी का एक मात्र कारण शुक्रक्षय हो जाता है।

जीवन के चार पुरुषार्थ हैं - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म, अर्थ और काम के सम्यक निर्वाह से ही मोक्ष की प्राप्ति सम्भव हो सकती है। इन तीनों के संतुलन भंग से चतुर्थ लक्ष्य मोक्ष दुर्गम ही नहीं असंभव हो जाएगा। काम जीवन के साथ विद्युत सामर्थ्य-सा जुड़ा हुआ ईश्वरीय वरदान है।

आहार, निद्रा और भय के समान ही काम भी एक सहज प्रकृति है। हर मानव को काम भावना की मूल प्रवृत्ति की संतुष्टि का यथा समय अवसर सुलभ कराने तथा काम सम्बन्ध को नियमित और मर्यादापूर्ण बनाने के पावन ध्येय की पूर्ति हेतु स्त्री-पुरुषों का विवाह संस्कार के द्वारा दाम्पत्य सूत्र में बांधने की व्यवस्था सर्वाधिक उपयुक्त है। प्राचीन काल से ही मनुष्य ने काम भावना की संतुष्टि हेतु विवाह प्रवर्तन और दाम्पत्य मर्यादा का पालन करके अपने को पशु प्रवृत्ति से ऊपर उठाकर सृष्टि के विकास में योगदान किया है।

शुक्रधातु की उत्पत्ति :-

अस्थनोमज्जातत: शुक्रं प्रजायते ॥

(च०चि० 15/15)

मज्जा धातु में उपस्थित शुक्र सधर्मी अंश पर शुक्राग्नि की क्रिया से प्राप्त प्रसादांश से शुक्र धातु की उत्पत्ति होती है।

स्थान एवं परिमाण :- शरीर में अन्य धातुओं की उत्पत्ति के साथ ही साथ शुक्रधातु की भी उत्पत्ति होती है। यद्यपि बाल्यावस्था में भी शुक्र समस्त शरीर में उपस्थित रहता है परन्तु उसका कार्य दृष्टिगोचर नहीं होता है। सातवीं शुक्रधरा नामक कला होती है जो समस्त प्राणियों के समस्त शरीर में व्याप्त रहती है

"शुक्रास्यार्धाञ्जलि: प्रमाणम् ॥"

शरीर में कुल का परिमाण आधी अञ्जलि होता है जो एक मास में रस से पुरुषों में शुक्र की उत्पत्ति होती है।

शुक्रधातु के लक्षण :-

बहलं मधुरं स्निग्धमविस्रं गुरु पिच्छिलम्।
शुक्लं बहु च यच्छुक्रं फलवत्तदसंशयम् ॥

(च०चि० 2/49)

महर्षि चरक ने शुक्रधातु के लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है कि फलवत् (संतानोत्पादक) शुक्र बहल (घना), मधुर, स्निग्ध अविस्र, गुरु, पिच्छिल, श्वेत वर्ण का तथा मात्रा में अधिक आदि लक्षणों से युक्त होता है।

"स्त्रीणां शुक्रं न गर्भाय भवेद् गर्भाय चार्तवम् ॥"

उपरोक्त श्लोक से ज्ञात होता हैं कि स्त्रियों में शुक्र होता है परन्तु उसमें गर्भ की स्थापना नहीं होती है। गर्भोत्पत्ति तो आर्तव के द्वारा होती है। आर्तव गर्भ उत्पत्ति का कारण नहीं है। स्त्रियों में वीर्य (Semen) नहीं होता है। परन्तु शुक्र धातु होती है और गर्भ उत्पत्ति का कारण भी

रीडर/विभागाध्यक्ष, शरीर क्रिया विभाग, शहीद करतार सिंह सराभा आयु.मेडि. कालेज एवं हास्पीटल, सराभा, लुधियाना (पंजाब) 141105

है । आर्तव का स्त्रवण गर्भ की स्थापना नहीं होने का सूचक होता है । आर्तव स्त्रवण से पूर्व गर्भाशय में गर्भ स्थापना हेतू परिवर्तन होता है, वह आर्तव स्त्रवण द्वारा समाप्त हो जाता है ।

शुक्रक्षय के लक्षण :-

दौर्बल्यं मुखशोषश्च पाण्डुत्वं सदनं श्रमः ।
क्लैव्यं शुक्राविसर्गश्च क्षीणशुक्रस्य लक्षणम् ॥
(च०सू० 17/68)

मानव शरीर में शुक्र की क्षीणता होने पर वृषणों एवं शिश्न में वेदना होने लगती है । शुक्रका देर से स्खलन होना, शुक्र के साथ रक्त तक का आ जाना, मैथुन में दुर्बलता होना, मुख का शुष्क होना, क्लीवता एवं अरक्तता आदि क्षीण शुक्र के लक्षण हैं ।

मनुष्य जो भी आहार ग्रहण करता है, उसका पाचन होने पर क्रमशः रस, रक्तादि धातुओं का निर्माण होता है । शुक्र (वीर्य) ही आहार का सारभूत तथा मनुष्य के शरीर की उत्कृष्ट शक्ति (बल) है । अतः संयम में रहकर इस शुक्र की रक्षा करनी चाहिए ताकि शरीर में शक्ति प्राप्त हो तथा विवाह के पश्चात् उत्तम संतान उत्पन्न हो सके । जब सम्यक तथा पोषक आहार नहीं मिलता है, तो इन समस्त धातुओं का सम्यक निर्माण नहीं हो पाता तथा ये क्षीण होने लगती है । जीर्ण ज्वर, राजयक्ष्मा, मधुमेह आदि व्याधियों में भी धातुएं क्रमशः क्षीण होती जाती है, जिनके साथ-साथ अन्त में शुक्र का क्षय हो जाता है ।

यौन समस्या और समाधान :- शुक्रदोष तथा शुक्रक्षीणता से आज का मानव समाज आक्रान्त हो गया है और होता जा रहा है । ऋषि-मुनियों के आचार, आहार-विहार से आज का मानव पृथक हो चुका है । वह पृथकता के परिणामस्वरूप पुरुषार्थ की हीनता से ग्लानि एवं उत्पीड़न का शिकार हो रहा है । आज शुक्र की रक्षा नहीं, अपव्यय हो रहा है । एक तो शुक्रवर्धक आहार शायद ही शुद्ध रूप से प्राप्त है, जो कुछ शुक्र बन भी पाता है, अधिकांश अशुद्ध और दुर्बल ही रहता है । सबके मूल में आंज की सभ्यता, परिवेश और मान्यता हैं, जिसमें कामुकता की परिपाटी-सी चल पड़ी है ।

भोजन भी इतना दूषित लिया जा रहा है कि इसके स्वस्थ शुक्र का निर्माण ही ठीक से नहीं हो पाता है । शुक्र का क्षरण अधिक हो रहा है, सदुपयोग बहुत कम हो रहा है इससे यौन सामर्थ्य का दिनों दिन ह्रास होता जा रहा है । पाचन विकृति से मूत्राशय दूषित हो जाता है तथा आमाशय और यकृत की क्रियाशीलता भी सही नहीं रह पाती है । फिर आगे की सारी प्रक्रिया ही विकृत हो जाती है । फलतः सबका सार शुक्र भी सही नहीं रह पाता है ।

यौन सामर्थ्य :- आज चिकित्सक ही नहीं, जन-जन को स्वीकारना पड़ रहा है कि वर्तमान परिस्थिति जन्य परिवेश में यौन सामर्थ्य का ह्रास मानव सामर्थ्य के लिए चुनौती होता जा रहा है । यौन शक्तिहीनता के कारण स्त्री-पुरुषों में मानसिक उत्पीड़न, शारीरिक दुर्बलता, ग्लानि, क्षोभ, उदासीनता, विकृति पूर्ण यौन सम्बन्धों के प्रति आर्कषण का तेजी से विकास होता जा रहा है । विश्व में यौन सम्बन्धी समस्याओं से 20-30% मानव जूझ रहा है । तमोगुणी आहार, मर्यादाहीन विहार, गंदे साहित्य का प्रसार, अश्लील चलचित्र, गन्दी सोहबत तथा मद्यपान आदि के अनुकरण में यौवन का उत्साह का तथा सामर्थ्य का सर्वनाश हो जाता है ।

स्वानुभूत आयुर्वेदिक चिकित्सा :- भारत में भी संतानहीनता व नपुंसकता बढ़ने लगी है । इन सब समस्याओं का कारण शुक्र धातुक्षय होता है । मेरा अपना यह मानना है कि जब किसी पुरुष में शुक्र धातु क्षय होना प्रारम्भ हो जाता है तो सर्वप्रथम उस व्यक्ति को आयुर्वेद के सिद्धान्तों का विशेष ध्यान रखना चाहिए और आहार में पेय द्रव्यों पदार्थों का सेवन करना चाहिए ।

1) कौंचबीज चूर्ण - 3 ग्राम
श्वेतमूसली चूर्ण - 1 ग्राम
अश्वगंधा चूर्ण - 1 ग्राम
शुद्ध शिलाजीत - 125 मि.ग्रा.
विदारीकंदचूर्ण - 1 ग्राम

---

1 X 3 दूध से

2) मकरध्वजवटी - दो-दो गोली तीन बार ।

सारांश :- काम का मूलाधार है शुक्र । शुक्र के दो प्रधानकार्य हैं - 1) शरीरपुष्टि 2) प्रज्ञास्थापन ।

शुक्र से ही पुरुषार्थ की वृद्धि, दृष्टिशक्ति, ओज तथा प्रज्ञाशक्ति का विकास होता है । संतान उत्पन्न करना इसका प्रमुख कार्य है । शुक्र जितना पुष्ट और स्वस्थ रहेगा, उतना ही इससे स्वस्थ संतान की प्राप्ति होगी और जीवनी शक्ति का विकास होता रहेगा ।

विषमज्वर की आयुर्वेदिक अवधारणा का वैज्ञानिक विवेचन

* डा० जे०एस० त्रिपाठी ** डा० एस०एन० सिंह

आयुर्वेद शास्त्र में ज्वर को प्रधानतम रोग माना गया है तथा इसके भेद प्रभेदों का जितना विस्तृत वर्णन किया गया है, उतना किसी अन्य व्याधि का नहीं । इसके महत्व की दृष्टि से ही आचार्य चरक ने रोगों के क्रम में सर्वप्रथम इसका वर्णन किया है । इसका वर्णन करते हुए कहा गया है स्वेदावरोध, संताप और सर्वांग पीड़ा, ये सभी लक्षण जिस रोग में एक साथ पाये जायें, तो उसे ज्वर कहते हैं ।

स्वेदावरोध संतापः सर्वाङ्ग ग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे च स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥

1. **स्वेदावरोध** - पसीना आने में रुकावट अर्थात् पसीना न आना ।
2. **संताप** - देह, इन्द्रिय एवं मन सभी में ताप की अनुभूति होती है । ('देहेन्द्रियमनस्तापी')

संताप की वृद्धि से लाभ

- अधिक ताप से जीवाणुओं की वृद्धि नहीं हो पाती है क्योंकि इनकी वृद्धि शरीर के सामान्य ताप पर अधिक होती है ।
- तापक्रम की वृद्धि होने से हृदय की गति तीव्र हो जाती है । इससे विकृति का निराकरण करने के लिए विकृत स्थान में रक्त प्रचुर परिमाण में बढ़ जाता है और भक्षकायाणु तथा प्रतिरोगी पदार्थों के अधिक मात्रा में एकत्रित होने से उपसर्गकारी जीवाणुओं का विनाश करने में सरलता होती है ।

3. **सर्वांगग्रहण** - सर्वशरीर में पीड़ा ।

विषय ज्वर की उत्पत्ति के विषय में आचार्यों का मत है कि आरम्भ से ही अल्प दोष अथवा ज्वर के छूट जाने पर अवशिष्ट मिथ्या आहार-विहार से पुनः प्रकुपित होकर रसादि धातुओं में से किसी को भी प्राप्त होकर विषमज्वर को उत्पन्न करता है ।

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः ।
धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥

(सु०उ० 391/66)

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च ।
वेगतश्चपि विषमोज्वरः स विषम स्मृतः

(भालुकि)

जो ज्वर अनियमित रूप से गर्मी या सर्दी लगने के बाद नियमित काल में आता है तथा जिसका वेग भी विषम होता है अर्थात् कभी तीव्र संताप से कभी मंद संताप से चढ़ता है, तो उसे विषमज्वर कहते हैं । कालादि के वैषम्य के कारण ही इसे विषमज्वर कहते हैं ।

विषमो विषमारम्भक्रियाकालौनुषगवान

(वाग्भट)

अर्थात् जिसका आरम्भ, क्रिया तथा काल विषम हो, उसे विषम ज्वर कहते हैं । यह कभी सिर से प्रारम्भ होती है तो कभी पृष्ठ से, इसी कारण इसे 'विषमारम्भ' कहते हैं ।

- **विषमक्रिय** - कभी ज्वर में शीत अधिक लगता है तो कभी संताप, इसे ही विषमक्रिय कहते हैं ।
- **विषम काल** - ज्वर का कभी अल्प काल तक तथा कभी दीर्घ काल तक रहना ही विषम काल कहलाता है ।

विषम ज्वर के भेद - क) निज विषम ज्वर
ख) आगन्तुज विषम ज्वर

- **निजविषमज्वर** - केवल धातु वैषम्यकृत विषमज्वर निज कहलाता है ।
- **आगन्तुज विषम ज्वर** - रोगकारी साक्षात् बाह्य निर्मित जीवाणु से होने वाला ज्वर आगन्तुज विषमज्वर कहलाता है ।

विषमज्वर सुश्रुतोक्त औपत्यक ज्वर ही प्रतीत होता है, परन्तु कुछ विद्वान इसे मलेरिया का पर्याय मानते हैं ।

सुश्रुतोक्त औपत्यकज्वर

वाताधिकत्वाद प्रवदन्ति तज्ज्ञास्तृतीयक चापि चतुर्थकन्च ।
औपत्यके मद्यसमुद्भवे च हेतुं ज्वरे पित्तकृतं वदन्ति ॥

(सु०उ० 39)

अर्थात् ज्वर को जानने वाले विद्वान तृतीयक और

---

* रीडर व विभागाध्यक्ष, काय-चिकित्सा एवं पंचकर्म विभाग ** रीडर एवं विभागाध्यक्ष, रोग एवं विकृति विज्ञान विभाग
देश भगत आयुर्वेदिक कालेज एवं अस्पताल, मोबा नं. 78, मण्डी गोबिन्दगढ़, जिला-फतेहगढ़ साहिब (पंजाब)

चतुर्थक ज्वर को वाताधिक्ययुक्त द्वन्द्वज मानते हैं एवं औपत्यक ज्वर (पर्वत-समीप की भूमि में होने वाले) में तथा मद्यजन्य ज्वर में पित्त को कारण मानते हैं ।

विषमज्वर के भेद -

सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकाः ।

1. सन्तत ज्वर (Continuous or remittent fever)
2. सतत ज्वर (Double Quotidian fever)
3. अन्येद्युष्कज्वर (Quotidian fever)
4. तृतीयक ज्वर (Tertian fever)
5. चतुर्थक ज्वर (Quartarn fever)

सन्ततज्वर (*Continuous fever*)

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा
सन्तत्या योऽविसर्गो स्यात् सन्ततः स निगद्यते ॥

सु०उ० 39

जो ज्वर लगातार बिना उतरे सात दिन, दस दिन तथा बारह दिन तक चलता है उसे सन्ततज्वर कहते हैं ।

इस ज्वर के लक्षण आन्त्रिक ज्वर (Enteric fever), फुफ्फुसपाक (Pneumonia) तथा मस्तिष्क-सुषुम्ना ज्वर (Cerebro-spinal fever) में पाये जाते हैं ।

क्र०	ज्वर	दोष	ज्वर काल
1.	मस्तिष्क सुषुम्नाज्वर (Cerebro-Spinal Fever)	वातोल्वणता के कारण	7 दिन
2.	आन्तरिक ज्वर (Typhoid Fever)	पित्तोल्वणता के कारण	10 दिन
3.	फुफ्फुसपाक (Pneumonia)	श्लेष्मोल्वणता के कारण	12 दिन

आन्त्रिक ज्वर (*Enteric Fever*)

लक्षणानुसार वर्तमान में *Enteric Fever* को सन्ततज्वर कहते हैं क्योंकि इसका समय तीन सप्ताह माना जाता है । पिड़िकाओं के वर्ण के आधार पर Enteric Fever को कफप्रधान सान्निपातिक सन्तत ज्वर कह सकते हैं । क्योंकि दोनों में श्वेत वर्ण की पिडिकायें पायी जाती हैं । अर्थात् सन्ततज्वर सन्निपात से होता है तथा दोष-दूष्यों में से किसी के शुद्ध होने और किसी के शुद्ध न होने पर इसकी शान्ति का समय दुर्लभ होता है अर्थात् यह निश्चित नहीं होता कि ज्वर कब उतरेगा । फिर भी बारहवें दिन ज्वर का वेग अव्यक्त होता है और पुनः 13 वें दिन व्यक्त होने पर इसकी शान्ति का समय दुर्लभ होता है अर्थात् यह कोई सुनिश्चित नहीं है कि ज्वर कितने दिनों में उतरेगा । इसकी अवधि के विषय में तीन मत हैं -

क) 7, 10, 12 दिन
ख) 15, 17, 22 दिन
ग) अनिश्चित समय

आधुनिक मतानुसार

Causal Agent :

(i) Salmonella typhi (Typhoid fever)
(ii) Salmonella paratyphii (Paratyphoid fever)

Mode of Infection - Through contaminated food & water

Incubation period - 2 weeks

Their bacilli invade the lymphoid follicles and peyer's patches of small intestine and they proliferate. When they invade the blood system, their characteristic clinical features are continuous rise of temperature and 'Rosy Spots' are observed on the skin. Immunological reactions begin after 10 days.

Signs :

(i) Fever is 1^0C more in morning than in night.
(ii) Decreasing no. of easinophils and neutrophils. But no. of monocytes increase than their normal value.

Pneumonia :

It is the acute infection of lung parenchyma distal to the terminal bronchioles which consists of respiratory bronchiole, alveolar ducts, alveolar races and alveoli. Pneumonia & Pneumonitis are synosyms of each other i.e. Inflammation of lungs.

Consolidation is solidification of Lung used for macroscopic & radiological appearence of Lung in Pneumonia.

Cerebro-Spinal fever or Cerebral Malaria - in which congestion and petechiae occur on the white matter of brain.

सतत ज्वर (Double Quotidian fever)

अहोरात्रे सततको द्वौ कालावनुवर्तते ।

अर्थात् जिस ज्वर में एक अहोरात्रि (24 घण्टे)

दो आवेग आते हों, उसे सतत ज्वर कहते हैं । अर्थात् एक दिन रात में दो बार ताप की वृद्धि होती है ।

आधुनिक दृष्टिकोण में इसे लक्षणों के आधार पर इसे काला ज्वर (Kala Zvar) से तुलना कर सकते हैं ।

Causal agent - Leishmania donovani
Incubation period - 1-4 months.

लक्षण :-

- ज्वर, त्वग-वैवर्ण्य, यकृत-प्लीहा वृद्धि तथा प्लीहा वृद्धि ।
- रोगी को भूख तो लगती है किन्तु पाचन शक्ति दुर्बल रहती है ।
- कभी-कभी शोथ, अतिसार तथा नासिका और मसूड़ों से रक्तस्राव की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है ।

आचार्य चरक ने विषम ज्वर के हेतु के विषय में उपमा देते हुए कहा है कि जिस प्रकार भूमि में पड़ा हुआ बीज समय पाकर ही अंकुरित होता है, ठीक उसी प्रकार धातु में अवस्थित दोष या जीवाणु भी एक निश्चित समय (24, 48, 72 घण्टों में) पर प्रकुपित होकर ज्वर को उत्पन्न करता है तथा वेग का निश्चित काल समाप्त होने पर ज्वर शान्त हो जाता है और पुनः निश्चित समय पर उत्पन्न हो जाता है ।

इसी के आधार पर चक्रपाणि ने कहा है -

'सततकादौ दोषा वेगं कृत्वा गतबला भवन्ति,
गतबलाश्च पुनः स्वे स्वे रक्तादौ स्थाने स्थिता भवन्ति,
पुनस्ते एव वृद्धाः स्वे काले ज्वरयन्ति ।

(चक्रपाणि)

अर्थात् रक्तादि धातु में लीन विषम ज्वरोत्पादक जीवाणु जब लाल कणों को विदीर्ण (Rupture of R.B.C.) करके बाहर आते हैं तो शीतादि लक्षण पूर्वक ज्वर का वेग आरम्भ होता है । विषम ज्वर को उत्पन्न करने वाले जीवाणु विभिन्न प्रकार के होते हैं । इनके रक्तकण (R.B.Cs) से बाहर आने का काल भी भिन्न होता है अतः इसी कारण ज्वर वेग भी विभिन्न समयों पर होता है । उपरोक्त लक्षणों के आधार पर हम सतत ज्वर की तुलना मलेरिया से कर सकते हैं ।

Malaria

Mal - Bad
Aria - Air
Discovered by *Charles Laveran.*

Dr. Ronald Ross, first observed oocytes of plasmodium in female anapheles mosquito. It is a protozoal disease, spread from person to person by the bite of female anapheles mosquito.

Causal Agent : Plasmodium : It has four species :-

(i) Plasmodium Ovale
(ii) Plasmodium Vivex
(iii) Plasmodium falciparum - Causes malignant or fatal malaria.
(iv) Plasmodium Malariae

Sr. No.	Causal Agent	Incubation Period	Name of Malaria	Duration of Mosquito cycle	Recurrence of Fever
1.	Plasmodium ovale	14 days	Tertian malaria	16 days	48 hours
2.	P. Vivex	14 days	Benign tertian malaria	10-17 days	48 hours
3.	P. Faciparum	12 days	Fatal or malignant malaria	22-23 days	48 hours
4.	P. Malariae	28 days	Quartaran malaria	30-35 days	72 hours

अन्येद्युष्क ज्वर (*Quotidian Fever*)

अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रौ एककालं प्रवर्तते ।

अर्थात् एक अहोरात्रि में एक बार चढ़ने वाला अन्येद्युष्क ज्वर कहलाता है ।

मुख्य कारण

इसमें तृतीयक ज्वर को उत्पन्न करने वाली दो

जातियों के (P.Vivex/P.Ovale) स्वतंत्र वंश विस्तार लगातार दो दिन होने से अन्येद्युष्क ज्वर है ।

इस ज्वर को तृतीयक विपर्यय भी कह सकते हैं जैसे किसी भी व्यक्ति को तृतीयक जीवाणु का उपसर्ग एक तारीख को हुआ और उसके अगले दिन दूसरी तारीख को भी हुआ । जो कीटाणु रक्त में प्रथम दिन पहुंचे वे 15 दिन बाद ज्वर उत्पन्न करते हैं और जिसने अगले दिन काटा था वे अगले 15 दिन बाद ज्वर उत्पन्न करेंगे । अर्थात्

दिनांक 15, 17, 19 पहले के काटने के आधार पर ।

दिनांक 16, 18, 20 दूसरे के काटने के आधार पर ।

अत: इस प्रकार ज्वर की आवृति प्रतिदिन होगी और इसी के आधार पर इसे दैनिक या अन्येद्युष्क ज्वर कहा गया है ।

तृतीयक ज्वर (*Intermittent Fever*)

'तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि' ।

(सु०उ० 39)

अर्थात् तीसरे दिन आने वाले ज्वर को तृतीयक ज्वर कहते हैं ।

इनके विषय में दिनं हित्वा तृतीयक: कहा गया है क्योंकि ज्वर की पुनरावृत्ति हर तीसरे दिन होती है ।

तृतीयक ज्वर के भेद -

1. **कफपित्तोल्वण ज्वर** - इसमें सर्व प्रथम त्रिक प्रदेश पीड़ित होने पर ज्वर का वेग आता है ।
2. **वातकफोल्वण ज्वर** - इसमें सर्व प्रथम पृष्ठ प्रदेश पीड़ित होता है फिर उसके बाद ज्वर की प्रतीति होती है ।
3. **वातपित्तोल्वण ज्वर** - इसमें सर्व प्रथम शिर:प्रदेश में वेदना होती है फिर उसके बाद ज्वर की प्रतीति होती है ।

चतुर्थक ज्वर (Quartaran Fever)

'चतुर्थेअहि चतुर्थक: ।'

(सु० उ० 39)

अर्थात् चौथे दिन आने वाले ज्वर को चतुर्थक कहते हैं ।

P. Malariae -

दिनद्वयं यो विश्रम्य प्रत्येति स चतुर्थक: ।

(च०चि०)

अर्थात् चौथे दिन ज्वर की पुनरावृत्ति होने कारण चतुर्थक ज्वर की संज्ञा दी गयी है ।

श्लेष्मोल्वण चतुर्थक ज्वर -

इसमें सर्वप्रथम जंघाओं को पीड़ित करता हु ज्वर का वेग होता है ।

वातोल्वण चतुर्थक ज्वर -

इसमें सर्वप्रथम सिर से वेदना होती है, तत्पश्च ज्वर का वेग उत्पन्न होता है ।

चतुर्थक विपर्यय ज्वर -

इसमें चतुर्थक जीवाणुओं के पृथक-पृथक लगा दो दिन काटने पर ऐसा होता है, जैसे - *P. Malariae.*

अहित सेवन से प्रकुपित हुए दोष रस धातु आश्रित होकर सन्तत ज्वर को उत्पन्न करते हैं । यही दो जब रस धातु से रक्त-धातु में चले जाते हैं तो वहां आश्रित होकर सततकज्वर की तथा इसी प्रकार मांस आश्रित होकर अन्येद्युष्कज्वर को उत्पन्न करता है परन्तु ज ये दोष मेद धातु में पहुंचकर उसको अपना आश्रय मानक ज्वर की उत्पत्ति करते हैं, तो इसे तृतीयक ज्वर कहते हैं । जब ये दोष अस्थि और मज्जा में पहुंचते हैं और इन्हें अप आश्रम मानकर ज्वर की उत्पत्ति करते हैं तो उसे चतुर्थ ज्वर कहते हैं । आचार्य गणनाथ सेन जी ने वात बलास ज्वर (Epidemic dropsy), प्रलेपक ज्वर (Hectic Fev तथा श्लीपद ज्वर (Filarial Fever) की गणना भी वि ज्वर के अन्तर्गत की है, जो उचित प्रतीत होती है ।

श्वास (Asthma) रोग में उपयोगी औषधि ''दम की बूटी''

* अभिमन्यु यादव, बी.ए.एम.एस. ** डा० अशोक कुमार शर्मा

प्रकृति ने अपने आंचल में अनेक औषधियों का संग्रह कर रखा है, प्रकृति की कोई रचना निरुद्देश्य नहीं होती, उसका कुछ न कुछ लाभ मानव जाति को होता है। प्रकृति के इसी आंचल में एक अनोखी औषधि है जिसका नाम आयुर्वेद मतानुसार अर्कपर्णी या Tylophora Asthmatica W & A है। आम भाषा में इस औषध का नाम अनन्तमूल या दम की बूटी या श्वास की जड़ी है। यह औषध श्वास रोग में प्रयुक्त होती है। अपने गुण कर्मों के आधार पर यह औषध तमक-श्वास Bronchial Asthma में प्रयुक्त की जाती है।

आयुर्वेद की प्राचीनतम संहिता सुश्रुत संहिता में इसका उल्लेख मिलता है। सुश्रुत संहिता के टीकाकारों ने औषध के गुण कर्मों को जानकर इसका प्रयोग श्वास रोग, वमन, अतिसार, आंत्रविकार, विसूचिका तथा विषाक्त लक्षणों (Food poisoning) आदि विकारों में प्रयुक्त किया है। यह औषध उत्तर भारत, हरिद्वार, देहरादून, पंजाब, हरियाणा तथा दक्षिण भारत में पाई जाती है। इस औषध का वानस्पतिक वर्णन निम्न प्रकार है -

शास्त्रीय नाम - अर्कपर्णी (अनन्तमूल)
Lt. Name - Tylophora Asthmatica W & A
Family - अर्ककुल Ascolpediaceae

इसकी लता उत्तरी भारत (उत्तरांचल हिमालय, उत्तर प्रदेश) बंगाल, आसाम, मद्रास (दक्षिण भारत) बंगला देश, बर्मा, मलाया, बम्बई, लंका आदि प्रदेशों में पाई जाती है। इसके अतिरिक्त रेतीली भूमि में पाई जाती है।

अर्कपर्णी (अनन्तमूल) की अनेक जातियां होती हैं किन्तु सामान्यत: व्यवहार में पांच जातियां पाई जाती हैं।

प्रस्तुत लेख Tylophora Asthmatica W & A के सन्दर्भ में लिखा जा रहा है।

1. Tylophora Asthmatica W & A
2. Tylophora Lavigata Dance
3. Tylophora Fasiculata Home in wet
4. Tylophora Tenuces V.L. wizoler
5. Tylophora Tenusacsame W & A

इसकी बहुवर्षायु लता होती है। काण्ड - 1/4'' मोटे, पत्र - 2-5'' लम्बे 1-2'' चौड़े लट्वाकार अण्डाकार होते हैं। ऊपरी पृष्ठ चिकना, अध: पृष्ठ रोमयुक्त होता है। **पुष्प** - बहुत छोटे हरिताभ अन्दर से बैंगनी वर्ण के गुच्छों में सितारे जैसे आकृति होती है। **फल** - छोटा 2-4'' लम्बा, अग्रभाग नोकीला होता है। **बीज** - अत्यन्त छोटे एवं लम्बे रेशमी रोमों से आवृत्त होते हैं। **मूल**- बहुत लम्बे मांसल हल्के पीताभ मटमैले तन्तुयुक्त अन्दर से हल्के पीले रंग के अंगुर गन्ध हीन पहले मधुर रस बाद में कटु रस होते हैं।

रासायनिक संघटन - इसमें Tylophorine तथा Tylophorimine नामक दो Alkaloids पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त खनिज तथा वामक द्रव्य भी पाये जाते हैं।

गुणकर्म :-

गुण - लघु, रूक्ष।
रस - कटु, तिक्त।
विपाक - कटु।
वीर्य - उष्ण।

यह औषध अपने रस के कारण रसना उद्वेजक, तोदक विदाह के साथ मुख, नासा नेत्र से स्राव होने लगता है। (कटुरस)

जिह्वा के अन्य आस्वादों को नष्ट कर देता है। इसके अतिरिक्त मुख वैशद्यकर, कंठ शोधक, मुख शोषकर एवं अहलाद् युक्त होती है। (तिक्त रस के कारण)।

अपने गुणकर्म के कारण - दीपन, पाचन, लेखन, कृमिघ्न तथा ग्राही हृदयोत्तेजक रक्त स्रावकर प्रतिश्याय (जुकाम) कासघ्न तथा वातश्लेष्महर होने के कारण कास, श्वासहर, Bronchitis and Bronchial Asthma में प्रयुक्त होती है। इसके अतिरिक्त रोचन, तृष्णानिग्रहण, पुरीष शोधन आदि कर्म करती है।

श्वास रोग प्राणवह स्रोतों की विकृति के कारण होता है। जिसका मुख्य लक्षण श्वास कष्ट होता है। यह व्याधि वात श्लेष्मा प्रधान है। श्लेष्मा कफ के संचय तथा वातजनित आंकुचन के कारण प्राणवह स्रोतों का अवरोध होता है जिससे श्वास होता है। (श्वास कष्ट होता है)।

---

* द्वितीय व्यवसायिक ** रीडर, द्रव्यगुण विभाग, श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय, रोहतक

सामान्यत: शरीर का पित्त, वात और श्लेष्मा को नियंत्रित रखता है । किन्तु उसकी मन्दता से वे दोष कुपित हो जाते हैं, जिससे श्वास रोग की उत्पत्ति होती है ।

अर्कपर्णी मुख्यत: कटुतिक्त रस युक्त तथा उष्ण वीर्य है । उष्ण वीर्य होने के कारण कफ और वात दोनों का शामक है । कटु एवं तिक्त रस, कफ दोष पर विशेष कार्यकर होता है एवं तीक्ष्ण गुण होने के कारण छेदन कर्म करने के कारण संचित श्लेष्मा का निर्हरण करता है तथा इसके पश्चात् कफ के संचय को रोकता है तथा उष्णवीर्य होने से स्रोतोगत संकोच को दूर करता है । (Anti spasmodic) क्रिया इस औषध का वातशामक कर्म ही है । उष्णवीर्य होने के कारण यह पित्त स्थान को भी प्राकृत स्थिति में लाने में सहायक होती है ।

इस प्रकार इस औषध का प्रयोग प्राणवह स्रोतोगत दुप्टिहरण तथा श्वास रोग शमन में विशेष रूप में किया जाता है ।

इस औषध की पत्तियां तथा मूल प्रयोग की जाती हैं । मूल की अपेक्षा पत्तियों का परिणाम उत्तम होता है ।

श्वास रोगी को औषध प्रयोग प्रात: काल सुबह 4 अथवा 5 बजे शौच आदि से निवृत्त हो, मुख शोधन के प्रश्चात खाली पेट एक पत्ता (सिर्फ एक ही पत्ता) लता से तोड़कर साफ कर मुख द्वारा चबा लिया जाता है । औषध प्रयोग के एक से डेढ़ घंटे तक कुछ नहीं खाना होता है ।

यदि रोगी के Lungs तथा श्वास नलिकाओं कफ जमा होगा तो रोगी को एक उल्टी (वमन) भी सकती है । इस प्रकार सम्पूर्ण दिन कोई औषध नहीं है । इसके बाद अगले दिन सुबह एक पत्ता फिर खाना है । इस प्रकार इस औषध का एक सप्ताह तक प्रयोग होता है । एक सप्ताह में रोगी को रोग शान्ति मिल है । यदि रोग का आक्रमण दोबारा हो तो 15 दिन दोबारा औषध का प्रयोग दिन में सिर्फ एक पत्ता ही होता है । एक सप्ताह तक प्रयोग कर सकते हैं । साथ (खान-पान का) आहार-विहार का विशेष ध्यान रखा है ।

विशेष - पित्त प्रकृति के रोगी को इस औषध सेवन नहीं करना चाहिए तथा अत्यंत दुर्बल एवं कमज दिल वालों को भी इस औषध का सेवन नहीं चाहिए । उष्ण पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए क्यों इस औषध का विशिष्ट कार्य कफ को उत्क्लेशित बाहर निकालना होता है । (छेदन कर्म के कारण) कारण रोगी को वमन आता है । अत: एक अथवा दो में रोगी को घबराना नहीं चाहिए ।

इस औषध पर F.R.I. (Forest Resea Institute, Dehradun) तथा आयुर्वेद विभाग दोनों ने अनुसं किया है । जिसके परिणाम स्वरूप हजारों रोगियों को मिला है ।

बैद्यनाथ
अश्वगंधारिष्ट
मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि आदि में लाभकारी

पर्पटी कल्पना

* हिमांशु शेखर तिवारी ** उदय सिंह ठाकुर *** दीप शिखा

परिचयः -

आयुर्वेद को जीवन विज्ञान कहा गया है, क्योंकि इसमें सर्वप्रथम सुखमय दीर्घ जीवन की कामना की गई है। आरोग्य पूर्ण सम्पन्न सुखमय जीवन जीते हुए अन्त में जीवन के चरण लक्ष्य परलोक की प्राप्ति मोक्ष का मार्ग इसमें निर्दिष्ट है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति की भावना से आयुर्वेद की इस परम्परा में किंचित् भिन्न साधन सिद्धान्तों के साथ इस शास्त्र का आविर्भाव हुआ। इसमें भी जीवन मुक्ति को परम प्रयोजन माना गया है तथा मोक्ष साधन में बाधक दरिद्रता और रोग नियंत्रण के उपाय ढूँढ़ गए हैं। इनकी मान्यता थी कि भोगों के कारण शरीर नश्वर है, अत: यत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिए। मोक्ष तत्त्वज्ञान सतत दीर्घाभ्यास से तथा अभ्यास स्थिर दृढ़ शरीर से प्राप्त होता है। अत: पिण्ड में स्थिरता का उपाय ढूँढ़ना चाहिए। इसी मूल चिन्तन के अन्तर्गत इस शास्त्र का आविष्कार हुआ।

प्राचीन काल में शैव मतावलम्बी साधकों ने परिश्रमपूर्वक अनेक प्रयोगों के बाद पारद को इस कार्य के लिए उपयुक्त पाया और कहा कि पारद ही एक ऐसा द्रव्य है, जो शरीर को अजर-अमर बना सकता है, यथा ''एकोऽसौ रसराज शरीरमजरम् कुरुते।'' उन्होंने अनुभव किया कि यदि चंचल और गतिमान् पारद को संस्कारों से सुसंस्कृत एवं सिद्धकर लिया जाए तो यह लोहसिद्धि एवं देहसिद्धि दोनों को करने में समर्थ है। संस्कारों से सिद्ध पारद की प्रथम लोहे पर तथा लोहे पर सफल जानकर उसका देह पर प्रयोग करना चाहिए।

इस शास्त्र के प्रयोजन को चतुर्विध पुरुषार्थ की सिद्धि से जोड़ते हुए कहा गया है कि नष्ट राज्य की पुन: प्राप्ति, धर्म एवं अर्थ का उपभोग, दीर्घ आयु एवं युवावस्था की प्राप्ति तथा मोक्ष चाहने वालों को मुक्ति-इन चारों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) की उपलब्धि इसमें निहित है।

'पर्पटी' शब्द ''पर्पट'' से बना है। पर्पट का अर्थ पापड़ होता है। पर्पट आकारान्त पुल्लिंग शब्द है। इसमें 'ई' प्रत्यय होने से स्त्री लिंग रूप पर्पटी बनता है। पर्पट, पर्पटी एवं पर्पटिका ये उतरोत्तर लघुता को सूचित करते हैं।

कज्जली को अग्नि संयोग से द्रवित कर कदली, पलाशदि के पत्र पर चिपटा कर पापड़ सदृश बना लेने को इस शास्त्र को जानने वाले पर्पटी या पर्पटिका कहते हैं। पर्पटी पारद का पोटबन्ध है। यह बालकों के समस्त रोगों का नाश करता है।[1] शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक को अच्छी प्रकार घोंटकर बनायी गयी कज्जली को अग्नि पर पिघलाकर केले के पत्तों को बीच ऊर्ध्वांग: गोबर के द्वारा दबाकर चिपटा कर देने को पोट या पर्पटी कहते हैं।

बद्ध होने पर पारद की चंचलता तथा दुर्गहत्व नष्ट होता है, पारद सभी दोषों से मुक्त होकर अपरिमित गुणों को देने वाला हो जाता है। इस बन्ध में गन्धक का उपयोग किया जाता है। गन्धक का विषहरत्व, योगवाहित्व, सूतेन्द्रवीर्य पद्र एवं संस्कार जनित अन्य औषधीय गुणों से पारद संयुक्त होकर अत्यन्त गुणवान हो जाता है। पारद स्वयं भी योगवाही है, जो गंधक में मिलकर क्रियाशील हो जाता है। अग्नि संस्कार से इसमें दीपन पाचन एवं ग्राही गुण आ जाता है। इन्हीं गुणों की प्राप्ति हेतु इस कल्प का निर्माण किया जाता है।

पर्पटी कल्पना का इतिहास :-

रसायन शास्त्र में पर्पटी कल्पना एक महत्वपूर्ण कल्पना है। सर्वप्रथम इसका शुभारंभ 8वीं शताब्दी में नागार्जुन ने अपने ग्रन्थ 'रसेन्द्रमंगल' में किया है। इसके अतिरिक्त चरक चूड़ामणि श्री चक्रपाणि दत्त ने अपने ग्रन्थ चक्रदत्त में इसका उल्लेख 11वीं शताब्दी में किया। इस कल्पना के उदय के बाद अनेक आचार्यों ने इसे अपने-अपने ग्रन्थों में स्थान दिया है। फलत: वङ्गसेन, रसरत्नसमुच्चय, रसेन्द्र सार संग्रहादि ग्रन्थों में इसे उद्धरित किया है। अत: कहा जा सकता है कि 11 वीं शताब्दी से यह कल्पना आयुर्वेद विज्ञान को सबल बनाते हुए असंयव्य पीड़ित मानवों को अद्यावधि सेवा कर रही है। साथ ही समय पर अनेक पर्पटियों का विकास अब हो पाया है।

---

* प्रवक्ता-रसशास्त्र एवं भैषज्य कल्पना विभाग ** अध्यता बी.ए.एम.एस. 2nd प्रोफ.
श्रीमती उर्मिला देवी आयुर्वेदिक कॉलेज ऑफ मैडीकल साइंस एण्ड हॉस्पीटल खडकां, होशियारपुर

पर्पटी कल्पना :-

पर्पटी मुख्यतः क्षीण अग्नि एवं दुर्बल पित्त जन्य रोग संग्रहणी की विशेष औषधि है । इस औषध में मुख्यतया दो ही पार्थिव द्रव्य शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक है । इसके शोधन में अनेक वानस्पत्तिक द्रव्यों का उपयोग होता है । किन्तु इस कल्पना में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां पर गोबर जो प्राणिज उपसर्ग है, इस गोबर में गाय का पित्त भी अधिक मात्रा में है । अतः द्रवित कज्जली में कदली पत्र के माध्यम से गोबर के पित्त का शोषण या ग्रहण, उस पर्पटाकार कज्जली में करते हैं । गाय का पित्त जान्तव पदार्थ है । वह मनुष्य के पित्त की क्षीणता या दुर्बलता में अनुकूल लाभ प्रदान करता है । यही कारण है कि जहां संग्रहणी में मन्दाग्नि रहती है, इसके प्रयोग से आशातीत सफलता मिलती है । इस कल्पना के प्रयोग में पथ्यापथ्य का बड़ा महत्व है ।

पर्पटी प्रकार :- मूल रूप से पर्पटी के दो भेद हैं :-

1. **सगन्ध पर्पटी** :- इसमें मूल द्रव्य पारद व गन्धक होते हैं । पारद, गन्धक के अतिरिक्त इसमें विभिन्न प्रकार की पर्पटी हेतु स्वर्ण, लौह, ताम्रादि का संयोग करते हैं । जैसे - रस पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, ताम्रपर्पटी आदि ।

2. **निर्गन्ध पर्पटी** :- इसमें पारद-गन्धक नहीं होता । किन्तु निर्माण प्रक्रिया एवं निर्मित औषध का आकार व स्वरूप पर्पटी की तरह होता है । जैसे श्वेत पर्पटी, मल्लपर्पटी आदि ।

कज्जली :- शुद्ध पारद और शुद्ध गन्धक अथवा किसी धातु के साथ पारद डालकर मर्दन करने, पर पुनः गन्धक देकर 3-4 दिनों तक मर्दन करने से पारद, गन्धक या धातु का कृष्णवर्ण का श्लक्षण चूर्ण हो जाता है, वही कज्जली कहा जाता है । कज्जली के तीन पर्याय बतलाए हैं :- कज्जली, कज्जल एवं कज्जलिका ।

पर्पटी निर्माण प्रक्रिया (रस पर्पटी)[2]

पहले हिंगुलोत्थ पारद को अरणी, एरण्ड मूल तथा आर्द्रक स्वरस के साथ, तीन दिन मर्दन करके धोकर साफ कर लें । फिर शुद्ध गन्धक को भांगरे के रस की सात भावना देकर सुखा लें, फिर इसे एक लौहपात्र या करछी में रखकर बेर के कोयले की अग्नि में पिघलाकर भांगरे के स्वरस में बुझा लें । इस प्रकार शुद्ध गन्धक एवं शुद्ध
दोनों को समभाग लेकर दोनों की अच्छी तरह कज्जली
लें । अब इस कज्जली को एक लोहे की चम्मच
डालकर इसे कोयले की अग्नि पर रखकर पिघलाएं ।
यह कज्जली, पिघलकर कीचड़ की भांति गीली हो
तब इसे गोबर के ऊपर बिछे हुए केले के पत्ते पर डाल
और डालते ही एक दूसरे कदली पत्र से इसे दबाते हुए
दें और अच्छी तरह पत्र से दबाने पर यह पपड़ी-सी
जाती है । अतः इसे पर्पटी नाम से कहा जाता है ।

पर्पटी बनाने के लिए उपयोगी सामग्री :-

1. **खल्वयंत्र** :- पर्पटी का उपादान द्रव्य
है । शुद्ध पारद एवं शुद्ध गन्धक को मर्दन कर
निर्माण हेतु खल्व यंत्र का उपयोग किया जाता है । इस
लिए पत्थर या लौह निर्मित द्रव्याकार अथवा वर्तुल
का सुविधानुसार उपयोग किया जाता है ।

2. **लौहदर्वी** :- पर्पटी निर्माण के लिए
को अग्नि पर द्रवित किया जाता है । द्रवित करने के
ऐसे पात्र का चुनाव करना चाहिए, जिसमें द्रवित करने
ढालने आदि की सुविधा तो हो ही, साथ ही द्रव्य के
पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पात्र के संसर्ग से न हो ।
में लौहदर्वी का विशेष उपयोग किया जाता है । शास्त्र
निर्देश लौह एवं ताम्र दोनों के लिए है । यथा :-

“लौहपात्रेऽथवा ताम्रे”[3]

1. **छोटा चम्मच**:- दर्वी में द्रवित हो रहे
को उलटने-पलटने एवं एकरूप करने तथा एकत्र
कज्जली पर डालने की सुविधा के लिए छोटा चम्मच
लोहपट्टी या काष्ठ निर्मित तत्सदृश पिण्ड सुविधानुसार
चाहिए ।

2. **अग्नि[4]** :- पर्पटी निर्माण में अग्नि का
स्थान है । अग्नि की क्रिया से कज्जली का द्रावण
पाक किया जाता है । पर्पटी निर्माण के लिए मृदु
आवश्यकता होती है 115^0 से 120^0C पर कज्जली
हो जाती है । कज्जली द्रवित होकर पंकवत हो जाय
ही अग्नि देनी चाहिए ।

5. **गोमय[5]**:- पर्पटी निर्माण के लिए द्रवित

पर गोमय द्वारा उर्ध्वाध दबाव देकर फैला दिया जाता है । शीघ्रता से शीतल होकर पुन: कठिन रूप को प्राप्त कर ले- इसके लिए गोमय की एक स्थूल, विस्तृत पीठिका बनाते हैं। गोमय के अभाव में पंक का उपयोग भी किया जा सकता है ।

पर्पटी में गुणाधान की दृष्टि से ऐसा मानना है कि गोमय चूंकि अन्नवह स्रोतस से होकर आता है अत: उसमें अनेक प्रकार के पाचक रस, किण्व तथा अन्त:स्राव मिले होते हैं, जिससे कदली आदि पत्रों के माध्यम से पर्पटी में उनका शोषण हो जाता है, जो ग्रहणी आदि अग्नि मांद्यजन्य विकारों में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध होता है ।

6. पत्र (कदली-पलाशादि)[6]:- पर्पटी निर्माण के लिए गोमय से सीधा सम्पर्क को बचाने के लिए विभिन्न पत्रों का उपयोग किया जाता है । इनमें कदली, कमल, नागवल्ली, अर्क, कुटज, माचिका, पलाश एवं एरण्ड पत्रों आदि में से किसी एक पत्र का उपयोग करते हैं ।

7. समतल पिधानक (अथवा थाली):- द्रवित कज्जली को गोमय पीठिका पर रखे कदली पत्र पर डालकर ऊपर से दूसरा कदलीपत्र रखकर दबाने से पर्पटी बनती है ।

8. स्नेह[7]:- पर्पटी-निर्माण के समय दर्वी में कज्जली चिपके नहीं साथ ही कदली पत्र में भी न चिपके तथा ताप नियमन में भी सहयोग करे, एतर्थ किंचित् घृत या तैल का उपयोग किया जाता है । परोक्ष रूप में घृत एवं तैल से संस्कार जनित स्निग्धता, वात-पित्त शामकता आदि गुण की प्राप्ति भी सम्भव है ।

9. उष्ण जल :- पर्पटी को तैयार होने जाने पर घृत-तैल जनित स्नेहांश को पर्पटी से अलग करने के लिए उष्ण जल से प्रक्षालन करना व्यवहार में प्रचलित है ।

पर्पटी का स्वरूप :- पर्पटी काले रंग की, चमकदार, पतली, 2-2 इंच व्यास वाली केले के पत्र को निशान से युक्त कड़ी वस्तु है । पर्पटी पाक के तीन भेद किए गए हैं, जो अग्नि मात्र के कारण होता है ।

परीक्षणों के आधार पर पर्पटी का स्वरूप/पर्पटी पाक परीक्षा :-

क्रम अंक	पाक	पाक के समय	पाक के पश्चात्
1.	मृदु पाक	मयूर चन्द्रिकाकर[8]	न सम्यक् भंगोस्ती[11]
2.	मध्य पाक	यावत् तैल भा जायते रस:[9]	भंगास्या रूपयैं यथा[12]
3.	खरपाक	रक्त वर्ण[10]	चूर्णाका लौहितम्[13]

विभिन्न प्रकार की पर्पटियां, उनके प्रयोग, मुख्य द्रव्य एवं उपकरण :-

क्रम अंक	पर्पटी का नाम	पर्पटी द्रव्य	मात्रा (रत्ती)	प्रयोग	पथ्य
1.	रस पर्पटी [14]	हिंगुलोत्थ पारद=1 भाग शुद्ध गंधक=1 भाग	2	मुख्यत: ग्रहणी रोग में	मिश्री युक्त गाय का दुग्ध, नारियल का जंल, चावल, काकमाची, परवल ।
2.	लौह पर्पटी [15]	हिंगुलोत्थ पारद=1 भाग शुद्ध गन्धक=1 भाग कांतलोह भस्म=1 भाग	1-2	संग्रहणी, पाण्डु, ज्वर, सूतिका रोग, अतिसार, अग्निमांद्य, सर्वकुष्ठ एवं कामला में ।	दुग्धाहार, रक्तशाली,चावल, मिश्रीयुक्त गोदुग्ध एवं तक्र भोजन ।

क्रम अंक	पर्पटी का नाम	पर्पटी द्रव्य	मात्रा (रत्ती)	प्रयोग	पथ्य
3.	ताम्र पर्पटी [16] (कुष्ठान्त पर्पटी)[16]	ताम्र भस्म= 3 भाग हिंगुलोत्थ पारद=3 भाग शुद्धगन्धक=3 भाग शुद्ध वत्सनाभ विष=1भाग	1-2	श्वास, कास, क्रिमि, यक्ष्मा, प्लीहा, यकृत वृद्धि में तथा यह मुख्यत: यकृतप्लीहा दोष नाशक एवं पित्त स्रावक है ।	गेहूं की रोटी, चना, गोदुग्ध, घृत, परवल, कद्दू, पका केला एवं मांस रस ।
4.	स्वर्ण पर्पटी [17]	हिंगुलोत्थ पारद=4 भाग शुद्ध गन्धक=4 भाग स्वर्ण भस्म=4 भाग	1	तृष्णा, पुराने एवं असाध्य अतिसार को नष्ट करती है । श्वास-कास, प्रमेह, यकृत वृद्धि, पाण्डु एवं मन्दाग्नि नाशक है।	दुग्धाहार, घृत एवं तक्राहार ।
5.	पञ्चामृत पर्पटी[18]	शुद्ध गन्धक=8 भाग हिंगुलोत्थ पारद=4 भाग कान्तलौह भस्म =2 भाग वज्राभ्रक भस्म=1 भाग ताम्र भस्म = ½ भाग	2	वृष्य है, वलिपलित नाशक, नेत्र रोग नाशक, इसे तृष्णा औषधियों की रानी कहा गया है ।	दुग्धाहार, लालशाली, गाय का दही, तक्र व जीरा ।
6.	विजय पर्पटी [19]	शुद्ध गन्धक = 4 भाग हिंगुलोत्थपारद = 2 भाग रौप्य भस्म = 1 भाग स्वर्ण भस्म = ½ भाग वैक्रान्त भस्म = ¼ भाग मुक्ता पिष्टी/भस्म=¼भाग	2	रसायन एवं वृष्य औषधि है, प्रमेह, विषम ज्वर, सन्निपातक ज्वर, आमदोष की यह अमृत तुल्य औषधि है	दुग्धाहार तक्र, शालीचावल बैंगन, धनियां, हींग, सैंधव लवण, जीरा, शुण्ठी आदि
7.	गगन पर्पटी [20]	हिंगुलोत्थ पारद = 1भाग कृष्ण वज्राभ्रक = 1भाग भृंगराजस्वरस शोधित गन्धक = 2 भाग	3-6	यह रक्त रोधक औषधि है । रक्तातिसार रक्तपित्त, रक्तार्श,रक्त प्रदर, अत्यार्त्तव स्राव, उर:क्षतादि रोगों को नष्ट करता है ।	शीत-मधुर-कषाय रस, गोदूग्ध, घी, मिश्री, गेहूं, परवल, लौकी, मूंग, फलरस ।

क्रम अंक	पर्पटी का नाम	पर्पटी द्रव्य	मात्रा (रत्ती)	प्रयोग	पथ्य
8.	श्वेत पर्पटी (क्षार पर्पटी)[22]	कलमी सोरा= 200 भाग फिटकरी=25 भाग नौसादर=13 भाग	5-10	यह अत्याधिक मूत्रल है; स्वेदल तथा वातानुलोमक है । मूत्र कृच्छ्र अश्मरी, मूत्राघात तथा आध्मान नाशक है ।	शीतोपचार एवं शीतल आहार-विहार ।

निष्कर्ष :- पर्पटी के उपयोग के साथ ही पारद के आभ्यान्तर उपयोग की शुरुआत हुई है । ऐसा ऐतिहासिक अवलोकन से पता चलता है ।

नागार्जुन विरचित ''रसेन्द्रमंगल'' (8वीं शताब्दी) से पर्पटी का पाठ उपलब्ध है । यहां पारद, गन्धक, ताम्र एवं विष के सहयोग से पर्पटी का निर्माण तथा कुष्ठ रोग पर इसका उपयोग किए जाने का निर्देश प्राप्त होता है ।

इसके अतिरिक्त 11वीं शताब्दी में चक्रपाणि दत्त द्वारा लिखी गई, ''चक्रदत्त'' के ग्रहणी चिकित्सा के अन्तर्गत पर्पटी का उपयोग किया गया है ।

सन्दर्भ :-

1. रस रत्न समुच्चय = 11/72
2. रस तरङ्गिणी = 6
3. रस पर्पटी = योग रत्नावली, रस योग सागर
4. रस तरंगिनी = 6/136
5. रस तरंगिनी = 6/136
6. रस योग सार = ताम्र पर्पटी
7. अभ्र पर्पटी = रस योग सागर
8. रस पर्पटी = भारत भैषज्य रत्नाकर
9. ताम्र पर्पटी = रस योग सागर
10. रुद्र पर्पटी = भारत भैषज्य रत्नाकर
11. रस तरंगिनी = 6/138
12. पंचामृत पर्पटी = रस योग सागर
13. पंचामृत पर्पटी = रस योग सागर
14. भैषज्य रत्नावली = संग्रहणी प्रकरण
15. भैषज्य रत्नावली = संग्रहणी प्रकरण
16. योग रत्नाकर = कास प्रकरण
17. भैषज्य रत्नावली = संग्रहणी प्रकरण
18. भैषज्य रत्नावली = संग्रहणी प्रकरण
19. भैषज्य रत्नावली = संग्रहणी प्रकरण
20. भैषज्य रत्नावली = संग्रहणी प्रकरण
21. सिद्ध योग संग्रह = संग्रहणी प्रकरण
22. योग रत्नाकर = रक्त पित्त प्रकरण
23. सिद्ध योग संग्रह = मूत्र कृच्छ्र

ग्रन्थ सूची :-

1. रस तरङ्गिणी- प्राणाचार्य श्री सदानन्द शर्मणा विरचिता - टीकाकार पं० काशीनाथ शास्त्रिणा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, ग्यारहवां संस्करण 1989 ।
2. आयुर्वेदीय रस शास्त्र - प्रो० सिद्धिनन्दन मिश्र, चौखम्भा ओरियन्टालिया वाराणसी एकादश संस्करण 2001 ।
3. आयुर्वेदीय रसशास्त्र - डा० चन्द्रभूषण झा, चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी पुनर्मुद्रित संस्करण-2000ई.
4. आयुर्वेद रसशास्त्र-प्रो० बदरी नारायण पाण्डेय, चौखम्भा, सुरभारती प्रकाशन तृतीय संस्करण 1999 ।
5. भैषज्य रत्नावली - श्री राजेश्वर दत्त शास्त्री, चौखम्भा संस्कृत संस्थान, चौदहवां संस्करण 2001 ।
6. रसेन्द्र सार संग्रह-रामतेज पाण्डेय एवं नीलकण्ठमित्र, चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, पुनर्मुद्रित संस्करण 2000ई ।

स्वमूत्र विष नहीं - अमृत

सुभाष चन्

स्वमूत्र चिकित्सा के नाम से ही जन साधारण शायद क्रोधित हो उठेंगे अपनाना तो बहुत दूर की बात है। यह शत-प्रतिशत स्वाभाविक है। इसमें उनका कोई दोष नहीं है वह इसलिए कि मनुष्य जिसके बारे में बिल्कुल अनभिज्ञ हो तथा उसे इसकी लाभ-हानि के बारे में कुछ भी पता न हो वह अचानक उस बात पर विश्वास कैसे कर लेगा। जब तक कि विस्तार से उस विषय के सारे पहलू उसके समक्ष न रखे जायें। अच्छी तरह समझने के बाद ही वह धीरे-धीरे उस कार्य की ओर अग्रसर होगा। इसका प्रमुख कारण हमारी आधुनिक जीवनशैली है जो धीरे-धीरे हमें सभी अच्छी चीजों जैसे सत्कर्म, सद्व्यवहार, खान-पान, रहन-सहन तथा सामाजिक संबंधों आदि से विमुख करती जा रही है। इसका दुष्परिणाम भी हमारे सामने आ रहा है परन्तु दुख की बात यह है कि हम निरंतर इस दौड़ में आगे ही बढ़ते जा रहे हैं। इसके अन्य दोषी आधुनिक शिक्षा प्रणाली, पाश्चात्य सभ्यता का अनुसरण तथा मनुष्य का स्वकेंद्रित होना भी है। चिकित्सा के संदर्भ में हम अपनी विश्व प्रख्यात एवं परम्परागत आयुर्वेदिक चिकित्सा को हेय दृष्टि से देखते हैं जबकि आदिकाल से हमारा जीवन इसी चिकित्सा पर निर्भर था। एलोपैथिक चिकित्सा पद्धति का विकास तो मात्र 100-150 वर्ष पूर्व हुआ है। यह हमारे लिए कितनी लज्जा का विषय है कि आज भारतीय आयुर्वेद विदेशों में सर्वोच्च शिखर पर है परन्तु हम भारतवासी इसे हाशिये पर ले आये हैं। उदाहरण के तौर पर वर्तमान में चीन हर्बल औषधियों के उत्पादन, उपयोग एवं व्यापार में सबसे अग्रणी देश है। संसार में जड़ी-बूटी की खपत का लगभग 60 प्रतिशत उत्पादन अकेले चीन द्वारा ही किया जाता है।

स्वमूत्र चिकित्सा भी एक प्रकार से प्राकृतिक आयुर्वेदिक चिकित्सा का रूप है। इसके द्वारा बिना किसी व्यय के हम अपना सारा जीवन निरोगी रख सकते हैं। इसके लिए हमें सर्वप्रथम जनमानस के मन से इसके प्रति उत्पन्न गलत धारणाओं को समाप्त करना होगा। जैसा कि लोगों का भ्रम है वास्तव में मूत्र कोई गंदा द्रव्य नहीं है यह शरीर में गुर्दों से छन कर बाहर आता है। गुर्दों का कार्य है हमारे शरीर में रक्त का स्तर सामान्य बनाये रखना तथा अतिरिक्त मात्रा के रासायनिक तत्वों को छानकर बाहर निकालना ! इस छने हुए अतिरिक्त द्रव में महत्वपूर्ण एवं अति उपयोगी विटामिन, खनिज, प्रोटीन, एन्जाइम, विभिन्न हार्मोन तथा एमीनो एसिड के अतिरिक्त अन्य तत्वों की मात्रा निम्न होती है।

तत्व	मात्रा (प्रति 100 मिली ग्रा०)	तत्व	मात्रा (प्रति 100 मिली ग्रा०)
यूरिया नाइट्रोजन	682.0	एमीनो नाइट्रोजन	9.70
यूरिया	145.90	अमोनिया नाइट्रोजन	57.0
क्रियेटिनिन नाइट्रोजन	36.0	सोडियम	212.0
क्रियेटिनिन	67.20	पोटेशियम	137.0
यूरिक एसिड नाइट्रोजन	12.30	कैल्शियम	19.50
यूरिक एसिड	36.60	मैग्नीशियम	11.30
क्लोराइड	314.0	अकार्बनिक फास्फेट	127.0
कुल सल्फेट	91.0	एन/10 एसिड	27.80
अकार्बनिक सल्फेट	83.0		

(साभार डा० फौरोन : जीव रसायन का परिचय)

रसायन विभाग, राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, लखनऊ

इसके अतिरिक्त स्वमूत्र में एमाइलेज, लैक्टिक डिहाइड्रोजिनेट, ल्यूसिन एमीनो - पेप्टीडेज, यूरोकिनोज आदि एन्जाइम; कैटीचोल एमीन, हाइड्राक्सी स्टिरोयड, 17-कैरीटिनोयड, इरीथोपाइरिन, एडिनाईलेट साइम्लेज, प्रोस्टेलेन्डिन, इन्सुलिन आदि हार्मोन एवं तांबा, यूरोविनिलोजिन नामक अन्य तत्व विद्यमान हैं ।

यूरोकिनोज एन्जाइम शरीर में सभी प्रकार के रक्त के थक्कों को समाप्त करने में सक्षम है । अमेरिका के डा० मिजिल दिल की रोगियों का उपचार यूरोकिनोज के इन्जेक्शन लगाकर करते हैं । इसी संदर्भ में अहमदाबाद की डा० सलारिया शल्य चिकित्सा के पूर्व रोगी का दिल न बैठने के लिए स्वमूत्र का इन्जेक्शन देती हैं । पुणे, महाराष्ट्र के डा० धर्माधिकारी ने स्वमूत्र चिकित्सा पर अत्यधिक अनुसंधान किया है इनके परिणाम निम्नलिखित हैं ।

1. स्वमूत्र चिकित्सा मनुष्य के शरीर में सभी पोषक तत्वों की कमी को दूर करती है ।
2. स्वमूत्र में अतिक्रियाशील एन्जाइम होते हैं जो हमारे शरीर की भौतिक क्रियाओं की गति में वृद्धि लाते हैं ।
3. इसमें कीटाणुरोधक गुण विद्यमान हैं । इसलिए यह रोग वाहक कीटाणुओं को समाप्त कर हमारे शरीर को स्वस्थ रखने में सहायता करते हैं ।
4. स्वमूत्र में विद्यमान यूरिया हमारे गुर्दों को स्वस्थ रखकर इनकी क्रियाशीलता को बढ़ाती है ।
5. स्वमूत्र शक्ति एवं स्फूर्तिवर्धक है ।

इस चिकित्सा के क्षेत्र में भारत में बहुत कम परन्तु पाश्चात्य देशों में बहुत अधिक अनुसंधान कार्य हुए हैं तथा इनसे सम्बन्धित अनेक पुस्तकें भी प्रकाशित हुई हैं । यही कारण है कि आज अमेरिका में 10 लाख से अधिक लोग स्वमूत्र चिकित्सा को अपना चुके हैं । वहां आजकल कैन्सर और एड्स जैसे जटिल रोगों का उपचार भी पूर्णतया स्वमूत्र से किया जा रहा है तथा इसके परिणाम भी 100 प्रतिशत सफल प्राप्त हुए हैं । कैंसर के उपचार में इससे प्रभावित क्षेत्र की परिधि पर स्वमूत्र के इन्जेक्शन लगाये जाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप कैंसर से प्रभावित एवं स्वस्थ कोशिकाओं के बीच सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है । जिससे कि प्रभावित कोशिकाओं का भरण-पोषण नहीं हो पाता है । तत्पश्चात् रोग प्रभावित क्षेत्र में स्वमूत्र के इन्जेक्शनों के प्रयोग से कोशिकाएं कमजोर होकर सूख जाती हैं और धीरे-धीरे रोगी रोगमुक्त हो जाता है । इसके उपचार के लिए चिकित्सक यूरिया के घोल का प्रयोग भी करते हैं जो पूर्णतः सफल है। इस विषय के कुछ प्रमुख विदेशी साहित्य निम्न हैं । गोल्डेन फाउन्टेन - लेखक कोहेन वाल डर फून, योर ओन प्रीसियस मेडिसिन - लेखक मार्था एम. क्रिस्टी, वाटर ऑफ लाइफ-लेखक जी जोन डब्ल्यू, आर्मस्ट्रांग, सेल्फ यूरिन थिरेपी - लेखक बिट्राइस बार्टनेट, सुपर पावर ब्रीथिंग - लेखक पेट्रीशिया ब्रैम एन.डी., वाटर-लेखक पॉल सी.ब्रैग ।

इसके अतिरिक्त इस महत्वपूर्ण विषय पर अति उपयोगी विश्व संगोष्ठियां भी आयोजित की जा चुकी हैं । (1) गोवा : फरवरी 1999, (2) गर्जफेल्ड, जर्मनी, मई, 1999 एवं (3) ब्राजील : मई, 2003 । उपरोक्त संगोष्ठियों में देश-विदेश के वैज्ञानिकों ने अत्यधिक रुचि दिखाई । यह था स्वमूत्र चिकित्सा का वर्तमान पहलू । इसका एक अन्य पहलू जो हमारे आयुर्वेद से जुड़ा है, इसका विवरण निम्नलिखित है । स्वमूत्र चिकित्सा का उल्लेख हमारे वैदिक एवं प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है । इस संदर्भ में एक पुस्तक है, "दामर तंत्र"। इसमें स्वमूत्र को शिवाम्भु तथा इस चिकित्सा को शिवाम्भु कल्प कहा गया है । इस पुस्तक में स्वमूत्र के उपयोग पर 107 श्लोक हैं । यहां सभी श्लोकों का भाव रखना संभव नहीं है अपितु इनमें से कुछ महत्वपूर्ण श्लोकों के भावों का वर्णन किया जा रहा है । श्लोक की संख्या भावार्थ के पश्चात चिन्हित है ।

भगवान शिव जी ने पार्वती जी से कहा कि हे पार्वती ! शिवाम्भु में सैकड़ों गुण विद्यमान हैं तथा इसके एकत्र करने के लिए तांबे तथा मिट्टी का पात्र सर्वश्रेष्ठ होता है स्वमूत्र ग्रहण करने वाले को शाम को हल्का भोजन, नमक तथा मिर्च का कम प्रयोग तथा जमीन पर सोना चाहिए ग्रहण करने वाला मूत्र न तो प्रारम्भ का होना चाहिए न ही अन्त का, बीच का मूत्र सर्वोत्तम होता है शिवाम्भु अमृत तुल्य है इसमें समस्त रोगों को नाश करने की शक्ति

है[9] इसका एक महीने तक उपयोग करने से अन्त:शुद्धि तथा 2 महीने के पश्चात् ज्ञान चक्षु खुल जाते हैं।[11] 3 महीने तक सेवन शरीर को निरोगी तथा 4 महीने में आत्मदर्शन योग्य बना देता है।[12] इसका 8 महीने तक सेवन कोढ़ एवं क्षय रोग को नाश कर शरीर कान्तिमय बनाता है[15] 2 वर्ष लगातार सेवन से सूर्य के समान कान्ति एवं तत्वों पर विजय प्राप्त होती है[16] 7 वर्ष तक सेवन से मनुष्य अहंकार को वश में कर लेता है [18] 8 वर्षों के पश्चात् सभी तत्वों पर विजय तथा 9 वर्षों तक सेवन के उपरान्त मनुष्य जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाता है [19] 11 वर्ष के पश्चात् अपनी आत्मा की आवाज सुनने योग्य[20] तथा 12 वर्ष के उपरान्त दीर्घ जीवन, विष एवं अग्नि पर विजय प्राप्त कर लेता है ।[21] हे पार्वती ! जो मनुष्य गुर्च को स्वमूत्र में मिलाकर सेवन करता है वह समस्त रोगों से मुक्त होकर सुख प्राप्त करता है[22, 23] हर्र के पाउडर को शिवाम्भु के साथ 1 वर्ष तक ग्रहण करने से रोग मुक्त के साथ अभूतपूर्व शक्ति प्राप्त होती है [24] 1 ग्राम गंधक को स्वमूत्र के साथ लगातार प्रयोग से मनुष्य दीर्घायु प्राप्त करता है[25] पिप्पली, त्रिफला चूर्ण को थोड़े जल में मिलाकर शिवाम्भु के साथ उपयोग से शरीर अद्भुत कान्तिमय हो जाता है[27] शिवाम्भु के प्रयोग के साथ नमक, मिर्च तथा खट्टी वस्तुओं के पूर्ण त्याज्य से शरीर शीघ्र रोग रहित एवं व्यक्तित्व मेरे (भगवान शिव) समान हो सकता है ।[30]

इसके अतिरिक्त स्वमूत्र के उपयोग का सौन्दर्य प्रसाधन के क्षेत्र में भी अद्वितीय स्थान है । स्त्रियों के लिए आवश्यक सभी सौन्दर्यवर्धक गुण इसमें विद्यमान हैं । शरीर पर इसकी नियमित मालिश से कील-मुहाँसे, झाइं, फोड़े-फुन्सी एवं समस्त त्वचा रोग समाप्त होकर त्वचा अत्यधिक मुलायम एवं चमकदार हो जाती है । इस प्रकार यह सौन्दर्य प्रसाधन का नि:शुल्क स्रोत है, इसके उपयोग से हम सभी लाभान्वित हो सकते हैं ।

उपरोक्त प्राचीन भारतीय एवं पाश्चात्य तथ्यों से यह प्रमाणित होता है कि स्वमूत्र चिकित्सा आज से नहीं आदि से प्रमाणिक है । हमें अपने मन से इसके प्रति उत्पन्न सारी गलत धारणाओं को त्याग कर स्वयं में समाहित औषधि से नि:शुल्क अपने शरीर को रोग मुक्त कर सकते हैं । बस आवश्यकता है स्वयं में निहित इस अमृत के रसपान की ।

बैद्यनाथ प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं। इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता ।

हेमन्त ऋतुचर्या में जीवन शैली

*डॉ० महेश चन्द्र पूर्विया

**प्रो० महेन्द्र सिंह मीणा

प्रकृति अपने सन्तुलन तथा जलवायु के अनुकूलन हेतु समय-समय पर बदलती रहती है । इसे सर्दी, गर्मी, बरसात आदि मौसम के रूप में अनुभूत किया जा सकता है। सर्दी, गर्मी इत्यादि वर्ष में एक निश्चित समयावधि के दौरान ही परिलक्षित होते हैं । इन्हें ऋतु कहा जाता है । मनुष्य के शरीर पर भी इन ऋतुओं का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है । यह प्रभाव बाह्य तथा आभ्यान्तर दोनों ही प्रकार से परिलक्षित होता है । प्रत्येक ऋतु में मनुष्यों तथा जीव जन्तुओं की जीवन शैली तथा खान-पान में परिवर्तन शरीर की स्वस्थावस्था को बनाये रखने के लिए परमावश्यक है ।

विभिन्न ऋतुओं में मनुष्य अपनी खान-पान की सामग्रियों तथा पहनावों का ऋतु के अनुसार चयन करता है। इससे वह कालजन्य दुष्प्रभावों से तो बचा रहता ही है, साथ ही कालजन्य सुप्रभावों को भी ग्रहण करता है ।

आयुर्वेद मतानुसार प्रत्येक ऋतु में शरीर का संघटन प्रभावित होता है एवं दोषों की अवस्था बदल जाती है। इस बदलाव के प्रभाव को सहन करते हुए शरीर को तत्-तद् ऋतु के अनुसार अधिकाधिक प्राकृतिक पोषण प्रदान करने के लिए ही आयुर्वेद के मनीषियों ने दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा जीवनचर्या को विशिष्ट स्वरूप में निर्दिष्ट किया है ।

यह परिवर्तन किञ्चित् मात्रा में मनुष्य स्वत: ही आनुवांशिकता से ग्रहण करता है तथा कुछ आयुर्वेद में निर्दिष्ट सिद्धान्तों के द्वारा ग्रहण करता है । प्रत्येक ऋतु में अलग-अलग वस्त्र चयन, आहार-चयन तथा स्थान चयन सामान्यजन के लिए नितान्त आवश्यक है अन्यथा शरीर रोगग्रस्त हो जाता है । यद्यपि योग से काल पर विजय प्राप्त करके शरीर को ऋतुओं के प्रभाव से मुक्त रखा जा सकता है। आज समस्त मानव समाज विभिन्न प्रकार की पर्यावरणजन्य व्याधियों से ग्रसित है । ऐसे समय में ऋतुओं के अनुसार चर्या का अनुसरण कर शरीर को व्याधि मुक्त रखा जा सकता है । इसी क्रम में ''हेमन्त ऋतुचर्या में जीवन शैली'' पर प्रकाश इस आलेख में डाला जा रहा है ।

हेमन्त ऋतु विसर्गकाल की अंतिम ऋतु है । इसमें सूर्य दक्षिणायन होता है । इस कारण सूर्य की धूप में प्रखरता नहीं रहती है । इस ऋतु में चन्द्रमा बलशाली होता है, जिसके कारण भू-मण्डल का स्वभाव स्निग्धतर होता है और प्राणियों की जठराग्नि तीव्र होती है । इस ऋतु में प्राणियों का बल श्रेष्ठ होता है । अंग्रेजी महीनों के हिसाब से यह ऋतु ''दिसम्बर-जनवरी'' व हिन्दी महीनों के अनुसार यह ऋतु ''मार्गशीर्ष'' और ''पौष'' में पड़ती है । दोषों के अनुसार इस ऋतु में पित्त का शमन होता है । द्रव्यानुसार यह ऋतु ''मधुर'' रस प्रधान होती है । इस ऋतु में सर्दी विशेष रूप से पड़ती है और सर्दी से बचने के लिए खान-पान, रहन-सहन की विशेष सावधानी आवश्यक होती है ।

हेमन्त ऋतु का जलवायु गत प्रभाव

1. कोहरे के कारण वातावरण अस्पष्ट या धुंधला दिखाई देना ।
2. धूप की तीव्रता कम होना ।
3. ठण्डी हवाओं का चलना ।
4. पानी का जमना ।
5. नदियों के बहते हुए पानी से वाष्प या धुआँ-सा निकलता दिखाई देना ।
6. ताजा पानी का ऊष्णता युक्त होना ।
7. लोध्र, प्रियङ्गु, नागकेशर आदि का पुष्प युक्त होना।

हेमन्त ऋतु का शरीर पर प्रभाव

1. अग्नि बल बढ़ जाने से भूख अधिक लगना ।
2. गुरु भोजन (यथा-घी, दूध, मावा, रबड़ी आदि) का पाचन आसानी से हो जाना ।
3. शारीरिक गुरुता उत्पन्न होना ।
4. शारीरिक बल का बढ़ना ।
5. शरीर का हृष्ट-पुष्ट हो जाना ।

---

* प्राध्यापक, शरीर क्रिया विज्ञान, डा०पं०शिव शक्तिलाल शर्मा, आयुर्वेद महाविद्यालय रतलाम (म.प्र.)

** विभागाध्यक्ष शरीर क्रिया विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर ।

6. कामोत्तेजना प्रबल होना तथा संसर्ग हेतु आतुरता।
7. भोजन का पाचन शीघ्र होना।

हेमन्त ऋतु में निर्दिष्ट खान-पान

मांसाहार

1. इस ऋतु में बिल में रहने वाले (यथा-गोधा आदि) जल में रहने वाले (यथा-कछुआ, मछली आदि) तथा उड़ने वाले पक्षियों (यथा-बाज, कबूतर आदि) एवं कुरेदकर खाने वाले (यथा-मुर्गा, तीतर, बटेर आदि) प्राणियों का मांस खाना चाहिए।
2. भैंसा, बकरा, हरिण, खरगोश आदि प्राणियों का मांस भूनकर गुड़ एवं पीठी के साथ खाना चाहिए।
3. विभिन्न प्राणियों (जैसे - भैंसा, बकरा आदि) की चर्बी का सेवन इस ऋतु में करना चाहिए।

शाकाहार

1. इस ऋतु में घी से बनी चीजों का सेवन करना चाहिए।
2. उड़द की दाल से बने लड्डुओं एवं विभिन्न मिष्ठान्नों का सेवन करना चाहिए।
3. दूध से बनी हुई वस्तुऐं (यथा-दही, मलाई, रबड़ी, मावा आदि) का सेवन करना चाहिए।
4. ईख से बने हुए भोजन (यथा-गुड़, राव, चीनी, मिश्री आदि) का सेवन करना चाहिए।
5. तेल व वसा युक्त एवं नये चावलों का भात सेवन करना चाहिए।

हेमन्त ऋतु में पये पदार्थ

1. इस ऋतु में पानी को गरम कर ठण्डा करके पीना चाहिए।
2. विभिन्न प्रकार की मदिरा का मात्रानुसार सेवन करना चाहिए।
3. शहद का सेवन दूध के साथ करना चाहिए।

हेमन्त ऋतु में वस्त्र चयन

1. इस ऋतु में मोटे वस्त्र पहनने चाहिए।
2. वस्त्र ऊनी, सूती या जूट आदि के बने होने चाहिए।
3. चमड़े से बने जूते पहनने चाहिए।
4. चमड़े से बनी जैकेट कोट आदि पहनने चाहिए।

बैद्यनाथ
आँवला
केश
तेल

एक रसायन औषधि "गंधक"

डा० विनय शौनक, आयुर्वेदाचार्य, पी.एच.डी.

अत्यन्त प्राचीन काल से गंधक आयुर्वेद की महौषधि है । प्रायः रसों की कल्पना तो गंधक के बिना की ही नहीं जा सकती । पारद गंधक के सहयोग से कज्जली द्वारा आयुर्वेद की अनेक गर्वकारी. गंध पाषाण, शुक्र, पुच्छ, सुगंधक, शुल्व, रिपु, पामारी और नवीनतक ये गंधक के पर्याय हैं । चूंकि गंधक में गंध है इसीलिए इसे गंधक और गंध पाषाण कहा है । चूँकि शुक्र पुच्छ के समान पीली होने से शुक्र पुच्छ है । ताम्र गंधक के साथ तुत्थ बन जाता है और गंधक के योग से भस्म हो जाता है । अतः यह शुल्व रिपु कहलाता है । पामीर पर्वत पर मिलने से इसका नाम पामारी भी है ।

गंधक, गांधिक, गंध पाषाण सौगंधिक, बलि, बलबस गंधक के संस्कृत नाम हैं । अंग्रेजी में इसे सल्फर (Sulphur) भी कहते हैं । गंधक चार प्रकार का होता है - लाल, पीला, सफेद और काला । सोना बनाने वाले लाल को ; भ्रण, शोधन, रोपण के लिए सफेद को, रसायन के काम में पीला और श्वेत को सोना बनाने तथा अन्य रसायन क्रियाओं के लिए काला उत्तम है, किन्तु यह दुर्लभ है ।

शुद्ध गंधक चर्परा, कड़वा, ऊष्णवीर्य, कसैला, दस्तावर, पित्त कारण, रसायन और खुजली, विसर्प, कृमि, कोढ़ क्षत, प्लीहा, कफ तथा वात को नष्ट करता है । जबकि अशुद्ध गंधक कोढ़, विषम ज्वर, सूजन तथा रक्त विकार उत्पन्न करता है । रूप, बल, ओज को नष्ट करने वाला है । आयुर्वेद की महौषधि कूपीपक्व रसायन भी गंधक के सहयोग के बिना नहीं बन सकते । जब गंधक के परमाणु विखंडित होते हैं तो उनसे जो ताप और रेडियो एक्टिव लहरें पैदा होती हैं उससे जठराग्नि धातु आदि की शुद्धि और पोषण होता है । ये रेडियोएक्टिव लहरें आलोचक, रंजक, साधक, पाचक और भ्रामक पाँच प्रकार के पित्तों को संचलित और पुष्ट करती हैं । गंधक के परमाणु से ही उत्पन्न ताप का कुछ भाग शरीर विद्युत में बदल जाता है जो प्राण शक्ति है । यही मानव की रोग निरोधनी शक्ति का कार्य भी करती है जो तरह-तरह के जीवाणु-कीटाणु और वायरस को शरीर के संपर्क में आते ही नष्ट कर देती है । आजकल केवल आंवलासार गंधक ही प्रायः प्राप्त होती है ।

गंधक शोधन - एक लोहे की कढ़ाई में 20 तोले तेल या घृत खूब गरम करके उसमें 80 तोले गंधक चूर्ण डाल दें । जब वह गल जाये तो एक पात्र में 4 लीटर दूध डालकर उसके मुँह पर स्वच्छ कपड़ा डालकर उस पर पिघली हुई गंधक डाल दें । यह पात्र की तली में बैठ जायेगी जिसे निकालकर गर्म पानी से धो दें अन्यथा उसमें बदबू पैदा हो जायेगी ।

गंधक रसायन होने से "गंधको रसः रसायने वरः" अर्थात् गंधक रसायन केश झड़ना, दृष्टि मंदता को दूर करती है । मेधा और स्मरण शक्ति को बढ़ाने वाली है । पुरुषों में वाजीकरण और स्त्रियों में कांतिवर्धक है । गंधक के परमाणु में सर्वजीवनी तत्व (Vitamins) होते हैं । इसका तेल पामाहर गुप्त रोगों और कुटैवों के कारण पैदा हुए इन्द्रिय शिथिलता में भी श्रेष्ठकारक है ।

सहावरगेट, कासगंज (उ०प्र०)

बैद्यनाथ

सितोपलादि चूर्ण

पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

Study of Effect of Nasya Karma in cases of Depressive Illness

Dr. Rajni Chandre[1] Dr. K.H.H.V.S.S. Narasimha Murthy[2] Prof. R.H. Singh[3]

Abstract :

A clinical study to investigate the effectiveness of Nasya Karma is conducted in patients of depressive illness. Murchita sarshap taila was used for Nasya karma in depressive illness for 21 days and the results were measured by Hamilton Depression Rating Scale, Hamilton Anxiety Rating Scale, Reaction time and patient's self assessment report. Statistically significant results (t=5.46, p<0.001) were observed in HDRS and (t=7.12, p<0.001) in HARS and (t=5.98, p<0.001) in Reaction time. Nasya Karma is showing the best results in cases of mild to moderate depressive illness.

Introduction :

Since antiquity the measures to control the depression are being tried. Descriptions of depression are available from the time of Bhagvata Gita to till date. In recent times different workers are working to invent and adopt the management and procedure to correct and control the depression. Different varieties of herbal and herbominal preparations are being tried for the efficacy in controlling of depression.

According to Ayurveda there are two methods to treat a disease by using palliative procedure/method (Samsamana chikitsa) and by purificatory method (Samsodhana chikitsa). The Samsodhana chikitsa is highly stressed for its curative effect when compared to samsamana chikitsa. Nasya Karma is one of the method of purification used to purify the siras, which is the seat of Manas and also the seat of Jnanendriya.

Nasya Karma is generally the fifth step in the Pradhana karma of Panca Karma therapy. As stated by Susruta, 'Nasya' is a term to be applied generally for medicines or medicated oils administered through the Nasal passage. The nasya karma is considered as the best and the specific procedure for diseases or the head or the siras "*Urdhwa Jatru-Vikaresu Visesaunasyamisyate*" (AH. Su. 21-1). The medicine that is put into nose, moves up through the channels upto the Srungataka (a vital spot at the base of the brain) spreads to the whole of the (interior of) Head, the channels of the Eyes, Ears Throat and their veins and cures the diseases (A.Sang.29/1).

Type of Nasya Karma : It is of three kinds Virecana (Purgative), Brumhana (Strengthening) and Samana (Palliative) mitigating the dosas.

Virecana Nasya : Virecana (Purgation of the head) is indicated in diseases affecting the parts of the body above the shoulders, such as feeling of heaviness, swelling, mild burning sensation, itching, stiffness, obstruction of passages due to exudation, ulcerations, excessive salivation, bad taste in the mouth, loss of appetite, hoarseness of voice, worms, nasal catarrh, epilepsy and other diseases of Kapha origin.

Brumhana Nasya : Brumhana is indicated in diseases such as migraine, hemicrania diseases of the head due to worms, contractions of the eyes, pulsations, blindness, difficulty in opening of lids, loss of voice, obstruction of speech, loss of sleep and such as other diseases of Vata origin. In this the medicament should be of fatty material (oil, ghee etc.) processed with drugs of sweet taste or processed with unctous sap of trees, or the soup of meat of animals of desert like regions or their blood.

Samana nasya is indicated in diseases such as appearances of premature wrinkles, gray hair and baldness, dandruff, haemorrhagic diseases and such other diseases. The recipe should be in the form of oil processed with fresh juice of appropriate drugs, milk or water or Anu taila in case of normalcy of dosas (healthy persons).

Based on the quantity of oil used (to be specified later) the Nasya therapy is of two kinds viz. Marsa and Pratimarsa.

Marsa and pratimarsa both consist of introduction of oils through the nostrils. It is we

---

1. Junior Resident, Department of Kayachikitsa, Faculty of Ayurveda, IMS, BHU, Varanasi.
2. Lecturer, Department of Kayachikitsa, Faculty of Ayurveda, IMS, BHU, Varanasi.
3. Vice-Chancellor, Rajasthan Ayurveda University, Professor & Former Head, Kayachikitsa & Dean, Faculty of Ayurveda, I.M.S., B.H.U.

tolerated and is a very much convenient procedure, doses of pratimarsa nasya is 2 drops morning and evening and in marsa nasya 10 drops for uttuma matra, 8 drops for madhyama matra, 4 drops for heena matra. Pratimarsa nasya is indicated in all age groups and never produces dosas so it is safe for patient.

Material and Methods :

10 cases were recruited for the present study and were selected from the Kayachikitsa OPD and IPD of Sir Sunderlal Hospital, IMS, BHU, Varanasi. Patients were interviewed along with the patient relatives and attendants. Besides questioning, the patients were also observed for their state of mind and mental activity.

The following inclusion and exclusion diagnostic criteria were applied for the selection of cases of depressive illness. The criteria were based on DSM-IV diagnostic criteria.

The Exclusion Criteria :

Patients with following symptoms of having the history of following clinical conditions were excluded :

1. Mood incongruent delusions or hallucinations incoherence or marked loosening of associations.
2. Patients superimposed with schizophrenia, schizophreniform disorders, mania or bipolar disorders as psychotic disorder not otherwise specified.
3. Generally anxiety, obsessive compulsive disorders.
4. Chronic drug abuse, e.g. — barbiturates etc.
5. Toxic causes like alcohol ingestion and withdrawal.
6. Organic diseases like some diseases of gastrointestinal system (irritable bowel syndrome, colitis), Myocardial infarction, CNS diseases (e.g. Alzheimer's disease), Metabolic and endocrine disorders etc.

Inclusion Criteria :

The patients who fulfilled the DSM-IV diagnostic criteria for major and minor depressive disorder were included in this study.

DSM-IV Diagnostic Criteria for Major and Minor Depressive Disorder :

A. At least two (but less than five) of the following symptoms for minor depressive disorder and five (or more) of the following symptoms, for major depressive disorder, have been present during the same 2 week period and represent a change from previous functioning; at least one of the symptom is either (i) Depressed mood or (ii) Loss of interest or pleasure.
Note — Symptoms that are clearly due to a general medical condition, or mood-incongruent delusions or hallucinations are not to be included.

(1) Depressed mood most of the day, nearly every day, as indicated by either subjective report or observation made by others. Note – In children and adolescents can be irritable mood.

(2) Markedly diminished interest or pleasure in all or almost all activities most of the day, nearly every day.

(3) Significant weight loss when not dieting or weight gain (e.g. a change of more than 5% of body weight in a month), or decrease or increase in appetite nearly every day.

(4) Insomnia or hypersomnia nearly every day.

(5) Psychomotor agitation or retardation nearly every day.

(6) Fatigue or loss of energy nearly every day.

(7) Feelings of worthlessness or excessive or inappropriate guilt (which may be delusional) nearly every day (not merely self reproach or guilt about being sick).

(8) Diminished ability to think or concentrate, or indecisiveness, nearly every day.

(9) Recurrent thought of death (not just fear of dying), recurrent suicidal ideation without a specific plan for committing suicide.

B. The symptoms do not meet criteria for a mixed episode.

C. The symptoms cause clinically significant distress or impairment in social, occupational, or other important areas of functioning.

D. The symptoms are not due to the direct physiological effects of a substance (e.g. a drug of abuse, a medication) or a general medical condition (e.g. hypothyroidism).

E. The symptoms are not better accounted for by bereavement, i.e. after the loss of loved one the symptoms persist for longer than 2 months or are characterized by marked functional impairment, morbid preoccupation with worthlessness, suicidal ideation, psychotic symptoms or psychomotor retardation.

F. There has never been a manic episode, a mixed episode, or a hypomanic episode and criteria are not met for cyclothymic disorder.

G. The mood disturbance does not occur exclusively during schizophrenia, schizophreniform disorder, schizoaffective disorder, delusional disorder or psychotic disorder not otherwise specified.

H. For minor depressive disorder, there has never been a major depressive episode.

10 patients were taken up for Murchita Sarshap tail nasya as pratimarsa nasya.

Sarshapa (Brasica compestris, Family – Cruciferiae) : It is having katu, tikta rasa, teekchna snigdha guna, usna virya, madhura vipaka. It has uttejaka property (irritant effect) due to its usna virya, it mitigates vata and kapha. The ta extracted from sarshapa is commonly used fo preparing the food and also external applicatio so the sarshapa taila is selected for trial purpos for its possible anti depressant effect.

Doses and Duration :

2 drops of murchita sarshapa taila in eac nostril were poured after the dipping of a finge into the sarshapa taila (Pratimarsha nasya) afte the procedure of Abhyanga karma, 2 times a da for 3 weeks and 3 follow ups. Patients got irritatio after few minutes of administration of pratimarsha Nasya. But there was no sneezing. Patients were advised to come at 21 days interval for the assessment of therapeutic response and for follo ups.

Observation and Results :

The observations are given in the following table :

Symptoms	Mean ± SD			't' value
	BT	AT	D	
HDRS	13.20 ± 2.44	9.40 ± 3.34	3.80 ± 2.20	t=5.46 p<0.001 HS
HARS	10.1 ± 2.23	7.10 ± 1.52	3 ± 1.33	t=7.12 p<0.001 HS
Reaction	1.35 ± 0.23	1.22 ± 0.25	0.13 ± 0.07	t=5.98 p<0.001 HS

Discussion and Summary & Conclusion :

Among the various psychiatric disorders, depressive illness is an emerging major mental health problem. DSM-IV described mood disorders are into two depressive disorders : (1) Major Depressive Disorder, (2) Bipolar Depressive Disorder. The cases were selected in this study basing on DSM-IV diagnostic criteria for major and minor depressive disorder.

Administration of medicines through th nose is known as Nasya. It is also called Nava and Nasyakarma. Nose is the gateway for the hea The medicine (oil) which was put into nose, mov up through the channels upto Srungataka (a vi spot at the base of the brain), spreads to the wh of the (interior of) head, the channels of the Ey

Ears, Throat and their veins and cures the diseases (A.Sang 29/1).

The murchita sarshap taila is administered to the patients and studied its effect with the help of Hamilton Depression Rating Scale, Hamilton Anxiety Rating Scale and Reaction Time etc.

The effect of trial procedure observed on Hamilton Depression Rating scale was statistically highly significant (t=5.46, p<0.001). The effect of trial procedure was also observed on Hamilton Anxiety Rating Scale and was statistically Highly significant (t=7.12, p<0.001). The effect of trial procedure was also observed on Reaction Time and found statistically highly significant (t=5.98, p<0.001) results. It shows that most of the patients was found to be reduced time of reaction after treatment. It shows that Sarshap Taila Naysa is effective for the treatment of mild to moderate Depressive Illness.

Thus, the present study is a preliminary clinical study and indicates that the Nasya Karma (Murchita Sarshap Taila) has mild to moderate effective are in cases of depressive illness, probably due to its irritant effect and prabhava as described in Ayurveda.

References :

1. Ahuja Niraj (2002) 5th Ed — A short text book of psychiatry.
2. American Psychiatric Association (1987) : Diagnostic and Statistical Manual of Mental disorders. 3rd Ed. Rev. Washington DC.
3. APA Symposium Proceeding (1986) : Beyond Depression; New uses of antidepressants. Psychosomatics : 27 (II).
4. Astanga Hrdaya Volume I and Volume II (1991) : Eng. translation and notes by K.R. Srinkanta Murti Krishnadas Academy, Varanasi.
5. Ayurvediya Manas Vijnana (1986) : Prof. R.H. Singh, Chaukhamba Amarabharti Prakashan.
6. Baranawal Shekher, Singh R.H. (2000) : A clinical study on the Ayurvedic Management of Depressive illness.
7. Bhatia, M.S. (2002) 4th Ed. — A short text book of Psychiatry.
8. Bhavaprakash of Bhavamisra (2000) — Madhyakhand : English translation of Prof. K.R. Srikantha Murthy.
9. Caraka Samhita Vol. I (1976) : Eng. Translation of R.K. Sharma and V. Bhagawan Dash — Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
10. Caraka Samhita Volume II (1977) : Eng. Translation by R.K. Sharma and V. Bhagawan Dash – Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
11. Caraka Samhita Volume III (1988): Eng. Translation by R.K. Sharma and V. Bhagawan Dash – Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.
12. Chandre Rajni, Singh R.H. and K.H.H.V.S.S. Narasimba Murthy, (2004) :Therapeutic evaluation of Nasya Karma and Ayuvedic Drugs/Medicated Ghrta in Cases of Depressive Illness.
13. Cunekar, K.P. and Pande, G.S. Bhavaprakash Nighantu, pp. 357-393.
14. Dwarkanath (1953, Vol. I, 1953 Vol. II and 1954 Vol. III) the fundamental principal of Ayurveda Hindustan Press, Mysore.
15. Golwalla (2000) – Medicine for students, 19th Ed.
16. Gupta Sheelendra, Singh R.H., (2001) : A clinical study of depressive illness and its Ayurvedic Management.
17. Pandey Gajendra – Dravya Guna Vijnanam, Vol. I.
18. Satyavati G, Gupta A, and Tondon No. (1987) (Ed.) : Medicinal Plants of India : Vol. 2 Indian Council of Medical Research, New Delhi (India).
19. The Holistic principle of Ayurveda Medicine – Prof. R.H. Singh

BRAIN WITH THE HOLISTIC CONCEPT OF MIND

* Dr. Shivani Padha

** Dr. J.S. Tripathi

Ayurvedic texts have always considered mind as a extremely important component in the formation of a human being. The presence of mind as an organ can't be confirmed by any clinical test or screening. But a detailed study of brain (the organ supposed to provide home to the mind) with keeping a sharp eye on the mind may reveal some facts which throw light on the confirmation of mind.

Brain has been changing all the time. Therein lies a mystery as brain cells are not constant. We are born with about half the complement of neurons found in an adult brain; the rest develop between six months and two years of age. Each neuron is connected to every other through billions of threads that branch out into thousands of tendrils per cell, forming a vast network. These tendrils, known as dendrites, sprout at the end of the cell like a tree trunk sprouting branches. Although it sounds fixed and stable, this network is constantly shifting. And even if a neuron could remain the same from moment to moment, electrical impulses surge everywhere, shifting as we think new thoughts; our brains are like a telephone system with a thousand calls taking place every second. The main difference is that the cable lines of our nervous system are unstable, constantly changing their molecules with every moment of experience – both inner and outer. The wires are notoriously non-stationary since they are made not of copper but of fluid fats, water, electrolytes and the electrical charges running through them. Having a single thought is more complex than sorting out one message from all the telephone calls in the world. While we are managing this whole process electrically, the brain also surges with chemical message. One dendrite isn't strung into another, there is always a tiny gap between them. Across this gap known as a synapse, each message must find a way to cro otherwise the neurons would be isolated and una to communicate. Electricity doesn't jump acro the gap. Certain chemicals are emitted on one s of the synapse and received on the other, The chemicals called neurotransmitters, inclu dopamine & serotonin.

Amid this chaotic swirls of chemicals a electrons, no one has ever found a memo Memories are fixed, where they are stored is s a question of debatable issue ? May be in mi The advent of C.T. Scans and MRI (Magne Resource Imaging) has offered us a glimpse in the brain as a place where energy is constan being generated. But the brain and the mind a different.

Nearly about four decades ago, scientis and experts declared that since the mind, by every nature, cannot have a position in space, the is only one phenomenon, to be considered, name the brain. But according to the various studies concluded that the mind must have its own ene source. Somehow it also gets energy from the bra When the brain loses its function as in stroke, cer or all mental operations are cut off. But energy insi the brain is not enough to explain how the mi survives traumas. The fact that the mind can sur brain trauma and functions under anesthesia po very strongly to the separate existence of the mi It is the mind which experiences and it is the b which records the experience and it must be a of invisible energy field that includes the b perhaps even controls it.

The brain is a thing with material struct like a cortex and limbic system. But a field is a thing for example the magnetic field of the ea exerts a pull over every iron particle, causing move this way or that yet nothing visible is do

---

* **Medical Officer, Jammu Institute of Ayurvedic & Research, J&K**

** **Reader & Head, Deptt. of Kayachikitsa, Desh Bhagat Ayurvedic College and Hospital, Mandi Gobindgarh (Punja**

me moving. Same is the case with a human mind s it causes the brain to move this way or that. Let t be illustrated in the form of an example. At first ink of the word – let it be Parkash. Then think of the word Ayurved. The first word contains its own sound and meaning, paralleled in the brain by specific pattern of waves. The second word is also defined by its unique patterns. If we want to go from one word to the other, it requires a radical shift involving millions of neurons. To shift from one pattern to another, a gap is to be filled which is like the between two images in a movie. Yet somehow this gap, which has no brain activity at ll, manages to organize millions of neurons. May be a higher kind of energy exists in this empty gap. It means that the tiny synapses between two nerve endings, must be the home of higher mind because it could not be found in the material stuff of the brain.

Our minds are a vital tool in the search for truth and ultimately God. We trust the mind, listen to it, follow its impulsed and even rely on its accuracy. Far more than this, the mind interprets the world for us, gives it a new meaning. The brain may help in recording the sunset but only the mind can experience it. As we search for God truth, we want out interpretations to rise even higher than our minds can take us, so that we might understand birth and death, good and evil, heaven and hell. When this understanding extends to spirit, two invisible fields, mind and soul, need to be connected.

वैद्यनाथ

जन्मघूँटी

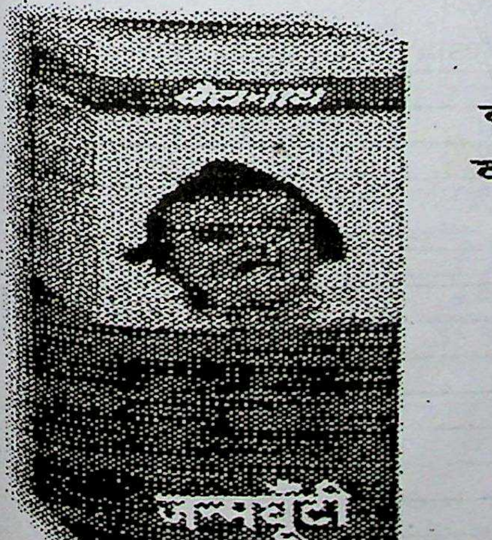

जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती । इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं ।

PHARMACEUTICAL STUDY OF ASOKARISTA WITH REFERENCE TO DIFFERENT CONTAINERS AND FILTRATION TECHNIQUE

Aarathi T.S.*, Vivek Bajaj, Dr. D. Joshi, Dr. A.K. Choudhary**

KEY WORDS :- Asava — Arista, Fermentation, Filtration, uterine tonic

ABSTRATC :- Asokarishta – one of the powerful uterine tonic was prepared in different containers/vats to validate the probable time of fermentation by yeast granules instead of Dhataki puspa. Different types of filtration technique like cloth, cold centrifuge, filter press are adopted in order to prevent the refermentation process that may happen in a fermented preparation resulting in the bursting of packed bottles. Comparative results are analysed by routine analytic parameters such as organoleptic characters, PH, specific gravity, total solid content, Alcohol content, reducing sugar, non reducing sugar content. Asokarista filtered by cold centrifugation technique showed absence of yeast cells and the arista prepared in steel vessel took minimum time in completion of fermentation.

INTRODUCTION :- Asavas and aristas are the fermented preparation of Ayurvedic system of medicine containing medicinal substances liquids (swarasa, kwath etc) of drugs, sugar or Jaggery along with Dhataki puspa as the fermentation initiators. The time required for this preparations may very from 1–6 weeks depending upon the formulations and containers used. Sieve size of cloth and method of filtration are important to avoid the refermentation. Yeast is commonly known for its property of changing sugars into alcohol a carbondioxide. Dhataki puspa are also reported have sacchromyces strain[1].

Different types of containers such as wo (sagoan wood), porcelin, steel, plastic etc. a employed for the fermented preparation.

MATERIAL AND METHODS :- Asoka ba (Saraca indica) which is proved to be uterine to and contains powerful oxy toxic principle phenolic glycoside P_2 was authenticat pharmacognostically and ashokarista was prepar as per the reference [3&4] as shown in Table 1.

Decoction of asoka was prepared reducing it to ¼th Guda was added to the filtera Vessel was closely tightened and to be hermetica sealed by mud on the 6th day, fermentation started which was indicated by bubble formatio simultaneously prakshepa dravyas are added. He instead of Dhataki puspa, yeast granules whic contains sacchromyces cervices are adde Likewise 4 samples are prepared in steel, plas glass and porcelin Jar in 2 batches to check differences in onset of fermentation and in phys chemical parameters. Filtration of aristas are do both by sieve cloth and centrifuge and compar in agar culture medium.

Observation:-Observations of differe stages of preparation are as followed in Table 2 & 4.

TABLE - I 'ASOKARISTA'

No.	Drug Name	Part Used	Quantity Used
1.	Asoka (saraca indica)	Steam bark	1600 gms
2.	Water taken for decoction Reduced to (vol of water)		16 lit & 4 lit
3.	Guda (saccharin officinarum) PRAKESEPA DRAVYAS		3,400 kg
4.	Ajali	Fruit	20 gms
5.	Mustaka (cypruss rotandus)	Rhizome	20 gms
6.	Darvi (Berberis aristata)	Stem	20 gms
7.	Utpala (water lily)	Flowers	20 gms
8.	Triphala	Fruits	60 gms
9.	Amristhi (mangifera indica)	Seed kernel	20 gms
10.	Tiraka (Nigella sativa)	Seeds	20 gms
11.	Vasa (Adathoda vasica)	Leaves	20 gms
12.	Chandan (santalum album)	Heart wood	20 gms
13.	Yeast granules		200 gms/lit

* M. pharm Ayurved scholar ** Lecturer
Department of Rasashastra and Bhaishajya Kalpana, I.P.G.T. & R.A., Gujarat Ayurved University, Jamnag

TABLE - 2 STUDY OF FERMENTATION IN DIFFERENT VESSELS

No.	VESSELS	PORCELAIN	GLASS	STEEL	PLASTIC
1.	Start of fermentation	8th day	6th day	4th day	6th day
2.	Completion of fermentation	32 days	28 days	22 days	28 days
3.	No of sample successful	Fail	Pass	Pass	Pass
4.	Organoleptic characters	Acid/sweet Reddish brown Alcoholic smell	Sweet taste Dull brown colour alcoholic smell	Sweet taste Brown colour Alcoholic smell	Sweet taste Brown colour Alcoholic smell
5.	Specific gravity (25⁰C)	1.067	1.082	1.087	1.0595
6.	P^H (by P^H paper)	4.5	4.0	4.5	4.0
7.	Solid content	23% w/v	28.8% w/v	26% w/v	26% w/v
8.	Alcohol content	5.30% w/v	5.28% w/v	5.0% w/v	4.92% w/v
9.	Reducing sugar	15.32% w/v	16.30 w/v	15.28% w/v	15.92% w/v
10.	Non reducing sugar	0.61% w/v	0.80% w/v	0.44% w/v	0.91% w/v

TABLE - 3 BATCH - 2 (In the month of Nov.)

No.	VESSELS	PORCELAIN	GLASS	STEEL	PLASTIC
1.	Start of fermentation	6th day	6th day	4th day	6th day
2.	Completion of fermentation	32 day	29 day	25 day	30 day
3.	No of sample successful	Pass	Pass	Pass	Pass
4.	Organoleptic characters	Sweet taste Reddish colour Alcoholic smell	Sweet taste Dull brown colour alcoholic smell	Sweet taste Brown colour Alcoholic smell	Sweet taste Brown colour Alcoholic smell
5.	Specific gravity (25⁰C)	1.058	1.068	1.072	1.064
6.	P^H (by P^H paper)	4.5	4.5	4.5	4.0
7.	Solid content	24% w/v	25.3% w/v	25.8% w/v	25.6% w/v
8.	Alcohol content	4.8% w/v	4.9% w/v	5.2% w/v	5.9% w/v
9.	Reducing sugar	15.82% w/v	15.90% w/v	16.10% w/v	15.96% w/v
10.	Non reducing sugar	0.81% w/v	1.20% w/v	0.92% w/v	0.50% w/v

CHROMATOGRAPHIC STUDIES

Methanolic extract of arista sample which are prepared from different containers such as porcelein glass, steel and plastic all spotted on the TLC plate and chromatogram was developed with $CHCl_3$:CH_3OH (1:1) and sprayed with 5% $fecl_3$. The Rf of the spot of all the samples were similar.

AGAR CULTURE METHOD

Blood agar culture media was prepared and inoculated with filtrate final sample for detecting the presence of yeast spore in final product. This plastic was kept in oven for 52 hours for incubation

– (TABLE – 4).

TABLE No. IV – FILTRATION

BEFORE FILTRATION	FILTRATION BY CLOTH	FILTRATION BY COLD CENTRIFUGE
Many yeast cells were seen	Small amount of yeast cells seen	No yeast cells were seen.

RESULTS AND DISCUSSION

- Modern concept of fermentation is correlated with ayurvedic concept of kinva, which can be used for fermentation and can be compared to yeast granules which is a Saccehromyces species Dhataki which is used as fermentation initiators also contains strains of saccahromyces. So it is justifiable to use yeast cells.
- Yeast cells were seen in sample which is filtered by cloth which is compared to yeast life cycle. All yeast cells were not separated by simple filtration. So cold centrifuge method must be used which will separate yeast cells at 1800 rpm at 4°C.
- Fermentation in steel vessel started earlier as compared to vessel which can be correlated that steel is good conductor of heat and warmth conditions help to initiate refermentation reaction.
- Completion of fermentation varied in different containers. Minimum time to complete reaction is possible only in steel vessel (22 days).
- In Batch 1 one sample becomes sour, and also fungal growth was seen in porcelein vessel inspite of sterilization with gugglu smoke. Procelein vessel is difficult to handle and seal.
- In batch 2 no sample becomes sour and also no fungal growth was seen in any vessel.
- PH of all sample are in normal range (4.4,5).
- Alcohol content of all sample except porcelain is in range of 4.5-5.5 v/v. This range (4-4.5) This range can be taken as standard.
- Non reducing sugar in all cases is around 1% so no refermentation problems will occur, as non-reducing sugar will not get converted to reducing sugar.
- Prominent spots of same at Rf are identified in all the 4 samples, which indicated that the extraction of major component in all are almost same.

Conclusion :

Filteration and sterilization of containers are important aspects in the fermented preparations. Yeast cells can be used in place of Dhataki puspa as both over having saccharomyces strains. Alcohol content in all the batches are not more than 5.5 % v/v which can be taken as standard Alcohol content in normal condition. Steel vessel is considered best among others as it took minimum time in completion of fermentation. Extraction is almost same in all vessel.

REFERENCE :

1. Role fo woodfordia fruticosa kurz (Dhataki) in the preparation of asava and arista. C.K. Atal — Jour Res. Ayu. Std. Vol. III No. 3&4.
2. Bhavaprakasha of Sri Bhavamisra commentary by Brahma. S. Misra. Chaukhmbha publication 5th edition, Varanasi.
3. Bhaishajya Ratnavali Sthriroga adikar 114-116.
4. Ayurvedic formulary of India (AFI), part–1 [page No. 5]
5. Observation on the role of Dhataki flowers in the fermentation of Asava and aristas - muzaffer alam, KK.Dasan, KK Sathiavasan, S. Usman Ali — Jour Res, Ay std Vol IV No-4 page 63-66.

बैद्यनाथ पंचसकार चूर्ण
पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

CONTRIBUTION OF ACHARYA SHARANGADHARA IN SANDHANA KALPANA

* Dr. Upendra U. Zala ** Dr. A.K. Choudhary *** Dr. P.K. Prajapati

INTRODUCTION

The practice of traditional system of medicine is globalized now a days Ayurveda is getting much more momentum in its acceptability in priniciples. But unfortunately most undesired obstacle in this regard is lack of pharmaceutical standard in context of present knowledge of science.

However it does not mean that the scholar of Ayurveda did not give emphasis on this important topic but standards laid down by them are not found sufficient in this commercialized era.

In 13th century Acharya Sharangadhara, covered pharmaceuticals details of various Ayurvedic dosage forms in his treatise Sharangadhara Samhita. Indeed his contribution is great in this field. One researcher can do a lot in this field of pharmaceutics by considering principles of Pharmaceutics framed by Acharya Sharangadhara.

SIGNIFICANCE OF SHARANGADHARA SAMHITA

Sharangadhara samhita is yoga Pradhana and is considered amongst Laghutrai. It also includes sharira, roga ganana etc. subjects.

It consists of 32 chapter and 2600 shlokas which are, divided in three parts.

A) Purva Khanda
B) Madhyama Khanda
C) Uttara Khanda

In Purvakhanda.

Ch. No.	Name
1.	Paribhasa
2.	Bhaishajya khanak
3.	Nadi pari kshadi – vidhi
4.	Deepan – pachan
5.	Kaladikakhayan.
6.	Aharadigati
7.	Roga Ganana.

In Madhyamakhand.

Ch. No.	Name
1.	Swarasa
2.	Kwatha
3.	Fanta
4.	Hima
5.	Kalka
6.	Churna
7.	Gutika
8.	Leha
9.	Sneha
10.	Sandhana
11.	Dhatu Sodhana
12.	Rasa

In Uttara Khanda

Ch. No.	Name
1.	Snehapana
2.	Sweda Vidhi
3.	Vamana
4.	Virechana
5.	Sneha basti
6.	Uttar basti
7.	Masya Vidhi
8.	Dhuma Pan
9.	Gandushadividhi.

There are so many commentaries found today on Sharangadhara Samhita which show their its importance and popularity.

1) Sharangadhar Sharirtika
2) Deepika – Adhamalla Kruta
3) Gudharthdeepika – Kashiram
4) Ayurved Deepika – Rudra Bhattkrita
5) Bopadeva Krita.

MATERIAL & METHODS

SANDHAN KALPANA (Fermentation)

The origin of Asava-arista kalpana can be traced from the pre historic period. Since the period of Charak Samhita the science and arts of Sandhana was properly defined and fairly developed. Acharaya Sharangadhara added new features too which was collected from other sources and contemporary literature. He gave a

---

*M.D. (Ayu.) III year Scholar ** Lecturer, *** Reader
H.O.D. of Rasa Shastra & Bhaishajya Kalpana including Drug research, I.P.G.T. & R.A., Gujarat
Ayurved University, Jamnagar.

very good interpretations of sandhana process.

Acharya Sarangadhar had described **Sandhan Kalpana** into major category on the basis of utility

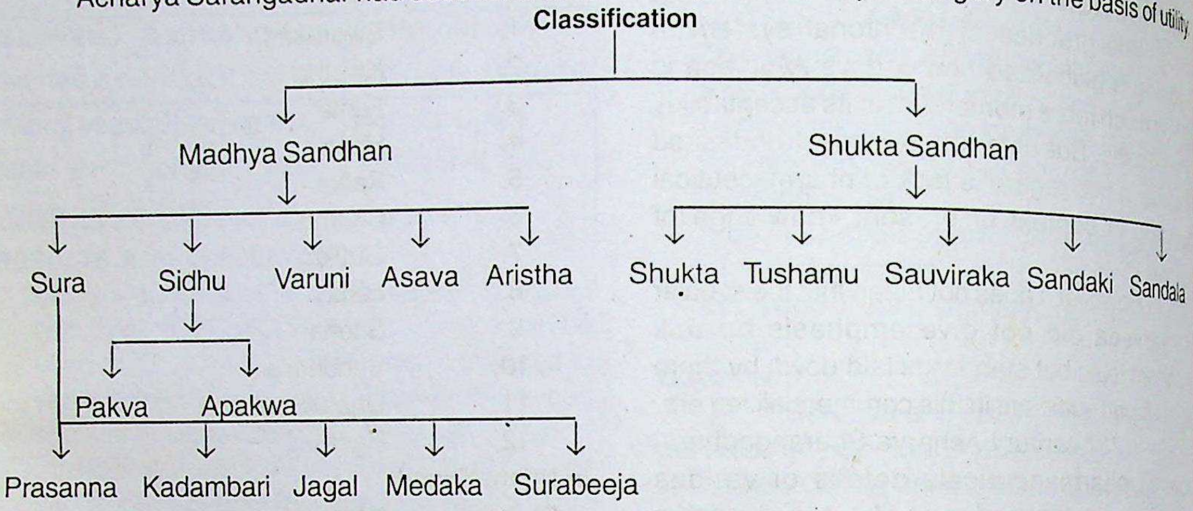

Madhya Sandhan :

Sura : The fermented liquor prepared by boiled rice is known as Sura.

1. Prasanna — The clear supernatant fluid of sura.
2. Kadambari — Slightly thicker than Prasanna.
3. Jagala — It lies in the lower part of Kadambari and is thicker than Kadambari.
4. Medaka — It is thicker to Jagala.
5. Surabeeja — The residue in the bottom is called surabeeja / Kinva, it can be used as fermentation initiator.

Sidhu :

(a) Apakwa (Shita) Rasa Sidhu — Juice of sweet substance fermented without boiling, is known as ApakwaRasa sidha.

(b) Pakwa Rasa Sidhu — Juice of any drugs prepared by boiling and fermented is known as pakwarasa.

Varuni : The fermented liqour is prepared with juice of Tala ad Khajura.

Chukra : The fermented product which gets spoiled and loses its sweetness and becomes sour is known as chukra.

Shukta : fermented liquor is prepared.

1) Guda Shukta – Jaggery solution mixed with oil., bits of tubers, roots and fruits and fermented to aquire sour test is called gudasukta.

2) Ikshu Shukta – Here Jugar cane juice is used.

3) Mridwika Shukta – Here grape juice is used instead of jaggery solution.

Sandaki : Liquor prepared with Mulaka, Sarsapa etc. being added to it become sandaki.

ASAVA AMD ARISHTA KALAPNA

Asava and Arishata are popularly used in Ayurvedic practice. These preparations occupy prime position in Indian pharmacopoeia on account of their superiority to the other preparation. They can be stored for long time without losing their potency. It is rightly told by Sharangradhara.

पुराणाः स्पुः गुणैर्युक्ता आसवो धातवो रसाः ।

(Sha. Pu. Kh. 1/53)

Some opines that there is increase in the potency as it becomes old.

Adhamalla states that

आसवदिया विशिष्ट गुणान्विताभवन्ति इति अध्याहार्यम् ।

(Sha. Pu. Kh. 1/53)

But according to Acharya Sharangrdhara Asava and Rasa preparations preserve their qualities even if they become old. This clearly indicates their long shelf life.

Asava and arishta have quick absorbable in nature and high therapeutic efficacy. The self generated Alcohol plays an important role in making these preparations more superior from pharmaceutical as well as therapeutic point of view.

आसव

आङ्ग + पुग्व + अप + आसवः + मध-

विशष: पुञ अभिषवे आसूयते
आसूयते सन्धयते य स आसव: ।

The root word आसव means आसूयनिष्पाधते. This clearly indicates the fermentation process which occurs in आसव. Acharya **Charaka** defines.

एषमासवानामासुतत्वासव संज्ञा ।

The quotation once again supports the meaning आसव of as fermentation process.

अरिष्ट -

- रिष हिंसाया कर्तरिक्त प्रत्यये नम् समासे - अरिष्ट

Acharya Yadavaji in his dravyaguna-vijnanam regarding Arista mentioned, like this.

- न रिष्यते इति अरिष्ट: ।

(Yadavaji, D.G.)

One which does not get spoiled easily is known as arishta. Hence these two terms denote different aspects of some preparation.

Sharangadhara gives clear difference between Asava and Arishta as.

यद पक्वौषद्याम्बुभ्यां सिद्धे मद्यं आसव: ।
अरिष्ट क्वाथ सिद्ध: स्यात् ॥

(Sha. Ma. Kh-10/2)

i.e. Asava is prepared without boiling the water. It may be prepared by hima kalpana or Swarasa kalpana whereas,

Arishta is prepared by making use of decoction but before the period of Sharangadhara our ancient Acharyas did not follow this rule eg. Although being Asava in Vasa Kasava, Mandhu kasava etc. decoction is used instead of swarasa. It seems that Sharangadharacharya has standardized this preparation and classified the formulations accordingly.

द्रव्य प्रधानमरिष्टं, द्रव प्रधानमासव: ।

(Su.Su 45/197) Dalhana commentary)

Similarly Bhavaprakasha quotes.

पक्वौषधाम्बु सिद्धं यन्मद्यं तत्स्यादरिष्टकम् । -(भा.प्र.)

Chakrapani while commenting on cha. Su. 27/1865 quotes that,

औषध क्वाथ सिद्ध मध्वादि सम्यादितो अरिष्ट: स एव क्वाथतोषध - अरिष्ट: ।

(हेमाद्रि)

All the above definitions clearly states that Arishtas are fermented formulations which are prepared using decoction.

Importance of Arishta :

Swardsadi five basic kalpanas have shelf life of one day only i.e. to give drug in these forms physician has to use always fresh drugs. But the drawback is that all the drugs are not available at all places so it is not possible to give any drug in these forms. But in Asava & Arishta kalpana Sharangadhara states that

पुराणा: स्युगुणै युँक्ता आसवो धातवो रसा: ।

(Sha. Pu. Kh. 1/53)

It means that it has long shelf life and in this kalpana it has good taste also which renders the drug to be easily palatable for patients and having long shelf it refrains its therapeutic efficaly even after long duration as compared to other kalpanas.

PHARMACEUTICAL PROCEDURES :

1) Purva Karma
2) Pradhana Karma
3) Pashchata Karma

1) Purva Karma :

- a) Selection of sandhan patra.
- b) Dhoopan of patra.
- c) Lepan of patra.
- d) Collection of drugs.

2) Pradhan Karma

- a) Kwath Nirmana
- b) Mixing of the madhur dravya.
- c) Mixing of the sandhan prerak dravya.
- d) Mixing of the prakshepa dravya.
- e) Filling and sealing of patra.
- f) Sthanvimarsha (Placing of sandhan patra.
- g) Duration

3) Paschata Karma

- a) Observations (Sandhan Pariksha)
- b) Filtering.
- c) Packing.

Sandhan Patra : Acharya Sha. mentioned Mrudadhand & Ghrita lipta bhand.

Dhoopan (Fumingation):

After selection of patra dhopan should be done to prevent contamination for fumigation different drugs such as Guggulu, Jatamansi, Vacha, Aguru, Chandan, Maricha etc., are used.

मासी मरिच धूपिते Ushirasav (Sha. Ma. Kh. 10/97)

चन्दनागर धूपिते Mudvikarisha - (Sha. Ma. Kh. 10/42)

Lepan :

As lepan prevents the entry of oxygen in patra it is also preventing contamination and stabilizing the temp.

Regarding lepan most of the examples are found of Ghrita lepan while lepan with Lodhra, Pippali, Honey etc., are also mentioned collection of drug.

For preparation of asava arishta drug should be genuine and fresh, because if it has any contamination there is chance of fungal growth.

Madhura dravya :

Alcohol is generated from the sweet substance. Sweet substance may be Guda, Madhu, Sita or drug it self. Guda should be added for appropriate fermentation.

अनुक्तमानारिष्टेषु द्रव द्रोणे तुलांगुडम् ।
क्षौद्र क्षिपेय गुडा दर्ध प्रक्षेपं दशमांशिकम् ॥

(Sha. Ma. Kh. 10/3)

Sandhan Prerak dravya :

In the formulations of Asava and Arishta there are a variety of ingredients which serve as natural carrier of the fermenting organism that brings about ethanolic fermentation. Dhataki pushpa, Madhuk puspa, Surabeeja / Kinva babbu / Twal are such drugs from them.

पक्कौ सौहत्सारः स्यात्सुराबीजं च किण्वकम् ।

(Sha. Ma. Kh. 10/6)

After the filtration of prepared arishta the sendimented products are dried and known as kinva.

Table showing Asava-Arishta mentioned in Sharangadhara Samhita and their Adhikaraa.

Sr. No.	Asava	Adhikara	Ref.
1.	Ushirasava	Rakta pitta, pandu, kustha, prameha, Arsha, Krimi, Shotha.	Sha. Ma.Kh. 10/13-17
2.	Kumaryasava	prameha, udarroga, parinamshula, rajyakshama, udavart. usmriti, dysuria, upasmar, sukradosha, ashmari, krimi, raktapitta,	Sha. Ma.Kh. 10/18-27
3.	Pipalyadhyasava	rajyakshma gulma, udarroga, grahani, pandu, arsha.	Sha. Ma.Kh. 10/28-33
4.	Loha Sava	Pandu, shota, phliharoga, kandu, kasa, swasha, bhrgandar, aruchi, grahani, hrdaya roga.	Sha. Ma.Kh. 10/34-38
	Arishta		
1.	Madvikarishta	Arsha, Udaruart, gulma, Udarroga, krimi, kustha, vrana.	Sha. Ma.Kh. 10/39-43
2.	Kutajarishta	Jwara, Increases digestive capacity.	Sha. Ma.Kh. 10/44-46
3.	Vidamgarosjta	Vidhradhi, Urusthabha, Ashamari, Prameha, Prathyathila, Bhagandar, Gandamala, Hanusthambh.	Sha. Ma.Kh. 10/47-52
4.	Devdarvyadyaristha	Prameha, Vata roga, grahani, kandu, arsha, kustha mutrakritch.	Sha. Ma.Kh. 10/53-59
5.	Khadiraristha	Maha kustha, Hrdaroga, granthi, krimi, kasa, swasa, Phlihodar.	Sha. Ma.Kh. 10/60-65
6.	Babularistha	Kchaya, Kasa, Atisar	Sha. Ma.Kh. 10/66-68
7.	Draksharistha	Urahkchrta, Kchaya, Kasa, Gala roga, Mala shodhan	Sha. Ma.Kh. 10/69-72
8.	Rohitkaristha	Arsha, grahani, pandu, hrdaroga, phliha, gulma, Udar roga, kustha, shotha, aruchi.	Sha. Ma.Kh. 10/73-76
9.	Dash mularishta	Grahani, aruchi, swasa, kasa, gulma, bhagandar, kchaya, khardi, pandu, kamla.	Sha.Ma.Kh. 10/77-92

Table showing details of Asava-Arishta Madhura, Sandhana, Dhoopan dravya along with their dose and duration of preparation mentioned in Sharangadhara Samhita.

Sr. No.	Asava	Madhurdravya	Sandhankarak Drayva	Dhoopan	Khanji	Duration	Dose
1.	Ushirasava	Chini-1 tula, Shahad-1 tula, Munakka-20pala	Dhrtaki pushpa 16 pala	Jatamansi kali – marich	-	1 month	-
2.	Kumaryasava	Guda-1 tula Shahad 2/12 tula	Dhataki pushpa 8 pala	-	Lohabhasma 2/12 sher, Makshika- ½ pala	-	1-2pala 1 pala,
3.	Pipalyadhyasava	Guda-3 tula, Munakka-60pala	Dhataki pushpa 10 pala	-	-	-	Agni Bala
4.	Loha Sava	Shahad-64pala Guda - 1 tula	Dhataki pushpa 20 pala	-	Loha Churna	-	1 pala
	Arishta						
1.	Madvikarishta	Munakka-100 Pala,Shahad-1 tula, Khand - 1 tula	Dhataki pushpa 1 prastha	Chandan Agaru	-	-	-
2.	Kutajarishta	Munakka - ½ tula Guda-1tula	Dhataki pushpa 20 pala	-	-	1 month	-
3.	Vidamgarisjta	Shahad-300 pala	Dhataki pushpa 20 Pala	-	-	1 month	Yogya
4.	Devdarvyadya Aristha	Shahad-3 tula	Dhataki pushpa 20 pala	-	-	-	-
5.	Khadiraristha	Shahad-2 tula, Shakkar-1tula	Dhataki pushpa 20 pala	-	-	-	-
6.	Babularistha	Guda-1 tula	Dhataki pushpa 16 pala	-	-	1 month	-
7.	Draksharistha	Guda-1 tula	-	-	-	-	-
8.	Rohitkaristha	Guda 200 pala	Dhataki pushpa 16 pala	-	-	-	-
9.	Dash mularishta	Munakka-64 pala, Shahad-23 pala, Guda400 pala	Dhataki pushpa 16 pala, D.P. 30 30 pala	-	Kasturi	-	-

Conclusion :

- Sharangadhara has contributed new, interpretations from other sources too.
- A clear cut definitions of Pharmaceutical terms e.g. Asava, Arista, Sura, Prasanna etc. along with method of preparation of all types of recipes.
- Critical observation of Sharngdhar Samhita reveals that Madhyam Khanda, totally deals with the Pharmaceutical details of serveral dosage forms of Ayurvedic formulations.
- Asava & Arista kalpanas are discussed in detail regarding their contents, method of preparation, duration of sandhan and chief desired characteristics alongwith their therapeutic uses.
- Asava & Arishta have long shelf life due to presence of self generated alcohol and have better therapeutic action because these are directly absorbed from the stomach along with alcohol.
- To check the infestation of bacterial and fungus he advocated, pot should be Dhoopita by Guggulu, Chandana, Agaru and Maricha and it should be coated with Ghrit.

Reference & bibliography :

1. Sha. Pu. Kh. 1/53.
2. Sha. Ma. Kh. 10/3.
3. Sha. Ma. Kh. 10/2.
4. Su. Su. 45/197 Dalhana commentary.
5. Bhavaprakash.
6. Sha. Ma.Kh. 10/42.
7. Sha. Ma. Kh. 10/97,
8. Yadavaji Dravayaguna vigninam.

Sharangadhara Samhita written by Acharya Sharangadhara edited by Pandit Parsuram Shastry vidya sagar, edition 4th published by Chaukhamaba Oriental, Varanasi 2000.

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध ।

संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है। इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है । प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं ।

अपना शब्द ज्ञान परखिये !

*डा० गोपेश कुमार न.शर्मा
**डा० दिनेश कुमार शर्मा

(जनवरी माह का शेषांश)

पंचतत्त्वम्	- 1) आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी । 2) तंत्र शास्त्र में - मद्य, मांस, मीन (मछली), मुद्रा तथा मैथुन इसे पंच मकार भी कहते हैं ।
पंचनद	- (पंजाब = पंच+आब-दरिया) - सतलुज, रावी, व्यास, झेलम तथा चेनाव ।
पंचप्राण	- प्राण, उदान, व्यान, समान तथा अपान ।
पंचरत्न	- 1) नीलक (नीलम) पद्मराग (पुखराज), वज्रक (हीरा), मौक्तिक (मोती) तथा प्रवाल (मूंगा) । 2) सुवर्ण, वज्र, नील, पद्मराग तथा मौक्तिक ।
पंचलवण	- सैंधव, सुवर्चल, विड, सामुद्र तथा सांभर ।
पंचवल्कल	- वट, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, पारसपीपल ।
पंचक्षीरी	-
पंचकषाय	-
पंचगंग	- गंगा, यमुना, सरस्वती, किरणा, धूतपापा ।
पंचगुण व पंच तंमात्र	- रूप, रस, गंध, स्पर्श व शब्द ।
पंचजीव	- देव, मनुष्य, गंधर्व, नाग तथा किन्नर ।
पंचतीर्थ	- नैमिषारण्य, प्रयाग, पुष्कर, विश्रान्ती तथा शुकर ।
पंचतृण	- ईक्षु, कुश, कास, शर तथा दर्भ ।
पंचगौड	- 5 प्रकार के ब्राह्मण - सारस्वत, मैथिल, गौड़, कान्यकुब्ज तथा उत्कल ।
पंचतिक्त	- 1) गुडूची, निम्ब, कंटकारी, वासा तथा पटोलपत्र । 2) गुडूची, कंटकारी, शुण्ठी, कुष्ठ तथा चिरायता । 3) पटोल, निम्ब, भूनिम्ब, रास्ना तथा सप्तपर्णी ।
पंचदेवता	- सूर्य, गणेश, दुर्गा, शिव तथा विष्णु ।
पंचपर्व	- चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी तथा रवि संक्रान्ति ।
पंचमहाव्याधि	- राजयक्ष्मा, अर्शरोग, कुष्ठ, प्रमेह तथा उन्माद ।
पंचद्राविड़	- 5 प्रकार के दक्षिण भारतीय ब्राह्मण - द्राविड़, गुर्जर, कर्नाटक, तेलंगना तथा महाराष्ट्र ।
पित्तपंचक	- 1) शुकर, अजा, माहिष्, मत्स्य तथा मयूर । 2) हाथी, घोड़ा, मत्स्य, मयूर तथा गौ ।
पंचपल्लव	- 1) वैदिककर्म में - पीपल, उदुम्बर, आम्र, वट तथा प्लक्ष । 2) गंधकर्म हेतु - आम्र, जम्बू, कैंथ, बिल्व तथा बीजपूर । 3) तंत्रशास्त्र में - आम, कटहल, पीपल, वट तथा बकुल ।
पंचमहाभूत	स्वाध्याय, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, भूतयज्ञ तथा नृयज्ञ (अतिथि सेवा) ।
पंचमहापातक	- (मनु के अनुसार) - मद्यपान, चोरी, गुरुस्त्रीगमन, ब्रह्महत्या तथा इन कर्मों को करने वाले के साथ रहना ।
पंचमहाव्रत	- अहिंसा, अस्तेय, सुनुता, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ।
पंचबला	- बला, अतिबला, राजबला, महाबला तथा नागबला ।
पंचसुगंधिक	- कर्पूर, लवंग, कंकोल, सुपारी तथा जातीफल ।
पंचमुद्रा	- (तंत्र में) - आवाहनी, स्थापनी, सन्निधापनी, संबोधनी तथा सम्मुखीकरण ।
पंचलक्षण	- (पुराण के) - सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंशपरम्परा तथा वंशचरित ।
पंचसंधि	- (व्याकरण में) - स्वरसंधि, विसर्गसंधि, व्यंजन संधि, स्वादि संधि तथा प्रकृति भव संधि ।
पंचवर्ण	- 'अ'कार, 'उ'कार, 'म'कार, नाद तथा

---

* दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालंधर - 8 ** जे.एस.एस.आय. कालेज, मैसूर - 15

बिन्दु युक्त 'ओं'कार ।

पंचमहाविष - वत्सनाभ, कालकूट, मुस्तक, श्रृंगिक तथा सक्तुक ।

पंचहूण - गृहस्थ में सामान्यतः होने वाली 5 प्रकार की हिंसाएँ - भोजन निर्माण में, कूटना, पीसना, छानना तथा जल संरक्षण करना ।

पंचशूरन - सूरन, वन्य सूरन, मालाकंद, अत्यम्लपर्णी तथा कांडीर ।

पंचशस्य - धान, तिल, मूंग, उड़द तथा यव ।

पंचभृंग - भृंगराज, देवदाली, शमी, सनक तथा निर्गुण्डी ।

पंचनिम्ब - 5 नीम के प्रत्यंग - मूल, त्वचा, पत्र, पुण्य तथा फल ।

पंचमूल - लघु- शाल्पर्णी, पृश्निपर्णी, बृहती, कंटकारी तथा गोक्षुर
बृहत् - बिल्व, अग्निमंथ, श्योनाक, पाटला तथा गंभारी ।
कंटक - करमर्द, गोक्षुर, शतावरी, सैरेयक, गृध्रनखी ।
बल्ली (लताएँ)-कुष्माण्ड, सारिवा, हरिद्रा, गुडूची तथा मेषश्रृंगी ।
जीवनीय- जीवक, ऋषभक, अभीरू, वीरा तथा जीवन्ती ।
मध्यम - बला, पुनर्नवा, एरण्ड, मुद्गपर्णी तथा माषपर्णी ।
तृष - इक्षु, दर्भ, कुश, कास तथा शर ।

पंचपंचमूल - लघु, बृहत्, कंटक, वल्ली तथा तृणपंचमूल (सुश्रुत)।

पंचराजीफल - पटोल का पर्याय ।

पंचसिद्धौषधि - तैलकंद, क्रोडकंद, सुधाकंद, सर्पनेत्र तथा रूदन्ती ।

पंचवर्ग - 1) 5 वर्ग का समूह - क वर्ग, च वर्ग, ट वर्ग, त वर्ग तथा प वर्ग
2) आनूप प्राणियों के वर्ग - कूलचर, प्लव, कोशस्थ, पादीन तथा मत्स्य ।

पंचसार - 1) रक्तपित्त में - मधु, खर्जूर, द्राक्षा, परूषक व मिश्री ।
2) वसंत ऋतु में - द्राक्षा, मधुक (महुवा), खजूर, गंभारी, परूषक ।
3) विषम ज्वर में - पिप्पली, मधु, घृत, शर्करा तथा उबला दूध ।

पंचागुल - एरण्ड का पर्याय ।

पंचागी - एक प्रकार का व्रण बंधन - विशेषतः हनु व स्कंध प्रदेश का ।

पंचामृत पर्पटी - रसशास्त्र में एक पर्पटी कल्प ।

पंचलौह - 1) सुवर्ण, रजत, ताम्र, नाग व वंग ।
2) कांस्य, ताम्र, पीतल, लौह व नाग ।

पंचत्व प्राप्ति - पुनः मूल तत्वों में मिलना - मृत्यु ।

पंचभूतप्रसादजा - पंचज्ञानेन्द्रियाँ ।

पंचम - सरगम का पाँचवा स्वर - यह कोमल का स्वर है ।

पंचानन - 1) पांचमुख वाला - शिव तथा सिंह का पर्याय ।
2) एक रस योग ।

पंचमृत्तिका - भस्म (राख), गैरिक, लवण, वल्मीक तथा ईंट का चूर्ण ।

पंचवटी - 1) 5 वटादि वृक्षों का समूह - वट, अश्वत्थ, धात्री, अशोक तथा बिल्व ।
2) नासिक, महाराष्ट्र के पास एक पवित्र स्थान जहाँ श्रीराम कुछ समय रुके थे ।

अम्लपंचक - अम्लवेतस, जम्बीर, मातुलुंग, नारंग तथा निंबूक ।

मूत्रपंचक - गाय, भैंस, बकरी, भेंड तथा गधे का मूत्र ।

क्षारपंचक - यवक्षार, सर्ज, पलाश, मुष्कक तथा तिलनाल क्षार ।

पंचकापित्थघृत - कपित्थ के पंचांग से निर्मित्त घृत-मूषक विष में उपयोगी ।

पंचकृष्ण - एक विषैला कीट ।

पंचनखराज – गोधा (छिपकली जैसा जीव) ।

पंचशुक्ल – विषाक्त कीट ।

पंचालक – एक प्रकार का कीट ।

पंचाम्लक – एक प्रकार का विषैला कीट (सु०)।

पंचाम्ल क्षेत्र – कान्यकुब्ज (कन्नौज के दक्षिण का क्षेत्र) (चरक) ।

पंचावयव – किसी सिद्धान्त के 5 भाग – प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय तथा निगमन ।

पंचजन – 1) राक्षस जिसने शंख का आकार ग्रहण कर लिया था । श्रीकृष्ण ने जिसे मारा इसी से उनके शंख का नाम पाञ्चजन्य था ।
2) जीवों के पांच प्रकार – देव, मनुष्य, गंधर्व, नाग तथा पितृगण ।

षट् – (संख्या 'छः' द्वारा प्रभावित शब्द)

षडंग – 1) शरीर – दो पाँव, दो हाथ, शिरोग्रीवा तथा मध्यभाग ।
2) वेदांग – शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छंद, निरुक्त तथा ज्योतिष ।
3) लघु गोक्षुर ।
4) सर्पभेद – मण्डली सर्प ।
5) घृत –एक औषध कल्प–षट्फलघृत ।
6) गर्भिणी चिकित्सा में प्रयुक्त योग – प्रियंगु, पिप्पली, भद्रमुस्तक, हरेणु (निर्गुण्डी बीज), बदरचूर्ण तथा मधु से निर्मित (काश्यप)।
7) गुग्गुलु कल्प – रास्ना, गुडूची, देवदारु, शुण्ठी, एरण्डमूल तथा गुग्गुलु से निर्मित्त–वातरोगाधिकार में उपयोगी ।
8) पानीय या उदक कल्प–मुस्तक, चंदन, शुण्ठी, सुगंधवाला, पित्तपापड़ा तथा उशीर से निर्मित–पाचक तृषाशामक व ज्वर नाशक ।
9) गौ से प्राप्त छः शुभ पदार्थ – पंचगव्य + गोरोचन ।

षड – दाडिम, मुस्तक, गोरस आदि से निर्मित तृष्णा में प्रयुक्त कल्प (सु०)

षडेन्द्रिय – पंचज्ञानेन्द्रिय तथा मन ।

षण्मुख – कार्तिकेय-षट् (छः) मुखवाला (द.भारत-षण्मुगम्)

षण्मुखी – रेवती नामक बालग्रह जिसकी छठे दिन पूजा करने का विधान है ।

षण्मुखा – खरबूजा (साथ ही षड्भुजा) ।

षट्कल्प – काश्यप का एक अध्याय जिसमें बालकों के नेत्ररोगों हेतु 6 द्रव्यों का विधान है – चक्षुण्या, यशदपुष्प, हरीतकी, गोरोचन, रसांजन तथा निर्मली बीज ।

षट्कोल या षडूषण – पंचकोल (पिप्पली, पि.मूल, शुण्ठी, चव्य, चित्रक) + मरिच

षट्पद – छः पाँव (पाद) वाले – भ्रमर आदि कीट ।

षडग्रंथ – पूतिकरंज ।

षडग्रंथा – वचा ।

षड्घरणयोग – 1) पाठा, चित्रक, इन्द्रयव, कटुका, अतिविषा तथा हरीतकी (सु०)
2) दारुहरिद्रा, पाठा इन्द्रयव कटुका, अतिविषा तथा हरीतकी (अ०सं०)

षड्रस – मधुर, अम्ल, लवण, कटु कषाय तथा तिक्त ।

षट्कर्म – 1) ब्राह्मणों के – वेदाध्ययन, वेदाध्यापन, यज्ञ करना; यज्ञ कराना, दान लेना तथा दान देना ।
2) जीविका हेतु – उञ्छ, प्रतिग्रह, भिक्षा, वाणिज्य, पशुपालन, कृषि ।
3) तंत्र द्वारा किये जानेवाले कर्म – शांति, वशीकरण, स्तम्भन, विद्वेष, उच्चाटन तथा मारण ।
4) योग शास्त्र में – धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक तथा कपालभाति ।

षडदुर्ग – धंवदुर्ग, महीदुर्ग, गिरिदुर्ग, मनुष्यदुर्ग, मृद्दुर्ग

तथा वनदुर्ग ।

षड्गुण – राजनीति के छः गुण-संधि, विग्रह, यान (चढ़ाई), आसन (विश्राम) द्वैधीभाव एवं संश्रय ।

षड्चक्र – मूलाधार, स्वाधिष्ठान, माणिदुर, अनाहता, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र ।

षड्भिज्ञ – छः विशेष ज्ञान को धारण करने वाला –
1) दिव्य चक्षु और श्रोत ।
2) दूसरे के मन को जानना ।
3) पूर्वजन्म स्मरण ।
4) आत्मज्ञान ।
5) आकाश में गति ।
6) परकाया प्रवेश ।

षडाग्नि – कर्मकाण्ड संबंधित अग्नि – गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि, सम्याग्नि, आवस्थ्य और औपसनाग्नि ।

षड्दर्शन – सांख्य दर्शन, योगदर्शन, मीमांसा दर्शन, वैशेषिक दर्शन, न्याय दर्शन तथा वेदान्त ।

षड्ज – सुरमाला (सरगम) का चतुर्थ स्वर जोकि नासा, कण्ठ, उर, तालु जिह्वा तथा दन्त इन छः स्थानों से उत्पन्न होता है । यह मयूर का स्वर है ।

षड्प्रज्ञ – व्यक्ति जो 6 विषयों बड़ा माहिर है – चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष), लोकज्ञ तथा तत्वज्ञ (जगत तथा ईश्वर)

षड्वर्ग
षड्रिपु – काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य तथा अहंकार ।

सप्त (अंक 'सात' के प्रभाव को दर्शित करने वाले शब्द)

सप्तर्षि – मरिची, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वशिष्ठ (कहीं-कहीं भेद भी हैं ।)

सप्तधातु – 1) शरीरस्थ – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ।
2) लोकस्थ – सुवर्ण, रजत, ताम्र, लौह, नाग, वंग तथा यशद ।

सप्तप्रकृति – राजा के सप्तांग-राजा, मंत्री, सामंत, कोश, गढ़ (दुर्ग) तथा सेना ।

सप्तरक्त – रक्त वर्ण के सात शरीरस्थ अंग – तलुवा (पादतल), जीभ, होठ, नेत्र नख तथा तालु ।

सप्तला – शिकाकाई ।

सप्तवर्ण – सातन ।

सप्तामृत वटी – पारद, गंधक, पिप्पली, हरीतकी, वासा तथा भार्गी से निर्मित रस योग ।

सप्तामृत लौह – हरीतकी, विभितक, आमलकी, मुलेठी, घृत तथा मधु (अनुपान मात्रा में)–नेत्र एवं शिरोरोगाधिकार ।

सप्ताश्ववाहन – सूर्य

सप्तद्वीपा – पृथ्वी का पर्याय ।

सप्तनाड़ीचक्र – ज्योतिष में वर्षा की भविष्यवाणी करने लिये बनाया जाने वाला चक्र ।

सप्तपदी – विवाह के समय वर-वधू को सात कदम चलाना जो कि प्रेम या की दृढ़ता को प्रदर्शित करता है ।

अष्ट (संख्या 'आठ' से प्रभावित कुछ संज्ञाएँ)

अष्टांग – 1) शरीर के आठ अंग जिनसे किया जाता है – जानु, हस्त, पाद, शिर, वचन, दृष्टि तथा बुद्धि ।
2) राजनीति में – राजा, राष्ट्र, दुर्ग, बल (सेना), कोष, सामंत प्रज्ञा ।

अष्टांग योग – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान तथा समाधि ।

अष्टांग लवण – अग्निदीपक योग – सौवर्चल, अम्लवेतस, त्वक्, एला मरिच, वृक्षाम्ल ।

अष्टांग आयुर्वेद– कायचिकित्सा, बालरोग चि०, शालाक्य तंत्र, शल्य तंत्र, जरा विष रोग चिकित्सा तथा वाजीकरण ।

अष्टांग मार्ग - बुद्ध के अनुसार दुःख निवृत्ति के आठ उपाय - सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक्वाक्, सम्यककर्म, सम्यगाजीव, सम्यग्व्यायाम, सम्यक्स्मृति तथा सम्यक् समाधि ।

अष्ट गुण - गौतम द्वारा निर्दिष्ट आठ गुण - दया, क्षमा, अनसूया, शौच, अनायास, मंगल, अकार्पण्य (अकृपणता), अस्पृहा ।

अष्ट द्रव्य - यज्ञोपयोगी - पीपल, गूलर, पाकड़ (प्लक्ष), वट, तिल, सरसों, पायस् तथा घृत ।

अष्टप्रकृति - राजा के प्रधान कर्मचारी - सुमंत्र, पण्डित, मंत्री अमात्य, प्रधान, सचिव, अमात्य, प्राड्विवाक् तथा प्रतिनिधि ।

अष्टकर्म - राजा के आठ कर्त्तव्य -

आदानेच विसर्गे च तथा प्रैषनिषेधयोः ।
पंचमे चार्थवचने व्यवहारस्य चेक्षणे ।
दण्डशुद्धयोः सदा रक्तस्तेनाष्टगतिको नृपः॥

अष्ट प्रधान - आठ प्रकार के मंत्री - प्रधान, अमात्य, सचिव, मंत्री, धर्माध्यक्ष, न्यायशास्त्री, वैद्य तथा सेनापति ।

अष्ट मंगल - 1) वह घोड़ा जिसके मुख, पूँछ, अयाल, छाती तथा चारों खुर सफेद हों ।

2) आठ मंगल सूचक वस्तुएँ - सिंह, वृष, हाथी, कलश, व्यंजन, वैजयन्ती, भेरी, दीप ।

3) अन्यत्र - ब्राह्मण, गौ, यज्ञकर्म, हिरण्य, घृत, सूर्य, जल तथा राजा ।

अष्टवर्ग - अष्ट महौषधियाँ - जीवक ऋषभक्, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेदा तथा महामेदा ।

अष्ट सिद्धियाँ - अलौकिक शक्तियाँ - अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व तथा वशित्व ।

अष्ट रस - साहित्य में - श्रृंगार रस, हास्य रस, करुण रस, रौद्र रस, वीर रस, भयानक रस, वीभत्स तथा अद्भुत रस ।

अष्टौनिन्दित - अतिवृष्य, अतिगौर, अतिहृस्व, अतिदीर्घ, अतिकृश, अतिस्थूल, अतिलोम तथा अलोमा ।

अष्टपाश - मनुष्य को बांधने वाले - आशा, तृष्णा, जुगुप्ता, भय, विषय, घृणा, मान तथा लज्जा ।

अष्टविध मैथुन- स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रिया निष्पत्ति ।

अष्टाध्यायी - पाणिनि द्वारा रचित व्याकरण जो कि आठ अध्यायों में वर्णित है ।

अष्टकर्ण - ब्रह्मा का पर्याय ।

अष्टदिशा - पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान् ।

नव, नवम (संख्या नौ की प्रधानता को दर्शाते कुछ शब्द)

नवग्रह - सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र शनि, राहु तथा केतु ।

नवरत्न - 1) माणिक्य, मुक्ता, प्रवाल, पन्ना, पुखराज, हीरा, नीलम, वैदूर्य तथा गोमेदक ।

2) विक्रमादित्य के नवरत्न - धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शंकु, वेतालभट्ट, घट खर्पर, कालिदास, वराहमिहिर व वररूचि ।

3) अकबर के नवरत्न -तानसेन, बीरबल, अबुलफजल, टोडरमल, फैजी, मानसिंह, अब्दुल रहीम, फगीर अजीउद्दीन तथा मुल्ला दोप्याजा ।

नवकुमारी - नवरात्र में पूजी जाने वाली - कुमारिका, त्रिमूर्त्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चाण्डिका, शांभवी, दुर्गा और सुभद्रा ।

नव दुर्गा - शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चन्द्रघण्टा, स्कन्दमाता, कुष्माण्डा, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धिरात्रि ।

नवशक्ति - शक्ति के नौ विग्रह - प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नन्दिनी, सुप्रभा, विजया

तथा सर्वसिद्धिदा ।

नवनिधि – कुबेर की नौ निधियाँ – महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील तथा खर्व ।

नवखण्ड – पृथ्वी के नौ विभाग – भारतवर्ष, इलावृत्त, किंपुरुष, भद्र, केतुमाल, हरि, हिरण्य, रम्य तथा कुश ।

नवविष – वत्सनाभ, हारिद्रिक, सक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, श्रृंगक, कालकूट, हालाहल तथा ब्रह्मपुत्र ।

नवशायक – नौ निम्न जातियाँ – ग्वाला, तेली, माली, जुलाहा, हलवाई, बढ़ई, कुम्हार, कमकर (मजदूर) तथा नाई ।

नवद्वार, नवछिद्र – दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासा, एक मुख, एक मूत्रद्वार तथा एक मलद्वार ।

दश (संख्या 'दस' का महत्व बताने वाले कुछ शब्द)

दशमूल – लघु एवं बृहत्पंचमूल के द्रव्य ।

दशप्राणायतन – दो शंख, हृदय, बस्ति, शिर, कण्ठ, रक्त, शुक्र, ओज व गुद – इनपर आघात से प्राणनाश होता है ।

दशांग लेप – 1) जटामांसी, दालचीनी, तेजपत्र, मन:शिला, केसर, हरिद्रा, व्याघ्रनखी, शुण्ठी, तुलसी व उशीर इनसे निर्मित्त अ संग्रह का विषनाशक योग ।

2) शुण्ठी, धान्यल, भारंगी, हरीतकी, देवदारु, वचा, पित्तपापड़ा, नागरमोथा रोहिष् तथा कायफल-सुश्रुत-कफज छर्दिनाशक ।

दशावतार – विष्णु के दस मुख्य अवतार – मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध तथा कल्कि ।

दशक्षीर – गाय, भैंस, बकरी, भेड़, मानुषी, गधी, ऊँटनी, हथिनी, घोड़ी तथा हरिणी का दूध ।

दशकुल वृक्ष – तंत्रशास्त्र में श्लेष्मांतक, करंज, बेल, पीपल, कदम्ब, नीम, बरगद, गूलर, आँवला

इमली ।

एकादश (संख्या 'ग्यारह' का महत्त्व बताने वाले शब्द)

एकादशेन्द्रिय – पांच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय तथा

उभयेन्द्रिय मन ।

एकादश कद्र (तथा कद्राणी) – मन्यु (धी), मनु

महिनस (उशना), महान् (उमा),

(नियुत्), ऋतुध्वज (सर्पि),

(इला), भव (अंबिका), काल

वामदेव (सुधा) तथा धृतव्रत (दीक्षा)

षोडश् – (संख्या 'सोलह' का महत्त्व बताते हुए शब्द)

षोडश कला – 1) चन्द्रमा की 16 कलाएँ –

मानदा, पूषा, तुष्टि, पुष्टि, रति,

शशिनी, चन्द्रिका, कान्ति,

श्री:, प्रीति, अंगदा, पूर्णा तथा

2) चिकित्सा की षोडश

चिकित्सा के चार पाद वैद्य,

परिचारक तथा रोगी; इनमें

के चार-चार गुण होने से

शीघ्र फलदायी होती है ।

षोडशउपचार – पूजा अर्चना के सोलह अंग –

आसन, अर्घ्यपाद्य, आचमन, मधुपर्क,

वस्त्राभरण, यज्ञोपवीत, गंध, पुष्प,

दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, परिक्रमा तथा

षोडशमातृका – देवियाँ – गौरी, पद्मा, शची, मेधा,

विजया, जया, देवसेना, स्वधा,

शांति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, माता

कुलदेवी ।

षोडशश्रृंगार – सम्पूर्ण साज-सज्जा के 16 अंग –

मंजन, मिस्सी लगाना, स्नान,

धारण, केश सज्जा, अंजन, मांग में

पैरों में महावर (अलक्तक) लगाना,

लगाना, ठोड़ी पर तिल बनाना,

मेंहदी लगाना, शरीर में गंध द्रव्य (इत्र-सेन्ट आदि) लगाना, आभूषण धारण, पुष्पमाला पहनना तथा तांबूल भक्षण ।

षोडश संस्कार – गर्भाधान, पुंसवन, सीमंत, जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, वपनक्रिया, कर्णवेधन, वृतादेश, शिक्षारंभ ।

षष्टि - (संख्या 'सत्रह' का महत्त्व बताते हुए कुछ शब्द)

षष्टि उपक्रम – व्रण के – अपतर्पण, आलेप, परिषेक, अभ्यंग, स्वेद, विम्लापन, उपनाह, पाचन, विस्रावण, स्नेह, वमन, विरेचन, छेदन, भेदन, दारण, लेखन, एषण, आहरण, व्यधन, विद्रावण, सीवन, संधान, पीड़न, शोणितास्थापन, निर्वापन, उत्कारिका, कषाय, वर्ति, कल्क, सर्पि, तैल, रसक्रिया, अवचूर्णन, व्रणधूपन, उत्सादन, अवसादन, मृदुकर्म, दारुण कर्म, क्षारकर्म, अग्निकर्म, कृष्णकर्म, पाण्डुकर्म, प्रतिसारण, रोम संजनन, लोमापहरण, बस्ति कर्म, उत्तर बस्ति कर्म, बंध, पत्रदान, कृमिघ्न, बृंहण, विषघ्न, शिरोविरेचन, नस्य, कवलधारण, धूम, मधुसर्पि, यंत्र, आहार तथा रक्षाविधान ।

शत - (संख्या 'सौ' से जुड़े कुछ महत्वपूर्ण शब्द)

शतघ्नी – 1) एक कण्ठरोग ।
2) एक आयुध ।
3) मादा बिच्छू ।

शतधौत (घृत) – पानी से सौ बार धुला हुआ घी, उत्तम दाहशामक ।

शतक्रतु – इन्द्र का पर्याय ।

शतग्रंथि – दूर्वा ।

शतदारुक – कीट – दंश, मूत्र, मल तथा अपानवायु से विषप्रसार (सु०) ।

शतपत्र – कठफोड़वा (काष्ठकुक्कुट) च०सू० ।

शतपत्रक – राजशुक ।

शतपत्रा – कमल ।

शतपत्री – गुलाब ।

शतपर्वक – इक्षु, दूर्वा, कटुका ।

शतपादक – पैत्तिक कष्ट उत्पन्न करने वाला कीट (सु.) ।

शतपदी – कीट ।

शतकुलीरक – वातजरोग उत्पन्न करने वाला कीट (सु.)

शतकुसुमा – शतपुष्पा (सोया) ।

शतपोनक – भगंदर रोग का एक भेद ।

शतबाहु – कीट वातरोग कारक (सु.) ।

शतवीर्या,
शतमूली – शतावरी ।

शतविषाणिका
शताहार – शतपुष्पा ।

शतारू – एक क्षुद्र कुष्ठ ।

शतभिषज् – शतभिषा नक्षत्र ।

सहस्र-(सं० 'हजार' संख्या का महत्त्व बताते कतिपय शब्द)

सहस्त्रकाण्डा – दूर्वा (सहस्रपर्वा) ।

सहस्रदंष्ट्र – एकनादेय मछली-महापाठीन ।

सहस्रधौतघृत – उत्तम पित्तशामक हजारबार धुला हुआ घी ।

सहस्रनामा – हजार नाम वाला (विष्णु के पर्याय) ।

सहस्रमूर्धन् – हजार नाम वाला (विष्णु के पर्याय) ।

सहस्रवीर्य – महाशतावरी ।

सहस्रबेधि – हिंगु ।

सहस्राक्ष – इन्द्र ।

सहस्त्रांशी – पीलु ।

सहस्रांशु, सहस्रार्चि, सहस्रकर, सहस्रकिरण, सहस्रधामन्, सहस्रपाद, सहस्रमरीचि, सहस्ररश्मि, सहस्रदीधिति – सूर्य के पर्याय ।

सहस्रबाहु – 1) राजा कार्तवीर्य का पर्याय ।
2) बाणासुर ।
3) विष्णु या शिव का पर्याय ।

सहस्रशिखर – विंध्य पर्वतः ।

नेति.........नेति.........।

ब्रह्मचर्य का मूल-अर्थ

फरवरी, 1966

जननेन्द्रिय-विकार के निग्रह को ही ब्रह्मचर्य का पालन माना गया है। मेरी सम्मति में यह सदोष और अपूर्ण व्याख्या है। विषय मात्र का निग्रह ही ब्रह्मचर्य है। जो अन्य इन्द्रियों को जहाँ-तहाँ भटकने देकर केवल एक ही इन्द्रिय के निग्रह का प्रयत्न करता है वह निष्फल प्रयत्न करता है, इसमें क्या संदेह है ? कानों से विकार की बातें सुनना, आँखों से विकार-सृष्टि करने वाली वस्तु देखना, रसना से विकारोत्तेजक वस्तु-चखना, हाथों से विकारों को भड़काने वाली वस्तु का स्पर्श करना, यह तो आग में हाथ डालकर जलने से बचने का प्रयत्न करने के समान हुआ। इसलिए जो जननेन्द्रिय को रोकने का प्रयत्न करे, उसे पहले ही से, प्रत्येक इन्द्रिय को उस-उस इन्द्रियों के विकारों से रोकने का प्रण लेना चाहिए। मैंने सदा ही अनुभव किया है कि ब्रह्मचर्य की संकुचित व्याख्या से हानि हुई है। मेरा तो यह निश्चित मत और अनुभव भी है कि यदि हम सब इन्द्रियों को एक साथ वश में करने का अभ्यास करें, इसकी आदत डालें, तो जननेन्द्रिय को वश में करने का प्रयत्न शीघ्र ही सफल हो सकता है। तभी उसमें सफलता भी मिल सकती है। इमसें मुख्य स्वादेन्द्रिय है। इसलिए उसके संयम को हमने पृथक् स्थान दिया है। **- महात्मा गांधी**

आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार में श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन की सर्वाधिक देन

उत्तर प्रदेश विधान-परिषद् के अध्यक्ष की घोषणा पटना में श्री दरबारी लालजी शर्मा का हार्दिक अभिनन्दन

(एक पत्रकार द्वारा)

गत 4 दिसम्बर 1965 को बिहार-राज्य आयुर्वेदिक-यूनानी चिकित्सा अधिकाय के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर उत्तर प्रदेश विधान-परिषद् एवं भारतीय चिकित्सा-परिषद् के अध्यक्ष माननीय श्री दरबारी लालजी शर्मा का हार्दिक अभिनन्दन किया गया। माननीय शर्मा जी बिहार-सरकार के अतिथि थे। किन्तु प्रातःकाल पटना पहुँचने पर सर्वप्रथम वे श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि० के पटना निर्माण केन्द्र में पधारे, जहाँ भवन के प्रबंधनिदेशक पं० हजारी लाल शर्मा तथा निदेशक एवं बिहार-राज्य आयुर्वेदिक-यूनानी अधिकाय के अध्यक्ष, प्राणाचार्य वैद्यराज श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य ने उनका हार्दिक के निरीक्षण के प्रति अभिरुचि प्रकट की और निरीक्षण के पश्चात् भवन की ओर से उनका अभिनन्दन-समा सम्पन्न हुआ, जिसकी अध्यक्षता बिहार के शिक्षा-राज्य मं माननीय पं० गिरीश तिवारी ने की।

छात्र एकता एवं अनुशासन के द्वारा आगे बढ़ें वैद्यराज पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा का भाषण

गत 5 दिसम्बर 1965 ई० को राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, पटना के सभा भवन में बिहार के आयुर्वेदिक त यूनानी छात्रों की एक सभा हुई जिसके प्रधान अतिथि क आसन बिहार-राज्य आयुर्वेदिक-यूनानी अधिकाय के अध्य वैद्यराज पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा ने ग्रहण किया। आपका स्वागत करते हुए छात्र नेताओं ने कहा कि आप में आयुर्वे तथा यूनानी की सेवा के लिए योग्यता एवं उत्साह ही नहीं बल्कि त्याग-भावना भी है, जिसके लिए बिहार के आयुर्वेदिक तथा यूनानी छात्र सर्वदा आपके प्रति कृतज्ञ रहेंगे।

प्राचार्य विक्कू सिंह, प्राचार्य श्री जगन्नयन बहुगु (बेगूसराय आयुर्वेदिक, कालेज), प्रो० वामदेव त्रिपा प्रो० नन्दकिशोर मिश्र, कविराज रमेश मिश्र आदि ने पं वैद्यराज शर्मा जी की आयुर्वेद-सेवाओं पर प्रकाश डा हुए घोषित किया कि आपके नेतृत्व ने बिहार के आयुर्वेद-यूनानी-जगत् में ही नहीं, बल्कि समस्त देश आयुर्वेदिक-यूनानी जगत् में अभूतपूर्व आशा एवं उत्साह संचार किया है।

प्रधान अतिथि के रूप में छात्रों का आह्वान क हुए वैद्यराज पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा ने कहा कि यदि छा एकता एवं अनुशासन के द्वारा आयुर्वेद-यूनानी की सेवा लिए आगे बढ़ें तो वे (वैद्यराज पं०शर्मा) उन्हें साधनों अभाव न होने देंगे। आपने कहा कि आयुर्वेद-जगत् में एकता, जागरुकता, अनुशासन एवं सक्रियता की सर्वाधि आवश्यकता है। आपने अपने सम्बन्ध में कहे गये प्रशंसा वाक्यों के लिए आभार प्रकट करते हुए कहा कि सेवा कर्तव्य के लिए प्रशंसा करना आवश्यक नहीं है। आवश्य तो इस बात की है कि त्रुटियों की आलोचना की जिससे वे दूर हों।

आपने विद्यार्थियों से कहा कि वे आयुर्वेद यूनानी के भविष्य के प्रति आस्था रखें और सेवाभावना आयुर्वेद तथा यूनानी का अध्ययन करें।

इस अवसर पर श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि० की ओर से छात्र-छात्राओं तथा स्नातकों को पेटिकाएँ भेंट की गई और आयुर्वेदिक तथा यूनानी भेंट किया गया।

आपके पत्र

आयुर्वेदज्ञ भारतीय चिकित्सा विधा एवं आयुर्वेद मनीषियों पर गर्व करें

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

आजकल आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति के विशेषज्ञों में एक भ्रान्ति-सी उत्पन्न हो गयी है कि जब तक वे पश्चिमी साहित्य का उल्लेख नहीं कर लेते तब तक चिकित्सा विधा पर लिखी गयी सामग्री अपूर्ण मानते हैं । आयुर्वेद की उपलब्धियों एवं सिद्धान्तों को आधुनिक ज्ञान से तुलना करते हैं । आधुनिक चिकित्सा अथवा आधुनिक कोई भी ज्ञान नित्य परिवर्तनशील है । उदाहरणार्थ - आधुनिक वैज्ञानिकों ने ''एटम'' बनाया और उसे भारतीयों के ''परमाणु'' के समकक्ष अभिभाज्य कह दिया । पुनः शोध करते रहे और उसे अभिभाज्य कर उसे ''परमाणु'' मानने लगे । अतः ''एटम'' परमाणु नहीं हो सकता । ''परमाणु'' के लिए शोध करने पर एटम सूक्ष्म परमाणु हुआ । नव्य चिकित्सा सिद्धान्त नित्य परिवर्तनशील है और पाश्चात्य चिकित्सा ज्ञान में अन्तिम सत्य प्राचीन चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद की सत्यता की खोज पर पर निर्भर है । इसलिए आयुर्वेद में हजारों वर्ष पूर्व जो जिस प्रकार खोज हुई वह सत्य है, शाश्वत है । उसे हमें समयानुकूल बनाना है । यही अनुसंधान व शोध कार्य है । आज आवश्यकता इस बात की है कि हम आधुनिक विज्ञान का भी अध्ययन करें । उसे भी समझें, उस ज्ञान की प्रगति में योग दें तथा अपने प्राचीन शाश्वत वैज्ञानिक सिद्धान्तों को उपलब्ध वैज्ञानिक पद्धतियों द्वारा अन्वेषण कर पुनः संस्थापित कर आयुर्वेद चिकित्सा विज्ञान की उन्नति में लगे रहें यही सर्वोत्तम अनुसंधान है । अनुसंधान शोध आयुर्वेद सेवा का उद्देश्य है, जिससे मानव का कल्याण हो । आवश्यकता आज के संदर्भ में इस बात की है कि हमें अपने सिद्धान्तों तरीकों की अपने शास्त्रीय शब्दों की सत्यता शाश्वत सत्ता को सिद्ध करना चाहिए । उसके लिए केवल अंग्रेजी भाषा के शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए क्योंकि इससे भयंकर भूल होती है और आयुर्वेद की शास्त्रीय वैज्ञानिकता को समझना कठिन है । उदाहरणार्थ त्रिदोष सिद्धान्त के वात, पित्त, कफ को समझना चाहिए : -

जैसे वात को AIR न लिखकर VATA ही लिखना चाहिए । पित्त को BILE न लिखकर PITTA ही लिखना चाहिए, इसी प्रकार कफ दोष को PHLEGM न कहकर KAFHA ही कहें और लिखना उचित है क्योंकि पित्तदोष अग्नि स्वरूप है । ''आयुर्वेद'' में अग्नि शब्द से ''शरीर धातु पाक'' अग्नि जिससे शरीर बनता है । इस ''धातु पाक अग्नि'' में तीनों तत्व एक साथ अपने प्राकृतिक संतुलन में रहते हुए शारीरिक धातु अग्नि जठराग्नि जिसमें खाया हुआ आहार होता है । लोकाग्नि पंचतत्व द्रव्य जिससे बाहरी वस्तुएं पकायी अथवा जलाई जाती हैं । इस प्रकार प्राणियों के शरीर में पित्तदोष का पर्याय मुख्यतः तीन शब्दों में जाना जा सकता है । जल से उत्पन्न कफधातु में पित्त धातु समाहित हैं जो वातधातु के सहयोग से ही विद्युताग्नि बिजली, गैस, माचिस आदि इस प्रकार प्रत्येक दृश्य पदार्थ में वात, पित्त, कफ स्थित है । इसमें पंचतत्व का समावेश निहित है । हम भारतीयों का आयुर्वेद की उन्नति के लिए परम कर्त्तव्य बनता है कि हमें तन, मन और धन से आयुर्वेद ''भारतीय चिकित्सा पद्धति'' के लिए निम्नलिखित उपायों द्वारा ''आयुर्वेद'' को उन्नत करना चाहिए अन्यथा विदेशी आज भी आयुर्वेद में प्राचीन शास्त्रीय तथ्यों का भी पेटेण्ट कर लेंगे और हम देखते व सुनते रह जाएंगे ।

आयुर्वेद की उन्नति व शाश्वत सत्ता की रक्षा के लिए निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है -

1. हमें आयुर्वेद के मूल सिद्धांतों का नई सोच के साथ अन्वेषण करना होगा।
2. भारत में उत्पन्न होने वाली औषधियाँ जड़ी-बूटियों के गुण-धर्मों का विश्लेषणात्मक अध्ययन उन्हें भारतीय ढंग से प्रचारित संदर्भित करना सन्दर्भ (रिफ्रेंश) 8वीं से 20वीं सदी तक के भारतीय विद्वानों द्वारा लिखे ग्रंथों का ही हो ।
3. आयुर्वेद के इतिहास का पुनः नये सिरे से अन्वेषणात्मक लेखन कार्य हो ।
4. चरक, सुश्रुत, माधव, शारंगधर, चक्रदत्त, नागार्जुन, वाग्भट्ट आदि प्राचीन विद्वानों के प्राचीनमूल ग्रन्थों का परिचय तो होना ही चाहिए । इसके साथ-साथ 19वीं और 20वीं सदी के आयुर्वेद ग्रन्थों व नाम का परिचय

सन्दर्भ भी अपनी औषधि निर्माण फार्मूलरी औषधि निर्माण एवं प्रचार साहित्य द्वारा उल्लेख करना चाहिए।

5. 19वीं व 20वीं सदी के आयुर्वेद चिकित्सा जगत के सौर मण्डलीय दिव्यमान नक्षत्रों में कुछ विशिष्ट प्रतिभावान आयुर्वेदोद्धारक वैद्यों के नाम उल्लेखनीय हैं। जैसे-वैद्य यादव जी त्रिक्रम जी आचार्य, मुम्बई, वैद्य रणजीत राय देसाई, सूरत, आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी, हाथरस, आचार्य प्रियव्रत शर्मा एवं वैद्य विश्वनाथ द्विवेदी, वाराणसी, वैद्यराज पं० रामनारायण जी शर्मा (संस्थापक, बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन), इन आयुर्वेद मनीषियों ने आयुर्वेद के अनेक प्रमाणित ग्रन्थों का पुनः जीर्णोद्वार लेखन कार्य किया जो प्राचीन संस्कृत पाली आदि भाषालिपियों का अनुवाद सरल संस्कृत व हिन्दी भारतीय प्रान्तीयलिपि व अंग्रेजी में आजीवन लेखन कार्य कर तथा अनेक ग्रन्थों की रचना इन विद्वान आयुर्वेद मनीषियों ने की जो आज के संदर्भ में आयुर्वेद चिकित्सा विधा को पूरे विश्व में प्रसारित करने में विश्व में विश्वसनीयता का प्रतीक आयुर्वेद शास्त्र अपनी खोई हुई साख को विश्व में पुनर्जीवित कर भारत को विश्व मानचित्र पर वैदिक काल ईसा से हजारों वर्ष पहले की भारतीय चिकित्सा विधा का चमत्कार प्रदर्शित करने में सफलतम परिणाम प्राप्ति की ओर अग्रसर हो रहा है। इन विद्वान मनीषियों के लेखन, परिश्रम एवं उत्तम ग्रन्थ लेखन को भारत सरकार ने भी सराहा और आज देश के आयुर्वेद शिक्षा संस्थानों में पाठ्य पुस्तक के लिए प्रमाणित कर आयुर्वेद विश्वविद्यालयों, अनुसंधान केन्द्रों तथा आयुर्वेद औषधि निर्माण में उपयोग में लायी जा रही है। आजकल आयुर्वेद ग्रन्थ लेखक व प्रचार पत्रक को लिखने वाले वैद्य भी पाश्चात्य चिकित्साविदों की भाँति लिखने लगे हैं कि. आंवला में विटामीन-सी की उपलब्धता प्रचुर मात्रा में पायी गयी, इसका पता सन् 1926 या 30 में फलां-फलां डाक्टर्स टीम ने फलां सेमिनार की स्मारिका के पृष्ठांक-125 पर अंकि है। इस प्रकार के संदर्भ से क्या आयुर्वेद के उ ऋषियों और सच्चे कर्त्तव्य परायण वैद्यों का नाम नहीं छिप जाता ? उन हजारों प्रमाणित ग्रन्थों को हम भू नहीं जाएंगे ? जिनमें मौलिक आयुर्वेद है, जिन्हों हजारों वर्ष पूर्व वह शोध कर लिया था कि आंवला में सम्पूर्ण गुण है और लवण रस को छोड़कर इसमें पांच रस तथा सभी जीवन के उपयोगी तत्व जीवतिक्त/विटामिन्स और खनिज कैल्शियम, आयरन मौजूद हैं। इसमें केवल विटामिन-सी अकेला नहीं बल्कि आंवला में जीवनोपयोगी सभी तत्व मौजूद हैं। पश्चिमी देशों से शत-प्रतिशत रसायन गुण जीवन रक्षक औषधियां भारत आती थीं। पिछले दो दशकों से उन जीवन रक्षक औषधियों का आना आयुर्वे औषधि निर्माण विकास के कारण लगभग 50 प्रतिशत से भी कम आने लगीं। इससे आयुर्वेद पर वक्रदृष्टि रखने वालों ने साजिश रची कि आयुर्वेदिक औषधि में ''हेविमैटल'' और विषाक्त जड़ी-बूटी वत्सना पारा आदि पड़ने से नुकसानदेह है क्योंकि उन्हों वैज्ञानिक तकनीक के संयंत्रों के माध्यम से स्वर्णमकरध्वज आदि रसायनिक औषधियों में स्वर्ण पारा, गन्धक आदि देखा और कह दिया। इसी प्रकार सेब, केला, पालक आदि फलों में लौहतत्व आदि खनिज मैटल भी उन्होंने देखे। मेरा कहना है कि उन फलों में से यदि वे दुष्प्रचार करने वाले लोहा अलग करके उस लोहा धातु से औजार या बर्तन बना दें तथा दूध में पका चावल निकाल कर खेत में उगा दें तो उनकी बात में दम है। आयुर्वेद का दुश्प्रचार करने वाले ये पश्चिम के लोग अपनी ऐलोपैथी दवाइयों में देखें कि इनकी इन दवाइयों में कोपर सल्फेट, नाइट्रोजन फास्फेट, कृत्रिममद्य/अल्कोहल, अर्सेनिक आदि कैमिकल भी तो जहर है जिस प्रकार आयुर्वेद की रस-रसायन औषधियों को वे लोग विषाक्त कहते हैं, हम भी कह

सकते हैं कि एलोपैथिक आदि अंग्रेजी दवाइयों में जहर पड़ा है। लेकिन हम जानते हैं आयुर्वेद में जिस प्रकार पारद, नाग, गन्धक, वंग, स्वर्ण, चांदी, ताम्र आदि खनिज द्रव्यों का शोधन कर तैयार व निर्विष किया जाता है उसी प्रकार नाइट्रोजन, आर्सेनिक, कोपर सल्फेट आदि को भी शोधन कर डाला जाता होगा। हम भारतीयों में सच्चाई को झुठलाने का फरेब नहीं है। विदेशियों में सदैव युग युगान्तरों से फरेब और धोखे से भारत की वैदिक और सामरिक सम्पदा को नुकसान पहुंचाकर लूटने की कोशिशें की हैं। इस समय आयुर्वेद चिकित्सा ''विधा'' विकासोन्मुख हो रहीं है। अरबों रुपयों की आयुर्वेदिक औषधियों का विश्व बाजार में व्यवसाय होने लगा है जिस प्रकार भारत की हर विधा तकनीक को चुराकर या झपट करके वे छुड़ाते रहे हैं, इसी प्रकार से आयुर्वेद में वर्णित अनेक जड़ी-बूटियों व अन्न, चावल आदि का पेटेण्ट वे चुपचाप करा चुके हैं। अब उनकी वक्रदृष्टि आयुर्वेद औषधियों में रस-रसायन पर है। वे चाहते हैं कि इस कुप्रचार से आयुर्वेद की रस-रसायनों का प्रचलन शून्य हो जाएगा और फिर इस भारतीय औषधि निर्माण रस-रसायन की तकनीक अपने ढंग से दिखाकर इस विधि को भी 'पेटेण्ट' के दायरे में रखा जाएगा तब भारतीय लोग विदेशी रस-रसायन मकरध्वज, बसन्त कुसुमाकर, च्यवनप्राश आदि रोग प्रतिकार शक्तिवर्धक रसायन औषधियों का सेवन करेंगे। साथ ही सम्पूर्ण विश्व में अपनी औषधि निर्माण की खोज कहकर विश्व में दूसरे नाम से औषधि वितरण करेंगे। इस प्रकार अपना वर्चस्व/दबदबा बनाए रखना चाहते हैं। उन्हें नहीं मालूम कि आयुर्वेद का इतिहास उतना ही पुराना है जितना विकसित मानव का। संसार में आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र से पहली किसी भी चिकित्सा पद्धति का अस्तित्व नहीं था और वर्तमान में भी आयुर्वेद के समान अन्य किसी भी चिकित्सा पद्धति को जन-मानस की स्वीकृति हासिल नहीं है। वर्तमान समय में भारतीय चिकित्सा पद्धति आयुष (आयुर्वेद, यूनानी एवं सिद्ध) सम्पूर्ण संसार में उच्चतम शिखर पर अपनी शास्वत सत्ता पर पहुंच रहा है। इस उन्नतशील समय का सदुपयोग हम भारतीयों को एक सजग प्रहरी की भांति करना है। आयें हम सब संकल्प लें ''आयुष'' भारतीय चिकित्सा पद्धति की हर सम्भव उन्नति में लगे रहेंगे।

जय आयुर्वेद, जय भारत

विनीत

(वैद्य इन्द्रदेव भट्ट)

प्रभारी, वैद्य सहायता केन्द्र

बैद्यनाथ समूह रिसर्च फाउण्डेशन, झांसी

आयुर्वेद, योग व महान हिन्दु धर्म को बदनाम करने का षड्यंत्र

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

सुश्री वृंदा करात सांसद सीपीएम ने स्वामी रामदेव जी महाराज व दिव्य योग संस्थान के विरूद्ध षड्यंत्र रचकर इन्हें बदनाम करने की जो कोशिक की है उससे उलटा इनका (करात) अपना कद छोटा हुआ है। इतिहास साक्षी है एवं गहन अध्ययन करने वाले व्यक्ति जानते हैं कि कम्युनिस्टों की भूमिका पिछले 100 वर्षों में क्या रही है। प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री को रूस ले जाकर ताशकन्द में जो समझौता किया और उनकी मृत्यु हुई उसमें किसका हाथ था और आज इनकी संस्था माओवादी और नक्सलवादी नेपाल, बंगाल, बिहार, उत्तर पूर्वांचल, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, तामिलनाडू और केरल आदि-आदि में क्या कर रहे हैं। यह किसी से भूला नहीं है कि इन्होंने हजारों हजार हत्यायें की हैं और भारतीय संस्कृति को नष्ट करने का षड्यंत्र चला

रहे हैं । आयुर्वेद योग व हिन्दु धर्म का इतिहास वेदों के अनुसार करोड़ों वर्ष पुराना है और आज की मान्यता के अनुसार हजारों वर्ष पुराना है । हमारा परिवार 1955 से अर्थात् 150 वर्षों से आयुर्वेद की चिकित्सा कर रहा है । इस समय 15 उच्च शिक्षा प्राप्त वैद्य डॉक्टर परिवार में हैं जो चिकित्सा कार्य कर रहे हैं और अनेकानेक शोध कार्य किये हैं । आयुर्वेद के गहनतम ज्ञान तक पहुंचे हैं । लाखों कठिन रोगियों की चिकित्सा की है । आयुर्वेद में केवल 0.1% अर्थात् हजार में से एक ही औषधि में प्राणिज द्रव्य होते हैं । वह भी अति बहुमूल्य जैसे - कस्तूरी (अब प्रतिबंधित है), जुंदबदस्तर (ऊदबिलाव से प्राप्त) तथा अम्बर (हवेल मछली की लार) आदि प्रयोग होते हैं । न जाने वृंदा करात जी ने कहां से कौन-सी कब्र खोज कर मानव खोपड़ी को औषध में डाले जाने का प्रश्न निकालकर लाई हैं । जबकि ऐसी कोई औषधि आयुर्वेद में नहीं बनती है । यह 200% झूठ है । फिर यह तो अति मूल्यवान दुर्लभ चीज है तो यदि कोई इसकी दवा में डालने की कल्पना करे भी तो लाखों व्यक्तियों को दवा इसकी कैसे देगा । इसके इलावा पशुओं की हड्डियों की दवाइयों में डाले जाने की बात भी झूठ है । भला इनके डालने की क्या आवश्यकता पड़ी है जबकि हजारों प्रकार की जड़ी-बूटियां मौजूद हैं । जबकि ऐलोपैथी में लीवर, स्पलीन, आंत्र, ब्लड, बौनज की अनेकानेक दवाई बनती है और अनेक टूथपेस्टों में बौनज का पाऊडर प्रयोग किया जाता रहा है । आयुर्वेद में अनेकानेक असाध्य रोगों की उचित व सस्ती चिकित्सा होती है जैसे किडनी फ्लयोर, हार्ट फेलियर, कैंसर सब प्रकार के जोड़ों के दर्द, कठिन स्त्री रोग, बंधयत्व, गुप्त रोग, चर्म रोग, पत्थरियां, बवासीर, भगन्दर, शूगर, दमा, लीवर रोग आदि की उत्तम चिकित्सा होती है जबकि एलोपैथी में या तो चिकित्सा है ही नहीं और यदि है तो अस्थाई और चीर-फाड़ करके तथा अत्यन्त महंगी है ।

आयुर्वेद एक सम्पूर्ण ज्ञान है जोकि लाखों वर्षों की समय की कसौटी पर ऋषि-मुनियों द्वारा संशोधित देव ज्ञान है तथा आयुर्वेदिक औषधियां बड़ी कम्पनियों व अच्छे वैद्यों द्वारा पूरे मानक से बनाई जाती है ।

ऐसो चैम फार्मा के डायरेक्टर हरी सिंह सिक्का अपने आयुर्वेद के बारे में अधकचरे ज्ञान पर ही इठला रहे हैं और एकदम तथ्यविहीन व बचकाना सवाल-जवाब जी. टी.वी. पर करते नजर आये हैं । इन्हें बतला दूँ कि आयुर्वेद की सब सिद्ध औषधियों पर फार्मूला लिखा होता है और शास्त्रीय औषधियों पर शास्त्र का नाम लिखा रहता है । ऐसा ही ऐलोपैथिक दवा में भी होता है व फार्मा कोपियल ड्रग्स पर I.P., B.P., B.P.C., U.S.P., U.S.S.R.P. आदि-आदि लिखा रहता है न कि फार्मूला ।

बहुत कुछ संभव है कि वृंदा करात जी ने मल्टीनेशनल कंपनियों से मिलकर कोई षड्यंत्र किया हो और आयुर्वेद व हिन्दुत्व की महान परिपाटी को बदनाम करने की साजिश रची हो । क्योंकि इन बड़ी कंपनियों द्वारा उपरोक्त वर्णित रोगों की औषधियां अत्यंत महंगे दामों पर बेचकर अपनी तिजोरियां भरने का काम निरन्तर किया जाता है उसमें कुछ कमी तो स्वामी रामदेव जी के प्रचार से आई है । कुच्छेक दवाई में तो मूल्य के बदले लोगों के कपड़े व खाल तक उतार ली जाती है । तो उसके पेट में मरोड़ तो उठ ही रहा है ।

स्मरण रहे कि कई रिसर्च बेस्ड ऐलोपैथिक औषधियां कैंसर, किडनी फ्लयोर, बंध्यत्व व कठिन रोगों की दवाई का मूल्य कौस्ट से 100 से 1000 गुणा तक होता है, जबकि आयुर्वेद औषधियां अत्यंत सस्ती हैं । आयुर्वेद के मनीषियों द्वारा लाखों वर्षों की लाखों खोज को बिना मूल्य सारे संसार के प्रत्येक देश तक पहुंचा कर कोई भी मूल्य नहीं लिया न ही पेटेंट राईट लिया । जबकि आज पाश्चात्य देश हमारी ही दवाइयों, जड़ी-बूटियों पर पेटेंट लेकर मानवता पर डांका मार रहे हैं ।

भवदीय

वैद्य राम कुमार बिन्दल
वैद्याचार्य, एम.डी., पी.एच.डी., (ए.एम.)
वैद्य बालमुकुन्द
आरोग्यधाम
पुराना बस स्टैण्ड, सोलन (हि०प्र०)-173212

आरोग्य समाचार
अखबार की कतरनों से

किडनी फेल होने का बड़ा कारण बन सकता है मोटापा

सामान्य लोगों से सात गुना ज्यादा खतरनाक

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

यूं तो मोटापा कई रोगों का कारण बनता रहा है। हृदय रोगों, उच्च रक्तचाप और मधुमेह जैसी बीमारियों का संबंध मोटापे से ही बताया जाता रहा है। लेकिन एक हालिया अध्ययन के अनुसार मोटापा किडनी (गुर्दा) फेल होने का बड़ा कारण बन सकता है। अध्ययन में पाया गया है कि मोटे लोगों में किडनी फेल होने का खतरा सामान्य लोगों की तुलना में सात गुना ज्यादा होता है। सैन फ्रांसिस्को स्थित यूनिवर्सिटी आफ कैलिफोर्निया और कैसर परमानेंट ऑफ नार्दन कैलिफोर्निया डिवीजन आफ रिसर्च के शोधकर्ताओं के इस अध्ययन को 'एनल्स आफ इंटरनल मेडिसिन' पत्रिका के जनवरी संस्करण में प्रकाशित किया गया। तीन लाख बीस हजार लोगों पर किये अध्ययन के तहत वर्ष 1964 और 1985 के बीच स्वास्थ्य जांच के दौरान उनकी लंबाई और उनके वजन का माप लिया गया।

मस्तिष्क में संकुचन से पागल हो सकते हैं स्वस्थ लोग

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

मस्तिष्क के किसी एक भाग में संकुचन मानसिक तौर पर दुरुस्त अधेड़ लोग भी पागल हो सकते हैं, या उन्हें इससे सम्बन्धित अल्जाइमर्स जैसे गम्भीर रोग भी हो सकते हैं। इस बारे में जामा पत्रिका में प्रकाशित एक रिपोर्ट में कहा गया है कि मस्तिष्क के 'एमिग्डला' व 'हिप्पोकैम्पस' नाम के हिस्सों में होने वाले संकुचन से पागलपन अथवा अल्जाइमर्स व्याधि के बारे में पता लगाया जा सकता है। रिपोर्ट के अनुसार संकुचन का असर दिमाग पर लगभग छह महीने के बाद शुरू होता है। दरअसल अल्जाइमर्स के कारण ही पागलपन की अवस्था होती है। शोधकर्ताओं को विश्वास है कि इस अध्ययन के परिणाम के बाद इस रोग की रोकथाम करने में काफी मदद मिलेगी। मस्तिष्क की माप के सटीक तरीकों से पेश किया जा सकता है। चिकित्सकों ने इस अध्ययन के लिए 511 स्वस्थ अधेड़ों को शामिल किया।

असुरक्षित माहौल से बच्चे हो सकते हैं मोटे

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

अगर आप ऐसे स्थान पर रहते हैं, जहां सुरक्षा का स्तर काफी कम है, तो आपके बच्चे में मोटापा बढ़ने की प्रवृत्ति हो सकती है। एक शोध के बाद वैज्ञानिकों का कहना है कि जो क्षेत्र सुरक्षा की दृष्टि से बेहतर होते हैं, वहां बच्चों में यह शिकायत नहीं होती। मिशिगन विश्वविद्यालय की शोधकर्ता जूली ल्यूमेंग व उनके सहयोगियों ने अमेरिका में 10 चुनिंदा इलाकों में रहने वाले छह से 11 वर्ष तक के बच्चों पर यह अध्ययन किया। उन्होंने बताया कि हमने इन बच्चों के अभिभावकों को एक प्रश्नावली दी थी और इसके जरिये उनसे उनके क्षेत्रों के सुरक्षा स्तर के बारे में जानकारी हासिल की गयी। इस प्रश्नावली को चार वर्गों में बांटा गया था। अभिभावकों के जवाब के हिसाब से क्षेत्रों का मूल्यांकन किया गया। जूली ने बताया कि क्षेत्रों के वर्गीकरण के अनुसार वहां रहने वाले बच्चों की लम्बाई और वजन का माप थोड़े-थोड़े समय के अंतराल पर किया गया।

अल्जीमर्स का इलाज: तालाब की काई से

-दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

तालाबों और नालियों के ऊपर बिछी रहने वाले नीले-हरे शैवाल (काई) दिमागी बीमारी 'अल्जीमर्स' के उपचार में सहायक होते हैं। स्विस विश्वविद्यालय ने कल बताया कि अमेरिका के तालाबों और नालियों से लाये गये 'नास्टॉक' शैवाल के प्रयोगशाला परीक्षणों से पता चला है कि इनमें 'नॉस्टाकार्बोलिन' नामक तत्व पाया जाता है जो अल्जीमर्स बीमारी के एक कारक 'कोलिनेस्टेरेज' को प्रभावहीन कर देता है। शोधकर्ताओं की यह खोज अमेरिका स्थित 'जोर्नल ऑफ नैचुरल प्रॉडक्ट्स' और स्विस अकॉदमिक इंटरनेट पत्रिका 'एथलाइफ' और 'यूनीपब्लिक' में प्रकाशित की गयी।

विटामिन 'डी' से बचें गर्भवती महिलाएं

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

गर्भवती महिलाओं को विटामिन 'डी' की अधिक मात्रा से बचना चाहिए। डॉक्टरों की सलाह उनके लिए बेहतर साबित हो सकती है। डॉक्टरों का कहना है कि विटामिन 'डी' की अत्यधिक मात्रा गर्भ में पलने वाले बच्चे के लिए खतरनाक होती है।

परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी

1. प्र०:-पादलिप्तसूरि कहां के वासी थे ?
(a) काशी (b) अयोध्या
(c) मथुरा (d) हरिद्वार

2. प्र०:- सार्तविक सत्व के कितने भेद हैं ?
(a) 7 (b) 10 (c) 16 (d) 4

3. प्र०:- गर्भिणी कृश विशेष रूप से किस माँस में होती है ?
(a) 6 (b) 5 (c) 17 (d) 4

4. प्र०:- गर्भ में सबसे पहले हृदय की उत्पत्ति होती है ? यह किसका मत है ?
(a) भद्रकाप्य (b) कुमार शिरा भरद्ववज
(c) काकांयन (d) पुनर्वसु आत्रेय

5. प्र०:- चरक अनुसार अक्षक अस्थि की संख्या कितनी है ?
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 10

6. प्र०:- शारीर स्थान में अंतिम प्राणायतन कौन-सा बताया गया है ?
(a) माँस (b) गुदा
(c) शिर (d) अस्थि

7. प्र०:- रक्तज कृमियों की संख्या कितनी है ?
(a) 5 (b) 2 (c) 6 (d) 3

8. प्र०:- अपस्मार के कितने भेद हैं ?
(a) 4 (b) 3 (c) 2 (d) 7

9. प्र०:- पित्त नानात्मज विकार क्तिने हैं ?
(a) 80 (b) 40 (c) 20 (d) 10

10. प्र०:- आमवात शब्द का प्रयोग चरक में किस रोग की चिकित्सा में बताया गया है ?
(a) हरीतकी (b) कंस हरीतकी
(c) गुडूची (d) उक्त कोई नहीं

11. प्र०:- बल के कितने प्रकार हैं ?
(a) 3 (b) 2 (c) 1 (d) 4

12. प्र०:- पिप्पली किसी स्कन्ध का द्रव्य है ?
(a) कटु (b) अम्ल
(c) लवण (d) मधुर

13. प्र०:- कृमि चिकित्सा चरक के किस स्थान में मिलती है ?
(a) विमान स्थान (b) शारीर स्थान
(c) सूत्र स्थान (d) निदान स्थान

14. प्र०:- उत्साह किस दोष का प्राकृत गुण है ?
(a) वात (b) पित्त
(c) कफ (d) सन्निपातज

15. प्र०:- गुल्म में किस दोष की प्रधानता होती है ?
(a) पित्त (b) वात
(c) कफ (d) उक्त कोई नहीं

16. प्र०:- अष्टांङ्ग संग्रह के सूत्र स्थान के किस अध्याय में आयुर्वेदावतरण का वर्णन किया गया है ?
(a) 1-2 (b) 3-4
(c) 5-6 (d) 7-8

17. प्र०:- वाग्भट्ट ने वायु की स्थिति किस दोष धातु में मानी है ?
(a) रस (b) रक्त
(c) मांस (d) अस्थि

18. प्र०:- वाग्भट्ट ने रक्तपित्त में किस द्रव्य को अग्रय माना है ?
(a) उशीर (b) चन्दन
(c) वासा (d) हरिद्रा

19. प्र०:- सुश्रुत में शस्त्र कितने बताए गए हैं ?
(a) 10 (b) 20
(c) 30 (d) 4

20. प्र०:- भोजन के विविध पात्रों का वर्णन सुश्रुत संहिता के किस अध्याय में किया गया है ?
(a) सू० 46 (b) सू० 40
(c) सू० 35 (d) सू० 30

21. प्र०:- वाग्भट्ट अनुसार सम अग्नि होने पर भोजन का पाचन कितने याम में होता हैं ?
(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 5

22. प्र०:- वाजीकरण में अग्रय क्या है ?
(a) स्त्री शरीर (b) कौंच के बीज
(c) शतावरी (d) मूसली

23. प्र०:- रसायन का वर्णन अष्टाङ्ग संग्रह के उत्तर तंत्र के किस अध्याय में किया गया है ?
(a) 40 (b) 45 (c) 50 (d) 49

24. प्र०:- वायु का अमृतत्व किस वेद में निर्दिष्ट है ?

(a) ऋग्वेद (b) अथर्ववेद
(c) यजुर्वेद (d) सामवेद

25. प्र०:- रसायन सेवन काल के कितने गुणित दिनों तक रसायन काल के समान ही पथ्यपूर्वक आहार करना चाहिए ?
(a) 1 (b) 2 (c) 3 (d) 4

26. प्र०:- मेषवृष किस का नाम है ?
(a) अग्निवेश (b) इन्द्र
(c) पुनर्वसु आत्रेय (d) चरक

27. प्र०:- किस संहिता में रसायन का प्रयोजन वयःस्थापन बताया है ?
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) शार्ङ्गधर (d) भावप्रकाश

28. प्र०:- वाग्भट्ट के वयःस्थापन गण में कौन-सा द्रव्य नहीं है ?
(a) अमृता (b) पथ्या
(c) धात्री (d) मधु

29. प्र०:- खदिर, अमलक, अरूष्कर, निशा, अभया.... को वाग्भट् ने किस गण में ग्रहण किया है ?
(a) कण्डूहर (b) कुष्ठध्न
(c) अर्शोध्न (d) कण्ठ्य

30. प्र०:- कषाय, रूक्ष व शीतल - ये किसके गुण हैं ?
(a) गुग्गुलु (b) शंखपुष्पी
(c) अगरु (d) महानिम्ब

31. प्र०:- कषाय, मधुर व रूक्ष - ये किसके गुण है ?
(a) वंशरोचन (b) तुगाक्षीरी
(c) शिलाजतु (d) सैन्धव

32. प्र०:- किस लवण का विपाक मधुर होता हैं ?
(a) सामुद्र (b) सौवर्चल
(c) विड (d) रोमक

33. प्र०:- अष्टाङ्ग संग्रह के किस स्थान में अरिष्ट विज्ञान का वर्णन मिलता है ?
(a) शारीर (b) सूत्र
(c) निदान (d) चिकित्सा

34. प्र०:- कौन-सा द्रव्य वृष्य कहा गया है ?
(a) मसूरक (b) राजमाष
(c) कुलत्थ (d) गोधूम

35. प्र०:- संस्थिति को आंग्ल भाषा में क्या कहा जाता है ?
(a) Collocation (b) Theory
(c) Copula (d) Corrollary

36. प्र०:- मीमांसा को आंग्ल भाषा में क्या कहा जाता है ?
(a) Cross Division
(b) Critique
(c) Critical philosophy
(d) Criterion

37. प्र०:- इन्द्रलुप्त किस का विकार है ?
(a) सामरस (b) साम रक्त
(c) साम मांस (d) साम मज्जा

38. प्र०:- प्रादेशिनी अंगुली का प्रमाण क्या है ?
(a) 2 अंगुल (b) 3 अंगुल
(c) 4 अंगुल (d) 5 अंगुल

39. प्र०:- शीतता / ऊष्णता का ज्ञान किस इन्द्रिय के द्वारा किया जाता है ?
(a) चक्षु (b) स्पर्शन
(c) श्रवण (d) घ्रण

40. प्र०:- नियम मरणख्यापक किसे कहा जाता है ?
(a) निदान (b) अरिष्ट
(c) उपद्रव (d) रूप

Answer-Keys

(1) B (2) A (3) A (4) C (5) A (6) A
(7) C (8) A (9) B (10) B (11) A (12) A
(13) A (14) A (15) B (16) A (17) D (18) C
(19) B (20) B (21) C (22) A (23) D (24) A
(25) B (26) B (27) B (28) D (29) B (30) D
(31) A (32) A (33) A (34) D (35) A (36) B
(37) B (38) A (39) B (40) B

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

महाराष्ट्र

मुम्बई

वैद्य श्री सुरेश चतुर्वेदी

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन के नव निर्वाचित अध्यक्ष पद्मश्री वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा जी ने महासम्मेलन की केन्द्रीय शासन सम्पर्क समिति के अध्यक्ष पद पर पद्मश्री वैद्य श्री सुरेश चतुर्वेदी जी को मनोनीत किया है ।

आशा है, वैद्य जी की कर्मठता, कर्तव्यपरायणता एवं मिलनसारिता जैसे गुणों की उपयोगिता से आयुर्वेद के प्रचार, प्रसार हेतु शासन तंत्रों से सहयोग प्राप्त करने एवं उन्हें आयुर्वेद को देश विदेश में विकसित कराने के दायित्व का निर्वाह करने की शक्ति प्रदान करने में मिलेगी ।

Solapur

National Seminar on Panchakarma

March 9 & 10, 2006

Organised by : Seth Govindji Raoji Ayurved Mahavidyalaya, Solapur

Sponsored by : Government of India, Department of AYUSH, Ministry of Health & Family Welfare, New Delhi.

First Circular

It gives us immense pleasure to invite you for the 'National Level Seminar on Pancharkarma' organised by Seth Govindji Raoji Ayurved Mahavidyalaya, Solapur, on March 9&10, 2006, with the help of Govt. of India, Deptt. of AYUSH. The motive behind organizing this Seminar on 'Panchakarma' is to understand the glimpses of Panchakarma and to propagate it globally. It is beneficial for students, physicians and general practioners. Panchakarma merely not cures the disease but they are useful for prevention of the diseases, restoration and healthy life style. So for advanced concepts of Ayurveda and Panchakarma, we have organized this seminar, so that most of eminent scholars from National level should come on a platform for scientific discussion and demonstration will be performed. This will help for the scholars for their updating knowledge.

We therefore request you to kindly give wide circulation among students, teachers and physicians. Research papers are invited from scholars of Ayurveda and other disciplines. Last date for submission of abstract (300 words) is 1/2 2006 and full paper with C.D. should reach by 15 2/22006. The language of paper & presentation must be in Hindi or English.

Registration : You are requested to fill the attached registration form and send to organizing secretary, by dt. 15/02/2006 with registration fees (along with abstract papers & CDs).

Registration fee :

Registration fee	Upto date 15/02/2006	Spot registration
Teachers/ Physicians	400/-	600/-
Students	200/-	400/-

* Registration fees include breakfast, tea, lunch, dinner.

* Registration fee will be received by cash or a bank draft drawn in favour of Principal, Seth Govindji Raoji Ayurved Mahavidyalaya, Solapur, 'National Seminar or Panchakarma' payable at Solapur - 413002 (Maharashtra), India.

Address for all communications :-

Chief coordinator,
Dr. P.S. Nandgaonkar
Principal, S.G.R. Ayurved College,
Samrat Chowk, Solapur - 413002
Contacts - Mobile - 9822802430
College - (0217) 2324736, 2728385

उत्तर प्रदेश

आयुर्वेद महासम्मेलन की जनपद कार्यकारिणी घोषित

बाँदा 21 दिसम्बर, 10 दशक पर कर चुके देश के सर्वाधिक प्राचीन आयुर्वेद संगठन अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन, दिल्ली के बाँदा जनपद अध्यक्ष डॉ० मदन गोपाल वाजपेयी ने जिला कार्यकारिणी की घोषणा कर दी है । इन्होंने कहा है कि सभी पदाधिकारी भारतीय चिकित्सा पद्धति के विकास तथा इसके चिकित्सकों को संगठित करने में जुट जायें । डॉ० वाजपेयी ने कहा कि देश का सर्वाधिक प्राचीन एक मात्र यही संगठन है जिसने

अंग्रजों तक को भारत की प्राचीन चिकित्सा पद्धति को मान्यता देने के लिए विवश कर दिया था । यद्यपि हमारी सरकार आयुर्वेद को बढ़ाना चाहती है पर चिकित्सक स्वयं इसके प्रति जागरूक नहीं है ।

जनपद अध्यक्ष डा० वाजपेयी ने कहा कि जनपद में आयुर्वेद यूनानी संविदा चिकित्साधिकारियों के साक्षात्कार अग्रिम आदेश तक के टाल दिये गये थे जिस पर आज तक जिला प्रशासन ने ध्यान नहीं दिया । मण्डल के एक मात्र अतर्रा आयुर्वेद कॉलेज में स्टॉफ और संसाधन की कमी से पढ़ाई लिखाई का समुचित वातावरण निर्मित नहीं हो पा रहा, कॉलेज का इण्डोर एकदम नगण्य है । उन्होंने जनपद आयुर्वद सम्मेलन के पदाधिकारियों का आह्वान करते हुए कहा कि घर-घर, गाँव-गाँव में आयुर्वेद का पहुँचायें । चिकित्सक बन्धु सी०एम०ओ० कार्यालय में हुये पंजीयन का नियमित नवीनीकरण कराते रहें । वरिष्ठ उपाध्यक्ष डा० राजेश शर्मा ने कहा कि बढ़ती महँगाई और दवाओं के दुष्प्रभाव को देखते हुए आयुर्वेद चिकित्सा ही सर्वोत्तम विकल्प है । बैठक में जिलास्तरीय पदाधिकारियों की घोषणा इस प्रकार की गयी ।

वरिष्ठ उपाध्यक्ष - डा० राजेश शर्मा (अतर्रा), **उपाध्यक्ष** - (1) डा० श्रीराम त्रिपाठी (रिसौरा) (2) डॉ० सतीश भट्ट (बाँदा) (3) वैद्य राजकिशोर मिश्र (गिरवाँ) (4) वैद्य महादेव प्रसाद तिवारी (गोखिया), **महामंत्री** - डा० मृदुला शर्मा (अतर्रा), **संगठन मंत्री** - डा०सईद अहमद (बाँदा), **संयुक्त मंत्री** - डा० आर०एस० द्विवेदी (बिसण्डा), **प्रचार मंत्री** - डा० शीतल प्रसाद त्रिपाठी (तिन्दवारी), **कोषाध्यक्ष** - डा० भोला गौतम (करतल), **आय-व्यय निरीक्षक** - श्री नरेन्द्र कुमार तिवारी (पनगरा), **कार्यकारिणी सदस्य** - डा० सूर्यपाल तिवारी, अतर्रा, डा० नाथू राम साहू, अतर्रा, डा० आर० एस० पाठक, अतर्रा, डा० राम सजीवन कुशवाहा, ओरन, डा० विष्णु त्रिपाठी, नरैनी, डा० सोहन लाल, बनियाताला, वैद्य बाबा बसन्त, नरैनी, डा० माता प्रसाद सिंह, करतल, डा० प्रवीण साहू, नरैनी, डा० मो० इसरायल, श्री हरिशरण मिश्र, बाँदा, वैद्य राम औतार गन्धा (बाँदा) को दायित्व सौंपा गया।

सचिव 'स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण' भारत सरकार को अवमानना की नोटिस

बाँदा (का.सं.) :- याची डॉ० मदन गोपाल वाजपेयी प्रधान सम्पादक चिकित्सा पल्लव द्वारा उ०प्र० परिक्षेत्र के भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् चुनाव 2004 में सम्मिलित होने हेतु नामांकन पत्र भरा गया था, जिसे चुनाव अधिकारी डा० रक्षा गोस्वामी द्वारा गलत तरीके से निरस्त कर दिया गया था । क्षुब्ध होकर डा० वाजपेयी द्वारा भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् नियमावली की धारा 4(1) के तहत एक अपील विपक्षी के समक्ष 2004 में ही प्रेषित की, जिस पर कोई कार्यवाही न होने के उपरान्त याची ने रिट याचिका सं० 68707/05 दाखिल की । इस पर मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद ने दि० 27 अक्तूबर 2005 को याचिका को निस्तारित करते हुये विपक्षी को दो माह के अन्दर याची के प्रत्यावेदन एवं अपील को निस्तारित करने का आदेश पारित किया । इसके बावजूद भी विपक्षी द्वारा कोई आदेश पारित न करने के कारण याची द्वारा एक अवमाननावाद सं० 226/06 मा० उच्च न्यायालय इलाहाबाद में याजित किया गया जिस पर दि० 17 जनवरी 06 को मा० उच्च न्यायालय ने विपक्षी श्रीमती उमा पिल्लै, सचिव स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय आयुष विभाग, भारत सरकार, नई दिल्ली को अवमानना नोटिस जारी की ।

हिमाचल प्रदेश

कैंसर जैसी बीमारियों से बचाते हैं भारतीय व्यंजन

फाइबरयुक्त भोजन लेने की सलाह दी

दैनिक आहार में शामिल भारतीय व्यंजन कैंसर जैसी बीमारियों से लड़ने में सहायक होते हैं । आयुर्वेदिक शोध ने साबित कर दिया है कि फाइबरयुक्त भारतीय शाकाहारी भोजन कैंसर के कारकों को रोकने में अति लाभकारी होते हैं । अधिक मांस और तीखा भोजन करने वाले देशों में कैंसर ज्यादा होती है ।

यह कहना है स्थानीय औद्योगिक क्षेत्र में स्थित

चड्ढा ट्रेडर्स के तत्वावधान में बवासीर एवं गुदा कैंसर पर रविवार को आयोजित गोष्ठी में पहुंचे आयुर्वेदिक विशेषज्ञों का । उनका कहना था कि प्याज एवं संतुलित भारतीय भोजन गुदा कैंसर के कारणों को कम करता है । गोष्ठी में विभिन्न वक्ताओं के विचारों से एक अन्य बात उभर कर सामने आई है कि विशेष आयुर्वेदिक औषधियों के नियमित सेवन से बवासीर और गुदा कैंसर जैसे रोगों में जीवनभर बचा जा सकता है ।

इस अवसर पर भोजन में फाइबर को अधिक मात्रा से कैंसर से बचाव के लाभों के बारे में भी चर्चा की गई । आयोजन के मुख्य अतिथि पूर्व स्वास्थ्य उपनिदेशक एवं लोक सेवा आयोग के सदस्य डा० रामेश्वर शर्मा ने बताया कि मल के अंतड़ियों में अधिक देर तक रहने से गुदा कैंसर के पनपने का भय रहता है । इसलिए फाइबरयुक्त भोजन इसके लिए विशेष लाभकारी है ।

यह मल को अंतड़ियों से धकेलने का काम करता है । गोष्ठी में डा० गोपाल कृष्ण चड्ढा ने बवासीर के इलाज के लिए क्षार सूत्र पद्धति को अतिलाभकारी बताया । गोष्ठी में विशेषज्ञों ने कहा कि आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति से कैंसर के इलाज के प्रति प्राप्त उपलब्धियों के बारे में चिकित्सक वर्ग को जागरूक करने, जनचेतना का प्रचार करने तथा साहित्य द्वारा विभिन्न कैंसरों और उनके निदान के बारे में आम नागरिक को लेखों द्वारा जागरूक करने के कार्यों पर जोर दिया जा रहा है । डा० चड्ढ़ा ने बताया कि इस तरह की यह 12वीं गोष्ठी है तथा इसी विषय पर अगली गोष्ठी 2006 में आयोजित की जाएगी । इससे पूर्व डा० रामेश्वर शर्मा ने आयुर्वेद के जन धनवंतरी की प्रमिा के आगे दीप प्रज्जवलित करके गोष्ठी का शुभारंभ किया ।

नाहन

अस्थि कैन्सर पर गोष्ठी

डा० गोपाल चड्ढा के सौजन्य से विगत् दिनों अस्थि कैंसर पर एक गोष्ठी आयोजित की गयी । इस गोष्ठी में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार रखे । इसी तरह शिमला में भी कैन्सर पर एक गोष्ठी आयोजित की गयी । इसमें डा० बलजीत सिंह, कटराई ने भी भाग लिया । दिल्ली में आयोजित समारोह में 25 हजार प्रचार सामग्री वितरित की गयी ।

वृद्ध महिलाओं के लिए आयोजित समारोह में 227 रोगियों का उपचार किया गया । इस अवसर पर शर्मा ने बताया कि 80% महिलाओं को घुटनों एवं कमर-दर्द की शिकायत रहती है ।

बैद्यनाथ

लवणभास्कर चूर्ण

मन्दाग्नि को दूर कर
पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

सम्पादकीय

कुष्ठ रोग पर भारत की विजय : गुजरात कुष्ठ निवारण में अग्रणी

सरकारी सूत्रों के अनुसार भारत ने कुष्ठ रोग पर विजय प्राप्त कर ली । विश्व स्वास्थ्य संगठन की परिभाषा के अनुसार यदि 10,000 आबादी पर एक कुष्ठ रोगी होता है, तो इसका अर्थ है कि कुष्ठ रोग का निवारण हो गया है । 31 दिसम्बर, 2005 तक हमारे देश में प्रति 10,000 पर 0.95 मामले आये, अर्थात् एक से कम । किन्तु, इससे हमें संतोष नहीं करना चाहिए । हम भारतवर्ष से कुष्ठ रोग का पूर्ण निवारण चाहते हैं । केन्द्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री, श्री अम्बुमणि रामदास के अनुसार ऐसा आगामी 20-25 वर्षों में सम्भव हो सकता है, क्योंकि अण्डे सेने की अवधि 20-25 वर्ष तक की होती है । आंकड़ों के अनुसार विहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में आबादी का 41% है । इन राज्यों में प्रति 10,000 आबादी पर एक से लेकर तीन तक कुष्ठ रोगी हैं जो कुल मामलों का 60% होता है । इसी तरह दिल्ली, चण्डीगढ़, दादरा और नगर हवेली में कुष्ठ रोगियों की संख्या काफी ज्यादा है, अर्थात् प्रति 10,000 पर 2 से लेकर 3 तक है । सम्भवत: इसका कारण यह है कि पड़ोसी राज्यों के रोगी चिकित्सा के लिए आते हैं । सम्प्रति छत्तीसगढ़ में कुष्ठ रोगियों की संख्या सबसे ज्यादा है । अर्थात् प्रति 10,000 पर 2.44 कुष्ठ रोगी छत्तीसगढ़ में हैं और दिल्ली में 2.11 । मेघालय में सबसे कम कुष्ठ रोगियों की संख्या है । इसकी दर प्रति 10,000 में 0.11 है । चारों दक्षिणी राज्यों में इसकी दर प्रति 10,000 पर 0.60 है, यद्यपि अपंगता की जड़ काफी है ।

हमारे देश में गुजरात राज्य की प्रगति कुष्ठ-निवारण के क्षेत्र में प्रशंसनीय है । 30 जनवरी, 2006 को गांधी निर्वाण दिवस के अवसर पर गुजरात राज्य ने राष्ट्रपिता के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि इस अर्थ में दी है कि विश्व स्वास्थ्य संगठन ने राज्य को कुष्ठ मुक्त राज्य घोषित कर दिया है । विदित है कि महात्मा गांधी को कुष्ठ रोगियों से विशेष प्रेम था । 1985 में गुजरात रज्य में कुष्ठ रोगियों की संख्या प्रति 10,000 आबादी पर 21.1 थी । सरकार के अथक प्रयास से इसका प्रतिशत घटकर प्रति 10,000 पर 0.67 रह गयी है । राष्ट्रपति श्री ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ने जनवरी, 2004 में रायपुर (छत्तीसगढ़) में आयोजित राष्ट्रीय कुष्ठ सम्मेलन से अवसर पर अन्य राज्यों को गुजरात से प्रेरणा लेने की सलाह दी थी । महामहिम की सलाह का असर अनय राज्यों पर पड़ा अथवा नहीं, गुजरात पर अवश्व पड़ा । राज्य के स्वास्थ्य मंत्री, श्री अशोक भट्ट के अनुसार 1999 से अबतक 5,300 कुष्ठ रोगियों का आपरेशन हो चुका है । इस महायज्ञ में 30 से ज्यादा प्रशिक्षित प्लास्टिक सर्जन और अस्थि रोग विशेषज्ञ शामिल थे । इन लोगों का प्रशिक्षण गुजरात, मुम्बई, चेन्नई, कोयम्बटूर एवं अन्य केन्द्रों में हुआ । प्रशिक्षित चिकित्सकों के अतिरिक्त 100 सदस्यीय मेडिकल टीम का भी गठन किया गया था जिसमें नर्स एवं अन्य स्टाफ शामिल थे ।

गुजरात राज्य की हम जो भी आलोचना करें, किन्तु कुष्ठ-निवारण की दिशा में इसने जो कार्य किया है, वह प्रशंसनीय है ।

स्नेहिल एवं सुखी परिवार तथा बच्चों की मेधा शक्ति

बुखारेस्ट स्थित शोधककर्त्ताओं ने बड़े पैमाने पर अध्ययन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि पारिवारिक वातावरण का असर बच्चों की मेधाशक्ति पर पड़ता है । पांच उन बच्चों पर अध्ययन किया गया जो अनाथ आश्रम में थे । बड़े होने पर उनकी मेधाशक्ति का विश्लेषण किया गया । इसी तरह उन बच्चों पर अध्ययन किया गया जो पहले अनाथ आश्रम में थे, फिर बाद में उन्हें सुखी परिवार वालों ने अपनाया । दोनों के अध्ययन के पश्चात् यह पाया गया कि अनाथ आश्रम के औसत बच्चों में अपनाये गये पारिवारिक बच्चों की अपेक्षा 10 प्रतिशत मेधाशक्ति कम थी । शोधकर्मियों ने इस सम्भावना से इंकार किया कि अनाथ आश्रम के बच्चों को कम पौष्टिक आहार दिया गया । पौष्टिक आहार दोनों तरह के बच्चों को दिया गया था ।

आयुर्वेदिक ग्रन्थों में बच्चों की मेधाशक्ति की व्यापक चर्चा है । प्रसन्नता है कि आयुर्वेद में दिये गये सिद्धान्त आज भी शोध पर पूरी तरह खरे उतर रहे हैं ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-76

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

सुश्रुत संहिता

सुश्रुत संहिता के उत्तरतंत्र के अट्ठाइसवें अध्याय में स्कन्धग्रह प्रतिषेध का वर्णन है । इस रोग से आक्रान्त बच्चों की शान्ति के लिए ऐरण्ड आदि वातघ्न वृक्षों के पत्तों का परिषेचन करना बताया गया है । ऐलादिगण का सुरा, माण्ड और पर्वत निम्ब के कल्क मिश्रित तैल से अभ्यंग करने का विधान बताया गया है । देवदारु, रास्ना, राजादन आदि मधुर वृक्षों के क्वाथ में दूध के साथ सिद्ध घृत पीने का विधान है । सरसों, सर्प-निर्मोको, वच, काकादनी, घी, अजा, गौओं के बाल सहित धूम बालकों को सेवन कराना चाहिए । गिलोय, इन्द्रवल्ली, शमी (जड़), विल्व के कांटे, इन्द्रायण की जड़ की माला बनाकर पहनाना चाहिए ।

इसके अतिरिक्त बलिदान, हवन आदि का वर्णन है ।

उनतीसवें अध्याय में स्कन्दापस्मार प्रतिषेध का व्याख्यान है । इसमें कुछ प्रकार के क्वाथ का बरतना, धूपन के लिए गीध, उल्लू का मल, केश, हाथी के नख, घी, बैल के बालों को बरतना चाहिए । सारिवा, कुक्कटी औषध, कौंच, कन्दूरी की माला पहनानी चाहिए । बलि, उपवास आदि का भी प्रावधान है ।

तीसवें अध्याय में शकुनी प्रतिषेध का वर्णन है । इसमें जलवेतस, आम, कैथ क्वाथ आदि परिषेचन में बरतना चाहिए । सिद्ध तैल का अभ्यंग में बरतना, शरीर पर लेप, धूपन द्रव्यों का बरतना, शतावरी, इन्द्रायण, बड़ी दन्ती, कटेरी, सहदेवी, लक्ष्मणा, बड़ी कटेरी आदि को धारण करना, बलि, पूजा आदि विधियों का वर्णन इस रोग में है ।

इकतीसवें अध्याय में रेवती प्रतिषेध का वर्णन है । इसमें अश्वगन्ध, काकड़ाश्रृंगी, सारिवा, पुनर्नवा, गुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारी आदि कषाय का परिषेक में उत्तम
अभ्यंग के लिए सिद्ध तैल, सिद्ध घृत को पीने के
देना, आदि विषयों का वर्णन है ।

बत्तीसवें अध्याय में पूतना प्रतिषेध, द्रव्यों
द्रव्यों द्वारा धूम देना, बलि देना आदि विषयों का वर्णन

तैंतीसवें अध्याय में अन्य पूतना प्रतिषेध,
वृक्षों के पत्तों का क्वाथ बरतना, द्रव्यों से सिद्ध घृत
लेपन, मुर्गे का मल, केश, चर्म, सांप, पुरानी गुदड़ी
का धूप देना, बलि देना आदि विषयों का समावेश है ।

चौतीसवें अध्याय में शीत पूतना प्रतिषेध
वर्णन है । इसमें कुछ द्रव्यों के क्वाथ परिषेक में
सिद्ध तैल एवं घृत का सेवन, धूम देना, शीतपूतना
द्वारा रक्षा करना आदि विषयों का वर्णन है ।

पैंतीसवें अध्याय में मुखमण्डिका प्रतिषेध,
के क्वाथ से बालकों को स्नान कराया जाना, अभ्यंग
सिद्ध घी का सेवन, गौशाला के बीच में बलि देना,
कराया जाना आदि विषयों का वर्णन है ।

छत्तीसवें अध्याय में नैगमेष-प्रतिषेध का
है । स्नान करने के लिए बिल्व, अग्निमंथ, करंज का
बरतना, सुरा, सुराबीज और कांजी से परिषेक कराया
पकाये तैल का सेवन, घृतपाक का सेवन, बच्चों
उत्सादन, रात्रि में धूप देना, बलि, नैगमेष देव द्वारा
की रक्षा आदि विषयों का समावेश है ।

सैंतीसवें अध्याय में ग्रहोत्पत्ति अध्याय का
है । बालकों के स्कन्दादि वाले नौ ग्रह, कृत्तिका
अग्नि और महादेव के द्वारा उत्पन्न ग्रह, ग्रहों का
तामसी होना, पार्वती द्वारा नैगमेष ग्रह का निर्माण,
उत्पन्न स्कन्दापस्मार ग्रह, इसका दूसरा नाम विशाख
स्कन्द का नाम "कुमार' होना, वैद्यों का अल्प ज्ञानी

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

ग्रहों द्वारा स्कन्द के पास जाना, स्कन्द का महादेव से अनुरोध करना, स्कन्द ग्रह का उग्र होना आदि विषयों का समावेश है ।

अड़तीसवें अध्याय में योनि व्यापत् प्रतिषेध का वर्णन है । योनि रोग का उत्पन्न होना, बीस योनि रोग, वातज पांच योनि रोग-उदावर्ता, बन्ध्या, विप्लुता, परिप्लुता और वातला । पित्तज़ पांच योनि रोग-रूधिरक्षरा, वामिनि, स्रंसिनी, पुत्रघ्नी, पित्तला और कफज पांच योनि रोग-अत्यानन्दा, कर्णिनी, अचरणा, अतिचुरणा, श्लेष्मला । सन्निपातज पांच योनि रोग-षण्डी, फलिनी, पहती, सूचीवक्त्रा और सर्वजा, उदावर्त्ता योनि में झाग के साथ रज का कठिनाई से आना, बन्ध्या में आर्त्तव का नष्ट होना, विप्लुता में वेदना का होना, परिप्लुता में सहवास के समय पीड़ा का होना, वातला योनि का कर्कश होना, लोहित क्षरा, वामिनी योनि प्रस्रंसिनी योनि, पुत्रघ्नी योनि और पित्तला योनि की प्रथम चार योनि रोगों में पित्त की अधिकता रहती है । अत्यानन्दा योनि, कर्णिनी योनि, अचरणा योनि, अतिचरणा योनि, श्लेष्मला योनि की प्रथम चारों में कफ के लक्षणों की प्रधानता होती है । षण्डी योनि, विभिन्न योनियों के कारण उत्पन्न रोगों की चिकित्सा, प्रक्षालन, शीतल चिकित्सा, शोधन, दूध, मांसरस एवं अन्न का सेवन सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

उनचालीसवें अध्याय में ज्वर प्रतिषेध का वर्णन है। इस अध्याय में ज्वर का रूद्र भी कोपाग्नि से उत्पन्न होना, इसका रोगों का राजा होना, ज्वर की परिभाषा, ज्वर के आठ प्रकार, सम्प्राप्ति, ज्वर उत्पन्न होने के कारण, ज्वरित ज्वर, पूर्वरूप, वातजन्य ज्वर, पित्तजन्य ज्वर, कफजन्य ज्वर, सन्निपात ज्वर, सन्निपात के लक्षण, सन्निपातजन्य कष्ट साध्य और असाध्य ज्वर, अभिन्यास, हतौजस, सन्यास, ओज के निरोध से उत्पन्न सन्निपात, वात-पित्तजन्य, वात-कफजन्य और पित्तकफ जन्य ज्वर एवं इनके लक्षण, औषधि देने का समय, मांसाहार, कल्याणक घृत, पंचगव्य घृत विभिन्न प्रकार के घृत, पित्त ज्वर में शमन एवं विरेचन चिकित्सा, जीवनीयगण की औषधियां, अनुवासन करना, बस्ति देना, न्यग्रोधादि, औरग्वधादिगण, आरग्वधादि, अनुवासन, अभ्यंग आदि विषयों का समावेश है ।

चालीसवें अध्याय में अतिसार प्रतिषेध का जिक्र है । इस अध्याय में अतिसार उत्पन्न होने के कारण, सम्प्राप्ति, अतिसार के प्रकार, अतिसार के पूर्वरूप, वातातिसार, पित्तातिसार, कफातिसार, सन्निपातजन्य अतिसार, आमातिसार, पक्वातिसार, इनके लक्षण एवं चिकित्सा, प्रवाहिका, प्रवाहिका की परिभाषा, उत्पन्न होने के कारण, ग्रहणी की परिभाषा, इसके लक्षण एवं चिकित्सा, हितकारी घृत, अग्निदीपक चिकित्सा सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

इकतालीसवें अध्याय में शोष प्रतिषेध का वर्णन है । त्रिदोष लक्षणों के कारण कठिनाई से जानने योग्य, परस्पर विरोधी चिकित्सा के कारण कष्ट साध्य, अति बलवान रोग-शोष, एक ही प्रकार का सन्निपातजन्य शोष, क्षयरोग उत्पन्न होने के कारण, राजयक्ष्मा के छह रूप, ग्यारहरूप, शोष उत्पन्न होने के कारण, शुक्र, मज्जा, अस्थि, मेद और मांस का क्षय, शोक शोषि, जरा शोषि, अध्व शोषी, व्यायामजन्य शोष, असाध्य शोष, पूर्व रूप, शिरोविरेचन, शोधन, व्यवायशोषी, शोष नाशक, द्रव्य, आहार एवं औषधि, यक्ष्मानाशक घृत, कल्क से सिद्ध किया घृत, प्लीहोदर, षट्पल एवं अन्य तीन घृत, पुण्यकारी उपदेश सुनना आदि विषयों का समावेश है ।

बयासीसवें अध्याय में गुल्म प्रतिषेध का वर्णन है । इसमें गुल्म की परिभाषा, प्रकार, आश्रयस्थल, निरूक्ति, गुल्म का कुपित होना, पूर्वरूप, वातजन्य गुल्म, पित्तजन्य गुल्म, कफ जन्य गुल्म, सन्निपात जन्य गुल्म, रक्तजन्य गुल्म इनकी चिकित्सा, औषधि आदि का वर्णन है । साथ ही चित्रकादिघृत, हिंग्वाद्यघृत, दाधिक घृत, रसोनादिघृत, पंचतृणमूल क्वाथ, आरग्वधादि गण, पानीयक्षार, क्षार, अरिष्ट, सिरामोक्षण, वर्त्ति का गुदा में रखना, शूल की निरुक्ति, वातजशूल, पित्तजन्य शूल, कफजन्य शूल, सन्निपातिक

शूल, इनके लक्षण, परिभाषा, चिकित्सा, परहेज एवं औषधि का समावेश है। साथ ही पार्श्वशूल, कुक्षिशूल, शूलनाशक द्रव्य, हृदयशूल, मूत्र शूल, पुरीष शूल, शूलनाशक गुटिकायें आदि का जिक्र है।

तैंतालीसवें अध्याय में हृद् रोग प्रतिषेध का वर्णन हैं। वातादि दोषों से तीन प्रकार का हृदय रोग, सन्निपात से चार प्रकार का एवं कृमिजन्य हृदयरोग आदि विषयों का समावेश है।

चौवालीसवें अध्याय में पाण्डुरोग प्रतिषेध का वर्णन है। चार प्रकार के पाण्डुरोग-वातादि पृथक् दोषों से तीन प्रकार का और एक साथ कुपित हुए तीन दोषों से एक प्रकार का। वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य, पूर्वरूप, पाण्डुरोग को कामला, अपानकि, पाण्डुरोग, कुम्भाहृय, लाधरक, अलासक नाम है। इनके लक्षण, कामला के भेद, उपद्रव, चिकित्सा, औषधि आदि विषयों का समावेश है।

पैंतालीसवें अध्याय में रक्तपित्त प्रतिषेध का वर्णन है। इसमें ऊर्ध्वगामि रक्तपित्त का साध्य होना, अधोगामि रक्तपित्त का याप्य होना, दोनों भागों में प्रवृत्त होने वाला रक्तपित्त का असाध्य होना, पूर्वरूप, इसके लक्षण, चिकित्सा और औषधि का समावेश है। रक्तपित्त नाशक छह उत्तम योग, अनुवासन में घृत का उत्तम होना, अर्शों में रक्त का अतिस्राव होने पर रक्तपित्त की चिकित्सा, वमन एवं उत्तर वस्तियों का प्रयोग आदि विषयों का समावेंश है।

छियालीसवें अध्याय में मूर्च्छा प्रतिषेध का वर्णन है। छह प्रकार की मूर्च्छा-तीन वातादि दोषों से, रक्त, मद्य एवं विष से मूर्च्छा, मूर्च्छा के लक्षण अपस्मार के समान, मूर्च्छाओं में घृत, सिद्ध दूध, अनार दाने से जांगल मांसरस, जौ और लाल चावल, मटर, शर्करा को हरड़ के साथ और पिप्पली को मधु के साथ चाटना, शिरोविरेचन एवं तीक्ष्ण वमन का प्रयोग, अविलम्ब चिकित्सा आदि विषयों का समावेश है।

सैंतालीसवें अध्याय में पानात्यय प्रतिषेध का वर्णन है। मद्य का उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, आशुकारी, व्यवायी और विकासी होता है। मद्य अम्लरस में होना, स्निग्ध अन्न, स्निग्ध मांस और भक्ष्यों के साथ सेवन किया गया मद्य आयु एवं बल की वृद्धि के लिए, अतिमात्रा में सेवन करने से मद का होना, मद्य की तीन अवस्थायें, कफप्रकृति, अल्प मद्यपान से अधिक कष्ट नहीं होना, किन्तु पित्ताधिक पीड़ा, भोजन के बिना मद्य के प्रयोग पर पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण, भयानक पान विभ्रम से रोगों का उत्पन्न होना, वातजनित पानात्यय, परमद, पानाविभ्रम आदि रोगों के लक्षण, चिकित्सा और सहित अनेक विषयों का समावेश है। क्वाथ, सुगन्धित पेय, पित्त की चिकित्सा, पित्तज्वर की चिकित्सा, रोहिणी सिरा का वेधन, दुखदायी दाह, लक्षण और चिकित्सा, रक्तक्षय के कारण दाह में नाशक, स्निग्ध एवं वातनाशक चिकित्सा का हितकारी आदि विषयों का समावेश है।

अड़तालीसवें अध्याय में तृष्णा प्रतिषेध का है। इसमें तृष्णा की परिभाषा, लक्षण, सात प्रकार तृष्णा-वात, पित्त, कफजन्य तीन, व्रणनिमित्तजन्य, जन्य, आमसमुद्भवा और स्निग्धादि भोजन निमित्तजा तृष्णा की चिकित्सा, औषध, सब प्रकार की तृष्णाओं पित्तनाशक विधि, कषाय रस का प्रयोग, सभी प्रकार तृष्णाओं में लेप, अवगाहन, परिषेचन, शीतलघरों का विरेचन, दूध, मांसरस, घृत, मधुर एवं शीतल बरतना सहित अनेक विषयों का समावेश है।

उनचालीसवें अध्याय में छर्दि प्रतिषेध का है। इस अध्याय में छर्दि (वमन) उत्पन्न होने के पूर्वरूप, वातजन्य, पित्तजन्य, कफजन्य, सन्निपात कृमिजन्य, सब प्रकार की छर्दियों द्वारा उत्क्लेश करना, वातादि दोषों की विरोधी औषधियों से युक्त संसर्जन क्रम को वमन, विरेचन के पीछे बरतना,

शामक कषाय, कफजन्य छर्दि में आरग्वधादि गण का क्वाथ या दशांग योग का मधु के साथ प्रयोग चिकित्सा एवं औषधि का समावेश है ।

पचासवें अध्याय में हिक्का प्रतिषेध का वर्णन है । इसमें हिक्का की परिभाषा, वायु कफ से मिलकर अन्नजा, यमला, क्षुद्रा, गम्भीरा और महती नाम की पांच हिक्कायें, पूर्वरूप, महाहिक्का और गम्भीरा हिक्का का असाध्य होना, हिक्का की चिकित्सा, औषधि, अनुपान आदि विषयों का समावेश है ।

इक्कावनवें अध्याय में श्वास प्रतिषेध का वर्णन है। श्वासरोग की परिभाषा, श्वास के पांच भेद-क्षुद्रक, तमक, छिन्न, महान और ऊर्ध्व श्वास, पूर्व रूप, लक्षण, श्वास, कास, हिक्का, हृदय रोग में हरड़, बिड़नमक और हींग के साथ दस साल पुराना घृत देना श्रेष्ठ है । श्वास और कास के लिए घी का उपयोग, शीतल घृत को मधु के साथ खाना, द्रव्यों से सिद्ध घी का प्रयोग, हिंस्राादि, श्रृंग्यादि, स्रवहादि, सौवर्चलादि, गोपवल्ली घृत श्वास, कास में बरतना चाहिए । वासाघृत, षट्पलघृत श्वास रोग में उत्तम है। पांच लेह-तिमिर के बीज, कर्कटश्रृंगी का चूर्ण, (2) धमासा, पिप्पली, कुटकी, हरड़ (3) सेह, मोर इनके रोम, कोला (चव्य), पिप्पली तण्डूल (4) भार्गी की छाल,सोंठ, शर्करा, शल्लक की छाल, (5) नृत्त कौण्डक के बीज-घी और मधु के साथ चाटना, श्वास-कास नाशक योग, स्नेहन और स्वेदन देना, वर्त्ति, धूम देना, वमन और विरेचन, संस्कृत आनूप मांस का सेवन, आदि विषयों का समावेश है ।

बावनवें अध्याय में कास प्रतिषेध का वर्णन है । कासरोग की उत्पत्ति के कारण, मांस की परिभाषा, पूर्वरूप, वातजनित कास, पित्त जनित कास, कफ जनित कास एवं क्षतज कास के लक्षण, सामान्य चिकित्सा एवं औषधि, षट्फल घृत, घृतहर द्रव्य, श्वास, अग्निमांद्य, स्वरभेद तथा पांचों कासों की औषधि, तीनों कास की औषधि, ईख के रस में पकाये घृत का सेवन, रसायन एवं घृत का प्रयोग सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

तिरपनवें अध्याय में स्वरभेद प्रतिषेध का वर्णन है । इस अध्याय में छह प्रकार के स्वरभेद, वातजनित, पित्तजनित और कफ जनित स्वरभेद, सन्निपात जन्य स्वरभेद, क्षयजन्य, मेदक्षय के लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि, यवक्षार और अजवायन, चित्रक और आंवला देवदारु और चित्रक तीन प्रकार के घृत का सेवन करना सहित अनेक विषयों का समावेश है ।

चौवनवें अध्याय में कृमिरोग प्रतिषेध का वर्णन है । कफजन्य और रक्तजन्य कृमियों का आश्रयस्थल, बीस प्रकार की कृमि की जाति, पुरीषज, कफज, रक्तज-तीन प्रकार के भेद, अजवा, विजवा, किप्य, चिप्य, गण्डूपद, चूख, द्विमुखा-सात प्रकार के पुरीषजन्य कृमि - इनके लक्षण और इनसे होने वाले रोग, दर्भपुष्प, महापुष्प, प्रलून, चिपिट, पिपीलिक, दारूण भेद से छह प्रकार के कफजन्य कृमि, आकार, इनसे उत्पन्न होने वाले रोग, केशदा, रोमदा, नखादा, दन्तादा, किक्किशा, कुष्टजा और परिसर्पा भेद से सात प्रकार के रक्तजन्य कृमि, इनके आकार और लक्षण, वमन और विरेचन देना, आस्थापन बस्ति, स्नेह बस्ति, विडंग, सुरसादिगण में पकाया तैल, क्वाथ, चिकित्सा, निदान परिवर्जन चिकित्सा, औषधि आदि विषयों का समावेश है ।

पचपनवें अध्याय में उदावर्त्त प्रतिषेध का वर्णन है । इस अध्याय में उदावर्त्त उत्पन्न होने के कारण, लक्षण और चिकित्सा, तेरह प्रकार के उदावर्त्त, अपथ्य भोजन के कारण उत्पन्न होते वाले उदावर्त्त, वातजन्य उदावर्त्त, पुरीष वेग, मूत्रवेग, जृम्भा, अश्रुजन्य उदावर्त, छींक के रोकने से, उद्गार रोकने से, छर्दि रोकने से, शुक्र के उपस्थित वेग को रोकने से, भूख के उपस्थित वेग को रोकने से, तृष्णा को

रोकने से, जल्दी चलने या परिश्रम से उत्पन्न श्वास को रोकने से, निद्रा के उपस्थित वेग को रोकने से उत्पन्न होने वाले रोग, इनके लक्षण और चिकित्सा का वर्णन है । स्नेहन और स्वेदन, अभ्यंग में घृत का उपयोग, तैल-लवण से अभ्यंग आदि चिकित्सा-विधियों तथा औषधि का वर्णन है ।

छप्पनवें अध्याय में विसूचिका प्रतिषेध का वर्णन है । इस अध्याय में विसूचिका की परिभाषा, लक्षण, अलसक, विलम्बिका, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है ।

सत्तावनवें अध्याय में अरोचक प्रतिषेध का वर्णन है । इस अध्याय में अरोचक की परिभाषा, इसके प्रकार, वातजन्य अरोचक, पित्तजन्य अरोचक, कफजन्य अरोचक, सन्निपातजन्य अरोचक आदि के लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है ।

अट्ठावनवें अध्याय में मूत्राघात प्रतिषेध का वर्णन है । इस अध्याय में बारह प्रकार के मूत्राघात, वात कुण्डलिका, वाताष्ठीला, वातबस्ति, मूत्रातीत, मूत्र संक्षय, मूत्र ग्रंथि, मूत्र शुक्र, उष्णवात, मूत्रौकेसाद, मूत्रोत्संग, मूत्र जठर- इनके लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है । स्नेहन-स्वेदन, विरेचन, वृंहण विधि, बलाघृत, महाबलघृत आदि विषयों का समावेश है ।

उनसठवें अध्याय में मूत्रकृच्छ्र प्रतिषेध का वर्णन है । आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र-वायु, पित्त, कफ, सन्निपात, अभिघात, शकृत, अश्मरी और शर्करा से उत्पन्न-इनके लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है ।

साठवें अध्याय में अमानुषोपसर्ग प्रतिषेध का वर्णन है । इसमें क्षतरोगी की निशाचरों से रक्षा, राक्षस, ग्रह से आक्रान्त, गन्धर्वग्रह गण, यक्षग्रह, पितृग्रह, सांप से आक्रान्त - इनके लक्षण आदि विषयों का समावेश है । इसके साथ ही भूतविद्या, बलि, बलि के नियम, द्रव्य, अंजन, बर्तियां, घृत आदि विषयों का भी वर्णन है ।

इकसठवें अध्याय में अपस्मार प्रतिषेध का वर्णन है । इस अध्याय में अपस्मार उत्पन्न होने के कारण, पूर्वरूप, चार प्रकार के अपस्मार, वातजन्य अपस्मार, पित्तजन्य अपस्मार, कफजन्य अपस्मार, सन्निपातजजन्य अपस्मार, आगन्तुज, दोषजन्य आगन्तुज, अभ्यंग में उत्तम तैल, शिरोविरेचन वमन, सिद्धार्थक घृत, उन्माद को नष्ट करना, रोग के लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है ।

बासठवें अध्याय का नाम उन्माद प्रतिषेध है । मानस मनोजन्य उन्माद, पांच प्रकार के उन्माद-वात, पित्त, कफ, सन्निपात, मानसिक दु:ख से उत्पन्न, विष के कारण उत्पन्न छठा उन्माद इनके लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है । इसके साथ ही सरसों का चूर्ण, नस्य एवं अभ्यंग, घृत, फलघृत, सिरावेधन आदि विषयों का समावेश है ।

तिरसठवें अध्याय का नाम रसभेद अध्याय है । दोषों का पन्द्रह प्रकार से प्रसर कहा जाना, तिरसठ रस भेद, पन्द्रह संयोग दो रसो के संयोग से, त्रिक, चार रसों के संयोग, छह रसों के संयोग आदि विषयों का समावेश है ।

चौंसठवें अध्याय का नाम स्वस्थवृत्त अध्याय है । स्वस्थवृत्त का प्रयोजन, ऋतु में प्रकुपित होने वाले दोषों की चिकित्सा । वर्षा ऋतु, शरद ऋतु, हेमन्त ऋतु, शिशिर ऋतु, ग्रीष्म ऋतु एवं प्रावृड् ऋतु में उत्पन्न होने वाले रोग, इनके लक्षण, चिकित्सा एवं औषधि का वर्णन है ।

पैंसठवें अध्याय का नाम तंत्रयुक्ति अध्याय है । इसमें बत्तीस तंत्रयुक्तियां, इनसे लाभ, औषध द्रव्यों से सिद्ध तैल, योग, पदार्थ, हेत्वर्थ, अपवर्ग, विरेचन, वमन, आक्षेपपूर्वक प्रश्न, प्रकरण के अनुसार नाम विधान, दूषित व्रण, समुच्च आदि विषयों का समावेश है ।

छियासठवें अध्याय का नाम दोष भेद विक है । इस अध्याय में रसभेद विकल्प के बासठ भेद, प रसों से अविकृत हुए तीन दोष, सातों धातु, मल और मू से उत्पन्न शरीर, षोडशकलावाला पुरुष, एकादश प्राण, ए हजार एक सौ बीस रोग, पांच सौ तेहत्तर द्रव्य, उत्तर तंत्र क महत्व आदि विषयों का समावेश है ।

उत्तरांचल में प्राकृतिक रूप से पैदा होनेवाले खाद्य फलों की उपादेयता एवं व्यवसायीकरण

डा० मायाराम उनियाल, सेवानिवृत्त निदेशक (आयुर्वेद), वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका)

आदिकाल से ही मानव एवं जीव-जन्तु अपनी दैनिक खाद्य सामग्री की आवश्यकताओं के लिये वनसम्पदा पर आश्रित रहते आये हैं । हमारे दैनिक उपयोग की भोजन सामग्री एवं रहन-सहन आदि अनेकानेक वस्तुओं का स्रोत वनसम्पदा है । वनसम्पदा पर आधारित जीवनरक्षक जड़ी-बूटियाँ, कृषि सम्बन्धी उपयोगी काष्ठ, कुटीर उद्योग, ऊर्जा, मसाले, सुगन्धित तैल, जंगली फल आदि खाद्य सामग्री में उपयोगी वनस्पति पादप मुख्य है ।

उत्तरांचल के जनपदों में जंगली रूप में पैदा होने वाले आहारोपयोगी फलों का महत्व वैदिककाल से चला आ रहा है । आदिमानव ने जंगली फलों एवं मूलकन्दों को मुख्य आहार माना है । हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों काल में भी इस प्रकार के कतिपय जंगली रूप में स्वयंजात फलों का उल्लेख मिलता है । सँहिता ग्रन्थों एवं पौराणिक ग्रन्थों में कदली (केला), अनार (दाडिम), जामुन, कैंथ, अखरोट, नारियल, निम्बू, बीजपूरक, ताल, पूग आदि फलों का विशद रूप से उल्लेख है । आज भी कपितय ग्रामीण आदिवासी बहुल प्रान्तों, म०प्र० (बस्तर) संथाल-परगना, छोटानागपुर, (झारखंड), उड़ीसा, सिक्किम, जम्मू-कश्मीर, हिमाचल प्रदेश एवं उत्तराञ्चल के जनपदों में स्वयंजात, जंगली पादपों का उपयोग प्राचीन काल से परम्परागत रूप से ग्रामीण लोग अपने दैनिक रूप में खाद्य-सामग्री के रूप में प्रयोग करते हैं ।

लेखक के विचार से उत्तरांचल के जनपदों में वन्यरूप से स्वयंजात कई किस्मों के ऐसे फल तथा शाक हैं यदि इनका उचित ढंग से संरक्षण किया जाय तथा इन फलों का उपयोग ग्रामीण लघु उद्योग के रूप में जैम, स्क्वैश, चटनी, अचार, जूस, शर्बत आदि उत्पादों का निर्माण कर इनका व्यावसायिक रूप दिया जाय तो इस क्षेत्र के लोगों के रोजगार के साथ-साथ आर्थिक विकास सुचारु रूप से हो सकता है । विशेष रूप ग्रामीण महिलाओं को अपने आर्थिक स्रोत को बढ़ाने में सफलता मिल सकती है ।

प्रस्तुत लेख में उत्तराञ्चल के जनपदों में प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाले आहारोपयोगी फलों की जानकारी शीर्षक लेख में देने का प्रयास किया है । उत्तराञ्चल हर्बल राज्य के विकास में लघु ग्रामीण उद्योग व्यवसाय में वन्य स्वयंजात फलों के संरक्षण एवं सम्बर्धन में इनकी उपादेयता बढ़ेगी तथा इन फलों द्वारा उत्पादित जैम, जैली, स्क्वैश, शर्बत एवं वन्य फलों के व्यवसायीकरण से ग्रामीणों के आर्थिक स्रोत का विकास होगा । इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए उत्तराञ्चल में प्राकृतिक रूप से मिलने वाले ग्रामीण पारम्परिक फलों की पहचान, नामरूप परिचय एवं गुणधर्म की जानकारी निम्न प्रकार से दी जा रही है ।

द्रव्यनाम संस्कृत - दारुहरिद्रा, दार्वी
हिन्दी - दारुहरिद्रा
यूनानी - जिरिश्क
गढ़वाली - किनगौड़
कुमांऊ - काशमल, तोतर
लैटिन - *(A) Berferis aristata DC*
- *(B) B. asiatica Roxb. Ex.DC*
- *(C) B. Lycium Royle.*

कुल N.O. दारुहरिद्राकुल - Berberidaceae

वानस्पतिक स्वरूप :- उपरोक्त तीनों किस्मों के झाड़ीनुमा बहुशाखीय काँटेदार गुल्म होते हैं । काण्ड बाहर से हरितवर्ण का छाल भीतर से पीतवर्ण की एवं पुराना काण्ड व मूल पीला होता है । पुष्प संख्या में अधिक, गुच्छों में सघन, मंजरियों में भी खिलते हैं । फल-पकने पर नीलाभ एवं कृष्णवर्ण के होते हैं । पके फल में बारीक बीज संख्या में 5,6 पाये जाते हैं । फल गूदा स्वाद में मीठा नीले रंग का स्वरस होता है । ग्रामीण लोग फलों के पकने पर चाव से खाते हैं । फूलों की चटनी बनाकर खाते हैं ।

प्राप्तिस्थान :- उत्तराञ्चल के सभी जनपदों हरिद्वार को छोड़कर । इसके गुल्म 100 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,400 मीटर की ऊँचाई तक सड़कों एवं खेतों के मेड़ों, गड्ढा-गड्ढों की सर्वत्र स्वयंजात पाये जाते हैं हिमालय में अन्य कतिपय प्रजातियाँ भी उत्तराञ्चल 2700 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,300 मीटर की ऊँचाई तक पाई जाती हैं ।

से०नि०निदेशक, आयु०एवं ज्योतिष चिकि०परामर्श केन्द्र, नीलिगिरी । म.नं. 42-बी, सैक्टर-34, नोयडा (उ.प्र.

पुष्पकाल - अप्रैल - जून ।
फलकाल - जून-अगस्त ।
प्रयोज्य अंग - औषध में, मूल, काण्ड, छाल एवं रसौंत ।
फलकाल - मई, जून ।
प्रयोज्य अंग - काष्ठ, छाल, पुष्प, फल ।

आयुर्वेद में काष्ठ, छाल एवं काण्ड का उपयोग नेत्ररोग, मुखरोग, यकृतरोग, अर्श (वबासीर) व्रणरोपण, ज्वरघ्न एवं रक्तशोधन के रूप में प्रयोग होता है । मूल एवं काण्ड के क्वाथ से निर्मित घनसत्व (रसौंत) का प्रयोग-नेत्रविन्दु, व्रणरोपण एवं शोथघ्न के रूप में किया जाता है ।

वक्तव्य :- फलों का उपयोग केवल ग्रामीण दीपन-पाचन के रूप में करते हैं । व्यावसायिक रूप से इसके फलों का उपयोग अभी तक नहीं किया जा रहा है । अत: इसके फलों के गूदे से स्क्वैश एवं शर्बत तैयार कर ग्रामीण उद्योग के माध्यम से ग्रामीणों का आर्थिक स्तर बढ़ाया जा सकता है ।

2. **द्रव्यनाम** - स्थानिक - तिमला, तिमिला ।
लैटिन - *Ficus Roxburghii wall.*
N.O. उदुम्बरकुल Urticaceae

वानस्पतिक स्वरूप :- मध्यम आकार गुल्म एवं वृक्ष, काण्ड मृदु पोला पत्र-मसृण, तोड़ने पर श्वेताभ दूध निकलता है । फल के अन्दर पुष्प अनेक, कच्चे फल हरित हल्के रोमिल वृत्त युक्त गुच्छों में आते हैं । उत्तराञ्चल में इसके गुल्म शिवालिक वनखण्ड के ट्रोपिकल जोन के पर्वतीय भू-भाग में सभी जनपदों 1500 मीटर की ऊँचाई तक सुलभ है । फलकाल- अप्रैल से जून ।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण लोग अपक्व फलों को उबालकर शाक के रूप में प्रयोग करते हैं । कच्चे फलों का आचार भी बनाया जाता है । पके फल स्वाद में मधुर एवं रक्तवर्ण के होते हैं ।

वक्तव्य:- कुटीर उद्योग में कच्चे फलों का आचार तैयार कर व्यावसायिक रूप में बिक्री की जा सकती है । पके फलों की बिक्री से आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है । पत्तों का प्रयोग पत्तलों के रूप में एवं मवेशियों के चारे के रूप में उपयोग किया जाता है । तिमला उत्तराञ्चल के आर्थिक स्रोत का पादप है ।

3. **द्रव्यनाम** - संस्कृत - अञ्जीर (जंगली) ।
गढ़वाली,कुंमाउनी- बेड़ू ।
लैटिन - *Ficus palmata urticaceae*
N.O. उदुम्बरकुल Urticaceae

वानस्पतिक स्वरूप :- मध्यम आकार का बहुशाखीय गुल्म होता है । काण्ड एवं पत्र को तोड़ कर दूध जैसा सफेद स्राव निकलता है । फल कच्चे अवस्था में हरितवर्ण के पकने पर बैंगनी रंग के होते हैं । उत्तराञ्चल के सभी जनपदों में 900 मीटर की ऊँचाई से लेकर 1500 मीटर की ऊँचाई तक इसके गुल्म सर्वत्र स्वयंजात पाये जाते हैं ।

प्रयोज्य अंग - फल
फलकाल - मई-जुंलाई ।

स्थानिक प्रयोग - इसके परिपक्व फल स्वाद में मधुर होता है । फलों का अचार तैयार किया जा सकता है । इसी प्रकार इस प्रजाति के अन्य किस्म गूलर, उदुम्बर एवं खैणां किस्मों के फलों का उपयोग खाद्य सामग्री में ग्रामीण करते हैं ।

4. **द्रव्यनाम** - स्थानीय - बमोर, ममोर ।
लैटिन - *Cornus capitata wall.*

वानस्पतिक स्वरूप :- मध्यम आकर के बहुशाखीय गुल्म, पुष्प पीताभवर्ण के फल पकने पर हल्के पीताभ, गोल । उत्तराञ्चल में इसके गुल्म 1200 मी० ऊँचाई से लेकर 1800 मीटर की ऊँचाई तक प्राय: सभी जनपदों में सुलभ है ।

प्रयोज्य अंग - फल
फलकाल - जून - जुलाई ।

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण लोग पके फलों को बड़े चाव से खाते हैं । फल, मांसल, मधुर एवं बीज युक्त होते हैं । व्यावसायिक दृष्टि से पके फलों से जैम तैयार कर कुटीर, लघु उद्योग के माध्यम से स्थानिक ग्रामीण महिलाओं का आर्थिक लाभ मिल सकता है ।

5. **द्रव्यनाम** - स्थानिक - गढ़वाली, घिंगारु ।
लैटिन - *Crataegus oxyacantha*

Linn.

कुल - गुलाबकुल Rosaceae.

वानस्पतिक स्वरूप :- बहुवर्षायु-बहुशाखीय गुल्म, काण्ड कण्टकित, पत्र-दन्तु: मसृण, काण्ड- कठोर, फल पकने पर रक्त वर्ण के गुच्छों में पत्रकोण, मांसल, बीज युक्त स्वाद में कषाय मधुर ।

उत्तराञ्चल में इसकी झाड़ियाँ गदेरों खालों एवं नमी वाले स्थानों पर प्राय: 1200 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,100 मीटर तक प्राय: सभी जनपदों में स्वयंजात पाये जाते हैं ।

स्थानिक प्रयोग :- ग्रामीण यदा-कदा इसके पके हुये फल खाते हैं । स्वाद में फल कषाय-मधुर होते हैं। लेखक के विचार से इन पके हुये फलों से जैम तैयार किया जा सकता है । व्यवसायीकरण करने से आर्थिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है ।

6. **द्रव्यनाम** - स्थानिक - गढ़वाली, हिंसर, हिंसालु ।
लैटिन - *Rubus ellipticus*
स्थानिक - गढ़वाली, कलिहिंसर, आंचु ।
लैटिन - *Rubus niveus wall.*
or R. paniculatus

वानस्पतिक स्वरूप :- बहुवर्षायु कण्टकित झाड़ीनुमा आरोही गुल्म, काण्ड-मृदु, रोमिल, झाड़ीदार, पत्र- अभिमुख, पुष्प-श्वेम वर्ण के फल पकने पर नारंगी वर्ण के मांसल एवं स्वाद में मधुर होते हैं । इसकी दूसरी किस्म को कलिहिंसर कहते हैं । स्वाद में मधुर एवं रंग में कृष्णाभवर्ण के होते हैं ।

उत्तराञ्चल में दोनों किस्में सभी जनपदों में 900 मीटर से 2100 मीटर तक स्वयंजात पायी जाती हैं ।

प्रयोज्यअंग - फल ।

फलकाल - अप्रैल-मई ।

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण पके फलों को बड़े चाव से खाते हैं । लेखक के विचार से पके फलों से जैम तैयार किया जा सकता है । उत्तराञ्चल के हेल्थटूरीज्म में इसके उत्पाद का व्यवसायीकरण कर ग्रामीणों के आर्थिक स्तर को विकसित किया जा सकता है ।

7. **द्रव्यनाम** - संस्कृत - अम्लवेतस ।
गढ़वाली - अमिस, लद्दाखी-आमील, तखू।
लैटिन - *Hippophae rhamnoides*
Linn.

वानस्पतिक स्वरूप - मध्यम गुल्म का बहुशाखीय पादप है । इसके काण्ड पर हल्के कांटे पाये जाते हैं । पत्र जलवेतस सदृश, पुष्प-पत्रकोणीय फल-गुच्छों में पकने पर नारंगी वर्ण के मांसल रसदार मटर के दाने के आकार में फल पकने पर पीतवर्ण के रसदार, मांसल स्वाद खट्टे होते हैं । इसकी अन्य किस्म भी उत्तराञ्चल में पाई जाती है जिसे अमिस Hippophae salicifolia Don कहते हैं । इसके भी फल पीतवर्ण के स्वाद में खट्टे (अम्ल) होते हैं ।

प्राप्तिस्थान - उत्तराञ्चल में दोनों किस्में अपर टौन्स घाटी, जमुनाघाटी, भागीरथी घाटी, अलकनन्दा घाटी, पिंडार घाटी आदि घाटियों में नदी-नालों के आसपास 2,100 मीटर की ऊँचाई से लेकर 3,300 मीटर की ऊँचाई तक पाया जाती हैं ।

पुष्पकाल - मार्च - अप्रैल ।

फलकाल - अगस्त - सितम्बर ।

प्रयोज्य अंग - फल, छाल ।

स्थानिक प्रयोग - सीमान्त क्षेत्र में इसकी लकड़ी का जलावन के रूप में प्रयोग किया जाता है । परिपक्व फल स्वाद खट्टे (अम्ल) होते हैं जोकि अम्ल होते हुये पित्तशामक, हृदयबल्य हैं ।

वक्तव्य - हिमालय की यह दिव्यौषधि है । आयुर्वेद का यह शास्त्रीय अम्लवेतस फल है । आधुनिक खोजों से यह पता चला है कि इसका स्वरस हृदय के लिए बलकारक, पाचक तथा कति जीवनीय तत्वों से भरपूर है । कुटीर उद्योग में फलों के स्वरस से जूस, जैम आदि तैयार कर हेल्थ टूरीज्म में इसका उपयोग किया जाना चाहिये ताकि ग्रामीण महिलाओं को रोजगार का साधन उपलब्ध करा सकें ।

8. **द्रव्यनाम** - संस्कृत - आम्रातक ।
हिन्दी - अम्वाड़ा, गढ़वाली-अमरा ।
लैटिन - *Spondia pinnata kure.*

वानस्पतिक स्वरूप - मध्यम आकार के वृक्ष, काण्ड-बहुशाखीय, पत्र - क्रमानुसार मसृण, पुष्प -पीताभ-हरीत, फल-लम्बे-अण्डाकार, पकने पर मांसल, गुठलीदार, कच्चे फल खट्टे होते हैं ।

उत्तराञ्चल के शिवालिक वनक्षेत्र एवं 900 मीटर की ऊँचाई तक प्राय: सर्वत्र इसके वृक्ष पाये जाते हैं । कुछ भागों में इसके वृक्ष लगाये हुये भी पाये जाते हैं ।

पुष्पकाल - मार्च - अप्रैल ।
फलकाल - अगस्त-सितम्बर ।
प्रयोज्य अंग- फल ।

स्थानिक प्रयोग - ग्रामीण लोग प्राय: इसके फलों का आचार तैयार करते हैं और घरेलू रूप में उपयोग करते हैं । पके फलों से जैम या स्क्वैश तैयार किया जा सकता है । इसके फलों का ग्रामीण कुटीर उद्योग में आचार एवं जैम आदि उत्पाद तैयार कर व्यवसायीकरण किया जा सकता है ।

9. **द्रव्यनाम** - संस्कृत - कटफल ।
हिन्दी - कटफल ।
गढ़वाली-कुमांयू- काफल, काफलो ।
लैटिन - *Myrica nagi Thumb.*

वानस्पतिक स्वरूप - मध्यम आकार के बहुशाखीय गुल्म । गुल्म सदाहरित छाल-बाह्य भाग खुरदरा तोड़ने पर रक्ताभवर्ण का, पर्ण-मसृण, पुष्प गुच्छों में मञ्जरी सदृश, फल- कच्चे हरिताभ, पकने पर रक्ताभवर्ण के मांसल, स्वाद में मधुर, बीज कठोर गुठलीदार ।

उत्तराञ्चल के मध्य हिमालय का सर्वविदित गुल्म है । गर्मियों के दिनों में मसूरी, नैनीताल, देहरादून आदि पर्यटक स्थलों पर ग्रामीण लोग इसके फलों को सैलानियों को बेचते हैं ।

पुष्पकाल - अक्टूबर-दिसम्बर ।
फलकाल- मई -जून ।
प्रयोज्य अंग - छाल, फल ।

वक्तव्य - लेखक के विचार से इस सदाहरित पादप का उत्तराञ्चल में संरक्षण, सम्वर्धन की विशेष जरूरत है ।

10. **द्रव्यनाम** - संस्कृत - विकंतक ।
हिन्दी - विलंगर ।
गढ़वाली - कंडाई, कांगू ।
लैटिन - *Flacourtia indica Merr.*

वानस्पतिक स्वरूप :- मध्यम आकार के कण्टकि गुल्म । पुष्प-पीताभ हरितवर्ण के फल पकने पर गुलाबी वर्ण के मांसल स्वाद में मधुर ।

उत्तराञ्चल में इसके गुल्म 800 मीटर ऊँचाई से लेकर 1200 मीटर की ऊँचाई तक प्राय: सभी जनपदों में पाये जाते हैं । स्थानिक ग्रामीण इसके पके हुये फलों को खाते हैं ।

इसके अतिरिक्त उत्तराञ्चल में कतिपय पारम्परिक चिकित्सा एवं खाद्य सामग्री में उपयोग फल, बीज, शाक उत्तराञ्चल में स्वयंजात वनों एवं गांवों के आसपास पाये जाते हैं । इनका उपयोग कुटीर उद्योग में किया जा सकता है । संक्षिप्त जानकारी निम्न प्रकार से है ।

1. आंवला (आमलकी), *Embilica officinalis* फल ।
2. जम्मू (जामुन), *Syzyginum jambos Linn* फल ।
3. लिसोड़ा (श्लेष्मातक) *Cordia dichotama Fonst.* फल ।
4. शहतूद (शहतूत) केमू *Morus acedosa Griff.* फल ।
5. सुंगला (समाकदाना)- *Rhus parviflora Roxb.* फल ।
6. जख्या, हुलहुल - *Cleum viscosa Linn.* बीज ।
7. मेहल - *Pyrus pashia Ham.* फल ।
8. बदर (बेर) *Zizyphus juguba Lan.* फल ।
9. मालफल, मालू *Bauhinia Vahlii W of A* बीज ।

इसके अतिरिक्त कुछ प्रमुख वन्य शाक हैं । ग्रामीण लोग विशेष रूप से अपने दैनिक जीवन में भोजन में प्रयोग करते हैं ।

1. कंडाली, सिसनू, हिन्दी-बिच्छुबूटी , *Urtrica dioica L.* पत्रशाक ।
2. बरमूला, बरमूली, *Megacarpca polyandra Ben* पत्रशाक ।
3. जरगू *Phytolacea acinosa Roxb.* पत्रशाक ।
4. लिंगरा, लिंगडू *Diploplazium esculutum* शाक ।

5. साकिना, सकिन् - *Indigiofera heterantta wall* पुष्पकलिका का शाक ।
6. तैड़, तरुट - *Dioscorea felophylla* राईजोम (मूलकन्द) ।
7. कचनार, ग्यूरियाल - *Bauhinia purpurea* पुष्पकलिका शाक ।
8. कोदू, ओगल *Fagophyrum esculatum* पत्रशाक, बीज ।
9. मधूकपुष्पी (च्यूरा) *Madhuca butyracea (Roxb.) Macd*, फल, पुष्प ।
10. पांगर, पांगरा *Aesculus indica coleber* फल ।

उत्तराञ्चल हर्बल राज्य के विकास में स्थानिक लोक परम्परागत प्रचलित स्थानिक स्वयंजात फलों एवं शाकों का कुटीर उद्योग में व्यवसायीकरण हेतु तकनीकी जानकारी के साथ हेल्थटूरीज्म में इन उत्पादों को विकसित किया गया । इस दिशा में जी.बी.पन्त इन्स्टिस्यूट ऑफ इनवायरमेंन्ट एण्ड डेवेलपमेन्ट, गढ़वाल एकक, श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराञ्चल के वैज्ञानिक श्री मैकुड़ी जी से विचार-विनिमय किया जा सकता है ।

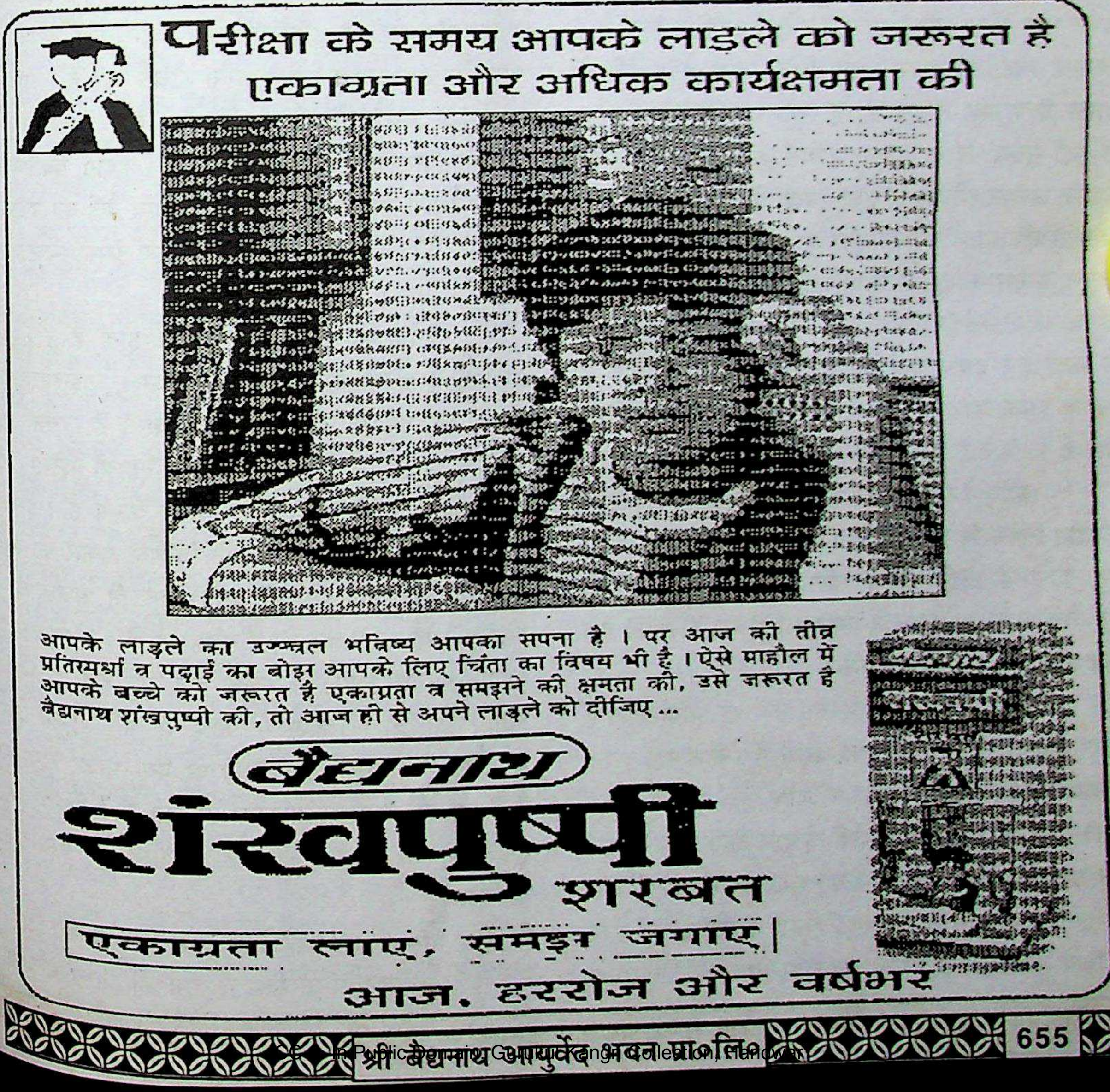

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, इसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत
एकाग्रता लाएं, समझ जगाएं।
आज, हररोज और वर्षभर

हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म-2

*वैद्य ह०श्री कस्तुरे ** वैद्य हरेश व्यास, एम.डी. *** वैद्य तनूजा पटेल, एम.डी.

उत्तरार्ध

हृद्रोग तथा स्नेहनकर्म विचार - स्नेहन दो प्रकार से किया जाता है । आभ्यांतर और बाह्य । आभ्यांतर स्नेहन में स्नेह द्रव्यों का मुख से औषध रूप में पान किया जाता है जिसमें मुख्यत: घृत-तैल-वसा और मज्जा का, शमन या शोधन विधि से पान किया जाता है । वस्तुत: पंचकर्म में पूर्व कर्म के रूप में प्रयुक्त स्नेहन प्राय: शोधन स्वरूप का होता है । वमन-विरेचन इत्यादि कर्म, अवर, मध्यम एवं उत्तम प्रकार से पंचकर्म के रूप में किया जाना हो वहाँ प्रभूत मात्रा में या शोधन मात्रा में स्नेहन अपेक्षित होता है । अन्यथा स्नेहन मात्रा का प्रयोग किया जाता है । दोनों में शमन अल्प मात्रा में एवं शोधन प्रभूत मात्रा में प्रयुक्त होता है यही मुख्य भेद है । प्राय: शोधन के लिये अच्छा स्नेह अर्थात् संस्कार रहित स्नेह प्रधान मात्रा में दिया जाता है और शमन चिकित्सा में संस्कार युक्त घृत-तैल इत्यादि का प्रयोग अल्प या मध्यम मात्रा में किया जाता है । यहां यह स्मरणीय है कि स्नेहन-स्वेदन चिकित्सा पूर्वकर्म की दृष्टि से ही मात्र न करते हुए प्रधान कर्म की दृष्टि से भी कर सकते हैं अर्थात् इसके पश्चात् वमनादिकर्म करना ही चाहिये ऐसा नहीं है ।

हृद्रोग में स्नेहन करने के लिये आधुनिक चिकित्सक के द्वारा निषेध किया जाता है जिससे वैद्य को चिंता रहती है। इतना ही नहीं बल्कि खान पान में भी रोगी को घृत-तैल आदि का सेवन न करने की सूचना दी जाती है। अब इस तथ्य का विचार करेंगे ।

स्नेहन प्रकरण में बार-बार उल्लेख किया जाता है कि सर्वांगगत दोषों में और तीव्रावस्था में स्नेहन नहीं करना चाहिये क्योंकि ऐसी अवस्था में दोषों का निर्हरण करना हितकर नहीं है । धातुओं में दोषों के द्वारा आमावस्था उत्पन्न होने पर स्नेहन करने से आम की वृद्धि हो सकती है और अस्नेहीय प्रकरण में आम प्रथा विकारों में स्नेहपान न करने के लिये कहा गया है । ऐसा करने पर विकार की वृद्धि हो सकती है ।[27] इससे स्पष्ट होता है कि हृद्रोग की तीव्र अवस्था हों - तीव्रशूल हो - जिसमें हृदयाभिघात (च०सि०अ०9 चिकित्सा में वर्णित अवस्था हो तब स्नेहन नहीं किया जाना है । आमावस्था पूर्ण होने के लिये 7 से 21 दिन का समय निर्धारण शास्त्र में किया गया है। उदाहरणार्थ - ज्वर[28] । इसी तरह सभी रोगों में मर्यादा का विचार करना चाहिये । हृद्रोग में भी तीव्रावस्था समाप्त होने पर पर हृद्रोग पूर्णरूप से ठीक हो गया ऐसा समझना नहीं चाहिये । अत: इसकी चिकित्सा दीर्घकाल तक कदाचित् जीवनपर्यंत होती है इसीलिये ऐसी व्याधिवाले रुग्णों को दीर्घकाल तक स्नेहन निषेध करना उचित नहीं है । अन्यथा स्नेहाभाव जन्य रोगों की उत्पत्ति होती है । ऐसे समय में स्नेहपान कराना उचित चिकित्सा है । हृद्रोग प्रकरण में अनेक स्थानों पर अनेक प्रकार के घृत एवं तैल का उल्लेख ग्रन्थ में किया गया है । जिसका औचित्य इससे स्पष्ट होता है ।

स्नेह का शरीर में परिगमन होता है । Lipid Metabolism को देखते हुए कालेस्टीराल, ट्राइग्लीसराईड इत्यादि के डर से जो स्नेह निषेध करते हैं उनको यह समझना चाहिये कि HDL(हाईडेन्सीटी लाज्यो पोटेंस) भी स्नेह ही तो है जो हृद्रोग का प्रतिकार करता है । इसका स्पष्टार्थ यह हुआ कि HDL यानि विशिष्ट प्रकार का स्नेह जिसकी कमी होने पर भी हृयाभिघात हो सकता है। इसलिये स्नेह को "जीवनीय" कहा गया है । जो शाकाहारी (प्राय: भारतीय लोग) हैं उनको तैल और घृत का निषेध किया जाता है । विदेश में 90% से भी अधिक लोग मांसाहारी हैं । उनको हृद्रोग होने पर क्या भोजन दिया जा है ? क्या वे जीवनभर शाकाहर ही लेते हैं ? जिसमें बटर (मक्खन) भी न हो ? घी न हो ? वास्तव में ऐसा देखा नहीं जाता ।

"शुद्ध मांसस्य यह स्नेहा: सा वसा चरिकीर्तिता: ॥"

अर्थात् मांस के साथ में वसा का आभ्यांतर प्रयो

---

* सेवानिवृत्त आयुर्वेद निदेशक, गुजरात राज्य, पंचकर्म कन्सलटेन्ट, आयुर्विज्ञान, अग्रवाल सेन्टर, अहमदाबाद

तो होता ही है । वैसे भी मांसाहारी लोग अस्थि के अंदर की मज्जा को भी खाते हैं । यदि निषेध न किया जाय तो जो केवल मांसाहारी हैं उनके भोजन में कुछ स्नेह की मात्रा अवश्य होती है । जिससे HDL, LDL, VHDL, VLDL इत्यादि का होना संभव है । जो भारतीय लोग केवल शाकाहारी हैं उनमें स्नेह का संपूर्ण निषेध करने पर असंभव-सा लगता है ।

भारत में गरीबी रेखा के नीचे (Below Poverty Line) रहे लोगों में तो पोषक द्रव्यों का ही अभाव रहता है । ऐसे समय में उनको इस प्रकार का स्नेह निषेध अहितकर ही हो सकता है । अति संतर्पण जन्य अवस्था में कदाचित् यह उचित होगा जिसका विचार आगे किया गया है । तथापि सामान्य हृद्रोगी में यह निषेध अनावश्यक है ।

क्या घी और तैल सेवन से कोलेस्टीरोल आदि की मात्रा शरीर में बढ़ती है ? प्रायोगिक रूप से यह देखा गया है कि आयुर्वेद में जो संस्कारित घृत या तैल के प्रयोग किये गये हैं उनसे कालेस्टीरोल की मात्रा में बढ़ोत्तरी नहीं होती । इसलिये निराम अवस्था में हृद्रोगी को शमन विधि से स्नेह देना चाहिए । इस संबंध में ग्रन्थोक्त स्नेहों का विचार आगे करेंगे ।

वातज हृद्रोग में - जिसमें अत्यंत तीव्रशूल, उर:प्रदेश में कोई डंडे से मार रहा हो या कुल्हाड़ी से चीर रहा हो या दो टुकड़े कर रहा हो ऐसी वेदना होती है ।[29] यह वेदना एक्यूट कन्डीशन के बाद प्राय: शमन हो जाती है और हृद्रोग ठीक हो जाता है । किन्तु ऐसा नहीं है क्योंकि परिश्रम, तनाव या हृद्रोग के हेतु का सेवन होने पर कभी-कभी मंद शूल हो ही जाता है । इन अवस्थाओं की तुलना माधवनिदान के हिन्दी व्याख्याकारों ने हृद्शूल (एन्जाइना पेन) और हृद्वाहिनी घनास्त्रता (कोरोनरी डीसीज) के साथ की है । यह दोनों अवस्थायें जीर्ण अवस्था में लम्बे समय तक चलती रहती है । इस काल में अन्य आयुर्वेदीय औषध के साथ स्नेहन चिकित्सा नित्य लाभप्रद होती है । चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट, चक्रदत्त, भेल इत्यादि सभी संहिता में और भैषज्य रत्नावली जैसे संग्रह ग्रन्थों में अनेक प्रकार के स्नेहों का वर्णन हृद्रोग में किया गया है ।

() **चरक संहिता में**

+ सौवीरक तैल - सौवीरक - तक्र के साथ सिद्ध किया हुआ तैल; जिसे लवण, उष्णजल, गौमूत्र के साथ सिद्ध करके देने पर आनाह, गुल्मकाशूल और हद्शूल नष्ट होता है ।[30]
+ पुनर्नवा, देवदारु, पंचमूल, रास्ना, जव, विल्व कुल्थी, बैर के क्वाथ से सिद्धतैल को पुनर्नवादि तैल कहते हैं । जो अभ्यंग एवं पान में सेवन करने से हृदशूल को नष्ट करता है ।[30]
+ हरीतकी, सोंठ, पुष्करमूल, सिद्ध क्वाथ में हिंग, लवण के साथ सिद्ध किया घृत हृदशूल-पार्श्वशूल में लाभ करता है ।
+ हृदय में जब कर्तनवत् शूल होता है तब क्षार और लवण सिद्ध घृत देने का विधान है ।[30] इस तरह सोंठ, त्रिफला, अजवायन, यवक्षार, कचूर, पुष्करमूल, मातुलुंग, गुड़, प्रसन्नात्रिकटु, कंटकारी, गोक्षुर, दोनों प्रकार की बला, आंवला, आत्मगुप्ता, यष्टीमधु, महुवा, शतावरी, पृश्नीपर्णी इत्यादि द्वारा बनाये गये घृत का वर्णन (च०चि०अ०26) में वातिक हृद्रोग प्रकरण में दिया गया है ।

तैलपान कराना हो तब हिंगु, क्षार-लवण के साथ में देना उचित होता है । हिंगुत्रिगुण तैल प्रसिद्ध योग है । जो गुल्म-शूल तथा हृदशूल में कार्य करता है । तैल की मात्रा 5 से 20 मिली तक दे सकते हैं । इसका अनुपान उष्णोदक अथवा पेया विलेपी रखना चाहिये । घृत की मात्रा 10 से 30 मिली तक दे सकते हैं और उसका अनुपान दूध के रखना चाहिये । हृद्रोग में अन्य घृत और तैल का जो वर्णन मिलता है वह निम्न है ।

+ अंशुमति सिद्ध दुग्ध :- आवृत वायु से उत्पन्न हृदशूल में प्रयोग करें ।
+ हृयुपाद्य घृत:- हृद पार्श्वशूल में देना चाहिये ।

- लसूनक्षीरपाक - 2 से 4 औंस (50 से100 मि.लि.) तक प्रयोग करें ।
- भल्लातकादि क्षीर घृत :- इसमें भल्लातक, त्रिकटु, त्रिफला, लवणत्रय एवं क्षीर के साथ घी सिद्ध किया जाता है । यह घृत पांडु ग्रहणी गुल्म उदावर्त एवं हृदशूल में लाभ करता है । इस योग के द्रव्यों से यह स्पष्ट होता है कि यह अधिक स्नेह नहीं है । बल्कि प्रभूत कालीस्टीरोल से पीड़ित रोगियों से भी पाचन शोषण (डायजेशन एण्ड मेटाबोलिज्म) के तंत्र का नियमन करने का कार्य करता है ।
- त्रायमाणादि घृत :- हृद्रोग, कामला, कुष्ठ में कार्य करता है ।
- वासा घृत :- रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, कास और हृद्रोग में कार्य करता है ।[30]
- शतपाकी यष्टीमधु तैल :- हृद्रोग, पांडु, कामला, विसर्प में दाह प्रशमनार्थ प्रयुक्त होता है ।[30]
- महातिक्त घृत :- हृद्रोग, गुल्म पिड़िका, उन्माद, विस्फोट, कास, रक्तपित्त इत्यादि में कार्य करता है ।[30]
- बृहत् शतावरी घृत :- हृद्रोग, शिरोरोग कामला और वातरक्त में कार्य करता है ।[30]
- पिपल्यादि घृत :- ग्रहणी, अर्श, गुल्म, हृद्रोग, शोथ, प्लीहा, उदर, आनाह और मूत्रकृच्छ्र में कार्य करता है ।[30]
- दाडिमादि घृत :- श्वास कास मूढ़वात हृद्रोग पांडु गुल्म और अर्श में लाभप्रद है ।[30]
- त्र्यूषणादि घृत :- कामला वाताष्ठीला और हृद्रशूल में काम करता है ।[30]

() चक्रदत्त में

शालिपर्णा पृश्नीपर्णी इत्यादि सिद्धतैल हृदशूल में देने का विधान है । सहचरादि तैल का प्रयोग घोड़े एवं हाथी के लिये भी कहा है । अर्धावभेदकं हृदशूल, पार्श्वशूल, क्षीणेन्द्रिय कामला और पाण्डु को नष्ट करता है ।[31] वातरक्त और हृद्रोग के लिये गुड़ के साथ घृत का प्रयोग कहा गया है ।[32] हृयुषाद्यघृत का उल्लेख चक्रदत्त में गुल्म और हृदशूल में किया है ।[33] अर्जुनसिद्ध क्षीर हृदाभय में देने का विधान है ।[34] चित्रकघृत प्लीहा गुल्म उदररोग पाण्डुरोग बस्तिशूल हृदशूल, पार्श्वशूल, कटिशूल, उदावर्त, पीनस इत्यादि को दूर करके अग्निप्रदीप्त करता है ।[35] शतावरी घृत का उल्लेख चक्रदत्त ने भी हृदशूल के लिये कहा है ।

() भेल संहिता में

आचार्य भेल के कथनानुसार अचिरोत्थ हृद्रोगी को स्नेहन करके शमन लंघन कराना चाहिये ।[36] अर्थात् भेल के मतानुसार नवीन उत्पन्न हृद्रोग में भी स्नेहपान कराना चाहिये । भल्लातक घृत जीवकादि रसायन घृत-महास्नेह रसायन आदि घृत का भी हृद्रोग में आचार्य भेल ने प्रयोग किया है ।[37]

() सुश्रुत संहिता में -

वातज हृद्रोग में स्नेहपूर्वक वमन कराने का विधान सुश्रुत ने दिया है. ।[38] श्लैष्मिक हृद्रोग में श्यामा-त्रिवृत सिद्ध घृत या श्यामा-त्रिवृत्त विरेचन देने का विधान है ।[39]

() अष्टांग संग्रह एवं अष्टांग हृदय में -

वातज हृद्रोग में पुष्करादियोग क्षारघृत-अम्ल लव के साथ देने का विधान है ।[40] वातज हृद्रोग में त्र्यूष घृत देने का उल्लेख है । क्षीर, दधि, गुड़, सर्पि, मोदक आनूपमांस, हृद्रोग में (चारों को अन्य प्रकार में) वर्ज्य क को कहा है ।[41] श्रेयसिघृत पित्तज हृद्रोग में देने का वि है । अष्टांग हृदय में राजयक्ष्मा चिकित्सा में मांसरस सिद्ध कास श्वास स्वरभेद शोष हृदशूल और पार्श्वशूल में देने विधान है ।[42] सौर्वार्चल घृत हृद्रोग और श्वास के लि निर्दिष्ट है ।[43] इसके उपरांत महास्नेह रास्नादिस्नेह ब तैल का वातज हृद्रोग में उपयोग करने का विधान है

इस तरह से अनेक प्रकार के स्नेहों का हृद्रोग में शमन चिकित्सा के रूप में करने को कहा है । भी क्षार लवण इत्यादि चूर्ण का प्रयोग घृतानुपान से कर लिंये विधान मिलता है । अतः हमारे मत से वातिक में वातहर द्रव्य जैसे रास्ना दशमूल इत्यादि से सिद्ध घृ

प्रयोग, पित्तज हृद्रोग में शतावरी घृत, यष्टिमधु सिद्ध घृत इत्यादि पित्तहर द्रव्यों से सिद्ध घृत का प्रयोग, और कफज हृद्रोग में त्रिकटु, पंचकोल पिप्पली इत्यादि सिद्ध घृत का प्रयोग शमन विधि से करना चाहिये । वहाँ पुनः स्मरणीय है कि शमनविधि में स्नेह की मात्रा 5 से 30 मि.लि. तक देना उचित होगा । हृद्रोग में रोग एवं रोगी का बल देखकर पंचकर्म हेतु स्नेह की मात्रा का निर्धारण करना चाहिये ।

बाह्यस्नेहन

पंचकर्म में बाह्यस्नेहन में अभ्यंग, उद्वर्तन, संवाहन पीडन, पूरण इत्यादि का समावेश किया जाता है । हृद्शूल में विशेषकर वातिक शूल में महानारायणतैल या पंचगुणतैल का मृदु अभ्यंग करना उचित है । इसी प्रकार पैतिक शूल में चंदनबला लाक्षादि तैल, शतावरी तैल, पद्माकादि तैल, क्षीरबलातैल का उपयोग करना चाहिये । कफज हृदशूल में सहचरादि तैल, जलजीरी तैल का प्रयोग अभ्यंग में करें । सन्निपातज एवं कृमिज हृद्रोग असाध्य होने के कारण वहां अधिक विचार नहीं किया है ।

हृद्रोग तथा स्वेदन कर्म विचार -

स्वेदन क्रिया मृदु और तीक्ष्ण दो प्रकार की होती है । वृषण दृष्टि और हृदय पर स्वेदन नहीं करने का विधान है ।[44] या मृदु स्वेदन करने का विधान है । अर्थात् जब तीव्र हृदशूल हो तब स्वेदन किसी भी रूप में नहीं करना चाहिये । हृद्रोग की पुराणी अवस्था में मृदुस्वेदन किया जा सकता है । आचार्य चरक कहते हैं कि आम शेष रहने पर मार्गावरोध के कारण उत्पन्न अग्निनाश मूर्च्छा क्लम विदाह और हृदशूल उत्पन्न होने पर पाचन और स्वेदन कराना चाहिये ।[45] कफज हृद्रोग में शोधन पूर्वक स्वेदन करने का विधान त्रिमर्मीय चिकित्सा अध्याय में आचार्य चरक ने कहा है ।[46] वस्त्रस्वेद, तापस्वेद, हस्तस्वेद (पाणितल स्वेदन) आदि हृद्रोग में मृदु स्वेदन के रूप में दिये जा सकते हैं । अर्थात् ऊनी वस्त्र छाती पर ओढ़ना, साथ में सूती वस्त्र (रूमाल) गरम करके हृद प्रदेश पर स्वेदन करना, पाणितल यानि वैद्य के द्वारा हाथ को आपस में रगड़ के या गर्म करके मृदु पीड़न पूर्वक स्वेदन करना हितावह है । यह देखा गया है कि हृदयावसाद की स्थिति में हाथ-पांव शीत होने लगते हैं और अंत में हृदय प्रदेश ठंडा होने से कुछ काल पश्चात् आतुर की मृत्यु होती है । ऐसे समय में आधुनिक चिकित्सक भी हाथ मलकर रोगी की छाती पर मर्दन करते हैं जिससे उत्पन्न गरमी क्वचित् हृदय की रसभ्रमण क्षमता को पुनः आरंभ करने में सहायक होती है । 20 से 30 साल पूर्व सभी चिकित्सक इस प्रकार हृदय का कृत्रिम अभ्यंग करते थे जिससे हृदय एवं फेफड़े का कार्य हो सके । जबसे हार्ट-लंगस् मशीन का उपयोग प्रारंभ हुआ है तबसे लगभग यह चिकित्सा लुप्त हो गई है । खास करके सूडी चूर्ण का उद्वर्तन ऐसे समय में स्वेदन-प्रक्रिया में हितकारी है ।

हृद्रोग तथा पाचनकर्म विचार - पाचन कर्म को पंचकर्म के पूर्वकर्म में सुश्रुत पर डल्हण ने महत्वपूर्ण टिप्पणी की है और पाचन को महत्वपूर्ण पूर्वकर्म बताया है । वस्तुतः स्वेदन के पूर्व इसका क्रम आता है । कभी-कभी दीपन पाचन घृत देकर पाचन और स्नेहन एक साथ किया जाता है । विशेषकर के आमावस्था में और तरुण अर्थात् तीव्रावस्था में पाचन चिकित्सा का अधिक महत्व होता है । हिंग्वाष्टक चूर्ण द्विरुतर हिंगुचूर्ण, त्रिकटु, लवणा भास्कर, वैश्वानर व्योषादिचूर्ण एवं हिंग्वादि योग इत्यादि पाचन एवं दीपन योगों का वर्णन संहिता में है । पाचन के साथ रूक्षण प्रयोग जैसे कि गौमूत्र क्षार और लवण का प्रयोग हृद्रोग चिकित्सा में किया हुआ मिलता है । कोई भी शूल में पाचन औषधि का प्रयोग हितकर है । कुछ आयुर्वेदीय संशोधन कर्ता का मत है कि हिंग्वाष्टक चूर्ण उदरशूल अग्निमांद्य या अग्निदिप्ती के लिये ही केवल प्रयोज्य नहीं है । अपितु शरीर में रोग प्रतिकार क्षमता बढ़ाने में भी लाभप्रद होता है । हृद्रोग में ऐसे पाचनचूर्णो का प्रयोग 1 से 3 ग्राम की मात्रा में सुखोष्ण जल से करने पर शूल शमन हो जाता है । चूर्णों के उपरांत पेया विलेपी का वर्णन दीपन पाचन हेतू आचार्य चरक ने किया है । (च०सू०अ०2 में ऐसी 28 यवागुओं का वर्णन दिया है । जो दीपन पाचनीय है ।[47] कुश आमलक

इनके निर्यूह श्यामकादिगण के साथ विरूक्षण के लिये दिया गया है । साधारणतः पेया विलेपी यवागू अतिसार में संग्राहक के रूप में वर्णित है । या वातानुलोमनार्थ क्षार चित्रक हिंगु अम्लवेतस अथवा पिप्पलीमूल सोंठ इत्यादि के साथ उपयुक्त है । ऐसे पेया यवागू में घृत का प्रयोग भी किया है ।

यहाँ पर पंचकर्म के पूर्वकर्म स्नेहन, स्वेदन और पाचन पर विचार पूर्ण होता है ।

हृद्रोग में वमनकर्म का विचार :- प्रथम यह विशेष स्पष्ट किया गया था कि हृद्रोग को आचार्य चरक ने अवाम्य अर्थात् वमन न करने योग्य रोग कहा है । लेकिन अवस्थानुसार वमन करना चाहिये ऐसा मत भी आचार्य चरक ने ही प्रदर्शित किया है और यही मत अन्य संहिताकारों का भी है । आचार्य चरक ने वातज हृद्रोग में पूर्ण रूप में वातघ्न क्रिया का वर्णन किया है तथापि उसमें वमन का उल्लेख नहीं है । जबकि सुश्रुत संहिता में वातज हृद्रोग में वमन कर्म का निर्देश किया है । आचार्य सुश्रुत के अनुसार वात के द्वारा उत्पन्न हृद्रोग में स्नेहपान कराकर वमन कराना चाहिये । स्नेहनार्थ द्वि-पंचमूल क्वाथ सस्नेह प्रयुक्त करना चाहिये या अन्य स्नेह से स्नेहन कराना चाहिये । वमन पश्चात् पिप्पली, इलायची, वचा, हींग यव सैंधव सर्वाचल सूंठ और अजमोदा से बना पिप्पल्यादि चूर्ण को धान्याम्ल या कुलत्थीयूष दही आसव या अरिष्ट के साथ देना चाहिए । भोजन हेतु पुराने चावल, जांगल मांसरस और घी मिलाकर देना चाहिये ।[48] यहां डल्हण कहते हैं कि वातोपसृष्ट हृद्रोग का अर्थ वातज हृद्रोग ऐसा होता है[49] यद्यपि वात में वमन कराना प्रशस्त नहीं है । तथापि वात जब कफ स्थान में जाता है तब वमन कराना चाहिये । पुनः इसी वात को च०चि०अ० 28 में निर्दिष्ट किया है । उर्ध्वग अर्थात् उदान अपानवायु से आवृत्त होता है तब वात में वमन कराना चाहिये और दीपन एवं ग्राही भोजन देना चाहिये ।[50] आवृत वात की सामान्य चिकित्सा में आचार्य चरक कहते हैं कि ''उदानम् योनियेत् उर्ध्वम् ।'' अर्थात् गुदा पर आवरण होने से वमन कराना चाहिये । अर्थात् वातादि की वमनादि क्रिया
से चिकित्सा करनी चाहिये । यहां पर चक्रपाणि एवं जेज्ज
दोनों ने वमन का स्पष्ट निर्देश किया है । हृद्रोग विद्र
प्लीहा गुल्म इत्यादि को आवृत वात के उपद्रव कहे हैं
और उसकी चिकित्सा में स्त्रोतो शुद्धिकर द्रव्य - विरेच
इत्यादि से उपाय करना चाहिये ।[51] इस तरह चरक सुश्रु
का वमन के संबंध में एक मत समझना चाहिये
स्थानानुपूर्वी चिकित्सा में कोई दोष अन्य स्थान में जाता है
तो उसकी दोषानुसार नहीं बल्कि स्थानानुसार चिकित्
करनी चाहिये । इसलिये जब वातदोष कफ स्थान में अर्थ
हृदय उरु प्रदेश में जाता है तब वात के लिये विरेचन
बस्तिकर्म से भी अधिक वमन कर्म प्रभावी होता है ।[52] जै
कि स्वेदन प्रकरण में चरक कहते हैं कि आमाशय में वा
प्रकोप होने पर रूक्षता पूर्वक स्नेहन और पक्वाशय में क
प्रकोपित होने पर स्वेदन पूर्वक स्वेदन करना चाहिये ।[5

वातज हृद्रोग में निरापद या उपद्रव रहित व
कराने हेतु यौगिक पद्धति से वमन क्रिया करें । ज
चिकित्सक परिणाम के लिये आशंकित हों तब यह वि
श्रेष्ठ है । इसमें मात्र शुद्ध जल आकंठ पिलाना चाहिये औ
रोगी खड़ा रहकर कमर से 90° का कोना बनाकर झुकक
बांया हाथ नाभि पर किंचित दबाकर रखे और दाहिने हा
की तर्जनी और मध्यमा दो अंगुली को उपजिह्वा तक
में प्रवेश करावें । जैसे ही उपजिह्वा के स्पर्श होगा पि
हुआ पानी वमन के रूप में निकलेगा । अचानक
प्रक्रिया में यष्टीमधु सिद्ध जल आकंठ पिलाकर व
कराते है । वमन की कार्मुकता का निर्देश करते हुए अ
आचार्य चरक कहते हैं कि उष्ण तीक्ष्ण सूक्ष्म व्य
विकाशी और वामक गुणवाली औषधि अपने वीर्य से हृ
में प्रविष्ट होकर धमनी में चली जाती है और सूक्ष्म
स्थूल सभी स्रोतों में पहुँचकर उष्णगुण से दोष का । वि
करती है । तीक्ष्ण गुण से उसे छिन्न-भिन्न करती है
दोष अपने स्थान से च्यूत होकर पूर्वकृत स्नेहन-स्वेदन
कारण जिस तरह से स्निग्ध पात्र में शहद चिपक

सकता, उसी तरह बिना चिपके अणु प्रणव भाव से और अग्नि एवं वायु की प्रधानता के कारण उर्ध्वभागहर प्रभाव से उदानवायु से प्रेरित होकर ऊपर की ओर फेकें जाते हैं। अर्थात् वमन होता है ।[54] यहां पर दोष शब्द लिखा है वहां पर दोषज विकृति अर्थात् संग जो धमनी में होता है उसकी कल्पना करने पर पूर्ण चित्र स्पष्ट होता है ।

पित्तज हृद्रोग में पित्तहर द्रव्यों के उपयोग के साथ वमन करने का निर्देश मिलता है । सुश्रुत के मतानुसार श्रीपर्णी यष्टीमधु-मधु सितोपला से सिद्ध जल का पान कराकर वमन देना चाहिये और सभी मधुर उपचार करना चाहिये । पित्त ज्वर में निर्दिष्ट सभी घृतों का भी उपयोग करना चाहिये ।[55]

कफज हृद्रोग में चरक के मतानुसार स्वेदन देकर वमन करावें । पश्चात् लंघन एवं कफघ्न-चिकित्सा करनी चाहिये । कुलत्थ गौमूत्र कटफल सोंठ-पित्तद्रु, पिप्पली कचूर, पुष्करमूल, रास्ना, वचा, उदुम्बर इत्यादि सिद्ध अवलेह देना चाहियें । आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार कफज हृद्रोग में स्वेदन करते हुए वमन का निर्देश किया है । पिचुमर्द (निम्व) वचा सिद्ध जल से वमन देंने का निर्देश है और वमन पश्चात् कुलत्थी जांगल मांस रस, तीक्ष्णमद्य और यवचूर्ण जैसे कफघ्न द्रव्यों से चिकित्सा का निर्देश किया है ।[56] सन्निपातज हृद्रोग अत्यंत तीव्रशूल होने के कारण वमन-विरेचन आदि का विधान नहीं है । त्रिदोष शामक एवं लंघन चिकित्सा यहां पर करनी चाहिये । कृमिज हृद्रोग में कृमि की चिकित्सा का निर्देश किया है। और यह सुविदित है कि कृमि में वमन आदि संशोधन चिकित्सा की जाती है ।[57] सन्निपातज एवं कृमिज हृद्रोग तीव्रशूल वाले समझकर उसमें विशेष ध्यान पूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये । आचार्य सुश्रुत ने भी कृमिज हृद्रोग में वमन का निर्देश किया नहीं है ।

यहां यह ध्यान में रहे कि वमन विरेचन के उपद्रव में भी हृदग्रह का उल्लेख किया गया है । प्रायः वमन औषधि पिलाने पर अयोग हो जाय और वमन न हो तब यह उपद्रव भयानक स्वरूप लेकर आतुर को मृत्यु के मुख में धकेल सकता है । यहां पर भयग्रस्त न होते हुए वैद्य को "अक्रियायाम् ध्रुवो मृत्युः । क्रियायाम् संशयोभवेत् ।" ऐसा समझकर क्रिया करनी चाहिये ।

हृद्रोग में विरेचनकर्म का विचार :- हृद्रोग के सभी प्रकारों में विरेचन मृदुरेचन अनुलोमन देना हितकारक होता है । शास्त्र में हृदशूल या हृद्रोग प्रकरण में हरितकी त्रिफला, एरंड तैल, द्राक्षा, अमलतास, हिंगु, कुटकी, श्यामात्रिवृत्त, स्वर्ण पत्री इत्यादि औषधों का चिकित्सा में असंख्य बार उल्लेख मिलता है । इनका क्वाथ देना हो तब 20 से 50 मि.लि. एक से दो मात्रा में और चूर्ण देना हो तो 3 से 6 ग्राम गर्म पानी के साथ एक बार देना चाहिये । इन औषधियों से सिद्ध घृत के प्रयोग का भी उल्लेख मिलता है । उदावर्त द्वारा उत्पन्न हृद्शूल और हृद्रोग में दारुणशूल-पार्श्वशूल, आनाह, श्वासकृच्छ्ता, हृद्स्तंभ इत्यादि में स्वेदन करके विरेचन और अनुलोमन औषध देने का निर्देश किया है ।[58] सभी शास्त्रकारों ने हिंग्वादिचूर्ण और द्विरुत्तर हिंग्वादिचूर्ण का प्रयोग वातज हृद्रोग में तीव्रशूल होने पर दिया है । हिंगु, वचा, चित्रक, कुष्ठ, सुवर्चि का विडंग इनके - उत्तरोत्तर द्विगुणचूर्ण बनाकर गर्म पानी से देना चाहिये । इसी चूर्ण में विडलवण हरीतकी, अजवायन, पुष्करमूल मिलाने से अनुलोमन करने वाला हिंग्वादि योग बनता है ।[59]

इसी प्रकरण में आगे तीव्र विरेचन का पाठ दिया है, जिसमें विरेचनोक्त फल और मूल को हिंगु अर्कमूल दशमूल स्नुहीक्षीर चित्रक पुनर्नवा, पंच लवण इनको मिलाकर स्नेह और गौमूत्र में पकाकर सिद्ध करने का विधान है । यहां चक्रपाणि कहते हैं "फलं च विरेचनोक्तं" का अर्थ दीर्घजीवीतीय (च०सू०1) में उल्लेखित मूलिनी फलिनी करना चाहिये ।[60]

चक्रपाणि कहते हैं हृदस्तंभ इत्यादि उदावर्त जन्यरोग है । आनाह आध्मान विबंध, गुल्म, प्लीहा और तीव्रवातज शूल में विरेचन देना चाहिये । इन रोगों में औषध प्रयोग में एरंड तैल का प्रयोग कहा है ।[61] एरंड तैल को त्रिफला

क्वाथ मांस रस गौमूत्र दूध या शहद इत्यादि के अनुपान से अवस्था का विचार कर देवें । मेद-कफ संसृष्ट में त्रिफला मदिरा के साथ, पित्त संसृष्ट में दूध के साथ और वात संसृष्ट में मांसरस के साथ देना चाहिये ।

हरीतकी, सोंठ, पुष्करमूल, गुडुची, आमलकी स्वरस त्रिफला लवण और हींग से सिद्ध घृत का प्रयोग मृदु अनु लोमन होने से हृद्पार्श्व शूल में लाभप्रद है ।[62]

शूल प्रकरण में भुक्तजीर्ण जीर्णमाण और जीर्णोत्तर काल यह तीन अवस्था दी गई है । भुक्ते-खाने के तुरंत बाद अधिक होने वाला शूल कफज, जरण काल में उत्पन्न शूल पित्तज और भोजन जीर्ण होने के बाद तीव्र रूप से होने वाला शूल वातज कहा गया है । इन अवस्थाओं मूलिनी द्रव्यों का विरेचन देना प्रशस्त होता है । त्रिवृतमूल अधिक प्रशस्त है ।

यहां शूल का संदर्भ लेने से हृदशूल के बजाय परिणामशूल में देने की प्रथा है । तथापि चक्रपाणि यहां स्पष्ट कहते हैं कि भुक्ते जीर्यति इत्यादि शूल से सन्निपातज हृद्रोग में उत्पन्न शूल की यह चिकित्सा है । स्पष्टीकरण अत्यंत महत्वपूर्ण है । वातिक सन्निपात जन्य हृद्रोग अधिक गंभीर है । अतः चिकित्सा में सावधानी बरतनी चाहिये । चरक अध्याय 26 त्रिगर्मीयः श्लोक 77 से 103 तक हृद्रोग चिकित्सा का निर्देश है । यह स्पष्ट है कि सन्निपात हृद्रोग के बाद श्लोक न० 103 में क्रमिज हृद्रोग का उल्लेख किया है जो ध्यान देनें योग्य है । पश्चात् शिरोमर्म के संदर्भ में प्रतिश्याय का प्रारंभ श्लोक 105 से होता है । अतः इसे हृद्रोग शूल ही समझना चाहिये ।

निदान से हृद्रोग निर्णीत किया है (Established Heart-diseases) जैसे रोगी भोजन के पश्चात् छाती में या चलने पर छाती में दर्द की शिकायत करता है । इसका कारण भोजन पाचन के लिये तथा चक्रमण से स्थानिक रक्ताभिसरण बढ़ता है । ऐसे समय हृदय को पूरण कम मिलने की संभावना रहती है और यह निश्चित हृद्शूल का लक्षण है । इसमें विरेचन मृदु अनुलोमन श्रेष्ठ एवं संदेह रहित चिकित्सा है ।

पित्तज हृद्रोग में सभी ग्रंथकारों ने विरेचन का उल्लेख किया है । शीतप्रदेह शीत परिषेक और विरेचन पि प्रदुष्ट हृद्रोग में करना चाहिये । इस कार्य हेतु द्राक्षा मिश्री शहद एवं फालसा का विधान है । यह आनुलोमिक अन है । जो विरेचन के बाद या विरेचन में अनुलोमनार्थ हितक है ।[63] यह स्मरणीय है कि वातदोषों में बस्ति श्रेष्ठ चिकित्सा है । तदन्तर विरेचन भी श्रेष्ठ चिकित्सा के रूप में निर्दिष्ट है । कफ दोष में वमन श्रेष्ठ है और तदन्तर विरेचन मध्यम श्रेष्ठ चिकित्सा है और पित्त दोषों में तो विरेचन श्रेष्ठ है ही बस्ति मध्य है और वमन भी अनुकूल चिकित्सा है । सभी व्याधियों में इस प्रकार अवस्थागत चिकित्सा की जाती है। शारंगधर संहिता में हृद्शूल या हृद्रोग के लिये द्राक्षा हरितकी पक्वकुष्मांड सैंधव को हितकर कहा है । यह अनुलोमन एवं मृदुविरेचक है ।[64] भेल संहिता में उदावर्त हृद्रोग और पार्श्वशूल एवं वातजगुल्म में विरेचन तथा निरूह का निर्देश है ।[65] सुश्रुत संहिता में विरेचन के लिये षड्धरण योग का प्रयोग कहा है और त्रिफला तथा कुटकी चूर्ण को शहद के साथ देने का निर्देश किया है ।[66]

कफज हृद्रोग में वचादि चूर्ण द्वारा वमन देने के पश्चात् फलादि और त्रिफलाचूर्ण पीने का विधान है । अर्थात् इसका क्वाथ देना चाहिये । श्यामात्रिवृत्त स विरेचन देने का निर्देश है ।[67] भावप्रकाश में हरितकी के गु में पांच रसों से युक्त (लवणवर्जित) होने से इसे आच चरक ने आरंभ किया तब द्विपंचमूलादि बस्ति का व उदाहरणार्थ प्रारंभ में किया । यहां पर द्विपंचमूलादि बस्ति के प्रारंभ में "बलांगुडुची त्रिफला सरास्नां" "प्रक्षिप्य ब मथितं सजेत" इत्यादि द्वारा वर्णित बस्ति देने पर बस्ति का प्रमाण इतना अधिक कि बस्ति में देना मुश्किल होता है ए पुटक द्वारा अधिक से अधिक 30 पल (1200 मि.लि तक बस्ति प्रयुक्त हो सकती है तथा यह उत्तम प्रमाण है यह ध्यान में रखना चाहिये क्योंकि प्रत्यक्ष रूप से बस्ति इतनी मात्रा में किया गया प्रयोग कभी-कभी हितकर न होता है । एक लीटर जल की बस्ति अनेक बार प्रयुक्त

है। वह भी अधिक प्रमाण ही है और आयुर्वेदीय बस्ति प्रमाण में स्नेह द्रव्य कल्कद्रव्य प्रक्षेप द्रव्य मधु+सैंधव इत्यादि मिलाकर अगर अत्यंत अधिक मात्रा में प्रयुक्त होती है तो हृद्शूल इत्यादि को उत्पन्न करती है । ऐसा अनुभव है । अज्ञानवश बार-बार ऐसी बस्तिका प्रयोग चीरकारी हृद्रोग उत्पन्न कर सकता है । अमेरिका में कोलोनीक थेरापी नाम से है एनिमा पद्धति का प्रयोग करने वाले जो चिकित्सक हैं वे श्रोणिगुहा (Pelvic colon) ही नहीं अपितु संपूर्ण कोलोन भर जाय उतनी मात्रा में यंत्र द्वारा चक्र घुमाकर के जल आंत्र में भरते हैं और यंत्र के द्वारा ही उसको पुनः निकालते हैं । यह चिकित्सा बस्ति समान लगती है किन्तु उसे बस्ति नहीं समझना चाहिये । शरीर के किसी भी अवयव की मर्यादा से अधिक उसे भर दिया जाय तो चिरकाल में रोगोत्पत्ति हो सकती है । वैसे भी आंत्र षट्चक्र का महत्वपूर्ण केन्द्र भी है । अतः उसकी चिकित्सा में सावधानी की आवश्यकता है ।

उपर्युक्त कारण से ही शायद चक्रपाणि कहते हैं कि इस प्रभाव से ही हुई बस्ति प्रमाण से अत्यधिक होने पर भी शेष निष्प्रयोजन है । फिर भी ''महर्षि वचनार्थ याव प्रमाणं उक्तं तावतेव क्रियमाणाः । क्वाथोत्तर गुड़वान भवति इति तेन न मिमांस्य मेतम् ।'' अर्थात् महर्षि वचनानुसार योग बनाना गुणवान है । इसलिये उसकी टीका हम नहीं कर सकते । और भी आगे लिखते हैं कि उपर्युक्त संदर्भ में दिया हुआ क्वाथ का प्रमाण लेना चाहिये । यह उदाहरण स्वरूप लेकर उसके अनुसार बनाया हुआ क्वाथ ही उचित प्रमाण में बस्ति में प्रयोग करें । अर्थात् बस्ति निर्माण विधि इस प्रकार करें किन्तु देते समय रोग और रोगी का बल देखकर मात्रा का प्रयोग करना चाहिये ।[74] जैज्जट में भी चक्रपाणि का अनुसरण करते हुए यह द्रव्य मात्रा प्रमाण संयोग संस्कार गुणों को बताने के लिये ही है यह स्पष्ट किया है ।[75]

वातज हृद्रोग में बस्ति निःसंशय कार्य करती है । तैल दान के समय अन्य कोई भी चिकित्सा वात में उपयुक्त नहीं है । देखा भी गया है कि हृद्रोग में ही नहीं किसी भी शूल में बस्ति का प्रयोग निश्चित रूप से शूल शामक होता है । वह उदरशूल परिणामशूल अश्मरीशूल पार्श्वशूल शिरःशूलादि को इतना ही नहीं कैन्सरजन्य शूल में भी बस्ति से शूल प्रशमन देखा गया है । हृदय के स्रोतस् यदि दोषों से लिप्त है तो मूर्च्छा सन्यास अपस्मार उन्माद इत्यादि उत्पन्न होते हैं । ऐसे आवृत्त स्रोतों की शुद्धि करने के लिये तीक्ष्ण वमन विरेचन बस्ति इत्यादि चिकित्सा करनी चाहिये ऐसा चरक कहते हैं ।[76] आगे इस प्रकरण में वातप्रधान दोष में बस्ति देने का विधान है और पित्त में विरेचन, कफ में वमन देने का विधान है ।[77] चरक सिद्धिस्थान अध्याय दो में हृद्रोग में आस्थापनाह रोगों में लिया है और जो आस्थापनार्ह है वह अनुवासनार्ह भी है । अतः हृद्रोग अनुवासनार्ह भी है । हृदरोगी में जब हृदयावरोध होता है तब बस्ति अवश्य देवें । हृदयदाह में यष्टिमधुसिद्ध बस्ति देने का विधान है । हृदय रोग में यापन बस्ति वर्णित की गई है । बला, अतीस, गुड़, घृत, तैल, शहद, दूध, मांसरस, अम्लकांजी और सैन्धवयुक्त सुखोष्ण बस्ति गुल्म-हृद्रोग में देने का विधान है ।[78] चरक के मतानुसार वात दोष ही पित्त और कफ के प्रकोप में हेतु है और प्राणधारण के लिये मूल तत्व है । वह बस्तिकर्म साध्य है । इसलिये मर्म चिकित्सा में बस्ति के समान कोई श्रेष्ठ चिकित्सा नहीं है । ''त्रिमर्मीय-बस्ति हृदय शिर के रोगों के लिये''[79] सुश्रुत के मतानुसार वातज हृद्रोग में वमन पश्चात् पुराने चावल जांगल मांसरस घृत सहित अन्न का भोजन देकर वातघ्न सिद्ध तैल से बस्ति देनी चाहिये ।[80] वातघ्न सिद्धतैलों में दशमूल तैल प्रशस्त है । पित्तज हृद्रोग में पित्तघ्न घृत-अन्न-मांसरस-घृत इत्यादि के बाद शहद के साथ यष्टीमधु सिद्ध तैल की बस्ति देनी चाहिये ।[81] कफज हृद्रोग में वमन और विरेचन देने के बाद बला तैल से बस्ति देना चाहिये ।[82] यहां पर भी सुश्रुत ने बस्ति विशारद ऐसा शब्द प्रयोग किया है जिससे स्पष्ट है जो बस्ति के द्रव्य प्रमाण गुणकर्म इत्यादि जानते हैं उनको यह प्रयोग करना चाहिये । अष्टांग संग्रहकार वाग्भट्ट ने बस्ति देते समय दोष प्रकोप होकर (आवृत होने पर) मार्गावरोध होकर हृद्पीड़ा

होती है ऐसा कहा है । इस प्रकार के बस्ति व्यापद में अभ्यंग स्वेदन और बिल्वादिगण सिद्ध निरूह बस्ति देनी चाहिये ।[83] अष्टांग हृदय में हृदग्रह में निरुह देने का विधान है ।[84] वाग्भट्ट में आस्थापनार्ह रोगों में हृद्रोग का वर्णन किया है ।

बस्तिकर्म विधि :-

हृद्रोगी में बस्तिकर्म से पूर्व रोगबल के साथ रोगी बल का भी निर्णय करें । आध्मान, आनाह और उदावर्त की अवस्था में प्रथम वर्ति या मृदु विरेचन देकर कोष्ठ शुद्धि करें और वात पित्त कफ दोषानुसार निरूह बस्ति देवें । वातज हृद्रोग में दशमूल बस्ति या विल्वादिगण सिद्ध बस्ति देवें । दशमूल क्वाथ साधारणत: 250 से 300 मि.लि. में शहद 50 मि.लि. घृत के स्थान पर दशमूल घृत 50 मि.लि. और तैल के स्थान पर दशमूल तैल 50 मि.लि. लेकर सैंधव 5 से 10 ग्राम का प्रक्षेप या पूतोयवान्यादि कल्क[85] मिलाकर बस्ति देनी चाहिए । प्रत्येक निरुह के बाद अनुवासन बस्ति का प्रयोग करना चाहिये । यहाँ पर दशमूल निरुह के बाद 50 मि.लि. की अनुवासन बस्ति देवें । हृद्रोगी में केवल अनुवासन या मात्राबस्ति भी 8 दिन तक देना उचित है । जिससे वातानुलोमन होकर हृद्पीड़ा का शमन होता है । पित्तज हृद्रोग में बलादि बस्ति का प्रयोग हितकर है । यहाँ बलादि क्वाथ 250 से 500 मि.लि. शहद 50 मि.लि. क्षीरबला या चंदन बला लाक्षादि तैल 50 मि.लि., बलादिघृत या शुद्ध घृत 50 मि.लि. मिलाकर सैंधव एवं कल्क (पूतोयवान्यादि) मिलाकर बस्ति देनी चाहिये । पित्तज हृद्रोग में यष्टिमधु तैल की मात्रा बस्ति 8 दिन तक देवें । अथवा यष्टीमधु तैल + शुद्ध घृत = 30 मि.लि. + 30 मि. लि. मिलकर यमक स्नेह की बस्ति का प्रयोग भी कर सकते हैं । कफज हृद्रोग में सहचरादि क्वाथ और सहचरादि तैल, व्योषमदिघृत शहद सैंधव और पूतोयवाल्यादि कल्क मिश्रित बस्ति देनी चाहिये । कफज हृद्रोग में अनुवासनका उल्लेख नहीं है । तथापि सहचरादितैल अथवा कार्पास्थ्यादि तैल की बस्ति देनी चाहिये । इस प्रकार बस्ति हृद्रोग में विचार पूर्वक देनी चाहिये । सभी शाखागत रोग, कोष्ठगत रोग, मर्मअस्थि और संधिगत रोगों में वायु ही दोषों का प्रेरक होता है और वह वायु बस्ति साध्य है इसलिये बस्ति का हृद्रोग में विशेष महत्व समझना चाहिये ।

हृद्रोग में नस्यकर्म का विचार - भेल संहिता में हृद्रोग में भी नस्यकर्म का विधान मिलता है । यद्यपि भेल संहिता संदिग्ध है तथापि यह विषय विचारणीय है । तिल तैल और यष्टीमधुतैल एवं चतुर्गुण दूध मिलाकर शतपाकमधुक तैल बनाने का विधान भेल संहिता में है । इस तैल का पान-अभ्यंग एवं नस्य में प्रयोग करें । "हृदरोगं पानाद् एतन्चीयच्छति"[86] कण्ठ रोग के द्वारा उत्पन्न हृद्दाह में नस्य का विधान भेल संहिता में है । इसके लिये बलातैल का प्रयोग दिया गया है । यहाँ "कण्ठ संजात" शब्द से कहीं थायराईडग्रंथि की विकृति से उत्पन्न हृद्रोग का विधान तो अपेक्षित नहीं है ?

नस्य विधि :- नस्य सामान्य चिकित्सा है । विधिवत नस्य का विशेष महत्व अभ्यंग एवं स्वेदन पश्चात् नस्य का प्रयोग विधिवत कहलाता है । मुख कपाल नासा के आसपास मृदु संवाहन से अभ्यंग एवं स्वेदन करना चाहिये । मृदु से तापस्वेद के प्रकार में से हस्तस्वेद, वस्त्र स्वेद या हॉटं वॉटर थैले से स्वेदन करना चाहिये । नस्य हेतु यष्टिमधुतैल, अणुतैल, षड्बिन्दुतैल, शुद्ध घृत एवं बलातैल का प्रयोग उचित है । तैल अथवा घृत नस्य को मर्श या प्रतिमर्श रूप में दिया गया है । मर्श और प्रतिमर्श में मात्रा का अंतर है । जैसे कि मर्श में 16 बिन्दु और प्रतिमर्श में 2 से 8 बिन्दु तक मात्रा देना उचित है । ग्रंथ में चूर्ण का प्रधमननस्य, स्वरस का अवपीडनस्य का उल्लेख है । बहुत से वैद्य मूर्च्छा की अवस्था में तीक्ष्णनस्य का प्रयोग करते हैं । तथापि यह हृद्रोग में आवश्यक नहीं है । नस्य में शिरस्थ दोष और कंठस्थ दोषों का अपहरण होता है । अतः हृदय की ओर रस-रक्त ले जाने वाली रसवाहिनी का शोधन अपेक्षित है । तीक्ष्ण नस्य कदाचित् व्यापद का सकता है । किन्तु घृत तैल आदि नस्य स्रोतोशोधन के लि

उत्तम योग है ।

हृद्रोग में रक्तमोक्षण का विचार - रक्तमोक्षण हृद्रोग में प्रत्यक्षरूप से शास्त्र में कहीं पर भी उल्लेखित नहीं है । रक्तमोक्षणार्ह व्याधि में भी प्रच्छान से स्थानिक रक्तमोक्षण होता है और शिरोवेध से सार्वदैहिक रक्तमोक्षण होता है । जलौका श्रृंग अलबु यह मिश्र प्रकार के रक्तमोक्षण उपाय है । रक्तमोक्षण रक्तप्रदोषज रोगों में किया जाता है और हृद्रोग का इसमें समावेश नहीं है । हृद्रोग रसवह स्रोतस की व्याधि है तथापि पूर्वकाल में जलौका का उपयोग हृद्रोग में किया जाता था । आधुनिक शास्त्र के अनुसार त्वक् क्षरीय शोथ तथा रक्तसंचय हारक होने के कारण फुफ्फुसशोथ (न्युमोनिया-डब्बारोग) फुफ्फुस आवरण शोथ (प्लुरसी) हृद्शोथ (मायोकार्डीयाटीस) कर्णमूल ग्रंथि शोथ (पेरोटाईटीस) हृदयावरण शोथ (पेरीकार्डीयाटीस) मस्तिष्कशोथ (मेनेन्जाइटीस) इत्यादि में रक्त जमने की अवस्था में जलौका का उपयोग किया जाता था ।[87] प्राचीनकाल में उच्च रक्तचाप में भी शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण किया जाता था । प्राचीनकाल में उच्चरक्तचाप में भी शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण किया जाता था । आधुनिकशास्त्र में सेविल ने निम्नलिखित रोगावस्था में विनस सक्शन करने को कहा है । Acute Paricorctiaties यह हृदयावरण कलका शोथ है । इसमें जब सायनोसिस के लक्षण उत्पन्न होते हैं तब श्वासकृच्छ्रता होती है । शिरा फूल जाती है तब शिरा से 15 से 20 औंस मात्रा में (200 से 300 मि.लि.) तक रक्त लेने का विधान है । Chronic Heart disesease यह जीर्ण हृद्रोग है और हृदयकपाटो के वैगुण्य का समावेश इसमें होता है । जिससे Pulmonary Congestion के लक्षण उत्पन्न होते है । सेविल के मतानुसार इसमें रक्तमोक्षण करने से हृदय के दक्षिणकक्ष का कार्यावरोध तुरंत ठीक होता है और तत्काल वेदना का शमन होता है । Acute Pulmonary Oedema अर्थात् तीव्रतर फुफुस प्रणाली शोथ में श्वासकृच्छ्रता, नाड़ीतीव्रता, मन्थाशिरा का उत्सेध और Aorta का वैगुण्य की अवस्था में 15 से 20 औंस रक्त शिरा से निकालने का विधान है ।

अर्थात् हृद्रोग की विशिष्ट तीव्र अवस्था में रक्त निर्हरण शास्त्रीय माना जाता है तथापि आजकल एन्जीयोप्लास्टी-बायपास सर्जरी इत्यादि शस्त्रकर्म द्वारा हृदय की चिकित्सा उचित समय में किये हुए लोगों में यह अवस्था बहुत कम देखने को मिलती है । तथापि ऐसे रोगी मृत्यु पर विजय पाते हैं ऐसी बात नहीं है ।

रक्तमोक्षण के लिये आधुनिक प्रकार की सीरींज का प्रयोग या जलौका प्रयोग करना चाहिये । 50 मि.लि. रक्त दो-दो सप्ताह के अंतर से 2 या 3 बार लेना चाहिये या 100 से 200 मि.लि. रक्त 3 या 4 माह के अंतर से एक बार में लेना चाहिये । रक्तमोक्षण पूर्व पांडुता या रक्तचाप की अवस्था अवश्य देखनी चाहिये ।

हृद्रोग में रसायन एवं शमन का विचार - (अर्थात् पंचकर्म के पश्चात् कर्मों का विचार) इस शीर्षक अंतर्गत हम रसायन-वाजीकरण या शमन चिकित्सा का विस्तृत वर्णन नहीं करेंगे क्योंकि अन्यत्र इस विषय पर वर्णन आ गया है । यहां मात्र पंचकर्म के सम्बन्ध से ही लिखेंगें ।

पंचकर्म के पश्चात् कर्म में पेयादि संसर्जन क्रम, रसायन और शमनचिकित्सा का निर्देश है । इसके पहले भी स्नेह प्रकरण में पेया का वर्णन किया है । अजवायन पिप्पली, बिल्वमज्जा, सोंठ, चित्रक, रास्ना, पृशनीपर्णी, पलाश, कचूर और पुष्करमूल से सिद्ध पेया वातज हृद्रोग में हितकर है । (च०चि० 18) । हृदयदाह अर्थात् पित्त संसृष्ट हृदयावस्था में यष्टिमधु द्राक्षा, दाडिम सिद्ध पेया या यवागु देवें । शारंगधर ने कफसंसृष्ट अवस्था में कुलत्थी यव, बैर मूंग, मूली, सोंठ, धनियां से सिद्ध यूष देने का निर्देश किया है । संक्षिप्त में वातज में कटु-तिक्त-रस युक्त, पित्तज में मधुर-स्निग्ध और कफज में उष्ण-रूक्ष गुण युक्त पेया विलेपी यूष इत्यादि का प्रयोग करें ।

हृद्रोग शमन चिकित्सा में चंद्रप्रभा, मृगश्रृंग, अभ्रक, अर्जुन, पिप्पली, सोंठ, अनार, हींग, जवाहर, मोहरापिष्टी इत्यादि का उपयोग होता है तथा आसव-अरिष्ट अर्जुनारिष्ट

दशमूलारिष्ट, पुनर्नवारिष्ट लाभप्रद होते हैं । वचा अर्जुनवटी भी लाभप्रद है ।

रसायन चिकित्सा चूर्ण मृदु संशोधन करके शिलाजतु-रसायन चूर्ण गुडूची लसून आमलकी (च्यवनप्राश) सुवर्णयोग इत्यादि का उपयोग होता है ।

हृद्रोग संतर्पणजन्य अथवा अपतर्पणजन्य भी हो सकता है । अतः रूक्षण, शोधन, बृंहण और रसायन चिकित्सा पश्चात् कर्म के रूप में लाभप्रद होती है ।

चरक ने लहसुन सिद्ध क्षीर हृद्रोग में शीघ्रलाभप्रद होता है ऐसा कहा है ।[88] हृदशूल में पाचन रूक्षण चिकित्सा भी अवस्थानुसार लाभप्रद होती है ।[89] हृद्रोग में संतर्पणार्थ बृंहण के लिये पेया, यवागू, मांसरस के अनेक प्रयोग का निर्देश किया गया है । हृदय के लिये हितकर (हृद्य) ऐसी पेया कृतान्न वर्ग में चरक ने निर्दिष्ट की है । पेया-स्वेदोत्पादक होती है । अग्निप्रदिपक होती है और वात मल मूत्र का अनुलोमन करती है । तर्पण बृंहण और स्रोतस शुद्धिकर भी होती है ।[90] अच्छी तरह से पकाये हुए चावल मांसरस मृद्गयूष वसा मज्जा घृत यह वृहंणपदार्थ प्रमाणयुक्त दे सकते हैं ।[90] गौमूत्रभावित शिलाजीत या गुग्गुल देने का सुश्रुत ने भी निर्देश दिया है । यह मेद का कर्षण करता है । अतः हृद्रोग में लाभप्रद है ।

इस तरह हृद्रोग में पंचकर्म के पूर्ण-प्रधान और पश्चात् का अवस्थानुसार प्रयोग बांछनीय है । तथापि यहां प्रश्न होता है कि क्या हृद्रोग में पंचकर्म एक ही रोगी में कराना अभिप्रेत है या नहीं ? यहां यह समझना आवश्यक है कि ग्रंथ में प्रत्येक रोगी में सभी कर्म कराने का निर्देश नहीं है । हां स्वस्थरस स्वास्य रक्षणार्थम् संपूर्णकर्म करना अभिप्रेत है । किन्तु रोगी में अवस्थानुसार आवश्यक एक दो तीन या कर्म करने चाहिये ।

संदर्भ सूची :-

1. च.सू.अ. 15/1
2. च.सि.अ. 3/5; च.सि.अ. 3/5 (चक्रपाणी टीका)
3. च.सि.अ. 3/24-27
4. सु.चि.अ. 25
5. सु. उत्तर 43
6. सु. उत्तर 43; भेल संहिता चि. 41
7. माधव हृद्रोग नि. 8
8. च.सू. 7/18
9. च.सू. 17/71
10. च.सू. 7/22
11. च.सू. 7/23;
12. च.चि. 28
13. च.सू. 7/25
14. च.चि. 3/147
15. आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान - लेखक श्री ह०श्री
    कस्तूरे, पृष्ठ 662
16. च.चि. 5/21; च.चि. 5/22
17. च.चि. 28/206
18. च.चि. 28/208
19. च.चि. 28/239
20. च.चि. 28/239-241
21. सु. सूत्र 15
22. भेल संहिता चि.अ. 4
23. सुश्रुत कल्प 2
24. च.चि. 26/6; च.चि. 26/16
25. च.चि. 13/41
26. च.चि. 8/103-105
27. अ.ह.सू. 13/28-29
28. माधव ज्वर प्रकरण 7; च.चि. 3/137; माधव
    सटीक ; च.चि. 28/(चक्रपांणी) ।
29. च.चि. 26/81; च.चि. 26/82; च.चि. 26/83;
    चि. 26/84; च.चि. 26/72; च.चि. प्रकरण,
    29; च.चि. 7; च.चि. 18
30. चक्रदत्त 22-111; चक्रदत्त 23-17
31. चक्रदत्त 22/116
32. चक्रदत्त 30/59

33. चक्रदत्त 31/8; चक्रदत्त 38/34 ; चक्रदत्त 62/50
34. भेल संहिता चि. /29
35. भेल संहिता 21/11; भेल चि. 21/18; भेल चि. 12; भेल चि. 29
36. सु. उत्तर 43/11
37. सु. उत्तर 43/15
38. अ.सं.चि. 8/38
39. अ.सं.चि. 8/48; अ.सं.चि. 8/49-50-51
40. अ.हृ. 27
41. अ.हृ.चि. 6/29
42. अ.हृ.चि. 6/38-39; अ.हृ.चि. 6/41; अ.हृ.चि. 26/155-19 ।
43. आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान वैद्य ह. श्री कस्तुरे पृष्ठ-210 ।
44. च.चि. 26/66
45. च.सू. 2/17-34
46. वातोपसृष्टे...........
47. डल्हण...........
48. च.चि. 28/211
49. हृद्रोगो विद्रधि: प्लीहा......
50. च.चि. 26/58
51. च.सू. 9/14-9
52. उष्णा/तीक्ष्ण ।
53. पितोपसृष्टे हृदये ।
54. सु. उत्तर 43/90
55. च.चि. 26/103
56. च.चि. 29; च.चि. 26/11-16; च.चि. 26/चक्रपाणी
57. च.चि. 29/20-22
58. च.चि. 29/24-25; च.चि. 29/चक्रपाणी; च.सू. 1/77-79; च.सू. 1/78-86
59. च.चि. 26/25-30; च.चि. 26/चक्रपाणी; च.चि. 26/90
60. च.चि. 26/83-84
61. च.चि. 26/101-102; च.चि. 26/चक्रपाणी; च.चि. 26/90
62. शा. 24
63. भे.सि. 5/26
64. सु.चि. प्र./33; सु.चि.प्र. 28; सु.चि. 4/3
65. सु. उत्तर 43/18; सु. उत्तर 43/19
66. भा.प्र. हरितक्यादिवर्ग 20-21
67. अ.हृ.चि. 5/4-5
68. अ.हृ.चि. 6/44
69. अ.हृ.चि. 2/49
70. च.चि. 7 14/15
71. च.चि. 29/77
72. च.सि. 3/13-19; च.सि. 3/चक्रपाणी
73. च.सि. 3/13-19/ जेज्जट
74. च.चि. 10/14
75. च.चि. 10/15
76. च.सि. 12/20
77. च.सि. 9/7
78. सु. उत्तर 43/14
79. सु. उत्तर 43/19
80. सु. उत्तर 43/19
81. सु.सं.क. 6/13-15
82. ह.क. 5/38
83. सि 3/15; अ.हृ.क. 4/2-3
84. भेल संहिता चि. 4/78-83
85. Salil System of Clinical Medicine & आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान रक्तमोक्षण प्रकरण ।
86. च.चि. 5/95
87. च.चि. 2/16
88. च.सू. 27/250-251; च.सू. 27/257-258
89. सु.चि.प्र. 35 ।

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

हृदयशूल (एंजाइना) उत्पत्ति और चिकित्सा

*डा०शशिभूषण शलभ

जब कोई व्यक्ति अधिक घी, मक्खन, तेल आदि से बने वसायुक्त खाद्य पदार्थों का सेवन करता है तो उसके शरीर में कोलेस्ट्राल की मात्रा अधिक बनती है । रक्त में कोलेस्ट्राल की मात्रा अधिक होने पर कोलेस्ट्राल रक्त की धमनियों में दीवारों के साथ जमने लगता है । कोलेस्ट्राल के कारण रक्त संचार में अवरोध होने लगता है । कोलेस्ट्राल से रक्त संचार के अवरोध बढ़ जाता है और हृदय को पर्याप्त मात्रा में रक्त नहीं पहुंच पाता । हृदय के रक्त नहीं पहुंचने के कारण तीव्र हृदय शूल होता है ।

शीत ऋतु में अधिक शीतल खाद्य पदार्थों के सेवन से और अधिक शीतल वातावरण में रहने से भी हृदय शूल की उत्पत्ति हो सकती है । चिकित्सा विशेषज्ञों के अनुसार अधिक मानसिक तनाव, शोथ, गहरी चिन्ता, अधिक, उष्णता के कारण भी हृदय शूल की उत्पत्ति हो सकती है । हृदय शूल के कारण रोगी तड़प उठता है । उसे लगता है कि कोई हृदय को मुट्ठी में बंद करके भींच रहा है । हृदय शूल के समय पर उचित चिकित्सा न कराई जाय तो रोगी की मृत्यु हो जाती है ।

अधिक निर्बलता होने पर जब स्त्री-पुरुष अधिक शारीरिक श्रम करते हैं तो हृदय रोगों से पीड़ित होते हैं । अधिक सहवास के कारण भी अधिकांश व्यक्ति हृदय रोगों से पीड़ित होते हैं । आयुर्वेद चिकित्सा ग्रंथों के अनुसार वातज, पित्तज, कफज व सन्निपातज अनेक तरह के हृदय शूल होता है । वातज हृदय शूल में हृदय के फटने की तरह तीव्र शूल होता है । रोगी को अनुभव होता है कि कोई उसके हृदय को जकड़ रहा है । वातज हृदय शूल में रोगी के श्वास लेने में अवरोध, हृदय में पीड़ा, शोथ और मूर्च्छा के लक्षण दिखाई देते हैं । रोगी को नींद भी कम आती है ।

पित्तज हृदय रोग में रोगी को अधिक जलन, बेचैनी, तीक्ष्ण वमन, कोई परिश्रम किये बिना अधिक थकावट, नेत्रों के सामने अंधेरा, त्वचा का रंग पीलापन लिए होता है । रोगी ज्वर, मूर्च्छा, दाह और अधिक पसीने से पीड़ित होता है । ऐसे में हृदयशूल होता है ।

कफज हृदय रोगों के कारण हृदय शूल की उत्पत्ति होती है । ज्वर, खांसी, अनिद्रा, अरुचि और मंदाग्नि के लक्षण दिखाई देते हैं । कफज हृदय रोग में आलस्य अधिक होता है ।

सन्निपातज हृदय रोग में तीनों दोषों के लक्षण हो सकते हैं । कभी-कभी कुछ व्यक्ति कृमियों से अधिक पीड़ित होते हैं । एलोपैथी चिकित्सा में 'बेक्टीरियल एण्डो फार्डाइटिस' कहा जाता है । कृमियों के विषक्रमण और पूय की उत्पत्ति होने से अधिक हृदय शूल होता है ।

हृदय शूल की चिकित्सा :-

हृदय शूल के निवारण से कोई भी औषधि सेवन कराने से पहले परीक्षणों से यह जान लेना चाहिए कि हृदय शुल किन कारणों से हो रहा है । हृदय शूल की उत्पत्ति पता चल जाने पर चिकित्सा सरल हो जाती है । आयुर्वेद चिकित्सा में अनेक शास्त्रीय योग (औषधियों) का वर्णन किया गया है । किसी अनुभवी चिकित्सक के परामर्श से निम्न औषधियों का सेवन कर सकते हैं ।

गुणकारी औषधियाँ :-

- हृदयशूल के निवारण के लिए नागार्जुनाभ्र रस बहुत गुणकारी औषधि है । नागार्जुनाभ्र रस की 1-1 गोली किसी खरल में पीसकर, मधु मिलाकर सुबह-शाम चाटकर खाने से हृदय शूल की विकृति नष्ट होती है ।
- श्रृंग भस्म 4 रत्ती मात्रा में गाय के घी के साथ सुबह-शाम सेवन करने से हृदय शूल रोग का निवारण होता है ।
- शूल केसरी रस के सेवन से सभी तरह के हृदय शूल नष्ट होते हैं । आधी रत्ती शूल केसरी रस पान में रखकर चबाकर चूसने से शूल नष्ट होता है । इस औषधि की गोली को खरल में पीसकर पान के रस और मधु मिलाकर सेवन करने पर भी बहुत लाभ होता है ।
- शूलराज लौह 1 ग्राम मात्रा में सुबह-शाम ताजे जल के साथ सेवन करने से हृदय शूल नष्ट होता है । शीत ऋतु में शूल राज लौह को दशमूल क्वाथ के साथ सेंधा लवण और यवक्षार मिलाकर सेवन करना चाहिए ।

---

* भारतीय चिकित्सा भवन, ए-3/14, एम.आई.जी., रोहिणी, सेक्टर-8, दिल्ली-110085

- हृदयशूल रोगी को प्रतिदिन सेवन करने से बहुत लाभ होता है । 15-20 मि.लि. मात्रा में अर्जुनारिष्ट लेकर, उसमें बराबर मात्रा में जल मिलाकर भोजन के बाद दोनों समय सेवन करने से बहुत लाभ होता है ।
- दूध में अर्जुन की छाल जल मिलाकर देर तक आग पर उबालें । जब जल नष्ट हो जाए तो उस दूध को छानकर पीने से हृदय शूल का प्रकोप कम होता है ।
- मोतियों को गुलाब जल के साथ कई दिन तक खरल में घोटकर खूब बारीक पिष्टी बना लें । मोती पिष्टी को मधु के साथ दिन में दो-बार सेवन करने से हृदय की निर्बलता नष्ट होने में शूल का निवारण होता है ।
- मोती पिष्टी 120 मि.ग्रा., कपूर 60 मि.ग्रा., स्वर्ण भस्म 30 मि.ग्रा., मकरध्वज 120 मि.ग्रा. सबको मिलाकर खरल में पीसकर, दिन में दो बार मधु के साथ सेवन करने से हृदयशूल नष्ट होता है ।
- प्रभाकर वटी का निर्माण स्वर्ण माक्षिक भस्म, लौह भस्म, अभ्रक भस्म, वंशलोचन तथा शुद्ध शिलाजीत, सभी बराबर मात्रा में लेकर खरल में पीसकर, अर्जुन क्वाथ की भावना देकर, शुष्क होने पर बनाते हैं । 1से 2 गोली सुबह-शाम खरल में पीसकर, मधु के साथ सेवन करने से हृदयशूल से मुक्ति मिलती है ।
- जहरमोहरा पिष्टी 125 से 250 मि.ग्रा. मात्रा में सुबह-शाम दूध के साथ सेवन करने से हृदय रोगों के साथ शूल में भी सुरक्षा होती है ।
- मुक्ता पिष्टी 60 से 120 मि.ग्रा. मात्रा में दिन में दो बार मधु के साथ सेवन करने से हृदय शूल में बहुत लाभ होता है ।
- वल्लभ घृत प्रतिदिन 10 से 20 ग्राम मात्रा में दिन में दो बार थोड़ी-सी शर्करा मिलाकर सेवन करने से हृदय शूल रोगियों को बहुत लाभ होता है । कृमिज हृदय रोग में बहुत उपयोगी होता है ।
- कृमिज हृदय रोग में विडंग के चूर्ण से बहुत लाभ होता है । विडंग के बीजों के कूटपीस खूब बारीक चूर्ण बनाकर कपड़े में छानकर रखें । दिन में दो बार 3-3 ग्राम चूर्ण जल से सेवन करने पर हृदय शूल से सुरक्षा होती है ।
- सन्निपातज हृदय रोग में पुष्कर मूल का चूर्ण बनाकर, दिन में दो बार 1-1 ग्राम चूर्ण मधु के साथ सेवन करने से बहुत लाभ होता है ।
- पिप्पलयादि चूर्ण 3 ग्राम मात्रा में हल्के गर्म जल के साथ दिन में दो बार सेवन करने से कफज हृदय शूल में बहुत लाभ होता है ।
- एरण्ड की जड़ का क्वाथ बनाकर उसे छानकर, उसमें थोड़ा-सा यवक्षार मिलाकर सेवन करने से हृदयशूल नष्ट होता है ।
- हृदय शूल की विकृति होने पर जब रोगी को श्वास लेने में पीड़ा का अनुभव हो तो लहसुन की दो-तीन कलियों को साफ करके, उन्हें चबाकर, उनका रस चूसने से बहुत लाभ होता है ।
- पिप्पली मूल, त्रिकटु और चित्रक को 10-10 ग्राम मात्रा में लेकर, थोड़ा-सा कूटकर जल में उबाल कर क्वाथ बनाएं । इस क्वाथ को छानकर दिन में दो-बार पीने से हृदय शूल नष्ट होता है ।
- हृदया चिन्तामणि रस हृदयशूल की गुणकारी औषधि है । सुबह-शाम हृदया चिन्तामणि रस की एक गोली खरल से पीसकर अर्जुनारिष्ट के साथ सेवन कराना चाहिए ।
- हृदयार्णव रस की गोलियां 125 मि.ग्रा. मात्रा में लेकर खरल में पीसकर मधु के साथ दिन में दो बार सेवन कराने से हृदय रोगों में बहुत लाभ होता है ।
- कल्याण सुन्दर रस 125 मि.ग्रा. मात्रा में हरीतक्यादि घृत के साथ दिन में दो-बार सेवन करने से हृदयशूल का निवारण होता है ।
- एरण्ड पाक 60 ग्राम मात्रा में भस्म के समय सेवन करने से हृदय शूल नष्ट होता है ।
- प्रतिदिन सुबह-शाम 20 ग्राम गुलकंद दूध के साथ सेवन करने से हृदय रोगी को बहुत लाभ होता है । गुलकंद रोगी को कोष्ठबद्धता से सुरक्षित रखता है ।
- अकीक भस्म 250 मि.ग्रा. मात्रा में मधु के साथ दिन में दो-बार सेवन करने पर वात-विकृति से उत्पन्न हृदय रोगों में बहुत लाभ होता है ।

बच्चों में सांस की तकलीफ/तमक श्वास (Bronchial Astham)

* शान्तुल कुमार गुप्ता
** प्रो. अजय कुमार शर्मा

परिचय

आयुर्वेदिक मनीषियों ने बच्चों में होने वाले प्राणवह स्रोतस विकारों का अलग से विशिष्ट वर्णन नहीं किया है । परन्तु बड़ों में होने वाली व्याधियां बच्चों में भी होती हैं, अत: बच्चों की साँस की तकलीफ (तमक श्वास) की चिकित्सा की दृष्टि से काय चिकित्सा में वर्णित श्वास रोग के चिकित्सा सिद्धान्तों का अनुसरण करते हैं ।

वर्तमान समय में यह व्याधि युवाओं के साथ-साथ बच्चों में भी बहुतायत से पायी जाने लगी है । बालक-बालिकाओं की अपेक्षा इस व्याधि से बच्चे अधिक प्रभावित होते हैं । यह व्याधि प्राय: 2 वर्ष की आयु से प्रारम्भ हो जाती है परन्तु इसके सर्वाधिक रोगी 5 से 10 वर्ष की आयु में मिलते हैं । बच्चों में साँस की तकलीफ का आयुर्वेद में वर्णित तमक श्वास या आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में वर्णित Bronchial Asthma से सामंजस्य किया जा सकता है ।

परिभाषा

प्रतिलोम गति को प्राप्त वायु प्राणवह स्रोतों में पहुँच कर ग्रीवा एवं शिर को जकड़ते हुए कफ दोष को पुन: उभार कर पीनस (प्रतिश्याय-जुकाम) रोग को उत्पन्न करती है । कफ द्वारा अवरूद्ध वायु कण्ठ से घुर-घुर शब्द के साथ प्राणाधिष्ठान हृदय को प्रपीड़ित करने वाले अति तीव्र वेग वाले श्वास रोग (श्वास कष्ट) को उत्पन्न करती है । इसे सामान्य भाषा में साँस की तकलीफ और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में Bronchial Asthma कहते हैं ।

आधुनिक मतानुसार वह व्याधि जिसमें श्वासनली एवं फुफ्फुस नलिकाएं विभिन्न उत्प्रेरकों द्वारा अत्यधिक क्रियाशील हो जाती है, उसे Bronchial Asthma (तमक श्वाँस) कहते हैं ।

निदान

इस व्याधि के निदानों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1. सम्भावित उत्पादक कारण

(अ) वंशानुगत (पारिवारिक लोगों में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में होने वाला रोग) तमक श्वास ।

(ब) बाल्यकाल में कुक्कर कास, उत्फुल्लिका या खसरा के संक्रमण के इतिहास का मिलना ।

2. सहायक कारण

(अ) श्वसन तंत्र में संक्रमण (Respiratory tract infection)

(ब) श्रम, अत्यधिक व्यायाम (Heavy exercises)

(स) वातावरण में परिवर्तन (Heavy exercises) ऋतु परिवर्तन यथा बसंत, शरद व शीत ऋतुओं में प्रदूषण वाले स्थानों में दमा की शिकायत अधिक मिलने की संभावना रहती है ।

(द) अभिष्यन्दि आहार सेवन (Heavy, Greasy diet)- दही, छाछ आदि ।

(य) मानसिक कारण (Mental Factors) - मानसिक विषाद आदि कारण वेगस तंत्रिका को उत्तेजित कर फुफ्फुस की श्वसन नलिकाओं में संकोच उत्पन्न करते हैं । यह स्थिति बार-बार उत्पन्न होने की स्थिति में अन्तत: रोगी श्वांस रोग (तमक श्वास-Bronchial Asthma) नामक व्याधि से ग्रसित हो जाता है ।

---

* एम.डी. (आयु.) अंतिम वर्ष अध्येता, स्नातकोत्तर कायचिकित्सा विभाग, रा.आ. संस्थान, जयपुर ।

** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर कायचिकित्सा विभाग, रा.आ. संस्थान, जयपुर ।

सम्प्राप्ति

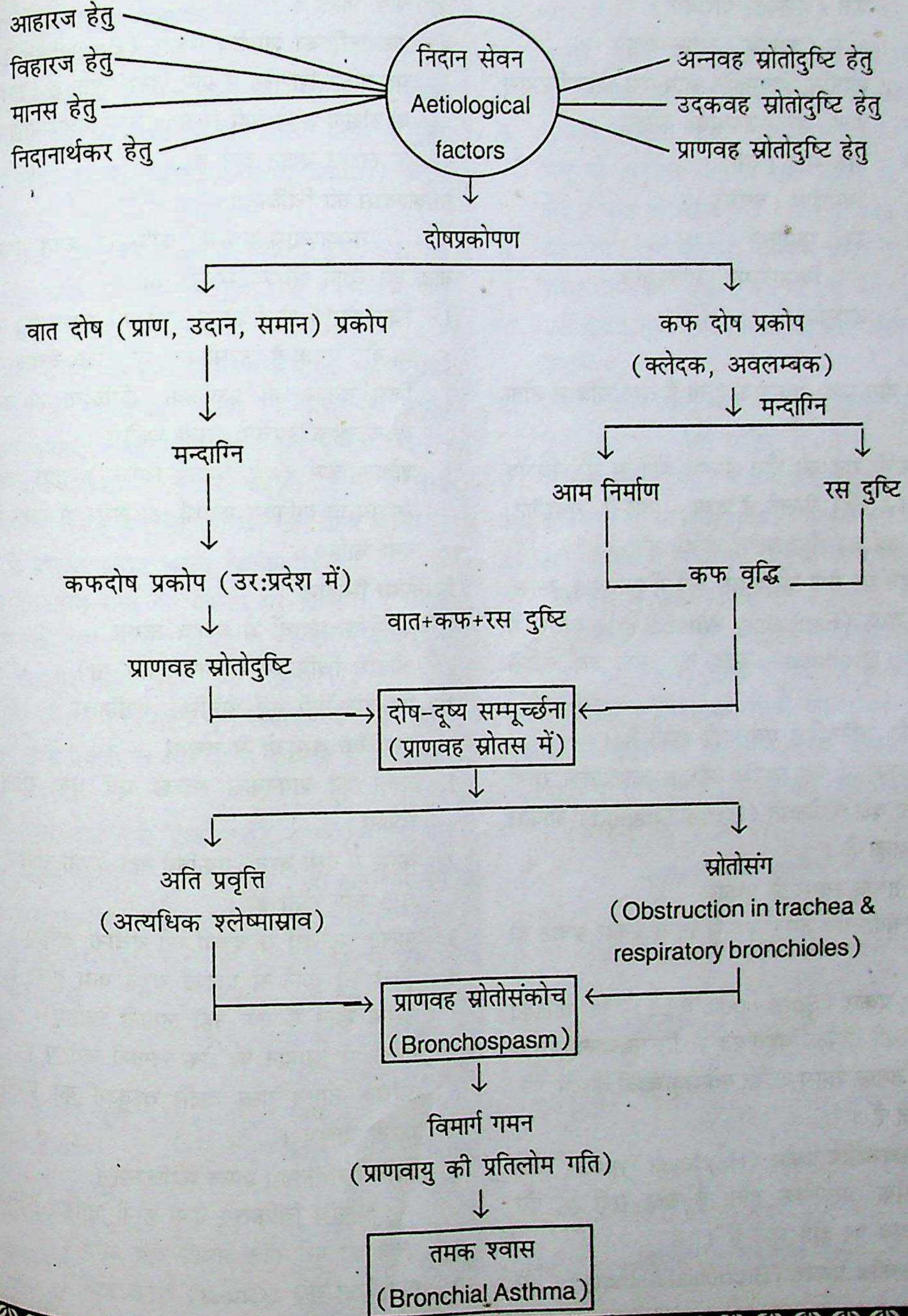
आहारज हेतु
विहारज हेतु
मानस हेतु
निदानार्थकर हेतु
निदान सेवन
Aetiological
factors
अन्नवह स्रोतोदुष्टि हेतु
उदकवह स्रोतोदुष्टि हेतु
प्राणवह स्रोतोदुष्टि हेतु
दोषप्रकोपण
वात दोष (प्राण, उदान, समान) प्रकोप
कफ दोष प्रकोप
(क्लेदक, अवलम्बक)
मन्दाग्नि
मन्दाग्नि
आम निर्माण
रस दुष्टि
कफ वृद्धि
कफदोष प्रकोप (उर:प्रदेश में)
वात+कफ+रस दुष्टि
प्राणवह स्रोतोदुष्टि
दोष-दूष्य सम्मूर्च्छना
(प्राणवह स्रोतस में)
अति प्रवृत्ति
(अत्यधिक श्लेष्मास्राव)
स्रोतोसंग
(Obstruction in trachea &
respiratory bronchioles)
प्राणवह स्रोतोसंकोच
(Bronchospasm)
विमार्ग गमन
(प्राणवायु की प्रतिलोम गति)
तमक श्वास
(Bronchial Asthma)

सम्प्राप्ति घटक :-

दोष : वात (मुख्यत: प्राणवायु)
दूष्य : कफ (क्लेदक, अवलम्बक)
अग्नि : मंदाग्नि, विषमाग्नि आम-रस धात्वाग्निमांद्य
स्रोतस : प्राण, अन्न, उदकवह स्रोतस
उद्भव स्थान : पित्तस्थान (चरक)
आमाशय (वाग्भट्ट)
व्यक्त स्थान : उरः, फुफ्फुस
स्रोतोदुष्टि : संग, विमार्गगमन, अतिप्रवृति
रोगमार्ग : आभ्यंतर

लक्षण :-

1. रोग का दौरा प्राय: एकाएक होता है तथा रात्रि में होता है ।
2. कभी-कभी रोग का दौरा प्रारम्भ होने से पूर्व विशेष लक्षण (Aura) मिलते हैं यथा - बेचैनी, घबराहट, कण्डू, वक्ष का बँधा प्रतीत होना आदि ।
3. दौरा पड़ने पर रोगी को श्वास लेने में कठिनाई, कास, घुरघुर शब्द (Expiratory Wheezing), शरीर में नीलिमा (Cyanosis), स्वेद का आना एवं बेचैनी आती है ।
4. नाड़ी गति अनियमित एवं बढ़ी रहती है ।
5. जिन बालकों में यह व्याधि अधिक काल तक रहती है, उनका वक्ष कपोतवत् (Barrel Shaped) आकार का हो जाता है ।

बाल्यकालीन तमक श्वास के प्रकार

बाल्यकालीन तमक श्वास निम्न प्रकार प्रकट हो सकता है -

1. **आपेक्षित प्रकार** (Spasmodic Type)- यह बालकों में अन्य की अपेक्षा बहुतायत से मिलने वाला श्वास रोग है। तमक श्वास जनित श्वासकृच्छ्रता के दौरे पुन: पुन: आते हैं ।
2. **तृणपुष्पाख्यज्वरीय प्रकार** (Hay fever Type)- इसमें नासा प्रसेक अत्यधिक होता है तथा सर्दी के दौरे समय-समय पर होते रहते हैं ।
3. **श्वासनलिकीय प्रकार** (Bronchial Asthma)- इस प्रकार में श्वासनलिका शोथ के साथ-साथ संकोच भी पाया जाता है ।
4. **श्वासनलिका शोथीय प्रकार** (Bronchitic Type)- यह प्रकार शिशुओं में प्राय: देखा जाता है। तमकश्वास के लक्षण उतने नहीं मिलते जितने श्वासनलिका शो के लक्षण प्रकट होते हैं ।

तमकश्वास की चिकित्सा

तमकश्वास रोग की चिकित्सा करते समय निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए -

1. जिन पदार्थों के सेवन से रोगी का श्वास वेग बढ़ता है या दौरा पड़ता है, उससे रोगी को सदैव बचना चाहिए।
2. जिस प्रकार की एलर्जिक प्रतिक्रिया हो तदनुकूल लक्षणात्मक उपचार करना चाहिए ।
3. शोधन कर्म (मृदु वमन, विरेचन) द्वारा जहाँ तक सम्भव हो हानिकर पदार्थों को शरीर से बाहर निकाल देना चाहिए ।

चिकित्सा सिद्धान्त

1. एलर्जिक पदार्थों से बचाव करना ।
2. औषधि चिकित्सा (शमन चिकित्सा) ।
3. फिजियोथेरपी एवं मानसिक चिकित्सा ।

1. एलर्जिक वस्तुओं से बचाव

1. बच्चे का शयनकक्ष स्वच्छ एवं धूल रहित हो चाहिए।
2. कमरे में ऐसी वस्तुएं एकत्रित नहीं करनी चाहिए जिनमें धूल जमा होती हो ।
3. पालतू जानवरों से बच्चों को बचाना चाहिए।
4. बच्चे को ख़ाने से एलर्जी बहुत कम होती है, अ उसके खाने में रोक नहीं लगानी चाहिए।
5. तरुणों में धूम्रपान पर रोक लगानी चाहिए।
6. अधिक तीक्ष्ण गन्ध वाली वस्तुओं का प्रयोग न करना चाहिए ।

2. औषधि चिकित्सा (शमन चिकित्सा)

औषधि चिकित्सा ऐसी होनी चाहिए जिससे -

1. बच्चे को पूरी रात्रि अच्छी नींद आये।
2. प्रात:काल वक्ष (Chest) साफ होवें।

3. सामान्य भौतिक क्रियाएं जारी रख सके ।
4. उपद्रव तथा Side effects न हों ।

चिकित्सा क्रम

1. सर्वप्रथम बालक के वक्ष प्रदेश पर तिल तैल व सैंधव लवण से मालिश करने के बाद स्निग्ध द्रव्यों से युक्त नाड़ी/संकर या प्रस्तर स्वेद (Fomentation) करना चाहिए ।
2. दधि आदि कफवर्धक आहार पदार्थों द्वारा कफ का उत्क्लेश करा कर पिप्पली चूर्ण, सेंधा नमक तथा मधु द्वारा वमन कराना चाहिए ।
3. "दुर्बले शमनं मतम्" चिकित्सा सिद्धान्त के अनुसार बालकों में साधारणत: शमन चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए । बालकों में हीन बल होने के कारण मृदु वीर्य औषधियाँ प्रयोग में ली जाती हैं तथा औषधियों का प्रयोग भी अधिक नहीं होना चाहिए ।

बालकों में प्रयुक्त प्रमुख शमन चिकित्साएं ।

1. वेग के समय रोगी को बिस्तर पर लिटा दें । कमरा गरम रखें तथा अधिक कपड़े न पहनावें । पुष्करमूल को जलाकर उसकी धूम देनी चाहिए ।
2. कटुकी क्वाथ में पिप्पली चूर्ण डालकर पीने से श्वास, कास तथा एकाहिक ज्वर शान्त हो जाते हैं । (रा.कु. त./104)
3. पुष्करमूल, अतिविषा, कर्कटश्रृङ्गी, मागधी, धनिया एवं यवासा का चूर्ण मधु से देने पर श्वास-कास नष्ट हो जाते हैं ।
4. भाङ्गी, रास्ना, कर्कटश्रृङ्गी के चूर्ण को मधु से चाटने पर बालकों का श्वास-कास नष्ट हो जाता है ।
5. यवासा, पिप्पली, द्राक्षा, हरीतकी समभाग लेकर चूर्णकर मधु के अनुपान से तीन रात्रि चटाने से बालकों का श्वास नष्ट हो जाता है । (यो.र.पृ. 443)
6. वंशलोचन चूर्ण को मधु के साथ चाटने पर बालकों का श्वास नष्ट हो जाता है । (यो.र.पृ. 443)
7. तालिशादि चूर्ण एवं यवक्षार का वासा स्वरस से प्रयोग करायें ।
8. श्वास-कास चिन्तामणि या श्वास कुठार रस का प्रयोग पुराने गुड़ से करना चाहिए ।
9. कण्टकार्यवलेह, भाङ्गी हरीतकी अवलेह (योर) लाभप्रद है ।
10. द्राक्षासव व कनकासव का प्रयोग करना चाहिए ।
11. आर्द्र श्वास में अर्कलवण एवं श्रृंगाराभ्र को पान के रस एवं मधु से देना चाहिए ।

सामान्यत: युवा व्यक्ति में प्रयुक्त औषधि की चतुर्थांश (¼th Part) मात्रा में बालकों में औषधि प्रयोग करनी चाहिए । निम्न औषधियों का युक्ति पूर्वक प्रयोग बालकों में सांस की तकलीफ-तमक श्वास Bronchial Asthma के निवारण हेतु सफलता पूर्वक किया जा सकता है ।

1. **रस/ भस्म पिष्टी**	**मात्रा** 60-100 मि.ग्रा.,	अनुपान- मधु, आर्द्रक स्वरस
श्वास-कास चिन्तामणि	श्वास कुठार रस	
लक्ष्मी विलास रस	समीरपन्नग रस	
चन्द्रामृत रस	श्रृङ्ग रस	
2. **चूर्ण**	**मात्रा** 1-3 ग्राम	अनुपान - मधु
तालिशादि चूर्ण	सितोपलादि चूर्ण	
पुष्करमूलादि चूर्ण	सोम चूर्ण	
3. **क्वाथ/कषाय**	**मात्रा** 10-20 मि.लि.	
शिरीषादि क्वाथ	पुष्करमूलादि क्वाथ	
भार्ङ्यादि क्वाथ	वासादि क्वाथ	
4. **आसवारिष्ट**	**मात्रा** 10-20 मि.लि.	अनुपान - समभाग जल
कनकासव	द्राक्षारिष्ट	

5. **अवलेह**

च्यवनप्राशावलेह वासावलेह

भाङ्गी-हरीतकी हरिद्राखण्ड

मात्रा 10-20 ग्राम अनुपान - गर्म दुग्ध

6. **वटी (चूषणार्थ)**

एलादि वटी लवंगादि वटी व्योषादि वटी

मात्रा 125-250 मि.ग्रा. **अनुपान** - मधु

7. **क्षार**

अपामार्ग क्षार (मुख्यत: कफज श्वास में)

8. **धूमपान**

धतूरा एवं वासा पत्र का धूमपान

---

3. फिजियोथेरेपी एवं मानसिक चिकित्सा

श्वसन संस्थान की कार्मुकता बढ़ाने वाले व्यायामों यथा प्राणायाम आदि का अभ्यास करना चाहिए । बच्चे को श्वास लेने की सही विधि बतानी चाहिए जिससे सम्पूर्ण फुफ्फुस श्वसन क्रिया में भाग ले सके ।

श्वास से बचाव सम्बन्धी उपायों की जानकारी बच्चे को तथा उसके परिवार वालों को होनी चाहिए । बच्चे को मानसिक विषाद, तनाव आदि से दूर रखना चाहिए । परिवार द्वारा बच्चे को सदैव रोग से लड़ने के प्रति उत्साहित करते रहना चाहिए ।

अंग्रेजी में कहावत है "The best cure of asthma is not to have it" अर्थात् तमक श्वास की सर्वोत्तम चिकित्सा उसका न उत्पन्न होना ही है ।

साध्यासाध्यता

क्षुद्र: साध्यतमस्तेषां तमक: कृच्छ्र उच्यते ।
त्रय: श्वासां न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥

(सु०उ० 51/1

श्वासरोगों में क्षुद्र श्वास साध्य, तमक श्वा कृच्छ्र साध्य तथा महाश्वास एवं छिन्नश्वास असाध्य हैं । दुर्बल रोगी में तमक श्वास को भी असाध्य माना है ।

संन्दर्भ ग्रन्थ :-

1. अभिनव बालरोग-चिकित्सा, लेखक-डा० देवेन्द्र मिश्र, प्रकाशक - चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, संस्करण, 1997 ।
2. योग रत्नाकर "वैद्य प्रभा टीका" (हिन्दी टीका लेखक-इन्द्रदेव त्रिपाठी एवं डा.डी. एस. त्रिपाठी, प्रका - कृष्णदास ऐकेडमी, वाराणसी, प्रथम संस्क 1998 ।
3. Essential Pediatrics - Dr. O.P. Ghai, Publica - Interprint, New Delhi, 5th Ed., 2005.

बैद्यनाथ

ईसबबेल

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री), कब्जियत
आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

उच्च रक्तचाप का प्राकृतिक उपचार

डा० राजीव गुप्ता

आजकल मनुष्य का जीवन बहुत संघर्षमय है। उसके रहन-सहन और खान-पान में बहुत बदलाव आया है। फास्टफूड (जंकफूड) की संस्कृति ने मनुष्य के स्वास्थ्य पर बहुत प्रभाव डाला है। साथ ही साथ प्रतिस्पर्द्धाओं के इस दौर में हरेक मनुष्य कम या अधिक तनावग्रस्त रहने लगा है। आज वह न ही सुकून से खा पाता है और न चैन की नींद से पाता है। उच्च रक्तचाप भी इन्हीं सब बातों का परिणाम है। रक्त वाहिनियों में बहता हुआ रक्त इसकी दीवारों पर जो दवाव डालता है रक्तचाप कहलाता है। उच्च रक्तचाप में यह दबाव सामान्य से अधिक हो जाता है।

स्वस्थ मनुष्य का सामान्य रक्तचाप

एक स्वस्थ मनुष्य का आराम करते समय यदि रक्तचाप नापा जाय तो वह सामान्यत: 120/80 मि.मी. मर्करी या इसके आसपास होगा। हर व्यक्ति में यह दबाव भिन्न-भिन्न हो सकता है। यहाँ पर 120 मि.मी. प्रकुंचन (सिस्टोलिक) तथा 80 मि.मी. प्रसारण (डायस्टोलिक) रक्त दबाव है। उम्र के साथ यह रक्तचाप बढ़ता जाता है, क्योंकि उम्र बढ़ने के साथ रक्तवाहिनियों के लचीलेपन में कमी आती है।

क्यों बढ़ता है रक्तचाप

मनुष्य का शरीर भी एक बहुत ही जटिल प्रकार की मशीन है। इसका ठीक से रख-रखाव रखना बहुत आवश्यक है। ऐसा न करने से शरीर में तरह-तरह की व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। शरीर को चुस्तदुरुस्त रखने के लिए हमें नियमित व्यायाम, पौष्टिक मगर संतुलित भोजन का सेवन, गहरी व पर्याप्त नींद लेने के साथ-साथ प्रसन्नचित व तनाव मुक्त रहना चाहिए, किन्तु अक्सर ऐसा हो नहीं पाता है। इसीलिए हम अस्वस्थ भी रहते हैं। रक्तचाप बढ़ने के निम्न प्रमुख कारण हैं :-

- मधुमेह से पीड़ित होना।
- गुर्दे की बीमारियाँ।
- अत्यधिक मानसिक तनाव।
- लगातार कई दिनों तक ठीक से सो न पाना।
- हृदय की बीमारियाँ।
- रक्त नलिकाओं का लचीलापन कम हो जाना।
- उत्तेजक पदार्थ, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू आदि का अधिक सेवन करना।
- अधिक चाय का सेवन।
- अधिक मदिरापान करने से।
- भोजन में अधिक चिकनाई, मलाई व सूखे मेवे लेने से।
- अधिक मोटापा बढ़ने से।
- भोजन में अधिक नमक का सेवन करने से।
- शारीरिक परिश्रम बिल्कुल न करने से।
- अत्यधिक मानसिक श्रम।

उच्च रक्तचाप के सामान्य लक्षण

उच्च रक्तचाप से पीड़ित व्यक्ति में सामान्यत: निम्नलिखित लक्षण मिल सकते हैं :-

- सामान्य कमजोरी और चक्कर।
- बेचैनी रहना एवं किसी भी काम में मन न लगना।
- सिर भारी-भारी सा रहना या सिर में तीव्र पीड़ा होना।
- बहुत अधिक तनाव महसूस करना। नाक से रक्त बहना।
- बिना वजह चिड़चिड़ाहट रहना।
- बांहों और अंगुलियों में कम्पन।
- अनिद्रा।
- हर समय एकांत में लेटे रहने का मन करना, किसी भी काम में मन न लगना।

प्राकृतिक उपचार भी हो सकते हैं कारगर

आजकल जरा-सा बीमार पड़ने पर मनुष्य अंधाधुंध दवाइयाँ लेने लगता है, परन्तु वह अपने आहार-विहार में कोई परिवर्तन नहीं करता। इसका परिणाम यह होता है कि कुछ समय बाद उन दवाइयों का प्रभाव घटता जाता है, जिससे हमें दवाइयों की मात्रा बढ़ानी पड़ती है, दूसरे इन दवाइयों के दुष्परिणाम से शरीर में नई बीमारियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। अंग्रेजी दवाइयों का यह बहुत बुरा अवगुण है। इसलिए दवाइयाँ शुरू करने से पहले प्राकृतिक उपचार पर

5/11 बाग कूँचा, फर्रुखाबाद, (उत्तर प्रदेश) - 209625

विचार करना चाहिए । प्राकृतिक उपचार में उपवास, पथ्य-अपथ्य एवं जीवन शैली में बदलाव लाने पर बल दिया जाता है ।

रक्त प्रवाह को शुद्ध रखने के लिए उच्च रक्तचाप के रोगियों को उपवास रखना चाहिए । उपवास के दौरान रोगी को कच्ची सब्जियों व फलों का रस बिना नमक मिलाए दो-तीन बार लेना चाहिए । रोगी को अपना खान-पान इस उपवास के बाद भी नियमित रखना चाहिए । वसायुक्त, मिर्च मसाला युक्त, अति प्रोटीनयुक्त आहार नहीं लेना चाहिए । नमक, मसाले और डिब्बाबंद आहार का पूर्ण परहेज करने से रक्तदाब शीघ्र ही सामान्य होने लगता है ।

शराब, सिगरेट, बीड़ी और तम्बाकू तो उच्च रक्तचाप के रोगियों के लिए बहुत ही हानिकारक है, इनको एकदम त्याग देना चाहिए ।

अधिक नमक का सेवन गुर्दों को प्रभावित करता है, जिसके कारण गुर्दों की समस्याएं पैदा हो जाती हैं एवं रक्तप्रवाह में अशुद्धियाँ मिल जाती हैं, जिससे उच्च रक्तचाप रहने लगता है । इसलिए सामान्य व्यक्ति को भी नमक कम से कम लेना चाहिए ।

दिन भर में 10-12 गिलास पानी पीना हमारे स्वास्थ्य के लिए अच्छा है । यह पानी सारे शरीर की गंदगी मूत्र द्वारा बाहर निकाल देता है । इसी प्रकार शरीर के लिए कुनकुनी धूप भी आवश्यक है । इससे शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है, जिससे मनुष्य अधिक स्वस्थ व चुस्त-दुरुस्त रहता है ।

कब्ज रहने की स्थिति में तमाम बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं । इनमें पाचन संबंधी परेशानियाँ, भूख न लगना, खट्टी डकारें आना, पेट में जलन होना, गैस बनना, सिर में दर्द होना एवं हमेशा तनावग्रस्त रहना प्रमुख है । ये सब हमारे रक्तचाप को प्रभावित करती हैं । इसलिए कब्ज का निवारण अतिशीघ्र करना चाहिए । इसके लिए हरी सब्जियों एवं सलाद को अपने भोजन में नियमित शामिल करें । पके रसीले फलों का नित्य सेवन करें । गुनगुने पानी में सुबह-सुबह आधा नीबू निचोड़ कर लें, अंकुरित अनाज लें एवं चोकर युक्त आटे की रोटियाँ लें । कभी-भी रखा हुआ वासी भोजन न लें एवं तले हुए खाद्य पदार्थों तथा पूरी, कचौड़ी आदि से परहेज रखें । कब्ज से पीड़ित होने पर आमलकी रसायन, आमलकी चूर्ण या त्रिफला चूर्ण सोते समय गुनगुने जल से लिया जा सकता है ।

सबसे उत्तम आयुर्वेदिक उपचार

आयुर्वेदिक औषधियाँ प्रकृति के सबसे करीब हैं । प्राय: इनके कोई भी दुष्परिणाम देखने को नहीं मिलते हैं । आयुर्वेदिक औषधियाँ रोगी को स्वाभाविक रूप से स्वस्थ बनाने का प्रयत्न करती हैं । इनको लम्बे समय तक बिना किसी भय के लिया जा सकता है । उच्च रक्तचाप के लिए निम्नलिखित आयुर्वेदिक औषधियों का सेवन करना अच्छा रहता है :-

- जहर मोहरा खताई पिष्टी ।
- रौप्य भस्म ।
- समीर-पन्नग रस ।
- चन्द्रकला रस ।
- चिन्तामणि रस ।
- बालचन्द्र रस ।
- रस राज रस ।
- सर्पगंधा चूर्ण योग ।
- सर्पगंधाधन बटी आदि ।

बैद्यनाथ
सितोपलादि चूर्ण
पुराना बुखार, यक्ष्मा एवं खांसी की उत्तम दवा

ओजक्षय

वैद्य अम्बालाल जोशी

मानव देह में ओज अपना विशेष स्थान रखता है या यों कहे कि ओज ही देह धारक है तो भी अन्यथा न होगा । जहां यह देह धारक है वहां इसका क्षय होना आगे बढ़कर देह नाशक भी हो जाता है । उदाहरण के तौर पर जैसे दूध में घृत मिश्रित रहता है, उसी प्रकार देह में ओज प्रत्यंग को संचालित होने का सामर्थ्य प्रदान करता है । हम इसी दृष्टि से इस पर विचार करेंगे ।

ओज क्या है ?

फलों में जिस प्रकार छः प्रकार के रस रहते हैं और वे अपने परिवर्तित रूप में प्रकट होते रहते हैं उसी प्रकार देह की सातों धातुओं का सार (सत्व) इसमें व्यवस्थित रूप से रहता है । रस, रक्त, अस्थि, मांस, मेद, मज्जा और शुक्र इन सातों धातुओं को सत्व इसको तेज कहा गया है वहाँ रहता है और बल देता रहता है । (सुश्रुत सूत्र अ 15-21) यह सत्व देह में जब तक उचित मात्रा में तथा शुद्ध रूप में रहता है तब तक व्यक्ति श्रम योग्य रहता है । उठना, दौड़ना, बोलना आदि दैनिक कार्यों में उसे थकावट महसूस नहीं होती न वास्तविक रूप से आती ही है । देह वर्ण स्वच्छता, आभा, बल तथा देह के सभी कार्य रक्त संचालन, पाचन श्वास प्रश्वास वायुचलन पित्त कार्य, श्लेष्म कार्य (पांचों प्रकार के) व्यवस्थित रहता है । ज्ञानेन्द्रियों तथा स्पर्शेन्द्रियों में चक्षु स्रोत त्वचा घ्राणशक्ति आदि अपने-अपने ढंग से कार्य करते रहते हैं । (सुश्रुत सूत्र 15-22)

ओज का स्वरूप :-

शास्त्रों ने ओज का स्वरूप इस प्रकार वर्णित किया है :-

ओजः सोमात्यकं स्निग्धं शुक्लं शीतं स्थिरं सरम् । विवक्त मृदु ।'' उपरोक्त गुणों से संयोजित ओज का रूप है । (सु.सू. 15-23-24)

ओज क्षय के कारण :-

सभी धातुओं का क्षय या उनके विकार युक्त हो जाने पर ओज क्षय होता है क्योंकि वह सभी धातुओं में सार रूप में रहता है । अपने आधार में विकृति आ जाने के कारण ओज भी हीन तेजवान होकर क्षय का कारण बनता है ।

दोषादि क्षय :-

शरीर में तीन धातु हैं और वह मानव देह को धारण किये रहती है जब तक वह निर्विकार रहती है विकृत होकर त्रिदोष कहलाती है और रोग कारक बन जाती है । इन दोषों की वृद्धि क्षय तथा तिर्यग गति अपने ही खान-पान व्यवहार से होती रहती है । इनका सम्पोषण भी इसी प्रकार होता है । रोग कारक कारणों से त्रिदोष ही आगे बढ़कर ओज क्षय कर देते हैं । यह कार्यक्रम तदनुसार ही मात्रा भेद से होते हैं । (सु०सू०अ० 15-22)

ओजक्षय की तीन स्थितियां :-

ओजक्षय की तीन स्थितियां होती हैं ।

1. आरम्भिक स्थिति- इसमें रोग के पूर्व रूप की तरह आने वाली अवस्था का आभास तो होता है, परन्तु प्रमादवश व्यक्ति इस ओर ध्यान नहीं देता और कालान्तर में ।
2. मध्य स्थिति बन जाती है तो पूर्व स्थिति से कष्टदायक तथा स्पष्ट होती रहती है ।
3. तृतीय स्थिति जिसे उत्तर पूर्ण ओजक्षय कह सकते हैं वह मृत्यु का कारण बनती है ।

(अष्टांगहृदय 37-38)

ओज दो प्रकार का :-

ओज दो प्रकार का बताया गया है - जिनके नाम हैं (1) पर (2) अपर - इसका स्पष्टीकरण आगे दिया जायेगा । (दोषादि विज्ञानीय) ओज प्रकार - (I) ओज वृद्धि (II) ओजक्षय । इन वृद्धि क्षय के अपने-अपने कारण होते हैं । उन्हीं के अनुसार वृद्धि तथा ह्रास होता रहता है और इसके परिणाम ही भोगने पड़ते हैं अच्छे या बुरे ।

अब हम आगे ओज से सम्बन्धित कुछ उदाहरण प्रसंगित कर रहे हैं । वाल्मीकीय रामायण का यह प्रसंग है :- वाल्मीकीय रामायण - (युद्ध 45 सर्ग)

इन्द्रजित के सामने युद्ध करते हुए श्रीराम तथा लक्ष्मण के मर्म स्थलों को इन्द्रजित ने विद्ध कर दिया और

मकराना मोहल्ला, जोधपुर

वे अचेत होकर भूमि पर गिर पड़े । (15-18) इससे सर्वत्र संकट तथा संताप छा गया - लक्षण - (चिन्ह) चेष्टायें बन्द हो गई । धीरे-धीरे श्वास भी अवरूद्ध होने लगी (6/4) इन्द्रजित ने उन्हें मृतक समझ कर छोड़ दिया । निश्चेष्ट श्वास रुक गया था । (46-27) सुग्रीव शोकाकुल मूर्छित हो गये । विभीषण ने मंत्र युक्त जल छिड़क कर उन्हें चेतन किया । फिर विभीषण ने सान्त्वना देते हुए कहा - (36-40) हयेन हास्यते लक्ष्मी दुर्लभः या गतायुषाम ।

अर्थात् दुर्लभ लक्ष्मी ने इनका त्याग नहीं किया है।

ओज बल से श्रीराम जीवित हुए फिर औषधि के प्रयोग से लक्ष्मण भी स्वस्थ हो गये । वे (4) औषधियां थी (1) विशल्य करणी (2) सवर्ण करणी (3) सन्धानी (4) संजीवनी - सभी औषधियों के गुण कर्म प्रभाव रामायण में स्पष्ट लिखे हैं ये सभी नाम से अर्थ स्पष्ट है ।

श्रीराम लक्ष्मण के गरूड़ के स्पर्श से तेज वीर्य बल ओज उत्साह दृष्टि बुद्धि स्मरण शक्ति गुण पहले से द्विगुण हो गये उनके सभी व्रण भर गये । निर्विष हो गये । (50-40) फिर गरूड़ ने राम से कहा - मैं आपका बाहर संचरण या विचरण करने वाला प्राण हूँ । (101-1-25-28)

ओज वर्णन की स्पष्टता :-

सुषेण ने कहा कि आपके भाई शोभा वर्धक लक्ष्मण मरे नहीं हैं देखिये इनके मुख की आकृति अभी बिगड़ी नहीं है और न इनके मुखमण्डल पर कालापन ही आया है । इनका मुख प्रसन्न है एवं कान्तिमान दिखाई दे रहा है । इनके हाथों की हथेली कमल से भी कोमल है, आँखें भी बहुत साफ है । प्रजानाथ ! मरे हुए प्राणियों में ऐसा रूप नहीं देखा जाता .... आप विषाद न करें इनके शरीर में प्राण है । वीर ! ये सो गये हैं इनका शरीर शिथिल होकर भूमि पर पड़ा है । श्वास चल रही है । हृदय बार-बार कम्पित हो रहा है । हृदय की गति बन्द नहीं हुई है । ये लक्षण उनके जीवित होने के हैं ।

इस प्रकार सुषेण ने अप्रत्यक्ष रूप से ओज के विश्लेषण में कुछ वाक्य कहे । ओज के पर्यायनाम हैं :- तेज, वीर्य, बल, ओज । ऐसा शास्त्रों में बताया गया है । आयुर्वेद शास्त्रों में ओज की व्याख्या करते हुए ओज के प्रकार इस प्रकार बताये हैं :-

1. अष्ट बिन्दु ओज जो सम्पूर्ण देह में व्याप्त है । से एक बिन्दु का क्षय भी मारक बन सकता है - अष्ट बिन्दु के रूप में ही शरीर को धारण करता है
2. अधान्जिली ओज चरक के मतानुसार मांस और के बीच में संचित द्रव्य के रूप में जिसे लसीका कहते हैं ।
3. पाचन क्रिया में अन्न के रस में रूपान्तरण भी बताया गया है । परन्तु वास्तविक रूप में ऐसा नहीं यह दूष्य है ।

आधुनिक विज्ञान ने ओजक्षय के समान ही व्याधि का परिचय प्रस्तुत किया है जिसे एड्स (इम्यूनो डेफिसिऐन्सी सिण्ड्रोम) नाम दिया गया है । नामकरण आज से 20-25 वर्ष पूर्व किया गया और रोग के नाम से पाश्चात्य जगत से आया है । इसके एच.आई.वी बताये गये और इसे भयावह छूत की का रूप में माना गया । यहाँ तक कि डाक्टर ऐसे का स्पर्श भी करने से डरते थे । रक्त कार्य स्पर्श से परहेज करते थे ।

कार्य:- दैहिकी सुरक्षा प्रणाली को निष्क्रिय इसका कार्य क्षेत्र बताया गया ।

कारण :- सम लैंगिक सम्बन्ध, अप्राकृतिक सूचीवेध (अपरिष्कृत) अनैतिक आचार, मादक द्रव्य रक्त मोक्षण आदि इसके कारण हैं ।

सुश्रुत सूत्र स्थान में ओजक्षय प्रकरण इससे भिन्न हैं ।

यहां ओज क्षय तथा एड्स के विभेदक अंकित कर रहे हैं ।

एड्स	ओजक्षय
वायरस से उत्पत्ति	: आयुर्वेद इसे नहीं मानता ।
संक्रमणशीलता	: आयुर्वेद इसे नहीं मानता ।
मृत्यु कारणता	: आयुर्वेद नहीं मानता
आनाचार तत्व	: कारणत्व
वीर्यक्षय जन्य	: सम्पूर्ण धातुओं का सार
पाश्चात्य अनाचार व्यवहार	: भारतीय नहीं ।

उन्माद चिकित्सा में चरकोक्त पंचकर्म के सन्दर्भ

* डा० अनूप कुमार गक्खड़ व डा० सीमा चोपड़ा

पंचकर्म यद्यपि चिकित्सा का एक महत्वपूर्ण उपक्रम है किन्तु, इसी नाम से संहिताओं में वर्णन बहुत कम मिलता है । चरक चिकित्सा स्थान के नौवें अध्याय में पंचकर्म से सम्बन्धित निम्नलिखित निर्देश मिलते हैं ।

वातज उन्माद में चिकित्सा सूत्र :- सबसे पहले स्नेहपान परन्तु यदि कफ तथा पित्त से वात का मार्ग अवरूद्ध हो तो ईषत स्नेह युक्त शोधन देना चाहिए । (9/25)

उन्माद में पंचकर्म प्रयोग :- कफज या पित्तज उन्माद में स्नेहन-स्वेदन करने के बाद कफज में वमन और पित्तज में विरेचन देना चाहिए । तत्पश्चात् निरूह, अनुवासन और शिरोविरेचन का प्रयोग करना चाहिए । दोषाधिक्य के अनुपात से बार-बार बस्ति का प्रयोग करें । (9/26-27)

शोधन की फलश्रुति :- हृदय, इन्द्रिय, शिर, कोष्ठ के शुद्ध हो जाने पर मन में प्रसन्नता होती है और वह व्यक्ति स्मरणशील सम्पन्न और विवेकशील हो जाता है ।

उन्माद में तीक्ष्ण उपचार :- उन्माद में तीक्ष्ण नस्य, तीक्ष्ण अञ्जन आदि का प्रयोग है । यदि संशोधन के पश्चात् भी रोगी अपने होश-हवास और आचरण को व्यवस्थित न रख पाता हो तो तीक्ष्ण उपचार करें ।

आगन्तुज उन्माद का चिकित्सा सूत्र :- आगन्तुज उन्माद वायु दोष प्रधान त्रिदोषज उन्माद होता है । इसलिए इसमें वातशामक, घृतपान एवं निरूह एवं अनुवासन बस्तियों का प्रयोग करना चाहिए । मंत्रादि भी प्रयोज्य है ।

लशुनादि घृत से नावन नस्य :- पुराण घृत (10 वर्ष का) तथा प्रपुराण घृत (100 वर्ष का) के द्वारा नस्य प्रयोग । शिरीषादि द्रव्यों का नस्य । व्योषादि नंस्य । सिद्धार्थकादि अगद-पान, अञ्जन, नस्य लेप, स्नान उद्वर्तन हेतु । श्वेतादि - वैरेचनिकं धूमोक्त द्रव्यों का नस्य ।

वातकफज उन्माद में :- शल्लक, उलूक, मार्जारादि के मूत्र, पित्त, मल, लोम, नख, चर्म का अञ्जन, प्रधमन नस्य और धूम देना चाहिए ।

देवादिजन्य भूतोन्माद में तीक्ष्णकर्म का निषेध है ।

सिद्धि स्थान में शिरोरोग विवेचन के सन्दर्भ

* डा० अनूप कुमार गक्खड़ व डा० आरती रयात

चरक सिद्धि स्थान में शिरोरोग से सम्बन्धित वर्णन रोग, लक्षण, योग्य/अयोग्य आदि के रूप में मिलता है । सिद्धि स्थान में अनेक शिरोरोग के निदान, सम्प्राप्ति तथा लक्षणों का भी उल्लेख किया गया है । सिद्धि स्थान में शिरो रोगों से सम्बन्धित संदर्भों का अध्याय/श्लोक के अनुसार वर्णन इस प्रकार है ।

→ **विशुद्ध कायस्य...............मलानाम् ।**

शिर को उत्तमाङ्ग बताते हुए शिरो के रोगों में कार्य शुद्धि होने के बाद शिरोविरेचन करवाने को कहा गया है । (1/5)

→ **शेषाक्तवहा:................तद्धयुत्तमाङ्गमनु.......।**

शिर को उत्तमाङ्ग कहा गया है तथा शिरोविरेचन के योग्य रोगी बताए गए हैं । (2/22)

→ शिरो विरेचन के सम्यगयोग, अयोग तथा अतियोग के लक्षण बताते हुए शिर में लघुता, गौरव तथा शिर, नेत्र, कर्ण, शंख प्रदेश में तोद व तिमिर का उल्लेख किया गया है । (1/51, 52)

→ शिर:शूल के रोगी को विरेचन के योग्य बताया गया है । (2/13)

→ निरूह बस्ति के योग्य रोगियों में शिर:शूल तथा कर्णशूल का उल्लेख है । (2/16)

→ शोधनार्थ दी गयी औषधि के न पचने पर शिर:शूल का उल्लेख है । (6/27)

→ आध्मान के कारण, चिकित्सा बताते हुए लक्षणों में शिरो रूजा का उल्लेख है । (6/59)

→ शिरो मर्म की व्यापकता बताते हुए कहा गया है कि शिर में ज्ञानेन्द्रिय, इन्द्रिय तथा प्राणवह स्रोतस उसी तरह सम्बद्ध है जैसे कि सूर्य के साथ सूर्य की किरणें सम्बन्धित होती हैं । (9/4)

→ निरूह बस्ति का सम्यग्योग न होने पर उत्पन्न 12 प्रकार के दोषों में शिर:शूल का भी उल्लेख है । (7/6)

→ शिर:शूल का कारण, लक्षण तथा चिकित्सा का वर्णन किया गया है । (7/43)

---

* दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्धर शहर ** आयुर्वेदिक कॉलेज, होशियारपुर

→ शंखक रोग के निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण तथा चिकित्सा सूत्र का उल्लेख है । (9/71)

→ अर्धावभेदक रोग के निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण तथा चिकित्सा सूत्र का उल्लेख है । (9/74)

→ सूर्यावर्त रोग के निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण तथा चिकित्सा सूत्र का उल्लेख है । (9/79)

→ अनन्तवात रोग के निदान, सम्प्राप्ति, लक्षण तथा चिकित्सा सूत्र का वर्णन किया गया है । (9/84)

→ शिरोमर्म में अभिघात होने पर लक्षण स्वरूप शिर में अभिघात होना बताया है । (9/6)

→ उच्च भाषण से होने वाले रोगों में शिर में ताप का भी उल्लेख है । (12/13)

→ शिरशूल के रोगी में वमन का निषेध करते हुए कहा गया है कि उसमें वमन कराने से उनका शूल बढ़ जाता है । (2/8)

→ शिरशूल में बस्ति में मांसरस का प्रयोग बताया गया है । (3/43)

→ शिर को उत्तम देह बताते हुए इसमें दाह होने पर द्राक्षादि निरूहबस्ति का प्रयोग बताया है ।

→ शिर के वात से आक्रान्त होने पर विशिष्ट चिकित्सा का उल्लेख किया गया है ।

→ अपतंत्रक, अपतानक की सम्प्राप्ति बताते हुए उसमें शिर तथा शंख में पीड़ा का उल्लेख है । (9/12)

→ सर्व शिरोरोगों में नस्य, शिर:कम्प में तर्पण नस्य के प्रयोग का उल्लेख है । (9/88)

→ वली पलित के नाश के लिए चतु:स्नेह अनुवासन वस्ति का प्रयोग बताया गया है । 12/18

→ वली पलित के नाश के लिए बलादि चमक की अनुवासन बस्ति का प्रयोग बताया गय है । (12/18)

→ मर्मों की रक्षा का उपदेश करते हुए शिरो मर्म की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने का विधान है । (12/9)

चरक पूर्वार्द्ध में शिरो विरेचन का वर्णन

*** डा० अनूप कुमार गक्खड़ व ** डा० अनिल गक्खड़**

चरक सूत्र स्थान के अपामार्ग तण्डुलीय अध्याय में शिरोविरेचन में प्रयुक्त होने वाले द्रव्यों का वर्णन किया गया है । इसके अतिरिक्त सूत्रस्थान के अन्य अध्यायों इसके संदर्भ मिलते हैं ।

दीर्घजीवित अध्याय में श्वेता तथा मालकांगनी जड़ का प्रयोग शिरोविरेचन हेतु बताया गया है । अध्याय में फलिनी द्रव्यों के प्रयोग में अपामार्ग का शिरोविरेचन हेतु बताया है । षड्विरेचन शताश्रितीय में शिरोविरेचन महाकषाय के दस द्रव्यों का उल्लेख है । मात्राशितीय अध्याय में अणु तैल के नस्य के प्रयोग की विधि बतायी है । इसी अध्याय में शिरोवि की विधि, नस्य के लाभ, शिरोविरेचन के लाभ बताए हैं । नवेगान्धारणीय अध्याय में क्षवथु निरोध से उत्पन्न वाले रोगों में नस्य का प्रयोग बतलाया है ।

स्नेहाध्याय में लिखा है कि शिरोविरेचन चुके व्यक्ति को स्नेहन नहीं करवाना चाहिए ।

उपकल्पनीयाध्याय में शिरोविरेचन की करने का उल्लेख मिलता है । महारोगाध्याय में वातदोष चिकित्सा सूत्र में शिरोविरेचन कर्म का उल्लेख किया है । इसी अध्याय में कफदोष के चिकित्सा सूत्र शिरोविरेचन कर्म का उल्लेख है । अष्टौनिन्दितीय में निद्रा निवारण के उपायों में शिरोविरेचन करवाना भी उपाय है । ऐसा वर्णन किया गया है ।

लंघनबृंहणीयाध्याय में लंघन के दस प्रकारों शिरोविरेचन का उल्लेख क़िया गया है ।

विधिशोणिताध्याय में सन्यास रोग की चिकित्सा में प्रधमन का उल्लेख प्राप्त होता है ।

यज्ज:पुरुषीयाध्याय में सर्वोत्तम औषध द्रव्य भाव और उनके कर्मों के वर्णन शिरोविरेचन हेतु पुष्पा को सर्वोत्तम माना गया है ।

दशप्राणायतनीय अध्याय में प्राणभिसर वैद्य ज्ञातव्य विषयों के उल्लेख में शिरोविरेचन में प्रयुक्त वाले औषधियों का वर्णन मिलता है । ज्वर निदान में शिरोविरेचन का उल्लेख किया है । व्याधि विमान अध्याय में शिरोविरेचन का संशोधन कर्म के वर्णन किया है । रोगाभिषग् जितीय विमान शिरोविरेचन द्रव्यों का वर्णन किया गया है ।

गेहूँ के ज्वारे : एक अनुपम औषधि

स्मिता गुप्ता*, एडवीन जेराल्ड, शीजा एडवीन जेराल्ड,

गेहूँ को बोने पर जो एक ही पत्ता उगकर ऊपर आता है उसे ज्वार कहा जाता है। नवरात्रि आदि उत्सवों में यह घर-घर में छोटे-छोटे मिट्टी के पात्रों में डालकर बोया जाता है ।

गेहूँ के ज्वारे का रस, प्रकृति के गर्भ में छिपी औषधियों के अक्षय भंडार में से मानव को प्राप्त कर एक अनुपम भेंट है । शरीर के आरोग्यार्थ यह रस इतना अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ है कि विदेशी जीव वैज्ञानिकों ने इसे "**हरा लहू**" कहकर सम्मानित किया है । डॉ एन.विगमोर नामक एक विदेशी महिला ने गेहूँ के कोमल ज्वारों के रस से अनेक असाध्य रोगों को मिटाने के सफल प्रयोग किए हैं। उपरोक्त ज्वारों के रस द्वारा उपचार से 350 से भी अधिक रोग मिटाने के आश्चर्यजनक परिणाम देखने में आये हैं। जीव-वनस्पति शास्त्र में यह प्रयोग बहुत मूल्यवान है।

गेहूँ के ज्वार के रस में रोगों के उन्मूलन की एक विचित्र शक्ति विद्यमान है। शरीर के लिए यह एक शक्तिशाली टॉनिक है । इसमें प्राकृतिक रूप से कार्बोहाईड्रेट आदि सभी विटामिन, क्षार एवं श्रेष्ठ प्रोटीन उपस्थित है । इसके सेवन से असंख्य लोगों को विचित्र प्रकार के रोगों से मुक्ति मिली है ।

उदाहरणार्थ : (1) मूत्राशय की पथरी (2) हृदय रोग (3) डायंबिटीज (4) पायरिया एवं दांत के अन्य रोग (5) पीलिया (6) लकवा (7) दमा (8) पेट दुखना (9) पाचन क्रिया की दुर्बलता, अपच, गैस (10) विटामीन ए,बी आदि के अभाव से उत्पन्न रोग (11) जोड़ों में सूजन, गठिया, संधिशोध (12) त्वचासंवेदनशीलता (स्किन एलर्जी) (13) आंखों की दुर्बलता (14) केशों का श्वेत होकर झड़ जाना (15) चोट लगे घाव तथा जली त्वचा संबंधी सभी रोग ।

हजारों रोगियों एवं निरोगियों ने भी अपनी दैनिक खुराकों में बिना किसी प्रकार के हेर-फेर किये गेहूँ के ज्वारों के रस में बहुत थोडे समय में चमत्कारिक लाभ प्राप्त किए हैं । वे अपना अनुभव बताते हैं कि ज्वारों के रस से आँख, दाँत और केशों को बहुत लाभ पहुंचता है । कब्ज मिट जाती है, अत्यधिक कार्यशक्ति आती है और थकान नहीं होती ।

गेहूँ के ज्वारे उगाने की विधि :

मिट्टी के नये खप्पर, कुंडे या सकोरे लें । उनमें खाद मिली मिट्टी लें । रासायनिक खाद का उपयोग बिल्कुल न करें, पहले दिन कुंडे की सारी मिट्टी ढंक जाये इतने गेहूँ बोये । पानी डालकर कुंडों को छाया में रखें ।

इसी प्रकार दूसरे दिन दूसरा कुंडा या मिट्टी का खप्पर बोयें और प्रतिदिन एक बढाते हुए नौवें दिन नौवां कुंडा बोयें । सभी कुंडों को प्रतिदिन पानी दें । नौवें दिन पहले कुंडे में उगे गेहूं काटकर उपयोग में लें । खाली हो चुके कुंडे में फिर से गेहूं उगा दें । इसी प्रकार दूसरे दिन दूसरा दिन, तीसरे दिन तीसरा करते हुए चक्र चलाते जाएं । इस प्रक्रिया में भूलकर भी प्लास्टिक के बर्तनों का उपयोग कदापि न करें ।

प्रत्येक कुटुम्ब अपने लिये सदैव के उपयोगार्थ 10, 20, 30 अथवा इससे भी अधिक कुंडे रख सकता है । प्रति दिन व्यक्ति के उपयोग अनुसार एक, दो या अधिक कुंडे में गेहूं बोते रहें । मध्यान्ह के सूर्य की सख्त धूप न लगे परन्तु प्रातः अथवा सायंकाल का मंद ताप लगे ऐसे स्थान में कुंडों को रखे ।

सामान्यतया आठ-दस दिन में गेहूं के ज्वारे पांच से सात इंच तक ऊँचे हो जायेंगे । ऐसे ज्वारों में अधिक से अधिक गुण होते हैं । ज्यों-ज्यों ज्वारे सात इंच से अधिक बडे होते जाएंगे त्यों-त्यों उनके गुण कम होते जाएंगे । अतः उनका पूरा-पूरा लाभ लेने के लिए सात इंच तक बडे होते ही उनका उपयोग कर लेना चाहिए ।

ज्वारों को मिट्टी के धरातल से कैंची द्वारा काट लें अथवा इन्हें समूल खिंचकर उपयोग में ले सकते हैं । खाली हो चुके कुंडे में फिर से गेहूँ बो दीजिए । इस प्रकार प्रत्येक दिन गेहूं का बोना चालू रखें ।

जब समय अनुकूल हो तभी ज्वारें काटे । काटते

ही तुरन्त धो डालें। धोते ही उन्हें कूटें। कूटते ही कपड़े से उसे छान लें।

इसी प्रकार उसी ज्वारे को तीन बार कूट - कूटकर रस निकालने से अधिकाधिक रस प्राप्त होगा। चटनी बनाने अथवा रस निकालने की मशीनों आदि से भी रस निकाला जा सकता है। रस को निकालने के बाद विलम्ब किये बिना तुरन्त ही उसको धीरे-धीरे पीयें। किसी सशक्त अनिवार्य कारण के अतिरिक्त एक क्षण भी उसको पड़ा न रहने दें, कारण कि उसका गुण प्रतिक्षण घटने लगता है और तीन घंटे में तो उसमें से पोषक तत्व ही नष्ट हो जाता है। प्रातःकाल खाली पेट यह रस पीने से अधिक लाभ होता है।

दिन में किसी भी समय ज्वारों का रस पिया जा सकता है, परन्तु रस लेने के आधा घंटा पहले और लेने के आधे घंटे के बाद तक कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिए। आरंभ में कइयों को यह रस पीने के बाद उबकाई आती है, उलटी हो जाती है अथवा सर्दी हो जाती है परन्तु इससे घबराना नहीं चाहिए। शरीर में कितने ही विष एकत्रित हो चुके हैं यह प्रतिक्रिया इसकी निशानी है। सर्दी, दस्त अथवा उलटी होने से शरीर में एकत्रित हुए वे विष निकल जायेंगे।

ज्वारों का रस निकालते समय मधु, अदरक, नागरबेल के पान (खाने के पान) भी डाले जा सकते हैं। इससे स्वाद और गुण का वर्धन होगा और उबकाई नहीं आयेगी। विशेषतया यह बात ध्यान में रख लें कि ज्वारों के रस में नमक अथवा नीम्बू का रस तो कदापि न डालें।

रस निकालने की सुविधा न हो तो ज्वारे चबाकर भी खाये जा सकते हैं। इसमें दांत-मसूडे मजबूत होंगे। मुख से यदि दुर्गन्ध आती है तो दिन में तीन बार थोड़े-थोड़े ज्वारे चबाने से दूर हो जाती है। दिन में दो या तीन बार ज्वारों का रस लीजिए।

रामबाण इलाज

अमेरिका में जीवन और मरण के बीच जूझते रोगियों को प्रतिदिन चार बड़े गिलास भरकर ज्वारों का रस दिया जाता है। जीवन की आशा ही जिन रोगियों ने छोड़ दी उनको भी तीन दिन या उससे भी कम समय में चमत्कारिक लाभ होता देखा गया है। ज्वारे के रस से रोगी को जब इतना लाभ होता है, तब निरोग व्यक्ति ले तो कितना अधिक लाभ होगा?

सस्ता और सर्वोत्तम -

ज्वारों का रस दूध, दही और मांस से अनेक गुना अधिक गुणकारी है। दूध और मांस में भी जो नहीं है उससे अधिक इस ज्वारे के रस में है। इसके बावजूद दूध, दही और मांस से बहुत सस्ता है। घर में उगाने पर सदैव सुलभ है। गरीब से गरीब व्यक्ति भी इस रस का उपयोग करके अपना खोया स्वास्थ्य फिर से प्राप्त कर सकता है। गरीबों के लिए यह ईश्वरीय आशीर्वाद है। नवजात शिशु से लेकर घर के छोटे-बडे, अबालवृद्ध सभी ज्वारों के रस का सेवन कर सकते हैं। नवजात शिशु को प्रतिदिन पाँच बूंदे दी जा सकती है।

ज्वारों के रस में लगभग समस्त क्षार और विटामिन उपलब्ध है। इसी कारण से शरीर में जो कुछ भी अभाव हो उसकी पूर्ति ज्वारों के रस द्वारा आश्चर्यजनक रूप से हो जाती है। इसके द्वारा प्रत्येक ऋतु में नियमित रूप से प्राणवायु, खनिज, विटामिन, क्षार और शरीर विज्ञान में बताये गये कोषों को जीवित रखने के लिए आवश्यक सभी तत्व प्राप्त किए जा सकते हैं।

डॉक्टर की सहायता के बिना गेहूं के ज्वारों का प्रयोग आरंभ करें और खोखले हो चुके शरीर को मात्र तीन सप्ताह में ही ताजा, स्फूर्तिशील एवं तरावटदार बना लें।

आश्रम में ज्वारों के रस के सेवन के प्रयोग किये गये हैं। कैंसर जैसे असाध्य रोग मिटे हैं। शरीर ताम्रवर्णी और पुष्ट होते पाये गये हैं।

आरोग्यता के लिए भांति-भांति की दवाइयों में पानी की तरह पैसा बहाना बंद करें। इस सस्ते, सुलभ तथापि अति मूल्यवान प्राकृतिक अमृत का सेवन करें और अपने तथा कुटुम्ब के स्वास्थ्य को बनाये रखकर सुखी रहें।

साइनुसाइटिस - लक्षण, निदान एवं उपचार

*डा० हरमोहन महाणा, एम.एस. (शालक्य)
**डा० अनिल शर्मा, एम.डी. (डी.जी.)

साइनस क्या है :-

हमारे शिर व नाक के आसपास और गालों की हड्डियों में हवायुक्त कई कोटर यानी साइनस मौजूद रहती है, यह साइनस शिर के भार को कम करता है, स्वर में झनक उत्पन्न करता है तथा श्वसन के लिए प्रवेश करने वाली वायु को श्वसन योग्य स्वच्छ बना देता है ।

साइनस की श्लेष्मिक कला में छोटी-छोटी बहुत ग्रन्थियां होतीं हैं, जो कि म्यूकस स्रावित करती हैं । श्लैष्मिक कला में बहुत छोटे-छोटे बाल (Cilia) होते हैं, जो साइनस में स्थित म्यूकस एवं अन्य धूल आदि कण को धकेल कर साइनस के छिद्रों (Ostia) के माध्यम से नासा गह्वर को निष्कासित कर देती है । इससे साइनस में गन्दगी नहीं रह पाती तथा यह साफ सुथरा स्वस्थ रहता है ।

साइनुसाइटिस कैसे होते हैं :-

साइनस के कोटरों में कई प्रकार के संक्रमण, एलर्जिक तत्वों की उत्तेजना और तीव्र ठंड आदि के प्रभाव से इसमें प्रदाह (Inflammation) उत्पन्न हो जाती है । यह संक्रमण जीवाणुओं या फिर ''फंगस'' के द्वारा होता है । प्रदाह की स्थिति में तत् स्थित ग्रन्थियों की संख्या बढ़ जाने के कारण स्राव की मात्रा बढ़ जाती है । इसके साथ-साथ साइनस के छिद्रों (Ostia) के बंद हो जाने के कारण स्राव नासामार्ग से नहीं निकल पाता है और इसके चलते साइनस में मवाद भर जाता है ।

साइनुसाइटिस के लक्षण :-

छींक पर छिंक, नाक का बंद होना या बहने लगना, गले में खराश होना जिसे लोग जुकाम समझकर हमेशा नजर अन्दाज कर देते हैं । ये अपने आप ठीक हो सकते हैं या गम्भीर प्रकार की साइनुसाइटिस में परिवर्त्तित हो सकते हैं ।

साइनुसाइटिस आमतौर पर दो रूप में देखने को मिलते हैं । एक तीव्र और दूसरी जीर्ण साइनुसाइटिस तीव्र साइनुसाइटिस के दौरान नाक और सिर में तीव्र दर्द, जकड़न के साथ इस जगह लाली, सूजन छाने लगती है । इसके अलावा नाक से पानी के सदृश्य स्राव बहता रहता है ।

जीर्ण साइनुसाइटिस के दौरान नाक का बन्द रहना, शिर का भारीपन, तीव्र सिरदर्द और नाक से पीला स्राव मिलता है ।

निदान एवं उपचार

साइनुसाइटिस निदान सी.टी. स्कैन द्वारा किया जाता है, एक्सरे से सिर्फ एक अंदाजा भर लगता है । कई बार रोगी की नाक से बहने वाले ''तरल का कल्चर'' परीक्षण के साथ-साथ नाक की इन्डोस्कोपी जांच आदि करवाना भी जरूरी हो जाता है ।

आधुनिक उपचार के रूप में सर्वप्रथम रोगकारक जीवाणु की किस्म का पता लगाकर उपयुक्त प्रतिजीवी दवाओं यानी एंटीबायोटिक का पूरा कोर्स रोगी को करवाया जाता है । इन रोगियों को उपयुक्त एंटीबायोटिक दवा 7 से 21 दिन तक सेवन करवायी जाती है । इन दवाओं का कोर्स पूरा न करने या उनका सेवन बीच में ही छोड़ देने से बचे रहे जीवाणु इन दवाओं के प्रति प्रतिरोधक शक्ति विकसित कर लेते हैं । बन्द नाक को खोलने के लिए डिकॉन्जेस्ट्रेन्ट दवाओं का भी इस्तेमाल कराया जाता है, किन्तु इन दवाओं को ज्यादा दिन तक इस्तेमाल करने से पार्श्व प्रभाव बहुत ज्यादा होते हैं । वेदना के शमन के लिए आनालजेसिक एवं एण्टिइनफ्लामेटोरी दवा का प्रयोग किया जाता है, एलर्जी के लिए एण्टीलीस्टामिन दवा दी जाती है । स्टीम इनहेलेशन (भाप सुंघाये जाने की क्रिया) की भी सलाह दी जाती है ।

साइनस के संक्रमण से आँख अथवा मस्तिष्क में भी फैलने का अंदेशा रहता है । आपरेशन के जरिये नाक की हड्डी, पॉलिप अथवा साइनस के मवाद को निकाला जाता है । आजकल इस मर्ज का आपरेशन दूरबीन (एंडोस्कोपिक) विधि के तहत ''लेजर'' के माध्यम से

---

* व्याख्याता, शालाक्य तंत्र ** प्राचार्य एवं विभागाध्यक्ष
गौर ब्राह्मण आयुर्वेदिक महाविद्यालय एवं अस्पताल ब्राह्मण वास, रोहतक (हरियाणा)

सफलतापूर्वक किया जा रहा है ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा में नस्य कर्म को प्राधान्य दिया जाता है । नस्य चिकित्सा के रूप में अणु तैल, षडबिन्दु तैल आदि का उपयोग किया जाता है । नस्य प्रधान द्रव्यों में त्रिकटु चूर्ण, कटफल चूर्ण, अपामार्ग बीज चूर्ण का उपयोग भी साइनुसाइटिस में इकट्ठे हुए दोषों के शोधन के लिए कराया जाता है । नस्य के साथ लक्ष्मीविलास रस, त्रिभुवन कीर्त्ति रस, चित्रक हरीतकी अवलेह आदि का भी प्रयोग से रोगियों को स्थायी रूप में आराम मिल सकता है ।

साइनुसाइटिस में आहार-विहार :-

→ विटामिन ''सी'' युक्त आहार यथा संतरा, मौसमी, अमरूद, आँवला, मिर्च, धनिया आदि का प्रयोग - यह रक्तकण प्रतिरक्षण तंत्र को मजबूत बनाता है, एण्टी ऑक्सीडेन्ट का कार्य भी करता है ।

→ विटामिन ''ए'' युक्त आहार, यथा पपीता, पालक, तरबूज आदि का प्रयोग - यह म्यूकस मेम्ब्रेन को मजबूत करता है और उसमें लचीलापन आता है ।

→ लहसुन, प्याज, अदरक में कई ऐसे जैव सक्रिय रसायन पाये जाते हैं, जो कि नलिकाओं को फैलाकर श्वसन मार्ग को सुगम बनाते हैं ।

→ हल्दी का पाउडर का सेवन करना भी कारगर फायदेमंद साबित होता है ।

→ प्रातःकाल जल्दी उठना चाहिए एवं स्वच्छ हवा में सांस लेना चाहिए ।

→ नाक की सफाई की ओर ध्यान देना चाहिए ।

→ गुनगुने नमक पानी से ''जलनेति'' का प्रयोग करना चाहिए ।

→ पर्याप्त मात्रा में पानी का सेवन करना चाहिए ।

→ नियमित रूप से यथावश्यक व्यायाम करना चाहिए ।

स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना, आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन, भूख न लगना तथा ऋतु धर्म के समय होने वाली तकलीफ व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

शिशु स्वास्थ्य

बच्चों में दंतशब्द / दांत किटकिटाना Teeth grinding:[Bruxism]

* डा० रामशंकर गौतम
** डा० संगीता

बच्चों के जन्म से लेकर उसके स्वनिर्भर होने तक हर माता-पिता उसकी आदतें, हाव-भाव, सुख-दुख व वृद्धि विकास क्रम पर नजर रखते हैं और किसी भी गम्भीर समस्या/ रोग होने पर तुरन्त बच्चे के स्वास्थ्य को लेकर चिन्तित हो जाते हैं । बच्चों की कुछ सामान्य या असामान्य समस्यायें कभी-कभी माता-पिता के दिमाग में खटकती रहती है उनमें से एक हैं - दंतशब्द या दांत किटकिटाना ।

यदा-कदा होने पर तो माता-पिता इसे संज्ञान में नही लेते हैं लेकिन जब इस लक्षण की बार-बार पुनरावृति होने लगती है तो प्राय: माता-पिता भी चिन्तित होने लगते हैं और बरबस ही उनका ध्यान बच्चे में किसी बीमारी की शंका से ग्रसित हो जाता है । वैसे तो कुछ बच्चों में इसे क्षणिक समय के लिये आदतन भी करते पाया गया है । लेकिन मानसिक रूप से कमजोर बच्चों यथा-बुद्धिमांद्य व सेरीब्रल पैल्सी में यह लक्षण कुछ अधिक ही दृष्टिगोचर होता है क्योंकि प्राय: इन बच्चों के वृद्धि एवं विकासक्रम में भी असमानता देखने को मिलती है ।

दांत किटकिटाने की प्रवृत्ति मुख्यतया तीस प्रतिशत बच्चों में 5-6 वर्ष की अवस्था तक पायी जाती है ।

आयुर्वेद संहिताओं में इसके बारे में कहा गया है कि -

> **''रुक्षासिनो वातिकस्य चालयत्यनिल: शिरा: ।
> हन्वाश्रय: प्रसुप्तस्य दन्तै:. शब्दं करोत्यत:'' ॥**
> अ०हृ०उ० 2:61:1

अर्थात् वातज प्रकृति वाले शिशुओं में या रुक्ष भोजन सेवित माता या बच्चों की शिराओं को हनु में आश्रित वायु जब चलाती है तब दांतों में किटकिटाहट या दंतशब्द पैदा करती है । अक्सर माता-पिता के मन में बच्चों में दांत किटकिटाने की प्रवृत्ति को लेकर बहुत-सी भ्रान्तियां पैदा होने लगती हैं यथा-यह बच्चे में कोई दंतरोग है । या कोई मानसिक रोग है या बच्चा आदतन कर रहा है या बच्चा किसी भूत, पिचाश या ग्रहबाधा से ग्रसित है ।

निष्कर्षों के आधार पर मुख्यतया ऐसा पाया जाता है कि दांतों की बनावट, परिमाण में परिवर्तन, किसी भी कारण से दंत या दंतमूल में होने वाले क्षोभ उत्तेजना के कारण व तंत्रिकातंत्र के कार्य में गड़बड़ी के फलस्वरूप दंतशब्द की उत्पत्ति होती है ।

दांत किटकिटाने की समस्या दिन-रात में किसी भी समय उत्पन्न हो सकती है । विशेषकर दिन में यह कुछ समय के लिये परन्तु रात में यह देर तक प्रभावित कर सकती है बच्चों के अभिभावकों को अत्यधिक चिन्ताग्रस्त होते देखा गया है जब उनके बच्चे रात में सोते-सोते दांत किटकिटाते हैं व लार बहाते हैं । ऐसा पाया गया है कि रात में दांत किटकिटाने वाले बच्चे दिन की अपेक्षा रात में दांतों के बीच छ: गुना अधिक दबाव बनाते हैं जिससे उनके दांतों में क्षति की सम्भवनायें अधिक होती है ।

कारण :-

→ रात्रि में दांत किटकिटाहट मुख्यतया हनुमोक्ष संधि या मांसपेशी में दर्द होने पर मिलती है । (ताजा प्रमाणों के निष्कर्ष में यह पाया गया कि सेलेक्टिव सीरोटोनिन रीअपटेक इन्हीबिटर्स औषधियों (डाक्सेपिन, क्लोमीप्रामीन, जाइमेल्डिन इत्यादि) का प्रयोग विशेष कर दंतशब्द को बढ़ाता है ।
→ ऊपर व नीचे के दांतों के सम्यकतया फिट न बैठने से ।
→ दंतोद्भवन के समय दांतों में होने वाली उत्तेजना के फलस्वरूप
→ चिरकालीन अपच या अजीर्ण के कारण
→ बच्चों में हर समय मीठा या चटपटा खाने के पश्चात् मुखशोधन न करने से
→ अल्प भोजन
→ मद्य या एल्कोहलयुक्त औषधियों के सेवन के फलस्वरूप

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

---

* सीनियर रेजीडेन्ट, (कायचिकित्सा), चिकित्सा विज्ञान संस्थान, का.हि.वि., वाराणसी ।

** प्रवक्ता (स्त्री प्रसूति एवं बालरोग), राजकीय आयुर्वेदिक कालेज, बरेली ।

→ दंतपुप्पुटक, दालन में या कृमिदंत की उत्पत्ति होकर दांतों में हर्ष होने से
→ दांतों में किसी भी कारण दर्द होने से
→ उदरकृमि विशेषकर सूत्रकृमि व केचुआ सदृश कृमि होने से
→ मुख या चेहरे पर आघात होने से
→ तंत्रिकातंत्र के कार्य में गड़बड़ी के फलस्वरूप
→ अर्नुजता
→ औषधियां (अवसादरोधी व निद्राशामक औषधियों के) दुष्प्रभाव के फलस्वरूप
→ कर्णशूल के कारण
→ सेरीब्रल पैल्सी व बुद्धिमांद्य
→ मानसिक कारणों में यथा-बच्चों में जब अवसाद, चिन्ता या तनाव के भाव होने पर
→ उग्र क्रोधावस्था या कुंठा के शिकार होने पर
→ अत्यधिक क्रियाशील, उग्र स्वभाव वाले व प्रतिस्पर्धात्मक बच्चे
→ ग्रहरोगों से ग्रसित होने पर
→ बच्चे मुख्यतया वयस्क होने तक दांत किटकिटाना छोड़े देते हैं ।

उपद्रव -

→ अत्यधिक दांत किटकिटाने के फलस्वरूप
→ मांसपेशियों में शोथ
→ शिरशूल
→ कर्णशूल
→ दांतों का नीचे घुस जाना
→ दांतों के इनेमेल का नष्ट होकर अतिसंवेदी दांत हो जाना
→ दांतों का भग्न हो जाना ।
→ हनुमोक्ष संधि में क्षति होना ।
→ दांतों की आकृति में विभिन्नता होकर टेढ़ा-मेढ़ा हो जाना ।

चिकित्सा -

- निदान परिवर्जन ।
- शर्करा, टाफी, स्नैक्स का कम प्रयोग करायें, अतिसेवित बच्चों में मुखशोधन कई बार करायें ।
- मुख व दांतों की दिन में कम से कम दो बार कोम ब्रश या दातौन से सफाई करायें ।
- बच्चे को क्रोधावस्था में प्यार से समझायें ।
- बच्चों में अवसाद, तनाव व चिन्ता न होने दें ।
- मद्य या औषधियों के दुष्प्रभाव के कारण होने पर इ तुरन्त बन्द कर दें ।
- मानसिक रूप से प्रभावित बच्चों को मेध्य औषधि शंखपुष्पी, ब्राह्मी, मुलेठी आदि दें ।
- दांतों की अनुचित बनावट व टेढ़े-मेढ़े दांतों के लि दंतशल्यचिकित्सक से सम्पर्क करें ।

उदरस्थ कृमि व अत्यधिक लालास्राव होने पर -

- बालक को प्रातः गुड खिलाकर पारसीक यवा गुनगुने जल से दें ।

अथवा

- विडंग, फ्लाशबीज, इन्द्रयव, निम्ब, भूनिम्ब का चू गुड़ के साथ दें ।

अथवा

- मुस्ता, विडंग, मगधी, आखुपर्णी, कम्पिल्लक, दाडि एवं बिल्व का चूर्ण मधु के साथ चटायें ।

कृमिदन्त के लिये

- स्थिर एवं मजबूत कृमिदंत में स्वेदन पर रक्तनिर्हर अथवा लार टपका कर शान्त करें ।
- स्निग्ध एवं वातनाशक द्रव्यों से आलेप, गण्डूष ए अवपीड नस्य दें ।
- खाने में स्निग्ध वातनाशक आहार दें ।
- दन्तविवर को तप्त गुड़ या मोम, तप्त हिंगु अथ सतवन व अर्कदुग्ध से भर दें ।
- भद्रदार्वादि या पुनर्नवादि गण का लेप करें ।

कृमिदंत, दंतपुप्पुटक, दालन में दांतों में हर्ष होने पर -

> **"दंतहर्ष दंतचाले मुखरोगे च वातिके ।**
> **सुखोष्णमथवाशीतं तिलकल्दोदक हितं ॥"**
>
> अ०हृ०सू० 2-

- सुखोष्ण या शीत तिलकल्क मिश्रित जल के सा अथवा तिल व मुलेठी सिद्ध दूध का गण्डूष धा

करें ।

- मुलेठी मूल का टुकड़ा दांतों के बीच रख कर दबाये व चूसे । यह दंत उत्तेजना, शोथ व दर्द को दूर रखने में सहायक होता है ।

विशिष्ट चिकित्सा -

- केकड़े के पैरों से क्षीरसंधान कर दुग्ध सिद्ध करके उससे घृतपाक करके प्रतिदिन दन्तपंक्ति पर रगड़ें

या

- केकड़े के पैरों को जल में पीसकर दांतों में लेप लगायें ।
- केकड़े के पैरों को पीसकर दस तोले गोदुग्ध में डालकर गाढ़ा होने तक पका लें । सोते समय पैरों पर लेप लगाने से दंतशब्द नष्ट होता है ।
- काले वर्ण के अश्व की पूंछ के सात बाल तोड़कर उनकी चोटी बनाकर गले में बांधे ।

अपथ्य - दंतहर्ष के द्वारा प्रवृत्त दंतशब्द में अम्ल रस वाले फल, शीतल जल, रुक्ष अन्न, अति कठिन पदार्थ न दें ।

बैद्यनाथ

जन्मघूँटी

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी

जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती । इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं ।

आहार-विहार द्वारा स्वास्थ्य रक्षा : बसन्त ऋतु

* वैद्य (डा०) ओमवीर सिंह ''वीर'', एम.डी. (आयु.)   **सुरेन्द्र सिंह, बी.ए.एम.एस.(छात्र)

ऋतुओं का विभाजन सौर मासों के आधार पर होता है । इस प्रकार मेष से मीन तक के बारह मासों के नाम क्रमशः वैशाख, जेठ आदि है । मकरसंक्रान्ति से मिथुनसंक्रान्ति की समाप्ति तक के काल को उत्तरायण या आदान काल कहते हैं । इस काल में सूर्य का अमन (गति) उत्तर दिशा की ओर होती है । स्वभाव से ही आदानकाल में सूर्य बल पूर्णतर एवं चन्द्रबल क्षीणतर होता है । ऊष्मा और वायु के संयोग से यह वातावरण के स्नेहांश का शोषण तथा ह्रास करता है तथा वातावरण में रूक्षता उत्पन्न हो जाती है । आदान-काल में तीन ऋतुएं आती हैं । शिशिर-बसन्त-ग्रीष्म इनमें उत्तरोत्तर वातावरण में रूक्षता बढ़ती जाती है तथा मनुष्य का बल क्षीण होता जाता है । उत्तरायण काल के मध्य का समय वसन्त ऋतु का माना जाता है । यह सामान्यतः चैत-वैशाख (मार्च से मई तक) का समय माना जाता है । दोषानुसार इस ऋतु का समय फाल्गुन-चैत (फरवरी से अप्रैल तक) का समय माना जाता है । इस समय वातावरण में मध्यम रूक्षता तथा शरीर बल भी मध्यम (सामान्य) रहता है । शीत काल में संचित कफ का प्रकोप इस ऋतु में होता है ।

इस ऋतु में दक्षिण दिशा की वायु बहती है । सूर्य की किरणें प्रखर होती हैं । सभी वृक्षों में नयी छाल (त्वचा) व पत्तियां शोभित होती हैं । दिशाएं निर्मल हो जाती हैं । पलास (किंशुक), अशोक तथा आम के वृक्षों में पुष्प (या बौर) आने लगते हैं । बागों में कोयल तथा पुष्पवाटिकाओं में तितलियों और भ्रमरों के अलापों के मधुर कोलाहल व्याप्त हो जाते हैं । इस ऋतु में हेमन्त ऋतु में संचित श्लेष्मा (कफ) सूर्य की किरणों की गरमी से पिघल कर स्रोतों में व्याप्त हो जाता है । यह जठराग्नि को नष्ट करता हुआ बहुत से रोगों को उत्पन्न करता है । इस ऋतु में वनस्पतियों तथा प्राणियों में मध्यम रूक्षता, द्रव्यों में पृथ्वी व वायु महाभूत प्रधान कषाय रस की उत्पत्ति होती है तथा शरीर में मध्यम दुर्बलता होती है क्योंकि मंदाग्नि के कारण आहार का पाचन व अवशोषण ठीक प्रकार से नहीं होता है जिसमें रस-धातु की उत्पत्ति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है । रस धातु से ही शरीर की अन्य शुक्र पर्यन्त सातों धातुओं का पोषण तथा तर्पण होता है और शारीर में स्थायी रस धातु (लसिका आदि) का निर्माण होता है । अतः शरीर में जब रसधातु की उत्पत्ति कम होगी तो रस के कारण रक्त धातु की, रक्त के कारण मांस धातु की, मांस धातु के कारण मेद धातु की, मेद की कमी से अस्थि धातु की अस्थिधातु की कमी से मज्जा धातु की तथा मज्जा धातु की कमी से शरीर में शुक्र धातु की कमी हो जायेगी । शुक्र धातु सभी धातुओं का सार भाग होती है । पुरुषों के शरीर में शुक्र ही जीवन का धारक तथा संचालक होता है । इसकी कमी से शरीर में शिथिलता, आलस्य, सर्वाङ्गशोथ, सिर में भारीपन, अधीरता, निराश, अनुत्साह तथा मानसिक तनाव जैसी अनेक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं । अतः उपरोक्त समस्याओं से बचने हेतु आयुर्वेद के परम्परागत वर्णित उपदेशों के अनुसार अपने जीवन में जो मनुष्य ऋतु सात्म्य अर्थात् किस ऋतु में कौन-सा आहार-विहार अनुकूल होता है और कौन-सा प्रतिकूल इन सब बातों को ठीक-ठीक जानकर उसके अनुसार अपनी ऋतुचर्या को चलाता है, जो उसके द्वारा आसित (खाए हुए), पीत (पीए हुए), लीढ़ (चाटे गये) व ख़ादित आहार से बल-वर्ण की अभिवृद्धि होती है और वह मनुष्य अपने जीवन में त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ, काल) की सिद्धि में सफल होता है और जीवन-संघर्ष में विजयी होकर, सभी प्रकार के भौतिक तथा अध्यात्मिक सुखों को प्राप्त करता है ।

→ बसन्त ऋतु में निषिद्ध आहार-विहार :-

गुरुशीत दिवास्वपन स्निग्धाम्लमधुरास्त्यजेत् ॥

(अ०सं०सू० 4/27)

इस ऋतु में गुरु एवं शीतल पदार्थ, दिवास्वप्न का सेवन स्निग्धपदार्थ, मधुर तथा अम्ल रस वाले पदार्थों का सेवन नहीं करना चाहिए ।

गुर्वम्लस्निग्ध मधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ।

(च०सू०अ० 6/23)

*** निदेशक, धन्वन्तरि-अष्टांग आयुर्वेद शोध संस्थान, दरोगाबाग, उन्नाव, उ०प्र० (भारत)**

**** ललित हरि राजकीय स्नातकोत्तर आयुर्वेदिक कालेज, पीलीभीत, उ०प्र० (भारत)**

अर्थात् बसन्त ऋतु में गुरू (देर से पचने वाले), अम्ल रस प्रधान, स्निग्ध (घी, तेल, वसा आदि से युक्त अथवा निर्मित भोज्य पदार्थ) तथा मधुर पदार्थों का सेवन और दिन में सोना वर्जित होता है ।

→ बसन्त ऋतु में सेवनीय आहार-विहार :-

व्यायामोद्वर्तनं धूमं कवलग्रहमअंजनम् ।
सुखाम्बुना शौचविधिं शीलयेत् कुशुमागमे ॥
(च०सू०अ० 6/24)

इस ऋतु में व्यायाम (कसरत करना), उबटन, धूमपान, कवल धारण अंजन लगाना तथा गुनगुने जल से स्नान करना चाहिए, इनसे स्वास्थ्य लाभ होता है ।

आहार में मधु, यव (जौ), गोधूम (गेहूँ) तथा जांगल पशु-पक्षियों का मांस सेवन करना चाहिए । सुहृदंजनों की संगति, उद्यानगोष्ठी तथा मनोहर युवतियों के साथ रतिक्रीड़ा का सेवन करना चाहिए । आम एवं कमल के चित्रों से अंकित, विचित्र चित्रकारी युक्त पात्रों में दोषरहित आसव, अरिष्ट, गन्ने के रस का बना महा, द्राक्षासुरा, महुआ की सुरा का पान उचित्र मात्रा में करना चाहिए । स्नान करके अलंकारों से शोभित होकर सुगंधित फूलों की माला धारण करनी चाहिए तथा शरीर पर चन्दन, अगरू आदि सुगंधित द्रव्यों का लेपन करना चाहिए । इसके अलावा इस ऋतु में ग्राह्य मांसों के प्रतिनिधि शशक (खरगोश) का मांस खाना चाहिए । अनाजों में पुराने जौ, गेहूँ का सेवन करना चाहिए । नये उत्पन्न अन्नों का सेवन नहीं करना चाहिए क्योंकि नये अन्नों में गुरुता (पचने में भारी) तथा मधुरता अधिक पायी जाती है । महर्षि वाग्भट्ट ने चरक की अपेक्षा स्पष्ट निर्देश किया है :-

पुराणयवगोधूम क्षौद्रजांगलशूल्मभुक्त ॥
(अ०सं०सू०अ० 3/20)

→ बसन्त ऋतु में शोधन कर्म :-

अतोऽस्मिंस्तीक्ष्ण वमनधूमगण्डूषनावनम् ॥
(अ०स०सू०अ० 4/24)

इस ऋतु में तीक्ष्ण वमन, तीक्ष्ण, धूमपान, तीक्ष्ण गण्डूष तथा तीक्ष्ण नस्य का प्रयोग करना चाहिए । यहाँ पर वसन्त ऋतु के लिए फाल्गुन तथा चैत्र मास का ही ग्रहण करना चाहिए क्योंकि शोधनकर्म के लिए यही समय उपयुक्त रहता है । शोधन चिकित्सा का प्रयोग प्रकुपित कफ के निकालने हेतु (विशेष रूप से तीक्ष्ण वमन) प्रयोग किया जाता है जिससे कोष्ठ की (आमाशय की) शुद्धि होती है और अग्नि प्रदीप्त होती है । मन्द हुयी अग्नि को बढ़ाने के लिए शुण्ठीचूर्ण का प्रयोग 5 से 10 ग्राम की मात्रा में दिन में दो बार करना चाहिए तथा अनुपान में गुनगुना जल प्रयोग करना चाहिए ।

हमारी पम्परायें भी ऋतुचर्या के अनुकूल हैं जैसे चैत्र नवरात्र का व्रत (उपवास) से भी मन्दाग्नि तीक्ष्ण होती है । पहले दोषों का शोधन (विशेष वमन) कर उसके बाद संसर्जन क्रम के रूप में या उसके बाद उपयोग किया जाये तो कफ दोष जन्म उत्पन्न होने वाले रोग नहीं होंगे । देखा जाता है कि लोग बसन्तिका नवरात्र में कुट्टू सिघाड़े तथा मूंगफली के आटे से बने पकवानों का उपयोग खूब करते हैं जोकि न्यायोचित नहीं है । वास्तव में लघु तथा शीघ्रपाकी फलों का सेवन एवं दुग्धाहार श्रेष्ठ है । रसाहार भी किया जा सकता है ।

बैद्यनाथ
पंचसकार चूर्ण
पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

मौसमे बहार-ऋतुराज वसन्त

***कविराज डा० दिवाकर ठाकुर, जी.ए.एम. औनर्स डी.एस.सी. आयुर्वेद वृहस्पति (विक्रमशीला)**

वसन्त काल शीतकाल और ग्रीष्मकाल का संधिकाल होता है । बसन्त का आगमन माघ शुक्ल पंचमी से ही दृष्टिगोचर होता है । बसन्त ऋतु की शुरुआत माघ पंचमी से प्रारम्भ नहीं कर फागुन महीने के अंतिम सप्ताह या शिशिर ऋतु की समाप्ति के बाद शुरुआत मानी जाती है । यह मौसम चंचल सुहावना और समशीतोष्ण होता है । यह स्पष्ट व प्रत्यक्ष रूप से देखा जाता है कि इस ऋतु में प्राकृतिक छटा बढ़ा जाती है, गेहूं और नये पल्लव और हरियाली खिल जाती है । नया जोश, सुहाना मौसम नई-नई कलियों के विखराव से चारों ओर भीनी-भीनी मादक महक से धरती प्रफुल्लित हो उठती है । टेसू, कमल, बकुल, आम, अशोक के फूलों की सुगंधि, कटफल पुष्प का मनमोहक सुगंध, वन, उपवन, बाग फूलों से आच्छादित हो जाते हैं । कोयल का कू-कू शब्द का मिठास और भौरों का भन-भन शब्द का गुंजायमान मनोहर लगता है । बसन्त ऋतु में दक्षिण वायु के कारण शुद्ध हवा बहती है, बिहारी कवि ने दक्षिण वायु की उपमा उन्मत हाथी से दी है '' रुणित शंख घटा बली, भरत दान मधुनीर । मन्द-मन्द आवत चली कुंजन कुंज समीर ।।'' मधु और माधव ये दोनों शब्द मधु से बने हैं । मधुर रस प्राणी एवं वृक्षादि को आह्लादित करता है, अतएव उसको वसन्त नाम से पुकारा जाता है । वर्षा के बिना ही इस मधुरस से वृक्ष-लतादि अंकुरित होते हैं साथ ही मनमोहक पुष्प भी खिलने लगते हैं । सरसों कुसुमित होकर खेतों की सुन्दरता बढ़ाने लगती है । मनोहारी वसन्त ऋतु में कानन एवं कान्ता का विशेष रूप से एहसास होता है । यह मौसम जीव-जंतुओं के अलावा वृक्षादि को पल्लवित करने वाले मधुर रस को प्रकृति से प्राप्त करती है । मधु की प्राप्ति से इसको मधुमास कहा जाय तो भी अनुपयुक्त नहीं होगा । चूँकि बसन्त ऋतु का आगमन होते ही प्रकृति में रमणीक छटा के साथ ही सौंदर्य की वृद्धि हो जाती है, अतः इस बसन्त ऋतु को ऋतुओं का राजा यानी ऋतु राज बसन्त भी कहते हैं । यह वही मौसम है जिसे धरती का यौवन काल भी कहा जाता है ।

हमारी दिनचर्या से ऋतुएं भी महत्वपूर्ण योगदा करती है । हमारे खान-पान, परिधान आदि मौसम के मुताबिक रहे तो हम सुखी, स्वस्थ एवं प्रसन्न रह सकते है अन्यथा रोगी बनने से इनकार नहीं किया जा सकता है ।

शीतऋतु में हमारे शरीर के अन्तर्गत कफ संचि हो जाता है और वसन्त ऋतु में सूर्य के ताप से पिघलक जठराग्नि को मन्द कर देता है । पदार्थों में स्निग्धता औ मधुरता की वृद्धि से कफ का प्रकोप होता है । प्रकुपि कफ रोग उत्पन्न नहीं करे इसके लिए वमन, नस्य, हल्के और रूक्ष आहार-विहार द्वारा कुपित कफ की शांति करने चाहिए । इस ऋतु में पुराना जौ, गेहूँ की रोटी, चावल, चना मूंग, अरहर, मसूर, ज्वार, लौकी बथुआ, कचनार की कली, चौलाई, परवल, करैला, घिया, तोरई, सहिजन, आमला तरबूज, राई, हल्दी, अजमायन, हींग, जीरा, मेथी का सेवन हितकर होता है ।

निरोग काया को बरकार रखने के लिए द्राक्षास अर्जुनारिष्ट, दाडिमासव, द्राक्षारिष्ट, दशमूलारिष्ट, सिरक च्यवनप्राश, वासावलेह, आमलकी रसायन, सितोपलादि कंटकायावलेह आदि कफ शामक औषधियों का व्यवहा करना हितावह होता है ।

गरिष्ठ भोजन, शीतल द्रव्य, खट्टे, चिकनई युक्त आहार, पोईशाक, उड़द दलहन की बनी चीजें अरूई, आलू ईख, सिंघाड़ा, मुर्गा का माँस, खिचड़ी, चिउड़ा, गुड़ भैं का दूध-दही आदि खाद्य पदार्थों का सेवन वसन्त ऋतु में हानि पहुँचाता है ।

शरीर को निरोग रखने के लिए आहार के सा विहार पर भी ध्यान देना चाहिए । इस वक्त बढ़े कफ को शांत करने के लिए व्यायाम, टहलना, पैदल भ्रमण तथा दौ से देह मालिश करना भी फायदेमन्द होता है । तेल मालि से शरीर में विशेष प्रकार की कौंति आ जाती है । शरीर के रूखापन, ऐंठन, श्रम, सुस्ती समाप्त हो जाते हैं । मालिश के बाद धूप का सेवन भी लाभ पहुँचाता है । पैरों की मालि करने से पैरों में विवाई फटना तथा सिरा स्नायु संकोच न होते हैं ।

---

* किडनी रिसर्च एण्ड इन्स्टीच्युशन ऑफ आयुर्वेद, चांदमारी कार्नर, पटना

इस मौसम में सूर्य की किरणों में तीक्ष्णता आने से गर्मी महसूस होने लगती है । इसलिए धूप से बचने के लिए ऐसे बाग-बगीचे में बैठना चाहिए जहाँ ठंडी हवा बह रही हो, आस-पास नदी बह रही हो, नहर किनारे हो, सुन्दर पुष्प लताएं फैली हुई हों, घने वृक्ष शाखाओं से सूर्य किरणों की प्रखरता की अनुभूति न हो, फल-फूल लटक रहे हों, कोयल कूक रही हो और अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों-पत्तों से मनोहर वृक्ष शोभायमान हों ऐसा स्थान मन बहलाव के लिए सुखद प्रतीत होता है ।

इस बात का विशेष ध्यान रहे कि दिन में सोना, ठण्डे, भारी, स्निग्ध और मीठे पदार्थो से परहेज करना चाहिए ।

आयुर्वेद मनीषियों द्वारा बताऐ गए ऋतुचर्या के नियमों की जानकारी को जन-जन तक पहुँचाने का दायित्व हम वैद्यों पर है । जनसाधारण को ऋतुओं के नियम की जानकारी होने से भावी शारीरिक कष्ट से सुरक्षा कर सकते हैं । वसन्त ऋतु के नियम जैसे इस ऋतु में औषधों के द्वारा वमन तथा औषध साधित द्रव्यों का नस्य लेना, मधु के साथ हरड़ खाना, कसरत करना, तैल मालिश करना, कफ नाशक औषधियों से कुल्ला करना, चन्दन, केशर, अगर का लेप, रूक्ष, कटु उष्ण, हल्के पदार्थों का सेवन अत्यंत हितकर होता है ।

शीत ऋतु में हमारे शरीर के अन्तर्गत संचित कफ वसन्त ऋतु में सूर्य के ताप से पिघलने के समय इमली, जीरा, काली मिर्च मिलाकर जल पीना लाभदायक है ।

ऋतावृतौ य एतेन विधिना वत्ततेनरः ।
द्योरानृतुकृतान्रोगात्प्नोति स कदाचन ॥

जो नियमं पूर्वक ऋतुचर्या का अनुसरण करते हैं उन्हें ऋतु जन्य होने वाले रोग नहीं होते हैं ।

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध ।

संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है। इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है । प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं ।

हृदय रोग के कारण एवं निवारण

प्रो०सी०बी०झा, डा० सूढलदेव महापात्र (जुनियर रेजिडेंट)

हृदय रोग :-

आयुर्वेद एक शाश्वत, जीवन्त एवं प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञान है । स्वास्थ्य से जुड़े समस्त पक्षों पर इसमें विस्तार से विचार किया गया है । दोष, धातु, मल, को शरीर का मूल मानते हुए इनकी विषमता से रोगों की उत्पत्ति का विचार किया गया है । रोगों की उत्पत्ति के बारे में आयुर्वेद एवं आधुनिक विचारधारा में भिन्नता देखी जाती है । यह भिन्नता मूलतः मूलभूत सिद्धान्त की भिन्नता के कारण है । यथा ज्वर, प्रमेह, हृदयरोग आदि आयुर्वेद में रोग माने गये हैं । परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने इसे रोग विशेष के लक्षण के रूप में लेता है । वर्तमान में रोगों के ज्ञान हेतु जो साधन उपकरण उपलब्ध है उनसे रोगों को विस्तार से जानने का अवसर मिला है तथा रोग की विकृति को गहराई से हम समझने में समर्थ हुए हैं ।

निदान :-

आयुर्वेद दृष्टया हृदय प्राण एवं रसवह स्रोतस का मूल माना गया है और स्रोतों की दुष्टि स्रोतोमूल को प्रभावित करती है और स्रोतोमूल दुष्टि हृदयरोग के रूप में परिलक्षित होती है । उसी तरह हृदय को साधकपित्त, अवलम्बक कफ, प्राणवायु एवं व्यानवायु का स्थान माना गया है, एवं इन सब दोषों की दुष्टि से हृदय रोग होता है ।

विशेष निदान :-

1. शारीरिक कारण
   - (अ)आहार जन्य- अति उष्ण, गुरू अन्न एवं कषाय तथा तिक्तरस से युक्त भोजन का अत्यधिक सेवन ।
   - (ब)विहार जन्य- अति व्यायाम, अतिश्रम तथा उपवास एवं वेगावरोध, तीव्रविरेचन तथा तीव्र शारीरिक आघात ।
2. मानसिक कारण

   अत्यधिक चिन्तन, तीव्र मानसिक आघात ।

सम्प्राप्ति :-

उपरोक्त निदान सेवन से प्राण एव रसवह स्रोतों की दुष्टि तथा हृदय स्थित दोषों की दुष्टि से मन्दाग्नि होती है और मन्दाग्नि से आमरस की उत्पत्ति होती है। आमरस दूषित दोष तथा दूष्यों से मिलकर दोष दू सम्मूर्च्छना को प्राप्त होते हुए वैगुण्य उत्पन्न करता है स्रोतोवैगुण्य की उत्पत्ति के फलस्वरूप स्रोतसंग होता है फलतः हृदय रोग उत्पन्न होता है ।

सामान्य लक्षण :-

वैवर्ण्यता (Discoloration of Body, may cyanotic or Pallor), मूर्च्छा (Syncope), ज्वर (Fever कास (cough), हिक्का (Hiccough), श्वा (Dypnoea), आस्यवैरस्य (Unfavourabe taste) तृ (Thirst) मोह (Stupor)

विशेष लक्षण :-

लक्षणों के आधार पर हृदय रोग के पाँच भेद कि गए हैं ।

1. वातिक हृदय रोग - हृदय में शून्यता का भाव शुष्कता, भेद, स्तम्भ, संमोह तोद, दारूण, स्पं कम्पन ।
2. पित्तज हृदय रोग - तृष्णा, उष्मा, दाह, चोष, क्लम, स्वेद, मुखशोष इत्यादि ।
3. कफज हृदय रोग - गौरव, लालप्रसेक, अरूचि इत्या
4. त्रिदोषज हृदय रोग - उपरोक्त समस्त लक्षणों सम्मिलित रूप मिलना ।
5. कृमिज हृदय रोग - तीव्र पीड़ा, कण्डू, उत्क्ले ष्ठिवन, तोद, शूल, हृल्लास शोष ।

चिकित्सा :-

1. निदान परिवर्जन ।
2. चिकित्सा सूत्र - शारीरिक एवं मानसिक विश्राम, के बलाबल के अनुसार मृदु संशोधन हृद उपयोगी होता है ।

सामान्य चिकित्सा :-

मुख्य औषधियाँ -

अर्जुनक्षीरपाक, बलाचूर्ण, यष्टीमधुचूर्ण, अर्जुनपत्र पुष्करमूल चूर्ण, करवीर योग, नागबलाचूर्ण,

प्रभाकरवटी, हृदयार्णवरस, नागार्जुनाभ्ररस, चिन्तामणिरस, अर्जुन घृत, पुनर्नवादिमण्डूर, अर्जुनारिष्ट ।

विशिष्ट चिकित्सा :-

1. वातिक हृदयरोग - पुनर्नवादितैल, हरीतक्यादि घृत, पुष्करमूलादि कल्क एवं क्वाथ, पथ्यादि कल्क, व्यूषणादिघृत, बिल्वादितैल, पंचकोलादि तैल ।
2. पित्तज हृदयरोग - प्राणदाघृत, स्थिरादिघृत, शीतवारि सिंचन, मृदुविरेचन, हुरहुरादि चूर्ण, लीलाविलास रस ।
3. कफज हृदयरोग - स्वेदन, आवश्यकतानुसार वमन, उपवास, कुलत्थ यूष, जांगलमांसरस, कटफलादिक्वाथ, कृष्णादि चूर्ण, उदुम्बरादीलेह, शिलाजतु, च्यवनप्राश रसायन, आगस्त्यहरीतकी रसायन, ब्राह्म रसायन, आमलकी रसायन, त्रिवृतादि चूर्ण, वचादि चूर्ण, पुष्करमुलादि चूर्ण ।
4. त्रिदोषज हृदय रोग - सर्वप्रथम लंघन, तत्पश्चात् पुष्करमूलादि चूर्ण , नागवल्ली चूर्ण, कुकुभादिचूर्ण, पुष्करादि क्वाथ, दशमूलादि क्वाथ, पार्थारिष्ट, बलाघिघृत, यष्टयाघिघृत, स्वदंष्ट्राघृत, अर्जुनघृत, चितामणि रस, हृदयार्णवरस, हृदयरोगहरवटी, हेमामृतरस, नवायस लौह, कल्याण सुन्दर रस, त्रिनेत्र रस, नागार्जुनाभ्ररस, त्रिनेत्र रस, पंच्चानन रस, प्रभाकर वटी ।

हृदयद्रव :-

अमलतास, दाडिम, मातुलुगं मधु, मांसरस घृत, विलेपी, वेशावर, यूष, सैन्धव, एरण्ड, सौवर्चल लवण, उत्पालादिगण ।

आधुनिक दृष्टया हृदय से सम्बंधित विकार एवं उपचार - आधुनिक मतानुसार हृदरोग में मुख्यत: मायोकार्डियल इनफार्क्सन (Myocardial Infarction) एन्ज़ाइना पेक्टोरिस, (Angina pectoris), उच्चरक्त चाप (Hypertension) इत्यादि आते हैं । इनका संक्षिप्त विवरण निम्न में दिया गया है ।

मायोकार्डियल इनफार्क्सन (Myocardial Infarction) मुख्यत: रक्त वाहिनियों के अवरूद्ध हो जाने के कारण से होता है जिनका मुख्य कारण Thrombus है इनमें रोगी को तीव्र वेदना, सांस फुलना, उल्टी, चक्कर आना, सीने में जकड़ाहट, भारीपन तथा चेहरा पीला पड़ना आदि लक्षण पाया जाता है । इसमें तीव्र वेदना के लिए ओपोएड आनालजेसीक (Opoid Analgesics) (जैसे मोरफिर (Morphine), कोडीयेन (Codeine) इत्यादि) दिया जाता है । पुन: Thrombus के लिए एस्पिरिन (Aspirin), अन्जियोसिड (Angiocid), स्ट्रेप्टोकाइनेज (Streptokinase) इत्यादि दिया जाता है । एन्जाइना पेक्टोरिस (हृदशूल) (Angina perctris)- मुख्यतया हृदय को आक्सीजन की पूर्ति ठीक से न हो पाने के कारण से होती है । इनमें व्यक्ति को सीने में दर्द, गर्दन, जबड़ा तथा बाँए हाथों में दर्द फैलता है । रोगी सीने में जकड़न महसूस करता है । इनमें मुख्यत: β-Blocker (जैसे Propranolol, Atenolol इत्यादि), ACE Inhibitor (जैसे Analapril, Capatropil इत्यादि) का प्रयोग होता है ।

योग चिकित्सा

विभिन्न प्रकार योग एवं प्राणायाम के द्वारा हृदयरोग का सफल चिकित्सा किया जा सकता है । इनमें मुख्यत: कपालभाति, भ्रामरीप्राणायाम विशेष फलप्रद होता है ।

रोकथाम एवं बचाव :-

अनावश्यक चिन्तन का त्याग, लघु व्यायाम, उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थों का त्याग, ज्यादा शारीरिक परिश्रम का त्याग (जैसे वेग से दौड़ना, जल्दी-जल्दी सीढ़ियां चढ़ना इत्यादि) शारीरिक वेगों का उचित समय पर त्याग करना आवश्यक है ।

निष्कर्ष :-

वर्तमान काल की जीवन शैली, रक्त चाप, हृदयरोग, मधुमेह आदि व्याधियों के दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त कारण माना जाता है । संयत जीवन शैली, खान-पान एवं आध्यात्म चिन्तन से ही इन सब पर नियंत्रण संभव है । अत: इन्न रोगों से बचने हेतु भारतीय विचार धारा, प्रकृति के अनुकूल रहन-सहन एवं ध्यान, योग आदि का अनुसरण एवं प्रचार-प्रसार कर के स्वयं एवं इनसे ग्रस्त रूग्ण समाज की रक्षा करनी चाहिए ।

HYPERTENSION AND ITS MANAGEMENT IN AYURVEDA

* Dr. Debashis Panda **Dr. Ajay Kumar Sahu *** Prof. Mahesh Chandra Sharma

Among the different dreaded diseases of modern civilization, hypertension occupies a special place. Blood pressure is the lateral pressure exerted on the wall of systemic arteries, while blood flowing through it. In a simple formula, Blood pressure can be stated as BP = Cardiac output × Peripheral resistance. So, Hypertension or high blood pressure is the elevated or raised blood pressure which means the work done by the heart has been increased, which in turn can cause a series of complications.

The Joint Committee on detection, evaluation and treatment of high blood pressure by Joint National Committee and WHO / International Society of Hypertension has classified the systolic and diastolic blood pressure as follows:

Category	SBP in mm of Hg	DBP in mm of Hg
Normal	< 130	<85
High Normal	130-139	85-89
Hypertension		
Stage 1 (Mild)	140-159	90-99
Stage 2 (Moderate)	160-179	100-109
Stage 3 (Severe)	180-209	110-119
Stage 4 (Very Severe)	> 210	>120

This is applicable for young adults aged 18 years and above. While recording the BP, the physician should keep in mind that the subject is mentally and physically at rest, in a comfortable climate and has not taken a heavy meal just before.

ETIOLOGICAL CLASSIFICATION OF HYPERTENSION

Hypertension can be classified under two main groups:

(A) Essential hypertension

(B) Secondary hypertension

(A) Essential Hypertension: It is also known as Primary hypertension. There is no evident organic cause in this type of hypertension and thus, can not be permanently cured. But the level of BP in such patients can be reduced effectively by drugs and measures. The measures include sharp reduction of Obesity (if present) and drastic reduction of dietary salt.

(B) Secondary Hypertension: This defined as hypertension with identifiable ca The possible causes may be:—

- i. Due to administration of certain drugs contraceptive pills, steroids etc.
- ii. Hypertensive diseases of pregnancy toxaemias of pregnancy.
- iii. Renal causes eg acute nephritic syndro chronic nephritis, polycystic kidney etc.
- iv. Endocrinal causes eg thyrotoxicos myxedema, acromegaly etc.
- v. Metabolic causes eg diabetes mellitus, chro gout, atherosclerosis etc.
- vi. Congenital diseases like coarchtation of ao
- vii. Collagenosis and miscellaneous diseases eg SLE, polyarteritis nodosa etc.
- viii. Neurological eg encephalitis, brain tumo cerebrovascular accidents etc.
- ix. Blood diseases like polycythemia etc.

Etiology of essential hypertension is far from clear, but however, the following fac are important:

- i. Hereditary
- ii. Environmental - over crowding, pollu competitive job
- iii. Role of Renin Angiotensin system
- iv. Age, Race & Sex (males are more prone)
- v. Alcohol intake and smoking
- vi. Increase in lipid profile and Serum choles and Obesity
- vii. Psycho-social factors- Anxiety, Tension
- viii. More dietary salt intake.

Signs and Symptoms of Hypertension:

Most patients with hypertension have specific symptoms except an elevated b pressure in the course of physical examina Symptoms are usually variable and at times vague. When symptoms do bring the patient to physician, they fall into 3 categories. They are —

1. The elevated BP itself.
2. The hypertensive vascular dise
3. The underlying diseases in cas secondary hypertension.

The popular symptoms of hyperte

---

* M.D. Scholar, ** M.D. (Ay), G.A.M., Puri. *** Professor & Head, N.I.A., Jai

are:

- i. Headache
- ii. Dizziness
- iii. Palpitation
- iv. Easy Fatigability
- v. Insomnia
- vi. Lack of concentration
- vii. Loss of memory
- viii. Breathlessness

Some Ayurvedic scholars correlate hypertension with **RaktagataVata** while others correlate with **Raktavrita Vata.** But when we consider the above conditions, it is found that neither of them properly suited with the condition hypertension.

Raktagata Vata:

Rujastivrah sasantapa vaivarnya krisataruchih,
Gatre charunshi bhuktasya stambhaschasrugatenile.

(Ca. Ci. 28/31)

Raktavrita Vata:

Raktavrite sadaharti stvakmamsantarajo bhrisam,
Bhavet saragah svayathurjayante mandalani cha.

(Ca. Ci. 28/63-64)

Here, in case of Raktagata Vata symptoms like acute body pain, fever, anorexia, indigestion, skin eruptions are prominent where as in case of Raktavrita Vata, pain and burning sensation found in between skin and muscle tissue along with sign of swelling and redness in skin. So, both of these conditions don't satisfy the criteria to be hypertension.

Rather, it is not essential to give a specific name to every disease according to Maharshi Charak and in those conditions the physician should treat the patient considering the nature of the disease, its site, etiology and dosha- dushya sammurchhana.

(Ca. Su. 18/44-46)

Therefore, hypertension can be considered as a Raktaja roga where Vata is the associated dosha (anubandha dosha). Thus, the term Raktavata is more appropriate to the condition instead of the above two. The treatment principles of raktaja rogas like Raktapittahari kriya, Virechana, Upavasa, and Raktamoksana can also be administered effectively in hypertension.

Laboratory Investigations For Hypertension:

Always Included:-

- a. Urine for protein, blood, & glucose.
- b. Hematocrit
- c. Serum Potassium
- d. Serum Creatinine & Blood urea
- e. Electrocardiogram

Usually Included depending upon cost & other factors:-

- a. Microscopic Urine analysis
- b. WBC count
- c. Blood glucose, cholesterol, (HDL, LDL, VLDL), triglycerides
- d. Serum calcium, phosphate, and uric acid
- e. Chest X-ray & USG abdomen.
- f. Echocardiogram
- g. VMA (Venyl Mendalic Acid) — 24 hour urine is collected & examined for presence of VMA. VMA is found in urine in case of Adrenal tumor or Phycytochoma — Cause of young HT.
- h. Other tests to exclude the underlying diseases in case of secondary hypertension.

Treatment:

In modern medicine, treatment of hypertension is mainly divided into two parts. These are- 1. General measures
2. Drug therapy

1. **General Measures**:- Non drug therapeutic intervention is indicated in all patients with sustained hypertension. The general measures employed include—

- a. Relief of stress
- b. Dietary management- low salt intake
- c. Regular aerobic exercise
- d. Weight reduction (if needed)
- e. Control of other risk factors contributing to the development of atherosclerosis.

2. **Drug therapy for hypertension**:- In general there are six classes of drugs-

- a. Diuretics— Chlorthiazides, Spironolactone, Frusemide
- b. Anti-adrenergic agents— Clonidine, Methyl dopa, Reserpine

c. Vasodilators— Minoxidill, Nitroprusside, Hydralazine.
d. Calcium channel blockers— Nifedipine, Amlodipine etc.
e. b blockers — Propanolol, Atenolol etc.
f. Angiotensin converting enzyme (ACE) inhibitors— Captopril, Enalapril, lisinoprill etc.

Management in Ayurveda:

1. **Nidana Parivarjanam**— Avoidance of the causative factors of a disease is known as Nidan Parivarjanam in Ayurveda. The following unwholesome activities and diets should be strictly avoided— excitation, provocation, quarrelling, worries & anxieties, excessive tea & coffee, tight clothing and excessive indulgence in sexual activities. Along with excessive salt, vegetable oils, chillies, fast foods, junk foods, and spicy foods are to be avoided.

2. **Raktapittahari Kriya**: Maharshi Charak asserts the treatment recommended for Raktapitta to be administered in case of blood disorders. So this principle can be applied in Raktavata.

3. **Virechana:** Clinically virechana (Purgative procedure in Ayurveda) is proved to be effective in Raktavata, however the exact mechanism is not known. It may be due to its ability to reduce fat (obesity), reduce atherosclerosis and increase elasticity of the vessels.

4. **Upavasa**: It is one of the treatment principles for Raktaja rogas. But its effectiveness in case of Raktavata is yet to be proved. However it is useful in cases like Obesity.

5. **Raktamoksana**: This treatment principle of Raktaja rogas can be applicable in Raktavata, but further research in this regard is highly needed.

6. **Anti-hypertensive drugs**: In present practice the following drugs are mostly used for hypertension and have been found to be moderately effective. These drugs are— Sarpagandha (Rauwolfia serpentina), Jatamansi (Nardostachys jatamansi), Brahmi (Bacopa monnieri), Sankhapuspi (Convolvulus pluricaulis), Vacha (Acorus calamus).

Along with drugs like Goksura(Tribulus terrestris), Punarnava (Boerhavia difusa), Panch Trinmula and other mutrala medicines can be given in hypertension where kidney involvement is doubted. These drugs are generally administered in the form of powder, juice, decoction, and sita kasaya.

7. Compound drugs:

i. Churna— sarpagandha churna, Saraswata churna
ii. Modak— Himsagar modak, Vriha Aswagandha modak
iii. Avaleha— Brahma rasayana
iv. Vati— Brahmi vati, Sarpagandha ghana va
v. Rasausadhis— Rasaraja rasa, Yogendra rasa, Vr. Vatachintamani rasa, Chintamani chaturmukh rasa,
vi. Asav-arista— Aswagandharista, Saraswatarista
vii. Pisti— Praval pisti, Mukta pisti, Mukta bhasma, Jaharmohara Khatai Pisti
viii. Taila— Brahmi taila, Maha Narayan Taila, Himsagar Taila

8. **If Kidney involved**:- Chandraprabha vati, Vajra ksara, Sarivadhyasava, Punarnavarista arka/ mandura, Goksuradi guggulu, Mutrala kasaya,

9. **With Diabetes**:- Above medicines - Measure to reduce blood sugar level.

10. **With Obesity & Hyperlipidemia**:- Medohara guggulu, Navayasa lauhaguggu Navaka guggulu.

11. **Heart involvement**:- Hridayarnava rasa, Arjuna ksirapaka, Hritpatri churna, Rasona kalpa, Yakuti rasayana.

12. **For Anxiety, Tension & Insomnia**:- Medhya rasayana, Aswagandha, Jatamans Sorodhara(with milk & taila), Sorovasti.

13. **Practice of Yoga, Asana & Pranayama.**

References:

1. Principles of Internal Medicine by Harrison.
2. Concise Medical Physiology by S.K. Chaudh
3. Charaka Samhita of Agnivesa.
4. Bhaisajya Ratnavali By Govinda Das Sen
5. Dravyaguna Vijnana by Prof. P.V. sharma

ROCKSALT : AN AYURVEDIC INGREDIENT

*R. Barik, **P. Mohapatra, *** S. Shrivastava, **** N. Mishra, ***** S. Jain

INTRODUCTION

Most of the commonly found spices have been used as essential ingredients in various forms of Ayurvedic drugs. Notable among them are turmeric, ginger, cumin, asafoetida etc. In the present study an attempt has been made to study a very commonly used Ayurvedic ingredient – Rocksalt, well known as Saindhav lavana, its brief description and a general idea about its various uses.

Rocksalt is white cubic crystals of superior quality, highly preferred by the Ayurvedic physicians. Its name suggests that it comes from Sindh, in the present Sinan province. It came most probably from some place in the thousand miles extensive area around Kohat and Kalabagh in the Bannu district, now in Pakistan part of Punjab. This area extends from the western side of the river Indus upto the Afghanistan border between Peshawar and Baum Valleys.

In India it is found in the Himalayan region. Millions of years ago this area was under the ocean. The salty water of the ocean dried and deposited under the rocks. Now this salt is used for healing purposes. It looks like rose quarts, comes in the rock-form and reflects the wholeness, richness and purity of its source - underground salt deposits in the Himalayan regions of India and Pakistan.

PREPARATION

Protected from pollutants and impurities by nature of its location, the salt remains unrefined, untreated and free of additives. The large salt crystals are simply cut up, rinsed with water, sun dried naturally and ground into a fine powder.

CHEMICAL DESCRIPTION

The chemical composition of Rocksalt as analyzed by a NATA certified laboratory in Sydney reveals the following components to be present :

COMPONENTS	QUANTITY
Moisture	0.18%
Sodium	37.7%
Potassium	2.37%
Calcium	0.17%
Sulphur	0.34%
Chloride	59.4%
Barium	0.002 ppm
Cadmium	<0.001 ppm
Chromium (VI)	<0.001 ppm
Copper	0.037 ppm
Iron	0.035 ppm
Manganese	0.002 ppm
Selenium	<0.001 ppm
Silver	<0.001 ppm
Zinc	0.005 ppm

ACTIONS AND USES

References found in the Ayurvedic texts like Susruta Samhita, Charaka samhita and the Astangahridaya, collectively describe Rocksalt as slightly sweet, cooling agent beneficial to the eyes and alleviating the three doshas. In addition the Susruta samhita reports it to have virilific action; the Charaka samhita reports it to be the best of all types of salts, an aphrosidiac and a digestive stimulant.

Recommended in Ayurveda for all dosha tyeps - it is less heating and does not aggravate Pitta dosha. It naturally retains many of the ancient seawater trace minerals giving the salt its unique properties. Traditionally considered the healthiest form of salt in Ayurveda, rock salt pacifies all the three doshas. Some Ayurvedic healers categorize it as a saatvic food, helping to nurture the spirit. In

---

* Lecturer *** Lecturer **** Lecturer ***** Principal
Smriti College of Pharmaceutical Education, 4/1, Pipliya Kakkad, Mayakheri Road, Indore - 452010
** Research Scholar, University Department of Pharmaceutical Science, Andhra University, Vishakapatnam.

Ayurvedic medicine, rock salt is used as a laxative and a digestive.

It is also an appetizer, especially when a pinch of it is eaten with a slice of fresh ginger before a main meal. It gets the salivary and digestive juices flowing. It has also been reported to be used as a Carminative, stomachic and digestive.

When used as per the natural requirement of the body, it improves appetite, digestion (when used with meals), expel wind from the digestive systems. Beneficial to the eyes, it also helps in healing of wounds and improves bile secretion. It is recommended for all body types.

CONCLUSION

From this brief description it can be observed that Rocksalt has got tremendous potential and numerous used. Hence further research work should be carried out using sophisticated models and animals experimentation to establish it as a potent Ayurvedic ingredient.

बैद्यनाथ

प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं । इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता ।

Ayurvedic Perspective of Psychiatry w.r.t. Stress and Emotions

* Dr. G. Venkateshwarlu, M.D. (Ay.)   **Dr. R.D. Patil, M.D.(Ay.) MA (San)

Introduction

Ayurveda, the science of life, has the first and foremost aim to preserve the good health and to prolong the life; and secondly to combat the disease if any occurs. Ayurveda describes health by the term 'Swastha' which is a state of physical, mental, sensorial and spiritual well being. According to WHO experts committee, mental health is influenced by both biological as well as social factors. The worldwide prevalence of psychiatric illness among around 500 million population includes depression, anxiety neurosis, delinquency, mental retardation, schizophrenia, mood disorders, psychosis etc. After rejecting the concept of demonical influences in regard with mental disorders; which was prevalent in times of Atharvaveda; Ayurveda had come a long way to systemize the concept of mental health and its disorders i.e. Psychiatry. But such an independent branch of Ayurveda has now turned into antique because of some socio-cultural circumstances prevalent in medieval India.

The body and the mind are two complimentary constituents of living body. These two elements are considered as the abodes of health as well as disease. Various afflicitions of the mind are categorized under Psychiatric illnesses. The description of such disorders are available in Ayurveda in scattered form throughout the texts of Brihat-trayi and Laghu-trayi. The term mental disease is not restricted to merely insanity or allied mental derangement, but also includes stress and emotional disorders. These stress and emotional factors when cross the state of normalcy and get deranged, lead to various mental disorders.

Etio-pathology of mental disorders

1. The prime causative factors for all diseases are classified into three categories as follows.
2. Asatmendriyartha samyoga (stressful contacts of sense objects).
3. Prajnaparadha (volitional transgression).
4. Parinama (effect of season).

The very same cause are responsible for mental disorders, Again there are some socio-environmental factors also. Along with them; incompatible and vitiated food, perverted sexual acitivity, alcoholism, mental shock etc. can also be mentioned.

The volitional transgression is the basic cause for all above said factors. Due to this, the manodoshas get vitiated and obstruct the channels of mind (Manovaha srotas). As a result of misconception and error in consciousness; the intelligence, and memory of an individual is distracted. In that state, he performs wrong actions which lead to stress on his body and mind producing various psychic and psycho-somatic diseases.

Classification of mental disorders.

While classifying the psychiatric disorders; their etiology, symptoms and psychopathology have to be taken into accout. they can be generally classified into four major groups :

1. Emotional disorders : These are the symptoms produced due to primary involvement of Rajas and Tamas such as kama, krodha, lobha, mada, moha, irshya, shoka, bhaya, udvega, harsha etc.

2. Psychiatric disorders : these are major problems caused due to involvement of Rajas and Tamas along with Vata, Pitta and Kapha doshas. It includes Unmada, Apasmara, Apatantraka, Bhrama, Murchha, Sanyasa etc.

3. Psychosomatic disorders : These are also known as Adhi-vyadhis in Ayurveda which include Bhayaja and Shokaja Atisara, Kamaja and Shokaja Jwara, Tamaka Shwasa, Amavata etc.

4. Personality defects : Some psychiatric illnesses are related with personality defects just as Heenasatwa, Vikruta satwa, Amedhata and Atattwabhinivesha.

M.G. Ramu et al has accounted emotional disorders in four types of divisions.

1. मनोऽदिष्टित मानसविकार : Kama, Krodha, lobha etc.
2. नानात्मजविकार : Illusions.

---

* Research Officer (Ayu.), Regional Research Institute, Nagpur
** Medical Officer (Ayu.) Central Govt. Health Scheme, Nagpur

3. शरीरमनोऽदिष्टित मानसविकार : Unmada, Apasmara etc.
4. मनशरीरादिष्टित मानसविकार : Shokaja jwara and Atisara.

Stress emotions in Ayurveda

Ayurveda regards that all diseases occur due to controlling the dischargable vegas or due to discharging the controllable vegas. The dharneeya vegas like Lobha, Irshya, raga etc. should be controlled to avoid the confrontations.

Also it has highlighted the importance of psychic factors in pathogenesis of various diseases saying that ' Vishado Roga Vardhananam' i.e. Emotional trauma resulting from the repression of emotions lead to causation or aggrevation of diseases.

Emotion means feeling urge to specific action based on intuitive appraisal of the situation, its effect on us and the way to cope up with it. Just like the vegas in Ayurveda, these emotions are not only psychological experiences, but they affect body also. Such changes may vary in different situations.

Stress and emotional disorders are also included in mental disorders of human being. K.N. Udupa while describing the stress disorders, has stated the stress reactions and their influences on mental and physical health.

Charaka has correctly conceived the mode of how emotional factors influences bodily phenomena. It is stated that emotions like Kama (lust), Bhaya (fear) and Shoka (grief) aggrevate Vata while Krodha (anger) aggrevates Pitta producing somatic diseases. Simillarly certain stress and emotional factors influence the course of illness as is evident from the following statement made by Charaka.

1. दौमनस्यमवृष्यानाम् : Disgust and unhappiness causing loss of virility.
2. विषादोरोगवर्धनानां : Mental depression or emotions causing aggrevation of diseases.
3. शोक:शेषानां : Worry or grief, the top cause of ematiation.
4. लोल्यं क्लेशकराणां : Greed, the cause of troublesome practices.
5. असदग्रहणं सर्वाहितानाम् : Wicked words leading to harmful results.

Thus, there is ample evidence suggesting possible aggrevation and genesis of somatic disorders by stress and emotional factors and vice-versa.

Relation of stress and emotions with Prana Vayu and Sadhaka Pitta

The limbic lobe function is intimately associated with the control of mood states. The actual working of the nerves within these is dependent on the mono amines. These mono amines are catacholamines such as noradrenaline, dopamine, serotomine etc. in limbic system, anxiety involvement areas are indentified as Amygdaloid nucleus, dorsal and particular areas of hypothalamus.

Accoring to Hathayoga Pradipika, Manas is the master of Indriyas and Vata is the master of Mansa. The ultimate cognizance of an object and consequent direction for the requisite action is rested with Buddhi.

Pranavata is located in Siras (head) and maintains the action of Hridaya, Manas, Buddhi and Indriyas and supports Dhamanis. Sadhaka Pitta is responsible for intelligence, memory, enthusiasm and one's aspirations. The concept of Sadhaka Pitta therefore encompasses psycho-physiological actions.

The concept of these two i.e. Prana vata and Sadhaka Pitta shows that they are having prominent role in emotional factos.

Effects of stress factors.

Certain amount of psychic trauma leads to various physiological changes in the behaviour personality of the person. The major effects are suppression of immune response, lowering of antibody levels, heart diseaes skin disorders, tension, headache, sexual dysfunction, digestive disorders etc.

Stress researches have established that some stress or stimulation is needed for optimum performance. But this relatioship varies from person to person. In initial phase, as stress increases, performance decreases. However, continuous stress impairs judgment and alertness resulting in diminished performance.

The main sub systems of our body are cognitive, Affective, Physical and Behavioural systems which coordinated by the master system. These sub systems respond according to the demands of a particular time and circumstances. E.g. I here noise which I recognize as that of an exploding bomb (cognitive). I feel frightened (affect), mobilizes the body's response mechanism (physiological) and I want to take shelter (conation). Hence stress emotions and anxiety have a mental side.

Management

The holistic approach towards treatment of mental disorders are aimed for mitigation of symptoms, eradication of disease and personality development. Ayurvedic mode of treatment includes -

1. Shodhana (Panchakarma) therapy.
2. Shamana therapy
3. Medhya Rasayanas
4. Daiva-vyapashraya chikitsa.
5. Satwavajaya chikitsa (Psychotherapy)

Panchakarma forms the major part of this treatment in most of the conditions. Doshas are vitiated upto such as extent that they can't be pacified by Shamana therapy. Here procedures like vamana, Virechana, Tikshna Nasya, Dhoopana etc. play important role. In some irritatable conditions, procedures like Dhara with Taila or Takra are also useful.

Shamana treatment includes medication with some herbal or herbomineral preparations. This treatment alleviates the Doshas and helps to bring normalcy in mental functions and most of these drugs produce effects on both the faculties i.e. body and mind.

Medhya Rasayana therapy is one more peculiarity of Ayurvedic treatment. These drugs are targeted for improvement of cognitive, conative and affective systems of the mind. Charaka has descrbied four main drugs like Shankhapushpi, Brahmi, Mandukaparni and Yasthi in different forms. But there are many others which can be used for the same purpose. E.g. Jatamansi, Vacha, Bhallataka, kushtha, Ghrita, Suvarnabhasma etc. they improve the Satwa (mental strength) and its functions. They act either through their Shamana (alleviation) effect (e.g. Brahmi, Jatamansi, Ghrita etc.) or through stimulation effect (e.g. Vacha, Kushtha etc.)

Daiva - vyapashraya chikitsa includes the holistic rituals like Bali, Homa, Japa, Tapa, dana etc. the effect of such procedures can be explained through their effect at spiritual level.

Satwavajaya treatment is specifically indicated for trating the psychiatric cases. Control of mind is achieved through by spiritual knowledge, philosophy, remembrance and concentration. Vagbhata also regards them as the best remedies for psychiatric illnesses. Some methods of psychotherapy like counseling and reassurance, sympathy and simple relaxation techniques can help to the patients to a great extent.

Following the methods of Achara Rasayana it maintains the psychosomatic equilibrium which gives intelligence, memory, longevity and immunity, Hence they should also form the part of psychotherapy.

Before concluding it is necessary to mention that the treatment procedures described in the classical texts alone are not sufficient for treating a psychiatric patient. The drug which are mentioned in later Granthas like Sanjnasthapana and nidrajanaka groups also should be encompassed as and when necessary.

Summary and Conclusion

Thus it can be summarized that Ayurveda maintains a very substantial and authentic Mano-vigyana. Heena satwa (inadequate personality) is the prime cause of mental ailments. Hereditary factors and socio - cultural circumstances also are of paramount importance.

Psychiatric ailments are always recurring in nature, hence according to the Doshas, specific Shodhana therapy, Shamana treatment and Satwavajaya Upayas can be adopted.

Avoidance of Prajnaparadha and applying psychotherapy such as counseling, reassurance, sympathy etc. as well as Sadvrittas and Daiva -

vyapashrya methods are helpful for mental disorders. According to present day situation, one has to design his lifestyle, diet and regimen which is essential for mental health.

Thus the Ayurvedic management of mental disorders is aimed for mitigation of symptoms, eradication of disease and personality development. Such a comprehensive and scientific approach talks in volume about scope of Ayurveda in this field irrespective of time or place.

References

1. Charaka Samhita 5th Edition English version by R.K. Sharma (1998) Chowkhambha Sanskrit series office, Varanasi - Vol. I & II
2. Vagabhata (1979) Ashtanga Sangraha Telgu Academi, Hyderabad
3. Vagabhata Ashtanga Hridayam Sarvanga Sundari Vyakhya Edition 1 Motilal Banarasi Das Varanasi (1963)
4. Positive Health through Ayurveda by L.P.Gupta & L.V. Guru 1st Edition (1989)
5. Davidson's Principles and practice of medicine 16th edition (1981)
6. API Text Book of medicine, published by Association of Physicians of India, Mumbai (1999) by G.S. Sainani.
7. Ayurveda Revisited, popular - prakashan Bombay (1989) Reprinted 1993
8. Science and philosophy of Indian Medicine, published by Shree Baidyanath Ayurved Bhawan Ltd. Nagpur,. 2nd Edition (1990).
9. Park's Text Book of preventive and Social Medicine, 15th edition (1997)
10. International Scientific and practical conference in Ayurveda (1996), Moscow, Russia, Proceedings.

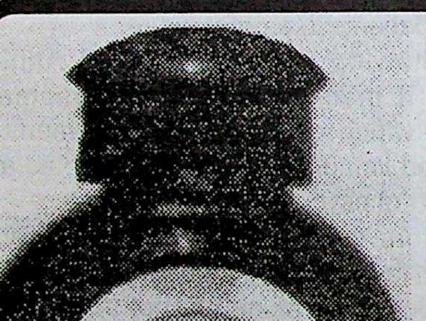

बैद्यनाथ

आँवला

केश

तेल

Applied Aspect of Dashavidha Pariksha with Special Reference to Vikriti pariksha

* Dr. Ashutosh Kumar Yadav, M.D. ** Dr. Suman Yadav ***Dr. Parameswarappa.S.Byadgi,M.D.Ph.D.

Introduction

A patient constitues the Karyadesa or the site for the administration of therapies with a view to bring back the homeostasis of the factors which brings normalcy among dhatus. The purpose of examination is to obtain knowledge regarding the span of life strength and the intensity of morbidity, because if a Physician having not examined properly administers intensely potent drug suddenly, it may kill the patient. Weak patients are incapable of resisting strong therapies like medicaments dominating in agni and vayu mahabhutas, application of alkalies and heat (Cauterization) and surgical operations. They may cause instantaneous death due to unbearable and over intense impulse of the drug. Keeping this in mind; the Physicians treat the weak patients with drugs which are unharmful, mild, delicate, heavy in progressive order, without complication, and not creating any emergent condition, particularly ladies bacause they have unstable, soft, bare and timid heart, are mostly delicate, weak and subordinate to other. In breif, given medicines should not be injurious to the body and mind. Stronger therapies that are neither distressing during their digestion nor associated with serious complications may be administered slowly and gradually. Similarly; if weak therapies are administered to a strong individual having a serious disease without proper examination, the disease does not get cured. Hence, the patient should be examined in respect of Prakriti (constitution), Vikriti (Morbidity), Sara (Excellence of dhatus), Samhanana (Compactness of orgnas) Pramana (Measurements of the organs of the body), Samya (Suitability), Sattva (Psychic conditions), Ahara sakti (Power of intake and digestion of food), Vyayama sakti (Power of performing exercise) and Vayas (age) in order to ascertain his strength and the intensity of the malady.

Thus, the strength of invidiviuals can be classified depending upon the superiority, mediocrity and inferiority of the above mentioned factors, viz. Prakriti (Physical constitution), Sara etc., except vikriti or morbidity.

Three types of the strength of the Doshas are inferred from the three types of the intensity of morbidity. Thereafter, depending upon the nature of the Doshas involved, three types of medicaments, viz. strong, mild and moderate should be administered. With a view to ascertaining the life span of an individual, symptoms described in Indriyasthan and also in the 8th chapter fo Sharira Sthana should be taken care of.

Ten fold examination should be cone to understand the overview condition of the person in order to carry out scientifically and methodically therapeuitc treatment in a systemic planned manner to get desirable and satisfying successful results. Exception to this rule is vikriti pariksa, which helps to elicit the factors which help to generate the disease process.

Vikriti Pariksa - Examination of Morbidity.

A patient has to be examined in respect of Vikriti as well. The morbid manifestations are to be examined with reference to in terms of specific Hetu (Causative factors), Doshas, Dhatus involved in the pathogenesis, Prakriti, (constitution of an individual, Desa (Habitat), Kala (Season and time). Bala (Strength), Linga (Syptoms) of the disease without determining the strength of the causative factors etc. it is not possible to obtain the knowledge regarding the intensity of the disease.

If the afflicted Doshas and Dhatus; Physical constitution of the patient (Prakriti), Desa (Habitat), Kala (Season & time), Bala (Strength) of the individual resemble that of the disease in quality and the causative factors and symptoms are too strong and numerous, the disease so manifested is acute and severe; otherwise, it is mild. If either of the Doshas, Dhatus etc. resemble that of the disease are of moderate nature, so the manifested disease is also moderate.

In brief Vikriti pariksa refers to morbidity of the susceptible individual and it also helps to ascertain the strength of the pathogenetic factors responsible for the manifestation of disease and

---

Lecturer, Department of Kayachikitsa (Vikriti Vigyan) Institute of Medical Sciences, BHU, Varanasi - 221005, E mail : psbyadgi@rediffmail.com

also helps to predict the prognosis of the disease.

Contributory factors for the development of disease (Samprapti Ghatakas)

Dosha

Vata- Samana vata
Vyanavata
Pranavata
Apanavata
Udanavata
Pitta- Pachaka pitta
Bhrajakapitta
Ranjakapitta
Sadhakapitta
Alochakapitta
Kapha- Tarpakakapha
Bhodakakapha
Shlesmakakapha
Avalambakapha
Kledakakapha

Dhushya

Saptadhatu
Upadhatu
Mala

Agni

Jatharagni -- Manda, Visama, Tikshna
Dhatvagni -- Manda, Visama, Tikshna
Bhutagni -- Manda, Visama, Tikshna

Ama

Jatharagnijanya
Dhatvagnijanya
Bhutagnijanya

Srotas

Bahya
Abhyantara
Srotodusti
Sangha
Vimargagamana
Atipravritti
Siragranthi

Sancharasthana
Vyaktasthana
Udhbhavasthana
Swabhava
Prabhava
Sadhyasadhyata

Conclusion

Patient is the substratum of the act. Examination of the patient is conducted for the knowledge of the span of life or of the degree of strength and morbidity. Thus one should determine the strength of entities like Pramana, Samhanana etc. (except vikriti) in three divisions – Superior, moderate and inferior. According to severity of vikriti (morbhidity) the three degree of strength of dosas are inferred. Depending on the severity of pathogenesis factors strong, mild and moderate medicaments must be prescribed. So, examiniation of dashavidhi pariksa is necessary to get success in treatment by employing proper suitable therapeutics to the diseased individuals.

Message

* Concept of Dashavidha Pariksa described in Ayurveda is very much scientific in terms of understanding the strength of disease, person, causative factors etc.
* Before going to plan any therapy to the patient proper understanding of patient's physique and mind, both are equally important to get success in treatment.
* Knowledge of strength, morbidity and span of life may be obtained through Dashavidha pariksa.
* Understanding of concept of dashavidha with special emphasis to Vikriti pariksha is the need of the hour. In this regard Vikriti Vigyan specialists should prepare a protocol to implement standard easily accessible criteria at OPD & IPD levels, so that one can understand and plan suitable appropriate therapeutics to get desirable results.

References

1. Charaka Samhita, P.V. Sharma, Chaukhambha Publications, Varanasi
2. Essentials of Medical Pharmacology, K.D. Tripathy, Jaypee Publications, 2004.

Ayurvedic Mangement of Gastro-oesophageal Reflux (GERD)

* Dr. Sai Prasad, A.J.V., M.D. (Ay.) ** Dr. Ratna Manikyam, M.D. (Ay.)

Abstract

Castro-oesophageal reflux disease (GERD) is the manifestation of stomach and oesophagus, common disease has mild manifestation but may be life threatening. GERD's pathogenesis, symptomology, diagnosis & complication have been described. GERD's Ayurvedic management on the basis of pathogenesis has been mentioned along with preventive measures.

Gastro-oesophageal reflux disease (GERD) :-

Definitin :-

Disorder of Gastro-intestinal tract having clinical manifestation of reflux of gastric and duodenal contents into the oesophagus. It is also called as "Reflux" oesophagitis".

Pathogenesis :-

The main pathological changes seen with GERD are,

1. Mean lower oesophageal sphincter pressure lower in GERD compared with normal person.
2. An inappropriate relaxation of the lower oesophageal sphincter i.e. LES relaxation unassociated with either swallowing or the distention of the oesophageal body by refluxed fluids.
3. Imbalance in gastric and pepsin.
4. Mucosal damage caused by high carbonate content of saliva and diminished resistance of the oesophageal mucosa to digestion.

Some unknown mechanism of reflux :-

1. Reflux during pregnancy.
2. Weight gain aggravate reflux.
3. Progressive systemic sclerosis forms strictures of oesophagus.
4. Role of hiatus hernia has a less importance in GERD.

Symptoms of GERD :-

1. Heart burn-it may form an occasional mild burning after over eating to an ever present.
2. Dysphagia- Discomfort that severely limits a patient's life style
3. Blood loss- May result from oesophageal erosion and swallow ulcers.
4. On Progressive of the GERD, regurgitation of gastric contents either into the mouth or into the respiratory tree follow the symptoms of breathlessness, nocturnal wheezing, cough, hoarseness, a need to clear the throat repeatedly and a sensation of deep pressure at the base of the neck.
5. Dysphagia-Usually mild, sometimes complicate to stricture and dysphagia of solid foods occurs.

Diagnosis :

1. Clinical diagnosis.
2. Barium meal swallow-X ray for gross changes like stricture formation or deep oesophageal ulcer.
3. Detecting LES pressure by Manometry and pH probe.
4. Endoscopy and suction biopsy.

Coplications :-

1. Oesophageal stricute
2. Oesophageal ulcer.
3. Pulmonary aspiration.

Ayurvedic Management of GERD :

Management deals :

1. Preventive measures.
2. Pharmacological aspects.

1. Preventive measures :

Ahara factors :

1. Avoid Vata and Kapha prakopa Ahara.
2. Avoid teekshna and katu ahara, which acts as gastric irritants.
3. Avoid spicy foods, which cause gastric regurgitation into the tracho-brocheal tree.
4. Nispava, Masha, Pinyaka, Tila thaila, Anupa and Audhuka mamsa, Dadhi, Vidhi, Vistambhi, Guru and Abhishyandhi ahara should be avoided.

Vihara factors :

1. Avoid Ratri jagarana.
2. Time gap between food intake and sleep should be maintained.
3. Position in bed with the raised bed is advised.

Manasika factors :

Bhaya, Shoka, anxiety, tension etc. should

---

*Lecturer, S.J.S. Ay. College, Chennai
** Research Scholar, Dr. B.R.K.R. Govt. Ayu. P.G. College, Hyderabad

be avoided.

II. **Pharmocological aspects :**

The durgs are classified on the basis of type of pathogenesis - grouped under :

1. Increase the strength of gastero-oesophageal sphincter.
2. Decrease regurgitation.
3. Gastric and oesophageal mucosa production.

Increase the strenght of gastero-oesophageal sphincter :

a) Laghu sutha shekara rasa
b) Leela vilas ras,
c) Kama dugdha ras
d) Dhadimadhi Ghrutham

Decrease regurgitation :

a) Yashtimadhu along with Sankha Bhasma,
b) Eladi Churna with honey
c) Avipathikara Churna
d) Vidaryadhi Kashaya acts both on Pranavaha and Annavaha Srotas.

Gastric and oesophageal mucosa protection :

a) Shatavaryadhi Ghrutham,
b) Indukantha Kashaya,
c) Abhayarishtam tone up the GI tract,
d) Sankha Bhasma and Pravala Bhasma
e) Narikela Khanda Lavana acts as alkaliser.

Conclusion :

GERD (Gastero Oesophageal Refl Disease) is a common disorder affecting civilized time bound tension and disharmony population of urban area. Above said management alters all the clinical manifestation and leads to healthy harmonic life style.

BIBLIOGRAPHY

1. Ashtanga Hridaya by Atri Dev Gupta Chowkamba Sanskrit series 1962 Varanasi.
2. Cecils Text book of medicines Wyngarden Smith, Bennet, W.B. Saunders 19th edition 1992.
3. Charaka Samhita, P.V. Sharma: Chowkamba Orientalia 1982.
4. Dravya Guna Vigyan by P.V. Sharma Chowkamba Sanskrit Samsthan.
5. Davidsons Principles and Pracice of med Harrisons Principals of Internal Medicine Fauci, Brawnwald, Issel Bacher, Wilson New york 1998.
6. Harrisons Principals of Internal Medicine Fauci, Brawnwald, Issel Bacher, Wilson New york 1998.

बैद्यनाथ

लवणभास्कर चूर्ण

मन्दाग्नि को दूर कर

पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी

1. प्र०:- विदेह किस दिशा का देश है ?
(a) पूर्व (b) पश्चिम
(c) उत्तर (d) दक्षिण

2. प्र०:- विष्किर प्राणियों में किसका मांस श्रेष्ठ माना है ?
(a) काग (b) तीतर
(c) कूर्म (d) हंस

3. प्र०:- कूर्म का मांस क्या होता है ?
(a) मधुर विपाकी (b) गुरु
(c) उष्ण (d) उक्त सभी

4. प्र०:- पाण्डु रोग में अपथ्य क्या है ?
(a) तीक्ष्ण लवण (b) यवक्षार
(c) घृत (d) नवनीत

5. प्र०:- अजीर्ण में अपथ्य क्या है ?
(a) कारवेल्लक (b) वातार्क
(c) शोभाञ्जन (d) किलाट

6. प्र०:- डल्हण का निवास स्थान कहाँ का माना गया है ?
(a) काशी (b) मथुरा
(c) देवगिरि (d) काश्मीर

7. प्र०:- वृद्धजीवक का निवास स्थान कहां का माना गया है ?
(a) गङ्गद्वार (b) बंगाल
(c) काश्मीर (d) अवन्ती

8. प्र०:- काश्यप के खिल स्थान के प्रथम अध्याय नाम क्या है ?
(a) विषम ज्वर निर्देशीयाध्याय
(b) रक्तपित्त निदान अध्याय
(c) शोष अध्याय
(d) यक्ष्मा अध्याय

9. प्र०:- विषम ज्वर के कितने स्थान हैं ?
(a) 4 (b) 5 (c) 6 (d) 8

10. प्र०:- विठ और मूत्र की प्रवृत्ति स्वयं किस योग में होने लगती है ?
(a) ज्वर (b) प्रमेह
(c) वेपथुवात (d) गृध्रसी

11. प्र०:- अविलमूत्रता लक्षण किस रोग में मिलता है ?
(a) ज्वर (b) प्रवाहिका
(c) उन्माद (d) यकृत रोग

12. प्र०:- कौन-सा रोग प्राय: प्राणनाशन होता है ?
(a) अपस्मार (b) उन्माद
(c) उरस्तोद (d) गुल्म

13. प्र०:- चक्षुरोग लक्षण किस रोग में मिलता है ?
(a) स्मरोन्माद (b) ततोन्माद
(c) स्खालित्य (d) गदोद्वेग

14. प्र०:- पीनस, नासिका, भंग व दांतों का गिर जाना-ये रोग किस के अनुचित प्रयोग से होते हैं ?
(a) दधि (b) दूध
(c) पारद (d) वंग

15. प्र०:- किस रोग में रोगी सतत् रूप से अधीर रहता है ?
(a) ताण्डव (b) उन्माद
(c) अपस्मार (d) आक्षेपक

16. प्र०:- भावप्रकाश के अनुसार चरक किसका अवतार था ?
(a) शेषनाग (b) कपिल
(c) सांख्य (d) आत्रेय

17. प्र०:- चरक में प्रयुक्त अवक्रांति शब्द किस साहित्य का है ?
(a) पालि (b) हिन्दी
(c) फारसी (d) अरबी

18. प्र०:- चरक संहिता का अरबी भाषा में अनुवाद कब हुआ ?
(a) 6वीं शताब्दी (b) 8वीं शताब्दी
(c) 9वीं शताब्दी (d) 11वीं शताब्दी

19. प्र०:- गोनर्द, किस का प्राचीन नाम था ?
(a) पंज़ाब (b) काश्मीर
(c) हिमाचल (d) हरिद्वार

20. प्र०:- चरक में प्रयुक्त कौन-सा शब्द बौद्ध दर्शन का है?
(a) भूतधात्री (b) जेंताक
(c) भंगोदान (d) उक्त सभी

21. प्र०:- किस का प्रयोग लगातार नहीं करना चाहिए ?
(a) कूर्चिका (b) किलाट
(c) मत्स्य (d) सभी

22. प्र०:- गोमांस द्वारा निर्मित यवागु किसका नाश करती है ?

(a) शूल (b) विषम ज्वर

(c) श्रम (d) श्वास

23. प्र०:- किस औषधि के एक प्रस्थ प्रमाण में प्रयोग करने से बुढ़ापा दूर होता है ?

(a) शतावरी (b) अश्वगंधा

(c) हरीतकी (d) खदिर

24. प्र०:- काश्यप संहिता अनुसार उदर रोग कितने हैं ?

(a) 4 (b) 6 (c) 8 (d) 9

25. प्र०:- काश्यप संहिता में नख वक्रता लक्षण किसमें बताया है ?

(a) कामला (b) पाण्डु

(c) विसूचिका (d) छर्दि

26. प्र०:- बिना स्नान के भी स्नान किए हुए की अनुभूति यह लक्षण काश्यप संहिता में किस रोग का बताया है ?

(a) उदर शूल (b) आमदोष

(c) विसूचिका (d) छर्दि

27. प्र०:- उत्पलपत्र शस्त्र कितने अंगुल प्रमाण का होता है ?

(a) 2 (b) 3 (c) 4 (d) 6

28. प्र०:- श्री कण्ठदत्त का काल कौन-सा था ?

(a) 23 वीं शताब्दी (b) 12 वीं शताब्दी

(c) 5 वीं शताब्दी (d) 8 वीं शताब्दी

29. प्र०:- माधव निदान पर कितनी टीकाएँ सर्वाधिक प्रसिद्ध हुई ?

(a) 4 (b) 2 (c) 5 (d) 6

30. प्र०:- चांगेरी घृत किष रोगाधिकार का है ?

(a) अतिसार (b) प्रवाहिका

(c) कास (d) श्वास

31. प्र०:- शूकपूर्ण गलास्यता किस का पूर्व रूप है ?

(a) कास (b) श्वास

(c) अतिसार (d) प्रतिश्याय

32. प्र०:- प्रवात सेवन किस रोग में अपथ्य है ?

(a) अतिसार (b) प्रवाहिका

(c) ग्रहणी (d) विसर्प

33. प्र०:- शतावरी घृत का प्रयोग किस अतिसार में का चाहिए ?

(a) वातज (b) पित्तज

(c) कफज (d) रक्तज

34. प्र०:- सन्तामेदेहमानसः किस का प्रत्यात्मक लक्ष है ?

(a) राज्यक्ष्मा (b) आमवात

(c) प्रतिश्याय (d) ज्वर

35. प्र०:- कौन-सा ज्वर प्राकृत होते हुए भी प्राकृत न माना जाता है ?

(a) वर्षा में वातज ज्वर ।

(b) शरद में पिंत्तज ज्वर ।

(c) बसन्त में कफज ज्वर ।

(d) सभी ।

36. प्र०:-ज्वर के उपद्रव कितने हैं ?

(a) 4 (b) 5 (c) 6 (d) 8

37. प्र०:- चरक संहिता में विषम ज्वर नाशक कि कषायों का वर्णन किया गया है ?

(a) 4 (b) 5 (c) 6 (d) 8

38. प्र०:- भारत का सर्वप्रथम आयुर्वेदिक कॉलेज कौन-सा है जिसकी स्थापना 1898 ई० में लाहौर में हुई थी ?

(a) तिब्बिया कॉलेज, दिल्ली

(b) ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज, हरिद्

(c) दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्ध

39. प्र०:- 'स्वाति' क्या है ?

(a) चिकित्सा का उपक्रम

(b) प्रजापति की कन्यां

(c) रोग निदान का साधन

40. प्र०:- किस रोग में दूध प्रयोग उचित है ?

(a) श्वास (b) कास

(c) अंतिसार (d) उक्त सभी

41. प्र०:- कौन-सा द्रव्य बल्य महाकषाय का नहीं है ?
(a) ऐन्द्री (b) ऋष्भी
(c) अतिरसा (d) मुस्तक

42. प्र०:- कण्ठय महाकषाय में प्रथम द्रव्य कौन-सा निर्दिष्ट है ?
(a) सारिवा (b) इक्षुमूल
(c) मधुक (d) पिप्पली

43. प्र०:- एण के मांस का सेवन किस ऋतु में करना चाहिए ?
(a) वर्षा (b) शरद
(c) ग्रीष्म (d) शिशिर

44. प्र०:- हेमन्त ऋतु में किस रस का सेवन करना चाहिए ?
(a) अम्ल, लवण (b) मधुर तिक्त
(c) लवण, कटु (d) मधुर, कषाय

45. प्र०:- शार्ङ्गधर के अनुसार तुला और वृश्चिक राशि किस ऋतु में होती है ?
(a) वर्षा (b) शरद
(c) हेमन्त (d) प्रावृट

46. प्र०:- कौटिल्य किस का नाम था ?
(a) चाणक्य (b) चक्रपाणि
(c) अरुण दत्त (d) इन्दु

47. प्र०:- हर्ष उत्साह किस वायु का कर्म है ?
(a) प्राण (b) उदान
(c) व्यान (d) समान

48. प्र०:- उत्पत्ति भेद से द्रव्यों के कितने भेद हैं ?
(a) 1 (b) 3
(c) 4 (d) 5

49. प्र०:- संशोधन बस्ति किस बस्ति का भेद है ?
(a) यापन (b) पिच्छा
(c) आस्थापन (d) अनुवासन

50. प्र०:- प्रायोगिक धूमपान किसका पर्याय है ?
(a) शमन (b) शोधन
(c) विरेचन (d) तीक्ष्ण

Answer-Keys

(1) D (2) B (3) D (4) D (5) D (6) B
(7) A (8) A (9) A (10) C (11) D (12) C
(13) A (14) C (15) A (16) A (17) A (18) B
(19) B (20) B (21) B (22) D (23) B (24) D
(25) D (26) B (27) B (28) B (29) A (30) B
(31) A (32) A (33) D (34) D (35) D (36) A
(37) D (38) B (39) C (40) B (41) D (42) D
(43) A (44) B (45) A (46) B (47) A (48) A
(49) B (50) C

डा० अनूप कु० गक्खड़,
एम.डी. (आयु.) एवं मनीला, बी.ए.एम.एस., अन्तिम प्रॉफ
दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्धर

बैद्यनाथ
दाद मलहम
बिना तकलीफ के दाद को जड़मूल से नष्ट करने वाली दवा

मार्च,1966

भारतीय दर्शनों ने सत्त्व-रज-तम तथा पंच महाभूत के सिद्धान्तों को माना है और आयुर्वेद ने त्रिगुण तथा पंचमहाभूत के सिद्धान्तों का समन्वय किया एवं शरीर-विज्ञान में उसने वात-पित्त-कफ के सिद्धान्त को जन्म दिया, फिर उसने वात-पित्त-कफ के सिद्धान्त को जन्म दिया, फिर उसने वात-पित्त-कफ के सिद्धान्तों को 'अग्निषोमीयं जगत्' आदि सिद्धान्तों के साथ-साथ सर्वव्यापी बना दिया। भारतीय दर्शन के आधार पर भारतीय संस्कृति की नींव रखी गयी है। कोई भी व्यक्ति उसकी उपेक्षा करके भारतीय संस्कृति की पुष्टि नहीं कर सकता और भारतीय दर्शन जीवन के जिन तत्वों की सैद्धान्तिक शुद्ध विवेचना करते हैं, आयुर्वेद उन्हें रोग की चिकित्सा के सहारे क्रियात्मक रूप से सिद्ध करता है। अतएव, भारतीय दर्शन यदि शुद्ध ज्ञानप्रद है तो आयुर्वेद उनका व्यावहारिक ज्ञान देने वाला है। अत: आयुर्वेदज्ञों को चाहिए कि वे चरकोक्त आदर्श वैद्य बनने का सदुपदेश सर्वदा ध्यान में रखें।

वैद्य दरबारी लाल शर्मा
अध्यक्ष
उत्तर प्रदेश विधान परिषद्
लखनऊ

आयुर्वेद विश्वविद्यालय

गुजरात में जामनगर में आयुर्वेद-यूनिवर्सिटी की स्थापना के प्रबन्ध-सम्बन्धी विधेयक को दिनांक 17 दिसम्बर, 1965 के दिन गुजरात विधान सभा द्वारा मंजूर किया गया। समग्र भारत में सबसे प्रथम गुजरात राज्य में ही ऐसी यूनिवर्सिटी की स्थापना होगी। यह ऐतिहासिक तथा युगप्रवर्त्तक विधेयक पेश करते हुए स्वास्थ्य मंत्री, श्री मोहनलाल व्यास ने विधान सभा में महत्वपूर्ण वक्तव्य दिया। उन्होंने कहा कि गुजरात राज्य आयुर्वेद यूनिवर्सिटी विधेयक को पेश करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है। समग्र भारत में ऐसा विधेयक पहला ही है। आयुर्वेद के शिक्षण के लिए आयुर्वेद यूनिवर्सिटी की स्थापना तक ऐतिहासिक कार्य है। मैं आशा करता हूं कि यह परिषद् इस विधेयक का समर्थन करके उसको पूर्णत: स्वीकार करेगी।

आयुर्वेद यूनिवर्सिटी का उद्देश्य

आयुर्वेद यूनिर्वसिटी के मुख्य तीन उद्देश्य हैं :

1. आयुर्वेद की शिक्षा का स्तर उच्च बनाया जा सम्प्रति जिस तरह आयुर्वेद की शिक्षा दी जा है। उससे मुझे खुद को पूरा संतोष नहीं है। ऐसा अभ्यास क्रम होना चाहिए जिससे विद्या को सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके और ज्ञान पाने के बाद वह एक कुशल वैद्य की तरह लोगों की सेवा कर सके। आयुर्वेद यूनिर्वसिटी का यह मुख्य कार्य रहेगा।
2. आयुर्वेद यूनिर्वसिटी का दूसरा उद्देश्य यह है कि आयुर्वेद की शिक्षा के लिए कुशल आचार्य तैय किये जायें। कुशल आचार्य के बिना आयुर्वेद की शिक्षा अच्छी तरह से नहीं की जा सकती। ऐसा करने से आयुर्वेद यूनिर्वसिटी में अनुस्नातक अभ्या क्रम की सुविधा भी शक्य बनेगी।
3. आयुर्वेद का तीसरा उद्देश्य अनुसंधान है। आयुर्वे की अनेक शक्तियाँ हैं; उसे बाहर लाने की जरूरत है और इसके लिए अनुसंधान कर पड़ेगा। आयुर्वेद ने मूल-भूत सिद्धान्तों में अनुसंधा करना होगा और वे मूलभूत सिद्धान्त पंचमहाभू त्रिदोष, सप्तधातु रस, गुण, वीर्य विपाक औ प्रभाव, पंचकर्म पथ्यापथ्य "साम निराम" अनुसं और संशमन, रात्रिचर्या, दिनचर्या, ऋतुचर्या औ जीवनचर्या आदि है।

(14 जनवरी, 1965 को गुजरात विधान सभा में विधेय पेश करते हुए स्वास्थ्य मंत्री, श्री मोहन लाल व्यास का कथन)

चिकित्सक को उपचार की समस्त विधियों का ज्ञान अनिवार्य

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद, पटना

इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश विद्वान न्यायमूर्ति आई.एम.-कुद्दूसी ने कहा है कि एक सामान्य चिकित्सक को उपचार की सभी आवश्यक विधियों का ज्ञान होना चाहिए। इसीलिए उच्चतम-न्यायालय ने '1998 में समन्वित-चिकित्सक को अधिकार प्रदान करते हुए व्यवस्था दी थी कि उपचार में कोई कानूनी बाधा नहीं आनी चाहिए। न्यायमूर्ति ने कहा कि हमारे राष्ट्रीय नेताओं महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, जवाहर लाल नेहरू तथा हकीम अजमल खाँ आदि ने बहुत पहले ही समन्वित चिकित्सा शिक्षा कार्यक्रम प्रारम्भ करने हेतु अपना आर्शीवाद दे दिया था। उन्हें विश्वास था कि चिकित्सक को आयुर्वेद व युनानी सहित सभी आधुनिक औषधियों से अवगत होना चाहिए। वह लोग जिन्हें चिकित्सीय शिक्षा का ज्ञान है, अच्छी तरह से जानते हैं कि चीन जैसे कुछ देश हर चिकित्सक को आधुनिक पद्धतियों के साथ स्वदेशी पद्धति से भी अवगत कराते हैं। इसीलिए उच्चतम न्यायालय ने 1998 में प्रावधान के अन्तर्गत यह अधिकार दिया था कि समन्वित चिकित्सक आधुनिक चिकित्सा पद्धति के साथ-साथ आयुर्वेद, यूनानी, सिद्ध, योग व प्राकृतिक चिकित्सा का भी प्रयोग कर सकता है। इसमें कोई शक नहीं कि न्याय के क्षेत्र में हमारे चिकित्सकों ने न्याय के पक्ष को मजबूती प्रदान की है, वह चाहें दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्त्ति के मामले में हो या किसी आपराधिक कृत्य, वसीयतों की वैज्ञानिकता के मामले में मानसिक दशा सिद्ध करने में क्यों न हों। उन्होंने कहा कि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि समन्वित चिकित्सक हर भारतीय नागरिक को हर सम्भव चिकित्सा व्यवस्था प्रदान करनें में सक्षम है।

सांसद श्री नरेन्द्र मोहन के अनुसार चिकित्सक वही हो सकता है जिसमें सेवा का भाव हो, धन प्राप्त करने के लिए जो एक विशेष उत्साह व आकांक्षा चिकित्सकों में जागी है उसने चिकित्सक के चरित्र को भौतिकवादी बना दिया है। उन्होंने कहा कि भगवान धन्वन्तरि का जो उद्देश्य था वह पूरा नहीं हुआ है। समन्वित चिकित्सा में भी इसकी व्यवस्था है कि चिकित्सक कैसा हो, चिकित्सक का चरित्र, स्वभाव, आंतरिक शक्ति, संकल्प, तेजस्व, औजस्व, प्रज्ञाशक्ति, विवेक व प्राणशक्ति की क्या स्थिति है। जबतक प्राण शक्ति का संवेग समान नहीं होगा, तबतक चिकित्सक रोगी को अनुप्राणित नहीं कर सकता है। एक अच्छे चिकित्सक को इन्द्रियों पर सम्पूर्ण संयम व अधिकार प्राप्त करना चाहिए। स्वार्थभाव, अंधकार, लोभ, मोह से चिकित्सक ग्रस्त न हों। आयुर्वेद की स्थिति का कानून पूर्व प्रधान मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने नहीं बदला है। मंच पर आयुर्वेद-यूनानी की प्रशंसा तो वर्षों से होती आ रही है, लेकिन क्या राष्ट्र या समाज उन नियमों व कानूनों को बदलने के लिए तैयार है, जो एलोपैथी की विशिष्टता को बनाए रखनें के लिए जबरन इस देश पर लाद दिए गये हैं। एक गम्भीर प्रश्न यह है, इस पर हमलोगों को गम्भीरतापूर्वक मनन करना होगा, अपनी-अपनी राय भी सरकार को देनी होगी, तभी हमारी प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों का उद्धार हो सकेगा।

(डा० राकेश मोहन शर्मा)
मण्डलीय सचिव - आगरा मण्डल
राजकीय आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सा सेवा संघ,उ.प्र.
प्र० चिकित्साधिकारी, राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
बरई शाहपुर, हाथरस (उ.प्र.)

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद, पटना

महोदय,

लोकप्रिय पत्रिका, सचित्र आयुर्वेद के माध्यम से राष्ट्र के सभी आयुर्वेदिक चिकित्सक बन्धुओं एवं आयुर्वेद के छात्र, छात्राओं से आह्वान है कि आयुर्वेद के उत्थान के लिए एक मंच पर एकत्रित होकर अपनी आवाज बुलंद करें तथा राष्ट्र की राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति आयुर्वेद को भारत सरकार घोषित करे क्योंकि सन् 1920 में नागपुर के खुले अधिवेशन में महात्मा गांधीजी ने सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पारित करवाया था कि आजादी के बाद भारतवर्ष में आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति का दर्जा दिया जायेगा। आजादी के इतने वर्षों बाद भी यह प्रस्ताव पूरा नहीं किया गया।

आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित किया जाना चाहिए।

केन्द्र के स्वास्थ्य बजट में 50% बजट आयुर्वेद ''आयुष'' विभाग को दिया जाना चाहिए।

राज्य व केन्द्र में एक पृथक् आयुर्वेद मंत्रालय का गठन किया जाना चाहिए। आयुर्वेद का पृथक् केन्द्रीय मंत्री हो। राज्यों में राज्य मंत्री आयुर्वेद का हो।

प्रत्येक चिकित्सक छात्र एक-एक पत्र प्रधानमंत्री/स्वास्थ्यमंत्री/राष्ट्रपति जी को लिखकर भेजें।

वैद्य श्याम गुप्ता
राष्ट्रीय अध्यक्ष, आयुर्वेद उत्थान भारती (रजिस्टर्ड)
2 ए काली मंदिर इन्क्लेव, जी.एम.एस. रोड, पो.-कांवली

आरोग्य समाचार

अखबार की कतरनों से

खाली पेट जाएं परीक्षा देने, खूब याद रहेगा

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार परीक्षा देने जा रहे हैं तो खाली पेट जाएँ । अमेरिका वैज्ञानिकों की मानें तो पेट की भूख स्मरण शक्ति को मजबूत करने में मदद करती है । भूख के लिए जरूरी हार्मोन ग्रेलिन मस्तिष्क के उस क्षेत्र में, जहाँ नई यादें एकत्र होती हैं, तंत्रिकाओं के गठजोड़ को बढ़ाता है । वैज्ञानिकों को उम्मीद है कि इस खोज से 'सीखने' की दवा और याद से जुड़ी अल्जाइमर बीमारी का इलाज खोजने में काफी मदद मिल सकती है । येल विवि के वैज्ञानिकों की इस रिपोर्ट को साइंस पत्रिका ने प्रमुखता से छापा है । वैज्ञानिकों ने बताया कि ग्रेलिन हार्मोन खाली पेट से स्रावित होता है और खून में मिल जाता है । यह हार्मोन मस्तिष्क की तंत्रिकाओं की कार्यक्षमता को बढ़ाने के लिए भी जाना जाता है । यह हार्मोन मस्तिष्क के हाइपोथैलमस की सक्रियता को बढ़ाता है और हमें भूख का अनुभव होता है । येल विवि के वैज्ञानिकों के दल ने पता लगाया कि इस हार्मोन का मस्तिष्क के हिप्पोकैंपस की सक्रियता को भी बढ़ाता है ।

पीठ के दर्द में एक्यूप्रेशर लाभदायक

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार पीठ के निचले हिस्से में दर्द की स्थिति में फिजिकल थेरेपी की अपेक्षा एक्यूप्रेशर (अंगूठे और हथेली से शरीर के खास बिन्दुओं पर दबाना) ज्यादा लाभदायक होता है । वैसे तो एक्यूप्रेशर के फायदों के संबंध में कई अध्ययन किये गये हैं लेकिन पीठ के निचले हिस्से के दर्द में भी यह ज्यादा कारगर होता है, पहली बार पता चला है । ब्रिटिश मेडिकल जर्नल में प्रकाशित रिपोर्ट में बताया गया है कि ताइवान के शोधकर्ताओं ने आर्थोपेडिक अस्पतालों से पीठ के निचले हिस्से में दर्द के 129 मरीजों पर परीक्षण किया । इनका इलाज शुरू करने से पहले इनसे कुछ प्रश्न पूछे गये थे । 65 प्रतिशत लोगों का इलाज एक्यूप्रेशर से किया गया और 64 प्रतिशत लोगों को फिजिकल थेरेपी दी गयी । एक बार तत्काल परिणामों का विश्लेषण किया गया फिर छह माह बाद इनका विश्लेषण किया गया । पाया गया कि एक्यूप्रेशर से इलाज करने वालों को पीठ दर्द में काफी राहत थी जबकि फिजिकल थेरेपी वालों में इसका प्रतिशत काफी कम रहा ।

बुढ़ापे में अधिक दवा का सेवन खतरनाक

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार उम्र बढ़ने के साथ-साथ लोग तमाम बीमारियों के शिकार हो जाते हैं । उनकी जिन्दगी दवाओं पर निर्भर हो जाती है । स्वास्थ्य विशेषज्ञों की सलाह है कि लोगों को बहुत अधिक दवा खाने से बचना चाहिये । कई दवाओं को मिलाकर खाना तो और भी खतरनाक होत्ता है । इससे मरीजों को कई परेशानियों का सामना करना पड़ सकता है । हेडलबर्ग विश्वविद्यालय के स्वास्थ्य विशेषज्ञ डॉक्टर वाल्टर हईफेलिं और बर्लिन चैरिटी क्लीनिक के डॉक्टर राल्फस्टालमन का कहना है कि दवाओं में कई रासायनिक तत्व होते हैं । ऐसे में अगर लोग उम्र बढ़ने के साथ-साथ कई दवाओं को मिलाकर खाते हैं, उन्हें काफी नुकसान होता है । दरअसल, अधिक उम्र में शरीर की प्रतिरोधी क्षमता कमजोर पड़ने लगती है । लिहाजा, विभिन्न दवाओं में मौजूद रासायनिक तत्वों का लोगों पर नकारात्मक असर पड़ता है । यह स्थिति उनके लिए खतरनाक हो सकती है ।

जटिल शब्दों के लिए होता है दिमाग में विशेष क्षेत्र

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार कई लोग कुछ जटिल शब्दों को तुरंत याद कर लेते हैं और जरूरत के समय में उनका प्रयोग भी तत्काल करते हैं, लेकिन कुछ लोगों में यह क्षमता नहीं होती । इसका कारण दिमाग का एक खास क्षेत्र है, जहां से ये प्रक्रिया संचालित होती है । इस बारे में वैज्ञानिकों ने एक ऑनलाइन रिपोर्ट में कहा कि मनुष्य के दिमाग में दो क्षेत्र होते हैं, जो विभिन्न भाषाओं की प्रक्रिया को संचालन करते हैं । ये दोनों क्षेत्र जरूरत के मुताबिक शब्दों का संयोजन करते हैं और उन्हें मुख्य क्षेत्र में भेजते हैं । रिपोर्ट के अनुसार सामान्य भाषाई की प्रक्रिया जिस स्थान पर होती है, वह जेनेटिक आधार पर काफी पुराना है । यह सामान्य तौर पर वन्य प्राणियों में भी पाया जाता है ।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

महाराष्ट्र

मुम्बई

आयुर्वेदिक एण्ड हरबल रिसर्च सेन्टर

(आरोग्य संस्थान ट्रस्ट का एक प्रभाग)

आरोग्य संस्थान ट्रस्ट ने आयुर्वेद एवं हर्बल रिसर्च सेन्टर तथा वैद्य सुरेश चतुर्वेदी वेबसाइट उद्घाटन समारोह का आयोजन 15 जनवरी 2006 शाम 4 बजे सम्पन्न किया। संस्था के संचालक पद्मश्री वैद्य सुरेश चतुर्वेदी ने संस्था का परिचय दिया तथा ट्रस्टी श्री गौतम मेहता ने अतिथियों का स्वागत किया। समारोह में श्री स्वामी अमुतानन्द देवतीर्थ जी महाराज, शंकराचार्य, सर्वज्ञपीठ काश्मीर, विशिष्ट अतिथि के रूप में पधार कर आशीर्वाद प्रदान किये जबकि पूर्व केन्द्रीय मंत्री रामनाईक जी मुख्य अतिथि थे और उन्होंने ही वैद्य सुरेश चतुर्वेदी जी के वेबसाइट का उद्घाटन किया तथा अपने संदेश में कहा कि देश विदेश की जनता वैद्य जी के वेबसाइट के माध्यम से आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और लोक कल्याणार्थ वैद्य जी की शतायु की मंगलकामना व्यक्त की। डा०डी०वी० गुप्ता जी चेयरमेन, लुपिन लिमिटेड ने समारोह की अध्यक्षता की तथा रिसर्च सेन्टर का उद्घाटन किया। अपने अभिभाषण में उन्होंने ग्लोबल हर्बल मार्केट में भारत को आना चाहिए इस बात पर जोर दिया। साहित्यकार नन्दकिशोर नौटियाल एवं वरिष्ठ पत्रकार विश्वनाथ सचदेव मुख्य वक्ता के रूप में समारोह में पधारे थे।

डा० उमेश मिश्रा ने रिसर्च सेन्टर के उद्देश्य एवं गतिविधियों के विषय में बताया तथा श्री विनोद चतुर्वेदी ने वेबसाइट का परिचय दिया।

इस अवसर पर भजन संध्या में सहयोगी रहे संगीतकार श्री विजय कुमार एवं पार्श्वगायक श्री गणेश अग्रवाल तथा टी.वी. स्टार श्री मिथिलेश चतुर्वेदी ने मंगलाचरण प्रस्तुत किया।

श्री श्रीकांत चतुर्वेदी ने आभार व्यक्त किया और श्री अश्विन कुमार जोशी ने कार्यक्रम का संचालन किया।

बिहार

राज्य स्तरीय औषधीय पादप बोर्ड की उप समिति-सह-परियोजना मूल्यांकन समिति का गठन बिहार सरकार, स्वास्थ्य (स्वास्थ्य शिक्षा एवं देशी चिकित्सा) विभाग

संकल्प

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार द्वारा औषधि पादपों के विकास, संरक्षण एवं संवर्द्धन की दिशा में ठोस कार्रवाई करने तथा इसके उत्पादन तकनीक में विकास/प्रोत्साहन तथा दवा कम्पनियों से क्रय का सम्पर्क सूत्र बनाने के उद्देश्य से औषधि पादप बोर्ड के गठन हेतु दिये गये सुझाव के आलोक में राज्य औषधीय पादप बोर्ड का गठन संकल्प संख्या-1197 (दे०चि०) दिनांक-25.11.2003 द्वारा किया गया है।

उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में बिहार राज्य औषधीय पादप बोर्ड की प्रथम बैठक दिनांक - 10/2/2004 में औषधीय पादप बोर्ड को सुदृढ़ एवं सुव्यवस्थित करने हेतु राज्य औषधीय पादप बोर्ड की उप-समिति का गठन करने का निर्णय लिया गया है। इस आलोक में राज्य औषधीय पादप बोर्ड की उप समिति-सह-परियोजन मूल्यांकन समिति का गठन निम्न प्रकार किया जाता है :-

1. निदेशक (दे.चि.) - अध्यक्ष, 2. उप निदेशक (होमियो)-सदस्य संयोजक, 3. उप निदेशक (आयुर्वेद) -सदस्य, 4. उप निदेशक (यूनानी)-सदस्य, 5. प्राचार्य, राजकीय आयुर्वेद कॉलेज, पटना/ राजकीय तिब्बी कॉलेज, पटना/रा०आर०बी०टी०एस० होमियो मेडिकल कॉलेज, मुजफ्फरपुर द्वारा प्राधिकृत औषधीय पादप विषय की विशेष जानकारी रखने वाले प्रत्येक कॉलेज से एक-एक अध्यापक-कुल तीन सदस्य - सदस्य, 6. उप निदेशक, वन एवं पर्यावरण विभाग, जो सचिव/निदेशक (जिन्हें विभागाध्यक्ष की शक्ति प्रदत्त हो) द्वारा प्राधिकृत किया गया हो - सदस्य, 7. उप निदेशक (बागवानी)-सदस्य, 8. उप निदेशक (कृषि विभाग)-सदस्य, 9. आयुर्वेदिक/यूनानी/ होमियोपैथी के क्षेत्रीय अनुसंधान विभाग के एक-एक विशेषज्ञ प्रतिनिधि - सदस्य,

इस समिति के कार्य मुख्यतः निम्न होंगे :-

क. राज्य में उपलब्ध औषधीय पौधों की पहचान, सूचीकरण एवं परिमापन। ख. औषधीय पौधों की खेती एवं संरक्षण को बढ़ावा देना। ग. औषधीय पौधा उगाने, एकत्र

करने विपणन एवं व्यवहार करने वालों में समन्वय स्थापित करना और उत्पादों की खेती, भंडारण, परिवहन और विपणन के लिए सहायता उपलब्ध करना । घ. औषधियों पौधों के विकास के लिए योजनाओं और कार्यक्रमों से संबंधित् नीति संबंधी मामलों पर संबंधित विभागों/संगठनों/ राज्यों को आवश्यक सूचना एवं परामर्श उपलब्ध कराना । ङ राज्य में औषधीय पौधों की कृषि के लिए बेहतर तकनीक उपलब्ध कराना, उत्पादों की गुणवत्ता एवं विश्वसनीयता को बढ़ाने के लिए विपणन की प्रभावकारी व्यवस्था विकसित करना । च. औषधीय पौधों की कृषि को बढ़ावा देने हेतु प्रचार-प्रसार कार्य तथा उत्पादकों के लिए उत्पादन - ड. नई तकनीक के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करना । छ. वैज्ञानिक, तकनीकी अनुसंधान कार्य करना एवं राज्य की जलवायु के अनुरूप औषधीय पौधों की पहचान कर उनकी उन्नत कृषि के लिए उचित तकनीक विकसित करना । ज. खेती एवं गुणवत्ता नियंत्रण के लिए प्रोटोकॉल विकसित करना । झ. राष्ट्रीय औषधीय पादप बोर्ड एवं अन्य राज्यों के अधीन गठिन पादप बोर्ड तथा बिहार राज्य औषधीय पादप बोर्ड / समिति के समन्वय एवं मार्गदर्शन/ परामर्श प्राप्त कर राज्य में औषधीय पौधों की कृषि को उन्नत कृषि का रूप देना । ञ. अन्य संबंधित कार्य को राज्य औषधीय पादप बोर्ड द्वारा अनुशंसित किया जाय ।

मध्य प्रदेश

नेशनल एकेडमी ऑफ पंचकर्म रिसर्च के तत्वावधान में उज्जैन में पंचकर्म प्रसंग 2006 के अन्तर्गत सप्तदिवसीय पंचकर्म प्रशिक्षण कार्यशाला

9 से 15 अप्रैल 2006

भारत एवं अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त पंचकर्म विशेषज्ञों द्वारा निम्नानुसार विषय पर व्याख्यान एवं प्रत्यक्ष कर्माभ्यास (L.C.D.) प्रोजेक्टर तथा O.H.P. प्रोजेक्टर के दृश्य-श्रव्य माध्यम से हिन्दी एवं अंग्रेजी में प्रस्तुतीकरण ।

* आयुर्वेद की संशमन, संशोधन चिकित्सा, निदान, औषध द्रव्यों की कार्मुकता पर संक्षिप्त व्याख्यान ।
* रोग-प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने, रसायन कल्प एवं दिनचर्या में पंचकर्म का वैशिष्ट्य ।
* पंचकर्म का सैद्धातिक पक्ष एवं निम्नानुसार पंचकर्म क्रियाओं का उनके विभेद सहित दिग्दर्शन कार्मुकता व्यापद एवं सावधानियों, योग्य-अयोग्य पर विस्तृत मार्गदर्शन -

  एकांग-सर्वांग अभ्यंग-स्वेदन, आभ्यंतर स्नेहपान, वाष्प स्वेदन पत्रपिंड, नाड़ी स्वेद, शष्टिकशालिक स्वेद, शिरोधारा, कटिबस्ति, उर:बस्ति, अक्षितर्पण ।

  वमन-विरेचन, संसर्जनक्रम, अनुवासन-आस्थापन बस्ति, नस्य, रक्तमोक्षण (जलौकावचारण) ।
* जिज्ञासाओं का समाधान, चर्चा-परिचर्चा, अद्यतन शोध संबंधी जानकारियाँ ।
* पंचकर्म इन्जीनियरिंग /इंस्ट्रुमेंट्स, आउट डोर, इनडोर, पंचकर्म सेंटर की रूपरेखा ।
* जीर्ण व्याधियों से मुक्ति पाये पंचकर्म उपचारित रोगियों का प्रस्तुतीकरण तथा उनसे सीधी चर्चा ।
* विशिष्ट चिकित्सा में अग्निकर्म-क्षारसूत्र पर संक्षिप्त व्याख्यान ।
* इलेक्ट्रोत्रिदोष ग्राम तथा आयुर्वेदीय साफ्टवेयर से निदान की आधुनिक तकनीक की जानकारी ।

  प्रदीक्षा राशि रू० 4000/- जिसमें सात दिन को निम्नानुसार व्यवस्था सम्मिलित है ।
* घोषित पाठ्यक्रम के अनुसार पंचकर्म के समस्त व्याख्यान-प्रत्यक्ष कर्माभ्यास की सम्पूर्ण मुद्रित पाठ्यसामग्री, लेखन सामग्री के साथ आकर्षक किट दिया जायेगा ।
* महिला पुरुषों के पृथक्-पृथक् डारमेंट्री में रहने की सुविधा रहेगी ।
* भोजन एवं चाय 9 अप्रैल की शाम से प्रतिदिन दोनों समय उपलब्ध होगा ।
* प्रशिक्षण पश्चात् 16 अप्रैल को नेशनल कान्फ्रेंस के विशिष्ट व्याख्यानों के कार्यक्रम में नि:शुल्क पंजीयन । आकर्षक प्रमाण-पत्र समारोह पूर्वक प्रदान किया जायेगा ।
* प्रतिदिन प्रात: 5-7 योग शिविर में स्वैच्छिक भाग ले सकते हैं ।
* नापार सदस्यों को प्रदीक्षा राशि में विशेष रियायत ।

नेशनल एकेडमी ऑफ पंचकर्म एण्ड रिसर्च (NAPAR) की एक दिवसीय नेशनल पंचकर्म कांफ्रेस - 16 अप्रैल

2006 पंजीयन राशि 150 रु० जिसमें विशिष्ट अतिथि व्याख्यान होंगे ।

विस्तृत विवरण एवं कार्यक्रम हेतु इस पते पर सम्पर्क करें :-

वैद्य मणीन्द्र कुमार व्यास
कार्यक्रम समन्वयक पंचकर्म प्रसंग 2006
36 सुभाष नगर उज्जैन, मध्यप्रदेश
फोन न० - 0734-2520039/मो०-9425092343
email - vyas@sify.com/dr mkyas 1955@sancharnet.in

इटारसी

सम्पूर्ण देश के लिए यह गौरवपूर्ण है कि श्री श्रेत्र श्रवणबेल गोला (कर्नाटक) में स्थित विश्व प्रसिद्ध अतिशयकारी गोम्मटेश्वर भगवान बाहुबली की सत्तावन फुट उत्तुंग विशाल पवित्र मूर्ति के द्वादशवर्षीय महामस्तकाभिषेक का भव्य आयोजन 4 फरवरी से 19 फरवरी 2006 तक होने जा रहा है, ऐसे अपूर्व अवसर पर बृहत् राष्ट्रीय विद्वत् सम्मेलन के आयोजन की परम्परा विगत् अनेक वर्षों से रही है। इस वर्ष फरवरी 2006 में आयोजित इस महोत्सव के पुनीत अवसर पर महोत्सव की पूर्व बेला में दिनांक 28 दिसम्बर 2005 से 1 जनवरी 2006 तक पंच दिवसीय अखिल भारतीय जैन विद्वत् सम्मेलन का गरिमापूर्ण आयोजन श्रवण बेला गोला में किया गया जिसमें सम्पूर्ण देश के लगभग 150 जैन एवं जैनेत्तर विद्वानों ने भाग लेकर सम्मेलन को गौरवान्वित किया ।

इस राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी में इटारसी नगर के जैन धर्म के विद्वान एवं यशस्वी आयुर्वेद चिकित्सक **वैद्यराज आचार्य राजकुमार जैन** ने भी भाग लिया तथा आयुर्वेद के विकास में जैन मनीषियों का योगदान विषय पर अपना शोध पत्र प्रस्तुत किया । संगोष्ठी के समापन सत्र में उन्हें शाल एवं श्रीफल से सम्मानित कर भगवान बाहुबली का प्रतीक चिन्ह भेंट किया गया । इस प्रकार आचार्य जैन ने राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी में इटारसी नगर का प्रतिनिधित्व कर नगर का गौरव बढ़ाया । आचार्य जैन पूर्व में भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा गठित भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् (नई दिल्ली) में सचिव के पद पर कार्य करते हुए आयुर्वेद के विकास एवं आयुर्वेद की शिक्षा के स्तर के समुन्नयन हेतु सक्रिय भूमिका निर्वाह कर चुके हैं, वर्तमान में भी आप सतत साहित्य साधना एवं रोगियों की सेवा में संलग्न हैं ।

उपर्युक्त राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी में जैन धर्म एवं श्रमण संस्कृति की प्राचीनता, व्यापकता, तीर्थंकर परम्परा एवं उसका वैशिष्ट्य, भगवान बाहुबली और उनसे संबंधित कला, संस्कृति, इतिहास ओर विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध प्राचीन एवं अर्वाचीन (आधुनिक) साहित्य तथा श्रुतकेवली भद्रबाहु का दिव्यावदान सहित श्रमण संस्कृति को दक्षिण भारत का योगदान आदि जैन धर्म-दर्शन-संस्कृति-साहित्य से संबंधित अनेक विषयों पर देश के अग्रणी विद्वानों के द्वारा बहु आयामी शोध-पत्र प्रस्तुत किये गये जिन पर चिंतन-मनन परक परिचर्चाओं का लाभ समागत समस्त विद्वानों एवं श्रोताओं ने लिया । इस अवसर पर समस्त विद्वानों ने श्रवणबेल गोला के मंदिरों एवं वहाँ स्थित चंद्रगिरि-विन्ध्यगिरि पर्वत की शिलाओं पर उत्कीर्ण शिला लेखों जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं के अवलोकन-अध्ययन का भी लाभ उठाया ।

नयी दिल्ली

बाबा मंगलदास आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषाधालय का शुभारम्भ

गरीब रोगियों की मुफ्त चिकित्सा और आयुर्वेद के प्रचार-प्रसार की भावना को ध्यान में रखकर 'बाबा मंगलदास आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय' का शुभारंभ यमुनापार साउथ गणेश नगर में दिनांक 29 जनवरी, 2006 दिन को किया गया । जिसका उद्घाटन माननीय डा०ए०के० वालिया (वित्त एवं शहरी विकास मंत्री, दिल्ली सरकार) ने किया जिसकी स्थापना वैद्य पं० ओमप्रकाश द्विवेदी आचार्य ने की ।

प्रेस को जारी बयान में वैद्य ओम प्रकाश द्विवेदी आचार्य ने कहा कि गरीब रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा हेतु 'बाबा मंगलदास आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय' की स्थापना की गई है । आयुर्वेदिक चिकित्सा प्रणाली ही एक ऐसी पद्धति है जो सस्ती और साइड इफेक्ट से रहित है ।

इसका प्रचार-प्रसार ज्यादा से ज्यादा होना चाहिए ताकि आम नागरिक को इसका लाभ प्राप्त हो सके । इस अवसर पर बाबा मंगलदास जी महाराज ने मुख्य अतिथियों को सरोपा भेंटकर आशीर्वाद प्रदान किया ।

बाबा मंगल दास आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय का शुभारंभ करते हुए डा.ए.के. वालिया (वित्त एवं शहरी विकास मंत्री, दिल्ली सरकार

मुख्य अतिथि के रूप में माननीय डा०ए.के. वालिया ने वैद्य श्री द्विवेदी द्वारा किये गये इस कार्य की सराहना की और दिल्ली के हर अस्पताल में आयुर्वेदिक डाक्टर बैठाने की घोषणा भी की । डा०वालिया ने कहा कि जब रोगी अंग्रेजी दवा से ऊब जाता है तो विकल्प में आयुर्वेद की तरफ भागता है । इसलिए आयुर्वेद को मुख्य चिकित्सा पद्धति बनाना है और अंग्रेजी पद्धति को विकल्प का रूप देना है तभी रोगियों का भला होगा ।

इस अवसर पर 'फाइनल डाइग्नोसिस प्रा. लि.' की तरफ से श्री भानुप्रताप पाण्डे ने निःशुल्क सुगर, कोलेस्ट्राल, बी.पी. चैकअप किया जिसमें लगभग 40 रोगियों ने भाग लिया ।

उद्घाटन समारोह में क्षेत्रीय निगमपार्षद माननीय श्री संजीव चौहान, वरिष्ठ पत्रकार श्री प्रदीप महाजन ने भी अपने विचार व्यक्त किये । इस समारोह में भा.ज.अ. सोसायटी के महामंत्री ठा. राजेन्द्र सिंह, डा. आर.पी. सिंह, संजय चौधरी, संजय चौहान, वैद्य कामला रानी, अमित मिश्रा, रघुवीर शरण भाटिया, वैद्य कृष्णनारायण शुक्ला, दलजीत शर्मा, अनिल वर्मा, राजू गुप्ता, प्रताप सिंह, सत्यदेव शर्मा, त्रिलोकचन्द, नूर हसन, हकीम मुमताज आदि सैंकड़ों लोगों ने भाग लिया । उद्घाटन के पश्चात् जलपान आदि की भी व्यवस्था की गई ।

उत्तरांचल

उत्तरांचल आयुर्वेदिक चतुर्थ वर्गीय राज्य कर्मचारी संघ (अखिल भारतीय राज्य कर्मचारी महासंघ से सम्बद्ध) जनपद शाखा उत्तरकाशी (उत्तरांचल)

दिनांक 10/1/06 को आयुर्वेदिक चतुर्थ वर्गीय राज्य कर्मचारी संघ की राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय पंचकर्म योग कक्ष में एक बैठक अध्यक्ष श्री हर्षपति जोगेला की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई जिसमें नवीन कार्यकारिणी का विस्तार किया गया । नवीन कार्यकारिणी के पदाधिकारी निम्नवत हैं :-

संरक्षक, श्री परमानन्द नौटियाल, रा.आ.चि., मुख्यालय, उत्तरकाशी, अध्यक्ष, श्री हर्षपति जोगेला, रा.आ. चि., मु०उत्तरकाशी, वरिष्ठ उपाध्यक्ष, श्री बुद्धि सिंह पडियार, रा.आ.चि., मुख्यालय, उत्तरकाशी, महिला उपाध्यक्ष, श्रीमती विमला देवी, कार्यालय, क्षे.आ. एवं यू.अधि.उ.का., सचिव, श्री अजय प्रकाश नैथानी, रा.आ.चि., मुख्यालय, उत्तरकाशी, कोषाध्यक्ष, श्री अशोक कुमार, कार्यालय, क्षे.आ.एवं यू. अधि.उ.का., मुख्य सलाहकार 1. श्री आजाद प्रसाद, रा.आ. चि., भंकाली । 2. श्री हरिकृष्ण, रा.आ.चि. मुख्यालय, उत्तरकाशी, 3. श्री दयाराम समवाल, रा.आ.चि., साल्ड, उपाध्यक्ष, 1. श्री सत्यवीर सिंह, रा.आ.चि., साल्ड, 2. श्री लाल सिंह राठौर, रा.आ.चि., मोल्टाड़ी, 3. श्री बुद्धि सिंह कैतुरा, रा.आ.चि., चौर, 4. श्री चन्द्रकान्त धिल्डियाल, रा. आ.चि., भखाड़ी, सह-सचिव, श्री भूषण सिंह नेगी, कार्यालय, क्षे.आ.एवं यू.अधि.उ.का., प्रचार मंत्री :- 1. श्री त्रिलोक सिंह, कार्यालय, क्षे.आ. एवं यू.अधि.उ.का., 2. श्रीमती कामला देवी, रा.आ.चि., मुख्यालय, उत्तरकाशी, 3. श्रीमती विन्द्रा देवी, रा.आ.चि., मुख्यालय, उत्तरकारी, आडिटर, 1. श्री सूरज लाल, रा.आ.चि., मुख्यालय मनेरी, 2. श्री सुन्दर लाल डिमरी, रा.आ.चि. गोरसाली, उप संगठन मंत्री, 1. श्री प्रेम लाल, रा.आ.चि., कुमारकोट, 2. श्री गजेन्द्र सिंह चौहान, रा.आ.चि., कुथनौर, 3. सुरेन्द्र सिंह कोतवाल, रा.आ.

चि., कण्डारी ।

मांग-पत्र

दिनांक 10/1/06 को राजकीय आयुर्वेदिक चतुर्थ वर्गीय संघ की बैठक उत्तरकाशी के पंचकर्म योग कक्ष में श्री हर्षपति जोगेला की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई । सभा का संचालन श्री अजय प्रकाश नैथानी ने किया । बैठक में सभी सदस्यों ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये एवं संघ को अपनी मांगों के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किये ।

1. शासनादेशानुसार समस्त चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों को वर्दी दी जाय ।
2. कर्मचारियों के भविष्य निधि खातों में प्रविष्टियों का कार्य तुरन्त पूर्ण किया जाय ।
3. प्रत्येक वर्ष माह मार्च में कर्मचारियों को जी.पी.एफ. स्लिप दी जाय ।
4. तीन वर्ष की नियमित सेवा उपरान्त कर्मचारियों का स्थाईकरण किया जाय ।
5. 8 वर्ष, 14 वर्ष, 19 वर्ष एवं 24 वर्ष की संतोषजनक सेवा पर सलेक्शनग्रेड व प्रोन्नत वेतनमान प्रदान किया जाय ।
6. वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की जाय ।
7. शीतकाल में कोयला भत्ता प्रदान किया जाय ।

मधुमेह में जड़ी-बूटियां लाभकारी है

राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय, राजावाला, देहरादून में एक दिवसीय निःशुल्क मधुमेह जड़ी-बूटी चिकित्सा शिविर का आयोजन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ । इस अवसर पर एक मधुमेह-संगोष्ठी का भी आयोजन किया गया । संगोष्ठी में प्रभारी चिकित्सा अधिकारी वैद्य श्याम कुमार गुप्ता ने मधुमेह रोगियों को सम्बोधित करते हुए बताया कि विश्व में सर्वाधिक मधुमेह रोगी भारत में हैं । दिन प्रतिदिन मधुमेह रोगियों की बढ़ती संख्या चिन्ता का विषय है । वैद्य गुप्ता ने कहा कि मधुमेह प्रमेह का जीर्ण रूप है । इसका मूल कारण शरीर में इन्सुलिन का अभाव अथवा सापेक्ष कमी का होना मूल कारण है । मात्रा से अधिक बार-बार अविल मूत्र त्याग ही प्रमेह है । बार-बार मूत्र त्याग प्यास अधिक लगना, शरीर का भार कम होते जाना शारीरिक दुर्बलता आदि इस रोग के प्रमुख कारण हैं ।

आयुर्वेद में वर्णित उपदेशों का पालन करते हुए यदि मनुष्य अपनी जीवन शैली में परिवर्तन कर ले और कुछ लाभकारी परीक्षित एवं अनुभूत जड़ी-बूटियों एवं आयुर्वेदिक औषधियों का निरंतर सेवन कर ले तथा आहार-विहार में लाभकारी सूत्रों का परिचालन कर ले जैसे प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में सूर्योदय से पूर्व जागना फिर आठ अंगुली जल पान करना दैनिक कर्म से निवृत्त हो टहलता, व्यायाम करना, योग, ध्यान एवं प्राणायाम करना जीवन का अभिन्न अंग बना ले तथा नियमित रूप से करे तो लाभ होगा । मधुमेह रोगी को आहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए । प्रातः स्वल्पाहार में अंकुरित मूंग, मोठ और मेथी का सेवन करना चाहिए गेहूँ के ज्वारों का स्वरस, करेला स्वरस, हल्दी स्वरस, गिलोय स्वरस, बेल पत्र, तुलसी पत्र, जामुन पत्र का स्वरस आदि नियमित सेवन करना लाभकारी मधुमेह नियंत्रण के सूत्र हैं । फलों में अमरूद, सेब, जामुन लाभकारी है ।

कुछ पारंम्परिक चिकित्सा सूत्रों में पांच बेल पत्र पांच तुलसी पत्र, पांच दक्षिणी मिर्च का सेवन लाभकारी है । केदार कड़वी जड़ी-बूटी, गुड़मार तथा विजयसार मधुमेह नियंत्रण में सहायक सिद्ध हुए हैं । एक चम्मच मेथी दाना को एक कप पानी में सायं भीगो कर रखना चाहिए तथा प्रातः काल पांच पत्र सदाबहार का चबाकर अंकुरित मेथी दाना चबाना चाहिए । बचा हुआ पानी पीना चाहिए । विजयसार जड़ी-बूटी को पीने वाले पानी में डालकर रखना चाहिए तथा यही अभिभूत जल पीना चाहिए ।

शास्त्रोक्त औषधियों में गज केसरी, शिलाजित्वादिवटी तथा बसंत कुसुमाकर रस का नियमित प्रयोग मधुमेह नियंत्रण हेतु लाभकारी सिद्ध होते हैं ।

आयुर्वेद को राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति घोषित करने के लिए सभी आगे आयें

भारतीय चिकित्सा पद्धति अर्थात् आयुर्वेद को गौरवपूर्ण राष्ट्रीय चिकित्सा पद्धति का दर्जा देने की मांग के लिए तथा केन्द्र में पृथक आयुर्वेद मंत्रालय स्थापना एवं पृथक पर्याप्त बजट की मांग को उठाने के लिए सभी

आयुर्वेदाचार्य चिकित्सक बन्धु छात्र-छात्रायें सभी एक मंच पर एक जुट हों जो वह लड़ाई लड़ना चाहते हों वे निम्न पते पर सम्पर्क

वैद्य श्याम गुप्ता
राष्ट्रीय अध्यक्ष, आयुर्वेद उत्थान भारती समिति (रजि.)
धन्वन्तरि कुटी (साईं आश्रय)
2ए काली मंदिर इन्क्लेव, जी.एम.एस.मार्ग
पोस्ट कांवली, देहरादून (उत्तरांचल)

गुजरात

अर्श भगंदर रोगों में क्षारसूत्र चिकित्सा--परिसंवाद

गुज.प्र.आ.सम्मे.द्वारा दिनांक 8/1/06 रविवार के दिन गुजरात के करीब 400 से अधिक वैद्य एवं आयुर्वेद महाविद्यालय के छात्र-छात्रओं की उपस्थिति में सरदार पटेल विधासभा हॉल, एलीसब्रिज, अहमदाबाद में अर्श भगन्दर रोगों में क्षारसूत्र चिकित्सा एवं अद्यतन नवीन उपकरणों द्वारा शल्य कर्म का परिसंवाद एवं प्रत्यक्ष निर्देशन करीब 20 से अधिक रूग्णों पर Visual Audio द्वारा चिकित्सा कर्मों का Live Demonstration सुन्दर व्याख्यानों के साथ सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया।

गुजरात प्रदेश आयुर्वेद सम्मेलन

अर्श भगंदर क्षार सूत्र चिकित्सा-परिसंवाद समारोह का दीप प्रज्जवलित करके उद्घाटन करते हुये श्री रसिक खमार, डा० रमेश पटेल, आचार्य वैद्य कस्तुरेजी

इस समारोह का उद्घाटन श्री रसिक खमार, अध्यक्ष, दीनदयाल उपाध्याय ट्रस्ट - साधना प्रकाशन ट्रस्ट के कर-कमलों द्वारा, आचार्य वैद्य श्री कस्तुरे साहब की अध्यक्षता में संपन्न हुआ।

इस समारोह में मंच पर गुज.प्र.आ.सम्मे. के उपाध्यक्ष वैद्य श्री टी.एल.स्वामी साहब, प्रधानमंत्री वैद्य श्री देवे शाह, केन्द्रीय संगठन मंत्री, वैद्य हरिनाथ झा, संगठन मं वैद्य विक्रम उपाध्याय, उपाध्यक्ष श्री वैद्य एम.एम. पंड्या साहब, कोषाध्यक्ष वैद्य नरहरि दवे, मंत्री श्री वैद्य दिनकर आणेकर, मंत्री श्री वैद्य सीमा बेन गुप्ता, उपाध्यक्ष, वैद्य एल. पी. नावडीया, क्षेत्रीय मंत्री वैद्य विपुल मोदी, अन्वेषक वैद्य दिलीप मेहता, कार्यकारी सदस्य वैद्य भरत देवमुरारी, वैद्य ईश्वर प्रजापति, वैद्य धीरज मोदी, वैद्य एम.ओ. त्रिवेदी, वैद्य भरत भडीयादरा, वैद्य बकुल शर्मा, वैद्य गणु दवे, विशे आमंत्रित कार्यकर्ता श्री महेश पटेल, बाबू भाई, श्री बी.सी. भट्ट, श्री पी.पी. मिस्त्री, श्री के.सी. पटेल तथा अन्य मित्रों ने इस समारोह को सफलता दिलाने में भरपूर सहयोग दिया।

अर्श भगंदर क्षार सूत्र चिकित्सा परिसंवाद समारोह में उपस्थित विद्वत् वैद्य गण।

इस समारोह के Live Demonstration प्रस्तुत करने वाले चिकित्सक वैद्य श्री टी.एल. स्वामी, वैद्य देवेन्द्र शाह (क्षार सूत्र चिकित्सक), वैद्य विपुल मोदी, वैद्य एल. पी. नावडीया, वैद्य भरत देवमुरारी ने क्षार सूत्र चिकित्सा प अपना व्याख्यान एवं Live Demonstration प्रस्तुत कर सभी दर्शकों को प्रभावित किया। गुज. के अन्य ख्यातनाम शल्य चिकित्सकों (सर्जन) डा० रमेश पटेल, डा. संज राजपूत, डा.के.एस. पटेल, डा.डी. कापडीया, डा. विरे शाह, डा. विरेन पटेल ने आधुनिक शल्य-कर्म द्वारा अर्श भगंदर रोगों में चिकित्सा कार्य पर Visual Audio द्वारा व्याख्यान एवं Live Demonstration प्रस्तुत कर सभी वैद्य

गण को लाभान्वित किया ।

एक दिवसीय इस समारोह में विशेष रूप से आमंत्रित डा० करिश्मा शाह के व्याख्यान का लाभ प्राप्त हुआ । पूरे दिन सुबह जलपान, दोपहर का भोजन, सायं का जलपान के पश्चात् गुज.प्र.आ.सम्मे. के उपाध्यक्ष श्री वैद्य टी.एल. स्वामी एवं वैद्य श्री एस.पी. नावडीया ने सभी श्रोताओं का आभार प्रकट किया ।

अहमदाबाद के डा० नोतानी का निधन

अहमदाबाद के डा० हरीश जी नेतानी (रीडर-आयु. महाविद्यालय, लोद्रा एन.जी.) पूर्व डायरेक्टर (MPIYNER) गुज.आयु.युनि. जामनगर का देहांत जामनगर में 5th Internationl Conference on Ayurved के समय दि. 6/1/06 के दिन हृद् गति बंद हो जाने के कारण दुःखद निधन हुआ । गुज. प्र. आयु. सम्मे. की ओर से दुःख प्रस्ताव प्रारित कर मौन रखकर सद्गत को श्रद्धांजलि अर्पण की गई ।

वैद्य मणिभाई ब्रह्मभट्ट-बड़ोदरा का निधन

बड़ोदरा शहर के ख्यातनाम वैद्य श्री मणिलाल के. ब्रह्मभट्ट का दि० 15/1/06 रविवार को बड़ोदरा में दुःखद निधन हुआ । वैद्य मणिलाल गुज. के कर्मठ और विद्वान वैद्यों में गिने जाते थे । उनके निधन से गुज. के सभी वैद्यों को भारी दुःख पहुंचा है । गुज.प्र.आ. सम्मे. की ओर से उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई ।

वैद्य चेतन के.सोनी द्वारा स्थापित
"धन्वन्तरि आयुर्वेदिक सार्वजनिक हॉस्पिटल"

हातोद (गुजरात) के सुप्रसिद्ध वैद्य चेतन सोनी द्वारा त्रि-दिवसीय "पलाश वृक्ष आमलक रसायण" पर कार्यशाला दि. 18-19-20 फरवरी 2006 वैद्य एवं आयुर्वेद प्रेमियों के लिए आयुर्वेद के महान ग्रंथ "अष्टांग हृदय" के रसायन पाठ पर आधारित पलाश वृक्ष आमलक रसायन का प्रत्यक्ष निर्देशन निर्माण एवं उसका उपयोग बताने तथा समझाने के लिये कार्यशाला का निःशुल्क आयोजन किया गया है ।

National Symposium on Ayurved : Management of Musculokeletal Disorders.

गु.प्र.आ.सम्मे. के पदाधिकारी गण, उपाध्यक्ष वैद्य टी.एल. स्वामी, संगठन मंत्री, वैद्य हरिनाथ झा एवं वैद्य विक्रम उपाध्याय, मंत्री श्री वैद्य दिनकर आणेकर, वैद्य भरत देवमुरारी, वैद्य बकुल शर्मा, वैद्य पटेल, प्रधानमंत्री वैद्य देवेन्द्र शाह तथा 40 से अधिक वैद्य मित्रों ने पुणे में आयोजित National Symposium on Ayurved Management of Musculokeletal Disorders' Dec. 2005 में हिस्सा लिया । गुज.प्र.आ. सम्मे. के प्रधानमंत्री एवं उपाध्यक्ष वैद्य टी.एल.स्वामी (Supt. Govt. Maniben Ayu. Hospital, Ahmedabad) का आयुर्वेद में विशेष योगदान के संबंध में प्रमाणपत्र ट्राफी और फुलमाला, शॉल प्रदान कर सम्मानित किया गया ।

अर्श भगंदर क्षार सूत्र चिकित्सा परिसंवाद समारोह में उपस्थित विद्वत् वैद्य गण ।

श्री बी.के.मोहन, वैद्य देवेन्द्र शाह, वैद्य टी.एल. स्वामी, प्रोफेसर आर.एच. सिंध (V.C.) राज.आयु. युनि. जोधपुर, वैद्य विलाश नाजल, वैद्य हरिनाथ झा, वैद्य विक्रम उपाध्याय, वैद्य दिनकर आणेकर, वैद्य पटेल, वैद्य बकुल शर्मा, वैद्य भरत देवमुरारी

|| वैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन ||

P.Cd.		भाषा	
9801	अभिनव शरीर	हिन्दी	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9804	अभिनव शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9807	अन्त्यतिसार	हिन्दी	
	रामकृष्णी-कांथसंग प्रकरणानि		
9810	अम्लपित्त प्रकरण	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9813	AROGYA PRAKASH	ENG	
9816	आरोग्य प्रकाश:	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9819	अष्टांग संग्रह की वनौषधियाँ एवं वर्गीकरण	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9822	अष्टांग संग्रह	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9821	बिहार की वनस्पतियाँ	हिन्दी	
9822	अष्टांग संग्रह (शरीर, निदान चिकित्साकल्पसिद्ध स्थान)	हिन्दी	पं. वागभट्ट
9825	अष्टांग संग्रह सूत्र स्थान	हिन्दी	पं. लालचन्द्र शास्त्री
9828	अष्टांग संग्रह उत्तरस्थान	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9831	आत्ययिक चिकित्सा	हिन्दी	
9834	औषधि विज्ञान शास्त्र	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
9833	आयुर्वेद अनुसंधान दर्शिका	हिन्दी	
9837	आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान	हिन्दी	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तुरे
9840	आयुर्वेद सार संग्रह	हिन्दी	संकलित
9843	आयुर्वेदीय औषध सेवन विधि	हिन्दी	संकलित
9846	आयुर्वेदीय हितोपदेश	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9849	आयुर्वेदीय क्रिया शारीर	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9852	आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9855	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9858	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9861	BAIDYANATH BOOK OF AYURVED KNOWLEDGE	ENG.	
9864	BAIDYANATH THERAPEUTIC GUIDE	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9867	BASIC PRINCIPLE OF AYURVEDA RESEARCH	ENG.	SRI O.P. SHARMA AND R.P. SHAH
9850	बिहार की आदिवासी एवं जड़ी-बूटियाँ	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9868	उत्तराखण्ड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9870	भारतीय रस शास्त्र	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9871	बेदी वनस्पति कोष	हिन्दी	रमेश बेदी
9873	चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन	हिन्दी	डा. ज्योतिर्मित्र आचार्य
9876	चर्मरोग चिकित्सा	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9879	DIGESTION & METABOLISM IN AYURVED	ENG	DR. C. DWARKANATH
9882	द्रव्यगुण विज्ञानम् (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9885	द्रव्यगुण विज्ञानम् (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य

P.Cd.		भाषा	
9888	किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9891	मानस रोग विज्ञान	हिन्दी	श्री बालकृष्णजी अमरजी
9894	MEDICINAL FLORA OF GARHWAL HIMALAYAS	ENG.	DR. MAYARAM UNIYAL
9897	मोटापन कम करने के उपाय	हिन्दी	श्री मधुकर बहुवली
9901	नेत्र चिकित्सा	संस्कृत	डा. बालकृष्ण शिवराम
9904	नेत्र रोग विज्ञान	हिन्दी	
9907	निदान चिकित्सा हस्तामलक (प्रथम खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9910	निदान चिकित्सा हस्तामलक (द्वितीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9913	निदान चिकित्सा हस्तामलक (तृतीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9915	निदान चिकित्सा हस्तामलक (चतुर्थ खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजीत राय देसाई
9919	पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9922	पदार्थ विज्ञानम्	हिन्दी	[illegible]
9925	परिभाषा शब्दार्थ शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9920	PROBLEMS OF AYURVEDIC RESEARCH	ENG	SRI S.K. [illegible]
	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञानम् (पूर्वार्द्ध संस्करण)	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9924	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञानम् (उत्तर संस्करण)		
9927	[illegible]	हिन्दी	[illegible]
9940	भस्म-भस्म सेवन विधि	हिन्दी	पं. [illegible] वैद्य
9943	संक्रामक रोग विज्ञान	हिन्दी	[illegible]
9948	SCIENCE AND PHILOSOPHY OF INDIAN MEDICINES	ENG.	SRI K.K. GUPTA
9949	शार्ङ्गधर संहिता	हिन्दी	आचार्य राधाकृष्ण पाराशर
9952	सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी
9953	शरीर क्रिया विज्ञान	हिन्दी	
9954	THERAPEUTIC GUIDE TO AYURVEDIC MEDICINES	ENG.	PT. RAMRAKSHA
9958	TREATISE ON 30 BAID. AYUR. PRODUCTS	ENG.	PT. DURGA PD
9961	त्रिदोष तत्व विमर्श	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9964	यूनानी चिकित्सा सार	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9967	यूनानी सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9970	उपचार पद्धति और पथ्य	हिन्दी	[illegible]
9973	वैद्य सहचर	हिन्दी	[illegible]
9976	वनौषधि शतक	हिन्दी	[illegible]
9979	चरक स्मृति ग्रंथ	हिन्दी	[illegible]
9980	यौवन विज्ञान एवं [illegible]		

सम्पादकीय

केन्द्रीय बजट एवं आयुर्वेद

वर्ष 2006-07 के लिए भारत के वित्तमंत्री, श्री पी. चिदम्बरम् जो बजट पेश किया है, वह यद्यपि कुछ अर्थों में सराहनीय है, किन्तु पूर्णत: सकारात्मक नहीं है। आयुर्वेद एवं अन्य देशी चिकित्सा पद्धतियों को निराशा हाथ लगी है। भारत के स्वास्थ्य बजट (एलोपैथी) में वर्ष 2005-2006 में संशोधित बजट 9675.83 करोड़ रुपये थे जो बढ़कर वर्ष 2006-07 में 12545.88 करोड़ रुपये हो गये हैं। इसमें आयोजना मद में 11289.62 करोड़ रुपयों एवं गैर आयोजना मद में 1256.26 करोड़ रुपयों का प्रावधान रखा गया है।

आयुर्वेद, योग, प्राकृतिक चिकित्सा, यूनानी, सिद्ध और होमियोपैथी (आयुष) हेतु वर्ष 2005-2006 के लिए संशोधित बजट 364.00 करोड़ रुपये थे जो वर्ष 2006-07 में बढ़कर 447.89 करोड़ रुपये हो गये हैं। अर्थात् मात्र 83.89 करोड़ रुपयों की वृद्धि की गयी है। इसके विपरीत एलोपैथी के मद में 2870.05 करोड़ रुपये की वृद्धि की गयी है। यदि प्रतिशत की भाषा में हम बात करें, तो जहां एलोपैथी के मद में 29.66% की वृद्धि की गयी है, वहाँ देशी चिकित्सा पद्धतियों में मात्र 23.04% की वृद्धि की गयी है। राष्ट्रीय स्तर पर आयुर्वेद सहित अन्य देशी चिकित्सा पद्धतियां काफी पिछड़ी हैं। सामाजिक न्याय का तकाजा है कि पिछड़ों को आगे बढ़ने के लिए अवसर दिये जायं। खेद है, भारत सरकार एलोपैथी एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों के बीच की खाई और चौड़ी कर रही है। हमारा सरकार से अनुरोध है कि एलोपैथी एवं अन्य चिकित्सा पद्धतियों के अन्तर को यथाशक्ति धीरे-धीरे कम की जाय। यदि केवल आयुर्वेद को लें तो स्थिति भयावह दिखलायी पड़ती है। वर्ष 2005-2006 के लिए आयुर्वेद के मद में संशोधित बजट 57.49 करोड़ रुपये का था जो वर्ष 2006-07 में बढ़कर 80.13 करोड़ रुपये हो गये हैं। यदि हम एलोपैथी के साथ आयुर्वेद की तुलना करें, तो आयुर्वेद के मद में किये जा रहे खर्च नगण्य हैं। एलोपैथी का मात्र 0.64% खर्चा आयुर्वेद पर किया जा रहा है। यह स्थिति असहनीय है। दिलचस्प बात यह है कि आयुर्वेद के मद में जो रकम आवंटित की गयी है, उसमें शामिल हैं - (1) राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर (2) केन्द्रीय आयुर्वेद एवं सिद्ध अनुसंधान परिषद् (3) गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय स्थित स्नातकोत्तर प्रशिक्षण एवं अनुसंधान संस्थान को देय अनुदान (4) राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नयी दिल्ली, (5) दिल्ली स्थित राष्ट्रीय आयुर्वेदिक अस्पताल एवं (6) आयुर्वेद अस्पताल, लोधी रोड, नयी दिल्ली।

सोचने की बात है कि इतने कम रुपयों में अनुसंधान कहां से होगा। केवल नियमित खर्च हो जाय, यही काफी है। हां, प्रसन्नता की बात है कि राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य योजना के तहत आवंटित राशि 6,553 करोड़ रुपयों से बढ़ाकर 8,207 करोड़ रुपये कर दिये गये हैं। इस योजना के तहत 1,000 प्रखण्डों से ज्यादा प्रखण्डों में सामुदायिक स्वास्थ्य-सेवा प्रदान की जायेगी और 200,000 से ज्यादा सामाजिक स्वास्थ्य विशेषज्ञ भाग लेंगे।

किसी भी राष्ट्र का स्तम्भ स्वस्थ एवं शिक्षित नागरिक होते हैं। दुर्भाग्यवश स्वास्थ्य के मामले में हमारे देश में कुल बजट का 2.50% भी खर्च नहीं होता है। उदाहरण के लिए वर्ष 2006-07 में सभी विभागों के लिए भारत सरकार का कुल बजट 563991.13 करोड़ रुपये आवंटित किये गये हैं जबकि एलोपैथी सहित सभी पद्धतियों के लिए मात्र 2.30% लगभग आवंटित किये गये हैं। यदि हम केवल आयुर्वेद को लें तो यह प्रतिशत कुल बजट का मात्र 0.014% आता है।

अत: हमारी भारत सरकार से मांग है कि आयुर्वेद के मद में कुल बजट का 1% रकम आवंटित की जाय एवं सम्पूर्ण स्वास्थ्य बजट में कम से कम पूर्ण बजट

का 7% प्रावधान रखा जाय । यदि हम स्वस्थ रहेंगे तो निश्चय ही राष्ट्र आगे बढ़ेगा । हम भारत के माननीय वित्त मंत्री पर विश्वास करते हैं एवं आशा करते हैं कि भविष्य में वे हमारे साथ न्याय करेंगे ।

चीन, भारत और मधुमेह

अबतक प्राप्त आंकड़ों से ऐसा लगता था कि मधुमेह के मामले में भारत सर्वाधिक अग्रणी देश है, किन्तु विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कराये गये ताजे अध्ययन से ऐसा ज्ञात होता है कि चीन भारत से आगे मधुमेह के क्षेत्र में भी बाजी मार लेगा । वर्ष 2000 में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने चीन में मधुमेह से पीड़ित रोगियों की संख्या 20 मिलियन बतायी थी, किन्तु चीनी स्वास्थ्य मंत्रालय को इन आंकड़ों पर आपत्ति थी । उनका कहना था कि ये आंकड़ें दस वर्ष पूर्व के हैं । अत: ताजा अध्ययन होना चाहिए । विश्व स्वास्थ्य संगठन की तकनीकी अधिकारी, सुश्री गोजका रोजलिक के अनुसार ये आंकड़ें 30 मिलियन तक पहुंच जायेंगे । साथ ही सुश्री रोजलिक कहती हैं कि "हमें सही-सही गणना करने के लिए उचित आंकड़ें उपलब्ध नहीं हैं । जो भी आंकड़ें उपलब्ध हैं, वे चीनी पत्रिकाओं से लिये गये हैं, हमने चीनी स्वास्थ्य मंत्रालय से सम्पर्क स्थापित किया है । आशा है, वे शीघ्र ही अद्यतन आंकड़ें देंगे । मधुमेहियों की संख्याओं से यह नहीं कहा जा सकता है कि मधुमेह में चीनी भारतीयों से आगे हैं ।" सम्भवत: सुश्री रोजलिक का आशय भारत और चीन की जनसंख्या से है । आंकड़ों का सही-सही पता सम्भवत: सरकार को भी नहीं है । हम सुश्री रोजलिक से सहमत हैं कि अभी भी हमारे देश में सही-सही आंकड़ें उपलब्ध नहीं हैं । जो भी सरकारी आंकड़ें उपलब्ध हैं, वे मुख्यतया शहर से एकत्रित किये गये हैं । ग्रामीण आंकड़ें हमारे पास लगभग नहीं हैं । विदित है कि भारत की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है । जब अधिकांश गांवों में अस्पताल एवं चिकित्सक नहीं हैं, तो आंकड़ें कहां से आयेंगे । सोचने की कि किसी भी राष्ट्रीय या राज्य की सरकारी या गैरसर एजेन्सी ने गांव वालों की अनिवार्य रूप से रक्त की जांच नहीं की है । गांवों की बात तो छोड़ दी शहरों के लोग भी रक्त-शर्करा की जांच अनिवार्य नहीं कराते हैं । रक्त शर्करा की जांच तभी होती है लोग बीमार पड़ते हैं और चिकित्सा के लिए के पास जाते हैं । चिकित्सक यदि जांच लिखते हैं, तभी जांच होती है, अन्यथा नहीं । आजकल नयी से लोग स्वयं जांच कर लेते हैं और बिना चिकित्सक सलाह के औषधि भी लेते हैं । ऐसी स्थिति में मधुमेह रोगियों के सही-सही आंकड़ों का निर्धारण करना तक सम्भव है ? यह सम्भव हो सकता है यदि या गैर सरकारी एजेन्सी निम्न प्रक्रियाओं को अपनावें

1. अनिवार्य रूप से सभी देशवासियों के रक्त की की जाय ।

   हमारी दृष्टि में सरकार के पास जो प्रावधान हैं, उससे यह सम्भव नहीं लगता है । जांच-प्रक्रिया के लिए धन एवं मानव-शक्ति जरूरत पड़ेगी जो सम्प्रति सम्भव नहीं पड़ती है ।
2. शहर या गांवों में जो जांच प्रयोगशाला है, आंकड़ें एकत्रित किये जायं ।
3. जो निजी चिकित्सक रोगियों की चिकित्सा वहां से आंकड़ें लिये जायं ।
4. सरकारी एवं निजी अस्पतालों से भी आंकड़ें जायं ।
5. अन्य तरीका जो सम्भव है ।

यह सही है कि मधुमेहियों की संख्या है, किन्तु आंकड़ों की सत्यता पर हमें विश्वास सरकार को चाहिए कि समय-समय पर स्वास्थ्य कराया जाय, तभी आंकड़ों पर लोगों का विश्वास

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-77

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

नागार्जुन

चिकित्सा-विज्ञान के क्षेत्र में नागार्जुन नाम के नेक विद्वानों का जिक्र आया है । हम क्रम से इनकी चर्चा रेंगे । सर्वप्रथम हम सुश्रुत संहिता के प्रतिसंस्कर्ता, नागार्जुन का जिक्र करना चाहेंगे । आचार्य प्रियव्रत शर्मा[1] ने सुश्रुत हिता के प्रतिसंस्कर्ता, नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्नलिखित त व्यक्त किये हैं :-

1. सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन गुप्तकालीन थे । इस काल में पाशुपत धर्म तथा कापालिक एवं तान्त्रिक संप्रदायों का उदय हो चुका था और लोक में उनका प्रभाव स्थापित हो चुका था । मूढ़गर्भ के निर्हरण के लिए प्रयुक्त 'दुक्ता पशो:'[2] इस मंत्र से पाशुपत धर्म का संकेत मिलता है । राक्षस पशुपति, कुबेर और कुमार के अनुचर कहे गये हैं ।[3] कापालिकों के लिए 'वामाचार' शब्द का प्रयोग हुआ है, ये क्रूर कर्म में उद्यत रहते थे और अग्नि में पाक (मांस का ?) करते थे (सु० 291, 12-13), ये काले कपड़े पहनते थे ((अ) सिताम्बर सू० 24/45), कपालभूमि का भी निर्देश है (चि० 24/87), तान्त्रिकों की रहस्यमयी सिद्धियों का भी उल्लेख मिलता है यथा वशीकरण, सौभाग्यकरण (चि० 28/18-19) तथा खेचरी सिद्धि (चि० 30/8) आदि । वाग्भट ने जिस तान्त्रिक सर्वार्थसिद्धाञ्जन का वर्णन किया है उसका मूल रूप 'चूर्णाञ्जन' सुश्रुत द्वारा निर्दिष्ट है (उ० 18/89-91) । उस समय 24 बुद्धों की धारणा प्रचलित थी । सम्भवतः उसी आधार पर 24 स्त्रियों की कल्पना की गयी है । 'वर्धमान' का उल्लेख मांगलिक द्रव्यों में किया गया है (सू० 29/26) पुंनामा पक्षी यदि वाम भाग में हों तो शुभ माने जाते हैं (सू० 29/34)
2. उस समय ज्योतिषशास्त्र की भी उन्नति थी । ग्रहों-नक्षत्रों के प्रभाव से जनपदोद्ध्वंस की उत्पत्ति कही गयी है (सू० 6/7)। नक्षत्रों तथा तिथियों के नाम मिलते हैं (सू० 29/16-17) । प्रशस्त तिथिकरण मुहूर्त नक्षत्र में मांगलिक करने का विधान है (चि० 29/8), नक्षत्रजन्य व्याधि कालक्रम से दूर हो जाती है । (नक्षत्र-पीड़ा बहुधा यथा कालाद् विपच्यते - सू० 28/4), वराहमिहिर का प्रादुर्भाव लगभग इसी काल में हुआ था ।
3. 'विषकन्या' का प्रयोग मिलता है (81/4) । विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस में इसका स्पष्ट उपयोग किया है । 'विशिखानुप्रवेश' में 'विशिखा' शब्द नगर के केन्द्रीय स्थान के लिए हुआ है जो कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी प्रयुक्त हुआ है ।
4. नागार्जुन एक भ्रमणशील व्यक्ति थे । अतः ऐसा प्रतीत होता है कि भौगोलिक नामों में कुछ का सन्निवेश उनके द्वारा हुआ हो । कांशी नदी के जिस क्षेत्र का वर्णन किया है वह संभवतः नेपाल का क्षेत्र है जहां बौद्ध एवं तान्त्रिक संप्रदाय फल-फूल रहा था । आबू भी ऐसा ही प्रसिद्ध स्थान है ।
5. इन्द्रजाल का 'कुहक' शब्द से अभिधान हुआ है (सू० 10/2) रहस्यमयी भाषा में विचारों की भी अभिव्यक्ति होने लगी थी । एक उदाहरण देखें

'षण्मूलोऽष्टपरिग्राही पञ्चलक्षण-लक्षितः ।
षष्ट्युपक्रम निर्दिष्टश्चतुर्भिः साध्यते व्रणः ॥
(चि० 1/144)

6. अनेक खनिज द्रव्यों, धातुओं तथा रत्नमणियों (सू० 46 लवण वर्ग 15-19) का समावेश नागार्जुन के द्वारा हुआ प्रतीत होता है । अवस्कृति का वर्णन सुश्रुत में सर्वप्रथम मिलता है । मूषा में धातुओं का पाक करने का भी वर्णन है । (उ० 18/83-85)। लौहनल तथा कांस्यनल का उल्लेख है । फेनाश्म भस्म तथा हरिताल की धातुओं में गणना है । यदि फेनाश्म खड़िया है तो वह बहुत बाद का होगा । सम्भवतः चन्द्रट द्वारा समाविष्ट हो । हरताल और मनःशिला का प्रयोग उपदंश और कासश्वास में निहित विहित है । पारद (चि०25/38) और माक्षिक (चि०

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

14/15) का भी उल्लेख है ।

इनके समय में अग्निवेश आदि छह आचार्यों के काय चिकित्सा के तंत्र प्रचलित थे । विदेहाधिप (निमि) के शालाक्य शास्त्र का भी निर्देश किया है ।

हिन्दी विश्वकोश' में नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्न चर्चा है -

नागार्जुन (बौद्ध दर्शन) शून्यवाद के प्रतिष्ठापक तथा माध्यमिक मत के पुरस्कार प्रख्यात् बौद्ध आचार्य । युवान् च्वाङ् के मात्रा विवरण से पता चला है कि ये महाकौशल के अन्तर्गत विदर्भ देश (आधुनिक बरार) में उत्पन्न हुए थे । आंध्रभृत्य कुल के किसी शालिवाहन नरेश के राज्यकाल में इनके आविर्भाव का संकेत चीनी ग्रन्थों में उपलब्ध होता है । इस नरेश के व्यक्तित्व के विषय में विद्वानों में ऐकमत्य नहीं है । 401 ईस्वी में कुमारजीव ने नागार्जुन की संस्कृत भाषा में रचित जीवनी का चीनी भाषा में अनुवाद किया । फलतः इनका आविर्भाव काल इससे पूर्ववर्त्ती होना सिद्ध होता है । उक्त शालिवाहन नरेश को विद्वानों का बहुमत राजा गौतमीपुत्र यज्ञश्री (166 ई०-196 ई०) से भिन्न नहीं मानता । नागार्जुन ने इस शासक के पास जो उपदेशमय पत्र लिखा था, वह तिब्बती तथा चीनी अनुवाद में आज भी उपलब्ध है । इस पत्र में नामतः निर्दिष्ट न होने पर भी राजायज्ञश्री नागार्जुन का समसामयिक शासक माना जाता है । बौद्ध धर्म की शिक्षा से संवलित यह पत्र साहित्यिक दृष्टि से बड़ा ही रोचक, आकर्षक तथा मनोरम है । इस पत्र का नाम था - आर्य नागार्जुन बोधिसत्व सुहृल्लेख । नागार्जुन के नाम के आगे - पीछे आर्य और बोधिसत्व की उपाधि बौद्ध जगत् में इनके आदर सत्कार तथा श्रद्धा विश्वास की पर्याप्त सूचिका है । इन्होंने दक्षिण के प्रख्यात्-तांत्रिक केन्द्र श्री पर्वत की गुहा में निवास कर कठिन तपस्या में अपना जीवन व्यतीत किया था ।

आर्य नागार्जुन के नाम से वैद्यक, रसायन विद्या तथा तंत्र के ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं । कतिपय विद्वान् दार्शनिक नागार्जुन को तांत्रिक नागार्जुन से नितान्त अभिन्न मानते हैं, परन्तु विद्वानों का बहुमत इन दोनों की भिन्नता मानने के ही पक्ष में है । इसी से आर्य नागार्जुन से भिन्नता दिखलाने हेतु तांत्रिक नागार्जुन 'सिद्ध नागार्जुन' के नाम अभिहित किये जाते हैं । दोनों के समय में भी पर्याप्त है । आर्य नागार्जुन का आविर्भाव द्वितीय शती के में हुआ था, जबकि सिद्ध नागार्जुन का समय सप्तम के आसपास स्वीकार किया जाता है । नागार्जुन का नाम है - क्लुस-ग्रुब और तारानाथ के प्रामाण्य पर ये ई० के आसपास राज्य करनेवाले राजा नेमिचन्द्र के स माने जाते हैं, परन्तु यह मत प्रामाणिक नहीं है । आख्यायिका 'लीलावती' के अनुसार नागार्जुन कुमारिल के साथ शातवाहन के दरबार में रहते थे ।

'माध्यमिक कारिका' के अतिरिक्त निःसंदिग्ध रचनाएं निम्नलिखित हैं - युक्तिशतिका, सप्तति, प्रतीत्य समुत्पाद हृदय, महायान विंशिका, व्यावर्तनी, प्रज्ञापारमिता शास्त्र की तथा दशभूमि विभाषा की टीकाएं । तिब्बती भाषा में 'प्रमाण विघटन' (जि न्यायशास्त्र के षोडश पदार्थों का खंडन किया गया है) चीनी भाषा में 'उपाय कौशल हृदय' (जिसका अनुवाद 472 ई० तथा कार्य- विषय शास्त्रार्थ है) नागार्जुन की रचनाएं मानी जाती है ।

नागार्जुन की रचनाएं अपनी शैली तथा युक्ति लिए अत्यन्त विख्यात् हैं । इन रचनाओं में प्रसिद्धि पाने ग्रन्थ ये हैं - (1) प्रमाण विघटन अथवा प्रमाण विध्वंसन जिसमें गौतम के षोडश पदार्थों के रूप तथा लक्षण खण्डन किया गया है । संस्कृत मूल उपलब्ध नहीं है केवल तिब्बती में इनके मूल तथा टीका के अनुवाद हैं । (2) उपाय कौशल्य हृदय शास्त्र जिसमें प्रतिवादी ऊपर विजय पाने के लिए जाति, निग्रह स्थान आदि के न्याय परिचित उपायों का विशिष्ट वर्णन किया गया है (3) विग्रह व्यावर्तनी, 72 कारिकाओं में निबद्ध यह मूल संस्कृत तथा तिब्बती अनुवाद दोनों में उपलब्ध है वर्ण्य विषय है गौतम सम्मत प्रमाण का खण्डन तदुपरान्त स्वाभिमत शून्यवाद का युक्तियों से मंडन होने पर भी बौद्ध न्याय की जानकारी के लिए यह मह रचना है । (4) युक्ति षष्टिका जिसके कतिपय बौद्ध ग्रन्थों में प्रमाण की दृष्टि से उद्धृत किये गये हैं

(5) सुहृल्लेख, इसका ऊपर उल्लेख किया गया है । मूल संस्कृत के अभाव में इसके वर्ण्य विषय की जानकारी हमें इसके तिब्बती अनुवाद से ही होती है । नागार्जुन ने इस पत्र के द्वारा अपने सुदृढ़ यज्ञश्री शातवाहन को परमार्थ तथा व्यवहार की शिक्षा दी है । बौद्ध साहित्य में इस प्रकार की रचनाएं उपलब्ध हैं जिनके द्वारा बौद्ध आचार्यों ने अपने किसी मान्य शिष्य को अथवा तत्व जिज्ञासु को बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का उपदेश दिया (6) चतु:स्तवतथागत की प्रशस्त स्तुति में लिखे गए चार स्तोत्रों का संग्रह जिसमें निरूपम स्तव तथा परमार्थ स्तव मूल संस्कृत में उपलब्ध हैं, परन्तु अन्य दो अचिंत्य स्तव और लोकातीत स्तव-केवल तिब्बती अनुवाद में प्राप्य हैं । इस ग्रन्थ में नागार्जुन की सरस काव्य प्रतिमा का पूरा परिचय पाठक को मिल जाता है । (7) नागार्जुन के कीर्ति मंदिर का स्तम्भ स्थानीय महनीय दार्शनिक ग्रन्थ है 'माध्यमिक कारिका' । नागार्जुन के पांडित्य, व्यापक दार्शनिकता, उद्‌भट तार्किकता तथा नवीन कल्पना का भांडागार है । यह उदात्त ग्रन्थ जिसे आचार्य भव्य कृत प्रज्ञा प्रदीप - तथा आचार्य चंद्रकीर्त्ति रचित 'प्रसन्नमहा' जैसी प्रौढ़वृत्तियों के द्वारा अलंकृत होने का गौरव प्राप्त है । 27 प्रकरणों में विभक्त यह ग्रन्थ कारिकाओं में ही निबद्ध है । यह प्रसन्नपदा के साथ मूल अनुवाद में लेनिनग्राद से नागराक्षरों में प्रकाशित भी हुआ है ।

नागार्जुन की दृष्टि में मूल तत्व शून्य के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । ध्यान देने की बात यह है कि यह शून्य निषेधात्मक वस्तु नहीं है जिसका अपलाभ किया जा सके । किसी भी पदार्थ का स्वरूप निर्णय करने में चार ही कोटियों का प्रयोग संभाव्य है - अस्ति (विद्यमान) है, नास्ति (विद्यमान नहीं है), तदुभयम् (एक साथ ही अस्ति नास्ति दोनों) तथा नोभयम् (अस्ति नास्ति दोनों कल्पनाओं का निषेध) । परमार्थ इन चारों कोटियों से युक्त होता है और इसीलिये उसके अभिधान के लिए 'शून्य' शब्द का प्रयोग हम करते हैं । नागार्जुन के शब्दों में -

न सन् नासन् न सहसत् न चाप्यनुभयात्मकम् ।
चतुष्कोटिर्विनिर्मुक्त तेत्वं माध्यमिका विदुः ॥

शून्यवाद की सिद्धि के लिए नागार्जुन ने विध्वंसात्मक तर्क का उपयोग किया है - वह तर्क, जिसके सहारे पदार्थ का विश्लेषण करते-करते वह केवल शून्य रूप में टिक जाता है । इस तर्क के बल पर द्रव्य गति, जाति, काल, संसर्ग, आत्मा आदि तत्वों का बड़ा ही गंभीर, मार्मिक तथा मौलिक विवेचन करने का श्रेय नागार्जुन को है । इस मत में सत्य दो प्रकार का होता है - (1) सांवृतिक सत्य तथा (2) पारमार्थिक सत्य जिनमें प्रथम अविद्या से उत्पन्न व्यावहारिक सत्ता का संकेत करता है; द्वितीय प्रज्ञा जनित सत्य का प्रतिपादक है । 'संवृति' शब्द का अर्थ है अविद्या । अविद्याजनित होने से व्यावहारिक सत्य सांवृतिक सत्य के नाम से जाना जाता है । सत्य की यह द्विविध व्याख्या नागार्जुन की दृष्टि में शून्यवाद के द्वारा उद्‌भावित नूतन कल्पना नहीं है, प्रत्युत् बुद्ध के द्वारा ही प्राचीन काल में संकेतित की गयी है । बुद्ध के कतिपय उपदेश व्यावहारिक सत्य के आधार पर दिए गये हैं, अन्य उपदेश पारमार्थिक सत्य के ऊपर आलंबित है । अभीष्ट दोनों हैं बुद्ध को -

द्वे सत्ये समुमाश्रित्य बुद्धानां धर्मदेशना ।
लोक संवृतिसत्यं च सत्यं च परमार्थितः ॥

नागार्जुन दार्शनिक होते हुए भी व्यवहार की उपेक्षा करने वाले आचार्य नहीं थे । वे जानते हैं कि व्यवहार का बिना आश्रय लिए परमार्थ का उपदेश ही नहीं हो सकता और परमार्थ की प्राप्ति के अभाव में निर्वाण मिल नहीं सकता । साधारण मानवों की बुद्धि व्यवहार में इतनी आसक्त है कि उसे परमार्थपथ पर लाने के लिए व्यवहार का अल्पलाभ नहीं किया जा सकता । फलतः व्यवहार की असत्यता परमार्थ शब्दों के द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु नहीं है । इसलिए उसे 'अनक्षरत्व' के अभियान से जानते हैं । परमार्थ तत्व बुद्धि व्यापार इतनी आसक्त है कि उसे परमार्थ पथ पर लाने के लिए व्यवहार का अल्पलाभ नहीं किया जा सकता । फलतः व्यवहार की 'अत्यता' दिखलाकर ही साधक को परमार्थ में प्रतिष्ठित करना पड़ता है । परमार्थ शब्दों के द्वारा प्रतिपाद्य वस्तु नहीं है । इसीलिए उसे 'अनक्षर तत्वों' के अभिधान से जानते हैं ।

परमार्थ तत्व बुद्धि व्यापार से अगोचर, अविषय (ज्ञान की कल्पना से बाहर), सर्वप्रपंचनिर्मुक्त तथा कल्पना विरहित है, परन्तु उसके ऊपर जागतिक पदार्थों का समारोह

करने से ही उसका ज्ञान हमें हो सकता है । यह तत्व वेदान्तियों के अध्यारोप तथा अपवादविधि से नितान्त सादृश्य रखता है ।

2. आयुर्वेदाचार्य नागार्जुन सिद्धों की परम्परा में हुए हैं । इनका समय आठवीं या नवीं शती है । यही समय आयुर्वेद में रस चिकित्सा, धातुवाद का है । प्रबन्ध चिन्तामणि से पता चलता है कि नागार्जुन पादलिप्तसूरि के शिष्य थे । इसी पुस्तक के अनुसार ये पारद से स्वर्ण बनाने में सफल हुए थे । नागार्जुन के नाम से कई योग आयुर्वेद में प्रचलित हैं ।

प्रस्तुत शब्दकोश से नागार्जुन के सुश्रुत संहिता के प्रतिसंस्कर्ता का पता नहीं चलता है । इस कोश से केवल रसशास्त्र के प्रवर्त्तक नागार्जुन का पता चलता है । नागार्जुन के अन्य पक्षों को यहां प्रस्तुत करने के पीछे आशय केवल इतना ही है कि अनेक नागार्जुनों का अस्तित्व प्राचीनकाल में था । प्रस्तुत कोश में निम्नलिखित विरोधाभास है -

1. 401 ईसवी में कुमार जीव ने नागार्जुन की संस्कृत भाषा में रचित जीवनी का चीनी भाषा में अनुवाद किया ।

   इससे यह तथ्य स्थापित होता है कि नागार्जुन का अस्तित्व निश्चित रूप से 401 ईसवी के पूर्व था ।
2. राजा यज्ञश्री नागार्जुन का समसामयिक शासक माना जाता है ।

   विदित है कि गौतमीपुत्र यज्ञश्री का अस्तित्व कोश के ही अनुसार 166-196 ई० के मध्य था । स्पष्ट है कि नागार्जुन का अस्तित्व इस समय था ।
3. नागार्जुन का तिब्बती नाम है - क्लुस-ग्रुव और तारानाथ के प्रामाण्य पर ये 300 ई० आसपास राज्य करने वाले राजा नेमिचन्द्र के समकालीन माने जाते हैं ।
4. रसशास्त्री नागार्जुन का समय 8 वीं या 7 वीं शती है ।
5. आर्य नागार्जुन और सिद्ध नागार्जुन के मध्य अन्तर बताते हुए कहा गया है कि 'आर्य नागार्जुन का आविर्भाव द्वितीय शती के उत्तरार्ध में हुआ था, जबकि सिद्ध नागार्जुन का समय सप्तम शती के आस-पास स्वीकार किया जाता है ।

स्पष्ट है कि आर्य नागार्जुन एवं सिद्ध नागार्जुन पृथक् व्यक्तित्व के स्वामी थे । क्या यह सम्भव नहीं है कि आर्य नागार्जुन सुश्रुत संहिता के प्रतिसंस्कर्ता रहे होंगे ?

इन विवरणों से यह ज्ञात होता है कि रसशास्त्री नागार्जुन के अतिरिक्त भी नागार्जुन थे जो सुश्रुत संहिता के प्रति संस्कर्त्ता थे और निश्चित रूप से 166 ई० के पूर्व थे।

श्री अत्रिदेव विद्यालंकार' ने नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्न प्रकाश डाला है :-

1. सुश्रुत का प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन था; इसमें कोई भी प्रमाण नहीं मिलता । डल्हण ने किस आधार पर यह निश्चय किया, इसकी भी साक्षी नहीं मिलती । यदि बौद्ध नागार्जुन जिसे चौरासी सिद्धों में भी गिना गया है; इस उपलब्ध सुश्रुत से सम्बन्धित था; इसके लिए कोई पुष्ट प्रमाण नहीं है ।
2. महायान मतवाले नागार्जुन से इनको पृथक् माना गया है । अल्बेरूनी ने लिखा है कि एक नागार्जुन उससे एक सौ वर्ष पहने विद्यमान थे । 'साधन माला' में ये कई साधनाओं के प्रवर्त्तक माने गये हैं ।
3. डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य का अनुमान है कि कुरुकुल्ला की उपासना के प्रथम प्रवर्त्तक शबरपाद नामक सिद्ध हैं जिनका समय सप्तम शताब्दी (ईसवी) का मध्य भाग है । ये नागार्जुन के शिष्य थे ।
4. 'प्रबन्ध चिन्तामणि' से पता चलता है कि नागार्जुन पादलिप्त सूरि के शिष्य थे और उनसे ही इन्होंने आकाश गमन की विद्या सीखी थी ?
5. नागार्जुन ने अपने शिष्य राजा सातवाहन की रानी चन्द्रलेखा से पार्श्वनाथ की रत्नपूर्ति के सामने पारद मर्दन करवाया था । रानी के पुत्रों ने रस के लोभ से नागार्जुन को मार डाला था ।
6. नागार्जुन रसेश्वर-सिद्ध थे । गोरखपंथियों की पारसनाथी शाखा के प्रवर्त्तक भी यही थे । दक्षिण भारत के निवासी थे । नागार्जुन को परवर्त्ती योगियों ने 'नागा-अर्जुन' कहा है, इनके सम्बन्ध में कई किंवदन्तियां प्रचलित हैं । नाथपन्थ को बारह आचार्यों में इनका नाम है ।
7. नागार्जुन वज्रयानी बौद्ध थे ।
8. सरहपा के दूसरों शिष्यों में योगी नागार्जुन और सर्वभक्ष भी थे । यह नागार्जुन यदि कोई एतिहासिक व्यक्ति

ता द्वितीय शताब्दी के माध्यमिक आचार्य नागार्जुन से भिन्न हैं। तिब्बती परम्परा में सरहसा छठे सिद्ध हैं, प्रथम सिद्ध लुईपा हैं। इस परम्परा में नागार्जुन सोलहवें सिद्ध हैं।

9. सिद्ध नागार्जुन का समय आठवीं या सातवीं शताब्दी आता है, जबकि इनको सरहपा का शिष्य कहा गया है।
10. द्वितीय या प्रथम शताब्दी के नागार्जुन, जिनको कनिष्क का समकालीन कहा जाता है, वे इनसे भिन्न थे।
11. शून्यवाद या माध्यमिकवाद मत के प्रधान संस्थापक नागार्जुन ईसा की दूसरी या पहली शताब्दी में हुए थे।
12. बाण ने हर्षचरित में सातवाहन राजा के साथ नागार्जुन की मैत्री का उल्लेख किया है। इनको मोतियों की एक लड़ी माला नागार्जुन ने ही थी। यह समय 44 ई० से ४ ई० पूर्व था।
13. श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने अपने इतिहास प्रवेश (पृष्ठ 137) में लिखा है कि "नागार्जुन अश्वघोष का प्रशिष्य था, अश्वघोष कनिष्क की राजसभा का पण्डित था। नागार्जुन दर्शन के साथ-साथ विज्ञान का भी पण्डित था। उसने एक लोहशास्त्र लिखा और पारे के योग बनाने की विधि निकालकर रसायन के ज्ञान को आगे बढ़ाया।' **उसने सुश्रुत के ग्रन्थ का सम्पादन भी किया।**
14. पारा सम्बन्धी बातें सिद्ध नागार्जुन से सम्बन्धित हैं, जो कि 7 वीं या दसवीं शताब्दी में हुआ था। इसमें लेखक को नाम सादृश्य से भ्रान्ति हो गयी है।
15. पण्डित हेमराज शर्मा द्वारा प्रदर्शित नागार्जुन का रसायन विद्या का प्रवर्त्तक मानने में बाधा यही है कि ग्यारहवीं शताब्दी में रस विद्या का जो उल्लेख मिलता है, वह चरक, सुश्रुत, अष्टांग संग्रह, वृन्द, चक्रदत्त में नहीं है। विशेषत: जब हम देखते हैं कि चरक भी कनिष्क का राजवैद्य था। (इतिहास प्रवेश-पृष्ठ 125)। यदि नागार्जुन इनके समकालीन थे, और यही नागार्जुन रसायन विद्या, पत्थर से स्वर्ण बनाने की विद्या के ज्ञाता थें, तो अवश्य चरक इनका उल्लेख करता।
16. रस सिद्धों का उल्लेख आठवीं शताब्दी में मिलता है। आठवीं शताब्दी में ही 'सरहमा' सिद्ध हुए हैं; जिनका नागार्जुन भी एक शिष्य था। नाथ सम्प्रदाय के मत्स्येन्द्र नाथ गोरखनाथ का भी यही समय है। इस प्रकार से रससिद्धि का प्रारम्भिक समय आठवीं शती है। रससिद्धों में जिस नागार्जुन का उल्लेख है, वह इसी शताब्दी का है।
17. जनता में रसशास्त्र के प्रवर्त्तक भी सिद्ध हैं, इसमें एक नागार्जुन भी थे। चूंकि इस नाम के एक नागार्जुन प्रथम-द्वितीय शताब्दी में हुए हैं, उनके पास भी स्वर्ण बनाने की विद्या थी, इसलिए रस-सिद्धि, पारा-सिद्धि को इनके साथ जोड़ दिया गया। वास्तव में दोनों भिन्न हैं - जिनमें छ: सौ या सात सौ का अन्तर है।

दुर्भाग्यवश विद्वान लेखक स्वयं संशय के शिकार हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक (पृष्ठ सं० 1४९) में लिखा है, "नागार्जुन कई हुए हैं। अन्तिम नागार्जुन सातवाहन राजा का मित्र था, जिसका उल्लेख बाण ने अपने हर्षचरित में एक लड़ी मोतियों की माला के प्रसंग में किया है। सातवाहन दक्षिण का राजा था। **यह समय लगभग दूसरी शताब्दी के आसपास का है।**

एक तरफ वे लिखते हैं कि "सुश्रुत का प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन था; इसमें कोई प्रमाण नहीं मिलता।" दूसरी ओर वे एक नागार्जुन का समय प्रथम शती या दूसरी शती का मानते हैं और दूसरी ओर वे सिद्ध नागार्जुन जो आठवीं शती का है, उसे ही वास्तविक नागार्जुन मानते हैं।

(निरन्तर जारी)

संदर्भ

1. आयुर्वेद का वैज्ञानिक इतिहास - आचार्य प्रियव्रत शर्मा - चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी।
2. **मुक्ता: पशोर्विपाशाश्च मुक्ता: सूर्येण रश्मय:।**
   मुक्ता: सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि विरभावित:॥
   सु०चि० 15/8
3. हिंसाविहाराणि हि महावीर्याणि रक्षांसि पशुपति कुबेर कुमारानुचराणि मांसशोणित प्रियत्वात् क्षतजनिमित्तं व्रणिनमुपसर्पन्ति।
   सु०सू० 19/23
4. हिन्दी विश्वकोष, खण्ड - 6, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी।
5. आयुर्वेद का वृहत् इतिहास - श्री अत्रिदेव विद्यालंकार प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश।

आगन्तु अपस्मार: एक चर्चा

(एक आतुर वृत्त के संदर्भ में)

वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए. (निवृत्त प्रोफ./प्राचार्य आयु.कॉ.)

परिचय

प्राचीन काल से ही अपस्मार के आगन्तु अनुबंधता के विषय में विवाद रहा है । चरक, सुश्रुत आदि में उसके समर्थन एवं विरोध दोनों प्रकार के विचार मिलते हैं ।

चरक के ये वचन कि ' इन अपस्मारों में कदाचित आगन्तु (अर्थात् भूतादि) अपस्मार का अनुबंध हो जाता है, इसका बाद में (चिकित्सा स्थान में) उपदेश किया जायेगा.। इसकी विभेदक पहचान (विशेषविज्ञान) यही है कि वातादि के जो लक्षण कहे गये हैं उन लक्षणों से किन्हीं (कुछ) लक्षणों की अधिकता हो परन्तु अधिक लक्षण ऐसे होने चाहिए जो इन दोषों के लक्षणों के तुल्य नहीं हों ।[1]

पूर्व में इसी संदर्भ में दक्ष यज्ञ, ध्वंस कथा का संदर्भ देकर कहा गया है कि - 'विविध प्रकार के भूतों तथा अपवित्र द्रव्यों के स्पर्श से अपस्मार की उत्पत्ति हुई, यह कथन अपस्मार के आगन्तु निदान की दृष्टि से महत्वपूर्ण भी है और आगन्तु समर्थक भी ।[2]

रोग विनिश्चय की दृष्टि से भी जिस अपस्मार में आगन्तु अनुबंध होता है उसमें दोषज लक्षणों से अधिक (अतिरिक्त भूतज) लक्षण होते हैं, जिनको देखकर आगन्तु अपस्मार का होना निश्चित किया जाता है ।[3]

सुश्रुत में दोनों प्रकार के संदर्भ देखने को मिलते हैं । तदानुसार 'बिना कारण के रोगाक्रमण होने से, चिकित्सा न करने पर भी स्वत: रोग मिट जाने से कुछ आचार्य (स्व) शास्त्रानुसार अपस्मार को आगन्तु मानते हैं ऐसा कहा गया है ।[4]

परन्तु पुन: आचार्य अपस्मार दोषज ही है (आगन्तु नदी इसके समर्थन में तर्कों की लम्बी सूची देते हैं[5] यथा-

- दोषों का संचय आदि क्रम से रोगोत्पत्ति करने के कारण ।
- वातादि दोषों के क्षणिक होने के कारण ।
- जब तक दोष का वेग रहता है, तब तक रोग रहता है ।
- आगम (चरकादि में) अपस्मार को दोषजन्य ही कहा गया है ।
- विश्व रूप होने से वात-पित्त-कफ एवं रज-तम यह दोष विश्व रूप है । अत: शारीरिक-मानसिक इन दोषों से उत्पन्न अपस्मार भी दोष जन्य है ।
- अत: विद्वान अपस्मार को दोष जन्य कहते हैं ।
- जिस प्रकार बादल बरसने पर भी कुछ बीज (वर्षा बाद) शरद काल में (भी) उग जाते हैं इसी प्र (अपस्मार) रोग भी अपने समय पर (रोग बीज अपशिष्ट रहने पर) उत्पन्न होते है । (पुन:पुन: रूप में प्रगट होता है ।)
- अवश्य ही अस्थायी वातादि दोष इसी थोड़े से स के लिये बढ़कर नाना प्रकार के रोगों को अ स्वाभाविक दूषण स्वभाव के कारण (वेग रूप में दीखते है ।
- इसलिये अपस्मार संज्ञक महारोग दोषजन्य है ।

आगन्तु रोगों के सम्बधित कुछ अन्य मान्य त को भी स्मरण में रखना चाहिए । यथा-आगन्तु रोग प स्वतंत्र (लक्षण वाले) होते हैं परन्तु बाद में (देह दूषित हो पर) वे दोषानुसारी लक्षणों से मिल जाते हैं । अत: यह हे औषध में निज से भिन्न होता है ।[7]

आगन्तु रोगों को चार विभागों से (ज्वराधिकार में) विभक्त किया गया है । इस वर्गीकरण के अनुसार अभिघात अभिसङ्गज, अभिचारज एवं अभिशापज आदि चार प्रका कहे गये हैं ।[8]

अत: अपस्मार के विषय में जब आगन्तु अनु के सम्बंध में विचार किया जाय तब इन चारों के संदर्भ विचार किया जाना चाहिए । यह इसलिये भी आवश्यक कि अपस्मार के कई रोगियों में इन चार में से कई निमि देखने को भी मिलते हैं । इनके निमित्त के साथ-सा लक्षण एवं चिकित्सा विनिश्चय के लिये भी उन स संदर्भों पर विचार करना आवश्यक हो जाता है । अत: इ पर संक्षेप में विचार कर लेना अनुचित नहीं होगा । य यह सही है कि चरकादि की चर्चा 'भूतज' के संदर्भ आस-पास ही की गई प्रतीत होती है ।

चरक संहिता में (ज्वराधिकार में) उपरोक्त आगन्तु प्रकारों का परिचय देकर भी पुन: 1. काम, शो भय एवं क्रोधज आदि मानस अभिषंज्ञज प्रकारों का तथा 2 भूताभिषङ्गज 3. एवं विषज (विषसार्श/) अभिषङ्गज ल विशेषों का वर्णन किया गया है ।

यहां चरकोक्त विवरण को अपस्मार संदर्भ उपयोग कर विषय पर विचार किया गया है यथा -

नि० 1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुजरात) 364001

अभिघातज अपस्मार[9]

हेतु

- शस्त्र, ढेला, कशा (चाबुक), काष्ठ (लकड़ी-लाठी), अरत्नि (थप्पड़ या लात) आदि के द्वारा मर्म पर प्रहार।
- दांतादि से काटना।
- प्रपतन, शिर-हृदय आदि पर किसी भी प्रकार से चोट पहुंचना।
- प्रसव के समय शिर का नीचे पड़ने से टकराना या फोरसेप्स डिलेवरी में संदेश यंत्र के अतिपीड़न के कारण शिर पर आघात लगना।

विकृति

- अभिघात से प्राण वायु दूषित होती है।
- रक्तस्राव या शोथ।

लक्षण

- व्रणशोफ के सामान्य लक्षण होना यथा - वैवर्ण्य, वेदना, शोथ होना।
- वातिक लक्षण होना।

मर्माभिघात के अनुसार लक्षण होना यथा -

1. शिरोमर्मगत सीमांत मर्म अभिघात से उन्माद, भय, चित्तनाश (या प्लवन)। मृत्यु, आदि (सु)
2. शिरोभिघात जन्य विकार होना यथा अर्दित
   * मन्यास्तंभ ग्रीवा, हनुग्रह, वेष्टन, चेष्टानाश।
   * चक्षु विभ्रम, अक्षिनिमीलन, मूक, गदगदत्व, स्वरहानि।
   * कास, श्वास, जृम्भा, लालास्राव, मुख-जिह्वा विकार।
   * मोह (च)।
3. हृदय अभिघात जन्य विकार होना यथा -
   * कास, श्वास, क्लोमापककर्षण।
   * जिह्वानिर्गम, मुख-तालु, कण्ठ शोष।
   * उन्माद, अपस्मार, प्रलापन, चित्तनाश।
   - वातज अपस्मान के लक्षण होना।

अभिषङ्गज अपस्मार[10]

हेतु

1. काम, शोक, भय (तथा क्रोधादि) मानसिक विकारों का अभिषङ्ग होना।
2. भूताभिषङ्ग (तथा गृह आदि का प्रवेश)।
3. विषवात स्पर्श या विषमय पदार्थ स्पर्श (या उसका सेवन भी)।

विकृति -

- काम शोक भय आदि से वायु का (तथा क्रोधादि से पित्त का) कोप होना।
- भूत प्रकृति अनुसार दोष कोप।
- विष स्वभावानुसार दोष कोप।
- कामादि से उत्पन्न लक्षण (जो ज्वर प्रकरण में कहे गये हैं) अन्य (कामादि जन्य अतिसार-अपस्मारादि) में भी यही विशेषता लिये होते हैं।

लक्षण -

सामान्य - कासजादि में कथित लक्षण कहीं पूर्व, कहीं बाद में और कहीं साथ-साथ होते हैं।

- मनोविकार, भूत एवं विष स्वभाव अनुसार यथा दोष लक्षण होना।
- कामादि के द्वारा भाव के आक्रान्त होने पर लक्षण तब तक बलवान नहीं होते जबतक कि वातादि दोष द्वारा देह दुष्ट नहीं होती है।

विशेष

(क)	कामज[11]	शोकज[12]	भयज[13]	क्रोधज[14]
	ध्यान (च) निश्वास (च) चित्र विभ्रंश (सु) तन्द्रा (सु) आलस्य (सु) अभोजन (सु) हृदयवेदना (सु) शीघ्र गात्र परिशोष (सु)	वाष्प (आंसू) बहुलता (च) प्रलपन (सु) (अ)	त्रास (च) प्रलाप (सु) (अ) शीघ्रदेह परिशोष (सु)	संरंभ (रक्त) वर्णता (च) कम्प (सु)
	वा. अपस्मार ल०	वा०अ०ल०	वा०अ०ल०	पित्तजापस्मार ल०

(ख) भूताभिषङ्गज (याआविष्टज)[15] - 1. यथाभूत लक्षण होना । 2. अमानुष क्रियायें (च) उद्वेग, कम्प, हास्य, रूदन (सु)

(ग) विषाभिषङ्गज (विष सेवन जन्य)[16]- 1. यथा विष लक्षण, 2. मूर्च्छा (च) मद (च) मोह (च) ग्लानि (च) श्यावास्यता हनुग्रह, दाह, तृषा, तोद, अभक्तरूक, अतिसार (सु)

अभिचारज अपस्मार[17]

हेतु 1. सिद्ध पुरुषों द्वारा किये गये अभिचार प्रयोग ।

2. या मंत्र प्रयोग ।

(इन का ज्ञान प्रयोग देखकर, सुनकर या अनुमान से ही होता है ।)

विकृति/लक्षण (त्रिदोष कोप)

1. सन्निपाजत लक्षण होना ।
2. अभिचार भेद से विभिन्न प्रकार के लक्षण होना (च) ।
3. दाह (अ) तृषा (सु) विस्फोट होना (अ) ।
- मोह (सु) भ्रम (अ) मूर्च्छा (अ) होना ।
- इसका अत्यन्त दु:सह होना (च) ।
4. सन्निपातज अपस्मार के लक्षण ।

अभिशापज अपस्मार[18]

हेतु - सिद्ध पुरुषों द्वारा अभिशाप देना (च) ।

(या गुरु आदि द्वारा शापित होना) इसका ज्ञान भी देख, सुन या अनुमान द्वारा ही होता है ।

विकृति/लक्षण (त्रिदोष कोप)

1. सन्निपातज लक्षण होना (च) ।
2. पूर्वोक्त शापानुसार विभिन्न लक्षण होना (च) ।
3. अभिचारोक्त दाह (अ) तृषा (सु) विस्फोट (अ) मोह (सु) भ्रम (अ) मूर्च्छा (अ) आदि होना इसका दु:सह होना ।
4. सन्निपातज अपस्मार के लक्षण होना ।

आगन्तु अपस्मार चिकित्सा

क. चिकित्सा सूत्र[19]

- दोषानुसार तीक्ष्ण संशोधन, संशमन, आगन्तु में मणिधारणादि ।
- जब दोषज अपस्मारों के आगन्तु अनुबंध होता है तब श्रेष्ठ चिकित्सक साधारण (दैव-व्यापाश्रय) कर्म और युक्तिव्यापाश्रय कर्म (दोनों) की व्यवस्था देते हैं । अर्थात् दोनों चिकित्सा करना आवश्यक है । (च)
- अपस्मार में आगन्तु अनुबंध दीखने पर उसकी चिकित्सा आगन्तु उन्माद के अनुसार करनी चाहिए। (च)
- ग्रहों में कहे गये योगों को विशेष रूप से उपयोग में लेवें (सु) ।
- मंगल (द्रव्य मणि) धारण करें (सु) (छत्र, अति छत्रा आदि कारण करना) ।
- काम, शोक, भय, क्रोधादि जन्य में परस्पर विरुद्ध प्रयोग द्वारा यथा - काम - शोक / भय, क्रोध - काम/भय ।
- विषजन्य में विषघ्न अगद प्रयोग ।

(ख) कुछ प्रयुक्त/ निर्दिष्ट कल्प ।

वातज में - (शोक-भय-कामजन्य में) अपस्मृत, वचाद्यघृत, पलंकश तैल (च) कुलत्थादिघृत (सु)

पित्तज में - (क्रोधजन्य में) आमलकघृत, अपस्मृत, पंचगव्यघृत (च) निदारीगंधादिघृत (सु)

कफज में - वचाघृत (च) पिप्पल्यादिघृत (सु) सिद्धार्थकघृत (सु) कटभितैल, पलंकश तैल,

त्रिदोषज में - (भूतज आदि में) ब्राह्मीघृत (च) सिद्धार्थकघृत (सु) ।

ग्रहबाधा में - सिद्धार्थक घृत (सु) ।

विषज में - सिद्धार्थक घृत (सु) कायस्थावर्ति (सु)

अपस्मार में आगन्तु अनुबंध कुछ आतुरवृत्त पत्र संक्षेप में

क्र.	1	2	3	4
(क) आतुर				
आ.क.	3503	20167	4972	13948
लिङ्ग	पु०	स्त्री	पु०	स्त्री
वय	44	4	50	28
रोग/ लक्षण	अपस्मार (हृदयाभिघात) अपस्मरण अपतंत्रण आक्षेपण मूर्च्छा हृच्छूल	अपस्मार (निजशिरोभिघात) अपतंत्रण शीर्षाम्बु गमने अशक्ति स्मृति दौर्बल्य	आक्षेप/अपस्मरण अलर्कदूषि विष) श्वान दन्ष्ट्र के बाद लिये इन्जेकशन के बाद दौरे प्रारंभ हुए	आक्षेप/अपस्मरण अपतंत्रण टिक-20 पान के बाद बचने पर प्रारम्भ

(ख) चिकित्सा

1. रास्नादि क्वाथ दशमूल क्वाथ 2 तोला प्रात:	1. मास्यादिक्वाथ दशमूलक्वाथ 2 तोला प्रात:	रास्नादिक्वाथ 2 तोला प्रात:	रास्नादिक्वाथ मास्यादिक्वाथ 2 तोला प्रात:
2. स्मृति सागर आपुच 1-1 x 2 बार	- स्मृति सागर अपतंत्रकारी आरोग्यवर्द्धिनी 1-1 गोली दो बार ।	- स्मृति सागर अपतंत्रकारी, ब्राह्मीवटी 1-1 गोली दो बार ।	
3. मेध्य चूर्ण, अर्जुन, अभ्रक प्रवाल, यष्टि सितोपलादि पि० 1 मा० x 2 बार	- मेध्य चूर्ण, वचा अर्जुन, यष्टि प्रवाल, मिश्रण 1 माशा दो बार	- मेध्य चूर्ण सारस्वत चूर्ण, अर्जुन, प्रवाल कामदुधा मिश्रण 1 माशा दो बार	सारस्वत, वचा शतावरी, अश्वगंधा अर्जुन, अभ्रक प्रवाल 1 माशा दो बार
4. हिंगुकर्पूर वटी लशुनादि वटी 1-1 दोबार भोजनोत्तर SOS हृदयार्णवरस 1-1 गोली दो बार	- लशुनादि 1-1 गोली भोजनोत्तर SOS सर्पगंधावटी 1 गोली रात्रि में 2 एकांगवीर, चन्द्रप्रभा	- लशुनादि 1-1 गोली भोजनोत्तर - ब्राह्मीघृत 1 चम्मच प्रात: दूध से	शतावरी शिवाक्षार ब्राह्मीघृत 1 चम्मच प्रात: दूध में

(ग) परिणाम

- क्रमश: वेग घटे - हृच्छूल शमन - स्वास्थ्य सुधरा समग्रत: 90% लाभ	- वेग घटे - सहारे से खड़े होने चलने में समर्थ समग्रत: 40% लाभ	आक्षेप घटे लक्षण घटे स्वास्थ्य सुधार समग्रत:60% लाभ	आक्षेपबंद हुए - - 55% लाभ

क्र.	1	2	3	4
(क) आतुर				
आ.क.	72	102	11204	3923
लिङ्ग	स्त्री	स्त्री	स्त्री	स्त्री
वयवर्ष	16	25	38	35
रोग/ लक्षण	क्षुद्रापस्मार मासिक काल के आस-पास आंशिक संमूर्छन (प्रपतन नहीं)	अपस्मार (भयानुबंधी) (एपेलेप्टीक फोबिया) यदाकद (सम्मूर्च्छन) अरति अनिद्रा	अपस्मार (क्रोधानुबंधी) भ्रम-रोष परुष वाक्य असहिष्णुता शिर:शूल प्रदर (श्वेतस्राव)	अपस्मार (रूग्णाकथनानुसार) मृतकुटुम्बी आवेशन, सम्मूर्छन कम्प पांडु (तीव्र) अनिद्रा

ख) चिकित्सा

1. दशमूल क्वाथ 2 तोला प्रात:	- मास्यादि/ दशमूलक्वाथ 2 तोला प्रात:	- गुडुच्यादि, वासा दशमूल क्वाथ 2 तोला प्रात:	- गुडुच्यादि मास्यादिक्वाथ 2 तोला प्रात:
2. अपतंत्रकारी . आरोग्यवर्धिनी 1-1 गोली दो बार	- स्मृतिसागर अपंत्रकारी, ब्राह्मीवटी 1-1 गोली दो बार	- अपतंत्रकारी ब्राह्मीवटी 1-1 गोली दो बार	- पुननर्वामण्डुर ब्राह्मीवटी 1-1 गोली दो बार
3. मेध्य/शंखपुष्पी धात्रिलोह, मण्डूर मिश्रण 1 माशा दो बार	- मेध्य, सारस्वत: अर्जुन, प्रवाल; यष्टि, शंखपुष्पी मिश्रण 1 माशा दो बार	- मेध्य, मांसी, शंखपुष्पी, सितोपलादि यष्टि, अर्जुन, प्रवाल मिश्रण 1 माशा दो बार	- मेध्य, धात्रिलोह मण्डूर भस्म, अर्जुन, प्रवाल मिश्रण 1 माशा दो बार
4. हिंगुकर्पूरवटी 1-1गो. भोजनोत्तर SOS कन्यालोहादिवटी आवश्यकतानुसार	- हिंगुकर्पूर/शंखवटी 1-1 गो. भोजनोत्तर SOS सर्पगंधा वटी रात्रि में सोते समय	शंखवटी, लशुनादि 1-1 गो. भोजनोत्तर (शिरशूलादि व्रजरस) प्रदरांतक रस आवश्यकतानुसार	लशुनादि 1 गो. भोजनोत्तर (सर्पगंधा 1 गोली सोते समय)

(ग) परिणाम

- वेगबंद हुए	- वेग घटे	√	√
- लक्षण शमन हुए	- भयानुभूति न्यून हुई	√	√
- स्वास्थ्य सुधरा	- √	√	√

संदर्भ/ आहार :-

1. तेषामागन्तुरषुबन्धो भवत्येव कदाचित, स उत्तर कालमुपदक्ष्यते ।

तस्य विशेषविज्ञानं यथोक्तैर्लिङ्गाधिक्यमदोषलिंङ्गानुरूपं किंचित् ।

(च०नि० 8/10)

2. तस्मिन हीं X X X दक्षाध्वरोदध्वंसे X X

विविधभूताशुचि संस्पर्शादपस्माराणां X X ।

(च०नि० 8/12)

3-4. अनिमित्तागमादिव्याधेर्गभनादकृतेऽपि च आगमाच्चापस्मारं वदन्त्यन्ये न दोषजम् ।

सु०उ० 61/17-18

यस्यानुबंधस्त्वागन्तुर्दोषलिङ्गाधिक्याकृति ।

(च०चि० 10/51)

5. क्रमोणयोगाद्दोषाणां क्षणिक त्वात्तयैव च ।
आगभाद्वेश्वरूप्याच्च स तु निर्वर्ण्यतं बुधैः ।
देवे वर्ष त्यपि यथा भूमौ बीजानी कानिचित् ।
शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधि समुद्भवः ।
स्थामिनः केचिद्ल्पेन कालेन भिवर्धिताः ।
दर्शयन्तिः विकारास्तुं विश्व रूपान्नि सर्गतः ।
अपस्मारो महाव्याधिस्तस्माद्दोषज एव तु ।

सु०उ० 61/18-21

6-7. ते पूर्वं केवला पश्चान्निजैर्व्यामिश्र लक्षणाः ।
हेत्वौषधि विशिष्टाश्च भवन्त्यागन्तवो ज्वराः ॥

(च०चि० 3/126)

8. आगन्तुरष्टमो यस्तु स निर्दिष्टश्चतुर्विधः ।
अभिघाताभिषङ्गाभ्यामभिवाराभिशापतः ॥

(च०चि० 3/111)

9. शस्त्रलोष्टकशाकाष्ठ्मुष्टयरत्नितलद्विजैः ।
तद्विधैश्च हते गात्रं ज्वर पस्यादभिघातजः ॥
तत्राभिघातजे वायुः प्रायो रक्तं प्रदूषयण् ।
सव्यथाशोक वैवर्ण्यं करोति सरूजं ज्वरम् ॥

च०चि० 3/112-113

10. कामशोकभय क्रोधैरभिषत्तस्ययोज्वरः ।
सोऽभिषङ्गज्वरो ज्ञेयोयश्चभूताभिषङ्गजः ।
कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तंत्र्योमलाः ॥
भूताभिषङ्गातकुप्यन्ति भूतसामान्य लक्षणाः ।
भूताधिX Xरे व्याख्यातं तदष्टविध लक्षणम् ॥

च०चि० 3/114-116

कामादिजानामुद्दिष्टं ज्वराणां यद्विशेषम् ।
कामादिजानां रोगाणामन्येषामणि तत्स्मृतम् ॥

च०चि० 3/125

केषांचिदेषां लिङ्गानां संतापो जायते पुरः ।
पश्चात्तुल्यं तु केषां चिद्देषु कामज्वरादिषु ॥

च०चि० 3/124

मनस्यभिहते पूर्वं कामाद्यैनं तथा वलम् ।
ज्वरः प्रान्पोति वाताद्यैर्देहां चावन्न दुष्यति ॥

च०चि० 3/129

* X X 'वाताद्यै दुष्यति' के स्थान पर पाठान्तर
X X 'कामाद्यैर्मनो यावन्न दुष्यति' (गंगाधर)

11. ध्याननिःश्वासबहुलं लिङ्गं कामज्वरे स्मृतम् ।

च०चि० 3/122

कामजे चित्त विभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् ।
हृदये वेदना चाशु गात्रश्च परिशुष्यति ॥

(सु०उ० 39)

12. शोकजे वाष्प वहुले (च०चि० 3/122)
X X भयात्प्रलापः शोकाच्च X X (सु०उ० 39)

13. X X त्रास प्रायं भय ज्वरे (च्र०चि० 3/122)
भयात्प्रलापः या 'आशु गाडाञ्च परिशुष्यति भयात्'
(पाठान्तर) सु० 339

14. क्रोधजे वहुसंरम्भः X X (च०चि० 3/123)
X X भवेत कोपाञ्च वेपथु । सु०उ० 39-

15. X X भूतोवेशेत्वभानुषम् । च०चि० 3/123
भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्य कम्पनरोदनम् । (सु०उ० 391-)

X X भूत सामान्य लक्षण: । च०चि० 3/116

16. मूर्च्छागोहमदग्लानिभूयिष्ठ विष संभवे (च०चि० 3/123)
श्यावास्यता विषकृते दाहातिसारहृदग्रहा: ।
अभक्तरूक पिपासा च तोदो मूर्च्छा बलक्षय: ।

सु०उ० 39/-

17-18. अभिचाराभिशापाभ्यो सिद्धानांय: प्रवर्तते सन्निपातज्वरो घोर: स विज्ञेय: सुदु: सह: । सन्निपात ज्वरस्योक्तं लिङ्गंयज्ञस्यतत्स्मृतम् चित्तेन्द्रियशरीराणामर्तयोऽन्याश्च नैकश: । प्रयोगत्वभिचारस्य दृष्टवा शापस्य चैवहि स्वयं श्रुत्वाऽनुमानेन लक्ष्यते प्रशमेन वा । वैविध्यादभिचारस्य शापस्यचतदात्मके यथाकर्मप्रयोगेण लक्षणं स्यात्पृथग्विघम् ।

(च०चि० 3/118-121)

अभिचाराभिशापाभ्यां मोहतृष्णा च ज्ञापते ।

(सु०उ० 39)

तत्रभिचारि कैर्मन्त्रैहूर्यमानस्य तप्यते ।
पूर्वचेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृड्भ्रमै: ।

(अ०नि० 2/-

19. हितान्यपस्मारिभ्यस्तीक्ष्णानि चैव संशोधनान्युपशम
यथा स्वं मन्त्रादीनि चागन्तुसंयोगे ।

(च०नि० 8/1

यदादोष निमित्तस्य भव त्यागन्तुरन्वय:
तदा साधारणं कर्म प्रवदन्ति भिषग्वर: ।

(च०नि० 8/15

यस्यानुबंधस्त्वागन्तुर्दोषलिङ्गाधिकाकृति: ।
पश्येत्तस्य भिषककुर्यादागन्तून्मादभेजम् ॥

(च०चि० 10/51

उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां तु विशेषत: ।(सु०उ०61/23
पूजां रूद्रस्य कुर्वीत तदगणानां च नित्यश: ।

(सु०उ०61/26

मंगलल्यानि च धारयेत् । (सु.उ. 61/41)

बैद्यनाथ स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना, आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन, भूख न लगना तथा ऋतु धर्म के समय होने वाली तकलीफ व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

उत्तराखण्ड के जनपदों में कुटीर उद्योग एवं खाद्य-सामग्री व औषधोपयोगी वनस्पतियाँ

डा० मायाराम उनियाल, सेवानिवृत्त निदेशक (आयुर्वेद) वनौषधि विद्यापति (श्रीलंका)

आदिकाल से ही मानव एवं जीव-जन्तु अपनी आवश्यकताओं के लिये वनसम्पदा पर निर्भर रहता आया है। हमारे दैनिक उपयोग की अनेकानेक वस्तुओं का स्रोत वनसम्पदा ही है, जिसमें जीवन रक्षक जड़ी-बूटियाँ, कृषि में उपयोगी काष्ठ, चित्रकला, वाद्यसंगीत, कुटीर उद्योग, ऊर्जा, मसाले, सुगन्धित तैल, खाद्य-सामग्री में उपयोगी वनस्पति पादप मुख्य हैं। यद्यपि विस्तृत रूप से औषधोपयोगी उत्तराखण्ड हिमालय की जड़ी-बूटियों का उल्लेख प्रस्तुत रचना में दिया गया है तथापि संक्षिप्त जानकारी इस तालिका में दी जा रही है जोकि निम्न प्रकार है।

इमारती काष्ठ के उपयोगी वृक्ष

1. लोरी, सुराछ, Cupressus torulosa Don :- इसका काष्ठ देवदार से भी मजबूत होता है। 1800 मीटर से 2400 मीटर की ऊँचाई पर पाया जाता है।
2. देवदारु, देवदार (Cedrus deodara L) काष्ठ, तेल, बुरादा, इमारती लकड़ी एवं औषधोपयोगी बहुवर्षायु हिमालय की सदाहरितवृक्ष।
3. सरल, चीड़ - Pinus Rox - burghii sargent बहुवर्षायु इमारती लकड़ी में उपयोगी वृक्ष एवं विरोजा उद्योग (लीसा) तैयार करने का मूल स्रोत है। बीज चिलंगोजे की तरह खाये जाते हैं। उत्तराखण्ड में राज्य राजस्व प्राप्ति का यह मुख्य वृक्ष है।
4. कैल - Pinus excelsa wall इमारती काष्ठ में उपयोगी।
5. राई, रोई Picea morinda link, लकड़ी जलावन के रूप में एवं छाल मकान (छप्पर) की छत बनाने के काम में उपयोगी।
6. मोरीण्डा, तालीस Abies weffiana lindi, A pendrow spach. काष्ठ का उपयोग इमारती लकड़ी के लिये एवं पत्तियों का उपयोग औषध के रूप में किया जाता है।
7. तुन, तृण, Cedrela toona ionle काष्ठ इमारती लकड़ी हेतु।
8. शीशम, शिंशपा Dalbergia Roxle काष्ठ इमारती लकड़ी हेतु।
9. शाल Shorea robusta gaertn काष्ठ इमारती लकड़ी हेतु।
10. हरिद्र, हल्दू Adina cordifolia Benrex Hook काष्ठ इमारती लकड़ी हेतु।
11. बांझवान Querous incana Roxle काष्ठ की उपयोगी कृषि उपकरणों इमारती काष्ठ के रूप में एवं पत्तियों का उपयोग पशु चारा हेतु उपयोगी है।
12. सिनिश, सांदन Qugeina dalfergioides Benth काष्ठ का उपयोग घरेलू उपयोग के बर्तन एवं कृषि उपकरण बनाने एवं पत्तियों का उपयोग पशु चारा के लिए किया जाता है।

ऊर्जा के लिए उपयोगी वनस्पतियाँ

13. दारुहरिद्रा, किनमोड़ Berberis aristata DC, B.asiatica Roxle.B.Rescium Hook.
14. भोजपत्र (भूर्ज) Betula utilis D D. तांत्रिक कामों में भोजपत्र का उपयोग एवं घरेलू कामों में छतरी के रूप में छाल का उपयोग किया जाता है।
15. महानिम्ब, डैंकन Melia azedarach A. Juss छाल और फलों का उपयोग स्थानिक लोग चिकित्सा में करते हैं। पत्तियों का उपयोग पशुचारा में किया जाता है।
16. बांझ (ओक)(Quercus incana Roxle) काष्ठ का उपयोग कृषि उपकरणों एवं लघु उद्योग में पत्ती का उपयोग पशुचारा में किया जाता है।
17. खरसू (Quercus semecarpifolia) काष्ठ का उपयोग इमारती काष्ठ के रूप में एवं पत्र का उपयोग पशुचारा में किया जाता है।
18. कुरूवक, बुरांस (Rhododendron arborium Sm.) इसके फूलों का शीतल पेय शर्बत के रूप में तैयार किया जाता है।
19. सिमरू (Rhododendon campanilatim D.Don) हिमनदों के आस-पास इसके गुल्म पाये जाते हैं। पुष्प मनमोहक एवं रंगबिरंगे सुगन्धित।
20. धूपी, तली (Rhododendron anthopogon D. Don) पुष्प सुगन्धित एवं पत्ती का उपयोग चिकित्सा में करते

हैं । चायपत्ती के रूप में भोटिया प्रयोग करते हैं ।

कुटीर उद्योग में उपयोगी पादप :-

21. रींगाल (वैंत) Arundinavia falcata Nees
    A. Spathiflora Gamble
    A. Jaunesavensis Gamble

    ये किस्में 1800 मीटर की ऊँचाई से लेकर 2,500 मीटर की ऊँचाई तक उत्तराखण्ड में पाई जाती हैं । कुटीर उद्योग चटाई, टोकरियाँ, कण्डी, आदि स्थानिक उपयोग की वस्तुएं इन किस्में से बनाई जाती हैं । इन किस्मों का भी दिनों-दिन ह्रास होता जा रहा है । इनके रोपण कार्यक्रम पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है । अन्यथा लुप्त प्राय: की श्रेणी में ये किस्में आ जायेंगी ।
22. मालझन, मालू (Bauhinia Vahlli W. ofa) इसके बीज भूनकर ग्रामीण खाते हैं । पत्तियों का उपयोग पत्तलों एवं पशुचारा में किया जाता है । रेशे का उपयोग रस्सी बनाने के काम में किया जाता है ।
23. भूर्ज, भोजपत्र (Betula utilis D.Don) धार्मिक महत्व का वृक्ष है । भोज वृक्ष के छाल का उपयोग कागज के रूप में एवं तान्त्रिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है । ग्रामीण लोग छाल पत्र का प्रयोग छाता बनाने के लिये करते हैं पत्तियों का प्रयोग पशुचारा में किया जाता है ।
24. गेंठी (Bochmeria rugulosa wedd.) इसके काष्ठ से दूध, घी, दही आदि रखने के लिये बर्तन बनाये जाते हैं । कुटीर उद्योग का यह उपयोगी वृक्ष है । काष्ठ कला में इस वृक्ष की महत्ता है ।
25. गेंठी (Boehmeria platyphylla D.Don) इसकी छाल से अच्छे किस्म का रेशा तैयार किया जाता है । पत्तों का उपयोग पशुचारा में किया जाता है ।
26. पापरी (Buxus wallichiana Baill) इसके काष्ठ का उपयोग काष्ठकला लकड़ी के खिलौने एंव बक्से आदि बनाने के काम में किया जाता है ।
27. अखरोट (Juglans reiga Linn.) इसकी खेती पहाड़ों में की जाती है । सूखे मेवों के रूप में गिरी का उपयोग किया जाता है । छाल का (दन्दासा) के नाम से मंजन के रूप में प्रयोग होता है । काष्ठ का उपयोग उद्योग में किया जाता है ।
28. बिजया, भांग (Cannabis sativa Linn.) बीज उपयोग औषध के रूप में किया जाता है तथा इसके बीजों से चटनी तैयार करते हैं । काष्ठ से तैयार किया जाता है । पत्र मादक होते हैं ।
29. बावली (भावड़घास)(Eudaliapis binata) इसके से रस्सियां तैयार की जाती हैं । इसकी लकड़ी प्रयोग कागज तैयार करने के लिये विशेष रूप से है ।
30. भीमल, (Grewia oppositifolia Roxle) इसके से रस्सी बनाई जाती है । यह कुटीर उद्योग महत्वपूर्ण वृक्ष है । दूध बढ़ाने के लिये मवेशियों इसकी पत्ती चारे के रूप में प्रयोग की जाती है ।
31. कण्डाली (बिच्छूबटी) (Girardiana divers Eriss.) काण्ड से रेशे तैयार किये जाते हैं । का शाक ग्रामीण खाते हैं ।
32. कपासी (Gerbera gossypina) इसके रेशों से किस्म के थैले तैयार किये जाते हैं ।
33. चीड़, कुल्ये, (Pinis roxburghii Sarg) काष्ठ इमारती लकड़ी में विशेष उपयोग किया जाता है इसके निर्यास (गोंद) को विरोजा कहते हैं । का उद्योग धन्धों में विशेष उपयोग होता है ।
34. आसीन, असन (Terminalia alata) इसके काष्ठ कृषि उपकरण तैयार किये जाते है ।
35. तुन, तृण (Cedrela tenna Roxle) इसकी लकड़ी कृषि उपकरण बनाये जाते हैं ।
36. लालजड़ी - रतनजोत (Arnelia benthamii (Wal Don) रंगाई के काम में मूल का उपयोग किया है ।
37. दोलू आर्चा (Rheum emodi wall. Rheum aus D. Don) मूल का उपयोग औषध उपयोग के रंगाई के काम में उपयोग किया जाता है ।
38. टिम्बुरू, तिमुर (Zenthżylaum alatum Roxb.) लकड़ी से छड़ियां व लाठियां बनाई जाती हैं ।

का चिकित्सा में उपयोग किया जाता है ।

मसालों में उपयोगी वनस्पतियाँ

39. चोरा, चोरक (Angelica glauca Edgw.) मूल, बीज
जम्मू फर्न (Allium Stracheyi Baker) पंचांग
(Allium govanianum wall) पंचांग
(Allium wallichil kunthi) पंचांग
(Allium humile kunthi) मूलकन्द
पत्र का शाक के रूप में व्यवहार होता है ।
40. तेजपात (Cinnamomum tamala nees) पत्र, छाल
41. काला जीरा (Carum bulbocastanum koch) बीज
42. थांयों (Buplerum flacutum Linn.) बीज
(Pimpinella sp.)

स्वयंजात फल :-

43. भमोरा (Cornus capitata wall) फल
44. कटफल का फल (Myrica nagi Thunb) फल
45. चूलु (Prunus armeniaca Linn.) फल, गिरी तेल
(Rubus ellipaticus) घरेलू काम
46. जामुन, फलेण्डा (Syzygium jambos Linn) फल
47. शहतूत, केनू (Hiorus alba Linn.) फल
48. तिमला, तिमुलु (Ficus Roxburghii wall) फल
49. बेड़ू, जंगली अंजीर (Ficus palmata Forsk) फल
50. किनगौड़, दारुहरिद्रा (Berberis lycium Royle) फल
(B. Asiatica Roxb.) फल पुष्प
51. खैना (Ficus saemocarpa miq.) फल
52. आड् आरूक (Prunus persica Benk) फल
53. पुलम आरूक (Prunus communis Hus.) फल
54. मेहल आरूक (Pyrus pashia Ham.) फल
55. खिंगारू (Cotoneaster microphylla wall) फल
56. खजूरी (Phoenix humilis Royle) फल
57. खड़िक (Celtis australis Linn.) फल
58. भ्मील, भीमल (Grewia oppositifolia Roxb.) फल

शाक में उपयोगी वनस्पतियाँ :-

59. वरमूला (Megacarpaca polyandra Benth) पत्र
60. जरगू (Phytholacca latfenia Hans.) पत्र
61. कण्डाली (Girardiana diversifolia Eriss.) पत्र
62. तैड़,तैड़ (Dioscorea felophylla voigh) मूल कन्द
63. कांचनार, ग्वीरियाल (Bauhinia purpurpurea Linn.) पुष्प कलिका
64. लिंगड़ू (Pteridium aquilium) इसके पचांग की कोपलों की सब्जी बनाई जाती है ।
65. तिमला, तिमुल (Ficus roxburghii wall) कच्चे फलों का शाक खाया जाता है ।
66. साकिना, सकिनू (Indigofera heterantha wall) पुष्प कलिका का शाक ।
67. मीठी नीम, कड़ीपत्ता (Murraya Keenigie spreng) पत्ती का उपयोग दालों में किया जाता है ।
68. कोटू औगल (Fagopyrum escubntum Moen.) पत्तियों का एवं बीजों का आटा खाया जाता है ।
69. चौलाई, मारछा (Amaranthus blitum Linn) पत्र का var oleracea Duthic शाक एवं बीज, चौलाई दाना के रूप में आटा तैयार किया जाता है ।

घरेलू चिकित्सा में स्थानिक जड़ी बूटियों का उपयोग

70. वच, वत (Acorus calamus Linn.) मूल, (राई जोम)
71. मीठा विष मिठू, मूल कन्द ।
72. किनगाड़ (Berberis aristata DC.) रसोन्त (घन) ।
73. तोतरो (Berloexis jatamansi DC.)रसौल (धनसान)
74. मांसी (Nardostachfs Jatamansi DC.) भौमिक काण्ड ।
75. सुमयां, तगर (Valer Wallichil DC) मूल ।
76. हत्थाजड़ी, मूल ।
77. सालमपज्जा हत्थाजोड़ी (Orichis latifolia Linn.) मूल।
78. ढोलू आर्चा (Rheum emodi wall) मूल ।
79. कड़वी केदारी कड़ू (Picrorhiza kurroa Royle) मूल काण्ड ।
80. चिरैतू (Swertia chirata Buch Ham.) पचांग ।
81. टिमरू (Zanroxylm alatum Roxb.) पंचाग बीज छाल ।
82. वन्पशा (Viola serpens wall) पुष्प पत्र ।
83. निर्गुण्डी सिमारू (Vitex negundo Linn.) पत्र ।
84. धौलू छाप (Wood fordia fruticosa Kurz) पुष्प ।

८५. धूप गूगल (Jurinea macrooephala Benth) मूल ।

८६. भेंकल (Prinsepia utilis Royle) बीज तैल ।

८७. ब्रह्मकमल (Saussura Obvallata) पुष्प ।

८८. मिंडुण (Ampelocissus latifolia) फल ।

८९. बकरौली (Osyris wighiana) पत्र ।

इसकी पत्तियाँ उबाल कर सूखा लेते हैं फिर चायपत्ती के स्थान पर उपयोग करते है ।

९०. विष भस्या (Andrachne cordifolia) पत्र
इसकी पत्तियों को बिच्छू के काटने पर लगाते हैं ।

९१. तुंगलो तुंगला (Rhus parviflora) इसकी पत्तियों को सुखाकर तम्बाकू के स्थान पर प्रयोग करते हैं । पके फल खाये जाते हैं ।

92. हेमर (Alnus Sp.) इसकी छाल का सन्धिविच्युति एवं अस्थिभग्न में प्लास्टर के करते हैं ।

93. पंया, पदक (Prunus cerasoides D Don) प्रकार दहिया, नीलकंठी, मंजीठ बेल कूजा आदि वनस्पतियां स्थानिक दैनिक उपयोग में की है । वनसम्बर्धन एवं पर्यावरण संरक्षण में प्रजातियों विशेष उपादेयता है । उत्तरांचल राज्य को हर्बल घोषित करने के बाद राज्य सरकार को उपरोक्त वनसम्पदा के विकास पर योजनाबद्ध तरीके गवेषणात्मक अध्ययन की आवश्यकता है ।

परीक्षा के समय आपके लाडले को जरूरत है
एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है । पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है । ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए ...

बैद्यनाथ
शंखपुष्पी
शरबत

एकाग्रता लाए, समझ जगाए।

आज, हररोज और वर्षभर

प्राकृतिक चिकित्सा-आयुर्वेद का एक अंग विशेष

*डा० रजनी बाला ** डा० विकास चन्द्र गुप्ता *** डा० लक्ष्मीकान्त द्विवेदी

प्राकृतिक चिकित्सा या नैसर्गिक चिकित्सा वस्तुतः तत्व चिकित्सा है जिसका शाब्दिक अर्थ है, षट् तत्वों द्वारा त्रितापों दैहिक, दैविक तथा भौतिक की चिकित्सा करना अर्थात् आत्मा, आकाश तत्व, वायुतत्व, अग्नितत्व, जलतत्व एवं पृथ्वी तत्व के योग से सर्वप्रकार के रोगों का निवारण।

प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञान या प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली उतनी ही पुरानी है जितनी प्रकृति स्वयं या इसके आधारभूत तत्व आकाश आदि हैं। यह चिकित्सा पद्धति असल में जीवनयापन की सही विधि बताती है। इस विज्ञान में जो नियम, जो सिद्धांत उत्तम स्वास्थ्य को सुरक्षित रखने के लिए काम में लाये जाते हैं, वे ही नियम रोग होने पर उसके निवारणार्थ भी प्रयोग किये जाते हैं। अतः इस चिकित्सा के माध्यम से स्वस्थ व्यक्ति एवं रोगी व्यक्ति दोनों लाभ प्राप्त कर दीर्घ जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

आयुर्वेद अर्थात् आयु का वेद (जिसके द्वारा आयु के हित-अहित, सुख-दुख आयु हित/अहित मान एवं आयुर्वेद का ज्ञान होता है या आयु जिसके द्वारा आयु जानी जाती है) का प्रयोजन भी स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना तथा रोगी के रोग का निवारण करना है।

अतः विज्ञान की वह शाखा जो व्यक्ति के जन्म मरण या आयु से सम्बन्धित है, आयुर्वेद है। महर्षि चरक का ग्रन्थ - ''चरक संहिता'' जो काय चिकित्सा प्रधान ग्रंथ है, में प्रथम अध्याय का नाम ''दीर्घञ्जीवितीय'' है जिसमें इन तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है जिसके द्वारा दीर्घजीवन की प्राप्ति होती है। प्राकृतिक चिकित्सा का मुख्य उद्देश्य भी दीर्घजीवन की प्राप्ति है। अतः दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा में, आयुर्वेद के समान, उन विधियों को बताया गया है जिसका प्रयोग रोगावस्था एवं निरोगावस्था दोनों में विवेक (बुद्धिमानी) के साथ, समान रूप से करके व्यक्ति अपने जीवन को आनन्दमय एवं दीर्घ बना सकता है।

प्राकृतिक चिकित्सा विभिन्न प्रकार से आयुर्वेद के साथ समानता रखती है, जिनकी पुष्टि निम्नांकित तथ्यों द्वारा होती है -

1. प्रकृति के अपरा एवं परा दो भेद हैं। अपरा प्रकृति जड़ है किन्तु परा प्रकृति ईश्वर की प्रेरणा शक्ति से विख्यात है जो प्रत्येक प्राणी को जीवन प्रदान करती है। आयुर्वेद में भी सृष्टि की उत्पत्ति प्रकृति एवं पुरुष से मानी जाती है। सुश्रुत ने सृष्टि उत्पत्ति क्रम में 24 तत्वों द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति बतायी है जिसमें सर्वप्रथम प्रकृति एवं पुरुष का संगम बताया है। सुश्रुत ने शारीर स्थान I में प्रकृति को जड़ अर्थात् अचेतन तथा पुरुष को चैतन्य युक्त बताया है।
2. जिस प्रकार प्राकृतिक सृष्टि अनादि एवं अनन्त है, उसी प्रकार आयुर्वेद भी अनादि, अनन्त अर्थात शाश्वत है और वह प्राकृतिक नियमों के अनुसार है। यही कारण है कि प्राकृतिक चिकित्सा जो सही अर्थों में विशुद्ध आयुर्वेद के समान है, का जितना अच्छा वर्णन वेदों में है उतना अच्छा वर्णन संसार के किसी भी चिकित्सा सम्बन्धी ग्रन्थों में मिलना दुर्लभ है।
3. तीसरा लक्षण अपौरुषेय होना, अर्थात् मनुष्यकृत न होना है। जिस प्रकार चारों वेद अपौरुषेय है उसी प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा भी अपौरुषेय है।
4. प्रकृति की अनुपम देन को अपने दैनिक जीवन में उतारकर व्यक्ति स्वास्थ्य लाभ कर सकता है। प्रातः काल सूर्य नमन या प्रणाम करने से, उगते सूर्य के दर्शन करने से, ओस युक्त हरी घास पर चलने से दृष्टि शक्ति का वर्द्धन होता है। आयुर्वेद में भी मनुष्यों के लिए दिनचर्या, रात्रिचर्या तथा ऋतुचर्या का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। यह चौथा लक्षण है।
5. आयुर्वेद में माना जाता है कि अधिकतर रोग, अग्नि की मन्दता से होते हैं। अजीर्ण मन्दाग्नि का कारण होता है और वह अजीर्ण. कुपित दोषों के कारण होता है :

''सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपितादोषाः ।

अन्यत्र सुश्रुत ने भी कहा है -

''कुपितानां हि दोषाणाम् शरीरे परिधावताम् ।

---

*पी.जी. अध्येता, र.शा.एवं भै.क., रा.आ.सं., जयपुर **जे.आर. -II, आई.एम.एस., बी.एच.यू., वाराणसी
*** प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष, र.शा. एवं भै.क., राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर .

यत्र संगः खवैगुण्याद् व्याधिस्तत्रोपजायते ।। (सु०)

सब रोगों का मूल कारण शरीर स्थित विजातीय द्रव्य है जिनकी उत्पत्ति शरीर में प्रकृति के नियमों को भंग करने से होती है । यह प्राकृतिक नियम है कि रोग के कीटाणुओं का अस्तित्व उन्हीं शरीरों में सम्भव है जिनमें पहले से ही रोग का कारण विजातीय द्रव्य विद्यमान होता है या जो रोग ग्रस्त हैं, या जिनमें रोग के ग्रहण करने की योग्यता है, लेकिन जो शरीर पोषक तत्वों से युक्त एवं विजातीय द्रव्यों से मुक्त है, उन पर जीवाणु/परजीवी का आक्रमण होना असम्भव है ।

6. प्राकृतिक नियमानुसार मिथ्या आहार विहार ही समस्त रोगों का कारण माना जाता है क्योंकि मिथ्या आहार-विहार द्वारा शरीर में स्थित अग्नि (जठराग्नि) की मन्दता के कारण आम की उत्पत्ति होती है तथा यह आम अन्य अग्नियों को भी दूषित करते हुए आम विष जिस देश में संग्रहित होता है उसी में त्रिदोष कोप पूर्वक विकार उत्पन्न हो जाता है ।

आयुर्वेद में मिथ्या आहार-विहार के अन्तर्गत रोगों की उत्पत्ति के 3 कारण (अतियोग, अयोग, मिथ्यारोग) माने गये हैं । इसी आधार पर 18 प्रकार के उपशय का वर्णन पंच निदान में समाहित किया गया है । केवल आहार सुधार द्वारा रोगी मनुष्य को रोग मुक्त किया जा सकता है । पथ्य पर चलने वाले निरोगी रहते हैं और अपथ्य सेवी को रोग जल्दी पकड़ता है एवं चिकित्सा में भी पथ्य आहार-विहार का महत्व है बिना पथ्याहार विहार चिकित्सा में अच्छी चिकित्सा भी रोग मुक्त में समर्थ नहीं है ।

''पथ्ये सति गदार्तस्य किं औषधनिषेवणैः ।
पथ्ये सति गदार्तस्य किं औषधम् निषेवणै ।।

7. दोनों चिकित्सा पद्धतियों में यह माना जाता है कि सभी रोग एक, उनके कारण एक, उनकी चिकित्सा भी एक होती है । विजातीय द्रव्य ही सभी रोगों का कारण है तथा उनको नष्ट करना ही रोगों की चिकित्सा है । आयुर्वेद में भी रोगों की एकरूपता एवं उपचार की एकरूपता में विश्वास किया जाता है अर्थात् रोगों के अनगिनत नाम तो लिये जाते हैं वह सिर्फ यह समझाने के लिए कि पीड़ा शरीर के किसी अंग में और किस तरह की है । शरीर के किसी स्थान या समूचे शरीर में कुपित दोष अथवा आमविष को दूर कर देना ही वास्तविक चिकित्सा है जो प्रत्येक रोग में केवल एक ही प्रकार की (धातु साम्य के लिए) होती है ।

''प्रवृतिधातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यथि धीयते ।''

8. दोनों चिकित्सा पद्धतियों में पंचमहाभूतों को आधारभूत माना है । प्राकृतिक चिकित्सा के अन्तर्गत जल चिकित्सा, अग्नि चिकित्सा इत्यादि का समावेश है ।
9. आयुर्वेद में भी प्राकृतिक चिकित्सा के समान दोषों को उभाड़कर या शखाश्रित दोषों को कोष्ठाश्रित करके शरीर से बाहर निकालने का विधान है जिससे हुए रोग मिट जाते हैं एवं नये रोग होने नहीं पाते ।

संक्षेप में - मानव ही नहीं अपितु पशु-पक्षी भी नैसर्गिक या प्रकृति के महत्व से वंचित नहीं हैं । ऐसा प्रायः देखा जाता है कि प्रकृति के प्रांगण में विचरने वाले पशु-पक्षी अपने सारे कार्य नैसर्गिक प्रकृति के अनुसार करते हैं । इस मायने में मानव की अपेक्षा ये प्रकृति के अधिक नजदीक हैं । जब उनके शरीर में विजातीय द्रव्य एकत्र हो जाते हैं तब वह छर्दन (उल्टी) करके उनको शरीर से बाहर निकाल देते हैं । पंचकर्म का वमन कर्म भी इसी सिद्धान्त पर आधारित है । आयुर्वेदिक चिकित्सा में संशोधन कर्म का विशेष महत्व है क्योंकि इसके द्वारा रोग पुनः उभरते नहीं हैं और दोष साम्यावस्था में रहते है जो आरोग्य का प्रतीक है -

''रोगस्तु दोष वैषम्य, दोष साम्यारोग्यता ।।'' इति

अतः यह कहा जा सकता है कि निसर्गोपचार या प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त भी आयुर्वेद में समाहित हैं । अर्थात् वस्तुतः निसर्गोपचार भी आयुर्वेद का ही अंग विशेष है, जहाँ स्वास्थ्योभयन तथा रोगी की चिकित्सा करने के प्राकृतिक संसाधनों के युक्तिपूर्वक उपयोग पर विशेष बल दिया जाता है ।

हृदय रोग : निदान एवं उपचार

***डा० नन्द किशोर दाधीच, एम.डी. (आयु.)**

आज के समय में हृदय रोग सम्पूर्ण विश्व में महामारी का रूप धारण करता जा रहा है । ऐसा नहीं है कि हृदय रोग से केवल धनी व्यक्ति ही ग्रसित होते हैं बल्कि हर वर्ग के लोग इस रोग से ग्रसित हो रहे हैं ।

पूर्व काल में व्यक्ति आयुर्वेदोक्त दिनचर्या-रात्रिचर्या का पालन करता था जिसके कारण व्यक्ति को रोग नहीं होते थे और रोग हो भी जाते थे तो वे अल्प बलवान होते थे जो अल्प चिकित्सा से ही नष्ट हो जाते थे । परन्तु इस समय व्यक्ति अपने आप में इतना व्यस्त है कि उसके पास अपने लिए समय नहीं है तथा अपनी दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या का पूर्ण रूप से पालन नहीं कर पा रहा है । विभिन्न प्रकार के वसा युक्त भोजन करता है और परिश्रम न होने के कारण शरीर में उसका पाचन नहीं हो पाता है जिसके कारण वह रोग तेजी से फैल रहा है ।

हृदय हमारे शरीर का महत्वपूर्ण अंग है । यह प्राण का आयतन तथा सद्य:प्राण हर मर्म है । हमारे शरीर में विभिन्न प्रकार की चयापचय क्रिया होती रहती है जिनका सम्पादन करने के लिए रक्त की आवश्यकता होती है । कहा गया है कि ''रक्त जीव इति स्थिति'' अर्थात् रक्त के कारण ही व्यक्ति जीवित रहता है । हृदय हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका तक प्राणवायु को पहुँचने का कार्य करता है । यदि हृदय की गति अवरूद्ध हो जाये तो प्राण वायु (ऑक्सीजन) की कमी के कारण सम्पूर्ण शरीर निश्चेष्ट हो जाता है । इसलिए हृदय को प्रधान कहा गया है ।

हृदय के कार्य बन्द हो जाने पर इस शरीर का भी नाश हो जाता है इसलिए इसे सद्य:प्राण हर मर्म कहा गया है ।

हृदय रोग के निदान

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्ति चिन्ताभयत्रासगदातिचारा:
छर्द्यामसंधारण कर्शनानि हृदरोगकर्तृणि तथाऽभिघात:

(च.चि. 26/77)

1. अत्यधिक व्यायाम करना ।
2. तीक्ष्ण आहार का अधिक सेवन करना ।
3. अत्यधिक मात्रा में विरेचन और वस्ति का प्रयोग ।
4. हमेशा चिन्तित रहना ।
5. हमेशा भयभीत रहना ।
6. रोग की समुचित चिकित्सा न होना ।
7. अधिक वमन का होना ।
8. आमदोष का शरीर में होना ।
9. अधारणीय वेगों को धारण करना ।
10. शरीर को कृश करने वाले आहार-विहार का सेवन करना ।
11. हृदय या शरीर पर चोट लगना ।

ये हृदय रोग के कारण होते हैं ।

हृदय रोग के लक्षण :-

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकास हिक्काश्वासास्यवैरस्य तृषा प्रमोहा:
छर्दि: कफोत्क्लेशरूजोऽरूचिश्चहृदरोगजा: स्युर्विविधास्तथाऽन्ये

(च०चि० 26/78)

1. शरीर में प्राकृत वर्ण के अतिरिक्त अन्य वर्ण का होना ।
2. रोगी को मूर्च्छा का आना ।
3. शरीर के तापमान में वृद्धि होना अर्थात् ज्वर रहना ।
4. कास (खाँसी) का होना ।
5. हिक्का (हिचकी) रोग का होना ।
6. श्वास रोग का होना ।
7. मुख का स्वाद बिगड़ा हुआ रहना ।
8. प्यास का अधिक लगना ।
9. मोह का होना ।
10. वमन (उल्टी) होना ।
11. कफ का उत्क्लेश होना ।
12. शरीर या हृदय में वेदना होना ।
13. भोजन में अरुचि होना ।
14. अन्य लक्षण जो वातिकादि दोष भेद से होते हैं उनका होना ।

1. वातत हृदय रोग लक्षण :-

हृच्छून्यभावद्रवशोषभेदस्तम्भा: समोहा: पवनाद्विशेष

(च.चि. 26/79)

अर्थात् वातिक हृदय रोग में प्रमुखतया हृदय में शून्यता द्रवता शुष्कता का अनुभव होता है तथा भेदनवत

---

* लेक्चरर, एम.एल.आर. आयुर्वेद कॉलेज, चरखी दादरी (हरियाणा)

(चीरने के समान) पीड़ा स्तम्भ (जडता) तथा मोह का अनुभव होता है ।

2. पित्तज हृदय रोग :-

पित्तात्तमोदूयन दाहमोहाः संत्रासतापज्वरपीतभावाः ।

(च०चि० 26/79)

अर्थात् पित्तज हृदय रोग में आँख के आगे अंधकार का प्रतीत होना, शरीर में दाह विशेषकर हृदय प्रदेश में और मोह, त्रास (भय), ताप की वृद्धि, ज्वर और शरीर पीले वर्ण का हो जाता है ।

3. कफज हृदय रोग :-

स्तब्ध गुरू स्यात् स्तिमितं च मर्म कफात्
प्रसेकज्वरकासतन्द्राः ।

(च०चि० 26/80)

अर्थात् कफ से उत्पन्न हृदय रोग में हृदय जकड़ा हुआ, भारी और स्तिमित प्रतीत होता है तथा मुख से कफ का प्रसेक, ज्वर, कास और तन्द्रा होती है ।

4. त्रिदोषज हृदय रोग :-

"विद्याद् त्रिदोषं त्वापि सर्वलिंङ्गम्

(च०चि० 26/80)

त्रिदोषज हृदय रोग में तीनों दोषों के बताये गये सम्पूर्ण लक्षण मिलते हैं ।

5. कृमिज हृदय रोग :-

तीव्रार्तितोदं कृमिजं सकण्डूम्

(च.चि. 26/80)

कृमिज हृदय रोग में हृदय प्रदेश में कण्डू (खुजली) और अत्यधिक तीव्र वेदना होती है ।

बचाव के उपाय :-

आयुर्वेदीय साहित्य में रोग शारीरिक और मानसिक भेद से दो प्रकार के बताये गये हैं । शारीरिक रोग होने पर मन और मानसिक रोग होने पर शरीर भी प्रभावित होता है अर्थात् ये एक दूसरे के पूरक हैं । अतः हृदय रोग से बचाव के लिये हमें ऐसे आहार-विहार का सेवन करना चाहिए जो मन को प्रसन्न रखने वाला, शीघ्र पचने वाला अर्थात् शरीर में आम दोष उत्पन्न करने वाला न हो । शरीर में हार्दिक रक्त परिसंचरण के अतिरिक्त वृक्कीय रक्त परिसंचरण भी होता है । वृक्क् के द्वारा शरीर में स्थित विभिन्न प्रकार के विष का निर्गम होता है, यदि इनका उचित रूप में नि न हो तो सीधा प्रभाव हृदय पर पड़ता है ।

1. मन से सम्बन्धित :-

क. चिन्ता, ईर्ष्या, हर्ष, मोह से रोगी को बच चाहिये ।

ख. काम, क्रोध, भय से बचना चाहिए ।

यदि इनका व्यक्ति सेवन करता है तो उस आहार पर पूरी तरह से पाचन नहीं हो पाता है तथा नींद उसको उचित रूप से नहीं आती है और उनका प्रभाव हृद पर भी पड़ता है । अतः रोगी को सर्वप्रथम मन पर नियंत्र करना चाहिये ।

मन को नियंत्रित करने के लिये व्यक्ति को ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, यम, नियम, प्राणायाम का पालन कर चाहिये । इनके प्रयोग करने से व्यक्ति को सात्विक गुण की प्राप्ति होती है । व्यक्ति को सभी प्रकार के राग द्वेष से मुक्ति मिल जाती है । चरक ने सत्वावजय को चिकित्स में रोग निवृत्ति के लिये श्रेष्ठतम बताया है ।

2. आहार :-

हृदय रोगी के लिये आहार लघु एवं सुपाच्य होन चाहिये । अजीर्ण, अधिक भोजन, गुरू, स्निग्ध भोज तीक्ष्ण मिर्च मसाले का सेवन नहीं करना चाहिये । नमक का प्रयोग कम या नहीं करना चाहिये ।

आधुनिक समय में घी के लिये हृदयरोगों में मन किया हुआ है और इसे हृद रोगों का कारण माना गया है लेकिन चरक संहिताकार ने ताजा निकले मक्खन (नवनीत) को हृद्य (हृदय के लिये हितकर) माना है । परन्तु ध्यान रहे की आहार आदि का उतना सेवन किया जाय जो आसानी से पच जाय ।

हृदय रोगी के लिये जौ, बाजरा, मूँग, करेला परवल, मेथी, चौलाई, मुन्नका, अंगूर, आम, मौसम्मी का प्रयोग लाभप्रद है ।

चिकित्सा :-

हृदय रोगी का पेट साफ रहना चाहिये, उसके लिये रोगी को मृदु विरेचन का सेवन करते रहना चाहिये

इसके लिये हरड़ चूर्ण 2 ग्राम रात को गर्म पानी से लेना चाहिये । योग्य चिकित्सक की देखरेख में निम्न औषध योग सेवन योग्य है -

प्रात: सायम्
1. हृदयेश्वर रस - 125 मि.ग्रा.
प्रवाल पिष्टी - 250 मि.ग्रा.
1 X 2 द्राक्षावलेह- 25 ग्राम

2. भोजन के बाद
आरोग्यवर्धनी - 2 गोली
अर्जुनारिष्ट - 20 मि.लि. बराबर पानी मिलाकर

3. रात को
अमर सुन्दरी बटी - 2 गोली दूध के साथ

अथवा

प्रात: सायम्
1. हृदयार्णव रस - 250 मि.ग्रा.
कामदुधा - 250 मि.ग्रा.
ब्राह्मरसायन - 25 ग्रा.
1 X 2 दूध के साथ

2. भोजन के पूर्व
अविपत्तिकर चूर्ण 3 ग्राम
1 X 2 पानी के साथ

3. भोजनोत्तर
अश्वगंधारिष्ट 20 मि.ली. बराबर पानी से

4. रात को
द्राक्षादि वटी 2 गोली दूध के साथ

बैद्यनाथ

प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं । इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता ।

आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण अंग - वाजीकरण

* डा० अश्विन बी. बागड़े
** प्रो. ओ०पी० उपाध्याय

काम एक प्रबल सम्मोहन शक्ति है और वाजीकरण श्रेष्ठ साधन है । वाजीकरण कामशास्त्र का एक पूरक तंत्र है जो जीवन की मूलतम प्रवृत्ति 'काम' का नियमन करती है ।

वाजीकरण और कामशास्त्र ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं ।

काम का अर्थ है – 'इच्छा' या 'वासना'

भौतिक दृष्टि से यौन सम्बन्ध स्थापित करना 'काम' का एक प्रतीक है । इसी कारण स्त्री पुरुष के स्वाभाविक प्रेमबन्धन को 'काम' की संज्ञा दी गयी है ।

स्त्री की काम शान्ति और पुरुष को कामसुख की प्राप्ति वाजीकरण से होती है ।

'काम' एक कला है । 'काम' आनन्द और सौन्दर्य का मिलन-बिन्दु है । पशुवृत्तिमूलक कामवासना पर विजय पाकर व्यक्ति को सद्गृहस्थ बनाना और उसके चरित्र को उद्दात बनाने का कार्य वाजीकरण करता है ।

मूलतः शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से पूर्ण स्वस्थ ओर संस्कारवान पुत्र की प्राप्ति ही वाजीकरण का उद्देश्य है ।

इसी कारण वाजीकरण तंत्र को स्वतंत्र आयुर्वेदांग ानना धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक ावश्यकता है ।

्या है वाजीकरण ?

येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लभते नरः ।
व्रजेच्चाभ्याधिकं येन वाजीकरणमेव तत् ।।

च०चि० 2/4/51

जिस आहार-विहार, औषधि का विधिपूर्वक सेवन रने पर अश्व समान मैथुन सामर्थ्य और अधिक बार मैथुन रने की शक्ति प्राप्त होती हो और अल्पवीर्य पुरुष को ीर्यवान बनाता हो उस औषध, विहार, आहार को वाजीकरण हते हैं ।

जिस आहार-विहार, औषधि का विधिपूर्वक सेवन करने पर अश्व समान मैथुन सामर्थ्य और अधिक बार मैथुन करने की शक्ति प्राप्त होती हो और अल्पवीर्य पुरुष को वीर्यवान बनाता हो उस औषध, विहार, आहार को वाजीकरण कहते हैं ।

वाजीकरण सेवन का उद्देश्य

धर्म, अर्थ, प्रीति, यश ये प्रयोजन पुत्र के अधीन होते हैं । पुत्रोत्पत्ति नहीं हुई तो उसका नाम तथा यश समाप्त हो जाता है ।

संतति न होने के कारण उसको प्रतिष्ठा नहीं मिलती है और न ही उसका जय जयकार होता है, उसका जीवन मंगलमय नहीं होता ।

वह व्यक्ति शून्य-सा प्रतीत होता है, धर्म, अर्थ, काम आदि क्रिया से भी शून्य होता है, इसी कारण उसका जीवन व्यर्थ है ।

वह व्यक्ति संसार में अकेला रहता है, उसका किसी को भी लाभ नहीं होता इसी कारण

कामात् सुखं प्रजोत्पत्तिश्च – कामसूत्र 1/2/1

चरक और वात्स्यायन तंत्र में स्पष्ट वर्णन है कि गुणवान संतान और कामसुख के लिए वाजीकरण औषधियों का नित्य और निर्देशानुसार सेवन करें ।

वाजीकरण का फल –

अपत्यसन्तानकरं यत् सद्यः सम्प्रहर्षणम् ।
वाजीवातिबलो येन यात्यप्रतिहतोऽगंना ।।
भवत्यातिप्रियः स्त्रीणां येन येनोऽपचीयते ।
तद् वाजीकरणं विद्धि देहस्योर्जस्करं परम् ।।

अ.हृ.उ. 40/2-3

वाजीकरण औषधियों का सेवन करने के उपरान्त मनुष्य अश्व के समान सामर्थ्यवान होकर अश्व के समान संभोग कर, उसे संतुष्ट करता है इसी कारण वह पुरुष स्त्रियों में अधिक प्रिय होता है ।

वाजीकरण औषध सेवन से –

1. पुरुष का शुक्रमात्रा तथा शुक्रशक्ति प्रबल हो जाती है।

*** एम.डी. (स्कालर) **विभागाध्यक्ष**

मौलिक सिद्धान्त विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर ।

2. क्षीण, अल्पबल, अल्पवीर्य, पुरुष को वीर्य सम्पन्न बनाकर उसे संभोग क्रिया के योग्य बनाता है ।
3. वाजीकरण नंपुसकता और मानसिक क्लैब्य आदि विकारों को दूर कर मैथुन के समय शिश्नोत्तेजना एवं शिश्नकाठिन्य उत्पन्न कर प्रेमपूर्वक आनन्दसुखी जीवन का निर्माण करता है ।
4. वाजीकरण द्रव्य गर्भधारण के साथ-साथ गर्भ का पोषण भी करता है ।

मनुष्य की इच्छाओं में प्रबलतम इच्छा सन्तानोत्पादन है। संतान गृहस्थाश्रम को जोड़ने की जंजीर है ।

पुत्र प्राप्ति के लिए स्त्री संसर्ग और स्त्री संसर्ग के लिए शरीर में बल होना अत्यावश्यक है ।

इसी कारण बल, वीर्य, पौरुष, तेज, पराक्रम स्वर वाजीकरण का सेवन यौवनकाल में करना जरूरी है ।

वाजीकरण अयोग्य -

1. 17 वर्ष से कम एवं 80 वर्ष से ज्यादा आयुवाले ।
2. स्त्रीजाति को ।
3. अजितेन्द्रिय/चंचल ।
4. जननेन्द्रिय रोगों से पीड़ित, मानसिक रोगों से ग्रस्त ।
5. विधुर, अविवाहित ।
6. ब्रह्मचारी, साधु ।

उपरोक्त लोगों को वाजीकरण देना सर्वथा निषेध है।

वाजीकरण किसे दें ?

1. अपत्य प्राप्ति हेतु ।
2. कामसुख के लिए ।
3. अल्पवीर्य वाले पुरुष को वीर्यवान करने हेतु ।
4. नपुंसक में मैथुन शक्ति उत्पन्न करने हेतु ।
5. यौवनावस्था ।

जिसे अनेक पुत्र हो उसकी प्रशंसा की जाती है, उसे धन, यश, कीर्ति, की प्राप्ति होती है । वह भविष्य में सुखी संतुष्ट और पूजनीय रहता है ।

ऐसा भी देखा जाता है कि बलवान व्यक्ति जो मैथुनादि क्रिया में पूर्ण समर्थ होने पर भी संतानहीन हो और दूसरी तरफ दुर्बल पुरुष मैथुन कम करता है पर वह अधिक संतान युक्त है ।

वाजीकरण में स्त्री का महत्व -

वाजीकरण के क्षेत्र में हर्ष या कामवासना उत्पन्न करने में स्त्री ही श्रेष्ठ साधन है । इस दु:खी संसार में मृगनयनी सुन्दरियों के साथ सम्भोग करने का सुख ही एकमात्र सार है, और स्त्री शरीर वृषत्व का उद्दीपक है ।

स्त्री शरीर में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श सभी इन्द्रियों के मनोनुकूल भाव रहते हैं इसी कारण स्त्री ही प्रीति उत्पन्न करने में निश्चित ही श्रेष्ठ है ।

नित्यं प्रहृष्टया मान्यं नित्यं चामुक्तहस्तया ।

(चाणक्यनीति)

स्त्री रूपवान, गुणवान, सुन्दर हावभाव, कटाक्ष नयन वाली हो, प्रसन्न वदन गृहकार्य में निपुण एकनिष्ठ युवावस्था और ऋतुकालीन स्नान की हो, तथा कामासक्त और रोगरहित स्त्री उत्कृष्ट और परम वृष्य होती है ।

ऐसी उपरोक्त स्त्री के पास जाकर पुरुष विश्व की शोक चिन्ता और भय को भूल जाता है, जिसे देखकर मन, प्राण प्रसन्न और प्रफुल्लित हो जाते हैं, शरीर का एक-एक रोम रोमांचित हो जाता है ।

मैथुन करते समय पुरुष को ऐसा अनुभव हो कि वह पहली बार उस स्त्री से मैथुन कर रहा हो, और बार-बार सम्भोग करने पर भी उसकी तृप्ति न हो तो वह स्त्री अत्यन्त वृष्य होती है । जिसका नाम हृदय में आनन्द देने वाला, जिसको देखने से भी तृप्ति नहीं होती या जो नित्य नवीन प्रतीत होती हो । लज्जाशील किन्तु एकान्त में प्रगल्भ हो, और वाजीकर अन्तर्गत वर्णित 64 कलाओं से युक्त हो ।

वाजीकरण का सारा रहस्य स्त्री में छिपा है और स्त्री से ही संसार में सुख है ।

आचार्य वाग्भट्ट ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि -

1. वसन्त और शरदऋतु में-3-3 दिन के अन्तर से काम करें ।
2. वर्षा और ग्रीष्म ऋतु में-15 दिन का अन्तर से काम करें।
3. हेमन्त और शिशिर ऋतु में - यथेच्छा बलानुसार मैथुन

करें ।

वाजीकरण द्रव्यों का सेवन करने से मैथुन प्रवृत्ति बढ़ जाती है, और मैथुन द्वारा शुक्र का क्षय होता है, शक्ति शरीर में संचित नहीं रहती । अतः अपनी शक्ति देखकर और धातुपुष्टि होने के बाद संभोग करना चाहिए ।

कामवर्द्धक आहार -

वाजीकरण में आहार द्रव्यों को 3 श्रेणी में रखा गया है ।

शुक्रजनक - जो औषधियाँ वीर्य की वृद्धि करती हैं ।
जैसे :- दुग्ध, घी, विदारी, बला, शतावरी, मूसली, बादाम ।

शुक्रप्रवर्तक - जो औषधियाँ केवल शुक्र का प्रवर्तन करती हैं ।
जैसे :-माष, अकरकरा, कौंच, मदिरा, धतूरा, स्त्री-स्पर्श, मानस संकल्प ।

जनक प्रवर्तक - शुक्र का उत्पादन और प्रवर्तन जो करती है ।
जैसे :-भांग, कुचला, गांजा, कस्तूरी, साल मिश्री ।

मांसवर्ग में - मुर्गा, शूकर, तित्तिर, बकरे का अण्डकोष आदि ।

फलवर्ग में :-बादाम, काजू, पिस्ता, अंजीर, अंगूर, सिंघाड़ा, गाजर आदि ।

गन्ध द्रव्य में:-केशर, कस्तूरी, जायफल, कपूर, लौंग, दालचीनी आदि ।

रस भस्म में - वंग, लौह, स्वर्ण, पारद, अकीक आदि ।

औषधद्रव्य :-

शिलाजीत, धतूरे और केवाँच के बीज, वाराहीकन्द, विदारीकन्द, सफेद मूसली, तालमखाना बीज, अकरकरा आदि ।

मांस, मद्य और उड़द, लहसुन, प्याज ये भी वासना बढ़ाते हैं ।

विहार :-

कस्तूरी, केशर, चंदन, अगर आदि सुगन्ध द्रव्यों से उबटन और सुन्दर स्त्रियों द्वारा सवाहन के बाद ऋतु अनुसार स्नान करना ।

जूही, चमेली, मौलश्री आदि फूलों से सुसज्जि उत्तम शय्या पर बैठकर संगीत की स्वर लहरियों या प्रि स्त्रियों के आभूषण का शब्द सुनना कामेच्छा बढ़ाता है ।

मधुर और सुगन्धित फूलों की माला धारण करें सुगन्ध वाजीकरण का रामबाण है ।

इसी कारण वाजीकरणा योगों में ज्यादातर सुगन्धि द्रव्यों का विशेषतया प्रयोग होता है ।

वाजीकरण में अपथ्य

1. अत्यन्त उपवास, अति स्त्रीप्रसंग
2. वृद्धा के साथ सम्भोग ।
3. अत्यधिक कषायतिक्त रसों का सेवन ।
4. स्त्रीप्रसंग के बाद शीतल जल पीना ।
5. अप्राकृतिक मैथुन (गुद मैथुन, पशुमैथुन, समलिंगी)

अत्यधिक मैथुन से भ्रम, मानसिक, ग्लानि, उर में दुर्बलता, रसादि धातुओं का क्षय और अंत में अका मृत्यु होती है । इसी कारण पुरुष को मैथुन कर्म के परिसमाप्ति के बाद कुछ नियमों का पालन अवश्य करन चाहिए, जिससे वीर्य और बल की क्षतिपूर्ति हो सके ।

सम्भोग के बाद क्या करें

- ऋतु विपरीत स्नान करके बादाम केशर मिश्री व गोदुग्ध के साथ सेवन करें ।
- शरीर पर चन्दनादि तैल की मालिश करें ।
- मांस अथवा मांसरस का सेवन करें ।
- पौष्टिक और रुचिकर पदार्थों का सेवन करें ।
- सुखकर शय्या पर नींद लें ।

कुछ प्रसिद्ध योग :-

- कामदेव चूर्ण - 4 ग्राम प्रातः व सायं दुग्ध में लें ।
- अश्वगन्धा चूर्ण + शतावरी चूर्ण - 4 ग्राम दूध के सा प्रातः व सायं
- मकरध्वजवटी - 1 गोली 2 बार दुग्ध में ।
- श्रीगोपाल तैल - जननेन्द्रिय पर मालिशार्थ ।
- वानरी गुटिका - 5-10 ग्राम 2 बार दुग्ध में ।

बानरी गुटिका - शीघ्रपतन, ध्वजभंग में उपयोगी
मूसली चूर्ण - कामवासना बढ़ाता है ।

इस प्रकार विविध कामवर्धक कलाओं का उप कर जीवन में भरपूर आनन्द ले सकते हैं ।

कुष्ठ रोग [LEPROSY] : व्यापक विचार और उपचार

वैद्य चन्द्रदेव मंडल

कुष्ठ जीर्ण, संक्रामक, अल्प प्रसारी, पर दीर्घकालीन रोग है, जिसके प्रति लोगों के मन में घृणा ही घृणा है । शोध से सिद्ध हुआ है कि यह रोग वैक्ट्रिया (जीवाणु) जनित है । इस रोग को चिकित्सीय भाषा में माइको वैक्टीरियम लेप्रोसी कहा जाता है । इस रोग का जीवाणु मुख्यतः त्वचा और स्नायुतंत्रिका को अपना ग्रास बनाता है । कुष्ठ के जीवाणु लेप्रोबेसिलस का प्रभाव गहरा होता है, मगर धीरे-धीरे ।

दुनिया में कुष्ठ रोगियों की जितनी संख्या है, उसकी एक तिहाई संख्या भारत में है । लगभग चालीस लाख से ऊपर की संख्या में इसके रोगी भारत में हैं । यह भी पता चला है कि प्रतिवर्ष सात लाख रोगी बढ़ रहे हैं । माना जाता है कि इसके जीवाणु ज्यादातर गंदगी में पनपते हैं और वहीं से लोगों में प्रसार पाते हैं ।

रोग-निवृत्ति के प्रयास में लापरवाही बरती जाती है, इलाज अधूरा छोड़ दिया जाता है तो रोग का नाश नहीं होता । शरीर में विकृतियां आ जाती हैं और कुरूपता पैदा होती है ।

कुष्ठ के भेद और अन्तर

- आधुनिक विचार से कुष्ठ के तीन भेद माने गए हैं - (1) ट्यूबर कुलाइड कुष्ठ (2) लेप्रोमेंट्स कुष्ठ और (3) बोर्डर लाइम कुष्ठ ।
- कुछ कुष्ठ रोगी ऐसे होते हैं, जिनमें रोग से लड़ने की क्षमता खूब होती है । इन्हें कुष्ठ अपने प्रभाव में ले भी आता है तो ज्यादा कुछ बिगाड़ नहीं पाता है । इनमें कुष्ठ सीमित दायरे में रहता है । इस तरह का कुष्ठ ट्यूबर कुलाइड कुष्ठ (Tuber Culoid Leprosy) के नाम से जाना जाता है ।
- ऐसे रोगी, जिनमें रोग से लड़ने की क्षमता न के बराबर होती है. लेप्रोमेटस कुष्ठ रोगी की श्रेणी में आते हैं । ऐसे रोगी के पूरे शरीर में कुष्ठ का प्रकोप दिखलाई पड़ता है । उपचार में लापरवाही या देर करने से शरीरस्थ हड्डियाँ विकृत हो जाती हैं, अंगुलियाँ टेढ़ी पड़ जाती हैं ।
- कुष्ठ का एक दूसरा भेद बोर्डर लाइम कुष्ठ माना जाता है । इसमें रोगी की स्थिति ऊपर अंकित एक और दो के बीच-बीच की होती है ।
- कुष्ठ का सर्वाधिक प्रकुपित एवं 'लेप्रोमेटस लेप्रोसी' होता है, जिसमें चेहरे की चमड़ी गिल्टी युक्त मोटी हो जाती है । कान की लहरी मोटी और भौंहें नदारद हो जाती हैं । नाक चपटी, छोटी व सपाट हो जाती हैं ।
- एक कुष्ठ वह होता है, जिसमें संक्रमण नहीं फैलता है । इसके रोगी के शरीर में हल्के रंग के धब्बे-चकते उभरते हैं । ये धब्बे-चकत्ते संवेदन शून्य होते हैं । इसमें तंत्रिकाओं में सूजन आ जाती है । शरीर में छाला पड़ जाता है, घाव भी हो जाते हैं । यही नहीं बल्कि हाथ-पैर, चेहरा सब संवेदन हीन होकर घाव ग्रस्त हो जाते हैं । आँखें नष्ट होने लगती हैं । अंड ग्रंथि खत्म हो जाती है । इसे अकुंठिता कुष्ठ कहते हैं ।
- एक दूसरा कुष्ठ वह भी होता है, जिसमें रोग ग्रसित आदमी की चमड़ी सूज जाती है । उस पर चकते भी उभरते हैं, ये संवेदन शून्य भी होते हैं । पर यह कुष्ठ संक्रामक नहीं होता जैसी बात इसमें नहीं होती । इससे संक्रमण फैलने का डर ज्यादा होता है । इसे कुष्ठिका कुष्ठ कहा जाता है ।
- यों आयुर्वेद में कुष्ठ के अनेक प्रकार हैं जिनमें सामान्य और प्रमुख मिलाकर अठारह की संख्या है । अठारह में सात महाकुष्ठ और ग्यारह क्षुद्र कुष्ठ कहे गए हैं ।
- विश्व स्वास्थ्य संगठन ने उपचार की सुविधा के लिए कुष्ठ को दो वर्गों में बांटा है - एक है पासी बेंसीलरी, जिसे संक्षेप में (P.B.) पी.बी. कहते हैं । इसके अन्तर्गत कम बैक्ट्रिया वाले कुष्ठ रोगी आते हैं । दूसरा वर्ग मल्टी बेसीलरी कहा जाता है । इसमें बैक्ट्रिया ज्यादा पाया जाता है । इसका संक्षिप्त नाम एम.बी. (M.B.) है ।
- चिकित्सा क्षेत्र में दो तरह के कुष्ठ अपने नाम से जाने जाते हैं । एक है इनडिटरमिनेट टाइप ऑफ लेप्रोसी,

---

ग्राम - हरिचक, पो० - काशड़ी, जिला - भागलपुर - 813203

जिसे अनिर्धारित कुष्ठ की संज्ञा दी गई है । यह कुष्ठ रोग की प्रारंभिक अवस्था होती है । इस अवस्था में रोगाक्रान्त व्यक्ति में रोग प्रतिरोधक क्षमता अच्छी रहती है । रोग हल्के उपचार से अच्छा हो जाता है ।

- दूसरे को प्योर न्युरिटिक लेप्रोसी कहते हैं । यह रोग की जटिल अवस्था होती है । रोग का असर स्नायुतंत्रिका पर हो चुका होता है । यह नियमित लम्बे इलाज की अपेक्षा करता है ।

कुष्ठ रोग से जुड़े अंधविश्वास

- अनेक लोग इस रोग को रोगी के पूर्व जन्म के पापों के फल के रूप में मानते हैं । सामाजिक अज्ञानता के चलते लोगों में यह धारणा बनी है, जो गलत है ।
- जरूरी नहीं कि कुष्ठ रोगी पुराना पापी ही हो और फिर पूर्व जन्म को किसने देखा है । यह एक ऐसा रोग है, जिसने पूजा-पाठी, धर्मात्मा-अधर्मा किसी को नहीं छोड़ा । गरीब-अमीर, बालक-बूढ़ा, यह किसी को नहीं बख्शता । यहाँ तक कि अबोध बच्चे-बच्चियाँ भी इसकी चपेट में आते देखे जाते हैं ।
- इसे छूत का बड़ा रोग भी कहा जाता है । पर यह कहना भी गलत है, क्योंकि यह टी.बी. और खसरा जैसे रोग से भी कम छुतहा है । कुष्ठ के अनेक प्रकारों में से केवल दो को ही छुतहा माना गया है । पर ये भी इलाज से ठीक हो जाने वाले होते हैं ।
- जन-धारणा है कि कुष्ठ का रोग तीव्र संक्रामक होता है । इसलिए कोई आदमी उसके रोगी के पास फटकने से भी डरता है । उसे भय होता है कि कहीं उसको भी यह रोग न लग जाया पर धारणा सही नहीं है, क्योंकि यह उतना तीव्र रोग नहीं है । जन-जागरुकता के अभाव में अशिक्षा के चलते यह धारण बनी है ।
- इस रोग को वंशानुगत भी माना जाता है । मतलब यह कि बाप को कुष्ठ रोग है, तो बेटे को भी होगा । फिर उसके बेटे को और इसी तरह । पर यह भी सच नहीं है । कुष्ठ रोगियों के बच्चे सामान्य, स्वस्थ जीवन बिताते देखे जा रहे हैं ।
- इस रोग को पहले से ही ला-इलाज माना जा रहा है । मानते हैं कि इसमें इलाज से कोई लाभ नहीं है । यह पाप का फल है, जिसे भोगना ही होगा । चिकित्सा विज्ञान ने इस सोच को भी गलत कर दिया है । अब सफल इलाज उपलब्ध है ।

सच्चाई पर प्रकाश

- कुष्ठ एक सामान्य रोग की तरह का रोग है, रोगाणुओं से संक्रमित होने से होता है । यह लेप्रोबेसिलस नामक रोगाणु के प्रकोप से होता है
- लेप्रोबेसिलस रोगाणु टी०बी० की जाति का होता है इसकी खोज डा० राबर्ट अरमन हेनसन ने आज लगभग सौ-डेढ़ सौ साल पहले कर ली थी । विद्वान आदमी नार्वे का रहने वाला था ।
- लेप्रोबेसिलस रोगाणु का आक्रमण जब किसी पर होता है, तो उसमें रोग के लक्षण तुरंत नहीं कुष्ठ के लक्षण उभरने में वर्षों लगते हैं, लगभग साल, कभी पाँच-पाँच साल ।

कुष्ठ रोग के संक्रमण की सहयोगी परिस्थितियाँ

- कुष्ठ के रोगाणु त्वचा और स्नायुतंत्रिका पर प्रभावकारी होते हैं । इसलिए जहाँ चमड़ा छिलता वहाँ यह संक्रमण हो सकता है ।
- नासिका की दीवारों पर यदि नासूर होता है, तो इसका प्रभाव दिखता है । नाक बन्द हो जाती है, से खून गिरता है । अंततः नाक धँस जाती है ।
- संक्रामक कुष्ठ के रोगी के निकट संपर्क में जो नियमित रहता है, उसके थूक-खखार, बलगम, के प्रभाव से परहेज नहीं करता है, तो रोगाक्रान्त की संभावना रहती है ।
- वंशानुगत प्रभाव बाल-बच्चों पर पड़ता है, इससे तरह इनकार नहीं किया जा सकता है । पर यह कभी कम पड़ता है, कभी अधिक । कभी-कभी प्रभाव न के बराबर भी देखा जाता है ।
- कुष्ठ के जीवाणु कटी-फटी त्वचा के अन्दर घर कर लेते हैं । श्वास के संबंध में भी यह सच है ये जीवाणु श्वास के जरिए अन्दर-बाहर होते हैं, से संक्रमण फैलता है ।

- छुआ-छूत से, स्पर्श से इस रोग का प्रसार हो सकता है, मगर धीमा-धीमा । किन्तु गंदगी में इसका प्रसार तेजी से होता है ।

कुष्ठ रोग होने के कारण

- आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अर्थात् एलोपैथी कुष्ठ के होने का कारण शरीर में लेप्रोबेसिलस जीवाणु का उत्पन्न होना मानता है ।
- होमियोपैथिक चिकित्सा पद्धति हर रोग के पीछे छिपे कारणों में सोरा, साइकोसिस और सिफिलिस को अहम् मानता है ।
- आयुर्वेद की दृष्टि में कुष्ठ रोग वात, कफ और पित्त तीनों दोष के कुपित होने से होता है क्योंकि इन तीनों के प्रकुपित होने से शरीरस्थ रक्त, रस, मांस और जल सभी दूषित हो जाते हैं । फलत: यह रोग हो जाता है ।
- कुष्ठ ग्रस्त व्यक्ति चाहे स्त्री हो या पुरुष, उसके साथ 'सेक्स' संबंध बनाने का फल कुष्ठ ग्रस्त होना होता है ।

कुष्ठ के लक्षण

- कुष्ठ का प्रारंभिक लक्षण चमड़ी पर लाल चमकीला धब्बा उभरना होता है । धब्बा छूने से वहाँ स्पर्श अनुभूति का अभाव महसूस होता है ।
- आगे चलकर धब्बे गांठ का रूप धारण कर लेते हैं और बढ़ते हैं या वहाँ की स्नायु संवेदन शून्य हो जाती है । अंगुलियाँ सिकुड़ने लगती हैं ।
- चमड़ी मोटी पड़ने लगती है, घाव होने लगते हैं । कलाई, केहुनी, घुटने दर्द युक्त हो जाते हैं । हाथ-पैर भी अशक्त होने लगते हैं, ठीक से काम नहीं करने लगते हैं ।
- रोगाक्रान्त आदमी की आँखें ठीक से बन्द नहीं होतीं । नाक विकृत हो जाती है । त्वचा पर असर हुए बिना भी आँखें आक्रान्त हो जाती हैं ।
- आँखें लाल दिखती हैं, उनको रोशनी बर्दाश्त नहीं होती । कम दिखलाई देने लगता है । आँखों में मोतियाबिन्द का असर होता है ।
- हाथ पैर की अंगुलियाँ ठूंठ होने लगती हैं । इसी से इसको गलित कुष्ठ भी कहा जाता है । तालु में छेद हो जाता है ।

रोग-विकार और विकलांगता

- जब कोई इस घातक रोग के चंगुल में फंसता है, तो उसके हाथ-पैरों में, खास कर अंग के अगले हिस्सों में शून्यता आने लगती है । वहाँ उसे किसी तरह की संवेदना महसूस नहीं होती । चोट-चपेट का वहाँ उसे कोई अनुभव नहीं होता । बस, यही अहसास न होना उसके लिए आफत हो जाती है । वहाँ घाव बन जाते हैं ।
- संवेदन शून्यता के चलते चोट-चपेट, छिल जाने, जख्म बन जाने की उसे परवाह नहीं होती । तब हाथ-पाँव की अंगुलियाँ गल जाने से, ठूँठ होने लगती हैं ।
- अंगों के गलने व ठूंठ होने के मध्य सीधा संबंध नहीं होता । यह सिद्ध हो चुका है कि कुष्ठ के रोगाणु अंग-गलन में सहायक नहीं होते, वे सिर्फ संवेदी तंत्रिकाओं को विनष्ट कर देते हैं । फलत: हाथ-पैरों के किनारों की संवेदना नष्ट हो जाती है । जब जाने-अनजाने असंवेदनशील अंग में चोट-चपेट लगती है, दबाव-घर्षण पड़ती है, तो वहाँ जख्म बन जाता है और बढ़कर वहाँ विकलांगता पैदा हो जाती है ।

कुष्ठ जनित विकृतियों से बचने के उपाय

- इस रोग से ग्रसित आदमी यदि सावधानी बरतें तो न केवल विकृतियों से बच सकता है, बल्कि विकृति पैदा हो भी जाए तो उसे कम कर सकता है ।
- इसके लिए जरूरत पड़ती है त्वचा को मुलायम-नम रखने की, जिसके लिए ज्यादा कुछ नहीं, तेल और पानी पर्याप्त होता है ।
- प्राय: बीस-पचीस मिनट तक हाथ-पैर को ठंढे पानी में रखने से और बाद में हल्की खुरदरी चीज से हल्के हाथ उस त्वचा को रगड़ने से मोटी हो रही त्वचा सामान्य होने लगती है । फिर उस पर तेल मल देते हैं ।
- यह एक सामान्य बात है कि धीरे-धीरे कुष्ठ-प्रभावित

रोगी स्पर्शकातरता खो देता है । वह दर्द भी भूल जाता है । यहाँ तक कि उसे सर्दी-गर्मी का अहसास भी नहीं होता है । ऐसे में उसके लिए अपनी आँखों और दिमाग को सजग रखकर हाथ-पैरों का इस्तेमाल करना अच्छा होता है कि वे क्षतिग्रस्त न हों ।

- कुष्ठ के रोगी को चाहिए कि वह अपने हाथ-पाँव और बदन को आग से बचाकर रखे, उससे नजदीकियाँ न अपनाए, ताकि वे झुलस न जाएं ।
- किसी वस्तु को वह ज्यादा दबाव देकर देर तक न पकड़े रहे कि वह छिल जाय । वह काम में आने वाले औजारों को कपड़े लपेट कर पकड़े, जिससे हाथ की अंगुलियाँ क्षतिग्रस्त न हों ।
- रोगी ठंडा खाना खाए, सावधानी के ख्याल से यही अच्छा है । वह चले तो छोटे कदम बढ़ाए; अधिक दूर पैदल चलने से परहेज करे ।
- कुष्ठ रोगियों के लिए पैदल, खाली पैर चलना घातक है, चोट-चपेट का डर रहता है । यदि बने तो खास तरह की मोटाई वाली चप्पलें पहने, जिस पर भार पड़ने से संवेदनहीन पैरों को नुकसान न हो, ऐसी चप्पलें एम.सी.आर. चप्पलें कहलाती हैं ।
- अगर घाव हो जाए हों तो उन्हें हमेशा साफ रखने में ही भलाई है । घाव को हमेशा साफ कपड़े से ढंककर रखना अच्छा है ।
- आँखें साफ पानी से धोई जाएँ । सबसे ज्यादा जरूरी है कि इसका रोगी हमेशा दक्ष चिकित्सक की देखभाल में रहे ।

कुष्ठ के इलाज के संबंध में

- भारत सरकार ने भारतीय कुष्ठ उन्मूलन अभियान चला रखा है, जो प्रभाव में है ।
- कुष्ठ नाशक कारगर दवा की भी खोज कर ली गई है । लगभग बीस लाख कुष्ठ रोगियों को इलाज से चंगा किया जा चुका है । अभियान अभी भी जारी है ।
- इधर सरकार ने विज्ञापन देकर कुष्ठ रोग का पता लगाने के लिए मुफ्त जाँच का प्रबन्ध किया है और जाँच के बाद कुष्ठ का निदान होने पर इसके मुफ्त इलाज का भी इन्तजाम किया है, जिससे रोगियों बड़ी राहत महसूस हुई है ।
- अनुसंधान से कुष्ठ निरोधक टीके की खोज हो गई है जिसके परीक्षण हो रहे हैं । परीक्षण की सफलता के बाद इसके सफल प्रयोग की संभावना है ।
- गिलोय, अडूसा, परवल, कटेरी प्रत्येक पचीस लेकर दो लिटर पानी में काढ़ा तैयार करें, आधा लि शेष बच जाय तो सुबह-शाम इसके रोगी को कराएँ, लाभ होगा ।
- आँवला, बहेरा, हरड़, खैरसार बराबर भाग में से सौ ग्राम लेकर कूट-पीस पानी में लुगदी बना में पाँच सौ ग्राम गाय का घी डाल इसमें पकाएँ । शेष बचे घी का सेवन करें तो कुष्ठ
- कुष्ठ में जलन, लाली और चमड़ी, अंगुलियों फफोले या व्रण हों तो लौह भस्म का सेवन करने लाभ होता है । यहाँ तक कि घाव का पक फूटना, दुर्गन्ध युक्त पीव निकलना भी इससे ठीक जाता है ।
- अंगुलियों की त्वचा निकल जाना, त्वचा पर व्रण, पर फुंसियों व खाज चलती हो, दाह हो, तो लौह व त्रिफला चूर्ण या आरोग्यवर्द्धिनी वटी लाभ है ।
- ताम्र भस्म, अपामार्ग क्षार, सज्जीखार व समभाग मिलाकर दो-दो रत्ती शीतल जल से रोज तीन बार देने से खासा लाभ होता है ।
- कुष्ठ में वाकुची बीज, चक्रमर्द बीज और गन्धक रस सिन्दूर वैद्य की देख-रेख में देने से भी फल मिलता है ।
- भिलावा का तेल खाने व लगाने से कुष्ठ में होता है ।
- मंजिष्ठादि क्वाथ, निम्ब पंचांग चूर्ण व रस का सेवन व मरीच्यादि तेल या सोमराजी तैल मालिश लाभकारी है । बैद्यनाथ की दवाएँ अनुभूत हैं

इलाज के साथ-साथ खान-पान का भी ध्यान

- देखा गया है कि कुष्ठ का जो रोगी औषधि के

जमीकन्द भी भोजन में पर्याप्त लेता है, उसकी अवस्था अच्छी रहती है । इसलिए अच्छा है कि जमीकन्द की सब्जी इसका रोगी खाए ।

- आँवला ऐसा फल है, जिसे अमृत कहा गया है । कुष्ठ रोग के नाशक रूप में भी इसका सेवन लाभदायक है, यदि आँवला पीस कर रोज एक चम्मच सुबह-शाम रोगी लेने लगे तो लाभ होगा ।
- अनुभवियों का कहना है कि यदि कुष्ठ रोगी लम्बे समय तक अंकुरित चने का सेवन रोज करे तो खासा लाभ होता है ।
- कुष्ठ रोगी के शरीर में पैदा हुए घाव को भरने के लिए अनार पेड़ के पत्ते पीस कर घाव पर लगाना मुनासिब माना जाता है । इससे घाव जल्द भर जाते हैं।
- बथुआ, जिसे अमीर लोग नाकारा समझते हैं और उसका कोई उपयोग नहीं मानते, वह भी अनमोल औषधि और स्वादिष्ट उत्तम साग है । बथुए को उबाल कर उसका रस पीना कुष्ठ रोगी के लिए उतना ही उपयोगी है, जितना उस रस से आक्रान्त चमड़ी को धोना ।

कुष्ठ रोगी के प्रति व्यवहार और कानून

- समाज कुष्ठ रोगी के प्रति घृणा रखता है, उससे सहानुभूति नहीं रखता । फलतः वह अलग-थलग पड़ जाता है, जो कदापि उचित नहीं है ।
- लेकिन कानून उसकी सहायता करता है । पहले सरकारी नौकरी से उसे निकाल दिया जाता था । अब कानूनन उसे नौकरी से निकाला नहीं जा सकता । अगर कोई उसे नौकरी से निकाले तो उसके लिए सजा का प्रावधान है ।
- पहले भारतीय जीवन बीमा निगम कुष्ठ रोगियों का बीमा करता था, तो अतिरिक्त पैसे लेता था । अब ऐसा नहीं किया जा सकता ।
- यह रोग असाध्य नहीं है । असाध्य जैसा तो यह इसलिए बन जाता है कि नियमित रूप से इसका इलाज नहीं कराया जाता । कुछ दिन इलाज कराकर बंद कर दिया जाता है ।
- कुष्ठ रोग के इलाज में नियमितता जरूरी होती है । जब तक इलाज पूरा न हो, रोगी चंगा न हो जाय, इलाज चलते रहना चाहिए । रोग के निर्मूल होने पर ही इलाज बंद करने की सोचना चाहिए, नहीं तो खतरा बढ़ता है ।

बैद्यनाथ

ईसब्बले

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री),
कब्जियत आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं
उपयोगी औषधि।

पञ्चगव्य : एक दिव्य औषधि

डा० सतीश चन्द्र तिवारी, एम.डी. (आ

गोमूत्र, गोमय रस, गोदुग्ध, गोदधि तथा गोघृत का एक निश्चित अनुपात में मिश्रण पंचगव्य कहलाता है. जैसे :- पृथ्वी, जल, तेज आदि पंचमहाभूत सृष्टि के आधार हैं, वैसे ही स्वस्थ, सुखी तथा सुसम्पन्न जीवन का आधार गो प्रदत्त ये पाँच अनमोल द्रव्य हैं । पंचगव्य शरीर को शुद्धकर स्वस्थ, सात्विक तथा बलवान बनाता है । इसके सेवन से शारीरिक तथा मानसिक विकार दूर होकर आयुष्य, बल और तेज की वृद्धि होती है । इसके सेवन से नाड़ियों में बल आने लगता है । यह कामला, पाण्डु, जीर्णज्वर, धातुक्षीणता, क्षय, श्वास, कास आदि व्याधियों में उपयोगी है । पेट, वृषण तथा हाथ-पैर की सूजन में यह बहुत ही लाभदायक है । रोगी तथा निरोगी सभी इसका सेवन कर स्वास्थ्य तथा दीर्घायुष्य की प्राप्ति कर सकते हैं ।

गव्यं पवित्रं च रसायनं च पथ्यं च हृद्यं बल बुद्धि दंस्यात् ।
आयुं प्रदं रक्तविकार हारि त्रिदोष हृद्रोग विषापहं स्यात् ॥

अर्थात् पंचगव्य परम पवित्र रसायन है, पथ्यकर है । हृदय को आनन्द देनेवाला तथा आयु, बल, बुद्धि प्रदान करने वाला है । यह त्रिदोषों का शमन करनेवाला, रक्त के समस्त विकारों को दूर करने वाला, हृदयरोग एवं विष के प्रभाव को दूर करने वाला है ।

इसके द्वारा कायिक, वाचिक, मानसिक आदि पाप-संताप दूर हो जाते हैं ।

"पंचगव्यं प्राशनं महावातक नाशनम् ।"

(महाभारत)

सभी प्रकार के प्रायश्चितों में, धार्मिक कार्यों तथा यज्ञों में पंचगव्य प्राशन का विधान है । वेदों, पुराणों तथा धर्मशास्त्रों में पंचगव्य की निर्माण-विधि एवं सेवन-विधि का वर्णन मिलता है । पंचगव्य शास्त्रोक्त विधि से शुद्धता को ध्यान में रखते हुए मंत्रोच्चारण के साथ बनाया जाता है ।

पंचगव्य निर्माण विधि - धर्मशास्त्र का प्रसिद्ध ग्रन्थ "धर्मसिन्धु" में वर्णित पंचगव्य के पाँचों द्रव्यों का अनुपात इस प्रकार है -

गोघृत- 8 भाग
गोदुग्ध - 1 भाग
गोदधि - 10 भाग
गोमूत्र - 8 भाग
गोमय रस - 1 भाग
कुशोदक - 4 भाग

इन सभी को एकत्र मिलाने पर पंचगव्य का निर्माण होता है ।

"बोधायन स्मृति" में इन पाँच द्रव्यों का अनु इस प्रकार है -

गोघृत - 1 भाग
गोदधि - 2 भाग
गोमय रस - ½ भाग
गोमूत्र - 1 भाग
गोदुग्ध - 3 भाग
कुशोदक - 1 भाग

कुछ उपयोगी बातें जो ध्यान देने योग्य हैं -

1. पंचगव्य में प्रयुक्त किये जाने वाले द्रव्य देशी नस्ल के स्वस्थ गाय का लेना चाहिए ।
2. गोबर को ज्यों का त्यों मिश्रण में नहीं डालना चा बल्कि गोबर को कपड़े से निचोड़ा हुआ गोमय रस का प्रयोग करना चाहिए ।
3. कुश का पञ्चांग एक दिन तक एक शुद्ध जल में डुबाकर रखने से जो जल प्राप्त होता है, वह कुशोदक कहलाता है ।

गोमूत्र के अधिष्ठात्री देवता वरूण, गोमय के अग्नि, दूध के सोम, दही के वायु, घृत के सूर्य और कुशोदक के देवता विष्णु माने गये हैं । इन सभी द्रव्यों को एकत्रित करने तथा पंचगव्य का पान करने आदि के भिन्न-भिन्न मंत्र शास्त्रों में बताये गये हैं । इन सभी द्र को किसी एक पात्र में डालते समय निम्नलिखित श्लो का तीन बार उच्चारण करके ही डालना चाहिए ।

गोमूत्र
गोमूत्रं सर्वशुद्धयर्थं पवित्रं पापशोधनम् ।
आपदो हरते नित्यं पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥

गोमय
अग्रमग्रश्चरन्तीनां औषधीनाम् रसोद्भवम् ।
तासां वृषभपत्नीनां पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥

रीडर-स्वामी राघवेन्द्राचार्य त्रिदण्डी आयुर्वेद महाविद्यालय एवं चिकित्सालय, करजरा, पो.-मभौली, गया (बिहार)

गोदुग्ध पयः पुण्यतम् प्रोक्तम् धेनुम्यश्च समुद्भवम् ।
सर्वशुद्धिकरम् दिव्यं पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥
गोदधि चन्द्रकुन्दसमं शीतं स्वच्छं वारि विवर्जितम् ।
किंचिदाम्लरसालं च क्षिपेत् पात्रे च सुन्दरम् ॥
गोघृत इदं घृतं महदिव्यं पवित्रं पापशोधनम् ।
सर्वपुष्टिकरं चैव पात्रे तन्निक्षिपाम्यहम् ॥
कुशोदक कुशमूले स्थितो ब्रह्मा कुशमध्ये जनार्दनः ।
कुशाग्रे शंकरो देवस्तेन युक्तं करोम्यहम् ॥

सर्वप्रथम उपरोक्त द्रव्यों से सम्बन्धित मंत्रों का उच्चारण करते हुए सभी को एकत्रित करें । इसके बाद प्रणव (ऊँ) के उच्चारण के साथ कुश से हिलाते हुए उनको मिश्रित करें ।

सेवन विधि - पंचगव्य स्वर्ण या चाँदी के पात्र में या पलाश-पत्र में लेकर निम्न मंत्रों का तीन बार उच्चारण करके खाली पेट सेवन करना चाहिए ।

यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति मायके ।
प्राशानात् पंचगव्यस्य दहत्वग्निरिवेन्धनम् ॥
(महाभारत)

अर्थात् त्वचा, मज्जा, मेधा, रक्त और हड्डियों तक जो पाप मुझमें प्रविष्ट हो गये हैं, वे सब मेरे इस पंचगव्य के प्राशन करने से वैसे ही नष्ट हो जायें, जैसे प्रज्वलित अग्नि में सूखी लकड़ी डालने पर भस्म हो जाती है ।

सेवन मात्रा - बच्चों के लिए - 10 ग्राम
बड़ों के लिए - 20 ग्राम

पंचगव्य सेवन के 3 घंटा तक कुछ नहीं खाना चाहिए ।

पंचगव्य के नियमित सेवन से मानसिक व्याधियाँ पूर्णतः नष्ट हो जाती हैं । विषैली औषधियों के सेवन से तथा लम्बी बीमारी से शरीर में संचित हुए विष का प्रभाव भी निश्चित रूप से नष्ट हो जाता है । गोमाता से प्राप्त होने वाला अल्प मेहनत और अल्प खर्च में मानव जीवन को सुरक्षित बनाने वाला यह अद्भुत रसायन है । इस दिव्य औषधि से असाध्य रोगों को ठीक करने के लिए शोध कार्य चल रहा है तथा कई रोगों पर सफलता भी प्राप्त हुई है ।

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी

बैद्यनाथ
जन्मघूँटी
जन्म के बाद से ही बच्चों को इसका सेवन कराने से उनके स्वास्थ्य में कोई गड़बड़ी नहीं होती । इससे बुखार, खांसी, सर्दी-जुकाम, अजीर्ण, उल्टी होना, टट्टी होना, पेट फूलना आदि रोग दूर होते हैं ।

जल चिकित्सा

स्मिता गुप्ता* एडवीन जेराल्ड, शीजा एडवीन जेराल्ड

हमारे देश का स्वास्थ्य तथा उसकी चिकित्सा एलोपैथी की महँगी दवाइयों से उतनी सुरक्षित नहीं. जितना हमें आयुर्वेदिक तथा उस पद्धति के उपचारों से लाभ मिलता है। आज विदेशी लोग भी हमारे आयुर्वेदिक उपचारों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। हमें भी चाहिए कि हम ''साईड इफेक्ट'' करने वाले एलोपैथी की महंगी दवाओं से बचकर प्राकृतिक के आयुर्वेदिक उपचार को ही अपने जीवन में उतारें।

हम यहां चार प्रकार के जल - निर्माण की विधि बता रहे हैं, जो अनुभूत एवं असरकारक नुस्खे हैं।

(1) सोंठ-जल-पानी- की तपेली में एक पूरी साबूत सोंठ डालकर पानी गरम करें। जब अच्छी तरह उबलकर पानी आधा रह जाये तब उसे ठंडा कर दो बार छानें। ध्यान रहे कि इस उबले हुए पानी के पैंदे में जमा क्षार छाने हुए जल में न आवे। अत: मोटे कपड़े से दो बार छानें। यह जल पीने से पुरानी सर्दी, दमा, टी. बी., श्वास के रोग, हॉफना, हिंचकी,फेफडों में पानी भरना, अजीर्ण, अपच, कृमि, दस्त, चिकना आमदोष, बहुमूत्र, डायबिटीज (मधुमेह), लो ब्लडप्रेशर शरीर का ठंडा रहना, मस्तक पीड़ा जैसे कफ दोष जन्य तमाम रोगों में यह जल अवश्य ही लाभ देता है। बिना पैसे की दवा, यह जल उपरोक्त रोगों की अनुभूत एवं उत्तम औषधि है। यह जल दिन भर पीने के काम में लेंवे। रोग में लाभ प्राप्ति के पश्चात् भी कुछ दिन तक यह प्रयोग चालू ही रखें।

(2) धाना-जल- एक लीटर पानी में एक से डेढ चम्मच सूखा (पुराना) खड़ा धानिया डालकर पानी उबालें। जब 750 ग्राम जल बचें तो ठंडा कर उसे छान लें। यह जल अत्यधिक शीतल प्रकृति का होकर पित्त दोष, गर्मी के कारण होने वाले रोगों में तथा पित्त की तासीर वाले लोगों को अत्यधिक वांछित लाभ प्रदान करता है। गर्मी - पित्त के बुखार, पेट की जलन, पित्त की उलटी, खट्टी डकार, अम्लपित, पेट के छाले, आंखों की जलन, नाक से खून टपकना, रक्त स्त्रव, गर्मी के पीले-पतले दस्त, गर्मी की सूखी खांसी, अति प्यास तथा खूनी बवासीर (मस्सा) या जलन सूजन वाले बवासीर जैसे रोगों में यह जल अत्यधिक लाभप्रद है। अत्यधिक लाभ के लिए इस जल में मिश्री मिलाकर पियें। जो लोग कॉफी तथा अन्य मादक पदार्थों का व्यसन करके शरीर का विनाश करते हैं उनके लिए इस जल का नियमित सेवन लाभप्रद तथा विज़ नाशक है।

(3) अजमा-जल- एक लीटर पानी में ताजा नया अजवाइन एक चम्मच (करीब 8.5 ग्राम) मात्र में डाल कर उबालें। आधा पानी रह जाए तब ठंडा करके छान लें व पियें। यह जल वायु तथा कफ दोष में उत्पन्न तमाम रोगों के लिए अत्यधिक लाभप्रद उपचार है। इसके नियमित सेवन से हृदय की शूल पीड़ा, पेट की वायु पीड़ा, आफरा, पेट का गोला, हिचकी, अरूचि, मंदाग्नि, पेट के कृमि, पीठ का दर्द, अजीर्ण के दस्त, कालरा, सर्दी, बहुमूत्र, डायबिटीज जैसे अनेक रोगों में यह जल अत्यधिक लाभप्रद है। यह जल उष्ण प्रकृति का होता है।

(4) जीरा-जल- एक लीटर पानी में एक से डेढ़ चम्मच जीरा डालकर उबालें, जब 750 ग्राम बचे तो उतारकर ठंडा कर छान लें। यह जल धाना-जल के समान शीतल गुण वाला है। वायु तथा पित्त दोष से होने वाले रोगों में यह अत्यधिक हितकारी है। गर्भवती एवं प्रसूता स्त्रियों के लिए तो यह एक वरदान है। जिन्हें रक्तप्रदर का रोग हो, गर्भाशय की गर्मी के कारण बार-बार गर्भपात हो जाता है अथवा मृत बालक का जन्म होता है या जन्म लेने के तुरन्त बाद शिशु की मृत्यु हो जाती है उन महिलाओं को गर्भकाल के दूसरे से आठवें मास तक नियमित जीरा जल पीना चाहिए।

एक एक दिन के अन्तर में आने वाले, ठंड बुखार एवं मलेरिया बुखार में, आंखों में गर्मी के कारण लालपन, हाथ पैर में जलन, वायु अथवा पित्त की उलटी (वमन) गर्मी या वायु के दस्त, रक्तविकार, श्वेतप्रदर, अनियमित मासिक स्राव, गर्भाशय की सूजन, कृमि, मूत्र की अल्पता इत्यादि रोगों में इस जल के नियमित सेवन से आशातीत लाभ मिलता है। बिना पैसे की औषधि इस जल से विभिन्न रोगों में चमत्कारिक लाभ मिलता है।

ब्राह्मी बूटी

जयेन्द्र कुमार जौहरी

ब्राह्मी बूटी को वनस्पति जगत में 'सेन्टेला एसियाटिका'' के नाम से जाना जाता है । यह एपियेसी कुल का सदस्य है । इसको विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग नाम से पुकारा जाता है । संस्कृत में ''मंडूकपर्णी'', हिन्दी में ''ब्रह्म मन्डूकी, खूलारवुडी या मन्डूकपर्णी'' बंगाली में ''ठोल कुरी'', गुजराती में ''मोती ब्राह्मी'', मराठी में ''करिंगा या करिवाना'', कन्नड़ में ''ब्राह्मी सोपू'', तेलगू में ''ब्राह्मी या सरसवताकू'', तमिल में 'वलाराई', उड़िया में थालकुडी, मलयालम में ''कोडंगल'' तथा अंग्रेजी में ''इन्डियन पेनीवर्ट'' ।

ब्राह्मी का पौधा बहुवर्षी हर्ब होता है जो सतह पर चलता है तथा अधिकतर नम स्थानों पर खेतों में घास के रूप में पाया जाता है । इसकी तनें की गाँठों पर जड़ी होती हैं तथा गाँठों के मध्य का भाग काफी लम्बा होता है । पत्तियाँ थोड़ी मोटी तथा हृदयाकार होती हैं । पत्तियों की मार्जिन प्राय: कंटीली होती है । पत्तियों का ऊपरी भाग चिकना व निचले भाग में होती है । पत्तियों का ऊपर का भाग चिकना व निचले भाग में छोटे-छोटे रेशे होते हैं । इसके फूल गुलाबी व सफेद होते हैं जो धनिये के फूल की तरह गुच्छों में उगते हैं । इसके फल आयतरूप या दीर्घआयत होते हैं । इनके अन्दर का भाग थोड़ा कठोर एवं मोटा होता है ।

ब्राह्मी का पौधा प्राय: नम स्थानों पर पाया जाता है । इसके प्रमुख स्थान झरनों के किनारे, तालाबों के पास या पोखरों के पास उष्ण व पोषणीय जलवायु में विद्यमान होते हैं । इसके पौधों को वर्धी प्रजनन द्वारा तने के भागों से लगाया जाता है । यह छायादार स्थानों पर खूब आसानी से उगता है । प्राय: कृषक इसको आम के बागानों में वृक्षों की छाया में सिंचाई प्रदान कर उगा लेते हैं । इसको फरवरी-मार्च के माह में रोपित किया जाता है परंतु इस दौरान रोपित पौधों में सिंचाई अवश्य उपलब्ध होना चाहिये अन्यथा इसे बरसात के मौसम में जुलाई में रोपित किया जाता है । इसकी पत्तियां प्राय: सुबह के समय तोड़ कर औषधि के रूप में प्रयोग करने के लिए छाया में सुखाई जाती हैं ।

ब्राह्मी के पौधों में फूल व फल अप्रैल से अक्टूबर माह के मध्य उगते हैं ।

ब्राह्मी हमारे पूर्वजों के समय से औषधि के रूप में प्रयोग की जाती रही है । इसका विस्तृत वर्णन हमारे वेदों व चरक संहिता में भी प्रदान किया गया है ।

ब्राह्मी के विभिन्न औषधीय उपयोग निम्नवत हैं :-

1. बच्चों की स्मरण क्षमता बढ़ाने हेतु ब्राह्मी की 3-4 पत्तियाँ 10-12 काली मिर्च के साथ पीसकर प्रात: काल देने से बहुत लाभ होता है । यह घोल स्मरण शक्ति में टॉनिक का कार्य करता है ।
2. ब्राह्मी की पत्तियों का काढ़ा ज्वर नाशक होता है ।
3. पेचिश के रोग में ब्राह्मी की पत्तियों को चटनी के रूप में 2-3 चम्मच 2-3 दिन पिलाने से रोकथाम होती है।
4. ब्राह्मी की पत्तियों का गाढ़ा पेस्ट फोड़ें व फुँसियों पर लगाने से फायदा होता है ।
5. ब्राह्मी की पत्तियों को अदरक व कालीमिर्च के साथ उबाल कर पीने से कफ निवारण में सहायक होता है ।
6. ब्राह्मी की पत्तियों के जूस को खजूर के गुड़ के साथ प्रसव के उपरांत देने से बहुत फायदा होता है । यह 15 दिन तक दिया जाता है ।
7. डायबिटिस के निवारण में भी ब्राह्मी की पत्तियों का सत फायदेमंद होता है ।
8. भयंकर सिरदर्द के समय ब्राह्मी की पत्तियों का जूस माथे पर मलने से लाभ होता है ।

सौन्दर्य प्रसाधनों में उपयोग :-

1. ब्राह्मी की पत्तियों के लेप को क्रीम के रूप में लगाने से त्वचा में चमक आती है ।
2. ब्राह्मी को तेल में भी, बालों के स्वास्थ्य हेतु उपयोगी पाया गया है ।

ब्राह्मी के कार्यशील तत्व :

ब्राह्मी में निम्न रसायन पाये जाते हैं जो औषधीय-प्रभावकारी होते हैं । एसियाटिक एसिड तथा एसियाटिकोसाइड, मैकेकासिक एसिड, ब्राह्मीक एसिड, थाँकुनिसाइड तथा सेन्टेलोज ।

राष्ट्रीय वनस्पति अनुसंधान संस्थान, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ - 226 001

सेहत भरी है अजवाइन में

श्रीमती अनिता जैन

भारतीय परिवारों के रसोईघरों में आसानी से मिल जाने वाले मसालों में अजवाइन भी एक है । अजवाइन हमारे देश के सभी हिस्सों में मिलती है । इसका वानस्पतिक नाम 'करम काप्टिकम' है । मराठी में इसे 'ओवा', संस्कृत में 'भवानी' तथा 'दीप्ययक, गुजराती में 'अजमा', बंगाली में 'यमानी' नाम से जाना जाता है ।

आयुर्वेद में अजवाइन को काफी गुणकारी बताया गया है । आयुर्वेद के मुताबिक अजवाइन पाचक, रुचिकर, तीक्ष्ण, गर्म, चटपटी, हल्की, दीपन, कड़वी तथा पित्तवर्द्धक होती है । यह कफ, वायु, पेट का दर्द, वायु गोला, अफारा एवं कृमि रोगों के लिए अचूक औषधि का काम करती है ।

दरअसल अजवाइन के भीतर एक तरह का खुशबूदार उड़नशील द्रव्य विद्यमान रहता है । इसे 'अजवाइन का फूल' अथवा 'अजवाइन का सत्त' कहा जाता है । वैसे इस द्रव्य का नाम अंग्रेजी नाम 'थायमल' है । अजवाइन से तेल भी निकाला जाता है । उसे 'ओमम वाटर' कहा जाता है । इसके तेल की मालिश से जोड़ों के दर्द में आश्चर्यजनक आराम मिलता है ।

अजवाइन को मात्र मसाला ही नहीं मानकर, इसके अचूक औषधीय गुणों के कारण 'घर का डाक्टर' कहना अधिक उपयुक्त होगा ।

खाँसी की शिकायत होने पर अजवाइन खाकर गर्म पानी से काफी राहत मिलेगी । पान में अजवाइन डालकर खाने से रात में खाँसी चलना बन्द हो जाती है ।

दाँत के दर्द में खुरासानी अजवाइन राल के साथ पीसकर दाँतों के खोखले में रखने से दर्द से मुक्ति मिल जाती है ।

पाचन सम्बंधी रोगों के लिए अजवाइन और छोटी हरड़ समान मात्रा में मिलाकर थोड़ा-थोड़ा हींग और सेंधा नमक उसमें मिला दें । इन्हें बारीक पीस लें । यह चूर्ण भोजन के पश्चात् एक चम्मच गर्म पानी से लें ।

करीब 10 ग्राम अजवाइन रोजाना फाँकने से गुर्दा और मूत्राशय की पथरी में लाभ होता है ।

फोड़े-फुंसी की सूजन में अजवाइन को नींबू के रस में पीसकर लेप करें ।

अजवाइन को जलाकर उसका अत्यंत महीन चूर्ण बना लें । उसे जस्ते की सलाई से सुरमे की भांति आंखों में आँजने से नेत्र-ज्योति बढ़ती है । इस चूर्ण का उपयोग मंजन के तौर पर दाँतों पर करने से दाँत साफ होते हैं और मसूड़ा सम्बन्धी रोगों में लाभ होता है ।

यदि पेट में कीड़े होने की शिकायत हो तो सुबह थोड़ा गुड़ खाकर रात के रखे पानी से अजवाइन की फंकी लेने से पेट के कीड़े निकल जाएंगे ।

मुँहासे होने पर तीस ग्राम अजवाइन बारीक पीसकर 25 ग्राम दही मिलाकर पुनः पीसें । फिर रात्रि को सोने से पूर्व मुँहासों पर लगाएं । सवेरे हल्के गर्म पानी से चेहरा भली-भाँति धो डालें । सप्ताह-भर तक यह प्रयोग करने से मुँहासें मिट जाते हैं ।

मंदाग्नि रोग में अजवाइन काफी कारगर है । अजवाइन, काली मिर्च और सेंधा नमक पीसकर सवेरे गर्म पानी से फाँक लें । इससे मंदाग्नि के अलावा उदर शूल और पेट-दर्द में भी लाभ होता है ।

अजवाइन और तिल मिलाकर कुछ दिन सेवन करने से बहुमूत्र की शिकायत दूर हो जाती है । वैसे गुड़ और पिसी हुई कच्ची अजवाइन बराबर-बराबर मात्रा में मिलाकर एक-एक चम्मच दिन में चार दफा सेवन करने से भी बहुमूत्र में लाभ होता है ।

बच्चों को होने वाली उल्टी दस्त में अजवाइन को पीसकर माँ के दूध के साथ देने से लाभ होता है ।

अजवाइन का तेल 3 से 7 बूँद तक देने से हैजा और उदर-कृमि नष्ट हो जाता है । अजवाइन का चूर्ण थोड़ी-सी छाछ के साथ देने से पेट के कृमि नष्ट हो जाते हैं ।

सर्दी-जुकाम में भी अजवाइन उपयोगी है । अजवाइन को गर्म करके पतले कपड़े में पोटली बांधकर सूँधें । अजवाइन को चबाना और उसका धुँआ लेना भी सर्दी-जुकाम में लाभकारी रहता है ।

द्वारा, श्री कैलाश जैन एडवोकेट, 34-बन्दा रोड, भवानीमण्डी (राज.)

सूखा फल मखाना - पौष्टिकता का खजाना

कविराज डा० दिवाकर ठाकुर, जी.ए.एम.एस. (पटना) डी.एस.सी.ए. (आयुर्वेद बृहस्पति, विक्रमशिला)

मिथिला की कला मधुबनी पेंटिंग की तरह यहाँ का मखाना भी जग जाहिर है । मिथिलांचल का एक कहावत है - पग-पग पोखर माछ मखान ।

मखाना कमल की एक प्रजाति है । यह स्वच्छ पानी के तालाब-पोखर में कांड हीन, काँटेदार और कमल के समान जल में होता है । पत्ते कमल के समान पानी पर तैरते हुए गोलाकार एक से चार फीट व्यास में, ऊपर से हरे रंग और भीतर लाल, कोमल रोआँ और काँटेदार होता है । फूल एक से दो इंच लम्बे, फल दो से चार इंच के घेरे में गोलाकार, बीज मटर दाना से बड़ा जिसे बालू में भूंजने पर मखाना कहलाता है । यह वजन में हल्का और स्पर्श में रेशम जैसा मुलायम रहता है ।

इसके अन्दर प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, स्नेहांश, लोहा, खटिक, फास्फोरस, कॅराटीन, जल, नमक आदि रसायन द्रव्य पाए जाते हैं ।

विभिन्न जगहों में यह भिन्न-भिन्न नाम से जाना जाता है । जैसे-हिन्दी में मखान, बंगला में माखाना, गुजरात में मखाणा, मद्रास में मकाणे, तमिल में मेल्लुनिपद, ममु. पठान में जबेर, अंग्रेजी में गार्गन फ्रुट, लेटिन में यूरीएल फेराक्स आदि ।

मखाना स्थिर जल में उत्पन्न होने वाला एक वनस्पति का बीज है । यह बीज बाजार में प्रायः नहीं मिलता है लेकिन किसानों के बीच इसका लेन-देन होता है ।

मखाना में अधिक औषधीय गुण सन्निहित है । यह मधुर, शीतल, स्निग्ध गुणों से भरपूर है । यह एक अच्छा टॉनिक है । शारीरिक दुर्बलता को दूर कर बल को बढ़ाता है । हृदय के लिए हितकर होने से हृदय रोग में उपयुक्त होता है । गर्भावस्था और प्रसव के बाद होनेवाली कमजोरी में अत्यंत लाभ पहुँचाता है ! बार-बार गर्भपात होने की स्थिति में मखाने से बने पदार्थों का सेवन अत्यन्त उपयोगी होता है । शुक्र को बढ़ाता है और शरीर की जलन को मिटाता है । नियमित इसका सेवन करने से रात में भयानक सपने देखना बन्द हो जाता है ।

मिथिलांचल में हर पर्व त्योहार एवं पवित्र कार्य पूजा-पाठ के अवसर पर मखाना का व्यवहार करना जरूरी होता है । देश के अन्य क्षेत्रों में पूजा के प्रसाद एवं चरणामृत में मखाना का मिश्रण अनिवार्य है ।

किडनी रिसर्च एण्ड इन्स्टीट्यूशन ऑफ आयुर्वेद चाँदमारी कार्नर, कंकड़बाग, मेन रोड, पटना

बैद्यनाथ

लवणभास्कर चूर्ण

मन्दाग्नि को दूर कर पाचनक्रिया को बढ़ाता है ।

चरकोक्त ज्वर चिकित्सा अध्याय में ऊर्ध्वांग चिकित्सा सम्बन्धित उल्लेख

* डा० अनूप कुमार गक्खड़ व डा० अनिल गक्खड़

चरक संहिता यद्यपि काय चिकित्सा का प्रधान ग्रन्थ है फिर भी इसमें शालाक्य तंत्र सम्बन्धित विवेचन यदा-कदा उपलब्ध होता है । ज्वर चिकित्सा के प्रकरण में निम्नलिखित उल्लेख उर्ध्वांग चिकित्सा से सम्बन्धित हैं:-

→ वात और पित्त से उत्पन्न तृतीयक ज्वर में शिर:शूल का उल्लेख है (3/71)

→ वात दोष से उत्पन्न चतुर्थक ज्वर में शिर में पीड़ा के साथ ज्वर की उत्पत्ति का उल्लेख है । (3/72)

→ वात पित्त ज्वर के लक्षणों में शिरोरुक् का उल्लेख है (3/86)

→ वात पित्तोल्वण मन्द कफ सन्निपातज ज्वर के लक्षणों में शिर में अतिशय रूक् का उल्लेख है । (3/91)

→ वातोल्वण कफपित्त हीन सन्निपातज ज्वर के लक्षणों में शिर:शूल का उल्लेख है । (3/94)

→ सम सन्निपातज ज्वर के लक्षणों में शिर लोठन लक्षण का उल्लेख है । (3/100)

→ शिरोरोग में शिरोविरेचन करवाना चाहिए । (3/254)

→ शिरोरोग में तैल नस्य व धूमवर्ति का प्रयोग बताया है । (3/255)

→ ज्वर में शिर:शूल होने पर नस्य का प्रयोग बताया गया है । (3/173)

→ ज्वर में शिर:शूल होने पर गोक्षुर व कण्टकारी के क्वाथ में रक्तशालि की पेया पीने का विधान है । (3/181)

→ ज्वर में शिर:शूल होने पर बलादि घृत के प्रयोग का विधान किया गया है । (3/226)

→ ज्वर के पूर्वरूप में नयन स्राव का लक्षण बताया है (3/28)

→ वातकफज ज्वर के लक्षणों में प्रतिश्याय का उल्लेख है ! (3/87)

→ कफोल्वण, पित्त मध्य तथा अल्पवात जन्य ज्वर में प्रतिश्याय का भी लक्षण रूप में उल्लेख है (3/97)

→ वातोल्वण, पित्तमध्य तथा कफ अल्प जन्य ज्वर में प्रतिश्याय का लक्षण रूप में उल्लेख है । (3/101)

→ सन्निपातज ज्वर में उपद्रव स्वरूप कर्णमूल शोथ की उत्पत्ति बताते हुए इसे अतीव कष्टप्रदायक बताया है। (3/287)

→ सम सन्निपात ज्वर के लक्षण के रूप में कर्ण क्ष्वेड़ का उल्लेख किया गया है । (3/103)

→ वातोल्वण पित्तमध्य कफहीन सन्निपात ज्वर में मुखशोष का लक्षण के रूप में उल्लेख है । (3/101)

→ वातपित्त ज्वर के लक्षणों में कण्ठशोथ भी बताया गया है । (3/85)

→ शिर में दाह होने पर द्राक्षादि निरूहबस्ति का प्रयोग बताया है । (3/55)

→ स्थिरादि निरूह बस्ति नेत्र बलवर्धक मानी गयी है। (3/37)

→ अंधापन की अवस्था में बस्ति में मांसरस का प्रयोग लाभकर है । 3/43

---

* दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्धर शहर ** श्रीमती उर्मिला देवी, आयुर्वेदिक कॉलेज, होशियारपुर

बैद्यनाथ
पंचसकार चूर्ण
पेट साफ कर पाचन शक्ति को बढ़ाता है

आमवात व्याधि के चिकित्सा उपक्रम

*डा० निलेश भट्ट **प्रो० वी०डी० शुक्ल

वर्तमान परिस्थिति में आमवात व्याधि एक दु:ष्कर व्याधि है । आधुनिक विज्ञान में न तो उनकी संपूर्णत: चिकित्सा है न तो उनसे उपद्रव उत्पन्न हुए बिना आराम मिलता है ।

आयुर्वेद में आमवात रोग का वर्णन किया गया है एवं उसका चिकित्सा-उपक्रम तार्किक रूप से बताया गया है । आमवात रोग की चिकित्सा में चक्रदत्त जिनको चिकित्सा के सिद्धांतों के वर्णन में श्रेष्ठ कहा गया है, उन्होंने आमवात व्याधि की चिकित्सा में लंघन, स्वेदन, तिक्त कटु रस एवं दीपन कर्म करने वाली औषधियों का सेवन, विरेचन, स्नेहन और अनुवासन बस्ति के साथ-साथ क्षार बस्ती का भी उपयोग बताया है । भावमिश्र और योगरत्नाकर ने भी जिसमें स्नेह न हो ऐसा उपनाह स्वेद का प्रयोग बताया है । इन सब चिकित्सकीय घटकों का विवरण विस्तृत रूप से इस प्रकार किया जा सकता है ।

लंघन :- लंघन को आमवात में हितकर कहा गया है क्योंकि लंघन करोति इति लंघनम् । यहां पर लंघन से लंघुता शब्द का भी ग्रहण किया जाता है । अर्थात् आमवात के रोगियों में गौरवता एक लक्षण आम का बताया गया है । आम के पाचन हेतु अग्नि का प्रदीप्त होना नितांत आवश्यक है । इसलिए चक्रदत्त सर्व प्रथम आमवात की संप्राप्ति विघटन की दृष्टि से आद्य निदान अग्निमांद्य एवं तत्जन्य उत्पन्न आद्य रस पर विशेष ध्यान देते हुये अग्नि की सुरक्षा ही लंघन को आमवात की चिकित्सा में सर्वप्रथम उपक्रम दर्शाया है । लंघन की सीमा को भी बताते हुए कहा गया है कि जबतक निराम अवस्था न हो तबतक लंघन प्रयुक्त किया जा सकता है ।

आमवात की चिकित्सा में लंघन का प्राथमिक रूप से रोगी को निर्देश किया गया है, क्योंकि व्याधि आमाशयोत्थ है और उनको रसज विकारों में भी बताया गया है । लंघन कर्म ऐसी स्थिति में प्राथमिक रूप से बहुत उपयोगी कहा गया है (च०सू० 23-25 और च०नि०8-31) और आगे चरक ने लंघनकर्म का सामवात की स्थिति में प्रयुक्त करने को कहा गया है । योगरत्नाकर ने लंघनकर्म का आम की स्थिति में उत्तम चिकित्सकीय उपक्रम बताया है और अष्टांग हृदय सू० में 13-28 ऐसा कहा गया है कि आमदोष जब तक पक्वरूप में नहीं आ जाते हैं तब तक लंघन एक अत्यंत श्रेष्ठ है । लंघन को बलवृद्धि में हितकर नहीं कहा गया है परंतु आमवात की स्थिति में उपयोगी कहा गया है ।

स्वेदन - स्वेदन शब्द 'स्विद्' से बना है । उसका अर्थ पाकार्थ में हो सकता है । आयुर्वेद की दृष्टि से स्वेदन के दो प्रकार के हैं । इन दोनों प्रकार से स्वेदन की उपयोगिता आमवात की चिकित्सा के लिये सर्व सम्मत एवं सर्व स्वीकृत है ।

यह सर्व स्वीकृत है कि आमवात एवं अन्य रूमेटिक व्याधियों में स्वेदन कर्म प्रयुक्त हो सकता है । आमवात की चिकित्सा में आम की उपस्थिति हो तब पोट्टली रूप में रूक्ष स्वेद किया जाता है । जीर्ण अवस्था में जब रूक्षता बढ़ी हुइं मिलती है तब स्निग्ध स्वेद का भी प्रयोग किया जा सकता है ।

स्वेदन को जब शरीर में स्तब्धता, गौरवता एवं शूल की उपस्थिति (च०सू० 22-11) होती है तब प्रयुक्त किया जा सकता है और यह आमवात के मुख्यत: लक्षण बताया गया है । आभ्यंतर स्वेद के रूप में उष्ण जलपान भी किया जा सकता है जो दीपन, पाचन, ज्वरघ्न, स्रोतोशोधक आदि (च०चि० 3-44) बताया गया है । स्वेदन दोषों को पिघलाने का काम करता है और शाखा से कोष्ठ की ओर ले जाने का कार्य भी करता है जिससे शोधन चिकित्सा भी हो सकती है ।

कटुतिक्त दीपनीय औषधों की उपयोगिता - कटु, तिक्त, कषाय, द्रव्य वातवर्धक एवं कफनाशक बताया

---

* पंचकर्म सहायक, कायचिकित्सा विभाग, आइ.पी.जी.टी.एण्ड आर.जे.

** विभागाध्यक्ष, गुजरात आयु.युनि. जामनगर

गया है । आमवात में कफदोष की विशेष प्रधानता होती है और वात की आवृत्त अवस्था मिलती है । कटु, तिक्त, रस द्रव्य वात दोष की वृद्धि करता है परंतु आमवात में उनका उपयोग बताया गया है क्योंकि उन द्रव्यों में दीपन एवं पाचन की कार्मुकता है । यह द्रव्यों के लघु तीक्ष्ण एवं अग्निवर्धक गुण होने से, आम का पाचन होता है और बढ़े हुए क्लेदक कफ को दूर करता है और आम की उत्पत्ति नहीं होती है । कटु रस के कारण लाला स्त्रावीय एवं स्राव जो पाचन-क्रिया में जरूरी है उनका स्राव बढ़ता है । यह सर्व स्वीकृत है और इससे अलावा आंत्रीय गति में सुधार करता है जिससे वातानुलोमन भी होता है ।

विरेचन - लंघन, स्वेदन एवं कटुतिक्त दीपनीय द्रव्यों के उपयोग के बाद शरीर में निरामावस्था उत्पन्न होती है तब उस दोष को दूर करने के लिए शोधन क्रिया की जरूरत रहती है । सामान्यत: वमन के बाद विरेचन कर्म होता है परंतु रोगी को यहां पर विरेचन दिया जाता है । इन कारणों को दो विभाग में विभक्त किया जा सकता है । अ:आम की उत्पत्ति क्लेदक कफ द्वारा पित्तस्थान पर आवरण होने से होता है और उसके कारण से पाचक पित्त की असामान्य होने से पाचनक्रिया दूषित होता है । विरेचन यहां पर दो तरह से काम कर सकता है ।

* विरेचन कफ से हुआ आवरण को हरता है ।
* पित्त जो स्थानिक दोष है उनकी चिकित्सा विरेचन बताया गया है ।

ब: आमवात के लक्षण जैसे आनाह, आत्रकूजन, कटिशूल आदि वायु के प्रतिलोम गति के कारण होता है ।

स्नेहपान - उपर दर्शाये गये सब चिकित्सकीय उपक्रमों को करने के बाद रोगी को शमन स्नेहपान देना चाहिए और इस हेतु को निम्न रूप से सिद्ध किया जा सकता है ।

* उपरोक्त चिकित्सकीय उपक्रमों के बाद धातुओं में रूक्षता उत्पन्न होती हैं जो कि वातदोष की वृद्धि करता है और रोग को बढ़ाने में सहायक रहता है । इससे बचने के कारण से ही स्नेहपान इस रोग में प्रयुक्त माना गया है ।
* रोगी के बल में भी गिरावट शोधन उपक्रम करने के बाद शीघ्र ही लाभ मिल सकता है । च०चि० 2४-४2 के अनुसार स्नेह को बलवर्धक भी कहा गया है, उससे भी ज्यादा शमन स्नेह (घृतादि) अग्नि को भी बढ़ाता है । (च०चि० 15-201-202)
* अस्थिमज्जा गत वात के रोगी में स्नेहपान देने को कहा गया है और यह धातु भी सामान्यत: आमवात में भी दूषित होती है । (च०चि० 2४-४2)
* वातानुलोमन कर्म होने के कारण दूषित हुआ वायु का प्रशमन होता है । इसलिये आमवात में दिया जाता है। वातदोष की अवस्था निराम होनी चाहिए । और इसी तरह देखें तो आमवात के रूग्णों में पाचनक्रिया ठीक तरह से भी काम नहीं करती है । इस कारण से भी दीपन पाचन द्रव्य से सिद्ध स्नेह दे सकते हैं ।

बस्ति :- तीन दोषों में से वात दोष आमवात व्याधि में मुख्यत: विकृत रूप से रहता है और वायु की चिकित्सा में बस्ती को श्रेष्ठ माना गया है । आमवात में वायु के साथ-साथ आम भी मुख्यत: विकृत कारण बताया गया है और बस्ती अग्नि को भी बढ़ाती है । इस कारण से वह आम को भी दूर कर सकती है ।

आमवात में अनुवासन एवं निरूह दोनों बस्ति दे सकते हैं । अनुवासन बस्ति शरीर की रूक्षता जो आम को दूर करने वाली चिकित्सा से उत्पन्न हुआ है उनको दूर करता है । वायु को प्रशमन करती है । अग्नि के कार्यों को प्राकृत स्थिति में लाने का काम और शरीर का पोषण भी करती है । निरूह बस्ती जो कि लंघन के कारण शाखा से कोष्ठ में आये हुये दोषों को दूर करती है ।

इन सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए चक्रदत्त द्वारा आमवात के रोगी को सैंधवादि तैल का अनुवासन एवं क्षार बस्ती निरूह के रूप में देने को कहा है । (चक्रदत्त 25-1)

इस तरह आमवात के उपयुक्त उपक्रम का तार्किक वर्णन यहां पर किया गया है ।

STRESS AND AYURVEDIC MANAGEMENT

* Dr. Anoop Kumar Indoria ** Prof. Ajay Kumar Sharma

Stress is one of the old warhorses of psychiatry. Stress is cause of major psychopathology and a precipitator or trigger of psychiatry illness. Hans Selye (1907-1982) observed that stress causes common physiological responses. Selye invoked the adrenocortical system as the crucial responder to stressful stimulation. Walter Cannon (1871-1845) investigated the pathway of stress that was sympathetic nervous system. Cannon also observed that stressor causes gastric erosion and cardiovascular response. Many studies showed a link between stress or causes gastric erosion and cardiovascular response. Many studies showed a link between stressors and illness. So this is emphasized that stressors trigger illness in individual whose underlying disease is latent or sub-clinical.

Basically stress is both advantageous and disadvantageous. Everyone experiences stress but it is not always harmful. A certain level of stress is beneficial and stimulates us to perform well but too much stress can impair performance.

Stress is a positive, motivating force that enables one to survive and affects one to some degree throughout life. Stress is like an electric current. It increases arousal, gives energy and improves performance. But too high current or stress produces unpleasant effects and deteriorate performance. Conversely too little stress can make listless, un-stimulated, inefficient and slow performance. If stress is transient then it is good for performance but if it persists for a long period or it is continuous then it deteriorates performance. Yorkes Dodson Law clears this picture.

YORKES - DODSON LAW

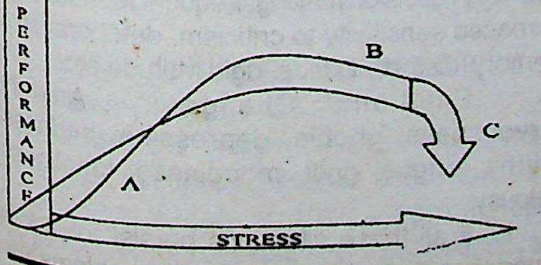

A. Little stress -
- List less.
- Inefficient.
- Slow performance.

B. Financial reward & deadline to work
- Better performance.

C. Fear of punishment or failure -
- Nervousness.
- Deterioration in performance.

The stimulation of a financial reward and deadline to work give an optimal level of stress so performance becomes well. But fear of punishment causes nervousness and inefficient performance.

In general and common understanding about stress in an unpleasant effect. Because advantageous effects of stress suppresses under prosperity and only unpleasant effects are felt by individual. The signs of stress resemble with many systemic disorders and it is very difficult to differentiate. In such cases treatment of systemic disorders does not subside signs because basic pathology of these disorders is stress induced complex series of biochemical and physiological events.

As we have discussed that everyone experiences stress but all don't feel signs of stress. The signs of stress depends upon individual's capabilities to cope with stressor. Model of stress is like a set of weighing scale in which one component is sources (Every day demands) and second component is life skills (Coping skill). When perceived demands outweigh individual's perception of his capabilities, the weighing scale tip is unbalanced and one begins to experience symptoms of stress. Any stressor has no capability to induce signs of stress. Only coping abilities are responsible for symptoms of stress.

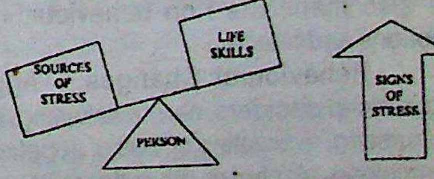

---

* Ph.D. Scholar, P.G. Deptt. of Kayachikitsa, N.I.A., Jaipur

** Prof. and Head, P.G. Deptt. of Kayachikitsa, N.I.A., Jaipur

SIGNS & SYMPTOMS OF STRESS

Stressors activate sympathetic nervous system and make a person ready to confront the situation. This sympathetic nervous response induces many physiological and biochemical changes which appear as signs and symptoms of stress

Stressors activate noradrenergic system, serotonergic system and depominergic system. Activation of noradrenergic system in locus coeruleus releases catecholamines. These catecholamines enhance synthesis of brain norepinephrine and inducts tyrosine hydroxylase which increases synthesis of Adrenaline. Activation of serotonergic system increases serotonin turnover, glucocorticoids and enhances 5 HT functioning. Hypothalamus secretes corticotrophin releasing factor (CRF) in hypophysial pituitary portal system. It acts on anterior pituitary and releases adrenocorticotrophic hormone (ACTH). ACTH acts an adrenal cortex and stimulates synthesis and releases Glucocorticoids. All these biochemical and neuro-chemical changes promote energy utilization and increase cardiovascular activities and produce "Flight or Fight response".

S.No.	Physical Reactions	Signs/Symptoms
01.	Salivary and other secretions decrease.	Dryness of mouth, Difficulty in Swallowing.
02.	All large skeletal muscles contract for action.	Muscular Tension, Fatigue, Muscular, pain, Tensed neck & shoulder Muscles, Backache.
03.	To maintain Oxygen supply of the body.	Faster Breathing, Hyperventilation, Palpitation, Dyspnoea.
04.	Heart pumps faster for proper blood supply to Brain and Muscles.	High Blood Pressure, Palpitation Nervousness, Restlessness.
05.	Liver releases stored sugar to provide fuel for quick energy.	Rapid tiredness, High Blood Sugar, High Insulin level.
06.	Blood supply diverted to skeletal muscles and slow down towards digestive system.	Nausea, Indigestion, Heart burn, Ulcers.
07.	Superficial Blood supply increased and deep organ supply decreased.	Rashes, Redning of Skin, Hot & Cold flushes.
08.	Blood vessels & Capillaries move towards skin move towards skin to cool body.	Excessive sweating, Perspiratin, Dryness of skin.
09.	Muscles of Anus and Bladder are relaxed.	Frequent Urination, Diarrhoea.
10.	Cortisol, Adrenalin and nor adrenalin are released.	Low Immunity and Recurrent illness.

EFFECTS OF STRESS

Physical signs and symptoms of stress appear as discussed above. But effects of stress are also manifested on behaviour, thoughts, emotions and health.

Behavioural Changes :- Aggression, anger, sleep disorders, early awakening, emotional out bursting, overeating or loss of appetite, craving for smoking, alcohol or other drugs, inactivity and avoidance of situations etc.

Thoughts :- Difficulty in concentration, difficulty in decision making, frequent forgetfulness, increased sensitivity to criticism, deterioration of memory, distorted ideas, rigid attitude etc.

Emotional Changes :- Anxiety, nervousness, phobia, depression, sedness, apathy, fatigue, guilt, moodiness, loneliness, jealousy.

If all these situations persist for a long period then it creates many health problems like-

Coronary artery diseases (Heart attack and IHD. Arrhythmias), Peptic Ulcers, Irritable Bowel syndrome, Diarrhoea, Asthma, Migraine and other headaches, Diabetes, Menstrual disturbances, Cancer, Chronic pain etc.

SOURCES OF STRESS

Holmes and Rahe (1967) and many scholars studied the relationship between life events and stress related health problems. They scored various life events. The accumulation of significant life events increases vulnerability to stress related illnesses. The main universal sources of stress are fear of death, fear of financial crisis and fear of defame. These fears may appear due to any change, bereavement, loss, accidents, trauma, separation, divorce, financial difficulties. Other sources like - Chronic pain, extramarital affaris, premenstrual syndrome, adolescence, exam, caring of elderly and sick family member, becoming a parent or a partner may aggravate the problems.

But stress is never inevitable. It depends to some extent on one's perception about an event. Any event has no capability to produce stress. One's perception about event, accumulation of stressor and copping abilities are responsible for stress related illnesses.

HOW TO OVERCOME FROM STRESS

1. Identification of stressor and induced signs.
2. Change the pattern of adaptation of event by rational thinking.
3. Manage the sign and symptoms by particular strategies.
4. Improve relationship with family members and subordinates.
5. Learn relaxation techniques.
6. Self care.

AYURVEDIC MANAGEMENT OF STRESS

1. **Nidana Parivarjana -**

Indentify the source of stress and signs of stress. Accept the situation which can not be altered. Signs of stress depend upon perceivement of event so think less rigidly and rationally.

2. **Vyatyasa Therapy -**

''व्यत्यासो नाम परस्पर विपरीत भावस्य परिवर्तनेन योजना''

(चक्रपाणी टीका)

काम शोक भय क्रोध हर्षेर्ष्या लोभ सम्भवान् ।
परस्पर परिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥

(च.चि. 10/86)

Alternative use of opposite or anonyms characteristic and emotion is VYATYASA THERAPY.

Mental derangement resulting from an excess of passion or desire or love, grief, fear, anger, delight or joy, envy, cupidity or greediness should be managed by alternative use of opposite emotions. Like "Anger" expression of anger is not good for relationship. Accept anger in other. So express your feeling assertively. Like "Anger" should be managed by alternative use of affection and aggression. One should identify the level of anger and behaviour accordingly.

3. **Essential Life Styles -**

(i) **Assertiveness -**

A. Express your feeling in respective manner. Don't be passive and self less. Be selfish to look after yourself. Aggressive behaviour creates stress. So always express thoughts openly without hurting feelings of others.

B. Accept criticism because it is necessary for self-improvement.

C. Scripting-Scripting is best way to prepare one self for expression without any aggration.

D. Negotiation is very good skill to remove obstructions.

E. Give and receive praise and compliments.

F. Learn how to say "No" because overburdening may cause stress e.e.-

- Direct No., Reflecting No, Reasoned No.
- Rain checks No, Enquiring No, Broken Record No.

G. Control over anger - Bottling of anger factor is basic cause of out bursting. So clarify every situation and identify level of anger. Basic cause of anger is your rigid belief and shouldism. Also accept anger in others.

(ii) Time Management -

Stress is result of out weighing of everyday demands so time management is first priority. Without planning and time management sources of stress can never be minimized.

A. Rank priorities - Office
Home
Leisure time.

B. Goal planning and work out system.
C. Overcome from procrastination.
D. Control over perfectionism.
E. Delegate the work.
F. Reduce hurry sickness.
G. Know your prime time and do important work in that time.
H. Plan and allow slacks in time-table.

(iii) Rational Thinking -

Thoughts have tendency of spiraling so every thinking should be analyzed with beginning :

A. Challenge distorted thinking.
B. Rigidness is basic cause so think less rigidly.
C. Give ladder to your thoughts.
D. State positive self-statements.

(iv) Improve Relatioship -

A. Communicate your thoughts and be a good listener. Listening, expressing and accepting are essential skills for good communications.
B. Faithfulness. loyalty, mutual respect, appreciation, understanding, tolerance, open talk and common interests are essential factors for good relationship between life partners.
C. Stop sulking - Sulking means being silent, unwilling to talk and freezing. Sulking is an unhelpful way of showing anger or disappointment. Sulking is responsible factor of emotional out-bursting.

(v) Self Care -

One can better cope and tackle stressor when one keeps himself fit, healthy and relaxed. Self-care contains physical exercise, yoga, relaxation, healthy eating, having fun, hobbies and interest, regular breaks, balance between work and play.

Regular exercise improves blood circulation, blood pressure, tunes up heart muscles and lungs, synthesize brain endorphins which helps in coping with stress, boosts the immune system. So walking and exercise of each joint & muscles should be done to keep healthy.

Yoga contains physical exercise with relaxation, breathing exercise (Pranayam), meditation. Yoga gives all benefits of exercise with activation of parasympathetic pathway of autonomic nervous system. Parasympathetic nervous system is responsible for relaxation. So fight or flight response, which appears by activation of sympathetic nervous system, can be checked by yoga. Sympathetic and parasympathetic both are branches of autonomic nervous system. Both systems don't act at a time so if some one activates his parasympathetic nervous system and becomes physically relaxed then spirality of vicious cycle of stress is checked.

Pranayam or breathing exercise improves respiratory system, creates proper oxygen concentration in lungs, blood and tissue level, expansion of chest became fully and prepares respiratory system to contfront emergency. Proper oxygen concentration is essential for many biochemical processes and excretion of by products.

Shavasana, Makarasana, Balakasana etc. are special postures, which give complete relaxation during yogic exercise. For relaxation during office hours, one should adopt following postures -

- Sit on Chair with supporting back.
- Concentrate on breathing.
- Start slow and deep breathing.
- Say "Calm" or "Let go" in mind.
- Take deep breath and hold.
- Drop your shoulders.

Progressive muscle relaxation is another technique, which gives relaxation. Tense up a group of muscles when holding breath and relax the tensed muscles during expiration. This technique is progressive muscles relaxation and should be adopted one by one for all groups of muscles.

Hobbies and interests should be developed by individuals. Hobbies give a change between work and home, develop interest in life, give slack in schedule, create joyfulness in environment, and ultimately develop healthy mental state.

4. **Medicinal Treatment -**

Following medicine can be prescribed to treat stress effectively -

A. **Single Drugs -**

Shankhapuspi	-	Convolvulus pluricalis
Bramhi	-	Centella asiatica/Bacopa moneri
Vacha	-	Acorus calamus
Jyotismati	-	Celastrus panniculata
Ashwagandha	-	Withania somniferra
Jatamansi	-	Nardostachys jatamansi
Tagara	-	Valeriana wallichi
Khurasani ajwaina	-	Hyoscyamus niger
Kushmanda	-	Benicassa hispida
Sarpagandha	-	Rauwolfia serpentina
Shatawari	-	Asparagus racemosus

B. **Churna (Powders) -**

Saraswata, Churna, Ashwagandhadi Churna

C. **Rasa, Bhasma, Pisti -**

Smriti Sagara Rasa, Chaturbhuja Rasa, Bramhi Vati, Amarsundari Vati, Yogendra Rasa, Akika Pisti, Abhraka Bhasma, Ropya Bhasma and Suvarna Bhasma.

D. **Ghrita & Taila -**

Kalyanak Ghrita, Bramhi Ghrita, Panchagavya Ghrita, Lashundya Ghrita, Shatavari Ghrita, Asthamangal Ghrita, Chitasa Ghrita, Bramhi Amla Taila and Chandanadi Taila etc.

E. **Avaleha -**

Bramha Rasayana, Kushmanda Khanda, Drakshavaleha, Khamira Gajawana Ambari, Vijaya Pushpadyaveleha.

F. **Asava & Aristha -**

Saraswataristha, Ashwagandharistha, Drakshasava.

5. **Panchakarma Procedures -**

Following procedures can be used in stress management -

1) Shirodhara = Taila dhara, Dugdha dhara, Sidhayoga dhara.
2) Shiro Basti.
3) Sarvanga Abhyanga with medicated oils.
4) Nasyakarma.

6. **Ideal Prescreption -**

1)	Sarasawata Churna	=	1 gm
	Smriti Sagara Rasa	=	250 mg
	Mukta Pisti	=	250 mg
			1 x 2 with honey.
2)	Brahmi Bati	=	250 mg x TDS
3)	Sarasawataristha	=	20 ml
	After meals with equal quantity of water		1 x 2 doses
4)	Brahma Rasayana	=	20 gm
			1x2 doese with milk

5) Shirodhara - With Dashamoola decoction treated milk.

6) Yoga Therapy - Shirshasana, Halasana, Shavasana.

7) Pathya - As directed by the Physician.

REFERENCES :

1. Joel E. Dimsdale. M.D., Francis J. Keefe Ph.D., Mussay B. Stein M.D. "Stress and Psychiatry", "Comprehensive test book of Psychiatry By Kaplan & Sadock's", 2000.
2. Stuart. J. Eisendrath. M.D., Jonthan E. Lichtmacher M.D., "Stress and Adjustment disorders", "Current medical diagnosis and treatment. 2004".
3. Trevor Powell, Afbps C. Psychol, "Free yourself from harmful Stress", 1997.

Concept of Hyperglycaemia and its Management through Ayurveda

* Dr. Shailesh Jain ** Dr. Mani Kumar ***Dr. Dr. O.P. Gupta

Madhumeha is one among the 20 types of prahmeha as described in all Ayurvedic classics. According to Charak (Ch.Chik.7) it is a metabolic disorder reflecting in abnormality of urine. Such person passes urine in large quantity-sweet, slightly turbid and pale in colour like Diabetes Mellitus.

According to Allopathic system of medicine it is metabolic disorder characterised by hyperglycemia due to absolute or relative deficiency of Insulin. Diabetes mellitus has prime symptoms like – polyphasia (excessive appetite), polyurea, (excessive urination), polydipsia (excessive thirst) along with or without its complications like Diabetic retinopathy, Diabetic neuropathy and Diabetic nephropathy.

With all these clues and symptoms we can submerge Diabetes mellitus in prameha which has been described in Ayurvedic classics.

Prevalence :- According to recent estimates the prevalence of diabetes mellitus in adult was around 4% world wide and it is projected that the prevalence of disease will be 5.4% in year 2025. So more than 300 million people will be affected to this syndrome. Of this close to 77% of global burden of disease is projected to occur in developing countries.

In Asia an estimated 30 million persons in the south East Asia region are affected at present — It is also estimated that in 2025 there will be nearly 80 million diabetics in the region the highest among all WHO regions.

In Indian region

WHO estimates that there were 19.4 million persons with diabetics in 1995, and this number is likely to be 57.2 million in 2025. This estimated number is 3 times more within 30 years and it is also estimated that not only urban (9-15%) dwellers but rural 3-4% population will be affected. So, India will be worst victim.

Clinical classification of diabetes mellitus (modern medicinal science) Diabetes mellitus

↓

Primary

Type - I (Insulin dependent diabetes mellitus)
Type - II a. (non Insulin dependent diabetes mellitus)
b. Maturity onset diabetes of the young (mody syndrome)

Secondary

a. Pancreatic pathology (e.g. Pancreatitis, Cystic fibrosis)
b. Excess endogenous production of hormonal autagouists to insulin. (e.g. Acromegaly, Cushing's syndrome)
c. Medication with (eg. Corticosteroids, Thiazide diuretics, Phenytoin etc.)
d. Liver diseases
e. Associated with Genetic syndromes (eg. Turner's syndrome, Muscular dystrophies).

Etiological factor and Pathogenesis.

Etiological factors described in Ayurvedic classics for the pathogenesis of prameha and medovaha srotodusti are as

आस्यासुखं स्वप्नसुखम दधीनि ग्राम्यौदकानूरसाः पयांसि ।
नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकच्च सर्वम ॥
(च०चि० 6/4)

Idle sitting, oversleep, excessive use of curd, meat soup of the domestic aquatic and marshy animals and milk, new cereals and drinks, products of jaggery and all other kapha promoting regimens are etiological factors for prameha.

Charaka has described in his Nidan Sthana 4/50 sloka as

गृह्यभ्यवहायेषु स्नान चङ्क्रमणद्विषम् ।
प्रमेहः क्षिप्रमभ्येति नीडद्रमामिवाण्डजः ॥

Prameha approaches immediately like bird to its nest tree the person who is greedy in eatables and has dislike for bath and walking.

अव्यायामादिवास्वप्नान्यमेध्यानां चातिभक्षणात् ।

---

*/** P.G. Scholar, Department of Kayachikitsa *** Prof. & Head., Kayachikitsa P.G. Section
Govt. Ayurvedic College, Jalukbari, Guwahati - 14 Assam.

मेदोवाहिनी दुष्यन्ति वारुण्याअतिसेवनात ॥

(च०चि०)

Medovaha srotas are affected due to lack of physical exercise. day sleep. excessive intake of food and alcoholic drinks.

Pathogenesis of prameha

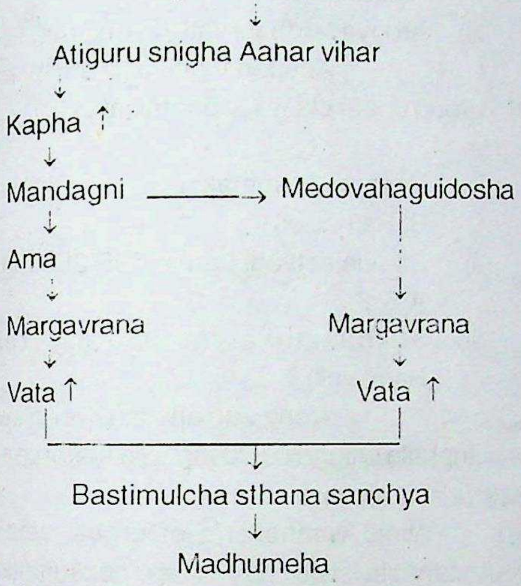

Ethological factor and pathogenesis

According to modern medical science following is the risk factor for developing diabetes mellitus.

a. Being overweight and age (middle age group).
b. Being a member of high risk group (Aboriginal peoples, Hispanic, Indian, Chinese, Africans).
c. Having a parent, brother or sister with diabetes.
d. Having given birth to a body over 4 kg at birth.
e. Having high blood cholesterol/blood sugar level.
f. Having high blood pressure or heart diseases.
g. Constant strain.

However, there are good evidences to suggest that heredity has a strong influence in the pathogenesis of non-insulin dependent diabetes mellitus and environmental factor's particularly viral infection have the major role in causation of insulin dependent diabetes mellitus.

Prevention and management of Madhumeha

In this modern era if we discuss the solution of this massive problem. especially for Indians the modern medicine has no curative treatment along with no bar on its secondary complications. At extreme stage of this diseases the modern medicine has drugs and answer of this question as only Insulin having lots of side effects. So it's Ayurvedic people's duty to find out a relative solution of this disease not only by means of medicine only but also by preventive aspects like our life style and by our rasayan therapy mentioned in Ayurveda.

(a) By abiding proper hygiene.

According to Ayurvedic Prameha is the disease of Medovaha srota dusti. Prameha approaches immediately to the person who is greedy to eatables and has dislike for bath and walking. But here bath means not like now a days just go to attached bathroom. Here bath means to clean all direct or indirect sroatas of malas and to keep proper hygiene of our body. (Ch. Ni. 4/50)

From above predisposing etiological factors and pathogenesis we can remove or prevent the disease in premature age. Ayurveda regime can give a better expectation of life from diabetes mellitus in those who are prone to have Diabetes Mellitus in premature age.

(b) By avoiding highly sedentary habits.

Now a days sedentary habits are compulsion for some group of citizen like computer people and shopkeeper etc. By being regular walking and mild exeresise these types of people can prevent diabetes mellitus in premature age.

Meal plan -

Now a days not only Anup mansa rasa. curd at night is not the only victim but modern food of this era having lots of preservative and tin or gem foods usually vitiate Kapha Dosha of body.

(d) Preventing aspects through Rasayan therapy -

This is a special branch of Ayurveda which prevents aging and gives longevity and strength. So it can also play prevention in madhumeha as anti oxidants.

There is lot of Dravybhuta Rasayana mentioned in our classics specially triphala rasayan. Its regular or gap use can help in prevention of madhumeha who have risk of madhumeha (Ch. Chik. 6/40)

Bhallatak rasayan (Ch. C 1-3/19) is the best for Kapha and obstructive condition. According to Charak there is no disorder of kapha and obstructive condition which is not ameliorated by bhallatak quickly. Moreover it promotes intellect and viqour. Both Charak and Sushrut stated a lot about daru haldi and haldi for the treatment of diabetes mellitus. So we can use these in preventive aspects.

By the help of yoga : we can reduce stress level by regular yoga like sawasana, mayuraswana, bhujangaaswana etc.

Management through selected drugs

In our classics more than thousand of drugs are mentioned as pramehaghna drugs, in which some are cheap (low price but effective) and some are very costly.

As we know India is a vast country and the people of India are not only different in their race but also vary in their economic status, so we can classify Indian society into three categories.

I group below poverty line (B.P.L.)
a)
i) Amla 1 part (I-V described in most of Ayurvedic Classics)
ii) Giloy ½ part
iii) Haldi ¼ part
iv) Methi 1/8 part
v) Chiraita 1/16 part
b) Indravati 125 mg twice daily (ref. B. Ratnava

II group (medium class)
i) Chandra Prabhavati 250 mg (ref. B Ratnavali)
ii) Madhu mehantak vati 250 mg (ref Rastantra sar)
iii) Arogyavardhani vati 250 mg (ref. RRS)
Anupan triphala kwath 40 ml

III group upper class (Economically)
a)
i) Basanta kusumakar ras 60-120 ml (ref B. Ratnavali)
ii) Sheelajeetvadi Lauha 125-250 mg (ref A.S.S.)
iii) Sukramatrika vati 250 mg (ref. B. Ratnavali)
Along with anupan Karela swaras
b) Triphala Guggulu 500 mg with methi pani

Pathya and Apathya

Avoid withholding of urges, smoking sedentary life style, day sleep, consumption of dadhi, meat of anup desha, food prepared with new creals and lentils as well as flours, excess sweets and sour and salty substances, Restrict heavy fried and oily foods.

Atikapha diet should be given prope fasting, use of purificatory procedures, herbs tha will increase agni, kulatha, old rice and wheat, yava patola, lashuna, shigru, triphala, guduchi leaves kapitha, jambu, haridra are all useful. Bitters like curuma, bitter gourd should be used in plenty.

Conclusion

1. Through this classification on economi modalites Ayurvedic treatment will be mo applicable in poor and densely populated pla like India.
2. Preventive aspect through Ayurveda lifesty and rasayan therapy has broad viability throug which its class of peoples should be benefite

AYURVEDIC TREATMENT FOR MENORRHAGIA

*Dr. K. Sudha Rani, M.D. (Ay.)

In Ayurvedic classics the disease menorrhagia is compared as 'Asrugdara'. The disease Asrugdara is a common gyneacological problem seen during the age of reproductive period i.e., from menarche to menopause. "Excessive or prolonged blood loss during menstruation or even scanty blood loss during intermenstrual period is the main clinical feature of Asrugdara which correlates to "Menorrhagia".

In the Modern system of medicine there is no definite solution for the above disorder. Temporary control can be obtained with haemostatic drugs, which are known for their side effects on other vital system of the body.

The disorders of menstruation should be given special consideration in the filed of medicine because right from the menarche to menopause. stree is susceptible to varying types of disorders pertaining to her sexual life, which may disturb the very objective of reproductive age. Such female not only loses her opportunity to get a child but also suffers from many a problem both physical and social.

In Ayurvedic classics most of the menstrual disorders have been described under the heading of 'Artava dushti and Asrugdara'

Definition :

"Rajah pradeeryate yasmat prodarastena smrulaha"

Due to pradeerana of raja it is named as pradara & there is deerana of asrik hence it is known as Asrugdara.

Nidana :

Charaka says that the woman who consumes the subject of excessive salt, soar, heavy katu, vidahi and unctuous nature, meat of fatty domestic and unctuous nature, meat of fatty domestic and acquatic animals, kshara, payasa, dadhi, sukta, wine, get aggravated vayu with holding the rakta vitiated to above causes and increases blood. Because of increase in the amount of blood, excess blood discharged, hence it is known as pradara.

Classification :

"Chaturvidham vyasatastu
vatadyaihi sannipatataha"

Asrugdara is classified under four groups.

1. Vataja
2. Pittaja
3. Kaphaja
4. Sannipataja

CLINICAL FEATURES:

Charaka defines the reason as the presence of excessive bleeding during menstruation. While Susruta says that same menstruation comes in excess amount, for prolonged period or even without normal period of menstruation and different from the features of normal menstrual blood.

Vataja Asrugdara :

The discharged blood is frothy thin rough. blackish or reddish, and comes with or without pain. And it is compared as pelvic congestation syndrome.

Pittaja asrugdara :

In this the menstrual blood is blue, yellow or blackish colour, hot, and comes in profuse amount with pain. In associated with burning sensation, redness, thirst, mental confusion, fever and giddiness. In Modern classics it is compared as menometrorrahagia.

Kaphaja asrigdara :

The menstrual blood is slimy. pale, heavy. unctuous. cold, mixed with mucus and thick and is discharged with mild pain. Other symptoms are vomiting anorexia, nausea, dyspnoea and cough are also present. It is compared as chronic endometritis.

Sannipataja asrigdara :

Foul smelling slimy and yellow discharge along with this of also discharges with force the vasa and meda. And associated with burning sensation thirst, fever, anaemia and weakness.

---

* Prasuti & Stree Roga, Hyderabad

Sadhyasadhyata

Sannipataja variety is incurable.

Complications :

Weakness or giddiness, mental confusion feeling of darkness, dyspnoea, thirst burning, sensation, deuterium, anaemia, drowsiness and convulsions.

Treatment :

Charaka says that the Pushyanuga churna is the best treatment for asrugdara. It has 28 drugs. They should be collected in Pushya masa and pushyami nakshatra and powdered well and administered with honey and rice water. It also cures sweta varna, neelavarna and peeta varna sravas.

I. **Choorna preparation :**

1. Powders of srungataka, laja, musta, kharjura, padmakesara mixed with honey.
2. In case of clotted bleeding, powdered faeces of pigeon with honey.
3. Powders of useera. kaleeyam, lodhra, padmaka, Priyangu and red ochre in equal quantity and powder of chandana equal to all, these together mixed with sugar and rice water.
4. Powders or ativisha bark and fruit of Kutaja and Rasayana mixed with honey and rice water.
5. Powders of darvee, kiratatika, musta and dushparsa.
6. Powder and paste of chandana with honey and sugar with (or) without rice water.
7. Powdered madhuka, sugar, lodhra and sariva mixed with honey to be taken with goat milk.
8. Powdered draksha, sugar with honey followed by cold water.
9. Powdered seeds of karanja with honey and ghruta.
10. Powdered pathya and kamalakesara with hondy.
11. Powdered lodhra and chandana followed by rice water.

II. **Ksheera prayoga**

1. Goat milk is excellent remedy.
2. Cow milk cooked with five times water and mixed with honey and sugar.

III. **Kalka prayoga**

1. Paste of yawasa and root of bhrungaraja mixed with juice of cow dung and rice water.
2. Use of paste of priyangu with honey and rice water.
3. Paste of phalinee with honey.
4. Paste of tender leaves of durva or vata with honey.
5. Paste of madhuka with honey.

iv. **Rasa preparation :**

1. Mahamehantaka rasa - It should be given with guduchi satva and mahadrakshadi chuma with equal parts.
2. Mahavangeswaram : Along with satavaree swarasa.
3. Mahavanga rajeeyam : Along with salmali choornam or laksha choorna with ghruta and sarkara. Avoid amla and lavana rasa.
4. Laghu mehantak ras: With salmali chuma and babbularishta.
5. Suvarna malinee vasantharas : with pippali churna.
6. Suvarna sindhoora bhushan ras with guduchi satva and yashlimadhu kwatha.
7. Swarna vanga with salmalee choorna, ghruta and sarkara.
8. Trivangabhasma with butter and sugar after giving the babbularishta.
9. Muktabhasma with Vaasarishta.
10. Rajithabhasma: With Vanga bhasma and milk
11. Vanga bhasma : With Mahadrakshadi choorna sarkara and kushmandalehya.
12. Pradararipuras : Use of these tablets with honey cures very severe pradara.
13. Bolaparpati : Use of this parpati cures all disorders of blood.

V. Ghruta preparations :

1. Mudgadya ghruta
2. Salmali ghruta
3. Seeta kalyana ghruta
4. Satavaree ghruta
5. Tikta kalyana ghruta
6. Ghruta medicated with paste and decoction of satavaree.

Management of Gridhrasi Roga (Sciatica)

* Dr. Vinod Kumar Singh, M.D. (Ay.) Kayachikitsa **Dr. B.N. Singh

Sciatica is the term used for neuralgia & neuritis of sciatic nerve. In this condition the pain radiating along the distribution of the sciatic nerve is referred as sciatica.

In fact, it is benign syndrome characterised by pain starting from lumbosacral region (low back) and spreading down on the posterior aspect of lower limb to the toe. These disorders on the basis of their symptoms exist parallel to Gridhrasi Roga described in the ancient Ayurvedic classics. Gridhrasi term derived by sense of nature of pain as severe pain occurs in Gridhrasi Roga.

गृध्यति मांसमऽभिकाङ्क्षति सततं इति ।

(शब्दकल्पद्रुम)

According to references available in Ayurvedic literature the Gridhrasi defined as nadi which having close relation to muscular tissues (mans, sira, snayu, kandara etc.) when get vitiated develop severe panic disorder as vulture snatched the muscular tissue of its prey.

CAUSES :-

The disease develops due to all vata vitiating factors related to diet & doing both as :-

- *Ruksh* & *sheet Ahar* – due to excessive intake of coarse & cold food/drinks.
- *Alpa Ahar* – Little quantity of food – inadequate diet.
- *Katu, Tikta* & *Kashaya Ras Ahar* – The diet rich in different vata aggravating taste.
- *Agnimandya* – Low digestive fire leads to incomplete digestion.
- *Upavas* – starvation.
- *Atimaithum* – excessive sexual indulgence.
- *Vegavidharan* – Bearing unwanted urges.
- *Atishram* – Excessive labor.
- *Aghata* – Trauma of vital spots
- *Ritu* – Rainy and cold season.

All are causative factors for vitiation of vata dosa as well as help full in generation of diseases, in form of disc prolapse, narrowing of IV space, Sacroilitis etc.

- *Dhatu-kshaya* - Loss of nutrient parts of body - as osteo-arthosis of lumbo-sacral spine.

CLINICAL FEATURES :-

According to concept of Ayurveda the symptoms appear in Gridhrasi based on involvement of Doshas and Anubandh Doshas. On behalf of contribution of Doshas in development of disorder is classified in two groups -

(1) Vataj Gridhrasi
(2) Vat-Kaphaj Gridhrasi

In vataj type Gridhrasi, the symptoms existing more promptly are -

(i) Ruja - Pain (If may dull diffuse or may severe localised)
(ii) Stambh (Stiffness)
(iii) Toda (Pricking sensation)
(iv) Spandan (Twitching pain in limbs)

All these symptoms affect the gluteal region, low back region, thigh knee & lower part of limbs gradually.

स्फिक्पूर्वा कटिपृष्ठोरूजानु जंघा पदं क्रमात् ।
गृध्रसी स्तम्भरूतोदैर्गृह्णति स्पन्दते मुहुः ॥

(च०चि० - 28)

Involvement of different parts of lower limb from upper to lower aspect indicates the conductive nature of disease.

There are other symptoms also described under vataj group of gridhrasi in other Ayurvedic classics – as

(v) Sakthankshepmingrhyat (stepping defect or difficulty in locomotion).
(vi) Sphuran (Tingling sensation)
(vii) Deh-Pravakrata- (Scoliotic postural deformity)

In case of Vata Kaphaj type of Gridhrasi there are all these syptoms that occur along with some Agnimandyajaya Lakshan like —

(viii) Tandra (Letharginess)
(ix) Gaurava (Heaviness feeling in body)
(x) Arochaka (Anorexia)
(xi) Mukhaprashek (watering in mouth)
(xii) Bhaktodwesh (Loss of appetite)
(xiii) On clinical examination — As LSR (Straight Leg Raising Test) — Known as lesague sign – When Flexion of thigh becomes restricted when leg kept straight at the knee then there may be chance to positive in different grades according to severity of illness and also an indicative of nerve root compression.

Generally stiffness is more prominently involved in vata-kaphaj type of Gridhrasi.

---

* Lecturer ** Director, S.B.M.N. Ayurvedic College & Hospital, Asthal Bohar, Rohtak (HR)-124021

Investigation :—

(i) X—Ray Lumbo-sacral region Anterior-posterior & lateral view there may be different findings in radiography.

— Osteoarthritis changes in Lumbo-sacral spine.

— Reduced inter vertebral spaces.

— Disc prolapse.

— Bilateral sacro-ilitis.

(ii) Magnetic Resonance Imaging investigation also has importance to demonstrate the site of lesion especially in complicated cases.

MANAGEMENT :

The whole management may categorise into 4 aspects.

(A) Sanshodhan Chikitsa — (Panchkarma therapy) – A bio-purification of body. Here may include different steps as :

(i) *Snehan* – (Oleation therapy) –
It may be external & interanl both by the help of medicated oils like

- Prasarini Tail
- Mahanarayan Tail

(ii) *Swedan* – (Sudation therapy) :- It may be Akang or sarvang on the basis of involvement of parts of body & legs by the procedure of nadi & Kuti Sweda used in Vashpa Sweda.

(iii) *Vasti Karma* – It our Ayurvedic classics there are use of Anuvasan Vasti in this disorder advocated by great Ayurvedic scholars.

There should be application of Anuvasan Vasti alone and also alternation of Niruha vasti. It depends upon condition of digestive fire. It is wise decision to use Anuvasan Vati and should be in alternation with Niruha Vasti when already Agnimandya state exists in diseased patients.

(B) Sanshman Chikitsa :- There are different preparations available as .-

— Churna (Powder):- Ajamodadi Churn, Ashwagandha Churn, Vaishwanar Churn & Tambuladi Churn in their 3-6 grams of dose with warm water minimum twice daily.

— Use of Rashon *Bhasm* in 500 mg. of dose twice daily is helpful to prevent the progressive osteo-arthritic changes in Lumbo-sacral spine alone or along with any combination of drugs.

— Ras - aushadhi – There are number of Vata-shamak preparations available as -

— Vatagajankush Ras

— Vat Vidhvansan Ras

— Akangveer Ras

All should be used in dose of 125 mg. to 250 mg. twice daily. Some *Kupipakva Rasayanas* are also helpful to cure the disease e.g.

Sameer Pannag Ras

Ras Sindhur

Malla sindur

All used in 60 to 125 mg. twice daily.

— Some decoctions are useful separately or in form of Anupan as

Maharasnadi kwath

Dashmool Kwath

Harshringar patra kwath in dose of 50-80 ml twice daily in luke warm condition.

— *Guggul / Vati* — use of guggul. subside the mild to moderate pain

— Tryodashang guggul

— Rasna guggul

— Abhadi guggul

— Lakshadi guggul

All guggul used in dose of 2-4 Tab two to three times per day along with other medication with warm water.

Vishmushti Vati

Vishtinduk Vati

Also used for improving mechanical pathology of nerve root compression but only in patients who have no history of hypertension. Ashwagandharishta & Balarista are also helpful in some extent to cure the disease.

(C) Yogic Chikitsa :- Some *Asanas* are very helpful to improving strength of muscles having relation to lumbo-sacral spine as -

— Naukasana

— Bhujangasan

— Shalabhasan

(D) Pathyapathya :- Curd, Rice, gram, pea, cold water & drinks along with forward bending and bearing heavy weight shold be avoided by patient.

There are use of hard bed without pillow & lumber belt helps in the stasis of progression of symptoms.

AN ETIOPATHOLOGICAL AND THERAPEUTIC STUDY ON STHULA PRAMEHI W.S.R. TO NIDDM

* Prof. Loknath Sharma   **Dr. Vivek Agarwal

INTRODUCTION

Ayurveda, the ancient science of medical faculties is one of the oldest & scientific systems of medicine on the planet. Maharshis have contributed greatly for providing social as well as personal health according to materials & methods available in ancient times. The disease Madhumeha is described in almost all available texts of Ayurveda under the title Prameha/ Madhumeha. Diabetes mellitus, the modern term of Madhumeha, has been classified among one of the major health problems found commonly in socio-economically improved societies all over the world. Hence madhumeha is the disease spreading in civilization.

Because of the associated risk of the stroke, coronary artery diseases and renal failure, diabetes mellitus is fourth leading cause of death, and is on the rise, both in developed & developing countries.

Diabetes is the single most important metabolic disease that affects nearly every organ/ system in the body.

Today diabetes affects more than 135 million people worldwide and that number is expected to increase to 300 million by 2025. One out of 20 persons in new millennium will be diabetic (WHO Report- 14.03.2001).

In India it is estimated that this disease affects presently 22 millions (2%) individuals, which is likely to go up to 57.2 million by the year 2025. India has been projected by the WHO as the country with the fastest growing population of diabetics. The prevalence of diabetes among urban Indians 1990, 1995, 2000 were 8.2%, 11.6% & 14.7% respectively. The prevalence in rural populations has remained static at 2.4% since 1990. The urban prevalence is between 4-6 times of rueal population throughout the country, because urban have more sedentary lifestyle, nutritious & fast foods habit. About 90-95% of all diagnosed cases of diabetes are type-2 (occurs in people over age 40 years). Hence, India has achieved an unwanted milestone of diabetic capital of the world. WHO & International Diabetes Federation have predicted an epidemic of diabetes in India by the year 2025 (Source - Delhi diabetic forum 2003).

≡ If not managed properly, people with diabetes having more serious complications are -

≡ 5 times more prone to gangrene

≡ 30-40 times more likely to undergo major amputation.

≡ 25 times more likely to develop blindness.

≡ No 1 cause of blindness in developing countries.

≡ 17 times more likely to develop kidney disease,

≡ 2-6 times more prone to stroke,

≡ 2-4 times more likely to develop myocardial infarction,

≡ 2-5 times more likely to develop impotence due to erectile dysfunction.

The causative factors of this disease is underactivity & sedentary lifestyle, over eating of kaphavardhaka ahar, rich nutritious & oily diet, visceral or central obesity, physical & mental strain with irregular dietary habits observed for a long time, avoidence of shodhana karma (bio-purification of vitiated doshas) & hereditary is the another cause.

The clinical symptoms such as prabhuta mutrata (polyuria), aavila mutrata (due to various dhatus), bhrisha pipasa (polydypsia), bahuashi (polyphasia), fatigue, lethargy & reduced weight are general complaint of diabetic patient.

Madhumehi are dealt in two categories viz., sthula & krisha. The former is kapha predominant (hyperlipidaemic, over weight & apatarpana, samshodhan, langhana are highly essential as this is due to excessive Kaphaja pathology) while the latter is vata predominant (non-obese & this type is due to excessive dhatu kshaya, where dhatu poshan is essentially required to regenerate the normal tissues).

---

* Professor & Head of the Department (Roga & Vikriti Vigyana), NIA, Jaipur ** P.G. Scholar, NIA, Jaipur

There is no permanent cure available for this disease, and hence this is classified as Yapya roga (manageable disease). However, modern oral hypoglycemic drugs are not as effective in curing this dreaded disease and have side effects. Sulfonylureas are reported to give rise to allergic skin rashes and bone marrow depression along with goitrogenic effects. Chlorpropamide is associated with cholestatic jaundice, whereas biguanides produce an unpleasant bitter, metallic taste in the mouth, anorexia, nausea, abdominal discomfort, lethargy, excessive weight loss and muscular weakness. Phenformin on the other hand causes malabsorption of vitamin B12. Hence, there is an urgent need to find an alternative oral hypoglycemic drug to reduce human sufferings.

Because of the apparent danger and shortcomings of allopathic medicines, in the recent year, in the global prospective there is a shift towards the use of medicines of herbal origin. WHO has already approved the use of traditional medicines as a part of health programme. India has a rich heritage of usage of medicinal plants in Ayurvedic & Unani systems. About 40 herbal & herbo-mineral oral (non-insulin) antidiabetic drugs are well established in Indian market. Its market is estimated to be worth Rs. 540 crores, has been growing at the rate of 23% (Source-Dabur Research Foundation, Sahibabad).

Advantages of the Ayurvedic medicine can be a promising substitute for modern oral hypoglycemic drugs. Herbal & herbo-mineral drugs have been claimed to be less toxic & more efficacious, reduce blood glucose levels, repair damaged pancreatic cells, reduce or prevent the development of diabetic complications such as retinopathy & nephropathy, control the development of microangiopathic lesions & control other long term complications of diabetes mellitus, so it can be used for long turn management of diabetes mellitus (Joy and Bultan 1998).

Importance of this work

The main aim of present research work is to manage the sthula premehi person (obese diabetic); with single drug combination i.e. Mehari yoga (kalpit) because several works on obesity & diadetes mellitus have been done separately. Obesity & diabetes are the complications of each other & they have almost same aetiological factor & requires same mode of treatment. So, it is necessary to control the Sthula Prameha (NIDDM) with single drug combination therapy, which consists of Medohara & Pramehanga drugs. Hence the study entitled as "An Etiopathological and Therapeutic study on Sthula Pramehi w.s.r. to NIDDM" was undertaken with following aims and objectives.

Aims and Objectives

1. To assess the presence of various Aetiological factors explained by Ayurveda in the diagnosed cases of Sthula Pramehi (NIDDM).
2. To establish a relationship of Nidanas mentioned in Ayurvedic and Modern literature.
3. To assess the efficacy of "Mehari Yoga" (hypothetical) in the management of Sthula Pramehi.
4. To analyse the pathogenesis of Prameha from Sthaulya.

(1) Selection of Patients

Patients for therapeutic drug trial will be selected from the OPD and IPD of the Hospital National Institute of Ayurveda, Jaipur after screening them as per Ayurvedic and Modern criteria for Sthula Pramehi. Selection will be carried out according to relevant history, sign, symptoms and Laboratory investigations including Body Mass Index for Sthula persons.

(a) Inclusion Criteria

√ Patients in the age group between 35 to 65 years irrespective of either sex.

√ Diagnosed cases of NIDDM with BMI>25.

(b) Exclusion Criteria

√ Patients of age less than 35 years and above 65 years.

√ Patients of Insulin dependent diabetes mellitus.

√ Patients taking drugs like corticosteroids, tricyclic antidepressant, cycloheptadine which leads to weight gain.

(c) Diagnostic Criteria

All the patients were diagnosed on the basis of following criteria -

(i) Clinical Signs and Symptomatology

Following symptoms were observed in patients for diagnosis –

- ☐ Chala, Sphiga, Udara and Stana
- ☐ Ayathopachaya
- ☐ Prabhoot Mootata
- ☐ Aavil Mootrata
- ☐ Pipasadhikya
- ☐ Kshudhadhikya
- ☐ Swedatipravriti
- ☐ Daurbalya
- ☐ Aalasya
- ☐ Atinidra
- ☐ Vibandh
- ☐ Malavritta Jihwa
- ☐ Kar-Paada Daha
- ☐ Mukhmadhurya
- ☐ Tandra
- ☐ Krichvyavyata
- ☐ Sandhi Shula

(ii) Raised Body Moss Index

(iii) Raised Hip & Waist Circumference

(iv) Various Investigations.

Hematological - T.L.C., D.L.C., E.S.R. Hb%.

Biochemistry - F.B.S., P.P.B.S., B.Urea, Lipid Profile, GHb%

Urine Examinations - F.U.S., P.M.U.S, Albumin, PH, sp.gravity etc.

(2) General observations

a) Demographic profile - like age, sex, socio-economic status, marital status, religion, habitat, dietary habits, nature of job & other relevant informations were worked out.

b) Physical measurement - like height, weight, body mass index, waist circumference and hip circumference.

(3) Selection of drug.

For the present study, I have selected the drug combination i.e. "Mehari Yoga (hypothetical)" with the help of taking references from the various texts. The drugs in this yoga are easily available and having the high degree of clinical effects mentioned there in against Sthula Pramehi person.

Ingredients of this drug (Mehari Yoga) are as follows-

- ☐ Aamrasthi Majja
- ☐ Jambu Seeds
- ☐ Karvellaka Fruit pulp
- ☐ Nimba Nimboli
- ☐ Bilwa Fruit pulp
- ☐ Devadaru Heartwood
- ☐ Daruharidra Heartwood
- ☐ Palandu Seeds
- ☐ Amalaki Fruit pulp

Reasoning for Selection of Drug

The main aim to select this drug combination is to control the Sthaulya and Prameha Roga with the single drug combination, because both the Sthaulya and Prameha are the complimentary to each other and almost requires the same mode of treatment, because the aetiological factors mentioned in context to the Sthaulya and Prameha are almost the same and both the diseases are considered as Santarpanjanya vyadhi in Ayurveda.

Preparation of Drug

Above mentioned all the nine ingredients are taken in equal quantity and prepared in the form of churna in the pharmacy of National Institute of Ayurveda, Jaipur.

Drug dose

5-5 gm. will be given twice daily.

Vehicle of Drug

Luke warm water will be given as Anupana. The importance of given Luke warm water is that it is kapha, meda vata, aama nasaka, agnidipana and also has role in purification of vasti. (Su.Su. 45/39)

Duration of Drug administration

Every patient will be given the above said drug for the duration of one month.

Administration of Drug.

Thirty clinically diagnosed Sthula Pramehi (Obese diabetics) patients were randomly divided in to three groups –

(I) Group — A

Ten Sthula Pramehi patients were recommended allopathic medicine (Glynase-MF) in the dose of one tablet twice a day with water before 15 minutes of meal for one month as a control group.

(II) Group — B

Ten Sthula Pramehi patients were recommended allopathic medicine (Glynase-MF) in the dose of one tablet twice a day along with Mehari Yoga 5-5 gm. twice a day with luke warm water before 15 minutes of meal for one month as a combined group.

(III) Group — C

Ten Sthula Pramehi patients were recommended only Mehari Yoga 5-5 gm twice a day with luke warm water before 15 minutes of meal for one month as only Ayurvedic medicine group.

Follow up study

√ Patients were followed up after 15 days and one month.

√ Laboratory investigations were repeated after complete treatment.

√ Improvement and other effects were noted down.

Note - No side or toxic effects of 'Mehari Yoga' was reported by any individual during trial.

(4) Criteria for Assessment

After the completion of the treatment, the results were assessed by adopting the following criteria -

√ Improvement in signs and symptoms of disease on the basis of symptoms score.

√ Improvement in Laboratory Investigations (i.e. reduce levels) on the basis of lab reports.

√ Reduction in objective assessment parameters.

Observation & Result

In the present study, 30 known Sthula Pramehi persons (NIDDM patients) were selected from the IPD & OPD of the Hospital of National Institute of Ayurveda, Jaipur. These patients were taken in three groups of 10 each. Group – A patients were given Glynase-MF (Allopathic group) while Group–B patients received Glynase-MF with Mehari yoga (Combined group) & Group–C patients received only Mehari yoga (Ayurvedic group). The result after a one-month drug trial was noted.

The highest percentage of symptoms found in patients were Chala sphiga udara stana (CSUS), Prabhoot mootrata, Kshudhadhika (100% each), Daurbalya (96.66%), Shula, Pipasadhika, Swedatipravriti (93.33% each), Kar-pada Daha & Tandra (90% each) While least percentage was of Vibandh (30%) in all the three groups of study.

Showing the Comparative improvement in percentage of Sthula Pramehi Persons in all Groups separately

S.No.	Observation	Group A	Group B	Group C
1.	Subjective Improvement	49.69%	59.54%	44.39%
2.	Objective Improvement	3.492%	7.3075%	7.260%
3.	Investigation Improvement	17.035	25.93%	18.64%

The overall study shows comparatively better results in Group B (Allopathic + Ayurvedic) than Group A (Allopathic) and in Group C (Ayurvedic).

Discussion - on Conceptual Study

Declaration of Diabetes mellitus as an epidemic by World Health Organization indicates alarming proportions. The foremost reason for such a wide spread of diabetes mellitus is the ignorance of well-balanced life style principles by Ayurvedic texts.

The Prameha is one among the eight troublesome diseases described by Ayurveda (Su.Su. 3/45). So, it is difficult to treat with single drug therapy i.e. why a combination of drug is chosen for therapeutic study of Sthula Pramehi persons.

According to Charaka (Ch.Chi. 6/15), there are two types of diabetic persons –

1. Sthula (Obese) and Powerful
2. Krisha (Asthenic) and Weak

The Sthula Pramehi patients have more strength as compared to :

Krisha Pramehi patients. but genera

Krisha Pramehi are preferred than Sthula Pramahi (obese), as the complications of obesity are more than that compared with disadvantages of being asthenic.

According to Sushruta (Su.Chi. 21/17), there are two types of Prameha –

1. Sahaja Prameha
2. Apathya-nimittaja Prameha

Sthula Pramehi

These patients are having the habits of over eating, taking fatty food and sedentary life style. The are the 'Apathya-nimittaja' Pramehi.

Krisha Pramehi

The person with Sahaja Prameha will be thin, weak, taking less amount of food, drinking more water and doing heavy work.

The aetiological factors mentioned in context to Sthaulya and Pramela are almost same, both the diseases are considered as Santarpanjanya vyadhi in Ayurveda i.e. the disease caused by over indulgence in madhura, snigdha, sheeta, guru, picchila ahara, meat of aquatic animals and decreased physical activities like divaswapna, avyayama etc. The genetic predisposition also has role in causing these diseases, which is very clearly mentioned by Ayurvedic texts as "Bijasvabhava".

Coming to pathogenesis of these diseases, kapha plays important role, it is aggravated first, which in turn aggravates the medodhatu, as their properties are identical. Now the aggravated or the dushit medodhatu behaves as a dosha causing atisthaulya and Prameha.

In Prameha, kapha is the predominant dosha, which is increased in amount, and its liquidity also increases, this vitiates the medodhatu first. The vitiated medodhatu further vitiates the other dhatus causing the Prameha.

Thus in Ayurvedic literature Premeha is not only mentioned as separate entity but also as sequelae of atisthaulya.

Obesity develops as the result of an excessive consumption of calories; particularly carbohydrate or the obese state itself may be related to hyperinsulinemia.

The chronic obese state, in the genetically prone individual as a predisposing factor in precipitating the diabetes, it is more likely to be the duration of obesity rather than the degree that leads to carbohydrate intolerance.

Obesity associated with carbohydrate intolerance, insulin resistance and hyperinsulinism, which are the features of NIDDM.

Discussion - on Vital Statistics

In the study, out of 30 patients it was found that the maximum no. of patients (43.33%) were in the age group 35-45 years followed by 33.33% of the patients in the age group 46-55 years and only 23.33% of the patients were in the age group 56-65 years. The reasoning for this age group is that NIDDM is the disease of elderly group.

The majority of patients (17) i.e. 56.66% were female which do not correspond to the Ayurvedic principles of females being less prone to the disease. The common life style being observed by both the sexes now a days perhaps has eliminated the sex linked Nidana.

The majority of patients were Hindus (60%) while 23.33% patients of Muslim religion and rest of patients were Sikh (3.33%) and Sindhi (13.33%) religion. This is probably due to the reason that the hospital where patients were selected is situated in mixed religion area.

93.33% of the patients were married only (6.66%) were widowed. It was observed that NIDDM (mostly obese) was very common after marriage because females gain more weight due to hormonal changes after marriage.

The educational status of majority of the patients was primary school educated (56.66%); this could be due to the population center having lower literacy rate while 20% of the patients were graduated more over, the ones who were educated were involved in more of mental strain and lesser physical work. This could be a reason for onset of the disease.

The incidence of Sthula Pramehi (NIDDM) is maximum in house wives (46.66%), this suggests that NIDDM is more common in house wives; it is probably due to their satisfactory married life.

The majority of patients were in the MIG group (46.66%) and 30% patients belonged to HIG group. That suggests NIDDM (Sthula Pramehi) is more common in Upper-Middle class because of their sedentary and comfortable life style.

53.33% of the patients having treatment history of Oral hypoglycemic agents (OHA) while 20% of patients having Nil treatment history and rest of patients having Ayurvedic (13.33%) but 13.33% patients have treatment history of both i.e. OHA plus Ayurvedic. This suggests that maximum patients in starting phase of disease takes allopathic treatment i.e. why this disease later on becomes more difficult to treat.

The majortiy of patients (19) having family of diabetes i.e. 63.33%. That confirms that NIDDM (Sthula Pramehi) patients having family history. Chronicity in 30 patients study in present work shows that patients having 3-5 years and above 5 years i.e. 30% each group while rest of having chronicity of 1-3 years (23.33%) and 0-1 (16.66%). It suggests that Diabetes mellitus is the chronic disorder.

60% of the patients were habituated to vegetarian diet while 40% of the patients were consumed mixed diet i.e. vegetarian & non-vegetarian both. Most of patients taking atinidana sevana (which is mentioned in review of nidana) due to this, they have got this disease predominantly.

When we discuss Agni and Kostha, we saw that those having constipation were usually having loss of appetite or irregular timing of appetite. Majority of patients had Teekshnagni (46.66%) while 23.33% and 20% had Vishmagni and Mandagni respectively. The prevalence of Vishmagni and Mandagni indicates Ama production & due to Teekshnagni in obese diabetic patients leading to more hunger and consumed more food that leads to obesity.

Only 20% patients had normal sleep, Madhumeha, being vata vyadhi the sleep was disturbed in 33.33% (Alpa & Anidra) of the patients. Maximum 46.66% patients had excessive sleep. This could be due to kaphaja nidana sevana.

The majority of patients were vata pittaja and vata kaphaja Saririka i.e. 36.66% in each group while the rest of patients were of kapha pittaja Prakriti (26.66%). This suggests that Madhumeha is vata dosha pradhana vyadhi. Mansika Prakriti majority of patients was Rajas tamas (53.33%) and Satva rajas (46.66%). This predominance of Rajas Prakriti shows today's society and life style.

The present research work shows maximum patients were of Meda sara (46.66%) followed by 26.66% of Mamsa sara This suggests that Sthula Pramehi persons (NIDDM) having predominance of dushya like Meha and Mamsa.

70% patients were of Sthula Samhanana (look wise) and rest of 30% was of Madhya Samhanana. This suggests that NIDDM patients are mostly Sthula (Obese).

Out of 30 patients, 50% were of Madhyama Satva followed by 36.66% Avara and 13.33% of Pravara Satva. This shows that diabetic patients loose patience early than others, because of predominance of avara & madhyama Satva.

While assessing the Vyayama Shakti of patients; it observed that all patients had same percentage (33.33%) in each of Madhyama, Avara & Avyayami group of vyayama Shakti. Over all assessment suggests that lack of exercise or decreased physical activity leads to NIDDM.

According to Abhyavaharana and Jarana Shakti, the majority of patients showed Madhyama Abhyavaharana Shakti (50%) followed by Madhyama Jarana Shakti (50%). Mostly in obese diabetic patient Abhyavaharana Shakti increases and Jarana Shakti becomes less due to Ama formation occurs that will lead to dhatwagnimandya and proceeds towards NIDDM.

In the present study, it was observed that the highest percentage of causative factors taken by the patients were Aasyasukh (90%). Aalasya (86.66%), Milk preparation (83.33%). Ati dadhi sevana (73.33%), Ati madhura (66.66%) & Avyayama (66.66%) where as the lowest percentage was of Amla (20%) & Lavana (26.66%) sevana. This shows that excess of taking milk preparation; Dadhi, Aasyasukh and lack of exercise are the main factors that lead to manifestation of Sthula Prameha, because most of the ahara and vihara are kapha vardhaka.

The majority of patients having Kar-pada Daha (93.33%), Tandra (90%). Asyamadhura (80%) and Mukh kantha talu shosha (76.66%) as a purvaroopa. This study showed that most of the purvaroopa converts in to Roopa. which means the purvaroopa, are the beginning of disease.

Discussion - on Subsidence of Symptoms

The highest percentage of symptoms found in patients were Chala sphiga udara stana (CSUS). Prabhoot mootrata. Kshudhadhikya (100% each), Daurbalya (96.66%). Shula, Pipasadhika. Swedatipravriti (93.33% each), Kar-pada Daha & Tandra (90% each) While least percentage was of Vibandh (30%) in all the three group of study.

Group - A shows maximum percentage improvement in Daurbalya (68.18%), Pipasadhika (61.90%), Malavritta Jihwa (61.53%) Kshudhadhikya (61.11%) & Mukhmadhurya (58.33%) while minimum percentage of improvement in Krichvyavayata (13.33%), but over all study shows symptomatic improvement in Group A was 49.69%.

Group - B shows maximum percentage improvement in Daurbalya (82.60%), Aavil Mootrata (80%). Kar-pada Daha (79.16%), Malavritta Jihwa (72.72%), Kshudhadhikya (68.42%) & Pipasadhikya (62.50%), Ayathopachaya (62.50%) while minimum percentage of improvement in Krichvyavayata (37.50%) & Vibandh (25%) but over all study shows symptomatic improvement in Group B was 59.54%.

Group - C shows maximum percentage improvement in Daurbalya (62.50%), Kar-pada Daha (58.82%). Malavritta Jihwa (54.54%) & Kshudhadhikya (56.25%), while minimum percentage of improvement in Krichvyavayata (16.66%) but over all study shows symptomatic improvement in Group C was 44.39%.

Over all results on the basis of improvement percentage showed that group - B has better therapeutic effect than group - A & C. This suggests that Mehari Yoga shows better results with allopathic medicine on the Symptomatic Parameters.

Thus. it showed that group B with Symptomatic improvement (59.54%) & Laboratory improvement (25.93%) had better results in comparison to group A with Symptomatic improvement (49.69%) & Laboratory improvement (17.03%) and group C with Symptomatic improvement (44.39%) & Laboratory improvement (18.64%).

CONCLUSION

Following Conclusions can be drawn from current research project —

1. The present research work showed that Sthula Pramehi (NIDDM) is more common in uppermiddle class because of their sedentary and comfortable life style
2. Sthaulya & Prameha both are dusit medoja vyadhi in which medodhatu acts as an aetiological factor. Sthaulya (Medoroga) is a Nanatamaja kapha vyadhi and Prameha is predominant kaphaj, their pathogenesis is almost same. Prameha, Prameha pidika are considered as complications of the Medoroga, which explain their interrelationship.
3. 'Mehari Yoga' (hypothetical) was very effective in reducing physical examination parameters (Weight, BMI, Waist and Hip circumference) & blood sugar levels both.
4. All the patients tolerated medicines very well and no side effects or toxicity effects of any these drugs were reported by any of patients, suggesting there by that the drugs selected for the current clinical trial are absolutely safe for internal use by the patients.
5. Patients who were dependent on Ayurvedic drugs had better improvement than those on Allopathic meidicines.
6. Group B (Glynase MF + Mehari Yoga) showed better results of improvement than Group A (Glynase MF only) and Group C (Mehari Yoga only) on clinical parameters.
7. No. Complications was noted in any group.

Thus Mehari Yoga (hypothetical) when used separately or with OHA is good remedy for the Management of Sthula Pramehi (NIDDM).

स्नातकोत्तर प्रवेश परीक्षा लखनऊ आयोजित जून 2005 स्मृति पर आधारित हल प्रश्न-प

1. प्र०:- विधि भेद से ज्वर के प्रकार हैं -
   (a) प्राकृत्त-वैकृत्त (b) ब्रर्हिवेग-अन्तर्वेग
   (c) देह-मानस (d) सौम्य-आग्नेय
2. प्र०:- मेदोवह स्रोतोदुष्टि का लक्षण है ।
   (a) स्वेदातिप्रवृत्ति (b) प्रमेह
   (c) दोनों (d) कोई नहीं
3. प्र०:- अशस्त्रकृत व्याधि हैं ।
   (a) उत्संगिनी (b) बहलकदर्म
   (c) लगण (d) अर्जुन
4. प्र०:- सुश्रुत ने कफज लिंगनाश में शस्त्रकर्मोपरान्त कितने-कितने दिन पर पट्टी बदलनें का निर्देश किया है -
   (a) त्र्यहाद-त्र्यहाद (b) पंचदश-पंचदश
   (c) द्वादश-द्वादश (d) मासार्त
5. प्र०:- वातिक असाध्य नेत्ररोगों की संख्या है -
   (a) 4 (b) 27 (c) 15 (d) 8
6. प्र०:- शुक्लमण्डल में कितने पैत्तिक रोग होते हैं ।
   (a) 4 (b) 3 (c) 2 (d) 1
7. प्र०:- स्तनरोहित मर्म है -
   (a) रूजाकर (b) सद्य:प्राणहर
   (c) कालान्तर प्राणहर (d) वैकल्यकर
8. प्र०:- उर्ध्वजत्रुगत मर्मो की संख्या होती है -
   (a) 37 (b) 32 (c) 45 (d) 28
9. प्र०:- आर्त्तववह स्रोतोदुष्टि का लक्षण है -
   (a) आर्त्तवनाश (b) मैथुन सहिष्णुता
   (c) बंध्यत्व (d) सभी
10. प्र०:- गर्भ की वृद्धि में कारण होता है -
    (a) अन्नरस (b) अग्नि
    (c) वायु का आध्मान (d) सभी
11. Q.:- Hegar's sign is -
    (a) Soffness of Isthmus
    (b) Emptiness of isthmus
    (c) Both
    (d) Softness of cervix
12. प्र०:- संधिशूल किस मार्गगत व्याधि है -
    (a) ब्राह्मा (b) मध्यम
    (c) आभ्यान्तर (d) शाखागत
13. प्र०:- व्यध्य व्याधि है -
    (a) वातविपर्यय (b) अन्यतोवात
    (c) वातहतवर्त्म (d) सभी
14. प्र०:- "पिष्टुशुक्लोबिन्दुर्योभवति...." लक्षण है -
    (a) पोथकी (b) पिष्टक
    (c) शुक्तिका (d) लगण
15. प्र०:- उपपक्ष्ममाला है -
    (a) पोथकी (b) पक्ष्मकोप
    (c) लगण (d) उत्संगिनी
16. प्र०:- प्रलेपक ज्वर में दोषों का अधिष्ठान होता है-
    (a) आमाशय (b) संधियाँ
    (c) उर: (d) त्वचा
17. प्र०:- सुश्रुतानुसार अनबबद्ध शल्यनिर्हरण के उप हैं-
    (a) 10 (b) 12 (c) 15 (d) 1
18. प्र०:- "स्तब्धपूर्णकोष्ठता" लक्षण है -
    (a) संचय (b) प्रकोप
    (c) प्रसर (d) स्थानसंश्रयावस्था
19. प्र०:- किस आचार्य ने प्रथमत: आशुकारीगुण क वर्णन किया है ।
    (a) चरक (b) सुश्रुत
    (c) नागार्जुन (d) वाग्भट
20. प्र०:- श्वास की क्रिया को प्रभावित करने वाला/व स्रोतस हैं -
    (a) प्राणवह (b) उदकवह
    (c) अन्नवह (d) सभी
21. प्र०:- स्वेदवह स्रोतोदुष्टि में चिकित्सा करते हैं -
    (a) तृष्णा की (b) ज्वर की
    (c) अतिसार की (d) आम की

22. प्र०:- माधवकर के अनुसार अजीर्ण के भेद हैं -
(a) 4 (b) 6 (c) 3 (d) 8

23. प्र०:- गर्भ के स्थापन से पूर्व उसका पोषण होता है -
(a) केदारी कुल्या न्याय से
(b) उपस्नेह व उपस्वेद से
(c) खले कपोत न्याय से
(d) कोई नहीं ।

24. प्र०:- नैष्ठिकी चिकित्सा का वर्णन चरक में मिलता है ।-
(a) सूत्रस्थान में (b) शारीरस्थान में
(c) चिकित्सास्थान में (d) निदानस्थान में

25. प्र०:- कार्य द्रव्य की निर्मिति हेतु आवश्यक है -
(a) दिशा (b) मन
(c) आत्मा (d) पंचमहाभूत

26. प्र०:- चरकानुसार व्रणस्राव होते हैं -
(a) 10 (b) 14 (c) 16 (d) 8

27. प्र०:- "व्रणोति यस्मात दृढ़ोऽपि........न नश्यति" ।
(a) चिपिटिका (b) व्रण
(c) व्रणवस्तु (d) व्रणशोफ

28. प्र०:- आगन्तुज व्रण के प्रकार हैं -
(a) 3 (b) 5 (c) 6 (d) 8

29. प्र०:- "त्रिर्भिदौषैरनाक्रान्तः श्यावौष्ठः पिडकीसम..." लक्षण है ।
(a) शुद्ध व्रण का (b) अशुद्ध व्रण का
(c) रूह्यवर्ण का (d) कपोत वर्ण का

30. प्र०:- मैथुन की सामान्य स्थिति है -
(a) उत्तान (b) न्युवज
(c) वामपार्श्व (d) दक्षिणपार्श्व

31. Q.:- Reason of ectopic pregnancy is -
(a) Salpingitis (b) IUCD
(c) Both (d) None

32. प्र०:- पुरीषज कृमि का आश्रय स्थल है -
(a) आमाशय (b) पक्वाशय
(c) गुदा (d) पच्यमानाशय

33. प्र०:- दशेमानि में कितने-कितने द्रव्य होते हैं -
(a) 1/10 (b) 10 (c) 100 (d) 50

34. प्र०:- तिक्त रस का भौतिक संगठन हैं -
(a) वायु+आकाश (b) अग्नि+वायु
(c) वायु+जल (d) पृथिवी+जल

35. प्र०:- उष्णतीक्ष्ण औषध किस ऋतु में ग्रहण करनी चाहिए -
(a) शरद (b) वसन्त
(c) शिशिर (d) वर्षा

36. Q.:- Within 24 hours of birth, what will be the commonest cause of Jaundice in a neonate -
(a) Rh incompatability
(b) Extra hepatic billiary Atresia
(c) Septicaemia
(d) None

37. Q.:- In a severe Asphyxiated baby APGAR score will be
(a) 0-3 (b) 2-5 (c) 5-8 (d) 6-8

38. प्र०:- "नाड़ी प्रशाखा" किस त्वचा में मिलती है -
(a) श्वेता (b) ताम्रा
(c) वेदिनी (d) रोहिणी

39. प्र०:- "त्रिफला" किस प्रकार का संयोग है -
(a) एककर्मज (b) उभयकर्मज
(c) सर्वकर्मज (d) गण संयोग

40. प्र०:- चरकानुसार परादि गुणों की संख्या है -
(a) 7 (b) 5 (c) 20 (d) 10

41. प्र०:- यस्य शोधने शक्तिः सः......... ।
(a) उष्ण (b) तीक्ष्ण
(c) सर (d) विशद

42. प्र०:- वाग्भटानुसार शोधन के भेद हैं -
(a) 2 (b) 3
(c) 5 (d) 6

43. प्र०:- 'कर्मभि वमनादिभि'' का समावेश है -
(a) पंचकर्म में (b) षट्कर्म में
(c) अष्टकर्म में (d) कोई नहीं

44. प्र०:- रसादीनां पंचानां भूतानां यदाश्रयभूतं तद् ...।
(a) गुणम् (b) द्रव्यम्
(c) रसम् (d) कर्मम्

45. प्र०:- कूर्पर संधि का प्रसारण किस पेशी से होता है ।
(a) द्विशिरस्का (b) त्रिशिरिस्का
(c) कूर्पर विस्फारण (d) सभी

46. प्र०:- कर्णपटह में झुकाव किस तरफ होता है -
(a) अग्र: (b) अन्त:
(c) बाह्य (d) उर्ध्व

47. प्र०:- प्रथम ग्रैव कशेरूका का नाम है -
(a) दन्तचूडा (b) महाकण्टकिनी
(c) चूड़िका (d) चूड़ावलय

48. प्र०:- त्रिकपर्दिक कपाट कहाँ स्थित होते हैं -
(a) दक्षिण अलिन्दनिलयान्तरीय
(b) वाम अलिन्द निलयान्तरीय
(c) फुफ्फुसिय शिरा
(d) औदर्या धमनी

49. प्र०:- ''स्कन्ध'' को आच्छादित करने वाले पेशी है-
(a) वक्षस्छदा (b) अंसच्छदा
(c) पृष्ठच्छदा (d) सभी

50. प्र०:- ''जिव्हा ग्रसनी'' तंत्रिका किस अंग को पूरित करती है -
(a) दन्त (b) जिव्हा
(c) आमाशय (d) कोई नहीं

51. प्र०:- ''सेवनी'' किस प्रकार का मर्म है -
(a) सद्य: प्राणहर (b) वैकल्यकर
(c) रूजाकर (d) कालान्तर प्रा

52. प्र०:- काश्यपानुसार ''ब्राह्मिणी'' में ऋतुकाल कित दिनों का होता है -
(a) 9 दिन (b) 10 दिन
(c) 11 दिन (d) 12 दिन

53. प्र०:- निम्न में से कौन-सा युग्म ठीक है -
(a) स्वेदन-स्तम्भन (b) स्नेहन-स्तंभन
(c) लंघन-स्नेहन (d) रूक्षण-स्वेदन

54. प्र०:- ''कृत्स्न देह'' में व्याप्त कला है -
(a) मांसधरा (b) रक्तधरा
(c) श्लेष्मधरा (d) शुक्रधरा

55. प्र०:- अलपित्त का चिकित्सा के साथ वर्णन किस ग्रं में मिलता है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वागभट (d) योगरत्नाकर

56. प्र०:- कफ का प्रकोपक काल है -
(a) भुक्तपात्र (b) भुक्तेजीर्यंते
(c) अर्द्धरात्रि (d) जीर्यान्ते

57. प्र०:- मैथुन का निषेध है -
(a) रज:स्वला में (b) गर्भिणी में
(c) योनिरोगों में (d) सभी में

58. प्र०:- अंजन का निषेध है -
(a) शिर:स्नानोपरान्त (b) ज्वर
(c) भोजनोपरान्त (d) सभी में

59. प्र०:- लघुमस्तिष्क के मध्य में जुड़ा होता है -
(a) वृहनमस्तिष्क (b) अनुमस्तिष्क
(c) उष्णीषक (d) कोई नहीं

60. प्र०:- चरकानुसार महाकषाय संख्या है -
(a) 10 (b) 50 (c) 6 (d) 5

61. प्र०:- आहार होता है -
(a) रस प्रधान (b) वीर्य प्रधान
(c) गुण प्रधान (d) सभी

2. Q.:- In which condition Ant. Fontenalle will be depressed -
(a) Microcephaly (b) Hydrocephelus
(c) Dehydration (d) All

3. प्र०:- सुश्रुतानुसार व्रणोपक्रम है -
(a) 6 (b) 7 (c) 36 (d) 60

4. प्र०:- नक्तान्ध्यता पायी जाती है -
(a) पित्त विदग्ध दृष्टि में
(b) श्लेष्मविदग्ध दृष्टि में
(c) दोनों में (d) कोई नहीं

65. प्र०:- आचार्य सुश्रुतानुसार शुक्रनिर्माण काल है -
(a) 1 दिन (b) 1 सप्ताह
(c) 1 वर्ष (d) 1 माह

66. प्र०:- चक्षुष्या नाड़ी के दृष्टिपटल में प्रवेश करने के स्थान पर होता है -
(a) पीत बिंदु (b) अंधबिन्दु
(c) दृष्टि बिंदु (d) रंगाकोशिकाएं

67. प्र०:- सुश्रुतानुसार विदग्धाजीर्ण की चिकित्सा है -
(a) लंघन (b)वमन (c)विरेचन (d)शयन

68. प्र०:- असाध्य नैत्रगत व्याधि है -
(a) पोथकी (b) कुम्भिका
(c) अर्जुन (d) हताधिमन्थ

69. प्र०:- किस आचार्य ने औषध काल पांच माने हैं -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वाग्भट (d) शार्गंधर

70. प्र०:- पाचन में किस महाभूत का प्राधान्य होता है -
(a) वायु (b) अग्नि
(c) आकाश (d) जल

71. प्र०:- बच्चों में वृद्धि एवं विकास के रूक जाने का कारण है -
(a) Genetic disorder
(b) Maternal infection
(c) Nutritional deficiency
(d) All

72. प्र०:- चरकानुसार ''पार्श्वशूल'' लक्षण मिलता है -
(a) क्षतज कास में (b) क्षयजकास में
(c) राजयक्ष्मा (d) 2 व 3 दोनों

73. प्र०:- सुश्रुतानुसार अर्न्तविद्रधि के स्थान हैं -
(a) 9 (b) 10 (c) 12 (d)13

74. प्र०:- वमन के अतियोग के लक्षण हैं -
(a) तृष्णा में (b) मोह
(c) निद्राबलादिहानि (d) सभी

75. प्र०:- ''शालिग्राम निघण्टु'' किस ग्रंथ पर आधारित है -
(a) भावप्रकाश
(b) शार्गंधर
(c) वृहद निघण्टु रत्नाकर
(d) चरक

76. प्र०:- हारीत के मतानुसार कास के प्रकार होते हैं -
(a) 5 (b) 6 (c) 7 (d) 8

77. Q.:- **Placenta development takes place by chiefly**
(a) Decidua-vera
(b) Decidua capsularis
(c) Basalis
(d) None

78. Q.:- **Hypoplastic uterus is due to**
(a) Improper development of muscle septum
(b) Improper fusion
(c) Both (d) None

79. Q.:- **Vernix caseosa appears in which month**
(a) 9 (b) 5 (c) 6 (d) 7

80. Q.:- **Weight of foetus in 28 weeks will be -**
(a) 1 kg (b) 1.5 kg
(c) 0.5 kg (d) 2 kg

81. Q.:- **Both in Physiological and Pathological Jaundice which value will increase -**
(a) Unconjugated bilirubin
(b) Conjugated bilirubin
(c) Alkaline phosphate
(d) SGOT

82. Q.:- Which of the following is usefull in immature delivery -
(a) Incubator (b) Phototherapy
(c) Heter (d) All

83. Q.:- Photoptheraphy is usefull in -
(a) Jaundice (b) Hypothemia
(c) both (d) None

84. प्र०:- आमगर्भ में जलबुदबुद के आकार की तुलना की जा सकती है -
(a) Hydatiform mole (b) Haematoma
(c) Both (d) None

85. प्र०:- विष का प्रभाव किस प्रक्रम से कम होगा -
(a) पृथक्करण (b) स्वेदन
(c) निर्वापन (d) छालन

86. प्र०:- अद्यः महाशिरा रक्त किसमें डालती है -
(a) वाम अलिन्द (b) दक्षिण अलिन्द
(c) वाम निलय (d) दक्षिण निलय

87. प्र०:- Prolactin रिफ्लेक्स कम नहीं होता है -
(a) Bottle Feeding (b) Breast swelling
(c) Breast Pain (d) All

88. प्र०:- "त्रिकपृष्ठासन" स्थिति है -
(a) लिथोटोमी (b) सिम्स पोजिशन
(c) फाऊलर (d) कोई नहीं

89. Q.:- Softening of skin after birth is due to -
(a) Fat (b) Vernix caseosa
(c) Amniotic fluid (d) All

90. Q.:- Sucking of amniotic fluid leads to -
(a) Muconium aspiration
(b) Pneumonia
(c) Respiratary distress
(d) All

91. प्र०:- जालकवत व्रण का कारणभूत जीवाणु होगा-
(a) स्ट्रेप्टोकोकस (b) स्टेफाइलोकोकस
(c) हीमोलायटिकस (d) क्लोस्ट्रिडियम

92. प्र०:- मध्यमा अंगुली की नाड़ी सप्लाई है।
(a) Ulnar N. (b) Median N
(c) Radial N (d) All

93. प्र०:- अग्रश्रृंग से जुड़ा होता है -
(a) आज्ञा (b) संज्ञा
(c) दोनों (d) कोई नहीं

94. प्र०:- चणकास्थि है।
(a) गंडास्थि (b) जानवास्थि
(c) उर्वस्थि (d) सभी

Answer - Keys

(1) C (2) C (3) D (4) A (5) A (6) D
(7) C (8) A (9) D (10) D (11) C (12) B
(13) A (14) B (15) B (16) B (17) C (18) A
(19) B (20) D (21) B (22) B (23) B (24) B
(25) D (26) B (27) D (28) C (29) A (30) A
(31) C (32) B (33) B (34) A (35) B (36) A
(37) A (38) C (39) D (40) D (41) B (42) C
(43) A (44) B (45) B (46) B (47) C (48) A
(49) B (50) B (51) C (52) D (53) A (54) D
(55) D (56) A (57) D (58) D (59) C (60) B
(61) A (62) C (63) D (64) B (65) C (66) B
(67) B (68) D (69) D (70) B (71) D (72) D
(73) B (74) D (75) C (76) D (77) A (78) B
(79) B (80) B (81) A (82) D (83) A (84) A
(85) A (86) B (87) D (88) A (89) B (90) C
(91) D (92) B (93) A (94) B

डा० गोविन्द पारीक
जूनियर रेजिडेन्ट
आयुर्वेद संहिता विभाग
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
वाराणसी - 5

सचित्र आयुर्वेद आज से चालीस वर्ष पूर्व

गुजरात विधान सभा में स्वास्थ्य मंत्री, श्री मोहनलाल व्यास के वक्तव्य का एक अंश

अप्रैल, 1966

मैंने यहाँ विधान किया था कि आयुर्वेद यूनिवर्सिटी की स्थापना लगभग की जा चुकी है उसका अर्थ माननीय सदस्य जाडेजा ने ऐसा किया हैं कि राज्य सरकार ने इस विधान सभा को बिना सूचना दिये पिछले दरवाजे से यूनिवर्सिटी की स्थापना करने का कुछ प्रयास किया है । मेरा कहना सिर्फ इतना ही था कि पिछले 20 वर्षों से आयुर्वेद के उत्कर्ष के लिए जामनगर में जो कार्य किये जा रहे हैं, और वे कार्य केवल राज्य ने ही नहीं किये परन्तु गुलाब कुंबरबा सोसायटी, केन्द्रीय सरकार व राज्य इन तीनों के सहयोग से किये गये हैं, उसका अंतिम उद्देश्य आयुर्वेद यूनिवर्सिटी की स्थापना करना था और वह उद्देश्य लगभग उस स्थिति पर पहुँचा है कि यूनिवर्सिटी के जो सामान्य कार्य होते हैं वे सब वहाँ लगभग अस्तित्व में आ गये हैं । मेरा इतना ही कहना था कि राज्य सरकार ने या स्वास्थ्य मंत्री ने इसमें कुछ छिपाव-दुराव नहीं किया है जिससे यूनिवर्सिटी की स्थापना तो लगभग की जा चुकी हो और उसमें अब कुछ करने का शेष न रहता हो । साथ ही यह सब कर लेने के पश्चात् अब केवल नामाभिधान ही करना है, ऐसा मेरा कहने का आशय न था और उस प्रकार माननीय सदस्य समझे हों तो मैं दिलगीर हूँ । मैंने जो कुछ कहा उसका अर्थ यही था कि आयुर्वेद यूनिवर्सिटी का कामकाज शुरू करने के लिए जो सुविधाऐं चाहिए वह आज वहाँ मौजूद हैं, अब उसकी स्थापना के लिए जो करना है वह उसे वैधानिक स्वरूप देने की बात है । इस यूनिवर्सिटी का कामकाज शुरू करने के लिए ढाई लाख रूपये से अधिक खर्च होने वाला नही है । साथ ही, माननीय सदस्य श्री जाडेजा ने ऐसा प्रश्न किया कि स्थायी रूप से ढाई लाख रुपये का खर्च होगा ? मैं नहीं मानता कि माननीय श्री जाडेजा आयुर्वेद यूनिवर्सिटी के विकास में एक रुकावट बनना चाहते हैं । कोई भी कार्य शुरू करने के पश्चात् हमेशा उसका विकास होता रहता है, वह कुछ बंधा हुआ ''स्टैगनन्ट'' नहीं रह सकता, इसलिए, आयुर्वेद यूनिवर्सिटी शुरू होने के पश्चात् जो कुछ योजना तैयार करनी होगी वह तैयार की जायेगी और उसमें राज्य सरकार जो कुछ सहायता कर सकेगी वह करेगी । मुझे स्पष्ट कहना चाहिए कि ऐसा प्रश्न जब दक्षिण गुजरात और सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी विधेयक पेश किए गये थे तब माननीय सदस्य ने उपस्थित नहीं किया था, परन्तु आयुर्वेद यूनिवर्सिटी संबंधी ऐसा प्रश्न क्यों उपस्थित होता है यह मेरी समझ में नहीं आता । इस विषय में अब विशेष विस्तार करने की आवश्यकता मुझे महसूस नहीं होती । मुझे विश्वास है कि आयुर्वेद यूनिवर्सिटी की स्थापना करने के पश्चात् उत्तरोतर विकास के लिये जो कुछ खर्च किया जायेगा वह यह विधानसभा बहुत आनन्दपूर्वक और उत्साहपूर्वक मंजूर करेगी, उसके लिए माननीय विरोध पक्ष के नेता ने मुझे विधान सभा में वचन दिया है, जो सरकार इस विधेयक को यहाँ लायी है वह सरकार हमेशा यह कार्य आगे बढ़ाने के लिए तत्पर हो यह स्वाभाविक है ।

आयुर्वेद यूनिवर्सिटी की स्थापना करने में उतावली होती है ऐसी एक बात यहां कही गयी है । आज से 20 वर्ष पहले शुरू किया गया यह कार्य जिसके लिए आज से 10 वर्ष पहले सौराष्ट्र विधान सभा में एक विधेयक लाने की तैयारी कर ली गयी थी - वह आज 10 वर्ष के पश्चात् लाया जाय, तो उसमें उतावली दिख पड़े वह मेरी समझ में नहीं आता । यहां माननीय सदस्य ने मुझे एक सूचना दी कि सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी का विधेयक सौराष्ट्र विधान सभा के समक्ष पेश नहीं किया जा सका उसका कारण यह था कि सामान्य अभिप्राय ऐसा था कि अभी उसके लिए अभी समय आया नहीं । वह सूचना होने के लिए मैं माननीय सदस्य का आभारी हूं और मैं स्वीकार करता हूं कि इस प्रकार की सूचना सच होगी ।

आपके अनुभूत प्रयोग

यौन रोग

यौन रोगों के कारण - अधिक मैथुन करने से, दिन में सोने से, अत्यन्त क्रोध करने से, अधिक परिश्रम करने से, नख व दन्त आदि द्वारा क्षत होने से वातादि दोष जब योनि में कुपित हो जाते हैं योनि में पीव रुधिर के समान बड़हल की गाँठ की आकृति यौन कन्द, खुजली, ज्वर, प्रदर आदि रोग होते हैं ।

यौन रोग व बचाव के उपाय - स्त्री अथवा पुरुष को चाहिए कि सबसे प्रथम सबेरे ब्राह्म मुहूर्त में जागने की आदत डालें, नित्य क्रिया व शौचादि के उपरान्त स्नान ध्यान व इष्ट साधना का नियम बनायें, संयम व शिष्टाचार का प्रयोग करें ।

1. यौन संबंधी रोगों की शिक्षा ग्रहण करें ।
2. गुप्तांग की सफाई की शिक्षा ग्रहण करें ।
3. मल-मूत्र का वेग न रोकें ।
4. अनैतिक सम्बन्ध न बनायें ।
5. गरिष्ठ भोजन, तीखे तथा खट्टे मसालों से बचें ।
6. मानसिक चिन्ता का त्याग करें, रोग का सही समय पर इलाज करायें ।

यौन रोग व उपचार - यौन शूल - 1. यौन दर्द पर धतूरे के पानों को घी मिलाकर पीस एक रत्ती सेंधा नमक मिला कपड़े में जामुन जैसी वर्ति बनाकर योनि मार्ग में रखवाने से वेदना शान्त होती है । 2. बेल और भाँगरे की जड़ को सिल पर पीस पानी के साथ, मदिरा के साथ पीने से योनि शूल तुरन्त शान्त हो जाता है । 3. कड़वे नीम की निबोंलियों को नीम के रस में पीस कर योनि में, अथवा लेप करने से योनि शूल मिट जाता है ।

योनि से पानी बहना - 1. कत्था, हरड़, जायफल, नीम के पत्ते और सुपारी इन्हें महीन पीस कर छान लें फिर इस चूर्ण को मूंग के यूप में मिलाकर सुखा लें । इस चूर्ण को योनि में डालने से उसमें पानी आना बन्द हो जाता है । 2. गौ का दूध 5 किलो, चिकनी सुपारी 250 ग्राम कूट छानकर दूध में डालकर धीमी-धीमी आँच पर ओटावें । गाढ़ा होने पर 500 ग्राम शक्कर डालकर चाशनी करें फिर छोटी बड़ी माई 4-4 तोला सुपारी के फूल, धाय के फूल, 8 तोला ढाक का 125 ग्राम गोंद सबको कूट छान चाशनी में डालें । हर रोज 2 तौला खाया करें ।

योनि की खुजली - गिलोय, हरड़, आँवला, जमालगोटा इनका काढ़ा बनाकर, उस काढ़े की धार से योनि पर व योनि को धोने से खुजली दूर हो जाती है ।

योनि प्रदाह - प्रतिदिन आंवलों के रस में चीनी मिलाकर पीने अथवा कमलिनी की जड़ को पानी में पीसकर पीने से योनि की जलन दूर होती है ।

प्रदर रोग - 1. पारा शुद्ध 2. चाँदी भस्म 3. गन्धक, 4. वंग भस्म, 5. कौड़ी भस्म, 6. शंख भस्म 7. सफेल राल, 8. प्रवाल भस्म, 9. लौह भस्म 10. सफेद खड़ी चूर्ण, !1. ग्वार पाठा का रस

विधि - सबको महीन पीसकर ग्वार पाठे के रस में मर्दन कर मूंग के बराबर गोली बनावें ।

मात्रा - 1 से 2 गोली मधु के साथ या चावल के धोवन के साथ लेवें ।

उपयोग - इस योग से सब प्रकार के प्रदर व समस्त योनि रोग उपद्रव नष्ट होते हैं ।

रक्त प्रदर - 1. पके हुए गूलर के फल को सुखा लें फिर उसे कूट छानकर उसमें समभाग मिश्री मिला कर रख लें । बर्तन का मुँह बाँध कर रखें । इस चूर्ण को नित्य प्रात: सायं दूध अथवा पानी के साथ सेवन करते रहने से रक्त प्रदर अवश्य ठीक हो जाता है । 2. गोदन्ती भस्म व शुभ्रा भस्म का सेवन करायें ।

यौन कन्डू - इस रोग में फिटकरी के गाढ़े द्रव से धोने पर खुजली की निवृत्ति हो जाती है । योनि दाह होने पर फिटकरी व शीतल चीनी को जल में मिला पिचकारी लगाने से दाह का शमन हो जाता है । योनि में से कमल बाहर निकल आने पर । तोला फिटकरी 4 तोला माजूफल के चूर्ण को मिला छोटी-छोटी पोटली योनि में धारण करने से कमल का निकलना बन्द हो जाता है ।

शरीर व्याधि मन्दिरम् - इस पंच भौतिक शरीर में नाना प्रकार की व्याधियां होती रहती हैं । कर्म भोग के कारण शरीर में कोई बलवान अरिष्ट जब चिकित्सा आदि उपायों से ठीक नहीं हो पाता है तो ऐसे में ये कर्म करें ।

मा चिदन्यद् वि शंसत सखायो मा रिषण्यत् ।
इन्द्रमित् स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥

हितकारी उपासकों सब एकाग्र होकर प्रसन्न हो पर अभिष्ट को पूर्ण करने वाले परमेश्वर की प्रार्थना व कीर्तन करें । बार-बार चिन्तन करें, आत्म श्रेय का नाश करें मुझे पूर्ण आशा है कि उस महान शक्ति के करने कभी तो भनक पड़ेगी ।

वैद्य आर. के. वार्ष्णेय, आयुर्वेद वाचस्पति
पो.- जरारा जि. - मथुरा पिन- 28120
सहायक, **चरण दास**
ग्रा. सिकन्दरपुर, मथुरा पिन - 28120

आपके पत्र

उच्चरक्तचाप व हृदय रोग के मरीजों की समस्याएं और समाधान

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना

हृदय रोग में रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) के कारण ही धमनियों में रक्तसंचार होता है और रक्त से आक्सीजन पोषक तत्व ऊतकों तक पहुँचते हैं ।

रक्तचाप सदैव स्थिर नहीं रहता, विभिन्न अवस्थाओं में बदलता रहता है । स्वस्थ व्यक्ति में हृदय के संक्रमण के समय (सिस्टोलिक प्रेशर) 100 से 140 मि.मी. मरकरी और हृदय संकुचन नहीं करता (डायस्टोलिक प्रेशर) 60 से 90 मि.मी. मरकरी होता है । रक्तचाप सोते समय कम रहता है जबकि तनाव भोजन के पश्चात् शारीरिक श्रेय व व्यायाम सहवास करते समय बढ़ जाता है और आराम करने के बाद पुनः सामान्य स्तर पर पहुँच जाता है ।

उच्च रक्तचाप बहुत ही सामान्य रोग है । आधुनिक युग की भाग दौड़ के जीवन में मानसिक तनाव, खानपान, आराम तलब जीवन इत्यादि के कारण इन मरीजों की संख्या में वृद्धि हो रही है । वयस्क अनुमान है कि करीब 10 से 12 प्रतिशत व्यस्क व्यक्ति उच्च रक्त चाप के चंगुल में होते हैं । उच्च रक्त चाप ग्रसित मरीजों के कारण हृदय को लगातार ज्यादा शक्ति से कार्य करना पड़ता है जिसके कारण हृदय का आकार बढ़ सकता है और बाद में हार्ट फेल्यार हो सकता है । उच्च रक्तचाप के कारण शरीर के अनेक अंग गुर्दे, आखें क्षति ग्रस्त हो सकती हैं, पक्षाघात हृदय धमनी रोग (ऐन्जाइना हार्ट अटैक) ग्रस्त होने का भय बढ़ जाता है । उच्च रक्तचाप जीवन पर्यन्त का रोग है । इस रोग पर नियंत्रण तो पाया जा सकता है परन्तु रोग उन्मूलन नहीं हो सकता । रोग पर नियंत्रण के लिये जीवन शैली में परिवर्तन करें । संतुलित भोजन करें । भोजन में वसा व नमक का कम मात्रा में सेवन करना चाहिये । यदि वजन ज्यादा है तो कैलोरी की मात्रा कम कर नियमित व्यायाम शरीर के सामान्य वजन में लाना चाहिए । शान्तिपूर्वक तनावयुक्त जीवन गुजारना, रात्रि को अरामदायक नींद लेना अति आवश्यक है । जो मरीज तनाव ग्रस्त रहने पर उपचार नहीं लेते उनमें जटिल व खतरनाक समस्याएं पैदा हो जाती हैं जिनके गंभीर दुष्परिणाम होते हैं, ऐसे रोगियों को सावधानी बरतनी चाहिए । चिकित्सा का समुचित परामर्श लेकर अच्छा उपचार करायें और स्वस्थ सफल व सक्रिय जीवन गुजारें ।

जय आयुर्वेद
वैद्य आर. के. वार्ष्णेय
आयुर्वेद वाचस्पति
पो.- जरारा जि. - मथुरा पिन- 281205

उत्तर प्रदेश के मिश्रित चिकित्सा प्रणाली के चिकित्सक ध्यान दें

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री वैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना

महोदय,

दिनांक 9-3-2006 के दैनिक जागरण अखबार में पढ़ने को मिला "निजी चिकित्सा इकाइयों का रेगुलेशन तैयार" समिति में स्वास्थ्य महानिदेशक, सहायक निदेशक, लखनऊ के पैथोलॉजिस्ट डा० गिरधरदास, स्वास्थ्य निदेशक आदि ने रेगुलेशन का खाका तैयार किया है । समिति के अनुसार बी.ए.एम.एस. और बी.एच.एम.एस. डिग्री होल्डर 'पैथोलॉजी लैब' को संचालित नहीं कर पायेंगे । इस रेगुलेशन का विरोधमिश्रित चिकित्सा प्रणाली एवं नीमा के सदस्यों को करना चाहिए ।

यदि किसी चिकित्सक के पास इस सम्बन्ध में कोई जानकारी हो तथा पाठ्यक्रम सिलेबस उपलब्ध हो तो कृपया शीघ्र ही निम्न पते पर भेजने की कृपा करें ।

(डा० राकेश मोहन शर्मा)
प्रभारी चिकित्साधिकारी
मण्डलीय सचिव
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
बरई शाहपुर - हाथरस

आरोग्य समाचार
अखबार की कतरनों से

Avian flu - a second genetic subtype found in humans

Both the H5N1 virus subtypes still do not have ability to spread from one human to another

Avian genes

The only good news is that the scientists found the second subtype contained all genes that were of avian influenza origin. This underlines the fact that the second subtype was produced by mutation and not by re-assortment.

Re-assortment can happen only when humans are infected with conventional influenza virus and the H5N1 virus at the same time and some amount of gene mixing happens between the two viruses to produce a new subtyep.

A paper published in the journal *Emerging Infections Diseases* in October last year brought to light the ability of the H5N1 virus to form distinct subtyeps. However, both subtypes were not found to infect birds and humans alike.

It was found that while one subtye was able to infect both humans and birds in Vietnam, Thailand and Combodia but only birds in Laos and Malaysia, the second subtype was found in viruses isolated exclusively from birds in China, Indonesia, Japan and South Korea, the paper noted.

Now the identification of a second subtype in humans makes the possibility to keeping the virus under check more difficult, As the genetic diversity of the virus increases, the difficulty in finding ways of producing efficacious vaccines and drugs becomes greater too.

Vaccine challenges

Vaccines are developed based on the strain that in infecting humans. Now with one more subtype found, there is a need to develop another vaccine that can be effective against the new subtype has to be done. And the ability of the virus to mutate also makes vaccine development all the more difficult as one is not sure if the vaccine developed will still be relevant.

It is also possible that a vacine develope for one subtype would be able to provide at leas partial protection against the other subtype.

The difficulty in developing an effcacio vaccine is just one of the critical issues. It ha been found that genetic mutation by a virus gi it the ability to either develop into a type that ca be easily transmitted between humans or les likely to do so.

No reason for panic

The emergence of a second subtype o the H5N1 as a result of mutation does n necessrily mean that human pandemic is roun the corner; its capability to mutate cannot be take lightly either. Whether a mutant capable of eas spreading between peoble will become a reality i not known.

But the very ability of the virus to muta makes could make this possible even if th chances are remote.

No conclusive evidence

It may be recalled that the virus rare infected humans before 1997.

Researchers are yet to conclusively prov that mutation has provided the virus the ability t infect humans relatively easily.

(With courtesy from the Hin

ज्यादा दवा मत खाओ, योग करो

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनु

ज्यादा दवा मत खाओ, योग करो स्त्रस्थ त्र निरोग रहने लिए प्राणायाम सब्रसे ब्रड़ी दवा है । मात्र एक साल प्रतिदिन सवेरे-शाम प्राणायाम कर लें तो टेढ़े-मेढ़े हाथ भी सीधे हो जाते हैं । दिव्य योग साधना समिति तत्वात्रधान में पतंजलि योगस्थली, गांधी मैदान में आ सात दिवसीय योग विज्ञान शिविर के छठे दिन शुक्रवार योगगुरू स्वामी रामदेवजी महाराज ने उक्त ब्रातें कहीं

योग प्रशिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराए हैं । जीत्रन ब्रीमा पालिसियों पर व्यंग्य करते हुए रामदेत्रजी ने कहा कि अपने जीत्रन में हर आदमी बीमा कराता है । उनमें अधिसंख्य लोग लाभान्वित

होते। लाभ हासिल करने से पहले ही वे स्वयं दुनिया से उठ जाते हैं। इनमें ज्यादातर व्यक्ति हृदय रोग से ग्रसित होते हैं। अब बीमा कम्पनी वाले बीमाधारकों का हर्ट तो बदल नहीं सकते। बीमा कम्पनियों को मृत्युपरांत अपनी शर्तों के अनुसार ग्राहकों को राशि की अदायगी करती पड़ती है। इस कार्य में बीमा कम्पनियों के पदाधिकारी व कार्यकर्ता स्वयं कम्पनी को चूना लगाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। लेकिन अगर आप नियमित प्राणायाम करें तो जीवनपर्यंत हृदय रोग के खतरे से मुक्त हो सकते हैं।

इस अवसर पर स्वामीजी ने भस्त्रिका. कपालभाति. अनुलोम. विलोम, बाह्य प्राणायाम, अग्निसार, भ्रामरी. उद्गीत. उज्जाई, शीतली, शीतकारी एवं कर्ण रोगांतर प्राणायामों का अभ्यास कराया। योग प्रशिक्षक अजय कुमार एवं कृष्णानंद पाण्डेय समेत दो सौ प्रशिक्षकों ने शिविर प्रांगण में प्रशिक्षणार्थियों का मार्गदर्शन करते रहे। शिविर में कई प्रशिक्षणार्थियों ने अपनी स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं में सुधार होने की जानकारी दी।

कैंसर रोगियों के लिए फायदेमंद है प्राणायाम

स्वामी रामदेव ने कहा कि सारी बीमारियां जीवन शैली में आ रहे बदलाव के कारण हो रही हैं। स्वामी जी ने कहा कि शरीर में होने वाली सारी बीमारियां हारमोन में होने वाली गड़बड़ी के कारण होती हैं। उन्होंने कहा कि जो हम खाते हैं, जैसा सोचते हैं, उसी का परिणाम हमारा जीवन है। बाबा ने लोगों से मांसाहार से परहेज करने का आग्रह करते हुए कहा कि जिस समय किसी जीव को मारा जाता है उस वक्त उसके शरीर से हानिकारक हारमोन का स्राव होता है जो मांस खाने वालों को हानि पहुंचा सकता है। इसलिए लोग इसका त्याग कर शाकाहार अपनाएं। उन्होंने कहा कि पृथ्वी पर सभी जीव अपना निर्धारित आहार ही लेते हैं मात्र मनुष्य ही ऐसा जीव है जिसका भोजन पर नियंत्रण नहीं है। बाबा ने कहा कि तंबाकू और तनाव कैंसर के दो प्रमुख कारण हैं। उन्होंने कहा कि कैंसर से लड़ने के लिए शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ानी होगी और इसके लिए सबसे अच्छा तरीका प्राणायाम है। उन्होंने कहा कि एक सप्ताह के प्राणायाम से पूरे शरीर की बायो केमेस्ट्री में बदलाव आ जाता है। उन्होंने कैंसर पीड़ितों से प्रति दिन आधा घंटा प्राणायाम करने को कहा। स्वामी जी ने कहा कि इसके अलावा कैंसर से लड़ने के लिए संकल्प शक्ति होनी चाहिए।

बैद्यनाथ प्रसूता के लिए बलवर्द्धक श्रेष्ठ टॉनिक

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति बढ़ाने में प्रसिद्ध।

संग्रहणी, मंदाग्नि, अरुचि, उदर रोग, खांसी, दमा, कमजोरी आदि रोगों की शास्त्रोक्त दवा है। इससे बल और कान्ति बढ़ती है तथा शरीर पुष्ट होता है। प्रसव के बाद इसके सेवन द्वारा माताएं अपने और शिशु के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

गुजरात

गुजरात के गणमान्य वैद्य प्रागजीभाई राठौड के दुखद अवसान पर श्रीमती तापीवाई आयुर्वेदिक हॉस्पीटल, भावनगर में शोक सभा सम्पन्न

गुजरात के प्रसिद्ध वैद्यराज प्रागजी भाई राठौड़ 'चिकित्सक' का 90 वर्ष की वय में नवसारी में दिनांक 7-3-06 को दु:खद अवसान हो गया। श्री प्रागजी भाई जी का जन्म तारीख 14-1-1969 को अंजार (कच्छ) में हुआ था। उन्होंने गुरु परम्परा से आयुर्वेद का अध्ययन किया. वे स्वतंत्रता सेनानी भी रहे थे और व्यक्तिगत सत्याग्रह कर जेल भी गये थे। आपने ग्रामविद्यापीठ लोकभारती (सडोसरा) में भी अपनी सेवायें दी; वे गुज. आयुर्वेद युनिवर्सिटी की सलाहकार समिति जैसी कई समितियों के सदस्य तथा सिनेट-सिंडीकेट सदस्य भी रहे। वे गुजरात प्रदेश वैद्य सभा के अध्यक्ष तथा अ.भा. आयुर्वेद महासम्मेलन के एक्जीक्युटिव सदस्य भी रहे। उन्होंने 'स्वस्थवृत्त' 'निरामय' तथा 'समाज संदेश' जैसी मासिक पत्रिकाओं आदि का सम्पादकत्व भी किया, साथ ही 'जन्मभूमि प्रवासी' (मुम्बई) तथा 'गुजरात मित्र' आदि दैनिकों में शारीर और स्वास्थ्य कॉलम भी नियमित रूप से लिखते रहे। उनकी 32 पुस्तकें भी प्रकाशित हुई। वे आजीवन देश-विदेश में आयुर्वेद का प्रचार करते रहे। ऐसे सद्गत वैद्यराज 'चिकित्सक' की शोक सभा श्रीमती तापीबाई आयुर्वेदिक हॉस्पीटल, भावनगर में नि.इचा. आचार्य श्री पी.एस. अंशुमान तथा आर.एम.ओ. श्री गोधापम की उपस्थिति में दिनांक 13.7.06 की गई जिस में दिवंगत आत्मा की चिरशान्ति एवं शोक संतप्त परिवार की सात्वना हेतु ईश्वर से प्रार्थना की गई।

आयुर्वेदिक क्लीनिक का उद्घाटन

गुजरात के सुप्रसिद्ध वैद्य एवं गुजरात के सुप्रसिद्ध अखबार 'संदेश' के लेखक वैद्य मनुभाई गौदानी-वैद्य प्रशांत गौदानी के नये अति आधुनिक आयुर्वेदिक क्लीनिक का उद्घाटन दिनांक 12.02.06 रविवार के दिन 305, धीरज एवन्यू, छड़ावाड पोलिस स्टेशन के सामने, आबांवाडी, अहमदाबाद में रीटाबहन पटेल (संदेश दैनिक के मालिक) के कर कमलों द्वारा संपन्न हुआ। गणमान्य वैद्य एवं अतिथियों ने पधारकर समारोह की शोभा बढ़ाई। गुज प्रदेश आयु. सम्मेलन के सभी पदाधिकारीगण को विशेष से आमंत्रित किया गया।

गुजरात आयुर्वेद मेन्यु. एशोसिएशन

गुजरात आयु. मेन्यु. ऐशोसिएशन (GAMA) के दिनांक 12.02.06 की साधारण सभा में सर्वसम्मति अध्यक्ष स्थान पर ऊंझा आयु. फार्मा (UAP) के प्रबोधभाई शाह एवं उपाध्यक्ष श्री जैतीभाई वी वैद्य (हरिना फार्मेसी) मंत्री वैद्य पुनर्वसु अग्निहोत्री (शंकर फार्मेसी) सहमंत्री श्री देवेन शेठ, ट्रेजरर - श्री राम भाई गां कार्यकारिणी सदस्य श्री महेशभार शाह, श्री दिलीप भ त्रिवेदी, श्री जमन मालवीया, श्री जैमिन ठक्कर, श्री दिल पटेल, श्री धनंजय जाटकीया, श्री राजेन्द्र शाह, श्री जनम पटेल। गुजरात आयु. सम्मेलन की ओर से सभी को व देकर सम्मानित किया गया।

स्व० वैद्य नवीन भाई ओझा (पूर्व अध्यक्ष) गुज वैद्य मंडल) द्वारा संचालित एवं संशोधित GARD बड़ो द्वारा दिनांक 5.02.06 रविवार के दिन होटल सूर्या पैलेस बड़ोदरा में वातव्याधि विषय पर एक दिवसीय परिसं का आयोजन किया गया। वैद्य यु.डी. राव (अध्यापक-सरकारी आयु. महाविद्यालय, बड़ोदरा) एवं डा० भरत एस. मोदी द्वारा ज्ञान पूर्वक कार्यक्रम संप हुआ। बड़ी भारी संख्या में वैद्यों एवं विद्यार्थिओं ने हिस्स लिया। गुज.प्र. आयु. सम्मे. के सभी पदाधिकारियों को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया। समग्र कार्यक्रम का संचालन स्व० वैद्य नवीनभाई ओझा के सुपुत्र डा० निमि ओझा द्वारा संपन्न हुआ।

वैद्य हरिभाई के. त्रिवेदी सम्मानित

यह प्रशस्ति पत्र देकर हमको आनंद होता है। वै हरिभाई के. त्रिवेदी का जन्म सन 1939 में गणेशगढ़ ता. गारीया धार जिला भावनगर में हुआ है। पाली हाईस्कूल में एस.एस.सी. पास होकर भावनगर आयु कॉलेज में आयुर्वेद ग्रेज्युएट हुआ बाद में पोस्ट ग्रेज्युएट का अभ्यास बड़ोदरा किया सन 1963 में भावनगर आयु कालेज में एसिस्टन्ट प्रोफेसर के रूप में दाखिल हुआ। बा में गुजरात की, जूनागढ़, अहमदाबाद और बड़ोदरा आयु कॉलेज में प्रोफेसर एवं प्रिन्सिपल के रूप में कार्य कि

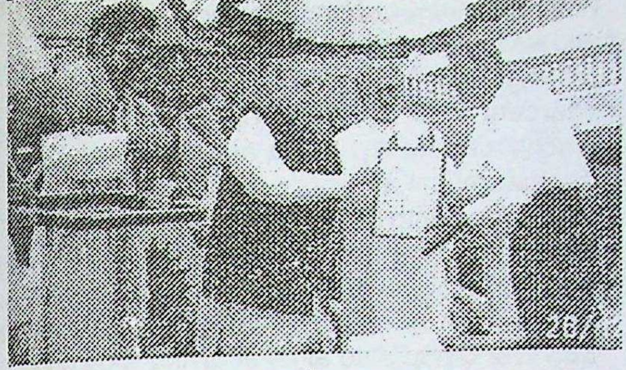

प्रशस्ति-पत्र-समारोह का एक दृश्य

1997 में वड़ोदरा शासकीय आयुर्वेद कालेज से निवृत्त होने के बाद सन 1998 से राज्य के भिन्न-भिन्न जिलें में पिछड़े वर्ग में एवं आदिवासी विस्तार में आयुर्वेद के कॅम्प के माध्यम से नि:शुल्क सेवा शुरु की । सन् 2003 तक सेवा शुरु रखी थी । इस सब कार्यो को देखकर गुजरात सरकार ने सन् 2003 में गुजरात राज्य के आरोग्य मंत्री श्री आइ.के. जाडेजा के हाथ से माननीय गुजरात के मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्रभाई मोदी की उपस्थिति में वड़ोदरा शहर में दिनांक 1 में 2003 के रोज तबीबी एवांर्ड दिया गया ।

बाद में सन् 2003 से आज तक पोलियो नाबुदी अभियान-बाल पक्षाघात के गुजरात सरकार ने अभियान शुरु किया । राज्य के विविध जिले जैसे राजकोट, भावनगर, नडियाद, भरूच, बड़ौदा एवं सूरत के पिछड़े एवं आदि विस्तारों के छोटे बालक की उम्र 1 से 5 तक की सुश्रुषा की है । आज तक 1100 के आसपास के छोटे बच्चे की उम्र 1 से 5 साल तक की आयुर्वेद चिकित्सा दी है । परिणाम आशास्पद मिला है । वे अभियान आज तक चालू है । यह सेवाकीय प्रवृत्ति भगवान धन्वन्तरि की कृपा से हो रही है ।

वात बलासक ज्वर एवं पोलियो (बाल पक्षाघात) नाबुदी अभियान आगे बढ़ाने की शुभकामना एवं शुभाशीष मान्यवर श्री नवलकिशोरजी शर्मा गवर्नर ऑफ गुजरात स्टेट ने भी दी हैं । यह नि:शुल्क सेवाकीय प्रवृत्ति सबब एवं प्रशस्ति पत्र मान्यवर गवर्नर साहब श्री नवल किशोर जी शर्मा के कर कमलों से दिनांक 28 फरवरी 2005 को दिया गया है ।

भगवानश्रीं गोपनाथजी महादेव की सान्निध्य में वैद्यश्री हरिभाई त्रिवेदी का यह नि:शुल्क संवाकीय प्रवृत्ति बदल आज हम सन्मान कर रहे हैं । इसलिये हम गौरान्वित है और भगवान गोपनाथीजी वैद्यजीको हितायु एवं सुखायु रखें ऐंसी प्रार्थना है ।

श्री सीताराम बापू

ब्रह्मचारी

गोपनाथ महादेव ट्रस्ट, गोपनाथ जिला भावनगर (गुजरात)

मध्य प्रदेश

NAPAR
NATIONAL PANCHAKARMA TRAINING / WORKSHOP AND CONFERENCE
9 to 16 APRIL, 2006
UJJAIN
Organised by
NATIONAL ACADEMY OF PANCHAKARMA AND RESEARCH STATE COUNCIL OF MADHYA PRADESH

As you are an eminent scholar and practitioner in the Ayurvedic system of Medical Science, we are glad to invite you to participate in the Seven-Day Training Programme and Workshop in Panchakarma organised by NAPAR from 9th to 15th April 2006. We also invite you to grace rare and most-awaited occasion of the National Conference of NAPAR to be held on 16th April 2006.

You might be well-aware that Ujjain has remained a religious, cultural and historica township throughout the ages. Being a Holy *Puri* it has been the seat of Jyotirlinga Lord Mahakaleshvara and the celestial Pithas of His consort Goddess Harasiddhi and Kalika. The pious Sipra river is also inviting you to take bath in it and to visit monuments and religious-sites standing

nearby. The township will also remind you of the great king Vikramaditya and the nine-gems of his court including Dhanvantari, Kalidasa and Varahamihira. Dhanvantari Ayurvedic P.G. College is in the proud tradition of Ayurveda in UJJAIN, which has been visited by ancient physicians like Jivaka, Dhanvantari and Bhattara Harishchandra. Dhanvantari Ayurvedic College & Hospital is an esteemed Institute dedicated to the cause of education. research, training and treatment in Ayurveda, It has a credit to organise many a National and Regional Seminars and Training Programmes. This workshop will upkeep that tradition. Kindly accept our invitation for the participation in the proposed Training Programme/ Workshop organised by NAPAR, State Council Madhya Pradesh.

We are eagerly awaiting your positive response and your dignified presence here. The schedule is enclosed.

Vaidya Vinod Vairagi
(General Secretary)
Prof. Umashankar Nigam
(Chairman)

NATIONAL COUNCIL NAPAR

Vaidya M.S. Deshpande
(Secretary)
Vaidya S.N. Pande
(President)

STATE COUNCIL MADHYAPRADESH

Vaidya C.K. Sharma
(Organising Secretary)
Prof. M.K. Vyas
(Co-ordinator)

ORGANISING COMMITTEE

Vaidya Lokesh Joshi, Vaidya Anand P. Saraf, Vaidya P.C. Soni, Vaidya O.P. Paliwal, Vaidya Vedprakash Vyas. Vaidya Ajaykriti Jain, Vaidya C.K. Kasliwal, Vaidya I.S. Sisodihya, Vaidya P.S. Rathore, Vaidya Sunita D. Ram, Vaidya Shreesh Shrivastava.

SEVEN-DAY TRAINING PROGRAMME / WORKSHOP

Like Herbal System, Panchakarma is attaining wide popularity, both in India and abroad. Unluckily the nation is being cheated and mis-led by quack professional exploiters, unscientifically running enterprises like Beauty-parlours Panchakarma tourism, Star-hotels, Health-clubs and such other glamourous money-earning devices propagating through multi-dimensional media-sources. It is an irony that the scholars and practitioners of Ayurveda are not unanimous on the theoretical aspects and practical operations connected with Snehana, Swedana, Vamana Virechana. Therefore, special stress will be given to scientifically synthesize the divergent opinions as laid down in various treatises on Panchakarma The Workshop also aims at giving wide publicity to and inventing the methodology of pupularisation of the utility and fruitfulness of Panchakarma.

* SEVEN-DAY TRAINING PROGRAMME AND WORKSHOP

DAILY SCHEDULE

9TH APRIL 06, SUNDAY
03 P.M. : Welcome of Participants
06 P.M. : Inaugural Session

10th to 15th APRIL 06
05 A.M. - 07 A.M. : Yoga Training Shivira
09 A.M. - 01 P.M. : Practical Demonstration and Discussions
01 P.M. - 03 P.M. : Lunch and Rest
03 P.M. - 06 P.M. : Lectures and Queries
06 P.M. - 07 P.M. : Supplementary Session Academic Chit-Chats
08 P.M. - 09 P.M. : Dining Hour

* Application form , Condition and Fee Schedule as Attached

** NATIONAL CONFERENCE

16TH APRIL 06, SUNDAY
08 A.M. - 10 A.M. : Registration / Refreshme
10 A.M. - 11 A.M. : 1st Session - Inaugural Function
11 A.M. - 01 P.M. : 2nd Session - Special Gue lecture on Panchakarma
01 P.M. - 02 P.M. : Lunch & Rest
02 P.M. - 05 P.M. : 3rd Session - General Bo Meeting Veledictory Sessio

VENUE

Arya Samaj Mandir, Arya Samaj Road.
Nai Sadak, UJJAIN Ph. : 0734 - 2550256
Address for Correspondence

PROGRAMME CO-ORDINATOR
National Panchakarma Training/Workshop And Conference 36, Subhash Nagar, UJJAIN
Ph. : 0734-2520039 Mob. : 94250-92343 E-mail : vyas@sify.com

APPLICATION FOR SEVEN-DAY TRAINING PROGRAMME AND WORKSHOP

Date : 9th to 16th April 2006

Passport
Size Photo

Name ....

Address ....

Qualification .... Year..

Date of Birth ....

Phone : Resi. ....Clinic.................. Mob...............

Present Service .... Post................ Since ....

Address .... Phone..................................

If you are a Life member of NAPAR, Your Membership No. ....

DECLARATION

☐ I have gone through the rules and conditions of the Panchakarma Training Programme/Workshop. I Promise to abide by them. I am enclosing an amount of ☐ Rs. 4000/- ☐ Rs. 3000/-

☐ * I wish to attend Natinal Conference of NAPAR on 16th April 2006. I am enclosing an amount of ☐ Rs. 150 /- ☐ Rs. 100 /-

(in words Rs. ....only) vide Demand Draft No.......................

Date .... Bank ....

Place.. Signature ....

☐ Please Tick which is applicable

GENERAL RULES OF TRAINING PROGRAMME/WORKSHOP

As there are limited seats for the trainees, priority will be given according to the receipt of the applications. Rest of the applications will be given a chance in the next batch of trainees. However, in each case, full amount i.e. Rs. 4000/- (Rs. 3,500/- for life-members of NAPAR) will have to be sent, Prior to 25th March 2006. Following facilities will be provided to the trainees -

1. Published reading material and stationery-cum kits (gratis).
2. Separate Dormitories for male and female participants, you can stay otherwise on your own cost.
3. Refreshment, lodging and boarding facilities from 9th April evening onwards. (Included in above amount).
4. Optional admission in Yoga Shivira Daily at 5 to 7 A.M.
5. Free entry in the deliberations of National Conference to be held on 16th April.
6. The venue of the programme will be centralised at Arya Samaj Mandir, Nai Sarak, UJJAIN.
7. Food and refreshment will be strictly vegetarian. Non veg. meals, Smoking or Consumption of Liquor etc. are strictly prohibited in the Venue. Strict discipline and refined behaviour are expected from the trainees.
8. Detailed Programme will be made available on 9th April.
9. The participants should send the application enclosed with the demand draft in favour of "NAPAR

STATE COUNCIL, MADHYA PRADESH", Payable at Ujjain and.

10. Other rules as notified during the course of the Training.
11. At the close of Traning Programme/Workshop the certificates of this effect will be distributed.
12. * If you attend only conference on 16th April Separate delegation fee will be deposited accordingly.

Address for Correspondence :
Prof. Manindra Kumar Vyas
(Programme Co-ordinator)
36, Subhash Nagar, UJJAIN
Ph. 0734 - 2520039 Mob. : 94250-92343
E-mail : vyas @sify.com/dr.mkvyas/
1955@sanchernet.in

उत्तर प्रदेश

निःशुल्क आयुर्वेद चिकित्सा शिविर एवं स्वास्थ्य गोष्ठी

राजकीय आयुर्वेद चिकित्सालय सरौरा जनपद सीतापुर में दिनांक 25-2-06 को एक निःशुल्क आयुर्वेद चिकित्सा शिविर का आयोजन किया गया । डा० पातन्जलि द्विवेदी, प्रभारी चिकित्साधिकारी, सरौरा चिकित्सालय, डा० आराधना महिला चिकित्साधिकारी वाडी तथा डा० शम्भूकाना शुक्ला, चिकित्साधिकारी सिधौली, सीतापुर ने रोगियों का परीक्षण करके परामर्श प्रदान किये । शिविर में आने वाले सभी रोगियों को औषधियाँ एवं परामर्श निःशुल्क प्रदान किये गये । शिविर में 361 रोगियों ने उपस्थित होकर चिकित्सा का लाभ लिया । शिविर में ज्वर, आमवात, श्वास, चर्मरोग, स्त्रीरोग अतिसार, कामला, शिशु रोग के रोगियों के मरीजों को देखा गया । शिविर में प्रातः 9 बजे से सायं 4 बजे तक मरीजों का तांता लगा रहा । मरीजों को निःशुल्क दवा वितरण की व्यवस्था क्षेत्रीय आयुर्वेद एवं यूनानी अधिकारी डा०जे०पी०पाण्डेय द्वारा की गयी तथा शिविर लगाने का निर्देश भी उन्हीं के द्वारा दिया गया ।

अन्त में शाम को एक स्वास्थ्य गोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें स्वास्थ्य के विषय में चर्चा करते हुये डा० पातन्जलि द्विवेदी ने रोगियों एंव आम जनता को स्वस्थ रहने के उपाय, दिनचर्या एवं ऋतुचर्या, आहार एवं विहार के विषय में विस्तृत रूप से बताया । शिविर में गोष्ठी को सफल बनाने में नन्दकिशोर सिह. फार्मेसिस्ट, सरौरा ने सक्रिय सहयोग किया ।

विधि एवं न्याय विभाग ने भी माना कि डा० वाजपेयी का नामांकन डा० रक्षा गोस्वामी ने अनुचित ढंग से निरस्त किया था

चिकित्सा पल्लव कार्या० पनगरा (बाँदा)- भारतीय चिकित्सा केन्द्रीय परिषद् (I.M.C.C.) के उत्तर प्रदेश के सदस्यों के चुनाव में चिकित्सा पल्लव के प्रधान सम्पादक डा० मदन गोपाल वाजपेयी का नामांकन निरस्त किये जाने के सम्बन्ध में विधि एवं न्याय मंत्रालय ने अपनी राय व्यक्त करते हुए कहा कि उक्त चुनाव में डा० मदन गोपाल वाजपेयी का नामांकन निरस्त करते समय I.M.C.C. चुनाव नियम 1975 की धारा 11 उपधारा (2) का पालन नहीं किया गया । ज्ञातव्य हो कि इस पर संयुक्त सचिव भारत सरकार शिव बसन्त ने भविष्य में सावधानी बरतने हेतु भारत के सभी C.C.I.M./C.C.H. चुनाव अधिकारियों को मार्गदर्शन जारी किये जायेंगे । भारतीय केन्द्रीय चिकित्सा परिषद् सदस्यों के नामांकन की तिथि 15-09-2004 से 22-09-2004 तक अधिसूचित की गयी थी जिसके लिए डा० मदन गोपाल वाजपेयी ने निर्धारित तिथि और समय के भीतर निर्धारित प्रारूप पर अनुमोदक व प्रस्तावक के साथ नामांकन भरा । रिटर्निंग ऑफीसर रक्षा गोस्वामी द्वारा दुर्भावना पूर्वक इस आधार पर डा० वाजपेयी का नामांकन निरस्त कर दिया गया कि अनुमोदक एवं प्रस्तावक ने अपनी पंजीयन संख्या तो लिखी है किन्तु अर्हता का उल्लेख नहीं किया ।

रिटर्निंग ऑफीसर डा० रक्षा गोस्वामी के द्वारा नामांकन निरस्त किये जाने के तुरन्त बाद ही डा० मदन गोपाल वाजपेयी ने माननीय उच्च न्यायालय लखनऊ खण्डपीठ में रिटपीटीशन सं०- 4837 M/B/2004 दाखिल

की, जिस पर सुनवाई के उपरान्त माननीय उच्च न्यायालय ने दिनांक 08-10-2004 को आदेश पारित किया कि चूँकि चुनाव की प्रक्रिया चालू हो चुकी है इसलिए न्यायालय इस पर कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता । सी.सी. आई.एम. चुनाव में रिटर्निंग ऑफीसर ने किस तरह के लोकतांत्रिक मूल्यों को बेचकर अपने चहेतों को सदस्य निर्वाचित कराया, समाचार पत्रों ने बखूबी लिखा । चुनाव प्रक्रिया पूरी होने के बाद डा० मदन गोपाल वाजपेयी ने उच्च न्यायालय लखनऊ खण्डपीठ के निर्देशानुसार आई.सी. सी.एम. चुनाव नियम 1975 के तहत दिनांक 30.12.2004 को स्वास्थ्य परिवार कल्याण मंत्रालय आयुष विभाग, भारत सरकार में अपील की । किन्तु आयुष विभाग द्वारा जब लम्बी प्रतीक्षा के बाद भी भारत सरकार द्वारा डा० वाजपेयी को कोई निर्णय नहीं भेजा गया तो उन्होंने मा० उच्च विद्यालय ने आयुष विभाग भारत सरकार को 2 माह के अन्दर मामला निर्णीत करने का आदेश पारित किया । माननीय उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की अनदेखी करते हुए अपने चहेतों की चाहत बनाए रखने के लिए दिनांक 28-12-2005 को स्वयं प्रतिवादी डा० रक्षा गोस्वामी ने पत्र सं. 2943/सी.सी.आई.एम. चुनाव-04 से डा० मदन गोपाल वाजपेयी को इस आशय का पत्र लिखा कि आपका नामांकन निरस्त करना पूर्णतः वैधानिक था ।

डा० रक्षा गोस्वामी के उक्त पत्र से क्षुब्ध होकर डॉ० मदन गोपाल वाजपेयी ने पुनः अवमानना के लिए एक प्रार्थना पत्र मा० उच्च न्यायालय में प्रस्तुत किया जिस पर न्यायालय ने आयुष विभाग को अन्तिम अवसर प्रदान करते हुए दिनांक 30.12.2004 को योजित याचिका का निस्तारण हेतु आदेशित किया जिस पर निर्णय लेते हुए डा० एम.ए. कुमार डिप्टी डायरेक्टर सिंह ने डा० वाजपेयी को श्री शिव बसन्त संयुक्त सचिव भारत सरकार का पत्र दिनांक 03.02. 2006 संलग्न करते हुए उक्त रिट सं० 68707/2005 का निस्तारण सूचित किया ।

संयुक्त सचिव भारत सरकार के उपरोक्त पत्र के अनुसार विधि एवं न्याय मंत्रालय ने माना है कि सी.सी.आई. एम. निर्वाचन नियम 1975 की धारा 11(2) में नामांकन निरस्त किये जाने के आधार वर्णित हैं । नामांकन फार्म 1 में उल्लिखित शर्त का अनुपालन में अनुमोदक और प्रस्तावक द्वारा अपने पंजीयन संख्या का उल्लेख करना ही पर्याप्त है । यदि प्रस्तावक एवं अनुमोदक ने रजिस्ट्रेशन के साथ उपाधि अंकित नहीं की तो इसके आधार पर नामांकन रद्द करना उचित नहीं था, चुनाव अधिकारी ने डा० वाजपेयी का नामांकन रद्द करने का जो आधार लिया था वह अवैधानिक है ।

हिमाचल प्रदेश

Expiry Date और आयुर्वेदिक औषधियां पर एक गोष्ठी चड्ढा ट्रेडर्ज (रजि.) नगरोटा बगवां जिला कांगड़ा, हि.प्र. में सम्पन्न हुयी ।

आयोजक - हिमाचल प्रदेश आयुर्वेदिक औषध निर्माता संघ ।

इस गोष्ठी में कई औषध निर्माताओं ने भाग लिया । लेडी डा० गार्गी ने कहा कि समाचार पत्रों में छपी खबर कि Expiry Date दवाओं की आपूर्ति का समाचार आयुर्वेदिक औषध निर्माण शास्त्रों से सहमत नहीं है । इस अवसर पर आयुर्वेदिक औषधियों की गुणवत्ता पर विशेष चर्चा हुई । इस अवसर पर डा० गोपाल कृष्ण चड्ढा निर्माणध्यक्ष चड्ढा ट्रेडर्ज (रजि.) नगरोटा बगवां, जिला कांगड़ा हि.प्र., औषध अनुसंधानकर्त्ता कैंसर जिसे राष्ट्रीय आयुर्वेद परिषद् द्वारा 1999 में सर्वश्रेष्ठ औषध निर्माता अवार्ड मिला है ने कहा कि बैद्यनाथ द्वारा प्रकाशित आयुर्वेदिक सार संग्रह पृ०सं० 5 में वनस्पति औषधियां चूर्ण आदि के लिए लिखा है कि औषध रखने का पात्र अच्छा हो-वायु का प्रवेश न हो इस प्रकार उसको बन्द किया तो वनस्पति या वनस्पति द्वारा बने योग चिरकाल तक अच्छे रह सकते है । डा० गोपाल चड्ढा ने आगे कहा कि यदि चूर्ण आदी का रंग स्वाद व सुगंध बरसात के समय बनाने के 8

दिन में कम हो जाता है तो वह चूर्ण रोगी के प्रयोग कराने के लिए नहीं रहते और औषध Expiry हो जाती है और यदि चूर्ण अच्छी तरह पैक है और सालों के बाद भी चूर्ण का स्वांग गंद रंग ठीक हो तो वाह Expiry नहीं होंगे (हीनवीर्य)।

डा० गोपाल चड्ढा ने कहा कि सन् 2004 में एक Pharamacopoeial Laboratory for Indian Medicine (Ministry of Health & Family Welfare Govt. of India) III-A.G.O. complex-I kamal Nehru Nagar Gaziabad-201002 (UP) India कांफ्रेंस केन्द्रीय में हुई आधुनिक Laboratory के आधार पर आयुर्वेदिक चूर्णों और अन्य औषधियों आदि के पैरामीटर (आधार भूत नियम) बनाने का भिन्न-भिन्न अनुसंधान संस्थानों पर कार्य आरम्भ हो गया है। यह परियोजना 2010 तक अपना अधारभूत परिणाम देगी।

नोट :- 3 जून 2006 में चड्ढा ट्रेडर्ज (रजि.) 10 नगरोटा बगवां जिला कांगड़ा हि.प्र. एक राष्ट्रव्यापी कांफ्रैस Rule of Pharmacy in Quality Control of Ayurvedic Medicines पर बुला रही है जिसमें 350 से अधिक आयुर्वेदिक विद्वान औषधनिर्माता औषध विक्रेता एवं आयुर्वेदिक चिकित्सक भाग लेंगे।

डा० गोपाल चड्ढा ने रस शास्त्र स्नातकों का उद्घाटन किया।

नगरोटा बगँवा, जिला कांगड़ा के आयुर्वेदिक औषध निर्माता एवं सफल चिकित्साक डा० गोपाल चड्ढा अन्तराष्ट्रीय मैत्री संस्थान द्वारा "कोवर्ड" अवार्डी ने आयुर्वेद कालेज पपरोला जिला-कांगड़ा के रस शास्त्र के स्तर के उद्घाटन के समय कहा कि आने वाले समय में स्वास्थ्य समस्याओं का निराकरण आयुर्वेद द्वारा ही सम्भव है। 2020 तक सामान्यतया सारे एन्टीवायटिक काम करना बन्द कर देगी क्योंकि रोगियों के शरीर में इतना एन्टीबायटिक पहुंच जायेगा जिससे शरीर एन्टीबायटिक का आदि हो जायेगा और एन्टीबायटिक का प्रभाव खत्म हो जायेगा। कुछ एन्टीवायटिक ने काम करना बन्द कर दिया है।

आयुर्वेद से आशा क्यों।

क. आयुर्वेद का साहित्य इतना बड़ा है कि एलोपैथी को वहाँ तक पहुंचने में 500 वर्ष लगेंगे। जैसे पिछले दिनों नीम का पेटेण्ट अमरीका में एन्टीसैप्टीक के रूप में हुआ- जो पेटेन्ट अब कैन्सल हो गया है। किन्तु आयुर्वेद मतानुसार नीम-रक्तशोधक-यकृत हितकारक ज्वर नाशक-त्वचा शोधक है।

ख. भारत में ही 6 ऋतु होती है जो वनौषध के कार्यतत्वों को बढ़ाने में सहायक है जैसे एक तुलसी का पौधा खुले प्रागंण में लगा है। जब बरसात आएगी तो तुलसी बरसात में बचने के लिए प्रांगण से छत वाले स्थान पर नहीं जा सकती - तुलसी के पौधों को बरसात के कुप्रभाव से बचने के लिए अपने में शक्ति पैदा करनी होगी। इस प्रकार जब तीखी धूप पड़ेगी तो भी तुलसी को अपनी रक्षा के लिये अपने शरीर में धूप के कुप्रभाव से बचने के लिये शक्ति पैदा करनी होगी। इस प्रकार तुलसी में कार्यतत्व बढ़ते रहेंगे। इस कारण अन्य देशों की वनौषध से भारत की वनौषध में अधिक गुण होंगे।

ग. विश्व में सबसे अधिक वनौषध भारत में पाई जाती है। W.H.O. के अनुसार 8000 वनौषध भिन्न चिकित्सा प्रणालियों में भिन्न प्रकार से प्रयोग में लाई जाती है। इसमें अधिकतर भारत में होती है क्योंकि विश्व में चार प्रकार से में वनौषध पैदा होते हैं। 1. समुद्र सतह से 1000 फुटतक 2. समुद्र सतह से 3000 फुट की सतह पर 3. समुद्र सतह से 6000 फुट की सतह तक 4. 600 फुट की सतह से ऊपर ये चारों भौगोलिक सतह भारत में हैं।

इस अवसर पर डा० सांख्यान जी ने कहा कि डा० गोपाल चड्ढा आज के आयुर्वेद के विवेकानन्द हैं। इनके कार्यों की आयुर्वेद में भुलाया नहीं जा सकता। डा० गोपाल चड्ढा ने अपना जीवन आयुर्वेद की समर्पित कर दिया है।

डा० गोपाल चड्ढा 28 मई 2006 को चामुण्डा माता के पास कैंसर और आयुर्वेदिक वनौषधी का वैज्ञानिक आधार पर एक दिवसीय कैंसर कांफ्रैस कर रहे हैं।

नयी दिल्ली

आयुर्वेद विश्व परिषद्

(World Academy of Ayurved) द्वारा

डा० पी.एन.वी. कुरूपजी का अभिनन्दन

माननीय वैद्य समाज, आयुर्वेद प्रेमीजन,

सर्वप्रथम आयुर्वेद जगद्गुरु पद्मविभूषण वैद्यराज श्रीवृहस्पतिदेव त्रिगुणाजी 'अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन' तथा आयुर्वेद विश्व परिषद् के अधिकारियों, सदस्यों तथा समस्त वैद्यों का स्वागत करता हूँ, जो अमूल्य समय निकाल कर समारोह में सम्मिलित हुए हैं ।

आयुर्वेद विश्व परिषद् की स्थापना 12 जनवरी, 1957 को कुरुक्षेत्र में, आयुर्वेद नेता पं० शिव शर्मा, वैद्य पं० हरिदत्त शास्त्री (डाइरेक्टर आफ आयुर्वेद, महाराष्ट्र), वैद्य श्री आशुतोष मजूमदार (रजिस्ट्रार, इण्डियन मेडिसिन बोर्ड, दिल्ली प्रशासन), आचार्य प्रभाकर मिश्र (तत्कालीन संगठन मंत्री, संस्कृत विश्व परिपद् तथा संस्कृतविभागाध्यक्ष, भारतीय विद्या भवन, मुम्बई) के प्रयासों से भारत के महामहिम राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद जी तथा भारत सरकार के विधि मंत्री, डा०के०एम० मुंशी के सान्निध्य तथा कविराज प्रताप सिंह (आयुर्वेद एडवाइजर, भारत सरकार) की अध्यक्षता में हुई ।

वर्तमान में आचार्य प्रभाकर मिश्र (दिल्ली), वैद्यराज गंगाधर द्विवेदीजी के नेतृत्व में परिषद् का विस्तार विश्व में हो रहा है । वैद्य श्रीरमणदास त्यागी (सिडनी) आस्ट्रेलिया में, स्वामी अरविन्दानन्द (ब्राजील) विदेश में प्रचाररत हैं तथा भारत में 65 जिलों में परिषद् के आयुर्वेद जिलाध्यक्ष मनोनीत कर दिए हैं ।

आयुर्वेद विश्व परिषद् उस कार्य को करती है, जो अन्य संगठन नहीं कर रहें, जैसे :-

1. आयुर्वेद को लोकप्रिय बनाने के लिए, आयुर्वेद विज्ञान की 'सामान्य ज्ञान परीक्षाएं' (मिडिल तथा हायर सेकेण्डरी स्कूलों में परीक्षा केन्द्र स्थापित करके) जीवनचर्या पर पाठ्यक्रम संचालित होगा ।
2. अनुभवी (अपंजीकृत) वैद्यों को झोलाछाप कहकर अपमानित करने वालों का मुख बन्द करने के लिए लघु द्विवर्षीय आयुर्वेद प्रशिक्षण पाठ्यक्रम चलाना और उसकी मान्यता का प्रयास ।
3. आयुर्वेद तथा औषधीय पादपों के अनुसंधानकों को सम्मान-पत्र ।

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन ने 100 वर्षों में आयुर्वेद के विकास का प्रशंसनीय कार्य किया है । पं० शिव शर्मा जी के निधन के पश्चात् कच्छप गति से संगठन कुछ काल चलता रहा । परन्तु भगवान धन्वन्तरि की कृपा से वैद्यराज त्रिगुणाजी जैसी आयुर्वेद महाशक्ति का अभ्युदय हुआ और विगत 20 वर्षों के अन्तराल में आयुर्वेद का स्वर्णिम युग पुन: वापस लौटा । अब अखिल भारतीय आयुर्वे महासम्मेलन का शताब्दी महोत्सव मनाया जा रहा है, आयुर्वेद जगत को पूर्ण सहयोग देना चाहिए ।

इन्हीं विगत वर्षों में जो आयुर्वेद के कर्णधार सामने आए, उनमें एक नाम है श्री डा०पी.एन.वी. कुरूपजी का, जिन्होंने अनेक पदों पर रहकर आयुर्वेद का पुनरुत्थान किया है । आप जामनगर आयुर्वेद विश्वविद्यालय, गुजरात के उपकुलपति के पदसे अवकाश प्राप्तकर, भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय में एक महत्वपूर्ण उपक्रम 'राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ' (नेशनल एकेडमी ऑफ आयुर्वेद) के अध्यक्ष मनोनीत हुए हैं । आयुर्वेद विश्व परिपद् तथा अन्य आयुर्वेद संगठन आपको अपनी ओर से बधाई, अभिनन्दन प्रस्तुत करते हैं । राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ के समक्ष प्रवेशार्थियों द्वारा यह महत्वपूर्ण प्रश्न उपस्थित किया जाता है कि द्विवर्षीय अध्ययन-अनुशासन के पश्चात् कोई मान्यताप्राप्त प्रमाण-पत्र उन्हें नही मिलता ? आशा है ऐसी कोई महत्त्वपूर्ण समस्याओं का समाधान आप द्वारा किया ही जाएगा ।

हम एक बार पुन: श्री डा० कुरूपजी का हार्दिक अभिनन्दन, स्वागत करते हैं । धन्यवाद ।

उद्घोषक
वैद्यराज सुन्दरसिंह सोलंकी
केन्द्रीय उपाध्यक्ष
परिषद् के अध्यक्ष की आज्ञा से प्रसारित
डा० धर्मसिंह कौशिक (राष्ट्रीय सचिव)
वैद्य राधेश्याम शर्मा (प्रदेश सचिव)

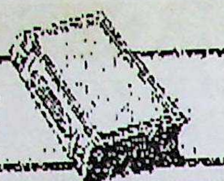

॥ बैद्यनाथ आयुर्वेदीय प्रकाशन ॥

P.Cd.		भाषा	
9801	अभिनव शरीर	हिन्दी	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9804	अभिनव शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9807	[illegible] रामपुरी-आयुर्वेद [illegible]	हिन्दी	
9810	अम्लपित्त [illegible]	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9813	AROGYA PRAKASH	ENG	
9816	आरोग्य प्रकाश	हिन्दी	पं. रामनारायण शर्मा वैद्य
9819	अष्टांग संग्रह की वनौषधियाँ एवं वर्गीकरण	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9822	अष्टांग संग्रह	हिन्दी	पं. वाग्भट्ट
9821	बिहार की वनस्पतियाँ	हिन्दी	
9822	अष्टांग संग्रह (शरीर, निदान चिकित्साकल्पसिद्ध स्थान)	हिन्दी	पं. वाग्भट्ट
9825	अष्टांग संग्रह सूत्र स्थान	हिन्दी	पं. लालचन्द्र शास्त्री
9828	अष्टांग संग्रह [illegible]	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9831	आत्ययिक चिकित्सा	हिन्दी	
9834	औषधि विज्ञान शास्त्र	हिन्दी	पं. विश्वनाथ द्विवेदी
98[illegible]	आयुर्वेद अनुसंधान दर्शिका	हिन्दी	
9837	आयुर्वेदीय पंचकर्म विज्ञान	हिन्दी	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तुरे
9840	आयुर्वेद सार संग्रह	हिन्दी	संकलित
9843	आयुर्वेदीय औषध सेवन विधि	हिन्दी	संकलित
9846	आयुर्वेदीय हितोपदेश	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9849	आयुर्वेदीय क्रिया शारीर	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9852	आयुर्वेदीय पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9855	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9858	आयुर्वेदीय व्याधि विज्ञान (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9861	BAIDYANATH BOOK OF AYURVED KNOWLEDGE	ENG.	
9864	BAIDYANATH THERAPEUTIC GUIDE	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9867	BASIC PRINCIPLE OF AYURVEDA RESEARCH	ENG.	SRI D.R. SHARMA AND R.P. SHAH
9858	बिहार के आदिवासी एवं जड़ी बूटियाँ	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9866	उत्तराखण्ड हिमालय की वनौषधियाँ एवं खनिज	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9870	[illegible]	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9871	बेदी वनस्पति कोष	हिन्दी	रमेश बेदी
9873	चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन	हिन्दी	डा. ज्योतिर्मित्र आचार्य
9876	[illegible]	हिन्दी	आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी
9879	DIGESTION & METABOLISM IN AYURVEDA	ENG	DR. C. DWARKANATH
9882	द्रव्यगुण विज्ञानम् (पूर्वार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9885	द्रव्यगुण विज्ञानम् (उत्तरार्द्ध)	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9888	किशोर रक्षा और ब्रह्मचर्य	हिन्दी	वैद्य रवीन्द्र शास्त्री
9891	मानस रोग विज्ञान	हिन्दी	श्री बालकृष्णजी अमरजी पाठक
9894	MEDICINAL FLORA OF GARHWAL HIMALAYAS	ENG.	DR. MAYARAM UNIYAL
9897	मोटापन कम करने के उपाय	हिन्दी	श्री [illegible]
9901	नेत्र चिकित्सा	संस्कृत	डा. बालकृष्ण शिवराम मुंजे
9904	नेत्र रोग विज्ञान	हिन्दी	
9907	निदान चिकित्सा हस्तामलक (प्रथम खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9910	निदान चिकित्सा हस्तामलक (द्वितीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9913	निदान चिकित्सा हस्तामलक (तृतीय खंड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9916	निदान चिकित्सा हस्तामलक (चतुर्थ खण्ड)	हिन्दी	वैद्य रणजित राय देसाई
9919	पदार्थ विज्ञान	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9922	पदार्थ विज्ञानम्	हिन्दी	वैद्य [illegible] द्विवेदी
9925	परिष्कृत शब्दार्थ शारीरम्	संस्कृत	पं. दामोदर शर्मा गौड़
9928	PROBLEMS OF AYURVEDIC RESEARCH	ENG	SRI S.K. [illegible]
	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञानम् (द्वितीय संस्करण)	हिन्दी	डा. मायाराम उनियाल
9934	प्रयोगात्मक अभिनव द्रव्य गुण विज्ञानम् (प्रथम संस्करण)		
9937	पंचकर्म [illegible]	हिन्दी	[illegible] पाण्डेय
9940	रस-भस्म सेवन विधि	हिन्दी	पं. वंशी प्रसाद वैद्य
9943	संक्रामक रोग विज्ञान	हिन्दी	कविराज बालकराम शुक्ल
9946	SCIENCE AND PHILOSOPHY OF INDIAN MEDICINES	ENG.	SRI K.K. UDUPPA
9949	शार्ङ्गधर संहिता	हिन्दी	आचार्य राधाकृष्ण पाराशर
9952	सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	वैद्य यादवजी त्रिकमजी आचार्य
9955	शरीर क्रिया विज्ञान	हिन्दी	
9958	THERAPEUTIC GUIDE TO AYURVEDIC MEDICINES	ENG.	PT. RAMRAKSHA PATHAK
9961	TREATISE ON 30 BAID. AYUR. PRODUCTS	ENG.	PT. DURGA PD. SHARMA
9964	त्रिदोष तत्व विमर्श	हिन्दी	पं. रामरक्ष पाठक
9964	यूनानी चिकित्सा सार	हिन्दी	हकीम दलजीत सिंह
9967	यूनानी सिद्धयोग संग्रह	हिन्दी	हकीम [illegible] सिंह
9970	उपचार पद्धति और पथ्य	हिन्दी	[illegible]
9973	वैद्य सहचर	हिन्दी	पं. [illegible]
9976	वनौषधि शतक	हिन्दी	पं. [illegible]
9979	[illegible]	हिन्दी	[illegible]
[illegible]	[illegible] विज्ञान [illegible]	हिन्दी	[illegible]

Central Library Gurukul Kangri University Hardwar-249404 (U.A.)

सम्पादकीय

राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यक्रम के बढ़ते कदम और विश्व बैंक

पिछले वर्ष से प्रारम्भ राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यक्रम धीरे-धीरे गति पकड़ रहा है । केन्द्रीय बजट के अनुसार वर्ष 2005-06 हेतु 200,000 से ज्यादा एसोसियेटेड सोशल हेल्थ एक्टिविस्ट (सहयोगी सामाजिक स्वास्थ्य कार्यकर्त्ता) कार्य करना आरम्भ कर देंगे । 1000 से ज्यादा प्रखण्ड स्तरीय स्वास्थ्य केन्द्र दिन-रात कार्य करेंगे । आवंटित राशि 6,553 करोड़ रुपयों से बढ़ाकर 8,207 करोड़ रुपये कर दी गयी है । प्राप्त समाचार के अनुसार केन्द्र सरकार ने 700 स्नातकोत्तर व्यावसायिक प्रशासन (एम.बी.ए.) और चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट परीक्षा उत्तीर्ण विशेषज्ञों को इसलिए नियुक्त किया है कि वे इस मद में होने वाले खर्च पर नियंत्रण रख सकें । प्रसन्नता की बात है कि 1.73 लाख ए.एस.एच.ए. की नियुक्ति सरकार की ओर से अब तक हो चुकी है । स्वास्थ्य मंत्रालय को आशा है कि इस मास तक 2.28 लाख ए एस एच ए की नियुक्ति हो जायेगी । ये कार्यकर्त्ता प्रशिक्षित हो गये हैं । योजना के अनुसार ए एस एच ए, आंगनबाड़ी कर्मी एवं सहायक नर्स को एक कड़ी से जोड़ दिया गया है । गांवों में स्वास्थ्य की देखभाल के लिए वे एक दूसरे को सहयोग प्रदान करेंगे । एक ओर छत्तीसगढ़ में सबसे ज्यादा अर्थात् 60,092 ए एस एच ए की नियुक्ति हो गयी है और झारखण्ड में सबसे कम अर्थात् 1462 व्यक्तियों की नियुक्ति हो चुकी है । बिहार में 35,573 महिला स्वास्थ्य कर्मियों की नियुक्ति की गयी है । ज्ञात हुआ है कि 10,000 हजार रुपये वार्षिक प्रति स्वास्थ्य उप केन्द्र को दिये जायेंगे जिससे 1.45 लाख उपकेन्द्रों को प्रोन्नत करने में मदद मिलेगी । जहां तक 1,057 सामुदायिक केन्द्रों का प्रश्न है, उसे फर्स्ट रेफरेन्स यूनिट (प्रथम निर्देशित इकाई) में बदल दिया गया है । योजना के अनुसार 2,026 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र दिन-रात कार्य करेंगे ।

सौभाग्यवश कुछ राज्यों ने इस दिशा में पहल की है । उत्तर प्रदेश में 5,000 ग्राम प्रधान को प्रशिक्षित किया गया है । उड़ीसा ने स्वास्थ्य संसाधनों के उपयोग करने का निर्णय लिया है । हिमाचल प्रदेश में पंचायत ने प्रत्येक सार्वजनिक स्वास्थ्य केन्द्र को एक टेलीफोन देने का निर्णय लिया है । बिहार में 8,000 गांवों को चलन्त स्वास्थ्य इकाई से जोड़ने का निर्णय लिया गया है । तमिलनाडु का कार्य प्रशंसनीय है कि इस राज्य ने भारतीय स्वास्थ्य पद्धति को भी सार्वजनिक स्वास्थ्य से जोड़ने का निर्णय लिया है । साथ ही, स्वास्थ्य-बीमा भी प्रदान की गयी है । कर्नाटक ने अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति को स्वास्थ्य प्रदान करने का निर्णय लिया है जबकि प०बंगाल ने प्रखण्ड स्तर पर स्वास्थ्य संकेतक को श्रेणीबद्ध करने का फैसला किया है ।

एम.बी.ए. एवं चार्टर्ड एकाउन्टेंट से खर्च की जांच कराने के पीछे सरकार का मकसद यह है कि वह भ्रष्टाचार के आरोप से बचना चाहती है । विदित है कि विश्व बैंक ने राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन और बाल स्वास्थ्य परियोजना (आर.सी.एच.) के लिए तय 35 करोड़ डालर की राशि रोक दी है । विभिन्न स्वास्थ्य परियोजनाओं के लिए विश्व बैंक से एक अरब डालर से ज्यादा रकम मिलनी थी । परिवार कल्याण विभाग ने 1977 में आर.सी. एच. का पहला चरण लागू किया था । इसका उद्देश्य बाल और मातृ मृत्यु-दर में कमी लाना था । दूसरा चरण जून, 2004 में आया । इनके उद्देश्यों में पोलियो-उन्मूलन भी था । विश्व बैंक न केवल आर.सी.एच. के लिए बल्कि, पोलियो, टी.बी., एड्स आदि रोगों के उन्मूलन के लिए भी राशि उपलब्ध कराता था । विश्व बैंक को दवाओं की

खरीद के मामले में भ्रष्टाचार की शिकायत मिली थी । सम्प्रति बैंक के अध्यक्ष पद पर अमेरिका के पूर्व रक्षा मंत्री बोल्फोविट्ज हैं । पिछले कुछ महीनों में बैंक ने भ्रष्टाचार के कारण चाड, कांगो, बंगलादेश, अर्जेन्टीना जैसे देशों के कर्जों का रद्द करने या पुनर्विचार जैसे मामलों में कठोर रुख अपनाया है । भारत के वित्तमंत्री, श्री पी.चिदम्बरम् बैंक के अध्यक्ष से मिल चुके हैं और परियोजनाओं की जांच कराने का भी वादा किया है । केन्द्र सरकार इस मामले में पूर्ण पारदर्शिता चाहती है, ताकि भ्रष्टाचार का आरोप भी नहीं लग सके और कार्य भी प्रभावित नहीं हो । जो भी हो, केन्द्र सरकार का निर्णय ग्रामीणों के लिए प्रशंसनीय है । एक बात का दुःख है कि सरकार के द्वारा आयुर्वेद को ग्रामीण स्वास्थ्य योजना में पर्याप्त अवसर नहीं दिया जा रहा है । आशा है, सरकार इस ओर ध्यान देगी ।

सार्वजनिक स्वास्थ्य और आयुर्वेद

भोर कमिटि को स्वास्थ्य-सेवा हेतु अनुशंसा करते हुए कई दशक बीत चुके हैं, किन्तु इसके बावजूद सार्वजनिक स्वास्थ्य के लिए सरकार ने सकारात्मक कदम नहीं उठाये हैं । जो कदम उठाये भी गये हैं, वे ठोस एवं यथार्थ पर आधारित नहीं हैं । प्राप्त सूचना के अनुसार एच.आई.व्ही., एड्स, क्षयरोग, मलेरिया, पोलियो और कुष्ठ रोग की समाप्ति के कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर चलाये जा रहे हैं, किन्तु देश के अधिकांश भागों में ये कार्यक्रम सफल नहीं हो पा रहे हैं, विशेषकर उन क्षेत्रों में जो अत्यन्त पिछड़े हैं । सफाई और स्वच्छ जल की आपूर्त्ति के अभाव में लाखों लोग संचारी रोग से ग्रसित हो रहे हैं । निर्धन व्यक्ति इन रोगों से ज्यादा ग्रसित होते हैं । मातृत्व एवं शिशु मृत्यु दर ऊंची है । दुष्ट रोग जैसे मधुमेह, हृदयरोग, श्वास रोग, कैन्सर, नेत्र रोग जैसे अन्य रोगों में काफी वृद्धि हुयी है । 53% मृत्यु और 44% अपंगता को रोकी जा सकती है । यद्यपि निजी स्वास्थ्य सेवाओं में काफी वृद्धि हुयी है, किन्तु ये काफी खर्चीली हैं । सरकार ने वर्ष 1991-92 से उदारीकरण के पश्चा स्वास्थ्य-रक्षा सम्बन्धी बजट प्रावधानों में कुल घरे उत्पाद के अनुपात से कम कर दी है । एक सं प्रशिक्षित चिकित्सकों एवं स्वास्थ्य कर्मियों की है । सन् 2004 में मैकेंजे एण्ड कम्पनी ने इस सम्बन्ध में एक सर्वेक्षण किया था । सर्वेक्षण के अनुसार 80,000 से ज्यादा प्रशिक्षित स्वास्थ्य कर्मियों की उपकेन्द्रों पर कमी है । प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर भी 5000 प्रशिक्षित चिकित्सक एवं स्वास्थ्य कर्मियों की विशेष आवश्यकता है । इसी तरह सामुदायिक केन्द्रों पर भी 2500 से ज्यादा स्वास्थ्य कर्मियों की आवश्यकता है । खेद है कि ऐसी विषम परिस्थिति में भी सरकार का ध्यान आयुर्वेद की ओर नहीं जा रहा है । हजारों आयुर्वेदिक स्नातक बेरोजगार हैं । पूंजी के अभाव में वे स्वयं अपना चिकित्सालय नहीं खोल सकते हैं । केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार को चाहिए कि उप केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं सामुदायिक केन्द्रों पर अविलम्ब आयुर्वेद के स्नातकों को नियुक्त करे । इसके विपरीत सरकार निजी क्षेत्रों को प्रोत्साहन दे रही है । निजी क्षेत्र का एक ही उद्देश्य होता है - पैसा कमाना ।

जब उद्देश्य पैसा कमाना है, तो चिकित्सा-सेवा खर्चीली होगी ही - इसे कोई नहीं रोक सकता । किसी भी राष्ट्र का स्वास्थ्य स्वस्थ व्यक्तियों पर निर्भर करता है। बीमार या अस्वस्थ व्यक्ति राष्ट्र की सेवा नहीं कर सकता है । सरकार को भारतीयों के लिए पूर्ण स्वास्थ्य उपलब्ध कराने हेतु एलोपैथ के साथ-साथ अन्य पद्धतियों को भी प्रोत्साहित करना पड़ेगा । साथ ही बजट के प्रावधानों में भी घरेलू सकल उत्पाद की अनुपात से वृद्धि करनी पड़ेगी । सम्प्रति इसकी दर एक प्रतिशत से भी कम है जो कम से कम छह प्रतिशत होना चाहिए । हम सरकार से उम्मीद करते हैं कि सरकार देशवासियों को पूर्ण स्वास्थ्य उपलब्ध करायेगी।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-78

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

[विदित है कि प्रस्तुत इतिहास लिखने के पूर्व ही यह वादा किया गया था कि चिकित्सा विज्ञान की प्राचीनता के सम्बन्ध में जो सामग्री उपलब्ध होती जायेगी उसे हम प्रकाशित करते जायेंगे । इसी कड़ी में ज्ञात हुआ है कि पाकिस्तान की कब्र से ऐसे दांत मिले हैं जिसमें छिद्र हैं । कार्बन-जांच से पता चला है कि ये दांत 5500 ई.पू. से लेकर 700 ई.पू. तक के हैं । इसका अर्थ हुआ कि लगभग 9000 वर्ष पूर्व दन्त विज्ञान विकसित था । विशेषज्ञों के अनुसार दांत में ये छिद्र कुशल दन्त चिकित्सक के द्वारा बनाये गये थे ।

विदित है कि पाकिस्तान पहले भारत में ही था । इसका अर्थ हुआ कि 9000 वर्ष पूर्व चिकित्सा विज्ञान हमारे देश में विकसित अवस्था में था । इसलिए यह कहना दुर्भाग्यपूर्ण होगा कि आयुर्वेद केवल तीन-चार हजार वर्ष पूर्व था ।]

नागार्जुन

श्री दासगुप्ता[1] ने अपनी पुस्तक में नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्यों को प्रतिपादित किया है -

1. नागार्जुन बौद्ध लेखक थे ।
2. श्री सोजेन के अनुसार हरिवर्मन नामक एक अन्य बौद्ध हीनयान विचारक थे (250 ई०) जिन्होंने सत्यसिद्धि विचार धारा (विद्यालय) की स्थापना की एवं उनके सिद्धान्त वही थे जिनका उपदेश नागार्जुन देते थे । किन्तु, श्री दासगुप्ता की दृष्टि में संस्कृत भाषा में कोई कृति नहीं है ।
3. शून्यवाद के प्रवर्त्तक, नागार्जुन का अस्तित्व 100 ई० में था ।
4. तारानाथ के अनुसार नागार्जुन के शिष्य का नाम आर्यदेव था ।
5. अश्वघोष का अस्तित्व 100 ई० में था । वे बौद्ध विद्वानों के साथ बहस करते थे और उन्हें पराजित करते थे, किन्तु बाद में वे बौद्ध हो गये ।
6. यह सत्य नहीं है कि नागार्जुन के पश्चात् शून्यवाद अस्तित्व में आया । महायान सूत्र नागार्जुन के पूर्व लिखे गये थे । इन सूत्रों में भी शून्यवाद की अवधारणा है ।

श्री दासगुप्ता के लेखन से सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्त्ता होने का प्रमाण नागार्जुन के सम्बन्ध में नहीं मिलता है ।

आचार्य ज्योतिर्मित्र[2] ने अपनी पुस्तक में निम्न तथ्यों पर प्रकाश डाला है :-

1. डल्हण के अनुसार नागार्जुन ने सुश्रुत का संस्कार कर इसमें उत्तरतंत्र को जोड़ दिया ।
2. नागार्जुन द्वारा प्रतिसंस्कार एवं त्रीसटसूनु चन्द्रट द्वारा पाठशोधन के तथ्य को यदि स्वीकार किया जाय तो भी सुश्रुत संहिता की शैली में यत्र-तत्र औपनिषदिक शैली का पुट परिलक्षित होता है ।
3. केवल उत्तरतंत्र (सुश्रुत संहिता का) में बालरोगों के अन्तर्गत अन्धपूतना प्रतिषेध में 'भिक्षु संघाटी' (सु०उ०33/6) शब्द के आ जाने से लोगों को यह शंका हो जाती है कि इस पर बौद्धी छाया है । डल्हण ने जेज्जट के आधार पर भिक्षु का अर्थ शाक्य या बौद्ध भिक्षु किया, संघाठी एक प्रकार का वस्त्र है । नागार्जुन के संस्कर्ता मान लेने पर कथंचित यह बात ठीक मानी जा सकती है, क्योंकि नागार्जुन का समय प्रथम शताब्दी का है ।
4. कुछ लोगों के ये सहेतुक विचार हैं कि उत्तरतंत्र जोड़ा नहीं गया, यह पहले से ही विद्यमान था; क्योंकि यदि नागार्जुन द्वारा यह मात्र जुड़ा होता तो इसमें पारद आदि के योगों का उल्लेख अवश्य होता पर ऐसा नहीं है ।

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

किन्तु मेरे विचार से ये दलीलें ठीक नहीं, क्योंकि यदि वह उत्तरतंत्र स्थान होता तो उसका नाम उत्तरतंत्र न होकर उत्तर स्थान ही होता, जैसा कि अन्य स्थानों के साथ है । निष्कर्षतः विद्वान लेखक लिखते हैं कि "इन सब बातों के आधार पर उत्तरतंत्र को बाद का जोड़ा हुआ मानना सर्वथा उचित है ।"

5. इतिहास में तीन प्रसिद्ध नागार्जुनों का उल्लेख है । एक नागार्जुन लौहशास्त्र का प्रवक्ता एवं रसतंत्र का आचार्य था । दूसरा एक बौद्ध राजा था जिसका उल्लेख काश्मीर के इतिहास में है । इन दोनों से भिन्न एक तीसरा नागार्जुन और भी हुआ है जो बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापक था ।

6. प्रथम सिद्ध नागार्जुन कक्षपुटतंत्र,योग-शतक, रसरत्नाकर आदि का प्रणेता था । यह सुश्रुत का प्रतिसंस्कर्ता नहीं हो सकता; क्योंकि सकलर रोगनाशक पारद का आभ्यन्तर प्रयोग सुश्रुत भर में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता । यद्यपि सुश्रुत के द्रव्यसंग्रहणीय (सूत्र.38) अध्याय में त्रपु (रांगा) सीसा, ताम्र, रजत, कृष्ण लौह, सुवर्ण एवं लौहमल आदि धातुएं चिकित्सा के उपयोग के लिए संगृहीत हैं । इनके गुण अन्नपान विधि (सूत्र 46) अध्याय में बताये गये हैं, पर वहां जरा व्याधि शामक पारद की चर्चा है ही नहीं । सुश्रुत चिकित्सा स्थान के पच्चीसवें अध्याय में पारद के बाह्य प्रयोग का अवश्य उल्लेख है, पर आभ्यान्तर का नहीं ।

7. दूसरा-नृपति नागार्जुन सुश्रुत का संस्कर्ता नहीं हो सकता, क्योंकि उनके विषय में ऐसा कोई उल्लेख नहीं मिलता । माध्यमिक सम्प्रदाय के नागार्जुन का तिब्बतीय कथा के अनुसार वैद्यविद्यानिपुणत्व भी प्रसिद्ध है ।

8. 7वीं शताब्दी में भारत आये हुएनत्सांग नामक चीनी यात्री ने अपने से 700 या 800 वर्ष पूर्व नागार्जुन की सत्ता मानी है । लासेन नामक विद्वान् नागार्जुन समय 25 ई० स्थिर करता है, अतः यह कहा सकता है कि नागार्जुन प्रथम शताब्दी के आस- हुआ ।

9. नागार्जुन के 'प्रमाणविध्वंसन भी प्रमाण- संभाषिवृत्ति' नामक टीका नागार्जुन के पदार्थों (की परिभाषा प्रस्तुत करती है जो कि अक्षपाद न्यायसूत्र के प्रथम सूत्र के समान ही है, किन्तु कि वालेसर (Walleser) ने 'Life of Nagarj from Tibetan and Chinese sources' में यह किया है कि निश्चित रूप से नागार्जुन की निश्चित करनी असम्भव है । यह संभवतः दूसरी चतुर्थ शताब्दी के मध्य हुए होंगे । अतएव इस के विचार से किसी प्रकार के फलपूर्ण परिणाम नहीं पहुंचा जा सकता ।

10. तंत्रयुक्तियों के सम्बन्ध में आचार्य ज्योतिर्मित्र कहना है कि सुश्रुत संहिता के संस्कर्त्ता (प्रथम शताब्दी) द्वारा ये बहुत पश्चात् में सम्मि की गयीं ।

11. सुश्रुत के उत्तरतंत्र में नागार्जुन द्वारा प्रयुक्त 'असद् प्रयुक्तानां वाक्यानां प्रतिषेधनम्' (सु.उ. 65/5) उल्लेख से विद्वान लेखक सुश्रुत के संस्कर्ता के में नागार्जुन को लेते हैं ।

12. सुश्रुत के उत्तरतंत्र में प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन द्वारा ये तंत्र युक्तियां सम्यक् से तंत्र के सार के गवेषणा ध्यान में रखकर प्रस्तुत की गयी हैं - सम्यग्विनिहिता शब्द न्यायार्थसंयुताः (सु०उ० 65/4 यहां विनिहित पद यही ध्वनित करता है कि स्वयं न रचकर किसी अन्य की वस्तु अपने ग्रन्थ आधान (संग्रह) की ।

13. नागार्जुन (शून्यवाद का प्रवर्तक प्रथम या

शताब्दिकालीन) के 'दशभूमि विभाषा शास्त्र' में सांख्य और योग के साथ-साथ वैशेषिक का भी उल्लेख है ।

14. सुश्रुत के शारीरस्थान का प्रथम अध्याय सांख्य का निरूपण प्रस्तुत करता है, पर चरक के सांख्य के समान इसकी प्राचीनता स्वीकार करने में आपत्ति प्रतीत होती है, क्योंकि सुश्रुत का संस्कार स्थल-स्थल पर नागार्जुन द्वारा प्रथम शताब्दी में हुआ प्रतीत होता है ।

15. शून्यवाद का जन्म ईसा की प्रथम या द्वितीय सदी में नागार्जुन से हुआ । अतएव ब्रह्मसूत्र या मीमांसासूत्र का समय ईसा की तृतीय शताब्दी के आसपास होना चाहिए ।

16. आचार्य ज्योतिर्मित्र के अनुसार नागार्जुन द्वारा उपबृंहित सुश्रुत संहिता के उत्तरतंत्र में पंचविशतिक पुरुष माना है, डल्हण ने वहां पंचविंशतिक से पंचविशतितम अर्थ स्वीकार किया है ।

17. आचार्यजी के अनुसार सुश्रुत का संस्कार स्थल-स्थल पर नागार्जुन द्वारा प्रथम शताब्दी में हुआ प्रतीत होता है ।

पं० हेमराज शर्मा[3] ने अपनी पुस्तक के उपोद्घात में नागार्जुन पर विस्तृत रूपेण प्रकाश डाला है । वे निम्नानुसार हैं -

नागार्जुन नामवाले अनेक प्राचीन विद्वान् मिलते हैं। नागार्जुन की रचना रूप से मिलने वाले कक्षपुट, योगशतक, तत्व प्रकाश आदि अनेक ग्रन्थों में कक्षपुट आदि कौतुक ग्रन्थों (जादू टोने के ग्रन्थों) का प्रणेता सिद्ध नागार्जुन-इस विशेषण युक्त नाम वाले व्यक्ति को बताया है। वैद्यक विषय में योगशतक नाम का ग्रन्थ अभी मिला है जिसका तिब्बतीय भाषा में अनुवाद भी मिलता है । नागार्जुन की ही एक अन्य 'चित्तानन्दपटीयसी' नामक वैद्यक की संस्कृत में लिखी हुयी ताड़पुस्तक तिब्बत के गीममठ में है ऐसा सुनने में आता है । इसमें अन्य भी ग्रन्थ मिलते हैं । तंत्रों में आया हुआ बौद्धों का अध्यात्म विषयक तत्वप्रकाश, परम रहस्य सुखाभिसंबोधि तथा समयमुद्रा आदि इसके अन्य ग्रन्थ हैं । केवल बौद्ध दर्शनों के विषय में माध्यमिक वृत्ति, तर्कशास्त्र तथा उपायहृदय आदि ग्रन्थ हैं । इन भिन्न-भिन्न विषय के ग्रन्थों का निर्माता एक ही व्यक्ति है या भिन्न-भिन्न यह विचारणीय प्रश्न है । अष्टम शताब्दी भारत में यात्रा के लिए आये हुए अल्बरूनी नामक यात्री ने अपने से सौ वर्ष पूर्व रसायन विद्या में निपुण, बोधिसत्व (बुद्ध बनने के लिए तपस्या करने वाला) तथा अत्यन्त प्रसिद्ध नागार्जुन नामक विद्वान् का उल्लेख किया है । 7 वीं शताब्दी में भारत में आये हुए ह्यूनसांग नामक चीनी यात्री ने अपने से सात आठ सौ वर्ष पूर्व शान्तिदेव तथा अश्वघोष आदि की तरह अत्यन्त प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् शातवाहन के मित्र नागार्जुन का उल्लेख किया है जो कि रसायन द्वारा पत्थर को भी स्वर्ण बना देता था । राज तरङ्गिणी के लेखक, कल्हण ने बुद्ध के आविर्भाव से 150 वर्ष पूर्व नागार्जुन नामक प्रसिद्ध विद्वान के होने का निर्देश किया है । इस प्रकार भिन्न-भिन्न समयों के मिलने से इन नागार्जुनों में एकता प्रतीत नहीं होती अर्थात् ये परस्पर भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं । नागार्जुन द्वारा शातवाहन को पत्र भेजने का वृतान्त अन्यत्र प्रकाशित हुआ है । मेरे संग्रहालय में एक फटा हुआ संस्कृत भाषा में ताड़पत्र पर लिखा हुआ शातवाहन चरित है जिसमें **दृष्टतत्वो बोधिसत्वो मद्यसत्वो महाराजगुरूः श्रीनागार्जुनाभिधानः शाक्यभिक्षुराजः** इस प्रकार के स्पष्ट उल्लेख होने से बोधिसत्वस्थानीय, कुरूकुल्ला के उपदेश के कारण तांत्रिक तथा शाक्यभिक्षु नागार्जुन शातवाहन का समकालीन सिद्ध होता है । ह्यूनसङ्ग ने बोधिसत्व तथा धातुवाद (रसायन) के विद्वान होने से इसी शातवाहन के समकालीन नागार्जुन का सम्भवतः उल्लेख किया है । नागार्जुन द्वारा शातवाहन को रसायन गुटिका औषधि के देने का भी उल्लेख मिलता है । वाणभट्ट के हर्ष चरित में **समतिक्रामति च कियत्यपि काले तामेकावली**

तस्मान्नागराजान्नागार्जुनो नाम..... लेभे च, त्रिसमुद्राधिपतये शातवाहनाय नरेन्द्राय सुदृढे स ददौ ताम् इस लेख से नागार्जुन द्वारा अपने मित्र शातवाहन को रत्नों को दे एकावली (हार) के देने के उल्लेख से इन दोनों की मित्रता तथा समानकाल प्रतीत होता है । इस प्रकार शातवाहन का समकालीन बोधिसत्व स्थानीय अत्यन्त विद्वान् तथा तंत्र विद्या में निपुण नागार्जुन रसायन तथा वैद्यक का भी विद्वान प्रतीत होता है । इस प्रकार तंत्रों से युक्त बौद्ध अध्याय ग्रन्थ तत्वप्रकाश आदि भी इस तान्त्रिक तथा बोधिसत्व नागार्जुन के हो सकते हैं । पाटलिपुत्र के शिलापट्ट पर लिखे हुए 'नागार्जुनेन लिखिता: स्तम्भे पाटलिपुत्रके' तथा वृन्द और चक्रपाणि द्वारा दिये गये नागार्जुन के अमुक-अमुक रोग के प्रतिकार के लिए 'औषध योग' भी इसी नागार्जुन के प्रतीत होते हैं । सप्तम शताब्दी का निर्देश करनेवाला अलबेरूनी का लेख ह्यूनसङ्ग के लेख से ही संहित हो जाने के कारण, उसके अनुसार अन्य नागार्जुन के न मिलने से आनुश्रविक तथा काल्पनिक समय को लिखकर शातवाहन के समकालीन नागार्जुन से ही अभिप्राय प्रतीत होता है । माध्यमिक वृत्ति तथा उपायहृदय (छायानुवाद रूप से प्रकाशित) में तान्त्रिक विषयों से रहित केवल अध्यात्म प्रधान प्रौढ़ शैली के होने से इस तान्त्रिक नागार्जुन से भिन्न नागार्जुन की कृतियां प्रतीत होती हैं । उपायहृदय में दर्शन के भिन्न विषयों के प्रसङ्ग में भैषज्य विद्या के प्रधान विषय रूप 6 भैषज्य धर्मों का केवल साधारण रूप से (नाममात्र) निर्देश होने से तथा धातु रसायन आदि विषयों का बिल्कुल उल्लेख न होने से इस उपाय हृदय तथा माध्यमिक वृत्ति का निर्माता अन्य ही महायान पथ का स्थापक दार्शनिक आर्य नागार्जुन प्रतीत होता है । राजतरङ्गिणी में निर्दिष्ट नागार्जुन का बौद्ध होने पर भी राजा के रूप में उल्लेख किया गया है । माध्यमिक वृत्ति आदि के कर्ता नागार्जुन का कहीं भी राज्य के रूप में उल्लेख न मिलने से केवल समान नामवाला राजा नागार्जुन कोई भिन्न ही व्यक्ति प्रतीत होता है ।

श्री मुखोपाध्याय ने अपनी पुस्तक¹ में नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्न तथ्यों पर प्रकाश डाला है :-

1. नागार्जुन प्रख्यात् बौद्ध रसायनज्ञ थे ।
2. वे ब्राह्मण कुल के थे, किन्तु बाद में बौद्ध बन गये
3. वे बौद्धिसत्व थे और महायान पद्धति के संस्थापक थे
4. ह्यूनेत्सांग, यात्री के अनुसार वे विदर्भ (बरार-महाराष्ट्र के महाकौशल में शातवाह शासन काल में जन्मे थे
5. उन्होंने अपना अधिकांश समय ध्यानावस्था में कृष्णा नदी के तट पर स्थित श्रीपर्वत पर बिताये थे ।
6. वे सरहा के शिष्य थे । कहा जाता है कि प्रसिद्ध राजा भोजदेव को बौद्ध धर्म स्वीकार करने के लिए प्रेरित किया था ।
7. लामा तारानाथ के अनुसार देव (या आर्यदेव) नामक उनके प्रख्यात् शिष्य नालन्दा विश्वविद्यालय में पंडित के पद पर सुशोभित थे ।
8. एक कहानी है कि वे संगीतज्ञ थे और उन्होंने इसके द्वारा अपना एवं दक्षिणी भारत के राजा के जीवन को दीर्घायु प्रदान किया था । इससे राज्य के उत्तराधिकारी की मां क्षुब्ध हो गयी और उन्होंने अपने पुत्र को नागार्जुन का शिर मांगने के लिए कहा । नागार्जुन ने उनके अनुरोध को स्वीकार किया और तत्काल कुश घास से अपने शिर को काट डाला (बुद्धिज्म, पृष्ठ 196-मोनियार विलियम्स)
9. चीनी भाषा में कुमारजीव द्वारा अनूदित नागार्जुन की जीवनी, के अनुसार उनका जन्म 401 ई० में हुआ था ।
10. डा०एस.सी.विद्याभूषण की पुस्तक इण्डियन लाजिक के अनुसार नागार्जुन का अस्तित्व बुद्ध के निर्वाण के 400 वर्षों के पश्चात् अर्थात् 33 ई.पू. में था । किन्तु वे नालन्दा विश्वविद्यालय के प्रारम्भिक संरक्षक व संस्थापक थे (संदर्भ गेशचिते देस बुद्धिजन्म-वॉन

शिफनेर, पृष्ठ 69-73-तारानाथ) । किन्तु इतने प्रारम्भिक दिनों में नहीं होंगे, क्योंकि फाहियान जब 399 ई. में भारत आया था, नालन्दा केवल एक गांव था ।

11. बेल के अनुसार वे 166-200 ई. के मध्य थे ।
12. लामा तारानाथ के अनुसार वे राजा नेमिचन्द्र के समकालीन थे जो 300 ई. में मौजूद थे ।
13. राजतरंगिनी के अनुसार शाक्यसिंह (3750-225 ई.पू.) के संन्यास के 150 वर्षों पश्चात् वे अस्तित्व में थे ।
14. लासेन : कनिष्क के शासनकाल (23 ई.) के नागार्जुन थे ।
15. प्लीट के अनुसार 57 ई.पू. एवं व्ही स्मिथ 120 ई. में नागार्जुन थे ।
16. लौह-शास्त्र -

नागार्जुनो मुनीन्द्रः शशास यल्लोदृशास्त्र मतिगहनम् ।

-चक्रदत्त, पृ० 347

लौहस्य पाकंमधुना नागार्जुनशिष्टप्रभिदधाः

-रसेन्द्र चिन्तामणि

मुनिरचितशास्त्रपारं गरवा

- चक्रदत्त, पृ० 360

मुनिरचिते तंत्र मुनिनोगार्ज्जुनः ।

- तत्व चन्द्रिका, पृ० 360

17. रस रत्नाकर, कक्षपुट-तंत्र आदि सिद्ध नागार्जुन द्वारा रचित हैं ।
18. आरोग्य-मंजरी, योगसार, रसेन्द्रमंगला, रतिशास्त्र, रसकक्षपुटम, माध्यमिक कारिका, युक्ति सास्तिक कारिका, विग्रह-व्यावर्तनी कारिका, विग्रह व्यावर्त्तिनी वृत्ति, तार सुधानाम, आदि कृत्तियां नागार्जुन की हैं ।

श्री श्रीवास्तव[5] ने नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्न मत व्यक्त किये हैं :-

1. नागार्जुन एक ऐतिहासिक व्यक्ति थे ।
2. नागार्जुन जब सुश्रुत संहिता का उत्तरतंत्र लिख रहे थे, तब उन्होंने अपना सुश्रुत रख लिया था ।
3. नागार्जुन (प्रथम शती ई.पू.-से लेकर प्रथम शती) का सम्बन्धी (सुश्रुत दो बताये गये हैं । प्रथम सुश्रुत तंत्र के लेखक, वृद्ध सुश्रुत और द्वितीय अन्य सुश्रुत) द्वितीय अन्य सुश्रुत के साथ बताया गया है ।
4. यह सत्य है कि नागार्जुन और हयघोष का सम्बन्ध कनिष्क (प्रथम शती) से था ।
5. डा. रे के अनुसार दार्शनिक नागार्जुन और सिद्ध नागार्जुन एक ही व्यक्ति थे । (सन्दर्भ :- दत्त यू.सी.: मटेरिया मेडिका आफ द हिन्दूज, 1922)
6. नागार्जुन का जन्म सोमनाथ के नजदीक, दैहक किला के पास हुआ था । वे मुझसे (अलबरूनी) 100 वर्ष पूर्व हुए थे ।
7. डा० रे लिखते हैं, "401-409 ई० में हम चीनी भाषा में नागार्जुन बोधिसत्व का अनुवाद पाते हैं - (संदर्भ:- डायमॉक, वार्डन एण्ड हुपर: फर्मोकोग्राफिया इन्डिका)" ।
8. ई.पू. द्वितीय शताब्दी में पतंजलि और नागार्जुन (प्रथम शती ई.पू. से प्रथम शती) ने निश्चित रूप से रसायन शास्त्र की नींव रखी थी और वस्तुतः इन द्रव्यों का दवाओं में भी इस्तेमाल किया गया था ।
9. वृन्द माधव ने पाटलिपुत्र एवं अन्य स्थानों के शिलालेखों पर नागार्जुन द्वारा निर्मित औषधियों का जिक्र किया है ।
10. अश्वघोष नागार्जुन के समकालीन थे ।
11. 14वीं शती में विष्णुदेव कृत 'रसराजलक्ष्मी' में भी नागार्जुन के साथ-साथ, व्याडि, दामोदर, भागवत गोविन्द, वासुदेव, चरक, सुश्रुत, वाग्भट्ट और हारीत का जिक्र है । इस पुस्तक में रस और उपरस का भी जिक्र है ।
12. रसरत्नाकर के रचयिता नागार्जुन थे ।
13. रसरत्नाकर की रचना सातवीं के अन्त में या 8वीं शती के प्रारम्भ में मानी जाती है ।

14. वृन्दमाधव का 'सिद्धयोग' 900 ई.में लिखा गया था ।

आचार्य नरेन्द्र देव[6] ने भी 'नागार्जुन' की चर्चा कई अर्थों में की है । संक्षेप में वे प्रस्तुत किये जा रहे हैं :-

1. त्रिकालस्तव नामक ग्रन्थ नागार्जुन द्वारा लिखित है ।
2. तारानाथ का कहना है कि हीनयानवादियों के अनुसार शतसाहस्रिकाप्रज्ञापारमिता अन्तिम महायान सूत्र है और इसके रचयिता नागार्जुन हैं । प्रज्ञापारमितासूत्र शास्त्र अवश्य नागार्जुन का बताया जाता है । यह पंचविंशति साहस्रिकाप्रज्ञापारमिता की टीका है । हो सकता है, इसी कारण मूल से नागार्जुन को शतसाह्स्रिका प्रज्ञापारमिता का रचयिता मान लिया गया हो । **कम से कम नागार्जुन महायान के प्रतिष्ठापक नहीं हैं, क्योंकि इसमें संदेह नहीं कि उनसे बहुत पहले ही महायान सूत्रों की रचना हो चुकी थी ।**

शुआन-च्वांग के अनुसार अश्वघोष, नागार्जुन, आर्यदेव और कुमार लब्ध (कुमारलात) समकालीन थे । वह इनको बौद्ध जगत् के चार सूर्य मानते हैं । 'राजतरंगिणी' के अनुसार बोधिसत्व-नागार्जुन हुष्क, जुष्क और कनिष्क के समय में कश्मीर के एकमात्र स्वामी थे । तारानाथ के अनुसार नागार्जुन, कनिष्क के काल में पैदा हुए थे । नागार्जुन का समय द्वितीय शताब्दी हो सकता है, किन्तु नागार्जुन के सम्बन्ध में इतनी कहानियां प्रचलित हैं कि कभी-कभी उनके अस्तित्व के बारे में ही सन्देह होने लगता है । कुमारजीव ने 405 ई० के लगभग चीनी भाषा में नागार्जुन की जीवनी का अनुवाद किया था । इसके अनुसार उनका जन्म दक्षिणी भारत में ब्राह्मण-कुल में हुआ था । वह ज्योतिष, आयुर्वेद तथा अन्य विद्याओं में निपुण थे ।

3. बोधिचर्यावतार में आर्य नागार्जुन द्वारा लिखे हुए एक दूसरे सूत्रसमुच्चय का उल्लेख पाया जाता है -

आर्यनागार्जुनाबद्धं द्वितीयं प्रयत्नतः ।

4. तिब्बती अनुवाद में नागार्जुन का चतुःस्तव मिलता है

श्री कैथ[7] ने अपनी पुस्तक में निम्न चर्चा की है :-

1. नागार्जुन रहस्यमय थे ।
2. वे सम्भवतः द्वितीय शती के अन्तिम भाग में थे
3. सुहल्लेख नागार्जुन की रचना है ।
4. योगसार और योगशतक में नागार्जुन का वर्णन है ।
5. रतिशास्त्र के लेखक नागार्जुन थे । किन्तु यह कह मुश्किल है कि बौद्ध दार्शनिक ही इसके लेखक क्योंकि इस महान लेखक ने कई भ्रामक रचनाओं जन्म दिया है ।

श्री बलदेव उपाध्याय[8] ने नागार्जुन को तीस शतक का माना है ।

श्री मैक्स मूलर[9] ने नागार्जुन के सम्बन्ध में नि मत व्यक्त किये हैं :-

1. नागार्जुन को चीनी नागा कोशुना या लौंग चो कहते हैं जो उन्होंने निर्वाण के 400 वर्ष के पश्चात् उत्तरी भा के बौद्धों से प्राप्त किया था ।
2. तिब्बती भी लगभग इसी तिथि को मानते हैं । वसुमित्र को बुद्ध के 400 वर्ष पश्चात् मानते हैं । इस तरह नागार्जुन को बुद्ध के 450 वर्ष पश्चात् हो चाहिए ।
3. बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तकों में नागार्जुन का 14वां स्थान है और बुद्ध के 738 वर्ष के पश्चात् उनकी मृत्यु हुई थी ।

विद्वान लेखक के अनुसार यह कहना अत्य कठिन है कि बुद्ध का जन्म या निर्वाण कब हुआ था । अशोक के पूर्व कोई भी प्रामाणिक कालक्रम नहीं है । उत्तरी भारत और दक्षिणी बौद्धों के कालक्रम में अन्तर है । नेपाल, तिब्बत और चीन तथा श्रीलंकाई बौद्धों के कालक्र में अन्तर है । श्रीलंका (सिलोन) के कालक्रम के अनुस

बुद्ध का निर्वाण 543 ई०पू० हुआ था । उत्तरी क्षेत्र के बौद्धों ने बुद्ध के उपदेश पर कालक्रम का निर्धारण किया कि "उनके निर्वाण (मृत्यु) के एक हजार वर्ष पश्चात् उनके उपदेश उत्तरी देशों में पहुंचेंगे (सन्दर्भ : लासन-इण्डियन एण्टीक्वीटीज) । बौद्ध धर्म निश्चित रूप से 61 ई० में चीन पहुंच गया था । इस आधार पर चीनी बौद्ध की मृत्यु की तिथि ईसा संवत् के एक हजार वर्ष पूर्व मानते हैं । चीनी विद्वान् सामान्यत: बुद्ध की मृत्यु भी तिथि 950 या 949 ई.पू. मानते हैं । । चाओ ची ने इनके निर्वाण की तिथि 1130 ई.पू. रखी है । फाहियान भी इसे जानते थे । उन्होंने लिखा है कि तेहेउ वंश के प्रारम्भ में बुद्ध की मृत्यु हुयी थी जो चीनी कालक्रम के अनुसार 1122 ई. है । एक अन्य जगह फाहियान लिखते हैं कि बुद्ध के निर्वाण के 300 वर्ष पश्चात् अर्थात् सम्राट फिंगवांग के शासनकाल में बौद्ध-धर्म उत्तरी क्षेत्र में फैला था । इस सम्राट ने 770-720 ई.पू. शासन किया था । अत: बुद्ध का निर्वाण 1070 से 1020 के मध्य हुआ होगा । माटोआन लिन ने इनकी तिथि 767 ई.पू. रखी है । चीनी तिब्बती ग्रन्थों से कम से कम 14 विभिन्न तिथियों का पता लगता है (सन्दर्भ : Csoma : Tibetan grammer) रेमुरेट (सन्दर्भ : मेलांगैज एसियाटिक्स, पृ० 113) 33 बौद्ध प्रर्वतकों की सूची प्रकाशित की है जिसमें चकियामौनी (मृत्यु 950 ई.पू.) से लेकर 713 ई. तक की तिथि दी गयी है । श्रीलंकाई विद्वानों ने बुद्ध के निर्वाण की तिथि उस दिन मानी है जिस दिन विजय ने लंका में प्रवेश किया । इतिहासविदों के अनुसार विजयन वंश का प्रारम्भ 543 ई.पू. हुआ था । विद्वानों के अनुसार विजय वंशक्रम का पता भी नहीं चलता है ।

1. एक मान्यता के अनुसार बुद्ध के निर्वाण के 400 वर्ष पश्चात् नागार्जुन का अस्तित्व मानते हैं, किन्तु चीनी इसे बुद्ध के निर्वाण के 800 वर्ष पश्चात् मानते हैं ।

जिस तरह श्रीलंकाई बौद्धों ने बुद्ध के निर्वाण की तिथि 543 ई.पू. रखी है, उसी तरह नागार्जुन की तिथि बुद्ध के निर्वाण के 400-500 वर्ष पश्चात् मानी गयी (सन्दर्भ: टर्नर, जरनल ऑफ द असि.-लासन) । कृपालु पाठक उब रहे होंगे कि भगवान बुद्ध के निर्वाण के जिक्र करने की यहां क्या आवश्यकता है ? आवश्यकता है । वह यह कि नागार्जुन बौद्ध दार्शनिक भी थे । जब तक बुद्ध के निर्वाण की तिथि का निश्चय नहीं होता है, तब तक नागार्जुन के बारे में भी निश्चित करना मुश्किल है ।

(निरन्तर जारी)

सन्दर्भ :-

1. A History of Indian Philosophy Vol. I, S.N. Dasgupta - Cambridge Universtiy Press.
2. चरक एवं सुश्रुत के दार्शनिक विषय का अध्ययन - डा० ज्योतिर्मित्र आचार्य-श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लि०।
3. काश्यप संहिता - पं० हेमराज शर्मा - चौखम्बा संस्कृत-सीरीज-बनारस ।
4. History of Indian Medicine - Girindranath Mukhpadhyaya, Bhisagacharya, Vol.III, University of Calcutta.
5. History of Indian Pharmacy - G.P. Srivastava - Pindars limited 7, Lower Rawdon Street, Calcutta - 20.
6. बौद्ध-धर्म-दर्शन-आचार्य नरेन्द्र देव, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना ।
8. संस्कृत साहित्य का इतिहास - आचार्य श्री बलदेव उपाध्याय-शारदा मन्दिर, वाराणसी ।
9. A History of Ancient Sanskrit Litarature - F. Max Muller - Chowkhamba Sanskrit Series Office - Varanasi.

मेदोवह स्रोतोदुष्टि चिकित्सा विचार

वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए.

परिचय[1]

आयुर्वेद साहित्य में मेदोवह स्रोत की परिकल्पना का भी विवरण प्रस्तुत किया गया है। इनमें दो स्रोत (सु.) या स्रोतोमूल (च) की परिकल्पना की गई है। इस विचार के अनुसार वृक्क एवं कटि दो स्रोत (सु.) मूल मेद सम्बद्ध माने गये हैं जबकि वृक्क एवं वपा वहन (च) भी मेदोवह स्रोत मूल कहे गये हैं। इसी प्रकार अन्यत्र वृक्क और मांस (अ) को भी मेददेवस्रोत मूल माना गया है।

स्रोत परिकल्पना के अनुसार स्रोत, मूल के समीप स्थूल एवं लक्ष्य (परिलक्षित या दृश्य) तथा आगे शाखाओं में विषाक्त हो सूक्ष्म एवं अलक्ष्य (अदृश्य) होते हैं ऐसा माना गया है।

इसी संदर्भ में मेद आश्रय स्थानों में मेद के वहन (धारण-वहन) करने वाली कला को भी तृतीय मेदोधरा कला के रूप में वर्णित किया जाना भी स्मरणीय है। इसके द्वारा मेद धातु का पोषण होना भी माना जाता है। अतः रसवह धमनियों की मेद स्थानीय शाखा में ही मेदोवह स्रोत हैं कि जिन से मेद का पोषण होता है। अतः रसवह स्रोत भी मेदोवह स्रोत माना गया है।

पोषण की दृष्टि से प्रथम क्रम में अन्त्र में मेद पोषक घटकों का शोषण-पाचन होता है जो मेद कला (Emulohified globules) 'ग्लेसरोल एवं मेदाम्ल (Fatty acid) के रूप में होता है। द्वितीय क्रम में शरीर में पुनः संयोजित मेद सूक्ष्मस्रोत-अंत्र-रसायनी-हृदय द्वारा रस के साथ सर्व शरीर में संचरित होता है। अतः रसवह को भी मेदोवह माना जाता है।

सम्बद्ध अवयव

वपावहन

ऊपर में स्थित उदरावरण कला के स्तरों में मेद का संचय अधिक प्रमाण में होता है। अतः उदरस्थ इस कलामय रचना की तपावहन संज्ञक Omentum को तैलवर्तिका या मेदसोवर्त्ति मेद मूल कहा प्रतीत होता है। जो उचित भी लगता है। यह मेदोवहन-मेदोधारण एवं संचयकर अवयव भी है।

वृक्क

वृक्क को रक्त एवं मेद के प्रसाद भाग से उत्पन्न माना है तथा इस को सभी ने मेद स्रोतो मूल के रूप में स्वीकारा है। वृक्क को 'उदरस्थ मेदोगोलकौ' संज्ञा संभवतः वृक्कावरण रूप कवच (Fatty capsule of kidneys) की दृष्टि से की गई प्रतीत होती है। संभवतः इसी से इसे सूक्ष्म मेदोवह स्रोत माना गया है। वृक्क की उत्पत्ति भी रक्त एवं मेद के सार भाग से कही गई है।

एक अन्य विचारानुसार वृक्क संलग्न अधिवृक्क के अन्तःस्रावों द्वारा मेद संचय एवं विघटन (क्षय) क्रिया संबंधित होने से वृक्क को मेदोवह स्रोत माना गया हो, यह संभव है। इसे स्राव Adrenaline के अतिस्राव से दबाव वृद्धि, वातप्रकोप, मेदक्षय, कार्श्य, खरहा आदि देखे जाते हैं तथा Corticosteroids से जलसंचय, गौरव का सम्बंध देखा जाता है।

कटि

इसको मेद संचय का स्थान सर्वत्र स्वीकारा गया है (स्त्रियों में विशेष रूप से तथा पुरुषों में उदर-कटि में मेद संचय कहा है) जैसा कि विदित है अज आदि प्राणियों की पुष्टि परीक्षा भी कटि की पुष्टि से ही करते हैं।

मांस मेदोत्पादक भाव

मांस मेद धातु तथा वसा रूप उपधातु का उत्पादक धातु है। अतिस्थौल्य में मांस एवं मेद दोनों को निमित्त कहा गया है। वसा जन्य स्थूलता मांसाग्नि से सम्बधित भाव माना जाता है।

मेदजन्य अवयव

स्नायु-शिरा मेद से स्नेह को लेकर स्नायु रूप बनती है। शिरा का पाक मृदु रहता है और अपेक्षतया खर रहता है। (सु.शा. 4/29) वृषण की उत्पत्ति मांस, रक्त, कफ, मेद के प्रसाद भाग से कही गई है।

(मांसासृकुकफमेदःप्रसादाह वृषणौ - सु.शा. 4/37)

मेदोधरा कला

धातुओं के आशय में अन्तर मर्यादा को कला कहते हैं। यह सात कही गई है। (सु.शा. 4/5)

नि० 1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुजरात) 364001

जिस प्रकार वृक्ष के काष्ठ को काटने पर काष्ठ सार दीखता है उसी प्रकार मांस के काटने पर धातु दीखने लगते हैं । जो स्नायुओं द्वारा भली-भांति ढंकी रहती है, जरायु से सम्यक रूप से व्याप्त होते हैं, कफ से घिरे रहते उनको (कलाभाग) कहते हैं । (सु.शा. 4/6-7)

मेदोधराकला

तृतीय कला को मेदोधरा कला कहा जाता है । सब प्राणियों में । उदर में तथा ।। अस्थियों में मेद रहती है ।

अस्थियों में से बड़ी अस्थियों में मज्जा रहती है ।

यह कला मेद और मज्जा को धारण करती है ।

I. स्थूलास्थियों के मध्य में मज्जा रहती है ।

II. अन्य (लघु एवं अस्थूल) अस्थियों में सरक्त मेद रहता है ।

III. शुद्ध मांस के स्नेह को वसा कहते हैं । इसी को मांस अनुप्रविष्ट शुद्ध स्नेह भी कहा गया है ।

इस प्रकार इस विवरण से निम्नलिखित सार निकलता है :-

I. वसा- A यह शरीर को आवृत्त कर रहने वाला स्नेह पदार्थ है जो त्वचा के नीचे स्थित है (मेद रूप वसा ?)
  B. मांस में अनुप्रविष्ट हो रहने वाला शुद्ध स्नेह पदार्थ

I. मेद- A. उदर में । मेदोवर्ति रूप तथा ।। वपावहन रूप स्थित स्नेह (उदर गत मेद)
  B. लघु एवं अस्थूल अस्थि स्थित सरक्त मेद (मज्जारूपा)
  C. उदर, कटि, स्फिकादि पर स्थित मेद (वसा रूप मेद)

मेदोवहस्रोत दुष्टि हेतु[2]

(क) आगन्तु

1. वेधन-सुश्रुत ने स्रोतोवेधन पूर्वक स्रोतोदुष्टि कही है ।
2. अभिघात - अनुक्तपरिभाषा से कटि-उदर निजागन्तु मर्म अभिघात का ग्रहण

(ख) विशेष निमित्त

I. आहार

1. मेद्य (मेद प्रधान) मांस सेवन (या मेद सेवन)
2. वारूणि पान या मद्य सेवन ।
3. अत्याशन

II. विहार

1. दिवास्वप्न
2. अव्यायाम

(ग) अन्य सामान्य निदान

1. मेदोरोग या स्थौल्योक्त निदान ।
2. प्रमेहोक्त (कफ) निदान ।

(घ) प्रमेहादि में कहे निदान ।

1. मधुर (ईक्षुविकृति-गुड़ादि) अतिसेवन ।
2. स्निग्धातिसेवन (वसा, मज्जा), घृत आदि सेवन ।
3. अभिष्यंदि पदार्थ सेवन (दधि आदि) ।
4. संतर्पण अतियोग ।
5. आसन-एवं स्वप्न सुख ।

विकृति[3]

(क) स्रोतो विकृति

1. अतिप्रवृत्ति - त्वक, अक्षि-विड-मूत्र गत स्नेहाधिक्यादि ।
2. संग (रोध) - त्वकादि में रूक्षता, विड़ादि में खरता ।
3. सिराग्रन्थि - मेदोज ग्रंथि ।
4. विमार्गगमन - विषय विभाजन, रसादिधातुगतमेद या स्नेहाधिक्य, अन्त्रावयव मेदुरता । यकृत का वसा मय होना आदि ।

(ख) कार्यरूप विकृति

- अति उपचय, अति स्निग्धता, अतिगौरव ।
- अति स्वेदता, अति दुर्गन्धत्व-मेद स्वभाव से ।
- कफ-मेद संचय-स्थूलशोफता, कफमेद संसर्ग से श्रमसह्यता ।
- मेद उपचय एवं अन्य धातु अपचय जन्य आयुह्रास ।
- धातु वैषम्य जन्य - दौबर्ल्य ।
- शिथिल, सुकुमार, गुरू मेद जन्य अनुत्साह ।

- मेदोदोष (सामानुबंधी) स्वभाव जन्य दौर्गन्ध्यता ।
- मेद स्वभाव सम्बद्ध स्वेदाधिक्यता ।

(ग) आवरण

- मेदावृत्त मार्ग होने से अन्य धातु का अपुष्ट होना ।
- मेदावृत्त मार्ग एवं अल्प शुक्रता जन्य कृच्छ्र व्यवायता ।
- मेदावृत्त मार्ग से कोष्ठ में वायु प्रभूतता एवं संचरण शीलता पूर्वक अग्नि संधुक्षण जन्य आहार का शीघ्रजरण एवं तज्जन्य क्षुधाधिक्य होना ।
- मेदावृत्तता के कारण आवृत्त वात जन्य (मेदावृत्तवात) विकारोत्पत्ति होना ।

लक्षण[4]

(क्र) स्रोत सम्बद्ध

I. **मेदोवह स्रोतोदृष्टि जन्य सामान्य स्रोतोविकार के रूप में** - अतिप्रवृत्ति एवं स्वेदाधिक्य, अप्रवृत्ति या संग रूप मेद संचय, विमार्ग गमन एवं वसादि का मूत्र में जाना तथा ग्रंथि रूप स्रोतोत्थ (स्रोतमूल) वृक्कादि आश्रित ग्रंथि (आर्वुदादि) आदि का होना या मेदोज ग्रंथि - अर्बुदादि का होना - लक्षण कहे गये हैं ।

II. स्रोतो वेधन जन्य - मेदोवह स्रोतोवेधन होने पर उत्पन्न लक्षणों में -

स्वेदागमन - पसीना आना या पसीना छूटना ।
तालु शोष - मुख-तालु सूखना या तृषा अनुभूति ।
स्निग्धागता - शरीर की त्वचा पर स्निग्धता ।
स्थूलशोफता- स्थौल्य एवं घनशोफ होना ।

(ख) धातुसम्बद्ध

धातु दुष्टि के जो लक्षण कहे गये हैं वही लक्षण इस धातुवह स्रोत के भी माने गये हैं -

इस दृष्टि से मेद दुष्टि जन्य लक्षण को निम्नानुसार रखा गया है - (1) अष्टौनिंदित में से अतिस्थौल्य में कहे लक्षण तथा (2) प्रमेह पूर्वरूप के रूप में कहे लक्षण ।

(1) मेदवृद्धि जन्य लक्षणों में कहे गये - ग्रंथि, अर्बुद वृद्धि, गलगण्ड, ओष्ठरोग, अतिस्वेद, अतिस्थौल्य, मधुमेह (सु) ।

(2) अतिस्थूल रूप निंदित के लक्षण ।

I. चरक में अतिस्थौल्य जन्य आठ प्रमुख विकार-लक्षण कहे हैं यथा -

1. आयुह्रास
2. जवापरोध
3. कृच्छ्रव्यवायता
4. दौर्बल्य
5. दौर्गन्ध्य
6. स्वेदाबाधता
7. क्षुधाधिक्य
8. पिपासा अंतियोग

II. सुश्रुत ने अतिस्थूलता से सम्बद्ध लक्षणों में - उदरपार्श्ववृद्धि एवं स्निग्ध-धनागता के साथ ही क्षुद्रश्वास, पिपासा, क्षुधा, स्वप्न, स्वेद, गात्र दौवन्ध, क्रथन, गात्रसाद, गदगदत्व, सर्वक्रिया असमर्थतता, अल्पव्यवायता, अन्यधातु अपुष्टि, अल्पप्राणता आदि को कहा है । माधवादि ने इन्हीं लक्षणों के साथ कुछ अन्य लक्षण भी पढ़े हैं यथा - मोह,

III. मेदोरोग या अतिस्थौल्य के कारण जो उपद्रव संभव है उनमें - प्रमेह पिड़िका, ज्वर, भगंदर, विद्रधि तथा विसर्प, ज्वरातिसार मेह, अर्श, श्लीपद, कामला आदि का उल्लेख मिलता है ।

3. प्रमेहपूर्व रूप रूपा लक्षण :-

प्रमेह पूर्व रूप के रूप में कहे गये लक्षण निम्नानुसार है :-

केशजटलीभाव (च) (सु), मुख माधुर्य (च) कर-पाद सुप्तता (च) करपाद दाह (च) या हस्तपादतल दाह (सु) मुख-तालु-कण्ठ शोष (च) पिपासा (च)(सु) आलस्य (च) कायमलोत्पत्ति (च) कामछिद्र उपदेह (उपलेप) (च) अंगपरिदाह (च) शरीर-विस्रगंधता (च) दुर्गन्ध (सु) निद्राधिक्य (च) तन्द्रा (च) (सु) स्निग्ध गात्रता (सु) (गुरू गात्रता) (सु), साद (सु) श्वास दुर्गंधिता (सु) तालु-गल-जिह्वा-दन्त मलोत्पत्ति (सु) नख वृद्धि (सु) मूत्रदोष (च) मधुर शुक्लमूत्रता (सु) मूत्र पर चींटी आदि आना (च) शरीर पर षड पदों चींटी आदि का आना (च) ।

मेदोवहस्रोतो दुष्टि जन्य रोगों की चिकित्सा[5]

1. मेदवहस्रोत एवं मेद धातु जन्य लक्षणों की अभेदता होने से मेदोवृद्धि या मेदोरोग अनुसार चिकित्सा करना तथा
- प्रमेहोक्त चिकित्सा करना ।

2. तदानुसार - मेद वृद्धि शमनार्थ निम्नोपक्रम कहे गये हैं :

आहार चिकित्सा - 1. निदान परिवर्जन ।
2. पथ्य सेवन ।

विहार चिकित्सा - व्यायाम का क्रमशः अभ्यास (व्यवाय का अभ्यास) । निद्रा त्याग/जागरण अभ्यास शय्या-आसन सुख त्याग ।

मनोचिकित्सा - चिन्तनाभ्यास ।

3. औषध चिकित्सा - मेदहर या स्थौल्य नाशक कल्प प्रयोग । गुडूचि, त्रिफला, आँवला, त्रिकटु, विड़ङ्ग आदि प्रयोग । शिलाजीत, गूगल, लोह प्रयोग ।

4. उत्पन्न रोगों में तदानुसार यथा -
1. शोफघ्न-पुनर्नवा मेदोजौष्ठ-गलगण्डोक्त ।
2. ग्रंथि-आयुर्वेदोक्त चिकित्सा कांचनारगूगल ।
3. प्रमेहघ्न, मधुमेह एवं प्रमेह पिडिकाहर-शिलाजीत ।
4. आवृत्त वातघ्न प्रयोग - गूगल प्रयोग ।
5. स्वेद एवं दुर्गन्धहर उपचार - उशीरादि ।

5. वायु एवं अग्नि अवृत्तता की चिकित्सा में गूगल, शिलाजीत, एरण्ड आदि का आवश्यकता अनुसार प्रयोग उपयोगी कहा गया है ।

6. उत्पन्न उप्रदवों में लक्षणानुसारी रोग प्रति कारक चिकित्सा की जाती है ।

7. ग्रंथि-अर्बुदादि में शमन/यापन या शस्त्रकर्म उपयोग में लिया जाता है ।

संदर्भ/आधार :-

1. **मेदो वहानां स्रोतसां वृक्कौमूलं वपाहवनं च ।**

(च.वि. 5/9)

मेदोवहेद्वे तयोर्मूलं कटि वृक्कौ च ।

(सु.शा. 9/-)

वृक्कौ पुष्टिकरौ ज्ञेयौ जठरस्थस्य मेदसः ।

(शार्ङ्गधर)

रक्तमेदः प्रसादाद् वृक्कौ । मांसासृक्कफमेदः प्रसादात् वृष्णौ ।

(सु.शा. 4/37)

x x कोष्ठाङ्गानि x x वपावहनं चेति । (च.शा. 7/12)

वपावहनं, वया उदरस्थ स्निग्ध वर्तिकायामाहुर्जनाः तैल वर्तिका इति । (च.नि. 5/6 पर चक्र)

वपावहन च जयदेव Fatty fascia (च.वि. 5/9) **तथा पैक्रियाज का ग्रहण किया है । तृतीया मेदोधरा, मेदोहि सर्वभूतानामुदरस्थ- मण्वस्थिषु च, महत्सु च मज्जा भवति । स्थूलास्थिषु विशेषेण मज्जा त्वम्यन्तराश्रितः अथेतरेषु सर्वेषुः सस्क्तं मेद उच्यते शुद्धमांसस्य यः स्नेहः सा वसा परिकीर्तिता ।**

(सु.शा. 4/12-13)

मेदोनाम सान्द्रसर्पितुल्यः स्नेहधातुः शरीरस्य, वसा तु मांसान्तरानुप्रविष्टः स्नेहः मज्जा-अस्थिमध्यगतः स्नेहः - स द्विविधो पीतो रक्तश्च । (गणनाथसेन)

2. **अव्यायाम द्विवास्वप्नन्मेद्यानां चाति भक्षणाम् * मेदोवहानि दुष्यन्ति वारूण्याश्चातिसेवनम् ।**

(च.नि. 5/21)

*** मद्यानां चाति सेवनम् (पाठान्तरम्)**

(च.सू. 21/3)

तत्रश्लेष्मलाहारः सेविनोऽध्यशनशीलस्या व्यायामिनो दिवास्वप्नरतस्य XX)

(सु.सू. 15/32)

अव्यायाम दिवास्वप्नश्लेष्मलाहार सेविनः मधुरोऽन्नरसः प्रायः स्नेहान्मेदः प्रवर्धयेत् ।

(मा.नि. 34/1, यो.र.)

सम्पूरणाद् गुरूमधुरशीतस्निग्धोपयोगाद् अव्यायामाद व्यवाया द्विवास्वप्नार्द्धनित्यत्वादचित्तनाद् बीजस्वभावाच्चोपजायते ।

(च.सू. 21/3)

3. च.सू. 21/3-4
सु.सू. 15/32
मा.नि. 34/2-9

4. **अतिप्रवृत्तिः संङ्गो वा सिराणां ग्रंथयोऽपिवा विमार्गगमनं वापि स्रोतसां दुष्टि लक्षणम् ।** (च.वि. 5/29)

तत्रविद्धस्य स्वेदागमनम् च तालुशोषः स्निग्धांगता स्थूलशोफता । (सु.शा. 9/-)

यान्येव हि धातुनां प्रदोषविज्ञानानि तान्येव याथास्यं घातु स्रोतसाम् । (च.वि. 28/14)

मेद संश्रयास्तु प्रवक्ष्यहे । निन्दितानां प्रमेहाणां पूर्वरूपाणि यानि च । (च.सू. 5/9)

अतिस्थूलस्य तावदायुषो ह्रासो जवापरोधः कृच्छ्र व्यवायता दौर्बल्यं दौर्गन्ध्य स्वेदाबाधः क्षुदातिमात्रं पिपासातियोगश्चेति भवन्त्यष्टौ दोषाः ।

(च.सू. 21/3)

xx जटिलीभावं केशेषु, माधुर्यमास्ये, करपादघोः सुप्ततां दाहं, मुख तालुकण्ठशोषं, पिपासाम्; आलस्यं, मलं च काये, कायच्छिद्रेषुपदेहं, परिदाहं सुप्ततां चांगेषु षटपदपिपीलिकाभिश्च शरीर मूत्राभिसरणं मूत्रे मूत्रदोषान्, विसुं शरीरगंध निद्रां, तंद्रा च सर्वकालमिति

(च.नि. 4/3

हस्तपादतलदाहः, स्निग्धपिच्छिल गुरूता गात्राणां मधुरशुक्लमूत्रता, तन्द्रासादः पिपासा दुर्गन्धश्च श्वा तालुगलजिह्वादन्तेषु मलोत्पत्तिर्जटिलीभावः केशानां वृद्धि नाखानम् ।

(सु.नि. 6/53

च.सू. 21/6-9, सु.सू. 15/32

मा.नि. 34/6-8, यो.र. मेदो

5. अष्टौनिदितसंख्याते मेदोजानां चिकित्सितम् ।

च.सू. 21/20-29, च.सू. 28/25, सु.सू. 15/-

स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना, आंखों, हाथों, पैरों के तलुओं की जलन, भूख न लगना तथा ऋतु धर्म के समय होने वाली तकलीफ व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है ।

आयुर्वेदीय चिकित्सा का वैशिष्ट्य

आचार्य राजकुमार जैन

आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है । जीवन के प्रत्येक क्षण की स्थिति आयुर्वेदीय सिद्धान्तों में निहित है । सम्पूर्ण मानव जीवन में आयुर्वेद की व्यापकता है, अतः वह उससे भिन्न नहीं है । सामान्यतः मनुष्य जीवन की आद्यान्त प्रतिक्षण चलने वाली श्रृंखला ही आयु है, उस आयु का ज्ञान ही आयुर्वेद है, अतः आयुर्वेद एक सम्पूर्ण जीवन विज्ञान है ।

संसार में अनेक प्रकार की जीवनोपार्जन वृत्तियां प्रचलित हैं । बुद्धिजीवी मनुष्य उनमें से किसी एक को अपनी अभिरूचि एवं योग्यता के अनुसार चुनता है और उसी के सहारे अपना जीवन यापन करता है । जीवकोपार्जन की साधनभूत ये वृत्तियां प्रचलित हैं । बुद्धिजीवी मनुष्य उनमें से किसी एक को अपनी अभिरूचि एवं योग्यता के अनुसार चुनता है और उसी के सहारे अपना जीवन यापन करता है । जीवकोपार्जन की साधनभूत ये वृत्तियां विविध प्रकार की होती हैं जिनमें जीवन की यथार्थता एवं पूर्णता निहित रहती है । कुछ वृत्तियां जीवन की वास्तविकता से रहित आडम्बर पूर्ण, दिखावटी अथवा छल-कपट से युक्त होती हैं - जो केवल येन केन प्रकारेण धनोपार्जन करने का साधन मात्र होतीं हैं । कुछ वृत्तियां उभयविध होती है, जिनमें जीवन की वास्तविकता जो निहित रहती है, साथ में वित्तीय उपलब्धि भी यथोचित रूप से होती है । वस्तुतः जीवन यापन की वृत्ति ही मनुष्य के लिए पारलौकिक उत्कृष्टता अथवा निकृष्टता की निर्मात्री होती है । यदि मनुष्य की वृत्ति सात्विक, परिग्रह परिणाम युक्त, आडम्बर रहित एवं अकृत्रिम होती है तो निश्चय ही उसका इहलौकिक जीवन तो सुखी, शान्त, निर्द्वन्द एवं अकृत्रिम होता है, साथ ही पारलौकिक जीवन के सुख, सम्पन्नता एवं समृद्धि की नींव सुदृढ़ हो जाती है । अतः प्राणियों के इहलौकिक एवं पारलौकिक उभयत्र जीवन को उनके वर्तमान की समस्त प्रकार की वृत्तियां प्रभावित करती हैं । यह भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त है ।

चिकित्सा कर्म भी मानव जीवन की एक असाधारण वृत्ति है जिसे जन सामान्य नहीं अपना सकता । इसकी असाधारण इसलिए है कि संसार में इससे अधिक श्रेष्ठ और मुख्यतम कोई अन्य वृत्ति नहीं है । इसमें जीवन की पूर्णता, पवित्रता, सदमनोवृत्ति एवं सदृढ़ अनुष्ठान आदि निहित है । यह वृत्ति प्राणियों के आधि दैविक, आधिभौतिक एवं आध्यात्मिकोत्रिविध दुःखों का नाश करने का अमोघ साधन है । त्रिविध दुःखों की आध्यात्मिक निवृत्ति के लिए ही महर्षियों, आचार्यों एवं विद्वज्जनों ने इसे अंगीकार किया । इसीलिए उन्होंने अपने उपदेशात्मक वचनों में इस तथ्य का स्पष्टतः प्रतिपादन किया है -

"चिकित्सातात् पुण्यतमं न किंचित् ।" यह सत्य केवल कल्पना अथवा अनुमान पर आधारित नहीं है, अपितु यथार्थ है । आप्त पुरुष जो सर्वज्ञ होते हैं, तीनों कालों की सम्पूर्ण वस्तुओं का प्रत्यक्ष जिन्हें एक ही समय में होने की क्षमता है, जिनका ज्ञान सम्पूर्ण एवं अव्याहत है" उन्होंने अपने ज्ञान चक्षुओं के द्वारा इस तथ्य का प्रत्यक्ष अवलोकन किया कि निष्काम भाव से चिकित्सा कार्य में लगा हुआ मनुष्य निश्चित रूप से सद्गति को प्राप्त करता है । इसलिए इस कर्म को मुख्यतम माना गया है ।

प्राचीन काल में केवल एक ही चिकित्सा पद्धति प्रचलित थी । समस्त जन समुदाय की उसमें निष्ठा एवं भक्ति थी । उसे पूर्ण राज सम्मान एवं राजाश्रय भी प्राप्त था । अपनी अभूतपूर्व सफलताओं एवं अलौकिक कर्म फलों के द्वारा वह जनता-जनार्दन द्वारा पूज्य एवं पवित्र माना जाती थी । वह थी एकमात्र आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति । प्राचीन काल में आयुर्वेद को जो गौरव और सम्मान प्राप्ति था उसका सम्पूर्ण श्रेय प्राचीन काल के उन चिकित्सकों को है जिन्होंने अपनी निष्काम मनोवृत्ति एवं प्राणी मात्र के प्रति कल्याण व सेवा की भावना से प्रेरित होकर उसे अपनाया । वस्तुतः उन्हीं के कारण आयुर्वेद समृद्ध एवं

उन्नत हुआ । उस समय आयुर्वेद चिकित्सक जब किसी रोगी की चिकित्सा करने में तत्पर होते थे तो उनका एक ही उद्देश्य रहता था - ''नात्मार्थ नापि कामार्थमद्य भूतदयां प्रति ।'' इतने महान उद्देश्य को लेकर जो चिकित्सक अपना कर्म करता है, निश्चय ही वह पुण्य का अर्जन करता है और इस आधार पर निश्चय ही वह सद्गति का अधिकारी है ।

प्रत्येक दृष्टि से आयुर्वेद की उपयोगिता सुविदित है । आयुर्वेद में प्रतिपादित सिद्धान्त इतने सामान्य, व्यापक, जनोपयोगी एवं सर्व साधारण के लिए हितकारी है कि सरलता पूर्वक उन्हें अमल में लाकर यथाशीघ्र आरोग्य लाभ किया जा सकता है । आयुर्वेद केवल चिकित्सा शास्त्र नहीं है, अपितु यह शरीर शास्त्र, मानव, विज्ञान, मनोविज्ञान, और तत्व विज्ञान आदि से सम्बन्धित एक ऐसा शास्त्र है जिसमें आरोग्य मूलक सिद्धान्तों की प्रतिष्ठापना की गई है । आयुर्वेद शास्त्र केवल भौतिक विषयों तक ही सीमित नहीं है, अपितु आध्यात्मिक विषयों के विवेचन में भी अपनी मौलिक विशेषता रखता है । इसका मुख्य कारण यह है कि भारतीय संस्कृति के आद्यस्रोत वेद तथा उपनिषद में आयुर्वेद के बीज विद्यमान हैं जो कालान्तर में प्रसार को प्राप्त हुए । इसके अतिरिक्त समकालीन होने के कारण दर्शन शास्त्र ने भी आयुर्वेद का अध्यात्म सम्बन्धी कतिपय सिद्धान्तों को प्रभावित किया है । यही कारण है कि आयुर्वेद का अध्यात्म पक्ष भी उतना ही सबल एवं परिपुष्ट है जितना कि उसका भौतिक तत्व विश्लेषण सम्बन्धी पक्ष है । इस शास्त्र में मनुष्य की शारीरिक स्थिति के साथ-साथ उसकी मानसिक एवं आध्यात्मिक स्थिति के विषय में भी पर्याप्त गम्भीर चिन्तन किया गया है । शरीर के साथ-साथ प्राण तत्व और उसके प्रगतिशील विकास क्रम को भी आयुर्वेद में यथोचित महत्व दिया गया है । मनोविज्ञान के व्यापक विश्लेषणात्म पक्ष से भी यह शास्त्र अछूता नहीं है ।

आयुर्वेदीय काय चिकित्सा की दृष्टि में चरक संहिता का महत्व एवं उपयोगिता निर्विवाद तथा संदिग्ध है । महर्षि चरक ने चिकित्सा के जो सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं उनकी उपयोगिता प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे सार्वभौम और शाश्वत हैं । उनका महत्व केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही नहीं है, अपितु प्रायोगिक दृष्टि से भी वे सर्वथा उपयोगी और सार्थक पाए गए हैं । रोगियों पर उनके प्रयोग एवं परीक्षण के सर्वथा अनुकूल परिणाम दृष्टिगोचर हुए हैं । अनेक रोगियों में तो वे इतने सफल पाए गए हैं कि आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा जाता । वर्तमान समय की आधुनिक व्याधियों में आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्तों की प्रायोगिता भी अनुकूल परिणाम कारक सिद्ध हुई है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि उनका प्रयोगात्मक भी अनुकूल परिणाम कितने सही रूप में किया जाता है क्योंकि व्याधि में जब तक दोषों की वास्तविक स्थिति, सम्प्राप्ति निर्माण का वास्तविक ज्ञान, दोष-दूष्य सम्मूर्च्छना का वास्तविक अध्ययन और स्रोतोऽनुसार व्याधि की उत्पत्ति का विवेक सम्मत निर्णय न हो तब तक आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्तों की उपयोगिता, फलवत्ता और सार्थकता केवल कल्पना तक ही सीमित रह जायगी ।

अतः कोई भी व्याधि हो, चाहे वह आयुर्वेद शास्त्र में उल्लिखित हो या आधुनिक सभ्यता या आधुनिक वातावरण की देन हो उसकी सफल चिकित्सा तब ही सम्भव है जब उपर्युक्त तथ्यों पर व्याधि की विवेक पूर्ण समीक्षा सिद्धान्तानुसार की गई हो । इस दृष्टि से आयुर्वेदीय काय चिकित्सा के सिद्धान्तों की व्यापकता और प्रामाणिकता में संदेह के लिए कोई गुंजाइश नहीं रह जाती है ।

काय चिकित्सा के सम्बन्ध में महर्षि चरक का दृष्टिकोण बड़ा ही अर्थ पूर्ण और सारगर्भित है । इस संदर्भ में उन्होंने ''काय'' शब्द से उसका सामान्य अर्थ शरीर या देह ग्रहण करते हुए उसका विशिष्टार्थ 'जाठराग्नि' ग्रहण किया है और उसकी ही चिकित्सा का प्रतिपादन किया है । आयुर्वेद शास्त्र का यह एक सर्वमान्य सिद्धान्त है कि मानव शरीर में अधिकांश व्याधियों का उद्भव अग्नि की विकृति

के परिणाम स्वरूप होता है । अतः प्रथम उसकी ही चिकित्सा करना चाहिये । आचार्य चक्रपाणि ने इसे बहुत ही स्पष्टतः से प्रतिपादित किया है -

''कायस्यान्तरगनेश्चिकित्सा कायचिकित्सा ।''

''काय'' शब्द सामान्यतः सम्पूर्ण शरीर का द्योतक है । अतः काय चिकित्सा का अर्थ सम्पूर्ण शरीरगत व्याधियों की चिकित्सा भी अभिप्रेत है ।

चिकित्सा का सामान्य अर्थ रोग निवृत्ति जनक व्यापार है । अर्थात् जिस व्यापार से रोग उत्पन्न न हो या जिस व्यापार से उत्पन्न हुए रोग का शमन या निर्हरण हो जाय उसे चिकित्सा कहते हैं । यद्यपि चिकित्सा का व्यापक एवं रूढ़ अर्थ है, किन्तु महर्षि चरक ने बड़ी सूक्ष्मता से चिकित्सा की विवेचना की है । उन्होंने केवल रोग शमन या व्याधि निर्हरण को ही चिकित्सा नहीं माना है, अपितु और अधिक गहराई में जाकर व्याधि के मूल के विनाश और तज्जनित परिणाम में साधन भूत क्रिया को चिकित्सा स्वीकार किया है -

उन्होंने कहा है -

चतुर्णां भिषगादीनां शस्तानां धातुवैकृते ।
प्रवृत्तिर्धातुसाम्यार्था चिकित्सेत्यभिधीयते ।।

यहां पर स्पष्टतः उन्होंने संकेत किया है कि धातुओं (दोष-धातु-मल) की विकृति से ही रोगोद्भव होता है । अतः विषम धातुओं को साम्य अवस्था में लाने के लिए भिषगादि चतुष्पाद की जो प्रवृत्ति होती है वह चिकित्सा कहलाती है । स्पष्ट है कि धातु साम्य हेतु प्रयत्न करना मुख्य उद्देश्य हैं, इससे रोगापनयन स्वतः ही हो जाता है । महर्षि चरक ने आगे जाकर पुनः इसी बात की पुष्टि की है -

याभिः क्रियार्भिजायन्ते शरीरे धातवः समाः ।
सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तद्भिषजां मतम् ।।

जो भी क्रिया शरीर में विषम धातुओं को समावस्था में लाती है वहीं रोगों की चिकित्सा कहलाती है । धातु शब्द से यहां दोष-धातु-मल तीनों ही अभिप्रेत हैं । अतः प्रयत्न तीनों की समावस्था के लिए किया जाना चाहिये, न कि केवल धातुओं की साम्यावस्था के लिए । यहां यह विचारणीय है कि धातुसाम्य और रोगपनयन दोनों एक ही हैं या दोनों में भिन्नता है । सूक्ष्मता से जब इस पर विचार किया जाता है तो ज्ञात होता है कि दोनों पृथक-पृथक दो भिन्न स्थितियाँ हैं । विषम दोष-धातु-मलों की साम्यावस्था होना एक स्थिति है और उससे रोग का विनाश होना दूसरी स्थिति है जो उसके परिणामस्वरूप होती है । यहां यह स्पष्टतः समझ लेना चाहिये कि केवल रोग निर्हरण हेतु किया गया प्रयत्न सफल नहीं होता है क्योंकि उसमें विषम धातुओं की स्थिति का ज्ञान चिकित्सक को नहीं होता, वह केवल लक्षणों के आधार पर रोग की चिकित्सा करना चाहता है । ऐसी स्थिति में औषधोपचार के द्वारा व्याधि के उन लक्षणों का शमन तो हो जाता है जो बाह्य रूप से दृष्टिगोचर होते हैं, किन्तु व्याधि का समूल नाश नहीं होता । यही कारण है कि अनेक मामलों में कालान्तर में पुनः उन्हीं लक्षणों या व्याधि का उद्भव हो जाता है । इसलिए महर्षि चरक को मात्र रोगापनयन अभीष्ट नहीं रहा और उन्होंने धातुसाम्यार्थ किए गए उपाय को ''चिकित्सा'' कहा । अन्य स्थलों पर भी उन्होंने धातुसाम्य के लिए ही जोर दिया है । यथा ''तत्रइमे भिषगुणा यैरूपन्नो भिषग्धातुसाम्याभिनिर्वतने समर्थों भवति ।'' यहां पर यद्यपि, प्रसंग भिषग्गुणों का है, किन्तु ''धातुसाम्याभिनिर्वतन'' का उल्लेख करते हुए उन्होंने भिषक् के मुख्य कर्म ''चिकित्सा'' का भी संकेत कर दिया है ।

धातुसाम्यार्थ जो प्रवृत्ति या उपाय किया जाता है वह दो प्रकार का होता है - संशमन रूप और संशोधन रूप । शरीर में कुपित हुए दोषों का शमन करना या वृद्धिगत धातु और मलों का क्षय कर साम्यावस्था में लाना संशमन कहलाता है । औषध या भेषज प्रयोग के द्वारा प्रकुपित दोष-धातु-मल को शान्त करना संशमन होता है । इससे

व्याधि का शमन हो जाता है और रोगी स्वस्थता का अनुभव करता है । किन्तु इसमें सर्वत्र व्याधि का समूल नाश नहीं होता और उसका मूल शरीर में बना रहता है । जब वह अपने अनुकूल थोड़े कारणों को भी प्राप्त करता है तो वह पुनः कुपित होकर व्याधि का पुनरूद्भव कर देता है । जहां दोष प्रकोप अल्प प्रमाण में होता है वहां संशमन के द्वारा ही व्याधि का समूल नाश देखा गया है ।

संशोधन के द्वारा शरीर में कुपित दोषों को शरीर से बाहर निकाल दिया जाता है इससे दोष का किंचित् अंश भी शरीर में नहीं रह जाता है और व्याधि का समूल नाश हो जाता है । अत: किसी भी अवस्था में वह दोष शरीर में पुन: रोग उत्पन्न करने में समर्थ नहीं हो पाता है । महर्षि चरक ने स्वयं इसकी पुष्टि में कहा है -

दोषा: कदाचिद् कुप्यन्ति जिता लंघनाचनै: ।
जिता: संशोधनैर्ये तु न तेषां पुनरूद्भव: ।।

- चरक संहिता, सूत्रस्थान, 16/20

लंघन और पाचन से जिन दोषों का शमन किया गया है वे अनुकूल अवसर प्राप्त कर पुनः प्रकुपित हो जाते हैं, किन्तु संशोधन के द्वारा जिन दोषों का नाश किया जाता है उनका पुनरूद्भव या पुनः प्रकोप नहीं हो पाता है ।

इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए तथा उपमा पूर्वक समझाते हुए आगे उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार किसी वृक्ष को ऊपर से तो काट दिया जाय किन्तु उसका मूलोच्छेद नहीं किया जाय तो अनुकूल वर्षा-बसन्त आदि ऋतु को प्राप्त कर वह पुनः पत्ते पुष्प आदि से युक्त हो जाता है, आने उसका पुनरूद्भव हो जाता है । उसी प्रकार लंघन-पाचन आदि के द्वारा दोषों का शमन तो हो जाता है, किन्तु सर्वांशत: उसका नाश नहीं होता । कालान्तर में देश-काल आदि की अनुकूलता और अपथ्य सेवन आदि अनुकूल कारणों को प्राप्त कर पुन: वह व्याधि उत्पन्न करने में समर्थ हो जाता है । वृक्ष का यदि समूलोच्छेद कर दिया जाता है तो उसका पुनरूद्भव सम्भव नहीं है । उसी प्रकार संशोधन द्वारा दोषों का सर्वांशत: बहि: नि:सरण हो जाने पुन: रोगोद्भव की आशंका निर्मूल हो जाती है । संशो का फल बतलाते हुए महर्षि ने कहा है -

एवं विशुद्ध कोष्ठस्य कायाग्निरभिवर्धते ।
व्याधयश्चोपशाम्यन्ति प्रकृतिश्चानुवर्तते ॥
इन्द्रियाणि मनोबुद्धिर्वर्णश्चास्य प्रसीदति ।
बलं पुष्टिरप्रत्यं च वृषता चास्य जायते ॥
जरा कृच्छ्रैण लभते चिरं जीवत्यानामय: ।
तस्मात् संशोधनं काले युक्तियुक्तं पिबेन्नर: ॥

इससे इस बात का आभास सहज ही मिलता है कि चरक ने जिस चिकित्सा सिद्धान्त का उल्लेख किया है उसका क्षेत्र और फल अत्यन्त व्यापक है । वह मात्र व्या का शमन या व्याधि विनाश तक ही सीमित नहीं है । संशोधन कर्म या संशोधन चिकित्सा के द्वारा जब को शुद्धि होती है तो सर्वप्रथम उससे जठराग्नि प्रभावित हो है । उसकी अभिवृद्धि होती है और वह अपनी प्रकृ आवस्था को प्राप्त करती है । इससे विकृति का विना होता है और मनुष्य की प्रकृति अनुकूलता को प्राप्त कर है । इस संदर्भ में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि संशोधन का प्रभाव मात्र शारीरिक व्याधि नाश तक ही न होता है अपितु इससे इन्द्रियां, मन बुद्धि और वर्ण भी प्रभावित होते हैं । शरीर गत इन भावों में स्वस्थता और प्रसन्नता का अनुभव होता है । रोगी के बल की वृद्धि हो है, पुष्टि होती है और सन्तान प्राप्ति हेतु सामर्थ्य एवं वृ होती है । विशुद्ध कोष्ठ वाले व्यक्ति को वृद्धावस्था देर प्राप्त होती है और वह चिरकाल तक रोग रहित हो जीवन यापन करता है ।

संशोधन कर्म केवल चिकित्सा नहीं है, अपि चिकित्सा सिद्धान्त है जिसकी व्यापकता सभी व्याधि और सभी रोगियों तक है । चरकोक्त चिकित्सा की विशेषता है कि अधिकांशत: उसमें ऐसे सिद्धान्तों प्रतिपादन किया गया है जो किसी सीमा में नहीं है

व्यापकता लिए हुए हैं । एक विशेषता यह भी है कि वे सार्वभौम हैं । चरक के काल में उनकी जितनी उपयोगिता और महत्व था वह आज भी है । उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है । परिवर्तन हुआ है केवल हमारी निष्ठा में । आज कितने वैद्य ऐसे हैं जो संशोधन कर्म का विधिपूर्वक आश्रय लेकर रोगियों की चिकित्सा करते हैं, ऐसी स्थिति में यदि वैद्यों को असफलता मिलती है और आयुर्वेद के प्रति रोगियों और स्वयं आयुर्वेद के स्नातकों का विश्वास डगमगाता है तो इसमें दोष किसका है – स्वयं वैद्यों का या आयुर्वेद का ? यह आप ही सोचें । वस्तुत: चिकित्सा सिद्धान्तों में कोई दोष नहीं है । वे तो यथावत् है और रहेंगे ।

चरकीय चिकित्सा के संदर्भ में शरीर में स्थित स्रोतों की स्थिति का आकलन विशेष महत्वपूर्ण है क्योंकि शरीर में जब कोई भी रोग उत्पन्न होता है तो उसके शरीरगत स्रोतस् की विकृति अवश्यंभावी है । स्रोतो विकृति हुए बिना रोगोत्पत्ति संभव नहीं है । अत: रोगापहरण के लिए स्रोत: शुद्धि या स्रोतोगत विकृति का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है । स्रोतस् में विकृति उत्पन्न करने वाले दोष ही होते हैं क्योंकि प्रकुपित हुए दोष ही स्रोतों के द्वारा शरीर में परिभ्रमित होते हैं और किसी स्थान विशेष में स्थान संश्रय करके रोगोत्पत्ति कर देते हैं । जैसा कि चरक ने स्वयं कहा है -

क्षिप्यमाण: खवैगुण्याद्रस: सज्जति यत्र स: ।
करोति विकृतिं तत्र खे वर्षमिव तोयद: ।।

यहां ख वैगुण्य से स्रोतो विकृति ही अभिप्रेत है । स्रोतो विकृति के कारण जहां भ्रमणशील दोषों का अवरोध हो जाता है वहीं व्याधि की उत्पत्ति हो जाती है । अत: रोग उत्पन्न करने में स्रोतो विकृति की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है । इसीलिए चरक ने चिकित्सा के समय स्रोतों की स्थिति को भी ध्यान में रखा है । संशोधन के द्वारा जब दोषों का निर्हरण होता है तो स्रोतों में व्याप्त दोष भी शरीर के बाहर निकल जाते हैं, जिससे स्रोतोगत विकृति या अवरोध या वैगुण्य स्वत: ही दूर हो जाता है और स्रोत शुद्ध हो जाते हैं । स्रोत: शुद्धि होने पर स्रोतों में प्राकृत भावों का अभिवहन सामान्य रूप से होने लगता है जो शारीरिक स्वस्थता का ज्ञापक है ।

रोगों की उत्पत्ति और चिकित्सा में स्रोतों का विचार जितनी सूक्ष्मता से महर्षि चरक ने किया है उतना किसी अन्य ने नहीं किया । यह एक महत्वपूर्ण तथ्य है कि स्रोतस् सिद्धान्त का विवेचन पूर्ण प्रतिपादन केवल चरक संहिता में ही उपलब्ध होता है, अन्य ग्रंथों में नहीं । आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस विषय में पूर्णत: मौन है क्योंकि उनके सूक्ष्म दर्शक यंत्रों की परिधि में अभी तक ये नहीं आ पाए हैं । चाहे कुछ भी हो, चिकित्सा में स्रोतो विकार विचार भी उतना ही आवश्यक और महत्वपूर्ण है जितना दोष-धातु-मल का विचार । यद्यपि यह एक अलग विचार का विषय हो सकता है कि शरीर में स्रोतों की क्या और कैसी स्थिति है ? स्रोत क्या है ? और उनका क्या महत्व है ? किन्तु चिकित्सा के संदर्भ में भिन्न-भिन्न रोगों में उनकी विकृति का ज्ञान पर्याप्त रूप से अपेक्षित है । रोग की चिकित्सा के लिए जिस किसी भी औषध या भैषज का प्रयोग किया जाता है वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्रोतों को भी प्रभावित करती है । जैसा कि ज्वर प्रकरण में तिक्त रस से श्रुत किए हुए जल के प्रयोग के विषय में चरक ने कहा है - "स्रोतसां शोधनं बल्यं रूचिस्वेदकरं शिवम्" । यहां श्रुत जल को स्रोतों का शोधन करने वाला तो बतलाया ही है, स्वेदकारक भी बतलाया है अर्थात् स्वेदवह स्रोतों को शुंद्ध कर वह स्वेद को प्रस्रवित करता है । इसी प्रकार अन्य द्रव्य भी अन्य स्रोतों और उनकी क्रियाओं को प्रभावित कर व्याधि के निर्हरण में उपयोगी होते हैं ।

चिकित्सा के उपर्युक्त दो सिद्धान्तों-संशोधन और संशमन को चरक ने धातुसाम्यार्थ प्रवृत्ति या उपाय के अन्तर्गत लिया है । दोषों के निर्हरण के लिए मुख्यत: संशोधन का ही निर्देश किया है, किन्तु जो रोगी संशोधन के

योग्य न हो उनका संशमन द्वारा उपचार करना चाहिये । संशमन चिकित्सा निर्बल और हीन दोष वाले रोगियों के लिए उपयोगी बतलाई गई है । इस प्रकार "धातु साम्यार्थ प्रवृत्तिं" चिकित्सा का एक मूलतत्व हुआ । दूसरा मूल तत्व है निदान परिवर्जन । संशोधन या संशमन क्रिया के साथ निदान परिवर्जन भी आवश्यक है । अर्थात् व्याधि को उत्पन्न करने वाले कारणों का परिहार करना । यदि निदान परिवर्जन नहीं किया जाता है तो सारी क्रिया या चिकित्सा निष्फल हो जाती है । निदान परिवर्जन के अन्तर्गत वह सम्पूर्ण आहार-विहार समाविष्ट है जिसका सेवन करने से दोषों का प्रकोप और व्याधि की उत्पत्ति होती है । ऐसे आहार-विहार के सेवन से विरत होना या उसका पूर्णतः परित्याग करना निदान परिवर्जन कहलाता है ।

एक स्थान पर आचार्य ने कृमियों के प्रसंग में कहा है कि सर्वप्रथम उनका अपकर्षण करना चाहिये, तत्पश्चात् प्रकृति विघात और उसके बाद निदानोक्त भावों का अनुपसेवन यथा - "तत्र सर्वकृमीणामपकर्षणमेवादितः कार्यं, ततः प्रकृतिविघातः अनन्तरं निदानोक्त-भावनामनुपसेवनम् ।" चरक संहिता, विमान स्थान, 7/14

यह कथन यद्यपि कृमियों के प्रसंग में है, किन्तु वास्तव में यह कथन मात्र कृमियों के लिए ही विशेष रूप से कहा गया हो-ऐसा नहीं है । यह एक सिद्धान्त कथन है जो सभी रोगों की चिकित्सा के लिए सामान्यतः उपयुक्त है । कृमि शब्द से यहां मात्र कृमि या जीवाणु का ग्रहण नहीं करना चाहिये, अपितु रोग के कारण भूत दोषों का ग्रहण करना ही अभीष्ट है । इसीलिए कहा गया है कि सर्वप्रथम अपकर्षण करना चाहिये । अर्थात् उन्हें बाहर निकालना चाहिये । तत्पश्चात् उनके प्रकृति विघात का निर्देश है, जिसके अनुसार कृमियों के प्रसंग में कृमियों की और अन्य रोगों के प्रसंग में दोषों की उत्पत्ति एवं वृद्धि करने वाले मूल कारणों का विघात याने विनाश करना चाहिये । यहां प्रकृति का विघात भी अभिप्रेत है । यहां अपकर्षण से संशोधन और प्रकृति विघात से संशमन चिकित्सा अभिप्रेत है । तीस निदान परिवर्जन पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है । कृमियों के प्रसंग में कही गई इस त्रिविध चिकित्सा क उपदेश रोग मात्र की चिकित्सा के लिए भी महर्षि चरक ने किया है । वे कहते हैं - "कृमियों को दृष्टि में रखक उपचार के जो तीन प्रभेद यहां बतलाए गए हैं, रोगमात्र के उपशमन हेतु चिकित्सा के भी ये ही तीन प्रभेद सम चाहिये । यथा -

> **अयमेव हि विकाराणां सर्वेषामपि निग्रहे ।**
> **विधिर्दृष्टस्त्रिधा योऽयं कृमीनुद्दिश्य कीर्तितः ॥**
> **संशोधनं संशमनं निदानस्य च वर्जनम् ।**
> **एतावद् भिषजा कार्यं रोगे-रोगे यथाविधि ॥**

- चरक संहिता-विमान स्थान, अ०-7

इससे स्पष्ट है कि महर्षि चरक ने किसी रोग की चिकित्सा के संदर्भ में यदि किसी सूत्र का निर्देश किया है तो वह उस रोग विशेष के लिए तो है ही, सामान्य रूप से सभी रोगों की चिकित्सा के लिए भी उसका अनुसर किया जाना चाहिये ।

चरकोक्त चिकित्सा की यह विशेषता है कि महर्षि चरक ने विभिन्न रोगों की चिकित्सा का जो निर्दे किया है उसमें उन्होंने चिकित्सा सूत्र को ही प्राधान्य और महत्व दिया है । बाद में सामान्य चिकित्सा का उल्लेख किया है । यहां यह स्पष्ट कर देना अत्यन्त आवश्यक है कि चिकित्सा सूत्र और सामान्य चिकित्सा में भारी अन्तर है । मुझे यह कहने में तो संकोच नहीं है कि वर्तमान युवा पीढ़ी के अनेक अध्यापकों और छात्रों को यह भी ज्ञान नहीं है कि चिकित्सा सूत्र और सामान्य चिकित्सा में क्या अन्तर है । वे दोनों में अभेद मानकर या दोनों को एक ही समझक अपने ज्ञान की गुरूता का ढिंढोरा पीटते हैं । यही कारण है कि उन्हें चिकित्सा के क्षेत्र में असफलता का सामना कर पड़ता है ।

यह स्पष्ट है कि चरक द्वारा कथित चिकि

सूत्रों में सामान्य चिकित्सा की अपेक्षा असामान्यता अवश्य है। चिकित्सा सूत्र के अन्तर्गत दिए गए निर्देशों का पालन यदि उचित रूप से किया जाता है तो रोग का विनाश अवश्यम्भावी है, क्योंकि वह सीधा रोग के मूल कारण दोषों का निर्हरण करता है । मूल कारणों का समूल विनाश होने से रोग का नाश तो होगा ही है रोग के पुनरूद्भव की आशंका भी निर्मूल हो जाती है । दूसरी बात यह है कि चिकित्सा सूत्र के अन्तर्गत सिद्धान्त कथन भी सन्निविष्ट रहता है, जिससे वह तत्सम अन्य रोगों पर भी लागू होता है । जैसे यदि किसी रोग के प्रसंग में आचार्य ने किसी चिकित्सा सूत्र का निर्देश किया है तो उससे उस व्याधि का नाश तो होना ही उन्हीं दोषों से समुत्पन्न अन्य व्याधियों पर भी उसका प्रयोग किया जाय तो अपेक्षित लाभ दिखाई देता है। उदाहरणार्थ ज्वर में चिकित्सा सूत्र के रूप में सर्वप्रथम लंघन का निर्देश ''ज्वरे लंघनवादौ'' इत्यादि के द्वारा किया गया है । लंघन का फल बतलाते हुए आगे कहा गया है-

लंघनेन क्षयं नीते दोषे संघुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वं लघुत्वं क्षुच्चेवास्योपजायते ॥

यहां बतलाया गया है कि लंघन के द्वारा आम दोष के क्षय होने पर और जठराग्नि के प्रदीप्त होने पर विज्वरत्व और लघुता आती है तथा उसे भूख लगने लगती है । यहां ''विज्वरत्व'' से केवल ज्वरमुक्तता ही अभीष्ट नहीं है, अपितु ''रोग मुक्तता'' ग्रहण करना चाहिये क्योंकि चरक ने ही निदान स्थान के अध्याय 7 सूत्र 3 में ''तत्र व्याधिरामयो गद आतंको यक्ष्मा ज्वरो विकारो रोग इत्यनर्थान्तरम्'' के द्वारा ज्वर को रोग का पर्यायवाची बतलाया है । अतः उपर्युक्त प्रसंग में ''विज्वरत्वं'' शब्द से रोगमुक्तता अर्थ यदि ग्रहण किया जाय तो वह अधिक व्यापक और सार्थक प्रतीत होता है । साथ ही सिद्धान्त के रूप में लंघन की सार्थकता प्रतिपादित होती है । इससे यह भी प्रतिपादित होता है कि ज्वर के अतिरिक्त अन्य रोगों में भी लंघन के द्वारा दोष का क्षय और जठराग्नि की प्रदीप्ति की जा सकती है जिससे रोग का नाश सम्भावित है । सामान्यतः श्लेष्मा और आम दोष प्रधान रोगों में लंघन की उपयोगिता सुविदित ही है । अतः चरक ने ज्वर के चिकित्सा सूत्र के रूप में लंघन को बतला कर उसकी उपयोगिता अन्य रोगों के लिए भी प्रतिपादित की है ।

इसी प्रकार प्रमेह के प्रकरण में संशोधन और संशमन द्विविध चिकित्सा का निर्देश करते हुए बतलाया गया है कि जिस प्रमेह के रोगी में दोष और बल की अधिकता हो उसे संशोधन देना चाहिये और जो प्रमेह का रोगी संशोधन के योग्य नहीं हो उसे संशमनी क्रिया करना अभीष्ट रहता है । यह चिकित्सा यद्यपि प्रमेह के रोगी के लिए बतलाई गई है, किन्तु अन्य रोगों में भी उतनी ही सफलता पूर्वक लागू होती है । अतः इसे केवल प्रमेह रोग तक सीमित नहीं रखा जा सकता क्योंकि संशोधन केवल उसी रोगी के लिए दिया जा सकता है जो उसके योग्य हो । जो रोगी संशोधनार्ह नहीं हो उसका उपचार संशमन के द्वारा ही करना चाहिये । अतः ''संशोधनं नार्हति यः प्रमेही तस्य क्रिया संशमनी प्रयोज्या'' यह चिकित्सा सूत्र मात्र प्रमेह रोगी के लिए ही उपयुक्त नहीं है और न ही केवल प्रमेह रोग के संदर्भ में इसे लिया जाना चाहिये, अपितु एक चिकित्सा सिद्धान्त के रूप में इस कथन की उपयोगिता को आंका जाना चाहिये ।

ज्वर रोग में चरक ने दस दिन के पश्चात् सर्पिष्पान का विधान बतलाया है । सर्पिष्पान उस स्थिति में अभीष्ट है जब कफ मन्द हो और वात-पित्त की प्रधानता हो । इसके लिए उन्होंने कारण और युक्ति देते हुए बतलाया कि -

रूक्षं हि तेजो ज्वरकरं तेजसा रूक्षितस्य च ।
यः स्यादनुबलो धातुः स्नेह बध्यः स चानिलः ॥

इस कथन के द्वारा चरक ने एक नवीन तथ्य को उद्घाटित किया है जो काफी महत्वपूर्ण है । कह नहीं सकता कि इस ओर कितने जिज्ञासु-शोधार्थियों का ध्यान

गया है । आयुर्वेद में प्राय: सर्वत्र ही पित्त के गुणों में "सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णं च द्रवमम्लं सरं कटु:" कहा गया है । यानि पित्त किंचित् स्नेह युक्त होता है । किन्तु चरक के उपर्युक्त कथन के अनुसार पित्त रूक्ष भी होता है और रूक्ष पित्त ज्वर कारक होता है । उस रूक्ष पित्त से जब ज्वर का रोगी रूक्ष शरीर युक्त हो जाता तो अनुबल धातु वायु भी रूक्षता के कारण प्रभाव-शाली हो जाता है । यहां तेज या पित्त की रूक्षता का कथन आचार्य ने यद्यपि प्रसंगवश ही किया है, किन्तु इससे पित्त के एक नवीन गुण की जानकारी मिलती है जो सैद्धान्तिक दृष्टि से अत्यधिक उपयोगी है ।

चरक ने प्राय: सभी रोगों के लिए चिकित्सा सूत्र का निर्देश किया है । चिकित्सा सूत्र के पश्चात् जो सामान्य चिकित्सा बतलाई गई है वह भी काफी उपयोगी और महत्वपूर्ण है । सामान्यत चिकित्सा में जो औषध योग कहे गये हैं उनका भी महत्व कम नहीं है । उन में से अनेक योग आज भी अनेक वैद्यों के व्यवहार में प्रचलित हैं । चरकोक्त पूर्णत: व्यवहारिक है, इसीलिए वह सद्य: फलप्रद है । किन्तु आज कितने आयुर्वेद के चिकित्सक ऐसे हैं जो चरकोक्त चिकित्सा का अनुसरण या चरकोक्त कुछ औषधों योगों का प्रयोग अपनी चिकित्सा में करते हैं । किन्तु आज की पीढ़ी का आयुर्वेद स्नातक जो केवल डाक्टर बनने के स्वप्न ही देखता है उससे यह आशा कैसे की जा सकती है कि वह अपने चिकित्सा व्यवहार में चरकोक्त चिकित्सा का अनुसरण करेगा । इसका भी एक कारण है, वह है अध्यापकों के संस्कारों का संक्रमण । अध्यापकों के संस्कार ही छात्र में संक्रमित होते हैं । अध्यापकों की मन: स्थिति का बहुत कुछ प्रभाव छात्रों पर पड़ता है । अत: अध्यापकों का यह कर्त्तव्य है कि वे छात्रों को आयुर्वेद के प्रति प्रेरित करें, उनमें जिज्ञासा उत्पन्न करें और उनकी जिज्ञासा का आयुर्वेदीय चिकित्सा सिद्धान्तों के आधार पर समाधान करें । यह निश्चित है कि हमारे देश और काल में कुछ भी परिवर्तन आ जाय चरकीय चिकित्सा सिद्धान्त उसी प्रकार अपरिवर्तनीय रहेंगे, जबकि आधुनिक चिकित्सा सिद्धान्तों में यह बात नहीं है । उनमें कुछ वर्ष बाद ही परिवर्तन हो जाता है ।

बैद्यनाथ
आँवला
केश तेल
आँवला
काले घने रेशमी बालों के लिए

आयुर्वेद में भस्मों की रूपरेखा एवं सिद्धान्त

डा० मायाराम उनियाल, सेवानिवृत्त निदेशक, आयुर्वेद

वैदिक काल से ही धातुओं–उपधातुओं आदि का उपयोग आभूषण, शस्त्रनिर्माण एवं औषधियों के रूप में होता रहा है । ऋग्वेद और यजुर्वेद में भी अयस् (लौह), अश्म (पत्थर), मृतिका, खनिज, हिरण्य (स्वर्ण), लौह, त्रपु (बंग), नाग (सीसा) आदि खनिजों का उल्लेख मिलता है) शतपथ ब्राह्मण में भी स्वर्ण, रजत, ताम्र, लौह–सीसा (नाग) आदि धातुओं का उल्लेख मिलता है । प्राचीन रससिद्धों के सन्दर्भ में स्थलों से स्पष्ट होता है कि भारतीयों को धातु-उपधातु आदि खनिजों का ज्ञान प्राचीन काल से ही था । आयुर्वेद विज्ञान के अन्तर्गत रस शास्त्र का अपना विशिष्ट महत्व है । भारतीय रस शास्त्र का चरमोत्कर्ष ईसा से पूर्व 400 वर्ष से लेकर 13 वीं शताब्दी तक माना जाता है । पुरातत्व वेत्ताओं ने भी मानवजीवन के विकास के ऐतिहासिक युग काल को प्राचीन पाषाणयुग, नवीन पाषाणयुग, ताम्रयुग, कांस्ययुग एवं लोहयुग आदि भागों में विभक्त किया है । सिन्धु घाटी की सभ्यता (ईसा से 4000 वर्ष पूर्व) अति प्राचीन प्रामाणिक चिन्ह सिन्धु नदी की उपत्यकाओं में प्राचीन काल से बसे हुए हरप्पा स्थानों से पुरातत्व विभाग द्वारा की गई खुदाई से प्राप्त सामग्री में धातुओं तथा खनिजों से निर्मित वस्तुएं प्राप्त हुई हैं । इससे ज्ञात होता है कि वहाँ के निवासियों को सुवर्ण, रजत, ताम्र, बंग, सीसा, कांस्य, लोह आदि धातुओं का ज्ञान था । इन धातुओं के अतिरिक्त पिरोजा, स्फटिक, गैरिक, अकीक संगेयशव, अभ्रक शुक्ति, शिलाजतु की भी इनको जानकारी थी ।

मानव रस सिद्धों द्वारा दिव्य शरीर बनाने वाली देहसिद्धि प्राप्त करने से पूर्व धातु सिद्धि लोहवेध की क्रिया प्राप्त किया करते थे जिससे वह ताम्र को स्वर्ण निर्माण कर संसार की आर्थिक दशा की सुधार करते थे । इस प्रकार का पारद द्वारा ताम्र से धातु वेध द्वारा बनाये गये स्वर्ण को रससिद्ध स्वर्ण कहा जाता था जो कि रस सिद्धों द्वारा किया जाता था । शीर्षक लेख में भस्मों की रूपरेखा एवं शास्त्रीय परीक्षा के संदर्भो की जानकारी देने का प्रयास किया जा रहा है । जैसा कि सर्व विदित है आयुर्वेदीय चिकित्सा में रसशास्त्र का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि शास्त्रीय विधि से निर्मित रसौषधि, एवं भस्मों का अल्पमात्र में प्रयोग आशुगुणकारी और शीघ्र आरोग्य को देने वाले होते हैं । वर्तमान प्ररिप्रेक्ष्य में धातुओं द्वारा निर्मित भस्मों के निर्माण विधि में शोध रिसर्च एवं प्रतिसंस्कार की आवश्यकता है । धातुओं की भस्म बनाने से पहले उनके सही नामरूपपरिचय (पहिचान) शुद्धता, शोधन, मारण एवं विभिन्न औषधियों के स्वरसों की भावना तथा पुटपाक (अग्निताप) आदि विधियों का निर्देश विशद रूप से दिया गया है जिसकी विस्तार रूप से जानकारी भस्म निर्माणकर्ता रस वैद्य को होनी चाहिए । धातुओं की भस्म बनाने से पहिले उनका शोधन करने का रस ग्रन्थों में विस्तृत विधान है । अभ्रक लोह, स्वर्णमाक्षिक आदि खनिज एवं धातुओं के कण्टकवेधी पत्र बनाकर उनको अग्नि में ताप देकर रक्तवर्ण के होने पर तिल तैल, तक्र (मट्ठा) खट्टी कांजी, कुलथी के क्वाथ गोमूत्र में 5-7 बार बुझाया जाता है, इस क्रिया को सामान्य शोधन कहते हैं । सामान्य शोधन के बाद प्रत्येक धातु को उसके लिए निर्दिष्ट विशेष द्रव पदार्थ में बुझाया जाता है । उसको विशेष शोधन विधि कहते हैं । शोधन क्रिया द्वारा सभी प्रकार के द्रव्यों का मल अर्थात् दोषों को दूर करने के लिए द्रव्यों के साथ स्वेदन, मर्दन, प्रक्षालन, गालन, आवाप, निर्वाप, भावना और भर्जन आदि संस्कारों द्वारा उनका दोष नष्ट होता है ।

धात्वादेर्बह्नितप्तस्य जलादो यन्निषेचनम् ।
मलविच्छित्तयेयत्तु शोधनं तदिहोच्यते ।।
(रसतरङ्गिणी)

इसके अतिरिक्त खनिजों के अन्दर जो अन्य पदार्थ मिश्रण हो तो उसको दूर करना तथा उसको मारण (भस्म बनाने) के लिए उपयुक्त बनाना जिससे उसकी शीघ्र और आसानी से भस्म बनाई जा सके, क्रिया को मारण कहते हैं । इस क्रिया में खनिजों के चूर्ण में मारण के लिए उपयुक्त वनौषधियों के स्वरस की भावना देकर गौमूत्र आदि खरल में मर्दन कर टिकिया बनाकर सुखाकर निर्दिष्ट गजपुट, महापुट, कुक्कुटपुट आदि में जब तक भस्म ठीक न बने तब तक पुट देना चाहिए । भावना में द्रव्यों स्वरस,

---

निदेशक (फार्म), महर्षि आयुर्वेद प्रॉडक्ट्स लि. नोयडा (उ.प्र.)

फाण्ट, क्वाथ, दुग्ध की मात्रा खनिजों के चूर्ण की मात्रा के अनुरूप देना चाहिए जितने में वह चूर्ण औषधि गीली होकर लुगदी जैसी हो जाय और उसका मर्दन ठीक रूप से हो सके । कम या ज्यादा द्रव (स्वरस आदि) डालने से चूर्ण का मर्दन नहीं हो सकेगा । भस्म बनाने का प्रयोजन धातुओं का रासायनिक अतिसूक्ष्म अणुओं में परिवर्तन करना जिससे उसका शरीर में परिपाक हो सके तथा रक्तादि धातुओं में मिल सकें । भस्में शरीर में परिपाक हो सके वे रक्तादि धातुओं में मिल सकें और उसके गुणों में वृद्धि हो क्योंकि प्रत्येक भस्म के पुटों के अनुसार अवस्था परिवर्तन एवं विशेष गुणवाले होते हैं । विभिन्न पुटों की अवस्था परिवर्तन के निर्णय के लिए भस्मों की गुणवत्ता की विधि का मानदण्ड निर्धारित करना अनिवार्य है । विभिन्न प्रकार की बनाई गई भस्मों की विश्लेषणात्मक, भौतिक व रासायनिक परीक्षण प्रयोग शालाओं के माध्यम से मानदंण्ड निर्धारित होना वर्तमान परिस्थितियों में अनिवार्य है । इसके पश्चात् प्राणी प्रयोगात्मक तथा कायचिकित्सा परीक्षण (क्लिनिकलट्रायल) कर औषध गुणधर्म का निर्णय करना अन्तिम कार्य अनुसंधान का माना जा सकता है । इस अनुसंधान कार्य के लिए औषध निर्माण शास्त्र में दीर्घकालीन विशिष्ट अनुभवी रसवैद्यों के एवं पाश्चात्य रसशास्त्र (केमिस्ट्री) के वैज्ञानिकों के परस्पर सहयोग से अनुसंधान की आवश्यकता है । भेषज संग्रह तथा भस्म निर्माण की एक प्रामाणिक सर्वसाधन-सम्पन्न संस्थान की विशेष आवश्यकता है तभी उत्तम गुणवत्ता एवं एकरूपता वाली रस भस्मों की आशा कर सकते हैं । आयुर्वेद का उत्थान-पतन औषध द्रव्यसंग्रह एवं औषध निर्माण के कार्य के ऊपर निर्भर है । अनुसंधान के द्वारा आयुर्वेदीय औषधियों के अधिकाधिक शक्तिशाली बनाकर विश्व में इसकी प्रतिष्ठा को प्रतिष्ठित कर सकते हैं ।

आयुर्वेद रसशास्त्र में भस्मों के शास्त्रीय परीक्षण (परीक्षा) के विषय में उनके लक्षण, भस्म, रेखापूर्ण, वारितर, अपुनर्भव, निरुत्थ, सूक्ष्म सल्क्षण, लघुता, निश्चन्द्र, स्वादरहित अम्ल-परीक्षा, निर्धूम आदि परीक्षण विधियों का उल्लेख किया गया है । इन परीक्षणों का वैज्ञानिक आधार पाश्चात्य विज्ञान के वैज्ञानिकों के परस्पर सहयोग मानदण्ड एवं मानकी करण स्थापित करने की आवश्यकता है । आयुर्वेदिक भस्म परीक्षा निम्न प्रकार है ।

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

1. रेखापरिपूर्ण :-

अभ्रक लोह आदि भस्मों को दाहिने हाथ अंगूठा और तर्जनी दोनों में चुटकी भर भस्म लेकर पर रेखाओं में प्रवेशकर जाय तो उस भस्म को रेखापू कहते हैं । रेखापूर्ण भस्म सूक्ष्मता का प्रतीक है ।

यथा - **अङ्गुष्ठ तर्जनी धृष्ठं तत्तद्रेखान्तरेभवेत्।**
मृत्तं लोहं तदुद्दीष्ठं रेखापूर्ण विधानतः।
(रसेन्द्र चूड़ामणि)

2. वारितर :-

खनिजों की भस्म जो पानी में तैरती रहे, उस भस्म को वारितर कहते हैं ।

यथा; **मृतं तरति तत्तोये लोहं वारितरं भवेत्॥**
(रसेन्द्र चू०)

3. अपुनर्भव :-

मित्रपञ्चक (गुड़ गुञ्जा, टंकण, मधु और घी) प्रत्येक एक-एक तोला की मात्रा में भस्म 5 तोला लेकर खरल में लेकर मर्दन कर मूषायंत्र में रखकर भस्म को द्रवणांक (मोल्टिंग प्वाईण्ट) के अनुसार तीव्र या सामान्य धमन करने पर यदि वह भस्म अपने मूल स्वरूप (धातु रूप) में नहीं आती है तो उस भस्म को अपुनर्भव कहते हैं।

गुड गुञ्जा सुखस्पर्श मध्वाज्यैः सहयोजितम् ।
नायाति प्रकृतिं ध्यानादपुनर्भवः ॥
(रसेन्द्र चू.)

4. निरूत्थ :-

कोई भी भस्म एक मूषा में रखें और चाँदी का छोटा-सा पत्र या तार को भस्म से आवृत्त कर तीव्र अग्नि में धमन करें । यदि थोड़ा भी अंश चांदी के पत्र में या तार पर नहीं लगता है तो उस भस्म को निरुत्थ कहते हैं ।

रूप्येण सह संयुक्तं ध्यातं रूप्येण नो लगेत् ।
तदा निरूत्थ मित्युक्तं लोहं तदपुनर्भवम् ॥
(रसेन्द्र चू.)

5. निर्धूम :-

अपक्व भस्म को अग्नि में ताप देने से धुआं निकलने लगता है । ऐसा भस्म प्रयोग में नहीं लाना चाहिए, और पुट लगाना चाहिए ।

6. निश्चन्द्र :-

यह परीक्षा विशेषकर अभ्रक, स्वर्ण, रजत, माक्षिक आदि भस्मों के लिए करनी चाहिए । चन्द्रिकायुक्त (चमकदार कण) अर्थात् अपक्व भस्म के प्रयोग से वृक्क-विकार हो सकते हैं । इसलिए चमकरहित भस्मों का उपयोग चिकित्सा में करना चाहिए ।

7. अम्लपरीक्षा :-

ताम्र, स्वर्णमाक्षिक, तुत्थ आदि भस्मों के लिए अम्ल परीक्षा करनी चाहिए । यदि निम्बु स्वरस एवं अन्य खट्टे द्रव्य डालने से रंग परिवर्तन हो, तो इसे अशुद्ध या अपरिपक्व भस्म समझनी चाहिए ।

8. निःस्वादु :-

भस्मों में किसी प्रकार का स्वाद नहीं होना चाहिए। भस्मों में तीखा, कषाय, खट्टा (अम्ल) आदि स्वाद होने पर उनको अशुद्ध समझना चाहिए ।

9. लघुता एवं वर्ण :-

धातुयें जल से कई गुणा भारी होती हैं । शास्त्रीय विधि से बनाई गई भस्में, शोधन, मार, भावना मर्दन आदि अग्निसंयोग आदि संस्कारों से हल्की हो जाती हैं । हल्की एवं सुपाच्य होने के कारण मृदु, आशुगुणकारी एवं सुक्ष्मगुणों वाली होती है । प्रत्येक भस्म का वर्ण भावना द्रव्यों के स्वरसों एवं खनिजों के आधार पर श्वेत, पीत, नारंगी, रक्त, कृष्ण वर्ण के होते हैं ।

10. आवामि :-

किसी भी भस्म को विशेषकर ताम्र और स्वर्णमाक्षिक भस्मों के लिए यह परीक्षा जरूरी है । भस्म को थोड़ा-सा अंश जीभ पर रखने से हृल्लास (जी मचलना) मिचली आना, उल्टी होना आदि लक्षण होते हैं तो भस्म को अशुद्ध समझना चाहिए, और उस भस्म को पुनः बार-बार पुट देना चाहिए । अन्त में लेखक का कार्यशाला के माध्यम से सुझाव है कि भस्मों के मानकीकरण हेतु भस्म निर्माण में विशिष्ट अनुभवी रससिद्ध वैद्यों एवं पाश्चात्य विज्ञान के रसायनिक वैज्ञानिकों के परस्पर समन्वय के आधार पर अनुसंधान कर मानदण्ड स्थापित किया जाय ।

रसशास्त्र में भस्म निर्माण हेतु सुझाव

1. भस्म निर्माण में उपयोगी खनिजों, धातुओं के नाम स्वरूप का पहचान करना तथा जो द्रव्य संदिग्ध एवं विद्वानों में मतभेद हैं उनका सही पहचान एवं निर्णय कर प्रयोग करना । जैसे - चपल, कंकूष्ठ, खर्पर, बैक्रान्त आदि ।
2. भस्म निर्माण में प्रयुक्त खनिजों के उपयोग करने (अर्थात् काम में लाने योग्य या निकृष्ट) द्रव्यों के लक्षण लिखे हुए हैं । वे कहां तक ठीक हैं इनका परीक्षण तथा आधुनिक विज्ञान में जो लक्षण लिखे हैं उनके आधार पर सामञ्जस्य बनाना ।
3. भस्मों के निर्माण हेतु प्रयुक्त खनिज द्रव्यों का शोधन विधि मारण आदि विधियों द्वारा जिनका शोधन किया गया है उनके दोष समाप्त हुए हैं या नहीं उनका निवारण आधुनिक विचारों द्वारा तथा शास्त्रीय ग्रन्थों के आधार पर निराकरण करने की पुष्टि ।
4. रसशास्त्र में एक ही खनिज की अनेक शोधन विधियाँ वर्णित हैं । उनमें से जिस शोधन विधि से उन उद्देश्यों की पूर्ति (दोषों का निर्हरण) विशेष रूप से होता हो ऐसी 1-2 शोधन विधि को व्यवहार के लिए निश्चित करना । प्रत्येक शोधन विधि से उस द्रव्य में कौन-कौन सा रासायनिक और भौतिक परिवर्तन होता है उनका आधुनिक वैज्ञानिक विधि से परीक्षण करना ।
5. मारण संस्कार विविध लोह (आयरन) और धातु (मैटल) आदि की भस्म बनाने में पञ्चविधकषाय के द्रव्यों के साथ मर्दन करना, टिकिया बनाना, उनको विविध पात्रों में खुला या बन्द करना, अग्निसंयोग करना (गजपुट) आदि में पकाना, मर्दन करना जैसे विमल को लवण यंत्र का बालुका यंत्र में पकाना, भस्म तैयार होने पर फिर मर्दन करना इनके भस्मों के द्रव्यों की भावना देकर योगवाही बनाना आदि । सभी प्रयोगात्मक पक्षों का अध्ययन करना ।

6. भस्मों वारितर, रेखापूर्ण अपुनर्भव आदि परीक्षाओं के अतिरिक्त आधुनिक वैज्ञानिक विधि से परीक्षण ।

7. प्रत्येक भस्म के वर्ण, स्वाद, विशिष्ट-गुरूत्व, रासायनिक संगठन विषाक्तता एवं रासायनिक परीक्षण (भैषजं चापि दुर्युक्तं सम्पद्यते विषम् च.सू.स.)

8. भस्म बनाने के आरम्भ में किस भस्म को तैयार करने में कितने समय तक अग्नि दी जाय । कितने पुट दिये जायें अधिक मात्रा में पुट देने से गुण वृद्धि होती है या नहीं इसका निर्णय आधुनिक वैज्ञानिकों के सहयोग से करना चाहिए । आयुर्वेद में गजपुट में वन उपलों से ही भस्म बनाने की विधि बताई है जो कि वर्तमान विधि में भस्म निर्माण में सम्भव नहीं । अत: गुण निर्माण की महत्ता के लिए अग्नि की मात्रा कितने समय देनी है । निर्माण विशेषता की दृष्टि से लकड़ी के कोयले, पत्थर के कोयले, बिजली एवं गैस की अग्नि किसी की अग्नि ठीक होगी, इसके निर्णय पर विचार करना चाहिए ।

9. गज पुट में 250 ग्राम लौहचूर्ण डालना या 5 किलो डालना यह निर्दिष्ट नहीं है । इसलिए दोनों भस्मों की गुणवत्ता क्या समान होगी । एक ही अग्नि का ताप एवं समय एक ही होगा या अन्तर होगा ?

10. गुण कर्म की दृष्टि से भस्मों का परीक्षण हास्पिटलों में वैद्य एवं आधुनिक वैज्ञानिक के संयुक्त प्रयास से हो चाहिए ।

11. प्रयुक्त भस्मों का आधुनिक पद्धति से शरीर में कौन-कौन से रासायनिक परिवर्तन हुए । शरीर के किस अवयव पर इसका क्या प्रभाव हुआ । रक्त, मू लालास्राव, स्वेद, आर्तव तथा धातुओं एवं स्रावों पर क्या प्रभाव ।

12. पुटों से भस्मों के परमाणुओं सूक्ष्मतर रूप में प्रक करना पुट देने का मुख्य उद्देश्य है । जैसे 100 पुटी 500 पुटी, 1000 पुटी इनका वैज्ञानिक निर्धारण आधुनिक प्रयोगशालाओं के माध्यम से भस्म की सूक्ष्म कणों की लम्बाई, चौड़ाई, मोटाई गुरूत्व एवं भस्म परीक्षा में वर्णित सिद्धान्तों (वारितर, निरूत्थ, निश्चन्द्र, अनुपर्भव) का विश्लेषणात्मक विवेचन आधुनिक यंत्रों के माध्यम से करना ।

13. आयुर्वेदिक भस्मों का वायो टैक्नोलाजी के आधार पर मानकीकरण की दिशा में कार्य प्रारम्भ किया जाय । डा. एस.के. सरीन ने लौह भस्म का उपयोग लीवर की बीमारी पर प्रभावकारी बताया है । इसी प्रकार मकरध्वज में हृदय को बल देने वाले ऐसे कौन से सूक्ष्म कण हैं जिसकी जानकारी शोध द्वारा अपेक्षित है । नैनो टैक्नोलोजी का उपयोग पर ध्यान केन्द्रित किया जाय।

बैद्यनाथ

ईसब्बेल

आंव, पेचिश, मरोड़, आमातिसार (डिसेन्ट्री), कब्जियत
आदि रोगों में बहुपरीक्षित एवं उपयोगी औषधि।

सन्धिगतवात व्याधि के आयुर्वेदिक उपाय - एक गवेषणा पूर्ण अध्ययन

* डा० बी.एम. निर्मल, पी.एच.डी. (आयुर्वेद)

प्राक्कथन

प्रतिदिन वयस्कों में त्रासदायक वातव्याधियों का प्रमाण बढ़ता जा रहा है । 40 वर्ष की आयु में 50-60 प्रतिशत नर-नारी सन्धिवात के कष्ट से पीड़ित पाये जाते हैं।

आचार्यों ने वात व्याधि के अधिकार में सन्धिवात के निदान, लक्षण, औषध और उपचार दिये हैं ।

प्रस्तुत लेख में सन्धिशूल, सन्धिशोथ, सन्धि साच्यता, आकुंचन प्रसारण में वेदना प्रत्यात्म लक्षण वाले सन्धिगत वात Osteo-Arthritis Problem Knee पर आयुर्वेदिक दृष्टि कोण से निदान चिकित्सा का व्यवहार सिद्ध परिणामसहित विचार-विमर्श प्रस्तुत है ।

चरक संहिता चिकित्सा स्थान अ० 28 अ. में सन्धिवात का लक्षण-समुच्चय दिया है कि सन्धि में (1) वातपूर्णता (2) क्षतिपूर्णसदृश स्पर्श, (3) सन्धिशोथ (4) सन्धिवेदना (5) आकुंचन प्रसारण समय में विशेष कष्ट, स्तब्धता विशेषत: जानुसन्धि के होते हैं ।

आधुनिक मत से Osteo-Arthritis जान, गुल्फ वक्षण संधि का अपचयजन्य व्याधि है । प्रात: एवं रात्रि में, शीतकाल में सन्धि की Stiffness बढ़ती है । सीढ़ी चढ़ने-उतरने में रोगी को कष्ट होता है । बहुतायत, यह 40 से 60 वर्ष की वय में देखा जाता है । यह दीर्घकाल तक कष्ट देता हैं । इसमें शोथ, प्रशमन, वेदना शमन एवं आकुंचन प्रसारण आदि होता है ।

निदान एवं पथ्य - संश्रिपतो क्रिया योगों निदानपरिवर्जनम् । इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त का उपयोग आयुर्वेदिक चिकित्सा का मूलाधार है । वायोर्धातुतयात् कोपो मार्गस्य आवरर्णन च । यह सूत्र वातव्याधि चिकित्सा का बीज है । स्नेहन, स्वेदन, उचित उपक्रम है ।

स्वानुभव :-

वातव्याधि की चिकित्सा का प्राप्त परिणाम इस प्रकार है -

1. सिंहनाद गुग्गुलु 3 गोली दो बार प्रात: शाम सुखोष्ण (गुनगुने) जल के साथ एक मास तक प्रतिदिन 20 रुग्णों में, बहिरंग विभाग में दिया गया ।
2. अंतरंग विभाग में 20 रुग्णों को पहले कोष्ठशुद्धि के लिए एरण्ड तैल 20 तोला प्रात:, एक बार 7 दिन तक प्रतिदिन, गुनगुने जल के साथ दिया गया एवं 30 दिन तक प्रतिदिन सिंहनाद गुग्गुल 3 गोली (पीसकर) गरम (सुहागा) पानी के साथ प्रात: शाम दिया एवं दशमूल क्वाथ की निरूहबस्ति यथावश्यक दिया ।
3. बाह्य प्रयोगार्थ पंचगुण तैल 20 मिली में 10 मिली नारायण तैल मिलाकर उभय जानुपर सुखोष्ण अभ्यंग प्रतिदिन 20-20 मिनट दिया गया एवं रसोनसिद्ध खीर (दूध) दोपहर 4 बजे 150 मिली पिलाया गया ।
4. प्रत्येक रोगी को पथ्यपालनार्थ सूचना दी गई ठंडा पानी, ठंडी हवा, परिश्रम, मद्य, तमाकू, खट्टा पदार्थ एवं रात्रि जागरण का त्याग करें । ऐसा परामर्श दिया पथ्य : विश्राम, दूध, एरण्ड तैल, अजवायन, सूंठी, सहिजन हितकर ।

परिणाम एवं विमर्श

बहिरंग विभाग में 50 प्रतिशत रोगी में वेदनाल्पता आकुंचन प्रसारण, शोथन्यूनता प्राप्त हुए ।

अंतरंग विभाग में 75% रोगी को लाभ हुआ, दो रोगियों को रसोन का सेवन अनुकूल आने पर 4 दिन बाद बंद करवाया ।

निष्कर्ष :-

वातव्याधि शमनार्थ गुग्गुलु, एरण्ड तैल, अभ्यंग सुखोष्ण स्वेदन, मृदुविरेचन एवं पथ्यपालन का समुचित प्रयोग 21 दिन से अधिक समय तक निरन्तर करने पर आशातीत लाभ होता है ।

नोट :-

अभिघात एवं gout से विकृत जानुसन्धि से पीड़ित रोगी एवं 70 वर्ष से अधिक आयु वाले, अतिकृश एवं अतिस्थूल रोगी का आयुर्वेदोपचार लाभप्रद नहीं है ।

निर्मल क्लीनिक, जामनगर

मधु – एक प्राकृतिक औषधि

*डा० जी.सी.

मानव समाज में मधु का प्रयोग वैदिक काल से प्रचलित है । वैदिक काल में मनुष्य मधु के मीठे स्वाद के अतिरिक्त इसके औषधीय गुणों से भी परिचित था । विकसित देशों में स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता के कारण खाद्य पदार्थों में मधु का उपयोग अत्यधिक तीव्रता से हुआ है ।. शहद को "कुरान" में 'दवा' एवं आयुर्वेद में 'योगवाही' कहा गया है । औषधि के रूप में शहद का सबसे बड़ा गुण यह है कि शहद जिस प्रकार औषधि के साथ मिलाया जाता है इसके गुणों एवं प्रभावों को बढ़ा देता है । उदाहरण के लिए शहद 'पेचिश' रोकने की दवा के साथ भी दिया जाता है और 'कब्ज तोड़ने की दवा' के साथ भी उपयोग होता है । मधु सेवन से अत्यधिक ऊर्जा मिलती है । अतः यह शारीरिक, कार्य करने वालों, खिलाड़ी व बढ़ते बच्चों के लिए सर्वाधिक उपयोगी है, यह थकान मिटाता है व स्फूर्तिदायक है । इसके निरन्तर सेवन से स्वास्थ्य में वृद्धि होती है, व तनाव से उत्पन्न रोगों की रोकथाम होती है ।

शुद्ध मधु (शहद) प्रत्येक उम्र के स्त्री, पुरुष व बच्चों के लिए प्रकृति का उपहार है । आयुर्वेद में इसे अत्यधिक पौष्टिक सम्पूर्ण आहार बताया गया है, किन्तु यह आवश्यक है कि प्रकृति से प्राप्त इस आहार के सभी मूल तत्व सुरक्षित रहें, मधु केवल सर्दी, जुकाम, बुखार, नाक-कान-गला, आँख, त्वचा सम्बन्धी रोगों व छांव में ही नहीं अपितु आन्तरिक शोथ, बवासीर आदि में भी उपयोगी है, मधु पाचन तंत्र व तंत्रिका तंत्र को सक्रिय करता है तथा संक्रामक रोगों से बचाव करता है ।

आधुनिक जीवन पद्धति में अधिक चीनी (सुक्रोज) के सेवन से कई प्रकार की स्वास्थ्य संबंधी जटिल समस्यायें जैसे दांतों की बीमारियां, पाचन संबंधी रोग, मधुमेह आदि उत्पन्न होती हैं, सैक्रीन से कैंसर का सीधा-संबंध होने के कारण वर्तमान में चीनी के स्थान पर प्राकृतिक मधु का प्रयोग आवश्यक हो गया है ।

शहद में मुख्यतः जल, ग्लूकोज, फ्रक्टोज, जैविक-अम्ल, नाइट्रोजन, एन्जाइम्स, विटामिन आदि हैं । मधु की रासायनिक संरचना में आर्द्रता 18- कार्बोहाइड्रेट (ग्लूकोज, फ्रक्टोज, माल्टोज - 75 से अम्ल-0.57%, प्रोटीन-0.26% एवं खनिज - 0.17%, अवयवों में विटामीन बी-1, बी-2, बी-5, सी.ई. कैरोटीन, अनेक एन्जाइम्स, हारमोन तथा कार्बनिक तथा विशेष पुष्पों के न्यून रसायन होते हैं । 1 कि.ग्रा. से करीब 3150 से 3350 कैलोरी शक्ति मिलती है ।

शहद एक अत्यंत विविधता वाला पदार्थ है, अलग-अलग स्रोतों, स्थान एवं समय के अनुसार उसके स्वाद, सुवास तथा तरलता में बहुत भिन्नता होती है । शहद में मुख्य रूप से सरल शर्करा में होती है, ये सरल शर्करायें अर्थात् 'ग्लूकोज' तथा 'फ्रक्टोज' पाचन संस्थान पर दिये बिना मुँह से ही आरम्भ होने वाली पाचन प्रणाली की दीवारों के माध्यम से शोषित होकर सीधे-रक्त में मिलने लगती है, इस प्रकार शहद तुरन्त शक्ति प्रदान करता है ।

शहद की प्रमुख शर्करा 'ग्लूकोज' शक्ति में से विघटित होता है, जबकि फ्रक्टोज धीरे-धीरे शरीर को शक्ति देता है, इस प्रकार यह 'स्टैमिना' विकास में अधिक गुणकारी है । शरीर में समस्त झिल्लियों एवं त्वचा के अधिकांश भाग में सरल शर्करायें सीधे अवशोषित होती हैं, अतः चेहरे तथा आँखों में शहद लगाने से स्थानीय रूप से शक्ति प्रदान करता है और ऊतिकाओं को तरोताजा बनाने में सहायक होता है, शर्कराओं के अतिरिक्त शहद में अनेक विटामिन्स खनिज लवण, एन्जाइम तथा भिन्न-भिन्न पौधों के विशेष गुण रखने वाले श्रावित पदार्थ भी होते हैं, जो शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं ।

शहद बच्चों के लिए अधिक उपयोगी है क्योंकि एक ओर इससे उनकी शक्ति, विटामिनों, कैल्शियम तथा

क्षेत्रीय आयु. अनुसंधान संस्थान, (केन्द्रीय आयु. एवं सिद्ध की अनुसंधान परिषद्) ताड़ीखेत (रानीखेत)
जि. अल्मोड़ा – 263665 (उत्तरांचल)

खनिज लवणों की बढ़ी हुई आवश्यकताओं की पूर्ति होती हैं और दूसरी ओर वे 'साधारण शक्कर' के पाचन में होने वाली कैल्शियम क्षति से बच जाते हैं, अतः बच्चों के भोजन में साधारण शक्कर के स्थान पर शहद ही प्रयोग होना चाहिए, अनेक पौधों अर्थात् वनस्पतियों में अलग-अलग प्रकार के औषधीय गुण होते हैं, जिससे विभिन्न फूलों से एकत्र किये गये रसों से निर्मित शहद में इन पदार्थों की सघनता अथवा सान्ध्रता बढ़ जाती है, इसका आशय है कि वनस्पति विशेष के गुण शहद में सघन रूप से संचित रहते हैं।

यदि शहद किसी विशेष वनस्पति के बाहुल्य क्षेत्र एवं समय में संचित किया गया है तो उसके विशेष गुण इसमें आ जाते हैं। उदाहरण के लिए यूकेलिप्टिस एवं पद्म के क्षेत्र में संचित मधु खाँसी, दमा, श्वास संबंधी रोगों में अधिक प्रभावशाली होता है, विविध प्रकार वनस्पतियों के क्षेत्र में संचित शहद में जैसा कि प्रायः उपलब्ध होता है सम्मिलित औषधीय गुण होते हैं।

मधु का रंग मौसम व पुष्परंग पर निर्भर करता है तथा भिन्न-भिन्न पुष्पों का स्वाद भिन्न-भिन्न होता है। आयुर्वेदिक दवाओं के साथ शहद का प्रयोग वैद्यों द्वारा विभिन्न रोगों में बताया जाता है। हिमालयी क्षेत्रों में संग्रह किये गये पराग का शहद बनाने में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि हिमालयी क्षेत्र अनेक महत्वपूर्ण जीवनदायनी वनौषधियों का भंडार है। यहाँ पाई जाने वाली औषधियों से निर्मित शहद अति उत्तम माना गया है।

शहद के जम जाने को यह माना जाता है कि शहद में शक्कर मिली है, यह धारणा एकदम गलत है, शहद में दो साधारण शक्कर-ग्लूकोज एवं फ्रक्टोज होती है, ग्लूकोज का गुण है कि यह किसी भी सांध्र घोल में कम तापक्रम या अधिक नमी की स्थिति में जमने लगता है, अलग-अलग शहद में ग्लूकोज तथा फ्रक्टोज की मात्रा अलग-अलग होती है। जिस शहद में फ्रक्टोज अधिक मात्रा में होता है, वह कम जमता है या नहीं जमता है, किन्तु जिस शहद में ग्लूकोज अधिक होता है, वह शीघ्र जमने लगता है। शीशी के कुछ काग में शहद जमने का कारण यह है कि ग्लूकोज का अंश जमकर नीचे बैठ जाता है, और फ्रक्टोज का अंश घोल रूप में स्वभावतः तरल बना रहता है, शहद का जमा होना किसी भी प्रकार इसकी गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगाता, इसके विपरीत शीरा मिला शहद सदैव घोल रूप में ही बना रहता है, क्योंकि शक्कर अलग हो जाने के बाद शीरे में जमने वाली या कण बनाने वाली शर्करायें बहुत कम मात्रा में रह जाती हैं। वास्तव में जमना अर्थात् कणदार बन जाना शहद का एक गुण है।

शहद एक उत्तम 'कीटाणुनाशक' है, जलने अथवा कटने के किसी भी प्रकार के घाव पर उसका उपयोग गुणकारी होता है, घाव पर शहद की पट्टी करने से घाव तेजी से भरते हैं, त्वचा को कोमल एवं चमकीली बनाने के लिए एक चम्मच शहद में 3-4 बूँद कागजी नींबू का रस निचोड़ कर चेहरे पर लगाया जाय तो यह "फेसपैक" की तरह कार्य करता है, एक गिलास पानी में 1-2 चम्मच शहद व नींबू का रस मिलाकर प्रातः शौच जाने से पूर्व निरंतर पीने से 4-5 महीने में मोटापा कम हो जाता है। सोते समय ठंडा किये हुए एक गिलास दूध में 1-2 चम्मच शहद घोलकर, शीतकाल के दिनों में पीने से शरीर का दुबलापन दूर होता है। अदरक एवं कालीमिर्च के चूर्ण को शहद के साथ मिलाकर सुबह-शाम चाटने से खाँसी में लाभ पहुँचता है। शहद एवं तेजपत्ते के चूर्ण को मिलाकर निराहार पेट एक चम्मच चाटने से पुरानी कफ साफ होती है। आँखों में खुजलाहट, थकान की जलन, तेज धूप अथवा हवा के कारण उभरी जलन तथा "कान्जनटेवाइटिस" जैसे संक्रमणों से छुटकारा दिलाने के लिए शहद एक उत्तम औषधि है। शिशुओं के दाँत निकलने वक्त फूले मसूड़ों पर शहद घिसने से दाँतों की तकलीफ कम होती है। खाने में जैम के स्थान पर शहद का उपयोग किया जा सकता है, शहद दूध में

घोलकर पीने से सर्वोत्तम टॉनिक का कार्य करता है । मधु कमजोर हृदय, कमजोर दिमाग व कमजोर पेट के लिए उत्तम हैं। सुहागे को फुलाकर इसका चूर्ण शहद में मिलाकर जीभ व मुँह के छालों में बहुत उपयोगी है । एक चम्मच शुद्ध शहद और आधा ग्राम शिलाजीत मिलाकर सुबह-शाम सेवन करने से मधुमेह के रोग में आराम मिलता है ।

उम्र के अनुसार शहद का अनुपान बच्चों के लिए 10-15 ग्राम, युवाओं के लिए 25-35 ग्राम, स्वस्थ पुरुष के लिए 30-40 ग्राम, वृद्धों के लिए 20-25 ग्राम एवं रोगी के लिए चिकित्सक के परामर्शानुसार करना चाहिए । प्राकृतिक शुद्ध शहद का सेवन प्रतिदिन सभी मौसमों (जाड़ा, गरमी व बरसात) में किया जा सकता है । शुद्ध शहद अपने आप में एक सम्पूर्ण आहार है ।

शहद को रखने में कुछ सावधानियां आवश्यक हैं जैसे शहद को गीली चम्मच या गीले हाथों से निकालना चाहिए, इससे शहद खराब हो जाता है। में जमे शहद को पिघलने के लिए गर्म पानी में नीचे लकड़ी का गुटका रख कर पिघलाना चाहिए। शहद ताँबे या पीतल के बर्तनों में नहीं रखना चाहिए।

बढ़ती जनसंख्या के दबाव के कारण रोजगार के अवसर कम हुये हैं; अतः हमारी युवा मधुमक्खी पालन का कार्य एक लघु उद्योग के रूप स्थापित कर सकते हैं । मधुमक्खी पालन में प्रशिक्षण अनुदान के लिए खादी ग्रामोद्योग, सहकारी संस्थाओं लघु उद्योग विभाग से सम्पर्क कर जानकारी प्राप्त की सकती है; इस व्यवसाय से नये रोजगार का सृजन सकता है और हमारे वातावरण में विभिन्न प्रकार के मधुमक्खी प्रजातियों का संरक्षण कर परिस्थितीय तंत्र में सुधार हो सकता है ।

बैद्यनाथ

प्राणदा

प्राणदा से हर साल मलेरिया के लाखों रोगी प्राणदान पाते हैं । इसलिए इसका नाम प्राणदा बिल्कुल सही है । हिन्दुस्तान के गांव-गांव और कस्बे-कस्बे में यह दवा मशहूर है । इकतरा, तिजारी, चौथिया, फसली, जूड़ी-पारी का बुखार और तिल्ली मलेरिया के ही भेद हैं । मलेरिया बुखार की हर हालत में यह तुरंत फायदा पहुंचाती है । बुखार के बाद भी दवा पीने से बुखार के फिर लौटने का भय नहीं रहता।

गुणों से भरपूर मेथी

*** अनिता जैन**

आज के आधुनिक युग में छोटी-मोटी बीमारियां होना एक आम बात हो गई है । एलोपैथी में ही आज आदमी का भरोसा है । मगर एलोपैथी आज अत्यंग महंगी चिकित्सा-पद्धति है और दूसरी तरफ इसके पश्चातवर्तीय दुष्प्रभाव भी अत्यंत घातक होते हैं । ऐसी सूरत में उचित यही होगा कि रोजमर्रा की तकलीफों के वास्ते हम प्राकृतिक और घरेलू उपचार के तरीके ही अपनाएं । नींबू, अदरक, शहद, तुलसी आदि ऐसी वस्तुएं हैं, जिन्हें हम साधारण समझते हैं, मगर यदि उनका व्यवस्थित औषधिय उपयोग किया जाए, तो हम कई बीमारियों से आसानी से मुक्ति पा सकते हैं ।

ऐसी ही वस्तुओं में से एक है - मेथी, जो प्रायः हर घर में सहजता से सुलभ हो जाती है । वैसे मेथी की पत्तियों का इस्तेमाल सब्जी के रूप में तथा इसके दानों का उपयोग भोजन की सुगंध व स्वाद बढ़ाने वाले एक मसाले के रूप में किया जाता है । किन्तु ये दोनों ही औषधि-गुणों से सम्पन्न हैं । इसकी पत्तियों व दानों में प्रोटीन, वसा, खनिज, विटामिन, कैल्शियम, फास्फोरस, आयरन, कैरोटीन, थायमिन और रिबोफ्लेबिन जैसे स्वास्थ्यवर्द्धक तत्व भरपूर मात्रा में उपलब्ध होते हैं ।

मेथी की सब्जी तथा दाने मुख्य रूप से उदर-सम्बन्धी रोगों एसिडीटी, अपच, कब्ज, गैस, दस्त, पेट-दर्द, आदि में बहुत ही मुफीद साबित होते हैं । पाचन-तंत्र की गड़बड़ियों को दूर करने के लिए मेथी का सेवन बहुत फायदेमंद है । मेथी के दानों के सेवन से पेट-दर्द बदहजमी और दस्त में तत्काल आराम मिलता है । दो चम्मच मेथी के दानों को एक कप पानी में उबालकर इसे छानकर चाय बनाकर पीने से आंतों की सफाई होती है । एसिडिटी के इलाज में मेथी के दानों का अत्यधिक महत्व है । पेट के छालों को दूर करने के लिए नियमित रूप से मेथी के काढ़े का उपयोग करना चाहिए । यह काढ़ा एपेन्डिक्स में एकत्रित हुई गंदगी को भी दूर करता है ।

मेथी प्रजनन तथा प्रसव से होने वाले रोगों को भी दूर करती है । प्रसव के बाद शिथिल हुए अंगों को सामान्य आकार प्रदान करने के लिए किसी भी रूप में मेथी का सेवन करना चाहिए । स्तनपान कराने वाली महिलाओं को मेथी के लड्डू खाने चाहिए । इससे शरीर में दुग्ध-उत्पादन करने की क्षमता में अभिवृद्धि होती है ।

स्त्रियों में यौनांगों पर सूजन आने अथवा प्रदर की शिकायत होने पर मेथी के दानों से बने काढ़े का सेवन करना चाहिए तथा उसे सूजे हुए यौन-अंगों पर मरहम की तरह लगाना आयुर्वेद द्वारा प्रमाणित उपचार है ।

मेथी में लौह तत्व प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं । इस कारण रक्त-संबंधी रोगों में भी यह बहुत लाभकारी है । रक्ताल्पता में मेथी का सेवन नियमित रूप से किया जाना बहुत ही फायदेमंद माना गया है । इसी प्रकार मेथी की सब्जी में रक्त-शुद्धिकरण का खास गुण होता है । मेथी की तरकारी और दाने दोनों ही रक्त-विकारों को दूर करने की अद्‌भुत क्षमता रखते हैं ।

मधुमेह के रोगियों को रोजाना दो चम्मच मेथी-दाना का चूर्ण दूध के साथ मिलाकर लेना चाहिए । यदि संभव हो तो मधुमेह के मरीज दो चम्मच दानों को पानी के साथ निगल लें । मेथी में पाया जाने वाला लैसीथीन तत्व दिमागी कमजोरी को दूर करता है ।

बालों की रूसी तथा खुश्की को दूर करने के लिए मेथी के दानों को रात-भर पानी में भिगोकर पेस्ट बना लें, फिर इस पेस्ट को सिर में कम-से-कम आधा घंटे तक लगा रहने दें । बाद में आंवला, शिकाकाई से सिर धो लें । इससे रूसी समाप्त हो जाएगी ।

सांस व मुंह में दुर्गन्ध की शिकायत होने पर मेथी के दानों को पानी में उबालकर उस पानी से गरारे करें । अवश्य ही लाभ होगा । मेथी के पानी को दांतों पर रगड़ने से दांत मजबूत होते हैं और दंत-क्षय रोग नष्ट होता है ।

मेथी के पत्तों के अर्क से गरारे करने से मुंह में हो रहे छाले ठीक हो जाते हैं । मेथी के दानों को पीसकर पेस्ट की तरह बनाकर आंखों के नीचे लेप करने से आंखों के आसपास का कालापन दूर होता है ।

मछली के तेल में पाया जाने वाला तत्व

द्वारा, श्री कैलाश जैन, एडवोकेट, [illegible] मार्ग, भवानीमंडी (राजस्थान)

'ट्रम्मेथाइलिमिन' मेथी में भी प्रचुर मात्रा में होता है। अतः मेथी शाकाहारियों के वास्ते मछली के तेल के विकल्प का कार्य करती है।

मेथी के चूर्ण तथा काढ़े से स्नायु-रोग, सूखा-रोग, बहुमूत्र, अतिसार, पथरी, बुखार पेचिश, टॉंसिल्स, रक्तचाप, मानसिक तनाव आदि विभिन्न रोगों में आश्चर्यजनक रूप से लाभ होता है।

मेथी का काढ़ा बनाने के लिए मेथी के दानों को रात-भर पानी में गलाना चाहिए। सवेरे उन गले हुए दानों को मसल लें तथा धीमी आंच पर पकाकर छान लें। निश्चय ही, इसकी कड़वाहट बहुत अधिक होगी। किन्तु आप इसे उपयोग में लेने से पूर्व इसमें थोड़ा दूध व गुड़ मिला सकते हैं।

वस्तुतः घरेलू उपचार के तरीकों में मेथी का अत्यधिक महत्व है। साधारण रोगों में इसका इस्तेमाल अवश्य करना चाहिए। मगर किसी गंभीर बीमारी में इसका उपयोग करने से पूर्व अपने चिकित्सक से अवश्य परामर्श कर लें।

परीक्षा के समय आपके लाड़ले को जरूरत है एकाग्रता और अधिक कार्यक्षमता की

आपके लाड़ले का उज्ज्वल भविष्य आपका सपना है। पर आज की तीव्र प्रतिस्पर्धा व पढ़ाई का बोझ आपके लिए चिंता का विषय भी है। ऐसे माहौल में आपके बच्चे को जरूरत है एकाग्रता व समझने की क्षमता की, उसे जरूरत है

बैद्यनाथ शंखपुष्पी की, तो आज ही से अपने लाड़ले को दीजिए...

2280 2340 225
× 5 × 5 × 70
11400 11700 81,975
~~233~~
15750
11700
23100
180
23250
15975
39225

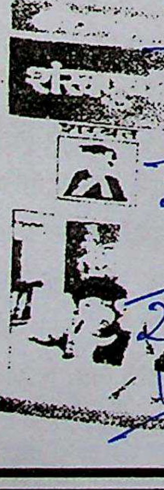

बैद्यनाथ शंखपुष्पी शरबत

एकाग्रता लाए, समझ जगाए

आज, हररोज और वर्षभर

बबूल-गुण एवं उपयोग

वैद्य मनीषा खत्री

बर्बूरनामानि-

''बर्बुरो युगलाक्षश्च कण्टालुस्तीक्ष्णकण्टक: ।
गोश्रृङ्ग पंक्तिबीजश्च दीर्घकण्ट: कफान्तक: ।
दृढ़बीज श्वासभक्ष्यो ज्ञेयश्चेति दशाह्वय: ।।''
(राजनिघण्टु)

अर्थ :- बर्बुर, युगलाक्ष, कण्टालु, तीक्ष्णकण्टक, गोश्रृंग, पंक्तिबीज, दीर्घकण्ट, कफान्तक, दृढ़बीज, श्वासभक्ष्य । कैयदेव निघण्टु में कुछ अन्य नाम इस प्रकार आए हैं - मालाफल, बबूल, युग्मकण्ट, दृढ़ारूह, कण्टको, सूक्ष्मपत्र, पीतपुष्प, कषाय ।

संस्कृत : - बर्बूर, बब्बूल ।
हिन्दी : - बबूल, कीकर ।
अंग्रेजी : - Acacia tree, Gum Arabic.
लेटिन : - Acacia Arabica, Acacia Gunni

वर्णन :- यह सिंध तथा डेकॅन का आदिवासी होते हुए भी अब सभी स्थानों में पाया जाता है ।

भावप्रकाश निघण्टु में इसका वर्णन इस प्रकार आया है -

वृक्ष - मध्यमाकार का, कंटक युक्त होता है ।
छाल - गहरे भूरे/काले रंग की लंबाई में फटी हुई होती है ।
पत्ते - संयुक्त, उपपक्ष, 4-9 जोड़े, 2.5 से.मी. लंबे ।
पत्रक - 10-25 जोड़े, 3-6 X 1.2-2 मि.मी. बड़े, रेखाकार होते हैं ।
पुष्प - चमकीले, गोल, मधुरगंधी होते हैं ।
फली - 3-6 इंच लंबी, 0.5 इंच चौड़ी, माला की तरह, बीच-बीच में सिकुड़ी हुई, टेढ़ी, मृदु, रोमश, 8-12 बीजों से युक्त ।
कांटे - सीधे, नुकीले तथा पर्णवृन्त के नीचे जोड़ी में आते हैं ।
गोंद - विभिन्न प्रकार एवं नाप के टुकड़ों में, भूरा लाल, हल्का पीला, गंधहीन, स्वादहीन और अपने से दुगुने जल में पूर्णत: घुलनशील होता है ।

रासायनिक संगठन -

गुण -

''बब्बूल: कफनुद् ग्राही कुष्ठाक्रिमिविषापह: ।''
(भावप्रकाश निघण्टु)

''बब्बूलस्य फलं रूक्षं विशदं स्तम्भनं गुरु ।''
(कैयदेव निघण्टु)

बबूल कड़वा, मधुर, स्निग्ध, शीतल, गरम, कषैला, मलरोधक, आम-रक्तातिसार, कफ, खाँसी, पित्त, दाह, वात और प्रमेह को दूर करता है । इसके पत्र मलरोधक, रुचिकारक, चरपरे, गरम तथा खांसी, वात, पुरुषता, कफ और बवासीर नाशक हैं ।

बबूल की फली रूक्ष, विशद, मलस्तम्भक, भारी, कसैली, मधुर, शीतल और कफ पित्त नाशक है ।

बबूल की गोंद मलरोधक, पित्तवातनाशक, रक्तपित्त, प्रमेह, प्रदरनाशक है ।

छाल मूल्यवान संकोचक है । कृमि एवं विषनाशक है ।

उपयोग -

सूआ रोग - बबूल की अंतर छाल को प्रतिदिन सबेरे शाम 1-1 तोला लेकर उसमें 3-3 दाने काली मिर्च मिलाकर चूर्ण करके खाने से सूतिका रोग से ग्रस्त स्त्रियां बच जाती हैं ।

उदर रोग - बबूल की अन्तर छाल का क्वाथ बनाकर, रस क्वाथ को औटाते-औटाते जब उसका क्वाथ घन हो जाए, तब उसे मट्ठे के साथ पीने से सभी प्रकार के उदर रोग नष्ट हो जाते हैं ।

नेत्र रोग - बबूल के पापड़ों को सुखाकर, कूटकर उनमें से जो बारीक आटे के समान चूर्ण निकले, उसे 4 तोला लेकर उसमें 1 माशा नीला थोथा डालकर सत्यानाशी के दूध में इन सब चीजों को खरल कर मूंग के समान गोलियां बना लें । इनमें से एक गोली जरा सा दूध के साथ घिसकर सबेरे शाम आंखों में अंजन लगाने से आंखों का फूलना, अश्रुस्राव, दाह आदि दूर होते हैं ।

बलवर्धन - इसकी गोंद को घी में तलकर उसका

वाचस्पति प्रथम वर्ष, (क्रिया शारीर) ए.एण्ड.यू. तिब्बिया कॉलेज, करोल बाग, नई दिल्ली-110005

पाक बनाकर खाने से पुरुषों का वीर्य बढ़ता है । प्रसूतिकाल में स्त्रियों को खिलाने से उनकी शक्ति भी बढ़ती है ।

अतिसार - बबूल की गोंद का पानी पिलाने से अतिसार और रक्तातिसार मिटता है ।

दन्तपीड़ा - बबूल की फली का छिलका और बादाम के छिलके की राख में नमक मिलाकर मंजन करने से दन्तपीड़ा मिटती है ।

श्वेत प्रदर - बबूल की छाल का क्वाथ पिलाने से और उस क्वाथ में फिटकरी डालकर उससे योनि धावन से श्वेत प्रदर में लाभ होता है ।

मधुमेह - इसकी गोंद का सेवन करने से मधुमेह मिटता है ।

हिक्का - बबूल के सूखे या गीले कांटों को 1/2 सेर पानी में औटाकर जब वह पानी आधा रह जाए, तब उसमें शहद मिलाकर पीने से हिक्का मिटती है ।

टूटी हुई हड्डी - इसके बीजों के चूर्ण को शहद के साथ चटाने से टूटी हुई हड्डी जुड़ती है ।

मूत्रकृच्छ्र - बबूल की 1 तोले कोंपल और 1 तोला गोखरू का रस निकालकर पिलाने से मूत्रकृच्छ्र मिटता है ।

मासिक धर्म की अधिकता - इसका भुना हुआ गोंद 4 माशे और गेरु 4 माशे को पीसकर, प्रातःकाल फक्की देने से मासिक धर्म में अधिक रुधिर निकलना बन्द होता है ।

कुष्ठ - इसकी 3 तोले छाल का हिम प्रतिदिन पीने से कुष्ठ में लाभ होता है ।

प्रयोज्यांग - फल, त्वक्, निर्यास, बीज ।

मात्रा

पत्र कल्क	-	2 ग्राम
क्वाथ	-	50 ग्राम - 100 ग्राम
गोंद	-	5 ग्राम - 10 ग्राम
बीज कल्क	-	2-3 ग्राम
त्वक् चूर्ण	-	2-5 ग्राम
फली चूर्ण	-	3-6 ग्राम

बैद्यनाथ
मधुमेहारि
योग दाने
मधुमेह (डायबिटीज)
व उससे उत्पन्न
विकारों में
लाभदायक

बैद्यनाथ
मधुमेहारि
Baidyanath
MADHUMEHARI

नारी स्वास्थ्य

स्फटिक योग का रक्तप्रदर पर एक सफल आतुरीय परीक्षण

* वैद्या (डा०) मीना रानी, एम.डी. (आयु.)   ** वैद्य (डा०) ओमवीर सिंह 'वीर' एम.डी. (आयु.)

आज के बदलते परिवेश में नारी का खान-पान एवं रहन-सहन अतीव उत्तेजनापूर्ण हो गया है । आज के फास्ट फूड जो कि अतीव तीक्ष्ण, उष्ण, लवण रस प्रधान भोजन के अतिसेवन, काली चाय आदि के प्रयोग से तथा आधुनिक औषधियों के लगातार उपयोग आदि के साथ-साथ भागम-भाग जिन्दगी के कारण रक्त प्रदर एक आम समस्या के रूप में अपना प्रकोप करता जा रहा है और तन 80% महिला रोगिणी रक्त प्रदर एवं श्वेत प्रदर की समस्या के साथ संस्थान के चिकित्सा हेतु आती है :-

रोगियों का चयन :- रक्त प्रदर की समस्या का इति वृत्त रखने वाली पचास महिला रोगियों का चयन किया गया जिनको गर्भाशय में किसी प्रकार के टयूमर (रसौली) आदि नहीं थी । मात्र रक्त स्राव ही होता था जोकि मासिक के समय या तो अधिक मात्रा में होता था या एक मास में कई बार होता था ऐसी रोगी पीड़ितों का चयन चिकित्सकीय परीक्षण हेतु किया गया ।

योग के घटक तथा उसका निर्माण मात्रा एवं अनुपान :-

घटक - मधुयष्टीचूर्ण - 1 भाग
शु० स्फटिक - 1 भाग
शु० स्वर्णगैरिक - 1 भाग
रस सिन्दूर - 1/50 भाग

समस्त औषधियों को बारीक पीसकर रस सिन्दूर को तब तक घोरें जब तक उसकी चमक खत्म न हो जाय और अन्य औषधियों के साथ मिला दें । उसके बाद वासा स्वरस तथा दूर्वा स्वरस की सात-सात भावनायें देकर सुखाकर सुरक्षित घोंट-पीसकर रख लें तथा आवश्यकता के समय 3-5 ग्राम की मात्रा में दिन में तीन बार इस योग का प्रयोग अजा दुग्ध के साथ कराया गया (अजादुग्ध की अनुउपलब्धता में) जो दुग्धका प्रयोग करने की सलाह दी गयी ।

अवलोकन

वयानुसार रोगियों की संख्या :- (सारणी नं.1)

क्र.सं.	वय	संख्या	प्रतिशत
1.	15-20	04	08.00%
2.	21-25	06	12.00%
3.	26-30	10	20.00%
4.	31-35	15	30.00%
5.	36-40	12	24.00%
6.	41से उपर	03	06.00%
	योग	50	100%

गर्भनिरोधक औषधियों के उपयोग तथा अनुपयोग के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	गर्भनिरोध स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	सेवन किया	35.00	75.00%
2.	नहीं किया	15.00	30.00%
	योग	50.00	100.00%

नशीली चीजों के सेवन के आधार पर वर्गीकरण

क्र.सं.	नशे की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	नशे का सेवन करती हैं ।	10.00	20.00%
2.	नहीं करती हैं ।	40.00	80.00%
	योग	50.00	100.00%

आहार की स्थिति के आधार पर वर्गीकरण (कटु, अम्ल, तीक्ष्ण एवं उष्ण पदार्थों का सेवन)

क्र.सं.	आहार की स्थिति	संख्या	प्रतिशत
1.	कटु, अम्ल, तीक्ष्ण एवं उष्ण पदार्थों का सेवन करती हैं ।	35.00	70.00%
2.	यदा कदा सेवन	15.00	30.00%
	योग	50.00	100.00%

---

* प्रवक्ता, रसशास्त्र एवं भैषज्य कल्पना, बाबा मस्त नाथ आयुर्वेदिक कालेज, स्थलवोहर, रोहतक (हरियाणा)

** निदेशक - धन्वन्तरि अष्टांग आयुर्वेद शोध संस्थान, दरोगाबाग, उन्नाव (उ.प्र.)

रक्त स्राव की मात्रा के आधार पर रोगियों का वर्गीकरण (प्रतिदिन उपयोग किये जाने वाले पैडो के आधार पर)

क्र.सं.	प्रतिदिन उपयोग किये जाने वाले पैड की संख्या	संख्या	प्रतिशत
1.	7 से 10	05.00	10.00%
2.	11 से 13	09.00	18.00%
3.	14 से 17	20.00	40.00%
4.	18 से 21	16.00	32.00%
5.	21 से अधिक	00.00	00.00%

रक्तस्राव के दिनों के आधार पर

क्र.सं.	रक्त स्राव के दिन	संख्या	प्रतिशत
1.	7 से 9	15.00	30.00%
2.	10 से 12	28.00	56.00%
3.	12 से ऊपर	07.00	14.00%
	योग	50.00	100.00%

औषधि उपयोग के बाद कितने दिनों में रक्तस्राव रूका :-

क्र.सं.	दिनों की संख्या	रोगी	प्रतिशत
1.	1 से 3	10.00	20.00%
2.	4 से 5	18.00	36.00%
3.	5 - 7	21.00	42.00%
4.	7 से अधिक	01.00	02.00%
	योग	50.00	100.00%

नोट:- रोग की गम्भीरता को देखते हुये उक्त योग का सेवन महिलाओं को 45 दिन से 90 दिन तक कराया गया और समस्त रोगियों को रोग से मुक्ति मिली तथा की पुनरावृत्ति नहीं हुई ।

उक्त तालिकाओं के आधार पर निम्न निकालकर सामने आये :-

1. 26 से 40 वर्ष की वय की स्त्रियों में रक्त प्रद समस्या अध्ययन के दौरान अधिक संख्या में गयी जिसका कारण शायद स्वस्थ एवं आहार के लापरवाही एवं तद्जन्य स्थूलता एवं हारमोंस गड़बड़ियां मुख्य है ।
2. गर्भ निरोधकों का सेवन करने वाली स्त्रियों में बीमारी की अधिकता पायी गयी जो शायद हार की गोलियों के कारण अन्तःस्रावी तंत्र में गड़बड़ी कारण हो सकता है ।
3. यद्यपि नशीली चीजें बीड़ी, चिलम, हुक्का, मशाला आदि का सेवन कम औरतें करती हुई गयीं इससे साफ जाहिर होता है कि नशीली चीजों सेवन इस रोग को बढ़ावा देता है ।
4. कटु अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण पदार्थों का अतिसेवन वाली महिलायें इस रोग की अधिक शिकार पायी जिनका कारण पित्त वर्धिकर रोग को जन्म आयुर्वेदिक निदान तथा उसके परिवर्जन का वैज्ञानि पक्ष जनमानस के समक्ष रखता है ।
5. औषधि का प्रयोग समस्त रोगियों पर लाभकर रहा औषधि सेवन काल रोग एवं रोगी के बलाबल आधार पर कम या अधिक लगा ।
6. इससे साफ स्पष्ट होता है कि स्फटिक योग रक्त की एक सफल औषधि सिद्ध होती है ।

बैद्यनाथ
अश्वगंधारिष्ट
मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि आदि में लाभकारी

चरकोक्त सिद्धि स्थान का प्रयोजन एवं उसकी उपयोगिता

डा. अनूप कु. गक्खड. व सीमा चोपड़ा

चरक संहिता में वर्णित 8 स्थानों में से अन्तिम स्थान सिद्धि स्थान है । सिद्धि का अर्थ है सफलता और जिन उपक्रमों के द्वारा चिकित्सा में सफलता निश्चित रूपेण प्राप्त होती है उनका वर्णन इसमें होने से इसे सिद्धि स्थान कहा जाता है । चिकित्सा में सफलता पाने के लिए संशमन की अपेक्षा संशोधन का अधिक महत्व है । इसलिए इस स्थान में संशोधन चिकित्सा का ही विस्तृत विवेचन किया गया है, केवल चरक संहिता में ही इसके लिए भिन्न-भिन्न उपक्रमों का उल्लेख किया गया है । सिद्धि स्थान के अतिरिक्त अन्य स्थानों में भी पंचकर्म सम्बन्धित विवेचन उपलब्ध होता है, लेकिन इसको व्यवस्थित स्वरूप देने का श्रेय सिद्धि स्थान को ही जाता है । पंचकर्म शब्द का प्रथम प्रयोग चरक संहिता के सूत्र स्थान के द्वितीय अध्याय में किया गया है । सूत्र स्थान में ही पंचकर्म के पूर्वकर्म यथा स्नेहन एवं स्वेदन का वर्णन विस्तार से किया गया है क्योंकि स्नेहन स्वेदन जैसे उपक्रम न तो दोषों का निर्हरण करते हैं और न ही बहुइति कर्त्तव्यता वाली परिभाषा के अन्तर्गत समाहित होते हैं, इसलिए उन्हें पंचकर्म के अन्तर्गत ग्रहण नहीं किया गया ।

वमन विरेचन की प्रक्रिया उनके योग-अयोग एवं उनके मिथ्यायोग से उत्पन्न होने वाले रोगों का वर्णन सूत्र स्थान में ही यत्र-तत्र किया गया है । वमन और विरेचन में प्रयुक्त होने वाली विभिन्न कल्पनाओं का उल्लेख भी कल्प स्थान के अन्तर्गत किया गया है । किस रोग में कौन-सा कर्म करवाना चाहिए और कौन-सा नहीं, इन सबका उल्लेख, संदर्भ वश चिकित्सा स्थान में किया गया है । स्वस्थ व्यक्ति के लिए संशोधन की क्या परिभाषा हो सकती है इसका उल्लेख भी अप्रत्यक्ष रूप से रसायन एवं वाजीकरण के प्रकरण में किया गया है । सम्पूर्ण चरक संहिता में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से संशोधन चिकित्सा के अन्तर्गत पंचकर्म का उल्लेख उपलब्ध होता है लेकिन उसको व्यवस्थित रूप से देने का श्रेय सिद्धि स्थान को ही जाता है । सिद्धि स्थान के 12 अध्यायों में पूर्ववर्णित विषयों का अलग ढंग से एक निश्चित क्रम के अनुसार विवेचित किया गया है और इसी के साथ विषय के क्षेत्र का विस्तार कर उसे प्रस्तुत किया है । यथा स्नेहन, स्वेदन, वमन, विरेचन, वस्ति आदि की सामान्य प्रक्रिया, उनके योग-अयोग का उल्लेख कर बस्ति के कई नवीन प्रकारों का वर्णन किया है । वस्ति देने का सिद्धान्त क्या है, बस्ति स्वयं वातशामक होते हुए भी वात प्रकोपक कैसे हो सकती है, वस्ति के विभिन्न भेद यथा कर्म, काल, योग वस्ति, बृंहण वस्ति का उल्लेख भी सिद्धि स्थान में किया गया है । मात्रा और स्नेह बस्ति का वर्गीकरण भी सिद्धि स्थान की एक नवीन कल्पना है । द्रव्यों की प्रमुखता के आधार पर वस्ति का नामकरण भी सिद्धि स्थान में ही निर्दिष्ट है । ऋतु के अनुसार संशोधन विधि सिद्धि स्थान में ही वर्णित है । मिथ्यायोग से होने वाले विभिन्न उपद्रवों की सम्भावना और उनका प्रतिकार सिद्धि स्थान में ही निर्दिष्ट है । उत्तरवस्ति का विस्तार से विवेचन सिद्धि स्थान में उपलब्ध है । शरीर के तीन महत्वपूर्ण मर्म का सम्बन्धित विवेचन भी सिद्धि स्थान में ही वर्णित है । इसी के साथ-साथ इसमें साम और निराम अवस्था में बस्ति प्रयोग का वर्णन भी किया गया है, रोग विशेष के अनुसार योगों की कल्पना इसी में की गई है । सदा आतुर जैसी परिभाषा भी इसी में निर्दिष्ट है । पशु-चिकित्सा का प्रत्यक्ष संदर्भ सिद्धि स्थान के 11वें अध्याय में मिलता है । 8 महादोष कर भाव एवं उनसे उत्पन्न विभिन्न रोगों का वर्णन सिद्धि स्थान में किया गया है । तंत्रयुक्तियों का वर्णन भी सिद्धि स्थान में किया गया है ।

दयानन्द आयुर्वेदिक कालेज, जालन्धर शहर - 144008

लू के कारण, लक्षण व उपचार

* डा० हनुमान प्रसाद

ग्रीष्म ऋतु में सूरज के प्रचंड ताप के साथ गर्म तथा तीव्र हवाओं के झोंके चलते हैं, जिन्हें आम बोलचाल की भाषा में 'लू लगना' कहा जाता है। इसे आयुर्वेदीय ग्रंथों में अंशुघात बुखार तथा वर्तमान चिकित्सा शास्त्र में इसे सन स्ट्रोक या हीट स्ट्रोक कहते हैं। लू का प्रभाव रोग जनक होता है। कभी-कभी तो लू का असर प्राणलेवा तक साबित हो सकता है। अतः लू एक भयानक प्राणलेवा व्याधि है।

लू लगने के कारण – लू अक्सर उन लोगों को पीड़ित करती है जो गर्म प्रदेशों में रहते हैं, जो दोपहर की धूप में लगातार बिना जूते और छाते के घूमते हैं जो कृशकाय होते हुए भी धूप में ज्यादा भ्रमण करते हैं, जलती भट्ठी या चूल्हे के पास बैठते हैं, प्यास लगने पर आवश्यकता के अनुसार पानी नहीं पीते हैं। ऐसे व्यक्तियों पर लू का असर ज्यादा होता है। साथ ही जो लोग खस के लगे कमरों, कूलर या दूसरे तरह के शीतल किए गए जगह से अकस्मात् तीव्र धूप में बाहर निकल पड़ते हैं उन्हें भी लू चपेट में ले लेती है। लू लगने का आशय है काया से स्नेह रूपी सार-जलीयांश का शोषण हो जाना। सूरज की रश्मियों की चपेट से काया के जलीयांश में कमी हो जाना ही लू लगना कहा जाता है। अर्थात् गर्मी के मौसम में सभी पशु-पक्षी, जीव-जंतु और मानव प्रचंड गर्मी से आक्रांत हो व्याकुल हो जाते हैं तथा गर्मी की प्रचण्डता की चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं तब अंशुघात अथवा लू के प्रभाव में व्यक्ति आ जाते हैं।

लक्षण – कोई भी व्यक्ति लू की चपेट में आ सकता है। इसका प्रभाव एकाएक होता है, लू लगने की दशा में व्यक्ति अनेक व्याधियों के चंगुल में फंस सकता है, इसकी खास वजह होती है। काया से श्वेत न निकलना। इस अवस्था में तन का तापक्रम अकस्मात् बढ़ जाता है। मरीज के मुख पर लालिमा आ जाती है, अत्यधिक शिरःशूल होता है, 104 से 107 डिग्रीफारेनहाइट तक ज्वर बढ़ जाता है। त्वचा में जलन, गर्मी, विदाह (हाथ-पैरों में होने वाली जलन), हाथ-पैरों में ऐंठन का एहसास होना, अत्यधिक तृषा लगना, वमन, गले में खु आंखों में जलन, कानों में दाह, मुख सूखना, सिर में चक्क दस्त, भूख में कमी, शरीर में निर्बलता, चक्कर आ बार-बार मूत्र विसर्जन की समस्या, पेशाब में दाह, न की चाल और सांस की गति में बढ़ोत्तरी, पेशाब अ पीलापन आना आदि खास लक्षण हैं।

लू लगने से व्यक्ति का शारीरिक तापक्रम एका गिर जाता है तथा इसका असर मस्तिष्क तथा खून पर प है। खून के परिसंचरण की चाल धीमी पड़ जाती जिससे मांस पेशियों में ऐंठन होने लगती है। कभी-क तो रोगी बेहोशी की अवस्था में आ जाता है। इस अव में सही इलाज की कमी में हृदयावरोध के कारण मौत हो का खतरा रहता है।

लू से बचाव व उपचार

लू से बचाव स्वास्थ्य रक्षा का साधन है। नि साधन एवं सावधनियों को अमल करके लू के प्रकोप राहत पाई जा सकती है :-

- जहां तक हो सके, प्रचंड गर्मी में घर से बाहर न निकलें। तेज धूप से यथा संभव बचें। तेज धूप जरूरी कार्य वश बाहर जाने से पूर्व तन के उन अंगों जो धूप के सीधे प्रभाव में आते हैं, यथा-मुख, ग पीठ, गर्दन, हाथ व पैर, नेत्र, इन सब पर सन स्क्री युक्त लोशन या क्रीम की हल्की पर्त लगा लेना चाहि क्योंकि सूरज की किरणें जहां हमारी काया को निरोगी रखने में सहायता करती है, वहीं गर्मी के मौस में इसका शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। धूप आंखों की सुरक्षा के लिए छतरी साथ रखें। शरीर सूर्य के किरणों का प्रभाव पड़ने वाले अंगों को सूती- तौलिया या गमछा से ढंककर रखें, जिससे तेज धूप राहत मिलती रहे। उक्त कपड़े सूर्य की गर्मी अवशोषण करते हैं। तेज धूप में निकलने से नेत्रों में होने लगती है, ऐसे में बर्फ के टुकड़े को साफ क से लपेटकर नेत्रों पर कुछ देर रखें, बहुत आराम मि अथवा नेत्र बंद कर अंधेरे कमरे में लेट जाएं अथवा

के टुकड़े को दोनों नेत्रों पर बंद करके लेटे रहें । इन साधनों से नेत्रों की गर्मी, जलन शमन होकर ठंडक आ जाती है ।

- लू से आक्रांत मरीज को सबसे पहले शीतल स्थान पर कंबल या मोटे वस्त्रादि से ढंककर शीघ्र लिटा देना अच्छा रहता है । तदंतर मरीज के सिर पर शीघ्र ठंडा पानी डालें । जल सिंचित कर खस के पंखे या ताड़ के पंखे से हवा करते हुए शीतल पानी या नारियल के जल शरीर को पोंछना चाहिए, जिससे शरीर की अतिरिक्त गर्मी बाहर निष्कासित हो जाए । प्यास को शांत करने के लिए एकाएक ठंडा पानी नहीं देना चाहिए, बल्कि चंदन, उशीर (खस) आदि से युक्त ठंडे पानी का प्रयोग किया जाए । यदि मरीज को कब्जियत (कोष्ठबद्धता) हो, तो उसे तुरंत दूर करें । कब्ज में नींबू जादू का कार्य करता है । कब्ज में नींबू की सबसे बड़ी खासियत यह है कि कड़ी शौच (टट्टी) को नरम करके कब्ज को समाप्त कर देता है । शहद और नींबू को गर्म जल के साथ लेने से दस्त खुलकर आता है, कब्ज की परेशानी नष्ट होती है । प्यास ज्यादा लगने पर नींबू का शर्बत फायदेमंद है । दुबारा इस शर्बत को पीने से मस्तिष्क तरोताजा होता है ।
- लू के मरीज को पतली खिचड़ी, उष्णोदक, चावल का मांड, धुली हुई मूंग या मसूर या चना की दाल का सूप चीनी मिश्रित कर पिलाना पथ्य है ।
- बाहर गर्मी से आकर कभी भी शीतल जल न पीएं और न ही जल्द स्नान करें, थोड़ा रुककर जब काया का तापक्रम सामान्य हो जाए, तभी शीतल जल पीएं ।
- ज्यादा गर्मी के असर, जल की न्यूनता से या जल की गंदगी से लू लगना, अतिसार होना, नकसीर, पीलिया, रक्तातिसार आदि संक्रामक व्याधियां फैलती हैं । इससे राहत के लिए जल खौलाकर पीवें, इससे जल में पाए जाने वाले विषैले कीटाणु समाप्त हो जाते हैं ।
- लू लगने पर एक गिलास उबाले गए जल में शक्कर, नींबू, नमक और चुटकी भर सोडा मिलाकर दो-दो चम्मच पिलाएं ।
- लू से पीड़ित व्यक्ति को धूप, उष्णता तथ गर्म तासीर वाले खाद्य वस्तुओं, चटपटे, गरिष्ठ एवं नशीले और मादक पदार्थों के प्रयोग में रोकथाम करने की खास जरूरत होती है और इसके स्थान पर अधिक मात्रा में ठंडे स्वभाव वाले भोज्य पदार्थों का प्रयोग करना चाहिए । इस हेतु चाय, काफी, शराब, भांग, बीड़ी-सिगरेट, खाने की तंबाकू, पान मसाला इत्यादि उत्तेजक चीजों से बचना चाहिए और इसके विकल्प में नींबू, जल, दही, मट्ठा या नमकीन लस्सी का अधिक प्रयोग कर सकते हैं क्योंकि ये लू के बचाव में हमारी बेहतर सहायता कर सकते हैं । अपने भोजन में हरी साग-सब्जियों का सेवन भरपूर मात्रा में करना चाहिए ।
- गर्मी के मौसम में गहरे रंगीन विशेषकर काले रंग के कपड़ों को न पहनें क्योंकि इन रंगों पर उष्णता का ज्यादा ही प्रभाव पड़ता है, इसकी जगह सफेद अथवा हल्के रंग के कपड़ों को प्रयोग में लाएं । इन कपड़ों से गर्मी का असर काया पर कम पड़ता है ।
- गर्मियों में जहां तक हो सके ज्यादा समय तक परिश्रम न करें, अच्छा रहेगा यदि सुबह आठ-नौ बजे तक और शाम को चार-पांच बजे से कार्य करें क्योंकि इस समय वातावरण ज्यादा गर्म नहीं होता है ।
- ग्रीष्म काल में गर्मी से बचाव के लिए सवेरे किसी पार्क, खुले सुनसान स्थान या नदी के किनारे टहलने से अत्यधिक फायदा मिलता है । सवेरे की ठंडी और शुद्ध हवा सांस के साथ काया में पहुंचकर खून की गर्मी को कम करके ठंडक प्रदान करती है ।
- लू से बचाव के लिए एक प्याज की गांठ, कपूर या पोदीना में से कोई वस्तु जेब में रखें क्योंकि इनमें लू के असर को कम करने की अद्भुत क्षमता होती है । हाथ और पांव के तलवों में प्याज के स्वरस के साथ देशी घी मिलाकर मालिश कर सकते हैं, साथ ही इसके रस का सेवन करने से शरीर में शीतलता का शीघ्र इजाफा होता है । इसका कारण है प्याज काया की उष्णता को

निष्कासित करता है और इसमें गर्मी को अवशोषित करने की चमत्कारिक शक्ति संचित होती है । आहार में सलाद के रूप में कच्चे प्याज का इस्तेमाल करें, जिससे अपच-मंदाग्नि व्याधि नहीं होने पाती ।

- लू से राहत पाने के लिए शरीर को ठंडक और शीतलता प्रदान करने वाले फलों के रस को अधिक से अधिक इस्तेमाल करना चाहिए, क्योंकि गर्मी के मौसम में आंवला. खरबूजा, तरबूज, मौसम्मी, शहतूत, संतरा, बेल, नींबू, फालसा, आम, लीची आदि में तरावट और शरीर तापक्रम को स्थिर बनाए रखने में विशेष योगदान होते हैं।
- लू लग जाने पर हथेली और तलुवों पर चंदन घिसकर लगाने से तथा चंदन का शर्बत पुदीने के रस के साथ पीने से लू का असर खत्म होता है या केवल पुदीने का शर्बत पीने से भी गर्मी से राहत मिलती है और लू का असर भी कम होता है ।
- खीरा, टमाटर और नींबू के रस को बराबर तादाद में मिश्रितकर त्वचा पर लेप लगाएं । सूखने पर दोबारा यह क्रिया करें । चार-पांच मर्तबा दोहराने से धूप से झुलसी त्वचा को कारगर आराम मिलेगा ।
- अंजीर की प्रकृति शीतल होती है । इसलिए यह काया की दाह को समाप्त करता है । काया में यदि दाह का एहसास हो, तो छोटी इलायची और अंजीर का उपयोग किया जा सकता है ।
- यदि गर्मी की वजह सिर गर्म रहता है तथा सिरदर्द हो, तो गाय का मक्खन माथे पर मलना व रखना मुफीद है ।
- सेब के मुरब्बे से शारीरिक दुर्बलता के कारण बेचैनी, श्वेत आना तथा थकान में लाभ होता है ।
- कच्चे आमों का पना या पानक (शर्बत) भोजन में सम्मिलित करें । यह शर्बत शारीरिक व मानसिक रूप से शीतलता प्रदान करता है, लू से बचाता है और तृप्ति युक्त है । इसके लिए कच्चे आम को आग पर भूनकर या उबालकर आम के छिलकों को उतारकर गुठली रहित गूदे में पोदीने की पत्तियां, कालानमक, भुना काला जीरा, कालीमिर्च सभी को एक साथ महीन पीस लें फिर इसमें पर्याप्त मात्रा में जल डालकर घोल तैयार करें । इसके बाद कपड़ा या छन्नी से छानकर रोग से ग्रसित व्यक्ति को सेवन कराएं । दिन में 2-3 बार एक-एक गिलास उक्त घोल को पिलाने से व्यक्ति शीघ्र ठीक हो जाता है । वैसे यह पेय पदार्थ गर्मियों में सभी उम्र के रोगी तथा निरोगी व्यक्तियों को प्रयोग करना चाहिए क्योंकि यह बदन की थकान तथा उष्णता दूर करके शीतलता प्रदान करता है । यह लू की अचूक और सर्वश्रेष्ठ औषधि है ।
- गर्मी के मौसम में निराहार मुख छाछ का सेवन अत्यधिक लाभकारी है । इससे तृषा ज्यादा नहीं लगती और लू लगने का खतरा भी नहीं रहता ।
- जिन्हें प्यास ज्यादा लगती हो, उन्हें संतरे के रस का सेवन करना चाहिए ।
- लू के बचाव में धनियां का प्रयोग बहुत ही हितकारी होता है । इसके लिए पीसे हुए धनिए के घोल या शर्बत तथा मिश्री या शक्कर मिलाकर पीने से लू का प्रभाव शीघ्र समाप्त होता है ।
- चने के सूखे साग (सुक्सा) को जल के साथ मिलाकर उसके रस को लू से पीड़ित मरीज को सेवन कराने से बेहतर फायदा होता है ।
- गर्मी के मौसम में शरीर से अधिक मात्रा में पसीना निकलने के कारण इस ऋतु में नमक का सेवन अन्य ऋतुओं की अपेक्षा ज्यादा मात्रा में करना चाहिए ।

वैसे गर्मी के मौसम की उष्णता तथा धूप से बचाव तो सभी व्यक्तियों को करना चाहिए लेकिन बच्चे, दुर्बल, जरावस्था वाले लोगों को खासतौर से सावधानी बरत करके लू के प्रभाव से बचाव करना चाहिए, क्योंकि इन लोगों में रोग प्रतिरोधक क्षमता कम पाई जाती है ।

इस तरह गर्मी के मौसम में लू से सुरक्षित रहने के लिए शीतल पेय पदार्थों, गर्मी को शमन करने वाले भोजन और लू की तपन को समाप्त करने वाली शीतल औषधियों का प्रयोग करना चाहिए और यदि लू से ग्रसित हो जाए तो डाक्टरी परामर्श के पश्चात् उसका उचित उपचार करना चाहिए ।

ROLE OF SHODHANA PROCESS (PURIFICATION) IN AYURVEDIC GUGGULU PREPARATIONS

* Dr. Kinnari Dhruve **Dr. Rajput Anurag Singh
*** Dr. Anand Kr. Choudhary ****Dr. P.K. Prajapati *****Dr. Subrata De

KEY WORDS :
Guggulu, Shodhana, Vati, Ghana, Disintegration

INTRODUCTION :

The drug GUGGULU has been in use since the time immemorial. It has been described in *Atharvaveda*, the source book of the ancient Indian medicine literature. The later medical works included it as an important drug for the treatment of various conditions.

The gum resin of the *Comiphora mukul* tree, originates as a result of pathologic disturbances or normal metabolic activity, which is commonly called as guggulu. The gum resin resides in the ducts located in the soft bark of the tree. It is obtained through a process called 'tapping'.

Acharya Susruta's observation on the action of the fresh & old guggulu is as being diametrically opposite in nature.

Collection of guggulu, from different parts, contains different phytochemical properties. Generally, it has the following properties.

Chemically gum has been defined as water soluble or water dispersible polysaccharides as well as many water dispersible derivative of polysaccharides. (guggulu completely soluble in most of the organic solvent.) Resin is a class of solid or semisolid organic products with high molecular weight & no definite melting point.

Guggulu is a complex mixture of Steroids, Diterpenoids, Aliphatic esters, Carbohydrates and varieties of inorganic ions. The active constituents of the resins are present in the steroidal fraction which yield sterol, Guggulusterols, 1,2 & 3 sterons. 15 different aminoacids are also found in guggulu.

SHODHANA, is not merely the chemical purification but it can be said that to make substance bio-assimilable they are subjected to shodhana, the specific process of the addition and separation according to the need of our body.

Many preparations with guggulu, as a chief ingredient are described in the books on Pharmacy and therapeutics. Guggulu, in view of its popularity, wide usage in various clinical conditions, its disintegration time, its toxicity has attracted the attention of most modern scientists. Scientific inquiry in various stages for this drug are being ascertained.

OBJECTIVES :

1. To purify guggulu by various methods.
2. To analyze the different sample of raw guggulu by applying two different media by two different methods.
3. To observe disintegration time of preparation of guggulu at different stages.

MATERIALS AND METHOD :

Triphala kwatha and Gomutra were taken for the shodhana (purification) of guggulu. The process were done in three batches for each liquid media. In each batch 1 kg of Ashuddha (impure) guggulu and 4 lit. of Triphala kwatha and Gomutra (each) were taken for the shodhana of guggulu. First of all major impurities like wood, sand, stones etc. were removed manually, then ashuddha guggulu was dissolved in liquid and kept it for 3–4 hrs. It allowed the proper softening to the guggulu, which facilitates better and easy solubility to the guggulu, almost all part of guggulu got dissolved, filtered it with clean cloth. Before the filtration of guggulu solution in liquids, was little heated, because of easy filtration otherwise it sticks to cotton cloth and increases the loss in final product. Then filtrate was heated till it became Ghana (solid) and after drying in water bath and oven, was subjected to prepare pills (vati).

All analytical studies were done as per standards. Analytical study was done for Total solid content, Sp. Gravity, pH. It included loss on drying, ash value, acidic insoluble ash, water soluble

---

2nd M.D. Scholar, Dept of R.S. & B.K. including drug research, Jamnagar.

** *M.D., Dept of R.S. & B.K. including drug research*

*** *Ph.D. (Ayu.), Senior lecturer, Dept of R.S. & B.K. including drug research, Jamnagar*

**** *Ph.D. (Ayu). Reader & Head of the dept. of R.S. & B.K. including drug research, Jamnagar.*

***** *M.Pharm Ph.D., F.I.C. Head, M.P.C.L., Jamnagar.*

extractive value, methanol soluble extractive value, volatile oil content. U.V. spectrophotometric analysis, TLC study etc.

RESULTS :

Three batches were done of each fig media. Here mean is given.

TABLE -1 : Yeild after shodhana & ratio of guggulu v/s shodhana media material.

Materials	Yield after shodhan (mean)	Ratio of guggulu v/s shodhan media
Triphala Kwatha shodhita guggulu (T.S.G.)	20-25%	60-40%
Gomutra shodhita guggulu (G.S.G.)	6-10% loss	80-20%

Gain (due to more solid content of triphala)
Loss (due to less solid content of gomutra)

TABLE -2 : Results of Analytical study.

TESTS	RAW GUGGULU	T.S.G.	G.S.C.
Loss on drying	8.16% w/w	9.25% w/w	8.921% w/w
Total ash	11.845% w/w	6.816% w/w	14.948% w/w
Acid insoluble ash	6.15% w/w	1.31% w/w	1.667% w/w
Volatile oil content	0.8% w/w	0.36% v/w	0.51% w/w
Methanol soluble extractive	46.12% w/w	34.41% w/w	31.52% w/w
Water soluble extractive	38.35% w/w	49.70% w/w	46.17% w/w

TLC study suggested that some of spots which were present in raw guggulu were not present in shodhiṭa guggulu (purified guggulu) which showed during the process some chemical constituents changed. The analytical data suggest the chemical composition of shodhita guggulu affected by the media used for shodhana process.

TABLE -3 : Disintegration of time of Vati (Pills) - Mean

Materials	Time (min.)	Avg. wt. of pills in (gram)
T.S.G.	>60 min.	0.511
G.S.G.	40-45 min	0.511

DISCUSSION :

Behind the shodhana process (purification) of guggulu, principal aim is to seprate the water soluble & insoluble part from the Ashuddha guggulu (impure guggulu) and transfer the virtue of shodhana media into the guggulu. It may be supported the process of extraction of guggululipid from guggulu in modern pharmaceutics. Gum resin guggulu has two fractions, one an insoluble gum fraction which is toxic & the other soluble with hypolipidemic & anti inflammatory properties.

Our procedure of shodhana of guggulu therefore appears to be a sensible way of purifying guggulu , because in the process toxic insoluble part is removed only soluble part of guggulu is taken which is beneficial.

Interestingly it was found that the disintegration time of gomutra shodhita guggulu pills were comparatively very much less i.e. 40-45 min. in different batches. As the disintegration time is a big problem with guggulu vati it can be minimized by using gomutra shodhana media.

The plan was to study the effect specific inert disintegrating agents described in modern pharmaceutics. The MICRO-CRYSTALINE-CELLULOSE P-30 was chosen as an disintegrator for the guggulu vati. The study was performed in 10,15,20, percent ratio, but this integrating agent was not found satisfactory, It didn't show any disintegrating capacity when mixed with guggulu, to see their effects because disintegration of guggulu pills are causing more problem in Ayurvedic industry.

CONCLUSION :

- The process of shodhana has specific effect on guggulu. it can change chemical constituent of guggulu.
- Disintegration time of guggulu is less in gomutra shodhita (purification in gomutra) media than triphala kwatha shodhita (purification in triphala kwatha) media.
- The micro-crystalline-cellulose P-30 has no disintegrator effect on guggulu.

REFERENCES :
1. Charaka Samhita - 1st edition, 1949, with translation by Shree Gulabkunverba Ayurvedic Society, Jamnagar.
2. Sushruta Samhita - 4th edition, 1980, chaukhambha orientalia, Varanasi.
3. Dr. Rajput Anurag Singh – A Pharmaceutico-pharmaco-clinical study on Guggulu w.s.r. to its medohara effect. At I.P.G.T. & R.A. Jamnagar.
4. Studies on guggulu – Clinical & Experimental Trial of Guggulu in Medo-Roga. (Lipid disorders) Central council for research in Ayurveda and Siddha, 1989.
5. Sharangdhara Samhita English translation by K.R. Shrikant Murthy, Choukhambha Orientalia, Varanasi, 2001.

स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक टॉनिक

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

मासिक-धर्म की अनियमितता, कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा होना, भूख न लगना तथा मासिक-धर्म के समय होने वाली तकलीफ व बेचैनी इसके सेवन से दूर हो जाती है।

बैद्यनाथ
अशोकारिष्ट

MEDICINAL PLANTS OF PALAMAU DISTRICT OF JHARKHAND STATE PART-I

K. Chand

The result of extensive medico-botanical exploration carried out during 1971 to 1987 on Daltonganj South, Daltonganj North, Garhwal South and Garhwal North forest divisions of the undivided Palamau district of Jharkhand State. Based on the exploration carried out the author 57 taxa of vascular plants under 49 genera and 22 families widely used in Ayurvéda, Siddha and other systems of medicine are enumerated in the first part of this paper here. Some of the important medicinal plants collected from the area are *Uraria picta, Plumbago zeylanica, Baliospermum montanum, Cochlospermum herbaceum, Balanites roxburghii, Ailanthus excelsa, Soymida febrifuga, Pterocarpus marsupium, Boswellia serrata, Mucuma pruriens, Centratherum anthelminticum, Symplocos racemosa, Stereospermum suaveolens, Gymnema sylvestre, Clerodendrum serratum, Piper longum, Chlorophytum borivillianum, Curculigo orchiodes* etc.

All these collected plant species were deposited in the herbarium of Regional Research Institue (Ay.), Agamkuan, Patna.

The North – West corner of the Chotanagpur division the district of Palamau lies between 23°20' and 85°00'; east longitude. It contains an area of 4921 Sq. miles. The administrative head quarter is Daltonganj situated on Koil tiver 24°3' north and 84°4', which has taken its name Colonel Dalton, Commissioner of Chotanagpur in 1861.

The geological formation of Palamau district comprises mainly rocks of Archean, Vidhyan Deccan trap age. The minerals, coal, bauxite, iron, dolamite, limestone, graphite, mica, falspars, lead and uranium are present in the district. There are several springs along the east-west belt of Auranga and Hutar coal fields. The water is fairly warm and impregnated with sulphurated hydrogen. It has therapeutic properties in curing rheumatism, gout, skin, diseases and digestive disorders.

Vegetation : The factors are dry deciduous type. The Sal forest, the miscellaneous and the thorny scrub forests are present there.

Sal forest : The main assosicates of Sa are Asan (*Terminalia crenulata*), Bija (*Pterocarpu marsupium*), Bahera (*Terminalia belerica*), Kara (*Adina cordifolia*), Kusum (*Schelichera tirjuga* Mahuwa (*Madhuca latifolia*) etc.

Miscellaneuous forest : are Sa (*Boswellia serrata*), Galgal (*Cochlospermu religiosum*), Dhava (*Anogeissus latifolia*). Belanja (*Cardia mavleodii*), Tendu (*Diospyros melanoxylo* Pandan (*Ougenia oojensis*) etc.

Thorny scrubs : The main thorny scru are Kunuds (*Carissa spinarum*). Ber (*Zizyphu jujuba*), Dhonta (*Zizyphus oenoplia*). Beatac (*Flacourtia ramontchi*), Khair (*Acacia catechu*). The annual rainfall is 52.53" and humidity is 20 to 25 in the afternoon.

Agriculture is the main profession of peo and the chief crop is rice followed by Maize, Mana Millets, Gram, Oil seeds, pulses etc. Biri and matc stick manufacturing are the two important sma scale industries of the area, others are charcoa and Katha making, weaving, basket, making, stone sizing, selling of poles of sal and bamboos. The principal forest produce export are logs and poles fire wood, bamboo, tendu leaves, charcoal, katha etc.

Botanical name, Family, Local name Sanskrit name, Medicinal uses, Folklore claims Field boo available, place of Collection and numbers are enumerated below.

The abbreviations used in the descriptio are L. local name, S. Sanskrit name, F. folklore.

MENISPERMACEAE

Cissampelos pareira Linn.

L. pari; S. Patha

Climber, occasional Chhipadohar, 4375, Balchu frequent, 5102.

Plant used as diuretics in diarrhoea, dropsy, cou and urinary troubles.

Tinospora cordifolia miners.

L. Guduchi S. Guduch.

Climber, frequent, Puchadumar, 5231.

Assistant Director Incharge, Regional Research Institute (Ay.), Kothrud Near Gandhi Bhawan, Pune -

Stem is powdered and its infusion used as alternative and aphrodisiac. Starch from roots and stems is used in diarrhoea and dysentery.

Cocculus hirsutus Diels.
L. Jalijamani; S. Patalgarura
Shrub, frequent, Near Mundru 176, Porsam, common, 4862, Kailan, frequent, 5192.

FUMARIACEAE

Fumaria parviflora Lamk.
L. Pitpapra; S. Parpata.
Procumbent herb, frequent in cultivated fields, Bishrampur, 4654, Karmahi, common, 4873.
Dried plant is given in low fever, to purify blood and in skin diseases.

CLEOMACEAE

Cleome monophylla Linn.
L. Hurhur, S. Suvarchala bheda
Herb, common in the cultivated fields, Sanyali, 4844, Bhumphora, 5155.

Cleome viscosa Linn.
L. Hurhur; S. Arkakanta
Erect and glutinose herb, common, Marumar, 4469, Bhumphora, 5158
Leaves used externally in wounds and ulcers. Seeds are carminative, anthelmintic.

COCHLOSPERMAEAE

Cochlospermum gossypium DC
L. Katira, Hopo, S. Peeta karpas.
Large shrub, occasional, Harnamana 2571.
Gum used in coughs and gonorrhoea.

FLACOURTIACEAEC

Flacourtia ramontchi L' Herit.
L. Merle.
Medium sized tree, frequent Pardari, 4640.
Fruit is used in jaundice and enlarged spleen. Gum is given with other ingredients for cholera.

TAMARICACEAE

Tamarix dioca Roxb.
L. Jhao, S. Pisula
Undershrub, common, Garhgaon, 4964.
Galls and twigs are used as an astringent.

DIPTEROCARPACEAE

Sherea robusta Gaertn. f.
L. Sal. S. Sala
Tree, abundant, Garu, 2657.
Fruits are boiled and eaten as meal. Fruits are eaten (after boiling) to cure diarrhoea.

MALVACEAE

Sida veronicaefolia Lam. Syn. *Sida cordata* (Burm.f.) Bross.
L. Phuli, Bariar, S. Bhumibala
Suberect herb, frequent in moist sandy places, Marumar, 2558, Garu, 2617, Chhipadohar, occasional, 4371, Ledari, Kauwa, common, 4771, Machpani, 4990, Godermana, 4621, Tal, 4851.
Whole plant pounded, given orally in case of nausea and vomiting.

S. cordifolia Linn.
L., Bariar, S. Bala
Herb, frequent along roadside on waste places, Ruda, 2448, Marumar, 4462, Shishari, 5145.
Decoction of root with ginger used as febrifuge. Root bark used were Sesamum oil in facial paralysis and sciatica.

S. rhombifolia Linn.
L. Ipirpijon, S. Khetrabala
Erect shrub, occasional Ramandag, 4383, Pardari, 4641.
Leaves pounded and applied on swellings. Root considered valuable on swellings.

Abutilon indicum Don.
L. Kungye, S. Atibala
Erect shrub, frequent, Kutku, 4825, Phulwar, 5210.
Bark used as an astringent and diuretic, Infusion of roots used in fevers. Seeds are used as aphrodisiac, tonic, rubbed to a paste with milk used to cure itch.

Urena sinuata Linn.
L. Kanguya.
Undershrub, occasional, Meral, 4350, Machpani, 4977.
Root applied externally for lumbago.

Urena lobata Linn.
L. Bachata, S. Vanbhenda
Herb, frequent in open places, Chhip dohar, 2439, Side, 4635.

Root used as an external remedy for rheumatism.

Thespesia lamps Dalz. & Gibs.

H. Vankarpasi, S. Bhardwaji

Shrub, frequent, Betla, 189, Machpani, 4996, Hisra, 4673.

Root and fruit used in gonorrhoea and syphilis.

Kydia calycina Roxb.

H. Pola. L. Derle.

Small tree, frequent, Mundru, 217, Lodhfall 4485, Kutku, 4588, Kakarahi, 4970, Bhandaria, 4789.

Leaves pounded and made into paste applied in rheumatism.

STERCULIACEAE

Helicteres isora Linn.

L. Aitem, S. Awartani.

Large shrub, common, Belta, 201, Ramandag, 4391, Binda Pahar, 4546, Ramgarh, 4688, Manatu, 4876, Balchaura, 5110.

Fruit useful in the gripping of bowels and flatulence of Children. The root bark and fruits are given in colic.

Buettneria herbacea Roxb.

L. Kamraja, Idelsanga

Large and weak herb, common, Chhipadohar, 2432, Meral, 4337, Hisva, 4674, Chapkali, 5123.

Root stock ground and rubbed on swellings of legs. Roots are also used as aphrodisiac.

TILIACEAE

Triumphetta bartramia Linn.

S. Jhinjhirita

Herb, common, Palamauforte, 188, Kari, 4696, Sanyali, 4842.

Leaves, flowers and fruits used in diarrhoea and dysentry. Root, a hot infusion taken to facilitate childbirth.

Grewia hirsuta Vanb.

L. Gursukri, S. Gudsarkara.

Erect herb, occasional, Ushul pahar, 4401, Lat, 2464.

Fruit and root used in diarrhea and dysentery. Root pounded in water applied externally to hasten saturation and as dressing for wounds.

EUPHORBIACEAE

Croton oblongiflorus Roxb.

L. Putni, S. Nagdanti.

Shrub or small tree, frequent, Bukakona (Ga 2635, Kari, 4631, Porsam, 4863.

Bark used in external applications for sprains an liver diseases. The bark and root are given as a purgative and also as an alternative in dysentery

Mallotus philippinensis Muell. Arg.

L. Rori, S. Kampillak

Small tree, frequent, Mundru, 182, Bukakona hill (Marumar) 2513, Sonali, 4550, Lehda, 4717.

Glands and hairs on the fruit are used as anthelmintic. Red powder of the seeds is used as a remedy for ring worms.

Baliospermum montanum Muell.

S. Danti.

Shrub, frequent, Kakarati 4968, Ariglat, 4637, Kailan, 5197.

Root used in dropsy, anasarca and jaundice Decoction of leaves in asthma. Seed oil is applied externally in rheumatism.

Acalypha indica Linn.

H. Kuppi, S. Muktavarcha.

Erect herb, occasional, Chhipadohar, 4363.

Plant useful in bronchitis, pneumoides and asthma Leaves used in scabies.

Sebastiana chamaelea Muell. Arg.

L. Bhui erandi

Herb, rare in moist places, Lat, 2451.

Plant is taken in form of a ghrita considered tonic and applied to the head in vertigo.

Bridellia retusa Spreng.

L. Kaj, S. Mahavira.

A large tree, common, Belta, 212, Lodhfall, 4501. Arighat, 4662, Kutku, 4818, Seoti, 4936.

Bark with gingilic oil used as a liniment in rheumatism

Cleistanthus collinus Benth.

L. Kargali.

Small tree, common, Belta, 200, 4534, Arighat 4661, Chapkali, 4751.

Plant is astringent and extremely poisonous.

Phyllanthus simplex Retz.

Undershrub, common, Meral, 4349.

Fresh leaves bruised and mixed with buttermilk used as a wash for itch in children. Root used as external application for mamary abscess.

Phyllanthus urinaria Linn.
S. Bhuiamalki bheda
Under shrub, common, Meral, 4350.
Plant used in gonorrhoea and other genito urinary trouble.

Emblica officinalis Gaertn.
L. Anwala, S. Amalki.
Small tree. Lat, common, 2460, Garu, 2622, Sarju, 2659, Hernamand, 4403, Dwerpaforest, 4949, Bhandaria, 4610, Ledari kauwa, 4760, Chapkali, 5117.
Dried fruit useful in haemorrhage, diarrhea and dysentery.

Putranjiva arjuna W & A
L. Putramjiv, S. Putranjiva
Medium sized tree, Palamauforte, 187.
Leaves, fruits and stones of fruits given in decoction in cold and fever.

Euphorbia dracanculoides Lam.
L. Parwa
Erect herb, frequent, Kutku, 4600, Machpani, 4984.
Fruit used to remove warts.

Euphorbia hirta Linn.
L. Dudhi, S. Dugdhika.
Herb, frequent in moist places, garu, 2616, Meral, 435, Ramdanga, 4607, Lehda, 4718. Plant used in disease of Children in worms, bowel complaints and cough.

ZYGOPHYLLACEAE

Balanites roxburghii Planch.
L. Ingun, S. Ingudi
Spiny shrub, frequent, Birharwa, 4955.
Seeds given in cough and colic. Bark, unripe fruit and leaves are purgative and anthelmintic.

GERANIACEAE

Biophytum sensitivum DC
H. Lakchana, S. Lajjaluka
Erect small herb, occasional, Chhipadohar, 4364. Ramgara, common, 4692.
Powdered seeds applied to wounds. Decoction of roots used in gonorrhoea and lithiasis.

RUTACEAE

Murraya exotica Linn.
L. Athil.
Shrub, occasional, Ruda (Garu). 2643.
Leaves stimulant, astrigent, administered in diarrhea and dysentery.

Aegel marmelos Correa.
L. Bel, S. Bilwa
Medium sized tree, occasional, Baresand. 4450, Kailan, 5203.
Pulp of ripe fruit used as laxative and cooling. Half ripe fruit used as astringent, digestive and in diarrhoea.

SIMARUBACEAE

Ailanthus excelsa Roxb.
L. Ghorkaranja, S. Mahanimba.
Tree, rare, Sarju (latehar), 2650.
Bark used for dyseptic complaints, antispasmodic, given in chronic bronchitis and asthma.

BURSERACEAE

Garuga pinnata Roxb.
L. Kekra.
Medium sized tree, Chhipadohar, frequent, 2432, Lat, 2575, Hisra, 4674.
Juice of leaves mixed with honey given in asthma. Stem juice dropped into the eye to cure conjunctivitis.

Boswellia serrata Roxb.
L. Salai, S. Shallaki
Tree, common through out, Henamand, 2564.
Gum used in rheumatism, nervous and skin diseases.

MELIACEA

Soymida febrifuga A. juss.
L. Rohan, S. Rohini
Medium sized tree, frequent, Harnamand, 2568, Sarju, 2589, Arighat, 4663
Bark used in debility, intermittent fevers, diahorrea and dysentery.

Melia azedarach Linn.
L. Neem, S. Nimba
Tree, commonly planted, Mahuwadanr, 2686.
Flowers and leaves used internally as anthelmintic, antilithic, diuretic and emmenagogue.
Seeds used in rheumatism.

CELATRACEAE

Celastrus paniculatus Willd.
L. Konjri, S. Jyotismati.

Climbing shrub, frequent, Lodh, 4480.

Seeds stimulant, aphrodisiac, used in rheumatism, leprosy, gout and various fevers.

Eleodendron glaucum Pers.

L. Mini.

Large tree, frequent, Birharwa, 4958.

Fresh root bark, rubbed into a paste with water applied to swellings. Powdered leaves used as fumigatory to rouse women from hysterical syncope.

RHAMNACEAE

Ventilago madraspatana Gaertn.

L. Keonti, S. Raktavalli.

Large climber, common, Dhurup, 4518, Sonali, 4552, Hisra. 4676, Porsam, 4869, Kailan, 5199.

Powdered root bark useful in atomic dyspepsia, debility and in mild fever.

Ventilago calyculata Tulasne

L. Keonti

Climbing shrub, frequent, Aks, 2668.

Juice of bark and young shoots applied to the body as a remedy for pains which accompany malarial fever.

Zizyphus oenoplia Mill.

L. Dathora, S. Sringalakoli.

Prickly shrub, occasional, Meral, 4342, Hisra, 4671, Jatang, 4854, Manatu, 4883.

Decoction of root bark used to heal fresh wounds. Fruit is used as an ingredient of stomachache pills.

Zizyphus jujuba Lamk.

L. Dhani, S. Badara.

Small tree, frequent, 4840.

Fruit is considered to purify the blood and aid digestion. Root used in deoction in fever and as powder applied to old wounds and ulcers.

VITACEAE

Ampelocissus tomentosa (Heyne ex Roth) Planch.

L. Oteron.

Climber, frequent, Machpani, 4998.

Root used to allay swellings.

SAPINDACEAF

Cardiospermum halicacabum Linn.

L. Galphul, S. Karnasphota

Wiry herb, frequent, Hisra, 4672, Bhumphora, 5151

Root used for rheumatism and nervous diseases

ANACARDIACEAE

Mangifera indica Linn.

L. Aam, S. Amra.

Large tree, frequent, Amwatikar, 2590

Ripe fruits useful in hemorrhage from ulcers, lun

or intestines, Unripe fruit used in opthalmia.

Buchanania lanzan Spreng.

L. Piyar, S. Pryal.

Small tree, frequent, Hermamand, 2572

Baherakhar, 4558.

Kernel used as ointment in skin diseases. Gu

used in diarrhoea.

Semicarpus anacardium Linn.

L. Bhelwa, Soso, S. Bhallatak

Medium sized tree, frequent, Dhurup, 4513, Ka

4628, Lehda, 4708, Chapkali, 5120.

Oil from roots used externally in rheumatism an

leprous nodules.

Lannea grandis (Dennst.) Engl.

L. Gingon, S. Jingani.

Small or medium sized tree, commo

Chhipadohar, 2547.

Bark used as a lotion in leprous ulcers an

obstinate ulcers. Leaves boiled and applied for loca

swellings and pains of body.

Acknowledgement

The author is much grateful to the Director, CCRAS

New Delhi for providing necessary facilities durin

the survey work.

References

1. Haines, H.H. 1961, Botany of Bihar and Oriss
Part -I-III, Botanical Survey of India, Calcu
2. Chunekar, K.C. 1969, Dravyaguna Vigya
Chaukhamba Vidya Bhavan Chowk, Varanasi-1
3. Sharma, P.V. 1969, Dravyaguna Vigya
Chaukhamba Vidya Bhavan Chowk, Varana
-1
4. Chopra, R.N. 1965, Glossary of Indi
Medicinal Plants, CSIR, Near Delhi.
5. Chandra, K.et. al. 1969, Medicinal Plants Wea
of Rajgir, Bihar, B.M.E.B.R., Vol. X, No. 3-
pp. 124-161.

Therapeutic use of Aloe Vera (Grithkumari)

* Dr. Ashok Sharma **Deepika Bhatia ***Dr. K.N. Yadav

Latin Name : Aloe Vera
Family : Liliacae
Varg : Tikshanvirechan

Nriukti :-

Grithkumari, Istri, Balika va' (Bhaav Prakash) 'Grithen Grithvadrosen Kumari Sundri' (Shabd Ratnavali)

Pravav :-

Kumari, Grahakanya, Grithkumarika, Gheekunwar, Gavaarphatha, Dekvaar, Indian Aloe, Musabbaar, Aloe, Curacao Aloe, Lily of the desert.

Swaroop :-

It has 1-2 ft. high herb. Its leaves are 15 inch, 4 inch wide, ¾ inch thick, maansal, Kantitandukar and chakrakaar. A 'Pushpdhwaj' arises from centre of herb which was has red flowers. Flower and fruit occurs in winter season. Fruit – Koshthsfoty.

A Yellow coloured fluid is secreted on cutting leaves.

Composition :-

It has Aloin – glycoside; Barbeloin; Resin, Galic acid, Acemannan, Aloins, Amino Acids, 96% water, enzymes, Fatty acids, essential oil, etc.

Types :-

1. Curacco Aloes
2. Socotrine Aloes
3. Cape Aloes

According to Indian Pharmacopia

Other Types :-

1. Var. Chinensis Baker
2. Var. Littoralis koeing ex baker
3. A. Variegata Linn.

Guna :-

Guna - Guru, Snigdh, Pichil
Rus - Katu, madhur
Vipak - katu
Virya - Sheet

Karam :-

Deepan, Paachan, Vednastaphan, Vranropan, Shothhar, Bhedan, Yakrit – Uttejak, Rakta Shodhak, Mutral, Vrishya, Aartavjanan, Garbhsravkar, Twagdoshhar, Jwarghn, Balya.

Uses :-

1. Dosh - Prayog :- In Kapha Paitik abnormalities.
2. Antihelminthic, Antibacterial, Antifungal, Anti inflammatory, Antimicrobial, Anti parasitic, Anti Viral. Purgative action – so used in AIDS.
3. Blood Conditions :-
   - Aids Hyperglycemia
   - Aids in blood circulation
   - Haemorrhoids
   - Lowers blood sugar in non-insulin dependent patients
4. Cardiovascular Conditions :-
   - Relieves Hypertension
   - In Menstrual Cramps and Irregularity
   - In Suppressed Menses
5. Gastro Intestinal Conditions :-
   - Acts mainly on large intestine
   - In constipation
   - Relieves nausea
   - Relieves symptoms of indigestion
   - Stimulates activity of gastro intestinal tract
   - Stiumulates intestinal motility
6. Immune System Conditions :
   - Allergic reaction
   - Has immune stimulating action
   - Strengthens body's natural resistance
7. Inflammatory Condition :-
   - Relieves Arthritis
8. Liver Conditions :-
   - Assists Liver and gall bladder function
   - Helps Hypercholesterolemia
9. Respiratory Tract Conditions :-
   - Relieves Colds
   - Relieves Symptoms of Oesophagal Reflex
   - Relieves Symptoms of Gingivitis
10. Other Conditions :-
    - Aids in lymphatic Circulation
    - In ulceration
11. External use of Aloe Gel In :-
    - Acne
    - Abrassion
    - Boils
    - Burns
    - Cuts and Scratches
    - Dandruff
    - Dermatitis
    - Oedema
    - Psoriasis

---

* Professor ** BAMS II Prof. *** Reader
S.B.M.N. Ayurvedic College & Hospital, Asthal Bohar, Rohtak (HR)-124

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

- Skin Irritation
- Sun Burn
- In skin supple
- Has moisturing effect on skin
- In Exhaustion
- In Lower back pain
- In sun burn rashes, scratches

Contraindications :-

- Aloe Vera should not be used by anyone suffering with inflammatory intestinal diseases such as Appendicitis, Gastrointestinal illness, Stomach pain.
- It should not be used by
- Children
- Pregnant Ladies
- Lactating Mothers

Complications :-

- May cause uterine contractions in pregna ladies and may trigger miscarriage.
- May cause purging of child in lactat mothers.
- Aloe latex may cause diarrhoea.
- Long term use may turn urine brown or r and may become addictive.
- In rare cases, may cause allergic reactio

Thus Aloe Vera is known as the First – Aid Plan the Burn Plant, the Miracle Plant and th Medicine Plant.

पल-पल जीवन में आनन्द अविरल
जब उत्साह हो जीने का,
जब हर पल आप जीना चाहें भरपूर
बैद्यनाथ का वीटा-एक्स गोल्ड ।
स्वर्ण भस्म (शुद्ध सोना) की ताकत से भरपूर ।
जोश के लिए, उमंग के लिए
आनंद से भरपूर जीवन के लिए ।
VITA-EX GOLD
ENRICHED WITH PURE GOLD
बैद्यनाथ
वीटा-एक्स गोल्ड
स्वर्ण भस्म की ताकत से भरपूर

Ayurvedic Approach to the Management of Lifestyle Disorders

* Sulochana Bhat

Introduction

Ayurveda, one of the most ancient medical sciences of the world was evolved through intuitive, experimental & perceptual methodology. The main objective of Ayurveda is to promote health and there by preventing the ailments and to relieve the humanity from all categories of miseries i.e. physical, mental, intellectual and spiritual. The approaches are essentially holistic.

Definition of Health - Ayurveda conceives life as a four dimensional entity. *Ayu*, the living entity is the sum total of physical body, senses, the psyche and the soul. In accordance with the four dimensional concept of *Ayu* the science of life Ayurveda propounds an equally comprehensive four dimensional concept of *'Svasthya'* or health.

Determinants of Health - Health is essentially a product of interaction between an individual with his environment. As regards the individual factors to be considered in this context, emphasis is laid on *prakriti* (psycho-somatic constitution), *sattva* (mental status), *vayas* (age), *bala* (strength), *agni* (digestion & metabolism), *ojas* (immunity) etc. Depending upon the relative prepondrance of *dosas* (humors), the individuals may belong to different genetically determined *dosa-prakrtis* (body constitution). Similarly the man belongs to one of the manasa-prakrits (mental setup). Similarly the impact of environmental factors such as *desa* (habitat), *kala* (seasons or weather), *vayu* (environment), *udaka* (water), etc. have been emphasized. There is vivid description of the chronobiological effects of different seasons which have been described in terms of the *tridosas* (*vata, pitta & kapha*) theroy of Ayurveda.

Lifestyle Diseases

Lifestyle diseases are diseases that are caused by, or at least developed as a result of various lifestyle behaviours such as poor nutrition, smoking, drinking too much alcohol and not doing enough physical activity. Many of the diseases that are most common nowadays are lifestyle related. A collection of lifestyle effects and environmental factors accumulate over the years and develop into lifestyle diseases which are also known as diseases of civilization.

Environmental factors such as Air and Water Pollution, Occupational hazards like chemicals radiation, sunlight, smoke, stress and personal indiscipline starting from irregular food habits, sleep, exercise and attitude contribute to the causation of diseases. Most of the non-communicable diseases like Diabetes Mellitus, Coronary Heart Disease, Obesity, Hypertension, Cancer, Anxiety Neurosis and other Mental Problems, Kidney and Liver Disorders are listed under lifestyle diseases.

Treatment - Mainly there are two factors, which influence the causation of life style disorders; modifiable & non-modifiable risk factors. What is a risk factor for one disease, is often a risk factor for many different chronic diseases. So, it makes more sense simply to modify the lifestyle when it is modifiable. Avoiding or minimizing the risk factor is prime measure. The more we know about what causes certain lifestyle diseases - the risk factors, the more we can try to reduce the impact these diseases have on our society.

The Ayurvedic texts describe a comprehensive schedule of health regimen for preservation of health as a code of health conduct popularly known as '*svasthavratta*'. This includes the daily code of health conduct (dinacarya), conduct for the night (ratricarya), conduct in relation to various seasons (rtucarya) etc. Details about life style, diet, exercise, personal and social hygiene (Sadvrtta) have been described. Extensive information is available on nutrition and dietetics. Ayurveda also describes in detail the role of periodical biological cleasing (*pancakarma)* measures and consumption of restorative remedies called *rasayana* (rejuvenation) for promotion of health, longevity and resistance against disease i.e. *vyadhiksamatva.*

Pathya (Diet) - Most health problems

Research Officer (Ay), Central Council for Research in Ayurveda and Siddha,
Dept. of AYUSH, Ministry of H&FW, Govt. of India, New Delhi.

develop due to the wrong eating habits and cooking methdos. Ayurveda has minutely described qualities and effect of different food on human body. The *Aahara* (Diet) is one of the three pillars (Trayopastambha) of life described by Charaka, an ancient scholar.

The diet is mainly of two types; general & diseases specific. The diet has been advised based on the age, digestive power, constitution, habitat, season, disease and so on. Some of the general rules about the diet explained in Ayurveda such as intake of wholesome food in right quantity and at right time, consumption of food which is easily digestible, energetic, soft, warm only when one is hungry are very scientific.

Personal Hygiene - The ultimate goal of mankind is to attain *Moksha*- liberation that can be achieved only through a healthy state of being. Therefore, a man should try to live a healthy long life and try to keep him free from diseases, sufferings and also from reproaches of any kind. For this an elaborate description is available on personal hygiene, which includes diet and regimen during daily routine (*Dincharya*), seasonal routine (*Ritucharya*) and behavioural and ethical principles (*Sadvritta*). Observance of certain rules regarding suppressible and non-suppressible urges also pave way towards positive health. Avoidance of unwise courses is essential to keep a man healthy.

Mental Hygiene - The practices described for mental hygiene and promotion of mental health in Ayurveda include (1) *Achara - rasayana* (ethical principles). (2) *Dharaniya vega-vidharana* (controlling negative emotions). The mind and the body continuously interact and influence each other under the influence of environmental factors. If such an interaction is not controlled and moderated appropriately, it gives rise to pathological problems. It is with the objective of appropriating such situations that Ayurveda introduces the code of *sadvtta* pertaining to mental, ethical, social, moral, personal etc. One finds and equally comprehensive description of mental hygiene practices in the context of *acara-rasayana* where the ancinets described a schedule of good conduct of good conduct to be observed by the man desirous *rasayana* effects leading to longevity, immunity a promotion of mental health. It appears ea perceivable that a peaceful happy life resulting o of good conduct will obviously be associated w a state of positive health and anabolism.

The rules of life laid down by Ayurved are very beneficial in preventing such disorder Observance of *Swastha vritta* such as getting u early in the morning before sunrise (*brahm muhurta)*, regular elimination of body wastes meditation, cleaning the body, exercise, massage caring of eye, nose etc. diet with respect to season age, digestive strength constitution, proper, slee sexual activity etc. are very essential part of da routine. The seasonal routine includes the diet an practices to be followed during different seasons

Ayurvedic Approach

Diabetes Mellitus-Madhumeha

In this disease the person voids sweet an turbid urine which is comparable to honey (madhu The cause of the disease is attributed to hered (*Bijadosha*) as well as acquired (Apathyaja). The etiology of the later veriety is enjoying sedentary life style, excessive sleep, excessive intake of various milk preparations, soup of the meat of domestic, aquatic and marshy land inhabiting animals, heavy food sweets etc. Even in the firs variety the above causes are supportive factors for manifestation of the disease.

Treatment - Avoid causative factors (*Nidana Parivarjana*). Cleansing in case of patients having abundance of toxins (*dosa*) by *Pancha karma* (five cleansing procedures). The principa mode of management includes diet, exercise an drugs. Diabetics in general are advised low calor diet with *katu* (pungent), *tikta* (bitter), *kasa* (astringent) qualities. *Yuva* (barley) is considere the best cereal for them. Exercise and active life style is beneficial. Exercise and active life style is beneficial. Ayurveda considers diabetes a incurable condition and prescribes certain remedies to control the metabolic state. The common pla drugs, which are prescribed in the treatment a *vijayasara, tejapatra, karela, methika, bilvapa* *nimba* etc. Besides, the use of *silajatu* preparations like *chandraprabha vati* and *siva gutika* is also popular. Many other herbal, metalic-mineral formulations have also been indicated. Ayurveda considers diabetes as a condition where there is continued loss of immunity and hence there is a need of restoring the immunity by regular use of *rasayana* remedies. The strength of weak and emaciated patient should be preserved with nutritive diet. Use of sufficiently old and matured verities of rice, barley, wheat, different preparation of Bengal Gram, Horse Gram etc are recommended.

Hypertension-Vyanabala Vaisamya

Vyanavayu (type of biological humor) controls the blood circulation and the vitiation of the same results into the impairment. Hypertension is defined as a Systolic pressure >140mmHg and/ or Diastolic Blood pressure >90mm Hg. An individual can show wide variation of B.P. throughout the day, depending upon physical activity; body posture; mental activity; environment and Consumption of Drugs, Alcohol, Tobacco & wrong eating habits. The causes of the disease are hereditary & faulty life style. In essential Hypertension the exact cause is not known. It may be asymptomatic in the early stage, large number of hypertensives have no symptoms while in some cases headache, giddiness, irritability, fatigue and sleeplessness are the common features.

The treatment of Hypertension must start with proper diagnosis of the origin & to follow the Healthy lifestyle - '*Swasthavritta*'. The Herbs like Sarpagandha (*Rauwolfia-Serpentina*), Brahmi (*Bacopa Monnieri*), Shankapushpi (*Convolvulus Pluricaulis*), Chandana (*Santalum album*) lasuna (*Allium Sativum*) etc. are useful. Meditation, relaxation, *pranayama* & light Yoga are beneficial in this condition. Intoxicants like Alcohol, Tabacco, Excess Tea, Coffee etc should be avoided. Incompatible & irregular food habits, excessive oily, spicy, ghee, butter, pickles, papad, salt etc. aggravate the condition. Stress, Strain and Anxiety should be avoided.

Lipid Disorders — ***Medoroga***

Lipid disorders are characterized by abnormal concentrations of lipids in body tissues or in extra cellular fluid. The main causes are lack of exercises (*Avyayama*) intake of high caloric food (*Slesmavardhaka Ahara*), sleep in day time (*Diva Swapna*), improper action of endocrine glands like thyroid gland, pituitary body, suprarenal etc. The main symptoms are excessive accumulation of fat in the body, Breathlessness, Fatigue, excessive perspiration, decreased Libido etc.

Treatment - To eliminate the accumulated toxins *Shamshodhana* - Cleansing therapy like therapeutic purgation, emesis, Enema etc should be followed here, Later on treatment measures should be given through diet/ drug and exercise. Herbs like Sunthi (*Zingiber Officinalis*), Pippali (*Piper Longum*), Marica (*Piper nigrum*), Guggulu (*Commiphora wrightti*), Eranda (*Ricinus Communis*), Honey, Lemon and drugs having pungent and the condition – Food articles that are light in nature, with less fat & sweet are to be used here. Strenuous activities like Brisk walking, Swimming, Running; Aerobics etc. according to one's health should be followed. Daytime sleeping, excessive intake of sweet, milk products, fat and sedentary life style should be avoided.

Heart Diseases - ***Hrid Roga***

The *Doshas* vitiated by their etiological factors produce some abnormality and impairment in the cardiac function to Heart diseases. The main causes are unwholesome diet specially heavy, indigestible food, mental stress, Smoking, Alcohol and other drug addictions, excessive physical exertion, irregular or absence of exercise, and as a complication of Diabetes Mellitus, Hypertension, Renal failure, obesity etc. Psychological causes are stress, anxiety, fear, depression. The symptoms are Chest pain, Palpitation, Dizziness, Heartburn, Breathlessness, Fatigue etc. and many times in may be asymptomatic.

Treatment - Single Ayurvedic herbs like Arjuna (*Terminalia Arjuna*), Pushkaramula (*Inula racemosa*), Guggulu (*Commiphora wrightii*) Garlic (*Allium Sativum*) and other compound Herbomineral preparations are recommended. *Saatvic* type of food i.e. Light & Vegetarian diet such as Barley, green gram, Patola (Trichosanthes dioica), Amla (Emblica Officinalis), fruits etc. to be consumed daily. Reduction of additional weight, maintaining the blood pressure and keeping the blood sugar in control. Light exercise, positive thinking, walking, yoga, breathing exercises and meditation are beneficial. Any kind of strenuous activity (mainly after meals, oily, spicy and heavy meals should be avoided. Irregular hour of sleeping, mental worries, stress and other emotional disturbances should be completely avoided.

Insomnia - ***Nidranasha***

The chief causes of sleeplessness are psychic i.e. depression, anxiety, stress, strain bad thought etc. Sleeplessness may also arise as the result of pain anywhere in the body, illness, organic brain disease etc.

Treatment - *Panchkaram* measures like *Shirodhara, Shirovasti & Nasya* should be prescribed massage followed by hot bath, hot packs, hot drinks, head & foot massage, deep relaxation techniques, light exercise, yoga, walking, breathing exercise, meditation are helpful in this condition. Comfortable, quiet, warm; surrounding and counseling are beneficial. Drugs like Sarpagandha (*Rauwolfia serpentina*), Brahmi (*Bacopa Monnieri*), Shankhpushpi (*Convolvulus Pluricaulis*), Jatamansi (*Nardostachyus Jatamansi*), Ashwagandha (*Withania Somnifera*) etc. Diet rich in nutritious food such as milk, almonds, ghee, fruits, vegetables should be prescribed as per the physical condition of the patient. Unwholesome diet, heavy meals, excessive physical or emotional exertion, Alcohol, Smoking, Tea, Coffee etc should be avoided especially in the late evening and night. The underlying disease should be properly tackled.

Anxiety Neurosis - ***Chittodwega***

According to Ayurveda, a person leading a healthy lifestyle has no fear of diseases. The emphasis is laid on the individual's own contribution rather than the other causes for causation of diseases. Indulgence in malpractices leads to malfunctioning of mind that manifests into number of diseases. Anxiety disorder is one such disorder that may even cause functional impairment of the body leading to psychosomatic disorders. The symptoms of Anxiety Neurosis are anxiety, nervousness, palpitation, lack of sleep and concentration.

Treatment - Two types of treatment are advised for mental disorders. *Daivayapashraya Chikitsa* (divine therapy) like *Mantra* (incantation), *Mani* (wearing gems), *Homa* (sacrifice), *Prayascita* (ceremonial penitence) and *Yuktivyapashraya Chikitsa* (rational therapy) i.e. use of drugs and therapies and *Satvavajaya* (counseling). The single herbs like *Sankhapuspi (Convolvulus pluricaulis)*, *Mandukparni (Centella asiatica)*. *Brahmi (Bacopa monnieri)*. *Vacha (Acorus calamus)*. *Jyotismati (Celastrus paniculatus)*, *Jatamansi (Nardostachys jatamansi)*, *Ashwagandha (Withania somnifera)*, *Kusmanada* (ash gourd), *Śwarna* (gold) are useful.

Bronchial Asthma - Tamaka Swasa

It is named so in Ayurveda because during the acute attack of dyspnea (*Swasa*) the patient enters into darkness (*Tama*). Asthma is a disease of airways that is characterized by increased responsiveness of the tracheobronchial tree to a multiplicity of stimuli. Asthma is manifested physiologically by a wide spread narrowing of the air passage which may be relieved spontaneously or as a result of therapy, and clinically by paroxysms of dyspnoea cough and wheezing. The cause of this disease according to Ayurveda is consumption of heavy indigestible non congenial diet, excessive exertion and mental activities, exposure to chemicals dust etc.

Treatment - Ayurveda classified four principal lines of treatment i.e. *Nidana Parivarjana* (avoid the cause), *Amapachana* (detoxification), *Samshamana Samshodhana* (cleansing) and *Samshamana* (palliative). The single drugs useful in this condition are *Sirisa (Albezia lebbeck)*, *Haridra (Curcuma longa)*, *Bharngi (Clerodendrum serratum)*, *Brihati* *Kantakari (Solanum Xanthocarpum)*, *Brihati (Solanum indicum)* *Vibhitakphal (Terminalia belerica)*.

ROLE OF SAMSARJAN KRAMA IN PANCHAKARMA THERAPY

Dr. Padma Lochan Sankhua, M.D. (Ayu.)

Abstract :

[Samsarjan Krama is a special dietetic regimen which consists of *Peya, Vilepi, Akrita, Yusa, Krita Yusa, Akrita Mamsarasa* and *Krita Mamsarasa*. These are serially applied to the person who has undergone the Panchakarma therapy by pacifying the vitiated *Pitta, Kapha* and *Vata* dosa.

Introduction :

Panchakarma therapy occupies a vital position in Ayurveda. It consists of five treatment procedures. According to Maharishi Charaka these are (1) *Vamana* (2) *Virechana* (3) *Anuvasana vasti* (4) *Asthapana Vasti* and (5) *Nasya*. But Maharishi Sushruta differs in this counting. According to him these are (1) *Vamana* (2) *Virechana* (3) *Vasti* (4) *Nasya* and (5) *Rakta Mokshana*. *Snehana* and *Swedana* and are placed in *Purvakarma* of the above mentioned procedures. In the present era the particular term *'Panchakarma'* has become *'Rudhi'* in which a number of treatment procedures have been involved. *Samasarjan Krama* comes in the *Paschata Karma* of *Panchakarma* therapy.

When procedures like *Vaman, Virechan* etc. are applied to a person his digestive fire (*Pachakagni*) decreases. In that condition some specified light diets are serially applied to him in order to restore the *Pachakagni*. That's why Maharishi Charak has told that

संशोधनाम्भ्यां शुद्धस्य हृत दोषस्य देहिनः ।
यात्यग्निमन्दतां तस्मात् क्रमं पेयादिमाचरेत् ॥ (च०सि०6/24)

These serially applied specified light diets are called *Samsarjan Krama*. These are (1) *Peya* (2) *Vilepi* (3) *Arkita* and *Krita Yusa* (4) *Akrita* and *Krita Mamsarasa*. By the application of purificatory procedures (*Somsodhana Karma*) dosas being liquefied come to *Amasaya*. By the irritation of these dosas in *Amasaya* the digestive fire (*Panchakagni*) decreases. That decreased digestive fire is enhanced by the application of *Peya, Vilepi* etc. and when it is restored then normal diet is applied.

Consideration of Sodhana Karma :

In *Vaman Karma* (Emesis) and *Virechan Karma* (Purgation) the purification (*Suddhi*) is of three types viz. (1) *Hina Suddhi* (2) *Madhya Suddhi* and (3) *Pradhan Suddhi*. In order to judge the degree of *Suddhi* some criteria are fixed such as frequency of the vaman and virechan (*Vega Samkhya*), quantity of emited and purgated materials (*Quantity of Mala*) and show of *dosa* at the end of the procedure (*Antima dosa*). By applying these criteria the purification is judged in the following way.

Purification Method	Hina Suddhi			Madhya Suddhi			Pradhan Suddhi		
	Vega	Quantity	Antima	Vega	Quantity	Antima	Vega	Quantity	Antima
Vaman	Samkhya 4	of Mala 1 Prastha	Dosa Pitta	Samkhya 6	of Mala 1½ Prastha	Dosa Pitta	Samkhya 8	of Mala 2 Prastha	Dosa Pitta
Virechan	10	2 Prastha	Kapha	20	3 Prastha	Kapha	30	4 Prastha	Kapha

Here *1 Prastha* is equal to 648 gram.

Along with it some signs and symptoms are separately described for this judgemet. These are called *Suddhi Lakshan*.

Suddhi Lakshan of Vaman :-

1. *Hridaya, Parswa, Mastak, Indriya and Srota Suddhi* and
2. *Sharir Loghuta.*

Suddhi Lakshan of Virechan :-

1. *Srotas Suddhi,*
2. *Indriya Swachhata,*
3. *Sharir Laghuta,*
4. *Utsaha* and
5. *Jatharaghi Deepti.*

Application of Samsarjan Krama :-

The specified light diets are applied separately for three types of *Suddhi* of *Vaman* and *Virechan*. After completion of purificatory method (Either *Vaman* or *Virechan*) the samsarjan krama is started in the evening of that particular day. The time of giving this diet is called *Annakata*. It is given both in morning and evening hour. For *Pradhan*

Ayurvedic Medical Officer, Govt. Ayurvedic Dispensary, Siripai, Rayagada, Orissa - 765015

Suddhi these diets are given in 12 *Annakala* (3 *Annakala* for each diet) and it is completed in 7 days. Similarly for *Madhya Suddhi* it is completed in 8 *Annkala* (2 *Annakala* for each diet) and 5 days are 5 days are required. For *Hina Suddhi* these a given in 4 *Annakala* (One *Annakala* for each di and the regimen is completed in 3 days. These a cited in the following manner.

A. Samsarjan Krama for Pradhan Suddhi

Day	Morning (Annakala)	Evening (Annakala)
1st Day	--	Peya
2nd Day	Peya	Peya
3rd Day	Vilepi	Vilepi
4th Day	Vilepi	Akrita Yusa
5th Day	Krita Yusa	Krita Yusa
6th Day	Akrita Mamsarasa	Krita Mamsarasa
7th Day	Krita Mamsarasa	Normal diet.

B. Samsarjan Krama in Madhya Suddhi

Day	Morning (Annakala)	Evening (Annakala)
1st Day	--	Peya
2nd Day	Peya	vilepi
3rd Day	Vilepi	Akrita Yusa
4th Day	Krit Yusa	Akrita Mamsarasa
5th Day	Krita Mamsarasa	Normal Diet

C. Samsarjan Krama in Hina Suddhi

Day	Morning (Annakala)	Evening (Annakala)
1st Day	--	Peya
2nd Day	Vilepi	Krita Yusa
3rd Day	Krita Mamsarasa	Normal Diet

Preparation of Samsarjan Dravya :-

Peya : *Peya* is prepared from *Suka dhanya* (Monocoty ledons→Cereals). Out of varieties of *Suka dhanya*, fried old *Rakta Sali dhanya* (Tandula→Rice) is preferably used. One part *dhanya* and six part water or *Ousadha Siddha Jala* are boild together upto the full boiling of dhanya. *Dhanya* is taken in one fourth of the quantity which a healthy person is able to eat at a time after preparation. The semi solid preparation is taken for use, which contains more *drava* (liquid) and less *Siktha* (Solid Portion).

Vilepi : It is prepared from *Sukha dhanya* like *Peya*. The ratio of *dhanya* and water is 1:4. The prepared *Vilepi* contains less *drava* (Liquid) and more *Siktha* (Solid Portion).

Yusa : *Yusa* is prepared from *Simbi dhanya* (Dicotyledons→Pulses). Out of a number of *Simbi dhanya*, *Mudga* (Green gram) is preferably used. 1 to 2 *pala* of *Mudga* is boiled with 1 *Prastha* of water up to full boiling of *dhanya*. The supernatant liquid portion is taken for use. This is called *Akrita Yusa*. When this *Yusa* is added with *Sneha* (Oil or Ghee) *Lavana, Sunthi, Maricha, Amala dravya* etc. then it is called *Krita Yusa*.

Mamsarasa : Three types of *mamsarasa* are prepared such as *Gadha Mamsarasa, Madhyama Mamsarasa* and *Tanu Mamsarasa*. In the preparations of these *Mamsarasas* 32 parts, 24 parts and 16 parts of *Mamsa* are respectively teken for boiling with 64 parts of water each separately. After boiling, water is reduced to 16 parts. This is called *Akrita Mamsarasa*. When this *Mamsarasa* is added with various materials like *Krita Yusa*, then it is called *Krita Mamsarasa*.

Ousadha Siddha Jala : In this preparation 1 part of *Ousadha drava* is boiled with 64 parts of water and reduced to 32 parts. Only liquid portion is taken for use.

Mode of action of Samsarjan Krama :

In *Samsarjan Krama* the *Peya, Vilepi, Yusa* and *mamsarasa* are gradually heavier in nature. Among these, *Peya* is lightest one. It is easily digestible and *Grahi* in quality. It is also a good nutrition to all *Sapta dhatus*. *Vilepi* is heavier than *Peya*. It strengtherns heart as well as entire body and pacifies vitiated *Pitta dosa*. *Yusa* is heavier than *Vilepi*. It strengthens body and pacifies vitiated *Kapha dosa*. *Mamasarasa* is heavier than *Yusa*. It also body and pacifies the vitiated *Vata dosa*. In this way all three *dosas are pacified*.

Conclusion :

The systematic application of these items enables the person to digest the normal diet as before. Atfer restoration of *Pachakagni* the subsequent treatment procedures may be applied.

So Maharishi Charak has aptly opined that.

यथाऽणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः संधुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण ।
महान् स्थिरः सर्वपचस्तथैव शुद्धस्य पेयादिभिरन्तरग्नि ॥
(च०सि० 1/12)

बैद्यनाथ
दशमूलारिष्ट

प्रसूता के लिए बलवर्द्धक टॉनिक

बैद्यनाथ

दशमूलारिष्ट

तेज बल एवं कान्ति
बढ़ाने में प्रसिद्ध
प्रसव के बाद इसके सेवन से
माताएं अपने और शिशु के
स्वास्थ्य की रक्षा करती है।

B.H.U. - 2005 (M.D., Ayurved) Internal Examination

1. प्र० :- **Drug of choice in syphilis is -**
(a) Penicillin -G (b) Doxicycline
(c) Tetracycline (d) Chloramphanicol

2. प्र० :- **Fluid given in Hypo-volamic shock -**
(a) RL (b) 5% dextrose
(c) Low molecular Dextrose
(d) None

3. प्र० :- **Drug which is contra indicated in dengue is -**
(a) Paracetamol (b) Erythromycine
(c) Asprine (d) All

4. प्र० :- **Vit-A helps in synthesis of -**
(a) Mucopollysacheried (b) Protein
(c) Aspirine (d) All

5. प्र० :- **Nutrious substance for brain during starvation is -**
(a) Glucose (b) Fatty Acid
(c) Protein (d) None

6. प्र० :- **Length of Clitorius is -**
(a) 2 cm (b) 2.5 cm
(c) 3 cm (d) 5.0 cm

7. प्र० :- **Drug of Choice in schizophrenia is -**
(a) Azapirones (b) Benzodiazepine
(c) Phenothiazine (d) None

8. प्र० :- **Small pox was eradicated in India in -**
(a) 1976 (b) 1977
(c) 1978 (d) 1979

9. प्र० :- **Weight of ovaries in reproductive age -**
(a) 7 gm (b) 9 gm
(c) 19 gm (d) 100 gm

10. प्र० :- **Which is the complication of cervical rib syndrome -**
(a) Neurological disease
(b) Vascular disease
(c) Dysphagia
(d) Respiratory disease

11. प्र० :- **PID founds most commonly in which region -**
(a) Cervical (b) lumber
(c) Thorecolumbar (d) None

12. प्र० :- **Tetany is due to -**
(a) Hypo phosphataemia
(b) Hypocalcaemia
(c) Hyponatrimia
(d) Hypercalcaemia

13. प्र० :- **Which one is the water born disease.**
(a) Malaria (b) Dengue
(c) Cholera (d) None

14. प्र० :- **pH of E.C.F. is -**
(a) 6.2 (b) 6.6 (c) 7.4 (d) 3.8

15. प्र० :- **Maximum absorption of glomercular filtrate takes place in -**
(a) PCT (b) DT
(c) loop of henley (d) None

16. प्र० :- **Abscess is -**
(a) Granulation tissue with puss
(b) Granulation tissue without puss
(c) Cyst with puss
(d) None

17. प्र० :- **Vector of Japaness encephalitis is -**
(a) Adies mosquito
(b) Culex mosquito
(c) Anophles mosquito
(d) Fly

18. प्र० :- **Site of Chrohn's disease is -**
(a) Stomach (b) Dudeonum
(c) Colon (d) All

19. प्र० :- **Most common cause of Haematemesis is-**
(a) Gastric ulcer
(b) Oesophacged ulcer
(c) Dudeonal ulcer (d) None

20. प्र०:- **Heart rate will be maximum in -**
(a) Foetus (b) New born
(c) Young (d) Old age

21. प्र०:- **Which one is not a pupil dilator -**
(a) Barbiturate (b) Datura
(c) Belladona (d) Chloroform

22. प्र०:- **Vomiting centre is situated in -**
(a) Hypothalamus (b) Medulla
(c) Pons (d) Cerebrum

23. प्र०:- **What is the maximum length of new born-**
(a) 45 cm (b) 40 cm
(c) 50 cm (d) 60 cm

24. प्र०:- **Commonest cause of the none healthy post operative wound -**
(a) Infection (b) Ischaemia
(c) Malnutrition (d) None

25. प्र०:- **Payer's patches are found in -**
(a) Jejunum (b) Dudeonum
(c) Ileum (d) Caecum

26. प्र०:- **Which one is not the content of stomach bed -**
(a) Splenic Artery (b) Splenic vein
(c) Spleen (d) Pancreas

27. प्र०:- **Which one is fastest absorb in stomach-**
(a) Water (b) Glucose
(c) Protein (d) Fat

28. प्र०:- **"Night blindness" is due to the lack of vitamin -**
(a) A (b) B_{12} (c) C (d) E

29. प्र०:- **Kwashiorkar disease is due to deficiency of -**
(a) Carbohydrate (b) Protein
(c) Fat (d) All

30. प्र०:- **Which one is given in the treatment of Nephrotic syndrome -**
(a) Diuretic (b) Steroid
(c) Alkalizing agent (d) None

31. प्र०:- **Sperm Motality takes place in -**
(a) Epidydimis (b) Vas defrense
(c) Testis (d) Seminal vesicles

32. प्र०:- **Opthalmic artery is the branch of -**
(a) External carotid
(b) Internal carotid
(c) Facil Artery
(d) None

33. प्र०:- **Weight of uterus is -**
(a) 20-30 gm (b) 40-41 gm
(c) 50-80 gm (d) 100 gm

34. प्र०:- **Confirmatory test for T.B. is -**
(a) DLC (b) ESR
(c) Mauntoux (d) X-Ray

35. प्र०:- **AFB test is done for -**
(a) Syphilis (b) Tuberculosis
(c) Cholera (d) None

36. प्र०:- **Normal value of serume billirubin is -**
(a) 2-8 mg/dl (b) 1-15 mg/dl
(c) .02-.1 mg/dl (d) 2-25 mg/dl

37. प्र०:- **Normal value of serume billirubin is -**
(a) .8-.15 mg/dl (b) 1-2 mg/dl
(c) .2-2.5 mg/dl (d) None

38. प्र०:- **In which disorder creatinine will increase -**
(a) Liver (b) Kidney
(c) Heart (d) Liver

39. प्र०:- **Base of heart is mainly formed by -**
(a) Lt Atrium (b) Lt ventride
(c) Rt Atrium (d) Rt. Ventricle

40. प्र०:- **Largest synovial joint is -**
(a) Hip (b) Shoulder
(c) Knee (d) Elbow

41. प्र० :- Head and chest circumferance becomes equal at the age of -
(a) 6 months (b) 6-12 months
(c) 12-18 months (d) 24 months

42. प्र० :- "Kati graha " can be co- related with -
(a) Sciatica
(b) Ankylosing Spondilitis
(c) Both (d) None

43. प्र० :- Lobourer's Nerve is -
(a) Radial N. (b) Ulnar N.
(c) Median N. (d) None

44. प्र० :- Normal Amount of glucose in C.S.F. is -
(a) 25-50 mg/dl (b) 50-100 mg/dl
(c). 100-150mg/dl (d) 150-200 mg/dl

45. प्र० :- In proximal part of intestine absorption occurs of -
(a) Ironrs (b) Vit B_{12}
(c) Both (d) None

46. प्र० :- Which one is not the sign of strangulated hernia -
(a) Presence of Pulsation
(b) Absence of pulsation
(c) Tenderness
(d) None

47. प्र० :- Bronchiectasis is the dilatation of
(a) Alveoli (b) Bronchi
(c) Trachea (d) Broncheolus

48. प्र० :- Excellent APGAR score is -
(a) 6-8 (b) 8-10
(c) 0-3 (d) None

49. प्र० :- Which is the killed vaccine -
(a) Sabin (b) Salk
(c) Both (d) None

50. प्र० :- Main route of Administration of live polio-vaccine is -
(a) I/D (b) I.M. (c) Oral (d) None

51. प्र० :- Tonsils are found in
(a) Head (b) neck
(c) Thorex (d) Abdomen

52. प्र० :- Gastrin is stimulated in which site of stomach -
(a) Antrum (b) Fundus
(c) Pylorus (d) None

53. प्र० :- दीर्घन्जीवितीय अध्याय का वर्णन किस स्थान में मिलता है
(a) विमान (b) शारीर
(c) इन्द्रिय (d) सूत्र

54. प्र० :- चरक शारीर स्थान में अध्यायों की संख्या है -
(a) 30 (b) 8 (c) 12 (d) 46

55. प्र० :- AS_2S_2 क्या है -
(a) गैरिक (b) हरताल
(c) मन:शिला (d) गौरीपाषाण

56. प्र० :- निम्न में से रसक का योग है -
(a) कस्तूरी भैरव रस
(b) वृहत वात चिन्तामणि
(c) समीरपन्नग रस
(d) सभी

57. प्र० :- गजपुट का प्रमाण होता है -
(a) 44 x 44 cm (b) 55.14x55.14 cm
(c) 57 x 57 cm (d) सभी

58. प्र० :- सिद्ध समुदाय का दूसरा नाम है -
(a) शैव (b) आत्रेय (c) नाथ (d) भास्कर

59. प्र० :- चोपचीनी किस व्याधि की प्रसिद्ध औषध है -
(a) उपदंश (b) कृमिरोग
(c) फिरंग (d) सोमरोग

60. प्र० :- रसरत्न समुच्चय के लेखक हैं -
(a) वृद्धवाग्भट (b) लघु वाग्भट
(c) रस वाग्भट (d) यशोधर वाग्भट

61. प्र०:- हरीतकी का वानस्पतिक नाम है -
(a) Terminellia bellerica
(b) Terminelia chebula
(c) Embelia officinalis
(d) Anethum Sowa

62. प्र०:- भूम्यालकी का वानस्पतिक नाम है -
(a) Uraria picta
(b) Phyllanthus Urinaria
(c) operculia turpenthum
(d) None

63. प्र०:- भार्गी का वानस्पतिक नाम है -
(a) Clerodendurm serratum
(b) Inula recemosa
(c) Smilex china
(d) Arundo donex

64. प्र०:- वत्सनाभ का रस होता है -
(a) मधुर (b) अम्ल
(c) कषाय (d) तिक्त

65. प्र०:- ....सुखविरेचनानां
(a) चतुरंगुल (b) त्रिवृत
(c) स्नूही (d) एरण्ड

66. प्र०:- ....मृदुविरेचानां -
(a) चतुरंगुल (b) त्रिवृत
(c) स्नूही (d) एरण्ड

67. प्र०:- .... तीक्ष्ण विरेचानां -
(a) चतुरंगुल (b) त्रिवृत
(c) स्नूही (d) एरण्ड

68. प्र०:- निम्न में से आस्तिक दर्शन है -
(a) जैन (b) बौद्ध
(c) चार्वाक (d) सांख्य

69. प्र०:- सत्कार्यवाद के पक्षधर हैं -
(a) सांख्य (b) जैन
(c) न्याय (d) कोई नहीं

70. प्र०:- हेत्वाभास है -
(a) अबाधित (b) व्यतिरेकी
(c) सत्प्रतिपक्ष (d) असत्प्रतिपक्षत्व

71. प्र०:- शुक्र है (चरकानुसार)-
(a) धातु (b) उपधातु
(c) मल (d) सभी

72. प्र०:- Borex is included in which class-
(a) सुधा वर्ग (b) लवण वर्ग
(c) क्षारवर्ग (d) सिक्तावर्ग

73. प्र०:- Red sulphide of mercury is -
(a) रससिन्दूर (b) कज्जली
(c) गौरीपाषाण (d) कोई नहीं

74. प्र०:- ''पिडिचिल; कर्म का निर्देश है -
(a) उदररोग में (b) वातव्याधि में
(c) विष में (d) श्वास-कास में

75. प्र०:- निम्न में से पायना नहीं है -
(a) मधु (b) तैल
(c) जल (d) क्षार

76. प्र०:- चिकित्सा के चतुष्पाद में नहीं है -
(a) भिषक (b) परिचारक
(c) रोगी (d) शस्त्र

77. प्र०:- अर्जुन का प्रयोज्यांग है -
(a) फल (b) मूल
(c) त्वक (d) पत्र

78. प्र०:- निम्न में से संदिग्ध द्रव्य है -
(a) गैरिक (b) कासीस
(c) कंकुष्ठ (d) कोई नहीं

79. प्र०:- पुनर्नवा का कुल है -
(a) Zygophiliaceae
(b) Bombacaceae
(c) Nyctagynaceae
(d) Valerianaceae

80. प्र०:- खदिर का रस होता है -
(a) कटु (b) तिक्त
(c) कषाय (d) मधुर

81. प्र०:- कफज नाड़ी की गति होती है -
(a) मृतसर्पवत (b) नागराजवत
(c) मण्डूक वत (d) कुलिंग वत

82. प्र०:- अलस है -
(a) मुख रोग (b) क्षुद्र रोग
(c) दोनों (d) नेत्ररोग

83. प्र०:- "परिपोट" सम्बन्धित है -
(a) कर्ण से (b) नासा से
(c) मुख से (d) शिर से

84. प्र०:- निम्न में से प्राणिज द्रव्य है -
(a) तृणकान्त (b) कम्पिलक
(c) कपर्द (d) ककुष्ठ

85. प्र०:- पाटला का प्रयोज्यांग है -
(a) मूल (b) त्वक
(c) कपर्द (d) फल

86. प्र०:- रास्ना का प्रयोज्यांग है -
(a) फल (b) पत्र/मूल
(c) त्वक (d) पंचांग

87. प्र०:- मंजिष्ठा का कुल है -
(a) Compositeae (b) Fabaceae
(c) Cucurbitaceae (d) Rubiaceae

88. प्र०:- गोक्षुर का कुल है -
(a) Bombacaceae (b) Zygophyliaceae
(c) Rutaceae (d) Maraceae

89. प्र०:- शाकों में श्रेष्ठ है -
(a) आलू (b) जीवन्ती
(c) सर्षप (d) मधुर

90. प्र०:- जटामांसी का रस होता है -
(a) तिक्त (b) कटु
(c) अम्ल (d) मधुर

91. प्र०:- दस वर्ष के बच्चे के लिए निरूह की मात्रा होगी ।
(a) 200 मिली (b) 300 मिली
(c) 400 मिली (d) 500 मिली

92. प्र०:- विषपुष्पक है -
(a) वत्सनाभ (b) भल्लातक
(c) अफीम (d) मदनफल

93. प्र०:- "युक्तिश्च योजना या तु युज्यते...." कथ
है -
(a) चरक का (b) सुश्रुत का
(c) वाग्भट का (d) शार्गंधर का

94. प्र०:- मकरध्वज है -
(a) मेध्य रसायन (b) वाजीकरण
(c) मूत्रल (d) अश्मरीनाशक

95. प्र०:- मुग्ध रस के घटक हैं -
(a) गंधक, पारद (b) गंधक, खटिका
(c) गंधक, पारद, खटिका (d) पारद, खटिका

96. प्र०:- Contents of Bell metals are -
(a) Cu, Sn (b) Cu, Zn
(c) Cu, Ag (d) Cu, Pb

97. प्र०:- मयूरपिच्छभस्म के सत्वपातन से प्राप्त होता है-
(a) Fe (b) Zn (c) Cu (d) Ca

98. प्र०:- स्थूलवल्कल है -
(a) भूर्ज (b) ताड़
(c) लौध्र (d) वरूण

99. प्र०:- परिप्लुता योनिव्यापाद का कारण किस प्रकार के आहार-विहार की अधिकता का होना है -
(a) वातवर्धक (b) पित्तवर्धक
(c) वात-पित्त वर्धक (d) कफपित्त वर्धक

100. प्र०:- कृष्णगुप्त किस पुस्तक के लेखक है -
(a) सांख्य कारिका (b) सांख्यकुसुमावली
(c) सांख्य सौख्य (d) चिकित्सा दर्श

101. प्र०:- औद्भिद लवण घटक हैं -
(a) पंचलवण का (b) पांच प्रकार की बालू
(c) द्रावक गण का (d) मित्रपंचक का

102. प्र०:- लवणत्रय है -
(a) सामुद्र, पाक्य, रूचक
(b) सैंधव, पाक्य, रूचक
(c) औद्भिद्र, सैंधव
(d) पाक्य, औद्भिद् रूचक

103. प्र०:- पंचामृत पर्पटी के घटक हैं -
(a) गंधक, पारद, वज्राभ्रक, ताम्र, कांतलौह
(b) गंधक, हिंगुल, रौप्य मुक्ता, ताम्र
(c) गंधक, पारद, रौप्य, ताम्र, तीक्ष्ण लौह
(d) कोई नहीं

104. प्र०:- सिन्दूर कल्प है -
(a) खरलीय (b) कूपीपक्व
(c) पोट्टली (d) कोई नहीं

105. प्र०:- अमृतीकरण करते हैं -
(a) वर्णसंवर्धनार्थ (b) वैशिष्ट दोषानुत्तये
(c) गंधसंवर्धनार्थ (d) सभी

106. प्र०:- रासायनिक दृष्टि से माक्षिक है-
(a) Cu_2S (b) Fe_2S_3
(c) Both (d) none

107. प्र०:- याप्य प्रमेह है -
(a) वातिक (b) पैत्तिक
(c) श्लेष्मिक (d) सभी

108. प्र०:- साधारण रसों में कितने द्रव्य हैं -
(a) 6 (b) 7 (c) 8 (d) 9

109. प्र०:- क्षारकर्म का किसमें निषेध है -
(a) विष (b) गुल्म
(c) नाड़ी रोगों में (d) सर्वांग शोथ में

110. प्र०:- सुश्रुत ने किस यंत्र का वर्णन नहीं किया है-
(a) जाम्बवौष्ठ (b) आरा
(c) सर्पफणमुख (d) मुचुण्डी

111. प्र०:- सद्यः प्राणहर रोग है -
(a) राजयक्ष्मा (b) कास
(c) हिक्काश्वास (d) उदर

112. प्र०:- अंजन के भेद होते हैं -
(a) 7 (b) 10 (c) 5 (d) 8

113. प्र०:- किस भगंदर में अग्नि कर्म निषिद्ध है -
(a) शतपोनक (b) उष्ट्रग्रीव
(c) शम्बुकावर्त (d) सभी में

114. प्र०:- आयुर्वेद के आद्यउपदेष्टा है -
(a) ब्रह्मा (b) शिव
(c) इन्द्र (d) अग्निवेश

115. प्र०:- चरक संहिता के प्रतिसंस्कर्ता हैं
(a) दृढ़बल (b) चरक
(c) अग्निवेश (d) आत्रेय

116. प्र०:- चरक ने अरूचि का वर्णन कहां किया है -
(a) ग्रहणी चिकित्सा
(b) त्रिमर्मीय चिकित्सा में
(c) कियन्तः शिरसीयाध्याय में
(d) वर्णन नहीं मिलता है

117. प्र०:- अतिप्रवृत्तिजन्य मूत्ररोगों का वर्गीकरण किस आचार्य ने किया है -
(a) चरक (b) सुश्रुत
(c) वाग्भट (d) हारीत

118. प्र०:- उण्डुक की उत्पत्ति होती है -
(a) शोणित से (b) शोणित फेन से
(c) शोणित किट्ट से (d) मांस से

119. प्र०:- कृतवीर्य के मतानुसार गर्भ में उत्पन्न प्रथम अंग है -
(a) हाथ-पैर (b) गुदा
(c) शिर (d) हृदय

120. प्र०:- आत्मज भाव है -
(a) इन्द्रिय (b) मन
(c) वर्ण (d) सभी

121. प्र०:- काश्यपानुसार संवर्धन घृत का रोगाधिकार है -
(a) मूक, पंगु (b) स्तन्यशोधनार्थ
(c) स्तन्यवर्धनार्थ (d) बालशोष

122. प्र०:- काश्यपानुसार शिशु स्नेह है -
(a) अभयंग (b) वस्ति
(c) शिरोवस्ति (d) कोई नहीं

123. प्र०:- अष्टविध स्वेद किस आचार्य की देन है -

(a) भेल (b) हारीत

(c) काश्यप (d) वाग्भट

124. प्र०:- काश्यप के षटकल्पाध्यायं में किस व्याधि का वर्णन है -

(a) प्लीहा (b) कृमि

(c) प्रतिश्याय (d) अक्षिरोग

125. प्र०:- साध्य रक्तपित्त है -

(a) उर्ध्वग (b) अद्योग

(c) तिर्यक (d) द्वन्द्वज

126. प्र०:- "विड़बल" की रक्षा का निर्देश किस व्याधि में है -

(a) विसूचिका (b) ग्रहणी

(c) अतिसार (d) राजयक्ष्मा

127. प्र०:- तमकश्वास में किस प्रकार का विरेचन देते हैं -

(a) वातकफहर (b) पित्तकफहर

(c) मृदु (d) पित्तहर

128. प्र०:- मांसमर्म है -

(a) इन्द्रवस्ति (b) श्रृंगाटक

(c) मातृका (d) विटप

129. प्र०:- कुष्ठवैरी है -

(a) तुवरक (b) बाकुची

(c) शरपुंखा (d) अपामार्ग

130. प्र०:- धुणवल्लभा है -

(a) दन्ती (b) अतिविषा

(c) भार्गी (d) पुष्करमूल

131. प्र०:- निम्न में से अवस्था पाक है -

(a) कटु (b) लवण

(c) कषाय (d) सभी

132. प्र०:- चरकानुसार निराग्नि स्वेद के भेद हैं -

(a) 4 (b) 8

(c) 10 (d) 13

133. प्र०:- विभू है -

(a) वायु (b) आकाश

(c) पृथ्वी (d) सभी

134. प्र०:- नेत्र पर कौन-सा बंध बांधते है -

(a) चीन (b) गोफणा

(c) मुत्तोली (d) उत्संगी

135. प्र०:- गृध्रसी हेतु योग्य औषध होगी -

(a) प्रवाल पंचामृत (b) विषतिन्दुक

(c) वानरी गुटिका (d) कर्पूर रस

136. प्र०:- काश्यपानुसार गर्भ में चेतना की उत्पत्ति कि महीने में होती है -

(a) द्वितीय (b) तृतीय

(c) चतुर्थ (d) षष्टम

137. प्र०:- श्वेतपर्पटी देते हैं -

(a) अतिसार में (b) प्रदर में

(c) मूत्रकृच्छ्र में (d) प्रमेह में

138. प्र०:- हिंगुल में पारद व गंधक का अनुपात होता है-

(a) 1 : 6 (b) 6:1 (c) 1: 4 (d) 4:

139. प्र०:- श्रेष्ठ मेध्य रसायन है -

(a) मण्डूकपर्णी (b) यष्टीमधु

(c) गुडुची (d) शंखपुष्पी

140. प्र०:- श्रेष्ठ कुष्ठघ्न द्रव्य है -

(a) काकोदुम्बर (b) बाकुची

(c) तुवरक (d) खदिर

141. प्र०:- रेवती ग्रह के कितने प्रकार होते हैं -

(a) 8 (b) 10 (c) 12 (d) 2

142. प्र०:- कासीसादि तैल का रोगाधिकार है -

(a) अर्श (b) व्रण

(c) भग्न (d) मूढ़गर्भ

143. प्र०:- कटु तिक्त व कषाय रस सेवन का निषेध कि ऋतु में है -

(a) शरद (b) वर्षा

(c) शिशिर (d) वसन्त

144. प्र०:- धूमोपहत की चिकित्सा है -
(a) वमन-विरेचन (b) वमन-शिरोवस्ति
(c)विरेचन-शिरोवस्ति (d) धूमपान-वमन

145. प्र०:- सुश्रुतानुसार चिकित्सा का प्रथम उपक्रम होना चाहिए -
(a) निदानपरिवर्जन (b) अपकर्षण
(c) प्रकृति विद्यात (d) संप्राप्ति विघटन

146. प्र०:- दोषों का प्रसर कितनी प्रकार से होता है -
(a) 3 (b) 15 (c) 57 (d) 63

147. प्र०:- रसबंध कितने प्रकार के होते है -
(a) 8 (b) 5 (c) 25 (d) 62

148. प्र०:- "समान" किसका एक भेद है-
(a) वात का (b) पित्त का
(c) कफ का (d) ओज का

149. प्र०:- गर्भिणी के उदर की आकृति "द्रोणीवत" है उत्पन्न संतान होगी -
(a) पुत्र (b) पुत्री
(c) यमज (d) नपुंसक

150. प्र०:- अणुत्व गुण है -
(a) मन का (b) आत्मा का
(c) काल का (d) सभी का

151. प्र०:- राजयक्ष्मा का आत्मलिंग है -
(a) पार्श्वाभिताप (b) बलक्षय
(c) सर्वांग ज्वर (d) प्रतिश्याय

152. प्र०:- कासीस में जल की मात्रा होती है -
(a) 5 H_2O (b) 7 H_2O
(c) 10H_2O (d) 24H_2O

153. प्र०:- "काय" किसका पर्याय है -
(a) औषधि का (b) चिकित्सा का
(c) अग्नि का (d) सभी का

154. प्र०:- साधक पित्त का स्थान है -
(a) शिर (b) हृदय
(c) आमाशय (d) यकृत

155. प्र०:- गृधसी में दोष होते है -
(a) वात (b) वातकफ
(c) दोनों (d) कफ, पित्त

156. प्र०:- सोमरोग का विस्तार से वर्णन मिलता है -
(a) चरक में (b) सुश्रुत में
(c) भावप्रकाश में (d) शार्गंधर में

157. प्र०:- आयुर्वेद को पंचमवेद किसने कहा है -
(a) भेल (b) हारीत
(c) काश्यप (d) शार्गंधर

158. प्र०:- चरकानुसार अस्थिसंस्था है -
(a) 206 (b) 300
(c) 360 (d) 500

159. प्र०:- प्रवाल भस्म रासायनिक रूप से है -
(a) CaO (b) $CaCO_3$
(c) Ca (d) $Ca(OH)_2$

160. प्र०:- नागवंग किस प्रकार का पारद दोष है -
(a) नैसर्गिक (b) औपाधिक
(c) कंचुक (d) कोई नहीं

161. प्र०:- विश्वभैषज्य है -
(a) हरीतकी (b) मंजिष्ठा
(c) नागर (d) वत्सनाभ

162. प्र०:- चक्षुरिन्द्रिय का ग्राह्य विषय है -
(a) शब्द (b) स्पर्श
(c) रूप (d) रस

163. प्र०:- शंखपुष्पी है -
(a) मेध्य (b) संज्ञास्थापक
(c) क्षीरजनन (d) शुक्र शोधक

164. प्र०:- चरकानुसार रस का अंजली प्रमाण होता है-
(a) 10 (b) 9
(c) 8 (d) 6

165. प्र०:- अश्वगंधा का कुल है -
(a) Apocynaceae (b) Compositeae
(c) Solanaceae (d) Guttifereae

166. प्र०:- सुश्रुतानुसार कुष्ठ का प्रमुख स्थान कौन-सी त्वचा है -
(a) अवभासिनी (b) ताम्रा
(c) वेदिनी (d) रोहिणी

167. प्र०:- आरोग्यवर्धिनी वटी का मुख्य घटक है -
(a) त्रिवृत्त (b) कुटकी
(c) कचूर (d) सातला

168. प्र०:- रोग का अधिष्ठान है -
(a) शरीर (b) मन
(c) शरीर, मन (d) आत्मा

169. प्र०:- किस आचार्य ने मन का स्थान ''शिरस्ताल्वान्तरगत'' माना है -
(a) चरक (b) वाग्भट
(c) हारीत (d) भेल

170. प्र०:- निरूद्ध प्रकाश है -
(a) मेढ्ररोग (b) गुदरोग
(c) योनिरोग (d) शूकदोष

171. प्र०:- ज्योतिष्मति का कुल है -
(a) Compositeae (b) Rubiaceae
(c) Celastraceae (d) Convolvulaceae

172. प्र०:- पार्श्वशूल की श्रेष्ठ औषध है-
(a) वासा (b) मृगश्रृंग
(c) पुष्करमूल (d) शटी

173. प्र०:- यथार्थ अनुभव है -
(a) प्रभा (b) प्रमेय
(c) प्रमाता (d) प्रमाण

174. प्र०:- वातरक्त का साधर्म्य है -
(a) Gout (b) Rheumatoid Arthritis
(c) Osteoarthritis (d) Spondillitis

175. प्र०:- आदान काल की ऋतु है -
(a) वर्षा (b) शरद
(c) हेमन्त (d) शिशिर

176. प्र०:- वात का संचयस्थल है -
(a) आमाशय (b) पच्यमानाशय
(c) पक्वाशय (d) सभी

177. प्र०:- छेदन कर्म निर्दिष्ट है -
(a) आमशोफ में (b) पच्चमान शोफ में
(c) पक्वशोफ में (d) कोई नहीं

Answer-Keys

(1) A (2) A (3) C (4) A (5) A (6) B
(7) C (8) B (9) A (10) A (11) B (12) B
(13) C (14) C (15) A (16) A (17) B (18) C
(19) A (20) A (21) A (22) B (23) C (24) A
(25) C (26) B (27) A (28) A (29) B (30) B
(31) A (32) B (33) C (34) D (35) B (36) A
(37) A (38) B (39) A (40) C (41) B (42) B
(43) C (44) B (45) A (46) A (47) B (48) B
(49) A (50) C (51) B (52) A (53) D (54) B
(55) C (56) A (57) C (58) C (59) C (60) C
(61) B (62) B (63) A (64) A (65) B (66) A
(67) C (68) D (69) A (70) C (71) A (72) C
(73) A (74) B (75) A (76) D (77) C (78) C
(79) C (80) C (81) A (82) B (83) A (84) C
(85) A (86) B (87) D (88) B (89) B (90) A
(91) C (92) D (93) A (94) B (95) D (96) A
(97) C (98) C (99) B(100) A(101) A(102) B
(103)A(104) B(105) B(106) C(107) B(108) C
(109)D(110) D(111) C(112) C(113) B(114) A
(115)B(116) B(117) C(118) C(119) D(120) D
(121)A(122) B(123) C(124) D(125) A(126) D
(127)A(128) A(129) A(130) B(131) A(132) C
(133)B(134) A(135) B(136) B(137) C(138) B
(139)D(140) D(141) D(142) A(143) C(144) A
(145)A(146) B(147) C(148) A(149) C(150) A
(151)C(152) B(153) C(154) B(155) C(156) C
(157)C(158) C(159) B(160) B(161) C(162) C
(163)A(164) B(165) C(166) B(167) B(168) C
(169)D(170) A(171) C(172) C(173) A(174) A
(175) D(176) C(177) 3

द्वारा डा० गोविन्द पारिक
(जूनियर रेजिडेन्ट)
आयुर्वेद संहिता विभाग,
बी.एच.यू., वाराणसी, यू.पी.

व्यक्तित्व-श्रीमती कस्तूरी चन्द्रशेखरन

देश के हर गाँव में हो किचन हर्बल गार्डन

'इक्युडोर इनीशियेटिव 2002' पुरस्कार से नवाजी गई 48 वर्षीया 4 बच्चों की माँ श्रीमती कस्तूरी चंद्रशेखरन चाहती हैं कि देश के हर घर में यदि किचन गार्डन स्थापित हो जाय तो प्राथमिक स्वास्थ्य की समस्या का समाधान बहुत आसानी से हो जाएगा । तमिलनाडु के पेंरूगुड़ी गाँव की बहु और विरूंधुनगर जिले के गाँव कुलामंगलम् में जन्मी व 8वीं तक पढ़ी इस उत्साही महिला ने समाज के लिए ही बहुत कुछ नहीं किया है बल्कि औषधीय पौधों की खेती और किचन हर्बल गार्डन स्थापित करने में आदर्श कायम किये हैं । तमिलनाडु के 500 गाँवों में 22000 हर्बल गार्डन स्थापित करने का श्रेय श्रीमती कस्तूरी को जाता है । वह स्वयं सहायता समूहों के संघ 'महाकलशम्' की अध्यक्षा भी हैं । श्रीमती कस्तूरी कहतीं हैं – समूहों में हमने पाया कि ज्यादातार महिलाऐं पैसा स्वास्थ्य संबंधी जरूरतों के लिए देती हैं । समाज में सामान्यत: पाई जाने वाली बीमारियों का चयन किया गया । तय हुआ कि यदि कुछ आवश्यक औषधियाँ घर में उगा लीं जाए तो अस्पताल जाने की आवश्यकता बहुत कम पड़ेगी । कड़ी पत्ता, अनार, वसाम्बु, तुलसी इत्यादि सहित 20 पौधों को उगाने का क्रम प्रारंभ हुआ । समूहों को पौधे उगाने और प्रयोग करने के प्रशिक्षण दिये गये । बस फिर क्या था । यह शुरू हुआ क्रम बढ़ता गया । यही शुरूआत थी होम हर्बल गार्डन कन्सैप्ट की । तमिलनाडु की गैर सरकारी संस्थाओं सी सी डी और एफ आर एल एच टी ने कस्तूरी और महाकलशम् को खूब सहारा दिया । सी सी डी नामक संस्था के सहयोग से ही वह ग्राम मूलीगई कम्पनी की स्थापना करवा सकीं और सदस्य बनीं । इस ग्रामीण कम्पनी के हिस्सेधारक जड़ी-बूटियों को एकत्र करने वाले, पारम्परिक चिकित्सक और हर्बल गार्डन के सदस्य हैं । कम्पनी प्रतिवर्ष 300 टन जड़ी-बूटियाँ बेच रही है और लाभांश सदस्यों में बाँटती है । कस्तूरी इसे अपने जीवन का स्वर्णिम् अवसर समझती है जब उस के काम को अन्तराष्ट्रीय स्पर पर पहचान मिली । वह संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम के निमंत्रण पर दक्षिणी अफ्रीका के जोह्सन्वर्ग इक्युडोर इन्शयीऐटिव 2002 पुरस्कार लेने गई । उसे सामुदायिक प्रयासों 27 कार्यक्रमों में से एक पर्यावरण संरक्षण एवं गरीबी उन्मूलन हेतु स्थानीय ज्ञान का प्रयोग विषय पर पुरस्कार मिला ।

डॉ अरूण चंदन

सी-32/33, धौलाधार कालोनी,
बडोल-दाड़ी, 176057
धर्मशाला (हि०प्र०)

बैद्यनाथ
पंचसकार चूर्ण
यह चूर्ण पेट साफ करता है तथा
पाचन शक्ति और भूख बढ़ाता है।
इससे पेट के कृमि भी दूर होते हैं।

आयुर्वेद का प्रतिसंस्कार जरूरी

मई, 1966

भारत की प्राचीन चिकित्सा-पद्धति आयुर्वेद का निश्चय ही अत्यन्त गौरवपूर्ण अतीत था और भारत की कौन कहे विदेशों में भी आयुर्वेद समृद्ध चिकित्सा-शास्त्र के रूप में मान्य था - प्रत्येक देश का अपना चिकित्सा-शास्त्र होता है, भारत इस दृष्टि से अत्यन्त सौभाग्यशाली राष्ट्र है कि इसके पास आयुर्वेद जैसा सर्वाङ्गपूर्ण एवं उन्नत चिकित्सा-शास्त्र पहले से ही विद्यमान है । आवश्यकता केवल इस बात की है कि अनुसंधान के सहारे इस प्राचीन चिकित्सा-शास्त्र के आधारभूत सिद्धांतों को और भी निखारा जाए - वैज्ञानिक तुला पर खरा उतार कर इसको सुप्रतिष्ठित किया जाए । आधुनिक साज-सज्जा में इसके मूल अंशों को पुनः प्रतिष्ठित करने का ऐतिहासिक दायित्व वर्तमान समय के शोधकर्त्ताओं पर है - उन्हें इस प्राचीन चिकित्साशास्त्र के प्रतिसंस्कार के लिए सन्नद्ध हो जाना चाहिए ।

श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित

धन्वन्तरि परिषद्, कलकत्ता द्वारा श्री भीखाभाई का स्वागत

धन्वन्तरि परिषद्, कलकत्ता के तत्वावधान में राजस्थान के आयुर्वेद मंत्री माननीय भीखा भाई का स्वागत समारोह पश्चिम बंगाल के विधि-मंत्री माननीय ईश्वरदास जालान की अध्यक्षता में स्थानीय अहिंसा प्रचार समिति कक्ष में आयुर्वेद-सेवी संस्थाओं की ओर से गत 3 अप्रैल को सम्पन्न हुआ । समारोह में कलकत्ते के प्रायः सभी प्रमुख कविराज, वैद्य, पत्रकार एवं आयुर्वेद-प्रेमी नागरिक सम्मिलित हुए थे । मंगलाचरण के साथ सभा की कार्रवाई प्रारम्भ हुई । तदुपरान्त धन्वन्तरि परिषद् के अध्यक्ष कविराज केशवदेव शास्त्री ने मान्य अतिथि का स्वागत किया । आपने कहा कि माननीय श्री भीखा भाई के मंत्रित्व काल में राजस्थान में आयुर्वेद की प्रगति संतोषजनक हो रही है और आयुर्वेदोद्धार की दिशा में वहाँ एक नयी उमंग एवं भावना उत्पन्न हो गयी है, जो आयुर्वेद के उज्जवल भविष्य क संकेत है । विभिन्न आयुर्वेदीय संस्थाओं के प्रतिनिधियों क ओर से माननीय भीखा भाई को माल्य प्रदान किए ग जिनमें पश्चिम बंगाल आयुर्वेद परिषद्, पं.बं. आ. महामण्ड धन्वन्तरि परिषद् अष्टांग आयुर्वेद कालेज, श्यामा दास वै शास्त्रपीठ, श्री विश्वनाथ आयुर्वेद महाविद्यालय, परिच वंग उन्माद आश्रम, प.बं. आयुर्वेद महापरिषद्, आयु विकास (मासिक पत्र), सचित्र आयुर्वेद (मासिक प तथा आयुर्विज्ञान (बंगाल) प्रमुख थे ।

नेपाल आयुर्वेदीय संस्था का पं० दुर्गा प्रसाद शर्मा द्वारा निरीक्षण

बिहार राज्य आयुर्वेदिक-यूनानी अधिकाय क अध्यक्ष एवं श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन के निर्देशक प्राणाचा श्री दुर्गा प्रसाद शर्मा, आयुर्वेदाचार्य अपने सहयोगी के सा नेपाल आयुर्वेदीय संस्थान में पधारे । ने.आ.संस्था के सदस् के साथ संस्था के अध्यक्ष कविराज श्री चन्द्रानन्द राज वै ने श्री शर्मा जी का स्वागत किया और आयुर्वेद के महत्वपू विषय में कुछ समय तक बात की और श्री शर्मा जी के आवश्यक सुझाव पर अध्यक्ष श्री चन्द्रानन्द राजवैद्य ने सराहना की और उन्होंने कहा कि आयुर्वेद के विषय में जो श्री शर्मा जी ने अपना विचार दिया है वह आयुर्वेद की वर्तमान स्थिति में सुधार लाने में उपयुक्त सिद्ध होगा । ब में अध्यक्ष जी ने संस्था के प्रत्येक विभाग का सविस्त परिचय दिलाया । श्री शर्माजी ने श्री संस्था के प्रत्ये विभाग का अभिरूचिपूर्वक निरीक्षण किया और कहा कि इस संस्था से जनता को संतोषजनक स्वास्थ्य में लाभ हो और शर्माजी ने ने.आ.संस्था के प्रति सहानुभूति प्रकट क हुए सहायतार्थ चंदास्वरूप 501/- का दान तत्काल दिय

अध्यक्ष महोदय क.श्री चन्द्रानन्द राजवैद्य ने धन्य ज्ञापन किया ।

आपके अनुभूत प्रयोग

ग्रहणी यक्ष्मानुबंधी

एक डॉक्टर का परिवार पत्नी के साथ मिलने आया था । दोनो ही डॉक्टर थे और अपना दवाखाना अलग-अलग चलाते थे । दोनों ही एम.डी. थे । अत: सबेरे से दोपहर को दो बजे तक एवं रात को सात से दस बजे तक रुग्ण देखते थे । खाने-पीने का कोई समय नहीं था । दोनों ही अच्छा अर्थ अर्जन करते थे ।

पत्नी को मैंने पहली बार ही देखा था । पतली-दुबली, बोलते समय हाफने वाली, सर्दी एवं जुकाम से पीड़ित 28 वर्ष की महिला थी । पंजाबी ड्रेस में बहुत ही दुबली लगती थी । 3-4 वर्ष से अतिसार, प्रवाहिका, ऑसिडीटी इत्यादि से बीमार थी । डॉक्टर होने के कारण खुद दवाई लेकर काम करती थी ।

उन दिन तो निम्बू का शरबत पीकर चले गये । पर आठ दिन बात सबेरे खाली पेट, पेशाब के साथ में आ पहुंचे ।

रूग्ण की नाड़ी देखी । सूक्ष्म वात प्रधात दुर्बल एवं द्रुत गति थी, नाक में जुकाम था । गले में लाली थी । उदर में सर्वत्र स्पर्शासहत्व था । दिन में 3 से 4 बार मल प्रवृत्ति होती थी । कभी कफ के साथ, कभी रक्त के साथ, कभी-कभी पतले पानी जैसे सफेद दस्त होते थे । मन्द बुखार बना रहता था ।

रुग्ण ने बहुत-सी दवाई ली थी । उसमें एक मजेदार बात थी । महाराष्ट्र में कृष्ण अष्टमी को घावडेका गोंद + सौंठ + खसखस + शर्करा इत्यादि मिलाकर भगवान को प्रसाद चढ़ाते हैं । प्रसाद वह रोज खाती थी, बीच-बीच में बेल का मुरब्बा भी लेती थी । दवाइयों से सुकून तो मिलता था पर पूरा आराम नहीं मिलता । दो छोटे बच्चे थे और छह महीनों से मासिक बन्द था ।

रूग्ण इतिहास में कटिशूल पाद पिण्डीका शूल, हृद्द्रव एवं ओजक्षय के कुछ लक्षण मिले, रुग्ण ने स्वत: अनेक परीक्षण कराये थे । गुदस्थान का बेरियम कराने से जीर्ण अतिसार ''इरीटेबल बॉवेल सीन्ड्रोम'', इस प्रकार निदान किया गया था और चिकित्सा भी, पर पूर्ण उपशय नहीं मिला ।

पूर्व व्याधि इतिहास में रुग्णा ने बचपन में एक्स-रे कराया था । वह नारमल था । 2 वर्ष पूर्ण टायफाईड से बीमार थी और इलाज कराया था । रक्त के परीक्षण में एक चीज विशेष थी ''मॉन्टेक्स.'' टेस्ट पॉजिटीव था ।

इन लक्षण एवं परीक्षणों के आधार से ग्रहणी का निदान निश्चत था । अत: सुवर्णपर्पटी 2 ग्राम + प्रवाल पंचामृत 5 ग्राम + सितोपलादिचूर्ण 50 ग्राम इनकी 32 पुड़िया बनाई और बेल + आंवला + गुलकंद + सेप + चांदी के वर्क मिलाकर इसके अनुपान से नहार पेट पुड़िया दी । जिरकाघरिष्ट एवं द्राक्षासव 1/2 औंस पानी के साथ भोजन के बाद दिया गया । भोजन में मीठा रोज लेने के लिये सलाह दी । भोजन दोपहर को को बारह बजे एवं रात को आठ बजे पानी के साथ दिया । पानी जीरा डालकर उबालकर पीने का आग्रह किया ।

दो तीन महीने तक तो कुछ खबर नहीं मिली । मैं भी भूल गया था । शायद अच्छा नहीं लगा । इसलिये कहीं और चिकित्सा ली गई होगी यह समझ कर भूल गया, 6 मास के बाद एक वैद्य सम्मेलन में रात को मेरा अतिथि व्याख्यान था । उसके पश्चात् भोजन भी, भोजन के बाद एक महिला साड़ी में लपेटे से पैर छूने के लिये झुकी । उसने पूछा क्या आपने मुझे पहचाना ? मैं तो देखता रहा पहचान नहीं पाया । इतने में डॉक्टर पति ने आकर कहा सर यह मेरी पत्नी है । आपकी रुग्णा, उसका वजन 45 किलो से 55 किलो बढ़ा था । लक्षण सब कम हो गये थे । दवाई चार महीने के बाद बन्द की थी और इन दिनों जिरकाद्यारिष्ट एवं द्राक्षासव भोजन के बाद लेती थी । मैंने उसे बार-बार पूछा क्या और कही इलाज कराया था । महिला खुद डॉक्टर होने के कारण यह संभव था । उसने कहा नहीं सर केवल आपके बताई हुयी दवा 4 माह ली, अच्छा लग रहा था । अत: इसीलिए आई हूँ पर अभी भी आपकी बताया हुआ 4 सूत्र नियमित रूप से पालन करती हूँ ।

रुग्ण का निदान ग्रहणी निश्चित था । 'मॉन्टेक्स, पॉजेटिव होने से यक्ष्मानुबंधी कहा गया, ॲसिडीटी एवं मुखपाक के कारण ग्रहणी रोग, पक्वाशय दुष्टि रसक्षय एवं ओजक्षय पाया गया इसमें रससिन्दूर से बनाई गयी सुवर्ण पर्पटी अधिक लाभदायक है ।

प्रो० सेलोटे

50, न्यू स्नेहनगर, नागपुर - 15

साधारण नमक पर प्रतिबंध

(जनविरोधी है खतरे में अगड़िया जाति का अस्तित्व)

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
पटना

महाशय,

केन्द्र की संप्रग सरकार ने आगामी 15 अगस्त से साधारण नमक पर प्रतिबंध लगाने का फरमान जारी कर बिना आयोडीन मिले नमक बेचने और खाने वालों को 6 माह तक जेल की सजा दिए जाने का निर्देश दिया है ।

सरकार का यह फैसला जन विरोधी है और इस फैसले से समुद्री जल से नमक बनाकर बेचने का पुश्तैनी धंधा करने वाले गुजरात की 13 लाख आबादी वाली अगड़िया जाति का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा जबकि नमक में आयोडिन मिलाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनियों को करोड़ों रू० का अधिक मुनाफा होगा ।

सरकार ने आयोडिन युक्त नमक को अनिवार्य करने का फैसला डब्लू०एच०ओ० (WHO), यूनीसेफ और इंटरनेशनल कॉसिंल फॉर कंट्रोल ऑफ आयोडीन डेफिशियंसी डिस आर्डर (ICCIDD) की रिपोर्टों के आधार पर लिया है जिसके अनुसार आयोडीन की कमी से घेघा रोग, बच्चों के आई०क्यू० में ह्रास और दूसरी बिमारियाँ फैल रही है लेकिन आयोडिन के अधिकता से होने वाले रोगों की अंदेखी की गयी है। जबकि यूनीसेफ के एक अध्ययन में भी आयोडिन मिले नमक के अधिक मात्रा में दैनिक सेवन से हाइपरथायराइडिज्म के अलावा टी०बी०, मधुमेह, हृदयरोग, चिड़चिड़ापन और कैंसर जैसी खतरनाक बीमारियों के होने की सम्भावना बढ़ने की बात स्वीकार की गयी है ।

चिकित्सकों के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्ति को प्रतिदिन मात्र 100-150 माइक्रोग्राम आयोडीन की जरूरत होती है । जो पानी के अलावा प्याज, मछली व हरी साग-सब्जियों के सेवन से पूरी की जा सकती है । समुद्र से बनाये गए साधारण नमक में भी आयोडिन, पोटाशियम व मैग्नेशियम जैसे आवश्यक पोषक तत्व मौजूद रहते हैं जिससे नमक को रिफाइन करने के चक्कर में बेवजह ही नष्ट कर दिया जाता है जबकि पैकेजिंग के खर्च सहित 12 पैसे के एक किलो ग्राम नमक में 13 पैसे का आयोडिन मिलाकर बहुराष्ट्रीय कपनियां उसे 6-15 रु० किलो में बेचती हैं । उपर से पैकेट पर एक्सपायरी डेट भी नहीं लिखी रहती है क्योंकि नमक में मिलाया गया आयोडीन 3 माह में ही लगभग पूरा उड़ जाता है ।

जाहिर है कि नमक में आयोडिन मिलाने के बहाने करोड़ों रुपये का धंधा फल-फूल रहा है । जबकि भारत सरकार को भी जनता के स्वास्थ्य की बजाए बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के मुनाफे को ही अधिक चिंता है अन्यथा जहाँ आयोडीन की कमी है वहां के लोगों को आयोडीन उपलब्ध कराने की मुक्मल व्यवस्था करने की बजाए पूरे देश में आयोडीन मिले नमक को अनिवार्य बनाने का क्या औचित्य है ।

अंग्रेजों के शासन काल में आयोडीन की कमी वाले इलाकों में नमक की बोरियों में आयोडीन मिलाकर मुफ्त में बांटी जाती थी जबकि ब्रिटिश हुकूमत ने सन् 1859 में नमक कानून के जरिए नमक पर टैक्स लगाया था जिसका विरोध करते हुए महात्मा गांधी ने 1930 में अहमदाबाद के साबरमती आश्रम से दांडी के समुद्र तट की यात्रा कर समुद्री जल से नमक बनाकर अंग्रेजी साम्राज्यवाद को कड़ी चुनौती दी थी ।

हाल ही में गाँधी जी की दाँडी यात्रा की 75 वीं वर्षगांठ मनाने वाली कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व वाली सरकार ने नया नमक कानून लगाने की घोषणा कर यह भी जता दिया कि उसे गाँधीवादी मुल्यों व आदर्शों की भी कोई

बैद्यनाथ
च्यवनप्राश
स्पेशल

विटामिन-सी
और
कैल्सियम युक्त
एक संपूर्ण
स्वास्थ्य टॉनिक

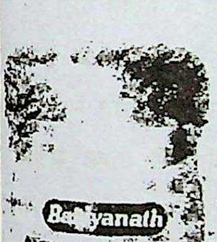

"माँ से बढ़कर बच्चों की देखरेख और कौन कर सकता है । इसीलिए हर माँ अपने नन्हे-मुन्ने के लिए स्वास्थ्यवर्धक व पौष्टिक आहार की कामना करती है। परन्तु केवल स्वादिष्ट भोजन आपके बच्चों की विटामिन व पोषण संबंधी जरूरतों को पूरा नहीं कर सकता । उनके अनुकूल विकास के लिए आपको चाहिए एक उत्कृष्ट स्वास्थ्य टॉनिक । जैसे बैद्यनाथ च्यवनप्राश स्पेशल । जिसमें हैं ५२ (परखी हुई) जड़ी-बूटियाँ और केसर । अनेक विटामिन व हर्बो-मिनरल्स से युक्त, इसमें विशेष मात्रा में है, प्राकृतिक विटामिन-सी और कैल्सियम, जो आपके शरीर में जरूरी पोषक तत्वों की कमी को पूर्ण करते हैं । विश्व में आयुर्वेदिक औषधियों के सबसे विशाल निर्माता-बैद्यनाथ द्वारा निर्मित बैद्यनाथ च्यवनप्राश में आपको मिलेगी विश्वस्तरीय उत्तमता, जिसे आज करोड़ों का विश्वास प्राप्त है । अब कोई अन्य टॉनिक भला क्यों करे प्रयोग ? जब विश्व श्रेष्ठतम टॉनिक है आपके साथ, आपके बच्चों के श्रेष्ठतम विकास के लिए ।"

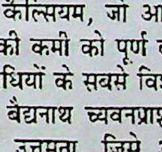

स्वस्थ जीवन का मस्त स्वाद

परवाह नहीं है ।

दूसरी ओर विपक्षी एन.डी.ए. की ओर से भी जनसाधारण के नमक पर प्रतिबंध से कोई बेचैनी नहीं है । आखिर हो भी क्यों ? 1998 में भाजपा के नेतृत्व वाली राजग सरकार ने भी आयोडीन युक्त नमक को अनिवार्य बना दिया था जिसे व्यापक जन दबाव के बाद वापस लिया गया था ।

इधर पोषण वैज्ञानिक डा० शांति लाल कोठारी द्वारा आयोडीन की अनिवार्यता के खिलाफ दायर मुकदमे पर भी फैसला होना बाकी है ।

बहरहाल 'एक और नमक कानून' की बात पूरे देश में सरगर्मी तेज हो गयी है । नौजवानों के अखिल भारतीय संगठन, 'युवा भारत' के तत्वाधान में जगह-जगह 'साधारण नमक पर प्रतिबंध' के खिलाफ कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रहा है । आजादी बचाओ आन्दोलन सर्व सेवा संघ और अन्य जनवादी संगठन भी 'नव आर्थिक साम्राज्यवाद' के खिलाफ निर्णायक संघर्ष के मुड में है । 'युवा भारत' के संस्थापक 'अनिल प्रकाश' कहते हैं कि नामक के साथ ही सरकार के तमाम जनविरोधी नीतियों व फैसलों के खिलाफ सड़क से लेकर सुप्रीम कोर्ट तक संघर्ष तेज किया जायेगा ।

भवदीय

कविराज डा० दिवाकर ठाकुर,
जी.ए.एम.एस., डी.एस.सी.ए.(आयुर्वेद वृहस्पति)
किडनी रिसर्च इन्स्टीच्यूशन ऑफ आयुर्वेद
कंकड़बाग मेन रोड
(चाँदमारी रोड कॉनर)-पटना-20
मारूति नंदन मिश्रा
नया गाँव, परबता-खगड़िया

आरोग्य समाचार
अखबार की कतरनों से

एकाकीपन से रक्तचाप वृद्धि का खतरा

सायकोलोजी एवं एजिंग में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार 50 वर्ष से ज्यादा आयु वाले व्यक्ति जो अकेले जीवन व्यतीत करते हैं, उन्हें सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा (अर्थात् पारिवारिक जीवन वाले व्यक्ति) रक्तचाप होने की सम्भावना ज्यादा होती है । शोध कर्मियों ने शिकागो शहर के 50 से 68 वर्ष की आयु वाले 229 व्यक्तियों पर शोध किया । शोधकर्मियों ने पाया कि नवयुवकों के रक्त वाहिनी का सम्बन्ध रक्तचाप से होता है । ड्यूक विश्वविद्यालय में भी जो अध्ययन किये गये उनसे यह निष्कर्ष निकला कि सामाजिक रूप से अलग रहने वाले व्यक्तियों में हृदय रोग का खतरा ज्यादा होता है ।

मोबाइल फोन से ब्रेन ट्यूमर का खतरा

ब्रिटिश और डच अध्ययन से असहमति

इन्टरनेशनल आर्किव्स ऑफ ओक्यूपेशनल एण्ड एनवारेन्टल हेल्थ में प्रकाशित एक शोधपत्र के अनुसार स्वीडिश नेशनल इन्स्टीच्यूट फार वर्किंग लाइफ के शोध कर्मियों ने 2,000 कैन्सर रोगियों और इतने ही बराबर स्वस्थ पुरुषों पर परीक्षण किया । 905 रोगियों में जो मोबाइल फोन का ज्यादा इस्तेमाल करते थे, उनमें 10 में से 1 रोगी थे । इसके विपरीत ब्रिटिश मेडिकल जरनल और डच हेल्थ कौन्सिल के अनुसार सेलं फोन का सम्बन्ध मस्तिष्क ट्यूमर से नहीं है ।

अस्पताल में मोबाइल फोन के प्रयोग से संक्रमण का खतरा

हिन्दुस्तान टाइम्स में प्रकाशित एक समाचार के अनुसार मंगलौर स्थित कस्तूरबा मेडिकल कालेज में एक सर्वेक्षण किया गया है । सर्वेक्षण में किये गये एक अध्ययन के अनुसार अस्पताल के चिकित्सक, नर्स एवं अन्य कर्मी मोबाइल, डिजिटल सेवा एवं कम्प्यूटर द्वारा सूचना भेजने के साथ-साथ कीटाणुओं के प्रसार की महत्वपूर्ण भूमिका अ कर रहे हैं । विशेषज्ञों के अनुसार यदि मोबाइल फोन क उपयोग असावधानी से आई.सी.यू. या शल्य कक्ष में कि जाय तो संक्रमण के प्रसार होने का भय बिना रहता है । अध्ययन में बताया गया है कि एस. औरियस बैक्टीरिया रोगियों से अलग किया गया है, मेथिसिलिन नामक द का प्रतिरोधी है ।

'घोंघा बुखार' के जीन की पहचान

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुस चीनी वैज्ञानिकों ने कहा है कि चिकित्सा जगत् में सि सोमिएसिस नाम से मशहूर 'घोंघा बुखार' फैलाने वा परजीवी कीड़े के 300 महत्वपूर्ण जीनों के बारे में खोज क ली गयी है । इस खोज के बाद उष्णकटिबंधीय रोग क लिए दवा खोजने में मदद मिलेगी । एशिया, अफ्रीका औ लैटिन अमेरिका के लगभग 76 देशों में फैलने वाले इस रो में किडनी, लीवर और अन्य अंगों के ऊतक धीरे-धी क्षतिग्रस्त होने लगते हैं । संबंधित अध्ययन का विस्तृ विवरण अमेरिका की पब्लिक लाईब्रेरी आफ साइंस के आनलाइन पर जारी किया गया है । इस संबंध में शं डेली में रिपोर्ट में प्रकाशित की गयी है ।

गर्भस्थ शिशु को दर्द महसूस नहीं होता

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसा अक्सर ऐसी महिलाएं, जो गर्भपात कराने की इच्छुक हो हैं, यह सोचती है कि इस प्रक्रिया में उनके गर्भ में पल र शिशु को दर्द होगा, लेकिन उनका यह सोचना बिल्कु गलत है, क्योंकि हाल के एक अध्ययन से पता चला है कि गर्भस्थ शिशु को दर्द नहीं होता । बर्मिंघम विश्वविद्यालय के मनोविज्ञानी स्टुअर्ट डर्बीशायर ने बताया कि इस बात पुख्ता प्रमाण मिले हैं कि गर्भस्थ शिशु को दर्द महसूस हो नहीं सकता । महिलाओं में यह धारणा होती है कि उन्हें गर्भस्थ शिशु को दर्द होगा और इसके लिए उन्हें द निवारक दवाएं लेने की सलाह भी दी जाती है, लेकिन

डर्बीशायर ने बताया कि ये दवाएं महिलाओं के लिए खतरा उत्पन्न कर सकती हैं । डर्बीशायर ने बताया कि आम तौर पर गर्भस्थ शिशु में दर्द को महसूस करने लायक प्राकृतिक प्रक्रिया गर्भधारण के 26 माह पूरे होने के बाद ही शुरू होती है । उन्होंने तर्क दिया कि दर्द का अनुभव मस्तिष्क के विकास के बाद ही हो सकता है । उन्होंने कहा वैसे भी मस्तिष्क का विकास आमतौर पर भ्रूण के बाहर ही होता है ।

लाल मिर्च व अदरक करते हैं कैंसर से रक्षा

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

मिर्च खाओ, कैन्सर भगाओ । कैन्सर चिकित्सा में लगे वैज्ञानिकों का यह नया नारा हो सकता है । हल्दी के कैंसररोगी गुणों की पुष्टि के बाद दो और भारतीय मसालों में भी ऐसे ही गुणों की मौजूदगी का पता चला है । अमेरिकन एसोसिएशन ऑफ कैन्सर रिसर्च की वार्षिक बैठक में पेश किए गए एक अध्ययन में बताया गया कि लाल मिर्च अग्नाशय के कैंसर को रोक सकती है । लाल मिर्च को तीखापन देने वाले रसायन कैप्साइसिन में यह चमत्कारी गुण पाया जाता है । यह रसायन क्षतिग्रस्त कोशिकाओं के निस्तारण की शरीर की प्राकृतिक क्षमता का इस्तेमाल करते हुए कैंसरग्रस्त कोशिकाओं को मार डालता है । एक अन्य शोध के अनुसार अदरक गर्भाशय कैंसर को नष्ट कर सकता है । अदरक में पाए जाने वाले तत्व कैंसरग्रस्त कोशिकाओं को दो तरह से मारते हैं । इनमें पहला तरीका मिर्च जैसा है जिसे एपोप्टोसिस या स्वविनाश कहा जाता है । दूसरे तरीके की ऑटोफाजी कहते हैं जिससे कैंसर कोशिकाएं खुद को ही पचा लेती हैं । दोनों शोध खासे महत्वपूर्ण हैं लेकिन मनुष्यों तक इसके परीक्षणों को पहुंचने में अभी लंबा वक्त लगेगा । मिर्च के कैंसररोधी गुणों की पुष्टि चूहों के उपर किए गए प्रयोग से हुई । इन चूहों में मानव अग्नाशय के ट्यूमर प्रतिस्थापित किए गए थे । दूसरी ओर अदरक के गुणों का पता प्रयोगशाला की डिश में किए गए प्रयोग से चला । वैज्ञानिक ने गर्भाशय की प्रयोगशाला में उगाई गई कैंसरग्रस्त कोशिकाओं पर अदरक के पाउडर को घोल कर डाला । एक और दिलचस्प बात यह है कि मिर्च पर पिट्सबर्ग स्कूल आफ मेडिसिन में कार्यरत भारतीय वैज्ञानिक डा०संजय श्रीवास्तव के नेतृत्व में सम्पन्न किया गया जबकि अदरक वाले शोध को मिशगन विश्वविद्यालय के डा० रेबेका लिऊ ने अंजाम दिया ।

गुर्दे के मरीजों के लिए चबाने वाली गोली

दैनिक हिन्दुस्तान में प्रकाशित समाचार के अनुसार

अमेरिका के खाद्य एवं ड्रग प्रशासन ने अब गुर्दे के रोगियों के लिए एक चबानेवाली बिना कैल्शियम की टेबलेट को अपनी स्वीकृति दे दी है । इस टेबलेट से डायलेसिस पर रह रहे रोगियों को काफी राहत मिलेगी । एक अनुमान के अनुसार अमेरिका के करीब दो करोड़ लोगों को गुर्दे की बीमारी है । इनमें से करीब 512,000 व्यक्ति मूत्राशय व गुर्दे की बीमारी से मर जाते हैं । इन रोगियों को इस टेबलेट से बहुत लाभ मिलेगा । इस बिना कैल्शियम वाली टेबलेट से डायलेसिस पर रह रहे गुर्दे के रोगियों के शरीर में फास्फोरस का स्तर बनाने में सहायता मिलेगी । डायलेसिस पर रह रहे गुर्दे के रोगियों में कम फास्फोरस वाले खाने से उनके रक्त में रसायन बनने लगते हैं । इन रसायनों के कारण रोगियों को हड्डी का दर्द, कंकाल विकृति, हड्डियों का टूटना व दिल की बीमारी का खतरा बन जाता है । इस दवा को बनाने वाली कंपनी शायर फार्मास्युटिकल का कहना है कि फोसरेनोल एक चबाने वाली टेबलेट है जिसको बिना पानी के लिया जा सकता है । गुर्दे के जिन रोगियों उच्च फास्फोरस की शिंकायत है उन्हें कम तरल पदार्थ लेने चाहिए ।

आयुर्वेद जगत् की गतिविधियां

नयी दिल्ली

APPEAL

Request for :
- a) Reprints
- b) Reports
- c) Product Information on Ayurvedic Bhasmas and Unani Kushtas

For a
DST Book Project
On
MINIRAL ORIGIN DRUGS USED
IN AYURVEDA
AND UNANI MEDICINE
Prof. S.B. Vohora
114 Kailash Hills, New Delhi - 110065
Phone : 262319410
Email : sbvohora 31@rediffmail.com

जोड़ों में दर्द, सूजन, जक्ड़न (गठिया बाय) की अनूभूत रामबाण दवा

अखिल भारतीय आयुर्वेद सेवा संघ रजि० भारत सरकार के अध्यक्ष माननीय डा०वी०के०खुल्लर जी के द्वारा प्रशिक्षित एवं प्रमाणित आयुर्वेद की शुद्ध जड़ी-बूटियों द्वारा तैयार औषधि के प्रयोग से कोई साईड इफैक्ट नहीं है। गठिया के रोगी जो खाट पकड़ चुके हैं जिनके हाथ-पाव की उंगलियों मुड़ चुकी हैं, जो बदन दर्द, कमर दर्द से पीड़ित है, दवा का सेवन करके पूर्ण रूप से स्वास्थ्य लाभ उठा रहे हैं। आयुर्वेद शिरोमणि उपाधि से सम्मानित डा० बसोदिया द्वारा मानव सेवा हेतु दस दिन की दवा मुफ्त में दी जाती है। पीड़ित रोगी स्वयं या अपने बारे में पूर्ण विवरण भेजकर निम्नलिखित पते से डाक खर्च भेजकर प्राप्त कर सकते हैं। बसोदिया, आयुर्वेदिक एवं नैचुरोपेथी हैल्थ सेंटर, सी-57बी, इन्दिरा इन्कलेव, इग्नू रोड़, नई दिल्ली-110068 मोबाइल-9811067617, 9313462395, 9868257617 ।

नोट: निम्नलिखित केन्द्रों से भी दवा प्राप्त कर सकते हैं।

1. रोबिन क्लिनिक, विकास नगर, विकास बिहार, नई दिल्ली - 59 मो. 5350114431

दवा भेजने में हो रहे विलम्ब का कारण अधि मात्रा में फ्री दवा मांगने की मांगें है। इसलिये आप स से विनम्र निवेदन है कि धैर्य रखें, दवा सभी मरीजों क भेजी जा रही है। कृपया दुबारा पत्राचार न करें, पत्रा करते समय पेपर की कटिंग व फोन न० लिखें।

उत्तर प्रदेश

उ०प्र० प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन का चुनाव सम्पन्न

वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र अध्यक्ष निर्वाचित

आज दिनांक 13 अप्रैल 2006 को उ०प्र० आयुर्वे सम्मेलन की एक आम सभा की बैठक प्रान्तीय अध्य वैद्य श्री श्रीनिवास शर्मा सांस्कृतायन की अध्यक्षता में धनवन्तरि चिकित्सालय, दुर्गा जी मन्दिर, शास्त्रीनगर, लखन के सभागार में सम्पन्न हुई। बैठक का उद्घाटन पूर्व वरि उपाध्यक्ष अ०भा० आयुर्वेद महासम्मेलन वैद्य श्री दया जी अवस्थी द्वारा भगवान धनवन्तरि की पूजा व माल्यार्प करके किया गया। बैठक को वैद्य श्री दयाराम अवस्थी, मण्डलाध्यक्ष, वैद्य मंगलदेव त्रिवेदी, जनपदाध्यक्ष, वै नगेन्द्र नाथ दीक्षित ने सम्बोधित कर कहा कि आज के दौ में प्रदेशाध्यक्ष की बागडोर ऐसे व्यक्ति को सौंपनी चाहिए जो स्पष्ट वक्ता कुशल प्रशासक, कर्मठ एवं ईमानदार हो जिससे आयुर्वेद संगठन आगे बढ़ सकें। हमें कुशल नेतृत्व की क्षमता वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वैद्य श्री ब्रज बिहारी मिश्र में ही दिखायी दे रही है। ये ही ऐसे व्यक्ति हैं जो संघर्षशील, कर्मठ एवं सबको साथ लेकर आयुर्वेद जगत की समस्याओं को शासन प्रशासन तक रख सकते हैं। वैद्य श्री मंगलदेव त्रिवेदी मण्डलाध्यक्ष, लखनऊ मण्डल, आयुर्वेद सम्मेलन ने प्रान्तीय अध्यक्ष हेतु वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र का ना प्रस्तावित किया जिसका समर्थन वैद्य नगेन्द्र नाथ दीक्षित, वैद्य भगवती प्रसाद दीक्षित, वैद्य दशरथ सिंह, वैद्य श्री के०के० शुक्ला के अतिरिक्त सभागार में बैठे सभी सदस्यों ने करतल ध्वनि से किया। प्रान्तीय अध्यक्ष वैद्य श्री श्री निवास शर्मा ने प्रान्तीय अध्यक्ष पद हेतु वैद्य ब्रज बिहारी मिश्र के निर्विरोध निर्वाचित होने की घोषणा की।

अन्त में वरिष्ठोपाध्यक्ष वैद्य दशरथ सिंह ने सम सम्मानित सदस्यों को इस निर्वाचन के प्रति आभार

धन्यवाद देकर अल्प जलपान के साथ बैठक समाप्त होने की घोषणा की ।

विश्व आयुर्वेद परिषद्

विश्व आयुर्वेद परिषद् के तत्वावधान में नववर्ष संवत् सर वि.सं. 2063 सोरों गेट स्थित इन्दिरा गांधी मेमोरियल स्कूल में मनाया गया । इस अवसर पर लायन्स क्लब के अध्यक्ष **हरपाल सिंह सोलंकी** (पूर्व उपाधीक्षक पुलिस) ने मुख्य अतिथि के रूप में कहा कि आयुर्वेद के साथ सौतेला पन समाप्त होना चाहिए क्योंकि यह हमारे देश की विरासत है, इसे नष्ट नहीं होने देना है ।

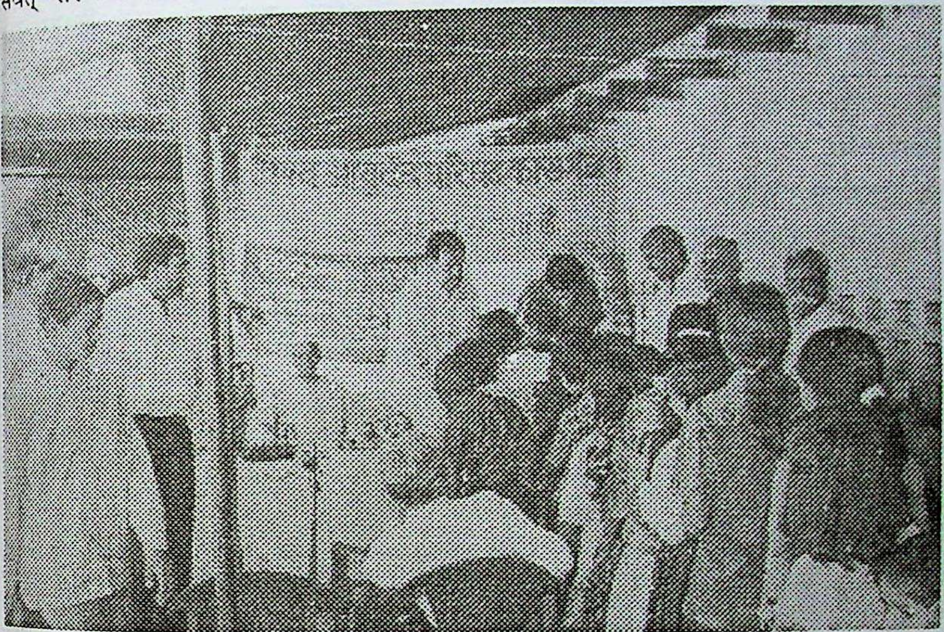

डा० विनय शौनक, आयुर्वेदाचार्य, पी.एच.डी. के निर्देशन में 100 बच्चों को निःशुल्क खसरा, टाइफाइड, चेचक की दवाई नववर्ष संवत्सर वि.स. 2063 के अवसर पर वितरित की गई ।

इस अवसर पर गंजडुडवारा पी.जी. कालेज के वनस्पति विभाग के प्रमुख **डा०आर.एन.यादव** ने कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कहा कि पूरा वनस्पतिशास्त्र ही आयुर्वेद है जो हमारे दैनिक जीवन में रचा वसा हुआ है । कार्यक्रम में विशिष्ट अतिथि सोरों में समाज सेवी **श्री सुरेश परियात** ने कहा कि आयुर्वेदों अरूण सरकार की करना चाहिए । विशिष्ट अतिथि न.पा. कन्या इन्टर कॉलेज की प्राचार्या **श्रीमती लक्ष्मी सक्सैना** ने कहा कि हमें टेंसू के फूल जैसी दिव्य औषधि पर गर्व होना चाहिए जो स्नान के द्वारा संक्रामक रोगों से बचाव करती है, विशिष्ट अतिथि जे.एल.एन. पीजी कॉलेज में हिन्दी विभाग के रीडर डा. आनन्द गौतम ने कहा कि विश्व आयुर्वेद परिषद् की जो टीम डा०विनय शौनक के निर्देशन में कार्यरत है वह वास्तव में ऐतिहासिक कार्य कर रही है ।

विश्व आयुर्वेद परिषद् के जिलाध्यक्ष डा० विनय शौनक ने कहा कि आयुर्वेद शास्त्र पूर्णतः वैज्ञानिक है । इसमें सन्देह की कोई गुंजाइश नहीं है, सरकार यदि आर्थिक मदद दे तो प्रतिवर्ष एक दिव्य औषधि रोगियों के लिए खोजी जा सकती है । नगर अध्यक्ष, डा० **रामेश्वर सिंह यादव** ने सभी आगन्तुकों का आभार व्यक्त किया । कार्यक्रम में डा० **गंगा प्रसाद यादव, डा० प्रभाकर शर्मा, कालीचरन माहेश्वरी**, असम माहेश्वरी, एडवोकेट, **वाई. ए. खान** (गु०) **स्वास्थ्य एवं खाद्य निरीक्षक नगर पालिका परिषद्, कासगंज** ने भी कार्यक्रम को सम्बोधित किया । इस कार्यक्रम में डा० **वीरेन्द्र सिंह (चिकित्साधिकारी, मामों)** कार्यक्रम प्रभारी ने आगन्तुकों का आकार व्यक्त किया । कार्यक्रम में डा० **भूदेव शर्मा** ने सफल संचालन किया ।

इस कार्यक्रम में जिलाध्यक्ष **डा० विनय शौनक** द्वारा अन्वेषित खसरा, टाइफाइड, चेचक निरोधक औषधि 100 बच्चों को निःशुल्क वितरित की गई । कार्यक्रम प्रभारी डा० विरेंन्द्र सिंह ने माननीय गुणों, भारतीय संस्कृत एवं राष्ट्रीयता के लिए समर्पित संस्था बुद्धिजीवी विचार परिषद् द्वारा विश्व आयुर्वेद परिषद् के सतत् सहयोग की

सराहना करते हुए आभार व्यक्त किया ।

श्रद्धांजलि अर्पित

डा० वीरेन्द्र पाल सिंह, क्षेत्रीय आयुर्वेदिक एवं यूनानी अधिकारी, अलीगढ़ के पिताश्री स्व० श्री सत्यपाल सिंह के आकस्मिक निधन तथा डा० श्रीपाल सिंह सौलंकी सचिव मैनपुरी की पुत्री के आकस्मिक निधन पर यह सभा शोक व्यक्त करती है, इस दुखद घड़ी में प्रान्तीय संघ तथा शाखा ईकाइ हाथरस आपके शोक के सहभागी हैं ।

ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि यह दिवंगत आत्मा को शान्ति एवं मोक्ष प्रदान करें एवं आपको इस दुखद घड़ी में धैर्य प्रदान करें । यश, अपयश, सुख-दुख, जीवन-मरण, यह मानव जीवन के अटूट सत्य है ।

भवदीय
(डा० राकेश मोहन शर्मा)
प्रभारी चिकित्साधिकारी/मण्डलीय सचिव
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
बरई शाहपुर-हाथरस
(उ०प्र०)

गुजरात रसायनम् का शुभारंभ

डा० जय कृष्ण बी. जानी, अहमबाद में 'रसायनम्' (Ayurved Panchakarma Clinic & Longevity Centre) का शुभारंभ दि० 26/03/2006 रविवार को अहमदाबाद में 325 बेरोनेट कॉम्पलेक्स, पुराना टोलनाका, साबरमती में संपन्न हुआ ।

स्वामी कल्याणदेव राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, रायपुर,

मुजफ्फरनगर में प्रशिक्षण कार्यक्रम :-

स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के आयुष विभाग द्वारा सतत् चिकित्सा शिक्षा कार्यक्रम के अंतर्गत प्राइवेट चिकित्सकों को प्रशिक्षण दिये जाने हेतु 18-19 मार्च को अहमदाबाद से आचार्य वैद्य एन. एस. कस्तुरे, पूर्व नियामक, गुज.राज्य आयु. विभाग एवं विश्व विख्यान पंचकर्म वैद्य को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया तथा पूर्व नियामक आयुर्वेदतज्ञ वैद्य वी.डी. नंदूरबारकार (अहमदाबाद), सरकारी मणिबेन आयुर्वेदिक हॉस्पिटल के अधिक्षक पंचकर्म वैद्य श्री टी.एल. स्वामी तथा विश्वविख्यात आयुर्वेदीय क्षार सूत्र चिकित्सक, वैद्य श्री देवेन्द्र शाह और महाविद्यालय के प्राचार्य एवं अधीक्षक वैद्य वी.डी. अग्रवाल तथा सभी चिकित्सक मित्रों ने इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में अपना पूर्ण सहयोग देकर कार्यक्रम को सफल बनाया ।

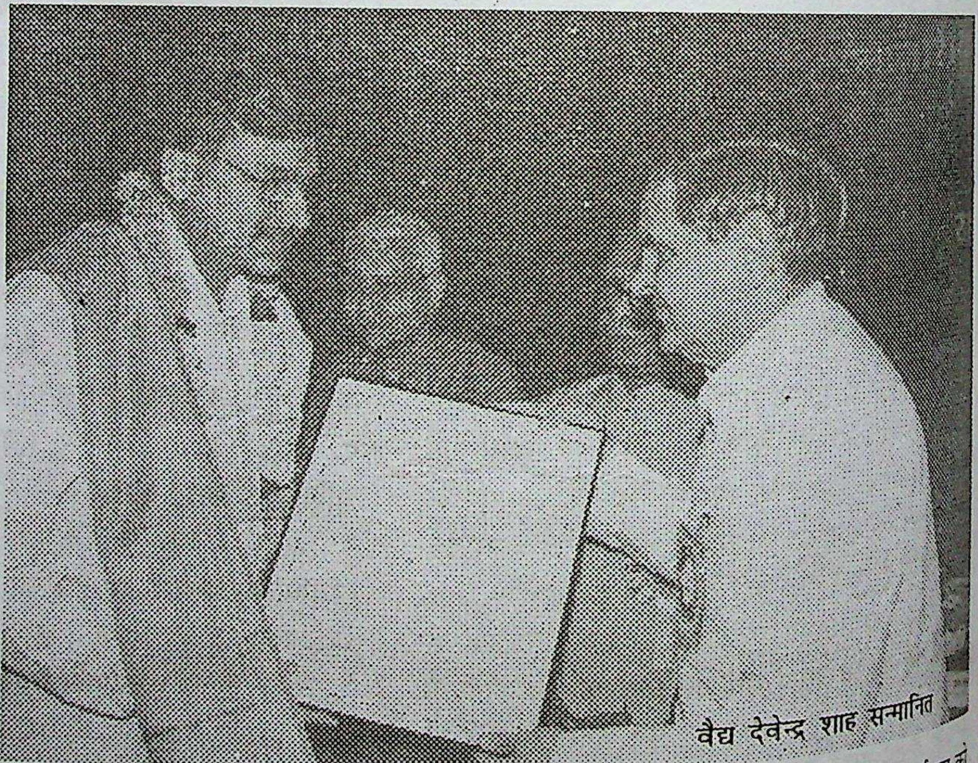

वैद्य देवेन्द्र शाह सन्मानित

प्राचार्य एवं अधीक्षक वैद्य श्री वी.डी. अग्रवाल जी द्वारा आयुर्वेद महाविद्यालयों में वैद्य समुदाय एवं महाविद्यालय

के छात्र-छात्राओं के लिये देश के विभिन्न प्रांत से आयुर्वेद मनीषियों को आदर पूर्वक आमंत्रित कर प्रशिक्षण एवं चिकित्सा शिक्षा कार्यक्रम निरंतर आयोजित किये जाते हैं ।

गुजरात के प्रसिद्ध क्षारसूत्र चिकित्सक वैद्य देवेन्द्र शाह सन्मानित

गुजराज प्र०आयु०संमे० के प्रधानमंत्री, नि.भा.आधी. विद्यापीठ के उपाध्यक्ष, भारत सरकार के अधिन स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत आयुष विभाग द्वारा संचालित नई दिल्ली स्थित नेशनल एकेडमी ऑफ आयुर्वेद की Governing Body Member अहमदाबाद के वैद्य श्री देवेन्द्र शाह को (क्षार-सूत्र चिकित्सक) राष्ट्रीय आयुर्वेद विद्यापीठ (Under Dept. of AYUSH, Ministry of Health & Family Welfare, Govt. of India) 12th Convocation & Ayurvedic Seminar on (30-31 March 200) Mental Health के समारोह में दिल्ली राज्य के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय श्री जगन्नाथ मिश्रजी के कर कमलों द्वारा स्मृति चिन्ह, शॉल कलश एवं Fellow ship प्रमाण-पत्र से सम्मानित किया गया ।

खेडा जिला प्रेक्टीशनर एशोशिएसन

डा० राजेन्द्र राज-वडियाद की अध्यक्षता में दि० 26/03/2006 रविवार को होटल बुडलेन्ड बडियाद स्थित स्त्रीरोग, विशेषज्ञ डा० हसमुख अग्रवाल, अहमदाबाद द्वारा व्याख्यान एवं Audio-Visual कार्यक्रम का आयोजन किया गया । इस समारोह में अहमदाबाद के डा०हसमुख वैद्य विशेष रूप से आमंत्रित हैं । सेक्रेटरी डा० अनिरूद्ध व्यास, चेयरमेन उपेन्द्र भट्ट, उप प्रमुख, डा० रमेश पटेल, एडवाइजर डा० अरविन्द वैद्य ड्रेसरर बडे उत्साह से इस CME कार्यक्रम का लाभ उठाया ।

डा० इनुख वोरा अन्य सभी वैद्य मित्रों ने बड़ ।

शुद्ध स्वर्ण भस्म से निर्मित

बैद्यनाथ

रुमार्थो गोल्ड

पुराने जोड़ों के दर्द की प्रभावी दवा

रुमार्थो कैप्सूल में स्वर्ण भस्म का विशेष मिश्रण होने से यह गठिया वात एवं जीर्ण जोड़ों के दर्द पर व मांसपेशियों के रोगों में अत्यंत प्रभावी औषधि है ।

‘सचित्र आयुर्वेद’ के ग्राहक कृपया ध्यान दें

‘सचित्र आयुर्वेद’ के ग्राहकों से हमारा विनम्र निवेदन है कि जिनका चन्दा जून’ 2006 तक जमा है, जून’ 2006 का अंक मिलने के बाद उनका वार्षिक शुल्क समाप्त हो जाएगा। अतः निवेदन है कि अब वे यथाशीघ्र जुलाई, 2006 से जून, 2007 तक की अवधि के लिए वार्षिक शुल्क 100 रुपया मनीआर्डर से निम्न पते पर भेज दें। इस प्रकार जिन ग्राहकों का वार्षिक शुल्क हमें प्राप्त हो जायेगा, उन्हें हम अलग से कोई कार्ड अथवा वी. पी. नही भेजेगे। स्मरणीय है कि मनीआर्डर से चंदा भेजने पर केवल 100 रुपये ही देने पड़ेगे जबकि वी.पी. भेजने पर लगभग 150 रुपये देने पड़ जायेगे। अतः एकमात्र तरीका मनीआर्डर द्वारा वार्षिक चंदा यथाशीघ्र भेज देना है। अगर किसी ग्राहक महानुभाव को किसी कारणवश अग्रिम वर्ष 2006-2007 से ग्राहक नहीं बनना हो तो वे अपने निर्णय की सूचना इस कार्यालय को शीघ्र देगे। यदि किसी कारणवश वार्षिक शुल्क में वृद्धि हुयी, तो यह वृद्धि उन ग्राहकों पर लागू नहीं होगी, जिन्होने शुल्क भेज दिया है।

नोट - जो ग्राहक छात्र हैं, वे अपने संस्थान से प्राप्त प्रमाण-पत्र के साथ रियायती वार्षिक शुल्क मात्र 75.00 रु. मनीआर्डर से भेज सकते हैं।

Central Library
Gurukul Kangri University
Hardwar-249404 (U.A.)

व्यवस्थापक

सचित्र आयुर्वेद

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०,

बैद्यनाथ भवन रोड, पटना-800 001

सम्पादकीय

वैज्ञानिक एवं तकनीकी सफलता, संवेदी सूचकांक की अप्रत्याशित वृद्धि और शिशु स्वास्थ्य

हमारे देश के राजनेता इस बात से प्रसन्न हैं कि देश काफी तेजी से वैज्ञानिक एवं तकनीकी सफलता हासिल कर रहा है । स्टाक एक्सचेंज में संवेदी सूचकांक पिछले दिनों से काफी तेजी से बढ़ रहा था । अचानक ही सूचकांक में काफी गिरावट आयी । भारत के वित्त मंत्री एवं सरकार एवं वित्तीय संस्था भयभीत हो गये । सूचकांक में अप्रत्याशित वृद्धि और गिरावट सरकार के खोखले दावे की ओर संकेत देती है । हमारे देश में उच्च वर्गीय लोग एवं प्रेस इस बात का प्रचार करने में लगे हुए हैं कि स्टाक एक्सचेंज का संवेदी सूचकांक हमारी प्रगति की दर को रेखांकित करता है । हम सहमत हैं कि हमारे देश में वैज्ञानिक एवं तकनीकि प्रगति काफी तेजी से हो रही है, लेकिन यह तेजी दुनिया के अन्य देशों में भी हो रही है । एशिया में चीन काफी तीव्र गति से आर्थिक प्रगति कर रहा है । किन्तु, इस तेजी का यह अर्थ कदापि नहीं है कि हम अपने सामाजिक दायित्वों को भूल जायं । भारत के राष्ट्रपति, डा० ए.पी.जे. कलाम ने तकनीकी दिवस के अवसर पर राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए नयी स्वास्थ्य योजना को बनाने पर जोर दिया । उनकी राय में इस योजना में जैव तकनीक एवं नेनो तकनीक का भरपूर उपयोग होना चाहिए । डा० कलाम ने अनेक अवसरों पर कहा कि विज्ञान एवं तकनीक का प्रयोग आम जनता के लिए होना चाहिए । हम उनसे इस प्रश्न पर सहमत हैं ।

बच्चे राष्ट्र के भविष्य हैं । आज का शिशु कल का राष्ट्र का नायक बन सकता है । यदि उनका बचपन निर्धनता में व्यतीत होगा, स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक आहार एवं औषधियों को क्रय करने में उनके अभिभावक सक्षम नहीं होंगे, तो निश्चय ही इसका असर उनकी मेधा-शक्ति पर पड़ेगा । ये शिशु युवक होकर भी आलसी होंगे और वे मनोयोग पूर्वक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर पायेंगे । अतः वक्त का तकाजा है कि विकास सही अर्थों में हो । इस विकास का लाभ-शिशु से लेकर वृद्धों तक को प्राप्त हो, तभी विकास सार्थक कहा जा सकता है ।

संयुक्त राष्ट्र संघ के एक प्रतिवेदन के अनुसार दुनिया की आबादी के एक तिहाई बच्चे कुपोषण के शिकार हैं । भारतवर्ष में इसकी दर इथोपिया की तरह 47% है । आंकड़ों के अनुसार दुनिया की आधी आबादी के बच्चे जो अल्प वजन एवं कुपोषण के शिकार हैं, वे दक्षिण एशिया से आते हैं । हमारे देश में बालकों की अपेक्षा बालिकाओं में कुपोषण की ज्यादा शिकायत मिलती है । यूनिसेफ के एक प्रतिवेदन के अनुसार पांच वर्ष की कम आयु के लगभग 600000 शिशुओं की मृत्यु प्रतिवर्ष हो जाती है । यह मृत्यु आहार-विहार एवं सफाई से रोकी जा सकती है । चौंकाने वाला तथ्य है कि चीन वैज्ञानिक एवं तकनीकी क्षेत्र में सफलता के साथ-साथ स्वास्थ्य-क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति कर रहा है । आंकड़ों के अनुसार चीन में कुपोषण से होने वाली मृत्यु की दर घटाकर 8% कर दी है । विश्व के अनेक देशों में, विशेषकर दक्षिण एशिया के देश में सन् 2015 तक भूख और गरीबी से होने वाली मृत्यु में विजय प्राप्त करने का दावा किया गया है, किन्तु हमें सन्देह है कि लक्ष्य के अनुपात में सफलता प्राप्त हो सकेगी । कारण यह है कि हमारी सरकार का ध्यान मूल समस्याओं की ओर नहीं है । वे देश की तरक्की की बात तो करते हैं, किन्तु तरक्की के परिणामों को आम जनता के मध्य वितरित नहीं करना चाहते हैं । यूनिसेफ ने स्पष्ट किया है कि कुपोषण के मुख्य कारण कुपोषण, शिक्षा का अभाव और सामाजिक विषमता हैं । हमारे देश में अलग-अलग राज्यों में कुपोषण का प्रतिशत अलग-अलग है । उदाहरण के लिए मध्य प्रदेश में यह दर 55.1% है, जबकि बिहार में इसकी दर 54.4% है । यह सत्य है कि इन दोनों राज्यों में काफी गरीबी है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं हैं कि धनी राज्यों में कुपोषण के शिकार शिशु नहीं हैं उदाहरण के लिए देश की वित्तीय राजधानी, मुम्बई के नजदीक वाले शहर थाणे में भी स्थिति काफी दयनीय है । आंकड़ों के अनुसार गत वर्ष 6 वर्ष से कम आयु के 1100 शिशुओं की मृत्यु केवल थाणे जिले में हुयी है । यद्यपि मृत्यु के कारणों में न्यूमोनिया तथा अन्य रोग बताये गये हैं, जबकि विशेषज्ञ चिकित्सकों के अनुसार यह सत्य नहीं है । कुपोषण के कारण रोगियों की रोग से लड़ने की प्रतिरोधी क्षमता कम हो जाती है, फलतः मृत्युजन्य रोगों की उत्पत्ति हो जाती है ।

अतः जरूरत है किं बच्चों को पौष्टिक भोजन निरन्तर मिले । आशा है कि सरकार इस दिशा में आवश्यक कार्रवाई करेगी । वैज्ञानिक और तकनीकी सफलता तथा संवेदी सूचकांक को लेकर सरकार आम जनता को मूर्ख नहीं बनाते तो ज्यादा अच्छा होगा ।

धारावाहिक

आयुर्वेद का इतिहास-79

[1]पं० बनवारी लाल शर्मा
[2]विमल चन्द्र झा

नागार्जुन

श्री मैक्स वालेसर[1] ने नागार्जुन के सम्बन्ध में लिखा है - "इससे हम सहमत हैं कि आज तक नागार्जुन का जीवन पूरी तरह संदेहों में भरा है, क्योंकि परम्परा के विरोधाभासी साधनों से ज्ञात होता है कि इस नाम के लेखक अवश्य थे।"

श्री मूर्ति[2] ने नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तथ्य स्थापित किये हैं :-

1. श्री नागार्जुन 150 ई० में पैदा हुए थे।
2. यह अच्छी परिकल्पना है और इससे ज्यादा कुछ भी नहीं कि वे दूसरी शती के उत्तरार्ध में पैदा हुए थे (सन्दर्भ :- Wintermitz, History of Indian Literature, II, P.342)

श्री भट्टाचार्य[3] के अनुसार नागार्जुन बौद्ध उपदेशक थे तथा उसी नाम से अन्य तान्त्रिक शिक्षक से पृथक् थे जो सातवीं शती में थे। नागार्जुन दूसरी शती में पैदा हुए थे।

श्री बागची[4] ने निम्नलिखित मत व्यक्त किये हैं :-

1. नागार्जुन सिद्धों में से एक थे। साधना में रस विधा लागू करने का श्रेय नागार्जुन को जाता है।
2. बोधिसत्व का सम्बन्ध रसविधा से है।
3. शरीर में बोधिसत्व एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसके विपरीत रस एक जगह स्थिर नहीं रहता है। इस के अस्थिर गुण को समाप्त करने के लिए इसे वज्र में बदला जाता है। इसके अतिरिक्त पारद बोधिसत्व की तरह है जिसे रसविज्ञानी, कठोर धातु (जैसे सोना) में बदलने का प्रयास करते हैं।
4. सिद्ध नागार्जुन दसवीं शती में थे। प्रथम सिद्ध भी दसवीं शती में थे।

सर्वश्री मजुमदार, रायचौधुरी एवं दत्त[5] के अनुसार नागार्जुन शातवाहन के शासनकाल में पैदा हुए थे। एक जगह वे लिखते हैं कि अश्वघोष के काल में चरक, सुश्रुत, नागार्जुन, कुमारलता थे।

श्री कैथ[6] ने अपनी पुस्तक में नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्न तथ्यों पर प्रकाश डाला है :-

1. नागार्जुन रहस्यमय थे। सम्भवत: वे द्वितीय शती
उत्तरार्ध में थे। माध्यम कारिका में विरोधाभासी
है।
2. सुहृल्लेख में नागार्जुन में बौद्ध दर्शन को एक राजा
लिए संक्षेपीकरण किया है। दुर्भाग्यवश उनका
परिचय नहीं मिलता है।
3. नागार्जुन बौद्ध दार्शनिक थे।
4. योग सार एवं योग शतक के लेखक नागार्जुन माने
हैं (सन्दर्भ :- Hara Prasad, Report 1, PP.
Nepal Catel, P. xxii)
5. रतिशास्त्र के लेखक नागार्जुन थे। (सन्दर्भ :-
Schmidt, WZKM, xxiii, 180 ff, and on the
Smaratattvaprakacika of Revanaradhya, WZK
xiii, 261 ff.)
6. रसरत्नकार के लेखक नागार्जुन थे, किन्तु वे
अनुसार इसे सातवीं या आठवीं शती का मानते हैं।

श्री बनर्जी[7] के अनुसार नागार्जुन ने
शास्त्र या माध्यमिक कारिका नाम से 21 अध्यायों में
का प्रणयन किया। भारतीय इतिहास में नागार्जुन की
कृति मानी जाती है। इसमें शून्यता के दर्शन पर
डाला गया है।

श्री राघवन[8] ने चतु:स्तव के लेखक नागार्जुन
जिक्र किया है। इसमें बौद्ध स्तोत्रों का वर्णन है।

एक ग्रन्थ[9] के अनुसार नागार्जुन ने देश के
भाग पर अपनी प्रष्ठिता कायम की। इसके अतिरिक्त
ग्रन्थ में निम्न तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है :-

1. नागार्जुन बौद्ध दार्शनिक थे।
2. नागार्जुन के कई प्रसिद्ध ग्रन्थों का अनुवाद
भाषा में हुआ था। जैसे ईश्वर-कर्त्तव्य-निरंकार,
माध्यमकारिका, आमनेर कारिका, युक्तिशती
आदि।
3. माध्यमिक शाखा को तीन ग्रन्थों की शाखा कहा
है। जैसे - नागार्जुन माध्यमिक शास्त्र,
शास्त्र और आर्यदेव के शत् शास्त्र (चतु:शतक)

---

1. प्रबन्ध निदेशक, श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, 2 सम्पादक, सचित्र आयुर्वेद

विभिन्न विद्वानों द्वारा किये गये तर्कों के आधार पर नागार्जुन के सम्बन्ध में निम्न तथ्य निरूपित होते हैं :-

1. कनिष्क प्रथम का काल 78 ई० माना जाता है । बुद्ध चरित के लेखक, दार्शनिक, कवि और नाटककार अश्वघोष इनके दरबार में थे । **नागार्जुन** का काल अश्वघोष के समय माना जाता है । अर्थात् नागार्जुन का काल 78 ई० माना जा सकता है ।
2. शुंग और कण्व का शासनकाल 40-30 ई०पू० था जब शातवाहनों ने उन पर आधिपत्य स्थापित किया । कुछ पुराणों के अनुसार शातवाहन के 10 राजाओं ने 300 वर्षों तक शासन किया और कुछ विद्वानों के अनुसार 456 वर्षों तक शासन किया, किन्तु निश्चित रूप से सातवाहन शासन का अन्त तीसरी शती के मध्य में हो गया । यदि नागार्जुन सातवाहन शासन काल में थे, तो वे भी तीसरी शती के मध्य के पूर्व रहे होंगे । चूंकि सातवाहन का शासन ई०पू० से प्रारम्भ हुआ था और तीसरी शती के मध्य तक गया था, इसलिए यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि नागार्जुन वस्तुत: किस वर्ष पैदा हुए थे ।
3. आचार्य प्रियव्रतजी के अनुसार सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन गुप्तकालीन थे । इतिहासज्ञों के अनुसार गुप्तकाल 320 ई० से अर्थात् चन्द्रगुप्त प्रथम से प्रारम्भ होता है । इसका अर्थ है कि सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन 320 ई० के पश्चात् हुये होंगे । यदि प्रियव्रतजी के तर्क को सही माना जाय, तो गौतमीपुत्र यज्ञश्री (166 ई०-196 ई०) के समय का नागार्जुन पृथक् था ।
4. दार्शनिक नागार्जुन आर्य नागार्जुन से पृथक थे ।
5. रसेश्वर सिद्ध नागार्जुन निश्चित रूप से दार्शनिक नागार्जुन से पृथक् थे । कुछ विद्वान इनका अस्तित्व सातवीं शती से लेकर 10वीं शती तक मानते हैं । यदि इस तर्क को स्वीकार भी कर लिया जाय, तो 78 ई० के दार्शनिक नागार्जुन एवं रसेश्वर नागार्जुन में एक लम्बी अवधि का अन्तर हुआ है । अत: निश्चित् रूप से दोनों पृथक् थे ।
6. नागार्जुन बौद्ध दार्शनिक थे । इसका पर्याप्त प्रमाण इतिहास में उपलब्ध है ।
7. नागार्जुन रस सिद्ध भी थे - इसके भी प्रमाण मिलते हैं ।
8. दार्शनिक नागार्जुन और सुश्रुत के प्रतिसंस्कता एक हो सकते हैं, क्योंकि दोनों के काल में कम अवधि का अन्तर है ।
9. यह सम्भव है कि योगसार, योगशतक और रतिशास्त्र के लेखक नागार्जुन आयुर्वेदज्ञ नागार्जुन हो सकते हैं, क्योंकि जो चिकित्सा-विज्ञान पर अधिकार रखते हैं, वे योग-शास्त्र पर अधिकार रख सकते हैं, साथ ही दर्शनशास्त्र पर भी । उदाहरण के लिए चरक संहिता एक चिकित्सा-विज्ञान है; इसके बावजूद इसमें सांख्य और वैशेषिक दर्शन के विवरण मिलते हैं । प्राचीन काल में हमारे महर्षि जीवन के कई विज्ञानों पर एक साथ अधिकार रखते थे ।

निष्कर्षत: नागार्जुन कई थे एवं वे रहस्यमय व्यक्तित्व के स्वामी थे - इसमें दो मत नहीं है । इतिहासज्ञों को नागार्जुन के रहस्य पर से पर्दा उठाना चाहिए - यह हमारा अनुरोध है ।

(निरन्तर जारी)

सन्दर्भ :-

1. Life of Nagarjuna, P.6 - Max walleser.
2. Rise of the Philosophical Schools - T.R.V. Murti, M.A., D. LITT - The cultural Heritage of India - The Ramakrishna Mission - Institute of Culture, Calcutta.
3. Tantrika Culture Among the Buddhists - Benoytosh Bhattachary - Formerla Director. Oriental Institute - Baroda courtesy: The Cultural Heritage of India, The Ramakrishna Mission, Calcutta.
4. The cuit of the Buddhist Sudhacaryas- P.C. Bagchi, M.A.; Ph.D. - Cultural Heritage of India - The Ramakrishna Mission, Calcutta.
5. An Advanced History of India - R.C. Majumdar, H.C. Raychaudhuri and Kalikinkar Datta - Macmillan India Ltd., Madras.
6. A History of Sanskrit Literature - A.B. Keith, D.C.L., D. LITT. - Oxford University Press.
7. Buddhist Literature - Anukul chandra Banerjee, M.A., LLB - Formerly Head of the Deptt. of Pali, Calcutta University.
8. Sanskrit Kavya Literature : A general Survey - V. Raghavan-formerly Professor of Sanskrit; Madras University.
9. The Cultural Heritage of India, The Ramkrishan Mission, Calcutta.

अजीर्ण रोग-संक्षिप्त परिचय

वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए,

परिचय[1]

प्राचीन काल से ही आयुर्वेद साहित्य में अजीर्ण बहुचर्चित विषय रहा है। इसको अनेक रोगों को उत्पन्न करने वाला या रोगजनक रोग माना जाता रहा है।

'अजीर्ण' वस्तुत: 'जीर्णावस्था' की विपरीत स्थिति से सम्बद्ध विकार है। 'जीर्ण' आहार के सम्यक पाक होने या पच जाने को कहा जाता है। सम्यक आहार जीर्ण के लक्षणों में निम्न लक्षण प्रमुख रूप से कहे गये हैं -

- शुद्ध उदगार (डकार) आना।
- यथोचित, यथा समय मल-मूत्र आदि की प्रवृत्ति होना।
- पेट में भारीपन न लगकर पेट हल्का-लघु प्रतीत होना।
- शरीर भारी नहीं लगना या हल्कापन महसूस करना।
- आलस्य नहीं होना तथा उत्साहयुक्त होना।
- पूर्वभोजन पचने पर यथा समय क्षुधा एवं तृषा लगना।

इस अवस्था से भिन्न अवस्था को सामान्यत: अजीर्ण माना जाता है। अजीर्ण के रोग रूप विवरणार्थ विभिन्न हेतु, विकृतियों, सामान्य-विशेष लक्षण एवं चिकित्सा का संक्षिप्त परिचय यहां दिया जा रहा है।

अजीर्ण-हेतु[2]

(क) आहार दोष

- (दोष प्रकोपक रसादि अतिरेक ?)
- गुरु (च) शीत (च) अतिरुक्ष (च)
- विवेकहीन हो अतिमात्रा में आहार सेवन।
- अभोजन (च) विषमाशन (च) (सू)
  अजीर्णाशन (च)
  असात्म्य सेवन (च)
  संदुष्टभोजन
  - अत्याम्बुपान (सु)
  - अजीर्णकारक द्रव्य विशेष सेवन।

(ख) विहार दोष

I स्वप्नविपर्यय (सु) प्रजागरण (च) (सु)
- व्यवाय दोष- ?
- वेग धारण (च) (सु)

II मानसिक - ईर्ष्या (सु) लोभ (सु) शोक (सु) (च) दैन्य (सु) दुख (च) चिन्ता (च) (मा) भय (सु) (च) क्रोध (सु) (च) द्वेष (सु) मात्सर्य (सु)

(ग) उपक्रमदोष

स्नेह विभ्रम (च)
विरेक विभ्रम (च) वमन विभ्रम (च)'
अग्निमंद होने पर भी आहार सेवन (च)
अतिसारादि उत्पन्न मंदाग्नि में अहितान्न सेवन (च)
अतिकर्षण (च)

(घ) रोगानुबंधता

व्याधिकर्षण (च)
दीर्घ कालानुबंधी 'अग्नि' एवं आमाशय विकार आदि।

(ङ) पर्यावरणीय निमित्त

देश वैषम्य (च)
काल वैषम्य (च)

विकृति[3]

(1) घटक

दोष - त्रिदोष — दूष्य - रसादि धातु
अग्नि - मंद — आम - साम
स्रोत - अन्न - पुरीष वह आदि दुष्टि अग्नि आश्र
या अधिष्ठान दुष्टि, ग्रहणी दुष्टि।

(2) चरण

- निदान सेवन (च)।
- तज्जन्य अग्नि दुष्टि (च)।
- प्रदुष्ट अग्नि का लघु अन्न को भी नहीं पचा पा (च)।
- अन्न के परिपाक नहीं होने से अन्न शुक्तता ए विषगुणता को प्राप्त होना (च)।
- (अत:) विभिन्न निदान सेवन से यथा समयं सा एवं लघु आहार सेवित किया हुआ भी नहीं पच पा है। (सु)

(3) प्रकार - 3, 4 या 6 प्रकार माने गये हैं यथा -

(1) कफ जन्य - मधुर पाकदोष (मधुर पाक) - आम अजीर्ण (सु.) (मा.नि.)।

(2) पित्त जन्य - अम्लोत्पत्ति (अम्ल पाक) - विद

1497, ए 2/1, कृष्णनगर, रूपाणि सर्कल, भावनगर (गुजरात) 364001

अजीर्ण (सु.) (मा.नि.) ।

(3) वात जन्य - विषमपाक (कुछ पक्व - कुछ अपक्व) - विष्टब्ध अजीर्ण (सु.) (मा.नि.) ।

(4) (त्रिदोषज्ञ ?)- रसशेष अजीर्ण (सु.) (मा.नि.)

अन्य -

(5) निर्दोषाजीर्ण - दिन पाकी (मा.नि.) 12 से 24 घं. में पाचन होना ।

(6) प्राकृत अजीर्ण - प्रतिदिन रहने वाला (मा.नि.) (च) श्लेष्मला प्रकृति अनुबद्ध मंदाग्नि जन्य नित्य या चिरानुबंधी अजीर्ण या (कफप्रधान काल या श्लेष्म प्रधान देश सम्बद्ध अजीर्ण आदि भी इस दृष्टि से विचारणीय है ।)

सामान्यलक्षण'

अरोचक (च)	अविपाक (च)
विष्टम्भ (च)	जृम्भा (च)
शिरोरूक (च)	अंगमर्द (च)
सदन (शैथिल्य) (च)	तृषा (च) ज्वर (च)
पृष्ट-कटिग्रह (च)	छर्दि (च)
प्रवाहण (च)	भ्रम (च)
मूर्च्छा (च)	

विशेष लक्षण`

(क)	कफज	पित्तज	वातज
-	(अति मधुरता एवं कफ के लक्षण)	अम्लभावता एवं पित्तज लक्षण	पक्वापक्वता निरूद्धवातता एवं वातज लक्षण

(ख)	आमाजीर्ण	विदग्धाजीर्ण	विष्ट्म्भाजीर्ण	रसशेषाजीर्ण
	गुरूता (मा)	भ्रम (मा)	भृशतोद (सु)	उद्‌गारशुद्धि (सु)
	उत्क्लेश (मा)	तृषा (मा)	भृशशूल (सु) (मा)	(परन्तु फिर भी)
	गण्डशोथ (मा)	मूर्च्छा (मा)	निरूद्धवात (वातरोध)(सु)	भोजनानिच्छा (सु.)
	अक्षिकूटशोथ (मा)	स्वेद (मा) दाह (मा)	आध्मान (मा) स्तंभ (मा)	प्रसेक (सु) हृदयगुरूता (मा)(सु)
	अविदग्ध उदगार या यथामुक्तोदगार (मा)	सधूम उदगार (मा) गलदाह (सु) हृदय दाह (सु) कोष्ठदाह (सु)	मलवात अप्रवृत्ति (मा) अंगपीडन (मा) मोह (मा)	हृदयशुद्धि (मा) अन्नद्वेष (मा)

(ग) **I निर्दोष या दिनपाकी अजीर्ण** - खाये भोजन का परिपाक निश्चित 12 से 24 घं. में न होकर अगले दिन होना तथा आध्मानादि लक्षण नहीं होना ।

II प्राकृत या प्रतिवासर अजीर्ण - 1. इसे प्रतिदिन, प्रत्येक को रहने वाला अजीर्ण माना जाता है जिसके प्रतिकारार्थ पादशतगमन पूर्वक वामकुक्षिशयन आदि कहे गये हैं । 2. इस संदर्भ में प्राकृत ज्वरादि की तरह प्रकृति, दोष ऋतु अनुसार होने वाले यथा दोष, अजीर्ण का भी विचार आवश्यक है । यथा वसंत ऋतु / कफ प्रकृति में कफाजीर्ण होना जैसा कि ऊपर है ।

उपद्रव[6]

I प्रसेक (सु) वमन (सु)
सदन (सु) प्रलाप (सु)
भ्रम (सु) मूर्च्छा (सु)

II आम-विदध-विष्टब्धाजीर्ण से विसूचिका, अलसक, विलम्बिका होना या आमाजीर्ण से विसूचिका को करना, विदग्धाजीर्ण से, अलसक को करना

	अजीर्णोत्पादक द्रव्य	तज्जन्याजीर्ण प्रयुक्तदूष्य	अजीर्णोत्पादक द्रव्य	तज्जन्याजीर्ण प्रयुक्त द्रव्य
	पूरी, लड्डू		अश्वत्थफल पाखर फल	रात्रिजल
II.	पान			
	दूध	(इलायची)		
	तक्र	निम्ब (मधुनिम्ब)	चिरौंजी	हरड़
	घृत	मधु निम्ब (तक्र) या जम्बीर रस		
	नारियल (जल)	नागलोथ		
	मधु	नागरमोथ		
III.	शाकादि			
	चिमडा	पीपर, अजवायन		
	ककड़ी	गेहूं, कल्प		
	मृणाल/सिंघाड़ा एवं कशेरू	नागरमोथ		
	कटहल	कदली		

अजीर्ण में पथ्य/अपथ्य[10]

क्र.	पथ्य	अपथ्य
(क)	आहार	
	- कटु, तिक्त (लवण)	- (मधुरादि)
	- लघु	- गुरु
	- सात्म्य	- अध्यशन, समशय विरुद्धाशन, विषमाशन
	- मण्ड, विलेपी, यूष (मांस) रस कल्पनायें	- पिष्टीकल्प (उड़द)
	- पुराण शाली, गेहूं	-
	- मुदग (यूष) हींग-सैंधव प्रक्षेप	- उड़दादि शमिधान्य
	- शाक	
	* व्रेताग्र, बथुवा, पोपतिया मधुनिम्ब, चांगेरी एवं प्रसारणी पत्रादि	- पोई पत्र
	* सहजन, परवल, बैंगन, कंकोड़ा, करेला, कण्टकारी-लताकरंज एवं मेषश्रीफल	- आलूकंद
	* मृग, शश, म्यूर, लावक, मत्स्य (लघु) मांसरस	- मत्स्य
	* लशुन, आर्दक, अजवायन, जीरा, धनिया, मेंथी	-

अजीर्ण रोग-संक्षिप्त परिचय

क्र.	पथ्य	अपथ्य
	- पेयादि सुरा, सौवीर, धान्याम्ल, तुषोदक, तक्र दधि, मक्खन, घृत, कटुतैल	- अत्याम्बुपान दूध, कूर्चक, किलाट, भोइट पानक, पन्ना
	- फल - नारंगी, दाडिम, नीम्बू, जम्बीर, विजोरा, आमलक, पक्वपंठा, अपक्व कदली	- जाम्बु : ताडफल (एवं मस्तक)
(ख)	विहार	
	- विश्राम, शयन, व्यायाम	- वेगरोध, जागरण
(ग)	उपक्रम	
	- मृदुवमन, विरेचन, स्वेदन, दीपन, पाचन, लंघन	- रक्तमोक्षण, तीक्ष्णविरेचन ।

अजीर्ण : कुछ उदाहरण आ०वृ०प०

क्र०	घटक	1	2	3
(क)	आतुर			
	आ.क.	248	259	339
	लिङ्ग	स्त्री	स्त्री	पु०
	वयवर्ष	54	41	50
	रोगानुबंध	वृक्काश्मरी	आमाशयप्रदाह	रक्तचाप/हृद्रोग
	लक्षण	(कफाजीर्ण ?)	(पित्ताजीर्ण ?)	आधिक्य (वाताजीर्ण ?)
		कटिशूल	अम्लोदागर-उरदाह	शिरशूल
		मूत्रकृच्छ्र	उत्क्लेश	+
		अविपाक	अजीर्ण/अपाक	+
		शिथिल म.प्र.	श्रम	+
		शोथ (मुख-पाद) ग्रीवाशूल	अनिद्रा	+

(ख) **औषध**

1.	दशमूल क्वाथ 2 तोला प्रातः	1. संशमनी शाम प्रातः	1. वासाघ्न 1 गो.प्रातः
2.	चन्द्रप्रभा 1 गोली पुनर्नवा मण्डूर प्रातःशाम	2. पुननर्वामण्डूर 1-1 गोली दो बार ।	2. आरोग्यवर्धनी 1 गोली दो बार
3.	रसायन पुनर्नवा अश्वगंधा यष्टि, अर्जुन चोपचीनी शुंठी 1मा०xदो बार	3. धात्रिलोह मण्डूर प्रवाल यष्टि शतावरी 1 माह x दो बार	3. कामदुधा प्रवाल अभ्रक रसायन शंखपुष्पी पीपरीमूल1मा०xदो बार
4.	शंखवटी 1 बार	4. शंखवटी 1 गोली भोजनोत्तर	4. हिंगवटी 1 गोली भोजनोत्तर
5.	ब्राह्मीवटी गोक्षुरादि गूगल 1 गोली भोजनोत्तर		5. ब्राह्मीवटी, सर्पगंधा

(ग) परिणाम

- लक्षण शमन ।
- स्वास्थ्य सुधार ।

संदर्भ/आधार :-

1. अनात्मवन्तः पशुवद्भुञ्जते येऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्य ते मूलमजीर्णं प्राप्नुवन्ति हि ॥
मा.नि. 6/14

* उद्गारशुद्धिरूत्साहो वेगोत्सर्गो यथोचितः ।
लघुता क्षुत्पिपासा च जीर्णाहारस्य लक्षणम् ॥ (यो.र.)

2. अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात् ।
असात्म्यगुरूशीतातिरूक्षसंदुष्ट भोजनात् ।
विरेकवमन स्नेहविभ्रमाद् व्याधिकर्षणात् ।
देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानां च विधारणात् ।
च०चि० 15/41-42

* अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाद्वा, संधारणात् स्वप्न विपर्याच्च ।
कालेऽपि सात्म्य लघुचापि भुक्तमन्नं न पाकं भजते नरस्य ।
ईर्ष्याभय क्रोध परिक्षतेन लुब्धेन शुग्दैन्यनिपीडितेन ।
प्रद्वेषयुक्तेन च सेव्यमानमन्नं न सम्यक् परिणाममेति ।
मा०नि० 6/7-8, सु०सू० 46/500-501
मात्रयाऽप्यम्यवहृतं पथ्यं चान्नं न जीर्यति ।
चिन्ता शोक भयक्रोध दुःख शय्याप्रजागरैः ॥
च०वि०य०, मा०नि० 6/9

3. दुष्यत्यग्निः स दुष्टोऽन्नं न तत्पचति लध्वपि अपच्यमानं
शुक्तत्वं यात्यन्नं विषतां च तत् । च०चि० 15/43
आमंविदग्धं विष्टब्धं कफपित्तानिलैस्त्रिभिः ।
अजीर्णं केचिदिच्छन्ति चतुर्थ रसशेषतः ।
सु०सू० 46/499
अजीर्णं पञ्चम केचिन्निर्दोषं दिनपाकि च ।
वदन्ति षष्ठं चा जीर्णं प्राकृतं प्रतिवासरम् ॥
मा०नि० 6/6

4. तस्य लिङ्गमजीर्णस्य विष्टम्भः सदनं तथा ।
शिरसो रूक् च मूर्च्छा च भ्रमः पृष्टकटिग्रहः ।
जृम्भाऽङ्ग मर्दस्तृष्णा च ज्वरश्छर्दि प्रवाहणम्
अरोचकोऽविपाकश्च, XX च०चि० 15/44-45

5. माधुर्यमन्नं गतमामसंज्ञं, विदग्धसंज्ञं गतमम्लभावम् ।
किंचिद्विपक्वं भृशतोदशूलं विष्टब्धमानद्ध विरूद्धवातम्।
उदगार शुद्धावपि भक्तकाङ्क्षा न जायते हृद्गुरूता
यस्य रसावशेषेण तु स प्रसेकं चतुर्थ मेव
प्रवदन्त्यजीर्णम् । सु०सू० 46/502-5
विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रे, दह्येत हृत्कोष्ठगलं
यस्य । सु०सू० 46/51
उद्गारेपि विशुद्धताभुगते काङ्क्षाम भक्तादिषु स्निग्धत्वं
वदनस्य संधिषु रूजा कृत्वा शिरोगौरवम् ।
मंदाजीर्णरसे तु लक्षणमिदं तत्राति वृद्धे पुनः हृल्लास
ज्वरमूर्च्छनादि च भवेत् सर्वामक्षोभणम् । (नागार्जुनः)

* तत्रामे गुरूतोत्क्लेदः शोथो गण्डाक्षिकूटगः
उद्गारश्च यथाभुक्तमविदग्धः प्रवर्तते ।
विदग्धे भ्रमतृण्मूर्च्छाः पित्ताच्च विविधा रूजः
उद्गारश्च सधूमाम्लः स्वेदो दाहश्च जायते ।
विष्टब्धे शूलमाध्मानं विविधा वातवेदनाः ।
मलवाता प्रवृत्तिश्च स्तम्भो मोहोऽङ्गपीड़नम् ।
रसशेषेऽन्नविद्वेषो हृदयाशुद्धि गौरवे । मा.नि. 6/10-13

6. मूर्च्छा प्रलापो वमथुः प्रसेकः सदनं भ्रमः
उपद्रवा भवन्त्येते मरणं चाप्यजीर्णतः ।
सु०सू० 46/ मा०नि० 6/13
अजीर्णमामं विष्टब्धं विदग्धं च यदीरितम्
विसूच्यलसकौ तस्माद्भवेच्चापि विलम्बिका
सु०उ० 46/- मा०नि० 6/15

XX घोरमन्नविषं च तत् ।
संसृज्यमानं पित्तेन दाहं तृष्णां मुखामयान् ।
जनयत्म्लपित्तं च पित्तजांश्चापरान् गदान् ।
यक्ष्मपीनसमेहादीन्कफजान्कफसङ्गतम् ।
करोति वातसंसृष्टं वातजांश्चापरान् गदान् ।
मूत्ररोगंश्च मूत्रस्थं कुक्षिरोगान् शकृत्गतम् ।
रसादिभिश्च संसृष्टं कुर्याद्रोगान् रसादिजान् ।
च०चि० 15/46-

7. च०चि० 15, सु०सू० 46/-
भै.र. 10/-, यो.र. अजीर्य
8. भै.र. 10/-, यो.र. (अजीर्ण)
9. भै.र. 10/- यो.र. (अजीर्ण)
10. भै.र. 10/- यो.र. (अजीर्ण)

दूषणाद्दोषा:

अनन्तराम शर्मा

चरक के इस कथन से भी कि 'दूषणाद्दोषा:, धारणात् धातव:', वैद्यवर्ग वात, पित्त, कफ को दोष नाम से ही जानता है । हलकेपन से कहे हुए सुश्रुत के इस कथन से भी कि ''त्रिमिर्दोषै: शोणित चतुर्थे:'' से शोणित (रक्त) 'दोष' पद प्राप्त करने से रह गया । निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है कि शोणित धातु ही है दोष नहीं है :

त्रयोदोषा धातवश्च पुरीषं मूत्रमेव च ।
देहे धरयन्त्येते ह्यव्यापन्ना रसैर्हितै: ॥

'देह धरयन्त्येते' से की पुरीषादि की भी धातुसंज्ञा है। पर इनका शरीर में समुचित रूप से बने रहने तक ही धातुत्व है । इनके सहसा अत्यधिक विनाश से शरीर का विनाश संभव है ।

वातादि तीनों का धातु रूप इस हेतु तिरोहित हो गया है कि इनका रोग उत्पादन में सर्वाधिक विशाल योगदान है । इनको दोष नाम से ही जानने में दूसरा बड़ा हेतु वह है कि 'दूष्यों को दूषित करने की क्षमता' केवल इन्हीं में है । यद्यपि अपने-अपने कारणों से वातादि तीनों भी दूषित होते हैं, परन्तु शरीर की कोई भी रचना यहां तक कि मन भी इनके प्रकोप के बिना विकार ग्रस्त नहीं होती है । आगन्तुज व्याधियों का प्रकार भी बिना दोष प्रकोप के संभव नहीं है । वैसे - 'मानस: पुनरूद्दिष्टोरजश्चतमरूनच: च०सू०' भी है ।

शास्त्र में भी ऐसे उद्धरण मिलते हैं जिनमें वातादि तीनों के देहधारण कार्य की गणना के समय में भी उनका दोष नाम से ही स्मरण किया गया है, जैसे -

त्रयोदोषा धातवश्च............देहं धार्यन्त्येते.....च.

लौकिक प्रथा भी तो ऐसी ही है कि प्रख्यात् दुश्चरित्र को कोई भला कार्य करने पर भी उसे 'दुश्चरित्र' नाम से ही जाना जाता है ।

शास्त्र में रक्त को दोष मानने के पक्ष में बड़ी प्रबल युक्तियां दी गयी हैं । पर इन युक्तियों का खण्डन भी बड़ी अकाट्य युक्तियों से किया गया है । यह विवाद चरक (सू० 1/57) के इस कथन के बाद आरम्भ हुआ कि 'वायु:पित्तं कफश्चोक्त: शारीरोदोषसंग्रह: ।' कि 'दोषसंग्रह में वात, पित्त तथा कफ का ही नाम है । चक्रपाणि ने शोणित को दोष मानने के पक्ष एवं विपक्ष का विस्तृत विवरण दिया है । उसका संक्षिप्त हिन्दी रूपान्तरण इस प्रकार है ।

''ननु शोणितस्यापि - दोषत्वान्नात्र संग्रह: साधु: यतोरक्तास्यापि वातादिवत् विशिष्ट हेतु लक्षण विकार चिकित्सित निर्देश: कृत:'' अर्थात् यहां दोषों में वात, पित्त, कफ की ही गणना की गयी है रक्त की नहीं जबकि रक्त भी वातादि की तरह विशिष्ट हेतु लक्षण, विकार, चिकित्स्य वाला है, जैसे -

1. हेतु निर्देश, जैसे - 'कालेचानवसेचनात्'-पद्मालक्तक च०सू०28/9
2. लक्षण जैसे-'तपनीयेन्द्रगोपाभं पद्मलक्तक सन्निभम् -च०सू० 28
3. रक्तविकार. जैसे - रक्तार्श:, रक्तप्रदर. रक्तपित्तादि ।
4. चिकित्सा. जैसे - 'स्रावणं शोणितस्य तु - च०सू० 24
5. चरक ने भी रक्त की दोष संज्ञा की है, जैसे -

कफोवाते जितप्राये पित्तंशोणितमेव वा'
यदि कुप्यति वा तस्य क्रियमाणेचिकित्सिते''
यथोलवणस्य दोषस्य तत्रकार्यं भिषक् जितम्

च०चि० 5/27

6. अन्य तंत्रग्रन्थों में भी शोणित को दोष कोटि में रखा है, जैसे - शल्य शास्त्र में - ''तै रेतै: शोणितचतुर्थै: '- सु०सू० 29

इन कारणों से शोणित का हक बनता है कि उसे दोष पद दिया जाय । इस समस्या का चक्रपाणि द्वारा उद्धरित शास्त्र सम्मत सिद्धान्त इस प्रकार है :-

''नैवम्, दोषोहि स्वतंत्र दूषणात्म क उच्यते ।
यतोह न वातादयोवृद्धा: किञ्चिदवेक्ष्य दूषयत्ति ।

किन्तु स्वतएव, शोणितं तु दुष्टवातादि संसर्गमपेक्ष्यै क्षैव दूषकं भवति । नहि शोणितं विकृतवातादि संबन्धमन्तरेण्व विकृतं भवति, सर्वदा वातादि जनकैरेव शोणित दुष्टे: । तथा

सर्वदा वातादिलक्षणयुक्तास्यैव शोणितस्य दुष्टवात् ।

अर्थात् - दोष का लक्षण है - जो स्वतंत्र रूप से दूषण करता है वह 'दोष' है । वातादि दोष दूषित करने के कार्य में किसी अन्य के अपेक्षा नहीं रखते हैं । जबकि शोणित वातादि के सहयोग से ही दूषण कर पाता है ।

यह जो कहा गया है कि वातादि की तरह शोणित के दूषण के भी हेतु हैं । वह वातादि के सहयोग से ही संभव है: स्वतंत्र रूप से नहीं, शोणित तो मात्रा में बढ़ जाने पर भी दूष्य ही है । दूष्य के विशिष्ट हेत्वादि नहीं होते हैं । यह जो मांसादि के विशिष्ट हेत्वादि का उल्लेख मिलता है, जैसे- ''मांसवाहीनि दूष्यन्ति भुक्त्वा च स्वपतां दिवा'' च०वि० 5, तथा 'श्रृणु मांस प्रदोषजान्' - च०सू० 28 और ''मांसजानां तु संशुद्धिः शस्त्रक्षाराग्नि कर्म च'' च०सू० 28 । इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया है ।

''तस्माद् दूष्या धारेण दोषेणकृते कार्ये दूष्येणव्यपदेशः रक्तक्तोऽयं मांसजोऽयमित्यादि । यथास्नेहा धारेणबन्हिना दग्धे स्नेहदग्ध् इति व्यपदेशः । दोषसंज्ञातु पीडाकर्त्तृत्वसामान्याददोषेऽपियथा - 'स्वयं प्रवृत्तं तं दोषं उपेक्षेत हिता शनैः' - च०वि० 5 अर्थात् दूष्य के आधारित दोष के द्वारा किये गये कार्य को दूष्यकृत समझ कर ही यह व्यपदेश है कि यह रक्तज विकार है, यह मांसज विकार है, आदि; जैसे - स्नेह से जले हुए को 'स्नेहदग्धा कहा जाता है जबकि दहन कार्य केवल अग्नि का है जिससे स्नेह में दहन क्षमता आती है । इसी प्रकार जो दोष नहीं है उसकी दोष संज्ञा का उल्लेख मिलता है, जैसे - ''स्वयं प्रवृतं तं दोषं उपेक्षेतहिताशनैः'' यहां 'पुरीषमेव दोषत्वेनोकाम्' अर्थात् यहां पुरीष को ही दोष कहा गया है ।

सुश्रुत ने जो रक्त को दोष के समकक्ष माना है उसका हेतु यह है कि शल्य चिकित्सा में रक्त दुष्टि दर्शन बाहुल्य से होता है । अतः यह औपचारिक है (सुश्रुतेतु शोणितस्य दोषत्वम्, प्रायः शोणित दुष्टि दर्शनात् उपचरित मेवांकाम् - च०) उन्होंने भी अन्यत्र व्रणप्रश्नप्रकरण में 'वातादि तीन ही दोष हैं' यह माना है, जैसे - ''वातपित्त श्लेष्माण एवं देहसंभव हेतवो भवन्ति'' - सू० 20

यदि रक्त भी दोष होता तो वातादि की तरह प्रकृव्यारम्भक गुणयुक्ता होता; पर ऐसी क्षमता इसमें नहीं है. ।

यद्यपि इस प्रकार दोषत्रय की दूषणकर्त्ता के रूप में एकमात्र वरीयता प्रमाणित होती है; पर इन तीनों में भी वायु का वर्चस्व सर्वाधिक सशक्त है । यह कुपित होकर क्या-क्या कर सकता है इसकी झलक चरक (सू० 12/8) के शब्दों में इस प्रकार है;

''कुपितस्तु खलुशरीरे शरीरं नानाविधै विकारैरुपतपति बलवर्ण सुखायुषामुपघाताय, मनोव्याहर्षयति सर्वेन्द्रियाण्युपहन्ति, विनिहन्ति गर्भान् विकृतिमापादयत्यतिकालं धारयति, भयशोक मोह दैन्यातिप्रलापाञ्जनयति प्राणांश्चोपरूणद्धि ।''

सारांश यह है कि वायु कुपित होने पर शरीर को नाना प्रकार के विकारों से संतृप्त करती है, सभी इन्द्रियों को विकृत कर देती है, गर्भ को हानि पहुंचाती है और प्राणों को संकट ग्रस्त कर देती है ।

चरक (सू० 20) ने सामान्यज विकार (च०सू० 19 में) और नानात्मज विकार (च०सू० 20 में) भेद से दो प्रकार के विकारों का उल्लेख किया हैं । नानात्मज विकार वायु के अस्सी, पित्त के चालीस और कफ के बीच विकार गिनाये हैं । इसी अध्याय (सू० 20) में चरक ने वायु के आत्मलक्षणों का उल्लेख किया है जिन्हें जान लेने पर वैद्य को वातजन्याधिको पहचानने में रत्ती भर भी संदेह नहीं रहता है :-

''सर्वेष्वपि खल्वेतेषु वातविकारेषूक्तेष्वन्येषु चानुक्तेषु वायोरिदं आत्मस्वपमपरिणामि कर्मणश्च स्वलक्षणं यदुपलभ्य तदवयवंवा विमुक्तसंदेहा वातविकारमेवाध्यवसन्ति कुशलाः, तद्यथा - रौक्ष्यं, शैत्यं, लाघवं, वैशद्यं, शैत्यं गतिः, अमूर्तत्वम्, अनवस्थिततत्वम्, चेति वायोरात्मरूपाणि ।''

जब यही वायु प्रकुपित होकर शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों में प्रवेश पाती है तो उन प्रदेशों में निम्नलिखित विकार उत्पन्न करती है :- 1. स्रंस - (अंगों का अपने स्थान से कुछ हटना) 2. भ्रंश - (अंगों का अपने स्थान से अधिक

दूर हटना) 3. व्यास - (विस्त्तरणम्, अधिक विस्तृत होना) 4. संग - मलमूत्रावरोध 5, भेद - (चीरने सदृश वेदना) 6. साद - (शारीरिक अवसाद) 7. हर्ष - रोमांच होना, वायोरनवस्थि-तत्वेन प्रभावाद्वात्रियते - च०) 8. तर्ष - (पिपासा) 9. कम्प - (कांपना) 10. वर्त (वर्तुलीकरणम्, शरीर-मल-मूत्रादि का गोलाकार) 11. चाल - (स्पन्दना), 12 तोद - (सूचीवेधवत् व्यथा).13, व्यथा (सर्वांगवेदना) 14. चेष्टा (शरीरावयवों में क्रियाशीलता) तथा खर, परुष, विशद, सुषिर, अरूण, वर्ण, कषाय, विरस मुखत्व, शोष, शूल, सुप्ति, संकोचन, स्तम्भन, खञ्जता आदि वातजविकार उत्पन्न होते हैं ।

इसी प्रकार का वर्णन पित्त एवं कफ दोष के बारे में भी है जिसमें इनके आत्म लक्षणों एवं तज्जन्य विकारों का विवरण दिया है जो विस्तार रूप से दिया जा रहा है ।

दोषों की विकृत अथवा रोग जनक अवस्था दो प्रकार की होती है - क्षय और वृद्धि । दोष का क्षय या क्षीण होने से उसके स्वाभाविक गुण कर्मों में मन्दता आ जाती है । क्षीण दोष की रोगोत्पादक क्षमता भी क्षीण हुई होती है । दोष विशेष की वृद्धि होने पर ही रोग होते हैं (दोषा: प्रवृद्धा: स्वंलिगं दर्शयन्ति यथाबलम क्षीण जहति स्वलिंग स्वं समा: स्वं कर्म कुर्वते - च०सू० 17/62, स्वमान क्षीणा: दोषा: किञ्चित् विकारं न जनयन्ति, क्षीणलक्षणं वैषम्य मेव परियात्ति - च०पा०)

कई बार दोष प्राकृत या साम्यावस्था में ही होता है। परन्तु वायु द्वारा चालित होकर वह अन्य स्थान में पहुंचा दिया जाता है (परिणामत: जिस स्थान में वह पहुंचता है; वहां पहले से विद्यमान दोष के परिमाण में वृद्धि हो जाती है जिससे उस स्थान में उस दोष की वृद्धि के लक्षण प्रकट हो जाते हैं । इस प्रकार रोग उत्पन्न करने में दोष वृद्धि हेतु है - क्षीण दोष नहीं (स्वमान स्थितोऽपिदोष: प्रदेशात्तरंतीत: सन् तत्प्रदेशस्थदोषोपक्षया वृद्ध एवं भवति: तेन तत्रापि वृद्धस्यैव विकार कर्तृत्वम् - च०पा० (च०शा० 6)

यहां जो यह कहा गया है कि 'क्षीण दोष की रोगोत्पादक क्षमता भी क्षीण हुई होती है । अत: वह रोग उत्पन्न नहीं कर सकता है 'इसमें यह ज्ञातव्य है कि विरोधी गुणों की वृद्धि होने से उस गुणवाले दोष, धातु आदि की वृद्धि होकर उसकी वृद्धि से होने वाले रोग होते ही हैं ।

प्रकोप होने मात्र से रोग नहीं होता है । रोगोत्पादन के लिये उसे कई दशाओं में से गुजरना पड़ता है; जैसे -

संचयं च प्रकोपं च प्रसारंस्थान संश्रयम् ।
व्यक्ति भेदं च यो वेत्ति दोषाणां संभवेत् भिषक् ॥

सु०सू० 21/36

दोषों की इन छ: अवस्थाओं को जो जानता है उसी को भिषक् कहा जाता है । ये छ: अवस्थायें हैं :

1. संचय - अर्थात् निज कारणों से प्रकुपित दोष सर्वप्रथम संचित होते हैं, वृद्धि को प्राप्त होते हैं, क्योंकि वृद्धि को प्राप्त दोष में ही रोगोत्पादन क्षमता होती है । कौन-सा दोष किन कारणों से प्रकुपित होता है, इसका विवरण, ऋतुचर्या अध्याय (सु०सू० 4) में विस्तार से दिया गया है । साब्धपूर्ण कोष्ठता आदि दोष संचय के लक्षण हैं । सुश्रुत इस दशा को 'प्रथम: क्रियाकाल: कहते हैं । इस ज्ञान का लाभ यह है कि इसमें चिकित्सा करने से रोग शमन सरलतम होता है (संचयेऽपहृता दौषा लभन्तेनोत्तरागति: - सु०सू० 21/37)

2. प्रकोप - दोषों की प्रथमावस्था 'संचय' काल में उपचार न करने से दोष प्रकुपित हो जाते हैं । वात दोष के प्रकोप के हेतु, कालादि इस प्रकार हैं - "संशीताभ्रप्रवातेषु धर्मान्ते च विशेषत: । प्रत्यूषरष्यपराह्ले च जीर्णेऽन्ने च प्रकुप्यति'8 -च०सू० 29/20; तीसटाचार्य के अनुसार भी -

"वायु- र्वारिधरागमे परिणते चान्नेऽपराह्नेऽपिवं ।"

इसी प्रकार पित्त प्रकोप के भी अपने हेतु हैं और उसका प्रकोप काल भी पृथक है, जैसे :- भुक्ते जीर्यति भोजने च शरदि ग्रीष्मे सति प्राणिनाम् । मध्याह्ने च तथाधे रात्र समये पित्तं प्रकोपं व्रजेत्" तीसटाचार्य: । पित्तप्रकोपणों से शोणित भी प्रकुपित होता है ।

कफ के प्रकोपक हेतु भी पृथक् है । इसके प्रकोप का काल इस प्रकार वर्णित है - 'तु हिन पतन काले श्लेष्मण: सम्प्रकोप: प्रभवतिदिवासादौ मुक्तमात्रे

वसन्त-नीसटाचार्य: ।

सुश्रुत इन तीनों दोषों के कुपित होने के लक्षणों का वर्णन इस प्रकार करते हैं -

''तेषां प्रकोपात् कोष्ठतोदसंचरणालिकापिपासापरिदाहद्वेषा हृदयोत्क्लेदाश्च जायन्ते'' - सू० 21/

सुश्रुत इस प्रकोप नामक द्वितीयदशा को 'तत्र द्वितीय: क्रियाकाल:' कहते है ।

3. प्रसार - इस दशा को समझाने के लिये सुश्रुत ने दो उदाहरण दिये, खमीर (सुराबीज, किण्व) मिला आटा (पिष्ट, चावलों का आटा) और पानी की अधिकता से सेतु का टूटकर जल का फैल जाना । उनका कहना है कि खमीर मिले आटे की तरह प्रकुपित संचित दोष भी, गतिशील वायु के सहयोग से उसी प्रकार शरीर में फैल जाते हैं जैसे पानी की अधिकता से बांध के टूट जाने पर जल चारों ओर फैल जाता है । यहां दोष एक, दो या अधिक होकर पन्द्रह प्रकार से फैलते हैं । यह तृतीय क्रिया काल हैं ।

4. स्थान संश्रय - 'कुपितानां हि दोषाणां शरीरे परिधावताम् । यत्रसंग: खवैगुण्यात् व्याधिस्तत्रोपजायते-सु०सू० 24/10 शरीर में घूमते हुए प्रकुपित दोष जहां स्रोतों में विगुणता होती है वहां स्थान संश्रय कर रोग उत्पन्न करते हैं, जैसे -

'' ते यदोदर सन्निवेशं कुर्वन्ति तदा गुल्म विद्रधि उदराग्नि संगानाह विसूचिकातिसार प्रभृतीञ्जनयन्ति आदि - सु०सू० 21/33

इस प्रकार शरीर के विशेष स्थान पर स्थान संश्रय प्राप्तकर दोष रोग के पूर्वरूपों को जन्म देते हैं । स्थान संश्रय चिकित्सा का चतुर्थ अवसर है (तत्र पूर्व रूपगतेषु चतुर्थ: क्रियाकाल:)

5. व्यक्ति - (व्याधे: प्रवक्तां रूपं व्यक्ति: -ड) इसमें व्याधि का रूप स्पष्ट हो जाता है (शोफार्बुदग्रन्थि विद्रधि विसर्प प्रभृतीनां प्रव्यक्तलक्षणतां ज्वरातिसार प्रभृतीनां च - सु०सू० 21/35) यह चिकित्सा का पञ्चम अवसर है (तत्र पञ्चम: क्रियाकाल:) ।

रोग की चिकित्सा के प्रति आरम्भ से ही सावधान रहने पर संचय नाम का प्रथम क्रियाकाल में ही रोगोपचार करने से रोग से आसानी से छुटकारा पाया जा सकता है अन्यथा उत्तरोत्तर रोगोपचार कठिन से कठिनतर होता जाता है । यहां तक कि विलंब करने से रोग असाध्य रूप भी धारण कर सकता है (संचयेऽवहृतादोषा लभन्तेनोत्तरगती: तेतूत्तरासुगतिषु भवन्ति बलवत्तरा: - सु०सू० 21/26)

6. भेद - रोग के प्रति असावधानता के परिणाम-स्वरूप रोग अधिक फैल जाता है, भयानक रूप धारण कर सकता है और कृच्छ्र साध्य अथवा असाध्यरूप धारण कर सकता है । (अत: ऊर्ध्वमेतेषामवदीर्णानां व्रणभावमापन्नानां षष्ठ: क्रियाकाल: ज्वरातिसार प्रभृतीनां च दीर्घकालानुबन्ध: तत्राप्रतिक्रियमाणेऽसाध्यतामुपयान्ति - सु०सू० 21/38

एतावत् वर्णन शारीरिक व्याधियों के दोषों के प्रकोप का है । इसमें प्रथम दोष प्रकोप होकर पश्चात् व्याधि उत्पन्न होती है । आगन्तुज विकारों में दोष प्रकोप व्याधि होने के उपरान्त होता है । यही कारण है कि भग्नों के ... में दोषों का उल्लेख नहीं है । शारीरिक दोष वात, पित्त कफ हैं जबकि रज एवं तम को मानसिक दोष माने हैं (सत्वमदोषमाख्यातम्)

पाश्चात्य वैद्यक में रोगाणु किसी प्रकार शरीर के अन्दर प्रविष्ट होकर सीधे शारीरिक ऊतकों पर आक्रमण करते हैं । जिस प्रकार स्वस्थ शरीर अपनी रोग प्रतिरोधक शक्ति के कारण रोगों का सामना कर निर्विकार बना रहता है (व्यायामनित्या: स्त्रीनित्यों मद्यनित्याश्च योनरा: । नित्यमेवं... द्वारा नातुरास्युनं दुर्बला: - च०सू०) उसी प्रकार, सशक्त ऊतकों पर रोगाणु आक्रमण भी रोगोत्पादन में असमर्थ रहता है ।

'अणोरणीयान महतांमहीयान्' क. उपनिषद् 'एषोऽणुरात्मा चेतसावेदितव्य: - मु० उपनिषद् सौक्ष्म्यालोचिददर्शना:-वा०, ब्रड्तेकुष्ठैककर्माण:- आदिवर्णनों से स्पष्ट है कि अदृश्य सूक्ष्म जीवाणु ... विकारी जीवाणुओं की तथा इनके रोगकर कार्यों की जानकारी प्राचीन ऋषि-मुनियों को थी ।

जैसे वातादि तीनों दोष भी हैं और धातु भी उसी प्रकार जीवाणु विकारी भी है और उपकारी भी । इस चेतन सृष्टि में जो अत्यन्त सूक्ष्मजीव होते हैं, जिनका दर्शन केवल चर्मचक्षु से दुर्लभ है, वे जीवाणु कहलाते हैं । इनमें जो वनस्पति श्रेणी के जीवाणु होते हैं उनका नाम 'बैक्टेरिया' और जो प्राणी श्रेणी के होते है उन्हें 'प्रोटोजुआ' कहते हैं । रोगोत्पादक जीवाणु मुख्य रूप से प्रोटोजोआ, फंगस, बैक्टेरिया और वाइरस श्रेणी के हैं । अविकारीजीवाणु जैसे -

अविकारी जीवाणु मृत प्राणियों एवं वनस्पतियों के शरीर का विनाशकर मिट्टी में मिला देते हैं, सरोवरादि की जल शुद्धि करते हैं, जमीन की उपजाऊ शक्ति को बदलते हैं, पनीर, दही, आदि की उत्पत्ति में सहायक होते हैं और एसेटिक एसिड आदि अम्ल पदार्थों का निर्माण करते हैं ।

जीवाणु सर्व व्यापक हैं । पर उस अनुपात से बीमार पड़ने वालों की संख्या अत्यल्प है । इससे यह स्पष्ट है कि प्राणियों के शरीर में कुछ ऐसी शक्ति है जो प्राणियों की रक्षा करती है (देह: सर्वोषधक्षम: दीप्ताग्नय: खराहारा: कर्मनित्या महोदरा: । येनरा: प्रतिताश्चिन्त्यं नावश्यंगुरूलाघवम् - च०सू०) इसी प्रकार वातादि दोष सर्वव्यापक हैं, अपथ्य सेवन भी होता रहता है । पर इसी विशिष्ट शक्ति के कारण अधिकांश लोग नीरोग रहते हैं । भावप्रकाश का कथन भी है कि -

"दिनचर्या निशाचर्या ऋतुचर्या यथोदिताम् ।
आचारन्पुरुष: स्वस्थो सदा तिष्ठति नान्यथा ।"

इस शक्ति का ही नाम है 'व्याधि क्षमता - IMMUNITY (न च सर्वाणि शरीराणि व्याधिक्षमत्वे समर्थानिभवन्ति - च० व्याधिक्षमत्वं, व्याधिविरोधित्वम्, व्याध्युत्पाद प्रतिबन्धकत्वामिति यावत् - च०पा०)

वाग्भट का कथन है कि 'सर्वे सञ्चारिणोगदा:' । सुश्रुत संक्रमण सञ्चरण का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है । उन्हीं के शब्दों में -

प्रसंगाद् गात्र संस्पर्शात् नि:श्वासात् सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चेपि वस्त्रमाल्यानुलेपमात् ।।
औपसर्गिक रोगाश्चं संक्रामन्तिरान्नरम् ।

मक्खियों द्वारा संक्रमण फैलना -

मक्षिका व्रण जातस्य निक्षिपत्तियदाकृमीन् सुश्रुत अत्र डल्हण: - माक्षिकोपसर्पणात् व्रणकृमय: पतन्ति ।

इस प्रकार हुए रोग रोधक शक्ति के कई रूप हैं :- निज कारणों से हुए दुष्ट दोषों से उत्पन्न दूषण को शरीर में फैलने से रोकने के लिये पहला संघर्ष शरीर स्थित आत्म शक्ति से होता है । नीग्रो लोग मलेरिया के प्रति रोगक्षय (IMMUNE) होते हैं । पक्षी केवल AVIAN VARIETY के प्रति सुग्राही (Susceptible) होते हैं । नवजात INFANTS में प्रारम्भिक छ: मास तक सहज रोगक्षमता (Owing to an immunity derived from the mother) के कारण रोगों से सुरक्षा रहती है । त्वचा बहुत से रोगों से बचाव का प्रथम सुरक्षा कवच है । 'नासा उसकी श्लैष्मिकला, बाल भी सम्पूर्ण श्वसनतंत्र को धूलकण आदि से सुरक्षा प्रदान करती है ।

रोगों से बचे रहने में दृढ़ मनोबल का बड़ा एवं महत्व पूर्ण योगदान है । (आशावान् व्याधिमोक्षाय शीघ्रं व्याधिमपोहति, ग्लानिर्नशस्यतेतस्य भग्नविश्लेपकृत्हिसा-सु०; In has long heen recognised that the mental attitude of the patient towards his affliction can effect his power of recovery. The doctor's ability to give confidence to the patient and the relations is a very important part of treatment - P & p of medicine)

दोषों द्वारा दूषण से संबन्धित साहित्य आयुर्वेद वाङ्मय में अति विस्तृत रूप में उपलब्ध है । यहां 'दूषणादोषा:' शीर्षक से उसका संक्षिप्ततम आंशिक वर्णन ही उपस्थित करने का प्रयास किया है । अन्यथा इसके दुखद इस रूप को चरक ने इस प्रकार प्रस्तुत किया है;

"सूक्ष्माणि हि दोष भेषज देश काल बल शरीराद्वार सात्म्य सत्व प्रकृति वय सामवस्थान्तरणि, यान्यनु चिन्त्यमानानि विमल विपुल बुद्धेरणि बुद्धि माकुलीकुर्यु: किं पुनरल्पबुद्धे:" सू० 15/5

सारांश यह है कि दोष भेषजादि की अंशांश **कल्पना** को भलीप्रकार जान लेना इतना कठिन है कि विमल और विपुल बुद्धिवालों की बुद्धि भी व्याकुल हो जाती है ।

आयुर्वेदीय दृष्टि से अतिमधु पर्णी पादप की औषधीय कार्मुकता-एक अध्ययन

डा० आर० एस० चौहान

अति मधुपर्णी जिसको साधारण ब्रोलचाल में सटीविया कहा जाता है, जबकि लैटिन नाम से 'सटीबिया रेवाडिआना' जाना जाता है। इस औषधीय पौधे का मूल स्थान दक्षिण अमेरिका का पैरागुआए स्टेट है। लेकिन लगभग 35-40 वर्षों से मुख्यता यह पौधा भारत, जापान, चीन, कोरिया, ब्राजील, न्यूजीलैंड तथा कनाडा में आम जाना जाता है। इन विकासशील देशों के हर एक छोटे-बड़े खोज-शोध संस्थानों के वैज्ञानिकों के लिए यह पादप चर्चा का विषय रहा है।

प्रकृति ने इस औषधीय पादप में एक बहुत महत्वपूर्ण तथा विलक्षण गुण प्रदान किया है, कि इसमें शून्य कैलरीज के साथ अति मधुर रस प्रदत्त है। यह अद्‌भुत गुणों से परिपूर्ण पौधा विभिन्न प्रकार की व्याधियों से ग्रस्त रुग्णों में प्रचुर मात्रा में उपयोग करने पर बहुत ही आशुगुणंकारी सिद्ध हुआ है।

औषधीय पौधे के सूखे पत्तों से बने सूक्ष्म चूर्ण में सफेद शर्करा (शुगर) से तीस गुणा ज्यादा मधुरता पाई जाती है, लेकिन जब इस सूक्ष्म चूर्ण को शुद्ध अवस्था में परिवर्तित किया जाता है तो इसकी मधुरता सफेद शर्करा (शुगर) से तीन सौ गुणा ज्यादा बढ़ जाती है।

रासायनिक संघटन :- अतिमधुपर्णी के सूखे पत्तों में प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, फाईवर, कार्बोहाइड्रेटस, आयरन, फास्फोरस, कैल्शियम, पोटाशियम, सोडियम, मैग्निशियम, जिंक तथा विटामिन्स 'ए' व 'सी' पाया जाता है तथा अल्प मात्रा में स्टिपरिक पार्मेटिक एवं अरेकिडिक एसिड के ग्लिसराइड्स भी पाये जाते हैं।

गुण :- मधु, रूक्ष।
रस :- मधुर, तिक्त।
विपाक :- मधुर, वीर्य-उष्ण।
प्रभाव :- रसायन।

कर्म :-

दोष कर्म :- कफवात शामक, पित्तवर्धक।

संस्थानिक कर्म :-

बाह्य :- पत्रकल्क लेपन से जीर्ण व्रण रोपण तथा ग्रन्थि शोथ हर।

आभ्यन्तर कर्म :-

पाचन संस्थान :- दीपन, पित्त कारक, भेदन, कृमिघ्न, यकृदुतेजक तथा अग्नाशय उत्तेजक।

रक्तवह संस्थान :- रक्त. शोधक, शोथहर तथा हृदयोतेजक।

मूत्रवह संस्थान :- मूत्रल, शोथहर।

श्वसन संस्थान :- कफघ्न।

प्रजनन संस्थान :- शुक्रजनक, गर्भाशय शोथहर तथा योनि स्रावनाशक।

दोष उपयोग :- पत्र एवं मूल कफवात जन्य व्याधियों में उपयोग किया जाता है।

संस्थानिक आमयिक उपयोग :-

बाह्य उपयोग :- दुष्ट व्रणों में ताजी पत्तियों का लेपन व सेचन करने से व्रण शुद्धि होकर घाव भर जाते हैं।

ग्रन्थिशोथ के ऊपर एरण्ड पत्र के समभाग कल्क बनाकर बाँधने से शोथ दूर होती है।

आभ्यन्तर आमयिक उपयोग :-

पाचनसंस्थान :- यकृद्विकार, अग्नाशय उत्तेजक, पिताश्य शोथहर होने पर स्वभावतः यकृत की क्रिया शर्करा के सात्मीकरण की होती है। यह इस क्रिया के द्वारा प्रतीहारिणीगत रक्त से अधिक शर्करा को लेकर उसे शर्कराजन के रूप बदल लेता है, इस तरह से रक्त में विद्यमान शर्करा अपने प्राकृतिक अवस्था में रहती है, इस क्रिया में स्वभावतः अग्न्याशय, अपदुक ग्रन्थि, अधिवृक्क, ग्रन्थि तथा आमाशय व पक्वाशय गत विद्यमान पोषक ग्रन्थियों के अनेक तरह के स्राव सहायक होते हैं। अतिमधुपर्णी बड़ा सूक्ष्म, पत्र चूर्ण यकृत की इस क्रिया को प्रत्यक्षतः उत्तेजित करके तथा अप्रत्यक्षतः अग्न्याशय ग्रन्थि

चौहान अस्पताल एवं अनुसंधान संस्थान, जालन्धर रोड, काला साधियाँ, जि०-कपूरथला (पंजाब)

के स्राव को बढ़ाकर रक्तगत शर्करा की मात्रा को नियंत्रण में रखने के लिए सहायक होता है । अतः अतिमधुकपर्णी के सेवन से बढ़ी हुई रक्तगत शर्करा भी नियमित हो जाती है ।

पंचपर्णीयोग :- अतिमधुपर्णी, बिल्वपत्र, निम्बपत्र, करेलापत्र, गुड़मार पत्रों के समतोल लेकर सूक्ष्म चूर्ण बनाकर तीन से पाँच ग्राम की मात्रा गोदुग्ध अथवा दधिमस्तु से मधुमेही को नियमित सेवन करवाने से रक्त शर्करा नियंत्रण में आकर सामान्य अवस्था में आ जाती है ।

अतिमधुपर्णी के सेवन से चयापचय के विकृत होने के कारण हुई मेदोवृद्धि भी ठीक हो जाती है ।

शिग्रु गुग्गुल के समभाग सटीवियापत्र मिलाकर दो से चार ग्राम तक समशीतोष्ण जल से दो समय ग्रहण करने से मेदोरोग ठीक होकर रूग्ण का शारीरिक भार ठीक आ जाता है । औषध ग्रहणावधि कम से कम तीन माह, उत्तम परहंज के साथ, आशातीत लाभ प्राप्त होता है ।

रक्तवह संस्थान :- रक्तशोधक होने पर यौवन पिंडिकाओं का शमन करता है । हृदयुतेजक होने से रक्तवह संस्थान में पाए जाने वाले विजातीय तत्वों को संस्थान में कहीं पर रुकने नहीं देता, फलस्वरूप यकृत व वृक्कों द्वारा शरीर से बाहर निकालने में सहायक होता है ।

दमाग्रस्त रूग्ण के लिए, अतिमधुपर्णी पत्र, पोहकरमूल त्रिकटु समभाग लेकर कपड़छान रेखापूर्णी चूर्ण बनाकर शहद के अनुपान से ग्रहण करवाने से दमा-श्वास रोग ठीक हो जाता है ।

काली खाँसी, जुकाम, नजला में तुलसी पत्र, बनफ्सा, लवंग, काकड़ सिंगी के समभाग सटीविया पत्र का क्वाथ बनाकर सेवन करने से आशातीत लाभ मिलता है ।

मूत्रवह संस्थान से अतिमधुपर्णी की उपयोगिता :-

वैज्ञानिक अनुसंधानों से यह सिद्ध होता है कि अतिमधुपर्णी के पत्र क्वाथ मूत्रल होने के साथ-साथ कोष्ठ मृदुकर व वृद्धावस्था में पाए जाने वाला पौरुष ग्रन्थि शोथवृद्धि में विशेष प्रभावी है, स्वानुभव में सटीविया पत्र के समभाग वरूणछाल तथा गोक्षरू से निर्मित क्वाथ दिन में तीन बार 15-20 मि.ली. पान करने से उपरोक्त व्याधि दो सप्ताह में ठीक हो जाती है ।

प्रजनन संस्थान पर प्रभाव :-

वाथूक, तालमखाना, कौंचबीज, लज्जालुबीज, श्वेतमूसली, उटंगन बीज, समभाग लेकर तथा दो गुणा सटीविया पत्र मिला कर चूर्ण करके, सेवन मात्रा 8-10 ग्राम दो समय, शीतोष्ण गोदुग्ध में एक चम्मच रोगन बादाम मिलाकर उपयोग करने से शुक्राणुवृद्धिकर, शुक्रजनक, शुक्रस्तम्भक, कामोत्तेजक व रसायन आदि गुण पाए गए हैं ।

प्रसवोत्तर दौर्बल्य, गर्भाशय शोथहर, योनिस्रावनाशक, स्तन्यवृद्ध्यर्थ कृशता में अतिगुणकारी पाया है ।

नाड़ी संस्थान पर प्रभाव :-

सूखे अतिमधुपर्णी पत्र तथा समभाग अकरकरा व स्याह तुलसी तुख्म का उपयोग मस्तिष्क दौर्बल्य तथा क्लैव्य में अतिगुणकारी प्रभाव पाया गया है ।

सात्मीकरण :- पौष्टिक एवं रसायन व मेदोव्याधि हर ।

प्रयोज्य अंग :- पत्र, मूल ।

मात्रा :- पत्र चूर्ण 2-4 ग्राम

मूल क्वाथ :- 15-20 मिलीलीटर ।

विशिष्ट योग :- पौष्टिक चूर्ण, पंचपर्णीयोग ।

वक्तव्य :-

अतिमधुपर्णी पर किए गए वैज्ञानिक अनुसंधानों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष पाया है कि यह औषधीय पादप चिकित्सीय दृष्टिकोण से अति महत्वपूर्ण है जिसमें शून्य कैलरीज के साथ-साथ मधुर तत्व का अनन्त भण्डारण भरा हुआ हैं । यह पौधा विभिन्न प्रकार की व्याधियों को ठीक करने की क्षमता रखता है । शक्कर रूग्णों के लिए अमृत तुल्य है । वृद्धावस्था में चयापचय के असन्तुलन होने पर अनेक प्रकार की व्याधियों में अतिगुणकारी व आशुप्रभावकारी होने से यह पादप अमृततुल्य रसायन है ।

आयुर्वेदिक औषधियों की गर्भ-निरोधन में उपयोगिता

*डा० अनिता शर्मा
**डा० विनोद कुमार गोठेचा

किसी भी राष्ट्र की समृद्धि उसकी स्वस्थ जनता से होती है न कि उसके धन-धान्य से । मानवता की रक्षा के लिए जनसंख्या नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक है । प्राचीनकाल में जनसंख्या वृद्धि की कोई समस्या नहीं थी इसलिए संहिताकाल में इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया परन्तु बाद के आचार्यों ने जैसे कि राजामार्तण्ड, भावप्रकाश, योगरत्नाकर तथा भैषज्य रत्नावली ने अपने ग्रन्थों में कई गर्भ-निरोधक योगों का वर्णन किया है ।

ऋग्वेद में प्रारम्भिक समय में 10 पुत्रों का आर्शीवाद दिया जाता था । यथा - "दशऽरोयम् पुत्रम् आदेहि", इसके पश्चात् नवविवाहित जोड़े को आठ पुत्रों का आशीर्वाद दिया जाने लगा यथा अष्टपुत्र: सौभाग्यवती भव् । परन्तु जब जनसंख्या की वृद्धि होती चली गई तो इसी वेद में दो पुत्रों के आशीर्वाद का भी संदर्भ आया है । यथा - "पुमान् तिजाऽयेत्थम् पुमान् अनुजायेत्थम्" । अंत में केवल एक ही पुत्र का आशीर्वाद दिया जाने लगा "वर्मऐको गुणी पुत्राथ्" ।।

आयर्वुद में गर्भ-निरोधन का सिद्धान्त

आचार्य चरक के अनुसार गर्भधारण तभी संभव है जब ऋतुकाल (गर्भधारण काल), क्षेत्र (गर्भाशय), अम्बु (आहार रस) तथा बीज (स्त्री बीज तथा शुक्राणु) उत्तम स्थिति में विद्यमान हो, यथा -

> **"जलकर्षण बीजर्तुसंयोगात् सस्य संभवः ।**
> **युक्ति षडधातुसंयोगाद् गर्भाणां संभवस्तथा ।।"**
>
> (च०सू० 11/23)

यदि उपर्युक्त किसी भाव की अनुपस्थिति या असामान्यता हो जाए, तो गर्भाधारण संभव नहीं होता । इसलिए गर्भ-निरोधक अपना कार्य किसी भी भाव के कार्य में हस्तक्षेप करके ही करते हैं ।

डब्ल्यु. एच. ओ. ने 1978 में की गई अपनी **'आल्माटा घोषणा'** में देसी चिकित्सा पद्धतियों पर विशेष जोर देते हुए कहा कि इनकी मदद से ही "2000 ईसवी तक सबको स्वास्थ्य के लक्ष्य" को प्राप्त किया जा सकता है ।

आयुर्वेदीय 'मत्स्य न्याय' में कहा गया है कि जिस प्रकार बड़ी मछली छोटी मछली को खा जाती है उसी प्रकार यदि जनसंख्या वृद्धि को नहीं रोका गया तो एक दिन मनुष्य, मनुष्य के ही माँस को खाने लगेगा । इसलिए आयुर्वेद शास्त्रों में निम्नलिखित कई विधियाँ जनसंख्या को रोकने के लिए बताई गई हैं -

(1) **ब्रह्मचर्य** - प्राचीन काल में मनुष्य की जीवन यात्रा चार भागों में बँटी हुई थी - ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम तथा संयास आश्रम । ब्रह्मचर्य आश्रम में मनुष्य को 25 वर्ष तक ज्ञानार्जन के लिए गुरु के पास रहना होता था, इस काल में मनुष्य पूर्णरूप से "अष्टविध मैथुन" से अलग रहता था। इस प्रकार ब्रह्मचर्य आश्रम की गर्भ-निरोधन में अपनी ही उपयोगिता थी ।

(2) **ऋतुकाल (अनऋतुकाल)** - ऋतुकाल का अर्थ है प्रजनन काल । ऋतुकाल सुश्रुत संहिता के शारीर स्थान के पंचम अध्याय के अनुसार मासिक धर्म के बंद होने के 12 दिनों तक रहता है ।

इसी दौरान स्त्री प्रजनन अंग पूर्णरूप से पुरुष बीज को ग्रहण के लिए तैयार होते हैं । इसलिए आचार्यों ने "स्वनिग्रह" का उपदेश दिया, यदि दम्पत्ति संतान नहीं चाहते । ऋतुकाल के पश्चात् गर्भाशय मुख इस प्रकार बंद हो जाता है जैसे सायंकाल में कमल पुष्प बंद हो जाता है इसलिए यदि इस प्रजनन काल में मैथुन न किया जाए तो सन्तानोत्पत्ति से बचा जा सकता है ।

(3) **देर से विवाह** - हमारे प्राचीन आचार्यों ने शादी के लिए पुरुष की आयु 25 वर्ष तथा स्त्री की आयु 16 वर्ष बताई है । विवाह में देरी परोक्ष रूप से संतानोत्पत्ति में बाधक का कार्य करती है ।

(4) **धात्रीकाल (दुग्धपान काल)** - जिस काल में स्त्री बच्चे को दूध पिलाती हैं, उसे मासिक धर्म नहीं होता है । इसलिए इस समय भी सन्तानोत्पत्ति में बाधक

---

* प्राध्यापक, अगद तंत्र विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

** विभागाध्यक्ष, अगद तंत्र विभाग, राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

होता है ।

(5) **मंत्रों का उपयोग** – प्राचीन काल में पुरुष तथा स्त्रियों में संतानोत्पत्ति को रोकने के कुछ दैवीय मंत्र भी प्रचलित थे ।

(6) **भाव प्रकाश के कुछ गर्भ-निरोधक योग** –

(i) जपा कुसुम, पुराण गुड़, काँजी सभी द्रव्य सममात्रा में पाँच तोले की मात्रा में एक सप्ताह तक लेने से संतानोत्पत्ति नहीं होती ।

(ii) पिप्पली, टंकण, विडंग का चूर्ण 2 ग्राम की मात्रा में एक सप्ताह तक मासिक धर्म रुकने पर लेने से भी संतानोत्पत्ति नहीं होती ।

(7) **योग रत्नाकर के गर्भ-निरोधक योग** –

(i) चित्रक मूल के क्वाथ को मासिक धर्म के बन्द होने पर तीन दिन तक पीने से भी गर्भोत्पत्ति नहीं होती है ।

(ii) कदम्ब के 1/4 फल को खाकर ऊपर से गर्म जल पीने पर स्त्री को बन्ध्यत्व उत्पन्न होता है ।

(iii) पलाश के बीज यदि तीन दिन तक खाये जायें तो भी स्त्री को बन्ध्यत्व हो जाता है ।

गर्भ-निरोधक औषधियों पर हुए शोध

(1) नीम (Melia azadirachta) –

(i) यदि नीम तैल को गर्भाशय में सिरींज से पहुँचा दिया जाए तो एक ही बार में स्त्री को बन्ध्यत्व हो जाता है । (Ref. : Journal of Ayurveda, April-June, 1995)

(ii) यदि नीम पत्ती के एक्सट्रेक्ट का प्रयोग किया जाए तो यह स्त्री के बीजकोष के कार्य में बाधा उत्पन्न करता है जिससे स्त्री संतान उत्पत्ति नहीं कर पाती । (Ref. : Page 27, Journal of Res. & Edu. in Indian Medicine, Vol.I, March-June, 1982)

(2) जपा (**Hibiscus Rosa Sinensis**) – यह स्त्री प्रजनन अंगों के कार्य को कम करके तथा Oestrus cycle को बाधित करके अपना कार्य करता है ।

(3) जयन्ती (**Sesbanina Sesban**) – यह बीजकोष के कार्य को रोककर, गर्भाशय संरचना को कुछ बदल कर गर्भ की स्थापना को होने से रोकता है ।

(4) आरग्वध (**Cassia Fistula linn.**) – इसके फल के एक्सट्रेक्ट का चूहों पर प्रयोग करने पर मालूम हुआ कि यह Oestrus cycle, गर्भाशय तथा गर्भ स्थापना को बाधित कर अपना कार्य करता है ।

शुद्ध स्वर्ण भस्म से निर्मित
बैद्यनाथ
रुमार्थो
गोल्ड
पुराने जोड़ों के दर्द की प्रभावी दवा
रुमार्थो कैप्सूल में स्वर्ण भस्म का विशेष मिश्रण होने से यह गठिया वात एवं जीर्ण जोड़ों के दर्द पर व मांसपेशियों के रोगों में अत्यंत प्रभावी औषधि है ।

हृदय रोग के कारण एवं निवारण

*प्रो०सी०बी०झा
**डॉ० सूढ़लदेव महापात्र (जू.रे.)

हृदय रोग :-

आयुर्वेद एक शाश्वत, जीवन्त एवं प्राचीनतम चिकित्सा विज्ञान है । स्वास्थ्य से जुड़े समस्त पक्षों पर इसमें विस्तार से विचार किया गया है । दोष, धातु, मल को शरीर का मूल मानते हुए इनकी विषमता से रोगों की उत्पत्ति का विचार किया गया है । रोगों की उत्पत्ति के बारे में आयुर्वेद एवं आधुनिक विचारधारा में भिन्नता देखी जाती है । यह भिन्नता मूलतः मूलभूत सिद्धान्त की भिन्नता के कारण है । यथा ज्वर, प्रमेह, हृदयरोग आदि आयुर्वेद में रोग माने गये हैं । परन्तु आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इसे रोग विशेष के लक्षण के रूप में लेती है । वर्तमान में रोगों के ज्ञान हेतु जो साधन उपकरण उपलब्ध हैं उनसे रोगों को विस्तार से जानने का अवसर मिला है तथा रोग की विकृति को गहराई से हम समझने में समर्थ हुए हैं ।

निदान :-

आयुर्वेद दृष्टया हृदय प्राण एवं रसवह स्रोतस का मूल माना गया है और स्रोतों की दुष्टि स्रोतोमूल को प्रभावित करती है और स्रोतोमूल दुष्टि हृदयरोग के रूप में परिलक्षित होती है । उसी तरह हृदय को साधकपित्त, अवलम्बक कफ, प्राणवायु एवं व्यानवायु का स्थान माना गया है, एवं इन सब दोषों की दुष्टि से हृदय रोग होता है ।

विशेष निदान :-

1. शारीरिक कारण :-

(अ) आहार जन्य - अति उष्ण, गुरू अन्न एवं कषाय तथा तिक्तरस से युक्त भोजन का अत्यधिक सेवन ।

(ब) विहार जन्य :- अति व्यायाम, अतिश्रम तथा उपवास एवं वेगावरोध, तीव्रविरेचन तथा तीव्र शारीरिक आघात ।

2. मानसिक कारण

अत्यधिक चिन्तन, तीव्र मानसिक आघात ।

सम्प्राप्ति :-

उपरोक्त निदान सेवन से प्राण एवं रसवह स्रोतों की दुष्टि तथा हृदय स्थित दोषों की दुष्टि से मन्दाग्नि होती है और मन्दाग्नि से आमरस की उत्पत्ति होती है । पुनः आमरस दूषित दोष तथा दूष्यों से मिलकर दोष दूष्य सम्मूर्च्छना को प्राप्त होते हुए स्रोतो वैगुण्य उत्पन्न करता है। स्रोतोवैगुण्य की उत्पत्ति के फलस्वरूप स्रोतसंग होता है फलतः हृदय रोग उत्पन्न होता है ।

सामान्य लक्षण :-

वैवर्ण्यता (Discoloration of Body, may be cyanotic or Pallor), मूर्च्छा (Syncope), ज्वर (Fever) कास (cough), हिक्का (Hiccough), श्वास (Dyspnoea), आस्यवैरस्य (Unfavourabe taste), तृष्णा (Thirst), मोह (Stupor)

विशेष लक्षण :-

लक्षणों के आधार पर हृदय रोग के पाँच भेद किए गए हैं ।

1. वातिक हृदय रोग - हृदय में शून्यता का भाव शुष्कता, भेद, स्तम्भ, समोह तोद, दारूण, स्फोटन कम्पन ।
2. पित्तज हृदय रोग - तृष्णा, उष्मा, दाह, चोष, हृदय क्लम, स्वेद, मुखशोष इत्यादि ।
3. कफज हृदय रोग - गौरव, लालप्रसेक, अरुचि इत्यादि।
4. त्रिदोषज हृदय रोग - उपरोक्त समस्त के लक्षणों का सम्मिलित रूप मिलना ।
5. कृमिज हृदय रोग - तीव्र पीड़ा, कण्डू, उत्क्लेदन ष्ठिवन, तोद, शूल, हृल्लास शोष ।

चिकित्सा :-

1. निदान परिवर्जन ।
2. चिकित्सा सूत्र-शारीरिक एवं मानसिक विश्राम, [illegible] हृदयरोग के बलाबल के अनुसार मृदु संशोधन उपयोगी होता है ।

सामान्य चिकित्सा :-

मुख्य औषधियाँ :- अर्जुनक्षीरपाक, बलाचूर्ण, यष्टीमधुचूर्ण, अर्जुनपत्रक्वाथ, पुष्करमूल चूर्ण, करवीर [illegible], नागबलाचूर्ण, श्रृंगभस्म, प्रभाकरवटी, हृदयार्णवरस, नागार्जुनाभ्ररस, चिन्तामणिरस, अर्जुन घृत, पुनर्नवादिमण्डूर,

---

रसशास्त्र विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अर्जुनारिष्ट।

विशिष्ट चिकित्सा :-

1. वातिक हृदयरोग :- पुनर्नवादितैल, हरीतक्यादिघृत, पुष्करमूलादि कल्क एवं क्वाथ, पथ्यादि कल्क, व्यूषणादिघृत, बिल्वादितैल, पंचकोलादि तैल ।
2. पित्तज हृदयरोग - प्राणदाघृत, स्थिरादिघृत, शीतवारि सिंचन, मृदुविरेचन, हुरहुरादि चूर्ण, लीलाविलास रस ।
3. कफज हृदयरोग - स्वेदन, आवश्यकतानुसार वमन, उपवास, कुलत्थ यूष, जांगलमांसरस, कटफलादिकषाय, कृष्णादि चूर्ण, उदुम्बरादीलेह, शिलाजतु, च्यवनप्राश रसायन, आगस्त्यहरीतकी रसायन, ब्राह्म रसायन, आमलकी रसायन, त्रिवृतादि चूर्ण, वचादिचूर्ण, पुष्करमूलादि चूर्ण ।
4. त्रिदोषज हृदय रोग - सर्वप्रथम लंघन, तत्पश्चात् पुष्करमूलादि चूर्ण, नागवल्ली चूर्ण, कुकुभादि चूर्ण, पुष्करादि क्वाथ, दशमूलादि क्वाथ, पार्थारिष्ट, बलादिघृत, यष्टयादिघृत, स्वदंष्ट्राघृत, अर्जुनघृत, चितामणिरस, हृदयार्णवरस, हृदरोगहरवटी, हेमामृतरस, नवायस लौह, कल्यांण सुन्दररस, त्रिनेत्र रस, नगार्जुनाभ्ररस, पंच्चानन रस, प्रभाकर वटी ।

हृदय द्रव्य :-

अमलतास, दाडिम, मातुलुगं मधु, मांसरस, घृत, विलेपी, वेशावर, यूष, सैन्धव, एरण्ड, सौवर्चल लवण, उत्पालादिगण ।

आधुनिक दृष्टया हृदय से सम्बंधित विकार एवं उपचार - आधुनिक मतानुसार हृदरोग में मुख्यत: मायोकार्डियल इनफार्क्सन (Myocardial Infarction), एन्जांइना पेक्टोरिस, (Angina pectoris), उच्चरक्त चाप (Hypertension) इत्यादि आते हैं । इनका संक्षेप्त विवरण निम्न में दिया गया है ।

मायोकार्डियल इनफार्कसन (Myocardial Infarction) मुख्यंत: रक्त वाहिनियों के अवरूद्ध हो जाने के कारण से होता है जिनका मुख्य कारण Thrombus है । इनमें रोगी को तीव्र वेदना, सांस फूलना, उल्टी, चक्कर आना, सीने में जकड़ाहट, भारीपन तथा चेहरा पीला पड़ना आदि लक्षण पाया जाता है । इसमें तीव्र वेदना के लिए ओपोएड अनालजेसीक (Opoid Analgesics) (जैसे मोरफिन (Morphine), कोडीयंन (Codeine) इत्यादि) दिया जाता है । पुन: Thrombus के लिए एस्पिरिन (Aspirin), अन्जियोसिड (Angiocid), स्ट्रेप्टोकाइनेज (Streptokinase) इत्यादि दिया जाता है । **एन्जाइना पेक्टोरिस (हृदशूल) (Angina pectris)** - मुख्यतया हृदय को आक्सीजन की पूर्ति ठीक से न हो पाने के कारण से होती है । इनमें व्यक्ति को सीने में दर्द, गर्दन, जबड़ा तथा बाएं हाथों में दर्द फैलता है । रोगी सीने में जकड़न महसूस करता है । इनमें मुख्यत: β - Blocker (जैसे-Propanolol, Atenolol), Nitrates (जैसे Gtn.), इत्यादि दवाई दी जाती है । उच्चरक्त चाप मुख्यत: रक्त दबाव बढ़ जाने पर होता है । इसमें सिर दर्द, चक्कर आना, घबराहट, उल्टी आदि शिकायतें मिलती हैं । इसमें β - Blocker (जैसे Propranolol, Atenolol इत्यादि), ACE Inhibitor (जैसे Analapril, Capatropil इत्यादि) का प्रयोग होता है ।

योग चिकित्सा :-

विभिन्न प्रकार के योग एवं प्राणायाम के द्वारा हृदयरोग की सफल चिकित्सा की जा सकती है । इनमें मुख्यत: कपालभाति, भ्रामरीप्राणायाम विशेष लाभप्रद होता है ।

रोकथाम एवं बचाव :-

अनावश्यक चिन्तन का त्याग, लघु व्यायाम, उष्ण, तीक्ष्ण पदार्थों का त्याग, ज्यादा शारीरिक परिश्रम का त्याग (जैसे वेग से दौड़ना, जल्दी-जल्दी सीढ़ियां चढ़ना इत्यादि) शारीरिक वेगों का उचित समय पर त्याग करना आवश्यक है ।

निष्कर्ष :-

वर्तमान काल की जीवन शैली, रक्त चाप, हृदयरोग, मधुमेह आदि व्याधियों के दृष्टि से सर्वाधिक उपयुक्त कारण माना जाता है । संयत जीवन शैली, खान-पान एवं आध्यात्म चिन्तन से ही इन सब पर नियंत्रण संभव है । अत: इन रोगों से बचने हेतु भारतीय विचार धारा, प्रकृति के अनुकूल रहन-सहन एवं ध्यान, योग आदि का अनुसरण एवं प्रचार-प्रसार कर के स्वयं एवं इनसे ग्रस्त रुग्ण समाज की रक्षा करनी चाहिए ।

नारी स्वास्थ्य

गर्भावस्था में शिशु और माँ की स्वास्थ्य रक्षा-एक समीक्षा

* धीरज बोहरा, बी.ए.एम.एस. (तृतीय प्रोफ.)
** डा० सुरेश चन्द्र, एम.डी. (आयु.)

सामान्य परिचय :-

कौमारभृत्य अष्टांग आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण अंग है । इसके अन्तर्गत शिशु और माँ के स्वास्थ्य रक्षा सम्बंधी तथ्यों का वर्णन विस्तार रूप से मूल ग्रन्थों में मिलता है । आयुर्वेद एक ऐसा चिकित्सा शास्त्र है जिसमें आयु को स्वस्थ रखने के मूल प्रयोजनों का वर्णन मिलता है । वस्तुत: यही आयुर्वेद का सबसे प्रमुख अंग है ।

मन को प्रसन्न एवं स्वस्थ रखने का पहला उपाय है, शरीर को स्वस्थ रखना । शरीर वह रथ है जिस पर बैठकर जीवन की यात्रा करनी होती है । शरीर एक चलता-फिरता देव-मन्दिर है, जिसमें स्वयं भगवान अपनी विभूतियों के साथ विराजते हैं । अत: मन की निर्मलता और बुद्धि की शुद्धता का साधन शरीर से प्रारम्भ होता है । शरीर तो एक साधन मात्र है, जिसकी सहायता से परम साध्य को प्राप्त करने के लिए योग, तप, जप आदि किया जाता है । इस साधन रूपी शरीर को स्वस्थ और पवित्र रखने से ही योग की शुरुआत होती है ।

शुक्र शोणित संयोगे यो भषेद्दोष उत्कट: ।
प्रकृतिर्जायते तने तस्या मे लक्षणं श्रृणु ।।
(सु०शा० 4/62)

गर्भस्थ शिशु की देह पिता के शुक्राणु तथा माता के शोषित के संयोग से बनती है जिसमें गर्भाशय की प्रकृति माता के आहार विहार की प्रकृति और महाभूतों के विकार की प्रकृति पर गर्भ शरीर की प्रकृति निर्भर होती है ।

ऐसे शारीरिक स्वस्थ वातावरण में आत्मा इन्द्रियाँ और मन भी प्रसन्न रहते हैं । शारीरिक तथा मानसिक दृष्टि से स्वस्थ मनुष्य अपने समान सृष्टि की उत्पत्ति कर अपने उच्चतम लक्ष्य-मोक्ष की ओर प्रगति करता है ।

गर्भवती स्त्री को यह समझना चाहिए कि वह न केवल अपने शरीर के लिए अपितु जन्म लेने वाले शिशु के लिए भी भोजन कर रही है । अत: आमतौर पर वह जितना आहार लेती है, उससे अधिक पौष्टिक भोजन की आवश्यकता है ।

इसलिए शरीर की विशेष भागों के अनुसार पर चार प्रकार के आवश्यक भोजन का उल्लेख किया रहा है ।

फल :- इनसे शरीर की विटामिन, नमक स्वस्थ रखने वाले अम्ल और सैलूलोज की प्राप्ति होती है ।

सब्जियाँ :- लोहा, अन्य नमक, पत्तों के मूल्यवान प्रोट्रीन, विटामिन और सैलूलोज के लिए विभिन्न प्रकार की सब्जियों की जरूरत है ।

दूध :- गाय के दूध में खनिज, लवण सहित सभी जीवनदायी तत्व पाए जाते हैं ।

साबूत अनाज :- यह ऊर्जा देने वाला भोजन है । शरीर इसे बहुत जल्दी आत्मसात करता है । चार प्रकार के भोजन को उच्रित अनुपात में खाकर भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है ।

स्वस्थ एवं गर्भवती नारी का समुचित दैनिक आहार

क्र.सं.	ऊर्जा-स्रोत	स्वस्थ स्त्री	गर्भवती स्त्री
1.	कैलौरी (ग्राम)	2200	2500
2.	प्रोटीन (ग्राम)	45	70
3.	कैल्शियम (ग्राम)	0.4-5	1.0
4.	लवण (मिलीग्राम)	30	40
5.	विटामिन ए (माइक्रोग्राम)	3000	3000
6.	थायमिन (मिलीग्राम)	1.1	1.3
7.	राइबोफ्लेबिन (मिलीग्राम)	1.2	1.4
8.	नायसिन (मिलीग्राम)	15	17
9.	विटामिन सी (मिलीग्राम)	50	50
10.	विटामिन बी (मिलीग्राम)	1.0	1.5
11.	विटामिन डी (आई.यू.)	200	200

उपरोक्त भोजन के अतिरिक्त काष्ठफल, मधु, खजूर, किशमिश, मलाई, मक्खन आदि भी आहार में लिए जा सकते हैं । जैली-जैम के बदले शहद बेहतर है ।

---

*छात्र ** रीडर/विभागाध्यक्ष

शरीर क्रिया विभाग, शहीद करतार सिंह सराभा आयु. मेडिकल कॉलेज एवं हास्पीटल, सराभा, लुधियाना

अधिक मक्खन खाने के बदले मलाई खाना अधिक अच्छा है।

गर्भ में शिशु का विकास होने के कारण पोषण की मांग अत्यधिक बढ़ जाती है, यदि गर्भवती माँ इन सबकी पूर्ति नहीं कर सकती, तो माँ के शरीर से यह आवश्यक वस्तुएं खींची जाती हैं। इसके कारण माँ का शरीर कमजोर पड़ जाता है। शिशु को स्वस्थ रखते हुए माँ को भी स्वस्थ रहना है।

नाश्ते में क्या खाएं :-

1. फल, कुछ ताजे, उबले और कुछ सूखे भी।
2. उबला दूध।
3. अनाज, चपाती, चावल, डबल रोटी आदि के रूप में।

इस अवधि में जब मतली आए और उल्टियां हो, तो भूख कम लगती है। ऐसे समय में नाश्ता सरल हो। फल या फलों का रस नाश्ते से 1½ घंटे पहले और नाश्ते के समय, उबला हुआ दूध लिया जा सकता है।

मध्याह्न भोजन, रात्रि भोजन के समान ही रहे, लेकिन फल, ताजी सब्जियाँ, पके या कच्चे टमाटर लिए जा सकते हैं। दूध, पनीर, दही आदि लिया जा सकता है। ध्यान रहे, इतना न खाएं कि फल और दूध के लिए पेट में जगह ही न हो।

रात्रि का भोजन फलों के बदले सब्जी का होना चाहिए। इस समय भोजन में कच्ची या पकाई गई सब्जियाँ हों और सब्जियों का शोरबा भी लिया जा सकता है, लेकिन सब्जियों के साथ प्रोटीन युक्त भोजन को शामिल किया जाना चाहिए, जैसे उबला दूध, पनीर, छाछ आदि। यदि इस भोजन के समय आलू या अन्य कार्बोहाइड्रेट वाला भोजन जैसे चावल लिया जाए, तो रोटी की कोई आवश्यकता नहीं होगी।

मां की आवश्यकता, उसके वजन; उसकी शक्ति और भूख के अनुसार थोड़े परिमाण में मीठा लिया जा सकता है।

जिस गर्भवती महिला की पचाने की शक्ति कम है, अपने पोषण की आवश्यकता की पूर्ति के लिए सरल भोजन करे। जैसे नाश्ते के लिये फल, टोस्ट, गर्म दूध, मध्याह्न भोजन में कच्ची या पकाई गई सब्जी, दूध, पनीर, छाछ, मटर, दालें, सेम, चावल, रोटी। रात्रि के भोजन में फल, अनाज, दूध तथा मीठे के लिये खजूर या शहद। सोते समय दूध, फलों का रस या सब्जियों का शोरबा। इस स्थिति में वजन बढ़ना स्वाभाविक है। सामान्य रूप से शरीर के वजन के 13 वें भाग की वृद्धि हो। यदि वजन की वृद्धि हद से ज्यादा हो, तो फल और सब्जियों की मात्रा बढ़ायें। दिन में कम से कम 200 मिली दूध लें। मलाई निकाला दूध या छाछ लें। वसा और मिठाइयों की मात्रा सीमित रखें।

यदि गर्भवती की भोजन व्यवस्था संतुलित रहे तो गुर्दों की जटिलता थोड़ी कम होगी। इससे गर्भवती मां को चैन मिलेगा और शिशु की हालत भी अच्छी रहेगी। गर्भावस्था के समय कोष्ठबद्धता की स्थिति साधारणत: पैदा होती है। इसे ठीक करने के लिये सही भोजन बहुत कार्य कर सकता है। इस अवस्था को सुधारने के लिये दोनों समय के भोजन में फल बहुतायत में लें। दोनों समय के भोजन के बीच में कम से कम एक बार फलों के रस का सेवन करना चाहिए।

सारांश :- बच्चों को अच्छे शिक्षा-संस्कार देना जितना आवश्यक है उतना ही बच्चों के सम्पूर्ण शारीरिक विकास के लिए आवश्यक है उचित पोषण, और उचित पोषण के लिए आवश्यक है संतुलित आहार। प्रारम्भ में शिशु अपने आहार के लिए माँ के दूध पर निर्भर रहता है। इसलिए गर्भावस्था से ही शिशु और माँ के स्वास्थ्य की रक्षा करना परम धर्म है।

इस विषय वस्तु पर मेरा यह मानना है कि जब स्त्री गर्भ धारण करने की अवस्था में होती है या गर्भावस्था काल में शिशु और मां का सम्बन्ध नाभि नाल के माध्यम से होता है। इस अवस्था में माँ को अपनी पाचन शक्ति के अनुसार भोजन ग्रहण करना चाहिए। माँ जो भी आहार ग्रहण करती है उसके पाचन के बाद जो रस निर्मित होता है उससे शिशु का पोषण एवं विकास ठीक ढंग से होता है। परिवार के सदस्यों को यह जानना चाहिए कि ऐसी अवस्था में गर्भिणी को संतुलित आहार देना चाहिए और उसे 1-2 किलोमीटर की सुबह-सुबह सैर करानी चाहिए। शुद्ध प्राणवायु से रक्त परिसंचरण ठीक रहता है और मन को प्रसन्नचित रखना चाहिए।

शिशु स्वास्थ्य

बालकों में कृमि रोग - निदान एवं चिकित्सा

* डा० दिनेश कुमार राय
** डा० शशिकान्त सचान

बाल्यावस्था के अन्तर्गत होने वाली व्याधियों में कृमि रोग एक प्रमुख व्याधि है । बालक की वृद्धि एवं विकास के लिए संतुलित पोषण आवश्यक है जिसमें प्रोटीन्स व विटामिन्स का प्रमुख स्थान है । कुपोषण (Malnutrition) के कारण जहां शिशु के शारीरिक व मानसिक विकास पर प्रभाव पड़ता है वहीं सम्यक् पोषण होने पर आंत्रगत कृमियों (Intestinal Infestations) के कारण शरीर को आवश्यक तत्व नहीं मिल पाते हैं । बालक का भविष्य पोषण पर निर्भर करता है । यदि बाल्यावस्था में ही सम्यक् पोषण विकास हो जाता है तो शेष अवस्था में स्वस्थ रहते हुए जीवन व्यतीत करता है । बालक के आहार से मधुर, मृदु, बृंहण, शीत आदि द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है जिसके कारण आमाशय में कृमियों की उत्पत्ति होती है । इसलिए चिकित्सक का ध्यान बालक की अन्य व्याधियों की चिकित्सा के साथ कृमि रोग पर भी आकृष्ट होता है ।

आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में 20 प्रकार के कृमि रोग बताये गये हैं जो बाह्य (मलज) तथा आभ्यान्तर भेद से दो प्रकार के तथा जन्म भेद से रक्तज, कफज व पुरीषज ये तीन प्रकार के होते हैं । कफज एवं पुरीषज कृमि को वस्तुत: आन्त्रगत कृमि (Intestinal worms) माना गया है । कृमियों से मुख्यत: तीन प्रकार की व्याधियां होती हैं - (1) जठरांत्र या पोषणज विकार (Gastro Intestinal Disorders) जो कफज एवं पुरीषज कृमियों से उत्पन्न होते हैं । (2) पाण्डु या रक्ताल्पता (Anaemia) जो प्रधानत: पुरीषज कृमियों से उत्पन्न होती है । (3) कुष्ठ (Leprosy and other Dermatoses) जो रक्तज कृमियों से होते हैं । कफज कृमियों का स्थान आमाशय, पुरीषज कृमियों का स्थान पक्वाशय तथा रक्तज कृमियों का स्थान रक्तवाही शिरा बतलाया गया है । बालकों में मुख्यत: कफज कृमियां पायी जाती हैं ।

निदान (Etiology) - कृमिरोग को निदान की दृष्टि से दो वर्गों में बाँट सकते हैं -

(A) आहार जन्य निदान - अजीर्णभोजी मधुराम्लनित्यो द्रवप्रिय: पिष्टगुडोपभोक्ता व्यायामवर्जी च दिवाशयानो विरूद्धभुक् संलभते क्रिमींस्तु ॥ - मांसमत्स्य गुड़क्षीरदधिशुक्तै: कफोद्भवा: । (सु०उ० 54)

(1) मधुर अम्ल पदार्थों का सेवन ।
(2) द्रव बहुल पदार्थों का सेवन ।
(3) पिष्टमय पदार्थों का सेवन ।
(4) मिष्टान्न पदार्थों का सेवन ।
(5) अजीर्ण अवस्था में भी आहार ग्रहण करना ।
(6) मृत्तिका भक्षण ।

बालकों में मृत्तिका भक्षण से वातादि दोषों में से कोई एक दोष प्रकुपित हो जाता है यथा - कषाय रस मिट्टी वात को, ऊसर (क्षारयुक्त) मिट्टी पित्त को तथा मधुर रस प्रधान मिट्टी कफ को प्रकुपित करके रूक्षता गुण के कारण खाये हुए भोजन तथा रसादि धातुओं को भी रूक्ष बना देती है तथा बिना पाचित हुए ही स्रोतसों को परिपूर्ण करके उसमें अवरोध उत्पन्न कर देती है जिससे इन्द्रियों को अपने-अपने विषय ग्रहण करने की शक्ति, तेज-शरीर की विशिष्ट शक्ति तथा ओज को नष्ट करके बल, वर्ण एवं अग्नि का नाश करके पाण्डु रोग को शीघ्र उत्पन्न करती है ।

मृत्तिकादनशीलस्य कुप्यत्यन्यतमो मल: ।
कषाया मारुतं पित्तभूषरा मधुरा कफम् ॥
X X X
पाण्डुरोगं करोत्याशु बलवर्णाग्निनाशनम् ॥
(च०चि० 16)

(A) विहारजन्य निदान -
(1) व्यायाम नहीं करना ।
(2) दिवाशयन ।

सम्प्राप्ति (Pathogenesis) - आभ्यन्तर कृमि के निम्नलिखित दोष, दूष्य व अधिष्ठान हैं ।

दोष - कफ दूष्य - रस, रक्त

---

* लेक्चरर, ** लेक्चरर, राजस्थान आयुर्वेद महाविद्यालय, नगर परिसर, पुरानी पाली रोड, झालामण्ड चौराहा, जोधपुर

अधिष्ठान - कफज कृमि - आमाशय ।
पुरीषज कृमि - पक्वाशय ।

श्लेष्मा की अधिकता से आमाशय में उत्पन्न होने वाले कफज कृमि वृद्धि को प्राप्त होकर के नीचे, ऊपर की ओर घूमते हैं । उनमें से कुछ पृथुब्रह्म (चमड़े की मोटी तांत के समान) तथा कुछ गण्डूपद (केंचुएँ) के समान मोटे होते हैं तथा कुछ नवांकुर धान्य के समान आकार वाले छोटे एवं सूक्ष्म होते हैं । इनका वर्ण श्वेत एवं ताम्राभ होता है । अन्त्राद, उदरावेष्ट, हृदयाद, महागुद, चुरू, दर्भकुसुम तथा सुगन्ध नामक सात प्रकार के होते हैं ।

लाक्षणिक चिन्ह (Clinical Features):-

(A) कृमि के सामान्य लक्षण -

ज्वरो विवर्णता शूलं हृद्रोगः सदनं भ्रमः ।
भक्त द्वेषोऽतिसारश्च संजात क्रिमिलक्षणम् ॥

(1) ज्वर (Fever)
(2) विवर्णता (Discolouration of Skin)
(3) उदरशूल (Abdominal Pain)
(4) हृद्रोग (Heart Diseases)
(5) अंगों में शिथिलता
(6) भ्रम (Vertigo)
(7) अरुचि (Anorexia)
(8) अतिसार (Diarrhoea)

(B) आंत्रगत कृमि (कफज) के लक्षण -

हृल्लासमास्यस्रवणविपाकमरोचकम् ।
मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्य क्षवथुवीनसाम् ॥
(अ०हृ०नि० 14/50)

(1) हृल्लास (Morning Sickness)
(2) लालास्राव (Secretion of Saliva)
(3) अजीर्ण (Indigestion)
(4) अरुचि (Anorexia)
(5) मूर्च्छा (Syncope).
(6) छर्दि (Vomiting)
(7) ज्वर (Fever)

(C) मृत्तिकाभक्षणजन्य कृमि के लक्षण -

क्षूनाक्षि कूटगण्डभ्रूः शूनयान्नाभिमेहनः ।
कृमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलं सासृककफान्वितम् ॥
(च०चि० 16)

यहाँ मृत्तिकाभक्षण से स्रोतसो में संग होकर रसादि धातुओं का पोषण सम्यक् प्रकार से नहीं हो पाता जिससे बल वर्णादि का नाश होता है । बालक मृतिका भक्षण के साथ मिट्टी में पड़े हुए कृमि को भी खा जाता है जिससे वह शरीर में जाकर रक्ताल्पता आदि लक्षण को उत्पन्न करते हैं । अक्षिकूट, कपोल, भौं, पैर, नाभि, मूत्रेन्द्रिय में शोथ होना यह रक्ताल्पता का लक्षण है । स्रोतोसंग के कारण यकृत् वृद्धि (Hepatomegaly) प्लीहाभिवृद्धि (Spleenomegaly), उदावर्त (Distension of Abdomen) आदि लक्षण कोष्ठ के असामान्य स्थिति को दर्शाता है । इसी को आचार्य चरक ने 'कृमि कोष्ठ' नाम दिया है ।

आधुनिक मतानुसार कृमि - आयुर्वेदीय कफज कृमियों की तुलना आंत्रिक कृमियों से कर सकते हैं -

1. अन्त्राद् - आंतों को खाने वाली-अंकुश मुख कृमि (Hook Warms) ।
2. उदरावेष्ट - अन्न प्रणाली को लपेट कर रहने वाली - स्फीत कृमि (Tapeworm) ।
3. हृदयाद - हृदय भाग में रहने वाली ।
4. महागुद - गुद प्रदेश के भीतर रहने वाली - गण्डूपद कृमि (Ascaris)
5. चुरू - सूत्र की आकृति विशेष वाली - तन्तु कृमि (Thread worms)
6. दर्भकुसुम - कुश या डाभ के फूल के आकार की ।
7. सुगन्ध -

(1) अंकुशमुख कृमि (Hook Worms)- ग्रामीण क्षेत्रों में या गन्दगी वाले शहरी क्षेत्रों में बालकों में पायी जाती है । इन कृमियों का मुख अंकुश के समान होता है जिसकी सहायता से ये आन्त्र की भित्तियों में चिपके रहते हैं । प्रत्येक कृमि प्रतिदिन बालक की आन्त्र से 0.1 से 0.5 मिली रक्त का आचूषण करती है । इस व्याधि को Ancylostomiasis कहते हैं । पुरीष परीक्षण (Stool Exam.) में इनके अण्डों

की उपस्थिति पायी जाती है । बालक के मल के साथ ये बाहर निकलते हैं । इनके अण्डे (Cysts) गीली मिट्टी में रहकर कुछ दिन में Larvae का रूप धारण कर लेते हैं । इस अवस्था में ये तीन चार मास तक जीवित रह सकते हैं । बालक के नंगे पांव रहने पर ये त्वचा के अन्दर प्रविष्ट होकर Lymphatic Circulation द्वारा हृदय के दक्षिण निलय में पहुँच जाते हैं, वहाँ से ये फुफ्फुस (Lungs) कण्ठनाड़ी (Trachea), अन्नप्रणाली (Oesophagus) से होते हुए अपने मूल अधिष्ठान पच्यमानाशय में आकर रुक जाते हैं तथा 4 सप्ताह में इनके आकार में वृद्धि हो जाती है । तत्पश्चात् स्त्री कृमि गर्भवती होकर अण्डे देती है जो पुरीष द्वारा बालक के शरीर के बाहर निकलते हैं ।

लाक्षणिक चिन्ह (Clinical Features) -

(1) इस व्याधि का मुख्य लक्षण रक्ताल्पता (Progressive Anaemia) है । इन कृमियों की लार (Saliva) में एक विषैला पदार्थ (Toxin) पाया जाता है जो रक्त कणों को विनष्ट करता है जिससे हीमोग्लोबिन की कमी हो जाती है ।

(2) अरुचि (Anorexia)

(3) उदरशूल (Abdominal Pain)

(4) कुपोषण (Malnutrition)

(5) जीर्णावस्था में Gross Anaemia के साथ Hypoproteinimia पाया जाता है जिसके कारण सर्वांग शोथ (Leading Oedema) पाया जाता है ।

(6) कभी अतिसार (Diarrhea) तथा कभी विबन्ध (Constipation) पाया जाता है ।

(7) Small Intestine के Epithelial Cells में Function damage होने से आचूषण मन्द (Malabsorption) होता है ।

(8) विवर्णता (Discolouration of skin)

(2) गण्डूपद कृमि (Ascaris Lumbricoids)

- यह मुख्यत: बालकों में ही पाया जाता है तथा 20-40 से.मी. लम्बा होता है ।

बालक के पुरीष से निकले हुए अण्डों से दूषित खाद्य पदार्थों के सेवन से ये स्वस्थ व्यक्ति के आन्त्र में पहुँच जाते हैं । आमाशय में पाचक रस से इनके ऊपर का आवरण गल जाता है तब ये स्वतंत्र होकर यकृत में होते हुए शिरा द्वारा हृदय में तथा वहाँ से फुफ्फुस में जाकर पुष्ट होते हैं तथा वहाँ से पुन: आमाशय में होते हुए आन्त्र में प्रविष्ट होते हैं, वहाँ इनकी वृद्धि होती है तथा वृद्धि को प्राप्त होकर परिपक्व हो जाते हैं । ये अत्यन्त चंचल व गतिशील होते हैं तथा प्राय: आन्त्र में कुण्डलित रूप में रहते हैं । कभी-कभी पुरीष के साथ गुदमार्ग से बाहर आते हैं तथा कभी-कभी आमाशय में पहुँचकर उत्क्लेश उत्पन्न करते हैं । ये आंत्र के भीतर अण्डे देकर नवीन कृमि को जन्म देते हैं तथा ये अण्डे मल के साथ निकलकर दूसरे शिशुओं में उपसर्ग का कारण बनते हैं । कभी-कभी ये कुण्डलित होकर आंत्र छिद्र को पूर्णतया बन्द कर देते हैं जिससे बद्धगुदोदर या आन्त्रावरोध (Acute Intestinal Obstruction) हो जाता है । कभी-कभी पित्तवाहिनी (Bile Duct) में अवरोध उत्पन्न करके कामला (Jaundice) रोग की उत्पत्ति करते हैं ।

लाक्षणिक चिन्ह (Clinical Features)-

(1) उदरशूल (Abdominal Pain)

(2) उदावर्त (Abdominal Distension)

(3) वृद्धि अवरोध (Growth Failure)

(4) रक्ताल्पता (Anaemia)

(5) विटामिनक्षय जन्य लक्षण (Vitamins Defficiency Feature)

(6) अनिद्रता (Sleeplessness)

(7) चिड़चिड़ापन (Irritability)

(8) शीतपित्त (Urticaria)

(9) इस्नोफीलिया (Eosinophilia)

(10) अतिसार (Diarrhoea)

(11) क्षुधाह्रास (Loss of Appetite)

(12) आंत्रावरोध (Intestinal Obstruction)

(13) श्वसनक ज्वर (Ascaris Pneumonia)
(14) श्वास (Asthma)
(15) प्लीहाभिवृद्धि (Splenomegaly)
(16) यकृतवृद्धि (Hepatomegaly)
(17) श्वेताणु वृद्धि (Leucocytosis)
(18) दृष्टि अर्बुद (Retinoblastoma)

(3) स्फीतकृमि (Tape Worms) - यह लगभग 8-10 फीट लम्बा फीते के समान चौड़ा व चपटा होता है । जो अपने गोल शिर में स्थित बडिशों द्वारा आंत्र में चिपका रहता है ।

इनके शरीर में छोटे-छोटे अनेक पर्व होते हैं । प्रत्येक पर्व में अण्डे होते हैं । परिपक्व (Mature) होने पर अन्तिम कुछ पर्व पुरीष द्वारा बाहर निकलते हैं जिनका आकार कद्दू के बीज के समान होता है । यह दो प्रकार का होता है - 1. Tenia Solium 2. Tenia Saginata

लाक्षणिक चिन्ह (Clinical Features) -

(1) उदरशूल (Abdominal Pain)
(2) उदरावर्त (Abdominal Distension)
(3) क्षुधानाश (Loss of Appetite)
(4) छर्दि (Vomiting)
(5) रक्ताल्पता (Anaemia)
(6) Convulsions पाया जाता है (Skill X-rays में Calcification का पाया जाना) मांसपेशियों में Calcified Nodules का स्पर्श किया जा सकता है ।

(4) तन्तु कृमि (Thread Worms) - ये तन्तु या सूत्र के समान श्वेत वर्ण के व बहुत छोटे आकार के होते हैं । रात्रि में गुदमार्ग से बाहर निकलते हैं ।

लाक्षणिक चिन्ह (Clinical Features) -

(1) गुद प्रदेश में खुजली (Itching in Ano-rectal Region)
(2) गुद प्रदेश में जलन (Burning Sensation in Ano)
(3) प्रवाहिका (Desentery)
(4) गुदभ्रंश (Prolapse of Rectum)
(5) शैय्यामूत्र (Enuresis)
(6) प्रतिश्याय (Rhinitis)

चिकित्सा सिद्धान्त -

कृमि चिकित्सा में निम्नलिखित उपक्रम किया जाता है -

(1) संशोधन - स्नहन, स्वेदन एवं कृमिवर्धक आहार से कृमियों को प्रेरित करना तत्पश्चात् मृदुवमन, विरेचन से उन्हें बाहर निकलना ।

(2) कृमि अपकर्षण -

(A) हस्तेनाभिगृह्य - जब कफज व पुरीषज कृमि अपने स्थान से च्युत हो गये हों तब हाथ से या उपकरण से पकड़कर अपकषण करना चाहिए ।

(B) औषध द्वारा अपकषण - जब कफज व पुरीषज कृमि स्वस्थान (आमाशय व पक्वाशय) में स्थित हों तो औषध द्वारा विधिवत अपकर्षण करना चाहिए ।

(3) प्रकृति विघात - कटु, तिक्त, कषाय, क्षार, उष्ण, द्रव्यों के प्रयोग तथा अन्य कफघ्न कर्मों द्वारा कृमियों के प्राकृतिक वातावरण का विघटन कर देना चाहिए जिससे उपस्थित कृमियों के नष्ट होने के साथ पुनः अन्य कृमियों की उत्पत्ति न हो सके ।

(4) निदान परिवर्जन - "संक्षेपतः क्रियायोगे निदान परिवर्जनम्" निदान परित्याग कृमि चिकित्सा का महत्वपूर्ण अंग है । इनके द्वारा स्वयं प्रकृति विघात होकर कृमियों की वृद्धि व क्रियाशीलता मन्द पड़ जाती है ।

(5) औषध व्यवस्था - कृमि रोग की चिकित्सा में सामान्यतः कटु, तिक्त, कषाय, क्षार, उष्ण द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए । जैसे - दाडिम, भल्लातक, विडंग, कम्पिल्लक, पलाश बीज । संक्षेप में इसमें दीपन, पाचन, वायुसारी (Carminatives) एवं कफघ्न द्रव्यों का प्रयोग करना चाहिए ।

औषध योगों में पलाशबीजादि चूर्ण, विडंगासव, विडंगारिष्ट, जन्मघूंटी क्वाथ, विडंगचूर्ण, नवायस लौह, कृमिमुद्गर रस, कृमिकुठार रस आदि मुख्य हैं ।

कुपोषण समस्या और आयुर्वेद

वैद्य विजय कुलकर्णी

कुपोषण हमारे देश की एक जटिल समस्या है। विशेषत: ग्रामीण और वनवासी क्षेत्र में यह समस्या बड़े पैमाने पर दिखाई देती है। नवजात बालक तथा स्त्रियों में कुपोषण दिखाई देता है। महाराष्ट्र में कुछ साल पहले 'कोवली पानगल' में यह रिपोर्ट डॉ० अभय बंगजी ने प्रकाशित की। इस रिपोर्ट के मुताबिक अपने राज्य में हर साल एक लाख पचास हजार से अधिक बालमृत्यु होती है। उन्होंने महाराष्ट्र के ग्रामीण तथा वनवासी क्षेत्र का सर्वेक्षण करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला! उसके बाद समूचा शासकीय क्षेत्र जाग उठा। और यह समस्या हल करने के लिए किये जाने वाले उपाय योजनाओं की चर्चा शुरू हुयी। वैसे तो सरकार बहुत सालों से आयरन और कैल्शियम की गोलियाँ इन क्षेत्रों में बांटती रही है। किन्तु इसका अपेक्षित परिणाम दिखाई नहीं देता। आयुर्वेदीय दृष्टिकोण से इस समस्या का विचार करना प्रस्तुत निबंध का विषय है।

कुपोषण - आयुर्वेदीय दृष्टिकोण :-

कुपोषण समस्या में बालमृत्यु अधिक दिखाई देती है। वस्तुत: इसका मूल कारण उस बालक का पोषण उसके जन्म के बाद और जन्म से ठीक पहले भी ठीक तरह से नहीं हो पाता। इसलिये उसकी माता की ओर ध्यान देना चाहिए। एक तो ग्रामीण और वनवासी क्षेत्र की स्त्रियों में दूध की कमी होती है। उसमें गर्भिणी अवस्था में गर्भिणी परिचर्या पालन का कोई किरण दिखाई नहीं देती। माता खुद कुपोषित होती है। गर्भिणी परिचर्या का पालन न करने से उसके गर्भ का भी पोषण ठीक से नहीं हो पाता। इसलिये कुपोषण समस्या हल करने के लिये उस माता की पोषण की ओर ध्यान देना चाहिये। माता का पोषण अच्छा होगा तो मातृस्तन्य भी ठीक तरह से आयेगा और बालक का पोषण जन्म के बाद एक साल तक इस मातृस्तन्य के आधार पर हो सकता है।

कुपोषण हेतु :-

आयुर्वेद की दृष्टि से क़िसी भी विकृति का हेतु लिंग और औषध इन तीन घटकों के आधार पर विचार किया जाता है। माताओं के कुपोषण के हेतु निम्न प्रकार से है।

1) समुचित रूप में आहार न मिलना।
2) धातुवर्धक आहार की कमी।
3) कम उम्र में होने वाले विवाह।
4) आरोग्य के बारे में अज्ञानता।
5) आहार में स्नेह भाव की कमी।
6) गर्भिणी परिचर्या का पालन न करना।

बालकों में कुपोषण के हेतु :

1) मातृस्तन्य ठीक तरह से न मिलना बालकों के कुपोषण का सबसे बड़ा हेतु है।
2) एक साल के आगे समूचे रूप में आहार न मिलना।
3) कृमि जैसे विकारों की प्रबलता।

इन हेतुओं को आयुर्वेद की दृष्टि से ध्यान में रखना चाहिये।

कुपोषण सम्प्राप्ति व लक्षण विचार :-

कुपोषण में मुख्य रूप से कृशता (कार्श्य) यह लक्षण प्रमुख है। इसमें वातदोष की वृद्धि तथा कफक्षय प्रमुख भूमिका निभाते हैं। रसधातु, रक्तधातु, मांसधातु, मेदधातु और अस्थिधातु इन पांच धातुओं का क्षय दिखाई देता है।

कार्श्य के साथ बालकों में ऊंचाई की कमी भी एक लक्षण होता है। निष्कर्ष रूप से कुपोषण में वात, कफ यह दोष और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि इन धातुओं की भूमिका महत्वपूर्ण माननी चाहिये। इसके साथ अग्निमांद्य यह भी एक महत्वपूर्ण लक्षण दिखाई देता है। इसका मतलब इसमें पित्त दोष की भी विकृति होती है क्योंकि पचनक्रिया यह पित्त दोष का कार्य है।

औषधि :-

कुपोषण के हेतु और लिंग तथा संप्राप्ति समझ लेने के पश्चात् सबसे महत्वपूर्ण घटक आता है औषधि उपक्रम का 1 इसमें कुछ आहारजन्य घटकों का भी समावेश हो सकता है।

1) आहार औषधि :-

कृशरा (गोघृत युक्त) - चावल और मूँग की

विराम, व्यंकटेश सोसायटी, शिवाजी नगर, नासिक-6

दाल से बनी कृशरा (खिचड़ी) में गोघृत मिलाकर सेवन करने से वह अत्यंत पौष्टिक होती है, ऐसा बृहत् निघण्टु रत्नाकर ग्रंथ ने कहा है ।

बलवीर्यप्रदागुर्वीकफपित्तविवर्द्धिनी ।
दुर्जरापुष्टीविष्टं भ्रमलमूत्रकरीमता ।।

(बृहत् निघंटु रत्नाकर)

आजकल सरकार की ओर से स्कूलों में तथा कई ग्रामीण और वनवासी क्षेत्र के आंगनवाडी व्यवस्था में ऐसी खिचड़ी देने की व्यवस्था है । लेकिन इसमें गोघृत (गाय का घी) मिलाने की व्यवस्था भी होनी चाहिए । इससे कृशरा का पोषणमूल्य बढ़ेगा ।

मात्रा - बड़े व्यक्ति के लिये इसकी मात्रा करीब 150 से 200 ग्राम और 5 से 10 ग्राम गोघृत इसमें मिलाएं । छोटे बच्चों के लिए (2 से 6 वर्ष की आयु तक) - इसकी मात्रा 50 से 75 ग्राम इसमें 2 से 5 ग्राम गोघृत मिलाएं ।

खिचड़ी पकाने के लिये पीतल का बर्तन (कल्हई किया हुआ) इस्तेमाल करना चाहिये ।

अॅल्युमिनीयम के बर्तन का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए ।

राजगिरा लड्डू :-

राजगिरा यह अत्यंत पौष्टिक आहार द्रव्य है । बृहत् निघंटु रत्नाकर में राजगिरा के गुण निम्न प्रकार से बतलाये गये हैं ।

लघुराजगिर: प्रोक्त: कफकृत्सारकोगुरु: ।
निद्रालस्यकर: पथ्य: सारकश्चेतिशीतल: ।।
मलावष्टम्भकरणोरुचिदोतिगुरु:स्मृत: ।
पित्तनाशकरश्चैवऋषिभि: परिकीर्तित: ।।

राजगिरे के लड्डू में राजगिरा और गुड़ या शक्कर मिलाया जाता है । राजगिरा का लड्डू पचने में हलका होता है । इसकी कीमत भी अत्यंत कम होती है । आधुनिक मतानुसार राजगिरा में कैल्शियम, लौह, कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन्स भी होते हैं ।

गेहू और दलिया मिलाकर बनाया हुआ सत्तू का आटा :-

इसका भी उपयोग दूध और शक्कर मिलाकर करने से पौष्टिक रूप में होता है ।

औषधि चिकित्सा :-

बालकों में कृमिघ्न चिकित्सा करना सर्वप्रथम आवश्यक होता है । इसके लिये विडंग, कृमि कुठार आदि द्रव्यों का उपयोग किया जा सकता है ।

अग्निवर्धन के लिये हिंग्वाष्टक जैसे चूर्णों का भी उपयोग होता है ।

गर्भिणी स्त्री में शतावरी कल्प अत्यंत उपयुक्त औषधि है । शतावरी का स्तन्यवर्धक होने से विशेष उपयोग होता है । इसके अतिरिक्त आंवला, शतावरी, अश्वगंधा, यष्टिमधु (मूलेठी), बला ऐसे चूर्णों का तथा इससे सिद्ध किये हुये घृत का सेवन करने से भी लाभ होता है ।

विहार चिकित्सा :-

अभ्यंगयुक्त स्नान यह भी एक उपयुक्त विहार चिकित्सा है । अभ्यंग से आयु की पुष्टि होती है और त्वचा का दृढ़ीकरण होता है । इस प्रकार से और कई आयुर्वेदीय औषधियों का उपयोग कुपोषण कम करने के लिये उपलब्धता के अनुसार हम कर सकते हैं । आवश्यकता है, आयुर्वेदीय दृष्टिकोण अपनाने की । ऊपरी सिद्धान्तों के आधार पर हमने आयुर्वेद व्यासपीठ संस्था के माध्यम से वनवासी कल्याण आश्रम की सहायता से दो साल पहले करीब पचास हजार राजगिरा लड्डू वनवासी क्षेत्र में वितरित किये थे । लड्डू वितरण से पूर्व और वितरण के एक माह पश्चात् जिन बच्चों को यह लड्डू वितरित किये थे उनका देहभार निरीक्षण किया गया तो उसमें वृद्धि पायी गयी । इससे आयुर्वेदीय चिकित्सा के प्रति आत्मविश्वास बढ़ता गया और आगे और भी संशोधन इस बारे में वनवासी क्षेत्र में इस लेख में उल्लेखित आहार और औषधि चिकित्सा गर्भिणी माताओं और कुपोषित बालकों को कुछ सार्वजनिक संस्थाओं के माध्यम से देने का उपक्रम शास्त्रीय दृष्टिकोण से चल रहा है । इस बात की ओर सरकार का ध्यान हम आकर्षित करना चाहते हैं ।

ग्रीष्म ऋतुचर्या

डॉ० प्रेम चन्द्र मंगल (एम.डी. शारीर क्रिया, पी.एच.डी. अध्येता

ग्रीष्म ऋतु में स्वस्थ एवं प्रसन्न, ग्रीष्म ऋतुचर्या का पालन करके रहा जा सकता है ।

ग्रीष्म काल में सूर्य अपनी प्रखर किरणों से संसार का सार तत्व पीता रहता है । अत: इन दिनों में स्वादिष्ट, शीतल, मीठा और स्निग्ध खान-पान हितकर होता है । चीनी मिला सत्तू, जंगली जीवों का मांस, दूध, मक्खन और चावल का भोजन मनुष्य को गर्मी के प्रभाव से बचाता है । शराब का सेवन नहीं करना चाहिए, यदि पिये बिना न रहा जा सके तो काफी मात्रा में पानी मिलाकर पीना चाहिए । नमकीन खट्टे, कड़वे और गर्म पदार्थ तथा व्यायाम निषिद्ध है : गर्मी के दिन में सूर्योदय जल्दी होता है, इसलिए सुबह 4 बजे उठ जाना चाहिए । इसके बाद शौच से निबटकर हाथ मुंह धोकर, दन्तमंजन आदि से मुख शुद्धि करें ।

ग्रीष्म काल का व्यायाम :-

घूमना एवं तैरना :-

शरीर को गतिशील और स्वस्थ बनाये रखने के लिए व्यायाम की आवश्यकता होती है, किन्तु गर्मी के दिनों में व्यायाम का निषेद्य है, क्योंकि उष्णता और रुक्षता के कारण इन दिनों खून में अपेक्षित गर्मी पहले से ही विघमान रहती है । सुबह शाम का भ्रमण और तैरना ही इस मौसम की हल्की कसरत है ।

प्रात: सायं का नियमित स्नान :-

हमारा दश गर्म है, इसलिए स्नान सदा ही उपयोगी और स्वास्थ्य रक्षक है, किन्तु गर्मी के दिनों में इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ जाती है । गर्मी के कारण रक्तसंचार में उत्पन्न हुई तीव्र गति स्नान से दूर होती है । शरीर की त्वचा पर जमी हुई डेड सेल्स, पसीने की गन्दगी स्नान से दूर होती है, जिससे रोम छिद्रों के द्वार खुल जाते हैं एवं जल की शीतलता से तन-मन प्रफुल्लित हो जाता है ।

सिर में तैल मालिश :-

गर्मी के दिनों में मस्तिष्क की ताज़गी एवं शीतलता के लिए ठण्डा तैल लगाना चाहिए, इसके लिए महाभृंगराज तैल का प्रयोग 4-5 मिनट तक मालिश करते हुए करना चाहिए, मट्ठा या दही से सिर धोना लाभदायक है ।

ग्रीष्म ऋतु का खानपान :

सर्दी के दिनों में जहाँ प्रकृति स्वयं ही भूख को अधिक कर देती है वहाँ, गर्मी के मौसम में स्वयं प्रकृति ही भूख को कम कर देती है ।

आयुर्वेद शास्त्र में गर्मी के दिनों में निम्न प्रकार के खानपान का निर्देश किया गया है :-

1. मधुर, स्निग्ध, शीतल, लघु एवं द्रव आहार का सेवन करना चाहिए ।
2. जलीयांश की पूर्ति के लिए द्रव या तरल पदार्थों का सेवन करना चाहिए ।
3. चावल, गेहूँ, जौ की रोटी, दलिया, अरहर और मूंग की दाल का प्रयोग करें ।
4. तोरई, परवल, ककड़ी, खीरा एवं हरी सब्जियों का सेवन करें ।
5. दूध, दही एवं मट्ठे का प्रयोग करें ।
6. दूध को गर्म करने के बजाय धारोष्ण दूध की लस्सी का प्रयोग करें ।
7. नारियल का पानी पिना हितकर है ।
8. आँवले का मुरब्बा तथा पेठा तथा शहतूत बहुत लाभकारी है ।

कैरी (कच्चे आम) की पना :-

कच्चे आम को आग में भूनकर उसका रस निचोड़ कर उसमें उचित चीनी या नमक तथा काली मिर्च डालकर सायंकाल भोजन के बाद पी लें, पने में इलायची, तेजपत्र और पुदीना भी डालकर ले सकते हैं ।

ग्रीष्म काल भोजन का क्रम :-

1. प्रात: शौचादि नित्यकर्म से निपटकर धारोष्ण दूध की लस्सी का सेवन जरूर करें ।
2. गुलाब, कमल के पुष्प, खीरे, ककड़ी के बीज, खसखस, कासनी, सौंफ, कालीमिर्च, छोटी इलायची और चन्दन का बुरादा इन सबको सममात्रा में लें तथा

(शेष पृष्ठ सं० - 915 पर)

रीडर, शारीर-क्रिया विभाग, श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेद कॉलेज, अस्थल बोहर, रोहतक

प्याज, एक गुणकारी औषध

डॉ० विनय शौनक, आयुर्वेदाचार्य, पी.एचडी.

प्याज, जिसके नाम से प्राय: शाकाहारी लोग नाक, भौंह तो सिकोड़ते ही हैं और कुछ लोगों को इसकी गंध भी अच्छी नहीं लगती । प्याज एक शाक ही नहीं बल्कि एक उपयोगी औषधि भी है । प्याज में ऐसे कीटाणुनाशक ऐसे तत्व मौजूद हैं जो विसूचिका (Cholera) एवं अंशुघात, लू-लगना (Sun Stroke) रोकने के लिए गर्मी के दिनों में रामबाण कार्य करते हैं । आधुनिक शोधों ने तो यह भी सिद्ध कर दिया है कि फूड पॉइजनिंग को रोकने में भी यह सफल है । प्राचीन ग्रंथों में इसका नाम 'पलांडू' भी मिलता है । यह पश्चिमी घाटों के क्षेत्र में अधिक पाया जाता है ।

प्याज में प्रोटीन 0.18%, कैल्शियम 11.6%, कार्बोहाइड्रेट 1.2%, फास्फोरस 0.4%, आयरन 0.7 मि.ग्रा. प्रति (100 ग्राम) विटामिन A 25 IU, B-40 IU तथा (11 मि.ग्रा.) (प्रति 100 मि.ग्रा.) पाया जाता है । इसमें पानी की मात्रा भी पर्याप्त होती है । इसमें एलाइड तथा सल्फाइड भी विद्यमान रहता है ।

प्याज बलवर्द्धक, कीटाणुनाशक, कफपित्त नाशक और वातनाशक है । पेट के विकारों और जलवायु परिवर्तन से होने वाले उपद्रवों को दूर करने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है । यदि कोई बेहोश हो गया हो तो प्याज फोड़कर सुंघाने से ही लाभ हो जाता है ।

प्याज-के कुछ प्रयोग

दन्तकृमि अर्थात दांत के कीड़े, प्याज के बीज पीसकर खंखोरने में भरें तथा मसूड़े पर मलें तत्काल लाभ होगा ।

नेत्र विकार पर, प्याज का रस आँखों में डालने से रतौंधी, लाली, खुजली और ढलका आदि ठीक हो जाते हैं । मोतियाबिन्द पर प्याज के रस में भीमसैनी कपूर मिलाकर सिलाई से लगाने पर यह कट जाता है । प्याज का रस और शहद मिलाकर लगाने से आँख की रोशनी बढ़ेगी और कमजोरी दूर हो जायेगी ।

मिर्गी के रोगी को यदि होश न आ रहा तो तो प्याज कूट कर सुंघा दें ।

मलेरिया रोग से बचाव के लिए प्याज के रस में कालीमिर्च मिलाकर दिन में दो बार खिलाने से मलेरिया रोग में बचाव हो जाता है ।

पागल कुत्ते के विष से बचाव के लिए प्याज कूटकर शहद के साथ मिला लेप कर देने से कुत्ते का विष भी दूर हो जाता है ।

पेशाब की गर्मी में प्याज को बारीक काटकर एक पाव पानी में उबालें जब पानी आधा रह जाये तो ठंडाकर उसे दिन में दो-तीन बार पिलायें । आराम मिलेगा ।

सिर के गंज में प्याज काटकर उसका रस लगायें दिन में तीन माह तक करने से बाल उग आते हैं ।

रीडर, शरीर-क्रिया विभाग, श्री बाबा मस्तनाथ आयुर्वेद कॉलेज, अस्थल बोहर, रोहतक

(शेषांश पृष्ठ संख्या 914 का)

15 ग्राम की मात्रा बनाकर खूब बारीक पीसकर तथा उचित चीनी एवं जल डालकर कपड़े से छानकर पान करें ।

3. 11 बजे से 12 बजे तक दोपहर का भोजन करें जिसमें थोड़ा चावल और दही का रायता जरूर लें ।
4. 2 से 3 बजे सत्तू या हल्का नाश्ता लें ।
5. 4 से 5 बजे दही की लस्सी, ठण्डाई या शर्बत का पान करें।
6. रात्रि 8 बजे गेहूँ, जौ की रोटी, हरी सब्जी, आम का पन्ना, प्याज, पुदीना की चटनी का सेवन करें ।
7. सोते समय गर्म करके ठण्डा किये गये दूध का सेवन करें ।

ग्रीष्म का पहनावा :-

गर्मी के दिनों में नंगे बदन रहना अच्छा लगता है, किन्तु नंगे बदन रहना हानिप्रद है क्योंकि गर्मी की वजह से, लू के थपेड़ों से, शरीर की त्वचा झुलस जाती है एवं काली पड़ जाती है । अत: गर्मी के मौसम में हल्के श्वेत वस्त्र पहनने चाहिए क्योंकि श्वेत रंग सूर्य की किरणों को अपवर्तित करता है । घर से बाहर निकलते समय सिर के उपर गमछा अवश्य लपेटना चाहिए जिससे लू से पूरा बचाव हो सकें ।

ठण्डा मकान :-

गर्मी के दिनों में कमरे के अन्दर धूप नहीं आने देनी चाहिए, दरवाजे, खिड़कियाँ तथा रोशनदान को बन्द रखकर भीतर की ओर हरे या पीले रंग के पर्दे लटका देने चाहिए जिससे सूर्य की प्रखर किरणें अन्दर न जा सकें । पक्के मकानों की फर्श दिन में दो से तीन बार ठण्डे पानी से धोना चाहिए और थोड़ी देर के लिए नाली को बन्द करके पानी को फर्श में ही रोकना चाहिए, इससे कमरे में ठण्डक रहती है । दरवाजे एवं खिड़कियों पर खस की टट्टियाँ लगाकर पानी छिड़कते रहने से ठण्डक और मीठी खुशबू भी बनी रहती है ।

बलकारक खजूर

डॉ० विजय कुमार नाहर

कुल नाम :- नारिकेल ।
लैटिन नाम :- फिनिक्स सिल्वेस्ट्रिस ।
संस्कृत नाम :- खर्जूर ।
हिन्दी नाम : - खजूर ।
फ़ारसी नाम :- खुर्मा ।
अरबी नाम :- रूतब ।

परिचय :-

खजूर का वृक्ष 40 से 50 फुट ऊँचा होता है । काण्ड लगभग 3 फुट मोटा होता है । पत्र 10 से 15 फुट लम्बे होते हैं ।

पुष्प :-

पुष्प एकलिंगी अलग-अलग वृक्षों पर होते हैं । पुरूष पुष्प श्वेत और स्त्री पुष्प हरिताभ होते हैं । फल के भीतर एक कठिन बीज होता है । ग्रीष्म ऋतु में पुष्प लगते हैं और उसके बाद फल लगते हैं । इसके वृक्ष से एक प्रकार का रस निकलता है उसे खजूरी कहते हैं । इस रस को कुछ महीने तक रखने से यह मद्य (शराब) में परिर्वितित हो जाता है ।

इसी रस द्वारा गुड़ का भी निर्माण किया जाता है ।

जाति :-

यह दो प्रकार का होता है ।

1. खजूर ।
2. पिण्डखजूर ।

पिण्ड खजूर का फल बड़ा, मांसल होता है ।

इसी का फल सूखने पर छुहारा कहलाता है ।

उत्पत्ति स्थान :-

उत्तरी अफ्रीका, मिस्र, सीरिया और अरब ।

गुण धर्म :-

खजूर का फल मधुर, पौष्टिक, कामोद्दीपक एवं वीर्यवर्धक, पचने में भारी होता है । यह वातयुक्त पित्त के विकारों में लाभकारी है ।

रासायनिक संगठन :-

खजूर के फल में प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट खनिज, कैलशियम, फास्फोरस, विटामिन-बी और सी पर्याप्त मात्रा में होती है । पिण्डखजूर में इसकी अपेक्षा अधिक पोषक तत्व होते हैं ।

खजूर के गुणकारी औषधीय उपयोग

दुबलेपन को दूर करने वाला चमत्कारी खजूरी हलवा

मैंने इस हलवे का सर्दियों में कई कार्श्य (दुबले) व्यक्तियों को सेवन करवाया जिसके सेवन से सभी का वजन बढ़ गया । सच में ही यह सफल योग है इसके अतिरिक्त यह पौरुष शक्ति वर्द्धक भी है ।

मात्रा :-

खजूर गुठली निकाली हुई	- 500 ग्राम
चिल्गोजा गिरी	- 100 ग्राम
बादाम गिरी	- 100 ग्राम
पिस्ता	- 100 ग्राम
अखरोट गिरी	- 100 ग्राम
निशास्ता गन्दुम	- 500 ग्राम
देशी घी	- 500 ग्राम
भुने चने का आटा	- 500 ग्राम
असगन्ध नागौरी (चूर्ण)	- 100 ग्राम
भैंस का दूध	- 6 लिटर
खांड	- 1 किलो

निर्माण विधि :-

- सबसे पहले एक बड़ा बर्तन लेकर उसमें 6 किलो दूध डालकर असगन्ध नागौरी चूर्ण मिला दें और उसी में खजूर डालकर धीमी आग पर उस समय तक पकायें जब तक खजूर फूलकर एकदम नर्म न हो जाये ।
- खजूर के नर्म हो जाने पर उसे दूध से निकाल कर कूण्डे में या मिक्सी में डालकर घोंट लें ।
- खजूरों की अच्छी मरहम (Paste) बन जाने पर फिर उसी दूध में इसे मिलाकर धीमी, आग पर दूध का खोया बन जाने तक पकायें ।
- इसके बाद दूसरे बर्तन में 500 ग्राम देशी घी को गर्म करके उसमें निशास्ता गन्दुम को लाल हो जाने तक भून लें अब इस बर्तन को आग से नीचे उतार कर

घर सं०77, मोहल्ला 30, सदर बाजार, जालन्धर कैंट (पंजाब)

का आटा डालकर इसे अच्छी तरह मिला दें । अच्छी तरह मिल जाने पर इसे पहले बर्तन जिसमें खजूरों की मरहम तैयार की थी उसमें इसे डाल कर लाल हो जाने तक इसे खूब भूनें ।

- अब इसमें 1 किलो खांड डालकर अच्छी तरह मिला लें ।
- खांड के मिल जाने पर घी अलग होने लगता है तब इसे आग से नीचे उतार कर इसमें चिल्गोजा की गिरी, बादाम, पिस्ता एवं अखरोट की गिरी को मिला लें । अब यह तैयार है बलकारक खजूरी हलवा ।

सेवन विधि :-

प्रात: - सायं 50-50 ग्राम हलवा एक गिलास दूध के साथ सेवन करें ।

परहेज :-

खट्टी वस्तुएं । खट्टी एवं मसालेदार वस्तुओं का सेवन न करें ।

लाभ :-

इस हलवे के सेवन द्वारा पाचन क्रिया में सुधार होता है । भूख खूब लगती है और जो कुछ भी खाया जाता है वह हजम होकर रस रक्त के रूप में बदलने लगता है । चेहरे पर लाली आ जाती है वजन की वृद्धि होती है ।

खजूर के अन्य लाभ

2. जुकाम :- जुकाम होने पर खजूर के दो फलों को लाल रंग की गाय के दूध में उबाल कर सेवन करने से रोग का शीघ्र निवारण होता है ।

3. खून की कमी :- शरीर में खून की कमी होने पर सफेद गाय के दूध में दो खजूरों को उबाल कर । चम्मच गाय का घी मिलाकर नित्य सेवन करने से खून की कमी दूर होती है ।

4. भूख न लगना :- चार फल खजूर के, अदरक थोड़ा काला नमक एवं काली मिर्च डालकर बनायी गयी खजूर की चटनी को भोजन के साथ खाने से भूख खुलकर लगती है । भोजन ठीक से हजम होता है, गैस की तकलीफ भी दूर होती है ।

5. कब्ज :- दो खजूरों को रात को कांच के बर्तन में पानी में भिगों दें । प्रात: इनकी गुठलियां निकाल कर फेंक दें तथा खजूरों को खाकर ऊपर से वही पानी पीने से कब्ज दूर होती है ।

6. नकसीर :- नकसीर के रोगियों को शहद के साथ खजूर का सेवन करने पर लाभ प्राप्त होता है ।

7. खांसी :- सूखे हुय खजूर (छुहारे) को गाय के देशी घी में भूनकर दिन में दो-बार सेवन करने से खांसी दूर होती है । **परहेज :-** ठण्डी वस्तुएं ।

8. जलन :- सीने में जलन होने पर दो खजूर का रात को मिट्टी या कांच के बर्तन में पानी में भिगों दें । सुबह खजूरों को इसी पानी में मसल कर गुठलियों को निकाल दें और इस पानी को पीने से जलन में लाभ होता है । **परहेज :-**मिर्च मसालेदार पदार्थ ।

9. बिस्तर पर मूत्र :- खजूर खाने से मूत्राशय की कमजोरी दूर होती है । जिन बच्चों का मूत्राशय कमजोर हो जाता है वे बच्चे रात में सोते समय विस्तर पर मूत्र कर देते हैं । इसके लिये एक सूखी खजूर को दूध में डालकर उबालना चाहिए । खजूर वाला दूध पीने लायक गर्म रहने पर उन बच्चों को पिलाने से कुछ ही दिन में लाभ प्राप्त होता है ।

10. मासिक धर्म का कम आना एवं कमर दर्द :- खजूर खाने से मासिक धर्म खुलकर आता है एवं कमर दर्द में भी राहत मिलती है ।

11. हड्डियों का कमजोर होना एवं दांतों का गलना :- खजूर के सेवन एवं खजूर को दूध में उबाल कर पीने से कैल्शियम की कमी से होने वाले रोग जैसे :- दांतों की कमजोरी, हड्डियों का गलना रुक जाता है ।

12. रक्तचाप :- कम रक्तचाप वाले रोगी तीन-चार खजूर गर्म पानी में धोकर गुठली निकाल दें । इन खजूरों को गाय (लाल रंग वाली) के गर्म दूध के साथ उबाल लें । उबले हुए दूध को सुबह-शाम पीयें । कुछ ही दिनों में कम रक्तचाप से छुटकारा मिल जाएगा ।

13. कामइच्छा की कमी :- खजूर के फल को भैंस या ऊँटनी के दूध में उबाल कर ठण्डा होने पर पीने से कामइच्छा की वृद्धि होती है । परहेज :- खटाई ।

(शेष पृष्ठ संख्या 919 पर)

ग्रीष्म कालीन सेवनीय आहार-विहार

कविराज डा० दिवाकर ठाकुर, जी.ए.एम.एस. औनर्स, डी.एस.सी.ए. (आयुर्वेद वृहस्पति)

उचित आहार-विहार की जानकारी न होने से अनुचित आहार-विहार ही नानाविध बीमारियों का कारण बनता है । स्वास्थ्य रक्षा से सम्बन्धित जितनी उपयोगी जानकारी आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र में है उतनी जानकारी अन्य चिकित्सा पद्धति में नहीं है । इसलिए अपने-अपने शरीर व स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए आयुर्वेदोक्त सिद्धान्त का पालन कर पूर्ण स्वस्थ रहा जा सकता है ।

शिशिर, बसन्त और ग्रीष्म ऋतु ये तीन आदान काल में आते हैं जो वर्ष का पहला भाग है, वर्षा, शरद और हेमन्त ये तीन ऋतु विसर्ग काल का है जो वर्ष का दूसरा विभाग है । आदान का प्रारंभ शिशिर और अन्त ग्रीष्म ऋतु से होता है । विसर्ग काल के प्रारम्भ और आदान काल के अन्त में प्राणियों में शारीरिक दुर्बलता आ जाती है । विसर्ग काल के अन्त और आदान काल की शुरूआत में प्राणियों में बल का संचार होता है । आदान काल को आग्नेय काल भी कहा गया है ।

ग्रीष्म ऋतु के समय पृथ्वी अपनी धुरी पर चक्कर लगाती हुई सूर्य के निकट आ जाती है जिससे सूर्य की किरणें तीक्ष्ण और गरम हो जाती हैं । इसलिए भीषण गरमी ही नहीं बल्कि तेज गरम हवा भी चलने लगती है । सभी दिशायें और पृथ्वी जलती-तपती मालूम पड़ती हैं । वायु लू के रूप में तेज लपटें की तरह चलती है जो अत्यन्त कष्टकारी होती है । गरमी के प्रभाव से धूप-पसीना से लोग बेचैन हो जाते हैं ।

इधर कुछ वर्षों से हमारे यहाँ शीत का समय कम और गरमी मौसम का प्रभाव बढ़ गया है । इस स्थिति में हमारा शरीर व स्वास्थ्य बुरी तरह प्रभावित होता है ।

सेवनीय आहार-विहार से शरीर सशक्त, पुष्ट और चुस्त-दुरुस्त बना रहता है । प्रायः लोग जानते हैं कि इस समय पाचकाग्नि मन्द पड़ जाती है इसलिए इस मौसम में देर से पचने वाले भारी पदार्थ, तेज मिर्च मसालेदार, खट्टा, खारा और तेल का तला हुआ व्यंजन, फास्ट फूड का सेवन शरीर और स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालता है । कटु, तिक्त, कषाय, अम्ल रस वाले पदार्थ, बेसन के चने, दुर्गन्ध युक्त, हर जगह का पानी, शहद, खट्टा दही आदि का सेवन इस ऋतु में नुकसान देह है । रात में दही खाना, अंडा, शराब, माँस, उड़द, इमली, अमचूर, सिरका का व्यवहार हानिकर है । फ्रिज में रखा पानी तत्काल निकालकर पीना भी दुष्प्रभावित होता है । मिट्टी के बर्तन का पानी पीना सबसे उत्तम रहता है । बाहर धूप और गरमी से शरीर गरम हो जाता है, बाहर से आए तत्काल पानी न पीवें । सुबह का उतारा हुआ खजूर या ताड़ का रस (नीरा) ग्रीष्म ऋतु के लिए अत्यन्त लाभदायक होता है । हालांकि बासी भात और इमली हानिकारक है । फिर भी इस ऋतु में फायदेमन्द है । चने का सत्तू, जौ का सत्तू, मट्ठा, पोदीना, खस का शर्बत आदि गरमी मौसम में परम उपयोगी सिद्ध है । अगर धूप में बाहर निकलने की नौबत आ जाय तो पर्याप्त मात्रा में पानी पीकर और साथ में सफेद प्याज रखकर रास्ता चलना चाहिए ।

यद्यपि दिन में सोना हानिकारक है तो भी ग्रीष्म ऋतु में दिन में सोना निषेध नहीं है क्योंकि रात छोटी होने के कारण गहरी नींद नहीं आती है, इसलिए दिन में सोना उचित जान पड़ता है । बालक वृद्ध, रोगी और रात में ड्यूटी करने वाले दिन में सोवें । इस ऋतु में अधिक सहवास, अधिक परिश्रम, तेज धूप में काम करना, उष्ण वातावरण में चहल कदमी, प्यास, मल-मूत्र के वेग को रोकना शरीर व स्वास्थ्य के लिए हानिकर है जो अपथ्य विहार है ।

इस ऋतु में ऐसे पदार्थों का सेवन करें जो ग्रीष्म काल में गुण-धर्म से विपरीत हो ताकि ऋतु के प्रभाव को संतुलित व सामान्य कर सके । जैसे गर्म हवा से बचने के लिए ठंडी हवा का सेवन ।

ग्रीष्म ऋतु में सूर्योदय से पहले या ब्राह्म मुहुर्त में विछावन त्याग कर नित्य क्रिया से निवृत होकर दो-तीन किलोमीटर तक भ्रमण अत्यन्त जरूरी है । सुबह भ्रमण करने में कोई बाधा हो तो घर पर ही योगासन का अभ्यास व व्यायाम जरूर करें । यदि अनिवार्य कारण वश रात देर तक जागना पड़े तो घण्टे-घण्टे पर एक-एक गिलास ठंडा पानी पीते रहें, इससे वात व पित्त का प्रकोप नहीं होगा ।

किडनी रिसर्च इन्स्टीट्यूशन ऑफ आयुर्वेद, चांदमारी कॉर्नर, कंकड़बाग मेन रोड, पटना

आधुनिक विलासी जमाने में लोग रात देर तक जागे रहते हैं और सुबह देर तक सोये रहते हैं । इसी भारी दोष का कारण है रात खा पीकर टी.वी. के सामने बैठ जाते हैं, मन पसन्द सीरियल देखने में यह भूल जाते हैं कि कितना वक्त बीत गया है, अब सो जाना चाहिए ।

सुषुम पानी में थोड़ा नमक मिलाकर इतना पी लें कि गले तक भर जाय । कुंजर क्रिया से पेट में पड़ा पित्त निकल जाता है, पेट हल्का और साफ हो जाता है, पेट में बढ़ी हुई गर्मी और अम्लता की स्थिति सामान्य हो जाती है और दस्त भी खुलासा हो जाता है ।

रात को सोते समय एक ग्लास सुषुम दूध घूंट-घूंट कर पीवें ।

गरमी के दिनों में बड़ी हर्रे का महीन चूर्ण और गुड़ सम मात्रा में एह चम्मच खाली पेट में लें । इस तरह हितकारी और सेवन योग्य आहार पालन और अपथ्य आहार--विहार का परित्याग करना ही आयुर्वेद शास्त्र और चिकित्सकों की नेक सलाह है ।

(पृष्ठ संख्या 917 का शेषांश)

खजूर की गुठली के औषधीय प्रयोग

14. सिरदर्द :- पुराना सिरदर्द होने पर खजूर की गुठली को पानी में घिसकर मस्तक और कान पर लेप करने से सिरदर्द रोग से छुटकारा प्राप्त होता है ।

15. प्रदर :- रक्त एवं श्वेत प्रदर स्त्रियों के लिए भयंकर रोग होता है, जो स्त्रियों के यौवन एवं शरीर को नष्ट कर देता है । इसके निवारण के लिए सूखे खजूरों की गुठलियों को कूटकर चूर्ण बना लें और घी में तल लें । इस तले हुए 20 ग्राम चूर्ण में 20 ग्राम शीशम के पत्तों का चूर्ण मिलाकर प्रातः-शाम 3-3 ग्राम पानी के साथ सेवन करने से प्रदर रोग से मुक्ति होती है ।

16. खाज-खुजली :- सूखे हुई खजूरों की गुठलियों को जला कर राख बना लें और इस राख में कपूर और देशी घी (गाय का) मिलाकर लगाने से खाज मिट जाती है । **परहेज :-** नमक का सेवन कम करें ।

17. सिर में जूएं :- खजूर की गुठली को पानी में घिसकर नीम के पत्तों का रस 2-2 चम्मच मिला कर सिर पर लगाने से सिर की जूं मर जाती हैं ।

18. आँखों के रोग :- खजूर की गुठली के छिलके का कपड़छन कर चूर्ण को सुरमे की तरह आंखों में डालने से आंखों की रोशनी तेज होती है ।

19. दाढ़ी और मूँछ के बाल कम या न आने पर :- अधिक आयु होने पर भी कई बार पुरुषों की दाढ़ी या मूँछ के बाल बहुत कम होते हैं या नहीं आते जिसके निवारण के लिए सूखे हुए खजूरों की गुठलियों को पानी में घिसकर गाढ़े लेप या इसके चूर्ण में एरण्ड का तैल मिला कर चेहरे पर मालिश करने से जिस स्थान पर बाल नहीं उगते वहाँ बाल उगने लग जाते हैं ।

मैंने इस लेप का कई रोगियों पर प्रयोग किया और सफलता प्राप्त की । मुझे यह योग खजूर की गुठली द्वारा इन्द्रलुप्त और दाढ़ी के बालों का कम या न उगने का नुसखा और इस रोग के लिए मंत्र हिमाचल मण्डी में एक योगी द्वारा प्राप्त हुआ । जनता के लाभ के लिए गुप्त प्रयोग लिख रहा हूँ ताकि वह इस रोग से मुक्ति पा सकें ।

बैद्यनाथ
आँवला
केश तेल
काले घने रेशमी बालों के लिए
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा.लि.

A STUDY ON MAKSHIKA

(With Special reference to pharmaceutical, analytical and experimental study)

* Sridurga **K R C Reddy *** C.B. Jha

INTRODUCTION :

Makshika is one among the Maha Rasa having high therapeutic and alchemical importance. The details regarding shodhana. marana, satvapatana, pharmacological and therapeutic properties of Makshika are described in Rasa literatures. Makshika is used to cure different diseases when used with various anupanas. Abhraka satva is the only material capable of *Paksha chhedana* (cutting the wings/make it stable on fire) of Parada. But Abhraka satva alone is not consumed by Parada. Hence, dwandva of Abhraka satva and Makshika satva is made and given. Thus, Makshika has great importance in alchemy.

Survarna and Rajata are the two varieties of Makshika. Suvarna makshika variety contains Tamra, Loha and Gandhaka and considered best for both the purposes. It is a compound and it is converted into certain other compound through marana which is suitable for internal use. It is necessary to standardize and evaluate the process reaction as well as the stepwise chemical changes during the pharmaceutical processes.

In this present study, efforts have been made to standardize the pharamaceutical processes adopted for Makshika, evaluate the physicochemical nature of the compound and also to evaluate their safety and efficacy.

The aim of the study is :

1. To standardize the raw material and various pharmaceutical procedures adopted for Makshika.
2. Metallographic and Analytical study of the raw material, intermediary and final products.
3. Safety and efficacy evaluation of the bhasmas of Makshika and Makshika satva.

PHARMACEUTICAL STUDY

Shodhana :

Makshika is crushed and ground into fine powder. It is roasted in an iron pan (750 c) by the addition of lemon juice and continuous stirring with the help of iron spatula. Roasting is done till the fumes stop completely. Then it is convered with a lid and subjected to intense heat for 3 hours. (Ra Tarangini 21/8-9).

Marana :

Shodita Makshika is mixed with equ quantity of Shuddha Gandhaka, triturated w lemon juice pelletised, put in a sharava sampu and subjected to Varaha puta. The process repeated for 20 times to obtain Makshika bhasma From the 2nd puta ¼th quantity of Gandhaka added. (Rasa Ratna Samuchchhaya 2/84)

Satvapatana :

Shuddha Makshika is mixed with quantity of Tankana, triturated with lemon juic made into balls (15 mm diameter), kept in a mus and subjected to intense heat in a Kosthi (120 1250 c). Copper is obtained as a satva. (Ras Tarangini 21/46).

ANALYTICAL STUDY

1. Even trace amount of metallic praticles ca be detected by the Metallographic techniq
2. By the use of quantitative metallograp technique, relative amounts of particles le unreacted can be estimated quantitatively
3. Fresh Makshika has got no free metal. But af shodhana, large amount of free metal wa detected.
4. After 1st puta, the process of oxidation beg converting original metal into bhasma form
5. In the 1st puta 62.98% of free metal wa observed whereas in the last puta it was 6.9
6. Quantitative analysis by Atomic Absorpt Spectrophotometry study showed copper an iron as the major constituents present in th bhasma.
7. X-ray diffraction study of Makshika bhasm showed iron sulphide as the major phas whereas iron oxide and copper oxide we present as secondary phases.
8. Qualitative analysis by Namburi phased sp test showed the presence of copper and ir in Makshika bhasma.
9. Elements like Ag, Bi, Mg, Al, Zn, Sn, K we found in trace amounts in Makshika samp

---

* Senior Resident ** Reader & Head *** Professor, Department of Rasa Shastra, IMS, BHU, Varanas

Chemical analysis of Makshika before and after Shodhana :

Table Showing the chemical analysis of Makshika before and after Shodhana :

ELEMENT	MAKSHIKA (Before Shodhana)	Makshika (After Shodhana)
Fe	44.3%	40.0%
Cu	27.97%	19.07%
S	11.2%	5.48%
Al_2O_3	1.68%	5.7%
SiO_2	14.4%	7.7%

10. During Shodhana, sulphur gets oxidised. Copper and iron are converted into respective oxides and citrates. (CuO, Cu_2O, FeO, Fe_2O_3)
11. Chemical analysis of Makshika Satva.

Table Showing the chemical analysis of Makshika before and after Shodhana :

ELEMENT	SATVA	SLAG
Fe	1.3%	64.6%
Cu	96.02%	10.2%
S	1.9%	1.85%
Al_2O_3	0.2%	8.2%
SiO_2	0.4%	15.2%

12. Quantitative analysis of Makshika satva showed the presence of Sn, Zn, Pb & S in trace amounts.

SAFETY AND EFFICACY EVALUATION :

1. Bhasmas of Makshika and Makshika satva have not shown any untoward effects on experimental animals in acute, subacute and chronic toxicity study.
2. They have no damaging effects on vital organs of body as revealed by blood profile of experimental rabbits.
3. These bhasmas were found safe for internal use even in higher dose (upto 8 times therapeutic dose).
4. Bhasmas of Makshika and Makshika satva have potent haematenic effects.
5. Makshika bhasma has significant hypnotic activity in albino rats.
6. Makshika bhasma has significantly increased the haemoglobin levels and significantly decreased the serum cholesterol levels when compared with the control group.
7. No significant toxic effects were observed with Makshika bhasma in histopathological study on liver and kidney in therapeutic dose.

CONCLUSION :

Makshika is an important material of Rasa Shastra having high therapeutic values. Varaha puta system of heating is found most suitable for the preparation of Makshika bhasma. Addition of Gandhaka in each puta is a essential to prepare Makshika bhasma. Makshika bhasma is found to be safe for internal use and has shown significant hypnotic and haemetenic effects in experimental animals.

References :

1. Studies on Makshika; Upadhyaya O N etal 1979.
2. Metallographic studies on metallic bhasmas, Babhesh Das etal 1990.
3. A study on Satvapatana (Abhraka and Makshika) Jha C B etal 1990.
4. Study of bhasmas of Makshika and Makshika satva, Choudhary A K etal 1997.
5. Comparative study of Makshika bhasma and the bhasma prepared with combination of tamra and Loha, Sridurga etal 2005.

बैद्यनाथ
अश्वगंधारिष्ट
मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा,
मंदाग्नि आदि में लाभकारी

A Review of Quality Evaluation of Herbal Formulation

* Saini V **Kinger H.K. *** V.B. Gupta

INTRODUCTION :

Medicines prepared by our Acharyas were more efficacious but in present scenario many manufacturers are adding adulterants in herbal formulations which render them less effective. Present review highlights need of quality control and World Health Organization guidelines for herbal. WHO has taken necessary steps to control the quality of herbal drugs and to ensure the higher safety margins of the herbal drugs and to ensure the highter safety margins of the herbal drugs.

Further WHO has made guidelines for general limits of herbal drugs which includes harmful organic matters, innocuous foreign matters, pesticide residues, arsenic and heavy metals, microbial contaminations, aflatoxin and radioactive contaminations[1].

The herbal formulation contains only plant materials singly or in combination of several plants. These formulations also contain several impurities like metals, minerals[2]. The quality of the finished formulation depends on the following -

1. Quality of inputs viz. herbal materials and processed metals/minerals.
2. Uniform method of processing.
3. Established method of manufacturing.
4. Established operating procedures.
5. Meeting in house standards of all specifications.
6. Standard testing procedures.

HERBALS MATERIALS PROBLEMS:

The problems encountered procurement of authentic plant materials are mainly due to the following :

a) Collection from wildly growing plants from forests and waste lands.

b) Suppliers of plant materials are generally traders who have limited knowledge of medicinal plants collected from various regions of the country.

c) Non-homogeneity of the plant materials due to the collection from wild sources and even different geographical locations and then pooled together.

d) Adulterated or substituted plant materials due to collection by persons not fully acquainted with the differences in various species of the related plant. In order to ensure consistency in the plant materials to be used for commercial production of herbal products, it is advisable to follow strictly WHO guidelines for quality control of herbal material. These guidelines give a detailed procedure for various steps to be taken to ensure the proper quality[3]. These are given in the table

Sampling	
Foreign matter	
Macroscopic & Microscopic analysis	Ash content
TLC analysis	
Extractable matter	
Arsenic & heavy metals content	Pesticide residue
Microbial load and absence of pathogens	Radioactive contaminants
Specific tests for certain plant materials	
Volatile content	Bitter value
Haemolytic activity	Tannin content
Foaming index	

QUALITY CONTROL PARAMETERS OF HERBAL MATERIALS

The WHO Guidelines for quality assessment of plant material is not followed by most of the 8500 licensed manufactures of Ayurvedic and herbal medicines since most of these are small scale manufactures with limited resources and knowledge[4]. However few medium and large scale manufactures undertake some quality control testing of herbal materials[2]. In most cases the Ayurvedic doctor attached to the manufacturing company approves the materials based on the organoleptic characteristic and therefore knowledge of plants is highly inadequate and steps must be taken by manufacturing units to undertake effective quality control checks on the plant materials in order to manufacturing herbal products with consistent clinical efficacy[5].

PHARMACOPOEIAL STANDARDS :

The pharmacopoeial standards in Ayurvedic pharmacopeias of India are not adequate enough to ensure the quality of plant materials since the materials received in the manufacturing premises are not in a condition that effective microscopic examination can be done[1]. Therefore, chemical methods, instrumental methods and TLC analysis would determine the proper quality of plant materials. for this, in-house specification for the plant materials should be developed to enable the quality chemist to verify and approved the materials[6]. The in-house specification should cover the following[7] :

a. Moisture content.
b. Foreign matter.
c. Macroscopic & Microscopic characters.
d. Total Ash content.
e. Acid insoluble ash-content.
f. Water soluble extractives.
g. Alcohol soluble extractives.
h. TLC fingerprinting.
i. Chemical assay, if any.
j. Microbial test and their limits.

Conclusion :

In order to ensure that the manufactured product is of consistent quality, it is essential that the herbal raw materials be of prescribed quality. Further, the processing of the plant material in to extracts and all other manufacturing operation must confirm to a standard operating procedure. Another major parameter to be followed is to undertake stability study of product.

References :

1 A.K.De, A.K. Sen and D Modak, Environmental International. 4, 101-105 (1980).
2. B L Valle and D D Ulmer. Bio-chemical effects of mercury. cadmium and lead. Ann. Rev. Biochem., 41,91(1972).
3. D D Biggins and R M Harison, Env. Sci. Tech. 14, 336 (1982).
4. Ei-Ichiro, O Chiai, Bioinorganic Chemistry, Allyn and Bacon Inc., Boston, Mass (1977).
5. R E Lee and D J Lehmden, Trace Metal Pollution in the Environment, J Air Pollution Control Assoc., 23, 853 (1973).
6. R R Chaudhury, Herbal Medicine for Human Health, 55-75 (1991).
7. Chopra, S.L. and Kanwar, J.S. Analytical Agricultural Chemistry Kalyani Publishers, New Delhi 488 (1991).

स्त्रियों के लिए कांतिवर्द्धक एवं बलवर्द्धक टॉनिक

बैद्यनाथ

अशोकारिष्ट

मासिक-धर्म की अनियमितता,
कमर दर्द, पेट दर्द, बुखार सा
होना, भूख न लगना तथा
मासिक-धर्म के समय होने
वाली तकलीफ व बेचैनी
इसके सेवन से दूर हो जाती है।

बैद्यनाथ
अशोकारिष्ट

MADANAPHALA - A COMPLETE DRUG FOR PANCHAKARMA

* Dr . Prakash L. Hegde, M.D. (Ay.)
** Prof. Maheshchandra Sharma Ph.D. (Ay.)

There are more that 25 drugs used for Vamanadi Panchakarma, among these some are branded as the best for that particular action like Madana for Vamana and Trivrit for Virechana etc. No doubt these drugs mentioned in the classics are of great importance and very useful. But in recent days the availability of drugs is a big concern due to improper collection and usage, resulting in extinction of many species each day. This is the high time to take necessary actions towards conservation of medicinal plants or else it is very certain that many medicinal species will be out of reach. At this juncture it is very necessary to look for a single drug, which has multifarious actions, which in turn serve the purpose of conservation. Madanaphala is one such drug, which has various actions apart from Vamana. The references about its inclusion in Asthapanopaga and Anuvasanopaga ganas of Charaka indicating its usage in Basthi and its pittasaraka action leading to Virechana Karma. Understanding these multifaceted pharmacological actions of Madana is indeed useful in its effective utilization in clinical practice.

DRUG REVIEW :

Botanical Name : Randia dumetorum L.A.M.
Family : Rubiaceae
English Name : Emetic nut tree
Gana : Vamaka, Phalini, Anuvasanopaga, Asthapanopaga (Charaka) Argwadhadi, Urdhvabhagahara (Sushrutha).

Properties :

Rasa : Katu, Tikta, Madhura and Kashaya
Guna : laghu, Ruksha
Vipaka : Katu
Virya : Ushna
Prabhava : Vamaka

Dosha Karma : Kaphahara, Pittanissaraka, Vatashamaka by Ushna property. It eliminates kapha and pitta by emesis and pitta by purgation. It eliminates and alleviates vata. This action on vata dosha is utilised by administration of Madanaphala in Asthapana and Anuvasana Basti.

Madanaphala is being used so extensively for inducing emesis in shodhana chikitsa that its name has become synonymous with emesis. It is extremely suitable for emesis, as it does not cause any complications. Fruit rind and seeds are used for emesis. Fruit is emetic and also purgative.

To induce emesis, powder of whole fruit (approximately 3-4 masha) is soaked in ½ chataka water overnight. This liquid is filtered and given to the patient after adding honey and saindhava. Emesis starts in an hour if given in empty stomach. For instant emesis, dose of the seeds should be increased. It causes emesis in 15-20 minutes. If this fails to induce vomiting then warm water is given and the patient is encouraged to vomit. Repeated use of water with saindhava purifies the stomach (Amashaya) by eliminating kapha and pitta.

* त्रिवृत् बिल्वपिप्पलीकुष्ठसर्षपवचावत्सकफलशतपुष्प
मधुकमदनफलानीति दशेमान्यास्थापनोपगानि भवन्ति ।
च०सू० 4/25

Trivrit, Bilwa, Pippali, Kushta, Sarshapa, Vacha, Vatsakaphala, Shatapushpa, Madhuka and Madanaphala are having Asthapanopaga karma as per Charaka.

* रास्नासुरदारुबिल्वमदनशतपुष्पावृश्चीपुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थ
श्योनाका इति दशेमान्यनुवासनोपगानि भवन्ति ।
च०सू० 4/26

Rasna, Devadaru, Bilva, Madana, Shatapushpa, Shweta punarnava, Gokshura, Agnimantha and Shyonaka are mentioned in Anuvasanopaga gana.

* मदनफलं वमनास्थापनानुवासनोपयोगिनां .... ।
च०सू० 25/40

---

* Lecturer, Deptt. of Dravyaguna, S.D.M. College of Ayurveda, Thammeeruhalla, Hassan, Karnatka

** Prof. of Head of the Dept. Deptt. of Dravyaguna, National Institute of Ayur., Amer Road, Jaipur-302020

Charaka envisages the use of Madana in Vamana karma. Asthapana and Anuvasana Basthi.

* वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमान्याचक्षते, अनपायित्वात् ।

च०क० 1/13

Madana is said to be best Vamaka Dravya because it won't cause any discomfort.

* मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनो लघुः ।
वान्तिकृद्विद्रधिहरः प्रतिश्याय व्रणान्तकः ॥
रूक्षः कुष्ठकफानाह शोथगुल्मव्रणापहः ॥

भा.प्र. हरीतक्यादि वर्ग

The properties of Madanaphala are Sweet & bitter in taste. hot in potency. laghu & ruksha in quality, pacifies kapha, Lekhana and Vamaka in Karma, used in Vidhradi, Pratishyaya, Vrina, Kushta, Anaha, Shotha and Gulma.

* मदनकुटजकुष्ठदेवदालीमधुकवचादशमूलदारूरास्ना ।
यव मिशि कृतवेधनं कुलत्था मधु लवणं त्रिवृता निरूहणानि ॥

(अ.हृ.सू. - 15/3)

Vagbhatacharya also mentions about its usage in Niruha basti.

* रोध्रमदनसप्तपर्णनिम्बपीलुबीजानि । शिरोविरेचनोपयोहीनि ॥

(अ.सं.सू.-14)

Interesting reference is available in Ashtanga Sangraha that Madanaphala is mentioned in Shirovirechanopayogi dravyas indicating its use in Nasya.

* मधुक ....शल्लकीशर्करामदनकमरुबक...त्वक्..
प्रायोगिकधूमोपयोगीनि ॥

(अ.सं.सू. - 14)

Madana bark is also listed in Dhoomapana dravyas that it is used for Prayogika Dhoomapana.

Chemical constituents :

- Randianin, Randiac acid, Dumetororins A,B,C,D, E and F, Randioside A (1-3, òleonolic acid), Sapogenin, Ursosaponin, Citric acid and tartaric acids, Pectin, Mucilage etc.

DISCUSSION :

- Vamaka karma of Madanaphala is mentioned as Prabhava in classical literature.
- As other karmas are also attributed to the same drug, the dominant karma of the drug may be considered for Prabhava.
- The qualities told for both vamana and virechana karma is similar, but Prabhava is different for Vamana and Virechana Karmas, Urdhwabhagahara prabhava is resposible for Vamana karma. where as Adhobhagahara prabhava results in Virechana.
- Matra of the medicine also plays a major role in bringing out the karma. The dose for vamana karma is more when compared with other karmas.
- Agni also has main role, if the drug comes in contact with Agni then it results in virechana.
- Acharya Vaghbhatta mentions the seeds of Madanaphala as being useful in Shirovirechana. Apart from this the bark of Madana is said to be useful in Prayogika Dhumapana. These references reveal its place in one of the other procedures of Panchakarma also.

CONCLUSION :

- No doubt the drug Madanaphala is the best drug for Vamana, but there are enough classical references indicating its usage for other Karmas of Panchakarma like Virechana, Anuvasana Basti, Niruha Basthi and Shirovirechana.
- Usage of a single drug in different dosage and forms is definitely an advantage to preserve many of the drugs.
- Madanaphala is commonly used only for vamana karma now a days, but it should be used for virechana etc. karmas.
- Lot of research works is necessary to claim wonder drug Madanaphala as a complete drug for Panchakarma.

Personality

Approaches and execution with all efforts to live a planned, systematic and purposeful life distinguishes a human from a mass. Its flavour automatically spreads if it has essences of nationality as whole and respect and path of strong tradition in heart. Ayurveda is one of the eminent way to prove oneself is never an exaggeration. Vaidya Shrihari Shankar has one who not only proved this but also established the validity of his surname 'Vaidya'. Born on 23rd July 1940 in a Brahmin family of Maharashtra, Vaidya S. S. was well versed with worship culture of Hindu traditions and rhymes and chimes of Sanskrit were always setting attuned in his mind and heart or more than in his whole body. The childhood curiosity to understand anything properly and love to serve the people and nation roused his strong interest in Ayurveda from very beginning of his life.

He graduated in 1965 from Pune University. Teaching is the best medium to explore anything that might be in mind when he decided to select the teaching job after his graduation. He did his Doctoral Research on 'Critical study of Dhanwantari Nighantu' from the same University, i.e. Pune University. Students and teachers still remember his energetic services as Professor of Rasashastra and Bhaisajyakalpana in Tilak Ayurvedic College of Pune, Ashtanga Ayurved Mahavidyalaya, Pune and Ganga Ayurveda College, Kolhapur. Many of his students are working very well in the field of Ayurveda applying the ideas they received from Professor Vaidya while working with him as students of M.Sc., M.D. an Ph.D. For his research work, he wa awarded Silver medal by the Academy o Ayurveda, Vijayawada.

Vaidya Shrihari Shankar

Other than the Academic carrier he also proved himself better i administration and leadership qualities during while his tenure as a member o Board of Studies in Banaras Hind University, National Integrated Medica Association and Board of Studies fo Paraclinical Board under Faculty o Ayurveda of Shivaji University. For welfare of general public he founded a healt centre for public, 'Jammangal Pratisthan'. Persons from the Ayurveda and outside of Ayurveda keep in memory his deliberations on television channels seminars, symposia and many other sources. Not only under the Indian Territory but abroad as Italy, Indonesia etc. also his representations are matter o appreciation. He used to arrange medical camps for the patients in all the diseases The number goes more than 130 - May he live a long life.

— **Prashant Kumar Jha**

Gujarat Ayurved University, Jamnagar

आयुर्वेद भारतीय जीवन के अधिक सन्निकट

जून, 1966

आयुर्वेद चिकित्सा भारत के जन-जीवन से अधिक सन्निकट है । यह चिकित्सा सस्ती ही नहीं, मौलिक भी है । एलोपैथिक चिकित्सा भारत में युग के अनुसार फैली है । जैसे-जैसे उसका विस्तार हो रहा है वैसे ही यह सामान्य जनता के लिए अधिक महँगी होती जा रही है, पर आयुर्वेद में ऐसा नहीं है । यह इस देश का अपना विज्ञान है ।

खेद है कि आज वैद्य-समाज ही अपनी मौलिकता को छोड़ता जा रहा है । इससे आयुर्वेद की क्षति होती है । अतः वैद्यों को चाहिए कि अपने विज्ञान को बढ़ाने एवं सर्वजनोपयोगी बनाने के लिए प्राणपण से सचेष्ट हों ।

श्री मोरारजी देसााई

भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री

सर्व प्रथम वैद्यों को समान अधिकार प्राप्त हो

आचार्य दामोदर शर्मा गौड़, ए०एम०एस०, प्राचार्य आयुर्वेद स्नातकोत्तर शिक्षण संस्थान, वाराणसी ने कहा- समस्याएँ दो प्रकार की होती हैं, इनमें कुछ स्वाभाविक कुछ आगन्तुक होती हैं । इसी प्रकार अधिकार की भी बात है । आज हमें ऐसे स्नातक चाहिए जो वर्तमान समय के लिए उपयुक्त हों । आज अर्थ प्रधान युग है, अतः सर्वप्रथम यह स्पष्ट होना चाहिए कि हमें क्या मिलेगा और हमें क्या अधिकार होंगे । आज नहीं, हमेशा से प्रत्येक व्यक्ति को अधिकारों की आवश्यकता रही है और इसीलिये लोग संघर्ष करते आये हैं । अतएव, सर्वप्रथम वैद्यों को समस्यानुसार समान अधिकार मिलना चाहिए, आज वैद्यों को विचार करते समय एलोपैथी के अधिकार को सामने रखकर विचार करना चाहिए ।

मेरे विचार से सरकार को चाहिए कि शुद्धायुर्वेद और मिश्रायुर्वेद दोनों के समर्थकों को बुलाकर एक बार अपने सामने निर्णय करने का अवसर देना चाहिए, जिससे बहुत-सी शंकाओं का समाधान स्वतः हो जाय ।

इस आयुर्वेद का क्या होगा ?

वैद्य दरबारी लाल शर्मा, आयुर्वेदाचार्य, अध्यक्ष, उ०प्र०, विभाग सभा ने कहा कि जिस प्रकार औषध में प्रभाव बढ़ाने के लिए कुछ पुट दी जाती है, उसी प्रकार मूल वस्तु पीछे रह गई है और राजनीतिक पुट आगे आ गई है. अष्टांग, शुद्ध, मिश्र, सिद्ध में ही चक्कर लगाते रहते हैं । परन्तु हम इससे आगे नहीं बढ़ सकते हैं । जैसी स्थिति आज आयुर्वेद की है, ठीक ऐसी ही स्थिति कभी अन्य पद्धतियों की भी रही होगी, किन्तु धीरे-धीरे विज्ञान के सहारे लोग आगे बढ़ते गए ।

अगर आयुर्वेद को राज्याश्रय नहीं मिला, तो यह आगे नहीं बढ़ सकता है । प्लानिंग या हेल्थयूनिट्स में आयुर्वेद को स्थान नहीं मिला तो इस आयुर्वेद का क्या होगा ! आज प्लानिंग का जो कार्य चल रहा है उसमें आयुर्वेद को भी सुनियोजित तरीके से आगे बढ़ना चाहिए । आज जो भी देश की जलवायु के अनुकूल हों, उसे देशी चिकित्सा के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए । आज जब रोगी एलोपैथी की चिकित्सा से थक जाता है तो आयुर्वेदवालों की शरण पहुँचता है और स्वास्थ्य लाभ करता है ।

आज प्रथम पास वालों को न तो कानून में डिग्री दी जा सकती है और न समान वेतन ही मिल सकता है । अतः हमारी प्रवेश-योग्यता इण्टर या मध्यमा होनी ही चाहिये ।

यह खेद की बात है कि सन् 1960 तक के ही आयुर्वेदीय स्नातकों को कन्डेन्स्ड कोर्स में लिये जाने की घोषणा सरकार की ओर से हुई है, जिन्हें 225 रुपये से 425 रुपये दिया जायेगा और मेडिकल डिस्पेन्सरी में जुनियर असिस्टेण्ट के पद पर इनकी नियुक्ति होगी, वह भी तब जब कि मिश्रायुर्वेद उ०प्र० में बन्द कर दिया जाय । हमारी समझ में नहीं आता है कि सन् 60 के बाद जिन्होंने आयुर्वेदिक कालेजों में प्रवेश लिया है और मिश्रायुर्वेद पढ़ रहे हैं उनका क्या होगा ? आज हमारी सरकार मिश्रायुर्वेद वालों को 225/- - 500/- देने की घोषणा कर चुकी है और सीधे चिकित्साधिकारी बनेंगे, तो फिर हम अपने छात्रों को 2 वर्ष तक कण्डेन्स कोर्स पढ़ाने के चक्कर में क्यों पड़ें ?

हमारी समझ में शीघ्र ही केन्द्रीय आयुर्वेदिक कॉन्सिल बननी चाहिए, जिससे कि बिखरे हुए आयुर्वेद के विद्वान् एक जगह सम्मिलित हो विचार-विमर्श कर सकें । हमारा यह प्रयत्न सर्वोपरि होना चाहिए ।

आपके अनुभूत प्रयोग

अभिनव रुग्ण चिकित्सा

अक्सर कुछ लोग शरीर पर सूजन, शारीरिक वेदना के साथ ही तेज ज्वर से परेशान रहते हैं। वह तकलीफ जिसे आधुनिक चिकित्साशास्त्र में Septicimia & Myosities कहते हैं।

इसी समस्या से ग्रस्त एक ग्रामीण हमारे चिकित्सालय में आया। 26 वर्षीय, कृष्णवर्णीय ग्रामीण युवक की प्रारंभिक जाँच में पाया गया कि वह ज्वर से पीड़ित है, संपूर्ण शरीर पर सूजन है। प्रथम चरण के उपचार में ज्वर नियंत्रित हुआ पर सूजन अप्रवाहित रही है। औषधोपचार में खंड नहीं, उपशय नहीं। निदान में रोग की पहचान Septicimia & Myosities के रूप में की गयी। सारे बदन पर सूजन इस रोग का प्रमुख लक्षण है। बदन में वेदना के साथ ही रुग्ण के लिए चलना कष्टप्रद होता है।

गहन पूछताछ में बताया गया कि इस परिवार के लोग न कभी बीमार पड़े न उन्हें कभी कोई दवा लेने की जरूरत पड़ी। इसके बावजूद एक माह पूर्व अचानक कंपनयुक्त तेज बुखार, अंगदाह के साथ ही शरीर में भारी वेदना से रुग्ण घबरा गया। देहाती उपचार से समाधान न मिलने पर वह रुग्ण उपचारार्थ हमारे रुग्णालय में आया। तब बदन में सूजन थी। वेदना से वह कराह रहा था। उसे ज्वर नहीं था पर सुजे हुए पैरों से मवाद रिस रहा था। बताया गया कि ग्रामीण क्षेत्र में निवासस्थ पूरा परिवार श्रमिक है। बीमारी से सदा मुक्त रहा है। परीक्षण में रुग्ण की नाड़ी की चाल 76 बार प्रति मिनट, तापमान 97 डिग्री, सांस 24 बार प्रति मिनट, नाखून, नेत्र जिव्हा, स्वर आदि सामान्य, कोई विकार नजर नहीं आया। त्वचा श्यामवर्ण, सूजन से प्रवाहित, स्पर्श-प्राकृत, अग्नि-मंदाग्नि का शिकार, मानसिक अवस्था-चिन्तामग्न पायी गयी।

घावों में जब भीतर ही भीतर सड़न के कारण नासूर हो जाता है, तब उसकी पहचान व्रण के रूप में की जाती है।

व्रण शोध चिकित्सा के प्रथम चरण में शोधघ्न चिकित्सा, पक्षाघात वमन, विरेचन तथा रक्तमोक्षण उपचार का प्रावधान है। उपवाह के बाद शल्यक्रिया से व्रण में स्थित मवाद को निकालनां चाहिए। व्रण के दो प्रकार हैं। शरीर में आन्तरिक दोष दृष्टि, एवं बाह्य दुर्घटना के परि स्वरूप उभरनेवाला व्रण।

चिकित्सालय में उपचारार्थ आया ग्रामीण रु दोष दृष्टि के कारण उपजे व्रण से पीड़ित था। वातपित्तादि दोष से दूषित, काली छटा लिए चुभनयुक्त वेदना, पीला-भू रंग का मवाद स्राव देखा गया। ये सभी शरीर दोष दृष्टि के लक्षण हैं।

चिकित्सा :- आधुनिक पद्धति से उपचार प्रारंभ किया। उपशय के कोई लक्षण दिखायी नहीं दिए। शरीर के मांसल सूजनपर ॲस्पिरशन के परिणाम स्वरूप लाल औ स्याहरंग का मवाद, बड़ी मात्रा में रिसता दिखायी दिया। उचित उपचार से व्रण नियंत्रित किया जा सका पर कंबर के निचल हिस्से के व्रण प्रभावहीन देखे गए। शल्य चिकित्सा द्वारा त्वचा रोपण के बावजूद व्रण जैसा का तैसा देखा गया। रोपित त्वचा टिक नहीं सकी। अतः हमने उपचार का क्रम बदला। आयुर्वेदिक व्रण रोपण चिकित्सा के तहत निम्न औषधियों का इस्तेमाल किया गया।

अर्जुन :- व्रण शोधघ्न तथा व्रण लेखन, व्रणरोपण व व्रण शुद्धिकारक।
गुलवेल :- सत्व पित्तघ्न व रसायन कर्म में प्रभावी।
आमलकी :- पित्तघ्न।
शतावरी :- त्रिदोषघ्न।
त्रिदोषघ्न व बल्य चिकित्सा:
वसंत कुसुमाकर, रसायन त्रिदोषघ्न।
खंडुचक्का - पित्तसारक।

व्रणरोपण, व्रणशोधन व बल्य पित्तसारक पित्तघ्न आदि समस्त औषधि पित्तनिसारक, पित्तवाहक, आमाशय में स्थित अभिष्यंद को कम करने वाले व त्रिदोषघ्न होने के कारण चिकित्सा के समय वात, पितघ्न व बल्य चिकित्सा पर बल दिया गया। अतः शतावरी, गुलवेल सत्व, वसंतकुसुमाकर, आमलकी, अर्जुन आदि घी के अनुपान के साथ सुबह शाम लेने की सलाह रुग्ण को दी गयी। अर्जुन चूर्ण तथा खंडुचक्का के पत्ते के रस के मिश्रण का लेप व्रण पर लगाया। लेप असरदार सिद्ध हुआ। दस दिनों में ही व्रण के निशान मिट गए। त्वचा प्राकृतिक रूप में दिखायी देने लगी।

शस्त्रक्रिया द्वारा त्वचा रोपण जहां निष्प्रभावी रहा वहां अर्जुन चूर्ण व खंडुचक्का वनस्पति, प्रभावी सिद्ध हुई।

व्रंण शोधन व व्रण रोपण का असरदार कार्य, इस वनस्पति की विशेषता आंकी गयी ।

चन्द्रपुर के राष्ट्रीय वन क्षेत्र ताडोबा जंगल में खंडुचक्का वनस्पति विपुल मात्रा में उपलब्ध है । इस वनस्पति की असरदार उपयोगिता. से प्रभावित वन विभाग ने बड़े पैमाने पर खंडुचक्का रोपण अभियान को प्राथमिकता दी है जो सराहनीय है ।

चन्द्रपुर-गडचिरोली जिला आदिवासी बहुल क्षेत्र है । घने जंगलों में निवासस्थ आदिवासी लोग दुर्घटना में घावों पर खंडुचक्का के पत्तों के रस का उपचार करते हैं । गहरे घावों पर असरदार लेप का वे आत्मविश्वास के साथ उल्लेख करते हैं । आयुर्वेद चिकित्सक इस वनस्पति की उपयोगिता एवं अनुकूल परिणाम का गहनता से अध्ययन अवश्य करें ।

खंडुचक्का वनस्पति का विश्लेषण :-

कुल :- निर्गुंडी कुल

नाम :- करी, मंडी, भाण्ड, माण्डीर ।

CLERODENDROMIN FOR TUMNATHUM

व्यावहारिक नाम :- खंडुचक्का ।

वर्ग :- क्षुप

खंडुचक्के का नाजुक पौधा 3,4 फुट ऊँचा होता है । पत्ते आकार में बड़े एवं गोलाकार, डंटल लंबे होते हैं । टहनी के अंतिम छोर पर फूल लगते हैं । स्वाद में कड़वा तथा पत्ते चदबुदार होते हैं ।

गुणधर्म :- कड़वा धर्मीय शैथिल्य नाशक, अग्निमांद्य नाशक, अनुलोमक, पित्त निसारक, कृमिघ्न व ज्वरघ्न चिरायता वनस्पति गुणों से युक्त है ।

उपयोग :- तृतीय व चातुरिक ज्वर एवं कृमि पर खंडुचक्के के पत्तों का रस लाभकारी है । इस रस की बस्ति से पेट में स्थित कीड़े समाप्त हो जाते हैं । अतिसार, उदरशूल से निजात के लिए इस पौधे की जड़ का चूर्ण दिया जाता है । त्वचा व कुष्ट रोगियों के लिए भी यह चूर्ण लाभकारी है । मात्रा रुग्ण की अवस्थानुसार 250 मि.ग्राम से 1 ग्राम चूर्ण लेना चाहिए ।

स्रोत मामित्व :-

दोष :- पित्त, पित्तसारक ।
धातु :- मेद, अस्थिमज्जा, गामी ।
मल :- पुरीष ।

आदिवासी लोगों का दृढ विश्वास है कि खंडुचक्का के पत्ते तथा पत्तों का रस अस्थि भंग, जखम तथा गहरे घावों पर प्रभावी उपचार है । यह वनस्पति अस्थि मज्जागामी है । अत: टूटी हड्डियाँ जोड़ने का गुणधर्म, सत्यता की कसौटी पर खरा उतरता प्रतीत होता है । हमने व्रण रोपण के लिए वनस्पति का उपयोग किया है । मेरा मानना है कि इस वस्नपति का गहन संशोधन, चिकित्सा में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेगा ।

(डॉ० गो०वा० अंदनकर)
कात्यायनी रुग्णालय, बालाजी वार्ड,
पठाणपुरा रोड, चन्द्रपुर

बैद्यनाथ
पंचसकार चूर्ण
यह चूर्ण पेट साफ करता है तथा पाचन शक्ति और भूख बढ़ाता है। इससे पेट के कृमि भी दूर होते हैं।

आपके पत्र

केरल पैटर्न पर आयुर्वेद विकास

(चिकित्सा एवं स्वास्थ्य पर्यटन की सम्भावनाएँ)

सेवा में,
श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना-800 001

महाशय,

जब अलग उत्तरांचल राज्य की स्थापना का सपना देखा गया तब राज्य समर्थक एवं विरोधियों के मन में यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से आता था कि राज्य बनने के आर्थिक स्रोत क्या होंगे । तब बुद्धिजीवी वर्ग एवं आम जन हमेशा बड़े आत्म विश्वास के साथ यह कहते थे कि जल, जंगल और पर्यटन हमारे आर्थिक स्रोत होंगे । लगभग सभी वर्ग इस राज्य के पक्षधर एवं विरोधी इस बात पर सहमत हो जाते कि जल से असीमित ऊर्जा भंडार, जंगलों से असीमित जड़ी-बूटियों का भण्डार एवं पर्यटन से हमारा राज्य आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न राज्य होगा ।

आर्थिक एवं सांस्कृतिक समृद्धि के उपरोक्त तर्क सही थे क्योंकि इन स्रोतों से आर्थिक सम्पन्नता आना स्वाभाविक था । आज विश्व में 50 मिलियन डॉलर का जड़ी-बूटी बाजार है । चीन की इस में सर्वाधिक भागीदारी है क्योंकि उसने अपनी पारम्परिक चिकित्सा पद्धति को विकसित कर यह ऊँचाई पायी । पर्यटन को विकसित करने वाले देश आज आर्थिक एवं सांस्कृतिक रूप से सम्पन्न हैं । पर्यटन के क्षेत्र में आध्यात्मिक, साहसिक, ऐतिहासिक, क्रीड़ा एवं स्वास्थ्य पर्यटन आदि क्षेत्र हैं । परन्तु इधर वर्तमान समय में स्वास्थ्य पर्यटन के क्षेत्र में सर्वाधिक प्रगति हुई है । विश्व स्तरीय होटलों, पांच सितारा होटल जो कि अब तक मात्र स्पा तक ही सीमित थे, अब आयुर्वेदिक मसाज, पंचकर्म चिकित्सा को अपने पैकेज में शामिल कर चुके हैं जिससे उनकी आमदनी में कई गुनी वृद्धि हुई है । बड़ी-बड़ी मल्टी नेशनल फार्मेसी आयुर्वेदिक एवं हर्बल प्रोडेक्ट बनाने में जुटी है तथा कई बड़े व्यवसायी हैल्थ रिजार्ट के क्षेत्र में कूद पड़े हैं जिससे इन देशों एवं प्रदेशों की सरकारों को भी काफी धन कर के रूप में प्राप्त हो है । उत्तरांचल राज्य में आज भी उपरोक्त संभावनाएं हैं । जो सोच उत्तरांचल राज्य की आर्थिक स्रोतों के उ०प्र० के अलग होने के समय थी, उन्हीं आर्थिक को आधार बनाकर केरल राज्य भी तमिलनाडु से राज्य बनाया गया था । केरल राज्य द्वारा पर्यटन एवं रूप से आयुर्वेद के द्वारा स्वास्थ्य पर्यटन एवं आयुर्वेद आम जनता की चिकित्सा बनाकर इसके द्वारा जड़ी-बूटि के संरक्षण, सम्वर्द्धन, विपणन के द्वारा केवल भारत ही अपितु विश्वस्तर पर स्वास्थ्य पर्यटन के केन्द्र के रूप स्थापित किया है ।

इस राज्य ने अपने को विश्वस्तर पर कैसे किया उसके लिए इसके अतीत में जाना अति है । केरल भी उत्तरांचल की तरह तमिलनाडु से सांस्कृतिक पहचान एवं जड़ी-बूटी आयुर्वेद एवं पर्यटन आर्थिक सम्पन्नता की सोच को लेकर अलग हुआ इन्हीं साधनों को विकसित करता हुआ आज शिक्षा, एवं अन्य क्षेत्रों में आगे निकला ।

भौगोलिक समानता :-

उत्तरांचल राज्य की तरह राज्य में पर्यटन स्वास्थ्य पर्यटन आदि क्षेत्रों के अतिरिक्त यहां सरकारी/प्राइवेट रोजगार के अवसर बहुत कम हैं उत्तरांचल की तरह ही यहां से बहुत संख्या में अन्य राज्यों एवं देशों में रोजगार हेतु में हैं । यहां पर लोगों की संख्या अधिक है तथा सर्वाधिक रोजगार राज्यों एवं केरल में भी स्वास्थ्य के क्षेत्र में विशेष प्रशिक्षित है ।

उत्तरांचल राज्य की तरह केरल भी एक राज्य है । राज्य में 14 जिले हैं । इस राज्य की तरह में पेड़-पौधे, हरियाली अधिक हैं तथा औषधि-पौधों अधिकता है ।

आध्यात्मिक समानता :-

केरल राज्य की तरह विशेष रूप से आदि शंकराचार्य जी का जन्म स्थान कलाडी जो कि आध्यात्मिक केन्द्र है जो पूरे भारतवर्ष के लिए श्रद्धा का केन्द्र है । आदि शंकराचार्य जी द्वारा 4 दिशाओं में से उत्तर में ब्रदीनाथ मंदिर में सांस्कृतिक एकता के रूप में सदैव एकता के रूप में रावल केरल के नम्बूदरी समुदाय से ही होता है । इसलिए केरल का बुद्धिजीवी एवं आध्यात्मिक वर्ग अपने को उत्तरांचल से जुड़ा हुआ मानता है ।

करेल में आयुर्वेद के आदि प्रवर्तक भगवान धन्वन्तरि का ऐतिहासिक मंदिर स्थापित है, यहाँ पर आम जनता एवं आयुर्वेद प्रेमी अच्छे स्वास्थ्य की कामना करते हैं ।

जड़ी-बूटी की अधिकता:-

उत्तरांचल राज्य की तरह केरल राज्य में भी जड़ी-बूटियों की प्रचुरता है । औषधीय पौधों के संरक्षण सम्बर्द्धन, विपणन सरकारी स्तर पर है । जड़ी-बूटियों की यहाँ पर इतनी अधिक खपत है कि काफी उत्पादन के बाद भी दूसरे राज्यों से जड़ी-बूटियां मंगायी जाती है । औषधीय पौधों के सम्बर्द्धन एवं जानकारी हेतु राष्ट्रीय जवाहर लाल नेहरू व्रास्पतिक संस्थान त्रिवेन्द्रम् एवं आयुर्वेदिक (आइ०एस०एम०) का पूरा सामंजस्य होने से इस संस्थान से औषधीय पौधों के कई एकड़ जमीन में आयुर्वेदिक ग्रन्थों में वर्णित औषधीय पौधों की वर्गो के अनुसार कल्टीवेट किया गया है । जिसमें जीवनी गण, अष्ट वर्ग, दशमूल की औषधियाँ आदि एक ही स्थान पर उत्पादित की जा रही हैं । संदिग्ध या अप्राप्त औषधीयों पौधों के स्थान पर अन्य औषधियों को समान गुणों के आधार पर प्रयोग किया जाता है और पूरे राज्य में वानस्पतिक विशेषज्ञों के साथ ही आयुर्वेद विशेषज्ञ भी एक नाम से उस औषधि को प्रयोग करते हैं । जिसमें मुख्य रूप से ब्राह्मी, शंखपुष्पी एवं दारू हरिद्रा आदि औषधियां हैं जो उत्तर भारत में इस नाम से दूसरी औषधियां प्रयुक्त की जाती है ।

पर्यटन :-

केरल पर्यटन के लिए सांस्कृतिक, भौगोलिक एवं उपर्युक्त जलवायु के कारण आर्कषण का केन्द्र है । परन्तु काफी वर्षो से आयुर्वेद के साथ ही इसने स्वास्थ्य पर्यटन में बहुत बड़े उद्योंग का स्थान प्राप्त किया है । देश-विदेश से लोग कई आयुर्वेदिक रिर्जोट में (सरकारी एवं गैर सरकारी) स्वास्थ्य लाभ हेतु आते हैं । अधिक ठहराव के कारण यहां देशी-विदेशी पर्यटकों से स्थानीय लोगों को काफी रोजगार एवं आय होती है । यहां पर पंचकर्म चिकित्सा पर्यटक एवं रोगी एक सप्ताह से लेकर 3-4 माह तक स्वास्थ्य लाभ हेतु रुकते हैं ।

औषधि निर्माण :-

जड़ी-बूटी की अधिकता एवं आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रति आम जनता एवं पर्यटकों का लगाव होने से सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्र में आयुर्वेदिक औषधियों की बहुत अधिक माँग है । औषधियों में मुख्य रूप से चूर्ण, कषाय (क्वाथ), आयुर्वेदिक तैल, आयुर्वेदिक ग्रित, आसव, अरिष्ट, काफी मात्रा में प्रयुक्त होते हैं जिसे सरकारी एवं गैर सरकारी क्षेत्र की फार्मेसी निर्माण करती है । सामान्यत: कॉलेज चिकित्सालय आयुर्वेदिक हेल्थ रिर्जोट अपनी आवश्यकता के अनुसार औषधि स्वयं निर्माण करती है । जिससे उनकी गुणवत्ता बहुत अच्छी मानी जाती है । बड़े स्तर की फार्मेसी में आर्यवेधशाला कोटाकल, एस०एन०ए० फार्मा, नार्गाजुन, श्रीराम, सीताराम, वैधरत्नम आदि फार्मेसी के भ्रमण के दौरान उनकी आर०एण्ड डी० एवं क्वालिटी कन्ट्रोल यूनिट के देखने से उनकी गुणवत्ता का उत्तम होना स्वाभाविक है । आर्य वेधशाला का केवल एक वर्ष का शुद्ध लाभ 95 करोड़ रुपया है । सरकारी फार्मेसी में मुख्य "औषधि" है जिसका सालाना टर्न ओवर 25 करोड़ रु० है ।

आयुर्वेदिक चिकित्सा का ढाँचा :-

केरल राज्य में आयुर्वेद के विकास में पूर्व सरकार, अष्ट वैद्य परम्परा से गुरु शिष्य परम्परा एवं वर्तमान में वहां की सशक्त शिक्षण संस्थानों का महत्वपूर्ण योगदान है । जिनमें आयुर्वेदिक स्नातकों को विशिष्ट ज्ञान आयुर्वेद के विद्वानों द्वारा प्राप्त होता है । सरकारी क्षेत्र में केन्द्र

सरकार की एवं राज्य सरकार की संस्थाएं हैं । केन्द्र सरकार द्वारा केरल में आयुर्वेद के विकास एवं शोध हेतु मुख्य रूप से सी०आर०आई० केन्द्रीय अनुसंधान संस्थान (चिरूथूरती), आर०आर०आई० कोट्टकल, आर०आर०आई० त्रिवेन्द्रम है । इसमें सी०आर०आइ० जो कि पूर्व में आई०आई०पी० के नाम से जाना जाता था विशिष्ट रूप से पंचकर्म चिकित्सा का शोध एवं प्रशिक्षण संस्थान है । इस संस्थान की विशिष्टता इसके दैनिक रोगियों से ही समझी जा सकती है । जहाँ प्रतिदिन लगभग 300-400 रोगी ओ०पी०डी० में देखे जा सकते हैं । लगभग 100 रोगी अन्तरंग विभाग में भर्ती रहते हैं जिसमें पक्षाघात (पेरेलाइसिस) आदि जीर्ण एवं गंभीर रोगियों का उपचार किया जाता है ।

राज्य सरकार द्वारा केरल में आयुर्वेद की चिकित्सीय सेवाएं ग्राम पंचायत से लेकर जिला स्तर तक एक सुदृढ़ नेटवर्क की तरह कार्यरत है । प्रत्येक ग्राम पंचायत स्तर पर एक आयुर्वेदिक चिकित्सालय स्थापित है । इसमें एक महिला एवं एक पुरुष चिकित्साधिकारी कार्यरत हैं । तालुका स्तर पर 25 बेड का चिकित्सालय है जिसमें वरिष्ठ चिकित्सक अधिकारी सहित 2 अन्य चिकित्साधिकारी का पद सृजित है । जिला स्तर पर 50 एवं कहीं पर 100 बेड का जिला आयुर्वेदिक चिकित्सालय है जिसमें मुख्य चिकित्साधिकारी (सी०एम०ओ०) आई०एस०एम० एवं 6 विशेषज्ञ चिकित्साधिकारी पंचकर्म, अगद एवं विष विज्ञान, मानसिक रोग, मर्म एवं बाल रोग के अधिकारी के पद सृजित हैं ।

जिला स्तर पर डी०एम०ओ० (आई०एस०एम०) पूरे जिले के अधिकारी होते हैं । निदेशालय स्तर पर उप निदेशक एवं अपर निदेशक तथा निदेशक के पद हैं ।

उपरोक्त सभी चिकित्सालयों में ग्राम पंचायत स्तर से जिला स्तर तक पंचकर्म चिकित्सा विशिष्ट चिकित्सक के रूप में उपलब्ध कराई जाती है । सरकारी क्षेत्र में प्रसिद्ध मानसिक रोग चिकित्सालय कोट्टकल में स्थापित है जहाँ मानसिक रोगियों का आयुर्वेदिक उपचार किया जाता है ।

गैर सरकारी क्षेत्र में आयुर्वेदिक चिकित्सा का केरल तथा पड़ोसी राज्यों में जाल-सा बिछा हुआ है । ये संस्थान चिकित्सा, शिक्षा, फार्मेसी, शोध, हरबल गार्डन के कार्य एक साथ करते हैं । कुछ प्रसिद्ध संस्थान जिनमें श्रीधरयम् नेत्र चिकित्सालय जो कि 300 बेड का आयुर्वेदिक नेत्र चिकित्सालय है । वैद्य रत्नम् आर्य वैद्यशाला, त्रिवें मर्म हास्पिटल जिसमें फ्रेक्चर आदि की चिकित्सा आयुर्वेदिक विधि से की जाती है ।

अधिकतर संस्थानों में जलौंका एवं अग्निकर्म का भी काफी प्रयोग किया जाता है । इसमें कई रोगों में बहुत अधिक लाभ होता है । पर्यटन विभाग द्वारा आई०एस०एम० विभाग से पूर्ण तालमेल होने से पर्यटन विभाग सभी रजि० आयुर्वेदा/पंचकर्म सेन्टर की सूचना इंटरनेट द्वारा आनलाइन पर्यटकों को उपलब्ध कराता है ।

3 माह के केरल प्रवास में प्रशिक्षण के साथ ही लगभग आयुर्वेद/पंचकर्म के सभी सरकारी गैर सरकारी संस्थानों का भ्रमण भी किया है जो कि प्रशिक्षण का हिस्सा था । उक्त प्रशिक्षण हेतु हमें भेजे जाने के लिए हम उत्तरांचल शासन, यू०ए०एच०एस०डी०पी० एवं आयुर्वेदिक विभाग के आभारी हैं ।

उत्तरांचल में सम्भावनाएँ :-

दोनों राज्यों में काफी समानताएं होने से उत्तरांचल में भी केरल की तरह आयुर्वेदिक चिकित्सा को स्थापित किया जा सकता है जिसके लिए निम्न प्रयास किये जाने आवश्यक होंगे ।

1. विभिन्न जड़ी-बूटी के कृषिकरण, संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु राष्ट्रीय स्तर के वानस्पतिक संस्थानों जैसे-एन०बी०आर०आई०, सी०एम०ए०पी०, एफ०आर०आई० से आयुर्वेदिक ग्रन्थों में वर्णित औषधीय पौधों की **पहचान कर** संरक्षण एवं सम्बर्द्धन हेतु नीति बनाई जाय । राज्य मैडिसिनल प्लांट बोर्ड में आयुर्वेदिक विभाग को तकनीक विभाग के रूप में सम्मिलित किया जाए तथा जड़ी-बूटी शोध संस्थान गोपेश्वर को

इसके पूर्व स्वीकृत रूप में ही विकसित किया जाए ।

2. प्रत्येक आयुर्वेदिक चिकित्सालय में पंचकर्म चिकित्सा ओ०पी०डी०/इन्डोर स्तर पर शुरू की जाय तथा इस हेतु चिकित्साधिकारियों के अतिरिक्त फार्मेसिस्ट एवं अन्य स्टॉफ को भी प्रशिक्षण दिया जाय ।
3. प्रत्येक आयुर्वेद चिकित्सायल को औषधि गार्डन तथा स्थानीय स्तर पर उपलब्ध औषधियों को ग्रामीणों के सहयोग से चिकित्सालय स्तर पर प्रयुक्त होने वाली औषधियों को चिकित्सालय में ही बनाया जाय । इस हेतु प्रत्येक चिकित्सालय को कुछ अतिरिक्त बजट एवं स्टॉफ देकर मिनीफार्मेसी स्थापित की जा सकती है ।
4. पर्यटन विभाग से सामन्जस्य कर पर्यटक आवासों में पंचकर्म चिकित्सा उपलब्ध कराई जाय । साथ ही जिन चिकित्सालयों में पंचकर्म चिकित्सा उपलब्ध हो उन्हें पर्यटक मानचित्र, साइन बोर्ड एवं वैबसाइट के माध्यम से ऑनलाईन किया जाय ।
5. जिला स्तर पर शल्य चिकित्सा, पंचकर्म चिकित्सा, बाल रोग, स्त्री रोग, काय चिकित्सा, विशेषज्ञ चिकित्सा उपलब्ध करवाई जाय तथा सभी जिलों एवं राजधानी में कम से कम 30 बेड के चिकित्सालय खोले जायें ।
6. चिकित्सा संवर्ग हेतु वरिष्ठ चिकित्साधिकारी, वरिष्ठ चिकित्सा अधीक्षक, मुख्य चिकित्सा अधीक्षक एवं जिला स्तर पर कार्यरत अधिकारी का नाम मुख्य चिकित्सा अधिकारी (आयुष) किया जाय ।

उपरोक्त पद नाम देने से शासन पर कोई भी वित्तीय भार नहीं पड़ेगा क्योंकि उत्तरांचल में अधिकारी उच्च वेतनमान में पहले से ही कार्यरत हैं तथा आयुष विभाग का ढाँचा भी उपरोक्त ही है ।

7. चिकित्सा अधिकारियों को औषधीय पौधों की जानकारी देने हेतु उच्च औषधीय पौधे से सम्बन्धित संस्थानों में प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जानी चाहिए । स्थानीय स्तर पर पाये जाने वाले औषधीय पौधों का उपयोग किया जा सके ।

आभार :-

1) यू०ए०एच०एस०डी०पी० उत्तरांचल देहरादून ।
2) आयुष विभाग उत्तरांचल, देहरादून ।
3) निदेशक, आयुर्वेदिक सेवाएं उत्तरांचल देहरादून ।
4) सी०आर०आई० (आयु० चिरथूरुती केरला) ।
5) डॉ०के० सुदर्शन, सी०एम०ओ० जिला चिकित्सालय त्रिशूर केरला ।
6) डॉ०के०बाला सूब्रामाण्यम्, सी०आर०आई०, केरला ।
7) डॉ० वी०सी० दीप, रिसर्च ऑफिसर, सी०सी०आर० आई०, केरला ।

भवदीय

डा०जे०एन० नौटियाल

बी०ए०एम०एस० (लखनऊ), डी० योगा,
सी०आर०टी० पंचकर्मा (आयुष),
सी०आर०टी० पंचकर्मा (केरला),
चिकित्साधिकारी, राज्य आयुर्वेदिक सेवाएं, उत्तरांचल ।

उत्तर प्रदेश

बधाई स्वीकार करें

सेवा में,

श्रीयुत् सम्पादक
सचित्र आयुर्वेद
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०,
पटना-800 001

द्वारा,

(डा० राकेश मोहन शर्मा)
चिकित्साधिकारी/सचिव
राजकीय आयुर्वेदिक चिकित्सालय
वरई शाहपुर, हाथरस

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा आयुर्वेद-यूनानी एवं होम्योपैथी सचिव पद पर प्रथम बार नियुक्ति होने पर मेरी तथा जनपद इकाई हाथरस की तरफ से श्री राजेन्द्र कुमार तिवारी, आई.ए.एस. को हार्दिक बधाई प्रेषित की है और आशा प्रकट की है कि आयुर्वेद उन्नति के पथ पर अग्रसर होगा ।

आरोग्य समाचार
अखबार की कतरनों से

Heat maps for early detection of breast cancer

BREAST CANCER is one of the leading causes of cancer death in women. According to the International Agency for Research on Cancer. more than one million women suffer from this type of cancer and more than 0.4 million deaths have occurred because of this type of cancer (http://www-dep.iarc.fr/.)

In India about 2.0 to 2.5 million patients suffer from cancer at any given time. According to the national Cancer registry program of ICMR (source : http://www.canceratlasin-dia.org) breast has replaced the cervix as the leading site of cancer in all urban population based cancer registries except Chennai.

Researchers have established that the key to breast cancer survival rests upon its earliest possible detection. If discovered in its earliest stages, 95 percent cure rates are possible.

Higher sensitivity

Hence, any diagnostic technique that shows promise of higher sensitivity and /or earlier risk factor assessment capability needs to be pressed into service, along with the other classical techniques, for the fight against this form of cancer.

Currently, the most widely used method for detection of breast cancer is mammography and self breast examination.

A well-researched imaging tool that has been used for the detection of breast cancer in the western world is Breast Thermography (BT).

Thermography, also called thermal imaging or infrared imaging, is an advanced non-in-vasive techniques based on mapping the temperature profiles on the surface of an object.

The technique is widely used in the industries as a predictive condition management tool.

Temperature as an indicator of human health is quite ancient and has been reported to have been practiced by Hippocrates himself.

Thermography as a medical imaging tool is based on the fact the body exhibits bilateral thermal symmetry.

Any local chages or problems manifest as anisothermia or inequality in temperature. Utilising sensitive infrared imaging cameras and appropriate image processing, the heat from the body can be detected, processed and recoreded as skin surface temperature image map.

This image can then be analysed by the medical practitioner to determine if abnormally hot or cold areas are present and relate it to possible disorders.

In general. it has been indicated that thermography is helpful in the diagnosis of arthritis. vascular disorders and soft tissue injuries. pain syndromes, nervous system disorders, metabolic disorders[repetitive strain injuries, headaches, neck and back problems.

In the application of IR imaging for breast cancer, it was the Canadian breast surgeon, Ray Lawson, working at the Royal Victoria Hospital Montreal in 1957, who used pictorial heat scanning medically.

He had demonstrated that certain concers of the breast exhibited a rise in the overlying skin temperature. and he argued that if one could scan the chest thermally one might be able to detect these cancers at an early stage.

Breast thermography has undergone extensive research since the late 1950s and in 1982, the U.S. FDA approved breast thermography (infrared imaging) as an adjunctive diagnostic breast cancer screening procedure.

In India, the Indira Gandhi Centre for Atomic Research (IGCAR) along with the Department of Atomic Energy Hospital at Kalpakkam has taken the lead in the application of thermal imaging for detecting breast lesions.

Lesions can be cancerous of non cancerous.

Through thermography one can differentiate between cancerous and non-cancerous lesions by quantitatively analysing the thermal image. Cancerous lesions in general exhibit higher temperature and have irregular edges.

Specific. Protocols have been developed for clinical thermal imaging. Extensive experiments were conducted preliminarily to study the effect of skin texture, skin colour on emissivity, a parameter that effects temperature measurement.

More than 15 patients had been subjected to thermal imaging of which six were for breast lesions.

Analysed in detail

The resulting thermal images were analysed in detail. The results obtained from thermography correlated well with the established imaging modalities and confirmed by fine needle aspiration cytology.

Findings from thermal images compared well with the images obtained through complementary imaging modalities confirming the sensitivity and capability of the technique for detecting breast lesions.

It should be highlighted here that though this technique is being practiced abroad both in Europe and the United state it is yet to find its acceptance in the Indian medical community. Internationally. since the late 1970s, numerous medical centres and independent clinics have used thermography for a variety of diagnostic purposes.

Continued advances

Reviews conducted by various researchers using a large database of patients have shown that thermography has an average sensitivity and specificity of 90 percent.

With continued technoligical advances in infrared imaging in the past decade, some studies are showing even higher sensitivity and specificity values.

Additional advantage

Breast thermography has an additional advantage of being a non-invasive, non-contact technique. It also does not require any radiological dosage.

A more systematic investigation is needed on the efficacy of use of BT in breast disease detection jointly by the medical and research community in the Indian context.

This technique will have a tremendous advantage in screening breast cancer and detecting it in the initial stages.

(Baldev Raj is Director, IGCAR; Dr. M. Jayashree in the Radiologist at DAE Hospital Kalpakkam; and B. Venkatraman is the Head, Quality Assurance Division, IGCAR)

(With Courtesy from the Hindu)

पान के पत्ते से कैंसर का इलाज

आम धारणा यह है कि पान खाने से मुंह का कैंसर होने की आशंका रहती है लेकिन अब वैज्ञानिकों ने उसी पान में ऐसा कंपाउंड खोज निकाला है, जो रक्त के कैंसर का उपचार कर सकता है ।

वैज्ञानिकों ने पान के पत्ते में एंटी ल्यूकेमिक कंपाउंड का आविष्कार किया है, जो श्वेत रक्त कणिकाओं पर चोट करने वाले क्रोनिक मायलायड ल्यूकेमिया को मार डालता है । इस प्रकार का कैंसर श्वेत रक्त कणों को मारता है । पान के पत्ते से निकले इस कंपाउंड की संरचना बिल्कुल क्लोरोजेनिक एसिड जैसी होती है जो कैंसर पैदा करने वाली कोशिकाओं को मारती है ।

(हिन्दुस्तान से साभार)

दिल की बीमारी के लिए मां ज्यादा जिम्मेदार

अभी तक यह माना जाता था कि परिवार में दिल की बीमारी का इतिहास होने पर भावी पीढ़ियों के इसकी चपेट में आने की आशंका ज्यादा होती थी । लेकिन नए शोधों से यह बात सामने आई है कि दिल की बीमारी पिता की बजाय मां से विरासत में मिलने का अंदेशा ज्यादा होता है ।

अमेरिकन जर्नल आफ प्रिवेंटिव मेडिसिन के जून अंक में प्रकाशित होने वाली शोध रिपोर्ट में खुलाया किया गया है कि पिता के बजाय हृदय रोग मां के बच्चों में जाने का खतरा ज्यादा होता है । यदि माता और पिता दोनों दिल के मरीज हैं तो यह खतरा कई गुना बढ़ जाता है । रिपोर्ट के कुछ अंश पिछले दिनों अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा न्यूयार्क में आयोजित एक मीडिया ब्रीफिंग में पेश किए गए । अभी हालांकि इस रहस्य से पर्दा नहीं उठ पाया है कि दिल की बीमारी के लिए पिता के बजाय मां ज्यादा जिम्मेदार क्यों होती है ।

स्टाकहोम में कारोलिंस्का इंस्टीट्यूट के सेन्टर

फार फामिली मेडिसीन विभाग में सहायक शोधकर्ता क्रिस्टीना सेंक्वीस्ट (एमडी पीएचडी) इस संबंध में कहना है कि जनिटिक फैक्टर की इसमें महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। उनके अनुसार एक और संभावना यह भी हो सकती है कि बच्चे अपनी माताओं के साथ अधिक समय बिताते हैं उनके मां को खान-पान की गलत आदतें ग्रहण करने की आशंका ज्यादा होती है।

सेंक्वीस्ट इस बारे में कहती है अगर हृदय रोगी मां धूम्रपान करती है उसकी शारीरिक गतिविधियां कम रहती हैं और यदि उसका खानपान पौष्टिक नहीं है तो यह व्यवहार उनके बच्चों को प्रभावित कर सकता है और उनके हृदय रोग की चपेट में आने का खतरा बढ़ जाता है।

इस शोध में आगे कहा गया है कि यदि पिता दिल का मरीज है तो बेटे के इस बीमारी की चपेट में आने की आशंका 41 फीसदी होती है और यदि मां इस बीमारी की शिकार है तो यह खतरा 55 फीसद हो जाता है। इसके विपरीत बेटी के मामले में यह प्रतिशत क्रमशः 17 और 43 फीसद का रहता है।

एमडी मेडिकल न्यूज की वेबसाइट पर सोमवार को जारी रिपोर्ट के अंशों के अनुसार ऐसे बच्चे जिनके माता-पिता दोनों हृदय रोग से ग्रस्त हैं उनके मामले में खतरा घन हो जाता है और अंदेशा 82 फीसदी तक पहुंच जाता है।

इतना ही नहीं ऐसे बच्चों के लिए खतरे की ज्यादा जोर से बजती है जिनके मां-बाप 55 साल की से पहले ही दिल की बीमारी के शिकार हो जाते हैं। कहती है कि ऐसे मामलों में खतरे का आंकड़ा 300 फीसदी हो जाता है।

सेंक्वीस्ट कहती हैं - जाहिर-सी बात है कि बच्चों पर ज्यादा ध्यान देने की जरूरत है जिनके मां-बाप में से किसी को दिल की बीमारी रही हो।

इन नतीजे पर पहुंचने के लिए सेंक्वीस्ट और उनके सहयोगियों ने स्वीडन के विभिन्न इलाकों के लोगों पर शोध किया जो 1932 पुरुषों और 3281 महिलाओं को शामिल किया गया जिनके माता या पिता को दिल की बीमारी थी। इसके बाद इनकी तुलना ऐसे हृदय रोगियों से की गई जिनके माता पिता दिल के मरीज नहीं थे।

इस नए शोध को उत्साहजनक बताते हुए के मायो क्लीनिक में वीमेंस हार्ट क्लीनिक की निदेशक शैरोन एन हेज ने कहा कि यह रिपोर्ट इस बात के महत्व को रेखांकित करती है कि दिल की बीमारी के लिए परिवार का इतिहास जानना जरूरी है।

(जनसत्ता से साभार)

बैद्यनाथ
अश्वगंधारिष्ट
मूर्च्छा, भय, घबराहट, अनिद्रा, मंदाग्नि आदि में लाभकारी

आयुर्वेद जगत् की गतिविधिया

Bihar

IPGA demands Biotech Park in Bihar

WITH a view to encourage pharmaceutical industry in the state, Indian Pharmacy Graduates' Association (IPGA) demanded immediate setting up of separate Pharmaceutical Industrial Area and Biotech Park, strengthening of Government Testing Laboratory and extension of purchase preference to local drug manufacturing units.

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, पटना के निदेशक, श्री प्रमोद शर्मा (दायें) औषधि-निर्माता, श्री नन्द किशोर प्रसाद के साथ परिलक्षित हैं ।

Speaking at Pharmatech Seminar-2006, organised by IPGA at Bihar Chamber of Commerce, Sripati Singh, General Secretary said despite the phenomenal growth witnessed in the pharmaceutical sector, second only to the IT sector, Bihar produces drugs worth Rs. 100 crore only against an estimated consumption of Rs. 800 crore.

Even the number of drug manufacturing units is pegged at 250 which is quite dismal compared to over 9,000 units engaged in the production of medicines worth Rs. 40,000 crore in the country.

In such a lopsided situation, a concerted effort was required to give a boost to the fledgling pharmaceutical sector, invite fresh investments and also tone up pharmacy education with a view to create a pool of technical manpower, he said.

In his inaugural address PP Sharma, National President of IPGA, stressed on the need to introduce changes in the production process, by following Good Manufacturing Practices and Good Pharmacy Practices, to ensure that quality medicine, as per their standardization, are produced. This, coupled with good distribution and storage practices, would help in safeguarding the efficacy of the drugs, he added.

The state drug controller and vice president of IPGA, YK Jaiswal in his welcome address said the Indian Pharmaceutical Association and Indian Drug Manufacturer's Association should submit a proposal for the declaration of Bihar as a Special Economic Zone to the state government so that it may be able to take up the matter with the Centre.

Shri Pramod Sharma, Director of Baidyanath Ayurved Bhawan, the only local company to have a national presence, also said that removal fo central excise duty was necessary for the growth of pharmaceutical industry in Bihar.

AK Nasa, National General Secretary, IPGA, Dr. Sanjay Singh and DCP Singh also addressed over 300 delegates drawn from different parts of the state.

THE NEW OFFICE BEARER OF I.P.G.A., BIHAR

The Annual General Body Meeting of the Indian Pharmacy Graduates' Association, Bihar State Branch was held on 12th March' 06 at The Bihar Chambers of Commerce, Patna under the presidentship of Sri P.P. Sharma, The National president of the association.

श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा० लि०, पटना के निदेशक, श्री प्रमोद शर्मा (बायें) चिन्तन की मुद्रा में परिलक्षित हैं ।

The election of the office bearers for the next term i.e. 2006-2008 was held. Sri A.K. Nasa, the Gen. Secretary, Central Executive Committee was the returning officer for the elections.

भूतपूर्व क्षेत्रीय अनुज्ञप्ति अधिकारी, श्री जगजीत सिंह 'भवन' के निदेशक, श्री प्रमोद शर्मा का स्वागत फूल-माला से कर रहे हैं ।

The election for all the posts was unanimous. The newly elected office bearers are as follows :

PRESIDENT : Y. K. Jaiswal.
VICE PRESIDENT : Ch. V. Subba Rao
GEN. SECRETARY : S.P. Singh
JT. SECRETARY : S.K. Singh Shastradhar.
TREASURER : Hemant Kumar
MEMBERS : N.K. Prasad
Madhusudan Kumar
Satish Kumar Singh
Sunil Kumar Sinha
Ranjit Kumar

The immediate past president Sri Sangit Kumar Sinha, Jt. Secretary, Sri D.K. Trivedi and treasurer Sri Ghanshyam Bhagat will be the permanent invitee members for the E.C.

Sri S.P. Singh and Sri N.K. Prasad were nominated as the nominee from the State Branch for the Central Executive Committee.

Besides other things, it was resolved that the Bank Accounts will be operated by any two of the newly elected president/Gen Secretary/ Treasurer.

After the elections, the HOLI MILAN SAMAROH was held. Guests enjoyed the samaroh with THANDHAI and RANG-GULAL with large number of members who attended the meeting.

The meeting concluded with vote of thanks delivered by Sri N.K. Prasad.

अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन शताब्दी वर्ष समारोह के क्रम द्वितीय कार्यक्रम पटना में धूमधाम से सम्पन्न

इन दिनों अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का शताब्दी वर्ष समारोह देश के विभिन्न हिस्सों में धूमधाम से मनाया जा रहा है । इसी समारोह के क्रम में 27 अप्रैल, 2006 को बिहार की राजधानी, पटना स्थित भारतीय नृत्य कला मन्दिर के विशाल सभाकक्ष में द्वितीय कार्यक्रम धन्वन्तरि वन्दना के साथ प्रारम्भ हुआ । कार्यक्रम संचालन के गुरूतर भार का निर्वाह प्रख्यात् आयुर्वेदज्ञ एवं निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ के अध्यक्ष, वैद्य श्री शिव **कुमार मिश्र** ने किया । अपनी ओजस्वी वाणी एवं कार्यक्रम-संचालन-दक्षता के कारण वे समारोह में छाये रहे । धन्वन्तरि-वन्दन के पश्चात् मंच पर उपस्थित गणमान्य व्यक्तियों ने दीप-प्रज्जवलन के द्वारा समारोह का श्रीगणेश किया । राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय पटना के छात्राओं ने डा० पूनम एवं डा० नीतू के नेतृत्व में स्वागत-गान किया । श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना के प्रबन्ध निदेशक, पं० श्री बनवारी लाल शर्मा की ओर से श्री विमल चन्द्र झा ने पाटलिपुत्र की पावन भूमि पर पधारे भारतवर्ष के विभिन्न दिशाओं से आये हुए अतिथियों का स्वागत निम्नलिखित शब्दों में किया - आज हम अत्यन्त आह्यलादित हैं कि प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, बिहार एवं प्रादेशिक आयुर्वेद सम्मेलन झारखण्ड के संयुक्त तत्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय आयुर्वेद सम्मेलन, नई दिल्ली निखिल भारतवर्षीय आयुर्वेद विद्यापीठ, नई दिल्ली के

संयुक्ताधिवेशन एवं ज्ञान कल्याण दातव्य न्यास के अलंकरण समारोह के पावन अवसर पर पधारे विशिष्ट अतिथियों एवं विद्वान् प्रतिनिधियों का सादर स्वागत करने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है ।

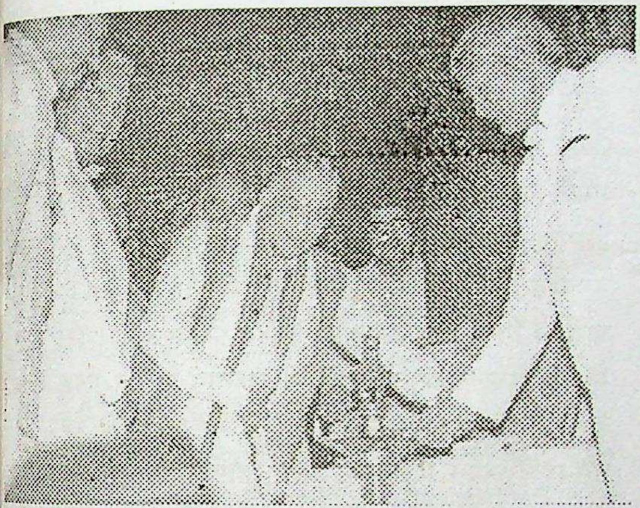

बिहार के मुख्यमंत्री, श्री नीतीश कुमार दीप-प्रज्जवलित करते हुए दिखायी दे रहे हैं । सामने भारत के भूतपूर्व मानव संसाधन मंत्री, डा० मुरली मनोहर जोशी प्रसन्नचित मुद्रा में दृष्टिगोचर हो रहे हैं ।

हम कृतज्ञ हैं डा० मुरली मनोहर जोशी के जिन्होंने अपना बहुमूल्य समय यहां आने में दिया है । हम कृतज्ञ हैं माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार के, जिनके कुशल नेतृत्व में बिहार आगे बढ़ने के लिए कृत संकल्प है । हम आभारी हैं माननीय श्री सुशील कुमार मोदी के, जो उप मुख्यमंत्री के गुरूतर पद का निर्वाह कर रहे हैं । हम आभारी हैं माननीय श्री चन्द्रमोहन राय के जो बिहार सरकार में स्वास्थ्य चिकित्सा शिक्षा एवं परिवार कल्याण विभाग को संभाल रहे हैं । हम आभारी हैं पद्मश्री श्री देवेन्द्र त्रिगुणा जी के भी जो योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं एवं जिन्होंने अपनी अल्प आयु में ही काफी यश अर्जित किया है । हम आभारी हैं डाबर के माननीय निदेशक, श्री नितिनं घिरियार गतिशील अध्यक्ष, वैद्य अलख नारायण सिंह, वैद्य राम गोपाल मिश्र, वैद्य हरिहर प्रसाद पाण्डेय एवं बिहार, झारखण्ड राज्य के कोने-कोने से आये सैकड़ों प्रतिनिधि-विद्वानों के भी जिन्होंने इस सम्मेलन में शामिल होने की कृपा की है ।

आज बिहार एवं झारखण्ड राज्य संकट के दौर से गुजर रहा है । बिहार राज्य की स्थिति तो अत्यन्त दयनीय है । प्राध्यापकों को समय पर वेतन नहीं मिलते हैं । आयुर्वेदिक महाविद्यालयों के भवन अत्यन्त जर्जर अवस्था में हैं । कई महाविद्यालयों को तो अपना भवन भी नहीं है । अस्पतालों में शैय्या एवं औषधि का अभाव है । सर्वत्र लालफीताशाही है । एक तो बिहार राज्य में उद्योगों का अभाव है और जो है भी उनकी स्थिति भी खराब है । सरकारी नीति भी इनके लिए जिम्मेवार है । आश्चर्य है कि आयुर्वेदिक औषधि निर्माताओं के साथ व्यवहार शराब उद्यमियों की तरह किया जा रहा है । इस संबंध में विस्तार से सम्बन्धित वक्ता आप लोगों का ध्यान आकृष्ट करेंगे एवं पीड़ित उद्यमी स्मृति-पत्र भी देंगे ।

आज सम्पूर्ण विश्व में औषधीय पादपों की (मेडिसिनल प्लान्ट्स) की जबरदस्त मांग है । चीन हमसे पचास गुना ज्यादा वनौषधियों का निर्यात कर रहा है । भारत सरकार का ध्यान इस ओर गया है । देश के सभी राज्यों में 'मेडिसिनल प्लान्ट्स' बोर्ड की स्थापना हो चुकी है । बिहार में भी स्थापना हुई हैं । किन्तु कागज पर गठित बोर्ड में विशेषज्ञों का अभाव है । इस समय सम्पूर्ण देश में गुजरात आयुर्वेद विश्वविद्यालय, जामनगर में मेडिसिनल प्लान्टस् की पढ़ाई वैज्ञानिक ढंग से कर रहा है । सरकार को चाहिए कि इस बोर्ड में जामनगर के स्नातकों को नियुक्त करे । सरकार द्रव्यगुण विभाग वालों की नियुक्ति भी इस बोर्ड में कर सकती है । बिना विशेषज्ञों की नियुक्ति के बोर्ड कागजी रह जायगा ।'

जहां तक आयुर्वेद अध्ययन-अध्यापन का प्रश्न है, उसकी स्थिति भी दयनीय है ।

इस वर्ष अखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन का शताब्दी वर्ष मनाया जा रहा है । इसके अध्यक्ष वैद्य त्रिगुणाजी हैं । वे युवा हैं एवं कर्मठ हैं । उनसे हमें काफी अपेक्षाएँ हैं । हम आशा करते हैं कि वे सम्मेलन को सशक्त एवं प्रभावशाली बनायेंगे और आयुर्वेद का प्रचार न केवल देश में, बल्कि विदेश में भी करने में सफल होंगे ।

जहां-जहां संगठन की स्थिति दयनीय है । वहाँ वे निजी दिलचस्पी लेकर मजबूत बनायेंगे ।

इन्हीं आशा और विश्वास के साथ हम एक बार पुनः प्रेस सहित सभी विद्वानों को हार्दिक धन्यवाद देते हैं ।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे भवन्तु निरामय:
जय भगवान धन्वन्तरि !

डाबर इण्डिया के निदेशक, श्री नितिन घड़ियार ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि आयुर्वेद भारतवर्ष की प्राचीन चिकित्सा पद्धति है । इसके पश्चात् महासम्मेलन के अध्यक्ष, वैद्य श्री देवेन्द्र त्रिगुणा ने बिहार के मुख्यमंत्री, श्री नीतीश का श्रीफल, शाल एवं स्मृति चिन्ह से स्वागत किया । इसी क्रम में भारत सरकार के भूतपूर्व मानव संसाधन मंत्री, डा० मुरली मनोहर जोशी का विद्यापीठ अध्यक्ष, वैद्य श्री शिव कुमार मिश्र, बिहार सरकार के उप मुख्यमंत्री, श्री सुशील कुमार मोदी का बिहार प्रान्तीय आयुर्वेद सम्मेलन के वैद्य श्री अलख नारायण सिंह, भारत सरकार के भूतपूर्व स्वास्थ्य मंत्री, डा०सी.पी. ठाकुर का महासम्मेलन के प्रधान मंत्री, वैद्य श्री राम प्रसाद मिश्र, बिहार सरकार के स्वास्थ्य मंत्री, श्री चन्द्र मोहन राय का विद्यापीठ मंत्री, श्री देवेन्द्रनाथ त्यागी, वैद्य देवेन्द्र त्रिगुणा का बिहार के मुख्यमंत्री, श्री नीतीश कुमार, वैद्य राम प्रसाद मिश्र का डा० मुरली मनोहर जोशी, बिहार सरकार की आबकारी मंत्री, श्रीमती सुधा श्रीवास्तव का श्री हरिद्वार पाण्डेय, विद्यापीठ मंत्री का श्री सुशील कुमार मोदी, वैद्य अलख नारायण सिंह का श्री चन्द्रमोहन राय , श्री सतीश शर्मा का श्रीमती सुधा श्रीवास्तव ने शाल, श्रीफल एवं स्मृति चिन्ह से स्वागत किया ।

महासम्मेलन के अध्यक्ष, वैद्य श्री देवेन्द्र त्रिगुणा ने कहा कि बिहार 15-20 वर्षों से आयुर्वेद शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ रहा है । राज्य में सम्प्रति 5 राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय एवं 6 निजी आयुर्वेद महाविद्यालय कार्यरत हैं । अस्पतालों में दवाओं एवं शय्याओं की कमी रहती है । बिहार सरकार निजी आयुर्वेद महाविद्यालयों को मान्यता नहीं दे रही है । छात्रों एवं आयुर्वेद के भविष्य को ध्यान में रखकर अविलम्ब मान्यता प्रदान करनी चाहिए ।

बिहार में बड़े-बड़े विद्वान हुए हैं । आयुर्वेद, यो तथा महात्मा बुद्ध की ऐतिहासिक धरोहर को एक-सा जोड़कर पर्यटन की दृष्टि से भी आगे बढ़ाया जाना चाहिए । इससे आयुर्वेद को लाभ होगा तथा प्रदेश सरकार को भी धन की प्राप्ति होगी ।

आपने बताया कि बिहार में आयुर्वेद का को उत्तम अस्पताल नहीं है जिसके कारण बिहार में लोगों को अपने इलाज के लिए दिल्ली में जाना पड़ता है । अतः हमारी मांग है कि पटना में आयुर्वेद का एक बड़ा अनुसंधान अस्पताल बनाया जांये । बिहार में आयुर्वेद विकास हेतु एक उच्चस्तरीय आयुर्वेद सलाहकार समिति बने जो हर तीन मास में मिले तथा अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करे । इस कार्य में महासम्मेलन अपना पूरा-पूरा सहयोग देने के लिए तैयार है । आपने आशा व्यक्त की कि मुख्यमंत्री आयुर्वेद को गौरवपूर्ण स्थान दिलाने में सक्षम होंगे ।

शताब्दी वर्ष समारोह के अवसर पर ही "ज्ञान कल्याण दातव्य न्यास, दिल्ली" की ओर से आयुर्वेद एवं संस्कृत में उत्कृष्ट सेवाओं के लिए विद्वानों को सम्मानित किया गया । ट्रस्ट के संयोजक तथा भारत सरकार के पूर्व मानव संसाधन विकास मंत्री माननीय ड़ा० मुरली मनोहर जोशी जी ने ट्रस्ट की स्थापना तथा उसकी गतिविधियों की विस्तृत जानकारी प्रदान करते हुए कहा कि उनकी पूज्य माता जी संस्कृत भाषा की विदूषी थीं, उनके मामा जी अपने जमाने के दिल्ली के प्रख्यात वैद्य थे तथा उन्होंने आयुर्वेद तथा संस्कृत की वृद्धि हेतु अपने जीवन की सारी सम्पत्ति ट्रस्ट के नाम कर दी थी । ट्रस्ट द्वारा आयुर्वेद एवं संस्कृत के अतिरिक्त शिक्षण संस्थाओं, छात्रों तथा विधवा महिलाओं को भी सहायता प्रदान की जाती है । लेकिन इसका मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद तथा संस्कृत का प्रसार करना ही है । इस वर्ष के लिये आयुर्वेद के क्षेत्र में उत्तम कार्य के लिये जबलपुर के प्रसिद्ध आयुर्वेद चिकित्सक एवं निखिल भारतवर्जीय आयुर्वेद विद्यापीठ के पूर्व अध्यक्ष वैद्य श्री महेश दत्त शर्मा एवं संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान् डा०

गौतम वाडीवाल पटेल, अहमदाबाद को ज्ञान कल्याण दातव्य न्यास की ओर से माननीय श्री नीतीश कुमार जी, मुख्यमंत्री ने शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र के साथ प्रत्येक को 40 हजार रुपये की पुरस्कार राशि प्रदान की ।

आपने खेद प्रकट करते हुए कहा कि आयुर्वेद का कोई मौलिक शोध पत्र उन्हें प्राप्त नहीं होता है जिससे कि उनके दूसरे मामा वैद्य भुवनचन्द्र जोशी जी की स्मृति में दी जाने वाली पुरस्कार राशि का इस वर्ष वितरण नहीं हो सका ।

आपने आयुर्वेद की विशेषता को बताते हुए कहा कि आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने बहुत समय पहले हुआ करते थे । आपने आह्वान किया कि दवा कम्पनियाँ केवल दवाओं पर शोध करती हैं उन्हें रोगों पर भी आयुर्वेद की दृष्टि से शोध करना चाहिए । आपने बताया कि विदेशों में हमारी परम्परागत वस्तुओं पर गहन अध्ययन हो रहा है । इसीलिए गोमूत्र को पेटेण्ट कराया जा रहा है । गाय के उत्पादनों से बेबी फूड तैयार किया जा रहा है इससे आपका फायदा भी होगा तथा गाय को भी महत्व मिलेगा ।

हमें आयुर्वेद और उसके प्राचीन सिद्धांतों पर विचार करना चाहिए । आयुर्वेद के समक्ष बड़ी चुनौतियाँ हैं। आयुर्वेद के सिद्धान्तों के आधार पर दवाओं को प्रतिष्ठित करें जिससे विश्व में उन्हें प्रयुक्त किया जा सके । एलोपैथी के दृष्टिकोण से आयुर्वेद का मानकीकरण उचित नहीं है ।

डा०सी०पी० ठाकुर, पूर्व स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री, भारत सरकार ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि आयुर्वेद शल्य के क्षेत्र में बहुत आगे हुआ करता था । इसके अनेकों उदाहरण मिलते हैं । आयुर्वेद के माध्यम से बिहार की आर्थिक तरक्की हो सकती है । अतः आयुर्वेद दवाओं के निर्यात में बिहार का भी भाग होना चाहिए ।

बिहार सरकार की आबकारी मंत्री माननीया श्रीमती सुधा श्रीवास्तव ने कहा कि देश में स्वास्थ्य की बड़ी समस्या है । हमारा देश हर प्रकार के प्राकृतिक संसाधनों से भरा पड़ा है । यदि हम सही ढंग से काम करें तो उचित लाभ मिल सकता है । देश में हर पौधा तथा फूल दवाओं से युक्त है । यदि उन्हें दवा के रूप में शामिल किया जाय तो देशवासियों का स्वास्थ्य उन्नत तथा राष्ट्र शक्तिशाली बन सकेगा ।

इस अवसर पर स्मारिका का विमोचन माननीय श्री नीतीश कुमार जी द्वारा सम्पन्न हुआ । शताब्दी वर्ष के उपलक्ष्य में बिहार एवं झारखण्ड राज्य के नीचे लिखे विद्वानों को आयुर्वेद के क्षेत्र में उत्तम कार्य करने के लिये सम्मानित किया गया -

1. वैद्य श्री नागेश द्विवेदी, पटना
2. वैद्य श्री नित्यगोपाल बन्धोपाध्याय
3 वैद्या श्रीमती उमा सिन्हा
4. वैद्य श्री कृष्ण कुमार त्रिपाठी
5. वैद्य श्री सुधाकर शर्मा
6. वैद्य श्री जयप्रकाश नारायण
7. वैद्य श्री चन्द्रमोहन मिश्र
8. वैद्य श्री सतीश कुमार
9. वैद्य श्री गंगाधर मिश्र
10. वैद्य इन्द्रमोहन झा, रांटी, मधुबनी
11. वैद्य श्री हरिहर पाण्डय, रांची
12. वैद्य श्री अनिरूद्ध मिश्र

इस अवसर पर बिहार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री, श्री चन्द्रमोहन राय ने कहा कि आयुर्वेद के महत्व को सम्पूर्ण विश्व स्वीकार कर रहा है । उन्होंने आश्वासन दिया कि सरकार राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय, पटना को शोध संस्थान के रूप में प्रोन्नत करेगी एवं बाकी महाविद्यालयों के लिए भी दिशा-निर्देश जारी करेगी ।

बिहार के उपमुख्यमंत्री श्री सुशील कुमार मोदी ने बताया कि उन्हें आशा नहीं थी कि भारी उपस्थिति होगी । पटना के वे 15 वर्षों तक विधायक रहे, किन्तु वे एक भी प्रसिद्ध वैद्य का नाम नहीं जानते हैं । यह दुखद स्थिति है ।

बिहार के मुख्यमंत्री, श्री नीतीश कुमार ने बताया

कि वे वैद्य परिवार से आते हैं । उनके पिताजी पुड़िया

समारोह के मंच का एक परिदृश्य । दायें से सम्मेलनाध्यक्ष, वैद्य श्री देवेन्द्र त्रिगुणा, बिहार के उपमुख्यमंत्री, श्री सुशील कुमार मोदी, बिहार के स्वास्थ्य मंत्री, श्री चन्द्र मोहन राय दिखायी पड़े हैं । पीछे श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना के कारखाना प्रबन्धक, डा० एल.के. चौधरी खड़े हैं ।

बांधते थे । वे इस कार्य में पिताजी की सहायता करते थे । उन्होंने विश्वास के साथ कहा कि आज भी वे दवाओं की ऐसी पुड़िया बांध देंगे कि चूर्ण गिरेगा नहीं । आज आयुर्वेद का एक बार फिर दौर आ गया है । पश्चिमी जगत् में इसकी प्रतिष्ठा बढ़ी है । आज अनुसंधान पर ध्यान देने की आवश्यकता है । उन्होंने खेद प्रकट किया कि वैद्य क्यों डाक्टर लिखते हैं । उन्होंने मुख्यमंत्री आवास में औषधीय पादपों के कृषिकरण करने का आश्वासन दिया ।

इसके पूर्व प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन, बिहार के अध्यक्ष, वैद्य श्री अलख नारायण सिंह ने आठ-सूत्री मांग-पत्र सम्मेलन के समक्ष रखा । वे इस प्रकार हैं :-

1. वर्तमान में बिहार में 5 सरकारी तथा 6 प्राइवेट आयुर्वेद कॉलेज चल रहे हैं लेकिन कोई भी कॉलेज भारतीय चिकित्सा परिषद् के मापदण्डों के अनुरूप भवन, शिक्षक, प्रयोगशाला, पुस्तकालय, आतुरालय, वनौषधि उद्यान की व्यवस्था नहीं कर पा रहा है जिससे इन महाविद्यालयों से निकले हुए स्नातकों का स्तर दिनानुदिन निम्न होना अस्वाभाविक नहीं है ।

   अतः हम माननीय मुख्यमंत्री जी से मांग करते हैं कि प्रदेश में आयुर्वेद की शिक्षा के स्तर में सुधार के लिए आवश्यक कदम शीघ्रातिशीघ्र उठाने तथा भारतीय चिकित्सा परिषद् के मापदण्डों के अनुरूप
   एवं गैर सरकारी महाविद्यालयों का स्तरीकरण
   जाय जिससे प्रदेश की प्रतिष्ठा, मान,
   बढ़ोतरी के साथ-साथ आयुर्वेद के क्षेत्र में
   कुशल चिकित्सकों का सृजन किया जा सकें।

2. सरकारी आयुर्वेद महाविद्यालयों में प्रवेश हेतु
   प्रतियोगिता परीक्षा का प्रावधान प्रदेश में है।
   अध्ययन के लिए चयन हुये छात्र दूसरे वर्ष
   महाविद्यालयों में चयनित होकर आयुर्वेद छोड़
   जिससे सरकारी आयुर्वेद कॉलेजों में स्थान
   जाता है ।

   अतः माननीय मुख्यमंत्री जी से इस मंच के माध्यम
   प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन यह मांग करता है कि
   की प्रतियोगिता प्रवेश परीक्षा स्वतंत्र रूप से कराई

प्रख्यात् आयुर्वेदज्ञ एवं राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय पटना के भूतपूर्व प्राचार्य, डा० श्री नित्यगोपाल बन्दोपाध्याय का सम्मान करते हुए परिलक्षित हैं - बिहार के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार एवं बगल में खड़े हैं, भारत के भूतपूर्व मानव संसाधन मंत्री, डा० श्री मुरली मनोहर जोशी।

   जिससे अनिश्चित विद्यार्थियों का प्रवेश न हो
   शिक्षा के स्तर में वृद्धि हो सके इससे सरकारी
   महाविद्यालयों में अध्ययन के लिये सीट खाली
   होगी ।

3. भारत के सभी प्रदेशों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों
   एक-एक आयुर्वेद के चिकित्सकों की व्यवस्था
   आयुर्वेद के चिकित्सालयों एवं औषधालयों की

तथा व्यवस्था आधुनिक चिकित्सालयों की तरह ही

बिहार के उपमुख्य मंत्री, श्री सुशील कुमार मोदी के साथ विचार विमर्श करते हुए परिलक्षित हैं - श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन प्रा०लि०, पटना का कारखाना प्रबन्धक डा०एल.के. चौधरी ।

है । आयुर्वेद में प्रोन्नतियां एवं नियुक्तियां और स्थानान्तरण भी आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के औषधालयों एवं चिकित्सालयों के तर्ज पर किया जाय जिससे विद्यार्थियों का ध्यान आयुर्वेद की तरफ भी उसी तरह बढ़े जैसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान में है । इससे प्रदेश की गरीब जनता को सस्ता स्वास्थ्य लाभ तो होगा ही साथ ही बिहार भी अन्य प्रदेशों के साथ बराबर सिर उठाकर चलने का सामर्थ्य प्राप्त करेगा ।

4. केंद्रीय सरकार ने विगत वेतन आयोग की स्वीकृति के पश्चात् सभी क्षेत्र के चिकित्सकों का वेतनमान तथा प्रोन्नतियां समान कर दी है । बिहार में भी यह व्यवस्था लागू की जाय।
5. औषधि उद्योग के नियंत्रण हेतु तथा औषधि कानून को पूर्णत: लागू करने के लिए आयुर्वेद औषधि नियंत्रक एवं निरीक्षकों के पदों का सृजन किया जाना चाहिए तथा उनपर आयुर्वेद के ही स्नातकों की नियुक्ति की जानी चाहिए जिससे आयुर्वेदीय औषधियों का स्तर प्रदेश में उच्च आदर्शों को छूता रहे । आयुर्वेद के स्वतंत्र मंत्रालय की स्थापना की जाय जिससे इसका चहुँमुखी विकास हो सके ।
6. गुजरात तथा राजस्थान की तरह ही बिहार में भी आयुर्वेद का विश्वविद्यालय स्थापित किया जाय जिससे पाटलिपुत्र की गरिमा पुन: वापस लाई जा सके तथा नालन्दा एवं विक्रमशिला विश्वविद्यालयों की गरिमा एक बार पुन: जागृत कर बिहार को विश्व का आयुर्वेद केन्द्र बनाया जा सके ।
7. राज्य में आयुर्वेद के क्षेत्र में अनुसंधान परिकल्पित है । इसके लिए राजकीय आयुर्वेद एवं यूनानी अनुसंधान इकाई स्थापित है । यह अनुसंधान प्रमुख इकाई राजकीय आयुर्वेद महाविद्यालय अस्पताल के एक कमरे में सरकारी उपेक्षा एवं भेदभाव को सहते हुए विकास एवं विस्तार की राह देख रहा है । अनुसंधान पदाधिकारी के लिए पद सृजित है, योग्यता निर्धारित है । परन्तु पर्याप्त मूलभूत संरचना के अभाव में अनुसंधान कार्य सतह पर दिखाई नहीं पड़ रहा है । इस इकाई को सक्रिय बनाया जाय ।
8. मुख्यमंत्रीजी से अन्त में मैं आग्रह करना चाहता हूँ कि आयुर्वेद चिकित्सकों की एकमात्र प्रतिनिधि महासम्मेलन के इस शताब्दी समारोह में पाटलिपुत्र की इस धरा पर इसके एक भवन हेतु जमीन देने की घोषणा कर आज इस सभा में उपस्थित विद्वान वैद्य समूह को कृतार्थ करने की कृपा करें जिससे प्रान्त में आयुर्वेद की गतिविधियाँ सम्यक् रूप से भविष्य में संचालित की जा सके ।

अन्त में समारोह का समापन प्रान्तीय बिहार प्रान्तीय वैद्य सम्मेलन के प्रधानमंत्री, वैद्य श्री राम गोपाल मिश्र के धन्यवाद-ज्ञापन से हुआ ।

मध्य प्रदेश

पंचकर्म कार्यशाला, सेमिनार एवं सम्मेलन का अभिनव आयोजन सम्पन्न ।

उज्जैन, नेशनल एकेडमी ऑफ पंचकर्म एण्ड रिसर्च (नापार) की स्टेट कौंसिल मध्यप्रदेश द्वारा उज्जैन में सप्त दिवसीय कार्यशाला (9 से 15 अप्रैल) तथा 16 अप्रैल 2006 को एक दिवसीय पंचकर्म संगोष्ठी एवं

सम्मेलन का अभिनव आयोजन आर्य समाज भवन में सम्पन्न हुआ।

उक्त जानकारी देते हुए कार्यक्रम समन्वयक वैद्य मणिन्द्र कुमार व्यास एवं नापार के राष्ट्रीय महामंत्री वैद्य विनोद वैरागी ने बताया कि 9 अप्रैल को राष्ट्रीय पंचकर्म

नेशनल वर्कशाप पंचकर्म का शुभारम्भ करते हुए पद्मश्री वैद्य सुरेश चतुर्वेदी, मुम्बई

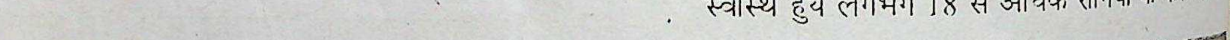

नेशनल वर्कशाप पंचकर्म के समापन अवसर पर पंचकर्म के पुरोधा वैद्य एच.एस.कस्तुरे का अभिनन्दन करते हुए गुजरात राज्य के आयुर्वेद संचालक श्री ए.पी. सिंह, वैद्य यू.एस. निगम, वैद्य श्यामलाल शर्मा (प्रधानाचार्य) वैद्य एस.के. पाण्डे (प्रान्तारयम) वैद्य विनोद वैरागी

कार्यशाला का उद्घाटन मुख्य अतिथि पद्मश्री वैद्य सुरेश चतुर्वेदी मुम्बई ने किया. कार्यक्रम की अध्यक्षता वै. श्यामलाल शर्मा प्रधानाचार्य शास. धन्वतरि आयु० महाविद्यालय उज्जैन ने की। विशिष्ट अतिथि के रूप में नगर भाजपा अध्यक्ष श्री शिवा कोटवानी (पूर्व विधायक) एवं इतिहासविद् डा० श्यामसुन्दर निगम पधारे।

सात दिवस तक चले प्रशिक्षण में मध्यप्रदेश के अतिरिक्त, दिल्ली, महाराष्ट्र, हरियाणा, उ०प्र०, गुजरात से आये 25 प्रशिक्षुओं को सी.के. कासलीवाल हास्पीटल में अभ्यंग, स्वेदन, शिरोधारा स्थानिक वस्तियों. वमन. विरेचन अनुवासन आस्थापन, नस्य, रक्तमोक्षण. अग्नि कर्म आदि क्रियाओं का प्रत्याक्षिक ज्ञान वैद्य एस.एन. पाण्डे, वैद्य सी. के. शर्मा, वैद्य विनोद वैरागी ने कराया। इस हेतु आर्य समाज द्वारा निःशुल्क निदान शिविर आयोजित कर 160 रोगियों को निःशुल्क पंचकर्म चिकित्सा उपलब्ध कराई गई। मध्यप्रदेश विज्ञान एवं प्रौद्योगिक परिषद् भोपाल द्वारा कार्यशाला एवं संगोष्ठी प्रायोजित की गई।

प्रशिक्षुओं के समक्ष पंचकर्म की चिकित्सा लेकर स्वास्थ हुये लगभग 18 से अधिक रोगियों के केस प्रेजेंटेशन

किए गये जिसमें उन्होंने अपनी जटिल बीमारियों से मुक्त होने की व्यथा-कथा सुनाई । स्थानीय एवं देश के प्रमुख आयुर्वेद विद्वानों ने अपने अतिथि व्याख्यानों से सैद्धांतिक पक्ष को दृश्य श्रव्य माध्यम से प्रशिक्षण दिया जिसमें प्रमुख हैं - वैद्य एच.एस. कस्तुरे (अहमदाबाद)वैद्य बी.डी. नंदूरबारकर (बड़ौदा), वैद्य अजय शर्मा (जयपुर), वैद्य पी. यादैया (अकोला), वैद्य श्यामलाल शर्मा, वैद्य यू.एस. निगम उज्जैन, वैद्य मेधावीलाल शर्मा, वैद्य महेश त्रिवेदी, उदयपुर, वैद्य के.के. शर्मा, हरिद्वार, वैद्य हरीश व्यास, अहमदाबाद, वैद्य सोमेन्द्र मित्रा, इन्दौर, वैद्य अजय कीर्ति जैन, वैद्य मणिन्द्र व्यास, वैद्य वी.के. पौराणिक, उज्जैन, वैद्य धनराज महूकर, वैद्य जी.के. व्याघ्रालकर नागपुर, वैद्य महादेव झा, अहमदाबाद आदि आगंतुक सभी अतिथि व्याख्याताओं को समापन समारोह में सम्मानित किया गया ।

दिनांक 15 अप्रैल को रात्रि एवं 16 को प्रात: क्रमश: नापार की राष्ट्रीय कार्यकारिणी बैठक एवं साधारण सभा का आयोजन किया गया, जिसमें अनेक महत्वपूर्ण निर्णय पारित हुये ।

समापन समारोह होटल शांति पैलेस में दोपहर पश्चात वैद्य एच.एस. कस्तुरे के मुख्य आतिथ्य एवं राष्ट्रीय अध्यक्ष वैद्य यू.एस. निगम की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । विशेष अतिथि के रूप में गुजरात के आयुर्वेद निदेशक श्री एपी. सिंह तथा प्रधानाचार्य वैद्य श्यामलाल शर्मा मौजूद थे । सम्मेलन में 150 से अधिक प्रतिनिधि उपस्थित रहे । इस अवसर पर वैद्य कस्तुरेजी का सम्मान शाल, श्रीफल और स्मृति चिन्ह से किया गया । सभी प्रशिक्षुओं को प्रशिक्षण प्रमाण पत्र दिया गया । राष्ट्रीय अध्यक्ष वैद्य यू.एस. निगम ने आयोजन के प्रमुख स्तंभ वैद्य एस.एन. पाण्डे, वैद्य विनोद वैरागी, वैद्य चन्द्र शर्मा, वैद्य मणिन्द्र व्यास और वैद्य अजय कीर्ति जैन की सराहना करते हुये शाल, श्रीफल से सम्मानित किया ।

श्रेष्ठ कर्मठ सहयोगियों में सी.के. कासलीवाल, ओ.पी. पालीवाल, आई.एस. सिसौदिया, वैद्य लोकेश जोशी, वैद्य राजेश जैन, श्री श्रीवास्तव, एम.एस. देशपांडे को स्मृति चिन्ह से सम्मानित किया गया ।

कार्यक्रम का संचालन वैद्य विनोद वैरागी ने किया आभार माना, वैद्य अजय कीर्ति जैन ने ।

गुजरात

1. **डा० जयकृष्ण बी. ज्ञानी - अहमदाबाद में** 'रसायनम्' Ayurved Panchakarma Clinic & Longevity Centre का शुभारंभ दिनांक 26.03.06 रविवार को अहमदाबाद में 325 बेरोनेट कॉम्पलेक्स, पुराना टोलनाका, साबरमती को सम्पन्न हुआ ।
2. **स्वामी कल्याणदेव राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, रायपुर, मुजफ्फरनगर में प्रशिक्षण कार्यक्रम :-** स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय, भारत सरकार के आयुष विभाग द्वारा सतत् चिकित्सा शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत प्राइवेट चिकित्सकों को प्रशिक्षण दिये जाने हेतु 18-19 मार्च को अहमदाबाद से आचार्य वैद्य एच.एस. कस्तुरे, पूर्व नियामक गुज.राज्य आयु. विभाग एवं विश्व विख्यात पंचकर्म वैद्य को विशेष रूप से आमंत्रित किया गया तथा पूर्व विधायक आयुर्वेदतज्ञ वैद्य बी.डी. नंदूरबारकर (अहमदाबाद), सरकारी मणिबेन आयुर्वेदिक हॉस्पिटल के अधीक्षक पंचकर्म वैद्य श्री टी.एल. स्वामी तथा विश्वविख्यात आयुर्वेदीय क्षारसूत्र चिकित्सक वैद्य श्री देवेन्द्र शाह और महाविद्यालय के प्राचार्य एवं अधीक्षक वैद्य वी.डी. अग्रवाल तथा सभी चिकित्सक मित्रों ने इस प्रशिक्षण कार्यक्रम में अपना पूर्ण सहयोग देकर कार्यक्रम को सफल बनाया ।

प्राचार्य एवं अधीक्षक वैद्य श्री वी.डी. अग्रवाल जी द्वारा आयुर्वेद महाविद्यालयों में वैद्य समुदाय एवं महाविद्यालय के छात्र-छात्राओं के लिये देश के विभिन्न प्रांत से आयुर्वेद मनीषियों को आदरपूर्वक आमंत्रित कर प्रशिक्षण एवं चिकित्सा शिक्षा कार्यक्रम निरंतर आयोजित किये जाते हैं ।

गुजरात के प्रसिद्ध क्षारसूत्र चिकित्सक वैद्य देवेन्द्र शाह सम्मानित

गुज०प्र०आयु० सम्मेलन के प्रधानमंत्री, नि०भा०आ०

विद्यापीठ के उपाध्यक्ष, भारत सरकार के अधीन स्वास्थ्य

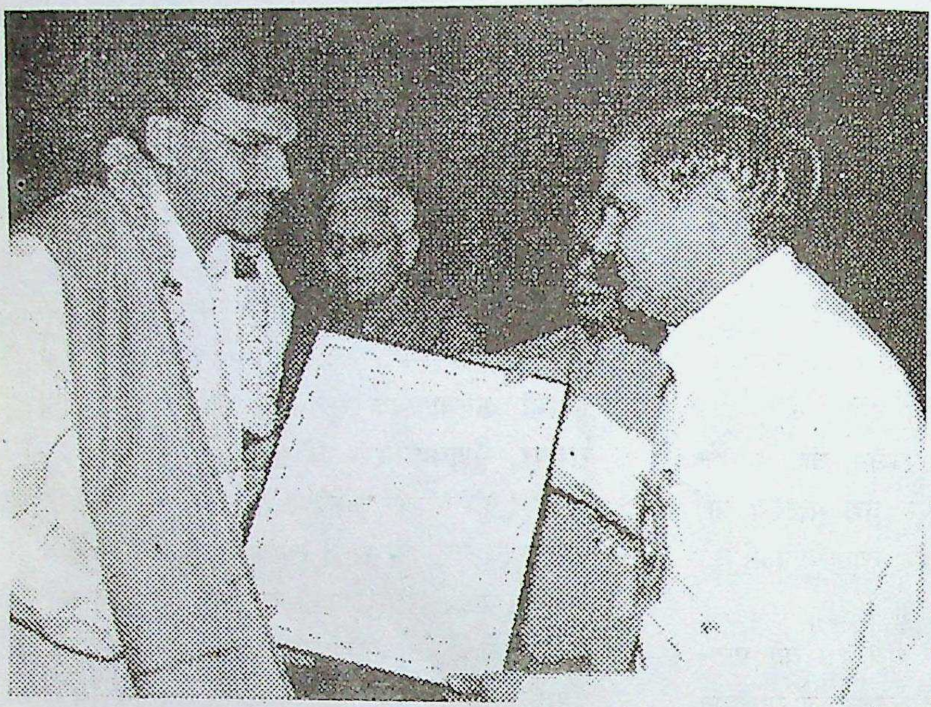

एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के अन्तर्गत आयुष विभाग द्वारा संचालित, नई दिल्ली स्थित नेशनल एकेडमी ऑफ आयुर्वेद की Governing Body Member अहमदाबाद के वैद्य श्री देवेन्द्र शाह को (क्षार सूत्र चिकित्सक) राष्ट्रीय

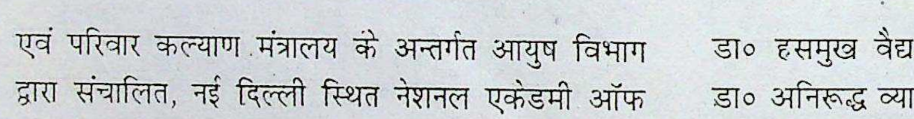

ड़ा० देवेन्द्र शाह को "सेवा गौरव" एवार्ड द्वारा सम्मानित करते हुए ।

आयुर्वेद विद्यापीठ (Under Dept. of AYUSH, Ministry of Health & Family Welfare - Govt. of India) 12th Convocation & Ayurvedic Seminar on (30-31 March 2006) mental Health के समारोह में दिल्ली राज्य के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री श्री जगन्नाथ मिश्रजी के कर-कमलों द्वारा स्मृति चिन्ह, [illegible] कलश एवं Fellow ship प्रमाण-पत्र से सम्मानित किया गया ।

खेडा जिला BSAM प्रेक्टीशनर एसोसिएशन

डा० राजेन्द्र राज-बडियाद की अध्यक्षता में दिनांक 26.03.06 रविवार को होटल बुडलेंड नडियाद स्थित [illegible] रोग विशेषज्ञ डा० हसमुख अग्रवाल अहमदाबाद द्वारा व्याख्यान एवं Audio Visual कार्यक्रम का आयोजन किया गया । इस समारोह में अहमदाबाद के डा० हसमुख वैद्य विशेष रूप से आमंत्रित थे । संयोजक डा० अनिरूद्ध व्यास, चेयरमैन, डा० उपेन्द्र शाह, उपप्रमुख डा० रमेश पटेल, एडवाइझर, डा० अरविन्द वैद्य ट्रेजरर डा० इनुस वारो अन्य सभी वैद्य मित्रों ने बड़े उत्साह से इस CME कार्यक्रम का लाभ उठाया ।

डा० देवेन्द्र के शाह "सेवा गौरव" एवार्ड से सम्मानित

गुजराज प्र०आयु० संमेलन के प्रधानमंत्री डा० देवेन्द्र के. शाह [illegible] (महाराष्ट्र) को दिनांक 22/04/2006 के दिन रोटरी क्लब द्वारा आयोजित सतत दीर्घ कालीन सेवाएं प्रदान करने पर महाराष्ट्र प्रांत के रोटरी गवर्नर डा० हरिप्रसाद सोमानी द्वारा अर्श भगंदर में क्षार-सूत्र चिकित्सा द्वारा सतत 10 (दस) वर्ष तक निःशुल्क निदान चिकित्सा सेवा प्रदान करने पर सेवा गौरव एवार्ड देकर सम्मानित किया गया । इस समारोह में गुजरात से आये अन्य

चिकित्सकों का भी फूल माला एवं शॉल. स्मृति चिन्ह प्रदान कर सम्मानित किया गया ।

1. आयुर्वेद योग साधना केन्द्र प्रीतमनगर, अहमदाबाद Parkinsons's Diseases Society, Gujarat (India)

दि० 23/04/06 के दिन ''पार्किन्सन (कंपवान) रोग के साथ ''सुलभ जीवन मार्ग'' इस विषय पर आयुर्वेद योग एवं आधुनिक चिकित्सा पर अहमदाबाद में गुजरात चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स के सभागृह में वैद्य नितावन गोस्वामी द्वारा आयोजित तथा जीगीश एन दलाल (सुनिश्र) फाउन्डेशन के सौजन्य से गुजरात राज्य के माननीय गर्वनर श्री नवल किशोर शर्मा द्वारा दीप प्रागट्य करके इस समारोह का विधिवत् उद्घाटन किया गया । भारी संख्या में इस परिसंवाद में वैद्य डॉ० मित्रों ने हिस्सा लिया ।

2. Academy of Ayurved Development & Research (AADAR)

आदर द्वारा आयोजित 10 वें वार्षिक स्थापना दिन एवं विशिष्ट आयुर्वेद परिसंवाद तथा सन्माननीय वैद्य जनों का सम्मान समारोह दि० 23.04.06 अहमदाबाद में सम्पन्न हुआ ।

वैद्य प्रेरक शाह तथा अध्यक्ष डा०के.के. शाह द्वारा आयोजित विशिष्ट समारोह अहमदाबाद शहर के विधायक भाविन शेठ की अध्यक्षता में तथा समारोह के अतिथि श्री आई.ए. मोदी तथा वैद्य श्री मेधावेन जानी (वन औषधि अधीक्षक) Licening Authority Ayurved. Guj. State की उपस्थिति में संपन्न हुआ ।

इस समारोह में वैद्य डा० एवं आयुर्वेद प्रेमी तथा विद्यार्थी मित्रों ने उत्साह पूर्वक हिस्सा लिया ।

Jaydev Ayurved Hospital & Panchkarma Research Centre

दिनांक 09.04.06 के दिन आदरणीय गृहमंत्री (गुजरात राज्य) श्री अमित शाह के कर कमलों द्वारा तथा वैद्य एच.जी सुराणी (राजकोट) वैद्य देवेन्द्र शाह, वैद्य दिनकर आणेकर, वैद्य दिलीप महता की उपस्थिति में विशिष्ट आयुर्वेद निदान चिकित्सा पंचकर्म एवं रिसर्च सेन्टर का उद्घाटन अहमदाबाद में अभिषेक कॉम्पलेक्स नारणपुरा में सम्पन्न हुआ । वैद्य सुभाष डल्लर, वैद्य हितेनं वाझा, वैद्य मिहिर वाझा, वैद्य राजश्री तथा प्रधान चिकित्सक वैद्य उज्ज्वल सुभाष डक्कर का विशिष्ट योगदान इस जयदेव आयुर्वेद हॉस्पिटल को प्राप्त हुआ ।

4. " The Herbs of Ayurveda" Vol. (I-IV) का विमोचन समारोह

श्री अशोकभाई शेठ (शेठ ब्रदर्श - भावनगर) द्वारा संपादित ग्रन्थों का विमोचन दि० 05/03/2006 के दिन अहमदाबाद में गुजरात राज्य के माननीय मुख्यमंत्री श्री नरेन्द्र भाई मोदी के करकमलों द्वारा एवं माननीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्री श्री अशोक भाई भट्ट तथा पू०गो० श्री द्वारकेश बाबा श्री एवं आयुर्वेद के सुप्रसिद्ध गणमान्य वैद्यों की उपस्थिति में इस समारोह का उद्घाटन सम्पन्न हुआ । 1500 से अधिक आयुर्वेदीय औषध वनस्पतियों का भव्य वनस्पति प्रदर्शन का आयोजन भी किया गया ।

इस कार्यक्रम के फल स्वरूप गुजरात के आयुर्वेद क्षेत्र में जिनका अमूल्य योगदान रहा है, उन गणमान्य वैद्यों का सम्मान शॉल एवं स्मृति चिन्ह प्रदान कर किया गया । इस त्रिदिवसीय समारोह में त्रिविध सेमिनार का आयोजन भी किया गया जिसमें, पंचकर्म विषय पर एक दिवसीय व्याख्यानमाला आचार्य वैद्यश्री कस्तुरे द्वारा तथा वैद्यश्री विजय सिंह चौहाण, वैद्य तपनभाई, वैद्य प्रेरक शाह तथा अन्य वैद्यों का व्याख्यान एवं गुजरात के सभी आयुर्वेद महाविद्यालयों के प्राध्यापक तथा विद्यार्थियों की वक्तव्य स्पर्धा का आयोजन कर विद्यार्थियों को सम्मानित किया गया ।

सचित्र आयुर्वेद में जुलाई 2005 से जून 2006 तक के प्रकाशित लेखों की वार्षिक-सूची

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
	अ		
अम्ल एवं पित्त - निदान चिकित्सा	डा० महेश कुमार शर्मा डा० प्रमोद दीपक चतुर्वेदी	जुलाई' 05	45
अभिनव रूग्ण चिकित्सा	डा० गो० वा० अंदनकर	जून' 06	92
Amalaki Rasayana : A Protection Against – Experimental Gastric Ulcers in Albino Rats - and Having Better Amlapittahara Effect	Dr. Bharat Kalsariya Dr. B. Patgiri Dr. B. Ravishanker Dr. P.K. Prajapati	जुलाई' 05	45
अनुवांशिक योग (.Genetic Desorders)	वैद्य पी.एस. अंशुमान	नवम्बर' 05	33
अपना शब्द ज्ञान परखिये	डा० गोपेश कुमार न० शर्मा डा० दिनेश कुमार शर्मा	दिसम्बर' 05	44
अम्लपित्त : कारण, लक्षण एवं चिकित्सा	डा० श्रीमती कुसुम गुप्ता डा० गोविन्द गुप्ता	जनवरी' 06	51
Applied Aspect of Dashavidha Pariksha with special - Reference to Samhanana and Pramana	Dr. Ashutosh Kumar Yadav Dr. Suman Yadav, Dr. Parameswarappa S. Byadgi Prof. C.B. Jha	जनवरी' 06	53
अपना शब्द ज्ञान परखिये	डा० गोपेश कुमार न० शर्मा डा० दिनेश कुमार शर्मा	जनवरी' 06	54
अपना शब्द ज्ञान परखिये	डा० गोपेश कुमार न० शर्मा डा० दिनेश कुमार शर्मा	फरवरी' 06	62
अजीर्ण रोग - संक्षिप्त परिचय	वैद्य पी.एस. अंशुमान, एच.पी.ए.	जून' 06	8
	आ		
आयुर्वेद अनुसंधान के बढ़ते चरण	पं० बनवारी लाल शर्मा विमल चन्द्र झा	जुलाई' 05	4
आयुर्वेद में सुस्वास्थ्य की अवधारणा	आचार्य राजकुमार जैन	जुलाई' 05	1
आँवला - फल एक गुण अनेक	जगेन्द्र कुमार चौधरी	जुलाई' 05	3
आयुर्वेद में प्रमेहघ्न द्रव्य	डा०गणेश चन्द्र उपाध्याय,प्रो०पी०पी०शर्मा	जुलाई' 05	4

जुलाई 2005 से जून 2006 तक के प्रकाशित लेखों की वार्षिक-सूची

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
आयुर्वेद के प्रभावी प्रवक्ता पं० शिवकरण शर्मा छांगाणी	डा० गोविन्द प्रसाद उपाध्याय	जुलाई' 05	67
आयुर्वेद का इतिहास - 69	पं० बनवारी लाल शर्मा, विमल चन्द्र झा	अगस्त' 05	85
आयुर्वेद का इतिहास - 70	पं० बनवारी लाल शर्मा, विमल चन्द्र झा	सितम्बर' 05	165
आंत्र गुल्म (अपेंडिसाइटिस) कारण, लक्षण व उपचार	डा० राजीव गुप्ता	सितम्बर' 05	183
आयुर्वेदिक दृष्टि से कास की चिकित्सा एवं रोकथाम के उपाय	डा० दिनेश कुमार गोयल डा० रूबी गोयल	सितम्बर' 05	186
आयुर्वेद का इतिहास - 71	पं० बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	अक्टूबर' 05	245
Eye Banking	Dr. Haramohan Moharana	अक्टूबर' 05	293
आयुर्वेद का इतिहास - 72	पं० बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	नवम्बर' 05	326
आमवात का निदान सम्प्राप्ति परक एवं अलम्बुषादि घनवटी का उपशयात्मक अध्ययन	प्रो० लोकनाथ शर्मा डा० मनमोहन शर्मा	नवम्बर' 05	341
आयुर्वेद में मानसिक रोग की अवधारणा एवं चिकित्सा	डा० जितेन्द्र कुमार डा० अश्विनी शर्मा, प्रो० लोकनाथ शर्मा	नवम्बर' 05	353
आयुर्वेद परक - डायबिटिक फुट जानलेवा रोग	डा० सुरेश चन्द्र	नवम्बर' 05	355
आयुर्वेद का इतिहास - 73	पं०बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	दिसम्बर' 05	406
आयुर्वेद का इतिहास - 74	पं०बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	जनवरी' 06	487
Ayurveda and Liver Care	Amit K. Jain,R. Sagar, Anurekha Jain Avijit Jain, R. Gupta, M.S. Sikarwar	जनवरी' 06	531
आयुर्वेद का इतिहास - 75	पं०बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	फरवरी' 06	565
आयुर्वेद में संस्कार और उसकी उपयोगिता	आचार्य राजकुमार जैन	फरवरी' 06	571
आयुर्वेद वाङ्मय में सुख की अवधारणा	डा०राकेश कु० श्रीवास्तव, डा० अनुप कु० श्रीवास्तव, डा० बृज कुमार द्विवेदी	फरवरी' 06	580
आयुर्वेद का इतिहास - 76	पं०बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	मार्च' 06	646
आहार-विहार द्वारा स्वास्थ्य रक्षा: बसन्त ऋतु	वैद्य ओमवीर सिंह "वीर", सुरेन्द्र सिंह (छात्र)	मार्च' 06	688
Ayurvedic Perspective of Psychiatry W.R.T. Stress and Emotion	Dr. G. Venkateshwarlu Dr. R.D. Patil	मार्च' 06	699
Ayurvedic Management of Gastrc - Oesophageal Reflux (GERD)	Dr. Sai Prasad Dr. Ratna Manikyan	मार्च' 06	705

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
आयुर्वेद का इतिहास - 77	पं॰बनवारी लाल शर्मा, विमलचन्द्र झा	अप्रैल' 06	72
आगन्तु अपस्मार - एक चर्चा	वैद्य पी॰एस॰ अंशुमान	अप्रैल' 06	73
आयुर्वेद का एक महत्वपूर्ण अंग--वाजीकरण	डा॰अश्विनी बी.पाण्डे, प्रो॰ओ.पी. उपाध्याय	अप्रैल' 06	74
आमवात व्याधि के चिकित्सा उपक्रम	डा॰ निलेश भट्ट, प्रो॰ बी.डी. शुक्ल	अप्रैल' 06	76
Ayurvedic Treatment for Menorrhagia	Dr. K. Sudha Rani	अप्रैल' 06	771
आयुर्वेद का इतिहास - 78	पं॰बनवारी लाल शर्मा, विमल चन्द्र झा	मई' 06	80
आयुर्वेदीय चिकित्सा का वैशिष्ट्य	आचार्य राजकुमार जैन	मई' 06	81
आयुर्वेद में भस्मों की रूपरेखा एवं सिद्धान्त	डा॰ मायाराम उनियाल	मई' 06	82
Ayurvedic Approach to the Management of Lifestyle Desorders	Sulochana Bhat	मई' 06	85
आयुर्वेद का इतिहास - 79	पं॰बनवारी लाल शर्मा, विमल चन्द्र झा	मई' 06	8
आयुर्वेदीय दृष्टि से अतिमधु पर्णी पादप की औषधीय कार्मुकता - एक अध्ययन	डा॰ आर॰ एस॰ चौहान	जून' 06	90
आयुर्वेदिक औषधियों की गर्भ-निरोधन में उपयोगिता	डा॰ अनिता शर्मा, डा॰ विनोद कु॰ गोठेचा	जून' 06	902
	इ		
Effect of Bilwa (Aegle marmelos) Patra - - swarasa on Gastronitestinal Tract	Dr. Laxmi N. Gupta Dr. C.B. Jha	जुलाई' 05	47
इओसिनोफिलिया कारण और बचाव	डा॰ आशुतोष कुमार यादव डा॰ जे॰के॰ मिश्रा, डा॰एच॰एच॰अवस्थी	अगस्त' 05	109
Implementation of GMP in ASU industries :- Problems and Prospective	Dr. Prashanta Kumar Sarkar	अगस्त' 05	134
Evaluation of effect of Yakritpliharilauha in Viral - Hepatitis A	Dr. Umesh Shukla, Dr. Charu Bansal Dr. Anil Nagal	अक्टूबर' 05	294
Effect of Bilwa (Aegle marmelos) Phala Majja Chuna – on Gastrointestinal Tract	Dr. Laxmi N. Gupta, Dr. R.K. Sharma Dr. C.B. Jha	दिसम्बर' 05	447
	उ		
उपयोगिता से भरपूर नींबू	राजकुमार जैन	अगस्त' 05	114

जुलाई 2005 से जून 2006 तक के प्रकाशित लेखों की वार्षिक-सूची

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
उत्तरांचल की कुछ कीटनाशक वनस्पतियाँ	डा० जी.सी. जोशी	नवम्बर' 05	357
उत्तरांचल में प्राकृतिक रूप से पैदा होने वाले खाद्य फलों की उपादेयता एवं व्यवसायीकरण	डा० मायाराम उनियाल	मार्च' 06	651
उच्च रक्तचाप का प्राकृतिक उपचार	डा० राजीव गुप्ता	मार्च' 06	675
उन्माद चिकित्सा में चरकोक्त पंचकर्म के संदर्भ	डा० अनूप कु० गक्खड़, डा०सीमा चोपड़ा	मार्च' 06	679
उत्तराखण्ड के जनपदों में कुटीर उद्योग एवं खाद्य सामग्री व औषधोपयोगी वनस्पतियाँ	डा० मायाराम उनियाल	अप्रैल' 06	737
	ऋ		
ऋतु प्रभावात उत्पन्न Paptic Ulcer एवं परिणामशूल : एक आयुर्वेदीय अध्ययन	प्रो० हरिभाई के० द्विवेदी	नवम्बर' 05	349
	ए		
A Clinical study on "Effect of Amalaki (Emblica officinalis)- Churna in Pulmonary Tuberculosis as an Adjuvant Therapy -	Dr. B. Chandra Sekhara Rao	अगस्त' 05	126
Analytical Study of Kloma	Dr. G.S. Hadimani Dr. K.H. Pachchinavar	सितम्बर' 05	221
A Study on Makshika	Sridurga, K.R.C. Reddy, C.B. Jha	June' 06	920
A Review of Quality Evaluation of Herbal Formulation	Saini V, Kinger H.K., V.B. Gupta	June' 06	922
A Comparative study of Triphala Shodhita Shilajeet and Gomutra Shodhita Shilajeet in the Management of Sthaulya	Dr. Renuka Joshi, Dr. Jagdev Dr. Anand Kr. Choudhary Prof. K. Singh	अक्तूबर' 05	282
एक उपयोगी औषधि : जटामांसी	डा० विनय शौनक	नवम्बर' 05	359
एक पौष्टिक फल : बेल	राजकुमार जैन	नवम्बर' 05	360
M.D. B.H.U. (Open Competition) स्मृति पर आधारित हल प्रश्न-पत्र	डा० गोविन्द पारीक	दिसम्बर' 05	453
M.D. 2005 Jamnagar स्मृति पर आधारित हल प्रश्न-पत्र	डा० गोविन्द पारीक	'जनवरी' 06	549
एक रसायन औषधि ''गंधक'	डा० विनय शौनक	फरवरी' 06	607
Applied Aspect of Dashavidha Pariksha with Special Reference to Vikriti Pariksha	Dr. Ashutosh Kumar Yadav, Dr.Suman Yadav, Dr. Parameswarppa S. Byadgi	मार्च' 06	703

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
An Etiopathological and Therapeutic study On sthula Prameha W.S.R. to Niddm	Prof. Loknath Sharma Dr. Vivek Agarwal	अप्रैल' 06	775
	ओ		
Onion and its Pharmacognostical Aspects	Mukesh S. Skarwar, Sushil K. Dubey Amit Kr. Jain	जनवरी' 06	535
ओजक्षय	वैद्य अम्बालाल जोशी	मार्च' 06	677
	क		
केरल पैटर्न पर आयुर्वेद विकास	डा० जे०एन० नौटियाल	जून' 06	930
कैसे करें क्वाथ (काढ़ा) निर्माण	डा० गोविन्द शुक्ला	जुलाई' 05	28
क्या आप भी पेट की गैस से परेशान हैं ?	मीना	अगस्त' 05	115
Quality Control and Standardization of Metallic and Mineral Preparation of Ayurveda and Siddha	Ariamuthu Saraswathy	सितम्बर' 05	205
कामला रोग (Jaundice) में विरेचन (Purgation) कर्म की उपयोगिता	प्रो० अजय कुमार शर्मा डा० सीमा जैन भदौरा	अक्टूबर' 05	262
Critical Evaluation of Asthavidha Pariksha	Dr. Parameswarappa s. Byadgi, Vasudha P. Rao	दिसम्बर' 05	442
Contripution of Acharya Sharangadhara in Sandhana Kalpana	Dr. Upendra U. Zala Dr. A.K. Choudhary, Dr. P.K. Prajapati	फरवरी' 06	617
कुष्ठ रोग (Leprosy) : व्यापक विचार और उपचार	वैद्य चन्द्रदेव मंडल	अप्रैल' 06	749
Concept of Hyperglycaemia and its Management through Ayurveda	Dr. Shailesh Jain Dr. Mani Kumar Dr. O.P. Gupta	अप्रैल' 06	768
कुपोषण समस्या और आयुर्वेद	वैद्य विजय कुलकर्णी	जून' 06	912
	ख		
खाद्य पदार्थों में मिलावट एवं स्वास्थ्य	डा० अशोक कुमार श्रीवास्तव	जुलाई' 05	37
खतरनाक है - शरीर में अधिक आयरन	परिधि जैन	नवम्बर' 05	362
	ग		
गर्भावस्था में कैसा आहार लें ?	परिधि जैन	जुलाई' 05	35

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
गर्मियों में आपके लाड़ले की सेहत	वीना श्री श्रीमाल	जुलाई' 05	39
गर्भावस्था में शिशु और माँ की स्वास्थ्य रक्षा-एक समीक्षा	धीरज बोहरा डा० सुरेश चन्द्र	जून' 06	906
ग्रीष्म कालीन आहार-विहार पर विशेष चर्चा	कविराज डा० दिवाकर ठाकुर	अगस्त' 05	116
ग्रहणी	डा० संदीप अग्रवाल, डा० सुमन अग्रवाल	सितम्बर' 05	189
गेहूँ के ज्वारे : एक अनुपम औषधि	स्मिता गुप्ता, एडवीन जेराल्ड शीजा एडवीन जेराल्ड	मार्च' 06	681
गुणों से भरपूर मेथी	अनिता जैन	मई' 06	833
ग्रीष्म ऋतुचर्या	डॉ० प्रेमचन्द्र मंगल	जून' 06	914
ग्रीष्म कालीन सेवनीय आहार-विहार	कविराज डा० दिवाकर ठाकुर	जून' 06	918
	घ		
घरेलू नुस्खों से स्त्री रोगों का इलाज	डा० हनुमान प्रसाद उत्तम	अक्टूबर' 06	266
	च		
चरकोक्त ज्वर चिकित्सा अध्याय में ऊर्ध्वांग चिकित्सा सम्बन्धित उल्लेख	डा० अनूप कुमार गक्खड़ डा० अनिल गक्खड़	अप्रैल' 06	760
चरकोक्त सिद्ध स्थान का प्रयोजन एवं उसकी उपयोगिता	डा० अनूप कुमार गक्खड़	मई' 06	839
	छ		
छात्रोपयोगी-का०हि०वि०-2004 (हल प्रश्न-पत्र)	डा० गोविन्द पारीक	सितम्बर' 05	223
	ज		
जीवन का उत्तरार्ध सेवा निवृत्त काल और स्वास्थ्य	वैद्य इन्द्रदेव भट्ट	जुलाई' 05	19
General rules for collection of Medicinal Plants	Prashant Kr. Jha T.N. Pandey	जुलाई' 05	53
जीव विज्ञान-आयुर्वेद	आचार्य राजकुमार जैन	सितम्बर' 05	168
जरूरी है विटामिन ''बी''	कैलाश जैन, एडवोकेट	सितम्बर' 05	198
जोड़ों की कष्टसाध्य व्याधि-आमवात ''निदान एवं चिकित्सा''	डा० विजय कुमार राय	सितम्बर' 05	201

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
जोड़ों में दर्द, सूजन, जकड़न (गठिया वाय) की अनुभूत रामबाण दवा	डा० रामेश्वर दयाल	अक्टूबर' 05	306
जल चिकित्सा	स्मिता गुप्ता, एडवीन जेराल्ड शीजा एडवीन जेराल्ड	अप्रैल' 06	756
	ड		
Diabetes and its Applied aspect in Ayurveda	Dr. G.C. Nanda, Dr. N.N. Pathak	नवम्बर' 05	370
	त		
तनाव : कारण, लक्षण व उपचार	डा० राजीव गुप्ता	जुलाई' 05	26
	थ		
थार्यराइड (Thyroid) विकार एवं हाइपोथायइ-ड्रॉयडिज्म की सफल आयुर्वेदिक चिकित्सा	डा० संदीप मदाठा	सितम्बर' 05	184
Therapeutic Uses of Ghee in Ayurveda	Dr. Mayank Dhatkoti, Proff. V.D. Shukla	नवम्बर' 05	368
Therapeutic use of Aloe Vera (Grith Kumuari)	Dr. Ashok Sharma, Deepika Bhatia Dr. K.N. Yadav	मई' 06	851
	द		
दिमागी बुखार (Meningitis) - निदान एवं चिकित्सा	डा० विनोद कुमार गौतम डां० माण्डवी गौतम, प्रो० अजय कु० शर्मा	अगस्त' 05	95
दालचीनी मसाला ही नहीं, दवा भी	डा० हनुमान प्रसाद उत्तम	सितम्बर' 05	199
दोषज उन्माद चिकित्सा संबंधी आयुर्वेदीय परिकल्पना - (कुछ आ०वृ०पत्र सहित)	वैद्य पी०एस० अंशुमान	अक्टूबर' 05	248
दर्शनशास्त्र के परिप्रेक्ष्य में आत्या एवं मन का परस्पर सम्बन्ध-एक समीक्षा	डा० सुरेश चन्द्र	दिसम्बर' 05	430
द्वादश प्राण में वायु - एक विवेचना	डा० आशुतोष कु० यादव डा० सुमन यादव, प्रो०एस०डी० दूबे	दिसम्बर' 05	433
दूषणाद्दोपा:	अनन्तराम शर्मा	जून' 06	895

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
	न		
नाड़ी परीक्षा - क्या संहिता में संदर्भ नहीं है ?	वैद्य हरिदास श्रीधर कस्तुरे, वैद्य तनुजा पटेल	अगस्त' 05	100
निद्रा तु वैष्णवी प्रोक्ता	वैद्य (डा०) ओमवीर सिंह "वीर" सुरेन्द्र सिंह (छात्र)	दिसम्बर' 05	428
Nidanatmak and Upshayatmak study of Tridoshaja yonivyapada W.S.R. to Bacterial Vaginosis	Prof. Loknath Sharma Dr. Rizwana Parveen	जनवरी' 06	521
	प		
Poisoning and its First Aid	Dr. Ashutosh Kr. Yadav, Dr. J.K. Mistra Dr. H.H. Awasthi	जुलाई' 05	60
परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी - प्रश्न पत्र	डा०अनूप कु०गक्खड़, डा०अनिल गक्खड़	जुलाई' 05	69
परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी - संघ लोक सेवा आयोग 2005 (हल प्रश्न-पत्र)	डा० गोविन्द पारीक	अगस्त' 05	139
पाषाण भेद - शोधपूर्ण विवेचन	कविराज डा० दिवाकर ठाकुर	सितम्बर' 05	200
Panchkarma :- A Complete therapy for Curative and rejuvenative purpose	Dr. Shivani Padha Dr. J.S. Tripathy	सितम्बर' 05	210
पाण्डुरोग की चिकित्सा में निर्दिष्ट चरकोक्त योग	डा०अनुप कु०गक्खड़, डा०अनिल गक्खड़	अक्टूबर' 05	265
पर्णबीज (Bryophyllum Pinnatum)	डा०गणेश चन्द्र उपाध्याय, प्रो०पी०पी०शर्मा	अक्टूबर' 05	269
पी०जी० प्रवेश परीक्षा हेतु प्रश्न संग्रह-माला-1	डा०कमला आर०नागर, डा०राकेश कु०नागर	अक्टूबर'05	299
परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी	डा०अनुप कु०गक्खड़, डा०अनिल गक्खड़	नवम्बर' 05	383
पित्त एवं अग्नि विवेचन	डा०माण्डवी गौतम, प्रो०ओम प्रकाश उपाध्याय डा० विनोद कुमार गौतम	दिसम्बर' 05	424
पोटाशियम के चयापचय जन्य विकार एवं उनका आयुर्वेदीय प्रतिकार	डा० अनूप कुमार इन्दोरिया प्रो० अजय कुमार शर्मा	जनवरी' 06	506
Prevention of bacterial water borne disease	Sakarkar D.M., Faria Fatina Gensalves L.	जनवरी' 06	529
पुरुषों में शुक्र धातुक्षय-एक जटिल समस्या एवं समाधान	डा० सुरेश चन्द्र, डा० नरेश कु० गुप्ता	फरवरी' 06	589
पर्पटी कल्पना	हिमांशु शेखर तिवारी, उदय सिंह ठाकुर, दीप शिखा	फरवरी' 06	597
परीक्षोपयोगी प्रश्नोत्तरी	डा० अनूप कु० गक्खड़	मार्च' 06	707

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
प्राकृतिक चिकित्सा-आयुर्वेद का एक अंग विशेष	डा० रजनी बाला, डा० विकास चन्द्र गुप्ता डा० लक्ष्मीकान्त द्विवेदी	अप्रैल' 06	741
पञ्चगव्य : एक दिव्य औषधि	डा० सतीश चन्द्र तिवारी	अप्रैल' 06	754
प्याज, एक गुणकारी और औषध	डॉ॰ विनय शौनक	जून' 06	915
	फ		
Folk Medicines of Mamdsaur Dist. (M.P.)	Edwin E.Sheeja E. Amatraj A; Soni R	जुलाई' 05	63
Pharmaceutical study of Asokarista with Ref. to Different containers and Filtration Tecnies	Arathi T.S. Vivek Bajaj Dr. D. Joshi, Dr. A.K. Choudhary	फरवरी' 06	614
	ब		
बलकारक खजूर	डॉ॰ विजय कुमार नाहर	जून' 06	916
बाल्यावस्था में कुकुर खांसी का प्रकोप-एक समीक्षा	कु०सरजारानी, डा०सुरेशचन्द्र, डा० नरेश कु०गुप्ता	जुलाई' 05	30
बच्चों को वर्षा ऋतु में होने वाले रोग और उनसे सुरक्षा के उपाय	डा० अयोध्या प्र० अंचल	अगस्त' 05	118
बहुपयोगी वनौषध बच-परिचय एवं खेती	लायक राम भट्ट	सितम्बर' 05	175
बालों को काला रखने के उपाय	डा० वीरेन्द्र कुमार शर्मा	अक्टूबर' 05	267
बालकों में कृमिरोग- निदान एवं चिकित्सा	डा० दिनेश कुमार राय, डा०शशिकान्त सचान	जून' 06	908
बेहद उपयोगी है काली मिर्च	परिधि जैन	अक्टूबर' 05	279
Bilwa - Chemical Constituents and Medicinal Properties,	Dr. Laxmi N. Gupta Dr. C.B. Jha, Dr. R.K. Sharma	अक्टूबर' 05	290
Brain with the Holistic concept of mind	Dr. Shivani Padha, Dr. J.S. Tripathi	फरवरी' 06	612
बच्चों में सांस की तकलीफ/तमक श्वास (Bronchial Astham)	शान्तुल कुमार गुप्ता प्रो० अजय कुमार शर्मा	मार्च' 06	670
बच्चों में दंतशब्द/दांत किटकिटाना Teeth grinding : [Bruxism]	डा० रामशंकर गौतम डा० संगीता	मार्च' 06	685
ब्राह्मी बूटी	जयेन्द्र कुमार जौहरी	अप्रैल' 06	757
बबूल - गुण एवं उपयोग	वैद्य मनीषा खत्री	मई' 06	835
	भ		
भूटान की वन संपदा एवं पारंपरिक जड़ी-बूटियाँ	डा० मायाराम उनियाल	अक्टूबर' 05	256

जुलाई 2005 से जून 2006 तक के प्रकाशित लेखों की वार्षिक-सूची

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
	म		
Medicinal Uses of Orchid Plants	Dr. Anil Kumar Dhiman	जुलाई' 05	56
मधुमेह चिकित्सा में अवस्था निर्धारण एवं समाग्निक्रिया जन्य धातु साम्य का महत्व	डा० उत्तम कुमार शर्मा	अगस्त' 05	106
महौषधि - शुण्ठी - आर्द्रक	डा० केदार नाथ यादव	अगस्त' 05	111
Madanaphala - A Complete drug for	Dr. Prakash L. Hegde	जून' 06	924
Metallic Part Detection in An Ayurveda Bhasm by Atomic spectroscopy (spectrography)	Dr. Sah Lalit Mohan Jha C.B.	अगस्त' 05	137
मानसिक रोग-चिंता मनस्पात (Anxiety Disorder) के लक्षण और उपचार	डा० दीनानाथ राय	सितम्बर' 05	178
Medicinal Plants of thar Desert : A Survey Report	Edwin E., Sheeja E. Rathore C; Samani V.	सितम्बर' 05	214
मूलगामी चिकित्सा का सोपान पंचकर्म	डा० बी०एम० निर्मल	अक्टूबर, 05	271
मधुमेह के प्रतिरोधक पहलू	प्रो० जी०के० चतुर्वेदी डा० प्राजक्ता-कम्बाउकर	जनवरी' 06	494
मांसाहर एवं परीक्ष्य भाव	डा० राजीव श्रीवास्तव, डा० दुर्गावती देवी डा० बी० के० द्विवेदी	जनवरी' 06	516
मधुमेह : लक्षण व उपचार	डा० राजीव गुप्ता	जनवरी' 06	519
मौसमे बहार-ऋतुराज बसन्त	कविराज डा० दिवाकर ठाकुर	मार्च' 06	690
Management of Gridhrasi Roga (Sciatica)	Dr. Vinod Kr. Singh, Dr. B.N. Singh	अप्रैल' 05	773
मंदोवह स्रोतोदुष्टि चिकित्सा विचार	वैद्य पी०एस० अंशुमान	मई' 06	812
मधु - एक प्राकृतिक औषधि	डा० जी० सी० जोशी	मई' 06	830
Medicinal Plants of Palamau District of Jharkhand state Part - I	K. Chandra	मई' 06	846
	य		
Utility of Animal Blood in Human welfare - (Preliminary Study)	Abha Prasad, Dr. Dinesh Kumar Dr. Alka Sharma, Dr. R.R. Prasad	नवम्बर' 05	379
योनिभ्रंश-वात व्याधि के परिप्रेक्ष्य में एक विमर्श	वैद्या निशा गुप्ता	फरवरी' 06	583

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
	र		
Role of Pathya (Wholesome Regimen) in Madhumeha (Diabetes Mellitus)	Dr. Pradeep Kr. Sachan	अक्टूबर' 05	286
Role of Jalaukavacharan and Pancha Nimba Churna Vati in Vicharchika	Dr. Uday Patanakar Dr. Ujwala Patanakar, Prof. S.S.Sharma	नवम्बर' 05	364
रसेन्द्रमंगल का रसशास्त्र में योगदान	डा० वी० नागेश्वर राव	फरवरी' 06	515
रसेन्द्रमंगल का ऐतिहासिक विवेचन	डा० वी० नागेश्वर राव	फरवरी' 06	586
Rocksalt : An Ayurvedic Ingredient	R. Barik, P. Mahapatra, S.Shrivastava N. Mishra, S. Jain	मार्च' 06	697
Role of Shodhana Process (Purification) in Ayurveda Guggulu Preparations	Dr. Kinnari Dhruve, Dr. Rajput Anurag Singh Dr. Anand Kr. Choudhary, Dr. P.K. Prajapati Dr. Subrata De	अप्रैल' 06	843
Role of Samsarjan Krama in Panchakarma Therapy	Dr. Padma Lochan Sankhua	मई' 06	857
	ल		
लू के कारण, लक्षण व उपचार	डा० हनुमान प्रसाद उत्तम	मई' 06	840
	व		
वसा जन्य विकार एवं चिकित्सा	वैद्य पी०एस०अंशुमान	जुलाई' 05	10
वर्तमान परिवेश में प्रवाहिका एवं उसकी चिकित्सा	डा० विजय कुमार राय	जुलाई' 05	23
वृक्क रोगों की सफल चिकित्सा	वैद्य हरिश्चन्द्र गर्ग	जुलाई' 05	72
वात रक्त रोग : लक्षण, भेद, कारण व उपचार	वैद्य चन्द्रदेव मंडल	अगस्त' 05	97
वात जनित व्याधियों में आमवात की सफल चिकित्सा	डा० मायाराम उनियाल	सितम्बर' 05	172
विचर्चिका रोग के परिप्रेक्ष्य में जलौकावचारण एवं पंच निम्ब चूर्ण (वटी) की कार्मुकता का एक अध्ययन	डा० रामेश्वर प्रसाद गुप्ता डा० श्याम सुन्दर शर्मा	सितम्बर' 05	193
वानस्पतिक औषधियों के उत्पादन की आवश्यकता	प्रो०बी.एन. सिंह, डा०ए.के. शर्मा डा० प्रदीप श्रीवास्तव	अक्टूबर' 05	273

जुलाई 2005 से जून 2006 तक के प्रकाशित लेखों की वार्षिक-सूची

लेख	लेखक	माह	पृ.सं.
वृक्क के अन्तर्गत व्याधि : एक आयुर्वेदीय अध्ययन	प्रो० हरिभाई त्रिवेदी	दिसम्बर' 05	420
वासा (अडूसा) - एक दिव्य औषधि	डा० रामानन्द, डा० आर०बी० यादव	जनवरी' 06	513
वृक्क अकर्मण्यता (गुर्दे फेल होना) Renal Failure की उत्तम चिकित्सा	वैद्य रामकुमार विन्दल वैद्य रमेशकुमार विन्दल	जनवरी' 06	545
व्यक्तित्व - श्रीमती कस्तूरी चन्द्रशेखरन देश के हर गाँव में हो किचन हर्बल गार्डन	डा० अरूण चन्दन	मई' 06	869
	श		
शंख भस्म का महिला रूग्णा तारूण्यपिड़िका व्याधि में संशोधनात्मक अध्ययन	डा० ओम् प्रकाश तलोकर	जुलाई' 05	41
शाप विशेष के रूप में कहे गये कुछ मांस विकार	वैद्य पी०एस० अंशुमान	अगस्त' 05	89
शय्या मूत्रण का सामान्य परिचय-एक अध्ययन	कु० सरजा रानी, डा० सुरेश चन्द्र	सितम्बर' 05	191
श्लेष्मक ज्वर (Influenza)एवं चिकित्सा	डा० एस०डी० शर्मा, अरशा अहमद	अक्टूबर' 05	277
शुक्र प्रदुष्टियों की चिकित्सा: प्राच्य संदर्भ	वैद्य पी०एस० अंशुमान	दिसम्बर' 05	412
श्वास (Asthama) रोग में उपयोगी औषधि "दम की बूटी"	अभिमन्यु यादव डा० अशोक कुमार शर्मा	फरवरी' 06	595
	स		
Suturing in Ayurveda (Preliminary Study)	Dr. Umesh Chandra Sharma Dr. Amanpreet Kaur Broca, Dr. H.K. Kushwala	सितम्बर' 05	218
स्थानीय उपचार में प्रयुक्त होनेवाली औषधियाँ	डा० राजकुमार द्विवेदी	नवम्बर' 05	281
Status of Ojasa and Agni in Prameha Vis Dibetes mellitus : A Critical consideration	Sanjay Kumar Pandey A.K.	नवम्बर' 05	376
स्वास्थ्यवर्द्धक शरद ऋतु	कविराज डा० दिवाकर ठाकुर	दिसम्बर' 05	438
संस्कृत ग्रन्थों में भोजन की अवधारणा	डा० ज्योत्सना निगम	जनवरी' 05	502
स्वमूत्र विष नहीं - अमृत	सुभाष चन्द्र	फरवरी' 06	602
Study of Effect of Nasya Karma in cases of Depressive Illness	Dr. Rajni chandre, Dr. K.H.H.V.S.S. Narasimha Murthy, Prof. R.H. Singh	फरवरी' 06	608

लेख	लेखक	माह	पृ.
सिद्ध स्थान में शिरोरोग विवेचन के सन्दर्भ	डा० अनूप कुमार गक्खड़, डा० आरती रावत	मार्च' 06	(
साईनुसाइटिस-लक्षण, निदान एवं उपचार	डा० हरमोहन महाराणा डा० अनिल शर्मा	मार्च' 06	6
सेहत भरी है अजवाइन में	श्रीमती अनिजा जैन	अप्रैल' 06	7
सूखा फल मखाना-पौष्टिकता का खजाना	कविराज डा० दिवाकर ठाकुर	अप्रैल' 06	7
Stress and Ayurvedic Management	Dr. Anoop Kr. Indoria, Prof. Ajay Kr.	अप्रैल' 06	7
स्नातकोत्तर प्रवेश परीक्षा लखनऊ आयोजित जून 2005 स्मृति पर आधारित हल प्रश्न-पत्र	डा० गोविन्द पारीक	अप्रैल' 06	7
सन्धिगतवात व्याधि के आयुर्वेदिक उपाय - एक गवेषणा पूर्ण अध्ययन	डा० बी०एम० निर्मल	मई' 06	8
स्फटिक योग का रक्तप्रदर पर एक सफल आतुरीय परीक्षण	वैद्या (डा०) मीना रानी वैद्य (डा०) ओमवीर सिंह "वीर"	मई' 06	8
स्मृति पर आधारित हल प्रश्न पत्र-B.H.U. 2005 (M.D. Ayurved) Internal Examination	डा० गोविन्द पारीक	मई' 06	8
Vaidya Shrihari Shankar-(Personality)		जून' 06	9
हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म	वैद्य हरीदास श्रीधर कस्तुरे	फरवरी' 06	5
हेमन्त ऋतुचर्या में जीवन शैली	डा० महेश चन्द्र पूर्विया, प्रो०महेन्द्र सिंह मीणा	फरवरी' 06	6
हृद्रोग चिकित्सा और पंचकर्म - 2	वैद्य ह० श्री कस्तुरे, वैद्य हरेश व्यास वैद्या तनूजा पटेल	मार्च' 06	6
हृदयशूल (एंजाइना) उत्पत्ति और चिकित्सा	डा० शशि भूषण शलभ	मार्च' 06	66
हृदय रोग के कारण एवं निवारण	प्रो० सी०बी० झा, डा०सूढ़लदेव महापात्र	मार्च' 06	69
Hypertension and its management in Ayurveda	Dr. Debashis Panda, Dr. Ajay Kr. Sahu Prof. Mahesh Chandra Sharma	मार्च' 06	69
हृदय रोग : निदान एवं उपचार	डा० नन्द किशोर दाधीच	अप्रैल' 06	7
हृदय रोग के कारण एवं निवारण	प्रो० सी० बी० झा, डा० सूढ़लदेव महापात्र	जून' 06	9

-131415
ह

GURUKUL KANGRI LIBRARY

Date

Access 10-7-08

Class

Cat

Tag

Filing

E A

Any ot

Checked

Entered in Database

Signature with Date